5-6 Scanned

ॐ



॥ श्रीशङ्कराचार्यो विजयतेतराम् ॥

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्।
भाष्य सूत्रकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

श्रीशङ्कराचार्य के जीवन चरित्र तथा श्रीकाञ्ची कामकोटि कुम्भकोणम् मठ के मठविषयक-प्रचारों का सत्यान्वेषण।

सम्पादकः

जयपुर विश्वनाथ राजगोपाल शर्म्मा

मुद्रकः

श्री रामा प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
धर्मपुरी, (शेलम जिला)
मदरास राज्य

सं० 2019/20 1963 मूल्य रु० [redacted]

प्रथम संस्करण–1000

सूचना

इस पुस्तक का अनुवाद किसी भी भाषा में किया जा सकता है। प्रार्थना है कि शुभाकांक्षी उदारशील पुरुष सार्वजनिक जानकारी के लिए इसे अंग्रेज़ी, तमिल, तेलगू, कन्नडा भाषाओं में अनुवाद कर प्रकाश करने का कार्य हाथ में लें और इस शुभ कार्य में यथाशक्ति अपनी अपनी सहायता प्रदान करें। यह सूचना दी जाती है कि इस पुस्तक के संपादक ऐसे कोई भी योग्य व्यक्ति को अनुवादित पुस्तक प्रकाश करने के लिए लिखित अनुमति देने को तैय्यार है। संपादक ने इसका सर्वाधिकार अपने स्वाधीन रक्खा है।

ज. वि. राजगोपाल शर्म्मा,
संपादक

प्रकाशक तथा विक्रेता :

ज. वि. राजगोपाल शर्म्मा,

51, हनुमान घाट, वाराणसी–1

(उत्तर प्रदेश)

श्रीरस्तु

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

श्रीशङ्कराचार्योविजयतेतराम् ॥

स्तुतिः



वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृत कृत्याः स्युः तं नमामि गजाननम् ॥



संख्यातुं भजकवरान् सुधां प्रदातुं
संप्रीत्याधिगमखिलाः कलाश्च सद्भ्यः।
अक्षस्रक्कलशसुबोध पुस्तक श्री-
हस्तैषा ममहृदि शारदा सदास्ताम् ॥

कल्याणानि तनोतु काऽपि तरुणी शृङ्गाद्रिभूषायिता
श्रीमच्छङ्करदेशिकेन्द्रकलितं चक्रं सदाधिष्ठिता।
दूरस्थामपि पादनम्रजनतां विद्यायुरारोग्यस—
त्सन्तत्यादि मनोरथाप्ति सहितां संतन्वती सत्वरम् ॥



गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अद्वैतामृतवर्षिभिः परगुरु व्याहारधाराधरैः ॥
कान्तैर्हन्त समन्ततः प्रसृमरैस्तत्तापत्रयैः ॥
दुर्भिक्षं खपरैकताफलगतं दुर्भिक्षु सम्पादितं ।
शान्तं सम्प्रति खण्डिताश्च निविडाः पाखण्डचण्डातपाः ॥
(श्रीमाधवाचार्य)

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणाकरम्
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥
वेदान्तार्थ—तदाभास—क्षीरनीरविवेकिनम्
नमामि भगवत्पादं परमहंसधुरन्धरम् ॥ (श्रीअमलानन्द सरस्वती)

अज्ञोऽप्यश्रुतशास्त्राण्याशु किल व्याकरोति यत् कृपया ।
निखिलकलाधिपमनिशं तमहं प्रणमामि शङ्कराचार्यम् ॥
(श्रीसच्चिदानन्द स्वामिनः)

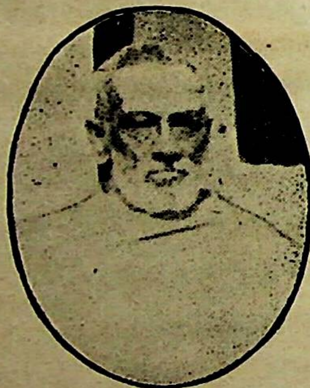
श्रीमदाद्य शङ्करभगवत्पादानां तद् प्रतिष्ठित चतुष्टय धर्मराजधानी मठाधिपतीनां सर्वेषां
श्रीजगद्गुरुणां सर्वमङ्गळ चरणानुस्मृति पूर्वकमयं ग्रंथो सत्यान्वेषरूपः
"श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शः"

प्रकटितः।



श्रीकाशी निवासस्थ जयपुर त्रियम्बकेश्वर गणपति शास्त्रिणां पुत्रस्य ब्रह्मपदं प्राप्तस्य
पन्डितवर्यस्य जयपुर गणपति विश्वनाथ शर्म्मणः मम पूज्यपितुः
पादयोः सादरं सप्रणामं च

समर्पितम् ।



डा० राजेन्द्र प्रसाद,
(भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार)

सदाकत आश्रम, पटना–10,
जनवरी 2, 1963.



स्वर्गीय श्री ज. ग. विश्वनाथ शर्मा द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर श्रीमद्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श नामक ग्रन्थ, जिसका संपादन उनके सुपुत्र श्रीराजगोपाल शर्मा ने किया है, पठनीय और चिन्तन तथा इतिहास की दृष्टि से उपादेय है। धर्मपरम्परा, सामाजिक चिन्तन, साहित्य-निर्माण और इतिहास; इन सभी दृष्टियों से आदिगुरु शङ्कराचार्य की जीवनगाथा तथा उनकी कृतियां देशभर के लिये एक बहुमूल्य निधि है। इस ग्रन्थ में सुयोग्य लेखक ने जो जानकारी और सामग्री प्रस्तुत की है, वह आसानी से उपलब्ध नहीं। इसलिये भी ग्रन्थ के प्रकाशन का स्वागत होना चाहिए।

मुझे श्रीमद्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श को देखकर बहुत प्रसन्नता हुई और मेरा विश्वास है सभी धर्मनिष्ठ पाठकों की इस पुस्तक के प्रति यही प्रतिक्रिया होगी।

राजेन्द्र प्रसाद.

डा० सम्पूर्णानन्द,

(भूतपूर्व मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार,
राजस्थान के वर्तमान राज्यपाल)

जयपुर,
राजभवन,
नवम्बर 14, 1962.



भगवान आदि शङ्कराचार्य के जीवन और कार्यकलाप के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यह वांङ्मय केवल भारतीय भाषाओं में ही नहीं परन्तु भारतीयेतर भाषाओं में भी उपलब्ध है। प्रायः इस वांङ्मय के रचयिता ऐसे लोग रहे हैं जिनका शङ्कर के प्रति आदर का भाव रहा है। उनका ऐसा विश्वास है कि शङ्कर भारतीय दर्शन को मूर्तिमान करने और जीवों के उद्धार के लिये अवतरित हुए थे और उनकी वाणी से सरस्वती भी कृतार्थ हुई थीं जैसा कि किसी ने कहा है :—

"वक्तारमासाद्य यमेव नित्या
सरस्वती स्वार्थ समन्विता ऽ भूत्।
निरस्त दुस्तर्क कलंक पंका
नमामि तम् शङ्करमर्चितांघ्रिम्॥"

यों कुछ लोग उनके दोषों को व्यक्त करने से अपनी लेखनी को रोक नहीं सके। शङ्कराचार्य पर प्रच्छन्न बौद्ध होने का आरोप कई जगह पुराणों में भी आया है। इस बात का कहना इतना ही सिद्ध करता है कि आरोप करनेवाला शङ्कर अद्वैतवाद की गहराई को समझ न सका। उसकी समझ में केवल इतना ही आया कि शङ्कर का शुद्ध ब्रह्म बौद्धों के शून्य से भिन्न नहीं है और उनका सद्वाद बौद्धों के असद्वाद का पर्यायमात्र है। कुछ लोग उनसे सिर्फ इसलिये द्वेष करते थे कि वह उनको शैव समझते थे। दक्षिण भारत में शैवों और वैष्णवों का विरोध इतना व्यापक और गम्भीर हो गया था कि चाहे जितनी भी अच्छी बात कही जाय यदि कहनेवाला शैव है तो उसको कोई वैष्णव मान नहीं सकता था और यदि कहनेवाला वैष्णव है तो शैवों में निश्चय ही उसका तिरस्कार होगा। यह आपस का झगडा निंद्य और अहितकर तो है ही, इसको शङ्कराचार्य के प्रसङ्ग में उठाना और भी अनुचित है। उन्होंने जहां भागवत मत की अवैदिकता को सिद्ध किया है वहीं और उसी प्रकार पाशुपत मत का भी दोषपूर्ण होना प्रतिपादित किया है। उनके ब्रह्म को किसी देवी देवता के साथ तादात्म्य प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है और न उनका सिद्धान्त किसी उपासना शैली से सम्बन्धित है। व्यक्तिगत रूप से उन्होंने चाहे किसी भी प्रकार की उपासना की हो परन्तु उसकी छाया उनके विचारों पर नहीं पडने पायी है। सौन्दर्यलहरी उनकी रचना है। निश्चय ही उसमें पराशक्ति का समाधि भाषा में वर्णन किया गया है। यदि उन्होंने कुछ दिनों तक किसी स्थान पर श्रीचक्र की आराधना की थी तो यह मानना चाहिये कि उन्होंने भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना की थी परन्तु ऐसा करना उनके शैव होने का प्रमाण तो नहीं हो सकता। और फिर शैव और वैष्णव का मनमुटाव मूर्खता की चरम सीमा है। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' कहते जाना और शैव या वैष्णव के नाम से द्वेष करना न वैष्णव को शोभा दे सकता है न शैव को। जहांतक शक्ति की बात है, कोई वेदानुयायी यह नहीं कह सकता कि वह शक्ति का उपासक नहीं है क्योंकि वेद का प्रत्येक मंत्र किसी न किसी देवता की—देव की नहीं—सेवा में अर्पित है।

अस्तु, जैसा कि मैं ने ऊपर निवेदन किया है शङ्कराचार्य विषयक वाङ्मय प्रायः सारे का सारा ऐसे लोगों की कृति है जो उनके भक्त अनुयायी या प्रशंसक थे परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सारे वर्णन में कितना अंश ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है। यों तो हमारे देश में किसी की विस्तृत जीवनी लिखी भी नहीं जाती थी। थोडी उम्र में ही उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया, दिग्विजय के लिये भारत में चतुर्दिक यात्रा की, चारों दिशाओं में आम्नायानुसार चार अधिकार संपन्न विशाल मठ स्थापित किये और फिर 32 वर्ष की अवस्था में अपनी इहलीला समाप्त कर दी। इसी बीच में उन्होंने शारीरक—सूत्रों पर और उपनिषदों पर उन भाष्यों को लिखा जिनमें उनके विचारों का प्रतिपादन है। यह बडा कठिन काम होता है। किसी दूसरे की लिखित पुस्तक के द्वारा अपने मत को व्यक्त करना सुकर नहीं होता। अस्तु, इतनी बातें तो ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य हैं। परन्तु वह कहां कहां गये, किन किन विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ, शास्त्रार्थों में किसने क्या कहा यह सब शंकास्पद है। उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में दो मत नहीं हैं। परन्तु उन्होंने किस जगह शरीर छोडा यह अब भी विवादास्पद है। सब बातों पर विचार करके उत्तर प्रदेश सरकार ने आज से तीन चार साल पहले यह निश्चय किया कि केदारनाथ क्षेत्र में ही उनके शरीर के अन्तिम दर्शन हुए थे। वहां से वह उत्तर की ओर अनन्त हिमाच्छादित प्रदेश में चले गये। कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि वह कैलाश तक गये। कुछ कहा नहीं जा सकता। केदारनाथ में ही उनका स्मारक बनाया जा रहा है। जहां तक मैं समझ पाया हूं शंकराचार्य के मठाधीशों का भी समर्थन इस विश्वास को प्राप्त है।

प्रस्तुत पुस्तक में शङ्कराचार्य के जीवन पर प्रामाणिक प्रकाश डालने का प्रयास किया गया इस काम में काफी शोध किया गया है। ऐसी पुस्तक में इच्छा न रहते हुए भी लेखक को कुछ न कुछ वादविवाद में पडना पडता है। इस पुस्तक में भी ग्रन्थकार श्री ज. वि. राजगोपाल शर्मा को ऐसे विचारों की तीव्र आलोचना करनी पडी है जिनको कुछ लोगों ने आचार्य श्री के सम्बन्ध में फैला रखा है। उदाहरण के लियें, अबतक के उपलब्ध प्रमाणों से ऐसा सिद्ध होता है कि उनका जन्म और कार्यकाल आज से लगभग बारह सौ वर्ष पहले था अर्थात् विक्रम की छठवीं से लेकर आठवीं शताब्दी के भीतर था परन्तु कुछ लोगों का यह कहना है कि शङ्कराचार्य का जन्म लगभग पचीस सौ वर्ष पहले हुआ था। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह गौतम और महावीर के एक प्रकार से समकालीन हुए। इस बात को निबाहने के लिये ऐसा कहा जाता है कि बीच में और कई शङ्कराचार्य हुए हैं तथा जिनको साधारणतया आदि शङ्कराचार्य माना जाता है, वह इस शृंखला की पांचवी कडी थे। मैं यह तो दावा नहीं करता कि इस कथन की पुष्टि में जो प्रमाण दिये जाते हैं उन सबसे पूर्णतया अवगत हूं फिर भी इतना कहना चाहता हूं कि अबतक इस सम्बन्ध में जो कुछ देखने में आया वह मेरी दृष्टि में प्रामाणिक नहीं सिद्ध होता। प्रस्तुत पुस्तक में उन बातों की आलोचना की गई है। यद्यपि मेरी सम्मति में इसकी मात्रा कुछ कम हो सकती थी परन्तु इस थोडे से दोष के होते हुए भी मेरी समझ में पुस्तक उपयोगी है और आदि शङ्कराचार्य के जीवन पर प्रकाश डालती है।

मैं इस पुस्तक का स्वागत करता हूं। जल्दी में कहीं कहीं भाषा को परिमार्जित करने का अवसर नहीं मिला है। परन्तु ग्रन्थ के लेखक सज्जन ने मद्रासी होते हुए भी हिन्दी में इतनी बडी पुस्तक लिखने का प्रयास किया है, यह सर्वथा स्तुत्य है।

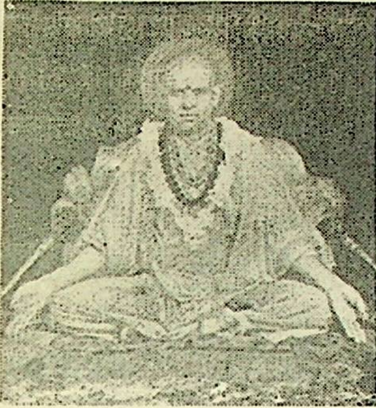
सम्पूर्णानन्द

डा० श्रीमङ्गलदेव शास्त्री, एम्. ए., डि. फिल्., (आक्स्फोर्ड)
(भूतपूर्व प्रिंसिपल, राजकीय संस्कृत कालेज, वाराणसी,
भूतपूर्व कुलपति, बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय)

वाराणसी.
21—10—1962.

"श्री मज्जगद्गुरुशाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तक को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसका संपादन वाराणसी निवासी श्री. ज. वि. राजगोपाल शर्मा जी ने बडे परिश्रम और योग्यता से किया है। पुस्तक का विषय है—श्री शङ्कराचार्य के जीवन चरित्र तथा श्री काञ्चीकामकोटि कुम्भकोणन् मठ के मठविषयक प्रचारों का सत्यान्वेषण। इसका आधार प्रायेग वह सामग्री है जिसका संकलन और अनुसन्धान संपादक के पूज्य पिता वाराणसी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गवासी श्री पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्मा ने अपने जीवन काल में अनेक वर्षों के परिश्रम और मनोयोग से किया था। अपने स्वर्गीय पिता की अभिलाषा को लेकर ही संपादक ने इस कार्य भार को अपने ऊपर लेकर इस ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया है। पुस्तक की शैली अनुसन्धानात्मक और भावना सत्यान्वेषण की है, इसीलिए मैं ग्रन्थ का अभिनन्दन करता हूं और आशा करता हूं कि यह एक महत्व-पूर्ण सत्यान्वेषण में सहायक होगा।

श्रीमङ्गलदेव शास्त्री



श्रीजूनापीठाधिपति आचार्य महामण्डलेश्वर परम पूज्यपाद श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दजी महाराज 'वेदान्ताचार्य।'

(पूज्यपाद की संस्थाएं—(1) श्रीमृत्युञ्जयाश्रम, वाराणसी (2) श्रीहरिहराश्रम, हरिद्वार (3) संन्यासाश्रम, बड़ौदा (4) श्रीसाङ्ग ब्रह्मविद्यालय, वाराणसी।)

वाराणसी, 1-12-1962

"श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श"

तापत्रयपुरपार्य्यः परमहंसपरिव्राजकाचार्यः।
मण्डलीशकुलधुर्यो जयतितरां श्री फणीन्द्रयतिसूर्यः ॥ 1 ॥

आद्य श्रीशङ्कराचार्यचरणौ प्रणमन्नहम्।
प्रस्तौमि प्रकृतग्रन्थं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥ 2 ॥

अवैदिकमतध्वान्तं विधूय भरतावनेः।
श्रौतस्मार्त्तप्रकाशेन मुखं येनोज्ज्वलीकृतम् ॥ 3 ॥

तस्यैवाचार्यपादस्य पवित्रं जीवनोदधिम्।
यतन्ते कलुषीकर्तुं कुम्भकोणाविलैर्जलैः ॥ 4 ॥

मूढा ये वैदिकम्मन्यास्तेषां वाचो निरस्यता।
श्रमेणायन्ततो ग्रन्थो राजगोपाल शर्मणा ॥ 5 ॥

अत्रादरेण सन्दृब्धा प्रमाणैः परिशोधिता।
वक्ष्यमाणाग्रतो ग्राह्या कथाऽऽचार्यचरित्रगा ॥ 6 ॥

केरले कालटिग्रामे नम्बूद्रिब्राह्मणान्वये।
भार्या शिवगुरोरेक मार्याम्बा सुषुवे सुतम् ॥ 7 ॥

स शङ्कर इतिख्यातोऽभवद् भूमण्डलेऽखिले।
नैव संज्ञानमात्रेण किन्तु कार्यवशादपि ॥ 8 ॥

अधीत्य चतुरो वेदान्शास्त्राणि निखिलानि च।
गोविन्दभगवत्पादाज्जगृहे तुर्यमाश्रमम् ॥ 9 ॥

निर्माय निर्मलं भाष्यं प्रस्थानत्रयगोचरम्।
दिग्विजिगीषया युक्तो बभ्रामाखिलभारते ॥ 10 ॥

वैदिकावैदिकान् सर्वानद्वैतप्रतिपक्षिणः।
आत्मबुद्धिप्रभावेण निराचक्रे निरामयम् ॥ 11 ॥

उद्धरन् तीर्थदेवादीनाश्रमान्मन्दिराणि च।
वर्णधर्मप्रतिष्ठायां तत्परोऽभून्निरन्तरम् ॥ 12 ॥

अक्षुण्णां रक्षितुं धर्म्यां भारतस्यैकराष्ट्रताम्।
नीतिविद्यावलम्बेन साधनान्यनुचिन्तयन् ॥ 13 ॥

शृङ्गेरिद्वारिकाज्योतिर्गोवर्धन मठाख्यया।
चत्वारि धर्मपीठानि चतुर्दिक्षु स्वतिष्ठिपत् ॥ 14 ॥

शिष्यान् सुरेश्वरादीन्स्वान् ब्रह्मिष्ठान्वेदपारगान्।
तत्तन्मठपतीन् कृत्वाऽदिशद्धर्म प्रचारगम् ॥ 15 ॥

सर्वज्ञपीठमारुह्य काश्मीरे कृतिसङ्कुले।
द्वात्रिंशद्वर्षदेशीयः केदारे विजहौ तनुम् ॥ 16 ॥

अत्रेदमवधातव्यं न विस्मार्यं कदाचन।
येन पातो न जायेत कुम्भकोणस्य किम्मते ॥ 17 ॥

अयमात्माब्रह्मेत्येकं प्रज्ञानंब्रह्म चापरम्।
तथा तत्त्वमसीत्येकमहंब्रह्मास्मि चेतरम् ॥ 18 ॥

चत्वार्येव महावाक्यानीमान्याचार्य उक्तवान्।
ओउम् तत्सदिति वाक्यस्य तत्त्वं तस्य न सम्मतम् ॥ 19 ॥

यतीनां सुप्रसिद्धेषु तीर्थादिदशनामसु।
सरस्वतीति नामैव नेन्द्रपूर्वा सरस्वती ॥ 20 ॥

'कुम्भकोणमठः' शाखामठमात्रं मतो यतः।
चत्वार एव पूर्वोक्तास्तेन संस्थापिता मठाः ॥ 21 ॥

अतो मठस्य तस्यैव प्राधान्यप्रतिपत्तये।
क्रियमाणोऽखिलो यत्नो बालुका पेषणोपमः ॥ 22 ॥

सर्वप्रमाणसंसिद्धं सर्वलोकाभिसम्मतम्।
उक्तमर्थं निबध्नन्तं राजगोपालमादरात् ॥ 23 ॥

तस्माद्रामेश्वरानन्दो वेदान्ताचार्य शब्दभाक्।
शुभाशिषा यतीन्द्रोऽहं सम्वर्द्धयितुमुद्यतः ॥ 24 ॥

स्वामी श्रीरामेश्वरानन्द मण्डलेश्वरः



श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्यपाद श्री 108 पयाहारी श्रीस्वामी बालकृष्णयतिजी महाराज, वेदान्ताचार्य, महामण्डलेश्वर (जूना)।

सिद्धपीठ श्रीहथियाराम मठ, जिला—गाजीपुर।

अध्यक्ष—श्रीविश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा, वाराणसी।

वाराणसी, 19-10-1962

श्रीराजगोपाल शर्मा द्वारा सम्पादित "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक ग्रन्थ गवेषणा पूर्ण तथा उत्तम है। ग्रन्थ के 4 खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में "मदाद्यशङ्कराचार्य" का सुचरित्र वर्णित है। द्वितीय खण्ड में कुछ लोगों द्वारा आचार्यश्री के विषय में जो भ्रान्त धारणायें फैलाई गई है उनका उचित उपपत्तियों द्वारा निराकरण एवं यथार्थ बात का समर्थन है। द्वितीय खण्ड ही ग्रन्थ का विशाल अंश है। इसी में ग्रन्थ का विशेष प्रतिपाद्य विषय है। तीसरे खण्ड में आचार्यों एवं विद्वानों की सम्मतियां हैं। चौथे में शङ्कराचार्य से सम्बद्ध संस्कृत श्लोक हैं।

ग्रन्थ बहुत ही उत्तम है। श्रीराजगोपाल शर्माजी का परिश्रम प्रशंसनीय है। ग्रन्थ में भाषा दोष होने पर भी गवेषकों के लिए प्रकाशस्तम्भ है। इस 'विमर्श' के आधार पर विद्वान लोग बडा लाभ उठा सकते हैं और साथ ही लेखक महोदय के अगाध पाण्डित्य एवं विवेचना पूर्ण शैली का पता लगा सकते हैं। श्रीराजगोपाल शर्माजी ने श्रीशङ्कराचार्य का जीवन शास्त्रीय एवं सम्प्रदाय सिद्ध एवं लोकविख्यात रूप में प्रतिपादन किया है। "कुम्भकोण मठ" वालों के श्रीशङ्कराचार्य के विषय में विचारों को जानकर मुझे भी आश्चर्य हुआ।

हमारे सन्यासि सम्प्रदाय में आज तक यही प्रसिद्ध है कि श्रीशङ्कराचार्यजी ने वैदिक धर्म के उद्धारार्थ चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना की हैं। दक्षिण में श्रृङ्गेरी मठ और उत्तर में ज्योर्तिमठ तथा पूर्व में गोवर्धन मठ एवं पश्चिम में शारदा मठ। ये ही चार मठ सनातन धर्म के सुरक्षार्थ विशेष रुप में प्रतिष्ठापित हुए। इन मठों में नियुक्त आचार्यों को भी 'श्रीशङ्कराचार्य' कहा जाता है। सम्भव है और मठों की भी आद्यशङ्कराचार्यजी ने स्थापना की हो परन्तु वे प्रख्यात अधिकार संपन्न नहीं हुए और प्रधान भी नहीं मानें गये हैं। वैसे तो उद्धार श्रीआचार्य ने बहुत मठों एवं मंदिरों का किया है, परन्तु दृग्गोचर मठाम्नायों में चार ही मठ प्रसिद्ध हैं। महावाक्य भी वेदान्त सम्प्रदाय में चार वेदों के चार माने गये हैं, वे ऋगादि के क्रमशः प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्माब्रह्म, हैं। "ॐ तत्सत" भगवन्नाम होने पर भी शाङ्करवेदान्त सम्प्रदाय में महावाक्य नहीं माना गया है।

भगवान् आद्यशङ्कराचार्यजी ने केरल के 'कालटी' नामक स्थान में धर्म रक्षार्थ जन्म ग्रहण किया और नर्मदा तट पर गौडपाद शिष्य भगवत् पूज्यपाद गोविन्द से सन्यास दीक्षा ली, धर्मप्रचार एवं अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया, अंत में 32 वें वर्ष की अवस्था में केदार क्षेत्र में पाञ्चभौतिक देह का परित्याग किया है; यही बातें आजकल विशेष रुप से प्रामाणिक मानी जाती है। वैसे तो आज ही नहीं पहले के जीवन चरित्रों में भी कुछ विप्रतिपत्तियां

पाई जाती है। प्रायः यह देखा जाता है हमारे देश के महापुरुषों के विषय में एकमत नहीं है। फिर भी सर्वथा असंगत कल्पना ठीक नहीं। 'विमर्श' में पाठकों को श्रीशङ्कराचार्यजी के विषय में प्रामाणिक बातें पढने को मिलेगीं। मैंने यत्रतत्र ग्रन्थ का अवलोकन किया। लेखक के परिश्रम को मैं प्रशंसनीय समझता हूं। मैं समझता हूं शायद हिन्दी भाषा में ही नहीं बल्कि और भाषाओं में भी एक ही जगह इतना शोधपूर्ण विचार मिलना कठिन है। इस ग्रन्थ का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी होना चाहिए, जिससे कि लोग श्रीशङ्कराचार्यजी के विषय में भ्रान्त धारणाओं को हटाकर सही ज्ञान प्राप्त कर सकें। इससे विद्वान, विद्यार्थी एवं गवेषक सभी लाभ उठा सकते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

बालकृष्णयति।



श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्यपाद
श्री 108 स्वामी श्रीरामचन्द्रगिरिजी महाराज,
महामण्डलेश्वर (निरञ्जनी), वाराणसी।

क्रमाङ्क 465 दिनाङ्क 20—10—1962

माननीय पं. श्री राजगोपाल शर्मा,

सस्नेह जय नारायण। आपके द्वारा प्रेषित 'श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक ग्रंथरत्न प्राप्त हुवा। यथा शक्य अवलोकन किया। आपने इस अमूल्य ग्रंथरत्न में आद्य जगद्गुरु श्री मच्छङ्कराचार्य भगवान के जीवन, मठस्थापन, वैदिक धर्म प्रचार, पाखण्डखण्डन, एवं दिग्विजय इत्यादि पूज्य आचार्य चरण का महद् कीर्ति की, अनेक प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर वास्तविकता प्रकाशित करके इस कलि कलुषित काल में सनातन वैदिक धर्मावलम्बी विद्वान एवं समस्त साधारण जनता का महान् उपकार किया है। खोई हुई संपत्ति प्राप्त तथा सोई हुई संस्कृति को जागृत की है। साथ साथ पाखण्डियों के पाखण्ड प्रकाशन पूर्वक उनके पंजों से बचने का दिग्दर्शन भी किया है।

भूत भावन भगवान विश्वनाथ की अध्यक्षता में अनिर्वचनिय माया की महिमा ही ऐसी है कि सृष्टि में धूप-छांव, सुख-दुःख, उत्थान-पतन, इत्यादि द्वन्दों की परंपरा अनादि से चली आ रही है। इस नियम के अनुसार विश्व मुर्धन्य 'सनातन वैदिक धर्म' जो कि मानव मात्र का एक महान् धर्म है, कालक्रम से ह्रास होने लगा। नास्तिक, चार्वाक, जैन, बौद्ध इत्यादि वेद विरोधी भ्रामक मतों के पंजों में भोलीभाली जनता फंसने लगी। वैदिक धर्म पर प्रहार होने लगे। फलतः धर्म की हानि तथा अधर्म का बोलबाला हो गया। वेद पठन यज्ञयागादि कम होने लगा, देवताओं में हलचल मच गयी, भगवान शङ्कर का सिंहासन डोल उठा। भगवान की तो यह प्रतिज्ञा ही है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता अ. 4 श्लो. 7, 8)

अपनी प्रतिज्ञा को पालन करने का समय आ गया। करूणावरूणालय भगवान कब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं?

सनातन वैदिक धर्म की रक्षा के लिए हीं भगवान शंकर ने दक्षिण भारत के कालटी ग्राम में कुलीन ब्राह्मण परिवार में अवतार लिया। अल्प वय में ही संपूर्ण विद्यालाभ, सन्यास, शास्त्रार्थ, धर्मप्रचार में अलौकिक प्रतीभा से समस्त वेद विरोधी भ्रामक मतों का खण्डन करके सनातन वैदिक धर्म का उद्धार एवं अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त का प्रचार किया। आचार्य जगद्गुरु भगवान श्रीमच्छंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध इस अवतारी पुरुष ने प्रस्थानत्रय पर भाष्य तथा अनेक अद्वैत वेदान्त के ग्रंथों की रचना की। वेद विरोधी भ्रामक प्रचारकों के हृदय को दहला दिया। उनके मत को युक्ति-प्रमाण-दृष्टान्तों से खण्डन द्वारा हतप्रभ करके सनातन वैदिक धर्म का झंडा समस्त भारत में फहराया। इतना ही नहि परन्तु वैदिक धर्म की जड को मजबूत करने के लिए भारत की चारों दिशा में चार मठों की स्थापना करके अपने प्रधान चार शिष्यों को उन मठों पर "शंकराचार्य" के नाम से अभिषिक्त किया। उन्हीं से दसनाम सन्यास चला, यथा—

उत्तर दिशा—बद्रीकाश्रम, ज्योतिः पीठ (मठ), अथर्व वेद, अयमात्मा ब्रह्म महावाक्य का उपदेश, श्री त्रोटकाचार्य गद्दीपती हुवे, उनके तीन शिष्य-(1) गिरि (2) पर्वत (3) सागर

पूर्व दिशा—जगन्नाथ पुरी में गोवर्धन पीठ (मठ), ऋग्वेद, प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म महावाक्य का उपदेश, श्री हस्तामलकाचार्य गद्दीपती हुवे, उनके दो शिष्य (4) वन (5) अरण्य

दक्षिण दिशा—रामेश्वर क्षेत्र सीमा में शृङ्गेरी पीठ (मठ), यजुर्वेद, अहं ब्रह्मास्मि महावाक्य का उपदेश, श्री सुरेश्वराचार्य गद्दीपती हुवे, उनके तीन शिष्य (6) सरस्वती (7) पुरी (8) भारती

पश्चिम दिशा—द्वारका में शारदा पीठ (मठ), सामवेद, तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश, श्री पद्मपाद आचाय गद्दीपती हुवे, जिनके दो शिष्य (9) तीर्थ (10) आश्रम

इस प्रकार चारों दिशा में चार ही मठों की स्थापना, चार वेद, चार महावाक्यों का उपदेश, चार प्रधान शिष्यों से दसनाम संन्यास का क्रम चला। बहुत से प्रामाणिक ग्रंथ तथा अनेक विद्वान-ब्रह्मनिष्ठ-महात्माओं के श्रीमुख से इन्हीं चार ही मठ, चार ही शिष्य, चार ही वेद, मननात्मक तो महावाक्य बहुत हैं परन्तु उपदेशात्मक चार ही महावाक्य, चार ही मठ तथा दश ही नाम सन्यासी देखे सुने गये हैं। इसके अतिरिक्त कोई पांचवां वेद, पांचवां मठ, पांचवीं दिशा, पांचवां उपदेश महावाक्य, पांचवा धाम, पांचवां प्रधान शिष्य या ग्यारहवां नाम की कपोल कल्पना करें तो वह अप्रामाणिक सर्वथा अमान्य ही है। हां शिष्य मठ या शाखा मठ तो देखे सुने गये हैं। जैसे की द्वारका के शारदा मठ की शाखा प्रभासपाटन, धोलका इत्यादि स्थलों में है। परन्तु चार प्रधान पीठों (मठों) के अतिरिक्त कोई पांचवी (मठ), गुरु पीठ व मठ या प्रधान पीठ देखी सुनी नही गई है। इत्यलम्।

स्वामी रामचन्द्रगिरि
महामण्डलेश्वर

ॐ

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

विषय–प्रवेश

इस पुण्यमयी भारतवर्ष की सनातनधर्मावलम्बी जनता और अन्य देशान्तरों की जनता जो हिन्दुओं की सभ्यता और धर्म, वेद व सिद्धान्तों में स्नेह रखते हैं, वे सब प्राचीन परम्परा से प्रामाणिक आर्ष ग्रंथों, उपपुराणों, इतिहासों, काव्यों एवं व्यवहारिक कथाओं से यही सुनते आये हैं कि श्रीशङ्कराचार्य ने कालटी नामक गांव में शिवगुरु आर्याम्बा—नम्बूदरी ब्राह्मण दम्पति—के घर में अवतार लिये थे; तीसरे वर्ष में उनका चूडाकरण संस्कार व पांचवें वर्ष में उपनयन और अध्ययन; आठवें वर्ष में मानसिक सन्यास व तदनन्तर गुरुगोविन्दभगवत्पाद के यहां दीक्षा, शिक्षा एवं विद्याध्ययन; बदरिकाश्रम एवं काशीक्षेत्र वास; सोलह वर्ष के समीप प्रस्थानत्रय भाष्य की रचना, दो बार उत्तरी भारतवर्ष का परिभ्रमण; अवैदिक पाखन्ड मतों का खन्डन व अद्वैतमत का जीर्णोद्धार व अनेक मन्दिरों का निर्माण जीर्णोद्धार एवं चक्र प्रतिष्ठा; अनेकानेक शिष्यों में से चार मुख्य (श्रीपद्मपादाचार्य, श्रीसुरेश्वराचार्य, श्रीहस्तामलकाचार्य, श्रीतोटकाचार्य) को दीक्षा देकर शिष्य बनाना; अवतार का उद्धेश्य अक्षुण्ण रखने एवं अद्वैतवाद का प्रचार करने के हेतु से श्रुति, स्मृति व पुराणों के आधार पर, इस यज्ञमयी पुण्य भूमि को यज्ञ का वेदी मानकर, आम्नायानुसार चार वेदों व चार महावाक्यों के लिये, चार आम्नायों (दिक) में, चार धर्मराज्य केन्द्र प्रतिष्ठा कर व आम्नाय मठों की व्यवस्था एवं पद्धति (मठाम्नाय) बनाकर, चार शिष्यों को वहां वहां बिठाकर और स्वयं अन्य शिष्यों के साथ कुछ काल तक शृङ्गेरी में वासकर एवं अन्य ग्रन्थों का रचना कर; काश्मीर शारदापीठ में सर्वज्ञपीठारोहण कर; अन्त में स्वयं बदरिकाश्रम सीमा पहुंचे। अपने बत्तीसवें वर्ष में अपने धाम शिवलोक को हिमालय की केदार सीमा से जा पहुंचे।

करीव आज से 150 वर्ष पूर्व श्रीचिक्कुडयार स्वामी उर्फ कांची कामकोटि मठाधीश उर्फ कांची शारदा मठाधीश उर्फ कुम्भकोण शङ्कराचार्य उर्फ कांची कामकोटि कुम्भकोण मठाधीश, उनके अनुयायी भक्तों एवं काम्यार्थ इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये कुछ विद्वानों ने कल्पनात्मक ग्रन्थों की रचना करना प्रारम्भ कर दिया था। यह कहा जाता है कि इसके पूर्व 'पुण्यश्लोक मञ्जरी,' 'गुरुरत्नमाला, 'सुषमा' इत्यादि पुस्तक इस मठ के गादिपतियों एवं उनके द्वारा लिखकर तैय्यार किये थे। अभिमान से अपनी अपमी भलाई के लिये एवं अपने सिद्धान्तों की पुष्टी के लिये पुरातन प्रामाणिक पुस्तकों में श्लोकों का बदलना व नवीन श्लोकों का जोडना व सब श्लोकों को पुस्तक से निकालना और नूतन ग्रन्थों का निर्माण कर अनेक पुस्तकें लिखकर जिनका नाम न कोई दूसरा सुना हो व पढा हो अथवा उसका उल्लेख कहीं और न पाया जाता हो, केवल वही टोली जानती है जिनकी इष्टापूर्ती करने में सहायता देती है, वे प्रचार करने लगे। इनका एक ही मुख्य उद्देश्य है दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ की निन्दा एवं अपने को सर्वोच्च, सर्वज्ञ, सर्वोत्तम घोषित करना तथा श्रीजगद्गुरु पदारोहण करना है ('सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरुवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः ॥' कुम्भकोण मठ मठाम्नायसेतु।)। इस प्रचार के आधार पर श्रीशङ्कराचार्य का चरित्र वर्णन नीचे भाग में दिया गया है। समय समय पर जब प्रश्न पूछे जाते हैं तो कथायें भी बदलती जाती हैं। इनके प्रचारित पुस्तकों की सूची एवं विमर्श द्वितीय खण्ड के प्रथम अध्याय में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक पुस्तक आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय के अनुसार श्रीशङ्कराचार्य का जन्म चिदम्बर क्षेत्र में विश्वजित विशिष्ठा ब्राह्मण दम्पति के कुल में हुआ। विश्वजित अपनी पत्नी विशिष्ठा को छोडकर चले जाने के बाद, तीन वर्ष उपरान्त, विशिष्ठा ने शङ्कर का जन्म दिया। मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय का परिष्कृत्य आधुनिक आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तकों में चिदम्बर बदलकर कालटी का उल्लेख है। पिता–माता का नाम शिवगुरु आर्याम्बा का उल्लेख है। पर इसके साथ ही कुम्भकोण मठ एवं उनके अनुयायी और कुछ विद्वान लोग यह भी प्रचार करते हैं कि आनन्दगिरि के कहे चिदम्बर स्थल कालटी का नामान्तर है, विश्वजित का नामान्तर शिवगुरु है एवं विशिष्ठा का नामान्तर आर्याम्बा सती है। कुम्भकोण मठाधीश की आज्ञा पर रचित पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' एवं स्व रचित 'सुषमा' जिसे मठवाले प्रमाण रूप में उल्लेख करते हैं और अपने प्रचारों की पुष्टी भी इसी पुस्तक द्वारा करते हैं, उसमें भी शङ्कराचार्यजी के गोलक जन्म का समर्थन किया है। जो कारण देकर समर्थन इस पुस्तक में किया है वह सदा अग्राह्य है। पर कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि यह गोलक जन्म शङ्कराचार्य जो आद्य शङ्कराचार्य (508 क्रिस्त पूर्व) के पांचवें अवतार थे और जो आपके मठ वंशावली के 38 वां मठाधीश शङ्कर V के नाम से प्रसिद्ध थे सो व्यक्ति श्रीआद्यशङ्कराचार्य से भिन्न पुरुष थे तथा पुराकाल के ग्रंथ रचयिताओं ने भूल से आपके चरित्र को मूल पुरुष का चरित्र मानकर दिग्विजय कथा लिख गये। विश्वजित की मृत्यु श्रीशङ्कर के उपनयन करने के पूर्व; शङ्कर के तीसरे वर्ष चूडाकरण; पांचवें वर्ष उपनयन, आठवें वर्ष मानसिक सन्यास और तदुपरान्त बदरिकाश्रम में श्रीगोविन्दभगवत्पाद से मिलने का उल्लेख है। श्रीगोविन्दभगवत्पाद का निवास स्थल नर्मदा तट एवं व्याघ्रपुर (चिदम्बर) का भी उल्लेख है। श्रीगौडपादाचार्य को ब्रह्मराक्षस कहा गया है और उस ब्रह्मराक्षस का जीवन विवरण; गोविन्दभगवत्पाद का पूर्वाश्रम में उनका नाम चन्द्रशर्मा या चन्द्रगुप्त या चन्द्राचार्य (काश्मीरी ब्राह्मण), इनसे गौडपाद के शाप विमोचन का विवरण; श्रीगोविन्द भगवत्पाद का पूर्वाश्रम में चार वर्णों के चार स्त्रियों से विवाह व भोग विलास इत्यादि का विवरण; प्रस्थानत्रय भाष्य रचना; व्यास से शङ्कर को वर प्राप्त 'जीवेत् शारदां शतं' अर्थात् आठ वर्ष चार माह (यहां 'शरद' का अर्थ मास, सौ मास अर्थात् आठ वर्ष चार माह, मठ के अभिमानी पन्डितों का व्याख्या!) काशी एवं बदरिवास, अवैदिक मतों का खन्डन; पांच शिष्यों को सन्यासाश्रम देना—श्रीपद्मपाद, श्रीसुरेश्वर, श्रीहस्तामलक, श्रीतोटक एवं श्रीसर्वज्ञ श्रीचरण; शङ्कर एवं सुरेश्वराचार्य का स्वशरीर कैलास गमन और पांच लिंगों को लाना (कुम्भकोण मठ के 'वेदान्त चूर्णिका' एवं अन्य प्रचार पुस्तकों के अनुसार); केदार, नीलकण्ठ में दो लिंगों का प्रतिष्ठा करना व चिदम्बर व शृंगेरी में एक एक लिंग का प्रतिष्ठा करना और अपने लिये 'सर्वश्रेष्ठ योग लिंग' का रखना; तीन बार भारतवर्ष का परिभ्रमण; चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना; सुरेश्वराचार्य की बीमारी एवं श्री अश्वनी का दवा करना; इन्द्र से प्राप्त वर 'इन्द्र' पद (कुम्भकोण मठ के 'वासनादेहस्तुति' के अनुसार); श्री शङ्कर को भगन्दर का रोग; कांची में सर्वज्ञ पीठारोहण; मंदिरों का निर्माण व श्री चक्र प्रतिष्ठा; कांची में आम्नाय मठ स्थापन और अन्त में बत्तीसवें वर्ष में कांची में स्थूल शरीर छोड, सूक्ष्म में लीन होकर, सूक्ष्म को कारण में विलीन कर, चिन्मात्र बनकर, अंगुष्ट मात्र बन, ईश्वर की सन्निधि प्राप्त की और सर्वचैतन्य हुए; इत्यादि विषयों का विवरण कुम्भकोण मठ की कल्पित पुस्तकों में पाये जाते हैं। सर्वज्ञ श्रीचरण को आम्नायानुसार मठाधीश बनाकर, सुरेश्वराचार्य जो परमहंस सन्यास योग्य न थे और योग लिङ्ग पूजार्ह न थे, उन्हें बालक सर्वज्ञ की निगरानी के लिए कांची में नियोजन किये। किन्हीं पुस्तकों में सुरेश्वराचार्य को अपनी जगह बिठाने का फिर अपना तनुत्याग कांची में किये जाने का भी उल्लेख है। कुम्भकोण मठ का मठाम्नाय पद्धति जिसे श्री शङ्कराचार्य का परममित्र व अनुक्षण अनुकरण करनेवाले श्री चित्सुखाचार्य रचित कहकर प्रचार करते हैं, वह यों है—

आम्नाय—ऊर्ध्वाम्नाय अथवा मध्यमाम्नाय अथवा मौलाम्नाय अथवा मूलाम्नाय अथवा मुख्याम्नाय इत्यादि।
मठ—शारदा मठ। आश्रम—इन्द्रसरस्वती। पीठ—कामकोटि। ब्रह्मचर्य—सत्यब्रह्मचारी।
वेद—ऋग्वेद। महावाक्य—ॐ तत्सत्। संप्रदाय—मिथ्यावार। आचार्य—श्री शङ्कराचार्य।

विवादास्पद, अप्रामाणिक एवं कल्पित अनेक विषयों का भी विवरण इनके प्रकाशित सब पुस्तकों में पाये जाते हैं। पाठकों की सुविधा तथा जानकारी के लिए कुछ विषयों का उल्लेख किया जाता है।

(1) "इस कामकोटि पीठस्थ को ही श्रीमज्जगद्गुरु ऐसा नाम रहे, दीगर पीठस्थों को श्रीगुरु शङ्कराचार्य ऐसा रहे।" कुम्भकोण मठ के कल्पित मठाम्नायसेतु में उल्लेख है कि अन्य चार आम्नाय मठ इनके प्रधान सर्वोच्च मठ के संचालन में है; उन चार आचार्य इनकी आज्ञा से ही भ्रमण कर सकते हैं; वे अन्य धर्मराज्यसीमा में नहीं जा सकते; लेकिन इनके सर्वोच्च प्रधान मठाधीश कहीं भी सर्व जगह भ्रमण कर सकते हैं; इनके मठाधीश ही जगद्गुरु हैं और अन्य चार मठाधीश केवल श्रीगुरु हैं, आदि।

*उक्ताश्चत्वार आम्नाया यतीनां हि पृथक् पृथक्।
ते सर्वे मत्पदाचार्य नियोगेन यथा विधि।
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीया स्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्त एव सततं अटनं धरणी तले।
विरुद्धाचार संप्राप्तौ मत्पदस्य समाज्ञया।
लोकान् संशलियन्त्वेते स्वधर्मा प्रतिरोधतः॥
... ...
तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः॥
स्वस्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
तैरन्यतो न गम्येत मन्मव्याः सर्वतश्चराः।
कामकोटि मठे त्वस्मिन् गुरुरिन्द्र सरस्वती।
सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः।
अन्य गुरुवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।
... ...
अन्ये मठास्तु चत्वारः आचार्य मत्पदेस्थितम्।
संप्रदायैश्चतुर्भिः स्वैः समर्चन्तु यथाविधि॥"—(कुम्भकोण मठ मठाम्नायसेतु*)

(2) अन्य चार मठ शिष्य मठ हैं और वे शिष्य परम्परा के हैं।

(3) श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित निजमठ केवल कांची मठ ही है और यह श्रीशङ्कराचार्य अधिष्ठित एक ही गुरु मठ अविच्छिन्न परम्परा से आज तक चला आ रहा है। यह सर्वोच्च सर्वोत्तम कांची मठ कुमारीकन्या से हिमाचल पर्यन्त बहु सुप्रतिष्ठित और इस भारतवर्ष में सब मठों के मुखिया शिरोमणी कांची मठाधीश ही हैं।

(4) "अपने मुख्य शिष्य श्रीसुरेश्वराचार्यजी से कहा कि तुम श्रृङ्गगिरि को जाकर वहां व्याख्यान सिंहासन पीठ निर्माण करो। मेरे बनाये भाष्यों को याने सूत्र भाष्यों को व्याख्या रूप में वर्णन करो, शिष्य मन्डली को अद्वैतोपदेश किया करो, इस आज्ञा पर सुरेश्वराचार्य श्रृङ्गगिरि पहुंचकर अठारह वर्ष तक गुरु आज्ञानुसार वहां सकल कार्यों को करके वापिस गुरु के पास कामकोटी पीठ को आये॥"

(5) "आत्मपूजार्थ जो योग नामक चन्द्रमौलीश्वर लिंगर खे थे, वह भी सुरेश्वराचार्य के ही हाथ से सर्वज्ञात्म श्रीचरणेन्द्र सरस्वती को देते भये।"

(6) "इस रीति पांच मठों का संप्रदाय ... इस हेतु से मठाम्नायसेतु नामक एक ग्रन्थ भी बनाया" ... ... हर एक शिष्य मठों के लिये मठाम्नाय भी बनाया।

(7) "आत्मोद्देश्य प्रगट कर सरस्वती-संप्रदाय के महावाक्यों को उनसे उपदेश लेकर "श्रीमच्छङ्कर भगवत्पादाचार्य" इस नाम को धारण करते भये।"

(8) श्रृङ्गेरी मठ की परम्परा बहुकाल विच्छिन्न होने से श्रीविद्यातीर्थ ने (कामकोटि मठाध्यक्ष) श्रीविद्यारण्य को भेजकर श्रीश्रृङ्गेरी मठ का पुनः उद्धार कर वहां की वंशावली पुनः चलाई। कुम्भकोण मठ के परिचालन में श्रृङ्गेरी मठ है।

(9) श्रृंगेरी मठ के एक नूतन अधिष्ठाता विश्वरूपाचार्य यम देवता के अवतार थे।

(10) श्रीविद्यारण्य परमहंस सन्यास के अर्ह न थे और योग लिंग की पूजा के अर्ह न थे, इसलिये उन्हें श्रृङ्गेरी मठ का उद्धार करने के लिये कांची मठाधीश से भेजा गया।

(11) श्रृङ्गेरी मठाधीश श्रीअभिनवोद्धन्ड विद्यारण्य भारती ने अपने किये अपराधों को स्वीकार कर एक क्षमा लिखित पत्र कुम्भकोण मठ को दिया है।

(12) काश्मीर यात्रा के समय श्रीशङ्कर ने पुरातन काल से प्रतिष्ठापित सर्वज्ञपीठ में आरोहण कर, बाद कांची में एक नवीन सर्वज्ञपीठ का प्रतिष्ठा कर, उस नये सर्वज्ञपीठ में आरोहण किये।

(13) काश्मीर के सर्वज्ञपीठ नवीन एवं आधुनिक है और श्रीशङ्कर ने वहां सर्वज्ञपीठारोहण नहीं किया पर कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया।

(14) सुरेश्वराचार्य को कामकोटि पीठाधीश बनाकर भारतवर्ष के सब मठों के शिरोमणि व मुखिया मठाधीश बनाये। उनका देहान्त कांची कामकोटि मठ के आंगन में हुआ जहां एक समाधि आज भी देखी जाती है। एक पुस्तक में उल्लेख है कि सुरेश्वराचार्य ने एक गांव "पुण्यरस" जो कांची के समीप था वहां देह त्याग किया और एक पुस्तक में उल्लेख है कि सुरेश्वराचार्य ने कांची में देह त्याग किया और उनकी स्मृति में आज भी "मन्डनमिश्र अग्रहारम" के नाम से प्रसिद्ध है।

(15) सुरेश्वराचार्य परमहंस सन्यासी नहीं थे। इस कारण उन्हें मठ की देखभाल (निगरानी) के लिये रक्खा गया। कांची मठ के अधीश सर्वज्ञात्म श्रीचरणेन्द्रसरस्वती थे।

(16) चूंकि सुरेश्वराचार्य अपनी पत्नी सरसवाणी (श्रृङ्गेरी में शारदा रूप में स्थित) की पूजा नहीं कर सकते थे, उन्हें श्रृंगेरी मठाध्यक्ष नहीं बनाया गया। श्रीविश्वरूपाचार्य की निगरानी में श्रीपृथ्वीधवाचार्य को श्रृंगेरी मठाध्यक्ष बनाया गया। कुछ प्रचार पुस्तकों में लिखा है कि श्रीपद्मपादाचार्य को श्रृंगेरी मठाध्यक्ष बनाया गया।

(17) श्रीशङ्कर ने कांची में देह त्याग किया और उनकी मूर्ति आज भी कांची के कामाक्षी मन्दिर में अनादि काल से प्रतिष्ठित है। भारतवर्ष में अन्य सब शङ्कर की मूर्तियां प्रायः पचास वर्ष काल के बाद की हैं (1934 ई० के प्रकाशित लेख के अनुसार)। एक कथन है कि कामाक्षी मन्दिर की यह शङ्कर की मूर्ति श्रीशङ्कर की समाधि है।

(18) 'इन्द्र-सरस्वती' योगपट्ट केवल कांची मठाधीश का योगपट्ट है और यह अन्य योगपट्टों से श्रेष्ठत्व की सूचना करता है।

(19) 'माधवीय शङ्कर विजय' श्री माधवाचार्य (श्रीविद्यारण्य) का रचा हुआ ग्रन्थ नहीं है। यह एक आधुनिक पण्डित भट्ट श्री नारायण शास्त्री द्वारा रचना करा के व्यासाचलीय से श्लोकों का उद्धृत कर, शृङ्गेरी मठवालों ने अपने श्रेष्ठत्व प्रमाण करने के लिये प्रकाशित किया है। कुम्भकोण मठ प्रचार है कि अमुक ने अमुक से कहा कि अमुक से रचित ग्रन्थ है। इस कल्पित वार्ता का विवरण उस अमुक व्यक्ति द्वारा पूर्व के पत्रों में खण्डन हो चुका था तथापि कुम्भकोण मठाधीश अपने आन्ध्र देश की यात्रा में इस कल्पित वार्ता को नोटिस रूप में छाप कर प्रकाश किये। उस अमुक व्यक्ति ने कुम्भकोण मठाधीश से मिलते समय इस विषय की चर्चा भी की तथापि उनका प्रचार बन्द न हुआ। दोषसमान दीखनेवाले कुछ विषयों को लेकर जगह जगह इस पुस्तक पर आक्षेप प्रकाश किया है और तीव्र प्रचार करते हैं कि यह पुस्तक अनादरणीय एवं अप्रामाणिक है।

(20) कांची में श्रीशङ्कर ने मूलाम्नाय का मूल मठ स्थापित कर और मूलाम्नाय के पद्धति (क्रम) के अनुसार चारों वेदों का चारों महावाक्यों का उपदेश कर, भारतवर्ष के अन्य चारों दिशाओं में चार शिष्य मठों के हरएक को एक एक उस उस आम्नायानुसार एक महावाक्य का उपदेश देने की आज्ञा दी।

(21) विविध पुस्तकों में विविध आम्नाय नाम दिये गये हैं—1. ऊर्ध्वाम्नाय 2. मौलाम्नाय 3. मध्यमाम्नाय 4. मूलाम्नाय 5. मुख्याम्नाय, इत्यादि।

(22) प्रस्तुत कुम्भकोण मठाधीश अपने काशी भाषण में कहा कि 'ॐ तत्सत्' महावाक्य नहीं है। पर जितनी पुस्तकें 1935 ई० से छपी हैं उन सबों में 'ॐ तत्सत्' को महावाक्य सिद्ध कर और कुम्भकोण मठ का ही महावाक्य बतलाया गया है। कुम्भकोण मठ की प्रामाणिक पुस्तक 'सुषमा' व्याख्या में 'ॐ तत्सत्' को महावाक्य बतलाया गया है। कहीं केवल प्रणव 'ॐ' को उपदेष्टव्य महावाक्य बतलाया है।

(23) श्री शंकर एवं सुरेश्वराचार्य दोनों ने सशरीर कैलास जाकर पांच लिंगों को श्री परमेश्वर से प्राप्त कर सौन्दर्यलहरी ग्रन्थ एवं शिवरहस्य भी प्राप्त किया। कुछ पुस्तकों में उल्लेख है कि श्रीशंकर ने केदार, नीलकण्ठ, चिदम्बर, शृंगेरी, कांची में पांच लिंग का बंटवारा किया। कुछ पुस्तकों में लिखा है कि श्री शंकर ने अपने प्रतिष्ठित पांच मठों में पांच लिंगों की प्रतिष्ठा की।

(24) आचार्य शंकर के दिग्विजय के अन्त में और अपने देह त्याग के पूर्व कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करते समय श्री सरस्वती के प्रश्न पर श्रीशंकर के परकाय प्रवेश का उल्लेख है।

(25) श्री शंकर के काश्मीर यात्रा एवं सर्वज्ञपीठारोहण के समर्थन करने का कोई प्रमाण नहीं है। अतएव श्री शङ्कर के समय काश्मीर में सर्वज्ञ पीठ था ही नहीं।

(26) श्री कृपाशङ्कर (कांचीमठाधीश) अपने गुरु कैवल्य योगी की आज्ञा से एक 'सुभट विश्वरूप' को शृङ्गेरी भेजा।

(27) कांची के गुरु वंशावली में से कुछ नामः सुरेश्वराचार्य, सर्वज्ञात्मा, सत्यबोध, ज्ञानानन्द (ज्ञानोत्तम), शुद्धानन्द, आनन्दगिरि, मूकःकवि, मातृगुप्त, बोधेन्द्र, सोमदेव, अद्वैतानन्दबोधेन्द्र (चिद्विलास), ब्रह्मानन्दघन, विद्यातीर्थ, विद्यारण्य, शंकरानन्द, परमशिवेन्द्र, आत्मबोध, अभिनवशङ्कर, बोधेन्द्र सरस्वती इत्यादि इत्यादि (पांच चार अवतार शङ्करों का नाम उल्लेख है)।

(28) गौडपादाचार्य एक ब्रह्मराक्षस थे। गोविन्दपाद यति ही पातञ्जली थे। इन्होंने योगसूत्र महाभाष्य, पाणिनीय सूत्र की व्याख्या, वैध्य ग्रन्थ, सब रचे। कुछ पुस्तकों से मालूम होता है कि चन्द्र शर्मा या चन्द्रगुप्त या चन्द्राचार्य ही गोविन्दभगवत्पाद हुए और उन्होंने गौडपाद का शाप विमोचन किया और पूर्वाश्रम में चार वर्णों के चार स्त्रियों से विवाह किया तथा इनके चार पुत्र थे।

(29) श्री शङ्कर ने शृङ्गेरी में पृथ्वीधर को मठाधीश बनाया।

(30) श्री शङ्कर ने बौद्धमत का खण्डन नहीं किया। उनका अवतार बौद्धमत के खण्डन के लिये नहीं हुआ।

(31) शृङ्गेरी मठ की वंशावली बनाने वालों की भूल से अप्रमाण रूप में सुरेश्वर, सर्वज्ञात्मा एवं विद्यातीर्थ को कांची मठ वंशावली से लेकर अपने मठ में दिखाते हैं।

(32) भारतवर्ष के उत्तरीभाग में अन्य तीनों मठों (गोवर्धन, द्वारका, ज्योति) जो कि आद्यशङ्कर द्वारा स्थापित थे तथापि उन उन मठों के धर्मराज्य प्रान्तों में बहुकाल पूर्व से ही कामकोटि मठाध्यक्ष दिग्विजय यात्रा कर जैन, बौद्ध, नास्तिक मतों का खन्डन कर व अद्वैत मत की स्थापना की।

(33) श्रीविद्यारण्य द्वारा स्थापित आठ मठों में चार मठ अब भी स्थित हैं :—विरुपाक्षी, पुष्पगिरि, शृङ्गेरी, करवीर।

(34) न केवल केरल, कोच्चिन, रामनाथपुरम्, पुदुकोट्टै, विजयनगर और अन्य राजा महाराजाओं से पूजित एवं श्री आद्यशङ्कर द्वारा प्रतिष्ठापित कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ अविच्छिन्न गुरु परम्परा मठ तथा श्रीगुरु मठ निर्णय किये हैं पर स्वतन्त्र नेपाल राज्य भी इस कामकोटि मठ को साक्षात् श्रीआद्यशङ्कराचार्य के निजमठ एवं जगद्गुरु मठ मानते हुए आये हैं और वार्षिक कर भी देते हैं। कामकोटि मठाधीश समस्त भारतवर्ष के सर्वोच्च शिरोमणि परमाचार्य हैं।

(35) इस मठ का 'मेरै' लगान वसूल करने का अधिकार प्राप्त है। मुसलमान राजाओं ने इस अधिकार को स्वीकार कर बाद में ब्रिटिश साम्राज्य ने भी स्वीकार किया है। महाराष्ट्र के राजाओं से प्राप्त 7000 रुपया सालाना मान्य आज भी ब्रिटिश सरकार इस मठ को देती है।

(36) श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य भारती कृष्णतीर्थ (शृङ्गेरी मठाध्यक्ष) ही श्रीविद्यारण्य हैं। ये दोनों पृथक नहीं हैं।

(37) श्रीमुखविरुदावली प्रामाणिक ग्रंथों में एक है। कुम्भकोण मठ के विरुदावली से प्रतीत होता है कि यह मठ सर्वोच्च सर्वोत्तम श्रीगुरुमठ है।

(38) कुम्भकोण मठ का मुद्रा (सील) 'दो अंगुल वर्तुलाकार' होने के कारण कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ ही श्रीमज्जगद्गुरु मठ है।

(39) प्राचीन ग्रन्थों से विषयों को अदल बदल कर, नवीन जोडकर या निकालकर, मठ से परिष्कृत्य नवीन पुस्तकों का पुराकाल के प्रमाणों के साथ प्रचार किया जा रहा है।

(40) प्रस्तुत कुम्भकोण मठाधीश जब आन्ध्रदेश में भ्रमण करते थे आपके प्रचारकों व अनुयायियों से समाचार पत्रों व भाषण द्वारा प्रचार हुआ कि कांची कामकोटि मठाधीश चतुर्दिक मठ के सम्राट हैं, इत्यादि, इत्यादि।

उपर दिये हुए विवादास्पद, अप्रामाणिक एवं कल्पित विषयों की सूची सब आधुनिक पुस्तकों से लिये गये हैं। मेरे पास करीब चालीस पुस्तक हैं—संस्कृत, तामिल, तेलुगु, मलयाळम, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी इत्यादि भाषाओं में लिखित हैं। ये सब पुस्तकें 1867 ई० से लेकर 1960 ई० तक प्रकाशित किये गये हैं। श्रीकाशी में 1934/1935 ई० में हिन्दी भाषा की पुस्तकें हजारों बांटी गई। अब अनुमान करना भूल न होगी कि और अन्य बहुतेरे ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करके बाजारों में मिलती होंगी। मेरे हाथ में केवल चालीस पुस्तकें मिली जिसे मैं ने जगह जगह से संग्रह किया। इन चालीस पुस्तकों में से बारह पुस्तकें श्रीकाशी में 1934 ई० में कुम्भकोण मठ के काशी शाखा मठ-शुकदेव मठ के मैनेजर से एवं म. म. पं. चिन्नस्वामी शास्त्रीजी से प्राप्त हुई। कुम्भकोण मठ के कर्मचारी इन सब पुस्तकों का बंटवारा करते थे। इन पुस्तकों में कुछ कुम्भकोण मठ से भी प्रकाशित हैं, कुछ कुम्भकोण मठ के भक्तों से भी रचित हैं, कुछ पुस्तकें भक्तों से रचित एवं कुम्भकोण मठाधीश को अर्पित हैं, कुछ मठाधीश के आज्ञानुसार रची गयी हैं, कुछ मठाधीश के सम्मति से रचित एवं प्रकाशित की गयी हैं, कुछ मठाधीश के श्रीमुख द्वारा प्रचारित पुस्तकें हैं और कुछ कुम्भकोण मठ के अभिमानियों से रचित भी पुस्तकें हैं।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त 1917 ई० से लेकर 1960 ई० तक बहुतेरे लेख जो अनेक दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्रों में भी प्रकाशित हुए हैं। मैं ने ऐसा पन्द्रह लेख संग्रह किया है। इन लेखों में भी विवादास्पद एवं कल्पित कथाओं का प्रचार किया गया है। इसके अतिरिक्त नोटिसें, पर्चें, ट्रक्टों, फोटो व पुस्तकों का भी संग्रह किया है। आधुनिक काल के आडम्बर प्रचार के अनुसार बडे-बडे सिनेमा पोस्टर के समान बडे-बडे नोटिसों व फोटो से चरित्र विवरण, गद्य पद्य रूप में छोटी-छोटी पुस्तकों का भी संग्रह किया है। यहां तक मैं देख रहा हूं कि दक्षिणी भारत मद्रास राज्य में बच्चों के पढने लायक पुस्तकों में जो स्कूलों में पढाये जाते हैं उनमें भी केवल एक ही शङ्करगुरुमठ कांची कामकोटिमठ का उल्लेख है। उसे पढने पर मालूम होता है कि मानो इस भारतवर्ष में और कोई शङ्कर मठ ही नहीं है।

कुम्भकोण मठ के प्रचारकों, शिष्यों एवं अभिमानियों से कुम्भकोण मठ की प्राधान्यता एवं श्रीशङ्कराचार्य के जीवन चरित्र कल्पित ग्रन्थों के आधार पर जगह जगह प्रचार कराया गया है। मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित

करके अपने भ्रामक सिद्धान्तों के प्रचारों का प्रकाशन कराया गया है। कुम्भकोण मठ के प्रचारक कर्मचारियों से भी प्रचार किया गया है। दक्षिण में आज 1962 ई० में भी यह सब प्रचार देखने में आता है। धर्म प्रचार के हेतु से प्रारम्भित मासिक पत्र (कामकोटि प्रदीपम) 1960 ई० में प्रकाशित किया गया और बाद इस 'प्रदीपम' द्वारा कुम्भकोण मठ का प्रचार शुरू कर दिया गया है। यदि कोई निस्पक्षपाती इन सब मेरे संग्रहों को एक जगह देखें तो वह यही कहेगा कि यह सब विवादास्पद, अप्रामाणिक व कल्पित विषयों को सत्य सिद्ध करने के लिये ही ये नाटक रचे जा रहे हैं।

इन पुस्तकों से कुछ विषय सूचीरूप में ऊपर दिये गये हैं। पाठकगण स्वयं जानने को उत्सुक होंगे कि किन किन पुस्तकों से व किन किन पत्रों से ये विषय लिये गये हैं। चूंकि ये सब पुस्तक बाजारों में और कुम्भकोण मठ के हरएक अनुयायी भक्तों और अभिमानियों के यहां सुलभता से पाये जाते हैं, इसका विवरण यहां नहीं दिया जाता है। विषय का सार ही उल्लेख किया गया है। कहीं पर उनके लिखे कुछ यथार्थ वाक्यों को भी उद्धृत किया गया है। जिसे शङ्का हो कि पढे लिखे विद्वान ऐसे अनर्गल विषय को नहीं लिख सकते हैं, उन्हें मैं पूरा विवरण देने को तैय्यार हूं।

यह शंका उठ सकता है कि इतने ग्रन्थों, नोटिसों, पर्चों व ट्रक्टों के प्रकाश और प्रचार सब किस प्रकार श्रीकुम्भकोण मठाधीश को दायित्व कर सकते हैं? प्रथमतः ऐसा ही मैं ने भी सोचा था। यद्यपि कुछ पुस्तकें कुम्भकोण मठाधीश को अर्पित, आज्ञा से, अनुमति से व श्रीमुख द्वारा प्रकाशित किया गया है, और वे इन सब पुस्तकों के दायित्व हैं, तथापि प्रथमतः में ने इनको इन प्रचारों का दायित्व नहीं समझा। बल्कि कुम्भकोण मठाधीश को 1934 ई० में पत्र लिखकर उनसे सविनय प्रार्थना की कि वे इन सब भ्रामक प्रचारों को या तो बन्द कर दें या श्रीमुख द्वारा निराकरण कर दें। पत्र का उत्तर न मिलने पर मैं स्वयं प्रयाग पहुंचा (सितम्बर 1934 ई०) जब उन दिनों मठाधीश प्रयाग में थे। मुझे मठ से धक्कादेकर निकाल दिया गया। तत्पश्चात् काशी के तीन पन्डितों ने पत्र लिखकर प्रार्थना की कि कुम्भकोण मठाधीश या तो इन भ्रामक प्रचारों को बन्द करा दें या निराकरण कर दें। तत्पश्चात् प. प. श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामीजी (पञ्चगङ्गेश्वर मठ, श्रीकाशी) ने पत्र लिखकर उनसे प्रार्थना की कि वे इन सब विवादास्पद पुस्तकों का निराकरण दें। इनको कहावा उत्तर मिला कि श्रीमठाधीश स्वयं काशी पहुंचने पर इसका उत्तर देंगे। काशी पहुंचने के बाद व. सा. सांगवेद विद्यालय में कुम्भकोण मठाधीश ने अपने भाषण में कहा :—

> "बडा या छोटा," यह मैं क्या जानूं? उपाधी देनेवाले जानें। आजकल लोगों में पीठों के प्रधान्याप्राधान्य की चर्चा चल रही है। कई अपने शिष्यों से यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। भला मैं इसका निर्णयक कैसे हो सकता हूं ....। भक्त भक्ति और प्रेम के कारण मुझमें श्रीआद्यशङ्कर की भावना करते हैं और उसी प्रकार पूजते हैं तो इसमें मेरा क्या अधिकार? यह उनका काम है, वे जाने। जगद्गुरु शब्द आदि श्रीशङ्कर को मुख्यरूप से लगता है और मैं अपने बारे में उसे बहुव्रीहि समास समझता हूं, जगत जिसका गुरु हो ....। मठों के प्राधान्याप्राधान्य निर्णय के बारे में मैं इतना हीं कहूंगा कि मैं वेदों और शास्त्रों के अर्थों का निर्णय करने का अधिकारी हूं पर पीठ की प्राधानता का निर्णय मेरे अधिकार के बाहर की वस्तु है। यह काम शास्त्रज्ञ भक्तों का ही है। वे जिस ढंग से रक्खेगें मैं रहूंगा। इन्हीं का निर्णय 'निर्णय' होगा। जैसे एक डाक्टर भी अपनी चिकित्सा के लिये दूसरा डाक्टर बुलाता है वैसे ही मुझे भी अपनी बातों को दूसरे के निर्णय पर छोडना पडता है। आप अपने स्वाभिमान को छोडकर चाहे जैसा निर्णय दीजिये। कांची कामकोटि पीठ अनादि है, आधुनिक नहीं। ("पन्डित पत्र" काशी ता० 15—10—34 से उद्धृत)

'लीडर' पत्र ता० 18—1—1935 के अङ्क में एवं 'पण्डितपत्र' ता० 21—1—1935 के अङ्क में प्रकाशित है कि स्वामीजी ने स्पष्ट कहा कि 'मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं किसी मठ के ऊपर अपने श्रेष्ठत्व का दावा करूं।' पर कुम्भकोण मठ का कल्पित मठाम्नाय सेतु में श्रेष्ठत्व का दावा किया गया है (पृष्ठ ग)। श्रीचित्सुखाचार्य द्वारा रचित एवं बृहच्छङ्करविजय से उद्धृत इस कल्पित आम्नायसेतु को क्या कुम्भकोण मठाधीश निराकरण करने तैय्यार हैं? वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के पूर्व मठाधीशों द्वारा प्रचारित पुस्तकों को एवं आपके मठविषयक प्रामाणिक पुस्तकों में निर्देषित विषयों को निराकरण करने तैय्यार हैं?

इसे पढकर आश्चर्य हुआ और शङ्का भी हुई कि मठाधीश मन ही मन में ऐसे भ्रामक प्रचारों के समर्थक हैं। अनभिज्ञ व अज्ञानी शिष्यों का द्वेष भाव, मिथ्या प्रचार व भ्रामक प्रचार को हटाना और बन्द कराना गुरु का मुख्य कर्तव्य है। ऐसी स्थिति में शिष्यों के मनोभावानुसार गुरु का चलना अनुचित एवं धर्म विरुद्ध होगा। जिस प्रकार सेना के जयाजय का परिणाम राजा में पर्यवसित होता है वैसे ही शिष्यों की अज्ञानजनित उद्दण्डता का परिणाम गुरु में ही पर्यवसित होता है। कुम्भकोण मठाधीश के भाषण से शिष्यों का द्वेष भाव व मिथ्या प्रचार और भी अधिक होने लगा। 'शिष्य पापं गुरोरपि' इस सिद्धान्त के अनुसार दोष का भागी कुम्भकोण मठाधीश भी होंगे। 1934-35 ई० में करीब साढे पांच माह तक काशी में कुम्भकोण मठाधीश थे और उन्होंने एक दिन भी यह नहीं कहा कि भ्रामक प्रचार बन्द कर दिये जायेंगे। इस स्थिति में और क्या कोई कर सकता है? केवल प्रमाणों को, तत्वों को व अपने विचारों को पुस्तक द्वारा प्रकटन करके पाठकों को अर्पित कर दें ताकि वे इसे पढकर इस विषय की सत्यता को जान लें। जो विषय आर्ष ग्रन्थों एवं प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर सिद्ध हैं उसके लिये व्यवस्था, प्रचारात्मक पुस्तकें एवं प्रचार की आवश्यकता नहीं है। यह तो उन्हीं के लिये है जो एक नई समस्या खडी करना चाहते हैं और उनकी पुष्टि के लिये ये सब प्रचार (भ्रमात्मक मिथ्या) करते हैं और पण्डितों से व्यवस्था मांगते हैं। प्राचीन परम्परा से एवं व्यवहार रूप से जो विषय स्वयं सिद्ध हैं, उसकी पुष्टि के लिये इन प्रचारों की जरूरत नहीं है। इनसे स्पष्ट मालूम होता है कि भ्रामक प्रचारों का उद्देश्य केवल अपने मठ को आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं उनके अविच्छिन्न परम्परा के हैं, इस कल्पित कथा की पुष्टि करना चाहते हैं। पामर व साधारण लोग क्या जानें शास्त्र की बातें। उनके मन में सन्यासियों के प्रति आदर के कारण और उनके आडम्बर के कारण जोकुछ वे देखते, सुनते व पढते हैं उसे सत्य समझते हैं चूंकि वे स्वयं सत्यपथ के अनुयायी हैं। इसी भ्रामक प्रचारों से उन लोगों का समर्थन भी पाकर अपने ध्येय को प्राप्त करते हैं। सत्य बडा कटु होता है और इस आधुनिक काल में तो सत्य कहने से अनेक विरोधी बन जाते हैं।

श्रीआद्यशङ्कराचार्य ने किस संवत्सर में किस दिन अवतार लिये व किस संवत्सर में किस दिन, कहां से, किस प्रकार उनका कैलास गमन हुआ और उन्होंने कितने धर्म दुर्गों (मठ) का निर्माण किया, इन विषयों पर आधुनिक लोग चर्चा कर रहे हैं। वे उनके निवास प्रदेशों को आचार्य के सम्बन्ध से विशेष महिमा होने की उपेक्षा से और इसे प्रचार कर अपने प्रदेश के गौरव को बढाने के लिये कहते हैं कि आचार्य का जन्मस्थल हमारा देश है, आचार्य का निर्याणस्थल भी हमारा ही स्थल है तथा निवासस्थल भी हमारा ही शहर है। इन वार्ताओं से यदि उनकी भक्ति व प्रेम प्रकट करता हो और इससे किसी को आपत्ति व आक्षेप न हो तो इसमें कोई विवाद की जगह नहीं है। इसी प्रकार एक मठाधीश कहते हैं कि हम ही साक्षात् श्रीआद्यशङ्कर के अविच्छिन्न परम्परागत में आये हुए हैं। इस प्रचार से अपना गौरव एवं ख्याति बढाना चाहते हैं। "काषाय दण्ड मात्रेण यतिः पूज्यो न संशयः" के अनुसार सब यति पूज्य और आदरणीय हैं। शास्त्र के वचनानुसार सब यतियों को महाविष्णु स्वरूप मानने को कहा है। इसलिये सब यतियों को श्रीशङ्कर भगवत्पाद स्वरूप मानने में कोई भूल या आपत्ति नहीं है।

हम लोगों के मत में जहां पर जड धातु एवं शिला में व उनसे बनाये हुए मूर्ति में भी देवता बुद्धि से आराधना करने पर हम सब प्राणियों के कृतार्थ होने का मार्ग बतलाया गया है उसी जगह पर चैतन्य, वैदूष्य व शीलाचार यतियों को आचार्य भाव से मानने पर कोई भी भूल नहीं होगी। यह उचित ही है। किन्तु उस धातु या शिला में 'अहम्' 'स्वयं देवता भाव' नहीं सोच लेना चाहिये। यही भूल है। उसी प्रकार शिष्यों के अभिमान पूर्ण भक्ति से व आचार्य भाव से पूजित यतियों को 'हम श्रीमदाद्यशङ्कर हैं' ऐसा सोचकर न स्वयं ही धोखा खायें और न किसी को धोखा दें। विशेषतः आधुनिक काल में जब श्रीआद्यशङ्करजी की महिमा एवं गौरव अन्य देशों में बहुत ऊंचा है, स्वाभिमानियों को उनके पुण्य नाम का उपयोग करने व अपनी महिमा एवं गौरव बढाने का प्रयत्न करना सहज ही होगा। दिवानबहादुर श्री के. एस. रामस्वामी शास्त्री, बी. ए., बी. एल., 'श्रीगुरुतत्त्व विमर्शनम्' नामक पुस्तक का विमर्श करते हुए लिखते हैं जो प्रस्तुत इस विषय की पुष्टि करता है। आप लिखते हैं :—

> **" Most Gurus, except in moments of exalted experience, are all too human like ourselves. It is in their moods of exaltation that they can uplift us. Sometimes the persistent overworship of the Guru has even led to the re-entry into him of a subtle egoism that he had dispelled and expelled from himself before with great effort and ceaseless striving. Of course, absolute heroworship in the pupil and absolute humility in the teacher are beautiful and noble traits. But it is good to practice moderation in all respects."**
> (*The Journal of the Sri Sankara Gurukulam, Srirangam, Vol. I-No. 2*)

साधारण मनुष्य स्वभाव से ही मर्म जानने की खोज में अपनी अनभिज्ञ उत्सुकता प्रकट करता है। महान् पुरुषों की लीला विवरण जानने की उत्सुकता से वह उन श्रेष्ठ महात्मा के रहे हुए वासस्थल, जन्मस्थल, पर्य्यटन रास्ता, नदी, पेड, पहाड, चोटी व चट्टान की खोज में जाता है। जब उसे ऐसा स्थल मिलता है तो वह उसके द्वारा ही उस महान की महत्ता का कारण समझकर वह उस चट्टानों, पहाडों, नदियों व स्थलों को ही ज्यादा गौरव देने लगता है, यद्यपि यह गौरव उस महान् आत्मा के श्रेष्ठ गुणों व अद्वितीय जन्म लीला द्वारा ही है। इसी खोज में कभी मानव भी अपना रास्ता भूलकर कल्पना करने लगता है कि वही चट्टान अथवा पेड जो इन महानों को इतना प्रख्यात बनाया है। पुराकाल के उन अद्वितीय व श्रेष्ठ महानों को हम सब नयनों से जीवित स्थूल रूप में नहीं देखते और अभिमान व अभिलाषा से और उनके साथ अपना सम्बन्ध जोडने के लिये इन स्थानों की महिमा देकर ही उस महान के महत्त्व बनने का कारण इन स्थानों को ही बताते हैं। मनुष्यों का यह शुद्ध विचार उन महानों के प्रति ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो भाग्यवान पुरुष उन महानों के लिखे हुए ग्रन्थों के उद्देश्य, ध्येय व उपदेश सब सुनकर या पढकर उसके द्वारा परमानन्द का अनुभव करते हैं, वे इन साधारण विषयों की (उन महानों के बारे में विविध कथायें जो महाकाव्य रूप में लिखे गये हैं) कोई चिन्ता नहीं करते। ऐसे पुरुष अभाग्यवश जो उन ग्रन्थों को अथवा उनके उपदेशों को जानने, अनुष्ठान में लाने और अनुभव करने का उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, वे महानों का जीवन चरित्र और छोटी-छोटी कथायें सुनकर, कुछ न कुछ भाग में अवश्य उन महानों की महिमाओं और उपदेशों का अनुभव करते हैं।

इस भारतवर्ष में अनेकों ही प्रकान्ड विद्वान बराबर अवतार लेते चले आ रहे हैं और प्रायः सब के सब ही धर्म-धुरन्धर होने के कारण, इसमें से कुछ समीप काल से अर्थात् तीन या चार सौ वर्ष हुए, वे लोग अभिमान से पूर्ण अपनी अपनी भलाई के लिये व अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये अनेक प्राचीन ग्रन्थों में कुछ श्लोकों को बदलना

या नवीन बना डालना अथवा पुस्तक से बिलकुल निकाल देना उनके लिये स्वाभाविक-सा हो गया है। केवल अपौरुषेय ग्रन्थों को छोडकर सभी ग्रन्थों के एक से अधिक प्रतियां मिलती हैं। इन में बहुतेरे ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न शब्दों के व वाक्यों का अदल बदल, जोड निकाल, सब पाते हैं। यद्यपि इस प्रकार की कथा या घटना या श्लोक पीछे से मिला दिया गया है, इसमें सन्देह नहीं, तथापि जिस किसी भी समय में इसका परिवर्तन किया गया हो उस समय के रचयिता के विचार ऐसे ही थे। प्राचीन पुस्तकों का परिवर्तन शीघ्र ही मालूम किया जा सकता है और यह भी मालूम किया जा सकता है कि अमुक घटना कब से मिलाई गई है और किस समय घटित हुई है। इस पुण्य भूमि मे गुरु शिष्य का भाव यहां तक था कि एक समय शिष्य सब कार्य (भला और बुरा) अपने गुरु के नाम पर ही करते थे। ऐसे अनेकानेक छोटी पुस्तकें व स्तोत्र इत्यादि मिलते हैं जिनके रचयिता शङ्कराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। वास्तविक रूप में श्रीशङ्कर द्वारा रचित पुस्तकें न होते हुए भी ऐसे पुस्तकों को पडकर पामर लोग भी उन ग्रन्थों को प्रामाणिक मानकर उसे गौरव का स्थान देते हैं।

प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि श्रीआचार्य शङ्कर ने केवल चार ही आम्नाय मठ का चार दिशाओं में प्रतिष्ठित किये। भारतवर्ष एक महान् विशाल लम्बा चौडा देश है, उसमें स्वयं पर्यटन कर शिष्यों, भक्तों, अनुयायियों को उपदेश देकर लोगों में धार्मिक अनुष्ठान एवं धर्म विचार का भाव उत्पन्न कर अपने द्वारा विदित कामों को ठीक तरह से कर न सके। सुविधा के लिये इन मठाधीशों ने अपने अपने मठों के अन्तरगत धर्मराज्यों में जगह-जगह शिष्यों को भेजकर धर्म प्रचार करने की आज्ञा दी थी। इनमें से कुछ यति होने के कारण अपने समीप के लोगों की सहायता से और उनके अभिमान से छोटे छोटे मठों का भी निर्माण किया। ये सब अन्य मठ अपने अपने मन्डल के मुख्य व गुरुत्व मठ से आज्ञा लेकर धर्म प्रचार करते थे। शङ्कराचार्य से सम्बन्ध जोडने में और कोई रास्ता ही नहीं था, केवल इन चार आम्नाय मठों की सम्मति एवं आज्ञा से। इन छोटे छोटे मठों ने कुछ काल बाद स्वयं ही मठाधीश बन बैठे। इनमें से कुछ स्वाधीन हो गये और भ्रामक प्रचार शुरू कर दिया कि वे स्वाधीन मठाधीश हैं और इन मुख्य चारों में से एक के मठ में किसी समय वे अधीश थे और उन्हें षडयन्त्र से या बल से निकाल दिया गया और उनका परम्परा इन चारों में एक शङ्कर शिष्य परम्परा के अविच्छिन्न परम्परागत हैं।

ऐसे उपमठों में से एक कुम्भकोण मठाधीश 'चिन्नकुडयार' (अर्थात् छोटे स्वामी) नामधारी निकले जो करीब डेढ सौ सालों से प्रचार द्वारा यह प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया कि वे ही स्वयं श्री मदाद्यशङ्कराचार्य के साक्षात् अविच्छिन्न गुरुपरम्परागत हैं एवं आपका मठ 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरु' मठ है तथा अन्य सब शिष्य परम्परा के शिष्य मठ हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों का सम्बन्ध नहीं जोडना चाहते पर गुरु से ही अपनी नाता जोडना चाहतें हैं। आपका प्रचार है कि आधुनिक कुम्भकोण मठ ही प्राचीन कांची मठ है। पर इतिहास और ही कुछं कहता है। 'इतिहास चाहे जो कहे मैं जो प्रमाण देता हूं वही सत्य है और अपना परम्परा ही अविच्छिन्न गुरु परम्परा है'; 'अबद्धं वा सुबद्धं वा कुन्ती पुत्रो विनायक' के अनुसार 'मेरा निर्णय ही निर्णय है चाहे वह अबद्ध हो या सुबद्ध हो।' इस प्रकार का प्रचार भी अब प्रारम्भ हो गया है। पामर लोगों के हृदय में यतियों के प्रति आदर और भक्ति है और वे यतियों को विष्णुस्वरूप मानते हैं। उनसे कहे वचनों को वे वेद वाक्य के समान मानते भी हैं। इन कारणों से ऐसे उपमठाधीशों को अपने चारों तरफ अनेकानेक भक्तों की टोली बना लेने में सुविधा ही थी।. इन उपमठों में कुछ मठाधीश विद्वान एवं तपस्वी होने के कारण उनकी महिमा और गौरव अत्यधिक थी। भक्तों का अभिमान व प्रेम एवं श्रद्धाने ऐसे यतियों का स्वयं आदर व सम्मान करके उनकी प्रशंसा पूर्ण रूपेण प्रचारित किया। ऐसे ही विद्वान व तपस्वी यति मठाधीश ने अपनी शाखा मठ की महिमा और-गौरव बढा दी। शिष्यों का अभिमान, प्रेम से उनका प्रशंसनीय वर्णन, इन यतियों में अहंकार पैदा कर दिया। यह अहंकार

फिर अपने लिये गौरव ढूंढने लगी। ममता ने उन्हें जकड लिया। धीरे-धीरे इस अहंकार ने उनके हृदय में राग द्वेष पैदा कर दिया। कुछ काल बाद यह प्रचारक शाखामठ 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः॥' बनने के लिये षडयन्त्र रचने लगा। यह तो व्यवहारिक साधारण मनुष्यों का स्वभाव ही है कि अपने को यथार्थ सत्यरूप से जो प्राप्त अधिकार व सुख हैं उससे संतुष्ठ न होकर दूसरों के अधिकार व सुख को छीनने का अनुचित प्रयत्न करते हैं तथा अहंकार व ममता भाव उस व्यक्ति को बाध्य करते हुए उससे अनेक अनुचित कार्य कराता है। यह यति जो एक समय महान् तपस्वी थे, अब साधारण व्यक्ति बन बैठे। लेकिन अब उन्हें यह नवीन निर्माण 'जगद्गुरु मठ' गौरव देने लगा। अद्वैती पुरुष इस बात का गर्व करता है कि वह श्रीमदाद्यशङ्कर मत का अनुयायी है। कुछ लोग आचार्य शङ्कर के नाम से सम्बन्ध रखने के लिये प्रयत्न करते हैं। श्री शङ्कर के जन्म स्थल का सम्बन्ध जोडना अथवा उनके गोत्र अथवा वैदिक शाखा अथवा सूत्र से सम्बन्ध करा लेने का षडयन्त्र भी रचने लगते हैं। चूंकि श्री आद्यशङ्कर आठवें वर्ष ब्रह्मचर्य से सन्यासाश्रम ग्रहण करलिया इसलिये उनके वंशज होने का प्रचार नहीं कर सकते। इसलिये उनसे गुरू शिष्य का सम्बन्ध जोडने का एक मात्र मार्ग है। इस सम्बन्ध से उनके मठ का गौरव बढाने की आकांक्षा से यह सब षडयन्त्र रचा जा रहा है।

1959/1960 ई० के कुछ प्रकाशित पत्रों एवं लेखों के पढने से यह प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ को दक्षिणाम्नाय के श्री शृङ्गेरी मठ के समत्व में गिने जाने का प्रयत्न भी अब किया जा रहा है। यह पत्र और लेख 'हिन्दू' दैनिक एवं 'कल्की' साप्ताहिक मद्रास के पत्रों में कुम्भकोण मठ के अभिमानी अनुयायियों द्वारा प्रकाशित किया गया है। क्या 150 साल के प्रयत्नों से कुम्भकोण मठ को सर्वोच्च एक ही गुरु मठ सिद्ध करने का प्रचार अब छोड दिया गया है? सर्वोच्च स्थान यदि कुम्भकोण मठ को न मिले तो कम से कम श्री शृङ्गेरी मठ की समानता का स्थान तो मिले—संयोगवश इस आशा से—क्या अब यह नवीन प्रचार शुरू हुआ है? परमात्मा जाने इन सब प्रचारों का क्या अभिप्राय है। कुछ लोगों का प्रचार है कि मुख के दो नेत्र समान दक्षिणाम्नाय शृंगेरीमठ और कुम्भकोण मठ हैं, अतएव दोनों मठ प्राचीन एवं श्री शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित हैं। क्यों केवल दो मठ की तुलना की जाती है? क्यों न ऐसे अनेक मठ हों जो अपने अपने धर्मप्रचार कार्य द्वारा देश व समाज का कल्याण करते हों? क्या ये सब अन्य प्रचारक मठ (चार आम्नाय मठों को छोडकर) आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित मठ कहलाये जा सकते हैं या महानुशासन व मठाम्नाय से बद्ध कहे जा सकते हैं? इस विषय की तुलना किस आधार पर इन दोनों मठों के बीच में की जा सकती है? यथार्थ आठवीं शताब्दी की ऐतिहासिक घटना को कुम्भकोणमठ अब अपने भ्रामक मिथ्या प्रचारों से बदलना चाहते हैं। क्या कुम्भकोणमठ 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' 'जगद्गुरुरयं परः' मठ बनने से ही धर्मप्रचार कार्य कर सकते हैं? धर्मप्रचार कार्य के साथ मठविषयक प्रचार क्यों किया जाता है? इसमें क्या रहस्य है?

कुछ लोग कुलाचार व शास्त्रविहित उपासना क्रमों का तिरस्कार करते हुए कल्पित नवीन पूजा पद्धतियों का भी प्रारम्भ करते हैं एवं अपने अपने कुटुम्ब परम्परा के मान्य उपाध्यायों व पुरोहितों को भी त्याग कर अपने मनोभावानुसार नवीन व्यक्तियों की नियुक्ति करते हैं। इसी प्रकार अब कुछ लोग अपने अपने वंश में प्राचीन परम्परागत रूढी में आये हुए मान्य गुरु शिष्य भाव को त्याग कर नवीन कुलगुरु आचार्य व आचार्यों का भी बदला करते हैं मानो जैसा कपडा उतार व पहिने या बदले जाते हैं। इनमें कुछ हैं जो प्रचार करते हैं कि आपको विशाल मनोभाव होने के कारण सब आचार्यों को आप समान ही स्वीकार करते हैं। हर एक व्यक्ति का मातापिता, गुरु, देव व देश एक ही होता है। यह सब को मान्य व विदित है कि अन्य पुरुष चाहे कितना ही रूपवान या विद्वान या परमतपस्वी या परम उपकारी हो तो भी वह उक्त व्यक्ति किसी एक अन्य पतिव्रता स्त्री की स्वामी बन नहीं सकता है या न तो पतिव्रता स्त्री अपनी पति का अदल बदल कर सकती है। इसी प्रकार परम्परा रूढी में आये हुए कुलगुरु

को त्याग कर नवीन गुरु का स्वीकार करना निषेध है। 'गुरुद्वयं शिष्यनिपातहेतुः' वचन की सत्यता को ये सब व्यक्ति भूल बैठे हैं या त्रिशङ्कु महाराज जो अपने कुलगुरु श्रीवशिष्ठ को छोड अन्य का अनुकरण करने से जो हालत आप पर बीती थी सो भी भूल बैठे हैं।

दो तीन सालों से एक और नवीन प्रचार शुरू हुआ है। कुम्भकोण मठ के प्रचारक, भक्तों, अनुयायियों एवं अभिमानियों द्वारा पामर लोगों में यह प्रचार कराया जा रहा है कि कुम्भकोण मठ तामिलनाड का तामिल मठ है और मद्रास राज्य के सब तामिल जनवर्गों को कुम्भकोण मठ का ही शिष्य बनना चाहिए। श्री शृङ्गेरी कर्नाटक राज्य का मठ है और वे तामिल देश का धन सब कर्नाटक राज्य में ले जाते हैं। इसीलिये तामिलों को उचित है कि वे अब कुम्भकोण मठ के शिष्य बनकर अपने तामिल देश के कुम्भकोणम् मठ को समृद्धशाली बनावें। कुम्भकोण मठानुयायी अब यह भी कहने लगे हैं कि प्रस्तुत कुम्भकोण मठ के छोटे श्रीस्वामीजी महाराज तामिल देश के हैं और हर एक तामिल लोगों का कर्तव्य होगा कि ये स्वामीजी एवं इस मठ के शिष्य बनें। यह प्रचार वार्तारूप में मैं ने मद्रास, कांचीवरम्, तंजौर, तिरिच्चिनापली इत्यादि स्थलों में गण्यमान लोगों के मुंह से यही बातें सुनी है। मासिकपत्र 'कामकोटि प्रदीपम्' जो कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का प्रकाश करता है और दक्षिणाम्नाय के स्मार्थ अद्वैतमतावलम्बियों में परस्पर फूटभाव व द्वेष भाव उत्पन्न कराता है, उसमें स्पष्ठ उल्लेख है कि यह कांचीमठ तामिलनाड का मठ है और पूर्व में आचार्य शंकर ने अपने जन्म लीला स्थल में मठ की स्थापना न करना असम्भव दीखता है और यह विषय हर एक तामिलनाड के व्यक्ति को सोच विचार करने का समय आगया है। 'कामकोटि प्रदीपम' में यह भी प्रचार किया गया है कि केरळदेश के नम्बूदरी ब्राह्मण वर्ग एवं वहां के अन्य सब वर्ग पञ्चद्राविड का तामिल वर्ग के अन्तरगत हैं चूंकि केरळीय वर्ग का पञ्चद्राविड में कोई प्रत्येक अलग स्थान नहीं है। अतः आचार्य शङ्कर को पञ्चद्राविड तामिल वर्ग का व्यक्ति कहना उचित है। आचार्य शंकर ने मठों की प्रतिष्ठा आम्नायानुसार की थी, न कि जाति, भाषा, आदि के आधारों पर। आचार्य ने इन चार मठों द्वारा सारे भारतवर्ष की एकता को आध्यात्मिक सूत्र से बांध रक्खा था और मठों की निर्माण का यह एक कारण भी था। इसी एकता सूत्र को अब कुम्भकोण मठ अनुयायी जाती भाषा के विषैली प्रचारों के आधार पर तोडने की प्रयत्न कर रहे हैं। सो बडी सोचनीय अवस्था है कि अद्वैत मतावलम्बी ने इस प्रकार की फूट एवं भेदभाव का प्रचार शुरू कर दिया है। रागद्वेष से मनुष्य कितना पतित होता है। अपने कार्य सिद्ध करने के हेतु श्रीमदाद्यशङ्कर के नाम पर कलङ्क लगाने में चूकते ही नहीं। पाठकगण एवं श्रोतागण जान लें कि किस प्रकार असत्यभाव व भेदभाव का प्रचार प्रारम्भ किया जाता है और जब ऐसे कल्पित मिथ्या प्रचारों की असत्यता प्रगट की जाती है तो एक तरफ कुम्भकोण मठाधीश अपनी अज्ञानता प्रगट करके कहते हैं कि 'क्या ऐसा भी भ्रामक प्रचार होता है? मुझे तो मालूम नहीं!' और दूसरी तरफ कुम्भकोण मठ के कुछ अभिमानी अनुयायी लोग कहते हैं कि मेरा इस प्रकार का विमर्श, खन्डन, आन्वेशण व कुम्भकोण मठ के गुप्त रहस्य प्रगट करना सब फूट एवं भेद-भाव का प्रचार करना ही है। क्यों नहीं पहिले ही से ऐसे भ्रामक मिथ्या प्रचारों को बन्द कर देते ताकि विवाद की जगह न रह जाती? अनधिकारी व्यक्ति यदि अपने को सुधार लें और ऐसे अवांछनीय अनुचित कर्मों से दूर रहें तो झगडा ही मिट जाता है।

अपने को निश्पक्षपाती कहनेवाले कुछ व्यक्तियों का कहना है कि कुम्भकोण मठाधीश के भ्रामक प्रचारों का विरोध करना अद्वैतमतावलम्बियों में फूट एवं भेद भाव डालना है। कुछ लोगों का भय है कि इस खण्डन से हिन्दू धर्म के विरोधी दलों की पुष्टी होगी। इनमें से एक सज्जन यह भी कहना शुरू कर दिया है कि कुम्भकोण मठ किसी समय भी अपने मठ को सर्वोच, सर्वोत्तम, श्री गुरूके अविच्छिन्न परम्परा कहकर सर्वोत्तमता का प्रचार नहीं किया। चाहे जो हो, सत्य तो यह है कि मेरे पास जो पुस्तकें हैं वे सब सर्वोच, सर्वोत्तमता प्रचारित कर अपना

गौरव प्रतिष्ठा करना चाहती हैं। श्री कुम्भकोण मठाधीश का काशी में भाषण जो "पंडितपत्र" तारीख 15—10—34 के अङ्क में प्रकाशित हुआ है वह मेरी कथनों का ही पुष्टी करता है। मेरे दो पत्र व काशी के तीन पन्डितों का पृथक पृथक पत्र व प. प. श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामीजी का पत्र तथा पुनः उनका कुम्भकोण मठाधीश से भेंट एवं तत्पश्चात कुम्भकोण मठाधीशजी को पत्र रूप में दिया हुआ पंचगङ्गेश्वर मठ में स्वागत पत्र इत्यादि का निराकरण कर कुम्भकोण मठाधीश ने कहा "शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है"! क्या अच्छा होता कि जो लोग अब उपदेश दे रहे हैं कि खण्डण न की जाय वे श्री कुम्भकोण मठाधीश को कहकर उनके द्वारा प्रचारित भ्रमात्मक एवं मिथ्या कल्पित प्रचारों का बन्द करा दें।

यह वाद-विवाद किसने खडा किया? पाठकगणों से मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि वे मुझसे प्रकाशित पुस्तक "काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद" को अच्छी तरह पढें, तब उन्हें यह सिद्ध हो जायगा कि इस वाद-विवाद का कारण एवं मूल पुरुष कौन था। क्या कारण था कि 19 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में म० म० पं. कोक्कन्ड वेङ्कटरत्नम पन्तुलु ने कुम्भकोण मठ प्रचारों का घोर विरोध कर शाङ्करमठतत्त्वप्रकाशिका पुस्तक लिखकर प्रकाशित किया? क्या कारण था कि भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने आचार्य चरित्र विमर्श द्वितीय भाग पुस्तक लिखकर कुम्भकोण मठ प्रचारों का खण्डन किया था? क्या कारण था कि 19 वीं शताब्दी मध्यकाल में दक्षिण भारत में जगह जगह कुम्भकोण मठ भ्राभक मिथ्या प्रचारों का खण्डन किया गया था? कुम्भकोण मठाधीश श्री महादेव VII उर्फ श्री सुदर्शन जब आप मठ विषयक प्रचारार्थ यात्रा में चल पडे तो जगह जगह आपके द्वारा किये गये भ्रामक प्रचारों का खण्डन क्यों किया गया था? क्या कारण था कि 1934-35 ई० में कुछ स्वतंत्र विचार के पण्डित वर्ग एवं सन्यासी श्री काशी क्षेत्र में इस काम को हाथ में लिया और कुम्भकोण मठ के भ्रामक एवं असत्य प्रचारों का विरोध किया? क्या वे सब अनभिज्ञ एवं पक्षपाती थे? भेदभाव उठाना ठीक नहीं है—यह सर्वदा सत्य है—पर यह उन्हीं को विचारना चाहिये जिन्होंने इस भेदभाव का अंकुर बोया। क्या ही अच्छा होता यदि कुम्भकोण मठाधीश इसे अंकुर अवस्था में ही नाश कर देते, पर वैसा न कर अपने द्वारा काशी में भाषण से इस प्रचार की पुष्टि करके अंकुर द्वारा विषैले वृक्ष के उगने का समय भी दिया। जब उस विषैले वृक्ष को नाश करने के लिये कुछ स्वतन्त्र पुरुष तैयार हुए तो आप उन्हें रोकने चले। मालूम नहीं कि यह नियम कहां का है? असत्य एवं भ्रामक प्रचारों का पामर लोगों में उसका भंडाफोडकर दिखाने से अब हमें आप मना कर रहे हैं। सुधारक लोग जब सुधार के लिये कोई नयी समस्या खडा कर देते है और उसे सनातनधर्मावलम्बी उन सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिये चलते हैं तो सुधारक वृन्द कहने लगते हैं कि सनातनधर्मावलम्बि भारतवर्ष में इस समय अनावश्यक लडकर भेदभाव उत्पन्न कर रहे हैं। उसी तरह कुम्भकोण मठानुयायी एवं मठ के अभिमानी लोग अब कहने लगे। मेरी तो हार्दिक प्रार्थना उन लोगों से यही है कि वे अपनी शक्ति व प्रभाव के अनुसार कुम्भकोण मठाधीश की तरफ से जो भ्रामक प्रचार हो रहे हैं उन्हें रोकवायें। एक तरफ मठाधीश कहते हैं कि "इस विषय के बारे कुछ नहीं जानता" और दूसरी तरफ वे ऐसे विवादग्रस्त भ्रमात्मक पुस्तकों को अनेक भक्त वृन्दों के हाथों में देते हैं, अनेक पुस्तकालयों में भिजवाते हैं, अनेकों को पढने की अभिलाषा दिलाया करते हैं और अनेकों को बिना मांगे डाक या किसी के द्वारा पुस्तक भिजवाये देते हैं। ऐसी पुस्तकें जो मठाधीश के चरणों में अर्पित हैं, जो श्रीमुख द्वारा प्रकाशन की गयी हैं, जो मठाधीश के अनुमति से प्रकाशित हुई है और जो पुस्तकें इस मठ के कर्मचारियों से रचित एवं प्रकाशित हैं, ये सब पुस्तकें व्यावहारग्रस्त हैं। ऐसा होते हुए भी कैसे कहा जाय कि मठाधीश कुछ भी नही जानते? जिस प्रकार इन पुस्तकों का बंटवारा श्रीकाशी धाम में हुआ है ऐसा प्रायः कहीं हुआ न होगा? मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि जैसे प्रचारक पादरी पामर लोगों को "क्रैस्त" मत में मिलाने योजना से बइबल पुस्तक का दान करता है। यह निःसन्देह है कि धार्मिक जनता में कलह उत्पन्न करना धर्म

मर्य्यादा की अवहेलना करने के समान है। पर इस विषय को कलह के मूल पुरुष अच्छी तरह जान लें। "लंगडी बिल्ली घर में शिकार" की कहावत खूब इन कलह उत्पन्न करनेवाले लोगों पर चरितार्थ होता है। जब वे अपनी कल्पना ही में आरूढ हैं तो मैं उन भ्रामक प्रचारों को जनता के सामने पोल खोलकर दिखायें तो क्यों इतने रुष्ट होते हैं? किसी विषय की चर्चा छेडकर नयी नयी बातों का अविष्कार करना एवं विषयों की यथार्थता जानने के लिये अन्वेषण करना और परस्पर विरोधी विषयों का समन्वय सशास्त्रीय रीती से (न कि निराधार, अनुमान, स्वेच्छावाद या हेतुवाद से) करना अवश्य ही धार्मिक सिद्धान्तों की पुष्टि करती है। यदि श्रीकुम्भकोण मठाधीश इन सब भ्रामक प्रचारों से सहमत न होते तो क्यों अपनी लेखनी श्रीमुख द्वारा प्रगट नहीं कर देते? श्रीकाशीधाम में बार बार उनसे प्रार्थना की गई और उन्होंने मौन धारण कर लिया। इसका क्या अर्थ है? क्या तात्पर्य है?

जो लोग उपदेश दे रहे हैं कि इन भ्रामक प्रचारों का खन्डन करना भूल है, स्वयं वे यह चाहते हैं कि हम लोग इन कल्पित, भ्रमात्मक, अप्रामाणिक ग्रथों एवं प्रचारों को भूल जायें अर्थात् जितने पुस्तकें अभी तक प्रचार हुए हैं वे सब बिना खन्डन के रह जायें ताकि कुछ काल के बाद यही पुस्तकें प्रमाण रूप में पुनः प्रचारित किये जायें। यदि इन भ्रामक प्रचारों का खन्डन न किया जाय तो अपने आर्ष ग्रथों, पुराणों, उपपुराणों, मान्य ग्रन्थों का जो जोड बदल, निकाल और क्षिप्त किये गये पुस्तकों के आधार पर जो कुम्भकोण मठानुयायी प्रचार कर रहे हैं, वे सब पुस्तकों को उनके पूर्व स्थित पुस्तकों की अपेक्षा, प्रामाणिक ठहराने का पाप के दायित्व हम सब आप ही होंगे। आजकल अनेक प्रक्षिप्त पुस्तकें बाजारों में मिलते हैं। क्या उनके साथ और भी प्रक्षिप्त पुस्तकों का जोड किया जाय? न केवल हम लोग स्वयं धोखा खाकर इस पाप के भागी होंगे पर इन अप्रामाणिक, भ्रामक, कल्पित पुस्तकों को प्रमाणित ठहराकर अपने आनेवाले सन्तानों को भी धोखा देने का दायित्व हम हीं होंगे। वास्तविक वृद्ध परम्परागत प्राप्त सत्य विषयों के पथ छोड आनेवाले सन्तानों को इस कल्पित पथ पर जाने का पाप के भागी भी होंगे। यह खन्डन अवश्य ही कुम्भकोण मठाधीश व भक्त अनुयायियों को कटु होगा। क्योंकि सत्यवाद कटु होता है। किसी को दुःख न पहुंचाने के भाव से क्या सत्य मार्ग छोड दिया जाय? ऐसे दिखावटी धर्म संकट की स्थिति के कारण क्या सत्य का गला घोंटा जाय? जिन आधारों से कुम्भकोण मठावलम्बी भ्रामक प्रचार कर रहे हैं उन कहे जानेवाले आधारों की परीक्षा करना, उसपर विवेचना करना, और कहां तक इनका प्रचार सत्य है, इन प्रश्नों का अन्वेषन करना तो हरएक हिन्दुओं का धर्म है।

भारतवर्ष के इतिहास में जिस समय एक तरफ शून्यवाद, दूसरी तरफ अनेकान्तवाद, तीसरी तरफ तांत्रिक उपासना ने वैदिक धर्म को लुप्त कर रक्खा था; सारा देश पारेकी तरह बिखर गया था; मानव की जीवन यात्रा ध्येय रहित होकर मानव शान्ति के खोज में भटक रहा था; द्वेश, फूटभाव, ईर्ष्या, संघर्ष इत्यादि गुणों का अधिकता था; हजारों जमीनदारियां और रजवाडे, लाखों लूटेरों व सैकडों धर्म संप्रदाय आदि बनकर सारे समाज व देश को त्रस्त किये हुए थे; राजनीतिक एकता छिन्न भिन्न हो गई थी, लोगों के आचार विचारों में भौतिक वाद व शून्यवाद का ज्ञान ज्यादा था और वैदिक धार्मिक भावना कम थी और इसके फलाभूत मानव जाति में अतृप्ति एवं अशान्ती फैली हुई थी; अनाचार पापाचार एवं अकर्मण्यता अधिक मात्रा में फैल गया था; ऐसे वातावरण में आचार्य शङ्कर का जन्म भारतवर्ष में लगभग 1200 वर्ष पूर्व हुआ था और आपकी जीवनलीला भारतवर्ष के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है जो भारतवर्ष के इतिहास धारा को बिल्कुल बदल दी थी। यदि आपका अवतार उक्त परिस्थिति में न हुआ होता, यदि आपने अपने सर्वाङ्गीय समन्वयात्मक दृष्टि से धार्मिकता की ज्योति को प्रकाश न किये होते, यदि आप धर्म के इतिहास में एक नया युग का प्रादुर्भाव न किये होते, यदि आप भारत की धरती एवं पुण्य क्षेत्र तीर्थ देवदेवी मन्दिरों के प्रति सारे देश की भावना जगाकर और सारे मत मतान्तरों के स्थान में एक सर्वाङ्गीय समन्वयात्मक दर्शन की

स्थापना न किये होते, यदि आप आध्यात्मिक मूल दृष्टी से सारे भारतवर्ष को एकता की ओर आकृष्ट करके संघठित कर आपसे स्थापित भारतवर्ष के चतुर्धाम में चार आम्नाय मठों द्वारा एक राष्ट्रीय स्वरूप न देते, तो भारतवर्ष की इतिहास धारा ही बदल गयी होती। आप न केवल अद्वैतमतानुयायियों के गुरू थे पर संसार के सारे मानवजाति के ज्ञान ज्योति गुरू थे। आपने अपने विचारों से मानव विचारों की धारा पलट दी थी और आपकी गणना संसार दार्शनिकों में की जाती है। ऐसे ऐतिहासिक महान, अद्वितीय लोक गुरु व्यक्ति, के चरित्र घटनाओं व प्रामाणिक कथा वर्णन को बदल देना, इतिहास को ही बदलना होगा। व्यक्तिगत कोई चाहे कितना ही महान पुरुष हो पर यह व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है कि वह परम्परा प्राप्त ऐतिहासिक व्यक्ति का कथा जो अनेक अकाट्य प्रमाण ग्रन्थों से पुष्टी होती है एवं जो वृद्ध श्रेष्ठों को ग्राह्य है, उस प्रामाणिक कथा को अपने भ्रामक प्रचारों से बदल दें या उसे प्रमाणाभास स्वकल्पित स्वेच्छावाद एकाङ्गि प्रमाणों के आधार पर उक्त अकाट्य प्रमाणों पर पर्दा डालकर उसे अप्रमाणिक ठहराय। यह कार्य न्याय या उचित नहीं है। इतिहास व्यक्ति का चरित्र घटना चाहे वह भला हो या बुरा हो, उस चरित्र कथा को बदलने का प्रयत्न करना अन्याय है एवं यह अधिकार किसी को भी नहीं है। कुम्भकोण मठ के मठविषयक एवं आचार्य शङ्कर के चरित्र सम्बन्धी अन्य विषयक भ्रामक प्रचारों ने इस अद्वितीय महान ऐतिहासिक व्यक्ति के चरित्र को बदलकर एक नवीन चरित्र का परिचय प्रारम्भ करता है और यह कार्य अनुचित एवं अन्याय है। अतः आचार्य शङ्कर के चरित्र सम्बन्धी यथार्थ विषयों का प्रकाश करनें का आवश्यकता हुआ तथा कुम्भकोण मठ भ्रामक मिथ्या प्रचारों पर आन्वेषण करने का भी अवसर मिला। इतिहास का उद्देश्य सत्य की खोज, संस्कृति का निर्माण तथा जाति का आदर्श स्थापित करना होता है। अतः महापुरुषों की जीवनियां हर समय स्फूर्ति पैदा करनेवाली भी हुआ करती हैं। ऐसे ऐतिहासिक महान के चरित्र कथा को बदल देना, इतिहास का भ्रामक मिथ्या प्रचार करना होगा।

जब अन्याय की मात्रा अधिक हो जाती है तब उनका भन्डा फोडना ईश्वर की प्रेरणा से किसी के द्वारा अवश्य ही हो जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखने में आता है। जिस शक्ति की प्रेरणा से मैं ने 1934-35 ई० में श्रीकाशीधाम में इन भ्रामक प्रचारों का खण्डन किया था उसी शक्ति की प्रेरणा से आज 1962 ई० में भी इन भ्रामक प्रचारों का खण्डन करना अपना आवश्यक कर्तव्य एवं धर्म समझकर, सत्य के आश्रय से निर्भीक होकर, अन्याय एवं अशास्त्रीय जगत का खण्डन करके, विहारीपुरीमठ सभा के निर्णयानुसार एवं उक्त सभा के प्रस्ताव की पुष्टी के लिये, तथा पितृवचन परिपालनार्थ अब मैं इस विषय को पुस्तक रूप में प्रकाश करने का निश्चय किया है। मैं तो केवल उस शक्ति का एक शस्त्र हूं और यह पुस्तक उसी धारणा से लिखी है।

मैं ने अनेक गण्यमान पुरुषों से इस विषय की चर्चा की है। बहुतेरे ऐसे महान् सज्जन व्यक्ति हैं जिनसे पृथक गोप्यरूप से पूछा जाय कि आपका क्या विचार है वे तुरन्त इन प्रचारों का खन्डन करने लगते हैं पर वे ही स्पष्ट रूप से खुल्लम खुल्ला अपना विचार देने में डरते हैं। कुछ ऐसे महान सज्जन हैं जो तटस्थ हो जाते हैं और कहते हैं कि 'राम राज्य करे या रावण राज्य करे इससे मुझे क्या, इस झंझट में मैं नहीं पडता।' कुछ महान् सज्जन ऐसे हैं जो समझते हैं कि भ्रामक प्रचारों का खण्डन से यति पुरुषों की निन्दा होती है और ग्रहस्थों को ऐसा कर्म न करना चाहिये कि यति की निन्दा करें। पर ऐसे महान व्यक्ति यह नहीं सोचते हैं कि मेरे द्वारा भ्रामक प्रचारों का ही केवल खण्डन किया जा रहा है न कि उस यति की। कुछ महान व्यक्ति ऐसे हैं जो दोनों तरफ 'हां में हां' मिलाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो अपने मन में जानते हैं कि यह प्रचार सब मिथ्या भ्रामक है, पर वे स्वयं इस मिथ्या प्रचार में सहयोग भी देते हैं। दैववशात यह सब मठ की काली करतूत हैं। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि सत्य को कहने में लोग भयभीत होते हैं।

मेरे कहने का यह उद्देश्य नहीं है कि प्रस्तुत श्रीकुम्भकोण मठाधीश श्रीस्वामीजी महाराज ही इन भ्रामक प्रचारों के प्रधान कार्यकर्त्ता हैं अथवा ये सब ग्रन्थ जो श्रीमठाधीशजी प्रमाण रूप में बतलाते हैं सब इनके द्वारा ही रचा गया है। लेकिन श्रीमठाधीशजी अवश्य ही इन भ्रामक प्रचारों के प्रणेता हैं। उन अप्रमाणिक पुस्तकों के आधार पर जो आप प्रचार करा रहे हैं अथवा जिस प्रचारों से आपको उनकी सम्मति प्राप्त हुई है, इस कार्य में स्वयं मठाधीशजी का ही हाथ है। इनके मठाधीश बनने के पूर्व (अर्थात् 1907 ई० के पूर्व) की अपेक्षा इनके मठाधीश होने के समय में अनेकानेक विविध भाषाओं की पुस्तकों व नोटिसों एवं ट्रक्टों इत्यादि छपकर बाजारों में जो मिलते हैं, ये सब पुस्तकें प्रायः अर्पित, आज्ञा से, अनुमति से व श्रीमुख द्वारा प्रकाशित हैं। यह तो बडे आश्चर्य की बात है कि प्रस्तुत कुम्भकोण मठाधीश जो एक प्रकान्ड विद्वान परमतपस्वी और एक अलौकिक बुद्धि वाले होते हुए भी इन भ्रामक प्रचारों के आडम्बर को नहीं जानते हैं एवं आप पुस्तकों के अप्रमाणिकता का स्वरूप भी नहीं समझते हैं ? मठाधीशजी के शिष्यों, भक्तों, अनुयायियों एवं अभिमानियों के निर्णय व प्रचार तथा उनके विश्वास पर श्रीस्वामीजी महाराज को स्वयं स्वाभिमान व ममता एवं इष्ट सिद्धि पूर्ण करने की इच्छा उत्पन्न हुआ हो और इन कारणों से स्वयं उन्हें कुछ भी नहीं दिखायी पडता हो। श्रीस्वामीजी महाराज स्वयं व्यक्तियों से मिलते हैं व व्याख्या करते हैं तथा व्यक्तियों को बुलवाते हैं और मठ के भक्तों व अनुयायियों एवं कर्मचारियों को प्रचार करने की आज्ञा भी देते हैं। मुझसे प्रकाशित 'काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद' नामक पुस्तक में इस विषय का विवरण पायेंगे। दुशालों, दुपट्टों, अधिक सम्पत्ति व उपादि इत्यादि देकर व्यक्तियों को अपने सत्संग में ले लेते हैं। ये सब क्रिया-कलाप आप के काशी यात्रा में स्पष्ठ रूप से मालूम हो गया है। श्रीस्वामीजी महाराज स्वयं इस विषय में इतना स्नेह रखते हैं कि आप नित्य प्रति इस विषय की व्याख्या बराबर किया करते थे। राज्य अधिकारियों, प्रेसवालों, सोसाईटी के गण्यमान व्यक्तियों, धनाढ्यों, पत्र संपादकों, स्वपक्षी दलवालों के विद्वानों, खन्डन करनेवाले व्यक्तियों एवं विद्वानों तथा पुलिस कर्मचारियों व मजिस्ट्रेटों, इन सबों को भेंट देने और उनके साथ इस प्रचार का आप के वार्त्ता से सब पुष्टी हो जाती है कि कुम्भकोण के मठाधीशजी कहां तक इस विषय में दायित्व रखते हैं। उत्तरी भारत की यात्रा में इन्होंने अपना दो स्वरूप अच्छा ही प्रकट करके दिखाया। जिस प्रकार इन्होंने 'व्यवस्था पत्रिका, अनुमोदन पत्रिका, अभिनन्दन पत्रिका, स्वागत पत्रिका, प्रार्थना पत्रिका, प्रमाण पत्रिका व वन्दन पत्रिका' इत्यादि सैकडों में संग्रह किया उन संबों की कथा मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोग मठविषयक विवाद' में पाठकगण पायेंगे। अपने प्रचारों के सिद्धान्तों को उपर्युक्त पत्रों में लिखकर संग्रह रूप में उल्लेख किया। ऐसे पत्रों का संग्रह करने का एक ही तात्पर्य यह था कि इससे भविष्य में प्रमाण रूप से प्रचार किया जा सकता है। ऐसे पत्रिकाओं की प्रतियां मठ में अनेक मिलती हैं और केवल उनका नाम और स्थल बदलकर उन्हें छपवा दिया जाता है। आन्ध्र देश में प्रायः सब जगह ऐसा ही किया गया है।

कुम्भकोण के मठाधीश स्वयं एक यति और मठाधीश हैं इसलिये आदरणीय हैं। और वर्त्तमान मठाधीश स्वयं विद्वान एवं तपस्वी भी हैं। ऐसे समय में जब पाश्चात्य देश की सभ्यता से अपने धर्म के प्रति साधारण जनों में विश्वास की शैली कम होती जा रही है तो हमारे श्रीमठाधीश का धर्मोपदेश और स्वयं धर्मानुष्ठान् की शैली ऐसे युग में प्रशंसनीय है। हम लोग सब इसके लिये कृतज्ञ हैं। पर इसके साथ हम यह भी कहना चाहते हैं कि ऐसे धर्म प्रचार कार्यों के साथ अपना मठ का भ्रमात्मक प्रचार कदापि भी न करने की कृपा करें। क्योंकि 'सत्यमेव जयति' और अवश्य एक दिन सत्य की जय होगी। श्रीआचार्य शङ्कर के वचनानुसार सत्य की ही जय होगी और असत्य असत्य ही है चाहे जिस प्रकार का रङ्ग एवं रूप दिया जाय—'नहि मृषां कृत्वा कन्चित् अजरामरो भवति'। यह स्पष्ट करके हम सब को विदित करना चाहते हैं कि हम लोगों का यह उद्देश्य नहीं है कि श्रीकुम्भकोण के स्वामीजी का व्यक्तिगत निन्दा या निरादर करें। हम लोग यह भी नहीं कहते कि कामकोटिपीठ नहीं है। यह पीठ तो

श्रीशङ्कराचार्य के काल के पूर्व काल से ही चला आ रहा है और इस पीठ की अधिष्ठात्री केवल पराशक्ती कामाक्षी ही है और श्रीआद्यशङ्कर ने कांची में केवल गुहावसिनी उग्रदेवी कामाक्षी की उग्रता को शान्त कर स्थूलरूप श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा की। उन्होंने वहां नवीन कामकोटि पीठ का निर्माण या प्रतिष्ठा नहीं किया। यह कामकोटि पीठ श्रीशंकर के काल से भी पूर्व का ही है। श्रीआद्यशंकर ने न कोई आम्नाय मठ की स्थापना कांची में की और न अपना गुरु परम्परा ही प्रारम्भ किया। उनका निर्याण स्थल केदार सीमा थी न कि कांची।

श्रीआद्यशंकर के समय के बहुकाल के बाद ही कुम्भकोण मठ की स्थापना हुई। इनका प्रचार जो है कि कांची कुम्भकोण मठ श्रीआद्यशङ्कराचार्य के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परागत है, आचार्य शङ्कर चार शिष्यों के लिए चार वेद का चार दिशाओं में चार धर्म पीठ स्थापित करके (मठों) शिष्य परम्परा का श्रीगणेश किया था पर कांची कुम्भकोण मठ श्रीआद्यशङ्कराचार्य ने ही निजमठ रूप में गुरुमठ की प्रतिष्ठा की, आप वहीं अधिष्ठित हुए और कांचीकुम्भकोण मठ की परम्परा अविच्छिन्न गुरु परम्परा है, श्रीआद्यशङ्कर द्वारा प्रतिष्ठापित आम्नायानुसार जो चार मठ हैं सो सब शिष्य मठ हैं, यही कांची मठाधीष श्रीजगद्गुरु हैं और अन्य चार शिष्य मठाधीष श्रीगुरु हैं—ऐसे भ्रामक, मिथ्या, अप्रमाणिक व कल्पित प्रचार के हम विरोधी हैं। पीठ, निवास मठ और धर्मराज्य केन्द्रों (आम्नाय मठों) के भिन्न भिन्न अर्थ हैं और ऐसे शब्दों को एक की जगह दूसरे शब्द का उपयोग कर ऐसा भ्रामक प्रचार करना अशास्त्रीय है। ऐसे शब्दों का उपयोग ठीक ढंग से करना चाहिए न कि अपने स्वार्थ और इष्ट सिद्धि की प्राप्ति के लिये। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यदि पीठ है तो मठ है, यदि मठ नहीं है तो भी पीठ है इसलिये मठ भी है। इस कुतर्क वाद में कितना न्याय है सो पाठकगण स्वयं जान लें। पीठ होने मात्र से आम्नायमठ होने की कोई आवश्यकता नहीं है। पीठ देवयोनियों का वासस्थल है और मठ जो आम्नाय, नियम, सम्प्रदायों (मठाम्नायसेतु व महानुशासन) आदि से बद्ध हैं सो मनुष्य कोटि का वासस्थल है। साधारण मठ केवल वासस्थल हैं और ये मठ आम्नाय मठ नहीं बन सकते। भारतदेश के अनेक तीर्थस्थलों में पीठ हैं जहां आचार्य शंकर पधारे थे और कुछ समय वास किये थे। तो क्या यह कहा जाय कि सब पीठस्थलों में मठ भी थे? ऐसा तो मठाम्नाय से प्रतीत नहीं होता। 'पञ्चाशत् पीठ मण्डिता' के अनुसार 50 पीठ हैं तो क्या 50 मठ भी हैं? पीठ व मठ के अर्थों का दुरुपयोग करके अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।

कुम्भकोण श्रीमठाधीशजी यात्रा निमित्त अनेकानेक तीर्थ स्थलों, क्षेत्रों, नगरों और गांवों से होते हुए दक्षिण भारत से श्रीकाशी धाम 6 अक्तूबर 1934 ई० को पहुंचे। आपके काशी आगमन के पूर्व ही से इनके मठ के कर्मचारी प्रचारक एवं अनुयायी आदियों से (सब दक्षिणात्य) काशी में प्रचार करने का काम आरम्भ कर दिये थे। इनके आने पर केवल दक्षिणात्य ब्राह्मणों को छोडकर और कोई इन्हें नहीं जानता था और न इनका मठ को। इनके भ्रामक प्रचारों से कुछ साधारण लोग, गौड ब्राह्मण, विद्वान एवं सन्यासियों में शंका पैदा हुई। इस शंका के निवारणार्थ प्रथम यह प्रयत्न किया गया कि भ्रामक प्रचारों को श्रीस्वामीजी बन्द करा दें पर ऐसा न हुआ। वाद विवाद खडा हुआ। आपने साढे पांच महिने काशी में वास किया और इस साढे पांच महिनों में केवल पत्रों, पर्चों व व्याख्यानों द्वारा वाद-विवाद ही होता रहा। आज कल काशी में कितने ही जगद्गुरू आये और गये पर उन लोगों के सम्बन्ध में कभी भी कोई ऐसा विवाद उपस्थित नहीं हुआ। कांची मठ के बारे में ही इतना विवाद क्यों खडा हुआ? 30—9—34 के दिन काशी के विहारीपुरी मठ में प्रकाण्ड विद्वानों एवं माननीय परिव्राजको का एक सार्वजनिक सभा हुई और इस सभा ने काशी के दिग्गज पन्डितों द्वारा पूर्वकाल 1886 ई० में दिया हुआ व्यवस्था को आमोदन करते हुए निर्णय किया कि श्रीशङ्कराचार्य ने केवल चार धर्मराज्यकेन्द्र (मठ) मठाम्नायानुसार स्थापना की थी। इस सभा ने मेरे पूज्य पिता से अनुरोध किया कि आप इस विषय को हाथ में लेकर इस प्रसिद्ध निर्णय का प्रकाश करें। सभा मंत्री का रिपोर्ट जो 1935 ई० 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श' नामक पुस्तक में प्रकाशित है और मंत्री का 'सभा विवरण

मूल रिपोर्ट' तथा सूर्य पत्र ता: 2-10-34 एवं 5-10-34 के अङ्को में सभा विवरण प्रकाशित हैं; ये सब उक्त कहे विषयों की पुष्टि करता है। इस वाद विवाद का परिणाम एवं बिहारीपुरीमठ सभा के निर्णयानुसार 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक एक छोटी-सी पुस्तक संग्रह रूप में मेरे पूज्य पिता स्व० प० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा द्वारा 1935 ई० में छपकर प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को कन्याकुमारी से हिमालय पर्यन्त अनेकानेक पन्डितों को भेजकर उनके द्वारा व्यवस्था एवं सम्मति भी प्राप्त किया गया। इसके प्रकाशन के बाद मुझको पांच पुस्तक प्राप्त हुआ। ये सब पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' के उत्तर रूप में प्रकाशित किये गये थे। इनमें से एक पुस्तक मेरे पूज्य पिता को 1940 ई० में संपादकों द्वारा प्राप्त हुई। (1) 'श्री शाङ्करपीठतत्वदर्शन' (2) 'काशी-यात्रासमये-अभिनन्दन पत्रम्' (3) 'कांचीकामकोटि मठ विषयक सम्वाद' (4) 'कलकत्ता ब्राह्मण सम्मेलन व्यवस्था' (5) विजयनगर विजय यात्रा। अब मैं यह पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श' इन पांच पुस्तकों के उत्तर रूप में एवं कुम्भकोणमठाधीश के व अनुयायी भक्तों द्वारा करीब 150 वर्षों से किये जाने वाले मिथ्या, कल्पित एवं भ्रामक प्रचारों के उत्तर रूप में प्रकाशित कर रहा हूं।

कुम्भकोणमठाभिमानियों द्वारा 1960 ई० से प्रारम्भित एवं प्रकाशित मठ विषयक प्रचार मासिक पत्र 'कामकोटि प्रदीपम्' में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद व आक्षेपों का उत्तर रूप में कुछ लेख प्रकाशित हैं जो सब कल्पित, प्रमाणाभास एवं भ्रामक मिथ्या प्रचारों पर आधारित हैं। इस पत्र का वाद जो स्वेच्छावाद, वितन्डावाद कोटि की हैं एवं नीची श्रेणी की हैं सो सब 120 साल से जो भ्रामक प्रचार पूर्व में हुआ था उसी का नकल अवांछनीय भाषा में अब प्रकाशित हो रहे हैं। दो तीन वर्षों से कुम्भकोग मठ प्रचारों की भन्डाफोडना जो हुई है उसका उत्तर न देते हुए और काशी में 1934/35ई० में पूछे हुए दस प्रश्नों, सन्देहों, आक्षेपों का उत्तर न देते हुए 'हिस मास्टर वायज' गायन यंत्र के समान अपने से किये हुए पूर्वकाल के प्रचारों का पुनः प्रकाशन अब किया जा रहा है। यद्यपि इन लेखों का विषय उत्तर देने योग्य नहीं हैं तथापि पाठकगणों की जानकारी के लिये इन विषयों को संग्रह कर उसका उत्तर भी यहां दिया गया है।

'श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक जो 1935 ई० में प्रकाशित हुई थी अब वह पुस्तक उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान एवं गण्यमान सज्जनों ने पत्र द्वारा इस पुस्तक के बारे में पूछा था। पाठकगणों की सुविधा व जानकारी के लिये उक्त पुस्तक के विषय विवरण का कुछ भाग अब इस पुस्तक में जोड दिया गया है और कुछ भाग मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद' में दिया गया है। ये दोनों 1962 ई० का प्रकाशन उस 1935 ई० पुस्तक का बृहत् संस्करण है।

मेरे पूज्य पिता स्व० पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा का काशीवास 20-11-1959 को श्री काशीधाम में उनके स्वगृह 51, हनुमानघाट में हुआ। इन्होंने इस वाद-विवाद में बहु कुछ अंश लिया था। चूंकी आप एक विद्वान थे और चार पीढी से काशी में हमारे वंशज रहते हुए चले आये हैं इसलिये आपका नाम प्रख्यात था। इस वादविवाद के समय अनेकानेक विद्वान, सन्यासियों, महन्तों व साधारण लोग मेरे पिताजी से मिलने और इस विषय का सत्यान्वेषन करने के लिये आया जाया करते थे। मेरे पूज्य पिताजी ने इस विषय में पूर्ण स्नेह रखकर 1940 ई० के बाद फिर इस विषय का अनुसन्धान करने लगे और वे लगभग 1950 ई० तक उसका पूर्ण अन्वेषण किये। पूना, बडौदा, लाहौर, काशी, कलकत्ता, मद्रास, तंजौर, तिरुपति, एवं अन्य पुस्तकालयों में ग्रंथों को पढकर एवं अनेक अन्य जगहों से पत्रों द्वारा भी आपने चरित्र सामग्री विषय को संग्रह किया। उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि अपने द्वारा संग्रह किये हुए सामग्री को लेकर 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाश करें। आपने प्रायः एक सौ पचास मठ विषयक व्यवस्थायें काश्मीर से लेकर कामरूप व नैपाल से लेकर कन्याकुमारी तक--

डाकघर द्वारा प्राप्त किया था। इनमें से कुछ व्यवस्थाओं और सम्मति पत्रों को इस पुस्तक में छपवाना चाहते थे। कुछ कारणों से वे इस कार्य को न कर सके। लेकिन उनकी मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपने कुछ मित्रों और उनके अभिमानियों को पत्र लिखकर अपनी इच्छा प्रगट की थी। उनके काशीवास होने के कुछ दिन पहले ही उन्होंने मुझे पत्र लिखकर यह अपनी इच्छा मुझे प्रगट किया कि यदि उनका देहान्त इस पुस्तक के प्रकाशन होने के पूर्व हो जायगा तो मेरा कर्त्तव्य होगा कि मैं इसे लिखकर प्रकाशित करूं। पिताजी के देहान्त के बाद उनके मित्रों ने मुझको लिखकर कहा कि यह मेरा प्रथम कर्त्तव्य होगा कि पिताजी की इच्छा पूर्ति करें। मैंने मेरे पूज्य पिताजी की इच्छा की पूर्ति एवं उनके वृद्ध मित्रों की इच्छा की पूर्ति के लिये तथा विहारीपुरीमठ सभा के निर्णयानुसार एवं उक्त सभा के प्रस्ताव की पुष्टी के लिये यह पुस्तक लिखकर प्रकाशित करता हूं। इस पुस्तक के चार खण्ड हैं :—

प्रथम खण्ड–श्रीमच्छङ्कराचार्य चरित्र–संक्षेप (प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर)।

द्वितीय खण्ड–काञ्ची कुम्भकोण मठ विमर्श, मठ विषयक सत्यान्वेषण, एवं भ्रामक प्रचारों का खन्डन, आदि।

तृतीय खण्ड–विद्वानों का मठ विषयक विचार।

चतुर्थ खण्ड–शिवरहस्य, माणिक्यविजय में आचार्य चरित्र, मठाम्नाय स्तोत्र तथा सेतु, महानुशासन।

"नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षतमुच्यते" इस मल्लिनाथी वाक्यानुसार मैं ने प्रयत्न कर इस पुस्तक को लिखा है। जो कुछ लिखा गया है वह प्रमाण युक्त लिखा गया है। प्रमाण यथा स्थान दिये गये हैं और जहां नहीं दिये गये हैं वहां भी प्रमाण विद्यमान हैं। शङ्कराचार्य का चरित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत करते समय मुझे अपार आनन्द हो रहा है। भाषा और शैली का ध्यान न देकर चूंकि यह कोई काव्य ग्रन्थ नहीं है, मैं ने साधारण बोलचाल की भाषा में लिखा है ताकि सर्व साधारण लोग भी विषय को समझ सकें। इस पुस्तक का प्रणयन् विशिष्ट प्रकार के पाठकों जो कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों से भ्रम में पडे हुए हैं तथा विषय की यथार्थता जानने के लिये उत्सुक हैं उनकी आवश्यकता पूर्ति का ध्यान रखकर हुआ है। लक्ष्य यही है कि विद्यार्थियों, विद्वानों या अन्य व्यक्तियों को जिन्हें श्रीशंकराचार्य के जीवन चरित्र तथा उनसे प्रतिष्ठित धर्मराज्य केन्द्रों के विषय जानने के लिये उत्सुक हैं उनके उपयोग सिद्ध हो सके। इस आवश्यकता की पूर्ति में मैं किस सीमा तक सफल हो सका हूं इसका निर्णय योग्य आलोचक ही कर सकता है। प्राचीन भारत की अनेक घटनायें अभी तक अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ है और जो सामग्री उपलब्ध है वह अधूरी एवं कहीं कहीं परस्पर विरोधी अवस्था में भी हैं। ऐसे विषयों पर पूर्ण आलोचना कर प्रमाण युक्त विषयों का ही उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। विषय को सरल, सुबोध, प्रामाणिक और संक्षेपतः व्यापक बनाने की पूर्ण चेष्ठा की गई है।

उन सज्जनों को धन्यवाद देता हूं जिनकी सहायता से यह कार्य संपन्न हुआ है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर एवं काशी के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य श्रीबलदेव उपाध्यायजी को मेरा सादर विशेष धन्यवाद। आपसे रचित पुस्तकों से कुछ विषयों को यहां दिया गया है और कहीं कहीं आपही के कुछ वाक्यों का भी उद्धरण किया गया है। इस सहायता के लिये मैं आपका कृतज्ञ रहूंगा। अनेक प्रामाणिक पुस्तकों से विषयों का संग्रहकर यथास्थान दिये गये हैं। इस सहायक ग्रंथों की अनुक्रमणी सूची में लगभग 240 सहायक ग्रंथों का नाम हैं और यहां यह सूची नहीं दी जाती है चूंकि पुस्तक में यथास्थान संकेत किया गया है। इस सहायता के लिये

इन पुस्तकों के रचयिताओं व प्रकाशकों को मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। हम उन सब शुभाकांक्षियों के अभारी हैं जिन्होंने अपनी सलाहों द्वारा पुस्तक को उपयोगी बनाने में सहयोग दिया है। मेरी पुत्रियां भी आशीर्वाद के भाजन हैं जिन्होंने मेरे इस काम में प्रत्येक दिन अपनी सहायता देकर इसे शीघ्र से पूर्ण किया है।

इस पुस्तक में त्रुटियां व अशुद्धियां भी हो सकती हैं और विज्ञ पाठकों से प्रार्थना है कि वे इन्हें शुद्ध कर लेने की कृपा करें। मेरे जीवन में यह सर्व प्रथम ऐसी पुस्तक का संपादन करता हूं। काव्य भाषा और शैली इत्यादि में पाण्डित्य न होने के कारण अनेक त्रुटियां हो सकती हैं। पाठकगण मुझे क्षमा करें। केवल यथार्थ सत्य विषय का प्रकटन करने की तीव्र इच्छा होने से, पितृवचन का पालन एवं पूज्य पिता के मित्रों की इच्छापूर्ति के कारण मैं ने इस काम को अपने हाथ में लिया, अन्यथा क्या है मेरी सत्ता एवं योग्यता। काशी पुण्य क्षेत्र जहां श्रीशङ्कर निवास किये, जहां बाबा विश्वनाथ चान्डालरूप में आकर श्रीशङ्कर को सत्यता व ब्रह्मत्व का बोध कराया, जहां श्रीशङ्कर को वेदान्त भाष्य रचने की आज्ञा दी, जहां 1934/35 ई० में कुम्भकोण मठाधीश आकर अपने कल्पित, भ्रमात्मक व आडम्बर प्रचारों से सत्य व यथार्थ पर धूल डालकर अपने हित के लिये विद्वानों से व्यवस्था लिये, जहां कुछ सत्यपथानुयायी साधारण जन, पण्डित, परिव्राजक वर्ग इन भ्रामक प्रचारों का घोर विरोध करके खण्डन किया, उसी स्थल का निवासी मैं एक दाक्षिणात्य अब यह सत्यता प्रकट कर रहा हूं। बाबा विश्वनाथ से मेरी प्रार्थना है कि यह सत्यान्वेषन पुस्तक अपने उद्देशों में सफल हो और प्रत्येक घर में सत्यता का भाव प्रकट करे जिससे फिर यहां के लोग कल्पित, भ्रमात्मक प्रचारों के प्रभाव में न फंसकर पुनः व्यावस्थाभास न दें। व्यक्तिगत् गौरव की अपेक्षा काशी का गौरव महान है और आज भी सत्यता का प्रभाव काशी ही में देखा जाता है।

भारतीय संविधान में यह घोषणा की गई है कि भारतीय सार्वजनिकों के व्यवहार में हिन्दी भाषा राष्ट्र भाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित होगी। इस घोषणा को कियान्वित होने का दायित्व सभी भारतवासियों पर है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार न करने वाले दक्षिण भारत का एक वर्ग प्रचार करते हैं कि हिन्दी भाषा दक्षिण भारतवासियों को अप्रिय है और वे इसे सीखने या व्यवहारिक उपयोग में लाने के लिये तैय्यार नहीं हैं। पर यह हिन्दी पुस्तक जो दक्षिण भारत में मुद्रित होकर प्रकाशित हुई है सो पुस्तक उक्त प्रचार को असत्य ठहराती है। जब मैं ने इस पुस्तक को स्वधाम काशी मुद्रालय में मुद्रित कराकर प्रकाश करने का निश्चय कर लिया था तब मेरे कुछ मित्रों ने सलाह दी कि मैं यह हिन्दी भाषा पुस्तक को दक्षिण भारत में छपवा कर प्रकाश करूं ताकि उत्तर भारत भी जान लें कि दक्षिण भारत इस विषय में पीछे नहीं है पर समानता रखती है। राष्ट्रीय संघठन व एकता भाव उत्पन्न कराने का एक मार्ग है कि दक्षिण के प्रकाशक अपनी पुस्तकें उत्तर में छपवा कर प्रकाश करें और उत्तर के प्रकाशक दक्षिण में अपनी पुस्तकें छपवाकर प्रकाश करें। तदनुसार मैं ने श्री रामा प्रिन्टिङ्ग वर्कस, धर्मपुरी (शेलम्), को यह कार्य सुपुर्द किया। श्रीरामा प्रिन्टिङ्ग वर्कस, मुद्रक, के यहां सर्वप्रकार की सुविधायें प्राप्त हुई और मुद्रक ने शीघ्र ही इस बृहत् कार्य को संपूर्ण कर दिखाया कि हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन करने के लिये न केवल आप तैय्यार हैं पर योग्यता भी रखते हैं तथा भारत एक था और एक ही रहेगा। श्रीरामा प्रिन्टिङ्ग वर्कस को मेरा हार्दिक धन्यवाद। उत्तर व दक्षिण के नाम से भारत को भाषा की आधार पर विभाजित करना न केवल आचार्य शङ्कर द्वारा सारे भारतवर्ष की एकता को जो आध्यात्मिक सूत्र से बांध रक्खा था उसे तोडना होगा पर आचार्य शङ्कर के हृदय को भी विदीर्ण करने के समान होगा।

51, हनुमान घाट,
वाराणसी-1, (उत्तर प्रदेश.)
20-9-1962.

ज. वि. राजगोपाल शर्मा,
(संपादक)

ॐ

॥श्री गुरुभ्यो नमः॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

विषय-सूची

प्रथम-खण्ड

श्रीमच्छङ्कराचार्य-चरित्र (संक्षेप)

द्वितीय-खण्ड

कांची कुम्भकोण मठ विमर्श, मठविषयक सत्यान्वेषण एवं भ्रामक प्रचारों का खण्डन।

आचार्य द्वारा रचित 'प्रपञ्चसार' व पद्मपाद की टीका 'विवरण' द्वारा काश्मीर में सर्वज्ञपीठ का बोध होना, कुम्भकोण मठ प्रचार कि कांची में सर्वज्ञपीठ था इस पर आलोचना, सर्वज्ञपीठ होने से आम्नाय मठ होने की आवश्यकता नहीं है, एक ही आम्नाय में भिन्न भिन्न आम्नाय पद्धतियां होना असम्भव, आचार्य ने नवीन सर्वज्ञपीठ निर्माण या प्रतिष्ठा नहीं की थी-*478–482* ; कुम्भकोण मठ प्रचार है कि दक्षिण कांची काश्मीर मन्डलान्तर्गत है अतएव काश्मीर का सर्वज्ञपीठ कांची का सर्वज्ञपीठ है, आचार्य ने कांची में नवीन सर्वज्ञपीठ प्रतिष्ठा करके उसपर आरोहण किया था, कांची ही काश्मीर है और दोनों पद परियायवाचक पद हैं, कश्मीर सर्वज्ञपीठ पर आरोहण कर पुनः कांची सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था, ऐसे भिन्न प्रचारों पर आलोचना ; क्रिस्तपूर्व 700 वर्ष से चौदहवीं शताब्दी तक का काश्मीर एवं उत्तरी भारत इतिहास संक्षेप में तथा इस काल में दक्षिण भारत से सम्बन्ध व इतिहास-*482-86*; काश्मीर देश में कांची नगर, गोविन्दनाथ केरळीय शंकरविजय में उल्लेखित कांची काश्मीर का कांची-*486-87* ; कांची का भिन्न नाम, भारत में पांच कांची नगरों का परिचय, कांची में देवगर्भा पीठ, वर्तमान कामाक्षी मन्दिर पूर्व में तारादेवी मन्दिर था, शिवरहस्य में निर्देशित कांची उत्तरी भारत कांची है *487-88* ; (5) कुम्भकोणमठ प्रचार है कि आचार्य का निर्याण दक्षिण कांची था—इसपर आलोचना एवं कुम्भकोण मठ से निर्देषित प्रमाणाभासों पर विमर्श, आचार्य का निर्याणस्थल हिमालय की केदार सीमा ही थी-*488-97*; कुम्भकोणमठ से प्रचारित निर्याण विवरण पर आलोचना *-497-98* ; (6) कुम्भकोणमठ का कथन कि आचार्य का निर्याण कांची कामाक्षी मन्दिर में हुआ था और मन्दिर का शङ्कराचार्य मूर्ति समाधि है, इस प्रचार पर आलोचना, शङ्करमूर्ति सन्नधि है न कि समाधि—*498-99* ; कांची कामाक्षी मन्दिर का शङ्कराचार्य मूर्ति इतिहास, कहे जानेवाले शङ्करमूर्ति पुराकाल में बुद्धमूर्ति था, कहेजानेवाले कामाक्षी मन्दिर जैन बौद्ध मतावलम्बियों का मन्दिर था और पश्चात् वैदिक मन्दिर में परिवर्तन हुआ, कांची आदिपीठपरमेश्वरी मन्दिर ही पीठ था जहां आचार्य ने उग्रता शान्त कर के श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा की थी, श्री बुद्धदेव मूर्ति लक्षणों का विवरण और अब कहेजानेवाले शंकरमूर्ति के साथ तुलना, दक्षिण भारत में अनेक बुद्धदेव मूर्तियों का वैदिकमत देवमूर्तियों में परिवर्तन, कांची में सुनी कथा, काशी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी से सुनी कथा—499—508 ; (7) कामकोटि पद का नानाप्रकार के अर्थों का प्रचार और उस पर आलोचना, कोट्टम पद का तात्पर्य और पुराकाल में इस पद का उपयोग, कामकोडि, कामकोटि आदि पदों का अर्थ व तात्पर्य—508—9 ; कामाक्षी मन्दिर का श्रीचक्र प्रतिष्ठा काल, कामाक्षी मन्दिर में प्राचीन शिलालेख—509-10 ; कामाक्षी मन्दिर समीप मठ होने का प्रचार पर आलोचना, विष्णु कांची का मठ विवरण, शिवकांची का मठ विवरण—510 -14 ; कांची में दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठ की शाखा मठ, पूर्वकाल में श्रृंगेरी मठाधीशों का कांची विजय यात्रा और कांची से सम्बन्ध—514-15 ; कांची में कांचीमठ 18 वीं शताब्दी में न होने का कुछ प्रमाण—515-16 ; कांची में अन्य मठों का विवरण—*516*; कांची में न मण्डनमिश्र अग्रहार है या न पुण्यरस है—516-17 ; (8) कुम्भकोण मठ प्रचार है कि कांची कामाक्षी मन्दिर आचार्य शङ्कर के काल से आपके आधीन में है इस प्रचार पर आलोचना, दक्षिण भारत में मन्दिरों का निर्माण काल, कामाक्षी मन्दिर का निर्माण काल—517-18 ; कांची कामाक्षी मन्दिर का सम्बन्ध कुम्भकोणमठ के साथ 1843 ई० के पूर्व न था सो विषय

प्रमाण युक्त सिद्ध किया गया है–शिलाशासनों में 'स्थानत्तार' कहा है; उदयारपालयम जमीन्दार का ताम्रशासनपत्र 1784 ई० का श्रीदक्षिणामूर्ति को दिया गया है; मन्दिर धर्मकर्ता दक्षिणामूर्ति वंशविवरण; स्थानीकरों का बयान 1837 ई०; कलक्टर का पत्र 1841 ई० कांची तहसीलदार को; कलक्टर का पत्र 1842 ई०; मदरासराज्य राज्यपाल को भेजा अर्जी 1842 ई०; मन्दिर धर्मकर्ता, कांची तहसीलदार, कलक्टर व बोर्ड आफ रेवन्यू के बीच पत्र व्यवहार विवरण एवं कलक्टर का पक्षपात; धर्मकर्ताओं का पत्र तथा बोर्ड आफ रेवन्यू का उत्तर 1843 ई०; मन्दिर स्थानीकरों का दरख्वास्त बोर्ड आफ रेवन्यू को 1841 ई०; मन्दिर निर्वाह कार्य सरकार अपने हाथ लेने का अधिकार कानून एवं निर्वाह कार्य छोड देने का हुक्म; 5—11—1842 के आज्ञानुसार कुम्भकोण मठाधीश व्यक्तिगत कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियोजित किये गये, कलक्टर का पत्र कांची तहसीलदार को कि मन्दिर कार्य सुपुर्द करते समय 'स्वीकृतिपत्र' में स्थानीकरों का हस्ताक्षर भी लिया जाय और कमरों का चाबी भी दी जाय; कुम्भकोणमठ परम्परा ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त न हुए पर व्यक्तिगत नियोजित हुए; ट्रस्टी पदवी पर नियोजित करने का सनद; नीलकल अरुणाचलशास्त्री का बयान; कुम्भकोणमठ से दिया हुआ शासनपत्र अरुणाचल शास्त्री को; मुकद्दमा 58/1840, 44/1847 आदि मन्दिर स्थानीकरों का उल्लेख करता है; मुकद्दमा एस. ए. 1187 व 1545/1891 ई०, ओ. एस. 162/1923, ओ. एस 89/1925, 1892 ई० में स्थानीकरों के हाथ मन्दिर निर्वाह, आदि कुम्भकोणमठ के कर्तूतों का विवरण देता है; कुम्भकोण मठ कामाक्षी मन्दिर कुम्भाभिषेक के लिये 1839 ई० में ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी के साथ प्रयत्न एवं कलक्टर, तहसीलदार व मठ के बीच में पत्र व्यवहार विवरण; कलक्टर से अनुमति प्राप्त करना; कुम्भकोण मठ की प्रार्थना कि क्या क्या मर्य्यादा की जाय आपके कांची आगमन समय और इस विषय पर तहसीलदार का पत्र एवं कलक्टर का अनुमति; प्रथमबार मन्दिर का कुम्भाभिषेक 1839 ई० में एवं एक शिलाशासन की प्रतिष्ठा; कुम्भकोणमठ की प्रारम्भिक कथा संक्षेप में, मन्दिर के स्थानीकर देवीपूजाविधिप्रवर्तक श्री दुर्वासा को मानते हैं; छः भिन्न गोत्र ब्राह्मणों से पूजित मन्दिर; मन्दिर के परम्परा कार्यदर्शी सात वर्ग के हैं—518-29; कुम्भकोणमठ के 105 वर्ष मन्दिर निर्वाह काल में कुछ घटित घटनाओं का विवरण—529-31; कुम्भकोणमठ एजन्ट का पत्र 8—7—1917 जो इनके कर्तूतों का विवरण देता है—531; कांची छोड तंजौर जाने का काल एवं स्वर्णकामाक्षी को कांची से उदयारपालयम ले जाने का विवरण; कांचीमठाधीश का सम्बन्ध स्वर्ण कामाक्षी के साथ-532–38; (9) वंशावली सूची, नेरूर सदाशिवब्रह्म व श्रृंगेरी मठ तथा कुम्भकोण मठ के साथ आपका सम्बन्ध, कुम्भकोण मठ प्रचार कि श्रृंगेरी मठाधीश अभिनवोद्दण्ड विद्यारण्य भारती ने क्षमा पत्र लिखा था उसपर आलोचना-538-39; (10) कुम्भकोणमठ प्रचार है कि कांची मन्दिरों में शङ्कर मूर्तियां एवं व्यास व शङ्कर मूर्तियां शिला में होने से कांची आचार्य का निजाश्रम व निजमठ था सो प्रचार मिथ्या व भ्रामक है-*539-41*; (11) कुम्भकोण मठ का अदालत में बयान कि सरस्वती छोटी श्रेणी की देवी हैं, कामाक्षी ऊंची श्रेणी की देवी हैं और आचार्य ने नीची श्रेणी मन्दिर में श्रीचक्र प्रतिष्ठा नहीं की थी–इस विषय पर आलोचना-*541*; (12) चेङ्गलपेट डिस्ट्रिक्ट गजटियर-*541–42*; (13) कुम्भकोण मठाभिमानियों का प्रचार कि कांची मठ को आचार्य का निजमठ स्वीकार न करनेवाले व्यक्ति सब मूर्ख हैं, इसपर आलोचना-*542*.

तृतीय–खण्ड

विद्वानों का मठविषयक विचार

भाग—दो प्राप्त हुए कुछ प्रस्तावों का विवरण जो उन सभाओं द्वारा सर्वसम्मत से पास किये गये थे। 621

भाग—तीन 624

पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के रचित ग्रंथों एवं प्रकाशित लेखों से मठविषयक सम्बन्ध कुछ विचार तथा अदालती निर्णयों से कुछ भाग के उद्धरण।

चतुर्थ—खण्ड

शिवरहस्य, माणिक्यविजय, मठाम्नायस्तोत्र तथा सेतु, महानुशासन



श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठविमर्श
भारत
सातवीं शताब्दी अन्त/आठवीं शताब्दी प्रारम्भ
अपर समुद्र
पूर्व समुद्र
गुर्जर
नेपाल
मालव
कलिंग
सह्याद्रि
लाट
सौराष्ट्र
कश्मीर
कपिश
मगध
कोसल
राजगोपाल शर्मा

ॐ



॥ श्री गुरुभ्यो नमः॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

(प्रथम-खण्ड)

श्रीमच्छङ्कराचार्य चरित्र—(संक्षेप)

अध्याय—1

ब्रह्मविद्या गुरु परम्परा क्रम

नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठं शक्तिंच तत्पुत्र पराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपादं महान्तं गोविन्द योगीन्द्र मथास्य शिष्यम्॥
शंकरं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्र भाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥

शुद्धविद्याप्रदायक शुद्धस्फटिकसंकाश सदाशिव ज्ञानोपदेष्टक पूर्ण चिदानन्द आदिगुरु परमशिव; सीमातीत अनाद्य नामोच्चारगमेप्रज अनन्त कामिताशेषफलदायक भक्तिरूप धर्मोपदेशक श्रीयुक्त विष्णु; चतुर्मुख पद्मस्थित सृष्टिकर्त्ता वेदप्रवर्तक सकलजीवराशिहितकारक श्री ब्रह्म; इन तीनों (ज्ञान, भक्ति, कर्मरूपी) गुरुमूर्तियों को मेरा सविनय सादर वन्दन। अमिततेजस सदासमाधिअवस्थित ब्रह्मश्रेष्ट ब्रह्मपुत्र ज्ञानमूर्ति ब्रह्मानन्द को प्राप्त गुरु वसिष्ठ; योगविद्याश्रेष्ट शक्ति से अविद्या नाश कर शुद्धब्रह्मत्व प्राप्त शक्ति; परिपूर्ण परमानन्द करुणातीत चिद्रूप स्मृतिकार ब्रह्मस्वरूप पराशर; आदि तीन ऋषियों को मेरा सविनय वन्दन। स्वात्मरूप सत्यसन्धपरायण जितेन्द्रियविग्रही वेदान्तसूत्रवक्ता श्री बादरायण श्री व्यास (वेदव्यवस्थापकव्यास, पराशरपुत्र, कृष्ण द्वैपायन, महाभारतकार, पुराणकर्ता ब्रह्मसूत्रकार, योगसूत्रभाष्यकार इन नामों से भी प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मसूत्र 3-4-40 तथा 1-3-33 के भाष्य में श्री व्यास का नामान्तर बादरायण कहा गया है। श्री महाविष्णु व्यासरूप में अवतीर्णहुए "द्वापरेतु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेन्तरे। ब्रह्मा मनुमुवाचेदं बेदान्व्यस्य प्रजापते" वायुपुराण); वेदान्तदेशिक त्रिकालातीत चिन्मात्र प्रशान्त विकाररहित श्रीशुक; दोनों महामुनियों को मेरा सविनय वन्दन हो। अद्वैतार्थप्रबोधक विद्याविनयसंपन्न उपदेश वाक्यों से गूढमाया का नाशकारक श्रीमद् गौडपादाचार्य; अद्वैताचार्य जीवेशभेदरहित भवसागरनौका सत् असत् भेदों से दूर स्थित श्री गोविन्द भगवत्पाद एवं लोकसद्गुरु अद्वैतस्थापनाचार्य षण्मतस्थापनाचार्य प्रस्थानत्रयभाष्यादिकार श्री भगवत्पादाचार्य श्री शंकराचार्य इन तीनों लोक गुरुओं को मेरा सविनय वन्दन।

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमप्याचरेद्यस्तु स आचार्य इति स्मृतः॥
कृते तु भगवान् सत्यस्त्रेतायां दत्त एव च।
द्वापरे भगवान् व्यासः कलौ श्री शंकरः स्वयम्॥

शुद्ध विद्याप्रदायक ज्ञानोपदेष्टक पूर्ण चिदानन्द सकल जगत सृष्टिकर्ता परमात्मा कल्प के प्रारंभ में प्राणीवर्गों की सृष्टि के पूर्व, पुरूषार्थ साधनों को बोध करानेवाला वेद का चतुर्मुख सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को उपदेश किया। ब्रह्मा इस वेद को सर्वोत्तम प्रमाण मानकर पूर्व कल्पों के देवताओं को, मनुष्यों को, सकल जीवराशियों को तथा उनके द्वारा कृत कर्मानुसार इस कल्प में सृष्टि की। अभ्युदय निश्रेयस दो प्रकार के पुरूषार्थों को प्राप्त करने का मार्ग इस वेद द्वारा बोध किया। इस प्रकार गुरू शिष्य क्रम से इस जगत में वेद का प्रचार हुआ। इस वेद का एक अंग उपनिषद भी है जिसमें परमपुरूषार्थ मोक्ष प्राप्त करने की विधि—आत्मज्ञान का—उपदेश दिया हुआ है। इन उपदेशों को गुरूमुख से सुनकर अनुष्ठान में लाकर तथा अनुभव कर आत्मज्ञान प्राप्त किये महान् पुरुष कुछ ही लोग हरएक समय में रह सकते हैं। गुरूमुख से सामान्य वेदाध्ययन करनेवाले अनेक होते हुए भी गुरु शिष्य परम्परा में आत्मज्ञानि बहुत ही कम हैं।

नारायणोपनिषद के मंत्रों से विदित होता है कि श्रीमन्नारायण के हृदय कमल में परमशिव ताडंव करते हैं। श्रीमन्नारायण के विराट स्वरूप (सहस्रशीर्ष देवम्) का वर्णन है। इनके हृदय कमल के ऊपर भाग के दहराकाश में शिवोपासन का उल्लेख है:—"पद्मकोश प्रतीकाशं हृदयं चाप्यधोमुखम् ... ... तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मम् ... ... तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः। स ब्रह्मः सशिवः सहरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्" शिवगीता में श्रीभगवान ने श्रीरामचन्द्र से कहा कि आप स्वयं सृष्टि, स्थिति व संहार के कारण मूल हैं और इसलिये "तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्" हैं। आचार्य शङ्कर भी कहते हैं "अद्वैतमेवसत्यम्"—इसलिये हरि-विष्णु व हर शिव का भेद नहीं है। श्रीमन्नारायण और सदाशिव में मूर्ति भेद होते हुए भी स्वरूप भेद नहीं है इसलिये सदाशिव अथवा श्रीमन्नारायण दोनों का गुरु परम्परा में पाठ करते हैं।

"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्मता आपस्सप्रजापतिः॥" (यजु)
"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति आनियमं मातरिश्वानमाहुः"

ईश्वर एक ही है। वे ज्ञान स्वरूपी हैं। यह कदापि कह नहीं सकते कि ईश्वर की अज्ञानता किसी गुरू के उपदेश से निवारण हुआ है और उन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ। चूँकि वे ही स्वयं ज्ञान स्वरूपी हैं, इसलिये वे किसी के शिष्य बनकर किसी काल में नहीं रहे होंगे। वे सदा सर्वकाल गुरु ही हैं। इन्हें छोड अन्य सब गुरु किसी किसी काल में शिष्य बनकर गुरू से ज्ञान प्राप्त कर, बाद में आप स्वयं ज्ञानी गुरू बन गये। इस प्रकार गुरू परम्परा बहुत पुराकाल से प्रारंभ हुआ है। ज्ञानी गुरू श्रीशङ्कराचार्य उस परम्परा में एक हैं। यदि इस परम्परा के गुरू पीढियों पर ध्यान लगायें तो मालूम होगा कि एक गुरू ऐसे थे, जिनके कोई गुरू ही न थे, चूँकि उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के लिये दूसरों से उपदेश लेने की आवश्यकता नहीं थी। वे स्वयं ज्ञानस्वरूपी थे। श्रीपतञ्जली ऋषि ईश्वर के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "पूर्वेषामपि गुरुः।"

ईश्वर की कृपा से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। वे ही ज्ञान के भंडार भी हैं। महेश्वर को सर्वज्ञ कहते हैं —"ईशानः सर्वविद्यानाम्"। लोक परिपालनार्थ परमात्मा ईश्वर रूप में आते हैं।

आरोग्यं भास्करादिच्छेन्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेज्ज्ञानदाता महेश्वरः ॥

ईश्वर से प्राप्त आत्मज्ञान को ब्रह्मा ने अपने पुत्र वसिष्ठ को वेदान्ततत्वों का उपदेश दिया। वसिष्ठ अपने पुत्र शक्ति को, शक्ति अपने पुत्र पराशर, पराशर अपने पुत्र कृष्णद्वैपायन (वादरायण, वेदव्यास), वेदव्यास अपने पुत्र शुकब्रह्म को, यद्यपि इन सबों में पिता पुत्र का नाता था, तथापि गुरु शिष्य भाव में उपदेश देते हुए चले आये। इन सब ऋषियों का वर्णन पुराणों में विशेष रूप से उल्लेख हैं।

शुकब्रह्म का पुत्र कोई न था और वे अपने शिष्य श्री गौडपादाचार्य को उपदेश दिये। गौडपादाचार्य का पूर्वाश्रम नाम अथवा योगपट्ट नाम कुछ भी मालूम नहीं है। ये गौड देश के ब्राह्मण थे। श्रीबालकृष्णानन्द सरस्वती लिखते हैं—"गौडचरणाः कुरुक्षेत्रगत हीरावतीनदीतीरभव गौडजाति श्रेष्ठाः देशविशेषभवजातिनाम्नैव प्रसिद्धाः।" जिस प्रकार दक्षिण में द्रविडाचार्य के नाम से प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार उत्तर देश में गौडपादाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे सन्यासाश्रम लेकर बदरीकाश्रम में वास करते थे। खेद का विषय है कि नवीन काल के कुछ लोग (कुम्भकोण मठ एवं उनके अनुयायी पुरुष) कपोल कल्पना करके एक कथा प्रचलित कर रहे हैं कि गौडपादाचार्य अपने पूर्वाश्रम में पतञ्जलि के शिष्य थे और फिर आप शाप से ब्रह्मराक्षस हो गये। यह ब्रह्मराक्षस एक वृक्ष में वास करता था और आने जाने वाले राहियों को प्रश्न ('पच' शब्द का अर्थ) का उत्तर न देने पर भक्ष करता था। कुम्भकोणमठ का यह भी प्रचार है कि चन्द्रशर्मा या चन्द्रगुप्त या चन्द्राचार्य नाम का एक ब्राह्मण ने ब्रह्मराक्षस का प्रश्न का ठीक उत्तर देकर उस ब्रह्मराक्षस को शाप से विमोचन किया और येही चन्द्रशर्मा या चन्द्रगुप्त या चन्द्राचार्य पश्चात् श्रीगोविन्द भगवत्पाद भये। इस कल्पना से केवल उनका अपचार ही होता है। पतंजली चरित्र के साथ गौडपादाचार्य का सम्बन्ध लगाना केवल कल्पना एवं स्वार्थ हित के लिये प्रचार करना है। किसी एक आधुनिक रचित पुस्तक जिसमें काञ्ची का उल्लेख है, उसे प्रमाण ठहराने के लिये, यह कल्पित कथा का प्रचार किया जा रहा है। गौडपादाचार्य ने ऋषि काल के बाद वेदान्त तत्वज्ञान व शास्त्रों की व्याख्या ही प्रचलित किया है। इनके मुख्य ग्रंथ माण्डूक्य उपनिषद का कारिका है। इस उपनिषद का व्याख्यारूप से लिखा हुआ भाग "आगम प्रकरण" के नाम से, जगत मिथ्या सिद्ध किया हुआ भाग को "वैदध्यप्रकरण" के नाम से, ब्रह्म के परे और कुछ पदार्थ नहीं है इस अद्वैत सिद्धान्त का स्थापित किये हुए भाग को "अद्वैतप्रकरण" के नाम से, इन कहे हुए सिद्धान्तों के विरुद्धपक्ष सब युक्तिवाद के विरुद्ध हैं ऐसे स्थापित किये हुए भाग को "अलात शान्ति प्रकरण" के नाम से, इस प्रकार प्रकरणों को पृथक करके अपने कारिका ग्रंथ की रचना की है। आगम प्रकरण के श्लोकों को माण्डूक्य उपनिषद मूल के साथ अध्ययन करने के हेतु कुछ काल उपरान्त इन आगम प्रकरण के श्लोक उपनिषद मूल के साथ मिला दिये गये हैं और अब कुछ लोग इन श्लोकों को उपनिषद वाक्य ही समझकर अपने सिद्धान्तों को सिद्ध करने चले हैं। श्रीमध्वाचार्यजी ने (अद्वैत विरोधी) इन श्लोकों को श्रुतिवाक्य सोचकर उसका उल्टा ही अर्थ करने चले थे। उन दिनों गौडपादाचार्य के द्वारा रचित कारिका का महत्व, लोगों की गौरव बुद्धि, इतनी थी कि लोग इस कारिका को उपनिषद के समान मानने लगे थे। श्री ईश्वरकृष्ण के सांख्यकारिका का भाष्य श्रीगौडपाद ने किया है। यह भाष्य चीनी भाषा में अनुवाद किया गया है। ऐसे महान पुरुष को ब्रह्मराक्षस कहना महापाप है।

आत्मसाक्षात्कारप्राप्त सदायोगनिष्ठ में स्थित श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य श्री गौडपादाचार्य के शिष्य थे। इन्हें भगवान पतञ्जली का अवतार भी कहते हैं। चूंकि पतञ्जली आदिशेष का अवतार हैं ऐसी परम्परागत जन श्रुति कहता आया है, अतः श्री गोविन्दपादाचार्य को भी आदिशेष का अवतार ही माना गया है।

पतञ्जली अत्रि ऋषि वंश के थे, इसलिये इन्हें आत्रेय भी कहा जाता है। इनका माता का नाम गोणिका था, इसलिये इन्हें गोणिका पुत्र के नाम से भी बुलाया जाता है। यह कहा जाता है कि पतञ्जली काश्मीर के गोनार्द स्थान में जन्म लिये। पतञ्जली स्वयं अपने को "गोणिका पुत्र" एवं "गोनार्दीय" कहते हैं। "त्रिकांडशेष," श्री पुरुषोत्तम रचित, श्री काशी में प्रकाशित पुस्तक में भी पतञ्जली को "गोनार्दीय; भाष्यकार, चूर्णिकृत तथा पतञ्जली" कहा गया है। कुछ लोगों का कहना है कि पतञ्जली चिदम्बर क्षेत्र में वास करते थे। मनुष्य के त्रिकरण मन, वाक्, काय परिशुद्ध होने से ही और क्रम से भगवान की आराधना करने से ही स्वयं प्राणि भगवान का श्रेयस् प्राप्त कर सकता है। इसको ध्यान में रखकर वडी करुणा से मनुष्य कोटि के कल्यागार्थ मन शुद्धि करने के लिये "योग सूत्र", वाक् शुद्धि के लिये 'व्याकरण महाभाष्य,' शरीर शुद्धि के लिये 'वैद्यशास्त्र' (चरक ग्रंथ), ये तीनों ग्रंथों को आत्रेय संहिता भी कहते हैं जिसे भगवान पतञ्जली ने रचा है। इसके अनुसार श्री शंकरदिग्विजय चरित्रों में लिखा गया है कि जब श्री शंकर ने गुरुगोविन्द भगवत्पादजी की स्तुति की तब उन्होंने इन्हें आदिशेष और भगवान पतञ्जली के रूप में माना है। आप आत्मसाक्षात्कार प्राप्त व योगनिष्ठपुरुष थे। इनका देश, पूर्वाश्रम नाम, इनका जीवन चरित्र कुछ भी प्रमाणरूप में मालूम नहीं होता।

कुछ लोग कपोल कल्पित कथा लिखकर और अपने को सर्वोच्च सर्वज्ञ समझने वाले कुम्भकोण मठाधीश एवं आपके अनुयायी इस कल्पित कथाओं को प्रचार कर इनके नाम का बडा अपचार कर रहे हैं। कल्पना बुद्धि की सीमा भी होती है। पर ये लोग कल्पना जगत के सीमातीत व्यक्ति हैं। इनका कहना है कि गोविन्द भगवत्पाद अपने पूर्वाश्रम में रहकर चार वर्णों की चार स्त्रियों से विवाह किया। आपका पूर्वाश्रम नाम भिन्न पुस्तकों में भिन्न भिन्न नाम भी दिये गये हैं यथा—चन्द्राचार्य, चन्द्रशर्मा, चन्द्रगुप्त, चन्द्र आदि। उनकी ऐसी कल्पित कथा और भी अपचार युक्त होने के कारण लिखने में रुकावट पैदा करती है। एक साधारण मनुष्य को भी मालूम है कि इन कथाओं का कोई प्रमाण या आधार नहीं है। कर्णश्रुति द्वारा सुना हुआ गोविन्दभट्ट या चन्द्रशर्मा एवं उनके चार पुत्र की कथा तथा विक्रमादित्य की कथा को जिसका सम्बन्ध श्री गोविन्दभगवत्पाद से बिल्कुल नही है, उसी कथा को अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये यह दुष्प्रचार आरम्भ हुआ है। श्री गोविन्द भगवत्पाद जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किये हैं, जो सदा योगनिष्ठ में स्थित हैं, उनके योग्य में कपोल कल्पित कथाएं कुछ भी अच्छी नहीं भाति।

श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्यजी के शिष्य श्रीशंकर भगवत्पादाचार्यजी हुए। श्री शंकरभगवत्पादाचार्यजी अद्वैत तत्वों का प्रचार करके इस लोक का उद्धार किया। ये ही महानुभाव हमारे चरित्र ग्रन्थ के मुख्य नायक हैं।

आचार्य शङ्कर के चरित्र की विशिष्ट समीक्षा

आचार्य शङ्कर का नाम स्मरण करते ही आपके जीवन चरित्र द्वारा भारत की एकता, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, कर्म, ब्रह्मविद्या, मोक्ष, ज्ञान, बुद्धि आदि सभी के आदर्श का चित्र सामने खिंच जाता है। मनु ने धर्म का दस लक्षण बतलाया है—"धृतिक्षमादमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः धीर्विद्यासत्यमक्रोधं दशकं धर्म लक्षणम्"। पर स्वयं

धर्म आचार्य शङ्कर के रूप में इन दस लक्षणों के भन्डार सहित इस पुण्यमयी भारत में लगभग आज से 1275 वर्ष पूर्व आये। मानव जीवन का सब आदर्श गुणों से भरा यह व्यक्ति हैं। पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द परमशिव स्वयं शङ्कराचार्य रूप को धारण कर जगत के समस्त जनों का उद्धार निमित्त अनेक सारगर्भित उपदेश किये हैं। न केवल आप अद्वैतियों के गुरू हैं पर सारा संसार के ज्ञान ज्योति गुरू हैं। गरीब या अमीर, विद्वान या अनपढ, सबल या दुर्बल, ब्राह्मण या अब्राह्मण, कपटी या स्वच्छ हृदयी, बालक या युवा या वृद्ध, स्त्री या पुरुष, जो कोई सम्पर्क आपसे करते थे उन सबों के साथ आपने अपना सम्बन्ध अच्छी तरह निभाया। आचार्य का जीवन उनके ग्रंथों पर स्वयं भाष्यभूत हैं। आचार्य स्वयं उस स्थान पर पहुंच चुके थे जहां स्वार्थ का कोई भी चिन्ह नहीं रहता और सब परमार्थ ही था। आपका जीवन परमार्थ साधन का दीर्घ व्यापिनी परम्परा था। आप न केवल आदर्शवादी थे पर यथार्थवादी भी थे। आचार्य शङ्कर का जीवन चरित्र एक ब्रह्मज्ञान का जीवन था—लोकसंग्रह का जीवन था—ज्ञान व कर्म का एक समन्वय था। आप एक ब्रह्मनिष्ठ होते हुए, मायामोह से परे होते हुए, फिर भी आपने लोकसंग्रह के लिये घूमघूम कर दूसरों का अज्ञान दूर कर और ज्ञान का प्रचार कर सबों को यह सिखाया 'अपने को पहचानने सीखो'। आपके लिये आत्मसंग्रह व लोकसंग्रह या आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान एक ही है। आचार्यशङ्कर लोकसंग्रह के अवतार थे। अज्ञानी अपने काम में मोह से आसक्त हो जाता है और ज्ञानी आसक्ति से दूर रहता है। इसीलिये तो आप अपने जीवन में आत्मचिन्तन के साथ साथ शास्त्रार्थ झगडे आदि के झमेले में भी पडे ताकि भारतदेश में पुनः शान्ति फैल जाय और जन्म का ध्येय को हर एक मानव ज्ञान द्वारा प्राप्त कर सके। अद्वैत वेदान्त व्यावहारिक धर्म भी है जिसपर विभिन्न मतवाले भी अपनी अपनी आस्था रख सकते हैं। इसीलिये तो आप संसार के ज्ञान ज्योति गुरू हैं। आप ज्ञान की महिमा के प्रतिपादक होने पर भी उपासना के परम उपासक थे। वर्णाश्रमधर्म की मर्य्यादा को अक्षुण्ण रखने में आप सफल रहे। आपने जिस वृक्ष का बीजारोपण किया था सो अच्छी तरह फूलाफला।

भारत में वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा, वेदों के प्रति श्रद्धा, ज्ञान के प्रति आदर, सारे भारत को आध्यात्मिक सूत्र से बांध करके संघटित कर एकता का रूप देना, इन सब का श्रेय आचार्य शङ्कर को ही है। न केवल आप एक प्रौढ दार्शनिक, विरक्त सन्यासी, व्यवहार–कुशल पण्डित, श्रेष्ठ कवि, सिद्ध पुरुष थे पर आपके जीवन चरित्र से आपके व्यक्तित्व का, भव्यरूप का, अलौकिक पाण्डित्य का, जटिल कठिन विषयों को सरल सरस सुबोध भाषा व काव्य प्रतिभा द्वारा सरल और सुगम बना देने की शक्ति का, उदात्त चरित्र का, माता के प्रति प्रेम व भक्ति का, गुरुभक्ति का, सबों के साथ सम्बन्ध निभाने का, शिष्यों पर प्रेम अनुकम्पा का, भक्तों पर दया का, विपक्षीदलों के प्रति क्षमा का, साधारण जन के प्रति सहानुभूति का, भू प्रतिष्ठा द्वारा सारे भारत की एकता का, भारत के विभिन्न जनवर्गों की एकता का, दुखों को देखकर द्रवित हो जाने का, लोक कल्याण के लिये अपना शरीर को त्यागने का, तीव्र मेधा शक्ति एवं मृदुल हृदय का सामञ्जस्य का, धर्म प्रतिष्ठा का, जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उन्हीं का व्यवहार दृष्ट्या पालन करने का, पुण्यक्षेत्रों को अपने प्रभाव से प्रभावित कर उसकी महत्ता फिर से जाग्रत कर अवैदिकों के चंगुल से मुक्त कराने का, ध्येय रहित भटकते जीवन यात्रा को ध्येय से जगा देने का, सन्यासियों को संघ बद्ध करने का, इन विरक्तों को एकत्र कर एक संघ रूप में बांध कर वैदिकधर्म के भविष्य कल्याण के लिये महान कार्य संपन्न करने का, चतुर्धामों में चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा कर और उसे महानुशासन से बद्धकर अपने से प्रचारित मत को अक्षुण्ण रखने का, दूरदर्शीयुक्त प्रभावशाली संस्थाओं के निर्माण व प्रतिष्ठा करने की निपुणता एवं धर्मशासन करने की कुशलता व योग्यता का, आध्यात्मिकता के निदर्शन से संस्कृत साहित्य में एक देदिप्यमान रत्न बनने का, आदि प्रकाश होता है।

आचार्य शङ्कर पितृ सौख्य से वञ्चित थे पर माता की एकमात्र सन्तान होने से माता के लिये प्रेम व भक्ति से संपन्न थे। सन्यासाश्रम लेने पर भी माता के प्रति विरोध या तिरस्कार न दिखाया। माता की आज्ञा पाकर ही आप सन्यासी भये यद्यपि स्वयं विरक्त होने से स्वयं ही सन्यासाश्रम धारण कर सकते थे। माता के पुत्र वात्सल्य से माता ने यह सोचा कि पुत्र को कष्ट होगा यदि वह बालक आश्रम ले ले और इस भावना को ध्यान में रखकर आचार्य शङ्कर ने माता को धैर्य्य व विश्वास दिलाने के लिये आपने कहा "भिक्षाप्रदा जनन्यः पितरोगुरुवः कुमारकाः शिष्याः।" आचार्य शङ्कर अपनी माता को किसी प्रकार के कष्ट में देखना नहीं चाहते थे। कडी धूप एवं माता का दुर्बल शरीर ने नदी स्नान करने में कष्ट देता था इसीलिये आप नदी को घर समीप लाये ताकि माता का कष्ट व दुःख सदा के लिये निवारण हो। माता की मृत्यु के समय पर उपस्थित होने की प्रतिज्ञा का पालन भी किया था क्योंकि माता की आज्ञा का उल्लघंन करना आपको स्वीकृत न था। इस समय माता पुत्र का मिलन एवं पुत्र का उपदेश एक अविस्मरणीय घटना है जो हर एक पुरुष के हृदय को अपने माता के प्रति द्रवित कर देता है। जातभाइयों का तिरस्कार एवं अवहेलना से थोडा भी पराङ्मुख न होकर अपनी माता का दाह संस्कार किया। उपनिषद कहता है "एष आदेशः" "मातृदेवो भव"। भारतवासियों के लिये मातृभक्ति के यह एक उच्च कोटि का उदारण है।

आचार्य शंकर एक योग्य गुरु की खोज में भटकते गये और जब आपको योग्य गुरु मिला तो शिक्षा ग्रहण भी खूब किया। आपने अपनी गुरुभक्ति का प्रदर्शन किया जब आपने गुरु की स्तुति की और जब आपने नर्मदा नदी के बढतेहुए जल को रोका था ताकि गुरु को कष्ट व हानि न पहुंचे। त्रोटकाचार्य मन्दबुद्धिवाले थे। श्री त्रोटकाचार्य के सहपाठियों के रागद्वेश अहंकार को तोडने एवं श्री त्रोटकाचार्य शिष्य के अनन्य भक्ति पर द्रवित होकर उनको अलौकिक शक्ति से विद्याओं का संक्रमण कर दिया। आचार्य के हृदय में शिष्यों के लिये अनुकम्पा थी। श्रीसनन्दनाचार्य के अनन्य गुरुभक्ति देखकर प्रेम से आलिङ्गन कर उनको पद्मपादाचार्य का नाम दिया था।

आचार्य शङ्कर दुःखी को देखकर स्वयं द्रवित हो जाते थे और लोक कल्याण के लिये देश के कोने कोने सब तरह के कष्टों को झेलते हुऐ परिभ्रमण करके ज्ञान मार्ग का प्रचार किया था और आप अपना शरीर को इस पुण्य कार्य के लिये त्याग कर दिया था। दुःख से दलित दरिद्र ब्राह्मणी की दशा देखकर शङ्कर के हृदय में सहानुभूति का स्रोत लहर रूप में उमड पडा और 'कनकलक्ष्मीस्तव' द्वारा उस दरिद्र ब्राह्मणी को धन संपन्न कराया था। आचार्य स्वयं हिमालय की चोटी पहुँचकर भी आप साधारण जन के प्रति सहानुभूति दिखाई। घाटी व समस्थल के मानव ध्येय रहित भटक रहे थे और जीवन यात्रा उनके लिये बोझ होगया था और उन्हें अपना हाथ देकर मार्ग बतलाया है।

आपकी तीव्र मेधा शक्ति ने पद्मपाद एवं राजा राजशेखर द्वारा नष्ट हुए ग्रन्थों को पुनरुद्धार किया था। शास्त्रीय विचार से तर्कन्याय पक्ष का अवलम्बन कर आचार्य ने विरुद्ध मतवादों का खन्डन कर दिया था। विपक्षीदलों के प्रति आपकी लेखनी प्रहार सौम्य सरस व प्रौड था। आपके भाष्य में कहीं भी कटु वचन नहीं पाया जाता। विज्ञ लोगों के लिये भाष्य लिखा। साधारण लोगों के लिये प्रकरण ग्रन्थ रचा था। सिद्धान्तों के प्रचार के लिये भाष्य ग्रन्थों पर वृत्ति तथा वार्तिक लिखने के लिये विद्वानों को प्रोत्साहन किया। आज जो विपुल ग्रंथ दीखता है उसका प्रोत्साहन आचार्य ग्रन्थों से ही प्रवाहित हो रहा है। अन्य सम्प्रदायों में भी प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखने की प्रवृत्ति आचार्य से ही मिली। आपने न केवल साहित्य का जन्म दिया पर ऐसा प्रबन्ध भी किया कि सारा देश प्रचारित धर्म का मर्म समझे। अद्वैत तत्त्व श्रेष्ठ बुद्धि की उपज है। आचार्य ने सुन्दर, सरल, सरस तथा सुबोध शब्दों में अभिव्यक्त किया है। आपकी भाषा रोचक, बोधगम्य तथा प्रौड है।

आचार्य ने अपने विचारों से मानव विचारों की धारा पलट दी थी और आपका गणना संसार दार्शनिकों में किया जाता है। आपकी शैली गम्भीर, प्रसन्न व व्यक्तित्व है। पाठक को पता नहीं चलता कि वह कठिन विषय की विवेचना पढ रहा है। आपके सब ग्रंथ ज्ञान व्यापक हैं। आपने अपने रचित ग्रंथों में कहीं यह नहीं कहा "मैं कहता हूं अतः तुम को इसे मानना ही होगा"। ऐसा कोई बाध्यवचन नहीं है। आपका रचित भाष्य तर्क व न्याय युक्त है और हर तरह के सन्देहों का उत्तर भी पाया जाता है। आपके भाष्य पढने पर मनः शान्ति एवं तृप्ती उत्पन्न होती है। चूंकि आपने अन्य मतों का खन्डन किया है इसलिये मतों की जानकारी आपको विशेष था। गम्भीर व विशाल अध्ययन बिना कोई व्यक्ति इतना खण्डन नहीं कर सकता है। विचारपूर्वक अध्ययन, प्रवेशपूर्वक मनन तथा अनुशीलन आपके मार्ग थे। आपने बौद्ध, जैन, पाञ्चरात्र, पाशुपत, सांख्य, न्याय,. वैशेषिक, मीमांसा शास्त्रों का अध्ययन किया था। आपने दिङ्नाग्, धर्मकीर्ति, कुमारिल भट्ट के ग्रंथों का परिशीलन भी किया था। प्रकरण ग्रंथों में आपके विस्तृत तथा गम्भीर विचार का प्रकाश होता है। छोटे छोटे छन्दों में परिचित दृष्टान्तों की सहायता से पान्डित्यपूर्ण विषय बिना कष्ट के ही बुद्धिगम्य हो जाते हैं। अपने ग्रंथों में आपसे दिये हुए परिचित साधारण दृष्टान्त जो सर्वजानकारी है उससे यह प्रतीत होता है कि आपने इस लोक का अध्ययन सूक्ष्म दृष्टी से किया है और आप एक बडे अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आपके लिये भक्ति केवल सगुण ब्रह्म की उपलब्धि कराने का साधन है और इससे उच्च आदर्श पर पहुंच नहीं सकते। शङ्कर की कविता काव्य-सम्पत्ति की दृष्टी से, शब्द की सुन्दरता तथा यथोचित उपयोगिता, अर्थ की अभिरामता, कल्पना की कमनीयता, रस की अभिव्यक्ति आदि बहुत सुंदर हैं। साहित्य जगत की मनोरम वस्तु है जिसे पढने कर मस्ती छा जाती है।

भारतवर्ष में इस समय जैसा वातावरन छा रहा है उससे हमे प्रतिदिन भगवान् की याद आ रही है। आचार्य शङ्कर के पुनः आविर्भूत होने की प्रबल आकांक्षा हृदय में उत्थित हो रही है। 1275 वर्ष पूर्व आचार्य शङ्कर नवयुग के विधायक और धर्म की सनातन धारा के संरक्षक थे। आओ भगवन्! अपनी प्यारी क्रीडा भूमि पर एक बार पुनः दयादृष्टी दो। आज भारतमाता आपके ही जैसे एक दिव्य तेजःपुंज लाडले के लिये आंसू बहा रही है, तरस रही है।

गायन्तिदेवा : किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥ (विष्णु पुराण 2-3-24)

मेरे एक माननीय वृद्ध तथा विज्ञ मित्र ने इस पुस्तक के विषय में परामर्श करते समय आपने राय दी कि मैं शङ्कराचार्य की अलौकिक, अद्भुत, अप्राकृतिक घटनाओं का उल्लेख न करें। सम्भवतः कुछ पाठकगण भी ऐसा ही विचार रखते होंगे। इस विषय पर मैं अपना अभिप्राय देता हूँ। एक पक्ष ऐतिहासिक आलोचकों का है जो ऐसी असम्भव घटनाओं को चरित्र वर्णन से निकाल देना चाहते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए महापुरुष केवल मानव उचित जीवन का ही जीवनवृत्त होंगे और ऐसे असंभव घटनाओं द्वारा उन महापुरुषों के जीवन चरित्र पर धब्बा लगता है और इससे उनसे जो यथार्थ धटनायें घटी हैं वे भी अनादरणीय हो जाती हैं। दूसरा पक्ष है जो इन सब घटनाओं के समावेश के पक्षपाती हैं। तीसरा पक्ष है जो केवल उन उन घटनाओं पर विश्वास करते हैं जिन्हें वे स्वयं अनुभव किये हों या किसी का अनुभव सुने हों या देखे हों।

इनके लिये विज्ञान शास्त्र ही प्रमाण है। धार्मिक संसार के अनेक आदरणीय विभूतियों के जीवन चरित्र के विषय में ऐसा प्रश्न सदा खडा हुआ है। चाहे वे विभूतियां ईसाई धर्म, मुहम्मद धर्म, ज़ोराष्ट्रीय धर्म, कनफ्युषस धर्म, लामा मत, बौद्ध, जैन, अथवा वैदिक धर्म के क्यों न हों, यह प्रश्न सब से पूछा गया है। पाश्चात्य कुछ लेखक इन घटनाओं को बिल्कुल देना नहीं चाहते हैं। सम्भवतः वे इन विभूतियों को साधारण मनुष्य के जीवन की सतह पर लाने के पक्षपाती हैं। वे इतिहास-विरुद्ध विषयों को मानते नहीं। पर वे अच्छी तरह जानते हैं कि जो कुछ विज्ञान एवं इतिहास हमने अध्ययन किया है वे सब अपूर्ण हैं और अनेक विषय उनकी बुद्धि से परे हैं। इतना तो अवश्य मानना पडेगा कि कुछ भक्त अपने अनन्य भक्ति द्वारा समय के प्रवाह के साथ साथ ऐसे अलौकिक घटनाओं को भक्ति भावना से कल्पित कर अलङ्कार काव्य द्वारा प्रगट कर चरित्र में जोडते हुए चले आये हैं। कुछ वर्णित घटनायें जिस में अन्धविश्वासी भक्तों का भी काम है।

प्रश्न उठता है कि क्या ये घटनायें भौतिक जगत में घटित नहीं हो सकती? घटनाओं को अप्राकृतिक, विलक्षण, अस्वाभाविक तथा लोक रीति से विभिन्न कहते हैं। प्रकृति का साम्राज्य विशाल है जिसे मानव ने अभी तक अध्ययन नहीं कर पाया। आज की अलौकिक घटना कल ही लोकानुगत बन जाती है। रामायण के पुष्प विमान का वर्णन या युद्ध में अनेकानेक शस्त्रों का वर्णन या भू प्रदक्षिणा का वर्णन या अन्य मन्डलों की यात्रा वर्णन सौ साल पूर्व में कोई भी प्राणी विश्वास नहीं करता था। पर अब हवाई जहाज जो एक घंटे में प्रायः 1000 मील उडते देखकर, आटम् बम्ब का घोर नाश देखकर, राकेट की भू प्रदक्षिणा देखकर, इस अलौकिक घटना को सत्य मानकर अब इसे लोकानुगत बना ली है। जब तक मानव प्रकृति का संपूर्ण अध्ययन न कर सके तब तक वे इन घटनाओं को अप्राकृतिक कह कर मिथ्या नहीं कह सकते। जगत नानारूपात्मक है और मानव ने जो कुछ अभी तक सीखा है वह तृणमात्र ही है। प्रकृति के नियमों के अज्ञान के कारण ही हम सब उसे विचित्र व अद्भुत कहते हैं। इन्हीं अस्वाभाविक घटनाओं द्वारा ही इन पुरुषों को विभूति मानते हैं, नहीं तो उनकी भी गणना 'ज्ञायस्व-म्रियस्व' की कोटि में किया जाता। योग बल से मानव क्या नहीं कर सकता? इस संसार में अनेक घटनायें घटी हैं—अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रान्स, तिब्बत, चीन आदि देशों में—जिसे आज भी वैज्ञानिक व ऐतिहासिक लोग देखकर अचम्भे में हैं। इतिहास तो चाहता है कि हम उन घटनाओं में विश्वास रखें जिनका प्रमाण उपस्थित हैं। हमारे देश की अद्वितीय संस्कृति, प्रथा, विद्या, अलौकिक योग साधन, आदि का प्रमाणयुक्त पुस्तकें जब इन विषयों की पुष्टी करती है तो क्यों नहीं इन घटनाओं का वर्णन किया जाय? इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रकृति में विद्यमान है, केवल हम सब देख या अनुभव नहीं करते और हम लोगों को इस विषय की अनजानता है। क्या अपनी अज्ञानता द्वारा इन अलौकिक घटनाओं को विश्वास न करें?



अध्याय—2

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे- युगे॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इस पुण्यमयी अपूर्व कर्मज्ञानमयी भारतवर्ष पर बसनेवाली सनातनधर्मावलम्बी जनता में कौन ऐसा अभागा व्यक्ति होगा जो महाशक्ति सम्पन्न, दिव्य तेजः पुंज, शंकराम्शसंभूत, एवं एक दिव्य विभूति जो श्री भगवान श्रीआद्यशंकराचार्यजी को नहीं जानता होगा या न सुना होगा। उनका आविर्भाव काल लगभग एक सहस्र दो सौ वर्षों से कुछ अधिक हुआ है फिर भी उनकी उज्वल कीर्ति इस भारत भूमि पर उसी अक्षुण्ण रूप में आज भी स्थित है। भगवद्गीता के कथनानुसार श्री भगवान इस मृत्युलोक की अलौकिक परिस्थिति को उस समय अच्छी तरह से समझकर स्वयं अपने आविर्भाव द्वारा लोक रक्षा व शान्ति व सुख इत्यादियों की स्थापना करके अनेकानेक महान कार्यों को स्वयं शरीर, मन, वाक द्वारा असाध्य को साध्य करके दिखानेवाले मर्य्यादा पुरुषोत्तम देव पुरुष ही का महान अवतार कहलाता है।

यद्यन् विभूतिमन् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजों ऽशसम्भवम्॥

इस भगवदुक्ति के प्रमाण से प्रत्येक महात्मा जन कम या अधिक प्रमाण में ईश्वरांश होता है। समाज में धर्मिक परिवर्तन करने के लिये श्रीशंकर का अवतार हुआ था। इन्हें अवतार पुरुष माना जाता है। इस युग के पूर्व श्रीरामचन्द्र व श्रीकृष्ण आदियों का अवतार हुआ। ये अवतारें प्रधानतः प्रवृत्ति धर्ममार्ग को स्थापना करने के हेतु व स्वयं अनुष्ठान करके लोक कल्याण के लिये क्षत्रिय कुल में आविर्भूत होकर स्वयं अपने द्वारा कृत जगत् लीला दिखाये। निवृत्ति धर्ममार्ग के सन्यासधर्म व सन्यासाश्रम के अनुष्ठान (श्रवण, मनन, निधिध्यासन) आदियों को व उनसे प्राप्त होनेवाले ज्ञान को व आत्मनिष्ठा के स्वरूप को व ज्ञान मार्ग के तत्त्वों को उपदेश करने तथा स्वयं ब्रह्मचर्य से सन्यास लेकर वेदान्त तत्त्वों को सुलभ रीति से बोध कराने के लिये भगवान शङ्कर स्वयं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर व स्वयं अनुष्ठान करके अपनी अलौकिक लीला को प्रकट किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण एवं श्रीरामचन्द्र के अवतार की पूर्ति श्रीशङ्करजी ने किया। यह कहा जाता है कि सर्व पूर्वाचार्यों की विद्वत्ता आचार्य शङ्कर में संकलित रूप में पूर्ण था। ब्रह्मदेव, गार्ग्य, बृहस्पति, जैमिनि, व्यास ये सब वेदों के एक एक अंगों के प्रवर्तक थे पर आचार्य शङ्कर में सम्पूर्ण अंगों का अवगत था। कालटी के पुण्य नदी "पूर्णा" तट पर आचार्य शङ्कर का आविर्भाव होने से सम्भवतः आपके अवतार का पूर्णत्व का यह द्योतक हो। शिवरहस्य, लिंग, कूर्म्म, वायु, सौर, भविष्योत्तर पुराणों में उनके अवतार का उल्लेख पाये जाने का कथा सुनाया जाता है।

केरलेषु तदा विप्रञ्जनयामि महेश्वरी।
केरले शशलग्रामे विप्रपत्नयां मदंशज :
भविष्यति महादेवी शंकराख्यो द्विजोत्तम :॥ (शिवरहस्य) (1)

निन्दन्ति वेद विद्यांच द्विजा : कर्माणि वै कलौ।
कलौ रुद्रो महादेव : शंकरो नीललोहित : ॥
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मश्च विकृता कृति : ।
एतं विप्रानिषेवन्ते एनकेनापि शंकरम् ॥
कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयन्ति परमंपदम् ॥ (लिंग पुराण) (2)

कलौरुद्रो महादेवो लोकानामीश्वर : पर : तदेव साध्येन्नृणां देवानां च दैवतम्।
करिष्यत्यवतारं स्वं शंकरोनीललोहित : श्रौतस्मार्त प्रतिष्ठार्थे भक्तानां हितकाम्यया॥
उपदेश्यति तज्ज्ञानं शिष्यानां ब्रह्मसम्मितम् सर्ववेदान्त सारंहि धर्मान् वेदान्त दर्शनात्।
येतं प्रीत्या निसेवन्ते येन केनोपचारत : विजित्य कलिज्ञान् दोषान् यान्तिते परमंपदम् ॥ (कूर्म पुराण) (3)

चतुर्भिस्सहशिष्यैस्तु शंकरो ऽवतरिष्यति ॥ (वायु पुराण) (4)

कल्यादौ द्विसहस्रान्ते लोकानुग्रह काम्यया।
चतुर्भिस्सहशिष्यैस्तु शंकरोंऽवतरिष्यति ॥ (भविष्योत्तर पुराण) (5)

चतुर्भि : सहशिष्यैश्च शंकरोऽवतरिष्यति।
व्याकुर्वन् व्यास सूत्राणि श्रुतेरर्थं यथोचितम्।
स एवार्थ : श्रुतेग्राह्यि शंकर : सवितानन : ॥ (सौर पुराण) (6)

व्याकुर्वन्व्याससूत्रार्थं श्रुतेरर्थं यथोचिवान्। श्रुतेन्र्याय्यः स एवार्थः शंकरः सवितानन: ॥ (शिवपुराण) (7)

रुद्र भाष्य में इस मंत्र का "नम : कपर्दिनेचव्युक्तकेशाय" का भाष्य लिखते समय पुराण वचन
"चतुर्भिस्सहशिष्यैस्तुशङ्करो ऽवतरिष्यति" को उप प्रमाण रीति से उल्लेख किया है। (8)

जिस समय भारतवर्ष बौद्ध, जैन, शाक्त (वामाचार), गाणपत्य, पाञ्चरात्र, पाशुपत, कापालिक आदि सम्प्रदायों से प्राय : पूर्ण अधिकृत था ; राजा, प्रजा, अमीर, दरिद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अधिकतर सभी बौद्ध मतानुयायी बन गये थे ; कापालिक एवं अन्यान्य वेद विरोधियों के पाखंड व प्रचार अनाचार पूर्ण मतों का प्राधान्य था ; वेद, धर्म, अवैदिकता के पंक में धंसा जा रहा था तथा अनाचार एवं अकर्मण्यता अधिक मात्रा में फैल गया था, उस समय भगवान शंकर स्वयं इस मृत्यु लोक में केरल प्रदेश के कालटी नामक ग्राम में श्री शिवगुरु सतीशील आर्याम्बा के घर में अपनी प्यारी क्रीडा इस भारत भूमि पर दिखाने व अधर्म, अवैदिक, पाखंड प्रधान अनाचार पूर्ण मतों का नाश करने व जीर्ण हुए मतों को उत्थान करने व वैदिक धर्म की विजय वैजयन्ती फहराने व षण्मत् स्थापित करने व सन्यास धर्म एवं उस धर्म के अनुष्ठानों की विधि (श्रवण, मनन इत्यादि) और उनसे उत्पन्न होनेवाली ज्ञान आत्मनिष्ठा इत्यादियों को साधारण लोगों को समझाने व स्वयं अनुष्ठान करके कार्यकला को दिखाने व अविद्या को नाश करके सत्सरूपी ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा करने और शुद्धाद्वैत मत का पुन : प्रचार करने के लिये जन्म लिया। धार्मिकता की ज्योति को इन्होंने बुझाने से बचाया और धर्म के इतिहास में एक नया युग का प्रादुर्भाव किया और वेद, उपनिष्द, गीता आदि का शंखनाद सर्वत्र होने लगा।

शाक्यै : पाशुपतैरपि क्षपणकै : कापालिकैर्वैष्णवै
रप्यन्यैरखिलै : खलै : खलुखिलं दुर्वादिभि वैदिकम् ॥ —(माधवीय)

दुष्टाचार विनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।
स एव शंकराचार्यः साक्षात् कैवल्य नायकः॥ —(शिला व ताम्र लेखन द्वारा)

बत्तीस वर्ष में कन्याकुमारि से हिमाचलपर्यन्त दिग्विजय करके चिरस्थायी धर्म की संस्थापना करना एक अलौकिक ईश्वरांश पुरुष का ही कार्य हो सकता है, इसमें कोई शंका नहीं है।

जैनधर्म व्यापक्ता में बौद्ध धर्म से कम ही रहा है पर वह प्रभावशाली अधिक था और इसका उदय बौद्ध-धर्म से पूर्व ही हुआ है। मौर्यों के समय में (विक्रम पूर्व चतुर्थ शतक) बौद्ध धर्म राजाओं का आश्रय प्राप्त किया और महाराज अशोक ने इसका खूब प्रचार भी किया। सुंगवंश पुष्यमित्र (ब्राह्मणवंशी-द्वितीय शतक) ने वैदिक धर्म के गौरव को जाग्रत करने के लिये अनेक कार्य किये। उनहोंने अश्वमेध यज्ञ का विधान भी किया। कुषाणों के काल (विक्रम की प्रथम तथा द्वितीय शताद्वी) में बौद्ध धर्म की उन्नति फिर से हुई। यह कार्य सुंगों के कतिपय शताद्वियों के पीछे ही हुआ। शकवंशीय राजा कनिष्क जो भारत के बाहर से आया हुआ व्यक्ति था उसने बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। इसके बाद गुप्तकाल के नरेशों ने वैदिक धर्म की स्थापना कार्य में सहायता की। ऐतिहासिक लोग कहते हैं कि पुराणों की नवीन संस्करण एवं अनेक स्मृतियों की रचना इसी गुप्तकाल में हुई थी। इस पर भी बौद्ध-धर्म का प्रचार बराबर जारी थी। बौद्ध विद्वानों एवं भिक्षुओं ने इस धर्म को जीवित रक्खा था। उस समय के राजा सब समदर्शभाव रखनेवाले थे और उन्होंने किसी धर्म पर कुठाराघात नहीं किये। इसलिये बौद्धों का धर्म प्रचार बराबर जारी रही। गुप्त तथा वर्धन युग में वैदिक, बौद्ध, जैन, तत्त्वज्ञानियों का संघर्ष बराबर जारी रहा था। इसी युग में नागार्जुन, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति सब ब्राह्मण नैयायिकों के सिद्धान्तों का खण्डन किया था। वात्स्यायन, उद्योतकर, प्रशस्तपाद ये तीन तार्किक, बौद्ध तार्किकों का खण्डन किये थे। वैदिक कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड की अवहेलना बौद्धों ने की और इस समय तक वेदार्थ की रक्षा का कोई उद्योग नहीं हुआ था और इस अवहेलना से बचानेवाला कोई न था। समन्तभद्र और सिद्धसेन दिवाकर की रचनाओं ने जैन न्याय को प्रतिष्ठित शास्त्र बना दिया था। यह समय ऐसा था कि श्रुति धर्म के क्रिया कलापों पर बौद्ध जैन का आक्रमण बराबर जारी थी। श्रुति के कर्मकान्ड में जो विरोध गोचर होते थे उसके परिहार की आवश्यकता थी। इन सिद्धान्तों को तर्क के मार्ग से सिद्ध करने की पूर्ण आवश्यकता हुई। इस काम को श्री कुमारिल भट्ट ने किया और वेद का प्रामाण्य सिद्ध किया। वैदिक कर्मकान्ड को उपादेय व आदरणीय प्रमाणित किया। पुनः श्रीशंकर ने ज्ञानकान्ड की महत्ता बढाई। उन्होंने अवैदिक दर्शन तथा द्वैतवादियों के मतों का खण्डन करके उपनिषदों के द्वारा आध्यात्मिक अद्वैत तत्वों का प्रतिपादन किया। जब लेखनी की लडाई थी (वात्स्यायन और वसुबन्धु के सिद्धान्तों ने दिङ्नाग के न्यायमतों का खन्डन, उद्योतकर और दिङ्नाग के बीच में, उद्योतकर तथा कुमारिल भट्ट का खण्डन धर्मकीर्ति के सिद्धान्तों पर) ऐसे समय में श्री शंकर ने अपने आक्षेपों से प्रहार किया। इसे बौद्ध-धर्म सह न सका और धीरे धीरे बौद्ध-धर्म तिब्बत्, चीन, जापान, श्याम आदि देशों में फैलने लगा।

इस संघर्ष के बीच में (7 वीं शताब्दि में) अनेक अवैदिक मत भी विस्तार से फैले हुए थे। यह तान्त्रिक का युग था। मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन पांच पदार्थों का वे उपयोग करते थे। श्रीशङ्कर ने इनके अवैदिक बाह्य रूपों को तिरस्कार करके वे इनके आध्यात्मिक अर्थ का बोध किया। पांचरात्र, पाशुपत, कापालिक, शाक्त, गाणपत्य इत्यादि अवैदिक मतों का भी प्रचार विशेष था? बाणभट्ट के "हर्षचरित्र" से मालूम पडता है कि भागवत्, कापिल, जैन, चार्वाक, कणाद, पौराणीक, ऐश्वर, कारणिक, कारन्धमिन, बौद्ध, तांत्रिक, शाक्त, पांचरात्र, पाशुपत इत्यादि मत-मतान्तरों की विकृतियों से देश पीडित था।

वैष्णव आगमों को पांचरात्र कहते हैं। नारद पाञ्चरात्र के अनुसार "रात्र" का अर्थ 'ज्ञान' होता है। परमतत्व, मुक्ति, भुक्ति, योग, संसार इन पांच विषयों का निरूपण करने से पाञ्चरात्र कहलाते हैं। इसका दूसरा अर्थ "भागवत" भी है। महाभारत के नारायणीय आख्याग में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन है। कहा जाता है कि एक सौ आठ संहितायें भी हैं। इन संहिताओं के विषय चार होते हैं जो ज्ञान, योग, क्रिया, चर्चा हैं और इसे चतुर्व्यूह भी कहते हैं। पाञ्चरात्र मत जीव ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करता है। परन्तु विवर्तवाद उसे नहीं मानता है। उसकी दृष्टि में परिणामवाद ही सत्य है। श्रीरामानुज का विशिष्टाद्वैत मत इसी आगम पर अवलम्बित है।

पाशुपत मत के संस्थापक का नाम नकुलीष था। इनका जन्म गुजरात के कारवन स्थान में हुआ था। राजपुताना व गुजरात देश में नकुलीष की मूर्तियां बहुत मिलती हैं। कहा जाता है कि नकुलीश का समय 105 ई० के आसपास था। श्रीशङ्कर के अठारह अवतारों में आद्य अवतार इन्हें मानते हैं। इस मत के अनुसार पांच पदार्थ हैं:—कार्य्य, कारण, योग, विधि, दु:खान्त। पर ये पांच तत्व अति ही प्राचीन हैं।

कापालिक मत उग्रशैव तान्त्रिक संप्रदाय था। इस मत के लोग माला अलंकार, कुंडल, चूडामणि, भस्म, यज्ञोपवीत, धारण करते थे। क्रकंच के नेतृत्व में कापालिक घूमघूम कर दीक्षा देते थे। कहा जाता है कि श्रीशैल पर्वत कापालिकों का मुख्य स्थान था। शिव पुराण में इन्हें "महाव्रतधर" कहा गया है। ये लोग मद्य मांस का प्रयोग करते थे। घोर तपस्या करते थे। श्मशान का वास, हड्डियों की माला, भस्मलेपन इत्यादि अघोर काम करते थे। भवभूति ने "मालतीमाधव" में, राजशेखर ने "कर्पूर मंजरी" में, इन कापालिकों का वर्णन किया है। कहा जाता है कि कर्णाटक देश में इनकी प्रभुता अधिक थी। इतिहास में कहा गया है कि 639 ई० में नागवर्धन ने कापालेश्वर की पूजा के लिये भूदान दिया था।

शाक्त मत का प्रतिपादन ग्रन्थ आगम या तन्त्र कहलाता है। सात्विक आगमों को "तन्त्र", राजस को "यामल", तामस को "डामर" कहते हैं। श्रीशङ्कर भगवान के मुखपञ्चक से उत्पन्न होने के कारण इन आगमों में पांच आम्नाय होते हैं—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व। पूजन पद्धती भी भिन्न-भिन्न हैं। इस मत के तीन केन्द्र थे—केरल, काश्मीर, कामाख्या। मद्यमांस की पूजा में आवश्यक बतलाया गया है। पर केरल में दुग्ध प्रयोग करते हैं, काश्मीर में इन तत्वों की भावना की जाती है और गौड देश में इनका प्रत्यक्ष उपयोग होता है। श्रीशङ्कर सात्विक मार्ग के तान्त्रिक थे जिसमें वेद-विदित अनुष्ठान द्वारा उपनिषद प्रतिपादित तथ्यों से विरोध न हो।

गणपति के उपासक को गाणपत्य कहते थे। यह वैदिक काल से भी प्राचीन है। तामसिक तन्त्रों का प्रयोग इनमें होने लगे। उच्छिष्ठ गणपति की उपासना मद्यमांस से होता था। दक्षिण के वक्रतुंडपुरी में इस मत का केन्द्र था।

एक तरफ शून्यवाद, दूसरी तरफ अनेकान्तवाद, तीसरी तरफ तांत्रिक उपासना ने वैदिक धर्म को लुप्त कर रखा था| सारा देश पारे की तरह बिखर गया था। हजारों जमीन्दारियां और रजवाडे, लाखों लुटेरों व सैकडों धर्म संप्रदाय आदि बनकर सारे समाज व देश को त्रस्त किये हुए थे। ऐसी अवस्था में जब की राजनैतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई थी और देश की एकता सिवा धार्मिक भावना के और कौन से सूत्र में बांधे रखते। उस समय धर्म के सूत्र का हाल परम शोचनीय था। उन दिनों इन संकटों को केवल एक ही महान पुरुष श्रीशङ्करने समझा। ऐसे वातावरण में श्रीआचार्य शङ्कर का अवतार कालटी में हुआ।

(1) जातोऽहम केरळे देशे श्रीमच्छिव गुरुद्विजात्
किशोरता दशायांमे तातो लोकान्तरंगतः॥ (शं. वि. विलास)

(2) तस्यागर्भपुरी पयोधिकुहरादाविर्बभूव स्वयम्
ततः पितामुष्यच जात कर्म (मणि मंजरी मेदिनी)

(3) दृष्ट्वा सुतंशिवगुरुः शिववारिराशौ
मग्नोऽपि शक्ति मनुसृत्य जले न्यमाङ्क्षीत्।
व्यश्राणयद्बहुधनं वसुधाश्च गाश्च
जन्मोक्तकर्मविधये द्विजपुंगवेभ्यः। (माधवीये)

(4) विद्वत्तम् केरलानांच पावनत्व विधित्सया।
अलकेव पुरीयत्र कालटीतिप्रतिश्रुता॥ (शं. वि. विलास)

(5) ततो महेशः किलकेरलेषु पूर्णानदी पुण्यतटे (माधवीयें)

(6) कश्चितदभ्याश गतोग्रहारः कालट्यामिख्यो ऽस्तित महान् मनोज्ञः (मादवीये)

(7) द्विजोविद्याधिराजो ऽभूत्ख्यातः केरल देशगः।
गृहेतस्य भवत्पुत्रो नामना शिवगुरुःस्मृतः॥
उपनीतो ऽथगुरूणा वेदान्साङ्गान्समभयसत्।
पित्रशिवगुरु श्चात कृतोद्वाहः सुकन्यया।
प्राप्त भार्यो गृहेऽतिष्ठद्गृह धर्मान्समाचरन्।
ततः शिवगुरुः काले पुत्रमिच्छनगुणाकरम्।
शंभुमाराधयामास ध्यायेनानन्यमानसः।
ऋतुमत्यां स्वभार्यायां ततः शिवगुरुर्द्विजः।
शिवध्यान युतोवीर्यं शिवतेजः सिषेचतत्।
शैवेनतेजसागर्भसादधार परंसती।
अथकाले शुभे केन्द्रे गुरौ तुंगेग्रहत्रये।
शंकराख्यं जगद्वन्द्यं सुषुवे पुत्रमद्भुतम्"। (गुरुपरम्पराचरित)

उपर्युक्त प्रमाणिक वचनों से इनके पिता माता का नाम, जन्मस्थल, इत्यादि की पुष्टि होती है। श्रीशङ्कर के पिता उनके पैदा होते समय जीवित थे। कारण निम्नलिखित इन वचनों से गोचर होता है।

प्रसूतातनयम्साध्वीगिरिजेवषडाननम्। (शं. वि. विलास)
ततः श्रुत्वा पिता सोपिनिधिप्राप्येवनिर्धनः। (शं. वि. विलास)
दृष्ट्वा शिवगुरुर्यज्वा भार्या भार्या चगर्भिणीम्॥
वृषाचलेशं सततं स्मरेन्नेकाग्रचेतसा।
दयाकुतां स्तुवन शम्भोर्दीनेश्वपि महत्स्वपि॥
ववृधेस पयोराशीः पूर्णेन्दोश्चिदर्शनात्। (चिद्विलासीय)
दृष्ट्वा सुतं शिवगुरुः शिववारिराशौ ... ... (माधवीय)

श्रीजगद्गुरु श्रीसच्चिदानन्द शिवाभिनवनृसिंह भारती श्रीशङ्कराचार्य स्वामिजी, श्रीशृङ्गेरि मठाधीश की आज्ञा से व मैसूर राज्य दिवान श्रीयुत शेषाद्री अय्यरजी के विशेष प्रयत्नों से, श्रीशङ्कर भगवत्पाद का जन्मस्थल जो कालटी में एक अग्रहार का स्थल है, उसे निश्चय किया। बाद दिवान श्रीयुत वी. पी. माधवरावजी की सहायता एवं केरलदेश के महाराज श्रीश्रीमूलम् तिरुनाळ श्रीरामवर्माजी की सहायता से श्रीशङ्कर का जन्मस्थल खरीदा गया और वहां पर मठ, मन्दिर, घाट आदि का निर्माण भी किया गया। ऐसे शुभकार्य में प्रकान्ड विद्वान ब्रह्मश्री नडुकावेरी श्री श्रीनिवासशास्त्री, ब्रह्मश्री श्रीकन्ठ शास्त्री, (शृङ्गेरीमठ कार्यदर्शी), ब्रह्मश्री ए. रामचन्द्र अय्यर (भूतपूर्व केरल एवं मैसूर हाइकोर्ट न्यायाधीश) प्रभृति ने अपना कैंकर्य बटाकर इस कार्य को पूर्ण किया। भारत राज्य के "प्राचीन स्मारक रक्षणधारा" के अनुसार आचार्य का जन्मस्थल कालटी में जहां आपके वासगृह, आपके माता का दहनस्थल नदी तट पर था सो सब जमीन खरीदा गया। "तपोमूर्ति श्रीमच्छंकराचार्य का जन्मस्थल कालटी ही है," इस प्रकार हल किया गया। यह दूर दक्षिण भारत का एक भाग जो अतिरम्य, मनभावन एवं सृष्टि के मनोहर स्वाभाविक दृश्यों से संपन्न है सो केरल देश है। जिस देश में ज्ञानज्योति लोकगुरु आचार्य शङ्कर का आविर्भाव हुआ और जिन्होंने अपनी अल्प वयस में वह कार्य कर दिखाये जिसे करने में जन्म जन्म युगकाल लग जाता है। मणिमंजरी के रचयिता श्रीत्रिविक्रमभट्ट ने भी शङ्कर का जन्मस्थल कालटी ही बताया है। यद्यपि यह द्वैतमत के माननेवाले हैं और यह पुस्तक अद्वैतवादियों को ग्राह्य नहीं है, तथापि शङ्कर के जन्मस्थल का निर्देश में इन पर पक्षपात का दोष आरोपित नहीं किया जा सकता। आनन्दगिरि शङ्करविजय में शङ्कर का जन्म चिदम्बर बतलाया है। परन्तु अनेक कारणों से यह मत किसी को भी मान्य नहीं है। बद्रीनाथ तथा पशुपतिनाथ के प्रधान पुजारी नम्बुदरी ब्राह्मण ही होते आये हैं। यह कहा जाता है कि श्रीशङ्कर द्वारा इन मन्दिरों का पुनः प्रतिष्ठा करके पूजा के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त किये थे। केरल और मैसूर राज्य की सहायता से भारत राज्य का स्मारकरक्षणधारा के अनुसार कालटी में जमीन जब खरीदा गया था तब इस विषय की जांच एवं अन्वेषण राजकीय आर्कियलाजिकल विभाग से किया गया है। इस जांच अन्वेषण में अनेक प्रकार के अन्तर्बाह्य प्रमाण भी मिले जिसके आधार पर जन्मस्थल का निस्सन्देह निर्णय किया गया। इस रिपोर्ट को पढ़ने पर स्वार्थ से कहे जानेवाले निराधार अन्य एक जन्मस्थल का विवाद निष्फल हो जाता है।

सती आर्याम्बा का दहन स्थल जो एक वृक्ष के समीप है, उस स्थल पर एक वृन्दावन का निर्माण किया गया है। इसके समीप शक्तिगणपति का मन्दिर है। इसी मन्दिर के सामने ही जगन्माता शारदा का मन्दिर है। इसके पश्चिम में श्रीशङ्करालय है। शारदा मन्दिर का विमान अष्टपद्मयुक्त आठ कोणों का है। श्रीशंङ्कर का मन्दिर षोडष कोण का बना है और आप यहां दक्षिणामूर्ति रूप में स्थित हैं। शारदा मन्दिर में सप्त माताओं की मूर्ति हैं (माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुन्डा छः शक्ति बाहर और ब्राह्मी मूल विग्रह ही शारदा माता हैं)। इन दोनों मन्दिरों के सामने छोटे मण्डप हैं। शङ्करालय के उत्तर पश्चिम दिशा में श्री कृष्णजी का मन्दिर है। ये ही मूर्ति सती आर्याम्बा से पूजित मन्दिर मूर्ति है। शारदा मन्दिर के उत्तर पूर्व में शाङ्कर मठ है। नदी के तीर पर सीढियां बनी हुई हैं। इन मन्दिरों के पीछे वेद-वेदान्त की पाठशाला, भोजनालय, उपाध्याय, छात्रों, पुजारियों व कर्मचारियों के वास के लिये अग्रहार का निर्माण किया गया है। इस कालटी गांव के समीप कुछ अन्य पुण्य स्थल हैं जिनसे श्रीशङ्कर के वंशजों का सम्बन्ध था। उत्तर तरफ एक मील दूर पर "माणिक्कमंगल" में दुर्गामन्दिर, "वेल्लिमान्तुल्ली" में शिवजी का मन्दिर है। श्रीशङ्कर के कृपाकटाक्ष से (कनकधारास्तुति से) ऐश्वर्य प्राप्त उस मातु शिरोमणी का मकान जो "सुवर्णतुमणैक्कऌ" के नाम से प्रसिद्ध है, सब वहीं विद्यमान हैं। कोचीन शोरनूर रेलवे लाइन पर "अङ्कमाली (कालटिरोड)" नामक एक स्टेशन है। यहीं से कालटी गांव करीब पांच मील की दूरी पर अवस्थित है। शोरनूर एवं तिरुचूर से मोटरगाडी का प्रबन्ध भी है।

अन्य मतावलम्बियों के दिये हुए कष्टों के कारण कुछ नम्बूदरी ब्राह्मण लोग "पान्नियूर" ग्राम जिसका उल्लेख "शशल" ग्राम के नाम से भी मिलता है (उत्तर तिराबंकूर) उसे छोड कालटी गांव जो पूर्णा (चूर्णी) नदी के किनारे स्थित है, वे लोग अपना डेरा लगाकर गांव बसाये। उस सीमा के लोग पूर्णा नदी को चूर्णी के नाम से भी पुकारते थे। तामिल "सङ्ग" समय के ग्रन्थों में इस नदी के नाम को "पेरियारु" ऐसा कहा गया है। इस प्रकार दस घरवालों का एक संघ बना और उनके पृथक पृथक वंशज वहां पर रहते हुए चले आये वर्तमान काल में इस दस घरवालों में से आठ वंशजों के वंशज में से कोई भी रह नहीं गया। "काप्पिल्लि" "तलैयात्तुमृपल्लि" इन दोनों वंशजों के लोग ही अब केवल मिलते हैं। इतिहास रूप में यह कथा प्रचलित है कि एक छोटे राजा राजशेखर ने कालटी इत्यादि अनेक ग्रामों का निर्माण करके वहां लोगों को बसाया था। इनमें से अधिकतर लोग नम्बूदरी थे। ये नम्बूदरी ब्राह्मण निष्ठावान, सदाचार सम्पन्न, वैदिक कर्मकांड के अनुरागी होते हैं। इन ब्राह्मणों के सामाजिक आचार और व्यवहार में अनेक विचित्रता दिखलायी पडती है। शास्त्र पारंगत विद्याधिराज "काप्पिल्लि" वंशज के एक नम्बूदरी ब्राह्मण जो कालटी ग्राम में निवास करते थे। उनको शिवगुरू नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इनका विवाह सतीशील सम्पन्न आर्याम्बा (सती-माधव के अनुसार) से हुआ। सती आर्याम्बा "वैक्यम्" स्थल के समीप "पाल्लूर" या "मेलपाल्लूर" वंशज की एक सुकन्या थी। यह भी कथा सुना जाता है कि आचार्य शंकर का जन्म "पाल्लूर इल्लम्" (वंश) में हुआ था। और यह भी कहा जाता है कि शंकर की माता "पजुर-पन्नै इल्लम्" नामक नम्बूदरी ब्राह्मण कुटुम्ब की थी। बहुत वर्षों तक इन्हें सन्तान का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। उन्हें "लुप्तपिन्डोदक क्रिया" एवं "नापुत्रस्य लोकोऽस्ति" की चिन्ता सदा सता रही थी। देवादिदेव महादेव वृषभाचलेश्वर उनके अनन्य भक्ति एवं आराधना से प्रसन्न होकर तथा उनको पुत्रप्राप्ति का वरदान देकर स्वयं उनका मनोरथ पूर्ण किया। एक दीर्घायु मूर्ख पुत्र जो जन्मभर दुःख का कारण होगा उसके बदले अल्पायु सर्वज्ञ पुत्र ही अपने और लोककल्याणार्थ ही भला होगा, इस प्रकार निश्चय करके, वे श्रीमहादेवजी की आराधना करने लगे। उन भाग्यवान दम्पतियों को स्वप्न होने का एवं महेश्वर का दर्शन इत्यादि का वर्णन चिद्विलासीय में है। उसी दिन "तपसा शोधिते क्षेत्रेशैवंतेजः सिषेचतत्।" मनुष्य रीति के अनुसार क्रम से, कुछ काल के बाद, शुभ-मुहूर्त व शुभलग्न पञ्च गृह उच्चस्थान में रहते वैशाख शुक्ल आर्द्रा नक्षत्र के दिन (आर्द्रायां शुक्ल पञ्चम्यां शङ्करस्योदयः स्मृतः) शिवगुरु की धर्मपत्नि मातुशिरोमणि सती आर्याम्बा ने एक दिव्य व कांतिमान पुत्र का जन्म दिया। कहा जाता है कि श्रीशङ्कर अत्रि महऋषी गोत्रवाले थे।

लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमारं
श्रीपार्वतीव सुखिनी शुभवीक्षितेच।
जाया सती शिवगुरोर्निजतुंगसंस्थे।
सूर्ये कुजे रविसुते च गुरौ च केन्द्रे॥ (माधवीय) (1)

ततः सा दशमे मासिसम्पूर्णशुभलक्षणे॥
दिवसे मांधवर्तौ च सोच्चस्थे ग्रहपञ्चके।
मध्यान्हैचाभिजिन्नाम मुहूर्त चद्रियायुते॥
उदयाचल वेले व भानुमंन्त महौजसम्।
प्रसूत तनयं साध्वीगिरिजेव षडाननम्॥
जयन्तमिव पौलौमी न्यासं सत्यवती यथा॥ (चिद्विलासीय) (2)

शिवगुरु आर्याम्बा नाम पद से ही प्रतीत होता है कि यह दोनों नाम उनके नामकरण नाम नहीं हो सकता है। काल प्रवाह के साथ एवं भारत देश जहां पुराकाल में आत्मकथा लिखना या प्रचार करना अहंकार एवं अनुचित समझा जाता था, इनका वास्तविक नाम सम्भवतः लोप हो गया हो। आचार्य शङ्कर के करोडों भक्त भक्ति व प्रेम से सम्भवतः आचार्य शङ्कर के पिता को "शङ्कर के पिता" के अर्थ में 'शिवगुरु' पद एवं माता को "श्रेष्ठ की माता" के अर्थ में "आर्याम्बा" पद का प्रयोग किये हों। चाहे जो हो, चरित्र कथा में रूडी से यही नाम दोनों प्रख्यात हैं। पिता का संकेत गुरु पद से भी किया जाता था जैसे "स राज्यं गुरुणा दत्तम्" "अस्मदन्वय गुरोः उत्पत्तिभूः पद्मभूः" आदि काव्यों में दृष्टान्त पाया जाता है।

भगवान शंकर की कृपा से पुत्र का जन्म होने के कारण इस शिशु का नाम भी शंकर रक्खा गया और ये ही हमारे चरित्र नायक जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि श्रीशङ्कर का नाम गणितशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र के आधार पर रक्खा गया था। केरल देष ज्योतिष और गणितशास्त्र के लिये प्रसिद्ध है। किसी ब्राह्मण के यहां बालक का नामकरण बालक के जन्म-नक्षत्र अथवा माह, पक्ष, तिथि इन तीनों के जोड के आधार पर गणित शास्त्रानुसार रक्खा जाता है। संख्या को श्लोक रूप में, अक्षर एवं पद रूप में लिखने की विधि सब गणित शास्त्र में उल्लेख है। श्रीशङ्कर का जन्म वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ अर्थात् दूसरे महिने प्रथम पक्ष पञ्चमी तिथि। गणित शास्त्र के अनुसार इसको उलटकर ("अक्षराणां वामतो गतिः") 512 संख्या की जगह पर अक्षर बैठा सकते हैं। इस रीति से पांच के लिये 'शं,' एक के लिये 'क,' दो के लिये 'र,' अर्थात् ऐसा शंकर का नाम दिया गया था। शं अर्थात् सुख (ज्ञान से उत्पन्न), करोति—देनेवाले अर्थात् ज्ञान से सुख देनेवाले महान अवतार पुरुष का नाम शंकर रक्खा गया।

वेदज्ञाने समोज्ञाने भविता शम्भुनासमः
कारुण्ये हरिगा तुल्यो भविष्यति महामनाः ॥
निष्कलंका स्वकांकीर्ति भुविधास्यति पावनीम्
असंख्य गुणको बालो भवितेत्य ब्रुवन्द्विजाः ॥ (स. शं. सा.)

इनके जन्म काल का निर्णय कोई निश्चित रुप से अभीतक निर्णय नहीं हुआ है। इतिहास लेखकों के दृष्टिकोण में इस कार्य को ऐसा जटिल एवं कण्टकाकीर्ण बना दिया है कि साधारण व्यक्तियों को उसका सुलझाना कठिन हो गया है। एक ओर कुम्भकोणमठ के कथनानुसार श्री आचार्य का प्रारंभिक समय ईसा से 509 वर्ष पूर्व सिद्ध किया जाता है। दूसरी ओर आठवीं शताब्दी का अन्तिम समय या नवम शताब्दी पूर्वार्ध का सिद्ध किया जाता है। इतना ही नहीं, इस तेरह सौ या चौदह सौ वर्षों के बीच में और भी न जाने कौन-कौन से समय आचार्य के आविर्भाव के लिये निश्चित किये जाते हैं। इन विभिन्न समयों के निरूपण करनेवाले विद्वान लोग अपने अपने विचारों के लिये कारण भी बतलाते हैं, और प्रमाण भी दिखलाते हैं। कुम्भकोण मठ का यह भी प्रचार है कि आचार्य शंकर का अवतार पांच बार हुआ था और ये पांचों अवतार शङ्कर नामधारी थे। आपका प्रचार है कि आद्यशङ्कर जिन्होंने कांची में मठ की स्थापना की थी उनका काल 509 क्रिस्त पूर्व था; द्वितीय अवतार (कुम्भकोण मठ के 9 वां आचार्य) कृपाशङ्कर का काल 29—69 ई० था; तृतीय अवतार (कुम्भकोणमठ के 16 वां आचार्य) उज्ज्वल शङ्कर का काल 329—367 ई० था; चतुर्थ अवतार (कुम्भकोणमठ के 20 वां आचार्य) मूकशङ्कर का काल 398—437 ई० था और पांचवां

अन्तिम अवतार (कुम्भकोण मठ के 38 वां आचार्य) अभिनव शंकर का काल 788–840 ई० था। कुम्भकोणमठ का 38 वां आचार्य अभिनव शंकर (788 ई०) जो व्यक्ति आद्यशंकर (509 क्रिस्त पूर्व) के पांचवां अवतार पुरुष होने का कथा प्रचार किया जाता है, इनका जीवन चरित्र आद्यशंकर के साथ इतना मिलता जुलता है कि अब कुम्भकोण मठ यह प्रचार करते हैं कि आधुनिक व प्राचीन विद्वान इनके चरित्र को आद्यशंकर (509 क्रिस्त पूर्व) के चरित्र ऊपर आरोपित करते हैं और भ्रम से इस पांचवें अवतार पुरुष को ही मूल आद्यशंकर मान ली है। यह कथा न केवल कल्पित है पर आश्चर्यजनक भी है। जिस प्रकार तिब्बत देश के पूज्य श्री दलाई लामा को मूल श्री बुद्धदेव का अवतार होने का विश्वास कर तिब्बतीजन मानते हुए आते हैं उसी प्रकार सम्भवतः कुम्भकोण मठ के मठाधीष भी आद्यशंकर के अवतार कुम्भकोणमठ प्रचारक मानते होंगे। चाहे जो हो, ऐसे अवतार महान् पुण्य-पुरुषोंका काल एक समय का नहीं है। वे सर्वदा सब काल में सब जगह व्याप्त हैं। उनका नाम व स्थल एवं काल अमर हो गया है। इनका काल निर्णय विषय अलग पुस्तक में लिखा जा रहा है और आशा है कि शीघ्र ही प्रकाश किया जायगा। पाठकगणों के लिये यहां संक्षेप में अचार्य शंकर का आविर्भाव समय का संक्षेप विवरण दिया जाता है।

आचार्य शङ्कर ने अपने कृत ग्रन्थों में रचना काल का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है पर आप कुछ व्यक्तियों का नाम या उनसे रचित ग्रंथों से पद्य उद्धृत या उनके मत का उल्लेख या सूचना की है तथा दो शहरों का नाम भी (पाटलीपुत्र एवं श्रुघ्न) लिया है। श्री उपवर्ष, श्री सबर स्वामि (वेदान्त भाष्य); भर्तृप्रपंच (बृह० भाष्य); ब्रह्मदत्त (उपनिषद भाष्य में आपका मत का उल्लेख है); द्रविडाचार्य (छान्दो० भाष्य); वृत्तिकार-बोधायन, प्रभाकर, उद्योतकर, प्रशस्तपाद, ईश्वर कृष्ण (वेदान्त सूत्र भाष्य); धर्मकीर्ति (उपदेश साहस्रीं में पद्य उद्धृत एवं सूत्र भाष्य में विज्ञानवाद के खन्डन में धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध श्लोक का सूचना); दिङ्नाग (सूत्र भाष्य में "यदन्तर्ज्ञेयरूपं" दिङ्नाग की आलम्बनपरीक्षा ग्रंथ से उद्धृत); बौद्ध आचार्यों (सूत्र भाष्य में वचनों को उद्धृत की है और इन में से एक गुणमति रचित "अभिधर्मकोष व्याख्या"); कुमारिल भट्ट (नाम उल्लेख नहीं है पर आपके मत के समान कर्म-विषयक मत का उल्लेख उपदेशसाहस्री एवं तैत्तिरीय भाष्य के उपोद्घात में है); राजा पूर्णवर्मा एवं राजवर्मा (सूत्र भाष्य); आदि सब उल्लेख हैं। रचना काल का कहीं भी उल्लेख नहीं करने से आचार्य शङ्कर का आविर्भाव समय का निस्सन्देह निर्णय करना एक जटिल समस्या बन जाती है। एक ओर कुम्भकोण मठ का कल्पनात्मक निराधार काल निर्णय 508/509 क्रिस्त पूर्व से 476 तक का है और दूसरी ओर अन्य अनेक अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय भिन्न भिन्न हैं और इनका अन्तिम काल निर्णय नवम शतक ईस्वी का बतलाते हैं।

नीचे दिये हुए विद्वानों ने अपना अपना अभिप्राय भिन्न भिन्न ग्रंथो व प्रमाणों के आधार पर दी है पर प्रायः सबों ने आचार्य शङ्कर रचित ग्रंथों का अन्वेषण दृष्टी से अध्ययन न करते हुए एवं उससे प्राप्त होने वाले अन्तरङ्ग प्रमाणों को छोड कर और बाह्य प्रमाणों के आधार पर अनुमान दृष्टी से निर्णय करते हुए जो अन्दरूनी प्रमाणों के विरुद्ध भी हैं, आचार्य का जन्मकाल समस्या की हल की है। जो सब सामग्री अब प्रमाण युक्त उपलब्ध होते हैं उसके साथ यदि इन नीचे दिये हुए आधारों पर अन्वेषण की जाय तो पूर्व में बहुत से कहे जानेवाले प्रमाण टिकते नहीं हैं। आचार्य शङ्कर का काल धर्मकीर्ति, दिङ्नाग, कुमारिल भट्ट के काल के पूर्व का नहीं है जो विषय आचार्य शङ्कर द्वारा रचित ग्रंथों के अन्दरुनी प्रमाणों से सिद्ध होते हैं। आचार्य शङ्कर भाष्य पर प्रथम टीका श्री पद्मपादाचार्य का पञ्चपादिका है और इसके पश्चात सर्वप्रथम टीका श्री वाचस्पति मिश्र का 'भामती' टीका है जिसका काल लगभग 841 ई० का होना

निश्चित है। यही अन्तिम अवधि है। अर्थात् आचार्य शङ्कर का जन्म काल सातवीं शताब्दी उत्तर भाग से 9 वीं शताब्दी मध्यभाग के पूर्व का ही होना निश्चित होता है। यहां नीचे दिये हुए प्रमाण विषयों को ध्यान में रखकर इन अनुसन्धान विद्वानों के अभिप्रायों पर परीक्षा की जाय तो पाठकगण स्वयं जान लेगें कि इन अभिप्रायों में कितनी भूल व भ्रम है। (1) डा. विन्सेन्ट का अभिप्राय है कि गौतम बुद्धदेव के निर्याण पश्चात् 60 वर्ष उपरान्त आचार्य का जन्म हुआ ; (2) श्री निखिलनाथ राय–476 क्रिस्त पूर्व ; (3) श्री भास्कराचार्य–49 क्रिस्त पूर्व ; (4) 'केरळोत्पत्ति' —400 ई०, किन्तु यह भी उल्लेख है कि आचार्य का आविर्भाव 'चेरुमान पेरुमाळ' के राज्यशासन काल में हुआ था। इस 'चेरुमान पेरुमाळ' का कब्र मक्का में अब भी है जो शिलाशासन द्वारा प्रतीत होता है कि इनका काल 838 ई० का था ; (5) मेंकन्ज़ी—500 ई० ; (6) श्री भाष्याचार्य-छठवीं शताब्दी पूर्व ; (7) टी. फौकस एवं बर्नेल —650/700 ई० ; (8) मनियर विलियम–650/740 ई० ; (9) राईस–745/769 ई० ; (10) फ्लीट, लोगन, मकडोनाल्ड, बुहुलर, बार्त, मैक्समुलर, टील, जेकब, वेबर, कृष्णस्वामी, रामावतार शर्मा, यज्ञेश्वर शास्त्री, नीलकण्ठ भट्ट, उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, गौरीशङ्कर हीराशङ्कर ओझा, रूपकला जी, एवं के. बि. पाठक आदि विद्वान —788/820 ई० ; (11) विन्डिष्मान्, लासेन, वेबेर, मानिङ्ग, कोवेल, गाफ्, रेवरन्ड फुलकस्, अक्षयकुमार दत्त एवं मोक्षमूल आदि विद्वान–आठवीं/नौवीं शताब्दी ; (12) कोलब्रूक, विलसन–800/900 ई० ; (13) हागसन —800 ई० (14) सत्येन्द्रनाथ ठाकुर, पिल्लु अय्यर–805 ई० ; (15) टेलर–900 ई० आदि।

इस समस्या का हल अन्तरङ्ग प्रमाण, बाह्य प्रमाण, एवं पुष्टी प्रमाणों के आधार पर किया जा सकता है। सब से प्रधान प्रमाण अन्तरङ्ग प्रमाण है। इस प्रमाण के उपलब्ध होते हुए भी इसे तिरस्कार कर अन्य प्रमाणों पर निर्भर कर अनुमान करते हुए निर्णय करना उचित नहीं है। आचार्य शङ्कर के ग्रन्थों की अन्तरङ्ग परीक्षा करने से यथार्थता सिद्ध की जा सकती है।

श्री पद्मपाद पञ्चपादिका में कहते हैं कि आचार्य शंकर ने महायान पक्ष का खन्डन किया है —"अतःस एव महायानिकः पक्षः समधितः।" आचार्य ने पाशुपत पक्ष का भी खन्डन की है। आचार्य ने अपने रचित ग्रन्थों में पुराणों के वाक्यों को उद्धृत की है जो सब पुराण चौथी शताब्दी बाद के लिखे गये थे। आचार्य ने सूत संहिता का अध्ययन भी किया था। यह सूत संहिता पुराणों में अर्वाचीन काल में मिलाये गये थे। अतः यह कहना भूल न होगा कि आचार्य का जन्म क्रिस्त पूर्व शतक का नहीं था पर चौथी शताब्दी (ई०) के बाद का ही था। सातवां शताब्दी के धर्मकीर्ति का नाम आचार्य ग्रंथ में उल्लेख होने से एवं सातवीं शताब्दी के बौद्ध आचार्यों का वचन उद्धृत होने से एवं कुमारिल भट्ट के कर्म-विषयक मत का उल्लेख होने से, आचार्य शङ्कर का जन्म काल किसी भी प्रमाण पर यह नहीं कहा जा सकता है कि आपका जन्म काल क्रिस्तपूर्व का था।

उपवर्ष का नाम कथासरितसागर (सोमदेव द्वारा रचित) और क्षेमेन्द्र कृत ग्रन्थों से मालूम होता है। उपवर्ष एवं बोधायन दोनों अभिन्न व्यक्ति होने का भी अभिप्राय कुछ विद्वान रखते हैं पर इनसे रचित ग्रथों का अध्ययन किया जाय एवं आपसे प्रकाशित मतों का अन्वेषण किया जाय तो यह अभिप्राय भूल ठहरेगा। यह दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। श्री उपवर्ष ने जैमिनी मीमांसा सूत्र एवं बादरायण वेदान्त सूत्र पर वृत्तियां लिखी हैं। श्री सबरस्वामी नें अपने से रचित भाष्य में "भगवान उपवर्ष" कहा है। आचार्य शङ्कर ने आपको "भगवान उपवर्ष" कहा है। कहा जाता है कि श्री उपवर्ष राजा योगानन्द के राज्य में थे। श्रीसबरस्वामी द्वारा उद्धृत होने से आपका काल क्रिस्त पूर्व चतुर्थ शतक से दो सौ ईस्वी तक का माना जाता है। जैमिनी मीमांसा सूत्र पर व्याख्या श्रीसबरस्वामी ने लिखी

थी और आपका काल क्रिस्त पूर्व का होना कुछ विद्वानों का अभिप्राय है पर अनेक विद्वान द्वितीय या पश्चात् शतक (ईस्वी) का ही मानते हैं। भतृहरि अपने वाक्यपादेय ग्रंथ में कुछ मीमांसा विषयक पंक्तियां उद्धृत की है जो सब श्रीसबरस्वमी के ही हैं। चीनी यात्री इत्-सिङ्ग का यात्रा विवरण पुस्तक से प्रतीत होता है कि भतृहरी का समय 651-52 ई० का था। श्रीरामानुजाचार्य के परमगुरु श्रीयमुनाचार्य अपने रचित ग्रंथ "सिद्धित्रय" और "आगमप्राभाष्य" में एक भर्तृमित्र का उल्लेख करते हैं और यह माना जाता है कि यह व्यक्ति भर्तृप्रपञ्च एवं भर्तृहरि से भिन्न हैं। आचार्य शङ्कर ने बृहदारण्यक भाष्य में भर्तृप्रपंच को "औपनिषदंमन्यं" कह कर हंसी उडाई है। आचार्य शङ्कर ने मान्डूक्य उपनिषद भाष्य में द्राविडाचार्य को "आगमवित्" एवं बृहदारण्यक भाष्य में "संप्रदायवित्" कहा है। यह कहा जाता है कि श्रीद्राविडाचार्य का काल क्रिस्त पूर्व का काल था। आचार्य शङ्कर ने आपका उल्लेख अपने मत की पुष्टी में की है। श्रीरामानुज संप्रदाय में भी द्राविडाचार्य का नाम उल्लेख हैं (श्रीरामानुज—वेदार्थ संग्रह, काशी संस्करण)। श्रीयमुनाचार्य ने भी आपको "भाष्यकृत" पद का प्रयोग किया है। आचार्य शङ्कर निर्दिष्ट द्राविडाचार्य से श्रीरामानुज संप्रदाय निर्दिष्ट द्राविडाचार्य भिन्न या अभिन्न हैं सो पता नहीं चलता। बोधायन ही वृत्तिकार हैं। आपका विवरण मिलता नहीं है। प्रभाकर श्रीसबरस्वामी मत के अनुयायी थे। कुमारिल भट्ट ने आपके ऊपर लेखनी की प्रहार की है। यह माना जाता है कि इन दोनों ग्रंथ रचयिताओं के भीतर 100 वर्ष का अन्तर होगा। कुमारिल भट्ट का समय सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध का है। श्रीईश्वरकृष्ण का काल आचार्य शङ्कर के काल के पूर्व का ही है चूंकि श्रीगौडपादाचार्य ने एक व्याख्या लिखी है जो व्याख्या चीनी भाषा में 557-583 ई० के मध्य में अनुवादित है।

उक्त आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि श्रीगौडपादाचार्य का काल करीब 100 वर्ष इस व्याख्या अनुवादन काल के पूर्व का ही रहा होगा। अर्थात् श्रीगौडपादाचार्य का काल पांचवीं शताब्दी का काल कहा जा सकता है। ब्रह्मविद्यागुरुपरम्परा क्रम सूची से प्रतीत होता है कि श्रीगौडपादाचार्य के गुरु शुकब्रह्म थे। शुकब्रह्म का काल निर्णय निश्चित नहीं हुआ है। काल निर्णय द्वारा ये दोनों महान का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अथवा परस्पर भेंट होने का निश्चित नहीं किया जा सकता है। इन दोनों आचार्यों में दीर्घ काल का अन्तर होने के कारण ऐतिहासिक लोग इस सम्बन्ध को मानने में संकोच करते हैं। सम्भव है कि अद्वैतवाद की प्राचीनधारा किसी कारणों से श्रीशुकदेव के बाद उच्छिन्न हो गई हो और कालान्तर में अलौकिक उपाय से आविर्भूत होनेवाले श्रीशुकजी की मूर्ति से श्रीगौडपाद ने अद्वैतवाद के रहस्य को सीखकर ब्रह्मविद्या का पुनः प्रवर्तित किया हो। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीशुकब्रह्म ने श्रीगौडपादाचार्य को स्वप्न में दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया और यह सबों को मान्य व स्वीकार है। यह सम्भव भी दीखता है। अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर का काल 684-688 ई० का ही था और यह अन्तिम निर्णय दीखता है। अर्थात् शङ्कर काल से उनके परमगुरु श्रीगौडपादाचार्य के काल तक दो सौ वर्षों का अन्तर है। इसी काल मध्य या अन्त में श्रीगोविन्दभगवत्पाद का काल होना निश्चित होता है। प्रश्न उठ सकता है कि इस दो सौ साल के बीच में गुरु श्रीगोविन्दभगवत्पाद आये जिनका सम्बन्ध श्रीगौडपाद एवं आचार्य शङ्कर से था, इस विषय का समन्वय करना कठिन है। श्रीगौडपादाचार्य का काल अनुमान से निश्चित हुआ है और यह अन्तिम निर्णय कहा नहीं जा सकता है। इस विषय पर अन्वेषण की आवश्यकता है।

शाक्त तंत्र ग्रंथ "श्रीविद्यार्णव" के अनुसार आचार्य शङ्कर श्रीगौडपाद के प्रशिष्य न थे और इन दोनों के बीच में पांच पुरुषों का नाम मिलता है यथा—गौडपाद—पावक—पराचार्य—सत्यनिधि—रामचन्द्र—गोविन्द—शङ्कर। आचार्य शङ्कर के गुरु श्री गोविन्दभगवत्पाद थे परन्तु श्रीगौडपाद से गोविन्दभगवत्पाद का निकट सम्बन्ध दीखता नहीं है। इसी प्रकार

श्रीविद्यार्णव में शुकब्रह्म के साक्षात् शिष्य गौडपाद न थे परन्तु इन दोनों बीच में आचार्यों की एक लम्बी सूची विद्यमान है। विद्यार्णव से प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर संप्रदाय की प्रवृत्ति महर्षि कपिल से हुई है। आदिगुरु श्रीकपिल से लेकर आचार्य शङ्कर तक 71 गुरु का उल्लेख है। इस नामावली में अनेक विलक्षणता दीख पडती है जो विज्ञ श्रेष्टों को ग्राह्य नहीं है। श्रीविद्यार्णव तन्त्र में उल्लिखित मत आचार्य शङ्कर के श्रीविद्या मत से भिन्न पडता है। विद्यार्णव के अनुसार आचार्य शङ्कर के चौदह शिष्य थे जो सब देवी के परम उपासक तथा निग्रहानुग्रह सम्पन्न अलौकिक व्यक्ति थे। पर यह प्रसिद्ध है कि आचार्य शङ्कर के प्रधान शिष्य चार ही थे और ये चारों सन्यासी थे। विद्यार्णव ग्रंथ के आधार पर विषयों का निर्णय निस्सन्देह निश्चित रूप में किया नहीं जा सकता है।

ब्रह्म सूत्र 2–2–28 के भाष्य में आचार्य शङ्कर कहते हैं "यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद् बहिर्वदवभासत" इति। यह "यदन्तर्ज्ञेयरूपं" वाला पद्यांश बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग की "आलम्बन परीक्षा" नामक ग्रंथ से उद्धृत किया गया है। मदरास अडयार पुस्तकालय 1942 प्रकाशित श्री अय्यास्वामी शास्त्री द्वारा पुस्तक में विवरण दी गई है। दिङ्नाग का कारिका यों है–"यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद् बहिर्वदवभासते सोऽर्थो विज्ञानरूपत्वात् तत् प्रत्ययतयापि च"। आचार्य शङ्कर ने विज्ञानवादियों का खन्डन की है। श्री कमलशील ने तत्त्वसंग्रह की टीका में इस कारिका को दिङ्नाग ने लिखा है, ऐसा कहा है। उस समय इस कारिका की प्रसिद्धि के कारण लेखक का निर्देश नहीं किया गया था। आचार्य दिङ्नाग वसुवन्धु के प्रधान शिष्यों में अन्यतम थे। अत: आपका समय पांचवी शताब्दी ईस्वी की है। आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल इसके पूर्व (अर्थात 500 ई०) का कभी भी नहीं हो सकता है। पर आचार्य ने धर्मकीर्ति का उल्लेख करने से आपका काल 650 ई० के वाद का ही होना निश्चित होता है। धर्मकीर्ति दिङ्नाग के पश्चात् काल के हैं।

आचार्य शङ्कर और आपके शिष्य श्री सुरेश्वर अपने अपने ग्रंथ में धर्मकीर्ति का नाम स्पष्ट उल्लेख किया है। बौद्ध दर्शन प्रकान्ड विद्वान धर्मकीर्ति का काल 635/650 ई० का है। श्री सुरेश्वर अपने से रचित बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक 4/3 में लिखते हैं "त्रिष्वेव त्वविनाभावादिति यद् धर्मकीर्तिना। प्रत्यज्ञापि प्रतिज्ञेयं हीयेतासौ न संशयः।" टीकाकार आनन्दगिरि लिखते हैं "कीर्तिवाक्यमुदाहरति। अभिन्नोऽपिहि बुद्ध्यात्मा विपर्यासित दर्शनैः। ग्राह्य—ग्राहक—संवित्ति—भेदवानिवलक्ष्यते।" उपर्युक्त श्लोक सुरेश्वराचार्य के बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक में भी उद्धृत है। आचार्य शंकर रचित 'उपदेश साहस्री" ग्रंथ के 18 वें अध्याय 142 वां श्लोक में भी यह उक्त पद्य है। उपदेश साहस्री आचार्य शङ्कर का ही रचित ग्रंथ है चूं कि श्री सुरेश्वराचार्य ने अपने नैष्कर्म्यसिद्धि में इससे अनेक पद्यों का उद्धरण किया है। अतः आचार्य शङ्कर धर्मकीर्ति के ग्रंथ एवं श्लोक से परिचित थे। ब्रह्मसूत्र 2/2/28 के भाष्य में विज्ञानवाद के खन्डन में आचार्य ने धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध श्लोक का सूचना भी दी है—"इह तु यथा स्वं सर्वैरेव प्रमाणैर्बाह्योऽर्थ उपलभ्यमानः ... ... बहिरूपलब्धेश्च विषयस्य। अतएव सहोपलम्भ नियमोऽपि प्रत्यय विषययोरूपायोपेयभावहेतुकः, नाभेदहेतुकः इत्यभ्युपगन्तव्यम्।" यह "सहोपलम्भनियम" धर्मकीर्ति के श्लोक की ओर संकेत करता है यथा—"सहोपलम्भ–नियमादभेदो नील–तद्धियोः। भेदश्चभ्रान्त–विज्ञानै र्दृश्येतेन्दा-विवाद्वये।" इस कारिका का पूर्वार्ध धर्मकीर्ति के 'प्रमाणविनिश्चय' तथा उत्तरार्ध 'प्रमाणवार्तिक' में है। इससे भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर धर्मकीर्ति ग्रंथों से परिचित थे। धर्मकीर्ति नालन्दा विहार के अध्यक्ष आचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और आचार्य शीलभद्र के सहाध्यायी थे। पश्चात् आचार्य शीलभद्र नालन्दा के अध्यक्ष बने। चूं कि धर्मकीर्ति का समय प्रमाणों के आधार पर 635/650 ई० का निश्चित है, आचार्य शङ्कर का काल 650 ई० के पश्चात् का ही होना निश्चित होता है।

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र 2-2-22 तथा 2-2-24 में दो बौद्ध आचार्यों के वचनों को उद्धृत किया है। इसमें प्रथम वचन गुणमति रचित "अभिधर्मकोष व्याख्या" में उपलब्ध है। गुणमति का समय 630/640 ई० का निश्चित है। इन उद्धरणों से यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर का समय सप्तम शताब्दी मध्य भाग से कभी भी पूर्व का हो नहीं सकता। अन्य व्यक्तियों का नाम या उनसे रचित ग्रंथों से पद्य उद्धृत या उनके मत का उल्लेख या सूचना जो कुछ आचार्य शङ्कर ने की है वे सब धर्मकीर्ति व दिङ्नाग के काल के पूर्वकाल के हैं, अतः अन्तिम उद्धरण धर्मकीर्ति का ही है।

आचार्य के ग्रंथों में श्री कुमारिल भट्ट के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं है। कुमारिल के मत के समान आचार्य शङ्कर ने कर्म विषयक मत का उल्लेख उपदेशसाहस्त्री प्रकरण 18, श्लोक 139/141 में एवं तैत्तिरीय भाष्य के उपोद्घात में किया है। श्री सुरेश्वराचार्य ने तैत्तिरीयभाष्यवार्तिक में (आनन्दाश्रम पृ० 5 श्लोक 8) जिस मत को किसी "मीमांसकम्मन्य" का बतलाया है वह श्लोकवार्तिक में (पृ० 671 श्लोक 110) उपलब्ध होता है। अतः यह मत कुमारिल का ही है। आचार्य शङ्कर कुमारिल के मत से परिचित थे। माधव के शङ्करविजय में प्रयाग में शङ्कराचार्य तथा कुमारिल भट्ट के परस्पर भेंट होने की घटना वर्णन की है। इससे प्रतीत होता है कि ये दोनों महान् व्यक्ति समसामयिक थे अर्थात् जब आचार्य शङ्कर का आयू सोलह वर्ष का था तो कुमारिल नितान्त वृद्ध थे और दोनों महानों का व्यक्तिगत परिचय भी रहा होगा। तिब्बती लामा तारानाथ ने कुमारिल को राजा स्राङ्ग-सान गाम्पो 629-698 ई० का समकालीन बतलाया है। तिब्बती जनश्रुति के आधार पर कुमारिल तथा धर्मकीर्ति समकालीन थे। कहा जाता है कि धर्मकीर्ति ब्राह्मण का वेष धारण कर कुमारिल के पास सेवक का काम करते हुए अध्ययन भी किया था। धर्मकीर्ति का समय 635/650 ई० का निश्चित है। परन्तु धर्मकीर्ति के प्रत्यक्ष लक्षण "कल्पनापोढमभ्रान्तम्" का खण्डन "श्लोक वार्तिक" में कुमारिल भट्ट से किया गया है। अतः धर्मकीर्ति के कुछ परवर्ति होने से कुमारिल का समय सप्तम शताब्दी उत्तरार्ध का कह सकते हैं चूंकि धर्मकीर्ति का काल 635/650 ई० का है। नाटककार भवभूति कुमारिल के शिष्य थे और आप राजा यशोवर्मा (725-752 ई०) के सभा पन्डित थे। राजतरङ्गिनी (1150 ई०) में उल्लेख है कि 733 ई० में काश्मीर राजा ललितादित्यमुक्तापीड से यशोवर्मा पराजित भये-"कविर्वाक्पति राज श्री भवभूत्यादिसेवितः। जितो ययौ यशोवर्मा तद् गुग स्तुतिबन्दिताम्।" अतः भवभूति का समय अष्टम शताब्दी प्रथमार्ध 700-740 ई० का होना न्याय दीखता है। कुमारिल इनके गुरु होने से आपका समय सप्तम शताब्दी का अन्त होना चाहिये। आचार्य शङ्कर कुमारिल भट्ट के समकालीन होने से आपका काल भी सातवीं शताब्दी अन्त का ही होना निश्चित होता है। केवल यही फरक है कि आचार्य बालक थे जब कुमारिल नितान्त वृद्ध थे।

महानुभाव संप्रदाय के ग्रंथ "दर्शनप्रकाश" जो 1638 ई० में लिखा पुस्तक है, इसमें एक अति प्राचीन ग्रंथ "शङ्करपद्धति" से उद्धरण कर कहा है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण 720 ई० (642 शकाब्द) है। "शङ्करपद्धति" ग्रंथ से उद्धरण यथा—"युग्म पयोधि रसामित शाके रौद्रकवत्सर ऊर्जकमासे ... ... शङ्कर लोकमगान्निजदेहं हेमगिरौ प्रविहाय हठेन"। उपर्युक्त "रसा" का एक अर्थ पृथ्वी या संख्या एक हो सकता है या दूसरा अर्थ छः रसातल का सूचित भी कर सकता है। श्रीराजेन्द्रनाथ घोष का अभिप्राय है कि छः मानना युक्ति संगत व न्याय है और एक संख्या मानने में असम्भव दोष आ जाता है। अतः आचार्य शङ्कर का निर्याण काल 642 शक (720 ई०) का ही निश्चित होता है। आचार्य शङ्कर का आयू 32 वर्ष का था अतः आपका आविर्भाव काल 688 ई० का निश्चित होता है। आचार्य शङ्कर एवं कुमारिल भट्ट की समसामयिकता का पुष्टी इन प्राचीन ग्रंथों से भी होती है। कुमारिल के वृद्धावस्था में आचार्य शङ्कर का आविर्भाव हुआ था।

कुमारिल ने अपने ग्रंथ "तन्त्रवार्तिक" में भतृहरि की "वाक्यपदीय" दूसरे काण्ड 121 श्लोक को उद्धृत की है–"अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्यलक्षणम्। अपूर्वे देवता स्वर्गः सममाहुर्गवादिषु।" वाक्यपदीय तथा तन्त्रवार्तिक दोनों काशीधाम से प्रकाशित हैं। अतः कुमारिल को भतृहरि से अर्वाचीन मानना उचित है। चीनी यात्री इत्-सिङ्ग (673–695 ई॰) अपने ग्रंथ में धर्मकीर्ति को अपने समसामयिक व्यक्ति बतलाया है तथा भतृहरि को अपने से 40 वर्ष पूर्व होने का स्वीकार किया है। इत्-सिङ्ग के कथनानुसार भतृहरि का स्वर्गवास 651–52 ई॰ का निश्चित होता है। इसलिये कुमारिल भट्ट को सप्तम शतक के मध्यभाग तथा आचार्य शङ्कर को सप्तम शतक के अन्तिम भाग मानना प्रमाण सङ्गत प्रतीत होता है। उद्धरित उक्तियों में थोडा भी सन्देह का जगह नहीं है कि ये सब आचार्य शङ्कर के समय की पुस्तकादि हैं; प्रवाद नहीं हैं, किसीका मतामत भी नहीं है। आचार्य शङ्कर का समय उन बौद्ध पन्डितों से पीछे ही होना चाहिये जिनका उद्धरण उन्होंने स्वयं किया है अर्थात् सातवीं शताब्दी का अन्त। आचार्य शङ्कर का काल दिङ्नाग धर्मकीर्ति कुमारिल भतृहरि के पूर्व का नहीं है।

चीनी यात्री युवन चुवंग (630–645 ई॰) अपने यात्रा वृत्तान्त पुस्तक में आचार्य शङ्कर का नाम नहीं लिया है। आचार्य शङ्कर का जन्म उस समय नहीं हुआ था और युवन चुवंग आचार्य शङ्कर के पूर्व काल के हैं। इस निरूपित सिद्धान्त पर कोई आपत्ति नहीं है। पर युवङ्-चुवंग अपने पुस्तक में लिखते हैं "वर्तमान शताब्दी धार्मिक प्रगति का युग है। बुद्धमत यद्यपि शक्तिशाली है, तथापि, उसका पतन हो रहा है। वैदिक धर्म पुनः उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है।" इससे प्रतीत होता है कि कर्मकान्ड वैदिक पूर्वमीमांसा का प्रभाव ज्यादा था और वैदिक धर्म पुनः उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था। चीनी यात्री इत्-सिङ्ग (673-695 ई॰) जिस समय भारत आये थे उस समय आचार्य शङ्कर बालक थे और इत्-सिङ्ग का आचार्य शङ्कर का नाम का उल्लेख करना किस प्रकार सम्भव हो सकता है? आचार्य शङ्कर का जन्म 684/688 ई॰ का था।

आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्यों के द्वारा रचित ग्रंथों में भी आचार्य शङ्कर का समय का निर्देश नहीं मिलता। शङ्कर भाष्य के सब से प्राचीन टीकाकार (श्रीपद्मपादाचार्य के पञ्चपादिका को छोड कर) श्री वाचस्पति मिश्र हैं। आपने "भामती" नामक टीका शाङ्करभाष्य पर लिखी है। श्री वाचस्पति मिश्र ने "न्यायसूचीनिबन्ध" नामक ग्रंथ में रचना काल 898 संवत लिखा है "न्यायसूचीनिबन्धोऽयमकारि विदुषां मुदे। श्री वाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसुवत्सरे।" आपने कोई संवत का नाम नहीं ली है पर यह संवत "विक्रमसंवत" का ही निर्देश करता है। श्री वाचस्पति मिश्र के बाद उसी मिथिला में श्री उदयनाचार्य हुए जिन्होंने श्री वाचस्पति मिश्र की "वार्तिक न्यायतात्पर्यटीका" पर "परिशुद्धि" व्याख्या लिखी है और श्रीउदयनाचार्य का "लक्षणावली" ग्रंथ का रचना काल 906 शकाब्द का था—"तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः। वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥" यदि श्री वाचस्पति मिश्र का काल शकाब्द 898 मान लिया जाय क्योंकि आपने कोई संवत की नाम नहीं ली है तो इन दोनों ग्रंथो में केवल 8 वर्ष का अन्तर होता है पर ऐतिहासिक दृष्टी और अन्य बाह्य प्रमाणों से दोनों ग्रंथकर्ताओं का समसामयिकता सिद्ध नहीं होती। अतः वाचस्पति मिश्र ने विक्रमसंवत का ही निर्देश किया है। आठवीं व नौवीं शताब्दी में विक्रम संवत् का उपयोग उत्तर भारत में अधिक था और अन्यत्र प्राप्त शिलाशासन ताम्रशासन नौवीं शताब्दी में विक्रम संवत का उल्लेख करता है। इसलिये भामतिकार श्री वाचस्पति मिश्र का समय (898 विक्रम संवत = 841 ई॰) नवम शतक का मध्य भाग है।

शरीरिक भाष्य की टीका हुई पञ्चपादिका और पञ्चपादिका का खन्डन है मामती में। 12 वीं शताब्दी के अमलानन्द का "कल्पतरु" के अनुसार एवं आपके अभिप्राय में भामती में पञ्चपादिका की व्याख्या के अनेक स्थलों पर दोष दिखलाया गया है। अर्थात् वाचस्पति का समय श्रीपद्मपादाचार्य के पश्चात् का ही है। आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल की अन्तिम अवधि यही है। अर्थात् आविर्भाव काल नवम शतक के मध्य काल से पूर्व में ही होना चाहिये और इसमें किसी भी विद्वान का मत भेद नहीं है। अतः यह कहना निर्विवाद एवं असंभ्रान्त होगा कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल सातवीं शताब्दी अन्त से 9 वीं शताब्दी मध्य काल ही होना निश्चित होता है। अर्थात् दिङ्नाग, धर्मकीर्ति व गुणमति के पश्चात काल एवं कुमारिल भट्ट के समसामयिक या समीप काल तथा वाचस्पति मिश्र के पूर्वकाल का होना निश्चित होता है।

आधुनिक विद्वानों का यह दृढ धारणा है कि आचार्य का जन्मकाल 788 ई० का एवं निर्याण 820 ई० का है। कम्बोडिया के शिला लेख से भी इस मत को कुछ पुष्टी मिलती है। काम्भोज राजा श्रीजयवर्मन II (878—887 ई०) के राजगुरु श्रीशिवसोम थे। श्रीशिवसोम के गुरु "भगवत् शङ्कर" थे। शिवसोम के साक्षात गुरु होने से एवं "भगवत्" शब्द का प्रयोग करने से यह आचार्य शङ्कर का ही संकेत करता है और आपका समय नवम शतक का प्रारम्भ होना चाहिये—805 ई० से 837 ई०। इस मत को स्वीकार करने में अनेक विप्रतिपत्तियों का सामना करना पडेगा। श्रीवाचस्पति मिश्र ने अपना "न्यायसूची निबन्ध" 841 ई० में लिखा था। वाचस्पति मिश्र का "भामती" शारीरिक भाष्य का सर्वप्रथम व्याख्या है। श्रीपद्मपादाचार्य ने आचार्य शङ्कर के जीवन काल में ही "पञ्चपादिका" नामक व्याख्या भाष्य के आरम्भिक भाग पर लिखी थी। भामती में पञ्चपादिका की व्याख्या के अनेक स्थलों पर दोष दिखलाया गया है (अमलानन्द का कल्पतरु के अनुसार)। वाचस्पति मिश्र ने भास्कराचार्य की उन व्याख्यानों में दूषण दिखलाया है जिन में श्रीभास्कराचार्य ने शङ्कर भाष्य के व्याख्यानों में दोष दिखलाने का प्रयत्न किया है। शङ्कर भाष्य की टीका पञ्चपादिका और पञ्चपादिका का खण्डन है भामति में। अतएव ऐसी दशा में 820 ई० का शङ्कर का निर्याण समय (श्री के. वि. पाटक एवं अन्य विद्वानों के अनुसार) और 831–38 ई० का जन्मकुन्डली के अनुसार निर्याण समय के साथ 841 ई० का श्रीवाचस्पति मिश्र का समय जो केवल 20 वर्ष का अन्तर है या 3 वर्ष का अन्तर है सो काल इतना कम है कि वह समय इतने खण्डन-मण्डन के लिये पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। यह असम्भव दीखता है। यह अनुमान करने में भूल न होगी कि आचार्य शङ्कर का काल एवं श्रीवाचस्पति मिश्र का काल में कम से कम एक शताब्दि का अन्तर था। शारीरिक भाष्य व उस पर व्याख्या का खण्डन-मण्डन कार्य एवं भास्कराचार्य के व्याख्या पर टीका टीप्पणी कार्य तथा भामती समान एक गम्भीर टीका लिखने का कार्य उतना सहज नहीं है जैसा कि अनुसन्धान विद्वान सोचते हैं। अतः आचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० या 805 ई० मानने में वाचस्पति मिश्र के काल को और आगे हटाना पडेगा जो कार्य साध्य नहीं है चूंकि आपका ग्रंथ रचना काल लगभग 841 ई० का आप ही से निश्चित काल है।

दिगम्बर जैनों में जिनसेन नामक एक प्रकाण्ड विद्वान थे और आपने "आदिपुराण" ग्रंथ का रचना की थी। आपका काल 783 ई० का है। इस पुस्तक में श्री पाल का नाम उल्लेख है। श्रीपाल ने जिनसेन की पुस्तक की टीका में अपना समय 659 शकाब्द (737 ई०) लिखा है। अतएव श्रीपाल और जिनसेन समसामयिक मानने में आपत्ति नहीं है। 737 ई० से 783 ई० के मध्य में जो 46 वर्ष का अन्तर है इसमें दोनों जीवित थे। जिनसेन ने अकलङ्क, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र विद्वानों का नाम अपने ग्रंथ "आदिपुराण" में उल्लेख की है। जिनसेन ने अपने

ग्रंथ "हरिवंश" की रचना 783 ई० (705 शकाब्द) में की थी। अतएव सिद्ध होता है कि ये लोग जिनसेन के पहले थे। पर कितने पहले थे उसका पता नहीं चलता। अकलङ्क के शिष्य प्रभाचन्द्र थे (प्रभाचन्द्र रचित-न्यायकुमुदचन्द्रोदय ग्रंथ के अनुसार)। प्रभाचन्द्र के ग्रंथ "प्रमेय मार्त्तण्ड" में विद्यानन्द का नाम उल्लेख है। विद्यानन्द ने अकलङ्क का नाम अपने "अष्टसाहस्री" ग्रंथ में 16 वें अध्याय में उल्लेख किया है। माणिक्यनन्दी ने अकलङ्क का नाम उल्लेख किया है "सिद्धं सर्वजन प्रबोध जननं सद्योऽकलङ्काश्रयं। विद्यानन्द समन्तभद्रो गुणतो नित्यं अनुनन्दनम्।" प्रभाचन्द्र ने माणिक्यनन्दी ग्रंथ की टीका लिखी है। विद्यानन्द ने अकलङ्क का, प्रभाचन्द्र ने विद्यानन्द का और माणिक्यनन्दी ने अकलङ्क और विद्यानन्द का नाम उल्लेख किया है। अतएव ये तीनों समसामयिक थे। "मीमांसा-श्लोक वार्तिक" ग्रंथ में कुमारिल ने अकलङ्क पर प्रहार किया है। विद्यानन्द ने कुमारिल पर आक्रमण किया है। अतएव यह कहना ठीक होगा कि कुमारिल, अकलङ्क, विद्यानन्द समसामयिक थे। विद्यानन्द ने अपनी "अष्ट साहस्री" में सुरेश्वराचार्य के वचनों को बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक से उद्धरण किया है। विद्यानन्द अकलङ्क के शिष्य थे। पट्टावली अनुसार 751 ई० में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और 783 ई० तक उस पर अवस्थित थे। आपका काल आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध है। जिनसेन से श्रीसुरेश्वराचार्य दो पीढ़ी नहीं तो कम से कम एक पीढ़ी अवश्य पहले के सिद्ध होते हैं। अर्थात् सुरेश्वर का समय 750 ई० के पूर्व या समीप होना चाहिये और इनके गुरु आचार्य शङ्कर का काल इससे भी कुछ पहले मानना ही पड़ेगा। अत: विद्यानन्द सुरेश्वराचार्य के पूर्ववर्ति नहीं हो सकते। श्री सुरेश्वर आचार्य शङ्कर के शिष्य थे। इसलिये आचार्य शङ्कर भी विद्यानन्द के पीछे हो नहीं सकते। यह कहा जाचुका है कि आचार्य शङ्कर कुमारिल के पूर्ववर्ति नहीं हैं। अतएव यह निश्चय किया जा सकता है कि आचार्य शङ्कर, सुरेश्वर, कुमारिल, अकलङ्क, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र ये सब व्यक्ति परस्पर समीप काल के या समसामयिक काल के थे। भर्तृहरि का समय 650 ई० का है। कुमारिल ने भर्तृहरि का वाक्य उद्धृत किया है और कुमारिल 650 ई० के पूर्ववर्ति नहीं हैं। अकलङ्क, विद्यानन्द आदि जिनसेन के परवर्ति नहीं हैं और जिनसेन का समय 783 ई० का है। आपलोगों को 783 ई० पूर्व के भी कह नहीं सकते। अत: 650 ई० से 783 ई० के मध्य में ये सब व्यक्ति आविर्भाव हुए।

श्री. के. बि. पाठक ने आचार्य शङ्कर काल 788 ई० का बतलाया है। आपने कुमारिल को अकलङ्क और विद्यानन्द के समसामयिक मानते हुए भी आचार्य शङ्कर को कुमारिल से आधा सदी पीछे का माना है। शङ्कर ने कुमारिल की खण्डन किया है और इस कारण से यदि कुमारिल व शङ्कर के बीच 50 वर्ष का अन्तर हो या कुमारिल शङ्कर के 50 वर्ष पहले के हों तो श्री पाठक के उसी तर्क के आधार पर यह पूछा जा सकता है कि विद्यानन्द ने जो सुरेश्वर का वाक्य उद्धृत किया है इससे सुरेश्वर विद्यानन्द से 50 वर्ष पूर्व के व्यक्ति क्यों न होंगें? श्री पाठक की युक्ति का दुर्बल अंश यही है। जैसे पहले कहा जा चुका है कि सुरेश्वर का समय 750 ई० का पूर्व या आसपास का है और आपके गुरु आचार्य शङ्कर का समय आठवीं शताब्दी मध्यभाग से भी पूर्वकाल का होना ठहरता है, अत: 788 ई० आचार्य का जन्म ग्रहण करने की बात इतिहास विरुद्ध सिद्ध होता है।

भवभूति का समय 693–729 ई० के मध्य में विद्यमान थे और यह विषय सर्वो को मान्य है। श्री शङ्कर पाण्डुरङ्ग पन्डित ने प्राचीनकाल लिखित एक ग्रंथ "मालतीमाधव" जो आपको इन्दोर से प्राप्त हुआ था उसमें आपने तीन विवरण पाया था—(1) "इति श्री भट्ट कुमारिल शिष्य कृते मालतीमाधव तृतीयाङ्कः" (2) "इति श्री कुमारिल, स्वामी प्रसादप्राप्त वाग्वैभव श्रीमद् उम्बेकाचार्य विरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्कः" (3) इति श्री भवभूति विरचिते मालतीमाधवे दशमोऽङ्कः"। अर्थात् मालतीमाधव पुस्तक कुमारिल शिष्य कृत, कुमारिल शिष्य

उम्बेकाचार्य कृत और भवभूति विरचित, ये तीन पृथक नाम अध्याय के अन्त में पाये गये थे। माधवशङ्करविजय में आचार्य शङ्कर के शिष्य मण्डनमिश्र या सुरेश्वर का नाम उम्बेकाचार्य का भी उल्लेख है। अतः आचार्य शङ्कर उक्त भवभूति के समय में (693—729 ई०) विद्यमान थे। चूंकि मालतीमाधव भवभूति द्वारा समाप्त हुआ था, इसी कारण मालतीमाधव पुस्तक भवभूति के नाम से प्रसिद्ध है। छठवां अङ्क उम्बेकाचार्य एवं दशम अङ्क भवभूति कृत लिखा है। अर्थात् यह कह सकते हैं कि आचार्य शङ्कर का जन्म सातवीं शताब्दी के अन्त में एवं आठवीं शताब्दी के प्रथम चौथाई में समाप्त हुआ चूंकि आपका आयू 32 वर्ष का था।

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के गुरुपरम्परा के अनुसार आचार्य शङ्कर का जन्म 14 विक्रमाब्द में तथा तिरोधान 46 विक्रमाब्द में हुआ। उज्जैनी विक्रमसंवत का प्राचीन नाम "मालव सम्वत्" था। अष्टम या नवम शतक में इसका नाम विक्रमसंवत नाम पडा (Arch. Survey Report Vol. II)। श्री टी. के. वेंकटरामन्, मदरास विश्वविद्यालय जर्नल अङ्क 32—1 जूलै 1960 अङ्क में लिखते हैं "यह मालव संवत् जो विविध रिकार्डों में निर्देषित था सो नवम शताब्दी क्रिस्त पश्चात् ही विक्रमसंवत के नाम से बुलाया गया था और इसी नाम से पश्चात् प्रचलित होकर इस नाम से जारी रहा है।" उत्तरी भारत में प्रारम्भित यह संवत उतना प्रख्याती प्रारम्भिक काल में न था कि यह मालव संवत् दूर दक्षिण तक पहुंच सके। आठवीं या नौवीं शताब्दी में ही इस मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् हुआ और तत्पश्चात् यह नाम कुछ वर्ष उपरान्त दक्षिण पहुंचा। दक्षिण भारत में शृङ्गेरी मठ है और जहां संवत् का प्रचलन उतने प्राचीन काल में हो नहीं सकता। शृङ्गेरी के निकट वातापि चालुक्य वंशी—दक्षिणापथराज्य बादामि—विक्रम नामधारी राजाओं से सम्बन्ध मानना उचित है जिनके राज्यान्तर्गत शृङ्गेरी मठ का सीमा था। तुङ्गभद्रा समीप पर स्थित वातापि नगर दक्षिणापथ चालुक्य वंशी राज्य का केन्द्र था। चालुक्य वंश दक्षिणापथ राज्य का पुलकेशिन II के पुत्र विक्रमादित्य I जिन्हें सत्याश्रय के नाम से भी बुलाया जाता था आपका राज्याभिषेक काल 670 ई० का ऐतिहासिक विद्वान बतलाते हैं। पुलकेसिन II के छः पुत्र थे —रणनाग वर्मन, चन्द्रादित्य, आदित्य वर्मन, विक्रमादित्य, जयसिंह, अम्बेरा। विक्रमादित्य का राज्याभिषेक काल 670 ई० का होना ऐतिहासिकों का अन्तिम निर्णय नहीं है। एक ऐतिहासिक का अभिप्राय है कि विक्रमादित्य का राज्याभिषेक 654/5 ई० में हुआ था और आपका देहान्त 681 ई० का था। इतिहास से यह भी मालूम होता है कि चालुक्य वंशी विक्रमादित्य ने अपने पिता के राज्यशासन काल में 654 ई० में पल्लव राज्य पर धावा किया था और पूर्वकाल में खोई हुई राज्य सीमा को पुनः अपने राज्य में मिला लिया। यह कहा जाता है कि विक्रमादित्य ने कांची नगर जीतकर नरसिंह वर्मन I, महेन्द्रवर्मन II तथा परमेश्वरवर्मन को हराया था। अतः लोकमान्य श्रीबालगङ्गाधर तिळकजी का अनुमान सत्य प्रतीत होता है कि शृङ्गेरी की पूर्वोक्त परम्परा में शङ्कर का काल उल्लेख चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य I से सम्बन्ध रखता है। अतः इस आधार से सिद्ध होता है कि आचार्य का जन्म 684 ई० तथा निर्याण 716 ई० का है।

श्री राजेन्द्रनाथ घोष अपने ग्रंथ "आचार्य शङ्कर ओ रामानुज" में माधव शङ्करविजय एवं अन्य विजयों के कथा के अनुसार आचार्य शङ्कर की एक जन्म कुन्डली तैयार की थी। आपका अभिप्राय में 608 शक (686 ई०) वैशाख शुक्ल तृतीय को ही आचार्य का जन्म माना है। अन्य अन्तबाह्य प्रमाणों से शङ्कर का जन्म काल जो सिद्ध हुआ है वह अब शृङ्गेरी मठ परम्परा की काल को पुष्टी करता है और इस समय के साथ ज्योतिष शास्त्र की सहायता भी है। श्रीयुत के. टि. तेलङ्ग का भी अभिप्राय 688 ई० का है। श्री भण्डारकर से निरूपित समय 680 ई० से अब निरूपित समय 684 ई० बहुत निकट है। महानुभाव पंथ का ग्रंथ "दर्शन प्रकाश" भी 688 ई० का उल्लेख करता है।

आचार्य शङ्कर का जन्म काल 684 ई० होने से श्रुघ्न व पाटलीपुत्र संक्रान्त कथन का पुष्टी भी ऐतिहासिक दृष्टी से होता है न कि 788 ई० होने से। बिहार राज्य का पाटलीपुत्र, एक समय जो केन्द्र नगर था, पतञ्जली ने जिसका उल्लेख किया है, ग्रीस व चीनी यात्रियों ने उल्लेख किया है, वैसा यह नगर सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध में एवं पुन: आठवीं शताब्दी प्रारम्भ में सोन व गङ्गा नदियों के प्रवाह से बाढ में नगर सारा जलमय हो गया था। प्रस्तुत पाटना नगर शेरशाह 1541 ई० के समय में बसा हुआ था। यमुना नदी समीप एवं मथुरा नगर के पास एक स्थल श्रुघ्न था जो अब यह गांव "सुग्र" के नाम से बुलाया जाता है।

युवन चुवङ्ग ने (630—645 ई०) राजा पूर्णवर्मा का नाम उल्लेख की है। आचार्य शङ्कर ने जिस भाव में पूर्णवर्मा का नाम उल्लेख किया है, उससे यह नहीं मालूम पडता कि पूर्णवर्मा राजा आचार्य शङ्कर के बहुकाल पूर्व के थे। युवन-चुवङ्ग के यात्रा विवरण से यह कहा जा सकता है कि राजा पूर्णवर्मा का काल 590 ई० का था। आप पश्चिम मगध राज्य के राजा थे। कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि कन्नौज राज्य के राजा शशाङ्क राजा पूर्णवर्मा के समकालीन थे और आपका दूसरा नाम राजवर्मा भी था। इससे भी सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर का काल सातवीं शताब्दी अन्त का ही होना युक्तियुक्त है।

राजतरङ्गिनी में वर्णित राजा ललितादित्य के समय में (733 ई०) गौडीय या वङ्गीय ब्राह्मणों ने कश्मीर शारदा मन्दिर में शास्त्रवाद करने का विषय लेकर कनिङ्गम् ने आचार्य का काल निर्णय किया है। यदि 788 ई० आचार्य का जन्म समय माना जाय तो 820 ई० के समीप, पूर्व या पश्चात काल में राजा ललितादित्य का राज्य काल नहीं था। अतः आचार्य का जन्म 684 ई० का समय माना जाय तो कनिङ्गम् का उक्त कथन की पुष्टि होती है। कोङ्गुदेश राजकाल के आधार पर बर्नेल ने जो मत प्रगट की है (जिसे डा. फ्लीट स्वीकार नहीं करते) उसकी पुष्टी 684 ई० का आचार्य जन्म होने से होता है और 788 ई० माना जाय तो बहुत अन्तर पड जाता है। माधवीय में कहे प्रतिपक्ष विद्वानों का नामों में श्रीहर्ष, उदयन, अभिनवगुप्त आदि को छोडकर अन्य बहुतों के साथ आचार्य शङ्कर का साक्षात्कार होना सिद्ध होता है यदि 684 ई० में आचार्य शङ्कर का जन्म काल माना जाय। 788 ई० होने से किसी के भी साथ साक्षात्कार संगत नहीं होता। डा. आफ्रेक्ट ने एक वङ्गीय शङ्कराचार्य का भी उल्लेख किया है। इस वङ्गीय शङ्कर के समय शशाङ्क राजा ने बौद्धों को मार भगाया था। इस विषय की पुष्टि की जा सकती है कि उक्त वङ्गीय शङ्कराचार्य ही आचार्य शङ्कर थे और ये दोनों भिन्न न थे यदि आचार्य शङ्कर का जन्म 684 ई० का मान लें। 788 ई० का समय इस विषय की पुष्टी नहीं करती। श्रृङ्गेरी मठ के गुरु परम्परा में श्री सुरेश्वराचार्य का जो समय दिया गया है वह 684 ई० के होने से मिलता है किन्तु 788 ई० होने से मिलता नहीं है। श्रीराईस मैसूर गजटियर Vol. I में लिखते हैं कि बौद्ध लामा तारानाथ, जैन विद्वान ब्रह्मनेमिदत्त एवं माधवाचार्य का अभिप्राय है कि बौद्ध मत का अन्तिम पतन इस भारत वर्ष से हुआ जब कुमारिल भट्ट, अकलङ्कदेव एवं शङ्कराचार्य आविर्भाव हुए थे अर्थात् आठवीं शताब्दी में। आपका भी अभिप्राय सातवीं शताब्दी अन्त एवं आठवीं शताब्दी प्रारम्भ का समय ही आचार्य का जन्म काल समय था।

याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका मिताक्षर के रचयिता श्री विज्ञानेश्वर एक अद्वैती थे और आपने अपना पुस्तक को एक "विक्रमादित्य" को अर्पण की थी। मद्रास में प्रकाशित मिताक्षर में आप अपने गुरु का नाम "उत्तमात्म" कहते हैं जो आचार्य शङ्कर के अद्वैत वादी वर्ग के एक प्रकान्ड विद्वान थे। आपके "आत्म" शब्द के वर्णन से स्पष्ट मालूम होता है कि आप अवश्य आचार्य शङ्कर के पश्चात के ही हैं। आप अपने ग्रंथ में कहते हैं कि धार राज्य

के राजा श्री भोज, असहाय, अपरार्क, भारुचि आदि आपके पूर्व काल के थे। ऐतिहासिक बताते हैं कि राजा भोज का नाम धारेश्वर भी था और आपका राज्य काल लगभग 862 ई० का था (Arch. Report Vol. X)। मिताक्षर ग्रंथ के अन्तिम श्लोक में श्री विज्ञानेश्वर कहते हैं कि आप विक्रमादित्य राज्य काल में थे और विक्रमादित्य राज्य का केन्द्रनगर "कल्याणपुर" था और इस चालुक्य वंश में विक्रमादित्य नामके अनेक राजा थे। कुछ लोगों का जो अभिप्राय है कि ज्ञानेश्वर का उल्लेख किया विक्रमादित्य उज्जैनी मालवा विक्रमादित्य थे (56 क्रिस्त पूर्व) और आचार्य शङ्कर का काल क्रिस्त पूर्व का था सो अभिप्राय निराधार एवं भूल है। विज्ञानेश्वर ने चालुक्य वंशी विक्रमादित्य को अर्पण की थी।

अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर का जन्म समय 684 ई० का ही है। आजकल आचार्य शङ्कर का जो आविर्भाव काल माना जाता है (788 ई०) उससे उनका समय एक सौ वर्ष पहले (684—688 ई०) मानना ही उचित व न्याय प्रतीत होता है।

श्रीशङ्कराचार्यजी इस भारत भूमि में केवल 32 वर्ष तक ही भौतिक शरीर में निवास किये थे।

द्वात्रिंशत्परमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस। (शिवरहस्य)

शरदोऽष्ट पुनस्तथाऽष्ट ते
तनयस्यास्य तथाऽप्यसौ पुनः।
निवसिष्यति कारणान्तरा
द्भुवनेऽस्मिन्दश षट्च वत्सरान्॥ (माधवीय)

अष्टौ वयांसि विधिना तव वत्स दत्ता—
न्यन्यानि चाष्ट भवता सुधियाऽऽर्जितानि।
भूयोऽपि षोडश भवन्तु भवाज्ञया ते
भूयाच्च भाष्यमिदमारविचन्द्रतारम्॥ (माधवीय)

चतुर्वर्षेऽष्टमेवर्षे द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे सर्वदिग्जेता द्वात्रिंशे मुनिरत्यागात्॥ (माधवीय टीकाकार)

आब्दात्रिंशद्वर्षमुर्व्यां स्थित्वाऽगाद्गिरिशालयम। (माणिक्य विजये)

श्री भगवान की विशिष्ठ विभूति सम्पन्न महापुरुषों के जीवन क्रम में एक अलौकिक विशिष्टता होती है। इन्हें 'स्वयं प्रतिभात वेदाः' के नाम से पुकारा जाता है। उसी प्रकार श्री आचार्य ने अपने अलौकिक गुणों का परिचय आरम्भ से ही देने लगे थे। दो ही वर्षों में सब लिपि लिखने लगे और चित्र खींचने लगे। पांचवें वर्ष प्रारम्भ में काव्य सीख लिये। श्रीशङ्कर बालक यह सब शिक्षा स्वयमेव प्राप्त की थी। श्री शिवगुरु अपने पुत्र श्रीशङ्कर का चूडाकर्म (तीसरे वर्ष में) संस्कार कराने के बाद उपनयन संस्कार करने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कालने उन्हें धर दबाया और उन्होंने ब्रह्मपद को प्राप्त किया। दूसरे ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि शिवगुरु शङ्कर के उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मपद प्राप्त किये। उपनयन दो प्रकार के होते हैं—काम्योपनयन और नित्योपनयन। सातवें

वर्ष में उपनयन किया जाता है। यदि कोई ब्रह्मतेज प्राप्त करने का इच्छुक हो तो वह पांचवें वर्ष में उपनयन कर सकता है। यह शास्त्र सम्मत है। श्रीशङ्कर का उपनयन पांचवें वर्ष में हुआ "ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे" के वचनानुसार उनकी मां आर्याम्बा ने अपने बन्धुबान्धव की सहायता से इस संस्कार की पूर्ति की। चिद्विलास में शिवगुरु द्वारा अपने पुत्र के पांचवें वर्ष में स्वयं उपनयन संस्कार कराने का उल्लेख पाया जाता है। आचार्य शङ्कर ने गुरु से शिक्षा पाकर छः अङ्गों सहित वेद अध्ययन की पूर्ति की। श्रीशङ्कर गुरुकुल में विद्याध्ययन एवं अष्टादश विद्या प्राप्त करने के बाद अपने घर पहुंचे। उन्होंने वेद, श्रुति, स्मृति के अनुसार अनुष्ठान करके अपने जीवन को इहलोक में एक आदरणीय व महान् पुरुष के समान बनाकर अपनी लीला को दिखाकर समाप्त किया।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्चप्रहिणोति तस्मै (श्वेताश्वतर)

यो देवानांप्रथमपुरस्ताद्विश्वाधिकोरुद्रो महर्षिः (श्वेताश्वतर)

त्रिधाहितं पाणिभिर्गुह्यमानम् (नारायणोपनिषद्)

एक दिन दुख से दलित दरिद्र ब्राह्मणी ने शङ्कर को अपने यहां भिक्षा मांगते देखकर और अपने दारिद्रत्व को सोचते अन्न के अभाव से उस ब्राह्मणी ने केवल आंवला ही दिया और श्रीशङ्कर को अपनी दरिद्रता की कहानी कह सुनाई। शङ्कर के हृदय में सहानुभूति का स्रोत लहर रूप में उमड पडा—"कनकलक्ष्मीस्तवः" "अंग हरेः पुलक भूषणमाश्रयन्ति" इत्यादि—और उन्होंने उसी समय में भगवती लक्ष्मी की स्तुति करना प्रारंभ किया। उस दरिद्र ब्राह्मणी की झोंपडी को आपने सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया। यह कहा जाता है कि उस ब्राह्मणी की वंशज जो "स्वर्णात्तूमणैकल" के नाम से प्रसिद्ध हैं वे आज भी उसकी वंशज में पाये जाते हैं।

केरल देश में दो और घटनाएं श्री शङ्कर के जीवन के सम्बन्ध में वृद्ध परम्परा के पुरुष यह कथा सुनाते हैं कि श्री शङ्कर को एक दिन मंदिर में देवीपूजा के लिये जाना पडा था चूंकि उनके पिता अस्वस्थ थे। श्री शङ्कर ने देवी को नैवेद्य में दूध का पात्र चढाया। बालक शङ्कर ने दूध को पात्र में वैसा ही देखा जैसे पहले रखा था और सोचने लगा कि देवी ने दूध क्यों नहीं पिया? शङ्कर बालक रोने लगा और सोचने लगा कि देवी मुझसे असंतुष्ट हैं और उनकी पूजा अधूरी ही रह गई। देवी तुरन्त बालक शङ्कर को अपनी गोद में लिये माता की तरह दूध शङ्कर बालक को पिला दिया। उस समय से बालक शङ्कर सर्व विद्या सम्पन्न हो गये। सौन्दर्यलहरी के टीकाकार लक्ष्मीधरजी ने अपने रचित टीका में इस कथा का संकेत किया है। शङ्करावतार शङ्कराचार्य को इसकी जरूरत नहीं थी, क्योंकि वे स्वयं "ईशानः सर्वविद्यानां" थे। सम्भवत श्री शङ्कर की महत्व बढाने के निमित्त पौराणिकों ने यह कथा जोड ली है। ऐसी कथा द्रविड देश के महानों के बारे में भी कहा जाता है, उदाहरणार्थ श्रीज्ञानसम्बन्ध। दूसरी घटना :— शङ्कर की मां नित्य नदी स्नान करने जाती थी। एक दिन शङ्कर ने अपनी मां को मूर्छित नीचे पडे हुए देखा। दोपहर की कडी धूप और दुर्बल शरीर ने इन्हें नदी स्नान करने में बहुत कष्ट दिया। माता के उस कष्ट के निवारण करने के लिये शङ्कर ने अपने योगबल से पूर्णा नदी की धारा को अपने घर के समीप ले आये। नदी की धारा परिवर्तित हो गई। शङ्कर के कुलदेवता भगवान श्रीकृष्ण ने मातृ-भक्त शङ्कर बालक की प्रार्थना सुन ली।

शङ्कर की अलौकिकता एवं विद्वत्ता केरल नरेश राजशेखर के कानों तक पहुंची और उन्होंने शङ्कर को अपने महल में बुलवा भेजा। परन्तु शङ्कर के त्याग वैराग्य हृदय ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब राजा स्वयं

कालटी आये। राजा स्वयं कवि व नाटककार थे। उन्होंने अपने तीनों नाटक शङ्कर को सुनाए। शङ्कर की आलोचना सुनकर राजा विशेष प्रसन्न हुए।

जब शङ्कर आठ वर्ष के थे तब संयोगवश एक दिन माता और पुत्र दोनों नदी में स्नान करने गये और शङ्करके स्नान करते समय एक मगर उनका पांव पकड लिया। शङ्कर ने मां को पुकारा। शङ्कर की मां भगवान से प्रार्थना करने लगी। उस मगर से छुटकारा पाने का सब प्रयत्न विफल रहा। माता के छुडाने का प्रयत्न सब निश्फल रहा। शङ्कर अपने अन्तिम दिन आने का ख्याल कर सन्यास लेने की माता से अनुमति मांगी। शङ्कर ने कहा "यदि मुझे सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दें तो मेरा विश्वास है कि मगर मुझे छोड देगा"। संयोग माता की आज्ञा पाकर श्रीशङ्कर ने आतुर सन्यास विधान के अनुसार प्रेषोच्चारण "अभयं सर्व भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा" कहकर मानसिक सन्यास ले ली। संयोगवश मगर ने शङ्कर को छोड दिया और इसके साथ संसार के मायाजाल से भी छुटकारा पाये। कौन जाने विधि की गति। आतुर सन्यास विधि यों है :—

यद्यातुरः स्यान् मनसावाचावासन्यसेत। (श्रुति)
आतुराणां विशेषोऽस्ति न विधिर्नैवचक्रिया।
प्रेषमात्रस्तु सन्यास आतुराणां विधीयते॥
उत्पन्ने संकटे घोरे चोव्याघ्रादि गोचरे।
भयभीतस्य सन्यासमंगिरामुनिब्रवीत॥ (अंगिरा)
आतुराणांच सन्यास न विधिर्नैवचक्रिया।
प्रेषमात्रंसमुच्चार्य सन्यासं तत्रपूरयेत्॥ (सुमंतु)

"सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्यांहि सादरम् (प्रयत्नतः)" के अनुसार श्रीशङ्कर ने अपनी माता को नमस्कार किया। श्रीशङ्कर ने माता को वचन दिया कि जब उनकी मां इनका स्मरण करेगी वे शीघ्र उपस्थित हो जायेंगे। लौट आनेका और अपने मां से फिर मिलने का वचन देकर, अपने हाथों दाह संस्कार करने का भी वादा देकर, श्रीशङ्कर घर से रवाना हुए। घर छोड जाते समय उन्होंने कहा "भिक्षा प्रदा जनन्यः पितरो गुरूवः कुमारकाः शिष्याः।" विरक्तों को घर छोड जाना ही शास्त्रीय है। "एकान्तरमणहेतुः शान्ति दायिना विरक्तस्य।" (नीतिवैराग्यशतक) हे माता! इसी में कल्याण है। दुख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी जननी धन्य है कि एक ही पुत्र होते हुए भी लोकलक्षार्थ के लिये इस संसार की लोभमाया में न पडकर श्रीशङ्कर के समान लडके का त्याग किया। मां की ममता ने कुछ काल अवश्य इस जननी को मायालोभ में फंसा रक्खा था और प्रथम सन्यास लेने की आज्ञा न दी। अभिलाषा थी कि मेरा लडका पढकर गृहस्थ होकर सुख सम्पति के साथ जीवन निर्वाह करे और स्वयं पुत्रवधू का मुंह देखकर वह अपने जीवन को सफल बनावें। पर शङ्कर निवृत्तिमार्ग का अवलम्बन कर सन्यास लेने के चिन्ता में थे। अल्पायु होने के कारण उनका चित्त विरक्त हो उठा। पर विधि व दैव की गति कोई क्या जाने? "यदहरेव विरजेत, तदहरेव प्रव्रजेत" "ब्रह्मचार्या देवप्रव्रजेत" इत्यादि जाबाली श्रुति के आधार पर शङ्कराचार्य ने बाल सन्यास लिया। श्रुति सन्यास ग्रहण करने के लिये उपदेश देती है :—

(1) न कर्मणा न प्रजया धनेण त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः। (महानारायण उपनिषद् 10/5)

(2) यदहरेव विरजेत तदहरेव प्रव्रजेत्।
ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा। (जाबाल खण्ड 4)

(3) अथ परिव्राड् विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रह। (जाबाल खण्ड 5)

(4) संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्। (श्रुति)

अपने घर से निकल कर गुरु को ढूंढने में उत्तर दिशा चलते चलते श्रीगौडपादाचार्य के शिष्य श्री गोविन्द भगवत्पाद की पर्णशाला जो नर्मदा नदी के समीप ओंकारनाथ में बसा हुआ था वहां पहुंचे और सविनय प्रणाम करके अपने को शिष्य बना लेने की इच्छा प्रकट किया (चिद्विलासीय में श्रीगोविन्द भगवत्पाद का आश्रम बद्री में उल्लेख किया है)। कुम्भकोणमठ की परिष्कृत्य प्रति आनन्दगिरि शङ्कर विजय जो काशी के रामतारक मठ में 1935 ई० में अचानक पाया गया था और जो प्रति कुम्भकोण मठ के परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्कर विजय से मिलने जुलने की कथा की भी प्रचार किया गया था, इस पुस्तक में श्रीगोविन्द भगवत्पाद को व्याघ्रपुर में होने का एवं आचार्य शङ्कर गुरु गोविन्द भगवत्पाद से यहीं परमहंसाश्रम स्वीकृत करने का कथा कहा गया है। व्याघ्रपुर दक्षिण भारत चिदम्बर के समीप होने का कहा जाता है जहां व्याघ्रपाद जंगल में वास करते थे। यह कथा मूल आनन्दगिरि शङ्कर विजय के चिदम्बर क्षेत्र में आचार्य का आविर्भाव एवं सन्यास दीक्षा कथा से मिलता जुलता है। "पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती। ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥ त्रिभिः सारस्वतं पुण्यं सप्ताहेन तु यामुनम्। सद्यः पुनातिगाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥" (पद्मपुराण आदि० स्वर्ग०)। पुराणों में पुरूरवा तथा हिरण्यरेता के तप से नर्मदा जी को पृथ्वीपर पधारने की कथा कही गयी है। विज्ञ पुरुषों का कहना है कि 487 गज की चौडाई में इसकी धारा बहती है। पुराणों के अनुसार अमरकण्टक से लेकर नर्मदा संगम तक दस करोड तीर्थ हैं "तीर्थकोट्यो दश स्थिताः (पद्मपुराण)"। स्कन्दपुराण-रेवा खण्ड-ओंकारेश्वर माहात्म्य में कहा है "देवस्थानसमं ह्येतत् मत्प्रसादाद् भविष्यति। अन्नदानं तपः पूजा तथा प्राणविसर्जनम्। ये कुर्वन्ति नरास्तेषां शिवलोकनिवासनम्॥" ओंकारेश्वर की गणना ज्योतिर्लिङ्गो में की जाती है। नर्मदा जी के बीच में मान्धाता टापू पर ओंकारेश्वर लिङ्ग है। नर्मदा नदी एक ओर बहती है दूसरी ओर नर्मदा ही एक धारा है जिसे लोग कावेरी कहते हैं। द्वीप के अन्त में कावेरी धारा नर्मदा में मिल जाती है। महाराजा मान्धाता ने आराधना की थी। इन्दारे से 47 मील पर ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है और यहां से ओंकारेश्वर 7 मील पर है। यहीं गुरुगोविन्द भगवत्पाद का आश्रम था।

गोविन्द भगवत्पाद के प्रश्न पर "तुम कौन हो?" श्रीशङ्कर ने उत्तर दिया :—

न भूमिर्नतोयं न तेजो न वायुर्नखं
नेंद्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकांतिकत्वात्सुषुप्त्येकसिद्धः
तदेकोऽवशिष्टः शिव केवलोऽहम॥
मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्नतेजो न वायुः
चिदानंदरूपः शिवोहं शिवोहम॥

दशश्लोकी—निर्वाण दशक नाम से ये श्लोक प्रसिद्ध हैं। तत्पश्चात् उनसे प्रणव सहित महावाक्य की दीक्षा ली। व्यास के प्रार्थना से सदाशिव शुक को ध्यान व न्यास पूर्वक महावाक्य चतुष्टय उपदेश देने का वार्ता शुकरहस्योपनिषद में है। इस विशेष दीक्षा को गुरुमुख द्वारा क्रम रूप से जानना चाहिये। तदनुसार उनकी दीक्षा से, साधना में

प्रवृत्त होकर, ब्रह्मत्व का लाभ पाया। एक कथा कही जाती है कि उस पर्णशाला में लगातार पांच रोज की वर्षा से बाढ हो गई जिससे पर्णशाला भी बहता जा रहा था। तब श्रीशङ्कर ने अपने कमन्डलु से समस्त पानी को रोक लिया। श्रीगोविन्द भगवत्पाद इस योगिक सिद्धि को देखकर उन्हें जटाधारी भगवान् श्रीशङ्कर की याद आई और इस शङ्कर को उनका अवतार जानकर उन्हें श्रीकाशी जाने एवं व्यास इत्यादियों से भेंटकर वाद-विवाद करके सूत्रों का भाष्य करने की आज्ञा दी। कहा जाता है कि श्रीशङ्कर करीब दो वर्ष अपने गुरु के पास रहकर अध्ययन किये। यह भी कहा जाता है कि इस घटना ने गोविन्द भगवत्पाद को श्रीव्यासजी से सुनी कथा की याद आयी। हिमालय के देवयज्ञ में पधारे श्रीव्यास ने कहा था कि जो पुरुष एक घडे के भीतर नदी के जल को भर देगा, वही मेरे ब्रह्म सूत्रों का व्याख्या करने में समर्थ होगा।

"सर्वाणि पुण्यतीर्थानिसेव्यान्येव मुमुक्षुभि:" 'तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम्' (श्रीमद्भागवतकार), 'तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि' (नारदभक्तिसूत्र), 'तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः साशिष्याः प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः।' (श्रीमद्भागवत) के अनुसार श्री शङ्कर काशी पहुंचे। "मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर। जहं बस संभु भवानि, सो कासी सेइअ कस न॥" वेदों में कई जगह काशी का उल्लेख है—"आप इव काशिना संगृभीता:" (ऋक् 7/104/8), "मघवन काशिरित्ते" '(ऋक् 3/30/5), "यज्ञ: काशीनां भरत: सात्वतामिव" (शतप० ब्रा० 13/5/4/19, 21) आदि। काशी की सीमा ना० पु० उ० एवं अग्नि पुराण में वर्णित है कि काशी पूर्व-पश्चिम ढाई योजन (दस कोस) लम्बी तथा दक्षिणोत्तर अर्ध योजन (दो कोस) चौडी है। वरुणा से शुष्क नदी असी तक है। इसके उत्तर में अयन तथा तिमिचण्डेश्वर एवं दक्षिण में शंकुकर्ण एवं ऊंकारेश्वर है। अयोध्या राज्य का महाश्मशान काशी था। काशी खण्ड के अनुसार काशी के बारह नाम हैं—काशी, वाराणसी, अविमुक्त, आनन्दकानन, महाश्मशान, रुद्रावास, काशिका, तपःस्थली, मुक्तिक्षेत्र, (पुरी) और श्री शिवपुरी (त्रिपुरारि-राजनगरी)। काशी के बारे में स्कन्दपुराण कहता है "भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरध: स्थापि या। या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तव:॥ या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरे सुरै: सेव्यते। सा काशी त्रिपुराररिराजनगरी पायादपायाज्जगत्॥" काशी पृथ्वी से सम्बन्ध नहीं है, स्वर्गलोक से उच्चतर है, जागतिक सीमा से आवद्ध होने पर भी मोक्षदायिनी है, त्रिलोकपावनी भागीरथी के तटपर शोभित व सुसेवित है और काशी त्रिपुरारि राजनगरी है। सात मोक्षपुरियां कालान्तर में काशी प्राप्ती करा के ही मोक्षप्रदान करती है पर काशी स्वत: साक्षात् मोक्ष देती है। "येषां हृदि सदैवास्ते काशी त्वाशीविषध्वज:। संसाराशीविषविषं न तेषां प्रभवेत् क्वचित्॥" जिनके हृदय में काशी विराजमान है उन्हें संसार-सर्प विष से कोई भय नही है। शङ्कर के त्रिशूलपर बसी है और प्रलय में इसका नाश नहीं होता। तारकमंत्र से जीव को तत्त्व ज्ञान हो जाता है और अपना ब्रह्मस्वरूप प्रकाशित हो जाता है। "जहां ब्रह्म प्रकाशित हो, वह काशी" यह काशी नाम का अर्थ है। काशी में उत्तर की ओर ऊंकार खण्ड, दक्षिण में केदार खण्ड और बीच में विश्वेश्वर खण्ड है जहां श्री विश्वनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह विश्वास किया जाता है कि विश्वेश्वर मन्दिर की पुन: स्थापना भगवान् शङ्कर के अवतार श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य ने स्वयं अपने कर-कमलों से की थी। पश्चात् कालान्तर में मूर्तिसंहारक बादशाह औरङ्गजेब ने नष्ट कर दिया। पीछे से परमशिवभक्ता महारानी अहल्याबाई ने सोमनाथ आदि मन्दिरों की भांती विश्वनाथ का मन्दिर बनवा दिया और पंजाब सिंह महाप्रतापी महाराजा रणजीतसिंह ने इसपर स्वर्ण कलश चढवा दिया। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने श्री माता अन्नपूर्णा मन्दिर में श्रीचक्र की प्रतिष्ठा भी की। परम्परा प्राप्त जन श्रुति आधार पर विश्वास किया जाता है कि श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री विद्यारण्य महाराज, श्रृङ्गेरी मठाधीष, जो एक बार काशी धाम यात्रा निमित्त

आये थे उनका काशी निवासस्थल वही था जो आजकल श्रृंगेरी मठ, (काशी शाखा मठ) के नाम से पुकारा जाता है। काशी में श्रृंगेरी शाखा मठ गङ्गातीर क्षेमेश्वर घाट (केदारेश्वर मन्दिर समीप) पर स्थित है।

काशी में चोल प्रदेश के वैराग्यशील श्रीसनन्दन को अपना प्रथम शिष्य बनाया। अहोवल क्षेत्र निवासी माधव द्विज के पुत्र विष्णु शर्मा नाम के ब्रह्मचारी को सन्यास प्रदानकर सनन्दन नाम दिया। चिद्विलासीय में ऐसा उल्लेख है। इन्हीं का दूसरा नाम पद्मपाद से प्रसिद्ध हुआ है। एक समय सनन्दन गंगा के उस पार में थे और गुरु के बुलावे पर इस पार आना चाहते थे। गंगा की धारा तेज थी। कोई नाव भी न मिली। गुरु की कृपा से जो संसार सागर को पार कर सकता है वह क्यों गंगा नदी पार नहीं कर सकता? इस दृढ अनन्य गुरु भक्ति से उन्होंने गंगा में पैर उठाकर रक्खा और गंगामाताजी ने कमल पुष्प (हर पद की जगह में) आविर्भाव किया और सनन्दन गंगा का पार सुविधा से किया। इसी कारण उनका नाम श्रीपद्मपाद हुआ। कुछ लोगों का कथन है कि यह घटना हिमालय के उत्तर काशी के वेगवती अलकनन्दा नदी में घटित हुई पर घटना का वर्णन एक ही है। श्रीशङ्कर ने श्रीकाशी की स्तुति "शिवाकारां देवीं हरिहर निजावास धरणीम्" इत्यादि पदों से किया। फिर भागीरथी की स्तुति इन पदों में की "ॐ शिवा शान्ता शीता हरिपद यशो भूतिरतुला।" अन्त में विश्वेश्वरालय पहुंच श्रीस्वात्मरूपि विश्वेश्वरजी की स्तुति की "ॐ शिवं शान्ताकारं भवमृतिजराशून्यममृतम्"। श्रीमाता अन्नपूर्णा का दर्शन करके "शिवां शंकरस्यार्द्धदेहां विशुद्धाम्" इस प्रकार स्तुति किया।

एक दिन श्रीशङ्कर गंगा स्नान करके लौटते समय रास्ते में एक चान्डाल जो चार श्वानों को साथ लिये हुए उनके सामने आता हुआ दिखाई पडा। उस चांडाल को अपने सामने से चले जाने को कहा एवं दूर हट जाने के लिये बार–बार उसे कहा। चांडाल को "दूरी कर्तुं वांछसि" पर किसे "ब्रूहि गच्छ गच्छेति" कहकर उस चांडाल ने कहा कि "आत्मा को असंग, चिद्रूप, आनन्दरूप, पवित्र, भेदरहित व सर्वव्यापक ऐसा श्रुतियों में भी कहते हैं। जब वह एक ही आत्मा सब में विद्यमान है तब आप हटाते किसको हैं? व्यापक में हटना और दूर होना नहीं बनता है। यदि आप कहिए कि आत्मा में भेद नहीं है किन्तु हमारे और तुम्हारे शरीर के ही भेद हैं तो शरीरों का भेद भी नहीं बन सकता है क्योंकि पंच भौतिक द्वारा रचित शरीर (अन्नादिक) आप का और मेरा भी है तथा षट्विकार व उर्मियों का संग्रह एवं जडता और अनित्यता भी हमारे और तुम्हारे शरीर में बराबर ही है। जब हमारे तथा तुम्हारे आत्मा और शरीर का भेद नहीं है तब फिर आप कैसे दूर जाने को कहते हैं?" इस चांडाल ने फिर कहा :–"हमारे भीतर जो अहंकार रूपी चांडाल घुसा हुआ है उसे आप निकालते नहीं बल्कि बाहर के चांडाल को हटाना चाहते हैं तो इससे बढकर और क्या अज्ञान होगा?" उस चन्डाल स्वरूप विश्वनाथ के ऐसे प्रखर वचनों ने श्रीशङ्कर के हृदय-पटल से भेदभाव का पर्दा हटा दिया और ज्ञान ज्योति उज्ज्वल हो उठा।

"देह बुद्धया तु दासोऽहं जीवबुद्धयात्वदंशकः।
आत्मबुद्धया त्वमेवाहमितिमेनिश्चितामतिः॥"

उसके द्वारा ऐसे बातों को सुनकर स्वयं आपने चांडाल को देवता स्वरूप मान करके उत्तर दिया कि "आप जो भी कहते हैं वह सब सत्य है। क्योंकि जो पुरुष सम्पूर्ण जगत् को आत्मरूप के सदृश ही समझता है व जिसकी ऐसी बुद्धि है कि मैं आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप व नित्यमुक्त हूं व जिस पुरुष में राग द्वेष की भावना नष्ट हो गई है तथा सब प्राणियों में एक सा आत्मदृष्टि पैदा हो गई है, वे सब हमारे गुरू हैं, ऐसा मेरा भावना है"। चांडाल के स्वरूप

में आये हुए व्यक्ति के बदले श्रीशङ्कर ने आशुतोष श्रीमहादेवजी को वहां स्थित देखा और उनके साथ चारों श्वानों के बदले चारों वेदों को भी खडे हुए देखा। तब उन्होंने स्वयं उनकी स्तुति की। तब आशुतोष भगवान शङ्कर ने उन्हें वेदव्यास रचित सूत्रों का भाष्य रचने एवं धर्म प्रचार करने की आज्ञा देकर स्वयं आप अन्तर्द्धान हो गये।

अन्यथा वेदवाक्यानि व्याख्यातानि कुबुद्धिभिः।
न सर्वज्ञं विनातेषां सूत्राणां सम्प्रकाशकः॥
अतस्त्वं सर्व शक्तित्वात्सर्वज्ञत्वाच्च भोमुने।
यथाश्रुतीनां सर्वासां परब्रह्मणि निष्ठता।
तथाऽद्वैतपरं भाष्यं कुरुष्वाभिनिवेशतः।
श्रुति सूत्रेतिहासानां व्याख्या निर्मायियत्नतः।
सम्प्रदायविदांमार्गः प्रकाश्यस्तेऽधुनायते।
... ...
त्वयाकृतानि भाष्याणि प्रचरिष्यन्ति सर्वतः।
पद्मयोनिसभामध्ये यास्यन्ति परिनिष्ठताम्॥ (सं. श. सा.)

इस प्रकार श्रीकाशीजी में श्रीशंकर को श्रीविश्वनाथजी का चांडालरूप में दर्शन एवं सम्भाषण हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि श्रीशंकर ने "मनीशपंचक" श्लोकों से यह सिद्ध किया कि वर्णाश्रम के नियम भी गलत है और उन्होंने स्वयं वर्णाश्रम विदित कर्मानुष्ठानों का भी विरोध किया है। ऐसा कहना भी उनकी भूल है। श्रीविश्वेश्वर चांडाल के रूप में आये। आत्मानुभव का ज्ञान सारे जगत को समझाने व सिद्ध करने के लिये उन्होंने यह लीला-रहस्य काशी में स्वयं प्रगट किया। निवृत्ति मार्ग से ज्ञान प्राप्त व उस ज्ञान की महिमा बढाने एवं परीक्षा लेने क्या श्रीशंकर ने अपने अनुष्ठानों एवं अनुभवों में जाना है या नहीं, वे श्रीमहादेव चाण्डाल के रूप में आये। ऐसे प्रश्नों का संतुलन आज के लौकिक व प्रवृत्ति मार्ग की दुनिया से हम नहीं कर सकते। क्योंकि ज्ञानी पुरुषों को ही ऐसी समदृष्टि आ सकती है। श्रीशंकर ने वेद विहित शास्त्रीय धर्मों को ही अनुष्ठान के रूप में करने को बार-बार कहा है। उन्होंने कहीं व कभी भी वेदविहित कर्मानुष्ठानों के ढंग को बदला ही नहीं है। वे तो जहां कहीं भी ज्ञानों का ही उपदेश दिये और कहा कि वेदशास्त्र विदित जो कर्मानुष्ठान है वह ज्ञान प्राप्ति का एक साधन है। मानव गोष्ठी के संगठन, प्रेम, सुख व प्रवृत्ति मार्ग का शुद्धता के लिए एवं अनुष्ठान करनेवाले व्यक्ति की मानसिक शुद्धता के लिये ही कर्मानुष्ठान की विधि विदित किया गया है। इससे समस्त समाज का कल्याण होता है। श्रीपद्मपादाचार्य पञ्चपादिका में कहते हैं कि भाष्यकार भगवान श्रीशंकराचार्य शिष्टाचार के परिपालन में अग्रणी हैं—"अग्रणीःशिष्टाचार परिपालने भगवान् भाष्यकारः।" ऐसे आचार्य शंकर ने वर्णाश्रमाचारादि शिष्टाचारों का परित्याग करने को कहा था ऐसा कहना या प्रचार करना उचित नहीं है और यह उनका भूल है।

श्रीशंकर द्वारा प्रतिष्ठित केवल चार ही धर्मराज्य केन्द्र हैं। उन आम्नाय मठों का परम्परा, सम्प्रदाय व आचरण से देखने में आता है कि हर एक आम्नाय मठ के श्री जगद्गुरु महास्वामीजी श्री चन्द्रमौलेश्वर लिंग की पूजा करते हैं और यह प्रणाली श्री आद्यशंकराचार्यजी द्वारा प्राप्त एवं अविच्छिन्न रूप से पूजित किये हुये चले आ रहे हैं। किसी भी शंकर विजय ग्रन्थों में इसका पूर्ण उल्लेख नहीं है। पर एक या दो काव्य ग्रन्थों में कुछ लिंगों का वर्णन किये जाने का कल्पित कथा सुनाते हैं। शिवरहस्य में लिंगों का उल्लेख है।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि शिवरहस्य के इस श्लोक में लिंगों का शिवोपासना व अर्चना द्वारा योग, भोग, वर, मुक्ति, मोक्ष फल प्राप्त किये जाने का उल्लेख करता है। पर कुछ विद्वान इस श्लोक के आधार पर कहते हैं कि पांच लिंगों का वर्णन किया गया है। यह कहा जाता है कि श्री महादेवजी ने प्रसन्न होकर श्री शङ्कर स्वामी को पांचलिंग देकर आज्ञा दी कि इसकी पूजा आप स्वयं करते रहो। नवीन व कल्पित पुस्तकों के आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि श्रीशंकर स्वामी एवं सुरेश्वराचार्यजी स्वशरीर कैलास जाकर आसुतोष महादेवजी की स्तुति करके लोक कल्याणार्थ वे पांचलिंग कैलास से लाये| अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि समीप काल में कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ सिद्ध करने एवं स्वप्रचारों की पुष्टि के लिये यह पांच लिंगों की कल्पना कथा नवीन पुस्तकों में प्रकाशित कराया है और शिवरहस्य में भी क्षिप्त किया है|

अन्यत्र किसी भी प्रमाणिक एवं ग्राह्य पुस्तकों में पंचलिगं की कथा का समर्थन पाया नहीं जाता| चाहे जो हो, यदि पांचलिंगों की कथा मान लें तो अनुमान से यह स्पष्ट मालूम होता है कि श्रीशंकर स्वामी को महादेवजी ने श्रीकाशीजी में ही ये पांच लिंग दिये होंगे| काशी खण्ड में श्रीकाशी क्षेत्र को कैलास से भी अधिक पुण्यमयी स्थल माना है| "कैलासे शंकरोप्येकः काश्यां सेंवपिशंकराः" इसलिये काशी का माहात्म्य कैलाश से भी बडा-चडा माना जाता है। काशी का "भू" से कोई सम्बन्ध नहीं है और यह परमेश्वर के त्रिशूल पर स्थित है—"त्रिकंटक विराजिते"| इस भूमि में अनेकानेक क्षेत्र, पुण्य स्थल व शहर इत्यादि उत्पन्न हुए और सब का नाश भी हुआ| अनेक स्थानों का चलन भी हुआ। अनादि काल से नश्वर एवं अचलस्थिरस्थित ("वरुण-असी मध्ये") पतित पावनी भू कैलास, शंकर का धाम, केवल काशी ही है| प्रलय भी इस पुण्यक्षेत्र का नाश नहीं कर सकती| इससे यह कह सकते हैं कि जब श्रीविश्वेश्वर भी शंकराचार्य के सामने चाण्डाल रुप में आकर बाद स्व स्वरूप उनको दर्शन देकर आशीर्वाद दिया तो ऐसी दशा में हम लोग कैलास गमन के अर्थ को काशी गमन कह सकते हैं। यदि पांच लिंगों की कथा मान लें तो सम्भवतः श्री शंकर को यहीं पर पांच लिंग मिले होंगे| इन पांच लिंगों में से चार वे अपने द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों के चार शिष्य आचार्यों को दिये। उनके दिग्विजय यात्रा में ऐसा उल्लेख है कि आप एक समय चिदम्बर में पहुंच कर वहां पर महादेवजी की आपने पूजा की और वहां पर एक लिंग की प्रतिष्ठा की। इस पांच लिंग की कल्पित नवीन कथा प्रचार करनेवालों का कहना है कि श्रीशंकर ने केदार व नीलकण्ठ में दो लिंग व चिदम्बर, शृङ्गेरी में एक एक लिंग तथा अपने लिये सर्वोच्च योग लिंग का वंटवारा ऐसा किया। इस प्रकार अपने से प्राप्त हुए पांच लिंगों को पांच स्थलों में वंटवारा किया।

एक दिन श्रीशङ्करस्वामी विश्वनाथ मंदिर को जाते समय देखा कि कुछ बालकवृन्द व्याकरण के सूत्र आदि रट रहे थे। उसे सुनकर श्रीशङ्कर ने कहा कि "डुकृङ् करणे" से कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि यह सब ज्ञान अथवा मुक्ति देने योग्य नहीं हैं| उन्होंने बारह श्लोकों का एक स्तोत्र रचा जो 'भजगोविन्दम्, भजगोविन्दम' के नाम से प्रसिद्ध है/ सरस सरल सुबोध यह भजगोविन्द की मधुर स्वर लहरी जब कानों में पडती है और चित्त जब इसमें लय जाता है तो यह दुःखमय भौतिक संसार से मानव ऊंचे उठकर एक अलौकिक जकत् में पहुंचता है और उस स्थिति में ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है|

श्रीसनन्दन तथा अन्य शिष्यों के साथ श्रीशङ्कर काशी को छोडकर बद्री तीर्थयात्रा जाने के लिये निकल पडे। तब इनका वयस् प्रायः बारह वर्ष का था| हरिद्वार पहुंचकर कुछ दिन वहां पर आप निवास किये। फिर वहां से ऋषीकेश पहुंचे| यहां के विष्णु मन्दिर की मूर्ती को न देखकर उन्हें क्षोभ हुआ। उस विष्णु भगवान की मूर्ती को

गंगा तीर के एक स्थान से थोडी चेष्टा द्वारा निकालकर मन्दिर में पुनः उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। यहां का भारतजी मन्दिर प्रसिद्ध है, जिस मन्दिर का प्रतिष्ठा निर्माण श्री आचार्य शंकर ने की थी। सप्तपुरियों में से मायापुरी हरिद्वार के विस्तार के भीतर आ जाती है। इस नगर के नाम—हरद्वार, हरिद्वार, गङ्गाद्वार, कुशावर्त।

एतस्याः सलिलं मूर्ध्नि वृषाङ्कः पर्यधारयत्।
गङ्गाद्वारे महाभाग येन लोकास्थितिर्भवेत्॥
एतां भगवतीं देवीं भवन्तः सर्व एव हि।
प्रयतेनात्मना तात प्रतिगम्याभ्यवादत॥ (वनपर्व—144—9/10)

मायापुरी, हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर और भीमगोडा इन पांचों पुरियों को मिलकर हरिद्वार कहा जाता है। परम्पराप्राप्त जनश्रुति आधार पर विश्वास किया जाता है कि हरिद्वार में आचार्य शंकर का निवास स्थल वही था जिसे अब शृङ्गेरी शङ्कर मठ, हरिद्वार, कहा जाता है। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने इस शृङ्गेरी मठ में पूर्व में ही प्रतिष्ठित पाताल लिङ्ग मूर्ति की पूजा सेवादि की थी। शृङ्गेरी मठ, हरिद्वार, के अन्य मूर्तियां भी आचार्य द्वारा जीर्णोद्धार की गई थी और ये सब मूर्तियां आज पर्य्यन्त पूजा सेवादि होती हुई चली आ रही है। यह विश्वास किया जाता है कि इसी स्थल से आचार्य शङ्कर ने हरिद्वार कुम्भमेला भी प्रारम्भ की थी। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा अन्त में काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने के पश्चात् केदार-बदरी सीमा पहुंचे (जहां से आपने अपनी जन्मक्रीडा की इति कर निजधाम पहुंचे) और इस यात्रा समम में ही आचार्य शंकर हरिद्वार भी पधारे थे। उपर्युक्त घटना इसी समय घटित होने का कथा सुनाया जाता है।

अब यहां से बद्रीकाश्रम पहुंचे जहां वे बडे-बडे तपस्वी व ऋषी मुनियों से मिले। बद्री क्षेत्र से गंगा-यमुना नदी बहती है, यहीं पर नर-नारायण (जीव ब्रह्म ऐक्य भाव) जमें हुए हैं और पुराणों के अनुसार पुराकाल में जिन्होंने सहस्रकवच राक्षस से भारत के निवासियों की रक्षा की थी। वराह पुराणकार ने लिखा है–

"श्रीबदर्याश्रमं पुण्यं, यत्र यत्र स्थित: स्मरेत्।
सयाति वैष्णवं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जित:"॥

यही स्थल है जहां श्रीव्यास देव ने नर-नारायण की छाया में बैठकर वेदों का संकलन किया था और महाभारत की रचना भी की थी। आज भी मागाग्राम में व्यास गुफा के दायें बायें ओर गणेश और सरस्वती की स्मृति स्वरूप मन्दिर बनाहुआ विद्यमान है। ऐसे बद्रीकाश्रम में भगवान श्रीनारायण की मूर्ति न देखकर श्रीशङ्कर को महान् दुःख हुआ। पूछने पर मालूम पडा कि मूर्ति को अलकनन्दा नदी में फेंक दिया गया है। श्रीशङ्कर ने स्वयं अलकनन्दा में उतरकर उस मूर्ति को खोज डाला। तब उन्हें एक पद्मासन में बैठा हुआ चतुर्भुजी विष्णु की मूर्ति मिली। खंडित होने के कारण उन्होंने उसे फिर कुण्ड में फेंक दिया। फिर खोज किया तो वही मूर्ति मिली। तब उसी मूर्ति को वहां पर प्रतिष्ठा किया और पूजादि के लिये केरल देशीय ब्राह्मणों का नियोजन किया। ये ही ब्राह्मण आज पर्यन्त भी नम्बूदरी वंश के नाम से चले आ रहे हैं। स्कन्द पुराण-वैष्णव खण्ड बद्रीकाश्रम माहात्म्य-में यों उल्लेख है:—

ततोऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारदसंज्ञकात्।
उद्धृत्य स्थापयिष्यामि हरिलोकहितेच्छया॥

कहा जाता है कि पहली बार यह मूर्ति देवताओं ने अलकनन्दा में नारदकुन्ड से निकाल कर स्थापित की थी। जब बौद्धों का प्राबल्य हुआ उन्होंने इस मूर्ति को बुद्धमूर्ति मानकर पूजा जारी रक्खा। जब आचार्य बौद्धों को पराजित

करने लगे, तव यहां के बौद्धों ने इस मूर्ति को अलकनन्दा में फेंक कर तिव्वत भाग गये। आचार्य शङ्कर ने योगबल से मूर्ति की स्थिति अलकनन्दा में जानकर उसे निकाल मन्दिर में प्रतिष्ठित करायी। कहा जाता है कि कुछ काल बाद जब यहां यात्री आते नहीं थे और चावल मिलता नहीं था तव मन्दिर के पूजारी ने मूर्ति को तप्तकुन्ड में फेंक दिया और वहां से चल पडा। इसी समय पान्डुकेश्वर में किसी को आवेश हुआ और बताया कि भगवान का मूर्ति तप्तकुण्ड में है। पश्चात् इस मूर्ति को कुण्ड से निकाल कर प्रतिष्ठित की गयी।

अपने गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने श्रीगौडपादाचार्यजी का दर्शन किया और विद्याध्ययन भी कुछ काल तक किया। इस पुण्यमयी "व्यासाश्रम" में ही श्रीशंकर ने अपना भाष्य का लिखना प्रारम्भ किया। श्रीशंकर ने अपने शिष्यों को यहीं पर उपदेश देने लगे। बद्री से पुनः श्रीकाशी धाम पहुंचे। श्री काशीजी में श्री आचार्य शिष्यगणों को उपदेश देने लगे।

"चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्नसंशयाः॥"

भाष्य रचना का कार्य काशी में समाप्त होने के पश्चात् इनका वय प्रायः सोलह था। एक दिन मणिकर्णिका घाट पर श्री काशी में एक कृष्णकाय वृद्ध ब्राह्मण ने श्रीशंकर से मिलकर "तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्न निरूपणाभ्याम्" (ब्रह्मसूत्र अ 3 पा 2 सूत्र 2) सूत्र का अभिप्राय पूछा। लगातार आठ दिनों तक विवाद होते हुए भी कोई निष्पत्ति न हुई। तब शिष्य पद्मपाद ने कहाः—

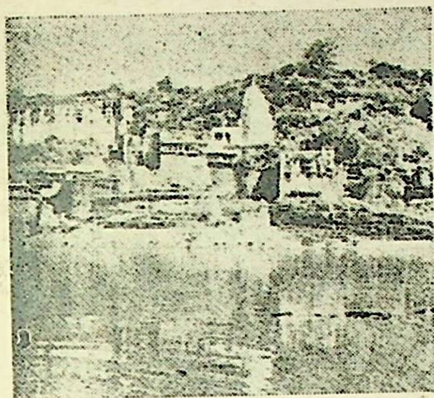
"त्वं शंकरः शंकर एव साक्षाद्
व्यासस्तुनारायण एव नूनम्।
तयोर्विवादे सततं प्रसक्ते
किं किंकरोऽहं करवाणि सद्यः॥ (माधवीय)

इस युक्ति को सुनकर श्री.शंकर ने वेदव्यासजी का स्तवन किया और क्षमा मांगी। चूंकि व्यास देवजी को हमारी पुण्य भूमि भारतवर्ष में आज भी उनको चिरंजीव माना गया है और उनका दर्शन भी देना कोई असम्भव नहीं है। चूंकि शंकर का प्रारब्ध वयस केवल सोलह वर्ष था तब व्यासजी ने उन्हें सोलह वर्ष का अधिक वर दिया ताकि वे अपने जन्म लेने के उद्देश्य को पूरा कर सकें।

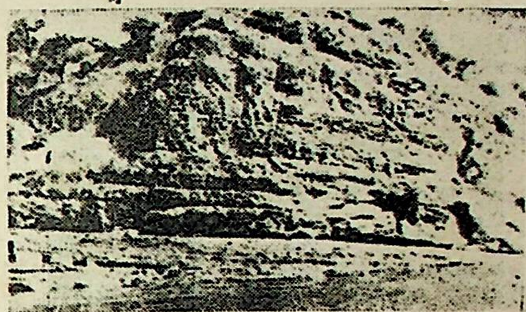
"अष्टौ वयांसि विधिना तव वत्स दत्ता-
न्यन्यानिचाष्ट भवता सुधियाऽऽर्जितानि
भूयोऽपिषोडश भवन्तु भवाज्ञया ते
भूयाच्च भाष्यमिदमारविचन्द्रतारम्"॥ (माधवीय)

आयु वृद्धि का आशीर्वाद पाकर श्रीशंकराचार्यजी दिग्विजय करने के लिये यात्रा में निकल पडे।

किसी अन्य पुस्तकों में ऐसा वर्णित है कि श्री.शंकराचार्य बद्रीकाश्रम से भाष्य रचना का कार्य समाप्त करके केदारनाथ पहुंचे। यहां के भयंकर सर्दी के कारण आचार्य ने योग दृष्टी से एक स्थान का पता लगाया जहां गरम जल की धारा प्रवाहित होती थी जिसे "तप्तकुण्ड" कहते हैं। यहां से गंगोत्रि के लिये प्रस्थान किया और फिर वे उत्तर काशी में कुछ दिन वास किये। श्रीशंकर को श्रीवेदव्यासजी (एक वृद्ध ब्राह्मण रूप में) से भेंट यहीं हुई और इन दोनों का शास्त्रार्थ "उत्तरकाशी" में होने का ऐसा वर्णन है।



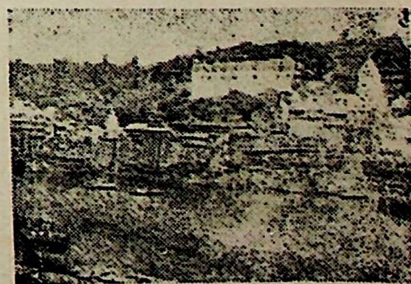
नर्मदा तट पर श्री ओंकारेश्वर मन्दिर



भृगुपतनवाली पहाडी—ओंकारेश्वर



श्रीसिद्धनाथजीका प्राचीन भग्न मन्दिर—ओंकारेश्वर



श्री ओंकारेश्वर मन्दिर (शिवपुरी)

करने लगे, तव यहां के बौद्धों ने इस मूर्ति को अलकनन्दा में फेंक कर तिब्बत भाग गये| आचार्य शङ्कर ने योगबल से मूर्ति की स्थिति अलकनन्दा में जानकर उसे निकाल मन्दिर में प्रतिष्ठित करायी| कहा जाता है कि कुछ काल बाद जब यहां यात्री आते नहीं थे और चावल मिलता नहीं था तब मन्दिर के पूजारी ने मूर्ति को तप्तकुन्ड में फेंक दिया और वहां से चल पडा। इसी समय पान्डुकेश्वर में किसी को आवेश हुआ और बताया कि भगवान का मूर्ति तप्तकुण्ड में है। पश्चात् इस मूर्ति को कुण्ड से निकाल कर प्रतिष्ठित की गयी|

अपने गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने श्रीगौडपादाचार्यजी का दर्शन किया और विद्याध्ययन भी कुछ काल तक किया। इस पुण्यमयी "व्यासाश्रम" में ही श्रीशंकर ने अपना भाष्य का लिखना प्रारम्भ किया| श्रीशंकर ने अपने शिष्यों को यहीं पर उपदेश देने लगे। बद्री से पुनः श्रीकाशी धाम पहुंचे। श्री काशीजी में श्री आचार्य शिष्यगणों को उपदेश देने लगे।

"चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्नसंशयाः॥"

भाष्य रचना का कार्य काशी में समाप्त होने के पश्चात् इनका वय प्रायः सोलह था| एक दिन मणिकर्णिका घाट पर श्री काशी में एक कृष्णकाय वृद्ध ब्राह्मण ने श्रीशंकर से मिलकर "तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्न निरूपणाभ्याम्" (ब्रह्मसूत्र अ 3 पा 2 सूत्र 2) सूत्र का अभिप्राय पूछा। लगातार आठ दिनों तक विवाद होते हुए भी कोई निष्पत्ति न हुई। तव शिष्य पद्मपाद ने कहा:—

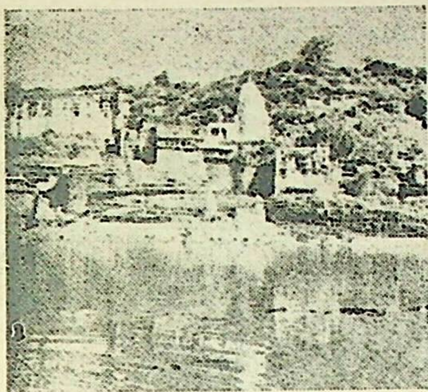
"त्वं शंकरः शंकर एव साक्षाद्
व्यासस्तुनारायण एव नूनम्|
तयोर्विवादे सततं प्रसक्ते
किं किंकरोऽहं करवाणि सद्यः॥ (माधवीय)

इस युक्ति को सुनकर श्री शंकर ने वेदव्यासजी का स्तवन किया और क्षमा मांगी। चूंकि व्यास देवजी को हमारी पुण्य भूमि भारतवर्ष में आज भी उनको चिरंजीव माना गया है और उनका दर्शन भी देना कोई असम्भव नहीं है। चूंकि शंकर का प्रारब्ध वयस केवल सोलह वर्ष था तब व्यासजी ने उन्हें सोलह वर्ष का अधिक वर दिया ताकि वे अपने जन्म लेने के उद्देश्य को पूरा कर सकें।

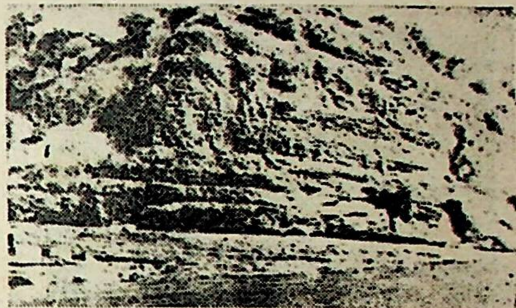
"अष्टौ वयांसि विधिना तव वत्स दत्ता-
न्यन्यानिचाष्ट भवता सुधियाऽऽर्जितानि
भूयोऽपिषोडश भवन्तु भवाज्ञया ते
भूयाच्च भाष्यमिदमारविचन्द्रतारम्"॥ (माधवीय)

आयु वृद्धि का आशीर्वाद पाकर श्रीशंकराचार्यजी दिग्विजय करने के लिये यात्रा में निकल पडे|

किसी अन्य पुस्तकों में ऐसा वर्णित है कि श्री शंकराचार्य बद्रीकाश्रम से भाष्य रचना का कार्य समाप्त करके केदारनाथ पहुंचे| यहां के भयंकर सर्दी के कारण आचार्य ने योग दृष्टी से एक स्थान का पता लगाया जहां गरम जल की धारा प्रवाहित होती थी जिसे "तप्तकुण्ड" कहते हैं। यहां से गंगोत्रि के लिये प्रस्थान किया और फिर वे उत्तर काशी में कुछ दिन वास किये। श्रीशंकर को श्रीवेदव्यासजी (एक वृद्ध ब्राह्मण रूप में) से भेंट यहीं हुई और इन दोनों का शास्त्रार्थ "उत्तरकाशी" में होने का ऐसा वर्णन है|



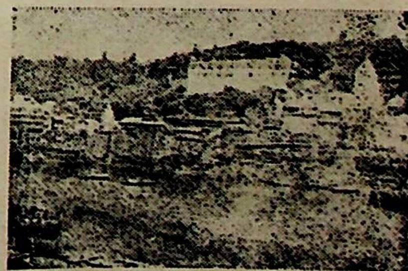
नर्मदा तट पर श्री ओंकारेश्वर मन्दिर



भृगुपतनवाली पहाडी—ओंकारेश्वर



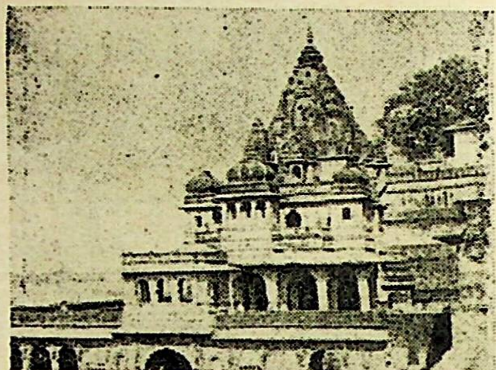
श्रीसिद्धनाथजीका प्राचीन भग्न मन्दिर—ओंकारेश्वर



श्री ओंकारेश्वर मन्दिर (शिवपुरी)



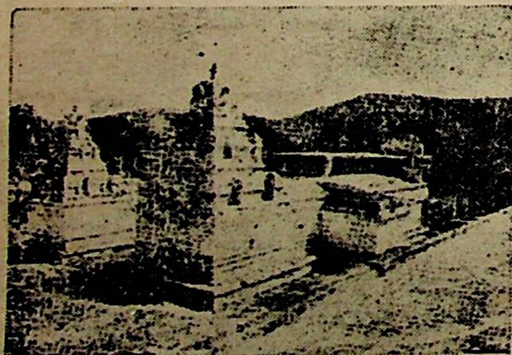
सहस्रधारा की दिव्य छटा—माहिष्मति



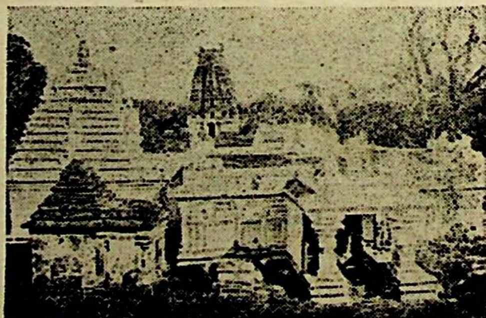
श्री अहल्येश्वर मन्दिर—माहिष्मति



श्री विश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (काशी)



श्रीनृसिंह मन्दिर—अहोबिलम



श्री मल्लिकार्जुन मन्दिर—श्री शैलम

अध्याय—3

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

श्रीशङ्कर जब प्रयाग पहुंचे तब उन्होंने त्रिवेणी संगम् में स्नान किया—"को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुञ्ज कुञ्जर मृगराऊ॥"

गंगा यमुनयोर्मध्ये यत्र गुप्ता सरस्वती।
तस्या दर्शन मात्रेण पूतो भवती पातकी।
प्रकृष्टत्वात्प्रयागोऽसौ प्राधान्याद्राजशब्दवान्।
तीर्थराज प्रयागस्य दर्शनं भुवि दुर्लभम्॥ (ब्रह्म पुराणे)

उन्होंने वहां सुना कि बौद्ध मत का खण्डनकार व वैदिक धर्म का प्रचार करनेवाले श्रीकुमारिल भट्टपाद अपने उपदेश की पूर्ती हुई देखकर अपने शरीर को अग्नि में त्रिवेणी के तट पर समर्पण करनेवाले हैं। श्रीभट्टपादजी ने अपने मन में ऐसा विचार किया कि ईश्वर का जो खण्डन करता है और निरीश्वरवाद को स्थान देता है वे ऐसा करने में महान् पाप और दोष के भागी होते हैं। इस दोष की निवृति के लिए प्रायश्चित रूप में स्वशरीर को अग्नि में समर्पण करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने ब्राह्मणत्व को बचाने के लिए एवं धर्मशास्त्र के महत्व को श्रेष्ठ करने के लिए अपना स्वशरीर त्याग कर दिया। श्रीशङ्कर वहां उपस्थित हुए जहां श्रीभट्टपाद तुषाग्नि में प्रवेश करनेवाले थे। कुमारिल को निरीश्वरवादी कहना ठीक नहीं है। कुमारिल अपने "श्लोक वार्तिक" के प्रारम्भ में ईश्वर की स्तुति की है।

"विशुद्धज्ञान देहाय त्रिवेदी दिव्य-चक्षुषे।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे"॥

कुमारिल ने कहा यह "प्रायश्चित है। मै मानसिक रूप से निर्दोष रहकर भी बौद्ध गुरु के निरादर करने का दोष के कारण जल रहा हूं। मैं ने लोगों में पुरुषार्थ पर भरोसा रखने और देश में एक ही दर्शन की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से ऐसा किया है। हे शंकर! तुम इस काम को आगे बढाना। मेरा शिष्य मंडन विश्वरूप मिश्र तुम्हारा सहायक होगा।" श्री शंकराचार्य के प्रति भट्टपाद ने अपना आदर भाव व्यक्त किया और उनके द्वारा रचित भाष्यों के तत्वों को सुना एवं पढा। श्रीशंकर को सस्त्रीक मण्डन विश्वरूप मिश्र से शास्त्रार्थ करने का अनुरोध किया। अपने शिष्य मण्डन विश्वरूप जो माहिष्मती नगर के निवासी थे उनसे विवाद द्वारा जीतने का अनुरोध करके वे तुषाग्नि में जल कर भस्म हो गये। तत्कालीन भारत का सर्व श्रेष्ठ धर्म नेता, संगठन कर्ता, विद्वान और अवतार पुरुष श्रीशंकर द्वारा ऐसे व्यक्तित्व के दर्शन की कामना करना, स्वाभाविक ही है। पर कुछ लोगों का अभिप्राय है कि श्रीशंकर की भेंट कुमारिल भट्ट से नहीं हुई क्योंकि दोनों का जीवन काल विभिन्न था। पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे कि क्यों यह अभिप्राय भूल है। अब उपलब्ध होनेवाले बाह्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कुमारिल भट्ट एवं आचार्य शंकर समसामयिक काल के थे। भेद इतना ही है कि श्री कुमारिल भट्ट नितान्त वृद्ध थे जब आचार्य शंकर बालक थे। शंकर की कामना थी कि उनके द्वारा प्रणीत ब्रह्म सूत्र के भाष्य पर कुमारिल वार्तिक लिखते। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि कुमारिल तुषानल में जलकर भस्म हो गये। दयालू धीर शंकर अवाक व आंखों से आंसूओं की झडी गिरते कुमारिल को देखते ही रह गये।

धूमायमानेन तुषानलेन संदह्यमानेऽपि वपुष्यशेषे।
संदृश्यमानेन मुखेन वाष्प-परीत पद्मश्रियमादधानम्॥ (माधवीय)

विद्वान शूर शंकर आशिष वचन से प्रेरित, देश की एकता के विचार में डूबे और आगे बढ गये।

"ब्रह्मसिद्धि" के रचयिता श्री मण्डन मिश्र और श्री मण्डन विश्वरूप मिश्र जो आश्रम लेकर सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए थे, जिन्हें वार्तिककार भी कहा जाता है, वे दोनों पृथक पृथक पुरुष थे। प्रथम उक्त मण्डन एक विद्वान गृहस्थ थे और गृहस्थ ही रहे। आपका नामकरण नाम पता नहीं चलता। दूसरे मण्डन विश्वरूप सन्यासाश्रम बाद "नैषकर्म्यसिद्धि" का रचना किये। "मण्डन" किसी का नामधेय नहीं है पर यह पदवी है। मण्डन शब्द का अर्थ अलङ्कार या भूषण या सर्वोत्तम या विद्वान मन्डली के सिरमोर भी कहा जाता है। उन दिनों में प्रकान्ड पन्डित को पन्डितमण्डली के मण्डन स्वरूप होने के कारण श्री विश्वरूप मिश्र को इस पद से सम्बोधित किया जाता था। श्री विश्वरूप गौड ब्राह्मण थे इसलिये मिश्र के नाम से आपको संबोधित किया गया था। पुराकाल के गण्य सज्जनों व विद्वानों ने मण्डन विश्वरूप मिश्र जिन्हें वार्तिककार भी कहा जाता है आपको इस आदरणीय छोटे नाम "मण्डन मिश्र" से संबोधित करने लगे। इससे अर्वाचीन काल के विद्वानों में भ्रम हुआ और इस पदवी को नामधेय मानकर दोनो मण्डन मिश्र को एक ही व्यक्ति होने का कथा लिख गये। अनेक बाह्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं। आचार्य शङ्कर काल में दो गौड ब्राह्मण व्यक्ति मण्डन मिश्र पदवी धारण करनेवाले पुरुष थे।

प्रत्येक वैदिकधर्ममतावलम्बी हिन्दू का कुमारिल भट्ट के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना यथार्थ है। क्योंकि श्रीशङ्कर के पूर्व उन्होंने अपनी विद्वत्ता से पूर्वमीमांसा के सिद्धान्तों की स्थापना की और वेद के प्रति विश्वास एवं श्रद्धा का मात्र मानव गोष्टी में पुनः उत्पन्न किया और उत्तरी देश के बौद्धों को पराजित भी किया, इस प्रकार से धर्म की नींव पुनः डाली। बौद्ध, जैन, शाक्त (वाममार्ग इत्यादि) मतावलम्बियों ने वेद के प्रति अविश्वास एवं कुअर्थ पैदा किया था। यदि पूर्व ही में कुमारिल भट्ट जी इस पुण्य वेदधर्म का पुनः उत्थान न करते तो न मालूम श्रीशङ्कर को और कितने विरोधियों का सामना करना पडता। शङ्कर के कार्य की पृष्ठभूमि तैयार करने का महत्व महापंडित कुमारिल भट्ट को ही है। कुमारिल भट्ट ने जो साहस से अपने ग्रन्थों का प्रणयन कर युगान्तर किया वह भारतीय इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना बन गई है। कुछ लोगों का कहना है कि कुमारिल भट्ट आसाम देश के ब्राह्मण थे और कुछ लोगों का (लामा श्री तारानाथ) शङ्का है कि यह महान् पुरुष द्राविड देश के थे। मिथिला के वृद्ध विज्ञ लोग कहते हैं कि कुमारिल भट्ट मिथिला निवासी मण्डन विश्वरूप मिश्र का बहनोई था। कुछ लोगकहते हैं कि कुमारिल भट्टजी का जन्म प्रयाग में हुआ। आनन्दगिरि ने लिखा है कि कुमारिल "उदग देश" के थे। "उदग" देश को काश्मीर और पञ्जाब समझा जाता है अर्थात उत्तर देश। इससे प्रतीत होता है कि कुमारिल उत्तर भारत के निवासी थे। श्री शालिकनाथ ने इनका उल्लेख "वार्तिककार मिश्र" के नाम से किया है। श्री शालिकनाथ स्वयं मीमांसक थे और कुमारिल के बाद तीन सौ वर्ष के भीतर ही उत्पन्न हुए थे। "मिश्र" की उपाधि भी उत्तरी भारत के ब्राह्मणों को संकेत करता है। कुमारिल भट्ट की शिक्षा मगध के विद्यापीठ नलन्दा में हुई थी। कुमारिल भट्ट समृद्ध गृहस्थी थे। तिब्बती अनुश्रुतियों से मालूम होता है कि आपके पास धान का विशाल खेत था और आप धनाढ्य थे। लामा तारानाथ का कहना है कि कुमारिल भट्ट धर्मकीर्ति के साथ शास्त्रार्थ करके पराजित हो गये और बौद्धधर्म स्वीकार किया। यह कहावत तिब्बतीय जन श्रुति के आधार पर है। पर इसकी पुष्टि हमारे यहां के ग्रन्थों से नहीं

होता। इनके द्वारा लिखे "तन्त्रवार्तिक" के आधार पर यह कहा जाता है कि ये द्राविड (तामिल) थे जैसे कि 'सोरू, नडा, पाम्बु, आळ, वयिरू' इत्यादि तमिल शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। इस आधार पर कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता।

कुमारिल भट्ट बाल्यावस्था में बौद्ध भिक्षु का रूप धारण कर बौद्ध मत का अध्ययन किया था। सम्भवतः नालन्दा विद्यालय के धर्मपाल के यहां अध्ययन किया हो। उनके गुरु ने वेद का खण्डन किया है। ऐसी वार्ता को सुनकर उनके आंखों में आंसू भर आया। अन्य बौद्ध मत के शिष्यों ने ऐसी घटना को देख उनपर शंका किया और निश्चय किया कि कुमारिलभट्ट को एक दिन मार डालना ही उचित होगा। इनके गुरु धर्मपाल ने इन्हें विद्यालय से हटादेने की आज्ञा दे दी। एक दिन रात को गुरु के मकान से इन्हें नीचे फेंक दिया गया। कुमारिल ने कहा "यदि वेद सत्य है तो मुझे बचावे"।

पतन् पतन् सौधतलान्यरोरुहं यदिप्रमाणं श्रुतयोभवन्ति।
जीवेयमस्मिन् पतितोऽसमस्थले मज्जीवने तच्छ्रुतिमानता गतिः। (माधवीय)

उनका केवल एक ही आंख खराब हुई क्योंकि उन्होंने "यदि" शब्द का प्रयोग किया, इसलिए कि उन्हें पूर्णरूप से वेद पर विश्वास अभी तक नहीं हुआ था।

यदीह संदेह पद प्रयोगाद् व्याजेन शास्त्र श्रवणाच्च हेतोः।
ममोच्च देशात् पततो व्यनङ्क्षीत्तदेकचक्षुर्विधिकल्पना सा॥ (माधवीय)

इसके पश्चात् वे बौद्ध मत के कट्टर विरोधी हुए और आप पूर्व मीमांसा का प्रचार करने लगे। महाराज सुधन्वाजी बौद्ध मतानुयायी थे। उसके और उसके बौद्ध मतानुयायी दरबारी पण्डितों से अट्ठाइस दिन तक लगातार विवाद करके उन्हें पराजित किया। कुछ विद्वानों का यह अभिप्राय है कि राजा सुधन्वा उज्जैनी नगर के थे और कुछ विद्वानों का यह अभिप्राय है कि राजा सुधन्वा कर्नाटक के शासक थे। तमाम मतों की संगठित शक्ति के सामने वे दब गये थे। एक कथा कहाजाता है कि सुधन्वा की रानी ऐसी शोचनीय स्थिति से दुखित थी। जब कुमारिल कर्नाटक पहुंचे तो उन्हें मालूम हुआ कि रानी चिंता में थी कि "किंकरोमि, क्वगच्छामि, को वेदान् उद्धरिष्यति।" इसके उत्तर में कुमारिल ने कहा "माविषीदवरारोहे भट्टाचार्योऽस्मिभूतले"।

जब भट्टाचार्य दरबार में पहुंचे तो देखा कि तमाम मतवालों ने राजा सुधन्वा को घेर रक्खा था और बोले:—

"मलिनैश्चेन्न संगस्ते नीचैः काककुलैः पिक।
श्रुतिदूषक-निर्ह्रादैः श्लाघनीयस्तदाभवेः"॥

कुमारिल भट्टजी ने बौद्ध पंडितों से इन विषयों का वाद-विवाद किया:—क्या वेद प्रमाण है? ईश्वर है या नहीं? सत्कर्मों से स्वर्ग की प्राप्ति होती है या नहीं? मोक्ष का स्वरूप क्या है? बुद्ध गुरु से रचित स्मृतियां निर्मूल है या समूल है? क्या बौद्ध मतानुयायी यथार्थवादी हैं या नहीं? इस मत के प्रणेता बुद्ध को महाविष्णु का अवतार मानने का क्या कारण है? क्या इस मत में एक ही रूप हैं? इत्यादि। वेदने "स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं" को सिद्ध किया है। राजा सुधन्वा ने कहा कि विद्वता और वाक् चातुर्यता से अपने सिद्धान्तों को प्रमाण कर सकते हैं पर मैं

इन सिद्धान्तों को तभी मानूंगा जब कोई अपने सिद्धान्तों को प्रमाण सिद्ध करने के लिए गिरी की चोटी से अपने शरीर को नीचे फेंक दें। बौद्ध मतानुयायी और उनके पंडितवर्ग ऐसा प्रश्न सुनकर वे सब मौन हो गये। पर ब्राह्मण वर्ग ने उसे मान लिया। राजा सुधन्वा व सहस्रों पंडित, ब्राह्मण, आदि अन्य लोगों के सामने श्रीकुमारिल भट्टजी उसी गिरी से कूद पडे पर उन्हें किसी प्रकार की भी चोट नहीं पहुंची। ऐसा दृश्य देखकर बौद्धों ने कहा कि शरीर को योग साधन से, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र की सहायता से व दवाइयों (जडी-बूटी) आदि से बचाया जा सकता है। इसलिए ऐसी परीक्षा को धर्म सिद्धान्तों की उच्चता सिद्ध करने के लिए ठीक मानना उचित नहीं है। राजा सुधन्वा ने एक घडा जिसका मुंह बन्द था उसके सामने रखकर संकेत द्वारा पूछा कि इसके भीतर क्या वस्तु है। तब बौद्धों ने कहा कि "सर्प" है और कुमारिल भट्ट ने कहा कि "सर्पशाई महाविष्णु"। आकाशवाणी द्वारा राजा सुधन्वा को यह मालूम हुआ कि कुमारिल भट्ट का कथन ही सत्य है और आपने स्वयं घडे की वस्तु की जांच भी की। राजा सुधन्वा बौद्ध मत को छोडकर कुमारिल भट्ट के सिद्धान्तों को ग्रहण करके उनका अनुयायी वन गया। राजाने अपने राज्य से बौद्ध मतावलम्बियों को निकाल देने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार श्रीकुमारिल भट्टजी ने भारत भूमि पर अलोप वैदिक धर्म की नींव को पुनः पूर्ण रूप से डाल दिया। श्रीगुरुशङ्करजी को भारत देश में विरोध भी इस कारण से वहुत कम हुआ।

अहिंसावादी बौद्धों को इस प्रकार की परीक्षा भी युक्त नहीं और साथ साथ यह भाती भी नहीं। इसलिए यह प्रचलित कथा कहां तक सत्य है यह सिद्ध करना भी कठिन है। पर कुछ लोग इस कथा को जैनियों पर दोषारोपण करते हैं और कहते हैं कि राजा सुधन्वा जैनमत का श्रद्धालु था। पर यह कथा भी कहां तक सत्य है उसे सिद्ध करना कठिन है। राग द्वेष आने पर कौन मनुष्य कितना पतित हो जाता है और अपने सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये क्या नहीं कर सकता है, ऐसे विषय पर विचार करनेसे सम्भवतः वह कथा सच भी मानी जा सकती है।

चीनी यात्री हुवनसाङ्ग (630-645 ई०) ने अपने यात्रा विवरण पुस्तक में मंजुश्रीबुद्धसत्व की भविष्यवाणी का वर्णन किया है, यथा—"उस दिव्यपुरुष ने कहा कि मैं मंजुश्रीबुद्धसत्त्व हूं। परन्तु तू (हुवनसाङ्ग) अब यहां से से) चला जा क्यों कि दसवर्ष के बाद शिलादित्य मृत्यु को प्राप्त होगा और उसके पश्चात भारतवर्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा और चारों ओर भयानक खून-खराबी होगी एवं मनुष्य एक दूसरे को मार डालेगें।" हुवन साङ्ग के समय में पूर्वमीमांसिक विद्वानों ने बौद्धमत पर प्रहार कर रहे थे। यह समय कुमारिल भट्ट का था। यह कहना उचित होगा कि हुवन-साङ्ग ने जो भविष्य वाणी मंजुश्रीबुद्धसत्त्व के मुखसे कहलाया है वह उस समय की वर्तमान घटनायें थीं। हुवनसाङ्ग के वर्णन से प्रतीत होता है कि आपके समय में भारत में बौद्धों को नष्ट-भ्रष्ट करने और मार डालने का कार्य प्रारम्भ होगया होगा। 700 ई० के बाद आचार्य शङ्कर के काल में यह नष्ट-भ्रष्ट कार्य एवं मार डालने का कार्य अधिक हो गया होगा।

कुमारिल के शिष्यों में तीन मुख्य हैं:—(1) प्रभाकर (2) मण्डन विश्वरूप (3) उम्बेक (अथवा भवभूति)। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि विश्वरूप व उम्बेक अभिन्न व्यक्ति हैं।

श्रीशंकरजी प्रयाग से माहिष्मति को चल निकले। कल्किपुराण के प्रथमांश, तृतीयाध्याय, 32—33 श्लोक में "माहिष्मत्यां निजपुरे" का टिप्पणी देते हुए लिखते हैं "माहिष्मति" नर्मदा नदी के तट पर बसा हुआ है। इसका वर्तमान नाम चोलीमहेश्वर है। अजमेर-खंडवा लाइन पर ओंकारेश्वर रोड के पास बडवाहा स्टेशन है। बडवाहा से माहिष्मती (महेश्वर) 35 मील दूर है। महेश्वर नगर का प्राचीन नाम माहिष्मती पुरी है। यह नर्मदा के उत्तर तटपर बसा है। यहां राजराजेश्वरी मन्दिर भी है। रास्ते में एक व्यक्ति मण्डन-मिश्र (यह पुरुष मण्डन विश्वरूप से

पृथक) श्रीशंकर की ख्याति सुनकर उनसे मिलने के लिए आया। यह गृहस्थ मण्डन मिश्र जैमिनि भाष्य के पंडित एवं अनुयायी थे। श्रीशंकर के भाष्यों को सुनकर तथा उनसे विवाद करके पश्चात् उनके मतानुयायी होकर स्वयं धर्म-प्रचार करने लगे और वह गृहस्थ धर्म में ही रह गये। "मण्डन" शब्द का अर्थ सर्वोत्तम या सर्वोच्च अथवा विद्वान मंडली के सिरमोर है और प्रायः उन दिनों में प्रकान्ड पंडित को पन्डित मंडली के मण्डन स्वरूप होने के कारण उन्हें इस पद से सम्बोधित किया जाता था। वार्तिककार का नाम मण्डन विश्वरूप मिश्र था न कि केवल मण्डन मिश्र। माधव के अनुसार इनके पिता का नाम हिममित्र था। पर आनन्दगिरि ने इन्हें कुमारिल भट्ट का बहनोई बतलाया है। यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि इसका कोई प्रमाण अभीतक नहीं मिला है। मैथिली पंडितों का कहना है कि मण्डन मिश्र मिथिला निवासी थे और दरभंगा के पास उनका निवास स्थान बताते हैं, जहां पर आचार्यजी श्री भारती के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। माधव के अनुसार माहिष्मति उनका निवास स्थान है। यह स्थान मध्य भारत की इन्दौर रियासत में नर्मदा के किनारे महेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। माहिष्मति या महेश्वरी नाम की एक छोटी नदी भी है जो नर्मदा से महेश्वर (माहिष्मती) नगर से पूर्व थोडी दूर पर मिलती है। डा० राजेन्द्रनाथ घोष इस स्थान को देख भी आये और लिखते हैं कि वे स्वयं इस स्थान को खोद करके देखा तो उनको भस्म समान मिट्टी मिली। सम्भवतः इस स्थल पर यज्ञयागादिक हुआ होगा, ऐसा अनुमान करते हैं। संगम पर महेश्वरी के दोनों ओर कालेश्वर और ज्वालेश्वर मन्दिर हैं। नगर के पश्चिम मतङ्ग ऋषी का आश्रम है और समीप में भतृहरि गुफा है। माहिष्मती पुरी को गुप्तकाशी भी कही जाती है। इसका महत्व काशी के समान है।

श्रीशङ्कर नदी तट पर अपना डेरा लगाकर माहिष्मति नगर में मण्डन विश्वरूप मिश्र की खोज में निकल चले। श्रीशङ्कर ने पूछा कि मंडन मिश्र का घर कहां पर है तब आपको उत्तर इस प्रकार मिला :—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥

फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौ कः॥

जगद्ध्रुवंस्याज्जगदध्रुवंस्यात्कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ (माधवीय)

श्रीमण्डन विश्वरूप मिश्र एक तीव्र कर्मकान्डी पुरुष थे। आप ज्ञानकाण्डावलम्बियों के विरोधी भी थे। श्रीशङ्कर मण्डन विश्वरूप मिश्र के घर पहुंचे। तब शङ्कर ने देखा कि मकान के सब किवाड बन्द हैं। उस समय मंडनमिश्रजी श्राद्ध कर रहे थे। तब शङ्कर अपने योगबल द्वारा भीतर आङ्गन में पहुंच गये और आप मण्डनमिश्र के समीप जाकर बैठ गये। तब मण्डनमिश्र को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और निरादर पूर्वक बोले कि "रे मुण्डी! तुम कहां से यहां पर क्यों आये हो?" तब शङ्कर ने कहा कि "ग्रीव तक मैं मुन्डी हूं और आना जाना तो हमारे में नहीं है"॥

कुतोमुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छयतेमया।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि॥ (माधवीय)

प्रवृत्तिशास्त्र के वचनानुसार श्राद्धादि कर्मों में कोप करना अति निषेध माना गया है, अतः श्राद्ध के पितृ आवाहित ब्राह्मणों ने कहा "हे मन्डनमिश्र! शान्त मुद्रा को धारण करो।"

अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः।
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्ध कर्मणि॥

इसके पश्चात् मण्डनमिश्र और श्रीशङ्कर के बीच वितण्डावाद का प्रहार वाक-वाणी द्वारा होता रहा। मण्डनमिश्र के श्राद्ध अतिथी ब्राह्मणों ने जिन्हें श्रीव्यास एवं श्रीजैमिनी का ही रूप माना जाता है उन्होंने कहा कि गृहस्थों को भिक्षुओं का आदर व सत्कार पूर्वक भिक्षा कराना ही परम धर्म है। तब मण्डनमिश्र ने भिक्षा का उन्हें निमन्त्रण दिया। तदनुसार श्रीशङ्कर ने कहा कि हम तो शास्त्रार्थ रूपी भिक्षा के लिए आये हुए हैं और मैं श्रुति पथ का निर्णय मांगता हूं। तब मण्डनमिश्र ने उस वार्ता को अङ्गीकार किया और दोनों ने यह भी स्वीकार किया कि मण्डनमिश्र की धर्मपत्नी सरसवाणी (उभयभारती) मध्यस्था की पदवी को ग्रहण करेगी और जीतनेवाले के मत को हारनेवाला मान लेना ही होगा। तब मण्डनमिश्र ने अपने नित्यप्रति के कर्मानुष्ठानों को समाप्त करके पश्चात् विवाद के लिये तैयार हुए। दोनों ने अपनी अपनी प्रतिज्ञा को इस प्रकार से किया। श्रीशङ्कर—"ब्रह्म एक, सत्, चित्, निर्मल तथा यथार्थ वस्तु है, उससे भिन्न सम्पूर्ण जगत् नितान्त मिथ्या है। ब्रह्म के अज्ञान से प्रपञ्च सद्रूप दीखता है और ब्रह्म के ज्ञान से ही प्रपंच का नाश होता है जैसे शुक्ति अज्ञानवश से चांदी का रूप धारण कर लेती है और शुक्तिक ज्ञान से फिर वह मिथ्या हो जाती है। तब जीव बाहरी पदार्थों से हटकर अपने विशुद्ध रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है और जन्म मरण से रहित होकर मुक्त हो जाता है। ऐसा ही श्रुति वाक्यों का भी प्रमाण है। यदि मैं इस प्रतिज्ञा से हार जाऊंगा तो काषायवस्त्रों को उतारकर गृहस्थ बन जाऊंगा।" तब श्रीमण्डनमिश्र ने कहा :—"वेद का कर्म-कांड भाग ही प्रमाण है और उपनिषद प्रमाण कोटि में नहीं है। वह चैतन्य ब्रह्म का प्रतिपादन कर सिद्ध वस्तु का वर्णन करता है। वेद विधि का प्रतिपादन करता है परन्तु उपनिषद विधि का वर्णन कर ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। मुक्ति कर्म के द्वारा होता है। यदि हम इस प्रतिज्ञा रूप से पराजित किये जायेंगे तो आपका शिष्य बनकर सन्यास धारण करूंगा"। इन दोनों की परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा होते ही श्रीसरसवाणी (उभयभारती) इन दोनों की मध्यस्था बनकर बैठ गयी और दोनों के गले में पुष्पों की माला डालकर कहा कि जिसकी माला कुम्हला जायेगी उसी को जाना जायगा कि वह पराजित हुआ है।

मन्डन ने कहा कि जो आप कहते हैं कि एक ही ब्रह्म है दूसरा नहीं है इसमें कोई वेद वाक्य का भी प्रमाण नहीं है। यह प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि जड चैतन्य भेद से ही अनेकानेक जीव उत्पन्न होते हैं। सुषुप्ति से जिस समय उत्थान होता है तब मनुष्य कहता है कि "सुखमस्वांसन किञ्चन वेदिषम्" (ऐसा सुख में सोया कि मैं ने कुछ भी जान न पाया)। जडता और सुख दोनों का इसको स्मरण होता है। यदि जीव चेतन है तो उसको जडता का स्मरण न होना चाहिये पर जडता का स्मरण होता है। इससे जाना जाता है कि जीव जड चैतन्य दोनों के रूप में है। इससे सब में एक चेतनता भी सिद्ध नहीं होता है। यदि सब में एक चेतन विद्यमान हो तो एक को सुख होने से सबको सुख होना चाहीये। एक को दुःख होने से सबको दुःख होना चाहिए। पर ऐसा तो कहीं नही दिखाई देता। इससे प्रतीत होता है कि चेतन भी अनेक हैं।

श्रीशङ्कर ने कहा—"एकमेवाद्वितीयं" 'ब्रह्मनेह नानास्तिकिंचन' ब्रह्म एक है। अद्वितीय है। द्वैत से रहित है। इस जगत में जो कुछ दिखाई पडता है वह वास्तव में सत्य नहीं है। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः

सर्वव्यापि सर्वभूतान्तरात्मा" एक जो परमात्मा है सर्वभूतों में छिपा हुआ है। सर्वव्यापि है। सर्वभूतों का अन्तरात्मा भी है। "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय" एक ही चेतन में माया के सम्बन्ध से अनेक रूप होने की इच्छा हुई और उससे प्रजारूप करके अनेक उत्पन्न हुए। "तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्" प्रथम लिंगशरीर को उत्पन्न करके आप ही उसमें प्रवेश किये। "तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः। तदेवशुक्रं तद्ब्रह्म तदापः स प्रजापतिः"॥ वही चेतन अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुद्धब्रह्म, जल, प्रजापति आदि के रूप में हैं। "त्वं स्त्री पुमांनसि त्वं कुमार उतवा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः" तुम ही पुरूष, स्त्री, कुमार, कुमारी हो और तुम्हीं वृद्ध होकर दण्ड लेकर चलते हो और तुम्हीं सर्वरूप हो। ऐसे श्रुति वाक्यों द्वारा चेतन के एक होने का प्रमाण सिद्ध होता है। चन्द्रमण्डल एक वित्ता भर दीखता है और ज्योतिष शास्त्र में इसके विस्तार का प्रमाण दस हजार योजना का लिखा हुआ है। यदि कहा जाय कि यह भ्रम है तो आत्मा का नानात्मक ज्ञान भी भ्रम है क्योंकि निरवयव निराकार आत्मा का भेद उपाधि से ही होता है। आत्मा एक ही है। यह कहना कि जीव न जड है, न चेतन, न उभयरूप सो भूऊ है। क्योंकि ऐसा कहना वेद और युक्ति के विरूद्ध है। श्रुति चेतन ब्रह्म को ही ब्रह्म रूप कहता है जैसे, "अयमात्मा ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" "तत्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मि"। जड व चेतन दोनों ही परस्पर के विरोधी पदार्थ हैं। जैसे शीत व उष्ण एक स्थान में रह नहीं सकते, इसीप्रकार जीव में जडता भूलकर भी कदापि रह नहीं सकती। "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" ब्रह्म सद्रूप, ज्ञान, अनन्त स्वरूप है और प्राणी इस ज्ञान द्वारा अनन्त स्वरूप व चैतन्य स्वरूप जीव को ही बोध करता है। एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेकानेक घडों में पडता है और प्रतिबिम्ब का भेद-भाव नहीं होता है। उपाधियों के भेद-भाव से प्रतिबिम्ब में भेद प्रतीत होता है। हांथ में दुःख होने से पांव में दुःख नहीं होता और पांव में सुख होने से हाथ में सुख नहीं होता। अखिल ब्रह्मान्ड व शरीर में एक ही आत्मा व्याप्त है।

'ऋतेज्ञानान्न मुक्ति' ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होता। 'ज्ञाने नेवतुकैवल्यम्' आत्मज्ञान से ही कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त होता है। "न कर्मणा न प्रजया" कर्मों और सन्ततियों से मुक्ति नहीं होती है। स्वर्ग भी एक लोकान्तर है। इसलिये वह उत्पत्ति व नाशवान है। यदि स्वर्ग की प्राप्ति मोक्ष माना जाय तो वह अनित्य हो जायगा। मोक्ष नित्य है "नसपुनरावर्तते"। मंत्र रूप देवता नहीं है। क्योंकि देवता भी मनुष्य की तरह व्यक्तिमान हैं। "वज्रहस्तः पुरन्दरः" वज्रों को हाथ में लिये हुए इन्द्र हैं, इन वेद वाक्यों से देवताओं को मूर्तिमान बताते हैं। कर्म का नाम ईश्वर नहीं है। क्योंकि कर्म नाम क्रिया का है। "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" परमात्मा ने जगत की उत्पत्ति काल में सर्वप्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया और वेदों को दिया। वही जगत्कर्ता ईश्वर हैं। कार्य स्वतः उत्पन्न नहीं होता, बल्कि उत्पन्न करनेवाला कोई दूसरा ही होता है। इस प्रकार बहुत दिनों तक इन दोनों में शास्त्रार्थ होता रहा।

मण्डन ने पूछा कि आप जो कहते हैं कि जीव ईश्वर का अभेद है इस विषय को फिर से मुझे समझाइये। श्रीशङ्कर ने कहा कि एक ही आकाश घटमटादि उपाधियों को भेद करके घटाकाश व मटाकाश के नाम रूप में भेद को प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार उपाधियों में भी आकाश का भेद नहीं हैं। आकाश निरवयव है। केवल व्यवहार में ही है। क्योंकि उपाधियों के नाश काल में आकाश का भेद नहीं है और चलन काल में आकाश चलता नहीं है। केवल उपाधियां ही चलती हैं। इसी प्रकार निरवयव निराकार विभु चेतन है और शरीर के भेद से उसका भेद नहीं होता। वह सर्व व्यापक है। परिच्छिन्न वस्तु चलती फिरती है और व्यापकता में चलना फिरना आदि नहीं होता। वेद में कहा है:—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्य बाह्यतः ॥

उद्दालक ऋषी ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को "तत्वमसि" महावाक्य का उपदेश दिया है। वेदवाक्य भी जीव व ब्रह्म के अभेद का ही कहता है। बिना अर्थवाले शब्दों का जप करना (अवैदिक तांत्रिक मंत्र) भी व्यर्थ है। वेदों के ज्ञान कान्ड में उल्लेख पाया जाता है कि महावाक्य क्रिया का अंग नहीं है। जीव व ब्रह्म के अभेद बोधन करनेवाले वाक्यों (जीव ब्रह्म ऐक्य बोध) को महावाक्य कहते हैं। दृष्टि विधान करनेवाले जो वाक्य हैं उनमें प्रेरणा आती है यथा "मनोब्रह्मेत्युपासीत" "अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत" आदि। महावाक्यों में कोई भी प्रेरणा शब्द नहीं हैं। महावाक्य यह नहीं कहता कि जीव को ब्रह्मस्वरूप मानकर उसकी उपासना करो। किन्तु "असि" पद है–अर्थात् तुम ही ब्रह्म हो। विधिवाक्यों में फल का भी विधान किया गया है और महावाक्यो में फल का विधान नहीं किया गया है। केवल जीव व ब्रह्म व ऐक्य बोधक पद ही महावाक्यों में सूचित है। यदि विधि से मुक्ति जाना जाय तब मुक्ति भी अनित्य हो जायगी। मोक्ष का जन्म कर्मों से नहीं है। इसलिये ज्ञान की प्राप्ति श्रवण, मनन, निधिध्यासन से ही प्राप्त हो सकती है। श्रुति ऐसा ही प्रमाण रुप से कहता है। "आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः" ॥ (बृहदारण्यक उपनिषद्)

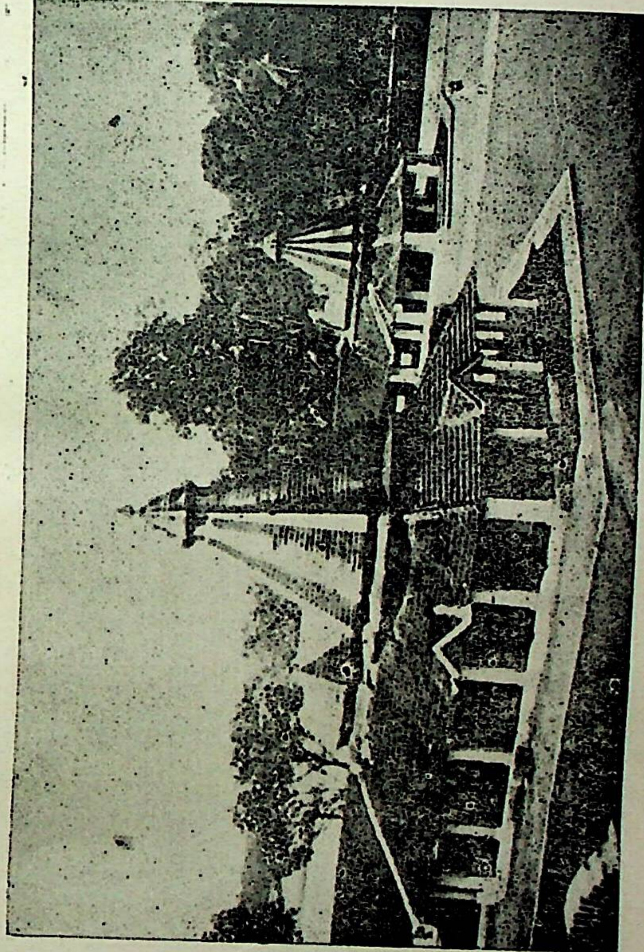
मन्डन ने कहा कि जीव अल्पज्ञ है व ईश्वर सर्वज्ञ है और अल्पज्ञ को सर्वज्ञ के साथ एकता कभी भी हो नहीं सकती। यदि हो जाय तो सर्वज्ञ (ईश्वर) अल्पज्ञ हो जायगा और अल्पज्ञ (जीव) सर्वज्ञ हो जायगा। पर श्रुति वाक्य दोनों के अभेद को नहीं कहता। किन्तु दोनों की तुल्यता को ही कहता है। क्योंकि चेतन ही दोनों का तुल्य हैं।

श्रीशङ्कर ने कहा श्रुति में तुल्यता वाचक कोई भी शब्द नहीं है। केवल अभेद बोधक "असि" आदि शब्द हैं और हेतु से तुल्यता श्रुति भी नहीं कहती है। किन्तु वह भी उसे अभेद ही कहती है। अभेदज्ञान भागत्याग के लक्षण से होता है। जीव के अल्पज्ञत्वादिक गुण को त्यागकर व ईश्वर के सर्वज्ञत्वादिक गुण को त्याग कर पश्चात् दोनों चेतनाओं की एकता हो जाती है।

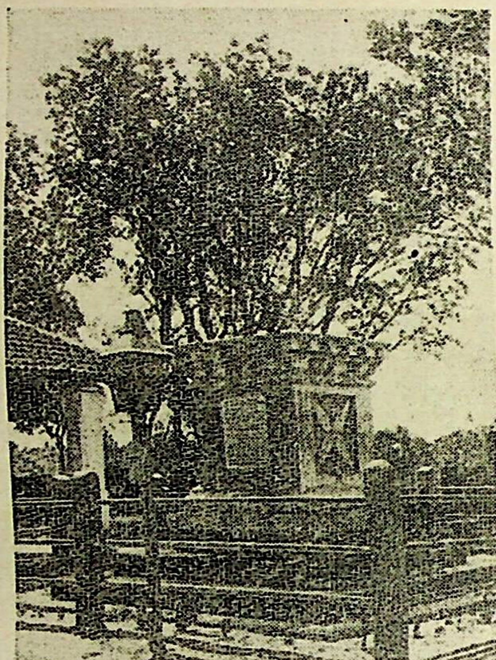
मन्डन :—जीव को ब्रह्म का उपासक और ब्रह्म को उपास्य कहा है पर उपास्य और उपासक का भाव भेद भाव वालों का ही है। जीव को कर्म का कर्ता और ईश्वरको फल प्रदाता कहा है। जीव फल का भोक्ता है और ईश्वर अभोक्ता है। बुद्धि रूपि वृक्ष में केवल एक कर्मों के फल का भोक्ता और दूसरा अभोक्ता है। वह केवल प्रकाश ही करता है।

श्रीशंकर :—जीव व ईश्वर के भेद भाव को शास्त्र प्रतिपादन करता है। लेकिन निरूपाधिक भेद को प्रतिपादन नहीं करता। जीव की उपाधी अविद्या है और ईश्वर की उपाधी माया है। ये दोनों उपाधियों के सहित भेद को प्रतिपादन करता है। दोनों उपाधि भी कल्पित हैं। इसलिए भेद भी कल्पित हैं। जितने भेद के प्रतिपादक वाक्य हैं उन सब का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है किन्तु आरोप्य में तात्पर्य है।

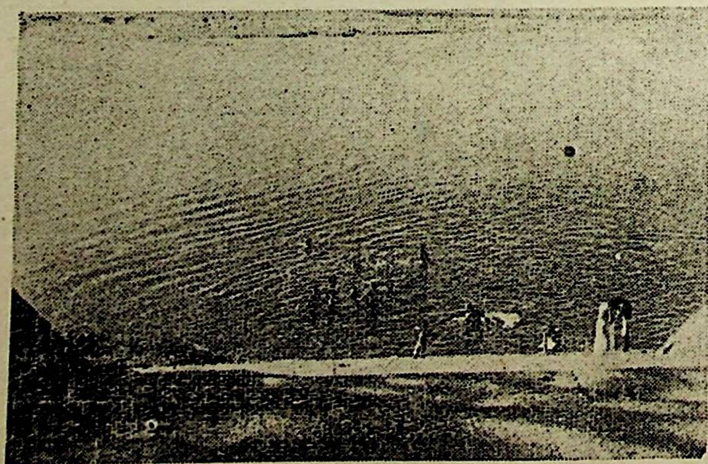
इस प्रकार के भेदाभेद के विवाद परस्पर दोनों में बहुत दिन तक हुए और अन्त में मन्डन मिश्र की हार हुई। उनके गले की माला भी कुम्हला गयी। उनकी धर्मपत्नी सरसवाणी (उभयभारती) अपने पति मन्डनमिश्र एवं



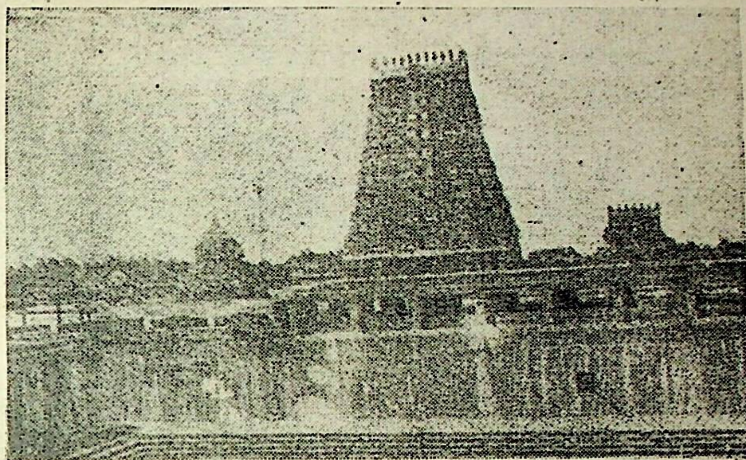
काली मन्दिर



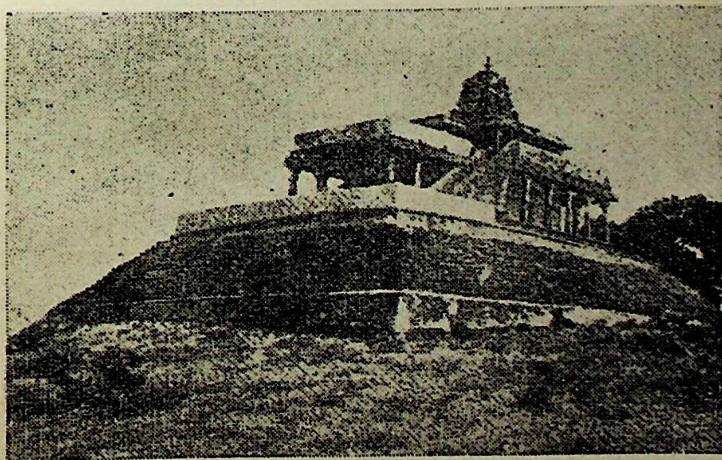
कालटी—मातु श्री आर्याम्बा की समाधि



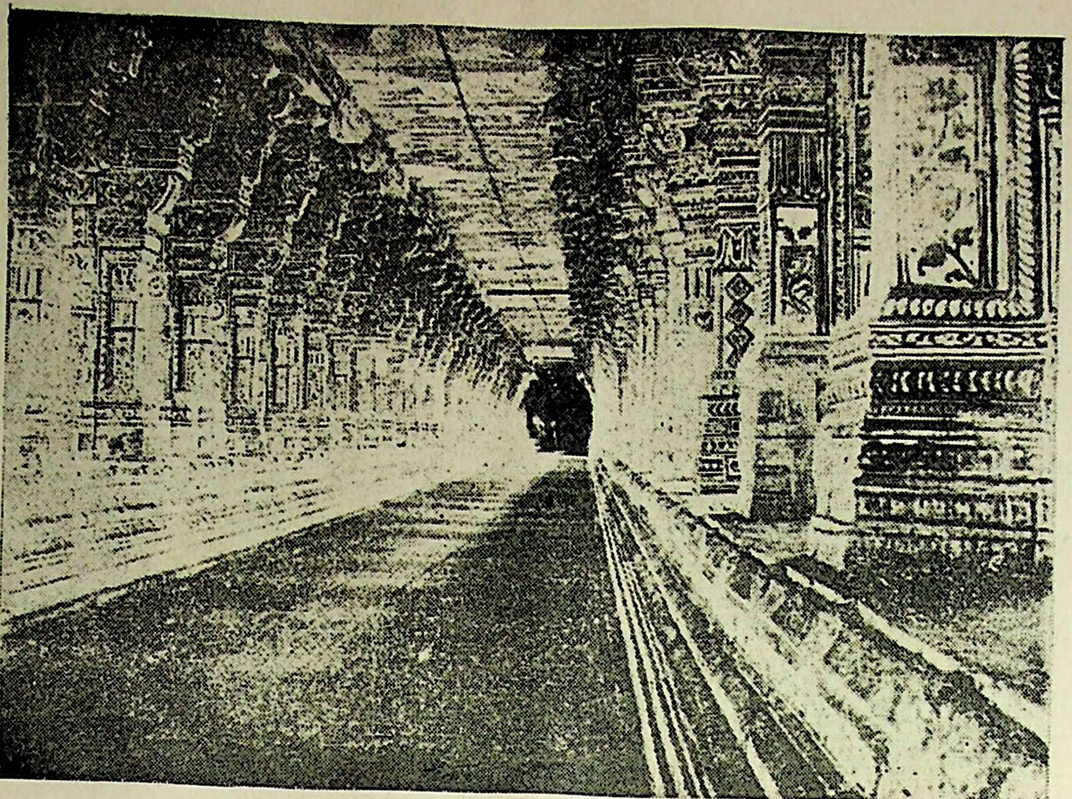
कालटी—पूर्णा (चूर्णा) नदी व घाट



श्रीरामेश्वर मन्दिर तथा माधवकुण्ड



राम झरोखा (रामेश्वर के समीप)



रामेश्वर मुख्य मन्दिर की एक प्रदक्षिणा

श्रीशंकर दोनों को समान रूप में "भिक्षा" के लिये बुलाई। इसके पूर्व दिनों में अपने पति को "वैश्वदेव" और श्रीशंकर को 'भिक्षा' के लिये पृथक पृथक बुलाती थी। पति की हार से एवं सन्यास लेने के कारण अपनी पाई हुई शाप का मुक्ति दिन जान गई। मन्डन मिश्र इस प्रकार पराजित होकर कर्म सिद्धान्त के प्रवृत्तकाचार्य श्रीजैमिनी ऋषि द्वारा वैदिक धर्म के परम तात्पर्यों को समझकर और अपने प्रतिज्ञानुसार सन्यासाश्रम लेने का निश्चय किया। इस समय उनकी सुशीला धर्मपत्नि सरसवाणी ने अपने पतिदेव मन्डन विश्वरूप से कहा कि आप सम्पूर्ण रूप से अभी हारे नहीं हैं। क्योंकि मैं अभि आपकी अर्धांङ्गिनी हारी नहीं हूं। जबतक मुझसे शास्त्रार्थ करके हमको हरा न पावें तब तक आपकी पूरी हार नहीं होगी। शंकर जब स्त्री से शास्त्रार्थ करने को तैयार न हुए तो श्री शारदा ने कहा कि पूर्व युगों में याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने गार्गी और सुलभा से शास्त्रार्थ किया था तो आपको मुझसे शास्त्रार्थ करने में आपत्ति क्या है? जब शंकर जी भारती के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हुए, तब भारती ने अर्थ, धर्म, मोक्ष, शास्त्रों के ऊपर शास्त्रार्थ करने लगी और जब शंकर को हरा न सकी तो भारती ने कामशास्त्र विषयक प्रश्न पूछा। चूंकी श्रीशंकर बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचारी थे और कामशास्त्र जानते ही न थे उन्होंने भारती से एक महीने का अवकाश मांगा और कहा कि इसके पश्चात् आकर "मैं शास्त्रार्थ करूंगा"।

श्रीशङ्कर ने अपने योगसाधन द्वारा ध्यानस्थित होकर निश्चय किया कि अमरूक राजा के शरीर में परकाय प्रवेश करके कामशास्त्र सीख सकते हैं। अपने शिष्य पद्मपाद को यह विषय समझाकर आप लौटने तक अपने उपाधि की रक्षा करने को कहा। इसे सुन पद्मपाद ने इसका विरोध किया। शङ्कर ने समझाया कि सब इच्छाओं का मूल तो संकल्प है। संसार को हेय दृष्टि से देखनेवाला पुरुष कार्य का कर्ता भी हो तो उससे क्या? संसार कभी बन्धन में डाल नहीं सकता। संसार कल्पित और असत्य है। ज्ञान प्राप्त पुरुषों को कर्म के फल कदापि भी लिप्त नहीं कर सकते। अहंकार से फल प्राप्त होता है और ज्ञान अहंकार बुद्धि को नष्ट कर देता है। ऋग्वेद के दिये दृष्टान्त एवं बृहदारण्यक उपनिषद् में दिये दृष्टान्त देकर यह कहा कि सुकृत दुष्कृत के फल कर्ता को स्पर्श नहीं करते। श्री शङ्कर वासनाहीन थे। बाद में शिष्यों ने उनके शरीर को एक गुफा में छिपाकर रख दिया। शङ्कर ने अपने स्थूल शरीर को छोड केवल लिंग शरीर से युक्त होकर योग बल द्वारा राजा के शरीर में प्रवेश किया। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन तथा बुद्धि, इन सत्तरह वस्तुओं के समुदाय को लिंग शरीर कहते हैं। जीव इसी शरीर के द्वारा दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। अमरूक राजा के मृतक शरीर में जीव आते देखकर प्रजा व मंत्रि सब उत्सुक होगये और फिर से राजसिंहासन पर उनको बैठा दिया। राजा की अपूर्व बुद्धि, गुण, तेजस को देखकर उनलोगों को शंका हुई कि इस मृतक शरीर में (पुनर्जीवित राजा के शरीर में) अवश्य ही कोई महान ने प्रवेश किया होगा। ऐसा समझकर उन्होंने अपने राज्य के कोने कोने में ढूंढकर सब मृतकों को जला देने की आज्ञा दे दी। इधर श्रीशङ्कर ने काम शास्त्र के तात्पर्य को सीख लिया और करीब एक माह का अन्त होनेवाला था। इससे इधर शिष्यों को चिंता होने लगी और वे अपने गुरु से मिलने के लिए अमरूक के राज्य में पहुंचे। गवैया का वेष धारण करके राज दर्बार में पंहुचकर अपने गुरु जो नरपति रूप में विद्यामान देखकर उन्हें बोध कराया।

भृङ्ग तव संगतिमपास्य गिरिश्रृङ्गे तुङ्गविटपिनी संगमजुषित्वदङ्गे।
स्वाङ्गरचिताः सकलुषान्तरङ्गाः संगमकृते भङ्गमुपयन्ति भृङ्गाः॥ (माधवीय)-

बाद में शिष्य गुफा की ओर लौट गये। ऐसे समय में राजकर्मचारी गुफा में एक प्रेत को देखकर

जलाने की तैयारी कर रहे थे। तब पद्मपाद ने बहुत दुखित हो लक्ष्मीनरसिंह की स्तुति की| राजा वहां दरबार में मुर्छित होकर गिर गया और फिर यहां पर शङ्कर उठकर खडे हो गये।

योगतत्त्वोपनिषद में कहा है कि आकाशगमन एवं ऐसे आश्चर्यजनक अपूर्व क्रियाकलापों से मोक्ष प्राप्त नहीं होते और ये सब मोक्ष प्राप्ति के भी बाधक हैं। ब्रह्मात्मैकज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होता है। आचार्य शङ्कर ने इस भौतिक शरीर पर अभिमान रखने वा करनेवालों का विरोध और खन्डन भी किया है| अपने संपत्ति व काम द्वारा उत्पन्न होनेवाले पापों का निर्देश भी की है। अर्वाचीन काल के कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर समान अद्वितीय पुरुष का परकाय प्रवेश कथा बिलकुल उचित नहीं है। यद्यपि परकाय प्रवेश प्रचलित कथा जो सर्व शङ्कर चरित्र व दिग्विजयों में पाये जाते हैं और ऐसे महान अवतार पुरुषों के चरित्रों को जो निवृत्ति मार्ग दिखाने के लिये ही आये हैं उनको भाता नहीं तथापि यह कथा वृद्ध परम्परागत आने से यहां उसका उल्लेख किया गया है।

अर्वाचीनकाल के लोगों को सन्देह होता है कि परशरीर में प्रवेश करना और स्वशरीर में पुनः आगमन होना केवल एक कल्पित कथा है और यह साध्य नहीं है। पतंजली योग सूत्र 3/18 "बन्धकारण शैथिल्यात्प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः" के अनुसार स्पष्ट रूपेण ज्ञात होता है कि परकाय प्रवेश एवं स्वशरीर में पुनः आगमन करना सुलभ व साध्य है। बन्धकारण शैथिल्यात्—शरीराभ्यन्तरे चित्तस्ययो बन्धः—बंधनं—प्रतिष्ठा—अन्यत्रगति प्रतिबन्धः—ज्ञान हेतुः सम्बन्ध विशेषः तस्य यत् (कारणं)—कारणद्वयम— आरब्ध धर्मः, अधर्मश्चेतिद्वयं तस्य (शैथिल्यात्)—"संयमेन"—धारणयाध्यानेन समाधिना च बन्धागमत्वात् (प्रचार संवेदनाच्च)—प्रचाराणां—प्रचरत्येभिरेभिरिति वा (प्रचाराः)—चित्तस्य गमनागमनाध्वभूतानाड्यस्तेषां (संवेदनात्)—सं—संयमेन—धारणयाध्यानेन समाधिना च (वेदनं)—साक्षात्करणं तस्माच्च (चित्तस्य)—योगिनः चित्तस्य (परशरीरावेशः)—स्वशरीरान्निर्गत्य (परस्य)—अन्यस्य—जीवतो मृतस्य वा (शरीरे)—काये (आवेशः) प्रवेशो—भवतीति। श्रुति के अनुसार "सत्रिधा भवति पञ्चधासप्तधानवधा" ब्रह्मसूत्र (4/4) और शारीरक भाष्य में "सौभरेरभि निर्मित विविध देहस्य पर्यायेण पंचाशता भान्धात्कन्याभिर्विहारः पौराणिकैः स्मर्यते" (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 4/4/11) और अभावाधिकरण में "अनेक शरीरं सृष्ट्वा तेषु प्रविशति" (ब्र० सू०4/4/15/16) और ब्रह्म सूत्र 3/3/32 वें का शांकर भाष्य "तेच केचित्यतिते पूर्व देहे देहान्तर माददते। केचित्तुस्थित एव तस्मिन्योगैश्वर्यवशादनेक देहान्" से लेकर "पश्चात्स्वमेव देहमाविवेश—इतिस्मर्यते" इन सबों से स्पष्ट मालूम होता है कि पर शरीर में प्रवेश कर सकते हैं और स्वशरीर में पुनः आगमन करना सुलभ है। उपर्युक्त व्याख्या कल्याणपुरी के विद्वान का है और यह व्याख्या ब्रह्मसूत्र भाष्य पुस्तक के भूमिका से लिया गया है।

श्रीशङ्कर अपने शिष्यों के साथ माहिष्मती नगर पुनः पहुंचे और श्रीउभय भारती से शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार हुए। शारदा ने उन्हें देखते ही निश्चय कर लिया कि वह हार जायगी। शास्त्र में अश्लीलता आ जाने की सम्भावना से एव श्रीशङ्कर की अद्वितीय पांडित्य एवं तपस्या शक्ति को जानकर स्वयं पराजित होने की बात मान ली|

"दुर्वासः शापतो भूमौ जातां वाणीं विजित्यताम्" (शिवरहस्य) सरस्वती एक समय ब्रह्मलोक में दुर्वास ऋषि को जब वे ब्रह्मा के पास सामवेद का पाठन करते थे तब हास्य करने के कारण दुर्वास ऋषि ने बडे क्रोध

में होकर सरस्वती को शाप दिया कि "तुम इस मृत्यु भूमि पर मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करो"। तब शाप के मोक्ष काल में मनुष्य रूप में श्रीशङ्कर के दर्शन से शाप विमोचन होने का प्रसाद पाकर विश्वरूपाचार्य की पत्नी होकर यहां पर आई। अपनी निज स्वरूप देवी रूप को जानकर ब्रह्मलोक जाने लगी। तब श्रीशङ्कर ने वन दुर्गा मन्त्र से शारदा को तुरन्त बांध दिया। इस पुण्यमयी भारत भूमि के जिस पुण्य तीर्थ क्षेत्र में आप की पीठ की अधिष्ठात्री बनाकर स्वयं प्रतिष्ठा करें और उस क्षेत्र तीर्थ में आप स्वयं आकल्पवास करते हुए सान्निध्य रूप से रहें और अपने अनेकानेक भक्तों को आप द्वारा आशीर्वाद देने की प्रार्थना भी की। तब भगवती शारदा ने "अस्तु" कहके स्वलोक को चली गयी।

तब श्रीशङ्करजी ने मन्डनमिश्र को सन्यासाश्रम की दीक्षा दी और शङ्करजी ने महावाक्यों के उपदेश द्वारा उनको बोध कराया "तुम देह नहीं हो, देह तो जड और अनित्य है, तुम्हारी आत्मा चेतन एवं नित्य रूप है। देह उत्पति और नाश संयुक्त है परन्तु आत्मा नित्य और मुक्त है"। फिर आप श्रीसुरेश्वराचार्य के नाम से विख्यात हो गये। उनका दूसरा नाम श्रीविश्वरूपाचार्य भी था। अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों में यह स्पष्ठ उल्लेख किया गया है कि सुरेश्वराचार्य ही विश्वरूपाचार्य भी थे और आप ही वार्तिककर्ता भी थे।

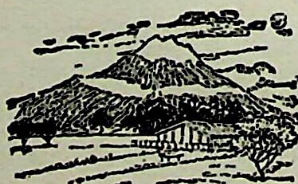
श्रीशङ्कर अपने शिष्यों सहित दक्षिण दिशा में श्रीशृंगगिरि की ओर रवाना हुए। भ्रमण करते हुए कुछ काल के बाद महाराष्ट्र देश में पहुंचे। कुछ दिन उस दिशा में भ्रमण जहां तहां करके अवैदिक व पाखण्ड मतों का खण्डन करते हुए अद्वैत मत की स्थापना की और फिर श्रीशैल या श्रीपर्वत पहुंचे। यहां पर भगवान मल्लिकार्जुन तथा भगवती भ्रमराम्बा की विधिवत् पूजा की। श्रीशङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा में बहुतों से मिले और बहुत से लोगों को शिष्यकोटि में अपनाया और कुछ सन्यासी चेले भी बने और बाकी सब गृहस्थ चेले ही रहे।

श्रीशैल कापालिकों का अड्डा था। कापालिक उग्ररूप महाभैरव के उपासक थे। एक दिन एक कापालिक साधु का वेष धारण करके श्रीशङ्कर के पास आया और उनके पास पाठ पढना आरम्भ किया। कुछ दिन बाद उसने उनकी स्तुति करके कहा कि हमको मनोवांछित सिद्ध प्राप्त करने के लिये (भैरव की आराधना में) एक यति के सिर को लेकर हवन करने की आवश्यकता है। चूंकि आपको स्वशरीर का कोई ममता नहीं है इसलिए कृपाकर आप अपना सिर हमको दान कीजिये। श्रीशङ्कर ने उससे कहा—"जिस समय हमारे शिष्यगण हमारे पास न हों उस समय तुम मेरा सिर काट ले जाना"। जब शङ्कर ध्यान में लगे थे उस समय उन्हें काटने का निश्चय किया। रास्ते में नदी के किनारे पद्मपादाचार्य को अपने दूर दृष्टि के प्रभाव से यह कथा मालूम हो गयी और उन्होंने श्रीनरसिंहजी का आवाहन किया और श्रीनरसिंह स्वयं पद्मपाद के शरीर में प्रकट होकर उस कापालिक को अपने नखों से विदीर्ण कर दिया। जब श्रीशङ्कर का ध्यान निष्ठा टूटा तब उनको अपने शिष्य पद्मपाद की अनन्य गुरु भक्ति की कथा मालूम हुई। "पालय कृपालय नरसिंह नरसिंह" इन श्लोकों द्वारा स्तुति की। यहां से गोकर्ण महाबलेश्वर महादेवजी के मन्दिर पर पहुंचे। अपने दिग्विजय यात्रा में हरिशङ्कर नामक तीर्थस्थल से होते हुए सह्याद्रि पर्वत के पश्चिम व दक्षिण भाग के देशों से गुजरते हुए वहां के मूकाम्बिका क्षेत्र पर पहुंचकर वहां के जगन्माता मूकाम्बिका की पूजन व स्तुति करके आगे बढे। यहीं पर उन्होंने अपने द्वारा कृत सौन्दर्यलहरीस्तोत्र की रचना की। यहां स्वर्ण-रेखाङ्कित सौम्यसदाशिव लिङ्ग है। कहा जाता है कि इसकी स्थापना आचार्य शङ्कर ने की थी। यहां सौपर्णिका नदी है।

श्रीवलि ग्राम में एक ब्राह्मण श्रीप्रभाकर (भास्कर) कर्मकांडी, निष्ठानिपुण, ऐश्वर्यशाली व्यक्ति रहता था। उसका पुत्र बाल्यावस्था से ही पागल सदृश्य रहता था और अनपढ व मूर्ख था। प्रभाकर ने शंकर की योग सिद्धि व प्रभाव तथा शंकर द्वारा ब्राह्मण पुत्र के जीवित उठने की बात पहिले ही सुन रक्खी थी। इस बालक को जो तेरह वर्ष का था उसके पिता ने शंकर के पास लाकर उनकी शरण में छोड दिया। शंकर ने पूछा "बालक तुम कौन हो? जड के तुल्य शरीर एवं जडवत चेष्टा तुम्हारी है, तुम कौन हो?" उस बालक ने उत्तर दिया—

> नाहं जडः किन्तु जडः प्रवर्तते मत्संनिधानेण न संदिहे गुरो।
> षड्रूमिषड भाव विकार वर्जितं सुखैकतानं परमस्मि तत्पदम्।- (माधवीय)

'मैं केवल नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा ही हूँ' इस प्रकार उसकी बातों को सुनकर श्रीशंकर ने उसके पिता से कहा कि बालक हमारे ही साथ रहने योग्य है और उस बालक को आप मुझे दे दीजिए। तब पिता ने बालक को दे दिया। श्रीशंकर ने अपने हाथों से उसकी दीक्षा व सन्यासाश्रम दिया और वेदान्त सारों की शिक्षा भी दी। इसके फलस्वरूप उनका वेदान्त तत्वबोध हाथ के मीठे आंवले कि तरह होने के कारण उसका नाम हस्तामलक पडा। आपने आत्मतत्वों के बोध को बारह श्लोकों में प्रकाशित किया और कहा जाता है कि श्रीशंकर भगवत्पाद ने इन श्लोकों का भाष्य रचना भी किया। इसी भाष्य को 'हस्तामलकीय भाष्य' के नाम से प्रसिद्ध रक्खा। आप श्रीशंकर के तृतीय शिष्य थे। श्रीद्वारका और जगन्नाथपुरी मठों के पुस्तकों से प्रतीत होता है कि हस्तामलक का दूसरा नाम पृथ्वीधवाचार्य या पृथ्वीधराचार्य भी था। फिर यहां से आचार्य शंकर अपने सब शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुऐ शृंगगिरी पहुंचे।



अध्याय—4

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

पूर्व युग से ही श्रृंगगिरी एक अनोखा, मनोरम्य, पुण्यमयी, पतितपावन तुंगा और स्पर्शमात्र से सर्वपाप हरनेवाली भद्रा के मध्य एक गिरि अरण्य समृद्ध एवं स्वर्ग भूमि जो ज्ञान मोक्ष फलदायी व शान्ति प्रेम अभेदभाव से युक्त अति प्रख्यात क्षेत्र है। यह वही पुण्य स्थल है जहां पूर्व युग में श्रीविभाण्ड मुनि वास करते थे| उनके समाधि स्थल पर एक लिंग के रूप में आज भी वे महान्मुनि के सदृश दीख पडते हैं| कहा जाता है कि श्रीविभाण्ड मुनि इस लिंग की पूजा स्वयं करते थे और उनके अन्तिम निर्याण समय में स्वयं आप इस लिंग में जा मिल गये| वही आज श्रीशृङ्गगिरि के बीच एक छोटे पहाड पर श्रीमलहानिकरेश्वर लिंग के नाम से प्रख्यात है| इनका पुत्र ऋष्यशृङ्ग यहीं वास करते थे| वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि मुनि ने ऋष्य शृङ्ग का विवरण अतिमनोरंजित रूपमें वर्णन किया है|

राजा श्रीरोमपाद ने ऋष्यशृङ्ग को अपने पास बुला भेजा चूंकि उनके राज्य में एक समय घोर अकाल पडा जब वृष्टि भी बिलकुल ही नहीं हुई थी| तब किसी अन्य महात्मा से उन्होंने सुना था कि ऋष्य श्रृंग के पुण्य पादों का स्पर्श उनके राज्य में होते ही अवश्य वृष्टि होगी। ऋष्य श्रृंग रोमपाद राज्य में पहुंचे जिससे अति वृष्टि हुई। राजा ने अति प्रसन्न हो अपने पुत्री शान्ता का विवाह ऋष्यश्रृंग से करा दिया। इसके बाद ऋष्यश्रृंग को अयोध्या भेजा जहां पर राजा दशरथ पुत्रकामेष्ठि यज्ञ कर रहे थे। अयोध्या में आप पुत्रकामेष्ठियज्ञ को सफलता पूर्वक करा करके फिर श्रृंगगिरि को वापिस लौट आये। आप के तप की महिमा भी अपार है। उत्तरी भारत आग्रा शहर से गोरखपुर लाइन पर 184 मील पर सिंघीरामपुर स्टेशन है। गङ्गाजी के दक्षिण तटपर श्रृङ्गी का मन्दिर है। प्रयाग से 21 मील पर रामचौरा रोड है और यहां से 3 मील पर श्रृङ्गवेरपुर है। यहां ऋषी श्रृङ्गी और शान्ता की मन्दिर है। देवगांव से उत्तर तट पर लिंगाघाट ग्राम है। यहां से थोडी दूर पर नर्मदा के दाक्षिण तट पर सिंघपुर ग्राम है। कहा जाता है कि ऋषी श्रृङ्गी का यह स्थान था और आप यहां से दक्षिण भारत गये। इससे प्रतीत होता है कि ऋषी श्रृङ्गी दक्षिण भारत से उत्तरी भारत अयोध्या पहुंच कर पुनः दक्षिण भारत लौट आये। आज भी एक गांव "किग्गा" के नाम से जो श्रृंगगिरी बस्ती से छः मील दूर पर है वहां एक लिंग आपके नाम से प्रसिद्ध है। इस लिंग का एक विशेष लक्षण यह है कि लिंग के ऊर्ध्व में एक सिंघ भी दीखता है। इस प्रपञ्च की माया व लोभ से अतिदूर, शहरों की आधुनिक व्यवस्था व कोलाहल आदि त्रुटियों से दूर, हरे-भरे स्वाभाविक निर्मल शुद्ध स्वर्ण भूमि तथा अनेकानेक मन भावन शब्दों की कथा भरी ऐसी श्रृंगगिरि आज भी वैसा ही विद्यमान है जैसा कि पूर्व में था।

मैसूर प्रदेश के मलनाड भाग में जिसके चारों दिशाओं में पर्वत का ही घेरा है, उसी एक घाटी में श्रृंगेरी स्थित है| पर श्रृङ्गेरी यह समस्थल की तुलना में वह एक पर्वत ही है| श्रृङ्गेरी से 6 मील पश्चिम पर मूल शृङ्गगिरि पर्वत है। इस पर्वत का प्राचीन नाम वाराह पर्वत था। इस पर्वत में विभिन्न स्थानों पर तुङ्गा, भद्रा, नेत्रावती, वाराही–इन चार नदियों के उद्गम है। विभाण्ड ऋषी का आश्रम वाराह पर्वत से श्रृङ्गेरी तक था। यह श्रृङ्गेरी क्षेत्र पुराना विभाण्डकाश्रम है| रेल सुविधा न तो श्रृङ्गेरी के लिए है और न आसपास की जगहों के लिए। ऐसे स्थान गर पहुंचने के लिए शिमोगा, तरीकिरी, बिरूर, कड्डूर इत्यादि स्थानों में ही रेल स्टेशन हैं। इन जगहों से साठ या सत्तर मील पहाडों या घने जंगलों से प्रयाण करके तब श्रृङ्गेरी पहुंच कसते हैं। समीप काल से मोटर प्रयाण की

सुविधा हुई है। प्राचीन काल में केवल बेल गाडियों द्वारा ही श्रृंगेरी स्थल पर पहुंच सकते थे। श्रृंगेरी जाते समय एक तरफ ऊंचे-ऊंचे पर्वत दूसरी तरफ गहरी घाटी दीखती है। उसके घने जंगलों में शेर बाघ हाथी इत्यादि बनैले जन्तुओं का ही निवास है। श्रृंगगिरी इस पृथ्वी का स्वर्ग है जहां पर सिंह और बकरी, बाघ और पशु, सर्प और मेढक परस्पर स्वाभाविक शत्रु होते हुए भी प्रेम और शांति से वे निवास करते हैं और शङ्कर के भक्त लोग जो उस घने जंगल से श्रृंगेरी यात्रा के लिये जाते हैं उनके पास भी आने का धैर्य उन जन्तुओं को नहीं होता। वहां का वातावरण और वायु प्रेम सन्देश की गूंज करती है। श्रृंग का अर्थ है प्रभुत्व व प्राधान्य और गिरि का अर्थ है उच्च स्थान। गिरि एवं गुरु का सांख्यसाम्यम् रूप से अर्थ है। स्थावरों में गिरि ऊंचा एवं मनुष्यों के लिये गुरु। अर्थात् गुरु का ऊंचा स्थान श्रृंगगिरि है। इन दोनों शब्दों से युक्त श्रृंगगिरि हुआ अर्थात् प्राधान्य गुरु स्थल।

श्रीशंकर ने दुर्मतों व अवैदिक, अनाचार, पाखन्ड मतों का खन्डन करके तथा वैदिक मत की स्थापना करके, अपने निवास के योग्य स्थल व पीठ का निर्माण करने निमित्त पुण्य क्षेत्र स्थल, जहां से अपने द्वारा प्रचारित अद्वैत मत का प्रचार सदा होता रहे और जहां पर वेदान्त भाष्य की चर्चा होती रहे, ऐसी जगह की खोज में चलते हुए आप श्रृंगगिरि पर पहुंचे। श्रीशंकर ने वहां पर एक आश्चर्य मयी घटना देखी। एक स्त्री ने मेंढक का जन्म दिया। दोपहर के सूर्य ने भयंकर गर्मि को पैदा कर दिया। एक कृष्ण सर्प ने अपने फण को पसारकर कडी-धूप से उस मेढक पर छत्री की तरह रक्षा कर रहा था। वह स्थल "कप्पेशंकर" के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। इस घटना की यादगार में वहां पर आपने एक शिवलिंग की प्रतिष्ठा की है जो आज तक देखने में आता है। स्वाभाविक शत्रु होते हुए भी यहां पर मित्र बनकर, अभेद भाव से निर्भय होकर, शान्त प्रेम युक्त वास करते हैं। ऐसे स्थल को शंकर ने अपने योग्य आश्रम एवं पीठ निर्माण क्षेत्र समझकर वहां पर ठहर गये।

पूर्व में जब श्रीशंकर कालटी से निकलकर नर्मदा निवासी गुरुगोविन्दभगवत्पाद से मिलने के लिये घने जंगलों से गुजर रहे थे तो उन्हें मलनाड प्रदेश से होते हुए जाना पडा। उपर्युक्त घटना इसी समय घटित होने का विवरण कुछ विद्वानों ने दिया है। वहां के तपस्वी व महानों से शंकर ने इस पुण्यमयी तीर्थ के नाम का पता लगाया और मालूम हुआ कि यही स्थल श्रृंगी ऋषी का पवित्र आश्रम है। शंकर ने उसी समय इसी स्थल पर अपना स्व आश्रम करने का निश्चय किया। तदनुसार बाद अपने दिग्विजय यात्रा में शंकर ने यहां दक्षिणाम्नाय मठ की स्थापना की एवं जगन्माता शारदा की प्रतिष्ठा की।

इसीतरह यह एक कथा प्रचलित है कि शंकर ने सरसवाणी को वन दुर्गा मन्त्र से बांधकर उनसे अनुमति मांगी कि जहां वे शारदा को लोक उपकार के लिये स्थापित करें वहीं पर आप विराजमान होवें। शारदा "एवमस्तु" कहते हुए एक प्रतिज्ञा शंकर से मांगी कि शंकर जिस स्थल में सरसवाणि को आते हुए पीछे देखते हैं उसी स्थल में वे ठहर जायगी फिर वह शंकर का पीछा न करेगी। श्रीशंकर अपने यात्रा में बराबर अदृश्य शारदा के पद्मपादों की नूपुर ध्वनि सुनते थे। अचानक जब श्रृंगगिरि पहुंचे वह नूपुर की झंकार न सुनाई पडी। तब उन्होंने पीछे देखा कि शारदा कहीं चली तो नहीं गई। श्री आचार्य शंकर की प्रतिज्ञा भंग होने के कारण श्रीशारदा श्रृंगगिरि में ही रुक गई।

तब श्रीआचार्य ने इस तुंगा नदी के किनारे पर शारदा पीठ की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया। वहां एक चट्टान पर सर्वमन्त्रों का निवास व श्रीविद्या के स्थूल रूप श्रीचक्र का निर्माण करके उसमें श्रीशारदा (सर्ववेदान्तार्थ

प्रकाशिनी ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी श्रीशारदा) की प्रतिष्ठा की। अध्यात्म विद्या, महाविद्या, ब्रह्मविद्या, श्रीविद्या के अनेक नाम से प्रख्यात् विद्यारूपिणी श्रीशारदा माता हैं। आचार्य शङ्कर ने अपने आश्रम श्रृंगेरी में व्याख्यान-सिंहासन विद्यापीठ का निर्माण किया। पूर्व के वचनानुसार श्रीशङ्कर ने पुनः शारदा को स्थिरता पूर्वक अवस्थान करने की प्रार्थना की। अपने निवास के योग्य एक आश्रम (मठ) का भी निर्माण किया। आम्नायोपनिषद, अडयार वसन्ता मुद्रालय से प्रचुरित एवं एक और प्रति फैज़ाबाद से प्रकाशित पुस्तक में इस मठ की शक्ति को "कामाक्षी" बतलाया है। शृङ्गेरी शारदा मठ में परम्परा प्राप्त पूजा मूर्तियों में से मुख्य मूर्तियां एक श्रीकामेश्वर एवं श्रीकामेश्वरी हैं जिनकी पूजा व सेवा नित्यप्रतिदिन किया जाता हुआ आज पर्य्यन्त चला आ रहा है। कामाक्षी का नामान्तर ही कामेश्वरी है। इसलिये मठाम्नाय में शारदा के जगह कामाक्षी का पाठान्तर पाया जाता है। अन्य ग्रंथों में "कामाक्षी नाम वाग्देव्या" का भी उल्लेख है। देवी भागवत एवं मत्स्य पुराण में 108 शक्ति स्थलों का उल्लेख करते हुए कामाक्षी का उल्लेख यों है—'गन्धमादन पर्वत पर कामाक्षी रूप में स्थित हैं।' रामक्षेत्र के गन्धमादन पर्वत पर वास करनेवाली देवी कामाक्षी है। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ का क्षेत्र मठाम्नायानुसार रामक्षेत्र है। अतः इस क्षेत्र की देवी 'कामाक्षी' का ही उल्लेख मठाम्नाय में किया गया है। अन्य जगह प्रकाशित मठाम्नाय में "शारदा" का ही उल्लेख है। तंजौर के सरस्वती महाल और पूना के भन्डारकर आलय में मठाम्नाय का हस्तलिखित प्रतियां भी हैं। शुद्धचन्दन की लकडी द्वारा शारदा की मूर्ति पूजा के लिए बनवाने आपने आज्ञा दी। अपने शिष्यों में प्रकान्ड पण्डित श्रीसुरेश्वराचार्य जी को वहीं पर स्थित करके अद्वैत सिद्धान्तों का प्रचार करने की आज्ञा भी दी। वार्तिकादि अन्य ग्रन्थ यहीं पर रचा गया था। इस पीठ का प्रसिद्ध नाम "व्याख्यान सिंहासन पीठ" है। पुराकाल के ताम्रशासन में उल्लेख है। "यस्तु व्याख्यानकाले रचयति हिमवत्सानुनिर्भेदभिन्नस्फूर्जद्गङ्गाप्रवाहानुकरणममलो भारतीतीर्थ एषः"। "वाचालम् कुरुते मूकं मूकं वाचाल पुङ्गवम्"। यही स्थल आज भी शृङ्गगिरी शारदा पीठ के नाम से प्रसिद्ध है। उसी श्रृंगेरी की ज्ञान ज्योति संसार के अन्धकार को आज पर्यन्त दूर कर रही है। यह कहा जाता है कि श्रीशङ्कर श्रृंगगिरी में बारह वर्ष निवासकर अपने द्वारा रचे हुए सूत्र भाष्यों का प्रचार भी यहीं पर किया। अपने बत्तीस वर्ष की आयु में बारह वर्ष अपने निजमठ में वास करने के कारण से यह कहा जा सकता है कि श्रृंगगिरी उनको कितना प्यारा था।

यहां का प्राधान्य मन्दिर पराशक्ति अम्बिका शारदा माता का ही है। अन्य अनेक मंदिरों में जहां देवी की प्राधान्यता होते हुए भी उस देवी को शक्ति रूपिणी मानकर शक्तिमान् भगवान् की मूर्ति को समीप में रखकर इन दोनों शिवशक्ति की आराधना की जाती है, ऐसा व्यवहार रूप में देखा जाता है। पर शृङ्गगिरि की शारदा देवी स्वयं शक्ति रूपिणी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के अतीत एवं सगुण ब्रह्म, विष्णु, महेश इनके अतीत केवल ब्रह्म चैतन्यस्वरूपिणी का ही भाव करके यहां पर केवल शारदा विराजमान है। सौन्दर्यलहरी में भी "परब्रह्म महिषी" का उल्लेख है। अन्य देवताओं के विशेष पूजाकाल में भी उन-उन देवताओं के भाव में इस सकल सगुण सम्पन्न रूपों की धारण करनेवाली शारदा की पूजा ही की जाती है। श्रीआद्यशङ्कर स्वयं अपने कृत अनेक स्तोत्रों में इस पराशक्ति को सर्व देवता स्वरूपिणी शुद्ध ब्रह्म भाव से ही स्तुति की है।

शृङ्गेरी मठ का तीर्थ तुंगा नदी, स्थल शृङ्गेरी, रामेश्वर नाम का रामक्षेत्र, शक्ति शारदा ("कामाक्षी" मठाम्नायोपनिषद के अनुसार), देव मलहानीकरेश्वर एवं वराह मूर्ति हैं। इसका तात्पर्य क्या है? रामक्षेत्र का तात्पर्य शुद्ध ब्रह्म का भाव है। इस पुण्यमयी भारत देश में धर्म को पुनः स्थापना के हेतु से अवतार लिये। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र बाह्य रूप में उपसाना करने योग्य मूर्ति हैं। भागवत् में शुकाचार्य कहते हैं 'मर्त्यावतारस्त्विहमर्त्य

शिक्षणम्', मारीच भी कहते हैं 'रामो विग्रहवान धर्मः।'' यदि आध्यात्म से देखें तो हृदय कमल के बीच हृदयाकाश में ही योगि जनों को ध्यान करने योग्य आनन्दस्वरूप ब्रह्मरूप हैं।

'ज्योतिः निरुत्तरं ब्रह्म पदम्'–सर्वोत्कृष्ट चिन्मय ज्योति हृदयाकाश में है। यही ब्रह्मपद कहलाता है। इसी ज्योति को ही 'तस्यमध्ये वह्नि शिखा ... ... विद्युल्लेखेवभास्वरा ... ... तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः', 'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्येशेऽर्जुन तिष्ठति' आदि श्रुति, स्मृति का वचन भी है। चिदानन्दब्रह्मपद बुद्धिवाक् से अतीत है 'धियामतीतं वचसामगोचरं।' रामनाम पद आनन्द का बोध कराता है। पुराण इतिहास से बोध होता है कि रामेश्वर ने ईश्वर रूप में श्रीरामचन्द्र जी पर अनुग्रह किया। इसका दूसरा तात्पर्य यह भी है कि श्रीराम ही स्वयं आनन्दमय ईश्वर हैं, 'शुद्धब्रह्मपरात्परराम' भी हैं। तारकमंत्र राम ही हैं। शुद्ध निश्कल अरूप होते हुए भी उपासना निमित्त रूप में पूजित हैं।

"रमन्ते योगिनो ऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इतिरामपदेनासौ परं ब्रह्मानिधीयते॥ (रामतापिनी उपनिषद्-पूर्व तापिनी)

ब्रह्म को प्रकाश करनेवाली जगन्माता को ब्रह्म विद्यास्वरूपिणी कहते हैं। ज्ञान, बुद्धि (विद्या), आनन्द को प्रकाश करनेवाला वेद के शब्दों के चिन्हों को दिखानेवाला पुस्तक, जपमाला, चिन्मुद्रा, अमृतकलश, इत्यादि को धारणकर जगन्माता ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी शारदा शृंगेरी में शोभायमान हैं। इस परमानन्द को प्राप्त करने के लिये मूल अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले राग द्वेश का नाशकर देना चाहिये। ऐसी स्थिति को चिदानन्द कहते है। ब्रह्म ही सत्य है, इसका प्रकटन दक्षिणाम्नाय पीठ श्रीशृंगेरी करता है।

स्वयं रामेश्वर एक बहुत सुंदर लिंग है। इसी मन्दिर के अहाते में 22 तीर्थ हैं। पहले इस क्षेत्र का नाम गन्धमादन था और यहीं पर हनुमानजी पहाड पर चढकर समुद्र लांघने का अनुमान लगाये थे। चार दिशाओं के चार धामों में रामेश्वर दक्षिण दिशा का धाम है। यह समुद्री द्वीप में स्थित है। समुद्र का एक भाग बहुत संकीर्ण हो गया है और उसपर रेलवे पुल है। कहा जाता है कि रामेश्वर पहले भूमि से मिला था। किसी प्राकृतिक घटना के कारण इस अन्तरीप का मध्यभाग दब गया और वहां समुद्र आ गया। रामेश्वरद्वीप करीब 11 मील लंबा और 7 मील चौडा है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में श्रीरामेश्वर की गणना है। कलियुग प्रारम्भ में गन्धमादन पर्वत पाताल चला गया और उसका पवित्र प्रभाव यहांकी भूमि में है। इसे देवनगर भी कहते हैं। महर्षि अगस्त्य का आश्रम यहीं पास था। पाण्डव भी यहां आये थे। अनादि काल से देवता, ऋषियों व महापुरुषों की श्रद्धा भूमि रहा है। देवी भागवत एवं मत्स्य पुराण में 108 शक्ति स्थान एवं भगवती के 108 दिव्य नाम का उल्लेख करते हुए 'कामाक्षी' का उल्लेख ऐसा किया है 'गन्धमादन पर्वत पर कामाक्षीरूप में स्थित हैं।' रामक्षेत्र के गन्धमादन पर्वत पर वास करने वाली देवी कामाक्षी हैं। सम्भवतः इसी कारण से मठाम्नायसेतु ग्रंथ में (केवल कुछ प्राचीन प्रतियों में) दक्षिणाम्नाय रामक्षेत्र के शृङ्गेरीमठ का देवी कामाक्षी उल्लेख है यद्यपि अन्य सब प्रतियों में 'शारदा' का उल्लेख है। रामेश्वर की स्थापना कब हुई, कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। मन्दिर 17 वीं शताब्दी में रामनाथपुरम के राजाओं द्वारा बनवाया गया है। यह कथा प्रचलित है कि लङ्का यात्र के पूर्व ही श्री रामचन्द्र ने परमशिव भक्त रावण पर विजय प्राप्त करने के लिये स्वयम् शिव को आराधन की थी और इसलिये उनके द्वारा यह लिङ्ग वहां पर स्थापित किया गया था। किन्तु और एक कथा भी प्रचलित है कि श्री रामने लङ्का से वापस लौटे तो हत्यापाप से मुक्त होने के लिये उन्होंने रामेश्वर

की स्थापना की। रामेश्वर पद में तीन समास होने से तीन अर्थ होता है। (क) श्रीराम परमशिव के भक्त थे अतः उनके राम से तत्पुरुष समास हुआ—'रामस्य ईश्वरः'—राम का ईश्वर। (ख) शिवजी श्री राम के भक्त थे अतः उनके अनुसार बहुव्रीहि समास हुआ—'रामः ईश्वरः यस्य' राम हैं ईश्वर जिसके। (ग) देवताओं के मत से कर्मधारय का अर्थ है—'रामश्चासौ ईश्वरः'—सब प्राणियों में रमण करने वाले ईश्वर। अपने अपने मनोवृत्ति के अनुसार एक शब्द का तीन प्रकार के अर्थ कर सकते हैं।

कुछ लोग आश्चर्य करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने अपने दक्षिण के निजमठ के लिये चतुर्धामों में से इस दक्षिणी धाम रामेश्वर को क्यों नहीं चुना? उत्तर समझ में आता है कि श्रीशङ्कर मठों की संख्या आम्नायानुसार बढाना नहीं चाहते थे और दक्षिण के लिये वे शृंगेरी को पहले ही चुन चुके थे। शृङ्गेरी पर उनको आस्था समझ में आती है। पूर्व में यहीं पर श्रीशङ्कर को भारत की एकता के लिये चारों दिशाओं में चार केन्द्र स्थान की स्थापना करने का भाव उत्पन्न हुआ था| इसी तीर्थ स्थल में श्रीशारदा की भी प्रतिष्ठा हुई| रामेश्वर क्षेत्र के अन्तर्गत शृङ्गेरी जो शांत आनन्ददायक एवं अभेदभाव वातावरण युक्त है और जहां पर तपस्या, ध्यान, मनन, आत्मविचार आदि करने का बाह्य सामग्री प्रकृति द्वारा उपलब्ध हैं, ऐसे स्थल को श्रीशङ्कर ने अपना वासस्थल योग्य समझकर, यहीं पर अपना स्वमठ की स्थापना की| कैलास क्षेत्र के अन्तर्गत काशी है यद्यपि यह दोनों स्थल एक दूसरे से दूर स्थित है, उसी प्रकार रामेश्वर क्षेत्र के अन्तर्गत शृङ्गेरी है। ऋषि शृंगी का आश्रम शृङ्गगिरि था| आप ने राजा रोमपाद के पुत्री शान्ता से विवाह किया। पश्चात् आप के स्वशुर के आदेश पर आप अयोध्या पहुंचे जहां पर राजा दशरथ पुत्र-कामेष्टि यज्ञ कर रहे थे। आपने यहां पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराकर फिर शृङ्गगिरि लौट आये। मुनि वाल्मीकि ने अपने रामायण में इनका वर्णन अति मनोरंजित रूप में किया है। इस यज्ञ के फलस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का अवतार हुआ। श्रीरामचन्द्रजी द्वारा पूजित श्रीरामेश्वर हैं तथा राजा दशरथ द्वारा सम्मानित व पूजित ऋषि शृङ्गी थे। इन दोनों महापुरुषों में घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसलिए यह आश्चर्य नहीं है कि श्रीशङ्कर ने ऋषि शृङ्गी का आश्रम शृङ्गगिरि (रामेश्वर तुल्य क्षेत्र) को जो उन दिनों रामेश्वर क्षेत्र सीमा में था उसे अपना दक्षिणाम्नाय पीठ व मठ का योग्य स्थल समझकर वहीं प्रतिष्ठा किया। पूर्व और पश्चिम आम्नाय का क्षेत्र दोनों सागर तीर पर हैं और श्रीशङ्कर ने उन दोनों क्षेत्रों पर दो आम्नाय मठों की स्थापना की। उत्तराम्नाय का क्षेत्र हिमगिरि पर है परन्तु दक्षिणाम्नाय का क्षेत्र सागर तीर पर होने के कारण और दक्षिणाम्नाय का मठ भी गिरि पर होने की अपेक्षा से जैसे उत्तराम्नाय मठ गिरि पर है एवं जैसे पूर्व पश्चिम दोनों समुद्र तीर पर समान है, इसलिए श्रीशङ्कर ने रामेश्वर की अपेक्षा अरण्य गिरि समृद्ध शृङ्गगिरि को चुना था। और एक विषय मार्के का है कि आचार्य शङ्कर स्वयं शिव के अवतार थे, फिर वे कैसे रामेश्वर में अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिये आप ही प्रयत्न करते? शृङ्गेरी क्षेत्र का संकल्प करते समय शृङ्गेरी को रामक्षेत्र कहा जाता है| रामक्षेत्र का तीर्थ तुङ्गभद्रा है। क्षेत्र माहात्म्य में भी शृङ्गेरी को रामक्षेत्र कहा गया है| एक मार्के की बात है कि पुराकाल से शृङ्गेरी के रक्षक शृङ्गी व राम दोनों हैं, जिनका मन्दिर अब भी देखा जा सकता है|

आधुनिक काल के मानव गोष्ठि अपनी आधुनिक सभ्यता और सुविधा जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से परिवर्तन होते देखकर तथापि उसके रङ्ग में रङ्गे हुए उसीकी उपयोग कर रहे हैं। आधुनिक यंत्रकाल के प्राणि भी स्वयं यंत्र का एक अङ्ग बनकर अपने जीवन की यात्रा कर रहा है, तथापि आज भी उसी पुराकाल की तरह शृङ्गेरी स्वाभाविक रूप से ही विद्यमान है—वही गिरि, नदी, स्वर्णमयी पुण्यभूमि, शान्त, प्रेममय वातावरण, चारों ओर हरियाली अरण्य, मन्दिर, जो सब प्राचीन काल में स्थित था वह अब भी है। समतल मैदान से पर्वत शृङ्गगिरि चढते समय

ऐसा प्रतीत होता है कि मानव अपनी अज्ञानता को पीछे छोड के अभेदभाव अनन्त स्वरूप का अनुभव कराता हो। जीव ब्रह्म का वही अभेदभाव आज भी वहां अनुभव होता है। दृश्य व वातावरण से मानव मुग्ध होकर, अपने को भूलकर महसूस करता है कि वह एक अलौकिक जगत् का भ्रमण कर रहा है जहां पारमार्थिक ही विद्यमान है। जन संघर्ष से नितान्त दूर है। माता शारदा मन्दिर के ऊंचे स्थल पर खडे होकर जब इस कृत्रिम बनावटी संसार को देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी एक अनित्य मायाजाल है। संसार का दुखमय प्रपञ्च इस पर्वत में अभी तक प्रवेश न कर सका। पुराकाल में प्रायः एक पर्ण कुटि मठ रूप में तथा देव देवी जी जो पर्णशाला में स्थित थी, उसकी तुलना में आज उसी जगह एक बडी इमारत मठ रूप में और बडे बडे मनोहर मन्दिर भी बन गये हैं। काल व मनुष्य के प्रभाव से इन परिवर्तनों के सिवाय और कोई परिवर्तन पुराकाल की तुलना में नहीं दिखाई देता। आद्यशङ्कराचार्य के अविच्छिन्न साक्षात् गुरु परम्परा जो आज तक श्री शृङ्गेरी मठाधीष ही होकर आ रहे हैं, उन सबों के तपोबल, ज्ञानबल, अद्वितीय लीला, प्रकाण्ड पाण्डित्य सब इस स्थल के महिमा की रक्षा करते हुए इस पुण्य स्थल की महिमा को और भी बढाते आ रहे हैं।

इसी स्थान पर एक ब्राह्मण के लडके को आचार्य शंकर ने सन्यास देकर अपना शिष्य बना लिया और इनका नाम गिरि (तोटक) रखा। तोटक को गुरु पर बडी श्रद्धा थी और वे तन मन से अपने गुरु की सेवा करते थे। एक दिन तोटक नदी तट पर जल लाने के लिये गये थे और श्री शंकर के अन्य शिष्यवर्ग पाठ पढने के लिये तैय्यार हुए। श्रीशंकर ने उन सबों से कहा कि 'तोटक के आने पर पाठ प्रारम्भ होगा'। पद्मपाद ने कहा 'गुरुजी वह तो दिवाल समान जड है, मूर्ख है और अनपढ है।' एक तरफ शिष्य का अहंकार व अभिमान तथा दूसरी तरफ एक शिष्य का कम मेधा ने आचार्य शंकर को दुख दिया। आचार्य शंकर की कृपा दृष्टी उस शिष्य पर पडी और वह शिष्य नदी से आते ही एक वेदान्त का छन्द (तोटकछन्द) गुरुजी को सुनाया। शिष्यों ने उसे सुनकर अपने अभिमान को दूर हटा दिया और तभी से आपका नाम तोटकाचार्य रक्खा गया। आपको गिरि या आनन्दगिरि के नाम से भी पुकारा जाता है।

इसप्रकार श्रीशंकर के चार शिष्य श्री पद्मपाद, श्री सुरेश्वर, श्री हस्तामलक, श्री तोटक आदियों को देखकर लोग विस्मय में हुए और सोचे कि क्या धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यही चारों शिष्यरूप में आये हैं? अथवा क्या ऋक्, यजु, साम, अथर्वण वेद भी येही चार शिष्य हैं? अथवा सालोक्या, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति के भेद येही हैं? क्या चतुर्मुख ब्रह्मा के ये पृथक् पृथक् मुख हैं?

अद्वैत मत का साधारण अर्थ होता है 'द्विधा, इतं द्वीतं, तस्य भावः, द्वैतं भेदः, नद्वैतं अभावार्थ—नञ् तत्।' जीव और ब्रह्म की अभिन्नता ही अन्तिम सत्य है—'नास्ति द्वैतं भेदो यत्र' यह भावार्थ है। मूल सिद्धान्त अद्वैतवाद का यही है—'ब्रह्म सत्यंजगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।' ब्रह्म निर्गुण चिन्मात्र होने पर भी वह पूर्ण विभु एवं स्वप्रकाश भी है।

अनेक ग्रंथों से शृङ्गेरी की महिमा मालूम होती है। यथा—

दुर्वासः शापतौ भूमौ जातां वाणीविजित्यताम्।
अगस्त्य चरिते देशे तुङ्गातीरे सुनिर्मले॥

पुण्यक्षेत्र द्विजवर स्थापयित्वा सुपूजय।
अत्रास्ते ऋष्यशृङ्गस्य महर्षेराश्रमोमहान्॥

कलावपिततो ऽद्वैत मार्गः ख्यातो भविष्यति। (शिवरहस्य) (1)

ततः शतानन्द महेन्द्रपूर्वैः सुपर्ववृन्दैरुपगीयमानः।
पद्माङ्घ्रिमुख्यैः सममाप्तकामक्षोणीपतिः शृङ्गगिरिं प्रतस्थे॥

यत्राधुनाऽप्युत्तममृष्यशृङ्गस्तपश्चरत्यात्मभृदन्तरङ्गः।
संसर्शमात्रेण वितीर्णभद्राविद्योतते यत्र चतुर्ङ्गभद्रा॥

अभ्यागतार्चाल्पित कल्पशाखा कूलंकषाधीतसमस्तशाखाः।
इज्याशतैर्यत्र समुल्लसन्तः शान्तान्तराया निवसन्ति सन्तः॥

अध्यापयामास स भाष्यमुख्यान्ग्रन्थान्निजांस्तत्र मनीषिमुख्यान्।
आकर्णन प्राप्य महापुमर्थानादिष्ट विद्याग्रहणे समर्थान्॥

मन्दाक्षनम्रं कलयन्नशेषं पराणुदत्प्राणितमांस्यशेषम्।
निरस्तजीवेश्वरयोर्विशेषं व्याचष्ट वाचस्पति निर्विशेषम्॥

प्रकल्प्य तत्रेन्द्रविमान कल्पं प्रासादमाविष्कृत सर्वशिल्पम्।
प्रवर्तयामास स देवतायाः पूजामजाद्यैरपि पूजितायाः॥

या शारदाम्बेत्यभिधां वहन्ती कृतां प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्ती।
अद्यापि शृङ्गेरिपुरे वसन्ती प्रद्योततेऽभीष्टवरान्दिशन्ती॥ (माधवीय) (2)

अत्रप्राद्यः। मठं कृत्वा तत्र विधापीठनिर्माणं कृत्वा भारतीसंप्रदायं निजशिष्यं चकार। "यस्त्वद्वैतमते स्थित्वा भारतीपीठनिन्दकः। सयाति नरकं घोरं यावदाभूत संप्लवम्।" कंचिच्छिष्यं सुरेश्वराख्यं पीठाद्यक्षमकरोदिति। (माधवीय टीकाकर) (3)

श्रीमठं तत्र निर्माय विद्यापीठमचीक्लृपत्।
चतुर्ष्वेकं वावदूकं सुरेशाचार्यमग्रिमम्॥

ब्रह्मविद्यावरिष्ठंतं तत्पीठेविनिवेश्य सः।
आजिज्ञिपत सुरेशार्यमित्थं देशिकपुङ्गवः॥

यस्त्वद्वैतमतेस्थित्वा भारतीपीठ निन्दकः।
सयाति नरकं घोरं यावदाभूत संप्लवम्॥

आसेतुहिमवच्छैलं सदाचारान् विचारय।
यत्रस्खलति यः कोवा विप्रस्तं शिश्याधिकं।
संप्रदायान् दशै वैतान् शिष्येष्वाचाय स्वतः ॥

तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वत सागराः।
सरस्वती भारती च पुरीत्येते दशैवहि ॥

शिवात् क्रमात् समायात चन्द्रमौळीश्वरं परम्।
रत्नगर्भगणपतिं पूजयेतिददौमुदा ॥

कारयामास तेनैवन्स्वीय भाष्यार्थवार्तिकम्।
सविधे निवसन्नेव शरदो नव पंच च ॥

वाग्देव्याः पूजन कुर्वन् अवसत्तेन तन्मठे।
मलहानिकरं देवं प्रत्यहं पूज्यन् सुधीः ॥ (शं. वि. वि.—चिद्विलास)
शंकरोपि सुरेशाद्यैः शिष्यैः शृङ्गगिरौवसन्। (,, ,,) (4)

शृङ्गाख्य पर्वत श्रेष्ठं प्राप्य तत्रावसत्सुखम्।
तस्मिन्प्रकल्पयामास प्रासादमति सुंदरम् ॥

शारदां तत्र संस्थाप्य सशिष्यस्तां समर्चयत्।
समाख्यां शारदांनेतिवहंत्यद्यापि पूजकान् ॥
वसतिसापि शृङ्गरे पुरेरक्षति सर्वदा (सदानन्द कृत गुरु चरित्र)

तथाभवतिवत्यमुदीरयन्तीम् नीत्वा वियत्वेव यतीश्वरोयम्।
श्रीशृङ्गपुर्यास्सविधे सुचंक्रं निर्मायितास्मत् विदधे प्रतिष्ठाम् ॥

सद्वादशाब्द गुरुस्तत्रपीठे स्थित्वा ....। (मणिमंजरीभेदिनी) (5)
तुरीयो दक्षिणस्यां च शृङ्गेर्यां शारदा मठः ॥

मलहानिकरं लिङ्गम् विभाण्डक सुपूजितम्।
यत्रास्ते ऋष्य शृङ्गस्य महर्षेराश्रमो महान् ॥

वराहो देवता तत्र रामक्षेत्रमुदाहृतम्।
तीर्थं च तुङ्गभद्राख्यं शक्तिः श्री शारदेति च ॥

आचार्यस्तत्र चैतन्यब्रह्मचारीति विश्रुतः।
वार्तिकादि ब्रह्मविद्याकर्ता यो मुनिपूजितः ॥

सुरेश्वराचार्य इति साक्षाद् ब्रह्मावतारकः।
सरस्वती पुरी चेति भारत्यारण्यतीर्थकौ ॥

गिर्याश्रममुखानिस्युः सर्वनामानि सर्वदा।
संप्रदायो भूरिवाळो यजुर्वेद उदाहृतः॥
अहंब्रह्मास्मीति तत्र महावाक्यमुदीरितम्। (मठाम्नाय स्तोत्र—शृङ्गेरीमठ) (6)

कोंकणीवर्मन या अवनिता (गङ्ग का शासन) का, अन्यत्र उपलब्ध 13 वीं, 14 वीं शताब्दी का एवं विजयनगर राज्य के महाराजा श्री बुक्क व हरिहर, श्री हरिहर II आदियों का दिया हुआ शिलाशासन ताम्र शासन सब शृङ्गेरी की महिमा गाते हुए अपनी अपनी श्रद्धाञ्जली भेंट की है। उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि शृङ्गगिरि पर श्री वाणी की प्रतिष्ठा व मठ की स्थापना भी की और श्री सुरेश्वर को भारती जी की पूजा तथा सेवा के लिये नियुक्त किया। चन्द्रमौळीश्वर एवं रत्नगर्भ गणपति को उस मठ के एवं परम्परा के गुरु को पूजन के लिये भी दिया।

श्रीशङ्कर से आज्ञा पाकर सुरेश्वराचार्यजी ने "नैष्कर्म्यसिद्धि" नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ निर्माण किया। अपने गुरु द्वारा रचे हुए ब्रह्मसूत्र भाष्य की व्याख्या रूप से वार्तिक लिखने को कहा। वार्तिक के लक्षण "उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते। तं ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञामनीषिणः॥" परन्तु अन्य शिष्यों के विरोध के कारण एवं सुरेश्वर के ऊपर अन्य शिष्यों का अविश्वास होने के कारण क्यों कि आप पूर्व में ही कर्मकान्डी थे— "कार्मस्तान्छील्ये" सूत्र के अनुयायी थे। अब आचार्य शङ्कर ने श्रीसुरेश्वर को एक स्वतंत्र ग्रंथ रचने को कहा। आचार्य शङ्कर ने अपने वेद कृष्णयजु के तैत्तिरीय उपनिषद के भाष्य और श्रीसुरेश्वर के शुक्लयजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद (काण्व शाखा) भाष्य का वार्तिक लिखने को भी उन्हें कहा। इस आज्ञा के अनुसार श्रीसुरेश्वर ने "नैषकर्म्यसिद्धि" (वेदान्ततत्वों का प्रतिपादक) एवं दोनों उपनिषदों के भाष्यों का वार्तिक भी लिखे। इनको वार्तिककार भी कहा जाता है। इनके द्वारा लिखे हुए पंचीकरण एवं दक्षिणामूर्ती स्तोत्र की व्याख्या भी प्रसिद्ध है। नैष्कर्म्यसिद्धि—जिस ग्रंथ को पढकर तथा उद्देश्यों को धारण करके पुरुष कर्म-कान्ड के बन्धन से रहित हो जाता है उसी ग्रंथ का नाम नैष्कर्म्यसिद्धि है। नैष्कर्म्यसिद्धि ग्रंथ को पढकर आचार्य शङ्कर बडे उत्सुक एवं प्रसन्न हुए और प्रेम से अपने शिष्य विश्वरूपाचार्य को सुरेश्वराचार्य के नाम से पुकारे। सुरेश्वराचार्य अर्थात् बृहस्पति अर्थात् बृहस्पति सदृश्य बुद्धिमान| पद्मपाद को ब्रह्मसूत्र भाष्य (शारीरिक भाष्य) के उपर टीका लिखने के लिये सबों ने आग्रह किया और वे स्वयं लिखने लगे। इस टीका का पूर्व भाग "पंचपादिका" और उत्तर भाग "वृत्ति" के नाम से प्रसिद्ध है। पद्मपादिका ब्रह्मसूत्र भाष्य का सर्वप्रथम टीका है|

इस कार्य के बीच में पद्मपाद को तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई और आप गुरु की आज्ञा लेकर तीर्थ यात्रा करने चले। आचार्यशंकर ने पद्मपाद को समझाया कि सन्यास दो प्रकार का कहा जाता है—विद्वत् सन्यास अर्थात् तत्वज्ञान को प्राप्त करनेवाले पुरुष और दूसरा विविदिषा सन्यास यानी सन्यास तत्व को जानने की इच्छा करने वाले पुरुष— और ऐसी दशा में 'तत्' 'त्वम्' का विवेचना करना ठीक है न कि तीर्थाटन। इसे सुनकर पद्मपाद ने तीर्थाटन की आवश्यकता, महिमा, तीर्थाटन से प्रयोजन एवं लाभ आदि विषयों को अपने अभिप्रायों के साथ गुरु के पास कहकर पुनः सविनय निवेदन किया कि आचार्य आपको तीर्थयात्रा जाने में आमोदन करें। माधवीय शंकर विजय में अति मनोरञ्जित रूप में इसका वर्णन है और यात्रा की आवश्यकता बतलाई गई है। 'युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं बालादपि शुकादपि" के अनुसार आचार्य शंकर ने पद्मपाद के पुनः निवेदन पर आज्ञा दी कि पद्मपाद तीर्थाटन कर सकते हैं।

इस पुण्यमयी भारतवर्ष में पुराकाल एवं आधुनिक काल में प्रायः सब देशवासी तीर्थ व क्षेत्रों के निमित्त यात्रा करते थे और कर रहे हैं। परिव्राजकों को तीर्थाटन करना आवश्यक है—'सर्वाणि पुण्यतीर्थानि सेव्यान्येव मुमुक्षिभिः।' हमारा भारतवर्ष विभिन्नताओं का देश है। विभिन्न भाषा, पोशाक, खानपान, शरीर गठन, वर्ण, आचार-विचार, रहन-सहन, ऋतु वातावरण तथा विभिन्न जमीन का ढांचा होते हुए भी इस विभिन्नता में यात्राटन की आध्यात्मिक दृष्टी ही से लोगों में एकता उत्पन्न होती है। इस विभिन्नताओं के बीच भारत की सांस्कृतिक विरासत-मन्दिर, तीर्थ, धाम, राम-कृष्ण, शिव, गीता, रामायण व महाभारत आदि एक सूत्र में सबों को आध्यात्म द्वारा बांध रखा है। 'आसेतु हिमालयात्' कहने मात्र से पुण्य भारत का सरहद मालूम होता है! भागवत (5-19-23/28) में भारत का वर्णन यों है—'कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्। क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥ यद्यत्र नः स्वर्ग सुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम्। तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद् वर्षे हरिर्यद् भजतांश तनोति॥' हमारे भारतवर्ष में करीब पांच हजार वर्ष पूर्व से ही लोग यात्रा करते थे और इसका प्रमाण अथर्वण वेद द्वारा मालूम होता है—'ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानश्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्र पापास्तं पन्थानं जये मानमित्रमतस्करं तान्छिवम् तेन नोमृड (अथर्वण वेद 12-1-47)'। इससे मालूम होता कि लोग अनेक प्रकार की यात्रायें करते थे, तरह-तरह के रास्ते होते थे, चोर डाकू तब भी थे और लोग कठिनाइयों का सामना अपने बल पुरुषार्थ द्वारा ही करते थे। उत्तरापथ, दक्षिणापथ, राजपथ, हस्तिपथ, व्यूहपथ आदि राहों के नाम से विविध मार्ग प्रख्यात थे। वनपथ, कान्तारपथ, वारिपथ, आदि स्थान की सूचना देते हैं। अजपथ, वेणुपथ, वेत्रपथ, छत्रपथ, शंकुपथ, आदि नामों से यात्रा सम्बन्धी नियम प्रणालियों का पता चलता है।

'तरति पापादिकं यस्मात्' या 'या तीर्थते अनेन' जिससे तर जाय, सफल होजाय, पापों से छुटकारा हो जाय वही तीर्थ है। मनुष्य जीवन का प्रधान उद्देश्य और परम लाभकर भगवत् प्राप्ति में है। यह सारा प्रपंच एवं शरीर नाशवान् व क्षण भंगुर व अनित्य समझकर भगवत् प्राप्ति के लिये भगवान के शरण जाना चाहिये तथा भगवान् के कीर्तन, श्रवण, मनन, ध्यान, वन्दन व पूजन में मन लगाना चाहिये। तीर्थाटन एक साधना मार्ग है जिसके द्वारा भगवत् प्राप्ति होती है। भगवान का स्वरूप, तत्व, गुण, लीला, नाम आदि जानने से उस भगवान का ज्ञान होता है। यह ज्ञान पापरहित, काम-लोभ वर्जित, साधु-सङ्ग से भी होता है। ऐसे महान् साधु परिव्राजक तीर्थों में ही मिलते हैं। पद्मपुराण के पातालखण्ड में इस विषय का एवं तीर्थयात्रा विधि का विवरण दिया है। तीर्थाटन से आध्यात्मविद्या की प्राप्ति होती है। हृदयकमल में भक्तिभाव का संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थसेवन करना चाहिये।

ऋषि, मुनि, महापुरुष जगह जगह भ्रमण करते हुए इस भूमि को शुद्ध करते हैं। तीर्थयात्रा निमित्त जानेवाले ये महापुरुष इन स्थलों को पावन भी करते हैं—"प्रायेण तीर्थाभिगमाप देशैः। स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः॥ (भागवत 1-19-8)"। तीर्थी लोग महाविष्णु व महेश्वर को हृदय में रखकर तीर्थस्थलों को पावन करते हैं—'भवदविधा भागवता स्तीर्थी भूताः स्वयं विभो। तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेनगदाभृता॥' हर एक तीर्थ सेवन से पापों का नाश होता है—"सर्वेषां सर्वतीर्थानि पापघ्नानि सदानृणाम्। परस्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः॥ (तृस्थलीसेतु)"। गरुड पुराण में उल्लेख है "रजस्तमोविरहितैस्तपसा धूतकल्मषैः। यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते॥"

तीर्थ तीन प्रकार के हैं—(1) तीर्थ जंगम्—ग्रन्थ, विद्वान, साधु, परिव्राजक, महात्मा आदि; (2) तीर्थ मानस—सत्य, क्षमा, दान, दया, दम, तप, ज्ञान, संतोष, धैर्य, धर्म, चित्तशुद्धि आदि (स्कन्दपुराण के काशी खण्ड में मानस तीर्थ का महत्त्व एवं विधि आदि का उल्लेख है); (3) तीर्थ भौम—सप्त पुरियां, चतुर्धाम आदि। भौम तीर्थों को वैचारिक और भौतिक दोनों प्रकार की एकता स्थापित करने का माध्यम् माना जाता है। चतुर्धाम की महत्ता व व्यापकता का रहस्य यही है कि ये सारे देश के सार्वभौम तीर्थ हैं। इन क्षेत्रों में साक्षात भगवान रहते हैं। तीर्थ दो प्रकार के भी होते हैं—स्वयंभूत और निर्मित। कुछ ग्रंथों में चार प्रकार के तीर्थों का भी उल्लेख है—दैव, असुर, आर्षक एवं मानुष। भगवान के प्रियभक्त स्वयं ही तीर्थरूप होते हैं। अपने हृदय में विराजित भगवान के द्वारा तीर्थों को भी महातीर्थ बनाते हुए भक्त यात्रा करते हैं। ऐसे ही गुरु अपने शिष्य के हृदय में रातदिन सदा ही प्रकाश फैलाते हैं। शिष्य के अज्ञानमय अन्धकार का नाश कर देते हैं। शिष्यों के लिये गुरु ही परम तीर्थ हैं।

दिवा प्रकाशकः सूर्यः शशी रात्रौ प्रकाशकः।
गृह प्रकाशको दीप स्तमो नाशकरः सदा॥
रात्रौदिवा गृहस्यान्ते गुरुः शिष्यं सदैव हि।
अज्ञानाख्यं तमस्तस्य गुरुः सर्वं प्रणाशयेत्॥
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनीपते। (पद्मपुराण-भूमिखण्ड)

गुरु भक्ति की महिमा एवं गुरुप्रसाद से परमात्म लाभ होता है यथा—

यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथागुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः|
गुरुःपिता गुरुर्माता गुरुरेव परः शिवः॥
'शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।'
'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया|'
'गुरोर्निकटे यो वासःसएव क्षेत्रवासः'

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने तीर्थ का वर्णन बडे ही सुन्दर शब्दों में किया है।

मुदमंगलमय संतसमाजू जो जग जंगम तीरथराजू।
रामभक्ति जहं सुरसरि धारा सरस्वति ब्रह्मविचार प्रचारा।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी कर्मकथा रविनंदिनि बरनी।
हरिहर कथा विराजति बेनी सुनत सकल मुदमंगल देनी।

वट विश्वास अचल निजधर्मा तीरथराज समाज सुकर्मा।
सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा सेवत सादर शमन कलेशा।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ देय सद्यफल प्रगट प्रभाऊ।

इहलौकिक व परलौकिक दोनों के लिये गुरु की भक्ति एवं तीर्थाटन आवश्यक है और मानव यथा शक्ति अपना कर्त्तव्य समझकर तीर्थाटन करें। खेद की बात है कि आधुनिक काल में कुछ लोग तीर्थाटन करना अनावश्यक समझते हैं और इसीलिये यहां इस विषय का वर्णन किया गया है ताकि लोगों में पुनः तीर्थाटन करने की भावना उत्पन्न हो।

पद्मपाद ने काळहस्ती, कांची, कल्लाल, पुण्डरीकपुर, शिवगङ्गा आदि तीर्थस्थलों की यात्रा कर रामेश्वर के लिये रवाना हुए। कहा जाता है कि आप जब रामेश्वर यात्रा के लिये चले, रास्ते में अपने बन्धु (कहा जाता है मामा) के मकान पर ठहरे और अपने से रचित टीका को वहीं रखकर तीर्थाटन करने को चले। रामेश्वर से लौटते समय जब बन्धु के मकान पर पहुंचे तब उन्हें मालूम हुआ कि आपसे लिखित ग्रन्थ सब अग्नी में जल भस्म हो गया। पद्मपाद के मामा को पुस्तक रखना असह्य होने के कारण उन्हें घर जलाना मंजूर था। उन्होंने घर में आग लगा दी। पद्मपाद दुखित हो गुरु के दर्शन की आकांक्षा से कालटी पहुंचे। उसी समय आचार्य शङ्कर कालटी में अपनी माता के दाह कर्म करने के निमित्त आ पहुंचे। पद्मपाद ने बडे दुःख से यह कथा अपने गुरु को सुनायी। यात्रा करने के पहले शृङ्गेरी मे ही भाष्य के कुछ भाग पद्मपाद ने लिखा था। आचार्य शङ्कर उसे पुनः लिख सुनाने की आज्ञा दी। तब पद्मपाद ने कहा कि मेरी बुद्धि मलीन हो गई है और इसके सूक्ष्म विषय मेरे समझ में आता नहीं है। पद्मपाद ने कहा कि मेरे न जाने मामा ने मुझको जडी भूटी खिला दीहै और तब से मेरी बुद्धि में विकृत भाव पैदा हो गया है। आचार्य शङ्कर ने अपने तीव्र मेधा एवं दीर्घ स्मरण शक्ति द्वारा अपने मन से पद्मपादिका ग्रन्थ को कह सुनाया क्योंकि आपने इसके पूर्व शृङ्गेरी में पद्मपाद रचित टीका को एक बार सुना था। ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के चार पादों का और द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद कुल पांच पादों का ही टीका लिखा था। इसीलिये इस ग्रन्थ का नाम "पञ्चपादिका" से विख्यात हुआ। पर इस ग्रन्थ का लोप हो जाने के कारण आचार्य के केवल चार सूत्रों की भाष्य व्याख्या ही अब प्रचार में है।

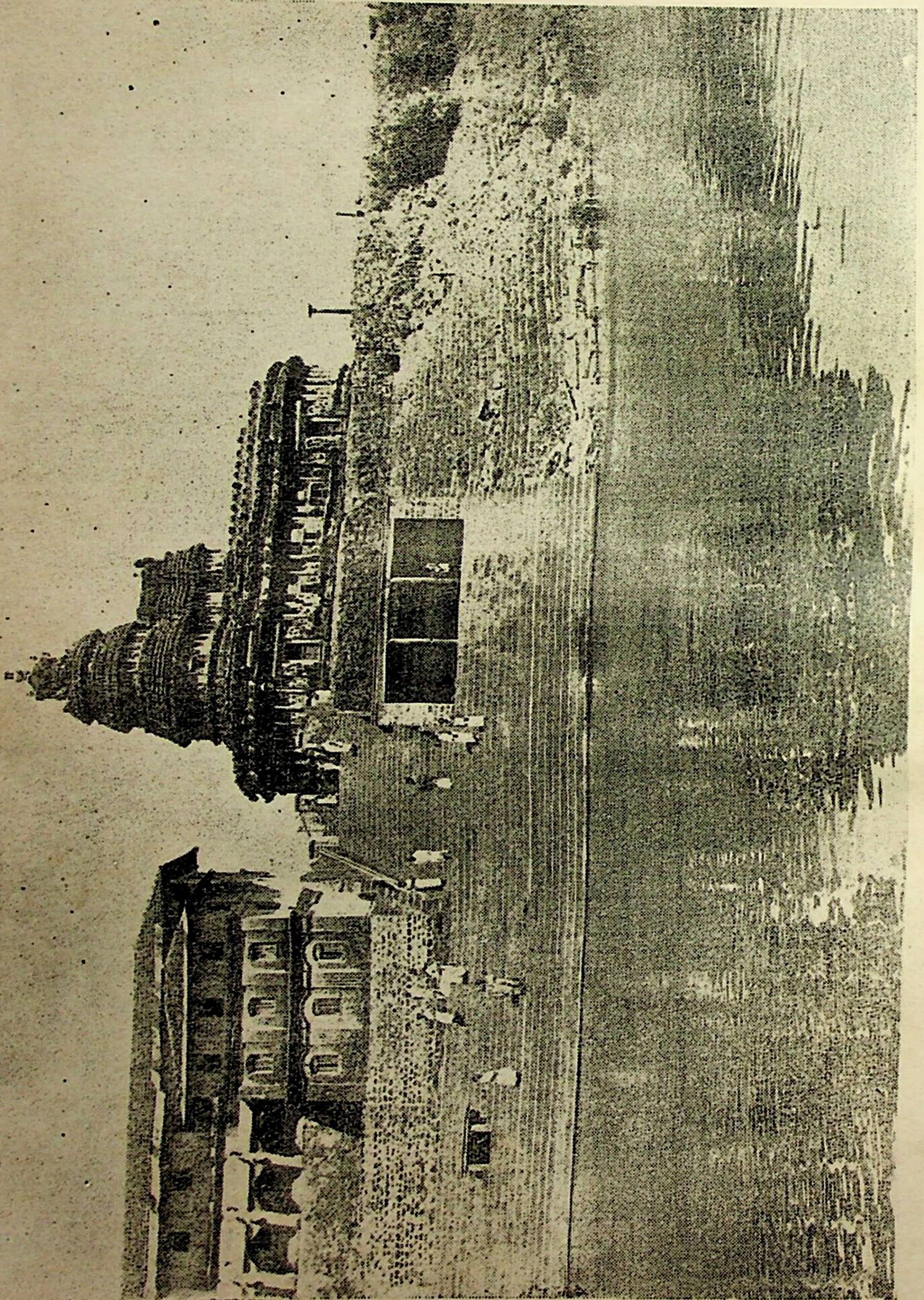


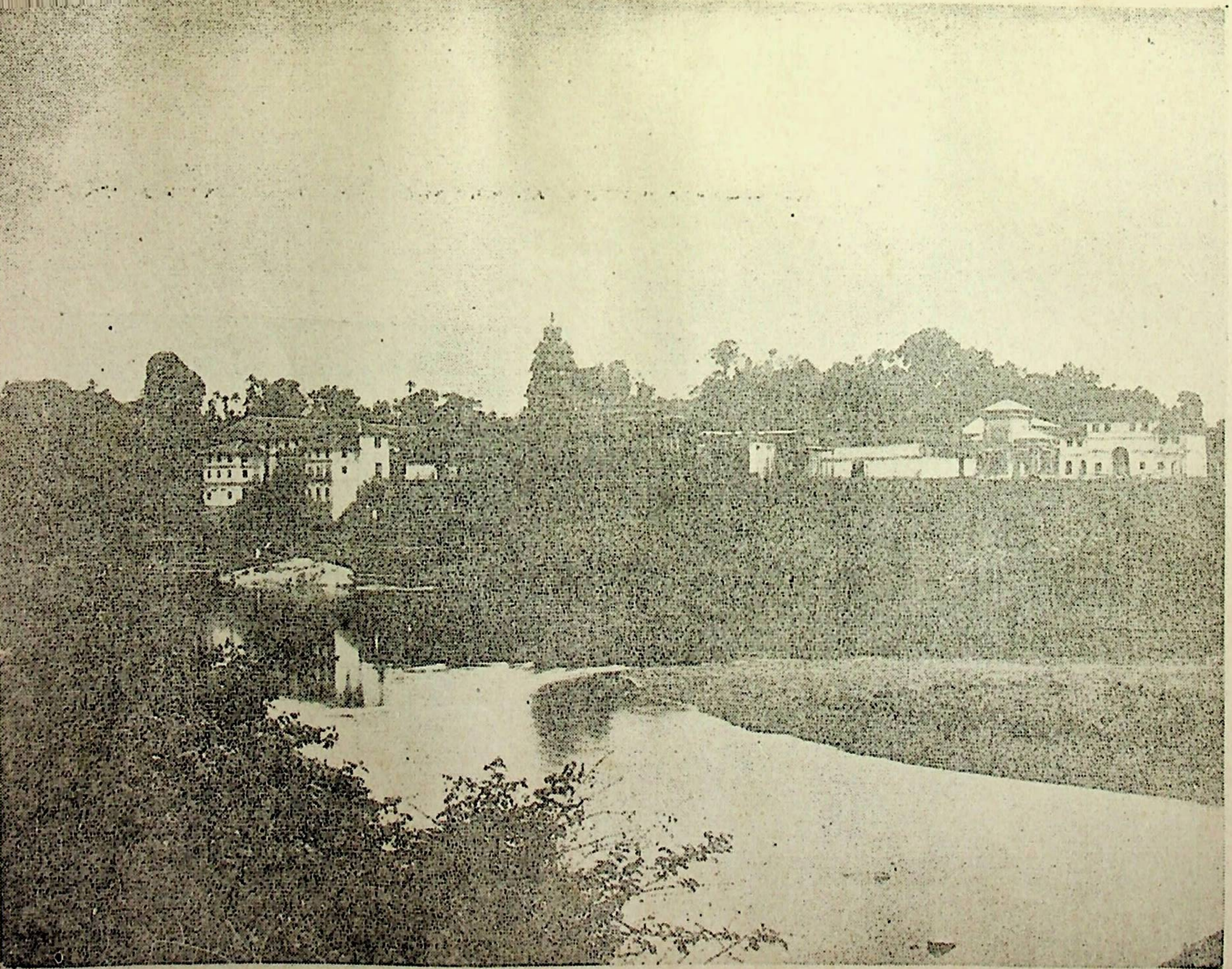


श्री शारदा—श्री शृङ्गेरी मठ



श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य मूर्ति—श्री शृङ्गेरी मठ





दक्षिणाम्नाय श्री शृङ्गेरी मठ—शृङ्गगिरि (एक दृश्य)

श्री शृङ्गेरी मठ में माता श्री शारदा मन्दिर—एक दृश्य



दक्षिणाम्नाय श्री शृङ्गेरी मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य
श्री 1008 श्री अभिनव विद्यातीर्थ स्वामी जी महाराज

अध्याय—5

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

पद्मपाद ने गृहस्थ आश्रम की बडी प्रशंसा की है तथा उन्हें धर्मका विधिवत् अनुष्ठान करने की आज्ञा भी दी है। 'शरीरमूलं पुरुषार्थसाधनं तच्चान्नमूलं श्रुतितोऽवगम्यते। तच्चान्नमस्माकममीषु संस्थितं सर्वं फलं गेहपतिर्हिमाश्रयम्॥' श्रुति भी कहता है 'अन्नादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'। श्री पद्मपाद कहते हैं 'तस्माद् गृही सर्ववरो मतो मे'।

पद्मपाद के तीर्थ यात्रा चले जाने पर आचार्य शङ्कर एवं उनके शिष्यगण सबों ने कुछ काल तक शृङ्गेरी में निवास किया। आचार्य शङ्कर ने एक दिन ध्यानावस्थित होकर स्वयं जान लिया कि उनकी माता की मृत्यु समय अब निकट आगया है। ऐसा विचार करके अपने पट्टशिष्य श्री सुरेश्वर के ऊपर शृङ्गेरी का भार छोडकर श्री शङ्कर स्वयं माता के पास कालटी आ पहुंचे। माता के आज्ञानुसार श्री शङ्कर ने अद्वैत तत्त्वों का उन्हें उपदेश दिया। पश्चात माता ने सगुणदेव का यशोगान स्तुति सुनाने को कही चूंकि उन्हें उस शरीरावस्था में सूक्ष्म निर्गुण पर चित्त नहीं लगता था। आचार्य ने शिवस्तुति सुनाई। माता को शिवलोक जाने में इच्छा न होने से वह सती माता आर्याम्बा विष्णु के ध्यान में मग्न होकर स्वशरीर का त्याग कर दिया और वह विष्णुधास को जा पहुंची। पूर्व कहे हुए अपने वचनों के अनुसार श्री शङ्कर ने माता की अन्त्येष्टि क्रिया भी अपने हाथों से ही की और इसे देखकर गांव के ब्राह्मणों ने शङ्कर की निन्दा की क्योंकि शङ्कर सन्यासी थे और उन्हें दाहसंस्कार का अधिकार भी नहीं था। तेजस्वी विभूति पुरुषों का यदि कोई कार्य शास्त्र के विरुद्ध भी जान पडे तो भी उसकी निन्दा नहीं करना चाहिये। परशुराम ने अपने भाई तथा माता का वध कर डाला परन्तु इस कारण उन्हें कोई निन्दा नहीं करता। माता सीता के चरित्र पर किसी एक साधारण व्यक्ति से टिप्पणी करने पर श्री रामचन्द्र ने माता सीता को त्याग कर वनवास कराया। क्या यह कार्य उचित या अनुचित था? इस विषय को लेकर श्री रामचन्द्र की कोई निन्दा नहीं करता। विभूति अवतार पुरुषों का जीवन चरित्र अलौकिक होता है और ये पुरुष वासनाहीन होते हैं। संसार को हेय दृष्टी से देखने वाले पुरुष कार्य का कर्ता भी हों तो उससे क्या? कर्म कभी बन्धन में डाल नहीं सकता। सन्यासियों को दाह क्रिया करने का अधिकार शास्त्रयुक्त न होते हुए भी यह कहा गया है कि तेजस्वी पुरुषों के कार्य पर निन्दा नहीं करना चाहिये यथा—'धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्। तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा।'

श्री शकर ने उन लोगों को शाप दिया यथा—'इतः परं वेद बहिष्कृतास्ते द्विजा यतीनां न भवेच्च भिक्षा। गृहोपकण्ठेषु च वः श्मशानमद्य प्रभृत्यस्त्विति ताञ्शशाप॥'' आज पर्य्यन्त बहुतेरे नम्बूदरी ब्राह्मण चिता को घर में ही जलाते हैं। मकान के पिछे का भाग आकाश खुला जमीन होता है। शवको काटकर टुकडा करने के बदले उसे चाकू द्वारा हर एक अङ्गो पर चिन्ह करते हैं। वेदाध्ययन भी नहीं करते। नम्बूदरी वंश के इस परम्परा आचरण से सिद्ध होता है कि श्रीशङ्कर का शाप देना सत्य है।

एक समय केरल देश का एक छोटा राजा राजशेखर श्रीशङ्कर का दर्शन करने के लिये उनके पास आया। यह राजा विद्वान था। आपसे लिखा हुआ तीन नाटक जो सब जलकर भस्म हो गये थे, उन नाट्य ग्रन्थों

को यह राजा विद्वान फिर से लिखना चाहते थे। इन नाव्य ग्रंथों को श्रीशङ्कर बाल्यावस्था में ही एक बार पढ चुके थे इसलिये श्रीशङ्कर ने उन नाव्य ग्रन्थों को फिर से राजा को कह सुनाया। इसे सुनकर राजा परम विस्मय में आ गये और तब उन्हें योगीराज समझा। राजा विद्वान ने इन नाव्य ग्रन्थों को फिर से श्रीशङ्कर द्वारा लिखा लिया। राजा राजशेखर के तीनों नाटकों का विवरण ठीक मालूम नहीं होता। केरळ देशीय विद्वान बालरामायण, बालभारत और कर्पूर मंजरी को ही तीन नाटक राजशेखर कृत मानते हैं। उनका कहना है कि श्री शङ्कर ने ही इन ग्रन्थों का पुनः निर्माण किया था। इन विद्वानों की दृष्टी में कविराजशेखर ही केरल के राजा राजशेखर होने का मत है। यह असंगत है। कवि राजशेखर यायावर ब्राह्मण थे और आप क्षत्राणी अवन्ति सुन्दरी से विवाह किया था। यह कवि विदर्भ देश के थे और उनका कर्म क्षेत्र कान्यकुब्ज नगर था।



अध्याय—6

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

श्री शंकर अपने स्थल को छोडकर दिग्विजय यात्रा के लिये रवाना हुए। उदारचित्त, धीरवीर व दानशील श्री शंकर ने अपने शरीर को लोक कल्याण शान्ति और परोपकार के लिये ही अर्पण किया। आचार्य शंकर तिरुचूर समीप गुरुवायूर स्थल पहुंचे, यहां गुरुवायू रप्पा का मन्दिर है। आचार्य इस मन्दिर में कुछ काल ठहरे थे। उन्होंने यहां की पूजा-पद्धति में संशोधन किये थे। अबतक पूजा उस संशोधित विधि से ही होती है। कर्नाटक में श्रीधर्मस्थल एक पवित्र तीर्थ स्थान है। यहां का पुरातन प्रसिद्ध मन्दिर मन्जुनाथेश्वर का है। यह क्षेत्र दक्षिण–कनाडा जिले में है। पूर्व काल में इस मन्दिर में श्री मन्जुनाथेश्वर–लिङ्ग की स्थापना आदि शंकराचार्य ने की थी। किन्तु सन् 1635 में श्रीवादिराज स्वामिपाद ने जो उडीपी के सोदेमठ से आये थे, इनकी उपासना की और तब से यहां की उपासना एवं सेवा श्री मध्वाचार्य के द्वैतमतानुसार होती है। वहां से अनेक शिष्यों सहित आप मध्यार्जुन सीमा (तंजौर जिला) पहुंचे। वहां पर अपने अद्वैत मत का श्रेष्ठत्वगुण स्थापित किया। फिर वहां से श्री शंकर भवानी नगर नामक स्थान पर पहुंचे। यहां के लोग कट्टर शाक्त उपासक थे। उन सबों को भी अद्वैत मत का बोध कराके फिर शाक्त मत का त्याग कराया। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने श्रीरङ्गम समीप जम्बुकेश्वर का (जलतत्वलिङ्ग) पूजन किया था। यह भी कहा जाता है कि यहां के जगदम्बा अखिलान्डेश्वरी की उग्रता को आचार्य शङ्कर ने शान्त कर दी और गणेश मूर्ति भी स्थापित कर दी। फिर वहां से सेतु पहुंच कर यात्रा सम्पूर्ण किया और वहां से निकलकर चिदम्बर क्षेत्र होते हुए श्री कांचीपुर पहुंचे।

एकस्तत्र कृतो धर्म्मो वर्धते हि सहस्रशः।
तत्रैवहि हरि दृष्टो ब्रह्मण परमेष्ठिना॥

हयमेधेन यज्ञेन विष्णुमभ्यर्चता पुरा।
यत्र कांचीति विख्याता पुरी पुण्य विवर्धिनी॥

विधातुरवमेधार्थे निर्मिता विश्वकर्मणा।
विष्णु वा तत्र रुद्रं वा संपूज्य विधिवन्नरः॥

प्राप्नुवन्ति हि सर्वार्थान् क्षिप्रमेव नसंशयः।
अश्वमेधस्य शालायां ब्रह्मण परमेष्ठिनः॥

स्थानान्येतानि राजेन्द्र प्रोक्तान्यष्टादशैवहि। (कांची माहात्म्य)

"कामप्रदे अक्षिणी यस्याः सा कामाक्षी॥"

नेत्रद्वयं महेशस्य काशी काञ्ची पुरी द्वयम्।
विख्यातं वैष्णवं क्षेत्रं शिवसांनिध्यकारकम्॥

काञ्चीक्षेत्रे पुरा धाता सर्वलोक पितामहः।
श्री देवी दर्शनार्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्॥

प्रादुरास पुरो लक्ष्मीः पद्महस्तपुरस्सरा।
पद्मासने च तिष्ठन्ती विष्णुना जिष्णुना सह॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरण भूषिता। (ब्रह्माण्ड पु० ललितोपाख्या–35)

श्रीकाञ्ची क्षेत्र एक पुण्य स्थल है जहां ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ किया था। श्रीहर्ष ने अपने नैषध काव्य में कांची का वर्णन करते हुए "यागेश्वर" पद उल्लेख किया है। इस क्षेत्र की महिमा (विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कांची एवं ब्रह्मा से अश्वमेध यज्ञ किया हुआ) एवं अधिष्ठ देवता (श्रीएकाम्बरेश्वर) का "यागेश्वर" पद से विदित होता है न कि योगलिङ्ग का उल्लेख करता है जैसा कि कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं। श्रीकांची मोक्षदायक सप्तपुरी में एक पुरी है। कुम्भकोण मठ की पुस्तक "शङ्कराचार्य पूजाकल्प" (1934) में आचार्य अष्टोत्तरशत नामावली में "कांची श्रीचक्रराजाख्ययंत्रस्थापनदीक्षितः" का उल्लेख है। अर्थात् श्रीशङ्कर ने कांची की अधिष्ठात्री गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता को शान्त करके स्थूल रूप श्रीचक्रराज यंत्र का पुनः प्रतिष्ठा की जैसे आचार्य शङ्कर ने अन्यस्थलों के पीठों की भी की थी। "पंचाशत् पीठ मन्डिता" के अनुसार पचास पीठों का देवी भागवत रीति के अनुसार उल्लेख है। कांचीपुर में एक ऐसा पीठ अनादिकाल से है जिसकी अधिष्ठात्री केवल कामाक्षी देवी हैं। भागवत के दसवें स्कन्ध 79 अध्याय में "कामकोष्णीं पुरीं कांची" का उल्लेख है। तोडल तन्त्र नवम उल्लास में कांची को विश्वरूप महादेव का कटिदेश कहा है। बृहन्नीलतन्त्र पांचवें पटल में कहा है कि कांची में कनक कांची देवी विराजती हैं।

देवी भागवत एवं मत्स्यपुराण में 108 दिव्य शक्ति स्थान एवं भगवती के 108 नाम का उल्लेख करते हुए कामाक्षी का उल्लेख ऐसा किया है—'गन्धमादन पर्वत पर कामाक्षी रूप में स्थित हैं।' रामायण द्वारा प्रतीत होता है कि गन्धमादन पर्वत रामक्षेत्र में है और यहीं पर श्री हनुमान जी गन्धमादन पर्वत पर चढ कर समुद्र लांघने का अनुमान लगाये थे। पुराकाल में रामेश्वर क्षेत्र का नाम गन्धमादन था। तंत्रचूडामणी में 51 शक्ति पीठों का उल्लेख है, यथा 'पञ्चाशदेक पीठानि एवं भैरव देवताः। अङ्गप्रत्यङ्गपातेन विष्णुचक्रक्षतेन च।' इस पुस्तक में उल्लेख है कि कांची में सती का अस्थि (कङ्काल) अङ्ग गिरा और यह शक्तिपीठ देवगर्भा के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि शिवकाञ्ची में जो काली मन्दिर है वह यही शक्ति पीठ (देवगर्भा) है। 'काञ्ची देशे च कङ्कालो भैरवो रुरुनामकः। देवता देवगर्भाख्यानितम्बः कालमाधवे॥' (तंत्रचूडामणि)। तंत्रचूडामणी में 53 स्थान दिये गये हैं किन्तु वामगण्ड के स्थानों की पुनरुक्ति छोडने पर 52 स्थान रह जाते हैं। पर शिवचरित्र, दाक्षायणी तन्त्र, योगिनिहृदयतन्त्र में 51 पीठों का उल्लेख है। त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्ड में पराम्बा पार्वती का 12 प्रधान देवी रूपों में स्थित होने का भी उल्लेख है जिसमें कांची का कामाक्षी एक है।

नाभि की पतनभूमि कामकोटि पीठ हुआ। उत्कल कटक से 44 मील पहले ही जाजपुर स्टेशन है और यहां से याजपुर तीर्थ 9 मील है। याजपुर नाभीगया क्षेत्र माना जाता है। यहां ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। वैतरणी नदी घाट से कुछ दूर पर ब्रह्मकुण्ड के समीप विरजादेवी का मन्दिर है। कुछ विद्वान एवं तान्त्रिक 51 शक्तिपीठों में इसी पीठ को नाभि पीठ मानते हैं। सती का नाभि यहीं गिरा था, यह उनकी मान्यता है। पर कुछ विद्वान नाभि की पतनभूमि कामकोटि पीठ ही मानते हैं। 'उत्कले नाभिदेशस्तु विरजाक्षेत्रमुच्यते। विमला सा महादेवी जगन्नाथस्तु भैरवः॥'• (तंत्र चूडामणी)। वहां 'ऐकार' वर्ण का प्रादुर्भाव हुआ। समस्त काम मंत्रों की सिद्धि वहां होती है। इसके चारों दिशाओं में अप्सरायें निवास करती हैं। 'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दरूपं यदक्षरम्! प्रवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया

जगतो यतः' इस वचनानुसार प्रणवात्मक ब्रह्म ही निखिल विश्व की उपादान है। वही शक्तिमय सती शरीर रूप में और निखिल वाङ्मय प्रपञ्च के मूलभूत एक पञ्चाशत् वर्णरुप में व्यक्त होता है। जैसे निखिल विश्व का शक्तिरूप में पर्यवसान होता है वैसे ही वर्णों में सकल वाङ्मय प्रपञ्च का अन्तर्भाव होता है क्यों कि सभी शक्तियां वर्णों की आनुपूर्वी विशेष मात्र है।

"सुरधाम स तत्र कारयित्वा परविद्याचरणानुसारि चित्रम्। अपवार्य च तान्त्रिकानतानीद्भगवत्याःश्रुतिसंमतां सपर्याम्॥ (माधवीय)। माधवीय टीकाकार उपर्युक्त मूल श्लोक के टीका में लिखते हैं—"अत्रेदमवधेयम्। परमगुरुः श्रीशङ्कराचार्यो यत्र किल महादेवः स्वकीयपृथिवीमूर्त्याविर्भूत लिङ्गरूपेणाम्बरेश इति प्रसिद्धया वर्तते तस्मिन्काञ्ची नगरे मासमात्रं स्थित्वा शङ्करप्रतिष्ठापूर्वकं शिवकाञ्चीति पट्टनं निर्माय तत्प्रागाविर्भूत विष्णुं वरदराजं समाश्रित्य तत्र विष्णुकाञ्चीति पट्टनं निर्माय तत्सेवार्थं ब्राह्मणादीननेक भक्तजनान्संपाद्य तानपि शुद्धाद्वैतवृत्तीनेव सर्ववेदान्ततात्पर्यनिष्ठांश्चकार।" माधवीय टीकाकार अन्य ग्रन्थों से पंक्तियां उद्धरण कर कहते हैं कि आचार्य शङ्कर काञ्ची में केवल माह काल वास कर शिवकाञ्ची एवं विष्णुकाञ्ची पट्टनों का निर्माण कराकर तथा मन्दिर मूर्तियों की पूजासेवादि कार्य के लिये ब्राह्मणों को नियोजित किये। काञ्ची में आचार्य शङ्कर ने आम्नाय मठ की स्थापना न की थी या आप वहां अन्तिम काल तक न वास किये तथा वहां न देह त्याग किया था। बम्बई से प्रकाशित गुरुपरम्परा चरित्र में उल्लेख है "रामनाथं ययौतत्रतसमभ्यर्च्य ततोमुनिः। चोलद्राविडपाण्ड्यांश्च जित्वा काञ्ची ततोऽजयत्। वेंकटाद्रि विजित्यासौ कर्नाटक भुवं ययौ।" कांञ्ची में आम्नाय मठ स्थापना करने का उल्लेख नहीं है। शिवरहस्य में उल्लेख है "काञ्च्यां तपः सिद्धि मवाप्य दण्डी" अर्थात् कांञ्ची में तपसिद्धि मात्र प्राप्त करने का ही उल्लेख है। माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, कहेजानेवाले नवीन व्यासाचलीय, अग्राह्य मूल आनन्दगिरीय, गोविन्दनाथीय, आदि अनेक ग्रंथों में एवं अर्वाचीन काल प्रकाशित चरित्र पुस्तकों में कहीं भी नहीं कहा गया है कि आचार्य ने कांञ्ची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय में भी दृष्टिगोचार केवल चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख है जिसमें कांञ्ची का नामोनिशान नहीं है। चिद्विलासीय में आचार्य शङ्कर कांञ्ची में सर्वज्ञपीठारोहण करने का उल्लेख है—"सर्वज्ञपीठं संस्थानं विजित्य द्वैतवादिनः।" कांञ्ची स्थल सर्वज्ञपीठ समान स्थल था जहां आचार्य शङ्कर ने द्वैतवादियों को विवाद में पराजित किया था। यहां उपलक्षण न्याय ठीक है। अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शारदा देश काश्मीर में ही सर्वज्ञ पीठ था और आचार्य ने यहीं आरोहण की थी। कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने के पश्चात द्वितीय बार सर्वज्ञपीठारोहण करना असम्भव है चूंकि सर्वज्ञपीठ एक ही हो सकता है। इसीलिये श्रीचिद्विलासीय में उल्लेख से प्रतीत होता है कि काञ्ची का विजय कश्मीर के सर्वज्ञपीठारोहण सदृष था। सर्वज्ञपीठारोहण करना एवं आम्नाय मठ की स्थापना करना ये दोनों कार्य भिन्न हैं। सर्वज्ञपीठ होने मात्र से आम्नाय मठ होने का कोई आवश्यकता नहीं है।

सौन्दर्यलहरी में भी काञ्ची में अनादिकाल से प्रचलित शक्ति पीठ का वर्णन है और ललिता त्रिशती में भी 'कामकोटि निलयायी नमः' का उल्लेख है। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित ललिता त्रिशति भाष्य में 'कामकोटि' का अर्थ 'श्रीचक्र' बतलाया है। यहां की अधिष्ठात्री कामाक्षी गुफा में निवास करती थी। कामाक्षी ब्रह्मविद्यात्मक रुद्रशक्ति है। अति उग्र होने के कारण श्री शङ्कर ने इस देवी की उग्रता को शान्त किया और श्रीचक्र की अशुद्धता को भी शुद्ध कर दिया और पुनः श्रीचक्रराज की प्रतिष्ठा भी की। श्रीचक्रराज का लक्षण यों है :—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः॥

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥

त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च ॥

बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं तथा षोडशपत्रकम्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं शिवचक्राण्यनुक्रमात् ॥

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके ॥

शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसंबन्धं यो जानाति स चक्रवित् ॥

त्रिकोणरूपिणीशक्तिर्बिन्दुरूपः सदाशिवः।
अविनाभावसंबन्धं तस्माद्बिन्दुत्रिकोणयोः ॥

एवं विभागमज्ञात्वा श्रीचक्रं यः समर्चयेत्।
न तत्फलमवाप्नोति ललिता वा न तुष्यति ॥

उपर्युक्त श्रीचक्र लक्षण रीति से श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा कांची में की। आचार्य शङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा में अनेक पुण्यक्षेत्रों व स्थलों में मन्दिरों का पुनः निर्माण व जीर्णोद्धार किया एवं श्रीचक्र और अन्य चक्रों की प्रतिष्ठा भी की थी। मूकाम्बिका, तिरुपदी, अहोबलि, चिदम्बर, काशी अन्नपूर्णा, कामरूप कामाक्षी (कामाख्या), गुह्येश्वरी (नैपाल) आदि देवदेवियों की उग्रता शान्त की थी और अशुद्धता निवारण किया था। उसी प्रकार काञ्ची में भी गुहावासिनी उग्रदेवी की उग्रता शान्त कर वहां के श्री चक्र की अशुद्धता का भी निवारण किया था। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने राजा राजसेन द्वारा शिव, विष्णु आदि मन्दिरें बनवाये एवं नगर का निर्माण किया और पूजापाठ के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त करके वहां से आगे बढे। कामाक्षी देवी की पूजा पाठ भी ब्राह्मणों के हाथ सौंप दिया।

कांची पद का अर्थ "मध्यपीठ" है। यह पीठ आचार्य शङ्कर के काल के पूर्व से ही है। "कामकोटि" का अर्थ आचार्य शङ्कर के व्याख्यानुसार "श्रीचक्र" है। "कञ्ची" पद का अर्थ "कञ्ची" नगर का नाम है। भूल से लोग कञ्ची को काञ्ची पद से पुकारते हैं। प्राचीन ग्रंथों से प्रतीत होता है कि कञ्ची नगर का नाम "कञ्चिपेड्ड" "कञ्चि" कञ्चि" "कञ्चिपुरम" भी था। अर्वाचीन काल में इस नगर का नाम "कञ्जीवरम्" हुआ। कञ्चि नाम का नगर इस भारतवर्ष में अनेक जगह प्रतीत होते हैं। कश्मीर के इतिहास में "कञ्चि" नगर का उल्लेख है और इस नगर से कांचुडी नाम का एक प्रभावशाली व समृद्धशाली वर्ग कश्मीर राजा नवसुरेन्द्रादित्य नन्दिदेव पटोलदेव के शासनकाल में बडे प्रभावशाली थे। झांसी के समीप मध्यभारत में भी एक स्थान है जिसे कोंच या कंच नाम से पुकारते हैं। आसाम प्रान्त के इतिहास में भी कांचीपाडा नगर का उल्लेख है। दक्षिण भारत में भी दो कञ्चि नगर हैं। मदरास समीप एक कञ्चि नगर और दूसरा तुङ्गभद्रा नदी समीप कर्नाटक प्रान्त में कञ्चिपुर (कोंचपुर) है। आचार्य शङ्कर कश्मीर, मध्यभारत, आसाम, तुङ्गभद्रा नदी तट आदि सीमा में भ्रमण किये थे और अनुमान करना भूल न होगी कि आचार्य इन पांचों कञ्चि स्थलों में भी गये होंगे। इन सब कञ्चि

नगरों में देवी का मन्दिर भी हैं। दक्षिण भारत का काञ्चि की कामाक्षी एवं आसाम का कामरूप की कामाख्या दोनो एक ही है।

श्री शंकर वेंकटाचल क्षेत्र में जाकर देवों का दर्शन किया और अपने मत का भी प्रचार किया। इस प्रकार आन्ध्र देश में भ्रमण करते हुए अवैदिक मतों का खन्डन करके वैदिक मतों का प्रचार किया। तत्पश्चात् विदर्भ देश में प्रचार किया| कर्नाटक देश केन्द्र के कापालिक भैरव मतावलम्बियों से वाद-विवाद करके वैदिक मार्ग का उन्हें बोध कराया पश्चात् मगध में भ्रमण करते हुए आप पश्चिम समुद्र तट तक पहुंचे। मानिकपुर—भांसी लाइन में मानिकपुर से 95 मील पर महोबा स्टेशन है। यहां से कुछ दूरी पर मदनसागर सरोवर है जिसके मध्य में दो टापू हैं। इस सरोवर के अग्निकोण पर कण्ठेश्वर शिव तथा चन्डिकादेवी स्थान हैं। कण्ठेश्वर शिव एक गुफा में हैं। इससे लगी हुई 'शङ्कराचार्यगुफा' भी है। प्रतीत होता है कि आचार्य शंकर इन स्थलों से गुजरे होंगे। पूना से करीब 50 मील पर करहा नदी के तटपर मोरेगांव है। यह गाणपत्य संप्रदाय का पीठ है। इसके समीप अङ्कुश तीर्थ है। अङ्कुश तीर्थ के पास ही तीर्थेश्वर श्री गणेश जी का मन्दिर है। आचार्य शंकर ने यहां गणेश जी का पूजन किया था। यहां से पश्चिम समुद्र समीप गोकर्ण आदि क्षेत्रों में जा कर वहां के पन्डितों को पराजित किया और आचार्य शंकर सौराष्ट्र होते हुए द्वारका पहुंचे। गोकर्ण में शङ्कर का आत्मतत्व लिङ्ग है जिसका नाम महाबलेश्वर है। गोकर्ण को महाबलेश्वर भी कहते हैं|

'या द्वारमस्त्यपिहितं वरमुक्तिधाम्नस्तां द्वारकां निजपुरीमिह योऽधिशेते। मोक्षाधिकं च निजधाम परं ददाति तं द्वारकेश्वरमहं प्रणमाम्युदारम्॥' परम पवित्र स्मरणमात्र पापनाशिनी गोमती-सागर सङ्गम पर श्री द्वारावती (द्वारका) है जो सप्त मोक्ष पुरी एवं चतुर्धामों में एक है। द्वारिका इस लोक में श्रेष्ठ मुक्तिधाम का खुला हुआ द्वार है। आज की प्रचलित तीन द्वारका में—मूल द्वारका, गोमती द्वारका, बेट द्वारका—गोमती द्वारका को श्रीकृष्ण की राजधानी के रूप में स्वीकार कर लिया है। इन तीनों में रणछोडजी का मन्दिर ही प्रधान है| गोमती द्वारका के रणछोडजी के पास सोने व रत्नों का भरमार है। बेट द्वारका का कृष्ण मन्दिर बिलकुल मनोहर महल है। स्कन्द पुराण में उल्लेख है "पांसवो द्वारकाय वै वायुना समुदीरिताः। पापिनां मुक्तिदा प्रोक्ताः किं पुन द्वारिकां भुवि।" द्वारका सम्बन्धी कथायें व पुराणों अनेक हैं। जरासंध के आक्रमणों से ऊवकर श्री कृष्ण द्वारा इसे बसाने की कथा तो सब को विदित है। दूसरी कथा भी है कि यह एक पुण्यस्थल है जहां श्रीकृष्ण और सुदामा की मैत्री की लीला देखी गयी थी। भगवान श्री कृष्ण अपनी मातृभूमि मथुरा छोडकर द्वारका में आ बसे| "समुद्रोऽप्लावयत्" "समुद्रःप्लावयिष्यति" "त्यक्त्वा भगवदालयम्" आदि भागवत के वचनानुसार द्वापर युग के अन्त में द्वारका नगरी के समुद्र में डूबने पर भी मन्दिर प्रदेश ज्यों का त्यों स्थित था। यहां का त्रैलोक्य सुन्दर मन्दिर लगभग पांच हजार वर्ष के पूर्व में निर्माण किये जाने का भी कथा सुनाया जाता है| स्वर्ग व मोक्षद्वार और मन्दिरों के अतिरिक्त ग्राम में भद्रकाळी, सिद्धनाथ, रुक्मणि, आदि कई मन्दिर भी हैं जो पौराणिक और ऐतिहासिक रुप से वन्दनीय स्थान हैं। गोमती के तटपर श्री शङ्कराचार्य जी का ज्ञान मन्दिर भी द्रष्टव्य है। इसमें 2332 शिवलिङ्ग, 2200 सालिग्राम, 76 जगद्गुरुओं की मूर्तियां भी प्रतिष्ठित हैं। श्री शंकर भगवत्पाद ने श्री भगवान कृष्ण मन्दिर का जीर्णोद्धार किया और मन्दिर के प्रांगन में पश्चिमाम्नाय कालिकापीठ की स्थापना भी की और जहां द्वारका शारदा मठ की स्थापना भी की थी। यह आम्नाय मठ मन्दिर के पूर्व घेरे के अन्दर, भन्डार के दक्षिग की ओर बसा है। द्वारका या द्वारवती अर्थात इस भारत भूमि का द्वार समझा जाता था। त्रिविक्रम वामनावतार के समय में इस क्षेत्र को कुशस्थली कहा जाता था| डा॰ जयन्तीलाल जमनादास ठाकर ने

प्रमाण सहित सिद्ध किया है कि प्रचीन द्वारका के स्थान पर ही नवीन द्वारका है। आचार्य शंकर ने कृष्ण की आराधना में कहा है 'कृष्णात्परम् किमपि तत्वमहं न जाने।' गीता में भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि 'वेदों में मैं सामवेद हूं' और द्वारका स्थल भगवान कृष्ण का स्थल था। इसीलिये यह कहा जा सकता है कि पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ का वेद सामवेद हुआ। द्वारका सीमा में पाञ्चरात्र संप्रदाय के अनुयायियों की प्रधानता थी और आचार्य ने इन सबों से वादविवाद कर वैदिक मार्ग की स्थापना करते हुए ज्ञानोपदेश दिया था।

प्रथमः पश्चिमाम्नायः शारदा मठ उच्यते।
कीटवारः संप्रदायस्तस्य तीर्थाश्रमौ शुभौ ॥
द्वारकाख्यां हि क्षेत्रंस्याद्देवः सिद्धेश्वरः स्मृतः।
भद्रकालीतु देवीस्यादाचार्यो विश्वरूपकः। (पद्मपाद पाठ भी है)
गोमती तीर्थममलं ब्रह्मचारी स्वरूपकः।
सामवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत् ॥ (मठाम्नायसेतु)
पश्चिमस्यां हरित्येश मठमेकं विनिर्ममे।
हस्तामलकनामानं तदध्यक्षं ततान सः ॥ (चिद्विलासीय)

आचार्य शङ्कर द्वारका से अवन्तिका, नैमिश, पांचाल देश भ्रमण करते हुए आप कामरूप पहुंचे। 'कामेश्वरीं च कामाख्यां कामरूप निवासिनीम्। तप्तकाञ्चनसंकाशां तां नमामि सुरेश्वरीम्॥', 'यत्र साक्षाद् भगवती स्वयमेव व्यवस्थिता', 'तेषु श्रेष्टतमः पीठः कामरूपो महामते।' (देवीपुराण)। 51 सिद्धपीठों में कामरूप को सर्वोत्तम कहा गया है। सती का गुह्य भाग यहीं गिरा था। कामाक्षी देवी का मन्दिर पहाडी पर है जो अनुमान से एक मील ऊंची होगी। इस पहाडी को नीलपर्वत भी कहते हैं। इस देश को कामरूप, असम या आसाम कहते हैं। करतोया नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक त्रिकोणाकार कामरूम देश माना जाता है पर अब यह रूप-रेखा नहीं रही। अमीनगांव स्टेशन उतर कर ब्रह्मपुत्र नदी स्टीमर से पार कर के मोटरद्वारा 3 मील चलने पर कामाक्षी देवी स्थल पहुंचते हैं। देवीभागवत सातवें स्कन्ध अध्याय 38 में कामाक्षी देवी का माहात्म्य कहते समय बताया गया है कि भूमण्डल में देवि का कामरूप क्षेत्र महाक्षेत्र माना जाता है। कामाख्या ही कामाक्षी देवी है। नैनीताल जिले में उज्जनक एक स्थान है। यहां पर भीमशङ्कर शिव का मन्दिर है और इसे वहां के लोग एवं कुछ विद्वान ज्योतिर्लिङ्ग भीमशङ्कर मानते हैं। कुछ विद्वानों के मत से इसी प्रदेश को पुराकाल का प्राचीन कामरूप तथा डाकिनी देश बतलाते हैं। माधवीय शङ्करविजय के अनुसार श्रीशङ्कर ने कामरूप में अभिनव गुप्त से मिलकर वादविवाद किया और अभिनवगुप्त को हार मानना पडा। ऐतिहासिक दृष्टी से यह घटना ठीक नहीं प्रतीत होता है। अभिनव गुप्त शैवदार्शनिक कश्मीर के निवासी थे। इनका काल निर्णय 11 वें शतक का उत्तरार्ध माना जाता है। सम्भवतः यह भी हो सकता है कि दूसरे कोई एक व्यक्ति इसी नाम का सातवीं अन्त आठवीं प्रारम्भ शताव्दी में कामरूप में रहा हो और उनका विवरण ऐतिहासिकों को न मालूम हुआ हो या श्रीशङ्कर की महत्ता दिखलाने के लिये इस शास्त्रार्थ की कल्पना पौराणिकों से की गई हो या चरित्र ग्रंथ रचयिता ने लक्षणार्थ भाव में इस व्यक्ति का नाम लिया हो। कुछ पुस्तकों में लिखा है कि इस हार से अभिनव गुप्त लज्जित एवं दुखित होकर उसने श्री शङ्कर के शरीर पर अभिचार क्रिया द्वारा भगंदर रोग का प्रहार किया। पद्मपाद ने मंत्र जपकर इस रोग का शमन किया। आप यहां से भ्रमण करते हुए प्राच्य समुद्र किनारे के देशों से (अंग वंग) गुजरते हुए पुरीधाम पहुंचे।

जगन्नाथपुरी सप्त पुण्य क्षेत्रों में एक है। चारधाम में पुरी एक पावनकारी धाम है| पहले इस क्षेत्र में नीलाचल नामक पर्वत था और नीलमाधव श्रीमूर्ति थी। कालान्तर में नीलाचल पर्वत भूमि में चला गया किन्तु इस क्षेत्र को नीलाचल या नीलाद्रिधाम भी कहते हैं। जगन्नाथ मन्दिर के शिखर पर लगा चक्र "नीलच्छत्र" कहा जाता है। जगन्नाथपुरी की त्रिमूर्तियां—जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा (कृष्ण, बलराम, सुभद्रा)—अनादि काल में ही स्थापित हैं। ऐतिहासिक तत्त्वज्ञ बतलाते हैं कि बौद्धकाल में भी ये मूर्तियां अवश्य थी। जिस रुप में मन्दिर आज हम देखते हैं उसे राजा अनन्तवर्मा चौदगंग देव ने 11 वी॰ शताब्दी में जीर्णोद्धार कराया था। कहा जाता है कि इस देश के मूल निवासी "शबर" थे और वे बौद्ध प्रभाव से इन तीन मूर्तियों को त्रिरत्न रूप में—बुद्ध, धम्म, संघ--ऐसा माना था। इसे वेद धर्म के अनुकूल लाने का श्रेय आचार्य शङ्कर को ही है। 12 वी॰ शताब्दी में आचार्य रामानुजजी पुरी पधारे थे| श्रीमाधवाचार्य ने भी यहां आकर अपनी श्रद्धा प्रकट किया। कहा जाता है कि श्रीगुरु नानक देव भी यहां आकर अपनी श्रद्धा अर्पित कर गये थे। चैतन्य महाप्रभु यहां आकर बडे प्रभावित हुए। जनश्रुति वृद्धपरम्परा से सुना जाता है कि पांडवों ने श्रीकृष्ण शव का संस्कार पुरी में ही किया और आधुनिक काल में इस स्थल को "कोइली वैकुन्ठ" कहते हैं।

एक कथा भी सुनी जाती है कि सुभद्रा एक समय अपने भाइयों (कृष्ण, बलराम) को महल के अन्दर जाने से रोकी| सुभद्रा दोनों भाइयों के बीच खडी हो गई और हाथ फैलाकर रोक दिया। महल के भीतर व्रज की कथा मनोरंजित रूप में सुनाया जा रहा था| ये तीनों इसे सुनकर प्रेम के कारण द्रवित हो गये। तब नारदजी वहां पहुंच कर प्रार्थना की कि "आप तीनों यहीं पर इसी रूप में विराजमान हो जांय"। कहा जाता है कि तब से जगन्नाथ पुरी की त्रिमूर्ति इसीका परिणाम है| इस क्षेत्र का नाम "जगन्नाथ पुरी" "श्रीक्षेत्र" "शंखक्षेत्र" "पुरुषोत्तम पुरी" आदि हैं। शाक्त लोगों का भी यह तीर्थस्थल है। वे इसे अपनी साधना के नाम पर 51 शक्ति पीठों में "उड्डियान पीठ" कहते हैं जहां सती की नाभि गिरी थी।

मुख्य मन्दिर के तीन भाग हैं—विमान या श्री मन्दिर जहां जगन्नाथ जी विराजमान हैं, सामने जगमोहन हैं, पश्चात् मुखशाला नामक मन्दिर हैं। मुक्तनृसिंह मंदिर के पास रोहिणी कुन्ड है और इसके समीप विमलादेवी का मन्दिर है जो यहां का शक्ति पीठ है। लक्ष्मी मन्दिर समीप श्री शङ्कराचार्य तथा लक्ष्मीनारायण की मूर्तियां हैं। जगन्नाथ जी के मन्दिर में चार द्वार हैं—सिंहद्वार (पूर्व), व्याघ्रद्वार (पश्चिम), हस्तिद्वार (उत्तर), अश्वद्वार (दक्षिण)। इतिहास अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि इन जानवरों के नाम से इस मन्दिर की प्राचीनता सिद्ध होती है। जगन्नाथ की महिमा कवि ('निराला') ने गाया है—"जगन्नाथ के भात को जगत पसारत हाथ।" आचार्य शंकर ने ऐसे पुण्य क्षेत्र में समुद्र के समीप मन्दिर से स्वर्गद्वार जाते समय दाहिनी ओर पूर्वाम्नाय का गोवर्धन मठ की स्थापना की। यहां श्री शङ्कराचार्य जी की मूर्ति है। पूर्वाम्नाय और पश्चिमाम्नाय के मठ दोनों समुद्र समीप ही स्थित हैं।

पूर्वाम्नायो द्वितीयः स्याद्गोवर्धन मठः स्मृतः।
भोगवारः संप्रदायो वनारण्ये पदेस्मृते॥

पुरुषोत्तमं तु क्षेत्रंस्याज्जगन्नाथोऽस्य देवता।
विमलाख्या हि देवीस्यादाचार्यः पद्मपादकः॥ (हस्तामलक का भी पाठ है)

तीर्थं महोदधिः प्रोक्तं ब्रह्मचारी प्रकाशकः।
ऋगाद्ययस्तस्य वेदस्तत्र धर्मं समाचरेत॥ (मठाम्नाय सेतु)
एन्द्रयां ककुभिः तत्रैकं भोगवर्धन नामकम्।
जगन्नाथस्य चाभ्यर्णे मठमेकमचीक्लृपत्॥
पद्मपादाचार्यवर्यं तन्मठाधीशमातनोत्॥ (चिद्विलासीय)

उज्जैनी में श्री भट्टभास्कर के साथ शास्त्रार्थ होने का विवरण ऐतिहासिक दृष्टी से ठीक नहीं मालूम होता। भट्टभास्कर ने शंकर के मत का खन्डन किया है। भेदाभेद के समर्थन में भाष्य भी लिखा है। श्री रामानुज, श्री उदयनाचार्य, श्री वाचस्पति मिश्र आदियों ने भी इसका खन्डन किया है। अतः इनका काल श्री शंकर तथा श्री वाचस्पति मिश्र के मध्य काल में होने का निश्चय होता है। पर यह भी कहा जा सकता है कि श्री शंकर ने इनसे मिलकर शास्त्रार्थ किया हो जब वे थोडे वयस के थे बाद उन्होंने अपना भाष्य प्रौढावस्था में रचा हो।

मचरार नदी के किनारे श्रीआचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित ऋणमुक्तेश्वर महादेव का बहुत प्राचीन मन्दिर अब भी है। यहां से नर्मदा 6 मील दूर पर है। अमरकण्टक के आसपास का यह स्थल है। पिपरिया घाट से 6 मील दूर पर नर्मदा के उत्तर तट पर हरणी नदी का संगम है। यहां संगमेश्वर और हरणेश्वर मन्दिर हैं। इसके सामने नर्मदा के दक्षिण तट पर सांकल ग्राम है। कहा जाता है कि आद्यशंकराचार्य यहां पधारे थे। अंढिया घाट से 5 मील दूर पर नर्मदा के उत्तर तट पर बेलथारी ग्राम है। इस के सामने नर्मदा के दक्षिण तट पर शाङ्करी गङ्गा नदी का संगम है। यहां भी आचार्य पधारे थे। उक्त स्थलों में आपके पधारने का प्रमाण अब भी मिलते हैं।

श्रीशङ्कर गौड देश से भ्रमण करते हुए काश्मीर की तरफ पहुंचे। कश्मीर आर्यजाति का लीला क्षेत्र था। पुराकाल से उत्तर दिक् वाक् के लिये प्रसिद्ध है। प्राकृतिक अभिरामता तथा विद्यावैभव के लिये भी विख्यात है। यहां सरस्वती की विशेषता अत्यधिक है। इसलिये उनके द्वारा प्रसादलाभ व आशीर्वाद लेने के लिये लोग उनकी शरण में जाते थे। विनायक भट्ट की युक्ति से सुना जाता है कि पुराकाल के लोग उत्तर दिक् की भाषा सीखने जाते थे— "प्रज्ञान्ततरावागुद्यते काश्मीरे सरस्वती कीर्त्यते। बदरिकाश्रमे वेदघोषः श्रूयते। वाचं शिक्षुतं सरस्वती प्रसादार्थं उदञ्चै। (शाङ्ख्यायन भाष्य)।" सम्भवतः इसी से काश्मीर का उपनाम सरस्वती या शारदा देश है। कश्मीर देश को "शारदा मन्डल" या "शारदा पीठ" के नाम से भी पुराकाल में प्रसिद्ध नाम था। कश्मीर का प्राचीन ग्रंथ "शारदा माहात्म्य" है। शारदा इस देश की अधिष्ठात्री देवी है। मतान्तर में सती का अङ्ग गिरने से कश्मीर का उपनाम शारदा पीठ भी है। महाकवि बिल्हण की युक्ति के पीछे इतिहास विद्यमान है। शारदा देश को छोडकर कविता और केसर के अङ्कुर अन्यत्र नहीं उगते, यह बात सर्वथा सत्य है। "सहोदराः कुंकुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः। न शारदा देशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।"

भगवती जगन्माता शारदा का अति प्राचीन मन्दिर आज भी विद्यमान है पर मार्ग की कठिनता से यात्री मन्दिर तक पहुंच नहीं पाते। कश्मीर देश के उत्तरी भाग जो पर्वतों से समृद्ध है इसके मध्य में "शारदी" नामक एक नगर एवं एक गढ है जो आज भी दीख पडता है। इसी के समीप कृष्ण गंगा, मधुमती, सरस्वती आदि नदियों का सङ्गम एवं प्रसिद्ध "शारदा वन" हैं। इसी स्थल में कश्मीर वासिनी शारदा का मन्दिर है।

1148/1150 ई० में लिखित राजतरङ्गिनी में इसका विवरण है। महाभारत के समय में भी कश्मीर एक तीर्थ के समान प्रसिद्ध था-" काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च। वितस्ताख्यमितिव्यात सर्वपाप प्रमोचनं ॥ " (वन. 62 अ.) इससे प्रतीत होता है कि सरस्वती (शारदा) का मुख्य क्षेत्र काश्मीर है और यहीं सर्वज्ञ पीठ होने का प्रमाण है। " गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरी ँ सर्वभू तानां तामिहोपह्वये श्रियम्।" यह वेद श्रुति काश्मीर स्थित शारदा पराशक्ति को दिव्य मंत्रों से वर्णन करती है| अन्य क्षेत्र या तीर्थस्थल सर्वज्ञपीठ होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कश्मीर में सर्वज्ञपीठ न था और आचार्य शङ्कर काञ्ची के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किये सो प्रचार निराधार, अप्रमाणिक एवं मिथ्या हैं। इस काश्मीर प्रदेश के शारदा पीठ में प्रकान्ड पन्डितों ऋषियों मुनियों का आगमन बराबर था। यह विषय इतिहास व पुराणों में उल्लेख है|

श्रीशङ्कर भगवत्पाद के काल के पूर्व से ही कश्मीर में शारदा पीठ होने का श्रुति प्रमाण एवं प्राचीन ग्रथों तथा पुराकाल कवियों के कवित्त्व या लेखों से एवं इस स्थल से उत्पन्न हुए महाकवियों के चरित्रों से सिद्ध होता है। 'अष्टोत्तरशतोपनिषद' के अन्तर्गत 'श्रीसरस्वतीरहस्योपनिषद' में ऐसा उल्लेख है—'नमस्ते शारदा देवी काश्मीर पुरवासिनी। त्वामहं प्रार्थयेनित्यं वियादानं च देहिमे।' इससे सिद्ध होता है कि अनादि काल से शारदा पीठ कश्मीर मे ही है। संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड महाकवि लोग, दिग्गज विद्वान एवं पुराणादि ग्रंथा कर्ता महानुभावों ने उत्तर देश में ही जन्म लिया था। दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा को 'उत्तर भाषा' कहा जाता है।

कश्मीर के श्रीनगर के पास गोपाद्रि में ही सर्वज्ञपीठ होने का प्रमाण है। यहां एक छोटे पहाड पर जिसे शङ्कराचार्यपर्वत या गोपाद्रिपर्वत भी कहा जाता है वहां ईश्वर का मन्दिर है। इस ईश्वर मूर्ति को ज्येंष्ठश्वर या ज्येष्ठरुद्र के नाम से बुलाया जाता था। कल्हण 1150 ई० में लिखते हैं कि राजा गोपादित्य से (700 ई०) यह निर्मित मन्दिर है। कल्हण राजतरङ्गिनी (1–341) में लिखा है—'ज्येष्ठेश्वरं प्रतिष्ठाप्य गोपाद्रावार्य देशजाः। गोपाग्रहारान् कृतिना येन स्वीकारिता द्विजाः।' इस गोपाद्रि के समीप एक गांव जिसे अब 'गुप्कार' के नाम से पुकारा जाता है, यही गांव राजा गोपादित्यने पन्डितद्विजों को दिया हुआ 'अग्रहार' है। इस अग्रहार में प्रकाण्ड दिग्गज विद्वान लोग रहा करते थे। आचार्य शङ्कर ने इन दिग्गज पन्डितों से वादविवाद कर सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किये थे। कश्मीर के मुसलमान राजा इस मन्दिर को 'तख्त-इन्-सुलिमान' के नाम से पुकारते थे| 'तख्त' का अर्थ पीठ है। 'सुलिमान' पद 'सालोमन' से आया है अर्थात् ज्ञानीपुरुष (सर्वज्ञ)। इससे प्रतीत होता है कि यही स्थल सर्वज्ञ पीठ था। किसी समय दर्शन, साहित्य, तन्त्र तथा व्याकरण का यह क्रीडा स्थल था। इतिहास से प्रतीत होता है कि यह शङ्कराचार्य पर्वत का मन्दिर महाराजा अशोक (220 किस्त पूर्व) के पुत्र 'जलोक' ने बनवाई थी। शङ्कराचार्य पर्वत के नीचे ही शङ्कर मठ है। इस स्थान को दुर्गा-नाग-मन्दिर भी कहते हैं।

अर्वाचीन काल के कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि कल्हण राजतरङ्गिनी में सर्वज्ञपीठ का उल्लेख न करने से कश्मीर में सर्वज्ञपीठ होने का कथा स्वीकार नहीं किया जा सकता है। तो प्रश्न उठता है कि कल्हण राजतरङ्गिनी में आचार्य शङ्कर का नाम या आपके जीवन वृत्तान्त का कहीं उल्लेख न होने से क्या यह कहना ठीक होगा कि आचार्य शङ्कर ने जन्म नहीं लिया था और आपका चरित्र विवरण एक कल्पित कथा है? ऐसे कुतर्कों से विषयों का निर्णय करना उचित व न्याय नहीं है| राजतरङ्गिनी के अलावा अन्य ऐतिहासिक एवं काव्य ग्रथों में कश्मीर में सर्वज्ञपीठ होने का निश्चय प्रमाण मिलते हैं।

ऐसे शारदा पीठ के पूर्व, पश्चिम, उत्तर के तीन द्वार खुले थे क्यों कि इन दिशाओं के प्रकान्ड पन्डित यहां आकर अपना अपना उच्चस्थान प्राप्त कर चुके थे। दक्षिण दिशा का द्वार बन्द था चूंकि अभीतक कोई पन्डित दक्षिण से आकर अपना स्थान न पा सका। अपने दिग्विजय यात्रा में यह विषय श्री शंकर को मालूम होते ही उन्होंने यहीं सर्वज्ञपीठारोहण करने का निश्चय किया। सर्वज्ञपीठारोहण करने के लिये केवल विद्वत्ता की आवश्यकता ही नहीं बल्कि साथ में शरीर शुद्धि की भी आवश्यकता थी। श्री शंकर ने दक्षिण द्वार खोलने को कहा और अनेक पक्ष मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ भी किया। इस प्रकार हर शास्त्रों के हर एक पन्डितों से वादविवाद करके उनके द्वारा पूछे प्रश्नों का सहस्त्रों युक्तियों से वेद शास्त्र द्वारा प्रमाण देकर अपने सर्वज्ञ होने की बात को सप्रमाण सिद्ध कर दिया। सब विद्वानों ने आचार्य शंकर का स्वागत कर पीठारोहण करने को कहा। तब श्री शंकर पीठारोहण करने चले तो उस समय पराशक्ति ने आक्षेप किया और कहा "आप सन्यासी होते हुए भी अमरुक की स्त्रियों से भोगविलास किया है अतएव आपका शरीर शुद्ध नही है।' श्री शंकर ने उत्तर दिया कि 'उन स्त्रियों से भोग करने वाला यह सन्यासी का शरीर नहीं था।' ऐसे उत्तर से पराशक्ति प्रसन्न होकर सर्वज्ञ पीठारोहण करने की आज्ञा दे दी। यह भी कहा जाता है कि श्री शंकर ने काश्मीर के श्रीनगर में श्रीचक्र यन्त्र की स्थापना की थी। यह कहा जाता है कि नागनाथ क्षेत्र के समीप श्रीचक्र की स्थापना कर वहां प्रद्युम्न पीठ की स्थापना की थी। शिवरहस्य कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण करने का उल्लेख करता है—'काश्मीरमासाद्यसःशारदायाःसर्वज्ञपीठ पदमारुरोह।' माधवीय, सदानन्दीय, कहेजानेवाले व्यासाचलीय, आदि ग्रंथ कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने का उल्लेख करता है।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्री शकर ने दक्षिण में अवतार लेकर उत्तर के काश्मीर वासिनी श्री शारदा देवी को वादविवाद में पराजित करके सर्वज्ञपीठारोहण कर श्री शृङ्गेरी में श्री शारदा व्याख्यान सिंहासन विद्या पीठ की प्रतिष्ठा भी की इसलिये तभी से श्री भगवत्पाद का उपनाम श्री विद्याशंकर भी हुआ। अवतार पुरुष का नामकरण नाम श्री शंकर था और विद्यारूपिणी शारदा को विवाद में हराने से एवं सर्वज्ञपीठारोहण करने से विद्या नाम जोड कर विद्याशंकर हुआ। ब्रह्मविद्या की पुनःस्थापना करने के हेतु आप विद्याशंकर नाम से भी प्रसिद्ध हैं। विद्याशंकर नाम श्री शंकर भगवत्पादाचार्य का ही नाम योगरूढ से मालूम होता है। शंकर पद का अर्थ 'वह जो सुख आनन्द दें वह शंकर है।' प्रश्न उठता है कैसा सुख? उत्तर में कहा जाता है कि विद्या (ब्रह्म विद्या) से सुख देते हैं। इसीलिये श्री शंकर का नाम विद्या शंकर भी कहा जा सकता है।

श्रीविद्यातीर्थ महास्वामी जगद्गुरु महाराज, दक्षिणाम्नाय श्रीश्रृङ्गेरी मठाधीष, का उपनाम श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ भी है। आप "विद्याशङ्कर" नाम से भी प्रसिद्ध हैं। गुरुवंशकाव्य में श्रीविद्यातीर्थ का उल्लेख यों है—"अविद्याच्छन्न भावानां नृणां विद्योपदेशतः। प्रकाशयति यस्तत्वं तं विद्यातीर्थमाश्रये।" "अज्ञानां जाह्नवी तीर्थं विद्यातीर्थं विवेकिनाम्।" विजयनगर महाराज हरिहर द्वितीय श्री विद्यातीर्थ का उल्लेख यों करते हैं—"विद्यातीर्थ यतीन्द्रोयमतिशेते दिवाकरम्। तमोहरति यत्पुंसामन्तर्बहिरहर्निशम्।" श्रीविद्यातीर्थ या श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ जिनके पादपद्मों का आराधना, पूजा, सेवादि आज पर्य्यन्त करते हुए चले आ रहे हैं। श्रीविद्याशङ्कर तीथ, लम्बिका योग में प्रवीण, जिस पुण्य-स्थल से लम्बिका योग करते हुए सिद्धि प्राप्त की, उसी जगह एक विस्मय युक्त सुन्दर अनोखा मन्दिर का निर्माण श्रीविद्याशङ्कर के शिष्यों ने किया है। इस मन्दिर में एवं सिंहगिरि (श्रीश्रृङ्गेरी के समीप) के चतुर्मूर्ति विद्येश्वर की मूर्ति की पूजा प्रतिदिन आजपर्य्यन्त होती हुई आ रही है। यह दृढ विश्वास किया जाता है कि श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ इस निर्मित मन्दिर में सदा सर्व काल लम्बिका योग में निष्ट और मठ के कार्य निर्वाह का

निरीक्षण भी करते हैं। यद्यपि अविच्छिन्न शिष्य परम्परा आज तक श्रीश्रृंगेरी में चला आ रहा है तथापि सब अचार्य गुरु महाराज श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ ही को मठाधीष भावना कर मठ के श्रीमुख विरुदावली में श्रीविद्याशङ्कर का नाम ही को उपयोग करते हैं। यह कहा जाता है कि नित्य प्रतिदिन रात्री समय में देवतागण उनकी पूजा करते हैं और रात्री समय घंटानाद भी सुना जाता है। "घण्टानाद पुरस्सरं प्रतिदिनं रात्रौ सुराणांगणै भक्तया परितमानसैः सुमवरैः कर्पूर नीराजनैः। धूपैर्दीप च यैर्मनोहरत्तरैः संपूज्यमानं मुहु र्विद्यातीर्थ पदारविन्दयुगलं वन्दे जगतपावनम्।" अतः इसमें कोई आश्चर्य या सन्देह का जगह नहीं है कि ऐसे महान् का पुण्य मङ्गल नाम उनके अविच्छिन्न परम्परा श्रीश्रृंगेरी मठाधीप व्यवहार में भी 'विद्याशङ्कर' का नाम उपयोग करते हैं।

आचार्य शङ्कर अपने कुछ शिष्यों के सहित काश्मीर प्रान्त बदरीकाश्रम पहुंचे। संपूर्ण हिमालय करीब 1500 मील लम्बा माना जाता है। इसे नैपाल, केदार, जालन्धर, काश्मीर तथा कूर्मांचल पांच भागों में विभक्त किया गया है। मायापुरी, गुप्तकाशी, उत्तरकाशी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ, गुह्येश्वरी आदि प्रसिद्ध स्थलों से यात्रा करते हुए आगे बढे। बदरी क्षेत्र की उत्पत्ति की कोई कथा नहीं है। वेदों के तुल्य ही यह भी अनादि सिद्ध पुराणों में कहा गया है। "अन्यत्र मरणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात्। बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता" (महाभारत), "यत्र नारायणोदेवः परमात्मा सनातनः। तत्र कृत्स्नं जगत् सर्वं तीर्थान्यायतनानि च॥ तत् पुण्यं परमं ब्रह्म तत् तीर्थं तत् तपोवनम्। तत् परं परमं देवं भूतानां परमेश्वरम्॥ शाश्वतं परमं चैव धातारं परमं पदम्। यं विदित्वा न शोचन्ति विद्वांसः शास्त्रदृष्टयः॥" (महा. वन. तीर्थ 90), "श्रीबदर्याश्रमं पुण्यं यत्र यत्र स्थितः स्मरेत्। स याति वैष्णवं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितः॥" (वराह पु० 141/67)। अपने मुख्य तीनों शिष्यों को मत प्रचार करने के लिए पहले ही उनको तीन आम्नाय मठों में छोड आये थे। कहा जाता है कि श्रीसुरेश्वराचार्य दक्षिणाम्नाय से पुनः अपने गुरु से मिलने उत्तर दिशा आये| आप पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठ में कुछ समय वास करते हुए पश्चात् बदरी सीमा पहुंचे। आचार्य शङ्कर से मिलकर आप पुनः दक्षिण लौट आये।

आचार्य शंकर ने बदरीनारायण मन्दिर समीप एक आम्नाय मठ (जोशि या ज्योति) की स्थापना भी की। यहीं पुन्नागिरि (पूर्णागिरि) पीठ की प्रतिष्ठा भी किया| शीतकाल में छः महिने श्री बदरीनाथ जी की चलमूर्ति यहीं है। यहां ज्योतीश्वर महादेव तथा भक्तवत्सल भगवान् के मुख्य मन्दिर हैं। ज्योतीश्वर शिवमन्दिर के पास एक प्राचीन वृक्ष है और इसके समीप ही ज्योतिष्पीठ शङ्कराचार्य मठ है| मठ में शालग्राम शिला की बनाई हुई नृसिंह भगवान का मन्दिर है। शारदा नदी के तट पर नैपाल राज्य की सीमा के अन्तर्गत पूर्णगिरि नामक पर्वत है और इस पूरे पर्वत को देवी का स्वरूप माना जाता है| यहां अनेक मन्दिर हैं। अपने प्रिय शिष्य तोटकाचार्य को (गिरि) उत्तराम्नाय ज्योतिष मठ में बैठाकर स्वयं कुछ समय वहां ठहरे। आचार्य शंकर यहीं से अपने द्वारा धर्म के विजय की पताका फहराते हुए देख रहे थे। आचार्य शंकर से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में दो मठ (पूर्व-पश्चिम) समुद्र तट पर स्थित हैं और दो मठ (उत्तर-दक्षिण) पर्वत पर स्थित हैं। दक्षिणाम्नाय मठ पर्वत पर स्थित होना था जैसा कि उत्तराम्नाय मठ हिमालय के बदरिकाश्रम सीमा में स्थित है और इसीलिये समुद्र तट समस्थल रामेश्वर के (चतुर्धाम में एक) बदले रामक्षेत्र सीमान्तर्गत पर्वत पर स्थित शृङ्गगिरि को आचार्य ने चुना था।

तृतीयस्तूत्तराम्नायो ज्योतिष्मान्हि मठोभवेत्।
आनन्दवारो विज्ञेयः संप्रदायोऽस्य सिद्धिकृत्॥

पदानि तस्याख्यातानि गिरिपर्वतसागराः।
बदरिकाश्रमःक्षेत्रं देवता च स एव हि॥
देवी पुन्नागिरि ज्ञेया आचार्यस्त्रोटकःस्मृतः।
तीर्थंत्वलकनन्दाख्यंनन्दाख्यो ब्रह्मचार्यभूत्॥
तस्यवेदोह्यथर्वाख्य स्तत्र धर्मं समाचरेत। (मठाम्नाय सेतु)

कौबेर्यांदिशि तत्रैकंमठं दिव्यमकारयत्।
तन्मठे तोटकाचार्यवर्यं छायानुवर्तिनम्॥ (चिद्विलासीय)



अध्याय—7

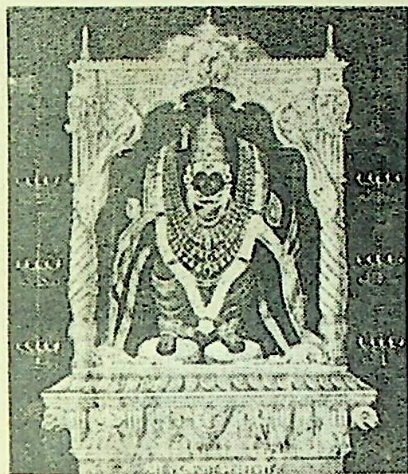
श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

भारतवर्ष का सांस्कृतिक विकास था। ऐतिहासिक सफलता धर्म द्वारा हुआ है और इसका मूल आध्यात्मिक दृष्टी ही थी| आधुनिक काल में यह धारणा फैल रही है कि धर्म केवल परलोक की बात करता है और इस लोक के व्यवहारिक जीवनचिंतन में कोई लाभ नहीं पहुंचाता। कुछ लोग कहने लगे कि धर्म सामूहिक, सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन का अङ्ग नहीं है। यथार्थ में बात ऐसी नहीं है। यदि पाश्चात्य भौतिक वाद की ओर ध्यान दें और पूर्वकाल के साथ बीसवीं शताब्दी की स्थिति की तुलना करें तो यह देखते हैं कि इस बीसवीं शताब्दी में इतना बडाचढा उद्योग एवं विज्ञान का विकाश होते हुए तथा मानव को अनेक कृत्रिम सुविधायें प्राप्त हुए भी,वह सुख में नहीं है। देश भर में अशान्ती एवं संघर्ष के चिन्ह दिखाई पडते हैं। मानव ध्येय रहित शान्ति और आनन्द की खोज में भटक रहा है| जीवनयात्रा ध्येय रहित हो गया है| उनमें द्वेष, फूटभाव, ईर्ष्या, संघर्ष भाव आदि गुणों का ही अधिकता पाते हैं। ये सब गुण शान्ति और प्रेम के विरोधी हैं। इसका मूल कारण केवल यही कहा जा सकता है कि मानव जाति ने धर्म व आध्यात्मिक दृष्टी से विषयों की विवेचना छोडकर अनजान व ध्येय रहित भटक रहा है। चित्तशुद्धि, शान्ति, प्रेम, आनन्द, संघठन, सन्तुष्टि, इत्यादि गुण केवल धर्म से ही प्राप्त किया जा सकता है| ये सब गुण ही आनन्ददायक हैं। इस शताब्दी में विज्ञान का विकास यहां तक हुआ है कि मानव अब चन्द्रमन्डल की यात्र करने तैय्यार है और आकाश मार्ग से इस भूमन्डल की प्रदक्षिणा भी कर रहे हैं। मानव आकाश के अन्य मन्डलों को पहुंच कर उसे अपने स्वाधीन करने की चेष्टा में प्रवृत्त है। ऐसे वीरधीर प्रभावशाली मानव जो अन्यों को अपने भौतिक बल से पराजित कर उन्हें अपने काबू में रखते हैं सो वीर मानव अपने भौतिक शरीर व बुद्धि को स्वाधीन में रखने में असमर्थ हैं। यह एक विस्मय की बात है। इस स्थिति का मूल कारण 'अपने को देखो, विवेचना करो और पहचानने सीखो' की भावना की कमी है। धर्म व आध्यात्मिक भाव ही से मानव अपने को पहचान सकता है और इस भौतिक शरीर को अपने स्वाधीन रख सकता है| इसके अभाव से ही आधुनिक काल का मानव असन्तुष्ट, अशान्त, ध्येय रहित भटक रहा है। मानव ने अपने तीव्र मेधा के बल से कृत्रिम अस्त्र शस्त्र, यंत्र, तंत्र, बम्ब आदि की सृष्टी कर इस भयानक घोर नाशकारक पिशाच को स्वतन्त्र रूप में भ्रमण करने की सुविधा भी दी है। अब यही पिशाच (आटम बम्ब) सारे मानव जाति को जिन्होंने इसे सृष्टी की थी उन्हें ध्वंस कर भस्म करने के लिए तैयार है। आश्चर्य है कि जिन्होंने तीव्र मेधा के बल से ऐसे भयङ्कर पिशाच की सृष्टी की है वह मेधा इस भौतिक शरीर व मेधा को अपने स्वाधीन रखने में असमर्थ है। यह एक शोचनीय स्थिति है। केवल धर्म और आध्यात्मिक बल ही इस पिशाच का नाश कर सकता है। इस भयानक समय में यदि मानव गोष्ठी धर्म को परित्याग कर दे तो प्रलय समीप काल में होना निश्चित है| मानव जाति का कल्याण धर्म और आध्यात्मिक बल पर ही निर्भर है।

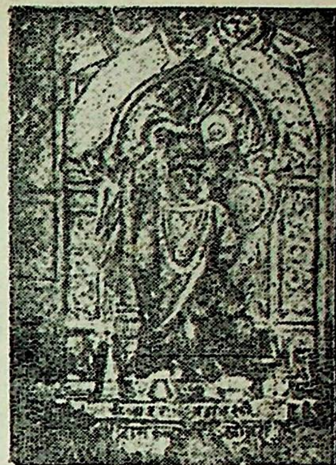
हमारा हिन्दू धर्म सनातन है और यह अनश्वर है। यद्यपि हमारे धर्म पर अनेकानेक कुठाराघात हुए हैं तब भी हमारा वेद, उपनिषद, धर्म जीवित हैं। केवल इसी एक कारण द्वारा हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि हमारे धर्म में जीव एवं श्रेष्ठता होने के कारण ही यह धर्म सनातन कहा जाता है। राष्ट्र का स्तम्भ धर्म है और धर्म की उच्चता सहिष्णुता में हैं। भारतीय धार्मिक विश्वास वैदिक धारणाओं एवं प्रथाओं से लिये गये हैं और ये सब सहिष्णुता के पक्षपाती हैं। धर्मों के बाह्य आडम्बरों में भिन्नता हैं पर इनका अन्तिम लक्ष्य सब एक सा है। जिस

राष्ट्र का आधार धर्म नहीं है वह बालू की भीत है और उसका स्थायित्व क्षणिक है। हिन्दूधर्म जिसे सनातनधर्म कहते हैं वह जीवन का एक प्रधान अङ्ग है, जीवन का रहन–सहन है, जीवन का आनन्द दाता है तथा सुविधा एवं आनन्द से जीवन यात्रा पूर्ति करने का एक सुगम मार्ग भी कहा जा सकता है। आठवीं शताब्दी प्रारम्भ में श्री आचार्य शंकर ने इसी आध्यात्मिक मूल दृष्टि से सारे भारतवर्ष की एकता देखी। आजकल के राजनैतिक नीति से जो फूटभाव, द्वेष, संघर्ष आदि गरल रुप पैदा हुआ है और इस नीति के आधार पर भारतीय अपना प्रान्तसीमा का निर्धारन कर अल्प बुद्धि से अलग होने की चेष्टा भी कर रहे हैं; आपस में स्व अधिकार सीमा के लिये भी लड रहे हैं; भारतवर्ष को अनेक टुकडों में विभाजित कर भारत की एकता की शक्ति पर कुठाराघात भी कर रहे हैं; वे सब हमारे इस धर्म के रूप को अच्छी तरह से पहचानें और जान लें कि करीब 1200 वर्ष पूर्व ही आचार्य शंकर ने आध्यात्मिक शक्ति द्वारा धर्म मार्ग का अवलम्बन कर इस भारतवर्ष को एकता की ओर आकृष्ट करके संघठित किया। अब हम लोगों के ऊपर इसका पूर्णदायित्त्व है कि जिन शक्तियों से श्री शंकराचार्य ने हमारे भारतवर्ष को सदा एकता के अटूट सूत्र (आध्यात्मबल) में बांध रक्खा था, उसे टूटने न दें।

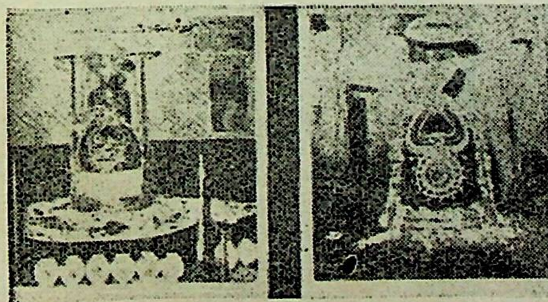
श्रृङ्गगिरि के अपूर्व विस्मय घटना के बाद आचार्य शङ्कर ने सोचा कि यदि भूमि की प्रतिष्ठा से बर्बर व प्राणियों में ऐक्य की कल्पना भारतीय कर सकता है तो स्वयं जनता की एकता भूमि की प्रतिष्ठा के द्वारा क्यों नहीं स्थापित की जा सकती है? कन्याकुमारी से हिमाचल कैलास पर्य्यन्त, काश्मीर से कामरूप पर्य्यन्त, द्वारका से पुरी पर्य्यन्त,- भारत का यह विस्तृत भूमि श्रीशङ्कर के सामने एकाग्र होकर आ खडा हुआ। जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र ने श्रीरामेश्वर की पूजा की थी उसी प्रकार उत्तर की जनता पुनः श्रद्धा से पूजने लगे और दक्षिण भारत के अनेकानेक तीर्थों, क्षेत्रों, मन्दिरों में उत्तरी लोगों की श्रद्धा भक्ति हो जाय और दक्षिण का जनसमुदाय हिमाचल पर अटूट श्रद्धा प्रेम रक्खे और उत्तरी भारत के सब तीर्थो, क्षेत्रों, मन्दिरों, के प्रति श्रद्धा भक्ति प्रेम हो जाय, तो सारे देश के आन्तरिक एकसूत्रता फिर स्थपित हो जायेगी। आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल में भारतवर्ष का वातावरण बडी शोचनीय स्थिति में थी और भारतमाता श्रीशङ्कर समान लाडले के लिये तरस रही थी। भारत की धरती के प्रति सारे देश की भावना जगाकर और सारे मत मतान्तरों के स्थान में एक समन्वयात्मक दर्शन की स्थापना करके इस बिखरे भारत देश को एकता के सूत्र में बांध देने को श्रीशङ्कर ने निश्चय किया। भारत देश के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा के गांव-गांव नगर-नगर पैदल घूमते हुए अपने नये संदेश सबों को सुनाने लगे। तीर्थों, क्षेत्रों, मन्दिरों की पुनः प्रतिष्ठा की। प्रसिद्ध चतुर्व्यूह धामों में (चारधाम)—जगन्नाथ पुरी, रामेश्वर, द्वारका, बदरि—जिसे भारत देश सीमा के धर्मगढ भी कहा जा सकता है वहां आचार्य शङ्कर ने चार धर्मराज्य केन्द्र (आम्नाय मठ) स्थापित किये और अपने प्रतिनिधियों को (श्रीपद्मपाद, श्रीसुरेश्वर, श्रीहस्तामलक, श्रीतोटक) "महानुशासन" का उपदेश देकर, इन आम्नाय मठों के लिये नियम, संप्रदाय, ब्रह्मचारी, योग पट्ट, महावाक्य, वेद, गोत्र, तीर्थ, क्षेत्र, देव देवी, धर्मराज्य सीमा आदि की प्रणाली बनाकर जिसका विवरण "मठाम्नाय" में पाया जाता है, आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा कर दी। आज भी ये आम्नाय मठ गोवर्धन, श्रृङ्गेरी, द्वारका और जोषी मठ के नाम से प्रख्यात हैं। ये चार आम्नाय मठ भारतीय एकता के सहज प्रहरियों की तरह स्थित हैं। आचार्य शङ्कर ने चारधाम समीप चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा से सनातन प्रसिद्ध वेदमंत्र की भावना को स्वयं मूर्तिमान किया है। आज भारत का जो एक राष्ट्रीय स्वरूप हम देखते हैं उसका अधिक श्रेय कल्पनाशील दूरदर्शी मेधावी हमारे पूर्व पुरुषों को है जिन्होंने तीर्थों और धामों की प्रतिष्ठा कर सारे भारत देश को एक पुण्य भाव प्रदान किया। आचार्य शङ्कर ने फिर से इन तीर्थों, क्षेत्रों, मन्दिरों का पुनरुद्धार करके एवं जीर्णोद्धार कर एकता की नीवं डाली। पन्डितों से शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित



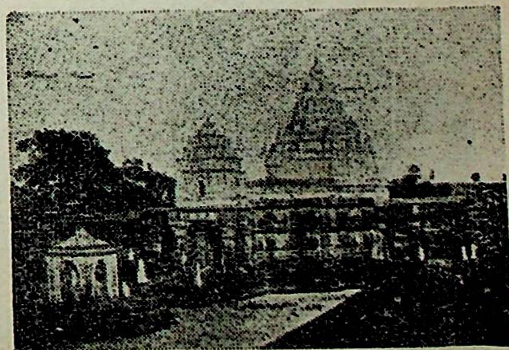
श्री तुलजा भवानी—तुलजापुर



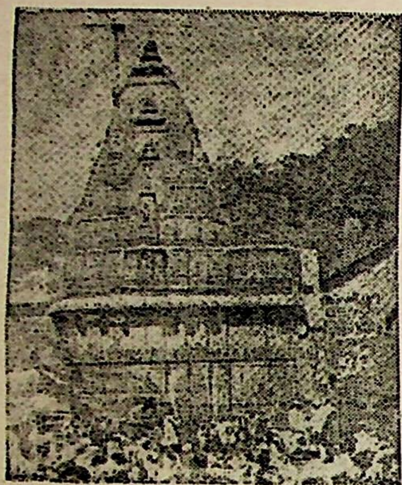
श्री महाकाली—कोल्हापुर



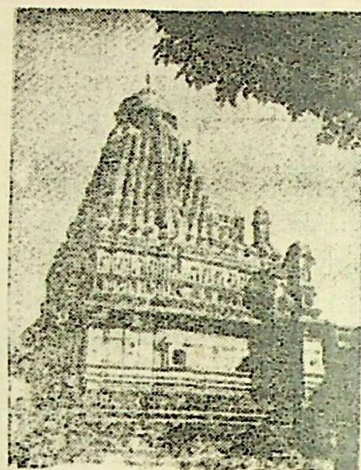
श्री सोमनाथ—प्रभास पट्टनम् और अहल्या मन्दिर



श्री नागनाथ मन्दिर



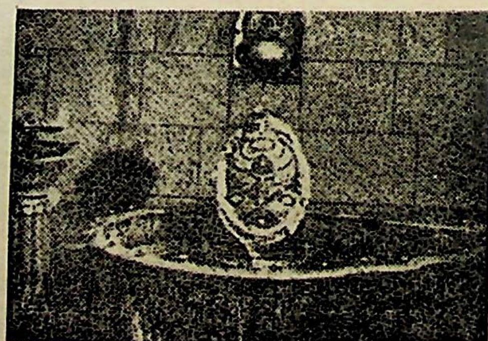
भीमाशङ्कर मन्दिर



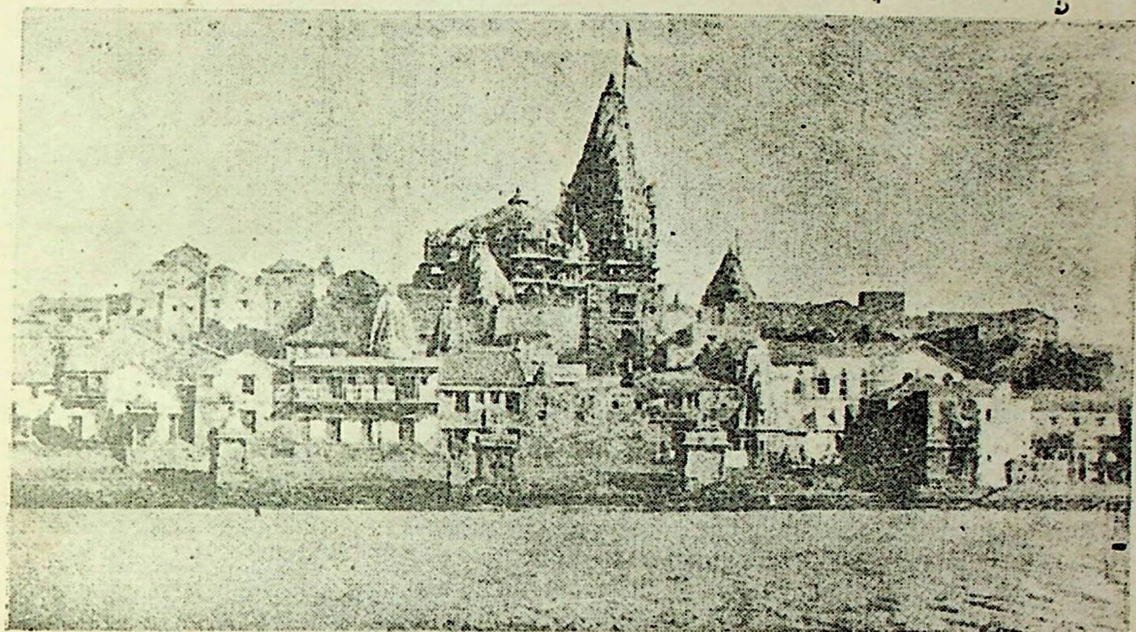
घृष्णेश्वर मन्दिर—वेरूल



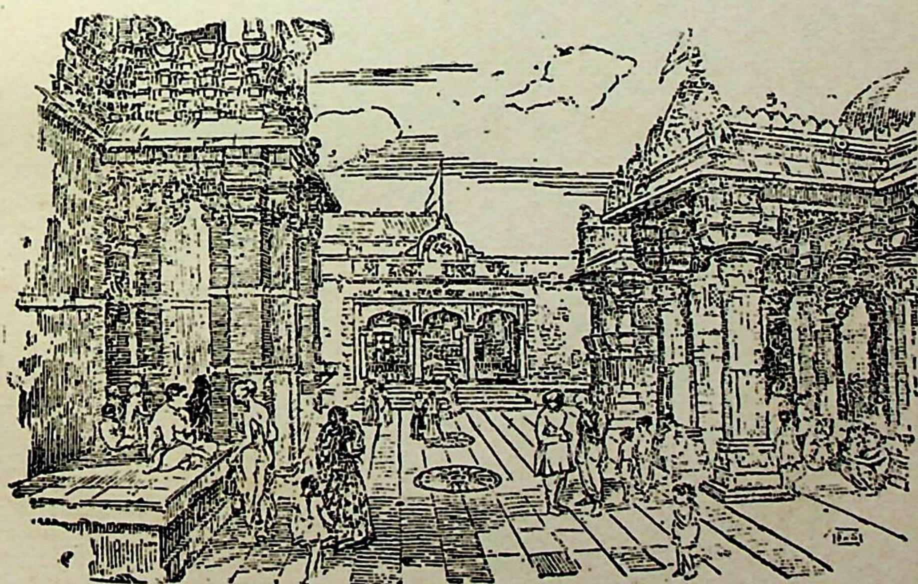
त्रयम्बकेश्वर—नासिक



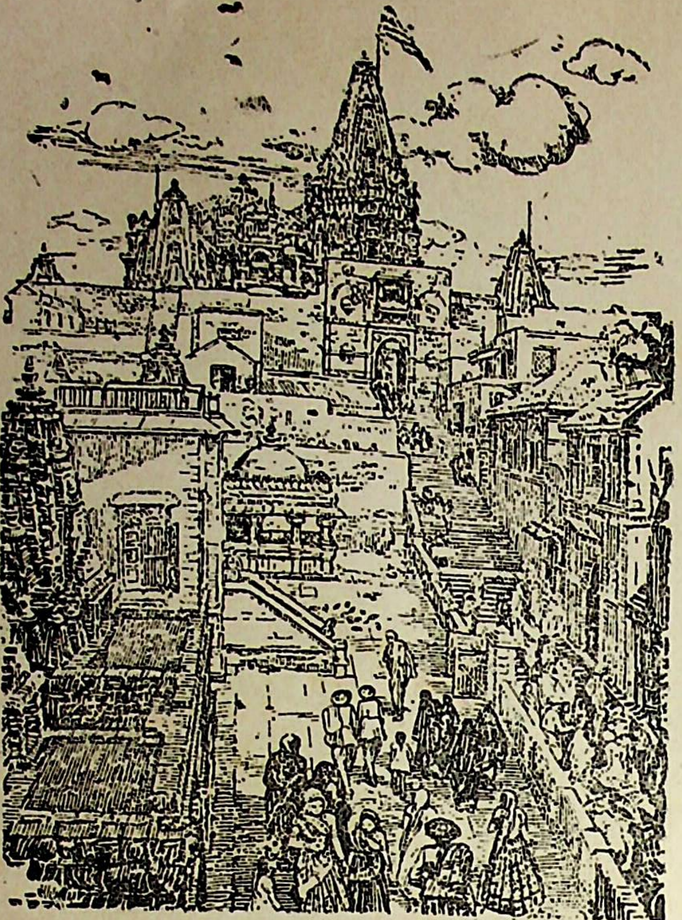
महाकाल ज्योतिर्लिङ्ग—उज्जैन



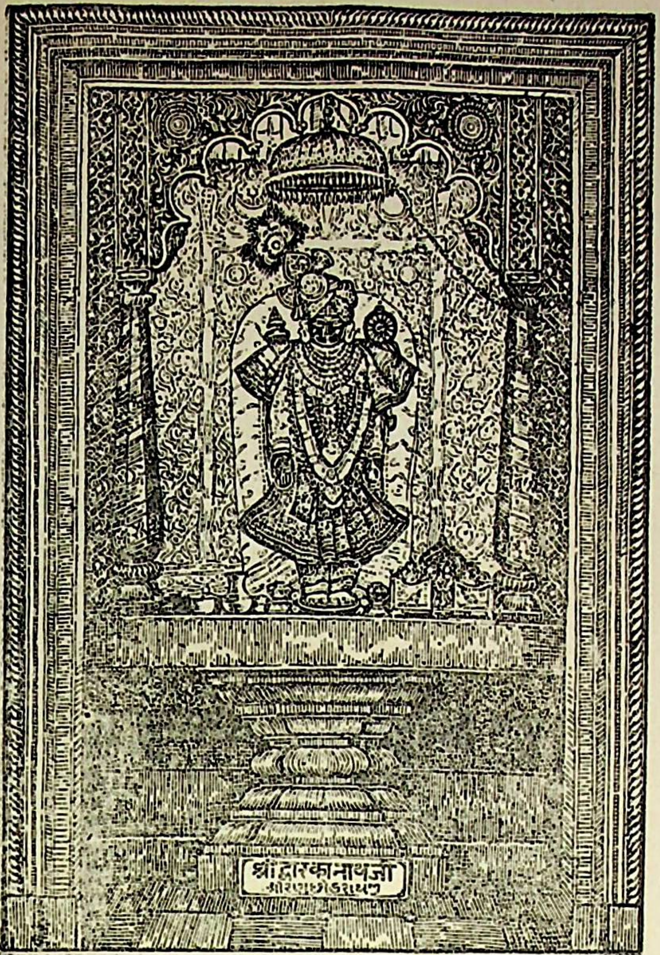
श्रीद्वारकापुरी—एक दृश्य



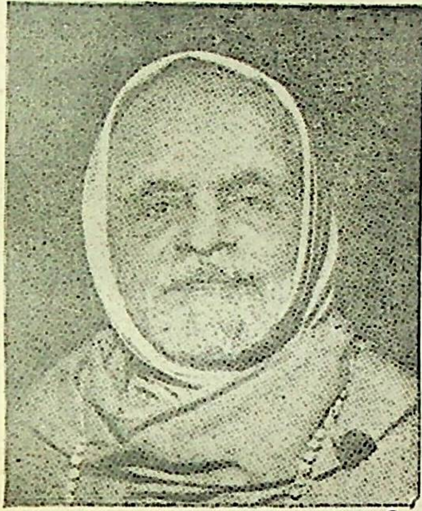
पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारका शारदा मठ



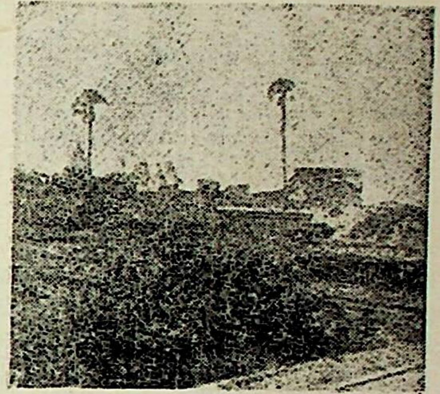
श्री द्वारकाधीश मन्दिर



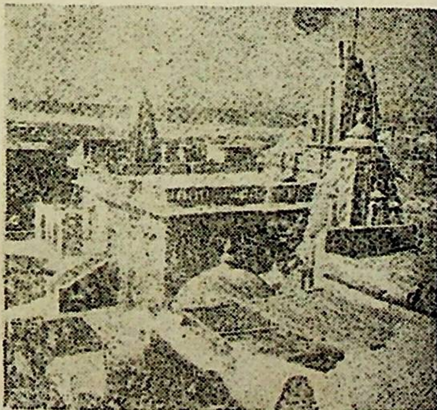
श्री द्वारकानाथ—श्रीकृष्ण



पूर्वाम्नाय श्री गोवर्धन मठाधीश
जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य जी महाराज



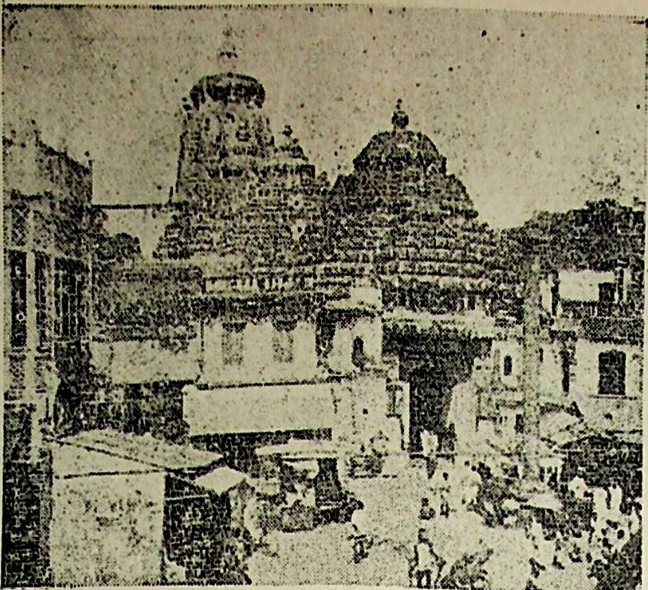
पूर्वाम्नाय श्री गोवर्धन श्री शङ्कराचार्य मठ



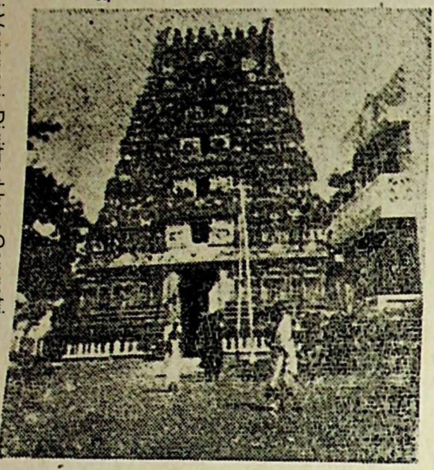
पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठ में श्री शारदा मन्दिर



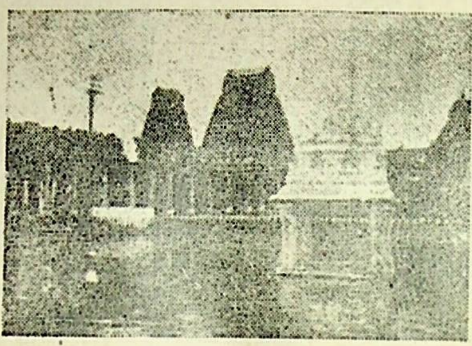
पश्चिमाम्नाय श्री द्वारका शारदा
मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी महाराज



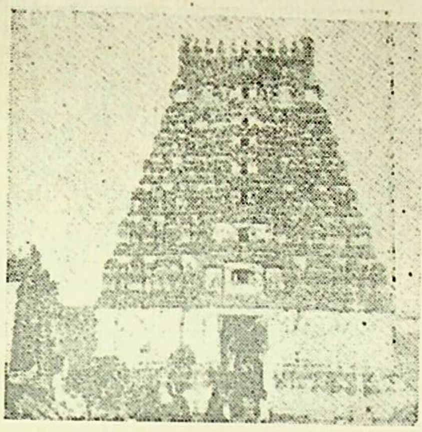
श्री जगन्नाथ मन्दिर—सिंहद्वार के बाहर से



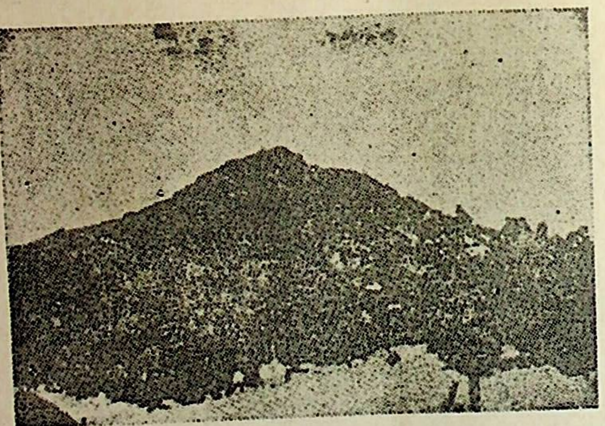
शिवकांची कामाक्षी मन्दिर



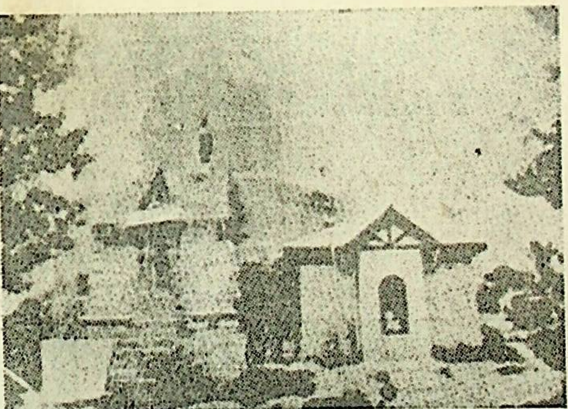
कांची एकाम्रनाथ



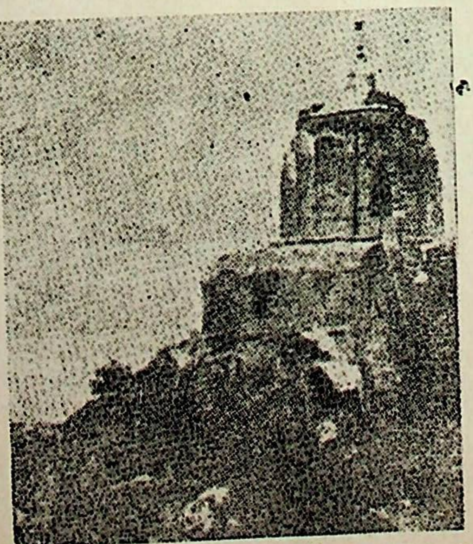
विष्णु कांची वरदराज मन्दिर



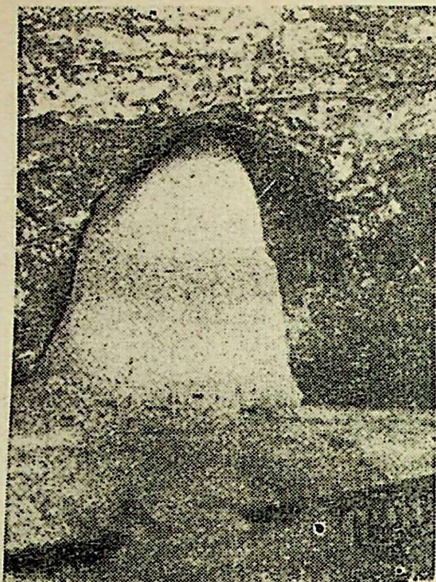
श्रीशङ्कराचार्य पर्वत—काश्मीर—दूर से दृश्य



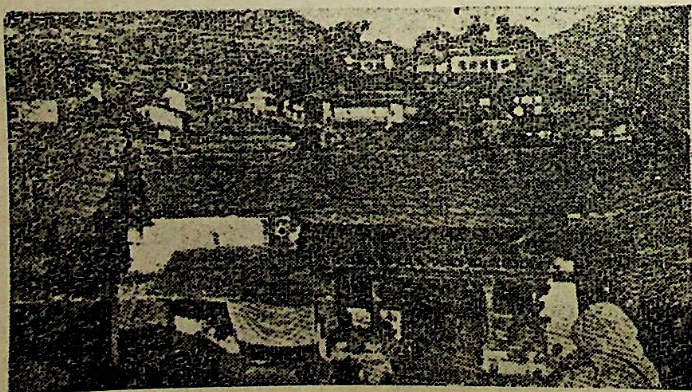
श्री शङ्कराचार्य मन्दिर—श्रीनगर (काश्मीर)



श्री शङ्कराचार्य पर्वत पर श्री शङ्कराचार्य मन्दिर—(दूर से दृश्य)



अमरनाथजी की मूर्ति (बर्फ से बनी हुई)—काश्मीर



उत्तराम्नाय श्रीजोशी मठ

क्रिया और ज्ञान के साथ ही भक्ति मार्ग का भी समर्थन किया। इस प्रकार भारत देश में आचार्य शङ्कर ने एक सर्वाङ्गीय समन्वयवाद की प्रतिष्ठा कर देश को एकता में बांध दिया। इससे परिणाम यह हुआ है कि एक साथ पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर के लोग एक ही देवता के सन्मुख अपना सिर नवाते हैं या समुद्रों में या भारत के पुण्य नदियों में स्नान कर रहे हैं। या उत्तर भारत का गङ्गाजल लेकर सेतुरामेश्वर में चढा रहे हैं अथवा सेतुरामेश्वर का बालू गङ्गा में छोडते हैं। इस ध्येय का साफल्यता भारत देश की एकता तथा संगठन में पर्यवसित हुआ। इसका मुख्य श्रेय आचार्य श्रीशङ्कर के आध्यात्मवाद का ही है।

दक्षिण भारत का कांची कुम्भकोण मठ जो अर्वाचीन काल में स्थापित मठ है और जो मठ अपने को सर्वोच्च सर्वोत्तम एवं आचार्य शङ्कर के साक्षात् परम्परा कहते हुए प्रायः 125 वर्षों से भ्रामक मिथ्या प्रचार कर रहे हैं, आपलोगों ने एक नवीन कल्पित कारण भी 1960/61 ई० में देना प्रारम्भ कर दिया है। आपलोग कहते हैं कि आचार्य शङ्कर ने केरळ देश के नम्बूदरी ब्राह्मण के वंश में जन्म लिया था और केरळीय लोग पंचद्राविड का तामिलवर्ग के अन्तर्गत हैं। चूं कि केरळ वर्ग पंचद्राविड का कोई एक अलग वर्ग नहीं है इसलिये केरळियों का तामिलवर्ग से अभिन्नता सिद्ध होता है। इसलिये तामिलनाड में आचार्य शङ्कर का गुरु मठ होना निश्चित होता है क्यों कि यह असम्भव दीखता है कि आचार्य शङ्कर ने अपनी जन्मभूमि व जाति का बिना विचार किये ही मठों की स्थापना की हो। कांची मठ तामिलनाड का मठ है। आपलोगों का प्रचार भी है कि दक्षिणाम्नाय का शृङ्गेरी मठ कर्नाटक देश का मठ है और इसलिये तामिल नाड में एक और मठ होना आवश्यक है। प्रस्तुत कुम्भकोण मठाधीष ने एक वक्तव्य देते कहा कि श्री आद्यशङ्कराचार्य ने तामिल भाषा में भी ग्रंथ लिखा है और यह समाचार मद्रास प्रान्त का दैनिक तामिल समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी। अनेकों अनुसन्धान विद्वान एवं प्रकान्ड विद्वानों ने इस 1200 वर्ष में आचार्य कृत ग्रंथों पर भाष्य, टीका आदि लिखी है एवं उन ग्रन्थों पर आन्वेषण की है, उनमें से कोई भी यह न कहा कि आचार्य शङ्कर ने तामिल भाषा में ग्रंथ लिखा है, पर जो विषय इस संसार में अब केवल कुम्भकोण मठाधीष को ही मालूम है। सम्भवतः आचार्य ने कहेजानेवाले तामिल भाषा ग्रंथ को कुम्भकोण मठ में छोड गये होंगे ! आचार्य शङ्कर का मातृभाषा मलयालम था और कुम्भकोण मठाधीष का जो भ्रामक मिथ्या प्रचार है सो केवल तामिल वर्ग के लोगों को अपने मायाजाल में फंसाने का यह एक भ्रामक प्रचार है। ऐसे दुष्प्रचार से कांची मठवाले अपने धर्म पर ही कुठाराघात करने चले हैं। आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार एवं धर्मशास्त्र के विदित विधि के अनुसार ही आम्नाय मठों (धर्मराज्य केन्द्र) की स्थापना की थी न कि जाति या भाषा वर्ग के अनुसार। आचार्य शङ्कर जाति व भाषा के अभिमान से बहुत दूर थे। भारतवासी की एकता तथा संघठन का श्रेय आचार्य शङ्कर के आध्यात्मवाद को ही है और इस एकता तथा संघठन पर अब कांचीमठवाले कुठाराघात करने चले हैं। इस दुष्प्रचार का समर्थन कांचीमठ के कृपाभाजन विद्वान, प्रचारक एवं अनुयायी करते हैं और दुःख का विषय है कि ऐसे प्रचार मासिक पत्र—'कामकोटि प्रदीपम्'—में जब प्रकाश होते हैं तब भी कोई व्यक्ति इस दुष्प्रचार का विरोध भी नहीं करता है। भारतवर्ष का राजनैतिक विभाग जाति व भाषा के अनुसार भारत का विभाग हुआ है पर इन राज्यों के वासियों का आन्तरिक एक सूत्रता आध्यात्म सूत्र में बंधा है और इस सूत्र को अब कांची मठ वाले तोडने चले हैं। धर्म के नाम पर ये नवीन स्वेच्छावादी धर्माचार्य एवं आपके अनुयायी क्या क्या अधर्म कर रहे हैं ?

इस बात को निश्चित रूप से जान लेना आवश्यक है कि भाषा, वेश, जाति तथा रहन-सहन के सामान्य अन्तरों के कारण भारत के भाग या भेद नहीं किये जा सकते। भारत एक अखण्ड है और एक ही सनातन वैदिक

संस्कृति है। भारत के हिन्दू अनादिकाल से एक ही मूल जाति के हैं और जो लोग बाहर से बाद भारत आये थे वे इस मूलजाति में अपनाये गये और उनका जीवन भारती के साथ घुलमिल गये। इसके विरुद्ध जो कुछ प्रचार होता है सो सब स्वार्थियों का दांव-पेंच है। कौनसा भारतीय है जिसके मन में श्री रामेश्वर, श्री रङ्गनाथ, श्री बालाजी, श्री जगन्नाथ, श्री विश्वनाथ, अयोध्या, वृन्दावन, केदार, बद्रीनाथ दर्शनों की अभिलाषा नहीं रखता? दक्षिण में स्थान-स्थान पर काशी विश्वनाथ मन्दिर क्या यह नहीं बतलाते कि दक्षिण को काशी से पृथक् करने की बात मूर्खतापूर्ण है? शङ्कर के धाम कैलास और काशी है। अयोध्या के राम, मथुरा के कृष्ण, व्यास-वाल्मीकि आदि उत्तर के हैं या ये दक्षिण के भी आराध्य हैं। इसी प्रकार शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ये सब आचार्य दक्षिण भारत ने दिये हैं। सारे भारत का धर्म व संस्कृति एक है। हमारे आराध्य, शास्त्र, वेद, आचार्य, एक हैं। महापुरुषों का पुण्यश्लोक, स्तोत्र, सप्तपुरी, चतुर्धाम आदि प्रातः स्मरण में स्मरण करते हैं। चाहे जिस नदी में स्नान करें स्नान के समय गङ्गा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, सिन्धु, कावेरी का आवाहन करते हैं। सारे भारत का दैनिक जीवन घुला-मिला है। हम सदासे एक हैं और सदा एक रहेंगे। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम में भिन्न संस्कृतियों की बात निराधार है। ऐसे स्थिति में क्या आचार्य शंकर जाति व भाषा के भेद के कारण मठों का निर्माण किया था जैसा कि कुम्भकोण मठानुयायियों का प्रचार है? इनका प्रचार भारती भाइयों में फूट डालने के लिये अपनायी हुई घृणित चाल मात्र है।

इस पुण्यमयी भारतभूमी को एक यज्ञवेदी स्वरूप मानकर शास्त्रोक्त प्रकार से चारों दिशाओं में चारों वेद और उनके चार महावाक्यों को विभाग करके अपने चारों शिष्यों के लिये चार धर्मराज्यकेन्द्रों (आम्नाय मठ की) स्थापना की थी। वैदिक संप्रदाय में वेदों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न दिशाओं के साथ माना जाता है। ऋग्वेद का संबन्ध पूर्व दिशा, यजु का दक्षिण, साम का पश्चिम तथा अथर्वण का उत्तर दिशा से है। श्रीशङ्कर ने उपरोक्त वैदिक नियम का पालन किया है। शिष्यों की नियुक्ति शिष्यों के वेद सम्बन्धी दिशा से ही की गई थी। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीपद्मपाद काश्यप गोत्र ऋग्वेदी ब्राह्मण थे और श्रीसुरेश्वर शुक्ल यजुर्वेदी के अन्तरगत काण्व शाखाध्यायी थे। कुछ पुस्तकों में श्रीहस्तामलक को सामवेदी कहा गया है पर अधिकांश विद्वानों का अभिप्राय है कि आचार्य के परकाय प्रवेश समय में "तत्त्वमसि" महावाक्य का बोध श्रीपद्मपाद को कराने के हेतु से श्रीपद्मपाद को सामवेदी मानते हैं ("विख्यातं तन्महावाक्यं वाक्यं तत्वमसीति च")। मठाम्नाय में "स्वरूप ब्रह्मचारीति आचार्य पद्मपादकः" कहने के कारण, पद्मपाद को सामवेदी मानते हैं। कुछ विद्वानों का यह अभिप्राय है कि पद्मपाद तीर्थ, क्षेत्र, आश्रम आदि जगहों की यात्रा में अत्यन्त अभिलाषा रखते थे और इस कारण से पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ को "तीर्थाश्रम" योगपट्ट मिला। अतः श्रीपद्मपाद का पश्चिमाम्नाय द्वारका सामवेदी मठ में होना निश्चित होता है। आचार्य शङ्कर कृष्ण यजुर्वेदि थे और श्रीसुरेश्वर शुक्ल यजुर्वेदी थे। ('मम याजुषी या शाखा' 'तद्वत्त्वदीयाखलु काण्वशाखा' (माधवीय)। अतः आप दोनों का दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी यजुर्वेदीय मठ में होना निश्चित होता है। कुछ पुस्तकों में श्रीहस्तामलक को ऋग्वेदी कहा है। अतः आपका पूर्वाम्नाय गोवर्धन ऋग्वेदीय मठ में होना निश्चित होता है। इन मठों के लिये पद्धति बनाया जो उनके रचित मठाम्नाय और महानुशासन में स्पष्ट रूप से उल्लेख है। अपने अवतार के उद्देश्य को अक्षुण्ण रखने के हेतु, अद्वैतवाद के प्रचार के लिये, वर्णाश्रमाचारादि धार्मिक व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने के लिये, प्रख्यात् चार क्षेत्रों में इन चार आम्नाय मठों की स्थापना भी की। इन्हीं चार आम्नाय मठों के मठाधीषों एवं उनके परम्परागत आये मठाधीषों को ही "जगद्गुरु शङ्कराचार्य" उपादि लागू होता है जो सबको विदित है। आचार्य शङ्कर ने अपने लिये कोई भी आम्नाय मठ किसी समय में भी, किसी भी स्थान पर स्थापित नहीं किया। पर

कुम्भकोण मठ प्रायः 125 वर्ष से प्रचार कर रहे हैं कि आचार्य शङ्कर ने एक पांचवां आम्नाथ मठ काञ्ची में स्थापित कर, उस मठ में अधिष्ठित हो, पश्चात् वहीं तनुत्याग भी किया था और आपका परम्परा साक्षात् आचार्य शङ्कर का परम्परा है। अन्य चार आम्नाय मठ शिष्य मठ हैं और आपकी निगरानी में हैं। इस दुष्प्रचार का भन्डा फोडना इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में पाठकगण पायेगें। आजकल बिना कोई रुकावट एवं अपने अपने इष्ट काम्य प्राप्त करने स्वेच्छावाद द्वारा स्वमठ की कल्पित कथा की प्रचार करते हुए अनेक शाखामठ, उपमठ, उपशाखामठ, और कुछ स्वतंत्र मठ के मठाधीष सब "जगद्गुरु शङ्कराचार्य" का उपादि धारण कर भ्रमण कर रहे हैं। इन लोगों के लिये आचार्य शङ्कर से रचित मठाम्नाय सेतु एवं महानुशासन और परम्परा प्राप्त रूडी व आचार विचार पर कुछ भी अब श्रद्धा, भक्ति व मूल्य नहीं रह गया है!

आचार्य ने इन चार आम्नाय मठों की स्थापना करके उन मठाध्यक्षों के लिये एक व्यवहारिक व्यवस्था भी बना दिया था। आचार्य के आम्नाय मठ सम्बन्धी उपदेश "महानुशासन" व 'मठाम्नाय' के नाम से प्रसिद्ध है। इस महानुशासन की एक प्राचीन प्रति टिप्पणी सहित काशी में उपलब्ध है जो अभीतक अप्रकाशित है। प. प. श्री 1008 श्री जगद्गुरु श्री शंकराचार्य गोवर्धन मठ श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी ने 1935 ई० में एक महानुशासन टिप्पणि सहित प्रति दिखाई थी जो आपके कथनानुसार लगभग 15 वीं शताब्दी की लेखन प्रति से लिखा प्रति था। इस महानुशासन के उपदेश जो उदात्त, उदार, नियमबद्ध तथा उपादेय है। राष्ट्र प्रतिष्ठा, धर्मप्रचार, वर्णाश्रमाचारादि वैदिक संप्रदायों के प्रचार के लिये मठाधीषों को भ्रमण करने को कहा है और मठाधीषों के गुणों का भी वर्णन है। शुचि, जितेन्द्रिय, वेद वेदाङ्ग विशारद, योगज्ञ, शास्त्रवेत्ता व्यक्ति ही मठाध्यक्ष पदवि को अलंकृत कर सकता है। आचार्य शंकर दूरदृष्टि व्यक्ति थे और आपका व्यवहार ज्ञान पूर्ण था। मठाधीष सद्गुणों से युक्त न हों तो उन्हें 'मनीषियों' (आचार्य का गृहस्थ शिष्य) के द्वारा पदच्युत करने का भी विधान है। सन्यासी शिष्य मठाधीष बनकर आध्यात्मिक उन्नति में लगते थे और लौकिक एवं व्यवहारिक विषयों की देखरेख गृहस्थ शिष्य करते थे और ऐसे गृहस्थ शिष्य मठ के दिवान बनते थे। मठाध्यक्षों को स्वयं पद्मपत्र की तरह जगत् के व्यवहारों से निर्लिप्त रहना चाहिये। चार आम्नाय मठों के धर्मराज्य की सीमा और अधिकार क्षेत्र का भी उसमें वर्णन है। भारत का उत्तरी भाग तथा मध्य देश कुरु, काश्मीर, काम्बोज, पांचाल, आदि देश ज्योतिर्मठ के शासन के अन्तरगत है; सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र तथा महाराष्ट्र आदि पश्चिमी भू भाग द्वारका मठ के शासनान्तर्गत है; भारत का सारा दक्षिण भाग (आन्ध्र, तामिल, कर्नाटक, केरल प्रान्त) दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरि शारदा मठ के शासनाधीन है; पूर्वी प्रान्त अंग (भागलपुर), वंग (बङ्गाल), कलिङ्ग (उडीसा का दक्षिणी भाग), उत्कल, मगध (बिहार के कुछ भाग) तथा बर्बर देश (छोटा नागपुर का पहाडी इलाका) सब गोवर्धन मठ के अधिकार में रखा गया है।

कुछ नवीन स्वकल्पित मठ के स्वघोषित मठाधीष इस मठाम्नाय एवं महानुशासन को मानते नहीं हैं चूंकि इस ग्रंथ में उनका नाम या मठ का उल्लेख नहीं है। उनका प्रचार है कि पाठ भेद होने के कारण यह अनादरणीय है। पर इस प्रचार के साथ ही एक कल्पित और अपने मठ द्वारा रचित एवं प्रकाशित मठाम्नाय का प्रचार भी करते हैं। पाठ भेद तो केवल मठ के प्रथमाचार्य का है। अन्य विषयों पर अर्थात् आम्नाय, संप्रदाय, योगपट्ट, ब्रह्मचारी, वेद, महावाक्य, गोत्र, तीर्थ, क्षेत्र, देव, देवी, शासनाधीन सीमा आदि पाठ भेद नहीं पाया जाता है। मठ के प्रथमाचार्य विषय को निर्णय करने का एक विशिष्ठ शास्त्रयुक्त साधन है जिससे इन भेदों का समन्वय किया जा सकता है। केवल एक अल्प विषय के भेद के कारण सारे पुस्तक को अनादरणीय ठहराना उस मठाधीष को केवल अपना ही स्वार्थ

की सिद्धि के लिये प्रचार करना होगा। किसी के मत में गोवर्धन मठ का अध्यक्ष श्री पद्मपाद, शृङ्गेरी का पृथ्वीधर या हस्तामलक और द्वारका शारदा मठ का विश्वरूप दिया गया है। मतान्तरों द्वारा गोवर्धन में हस्तामलक, द्वारका शारदा मठ में पद्मपाद तथा शृङ्गेरी में विश्वरूप (सुरेश्वराचार्य) के अध्यक्ष पदपर नियुक्त किये जाने का ही उल्लेख है। सर्व प्रधान प्रकान्ड विद्वान शिष्य श्री सुरेश्वराचार्य जी उन दिनों में अपने भ्रमण में दूसरों मठों पर भी जा कर वास किये हों जैसे शृङ्गेरी, द्वारका और इन मठों में आपका नाम देना स्वाभाविक है। मठों के प्रथम आदि आचार्य चाहे कोई भी हो पर यह सप्रमाण सिद्ध है कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठ अपने प्रधान चार शिष्यों के लिये स्थापित किया था। आचार्य शङ्कर ने अपने लिये कोई भी मठ कहीं पर किसी समय में भी स्थापित नहीं किया था। अतएव कुम्भकोण मठ का प्रचार केवल कल्पना एवं भ्रमात्मक प्रचार है।

(क) मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्चधुरन्धराः।
सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्मे व्यवस्थितिः॥

चातुर्वर्ण्यं यथायोगं वाङ्मनः कायकर्मभिः।
गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै॥

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः।
कृताधिकारा आचार्यो धर्मतस्तद्वदेव हि॥

अस्मत्पीठे समारूढः परीव्राडुक्त लक्षणः।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्यदेव इति श्रुतेः॥ (मठाम्नाय सेतु)

(ख) चतुर्दिक् चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः। (शङ्कर अष्टोत्रशत नामावली)

(ग) यूयं चतुर्दिक्षु मठेषु लिंगैस्साकं वसन्त्वित्युपदिश्यहर्षात्। (शिवरहस्य)

(घ) तुङ्गाभद्रा तरंगौध वारिता शेष कल्मषम्।
मलहानिकरो नाम देवो यत्र विराजते॥

देव्याः संस्थाप्य तत्र निगमोक्त विधानतः।
निर्माय श्रीमठं तत्र विशालं सुविनिर्मलम्॥

देशिकेन्द्र सुरेशाख्य नाना विद्या विशारदम्।
जगन्नाथस्य गमनं पुण्यक्षेत्रस्य तत्परम्॥

अन्तेवासी निवासार्थं विनिर्मायाश्रमं पुनः।
तत्रछात्रं प्रतिष्ठाप्य परिज्ञाताखिलागमम्॥

द्वारका गमनं पश्चात्तत्रैकां मठ निर्मितिम्।
तत्र शिष्य प्रतिष्ठाप्य देशिकेन्द्रो दयान्वितः॥ (3)

"मायापुरं" समासाद्य षण्मत स्थापनं ततः।
बदर्यागमनं पश्चात्तत्रैकां मठनिर्मितम्॥

तोटकाचार्य नामानं शिष्यं संस्थाप्य यन्नतः। (चिद्विलासीय)

(ङ) मठचतुष्टय सू चनमात्रं कृतम्। (माधवीये)

(च) विजित्येत्यं दिशः सर्वाश्चतुर्दिक्षु सशंकरः।
चतुरोऽथ मठान्कृत्वा शिष्याश्चास्थापयद्विभुः॥
पश्चिमे द्वारका क्षेत्रं शारदा मठ उचते॥
द्वितीये पूर्व दिग्भागे गोवर्धन मठ स्मृतः॥
श्रीमठोश्चोत्तरस्यांतु क्षेत्र बद्रीकाश्रमः।
चतुर्थो दक्षिणास्यां च श्रृङ्गेर्या वर्तते मठः॥ (गुरुपरम्परा चरिते—बम्बई मुद्रण)

(छ) चतुर्दिक्षु प्रदेशेषु प्रसिद्धार्थं स्वनामतः।
चतुष्ट्य मठान्कृत्वा शिष्यान्स्थापयद्विभुः॥ (यतिधर्मनिर्णय)

सन्यासग्रहणविधि, महावाक्योपदेश विधि, योगपट्ट, संप्रदाय, सन्यासक्रम, ब्रह्मचारी, गोत्र, वेद, क्षेत्र, देवदेवी, आम्नाय इत्यादि सब शास्त्रों से सिद्ध हैं। इसमें किसी की भी न्यू नता पायी नहीं जा सकती। यह सब विषय बहुकाल पूर्व सिद्ध हैं एवं परम्परा द्वारा चले आ रहे हैं। ऐसे सब शास्त्रानुकूल पद्धतियों को छोडकर स्वकल्पित प्रचारों की पुष्टी के लिये युक्ति, अनुमान, स्वेच्छावाद की शरण लेना अशास्त्रीय है। कुम्भकोणमठ की कल्पित आम्नाय पद्धति सब अशास्त्रीय है चूंकि आपका प्रचारित वेद, महावाक्य, संप्रदाय, ब्रह्मचारी, योगपट्ट आदि धर्म शास्त्र ग्रंथो में पाये नहीं जाते। दुष्प्रचारकों को याद रहे भगवद् गीता का यह श्लोक—

'यशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखनपरांगतिं॥'

आम्नाय : धर्मशास्त्र के अनुसार आम्नाय सात हैं—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, स्वात्मा (आत्मा), निष्कल। इनमें तीन आम्नाय—ऊर्ध्व, स्वात्मा, निष्कल—जो केवल ज्ञानगोचर हैं ये ज्ञानाम्नाय हैं ('अथोर्द्धशेषे गौगाये तेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः।')। इन तीनों को आध्यात्म की जगह दी गई है। इससे सिद्ध होता है कि इस भूमंडल पर दृष्टिगोचर केवल चार ही आम्नाय चार वेदों का है। कुछ ग्रंथों से प्रतीत होता है कि ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी क्षेत्र में है। पर यह माल्रूम नहीं कि श्री काशी क्षेत्र कौन है ? आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय में दिये हुए ऊर्ध्वाम्नाय का नियम पद्धति देखें तो स्पष्ट माल्रूम होगा कि ऊर्ध्वाम्नाय ज्ञानगोचर है न कि दृष्टिगोचर। काशी जो भू कैलास माना जाता है और जो 'त्रिकंटक विराजिते' है, यहां ऊर्ध्व का लक्षणार्थ से काशी का सुमेरु मठ मानते हैं पर यह ज्ञानगोचर आम्नाय है। ऊर्ध्वाम्नाय का विवरण—संप्रदाय-काशी, योगपट्ट-सत्यंज्ञानं, ब्रह्मचारी-ब्रह्मतत्वे संयोगेन संन्यासः, तीर्थ—मानसं ब्रह्मतत्त्वांवगाहितम्, क्षेत्र-कैलास, देव-निरञ्जन, देवी-माया, मठ-सुमेरु (कैलास का ऊर्ध्व निवासस्थल), आचार्य-महेश्वर। उक्त संप्रदाय नियमानुसार स्पष्ठ प्रतीत होता है कि ऊर्ध्वाम्नाय ज्ञानगोचर ज्ञानाम्नाय है। स्वात्मा और निष्कल इसके परे हैं। इनकी पद्धति नियम सब शास्त्रों में स्पष्ठ उल्लेख हैं। निघन्टु में आम्नाय शब्द का छः अर्थ दिया है—(1) वेद (2) गुरु परम्परोपदेश प्राप्त वेद व्याकरणादि विद्या स्थानं (3) सद् गुरु परम्परागत रहस्योपदेश (4) संप्रदाय (5) कुलम (6) अध्यनयम्। इन अर्थों को देखने से माल्रूम होता है कि वेद एवं संप्रदायानुसार ही आचार्य शंकर ने चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना कर पद्धति

बनाई| मठ साधारण निवास स्थल कहलाता है पर आम्नाय मठ का नियम, संप्रदाय, वेद, महावाक्य आदि होता है और जो अधिकार सम्पन्न भी होता है। ये आम्नाय मठ 'महानुशासन' से बद्ध हैं एवं मठाम्नायान्तर्गत हैं। अधिकार संपन्न का अर्थ (महानुशासन के अनुसार) 'जहां के अध्यक्ष को धर्मशासन में उस धर्मराज्य सीमा का अधिकार हो|' इस दृष्टी से केवल चार ही आम्नाय मठ हैं और इन आम्नाय मठों के अधीश 'जगद् गुरु शङ्कराचार्य' उपादि धारण कर सकते हैं न कि अन्य मठाधीष।

वेद : "ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः" (नृसिंहतापिनी उपनिषद) "चतुर्वेद विदेकपात्" (महाभारत—अनुशासन पर्व)। वेद चार हैं जो सब प्रसिद्ध हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वण वेद। वर्तमान काल में बहुत प्रचलित वेद तीन हैं और अथर्वण वेद के अनुयायी इने गिने ही हैं। वर्तमान काल में ऋग्वेद का शाखा "शाकल" आदि मिलते हैं। यजुर्वेद का शाखा कठ, कालाप (मैत्रायनीय), तैत्तिरीय (कृष्ण यजु), वाजसनेयिन् (शुक्ल यजु) आदि हैं। एक समय में कठ व कालाप शाखा के अनुयायी बहुत थे पर वर्तमान काल में इन दोनों शाखा के अनुयायी इने गिने ही मिलते हैं| कृष्ण यजु के अनुयायी अधिकांश दक्षिण भारत में हैं और शुक्ल यजु के अनुयायी अधिकांश उत्तरी भारत में हैं। सामवेद का शाखा—कौतुम, रानायनीय आदि हैं। इन वेदों का सूत्रकर्ता आचार्य—ऋग्वेदः आश्वलायन, सांख्यायन, कौशीतक आदि; कृष्ण यजुः भारद्वाज, बोधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ, वैखानस, हिरण्यकेशिन आदि; शुक्ल यजुः पारस्कर, कात्यायन आदि; सामवेदः द्राह्यायन, जैमिनीय, गोभिल आदि।

महावाक्य : महावाक्य का लक्षण जीव ब्रह्म ऐक्य बोधक वाक्य होना चाहिये| 'स्वाध्यायोध्येतव्यः' के अनुसार कोई भी अपना वेद का परित्याग नहीं कर सकता है। परिव्राजकों के लिये चार वेदों का चार महावाक्य हैं जिसे उपदेष्ठव्य महावाक्य कहा जाता है —प्रज्ञानं ब्रह्म (ऋक्) अहंब्रह्मास्मि (यजु) तत्त्वमसि (साम) अयमात्मा —ब्रह्म (अथर्वण)। शुकरहस्योपनिषद में "अथ महावाक्यानि चत्वारि" और शिवतत्वसुधानिधि में "प्रज्ञानंब्रह्म चेत्यादि महावाक्य चतुष्टयं" ऐसा उल्लेख है। उपदेष्ठव्य महावाक्य केवल चार हैं। अन्य अनेक महावाक्य केवल मनन एवं चिन्तन के लिये हैं। सन्यासियों को सदा ब्रह्मचिंतन करने के हेतु मनन महावाक्य अनेक हैं पर उपदेष्ठव्य केवल चार हैं। सन्यास दीक्षाविधि के अनुसार अपने अपने शाखा सम्बन्धी महावाक्य का प्रणव के साथ उपदेश लेकर पश्चात् अन्य तीन वेदों का महावाक्यों को बोध किया जाता है। धर्म सिन्धु 'ऋग्वेदादि महावाक्येष्वन्यतमं शिष्य शाखानुसारेणोपदिश्य तदर्थं बोधयेत्।' विश्वेश्वरस्मृति 'इत्यादिनी शिष्य शाखा वाक्योपदेश पूर्वकं उपदिशेत्। तेषां अर्थं च बोधयेत्।' यतिधर्मनिर्णय आदि धर्मशास्त्रग्रंथ चार महावाक्यों का उपदेश स्वशाखा से प्रारम्भ करने को कहता है।

सम्प्रदाय : श्री शंकराचार्य द्वारा रचित मठाम्नाय एवं अनेक धर्मशास्त्र ग्रंथों से मालूम होता है कि सम्प्रदाय केवल चार हैं—कीट, भोग, आनन्द, और भूरी। इसके लक्षण भी धर्मशास्त्र ग्रंथों में पाया जाता है।

सन्यास क्रम : धर्मशास्त्र ग्रंथों से प्रतीत होता है कि सन्यासक्रम चार हैं। अब प्रथम तीन क्रम के अनुयायी दिखाई नहीं देते और सब परिव्राजक अब परमहंस हैं। कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस चार संन्यास क्रम हैं।

सन्यासनाम-योगपट्ट : अङ्कित सन्यास नाम केवल दस हैं 'तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः। सरस्वती भारती च पुरीत्येते दशैवहि।'' इन योग पट्टों की कल्पना आध्यात्मिक हैं न कि भौतिक। इनके रहस्य व लक्षणों का परिचय मठाम्नाय, यतिधर्मनिर्णय आदि ग्रंथों में पाये जाते हैं। इनके सिवाय कुछ नवीन सन्यास नाम जो मूल नाम के भेद हैं और जो अर्वाचीन काल में अभिमान स्वशीलाचार से परिकल्पित हैं। आचार्य शंकर ने इन दस नामों का पुनरुद्धार कर चार आम्नाय मठों की पद्धति में जोड दिया है। जिस प्रकार हर एक द्विज को गोत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र आदि का होना आवश्यक है उसी प्रकार सन्यासियों के लिये सन्यासक्रम, सम्प्रदाय, योगपट्ट, महावाक्य आदियों की आवश्यकता है। ये सब शास्त्र सिद्ध हैं।

पीठ : पीठ पर पराशक्ति की प्रतिष्ठा होती है क्यों कि पीठों की अधीषी शक्ति होती है न कि भौतिक शरीर। प्राणमय कोष में आवर्त्त होकर देवयोनियों के ठहरने का जो स्थान बनता है उसे पीठ कहते हैं। जिसप्रकार मृत्युलोक के जीवों के ठहरने के लिये पृथ्वी है और बैठने के लिये आसन है उसी प्रकार सूक्ष्म देवलोकवासी आत्माओं के ठहरने का स्थान पीठ है। हमारे यहां विभिन्न प्रकार के पीठों के अवलम्बन से उपासना की जाती हैं| चिरस्थायी पीठों में और विशिष्ट तीर्थादि पीठों में देवता नित्यरूप से वास करते हैं और उनके आशीष से बडे बडे कार्य सिद्ध होते हैं। पीठ अचल एवं प्रतिष्ठित होते हैं। ऐसे प्रतिष्ठित पीठों का स्थलान्तर होने से वह पूजार्ह नहीं होता। 'कलौ स्थानानि पूज्यन्ते' की उक्ति के अनुसार पीठ स्थान भ्रष्ट नहीं हो सकता है। वृद्धपरम्परा से माना गया है कि कुछ पीठ सृष्टी से हैं और उनकी स्थापना भी किसी ने नहीं की है| कालक्रम से अथवा अन्य किसी कारणवश वह हमलोगों की दृष्टि से लोप हो जाने पर किसी महान् अवतारी पुरुष द्वारा उस पीठ का पुनः निर्माण व जीर्णोद्धार व उग्रता शान्त व अशुद्धता निवारण किये जाने का विषय हमलोग अपने ग्रंथों में पढते हैं।

मठ : मठ को साधारण तौर पर किसी यति का आश्रम अथवा साधुसन्यासियों, ब्रह्मचारियों, छात्रों का निवास स्थान समझते हैं—'मठः छात्रादिनिलयः|' श्री शंकर अपने द्वारा उद्धार किये हुए अद्वैतवाद को एवं वैदिक धर्म के मार्ग को तथा वर्णाश्रमाचारादि आचार विचारों को अक्षुण्ण रखने के निमित्त धर्मराज्यकेन्द्र के रूप में एवं अधिकार संपन्न चार केन्द्र (मठ) चारों दिशाओं में चार वेदमूर्तिस्वरूप व उनके महावाक्यों के लिये स्थापित किया था। यह स्थलान्तर हो सकता है। भारत में अनेक मठ हैं। इसका अर्थ न होगा कि सब मठ अधिकार संपन्न आम्नाय मठ हैं और न ये सब मठ आचार्य शंकर से स्थापित हैं। अधिकार संपन्न आम्नाप मठ चार हीं हैं और उनकी पद्धति सब शास्त्र सिद्ध हैं।

अद्वैतविद्या अनुयायी मठों की सूची (अपूर्ण) नीचे दी जाती है। इनमें प्रथम चार मठों की स्थापना आम्नाय मठ रूप में आचार्य शंकर ने की थी। अन्य मठ आचार्य शंकर के काल के बाद ही शाखामठ, उपशाखामठ तथा स्वतन्त्र मठ रूप में किसी अन्य द्वारा प्रतिष्ठा की गयी थी। इनमें कुछ मठ नष्ठ हो गये और कुछ विच्छिन्न हो गये। गोवर्धन, शृङ्गेरी, द्वारका, ज्योति (बद्री), सुमेरू (कैलास व काशी), परमात्मा, कुडली, संकेश्वर, करवीर, कांची कुम्भकोण मठ, पुष्पगिरि, विरूपाक्षी, हव्यक, शिवगङ्गा, कोप्पाल, श्री शैल, रामेश्वर, रामचन्द्रपुर, आमनी (अवंती), घनगिरि, होनहल्ली, भंडीगरी, कैवल्यपुर, मुळबागल, शिराली, खिद्रापुर, नृसिंहवाडी, तीर्थमुत्तूर, तलकाड, मोल्लवग, पैठण, काशी, तीर्थराजपुर, गंगोत्री, तीर्थहल्लि, मुनियूर मठ (शकट्पुरम् या बन्डीगेड), गोकर्ण, विश्वेश्वरारण्यपुर, संगम, मुल्वाई, हैगा, नेलमाऊ, हरिहरपुर इत्यादि इत्यादि मठ हैं।

आम्नायानां दिक् क्रमः	संप्रदायः	योगपट्टः (अङ्कित नाम)	ब्रह्मचारी	वेदः	महावाक्यम्	गोत्र	तीर्थ
दृष्टिगोचर पूर्व	भोगवार (ळ)	वन अरण्य	प्रकाशक	ऋग्वेद	प्रज्ञानंब्रह्म	काश्यप	महोदधिः
दक्षिण	भूरिवार (ळ)	सरस्वती भारती पुरी आदि	चैतन्य	यजुर्वेद	अहंब्रह्मास्मि	भूर्भुवः	तुङ्गभद्रा
पश्चिम	कीटवार (ळ)	तीर्थ आश्रम	स्वरूपक	सामवेद	तत्त्वमसि	अविगत	गोमती
उत्तर	नंदवार (ळ)	गिरि पर्वत सागर	आनन्द	अथर्वणवेद	अयमात्मा ब्रह्म	भृगु	अलकनन्दा
ज्ञानगोचर ऊर्ध्व	काशी	सत्यं ज्ञानं	ब्रह्मतत्त्वे संयोगेन संन्यासः	—	—	—	मानसं ब्रह्मतत्त्वा वगाहितम्
आत्मा	सत्त्वतोषः	योगः	सन्यासः	—	—	—	त्रिपुटी
निष्कल	सच्छिष्यः	गुरुपादुका	सन्यासः	—	—	—	सत्शास्त्र श्रवणम्

क्षेत्र	देव	देवी	ठनामः	आचार्यः	शासनाधीन धर्मराज्यसीमा	धर्मराज्य केन्द्रः
पुरुषोत्तम	जगन्नाथ	विमला (वृषला)	गोवर्धन	हस्तामलक या पद्मपाद	अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, उत्कल	वड्डी जगन्नाथ
रामक्षेत्र	वाराहः	शारदा	शृङ्गेरी शारदा	सुरेश्वराचार्य या पृथ्वीधर	आन्ध्र, द्रविड, केरळ, कर्णाटक	शृङ्गगिरि या शृङ्गेरी
द्वारिका	सिद्धेश्वरः	भद्रकाळी	कालिका या द्वारका शारदा	पद्मपाद या विश्वरूपाचार्य	सिन्धु, सौवीर, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र	द्वारका
बदरिकाश्रम	नारायण	पुन्नगिरि या पूर्णागिरि	ज्योतिष्मन्मठ या ज्योति या जोषी	तोटक या त्रोटकाचार्य	कुरु, काश्मीर, पाञ्चाल, कम्बोज	बदरिका वनम्
कैलास	निरञ्जनः	माया	सुमेरु (कैलास)	महेश्वरः	—	—
नभस्सरोवरम्	परमहंस	मानसी माया	परमात्मा	चेतनः	—	—
अनुभव	विश्वरूपः	चिच्छक्ति	सहस्रार्कद्युति	सद्गुरुः	—	—

अध्याय—8

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

श्री शङ्कर ने बदरीकाश्रम में श्री गौडपादाचार्य को अपनी सादर वन्दना प्रकट की। हिमालय पर्वत सीमा में परिभ्रमण करते हुए केदार-बद्री की सीमा पर पहुंचे। इस सीमा में अब भी अनेक गांव हैं जहां शिव या शक्ति के मन्दिर हैं। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने इन मन्दिरों के देव देवी मूर्तियों का दर्शन किया था। इनमें कुछ मन्दिर हैं जहां आचार्य शङ्कर की मूर्ति भी प्रतिष्ठित हैं। बद्री श्री नारायण मन्दिर का जीर्णोद्धार करके श्रीमन्नारायण मूर्ति की प्रतिष्ठा कर उस मूर्ति की पूजा का व्यवस्था भी किया। नर-नारायण भाव जीव ब्रह्म ऐक्य भाव है। आज पर्यन्त इस मन्दिर का पुजारी केरळ देशीय नम्बूदरि ब्राह्मण ही करते आ रहे हैं। वहां के वासिन्दो के अनुरोध पर श्री शङ्कर ने तप्त जल का एक कुन्ड अपने योग वल द्वारा निर्माण किया।

आदि बद्री, ध्यान बद्री, योग बद्री, भविष्य बद्री, विशाल बद्री ऐसे पांच बद्री सीमा से युक्त बद्री एक पुण्य क्षेत्र है। बदरीनाथ मन्दिर जाते समय बायीं ओर शङ्कराचार्य जी का मन्दिर मिलता है। यह मन्दिर सिंहद्वार से चार या पांच सीढी उतर कर स्थित है। कहा जाता है कि श्री बदरीनाथ जी की मूर्ति पहले तिब्वतीय क्षेत्र में थी और आचार्य शङ्कर ने श्रीविग्रह को भारत ले आये। वह स्थान आदिबदरी कहा जाता है और तिब्बत में उसे धुलिंगमठ कहते हैं। बदरीनाथ से 'माता' घाटी पार करके एक मार्ग है किन्तु यह मार्ग कष्टप्रद है। कैलास जाने के लिये 'नीती' घाटी का मार्ग है और उस मार्ग से 'शिवचुलम्' जाकर वहां से 'थुलिंग मठ' (आदिबदरी) जा सकते हैं। उत्तराम्नाय जोशीमठ से जो मार्ग नीतीघाटी होकर कैलास जाता है, उस मार्ग पर जोशीमठ से 6 मीलपर तपोवन है। यहां गरम जल का कुण्ड है। इस तपोवन से 3 मील ऊपर विष्णु मन्दिर है, यही भविष्य बदरी है। यहां के एक शिला में भगवान् की आधी आकृति दीखती है। भविष्य में वह आकृति पूरी हो जायगी। जोशीमठ में शालग्राम शिला का नृसिंह भगवान् का मन्दिर है। इस मूर्ति का एक भुजा बहुत पतली है। कहा जाता है कि जिस दिन यह हाथ अलग होगा, उसीदिन विष्णु प्रयाग से आगे जो नर नारायण पर्वत हैं सो मिल जायेंगे और बदरीनाथ का मार्ग सदा के लिये बन्द हो जायगा। उसके बाद यात्री भविष्यबदरी जाया करेंगे। नर-नारायण पर्वत बिलकुल पास आ गये हैं। भविष्य बदरी के पास लाता देवी का मन्दिर तथा आकाश से गिरी खड्ग है। कल्पेश्वर शिवमन्दिर के पास उरगम स्थल पर ध्यान बदरी का मन्दिर है।

आचार्य शंङ्कर केदार क्षेत्र भी पहुंचे बाद गंगोत्री का दर्शन किया और यहीं पर अपनी यात्रा भी समाप्त की। केदार क्षेत्र अनादि है। सत्ययुग में उपमन्युजी यहीं शंकर की आराधना की थी। द्वापर में पाण्डवों ने तपस्या की थी। यहां पञ्चकेदार माने जाते हैं क्यों कि महिषरूपधारी भगवान् शंकर के विभिन्न अङ्ग पांच स्थानों में प्रतिष्ठित हैं—(1) केदार—केदारनाथ में पृष्ठ भाग और नैपाल पशुपतिनाथ में सिर (2) केदार—मदमहेश्वर में नाभि (3) केदार—तुङ्गनाथ में बाहु (4) केदार—रूद्रनाथ में मुख (5) केदार—कल्पेश्वर में जटा। केदारनाथ में कोई निर्मित मूर्ति नहीं है। त्रिकोण पर्वत - खण्ड - सा है। यहां पान्डवों की मूर्तियां हैं। कहते हैं कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार आचार्य शंकर ने करवाया था। जाडों में केदारनाथ की चलमूर्ति ऊखीमठ आ जाती है। यहां ललितादेवी का मन्दिर है। यहां के कालीमठ के महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती के मन्दिर हैं। कहा जाता है

कि कालिदास ने इस देवी की आराधना की थी। महामृत्युञ्जय पर्वत कर्णप्रयाग से 18 मील है। सं० 1860 के भूकम्प में जब आचार्य शंकर के समय का निर्मित मन्दिर गिर पडा, तब से एक प्रासादाकार मन्दिर में भगवान् विराजमान हैं। शाकम्भरी देवी की मूर्ति स्वयम्भू मूर्ति है और आचार्य शंकर ने तीन मूर्तियां—भीमा, भ्रामरी, शताक्षी—स्थापित की थी। यह स्थल सहरान्पुर नगर से 26 मील पर है जो चारों तरफ पर्वतों से घिरा है। गङ्गोत्तरी का मुख्य मन्दिर श्री गङ्गा जी का मन्दिर है। इस मन्दिर में आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित गङ्गा जी की मूर्ति है। राजा भगीरथ, यमुना, सरस्वती एवं शंकराचार्य की मूर्तियां भी हैं। देवप्रयाग से श्रीनगर (काश्मीर प्रान्त का श्रीनगर नहीं) 3 मील है और यहां नगरप्रवेश से पूर्व ही शंकरमठ मिलता है।

आपके दिग्विजय यात्रा का पूर्ण वर्णन् शंकर विजय पुस्तकों में पाया जाता है। पर किसी भी पुस्तक में दिग्विजय का क्रम ठीक-ठीक नहीं जमता। इन क्रमों में भौगोलिक मूल्य बहुत ही कम है। विजय यात्रा क्रम भिन्न भिन्न हैं। स्थानों में भी पर्याप्त भिन्नता है। इन यात्रा क्रमों से प्रतीत होता है कि श्री शंकर दो बार दक्षिण भारत से उत्तर भारत आये और यहां भ्रमण कर अन्त में केदार सीमा से निजलोक को पधारे। जब श्री शंकर आठ वर्ष के थे प्रथम बार उत्तर भारत आये और नर्मदा तट निवासी श्री गोविन्द भगवत्पाद से दीक्षा व शिक्षा लेकर पश्चात् काशी, प्रयाग, हरिद्वार, बदरी-केदार सीमा, माहिष्मती आदि स्थलों में भ्रमण करते हुए प्रस्थानत्रय भाष्य रचना समाप्त कर अपनी सतरहवीं वयस में शिष्य मन्डलियों सहित श्री शृङ्गेरी पहुंचकर वहां कुछ काल वास कर पश्चात् माता का दाह संस्कार कर आपने दिग्विजय यात्रा निमित्त पुनः दक्षिण से उत्तर पहुंचे। उत्तर भारत का भ्रमण करते हुए बदरी केदार सीमा पहुंच कर यहीं से अपने बत्तीसवें वयस में निजधाम पहुंचे। कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि आचार्य शंकर ने तीन बार भारत का भ्रमण किया था सो प्रचार भूल और असत्य है।

दिग्विजय यात्रा में शंकराचार्य नैपाल राज्य भी गये थे। कहा जाता है कि उस समय नैपाल में ठाकुर वंश का राज्य था (या राजपूत वंश) और महाराजा शिवदेव या वरदेव राज्य करते थे। नरेन्द्रदेव वर्मा के पुत्र शिवदेव थे। चीन सम्राट ने नरेन्द्रदेव को नैपाल का राजा स्वीकार किया था। श्री शंकर ने बौद्ध मतों का खन्डन करके पशुपतिनाथ जी को वैदिक प्रणाली द्वारा पूजा का व्यवस्था किया और दक्षिणी ब्राह्मण को इस कार्य के लिये नियुक्त कर दिया था। यह कहाजाता है कि तभी से दक्षिणी ब्राह्मणों के कुछ वंशज नैपाल में बस गये थे। श्री पशुपतिनाथ मन्दिर के पास ही शंकराचार्य जी का मठ और थोडी ही दूर पर शंकर और दत्तात्रेय की मूर्तियां भी पूजी जाती है। नैपाल वंशावली के अनुसार श्री शंकर के समय में सूर्यवंशी राजा वृषदेव वर्मा राज्य करते थे। कहा जाता है कि श्री शंकर के कृपा से उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम शंकरदेव वर्मन रक्खा गया। डा० फ्लीट के अनुसार वृषदेव वर्मन का काल 630 ई० का था पर ऐतिहासिक लोग इस वंशावली को महत्व नही देते।

इस प्रकार अपने अवतार कार्य को सफल देखकर व अपनी बत्तीस वर्ष की आयु को शेष विधि समझकर अपने धाम कैलास जाने की याद की। शिवरहस्य के अनुसार 'तान्वै विजित्यतरसाक्षत शास्त्र जालैः मिश्रांस्ततो नैजमवाप लोकम्।' आचार्य शङ्कर उत्तरीभारत के गौडों को वादविवाद में पराजित कर कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण कर हिमाचल प्रदेश से कैलास पहुंचे। आचार्य शङ्कर का आयू 32 था और कैलास आने का आदेश होने से हिमाचल के केदार क्षेत्र सीमा से निजधाम पहुंचे 'द्वात्रिंशत्परमायुस्ते शीघ्रङ्कैलासमाव्रज' (शिवरहस्य)। सशरीर कैलास गमन किये या स्थूल शरीर यहीं छोड चले या परमशिव के चिन्हों को धारण कर वृषभारूड होकर गये या गुफा प्रवेश

कर निजधाम को गये या अन्य रीति से गये, ऐसा कोई निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। पर इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य शङ्कर का निजधाम गमन हिमालय पर्वत से ही हुआ था। आज भी इस सीमा में वहां के लोग एक स्थल बतलाते हैं जहां से शङ्कर कैलास गमन किये और जो नित्य पूजित होती है तथा सैकडों यात्री दर्शनार्थ जाते हैं। यह पावन प्रसिद्ध समाधि स्थल जो केदार मन्दिर समीप है सो आज भी विद्यमान है। केदारनाथ मन्दिर के पीछे करीब 150 गज दूर पर 50 या 60 फुट का चार कोण पत्थर का चबूतरा पर आचार्य की समाधि है। उक्त चबूतरे पर करीब 12 फुट चारकोण टिन चद्दर से समाधि ढकी हुई है। शिवरहस्य, माधवीय, गुरुपरम्परा चरित्र, श्री माणिक्यविजय (ब्रह्माण्ड पुराण सारः), चिद्विलास, सदानन्दीय, व्यासाचलीय (कहे जाने वाले), दर्शन प्रकाश (महानुभाव संप्रदाय–'शङ्कर पद्धति' से उद्धरन), आदि अनेक अकाट्य प्रमाण ग्रंथों से सिद्ध होता है कि आचार्य का निर्याण स्थल हिमालय के बद्री-केदार सीमा ही है। हिमाचल गजटियर और पूर्वी व पाश्चात्य प्रसिद्ध अनुसन्धान विद्वानों का भी यही अभिप्राय है। केदार सीमा के लोगों से एक परम्परागत जन-श्रुति कथा सुनी जाती है कि आचार्य का कैलास गमन यहीं से हुआ था। नैपाली लोक गीत जो लगभग 500 वर्ष पूर्व किसी आशुकवि द्वारा लिखा गया था, उसमें भी श्री शङ्कर के कैलास गमन का विवरण इसी सीमा से वर्णित है। सुना जाता है कि उत्तर प्रदेश के राज्याधिकारी वर्गों से इस पुण्य स्थल पर चिन्हात्मक रूप में 'श्री शङ्कराचार्य कैवल्यधाम' मन्दिर निर्माण करने का आयोजन किया है। शोचनीय विषय है कि कुम्भकोण मठ इस स्थल को निर्याण स्थल नहीं मानते और स्वेच्छावाद तथा सन्देहास्पद प्रमाणाभास के आधार पर प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल कांची नगर था। इनका मार्ग ही 'तृतीय पन्था' है।

॥ आचार्य शंकर का वयस तथा अवतार लीला का वर्णन ॥

प्रथम वर्ष	—	स्वदेश भाषा।
द्वितीय वर्ष	—	वर्ण, विज्ञान, पुराण, कथा श्रवणादि।
तृतीय वर्ष	—	पिता की मृत्यु (कुछ ग्रंथ पांचवे वर्ष में पिता की मृत्यु बतलाते हैं)।
चतुर्थ वर्ष	—	काव्य नाटकादि विद्वत्ता।
पांचवें से आठवें वर्ष तक	—	उपनयन पांचवें वर्ष और वेद शास्त्र अध्ययन आठवें वर्ष तक।
आठवां वर्ष	—	सर्वविद्यापारंगत, आतुर सन्यास ग्रहण।
नौ से ग्यारह वर्ष तक	—	नर्मदातीरवासी गुरु गोविन्दभगवत्पाद का दर्शन एवं उनसे सन्यास दीक्षा तथा अध्ययन, काशी गमन एवं श्री विश्वेश्वर सान्निध्य, बदरी गमन तथा भाष्य रचना।
बारह से सोलह वर्ष तक	—	सनन्दन को दीक्षा देकर शिष्य बनाना (पद्मपादाचार्य) तथा प्रस्थानत्रय भाष्य रचना की पूर्ति, काशी में व्यास दर्शन आदि।
सोलहवें वर्ष	—	प्रयाग में श्री कुमारिल भट्ट से भेंट एवं माहिष्मति में मण्डन विश्वरूप मिश्र से वादारम्भ।

सत्रह वर्ष	—	मण्डन विश्वरूप का पराजय, सरसवाणी के साथ संवाद, परकाय प्रवेश व स्वशरीर प्रति आगमन, सरसवाणी का पराजय एवं मण्डन विश्वरूप मिश्र की दीक्षा (श्री सुरेश्वराचार्य) तथा सरसवाणी को वनदुर्गा मंत्र से बन्धन, शृङ्गेरी गमन तथा मार्ग में श्री हस्तामलक का दीक्षा, सरसवाणी को शारदा रूप में शृङ्गेरी में प्रतिष्ठा, शृङ्गेरी में दक्षिणाम्नाय निजमठ निर्माण, श्री त्रोटकाचार्य की दीक्षा आदि।
अठारह से तेईस वर्ष तक	—	शृङ्गेरी में अपने चार शिष्यों के साथ वास, प्रकरण ग्रंथ, स्तोत्र एवं अन्य ग्रंथों का रचना, भाष्य प्रवचन, कालटी गमन एवं मातृ दाह संस्कार, पुनः शृङ्गेरी आगमन, पद्मपाद का तीर्थयात्रा आदि (कुछ लोगों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर शृङ्गेरी में 12 वर्ष वास किये थे)।
चौबीस से एकतीस वर्ष तक	—	भारतवर्ष परिभ्रमण में अनेक मत निराकरण, तीर्थ क्षेत्र उद्धारण, मन्दिरों का पुनः निर्माण जीर्णोद्धार, द्वारका में पश्चिमाम्नाय मठ स्थापना, वड्डी जगन्नाथ (पुरी) में पूर्वाम्नाय मठ स्थापना, तीर्थयात्रा, कश्मीर में सर्वज्ञ पीठारोहण आदि।
बत्तीस वर्ष	—	बदरिका वन में उत्तराम्नाय मठ स्थापना, केदार-बद्री सीमा से कैलास गमन।

श्री गौडपादाचार्य कृत ग्रन्थ —श्री गौडपादाचार्य ने ईश्वर कृष्ण का सांख्य कारिका का भाष्य लिखा है। अपने विवर्तवाद से वेदान्त की पुष्टी और जीर्णोद्धार किया। आप परिणामवाद को बिलकुल निराकरण नहीं किये। मान्डूक्यकारिका, उत्तरगीता, नृसिंहतापिनी और दुर्गा सप्तशती का भाष्य और श्री विद्या के दो ग्रंथ (क) श्री विद्यारत्नसूत्र (ख) शुभगोदय—इनके प्रधान ग्रंथों में से हैं।

श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य कृत ग्रन्थ—श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने अद्वैतानुभूति (अवधूत गीता), योगतारावली, ब्रह्मामृतवर्षिनी आदि ग्रंथ लिखा है। पर कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि अद्वैतानुभूति एवं योगतारावली श्री आचार्य शंकर द्वारा रचित हैं और कुछ विद्वान कथमपि शंकर की रचना नहीं है ऐसा अभिप्राय रखते हैं। वास्तव में इनके द्वारा विरचित किसी वेदान्त ग्रंथ का अभीतक पता नहीं चला है। कहा जाता है कि आप एक महायोगी थे और आपका देह रसप्रक्रिया से सिद्ध था। कहाजाता है कि आपने रसायनशास्त्र का ग्रन्थ "रसहृदयतंत्र" पुस्तक की रचना की थी। माधव के "सर्वदर्शनसंग्रह" में रसेश्वर-दर्शन के प्रसङ्ग में इस रसायन ग्रंथ का प्रामाण्य स्वीकार किया है।

श्री शंकराचार्य के ग्रंथ—आपसे लिखित ग्रंथों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—(क) भाष्य (ख) स्तोत्र (ग) प्रकरण ग्रन्थ। आचार्य का प्रस्थानत्रयी भाष्य जो तीनों ग्रन्थ ब्रह्म की ओर ले जाने वाले हैं सो भाष्य पूर्ण, प्रौढ तथा पान्डित्यपूर्ण हैं। प्रस्ताथनत्रय पद में त्रय का अर्थ (क) श्रुति अर्थात उपनिषद, (ख) स्मृति अर्थात गीता, व (ग) सूत्र अर्थात ब्रह्म सूत्र है। प्रस्थान शब्द का साधारण अर्थ है गमन परन्तु यहां प्रस्थानत्रय में प्रस्थान का अर्थ मार्ग है यानी जिस मार्ग द्वारा गमन किया जाय। प्रस्थानत्रय का अर्थ है कि आध्यात्मिक

मार्ग का पथिक इन तीनों स्थानों से यात्रा करने पर ब्रह्म तक पहुंच सकता है। ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। ब्रह्मसूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार सब आचार्य शङ्कर का काल के पश्चात् के हैं और आचार्य शङ्कर के पूर्व ब्रह्मसूत्र भाष्यकारों का विवरण पता नहीं चलता। श्री शङ्कर के अनुसार सूत्रों की तथा अधिकरणों की संख्या क्रमशः 555 और 191 है पर रामानुज मत में 545 और 160, मध्व मत में 564 और 223 है, निम्बार्कमत में 549 और 161, श्रीकण्ठ के अनुसार 544 और 182, वल्लभ मत में 554 और 171 हैं। ब्रह्मसूत्र के चार अध्याय –(1) समन्वयाध्याय (2) अविरोधाध्याय (3) साधनाध्याय (4) फलाध्याय हैं और इनसे ब्रह्म के स्वरूप, उसकी प्राप्ति के साधन और फल का वर्णन पाते हैं। श्री शङ्कर रचित सूत्र भाष्य को शारीरक भाष्य भी कहते हैं क्यों कि आत्मा जो शरीर में रहनेवाला है उस आत्मा के स्वरूप का विचार इन सूत्रों में किया गया है। गीता भाष्य दूसरे अध्याय के 11 वें श्लोक से प्रारम्भ होता है। आपने अपने भाष्य में यह दिखलाया है कि गीता में मोक्ष प्राप्ति केवल तत्व-ज्ञान से ही बताई गयी है और न ज्ञान व कर्म के समुच्चय से–'गीतासु केवलादेव तत्वज्ञानात् मोक्षप्राप्तिः न कर्मसमुच्चितात्। इति निश्चितेऽर्थः।' आचार्य शङ्कर ने इन उपनिषदों का भाष्य लिखा है (1) ईश (2) केन (3) कठ (4) प्रश्न (5) मुण्डक (6) माण्डूक्य (7) तैत्तिरीय (8) ऐतरेय (9) छान्दोग्य (10) बृहदारण्यक (11) श्वेताश्वतर (12) नृसिंहतापिनी। केन उपनिषद के दो भाष्य— पद वाक्य तथा वाक्य भाष्य–श्री शङ्कर के नाम से प्रसिद्ध हैं पर कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि इन दोनों भाष्यों में प्रदर्शित युक्तियां भिन्न भिन्न एवं कहीं कहीं आचार्य के अभिप्रायों के विरुद्ध रूप में वर्णित होने से दोनों भाष्यों का एक लेखक नहीं हो सकता। पदभाष्य निश्चित ही आचार्य शङ्कर की रचना है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि वाक्य भाष्य के लेखक शृङ्गेरी मठाध्यक्ष श्री 1008 श्री जगद् गुरु शङ्कराचार्य श्री विद्याशङ्कर थे। अनुसन्धान करने वाले विद्वानों ने अनेक कारण देकर सिद्ध किया है श्वेताश्वतर उपनिषद भाष्य का रचयिता आदि शङ्कराचार्य न थे। विद्वानों की ऐसी शंकायें भी हैं कि क्या आचार्य शङ्कर ने माण्डूक्य भाष्य की रचना की है या नहीं। नृसिंहतापनीय के विषय मे भी विद्वानों का अन्तिम निर्णय नहीं हुआ है। आचार्य शङ्कर ने सनत्सुजातीयम्, विष्णुसहस्रनाम, ललितात्रिशती माण्डूक्यकारिका के भाष्य लिखा है। हस्तामलकस्तोत्र जो शिष्य का ग्रंथ है उस पर गुरुजी का भाष्य हस्तामलकीय लिखना असंगत प्रतीत होता है तथापि प्रायः सबों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर ने ही इसका भाष्य लिखा था। इसके अलावा करीब 26 अन्य भाष्य, टीका, वृत्ति, व्याख्या ग्रंथ जो आचार्य शङ्कर के नाम से प्रकाशित हैं वे सब आचार्य रचित नहीं हैं। कौषीतकी उपनिषद, मैत्रायणीय उपनिषद, कैवल्य उपनिषद, महानारायण उपनिषद, अध्यात्मपटल, गायत्री, सन्ध्या भाष्यों को श्री शङ्कर रचित मानने में सन्देह होता है।

आचार्य शङ्कर रचित प्रकरण ग्रन्थ भी अनेक मिलते हैं। वेदान्त तत्त्व प्रतिपादक होने से एवं इसके साधनभूत वैराग्य, त्याग, शमदमादि सम्पत्ति की विवेचना होने से ये छोटे छोटे ग्रन्थ "प्रकरण ग्रन्थ" कहलाते हैं। सर्व साधारण को अद्वैत उपदेशों से परिचित कराने के लिये इन प्रकरण ग्रन्थों का निर्माण किया गया है। कहा जाता है कि आपने 39 प्रकरण ग्रन्थ लिखा है। पर सब ग्रन्थ आचार्य से रचित नहीं हैं। इनमें निम्न दिया प्रसिद्ध प्रकरण ग्रन्थ सब आचार्य शङ्कर से रचित हैं: अपरोक्षानुभूति (अपरोक्षानुभवामृत से भिन्न है), आत्मबोध (गीर्वाणेन्द्र के शिष्य बोधेन्द्र "भाव प्रकाशिका" टीका लिखी है), उपदेशसाहस्री या सकलवेदोपनिषत्सारोपदेशसाहस्री (गद्य-पद्य उभय प्रबन्ध हैं), पंचीकरण प्रकरण (गद्य में पंचीकरण का वर्णन), प्रबोध सुधाकर (257 आर्याएं हैं), लघुवाक्यवृत्ति (18 अनुष्टुप् पद्यों में जीव ब्रह्म ऐक्य प्रतिपादन), वाक्यवृत्ति (तत् त्वं पदों के अर्थ 53 श्लोकों में), विवेक चूडामणि (581 पद्य हैं), शतश्लोकी (100 लम्बे लम्बे पद्यों में), सर्वसिद्धान्त सार संग्रह (षड्दर्शनों तथा अवैदिक दर्शनों का

वर्णन है। कुछ विद्वान इस ग्रंथ को आचार्य रचित नहीं मानते चूंकि इस पुस्तक में पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा तथा देवता काण्ड एक ही अभिन्न शास्त्र माना है परन्तु आचार्य ने पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा को भिन्न भिन्न शास्त्र माना है)। अन्य प्रकरण ग्रन्थों के विषय में सन्देह हीन निर्णय अभी तक नहीं पाया जाता है।

एक और मंत्र शास्त्र का ग्रंथ "प्रपञ्चसार" नामक का रचयिता आदि श्रीशङ्कर ही हैं। श्रीपद्मपाद ने "विवरण" नामक टीका भी लिखा है और आप प्रपञ्चसार को आचार्य शङ्कर रचित ग्रन्थ कहते हैं "इहखलु भगवान् शङ्कराचार्यः समस्तागमसारसंग्रह प्रपञ्चागमसार संग्रहरूपं ग्रन्थं चिकीर्षुः"। "प्रपञ्चागम" नामक प्राचीन तंत्र का सार "प्रपञ्चसार" है। श्री अमलानन्द ने 'कल्पतरु' में इसे आचार्य कृत माना है।

श्रीशङ्कर के नाम से दो सौ चालीस स्तोत्र छपे हैं या हस्तलिपि रूप में पाये जाते हैं। एक सूचीपत्र में करीब 400 ग्रंथ व स्तोत्रों का नाम भी दिया गया है। श्रीश्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य की अध्यक्षता में श्रीवाणीविलास मुद्रालय ने श्रीशङ्कर रचित चौसंठ स्तोत्रों का ही उल्लेख करके प्रकाशित किया है। अन्य स्तोत्र आचार्य शङ्कर कृत मानने में सन्देह है। इनमें से प्रसिद्ध स्तोत्र-शिवानन्दलहरी, गोविन्दाष्टक, दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, दशश्लोकि, चर्पट पञ्जरिका, द्वादश पञ्जरिका, षटपदि, हरिमीडे स्तोत्र, मनीषा पञ्चक, सोपनपञ्चक, शिवभुजङ्ग, गणेश पञ्चरत्न, गणेश भुजङ्ग, कनकधारा, सौन्दर्यलहरी, शारदा भुजङ्ग, आनन्दलहरी, अन्नपूर्णाष्टक, गङ्गाष्टक, मणिकर्णिकाष्टक, काशीपंचक, सुब्रह्मण्यभुजङ्ग आदि हैं।

प्रौढ दार्शनिक श्री वाचस्पति मिश्र ने आचार्य शंकर रचित प्रस्थानत्रयी भाष्य को 'प्रसन्न-गम्भीर' कहा है। आगे श्री वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि जिस प्रकार गलियों का जल गङ्गा की धारा में पडने से पवित्र हो जाता है उसीप्रकार भामती व्याख्या आचार्य शंकर के भाष्य के संसर्ग से पवित्र हो जायगी अर्थात् आचार्य शंकर की वाणी तथा वचनों को परम पवित्र करने वाला बतलाया है। श्री वाचस्पति लिखते हैं 'नत्वा विशुद्धविज्ञानं शङ्करम् करुणाकरम्। भाष्यं प्रसन्न गम्भीरं तत्प्रणीतं विभज्यते ॥ आचार्य कृतिनिवेशनमप्यवधूतं वचोस्मदादीनाम्। रथ्योदकमिवगङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति।"

श्री शंकराचार्य के काल पश्चात् अन्य महानों ने भी वेदान्त सूत्रों का भाष्य लिखा है जिसमें प्रसिद्ध श्री भगवत्पाद का पंचपादिका, श्री वाचस्पति मिश्र का भामती निबन्ध, श्री अमलानन्द का कल्पतरु, श्री अप्पैयदीक्षित का परिमळ, श्री आनन्दगिरि का आनन्दगिरीयम्, श्री रामाश्रम का रत्नप्रभा, श्री सर्वज्ञात्म का संक्षेपशारीरकम्, श्री मधुसूदन स्वामी का कल्पलता, श्री विद्यारण्य का अधिकरणरत्नमाला, श्री सदाशिव ब्रह्म का ब्रह्मसूत्र वृत्ति आदि हैं।

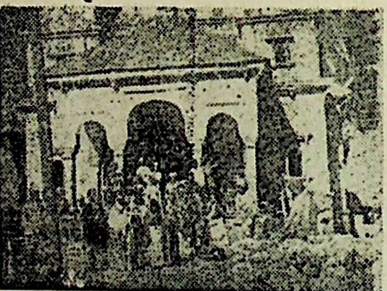
प्राचीन वेदान्त का स्वरूप जानने के लिये केवल व्यास रचित ब्रह्म सूत्र ही उपलब्ध है। वेदान्त का मूल उपनिषद है। वेदान्त का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'वेद का अन्त' है। यहां अन्त शब्द का अर्थ रहस्य या सिद्धान्त है। अतः वेदान्त का अर्थ वेद का प्रतिपाद्य सिद्धान्त है। श्वेताश्वतर, मुण्डक, महानारायण आदि उपनिषदों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य ऋषियों द्वारा रचित ग्रंथ रहे होंगे जो अपने अपने सिद्धान्तों का निर्धारण करते होंगे। परन्तु ये सब उपलब्ध नहीं हैं। कुछ ऋषियों के सम्प्रदाय जिन्हें आर्ष सूत्र वेदान्त कहते हैं, वे ये हैं: आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, काष्र्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि, बादरि इत्यादि। आचार्य काश्यप के भी वेदान्तसूत्र थे चूंकि इनके मत का उल्लेख भक्तिसूत्रकार शाण्डिल्य ने किया है। काश्यप भेदवादी वेदान्ती थे और बादरायण

अभेदवादी थे। इनके अतिरिक्त असित, देवल, गर्ग, जैगीषव्य, भृगु आदि ऋषियों का नाम व कार्य पुराणों में पाया जाता है।

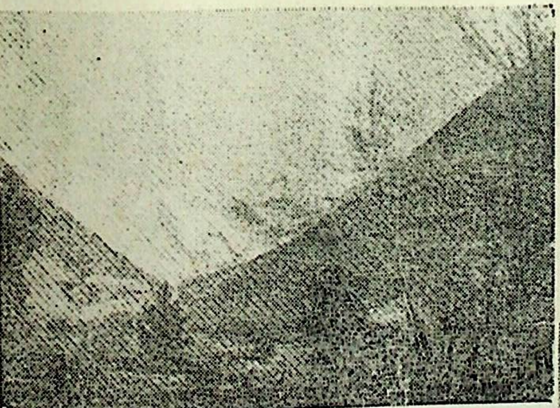
श्री शंकराचार्य के पूर्व अनेक वेदान्ताचार्य इस देश में थे। उनमें से कुछ विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं—भर्तृप्रपंच, भर्तृमित्र, भर्तृहरि, बोधायन, टङ्क, ब्रह्मानन्दी, भारुचि, कपर्दी और गुहदेव, द्रविडाचार्य, सुन्दरपाण्ड्य, उपवर्ष, ब्रह्मदत्त, गौडपाद, गोविन्दपाद इत्यादि।

श्री शंकराचार्य के साक्षात् शिष्यों के अनन्तर अनेक टीकाकार हुए पर कतिपय माननीय आचार्यों का नाम दिया जाता है—सर्वज्ञात्म मुनि, वाचस्पतिमिश्र, विमुक्तात्मा, प्रकाशात्म यति, श्री हर्ष, रामाद्वय, आनन्दबोधभट्टारक, चित्सुखाचार्य, अमलानन्द, अखण्डानन्द, विद्यारण्य, शङ्करानन्द, आनन्दगिरि, रामाश्रम, प्रकाशानन्द, मधुसूदन सरस्वती, नृसिंहाश्रम, सदाशिवब्रह्मेन्द्र, अप्पय दीक्षित, धर्मराजाध्वरीन्द्र, नारायणतीर्थ तथा ब्रह्मानन्द सरस्वती, सदानन्द, गोविन्दानन्द आदि। इन महानों ने आचार्य ग्रंथों के ऊपर भाष्य लिखकर अद्वैत वेदान्त को लोक प्रिय बनाया।

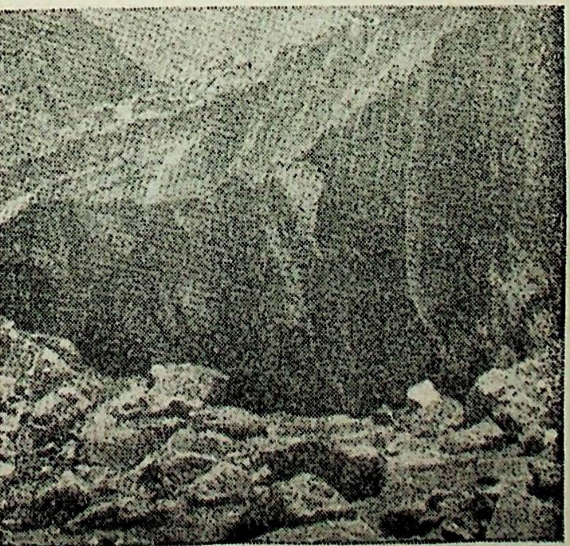




गङ्गा जी का मन्दिर—गङ्गोत्तरी

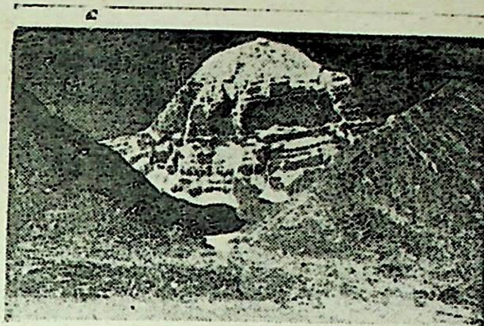


गङ्गोत्तरी

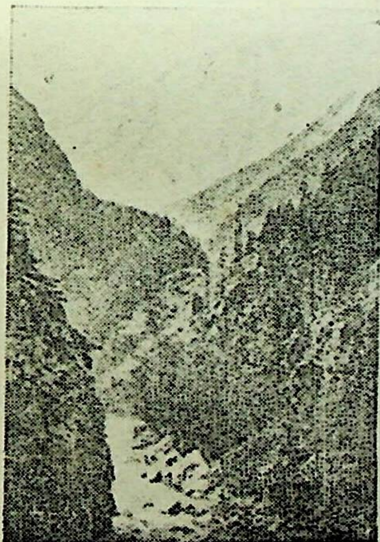


गोमुख—गङ्गा

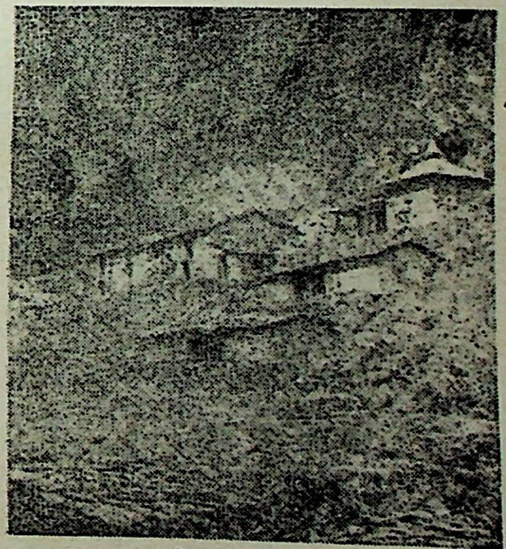

श्रीमज्जगद्गुरु शंकरमठ विमर्श
श्रीकैलास-मानसरोवर का मार्ग
मोटर की सड़क
पैदल सड़क
पगडंडी
रेल की सड़क
दर्रा
सरहद (तिब्बत)
नदी
हिमाचल पर्वत
ति ब्ब त
ग ढ़ वा ल
नै नी ता ल
नेपाल
मानसरोवर
राक्षसताल
श्री कैलास
गौरीकुण्ड
सतलज नदी
मान्धाता पर्वत
तिब्बत सरहद
श्री बदरीनाथ
श्री केदारनाथ
जोशीमठ
तपोवन
रुद्रप्रयाग
नन्दप्रयाग
अल्मोड़ा
काठगोदाम
रामनगर
टनकपुर
पूर्णागिरि पर्वत
अस्कोट
बागेश्वर
कपकोट
धारचूला
तकलाकोट
राजगोपाल शर्मा



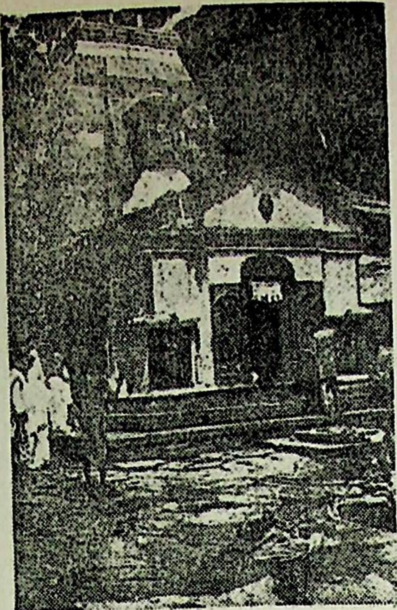
श्री कैलास शिखर



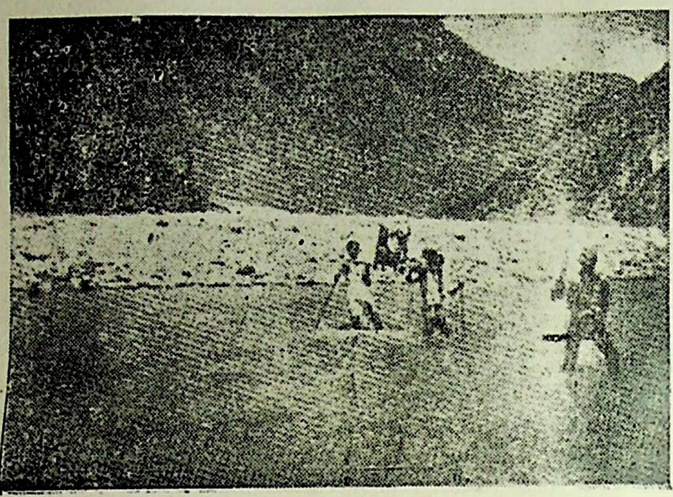
यमुनो .री

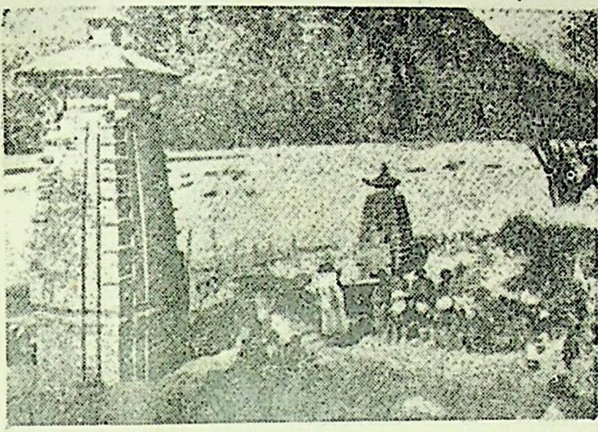


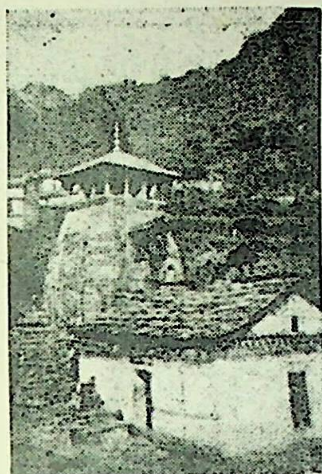
यमुनोत्तरी—एक दृश्य



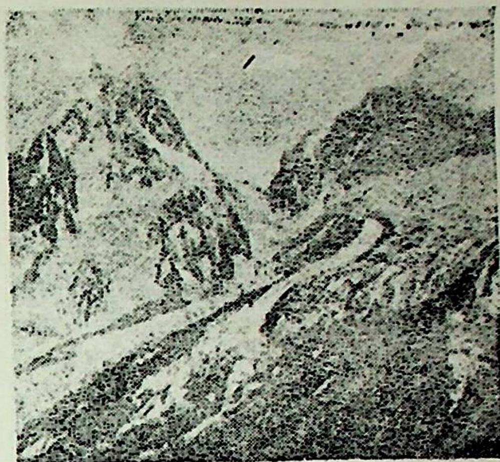
गुप्तकाशी—मन्दिर



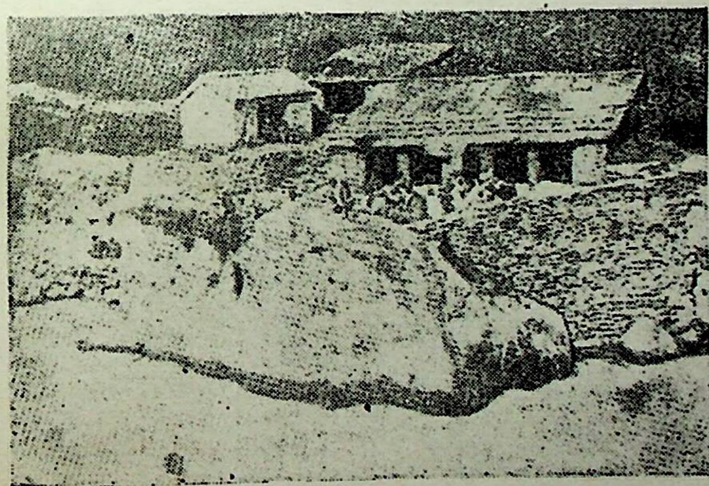




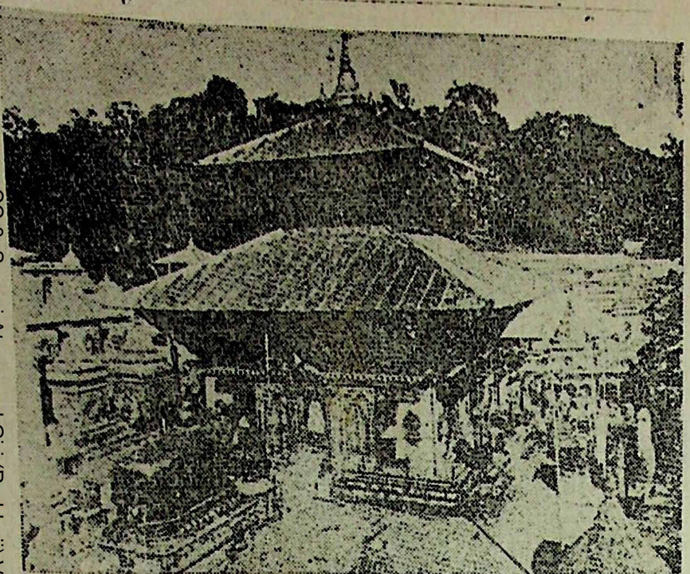
त्रियुगीनारायण



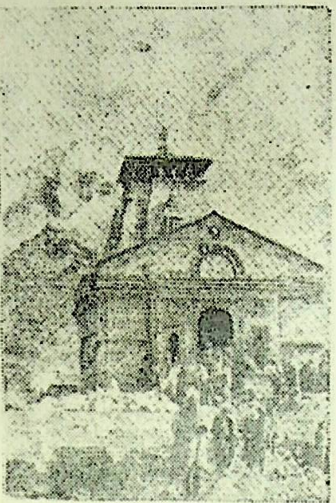
केदारनाथ का हिमप्रवाह (गोमुख के पास)

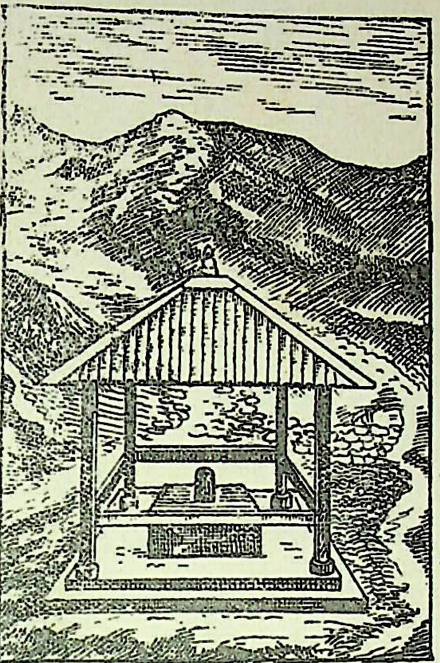


ब्रह्मकपाल शिला—बदरीनाथ

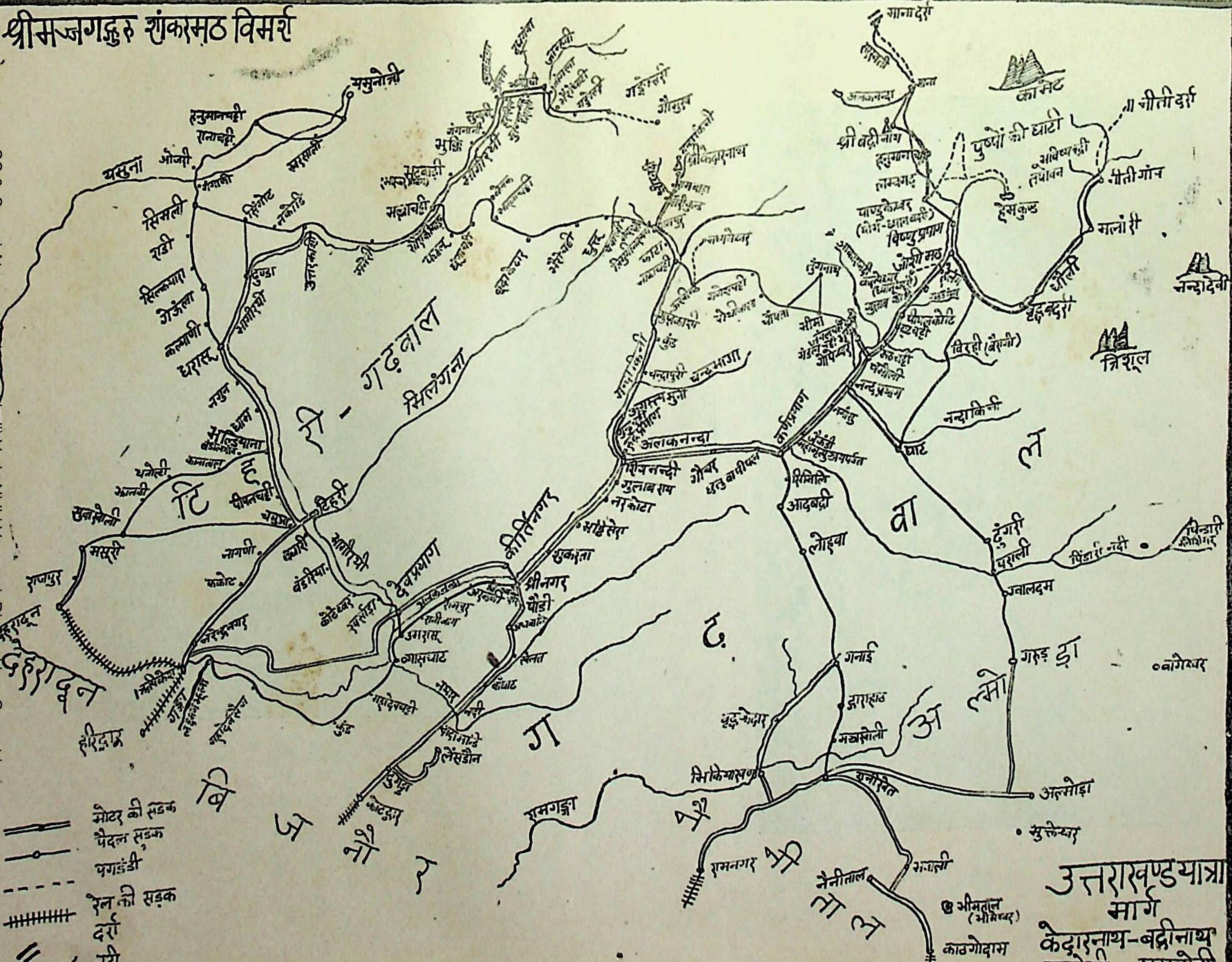


श्री पशुपतिनाथ मन्दिर (भीतरी दृश्य), नैपाल

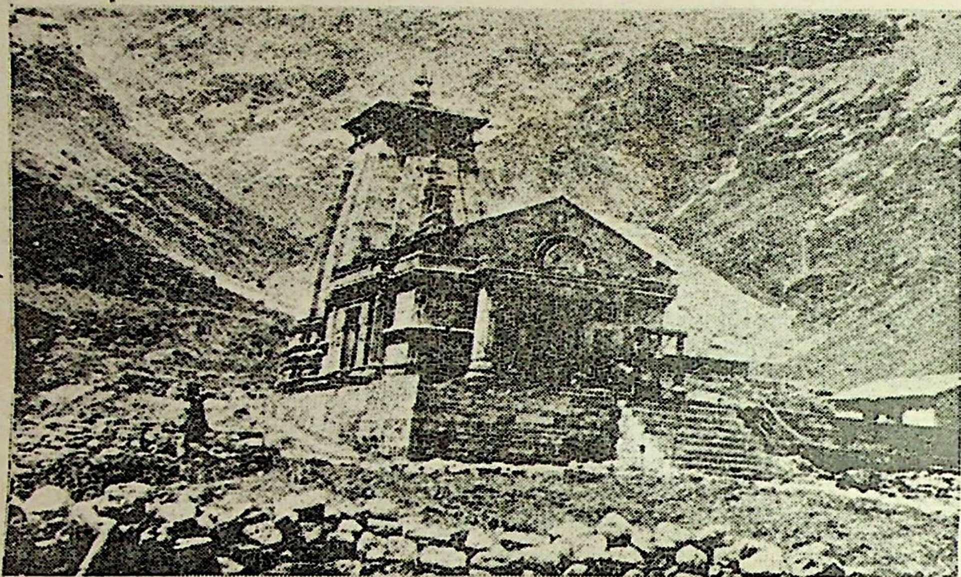




श्री केदारनाथ मन्दिर और समीप 'कैवल्यधाम'—(आद्यशङ्कराचार्य जी का निर्याण स्थल)



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri



श्री केदारनाथ मन्दिर



श्री बदरीनारायण मन्दिर

अध्याय—9

श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यजी का चरित्र वर्णन

अद्वैतवाद प्रचार व वैदिक धर्म एवं वर्णाश्रमाचार धर्म के प्रचार निमित्त श्रीशङ्कर ने अपने द्वारा अनेक शिष्यों (गृहस्थ एवं सन्यासी) को तैय्यार किये थे। आपके प्रधान शिष्य चार ही थे और ये चारों ही सन्यासी थे। चार आम्नाय मठों में इन चारों शिष्यों को विठाया और अपने लिये कहीं भी कोई मठ स्थापित नहीं किया। आपके प्रधान चार शिष्य—श्रीपद्मपादाचार्य, श्रीसुरेश्वराचार्य, श्रीहस्तामलकाचार्य, श्रीतोटकाचार्य।

श्री पद्मपादाचार्य चोळ देश कावेरी नदी के किनारे एक भक्त व्राह्मण विमला नामक वास करता था। विमला का एक ही पुत्र था जो वाल्यावस्था में ही वेदोपांग शास्त्र सब पढकर अपनी विद्वत्ता का प्रकाश प्रकट किया। वाल्यावस्था से ही उसे सांसारिक सुख के प्रति घृणा थी और वह पारमार्थिक मार्ग का यात्री था। चिद्विलासीय के अनुसार पिता का नाम माधवाचार्य और माता का नाम लक्ष्मी था। ये दम्पति दक्षिण भारत अहोवल क्षेत्र के वासी थे। भगवान नृसिंह के वडे कट्टर उपासक थे। श्रीपद्मपाद का पूर्वाश्रम नाम विष्णु शर्मा था। आप भी नृसिंह के कट्टर उपासक थे। कहा जाता है कि आप काश्यप गोत्र ऋग्वेदी व्राह्मण थे पर कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि आप सामवेदी थे चूंकि आचार्य शङ्कर ने परकाय प्रवेश पूर्व आपको 'तत्त्वमसि' महावाक्य का वोध कराया था ('विख्यातं तन्महावाक्यं वाक्यं तत्त्वमसीति च') तथा मठाम्नाय में 'स्वरूप व्रह्मचारिति आचार्य पद्मपादकः' का उल्लेख है। आपको तीर्थ, क्षेत्र, आश्रम आदि जगहों की यात्रा में अत्यन्त अभिलाषा थी और इस कारण पश्चिमाम्नाय सामवेद मठ को 'तीर्थाश्रम' अङ्कित नाम मिला और आप वहां के मठाधीश पद पर नियुक्त किये गये। यह वालक विष्णु शर्मा एक ऐसी योग्य गुरु की खोज में था जो कि दुखमय संसार सागर से जीवन नौका को पार लगा दे। आपको तीर्थ क्षेत्र यात्रा से प्रेम था। गुरु की खोज में घर छोड तीर्थक्षेत्र यात्रा में चल पडे। तीर्थाटन करते हुए आप काशीधाम पहुंचे। उन दिनों श्रीशंकर भी काशी पहुंच गये थे। एक दिन श्रीविष्णु शर्मा ने इस वालक श्रीशंकर की व्रह्मतेजस मूर्ति तथा वालक की तीव्र मेधा देख कर निश्चय किया कि यही मूर्ति गुरु होने योग्य है जो इनके डगमगाती जीवन नौका को पार लगा सकता है। विष्णु शर्मा ने साष्टाङ्ग नमस्कार करके अपने को शिष्य वनाने की भिक्षा मांगी। विष्णुशर्मा की विरक्त वुद्धि भाव एवं पान्डित्य को देखकर श्रीशंकर ने उसे सन्यासाश्रम की दीक्षा दी। आपका नाम सनन्दनाचार्य रखा गया था। आप ही श्रीशंकर के प्रथम शिष्य थे। उसका अनन्य गुरु भक्ति एवं पान्डित्य देखकर श्रीशंकर ने उनको अपने भाष्य का पाठक्रम तीन वार पढाया था। इससे अन्य शिष्यों को भी ईर्ष्या हुई। एक दिन जव गंगा में प्रवाह था और श्रीशङ्कर के कुछ शिष्य गंगा के उस पार थे, श्रीशङ्कर ने इन्हें इस पार वुलाया! उस समय कोई नाव भी न थी। पद्मपाद को गुरु के प्रति अटूट विश्वास और अनन्य भक्ति होने के कारण उनको गंगा के प्रवाह में भी इस पार आने का प्रोत्साहन हुआ। जव आप अपना पांव नदी में रक्खे तव गंगा अनन्य भक्ति श्रद्धा को देखकर हर एक कदम रखने की जगह पर पद्म उत्पन्न करके उसे इस पार आने में सहायता की। इसे देखकर गुरु शङ्कर ने उसे आलिंगन करके उसका नाम पद्मपादाचार्य रक्खा। कुछ लोगों का अभिप्राय है कि यह घटना हिमालय के 'उत्तर काशी' में अलकनन्दा नदी पर घटित हुई है।

श्री पद्मपाद प्रथम शिष्य होते हुए भी श्री सुरेश्वर के प्रकाण्ड पान्डित्य के कारण उसे वार्तिक लिखने के लिये कहा। पर अन्य शिष्यों को श्री सुरेश्वर के प्रति सन्देह उत्पन्न होने के कारण चूंकि आप अपने पूर्वाश्रम में कर्म के कट्टर उपासक थे, श्री शंकर ने पद्मपाद को अपने भाष्यों की व्याख्या लिखने को कहा और सुरेश्वर को एक स्वतन्त्र ग्रंथ लिखने को कहा। पद्मपाद ने गुरु के आज्ञानुसार व्याख्या लिखना प्रारम्भ किया। जब केवल पांच पादों की व्याख्या लिख चुके थे तब उन्हें तीर्थ यात्रा जाने की इच्छा हुई। गुरु की आज्ञा पाकर यात्रा में निकले। रास्ते में अपने मामा के गृह श्रीरङ्गम पहुंचे| चिद्विलास चिदम्बर का उल्लेख करते हैं। कुछ लोग तिरुवानकावल भी कहते हैं। पद्मपाद के घर पहुंचते घर में सब उत्सुक हुए पर अपने सन्यासाश्रम में होने के कारण आप अपना सम्बन्ध का प्रेम दिखा न सके। आपके मामा बडे नैयायीक थे। पद्मपाद का व्याख्या को पढ कर उनको ऐसा ज्ञात हुआ कि पद्मपाद न्यायमार्ग का कट्टर विरोधी और खन्डनकार है। पद्मपाद अपनी पुस्तकों को वहां रखकर रामेश्वर यात्रा के लिये चल पडे। पद्मपाद के पुस्तकों से इतनी घृणा थी कि पुस्तकों के नाश करने में पद्मपाद के मामा ने सारा घर आग लगा कर भस्म कर डाला| पद्मपाद जब यात्रा से लौटे और उन्हें यह हाल मालूम हुआ तो बडे दुःखित होकर कहने लगे कि पुस्तक भस्म हुआ तो क्या हुआ पर बुद्धि तो अभी शेष है, फिर लिख लेंगे। पद्मपाद के मामा जब ऐसा सुने तो उन्होंने पद्मपाद को मिष्टान्न में जडी-बूटि विष देकर उनके बुद्धि को अति मन्द कर दिया। पश्चात पद्मपाद मामा के घर से निकल पडे और अपने गुरु के पास पहुंचे| अपने गुरु को सब कथा दुःखित हो कर सुनायीं। तब श्री शंकर ने शिष्य पद्मपाद को धीरज धारण करने को कहा और पद्मपाद से पूर्व लिखे पांच पादों की भाष्य व्याख्या जो श्री शंकर पहले एक बार सुन चुके थे फिर कह सुनाये| पद्मपाद ने उसे लिख लिया पर खेद का विषय है कि अभी तक यह ग्रंथ कहीं पढने में आता नहीं। केवल कुछ भाग प्रथम चार सूत्रों का ही मिलता है| पद्मपाद द्वारा रचित ग्रंथ पंचपादिका, विज्ञानदीपिका, प्रपञ्चसार-विवरण टीका, पंचाक्षरी भाष्य आदि हैं।

एक समय की वार्ता है कि एक भैरव सम्प्रदाय का बैरागी वेषधारण करके श्री शङ्कर के पास पाठ पढने आया और कुछ दिनों बाद श्री शङ्कर के पास अपने मनोवांछा पूर्ण करने के लिये श्री शङ्कर के सिर की आहुति मांगी। श्री शङ्कर ने कहा कि तुम मेरे सिर ले सकते हो जब कि मेरा कोई शिष्य मेरे पास न हों और मैं जब ध्यानावस्थित रहूं। संयोगवश एक दिन सब शिष्य स्नान करने नदी गये थे| ऐसे समय पर वह कापालिक आया और श्री शङ्कर को ध्यानावस्था में देखा। उधर पद्मपाद को कुछ खटका मालूम हुआ और आप सोचने लगे। आपके ध्यान से मालूम हुआ कि एक कापालिक गुरु शङ्कर का सिर काटने के लिये आया है। तुरन्त नृसिंह के ध्यान व स्तुति कर उनकी शक्ति को स्वयं अपने में आविर्भूत करके उस कापालिक को अपने नखों से विदीर्ण कर दिया। उस समय एक भयानक शब्द हुआ जिससे शङ्कर की समाधि टूट गई। श्री शङ्कर ऐसी घटना को देखकर बडे आश्चर्य में हुए और पद्मपाद को निज स्वरूप धारण करने को कहा|

पद्मपाद ने कहा कि एक समय अपने पूर्वाश्रम में (अहोबल क्षेत्र) श्री नृसिंह देव की कट्टर तपस्या की थी और उनसे यही वर की सिद्धि प्राप्त की थी| पद्मपाद ने एक अनपढ शिकारी की कथा भी कह सुनाई। तपस्या करते समय एक दिन एक शिकारी आकर उनसे पूछा 'तुम यहां क्या करते हो?' उन्होंने उत्तर दिया 'मैं भगवान नरसिंह को इस वन में ढूंढ रहा हूं।' वह शिकारी वहां से चल पडा और कुछ समय बाद वह शिकारी नरसिंह देव को खींच लाकर उसके सामने छोड दिया। बडे आश्चर्य होकर श्री विष्णु शर्मा ने पूछा कि 'हे देव! क्यों आप अपने को ऐसी स्थिति में रखे हैं?' नरसिंह ने उत्तर दिया कि ब्रह्मा ने भी इतना अनन्य ध्यान व भक्ति नहीं दिखाई जितना कि इस अनपढ बालक ने दिखाया है। मैं भक्तों का दास हूं।

श्री सुरेश्वराचार्य आपका पूर्वाश्रम नाम मण्डन विश्वरूप मिश्र था। आपका प्रकाण्ड विद्वत्ता के हेतु आपको विश्वरूप परम योग्य नाम पडा। मण्डन किसी का नामधेय नहीं है पर यह उपादि है| उन दिनों में प्रकाण्ड विद्वानों को जो पन्डित मन्डली के मन्डन स्वरूप (अलङ्कार, भूषण, सर्वोत्तम) होने के कारण मण्डन पद से संबोधित किया जाता था। श्री विश्वरूप गौड ब्राह्मण थे इसलिये 'मिश्र' के नाम से आपको संबोधित किया गया था। अतः आपका आदरणीय व्यवहारिक नाम मण्डन मिश्र पडा| मण्डन विश्वरूप को ब्रह्मा का अवतार एवं सरसवाणी (उभयभारती) को सरस्वती का अवतार माना जाता है। आप काश्मीर देश के राजपन्डित हिममित्र के योग्य व शीलवान पुत्र थे। आपके पूर्वज विहार देश के कन्नौजी गौड ब्राह्मण कुल के थे और आपलोग बिहार देश छोड कश्मीर जा बसे| श्रीमण्डन विश्वरूप नर्मदा और माहिष्मति नदी के संगम पर माहिष्मति नगर में वास करते थे। आपका अट्टालिका (निवास स्थान) देखकर लोग विस्मय में पड जाते थे। इन्द्र भवन के सदृश उनका अट्टालिका था। महल की ऊंचाई मानो गगन को छूता हो। महल के चारों तरफ उद्यान, कुंड आदि थे। इससे प्रतीत होता है कि आप एक समृद्धशाली लक्ष्मीकठाक्षयुक्त पुरुष थे। आपका शुभ विवाह उभय भारती (सरसवाणी, भारती, शारदा) से हुआ जो शोण नदी के किनारे रहने वाले विष्णुमित्र की पुत्री थी। कुछ पुस्तकों में सरसवाणी को कुमारिल भट्ट की बहन बतलाया गया है। इसमें सन्देह है। विष्णुमित्र ने अपनी पुत्री को विद्या से संपन्न कर तथा घरेलू विषयों में प्रवीण कराया था।

यह आदर्श दम्पति—श्रीविश्वरूपमिश्र सरसवाणी—सबों के मान्य और प्रेमी थे। इस प्रेम अभिमान के कारण वहां के वासिन्दे इन दोनों का प्रतिनाम उम्बक (पिता) उम्बा (अम्बा का परिभ्रंश यानी माता) रक्खा। मण्डन का जीवन शास्त्रानुसार एवं भोगविलास में था। आप एक कट्टर कर्म कान्डी थे। आपका पान्डित्य ऐसा था कि उनके मकान के तोते भी वेदयुक्त शास्त्रार्थ, ईश्वर विना कर्म से मुक्ति प्राप्त करने की विधि, संसार मिथ्या या सत्य, इन विषयों की चर्चा करते थे। आप कर्मकान्डी कुमारिल भट्ट के अग्र सर्वोच्च शिष्य थे| श्रीकुमारिल भट्ट (हर एक वैदिक हिन्दुओं को कुमारिल भट्ट का स्मरण करना चाहिये) के आज्ञानुसार श्रीशङ्कर मण्डन विश्वरूप के यहां पहुंचे। उनसे वाद-विवाद भी किया (प्रथम खण्ड अध्याय 3 देखिये)। सरस्वती का अवतार सरसवाणी रुप में इस वाद विवाद के लिये मध्यस्था होती है| मन्डन मिश्र हार जाते हैं। पश्चात् अर्धाङ्गिनी सरसवाणी के साथ श्रीशङ्कर को विवाद करना पडता है। पूछे हुए कामशास्त्र प्रश्नों का उत्तर देने के लिये श्रीशङ्कर परकाय प्रवेश कर कामशास्त्र सीखकर एक माह के बाद श्रीशङ्कर पुनः विवाद के लिये आते हैं। सरसवाणी हार मानती है। श्रीशङ्कर ने वनदुर्गा मंत्र से सरस्वती को बांध कर श्रृङ्गेरी ले जाकर वहां श्रीचक्र रूप में प्रतिष्ठा करते हैं| शारदा वहां आकल्प अवस्थित होने का वादा करके फिर ब्रह्मलोक को चली जाती है। ('दुर्वासः शापतौ भूमौ जातां वाणी विजित्यताम्। अगस्त्यचरितेदेशे तुङ्गातीरे मुनिर्मले।')। मण्डन विश्वरूम मिश्र फिर सन्याशाश्रम लेकर श्रीसुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। श्रीशङ्कर उनके पान्डित्य से इतने प्रसन्न हुए कि आपने उनको सुरेश्वराचार्य का नामधेय दिया। सुरेश्वर अर्थात् इन्द्र, आचार्य अर्थात गुरु, इन्द्र के गुरु अर्थात बृहस्पति। इनकी तीव्र मेधा, पान्डित्य बृहस्पति के सदृष था।

श्रीशङ्कर ने श्रृङ्गेरी में दक्षिणाम्नाय यजुर्वेद मठ व्याख्यान सिंहासन मठ रूप में स्थापित करके वहां श्रीसुरेश्वराचार्य को नियुक्त किया। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्रीसुरेश्वराचार्य श्रृङ्गेरी में नियुक्त नहीं हुए थे क्योंकि स्वयं उनके द्वारा अपनी 'स्त्री' की पूजा करनी पडेगी। इस अभिप्राय में मूर्खता है। आचार्य शङ्कर महेश्वर के अवतार थे तथा देवी महेश्वर की धर्मपत्नी शक्ति थी। श्रीशङ्कर ने देवी के नाम से अनेक श्लोक स्तोत्र किये हैं। तो क्या श्रीशङ्कर ने उपर्युक्त युक्ति के अनुसार अनुचित काम किया? सुरेश्वराचार्य की समाधि आज पर्यन्त श्रृङ्गेरी में है और कहा जाता है कि आपका निर्याण स्थल श्रृङ्गेरी ही है।

मण्डन विश्वरूप मिश्र एक कट्टर कर्मकान्डीय पुरुष थे और आप पूर्वमीमांसिक श्रीकुमारिल भट्ट के प्रधान शिष्य थे। आश्रम लेने के बाद श्रीशङ्कर के अन्य शिष्य मानने में तैयार नहीं थे कि सुरेश्वराचार्य ने पूर्णरूप से ज्ञान मार्ग का अवलम्बन किया है। अन्य शिष्यों को इस विषय की शङ्का रहा करती थी। पर 'नैष्कर्म्यसिद्धि' ग्रन्थ ने उनके शङ्काओं को दूर कर दिया। नैष्कर्म्यसिद्धि, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक उपनिषदों के भाष्यों का वार्तिक, मानसोल्लास (दक्षिणामूर्ति स्तोत्र वार्तिक), पंचीकरण वार्तिक, याज्ञवल्क्यस्मृति पर बालक्रीडा व्याख्या, श्राद्धकालिका (श्राद्ध का विशेष रूप से वर्णन है), विधिविवेक, काशीस्मृति मोक्षविचार (कुछ लोग अनुमान करते हैं कि सुरेश्वराचार्य का निर्याण काशी में हुआ था), विभ्रमविलास, भावनाविवेक, आदि स्व रचित ग्रन्थों से श्रीसुरेश्वराचार्य की तीव्र मेधा, पान्डित्य, भक्ति, श्रद्धा, तपश्चर्या, ध्येयों आदि का पूर्ण प्रमाण मिलता है। यह कहा जाता है कि आपने एक गद्यपद्यात्मक निबन्ध भी लिखा था। सम्भवतः यह ग्रन्थ वही "विश्वरूप समुच्चय" है जिसे श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्य ने अपने ग्रंथ 'उदहतत्त्व' में उल्लेख किया है। श्रीशङ्कर के पश्चात् अद्वैतमतावलम्बियों में सुरेश्वराचार्य का ही प्रथम नाम है। आपको वार्तिककार भी कहते हैं। न्याय और पूर्वमीमांसा के आधार पर ब्रह्म मीमांसा प्रवर्तक ऐसा कौन योग्य विद्वान होगा जो श्रीसुरेश्वराचार्य के सदृश हो। यह विश्वास किया जाता है कि सातवीं/आठवीं शताब्दी का श्रीसुरेश्वराचार्य पुनः श्रीवाचस्पति मिश्र रूप में नौवीं शताब्दी में अवतीर्ण होकर 'भामती' भाष्यव्याख्या लिखकर अपने पूर्वजन्म के अपूर्ण कार्य को पूर्ण कर, पूर्वजन्म में श्रीशङ्कर के अन्य शिष्यों से प्राप्त हार को अब जीत में परिवर्तन करके एवं अपने गुरु की आज्ञा जो वार्तिक न लिखने का था उसको परिपालन करते हुए लोक कल्याण के लिये अपनी जन्मलीला समाप्त की।

श्री हस्तामलकाचार्य श्रीप्रभाकर नाम का एक विद्वान धनवान ब्राह्मण श्रीवलि गांव में रहता था। चिद्विलास के अनुसार इनके पिता का नाम दिवाकर अध्वरी था। गंगवंश के राजा कोंकणी वर्मन उर्फ अवनीतन ने अपने राज्यभार के दूसरे वर्ष में एक अग्रहार के वासी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों को 'मरुगिरिविषय' की सीमा के दो गांव दान में दिया था। इसका प्रमाण एक शिला लेख में वर्णित है। राज्याधिकारियों द्वारा यह शिला प्राप्त हुई है जो अब प्रकाशित भी हुई है। पुराकाल में 'मरुगिरिविषय' सीमा के अन्तर्गत शृङ्गेरी था। इस शिला में कहा गया अग्रहार को ही श्रीवलि गांव कहा जाता था। दक्षिण भारत में ब्राह्मणों के वासस्थल को अग्रहार कहते हैं।

प्रभाकर या दिवाकर का एक पुत्र था जो सुन्दरता में मन्मथ समान, तेजस्वी में सूर्य के सदृश, चन्द्रमा की तरह मनोहर आनन्ददायक और भूमि की तरह दृढ निश्चित था परन्तु जीवन के व्यवहार में वह मूर्ख था। इस कारण प्रभाकर बडे दुखित थे। अपने पुत्र की दशा सुधारने के लिये आपने प्रयाग में आचार्य शङ्कर से भेंट की। इस बालक का उपनयन बडे कष्ट से किया गया। वह न खेलता था, न बोलता था, न पढता था और न कभी क्रोधित होता था। उन्हीं दिनों में श्री शङ्कर अपनी दिग्विजय यात्रा के निमित्त भ्रमण करते हुए इस गांव से गुज़रे और श्री शङ्कर के तपोबल, महिमा व कीर्ति आदि को सुनकर प्रभाकर अपने पुत्र को उनके पास लाया। उस समय बालक की आयु तेरह वर्ष की थी। श्री शङ्कर उस बालक को देख कर समझ गये कि अवश्य यह बालक एक योगी है। आचार्य शङ्कर ने पूछा 'तुम कौन हो?' बालक संस्कृत भाषा द्वारा कविता रूप में उत्तर दिया जो परम आत्मज्ञान से भरे संस्कृत छन्द थे। श्री शङ्कर ने प्रभाकर से कहा कि 'यह बालक योगी है। तुम्हारे कोई काम नहीं आवेगा। इसे मेरे पास रहने दो।' प्रभाकर अपने पुत्र को शङ्कर के पास छोडकर घर लौटे। तब श्री शङ्कर उस बालक को सन्यासाश्रम की दीक्षा दी। हाथ के मीठे आंवला सदृश सत्य ब्रह्म का सार अति गूढरूप में उत्तर देने के कारण आपका

नाम हस्तामलक रक्खा गया। हस्तामलक द्वारा कहे हुए श्लोकों की व्याख्या श्री शङ्कर ने स्वयं लिखी है। कुछ विद्वान इस पर सन्देह करते हैं। हस्तामलक परम आत्मज्ञानी होने के कारण श्री शङ्कर पाठ पढाते समय अपने अनुभवों द्वारा यथार्थ की परीक्षा करते थे।

एक समय श्रीशङ्कर को यह कहा गया कि हस्तामलक सूत्र भाष्यों का वार्तिक लिखें पर शङ्कर ने विरोध करके कहा कि हस्तामलक एक शुद्ध योगी व आत्मज्ञानी है और उसे पुस्तक लिखने की इच्छा नहीं है| वह इन कार्यों से परे है। शिष्यों को शङ्का भी हुई चूंकि हस्तामलक पाठ पढाते समय उतना ध्यान नहीं देते थे जितना की अन्य शिष्य देते थे। श्रीशङ्कर ने इस शङ्का को निवारण करते उत्तर दिया कि एक समय नदी तट पर एक ऋषी घोर तपस्या कर रहे थे। प्रभाकर की सती स्त्री अपने दो वर्ष के बालक को उस ऋषी के पास छोड गई और कहा कि हे महाराज! इस बालक को देखियो जब मैं स्नान करके लौट आऊं| उस समय ऋषी समाधि में थे। बालक खेलते खेलते नदी में गिर पडा और डूब गया। वह सती स्त्री बालक शव को लेकर ऋषी के सामने रोने लगी। ऋषी रोदन के शब्द को सुनकर आंख खोले तब उनको सब वृत्तान्त मालूम हुआ| योग बल द्वारा वे अपना शरीर छोडकर उस बालक के शरीर में आविर्भूत हुए। जिससे माता बडी प्रसन्न हुई| वही बालक पश्चात् सन्यास दीक्षा लेकर हस्तामलक हुए। इससे प्रतीत होता है कि हस्तामलक क्यों आत्मज्ञानी योगी थे।

श्री तोटकाचार्य—आपको न सुरेश्वर का विद्वत्ता था या पद्मपाद का उपासना थी और न हस्तामलक सदृश आत्मज्ञानी थे। परन्तु तोटकाचार्य को श्रीशङ्कर के प्रति सर्वोत्तम गुण सेवाभाव था और आपकी सुविधा योग्य वस्तुओं की देखभाल भी अच्छी तरह से करते थे जैसा कि एक नौकर अपने मालिक की सेवा करता है। इस तरह की सेवा से आपको अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था। इस कारण से अन्य शिष्य तोटकाचार्य को एक जड पुरुष ही समझते थे। पद्मपाद इनकी हंसी भी उडाते थे। एक दिन जब तोटकाचार्य नदी गये हुए थे तब अन्य शिष्य पढने के लिये अपने अपने पुस्तकों को लेकर आ पहुंचे। आचार्य शङ्कर ने कहा 'गिरि के आने पर पाठ शुरू होगा।' पद्मपाद ने कहा 'क्यों हम सब एक व्यक्ति के लिये ठहरें जो जड दिवाल से बेहतर नहीं है।' इस वार्ता को सुनकर उनको बडा दुःख हुआ और तब वे पद्मपाद के अहंकार को नष्ट करना चाहा। इसलिये स्वयं अपनी दृष्टी तोटकाचार्य पर डालकर उनको एक निपुण शास्त्रज्ञ बना दिया। तोटकाचार्य नदी से लौटते हुए अपने गुरु को तोटक छंद में कविता सुनाये। इन कविताओं में उपनिषदों के उपदेशों का सार भरा हुआ था। इसी को अभी 'श्रुति-सार-समुद्धरण.' के नाम से कहते हैं। आपके ग्रन्थ में तोटक श्लोक ही मुख्य हैं। 'कालनिर्णय' ग्रन्थ भी इनका रचा हुआ कहा जाता है। श्रुतिसारसमुद्धरण में 179 तोटक उपलब्ध हैं। आपने तोटक अष्टक स्तोत्र कह अपने आचार्य को नमस्कार किया था। आचार्य शङ्कर इस तोटक को सुनकर, प्रसन्न होकर, आपको तोटकाचार्य नाम से पुकारा। आपका नाम गिरी भी था। आपको आनन्दगिरि नाम से भी पुकारा जाता है।

गुरुभक्ति—वेदार्थ तीन प्रकार के माने गये हैं—धर्म, उपासना और ज्ञान। ये सब ज्ञान गुरु की कृपा बिना प्राप्त नहीं होते| इसलिये आस्तिक लोग गुरु को परम पूज्य मानते हैं। श्वेताश्वतर मन्त्रोपनिषद में उल्लेख है 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।' श्री पतञ्जली कहते हैं 'सचगुरुः साक्षात्परमेश्वरो निरवधिक गुरुत्वः।', 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'। वेद भी कहता है 'यो ब्रह्माणं

विधदाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।' अन्यत्र कहा गया है 'ईश्वरो गुरुरात्मेति,' 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुरेवः शिवः ॥', 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।' इत्यादि श्रुति प्रमाण पदों द्वारा विदित होता है की सब अर्थों को पाने का और धर्म उपासना से ज्ञान प्राप्त करने का मूल श्रेय गुरु भक्ति का ही है। गुरु की भक्ति हर एक प्राणि मात्र को अवश्य चाहिये क्यों कि इस भक्ति द्वारा ही मानव जीवन की सफलता प्राप्त होती है। इहलौकिक व परलौकिक दोनों के लिये गुरु की भक्ति आवश्यक है। 'मोक्षकारण मामग्रयां भक्तिरेव गरियसि' गुरु की कृपा से ही हम सबों की अविद्या का नाश होकर ज्ञान प्राप्त होता है। इस भू सागर में जीवन नौका के पतवार गुरु ही हैं। ललितोपाख्यान में शिष्यों का गुरु के प्रति क्या भाव, श्रद्धा व नियम आदि होना चाहिये, इन विवरणों का पूर्ण उल्लेख है। उन नियमों का अनुष्ठान करना हम सब हर एक शिष्यों का परम कर्त्तव्य है।

उपनिषद में कहा है 'एष आदेशः'। गुरु के ही उपदेश द्वारा आत्म स्वरूप को जान लेने पर सब दुःखों का निवारण होता है। 'तरतिशोकमात्मवित्' उपनिषद वाक्य इसकी पुष्टी करता है। भगवद्गीता के अनुसार गुरु के लक्षण यों हैं 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्तिसंयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सानिशा पश्यतो मुनेः।' ऐसे गुरु के सर्वश्रेष्ठ मन्त्रोपदेश से आत्मबोध होता है। मन्त्रों का मूल कारण गुरु का वाक् ही है। 'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम्। मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।' शास्त्र कहता है 'श्रीगुरुः सर्वकारण भूताः शक्तिः।' 'यावदायुस्त्रयोवन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः। मनसा कर्मणा वाचा श्रुतिरेषैवनिश्चयः।' ऐसा भी उल्लेख है। श्री सुरेश्वराचार्य मानसोल्लास में कहते हैं 'ईश्वरोगुरुरात्मेति मूर्तिभेद विभागिने। व्योमवद्व्याप्त देहाय दक्षिणामूर्तिये नमः।' उपनिषद वाक्य भी 'आचार्य देवो भव' कहती है। गुरु ईश्वर के समान हैं। ब्रह्मा विष्णु महेश के अतीत परब्रह्म हैं। ग अर्थात् अन्धकार, रु अर्थात् उसे निवारण करनेवाले, गुरु का अर्थ 'अन्धकार निवारक'। गुरु का अर्थ वजन भी है। ज्ञान से वे वजनदार हो जाते हैं। श्रीशङ्कर गुरु की महिमा यों कहते हैं 'दृष्टान्तोनैवदृष्ट।' इस लोक में ज्ञानोपदेशक गुरु के समान कोई भी नहीं है। गुरु 'स्वीयम साम्यम्' करते हैं अर्थात् अपने ब्रह्मैक भाव को शिष्य पर उत्पन्न करते है। भगवद् गीता के श्लोक 'निर्दोषंहिसमंब्रह्म' के अनुसार यहां साम्यम् का अर्थ ब्रह्म भाव है। विवेकचूडामणी में श्रीशङ्कर अपने गुरु श्रीगोविन्दभगवत्पादजी को श्रीगोविन्द के स्वरूप में स्तुति करते हैं।

आचार्य के लक्षण कहा गया है 'आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि। स्वयमप्याचरेद्यस्तु स आचार्य इति स्मृतः॥' ऐसे लक्षणयुक्त आचार्य को प्राप्त कर अपने अविद्या अन्धकार का नाश करना हर एक का कर्त्तव्य होगा। ब्रह्मैववर्तपुराण में कहा है 'शिवे रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्ठ न कश्चन' इसलिये गुरु का अपचार करना महापाप है। इस दुखमय संसार सागर में मनुष्य कोटि की जीवन नौका डगमगा रही है। स्वयं करुणामूर्ति भगवान श्रीशङ्कराचार्य रूप में अवतार लेकर इस डगमगाती नौका को पार लगाने का मार्ग बता गये हैं। इस महान् उपकार के लिये न केवल हमलोग ही कृतज्ञता प्रकट करें पर हर एक को अपना कर्त्तव्य समझकर जहां तक हो सके इहलौकिक और परलौकिक के लिये उनके द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों के अध्ययन और अनुष्ठान में पूर्ण प्रयत्न करें।

यह प्रपंच एक कारागृह है। इस कारागृह में एक छोटा कारागृह यह उपाधि है। यहां न केवल पूर्व पापों का ही दण्ड भोगते हैं बल्कि यहां पर पाठ भी सीखते हैं तथा अभ्यास भी करते हैं तथा कुकर्मों से अलग

रहने का प्रयत्न भी करते हैं| यह कारागृहवास चिरकाल का नहीं है। मनुष्य इस प्रयत्न में रहता है कि इस कारागृह से निष्कलंक और स्वाधीन होकर जल्दी से छुटकारा पायें। जिस प्रकार रोगी वैद्य से औषध लेकर रोग से मुक्त होते हैं उसी प्रकार "भिषजे भवरोगिणाम्" गुरु की कृपा द्वारा वह इस कारागृह से मुक्त होकर जीवन के अलौकिक मुक्ति को प्राप्त करते हैं। परमेश्वर की कृपा केवल गुरु द्वारा ही प्राप्त हो सकती है| इस कारागृह से विमुक्त होने का उपाय न्याय मार्ग का अवलम्बन तथा गुरु कृपा की आवश्यकता है। शास्त्रीय मार्ग ही न्याय मार्ग है यथा "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।" श्रुति एवं स्मृति ही शास्त्र है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येनतस्मै सद्गुरवे नमः॥

श्री गुरु की जय हो।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकास्समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

॥ ईश्वरो रक्षतु—ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥



ॐ



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

द्वितीय–खण्ड

कांञ्ची कुम्भकोण मठ विमर्श, मठविषयक सत्यान्वेषण एवं भ्रामक प्रचारों का खण्डन।

अध्याय—1

श्रीमच्छङ्कराचार्य चरित-सामग्री विमर्श तथा कुम्भकोण मठ द्वारा कहेजानेवाले एकङ्गि प्रामाणिक ग्रंथों और उनसे निर्देशित अन्य चरित-सामग्री व ग्रंथों का विमर्श।

इस भारतवर्ष में अनेक महान् पुरुषों ने जन्म लिए और उनमें से बहुतों को अवतार पुरुष भी मानते हैं। हर एक युग में ऐसे पुरुष अवतीर्ण होकर अपनी लीला इस भूमि में समाप्त करके फिर वे अपने स्वधाम को पहुंचे। इन महापुरुषों द्वारा अपने अपने विचारों का प्रचार भी हुआ और वे अधर्मों का नाश करके धर्मों का अभ्युत्थान भी किए। प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में जो एक मार्के का विषय है कि इन महानों के विचार, ध्येय, ग्रंथ और उनकी संस्कृति इत्यादि परम्परागत चले आ रहे हैं तथापि उन महानों के चरित्रों के विषय में ज्यादा कुछ मालूम नहीं पडता। इन महानों ने अपने अपने रचित ग्रंथों में रचयिता के विषय पर कुछ कह या लिख न गये। उनकी आत्मकथा—स्वयं प्रख्याति—होने तथा अहंकार के प्रकाशन करने के कारण पुराकाल में उन महानों ने अपनी कथा कहीं भी लिखी नहीं। स्वयं प्रख्याति एवं अहंकार पाप व निषेध समझा जाता था और वे इसका भी निराकरण कर दिये। 'परमपुरुषः स्वस्मै स्वप्रीतये स्वयमेव कारयति' के अनुसार भारतवर्ष में पुराकाल के व्यक्ति यह विश्वास करते थे कि व्यक्ति का जन्म व मरण ईश्वरेच्छा से होती है और ईश्वर के आयोजित इस लोक व उसके कार्यक्रम में हर एक व्यक्ति अपना अपना निर्धारित

जीवनलीला समाप्त करते हैं तथा 'तेन विना तृणमपि न चलति' के अनुसार अपनी इह लीला को भी 'ब्रह्मार्पणमस्तु' करते हुए अपने को उस भगवान के हाथ का एक शस्त्र मानकर एवं 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' पर ध्यान रखते हुए अपना निर्धारित कर्म को करते थे। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उन्होंने आत्म कथा लिखी नहीं। त्यागी पुरुष ने लोक कल्याण के लिये निष्काम्य कर्म करके अपनी लीला की समाप्ति की और अपनी आत्म कथा कहीं पर भी लिखी नहीं। किसी ने कहा है—'Anonymity is one of tbe proudest distinctions of Indian Culture.' यद्यपि उनका माहात्म्य आज तक चला आ रहा है तथापि उनका चरित्र सब अन्यों से रचित कथा रूप में है। पुराकाल में अनेक पराक्रमी राजाओं, तपस्वी महानों, ऋषियों का नाम हम लोग ब्राह्मण, अरण्य, पुराणों, रामायण, महाभारत, इतिहास आदियों में उल्लेख पाते हैं। अर्वाचीन काल के कुछ लोग यह भी शङ्का करते हैं कि इनमें से अनेक कवियों व चरित्र कथा रचयिताओं की कल्पनात्मक कथाओं के काल्पनिक पुरुष हैं और यथार्थ में वे नहीं थे। चाहे जो हो, पुराणों में इनका वृत्तान्त पाते हैं। यह सब कथायें पुरा काल की हैं।

श्रीबुद्धदेव के अवतार काल से ही नवीन काल का प्रारम्भ मानते हैं। श्रीशङ्कराचार्यजी का जन्म श्रीबुद्धदेव के कई शताब्दी पश्चात् ही हुआ था। श्रीशङ्कराचार्यजी का काल, जीवन घटनायें, चरित्र, आम्नाय मठ स्थापन और उनसे रचित ग्रंथों के सम्बन्ध में आजकल इन विषयों पर बहुत विवाद है। आचार्य शङ्करजी का चरित्र आठ या दस शङ्करविजयों में पाये जाते हैं पर ऐतिहासिक दृष्टी से इन सब पुस्तकों को उतना महत्त्व दे नहीं सकते चूंकि श्रीआचार्य शङ्कर के काल में अथवा उनके समीप काल में, ये सब ग्रन्थ नहीं लिखे गये थे। अब जो ग्रन्थ मिलते हैं सो सब आचार्य शङ्कर के बहुकाल पश्चात् की लिखी हुई पुस्तकें ही मिलती हैं। इनके पौर्वापर्य का निर्णय करना कठिन है। इन आठ या दस शङ्कर विजयों में केवल पांच या छः प्रकाशित रूप में हैं और बाकी केवल नाम से प्रसिद्ध हैं और ये पुस्तकें आसानी से उपलब्ध नहीं होते हैं। अभी तक न कोई प्रामाणिक शिला लेख, ताम्रपत्र शासन, यथार्थ चरित्र ग्रंथ जिसमें शङ्कराचार्यजी को प्रत्यक्ष देखा या समसामयिक सुना जन्म चरित्र का वर्णन किया गया है, प्राप्त हुआ है। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर के चार प्रधान शिष्यों ने 'गुरुविजय' नामक ग्रन्थ लिखा था पर अब एक भी उपलब्ध नहीं है। यह सुना जाता है कि श्रीपद्मपादाचार्य ने अपने गुरु का चरित वृत्तान्त 'विजय डिण्डिम' ग्रन्थ में लिखा था पर यह ग्रन्थ भी कहीं उपलब्ध नहीं है। यह ग्रंथ सदा के लिये नष्ट हो गया है। यह केवल कर्णश्रुत समाचार ही है। यह भी कहा जाता है कि श्रीआनन्दगिरि (श्रीतोटकाचार्य), श्रीशङ्कराचार्य के साक्षात् शिष्य, ने भी 'शङ्करविजय' ग्रंथ रचा था। पर यह ग्रंथ भी उपलब्ध नहीं है। यथार्थ सामग्री का अभाव होने से चरित्र लिखने में बडी भारी बाधक होती है। यद्यपि अब उपलब्ध होनेवाले सब 'शङ्करदिग्विजय' ग्रंथ आचार्य काल का समसामयिक नहीं है तथापि इन्हें प्रमाण रूप से मानना ही होगा जब तक अति प्राचीन पुस्तक, शिलालेख, ताम्रपत्र शासन आदि आधुनिक प्रचलित चरित्र विवरणों के विरुद्ध न कहता हो। आचार्य शङ्कर के विषय में हमारी जो कुछ भी जानकारी है वह इन्हीं ग्रंथों पर अवलम्बित है।

पाश्चात्य विद्वानों ने केवल श्रीशङ्कर के अद्वैत मत का ही पठन-पाठन किया पर उनके चरित्र सम्बन्धी विषयों में आन्वेषण नहीं किया। यह आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष में इतने शङ्करमठ होते हुए भी तथा लाखों अद्वैत मतावलम्बियों के, श्रीशङ्कराचार्यजी का चरित्र विषय में कोई भी बडी खोजखाज करके स्वयं प्रामाणिक पुस्तक न छपवाए। श्रीजगद् गुरु श्रीशृङ्गेरी मठाधीष ने बडे यत्न कर इस विषय पर पूर्ण आन्वेषण कर बडे कष्ट द्वारा श्रीआचार्य शङ्कर के जन्म स्थल 'कालटी' की खोज कर के वहां मन्दिर बनवाए तथा श्रीआचार्य शङ्कर रचित ग्रंथों की खोजकर

वाणीविलास मुद्रालय द्वारा प्रकाशित भी किया। उत्तर प्रदेश के राज्याधिकारी द्वारा एवं वद्रीकेदार मन्दिर कामिटी द्वारा श्रीआचार्य शङ्कर का अन्तिम निर्याण स्थल जो हिमाचल सीमा में होने का वहु प्रामाण्य ग्रंथों व अन्य अन्तवाह्य प्रमाणों के आधार पर निश्चय कर, उस पुण्य समाधि पर एक स्मारक मन्दिर वनवाने का आयोजन किया गया है। पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारका शारदा मठ के वर्तमान जगद् गुरु श्रीशङ्कराचार्य के आशीष से यह काम प्रारम्भ हुआ है। इसके लिये आप सब को धन्य हो। द्वारका शारदा मठाधीष वर्तमान जगद् गुरु शङ्कराचार्य ने 1961 ई० में काश्मीर स्थित पुराकाल में सर्वज्ञपीठ जो आधुनिक काल में 'शङ्कराचार्य पर्वत' कहलाता है और जिसे विज्ञ मुसलमानों ने 'तख्त-ई-सुलैमाज' के नाम से पुकारते थे, उस शङ्कराचार्य पर्वत के मन्दिर में आचार्य शङ्कर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की है। अनेक प्रमाणों के आधार पर श्रीद्वारका शारदा मठाधीष श्रीशङ्कराचार्य ने इसी स्थल को पुराकाल के सर्वज्ञपीठ होने का निश्चय कर पश्चात् इस शुभ कार्य को आपने अपने कर कमलों से किया है। इस शुभ कार्य के लिये अद्वैतमतावलम्बि सब आपके कृतज्ञ हैं। इस प्रकार आचार्य शङ्कर के जन्मस्थल कालटी, सर्वज्ञपीठारोहणस्थल श्रीनगर समीप (काश्मीर) एवं अन्तिम निर्याण स्थल हिमालय के केदार मन्दिर समीप होने का निश्चित हुआ है।

आचार्य शङ्कर ने अपने कृत ग्रन्थों में कुछ व्यक्तियों का नाम या उनसे रचित ग्रन्थों से पद्य उद्धृत या उनके मत का उल्लेख या सूचना की है तथा दो शहरों का नाम (पाटलीपुत्र एवं श्रुघ्न) भी लिया है पर कहीं भी अपने वृत्तान्त नहीं दिया है। श्री उपवर्ष, श्री सबर स्वामी (वेदान्त भाष्य); भर्तृप्रपंच (बृह० भाष्य); ब्रह्मदत्त (उपनिषद भाष्य में आपका मत का उल्लेख है); द्रविडाचार्य (छान्दो० भाष्य); वृत्तिकार-बोधायन, प्रभाकर, उद्योतकर, प्रशस्तपाद, ईश्वर कृष्ण (वेदान्त सूत्र भाष्य); धर्मकीर्ति (उपदेश साहस्री में पद्य उद्धृत एवं सूत्र भाष्य में विज्ञानवाद के खन्डन में धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध श्लोक की सूचना); दिङ्नाग (सूत्र भाष्य में 'यदन्तर्ज्ञेयरूपं' दिङ्नाग की आलम्बनपरीक्षा ग्रन्थ से उद्धृत); वौद्ध आचार्यों (सूत्र भाष्य में वचनों को उद्धृत की है और इन में से एक गुणमति रचित 'अभिधर्मकोष व्याख्या'); कुमारिल भट्ट (नाम उल्लेख नहीं है पर आपके मत के समान कर्म–विषयक मत का उल्लेख उपदेशसाहस्री एवं तैत्तिरीय भाष्य के उपोद्घात में है); राजा पूर्णवर्मा एवं राजवर्मा (सूत्र भाष्य); आदि सब उल्लेख हैं। देवर्धिगणि, सिद्धसेन, दिवाकर आदियों के मतों का भी खन्डन किया है। उपदेश साहस्री भाष्य (श्लोक 142 शाङ्कर भाष्य) 'अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्म विपर्यासित दर्शनैः। ग्राह्य ग्राहक संवित्ति भेदवानिवलक्ष्यते।' और आनन्दज्ञान भाष्य 'कीर्तिवाक्यमुदाहरति। अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा … … ' इत्यादि में धर्मकीर्ति का नाम व वाक्य उद्धृत हैं। उपदेशसाहस्री 109 से 140 श्लोकों में कुमारिल भट्ट का उल्लेख है। श्री सुरेश्वर रचित बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक 4/3 में धर्मकीर्ति का उल्लेख किया है—'त्रिष्वेवत्वविनाभावादि यद्धर्म्मकीर्तिना … … '। दिगम्वर जैनों में जिनसेन नामक एक विद्वान विद्यमान थे। अकलङ्क, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र पन्डितों का नाम आपने अपने से रचित 'आदिपुराण' ग्रन्थ में लिया है। अकलङ्क के शिष्य प्रभाचन्द्र थे जो विषय प्रभाचन्द्र के 'न्यायकुमुदचन्द्रोदय' ग्रन्थ में पाते हैं। प्रभाचन्द्र के ग्रन्थ (प्रमेय-मार्त्तान्ड) में विद्यानन्द का नाम पाते हैं। श्री विद्यानन्द ने अकलङ्क का नाम अपने अष्ट साहस्री ग्रन्थ में उल्लेख किया है। विद्यानन्द ने कुमारिल पर लेखनी आक्रमण किया है। विद्यानन्द ने सुरेश्वराचार्य के बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक ग्रन्थ से श्लोक उद्धृत किया है। अतः विद्यानन्द सुरेश्वराचार्य के पश्चात् के हैं। आचार्य ने वैदिक(कर्मकाण्डी), वौद्ध, जैन ग्रन्थकारों के मतों का खन्डन भी किया है पर आपने इन लोगों का नाम नहीं लिया है। उपर्युक्त विषयोंके आधार पर आचार्य शङ्कर का जन्मकाल निर्धारण करने में सहायता देती है।

आचार्य शङ्कर का वृत्तान्त स्व प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों के रिकार्डों से ही कुछ मिलता है। काल प्रवाह के साथ बहुत रिकार्ड लोप हो गये। जो कुछ मिलते हैं, उसकी प्राचीनता भी निस्सन्देह सिद्ध नहीं हुई। अभी तक

उनके रिकार्डों और ऐतिहासिक घटनाओं के साथ समन्वय नहीं हुआ। इन चार आम्नाय मठों के रिकार्डों की खोजखाज कर प्राप्त विषयों का समन्वय करने पर सम्भवतः श्री शङ्कराचार्य चरित्र के विषय में और कुछ चरित्र विषय मालूम हो। बौद्धमतानुयायीयों की कोई ऐसी पुस्तक श्रीशङ्कराचार्य के समकालीन की नहीं मिलती है जिससे उनका चरित्र मालूम हो। अन्य मताभिमानियों से रचित आधुनिक काल के पुस्तक द्वेष से लिखा मालूम पडता है और ये सब पुस्तक केवल कुछ घटनाओं का उल्लेख करता है। बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी के श्रीरामानुजाचार्य तथा श्री मध्वाचार्य के समीप काल की पुस्तकों से कुछ विषय मालूम होते हैं पर ये भी विवादास्पद एवं द्वेष से लिखे गये मालूम पडते हैं। 'जिनविजय', 'मध्वविजय', 'मणिमंजरी' आदि विरोधी ग्रंथ सब निन्दास्पद हैं पर इनमें कुछ घटनायें उल्लेख हैं जो आचार्य शङ्कर के चरित्र से संबन्ध रखता है

आचार्य शङ्कर से स्थापित चार आम्नाय मठों में उनकी जीवन चरित्र सामग्री परम्परागत आयी हुई उपलब्ध होता है पर कुछ मठों के परम्परायें अक्षुण्ण रूप से प्रचलित नहीं मिलती। इनका अनुसरण विभिन्न दिग्विजयों से लिया गया है और हम एकरूपता भी नहीं पाते। श्रीशृङ्गेरी मठ में अनेक प्राचीन ग्रन्थ (हस्तलिखित-ताळपत्र) हैं और उस मठ के प्राचीन रिकार्डों की खोज एवं आन्वेषन अभी तक नहीं किया गया है। इसी प्रकार यह भी आशा की जाती है कि शृङ्गेरी के आसपास भूमि खोदा जाय और उस सीमा के इतिहास का खोज की जाय तो अनेक प्रामाणिक चरित्र-सामग्री मिल जायेंगी।

अर्वाचीन काल के कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर के जीवन लीला विवरण जो सब शङ्करविजयों में दिये हुए हैं सो सब आचार्य शङ्कर के वेदान्तिक व आध्यात्मिक तत्त्वों के विरुद्ध हैं एवं जीवन लीला का कुछ भाग वर्णन अविश्वसनीय और निन्दनीय हैं। आगे कहते हैं कि सब शङ्करविजय जो अब उपलब्ध हैं उनमें दिये कथा वर्णन भी परस्पर विरोधी एवं अग्राह्य तथा आचार्य शङ्कर का यथार्थ जीवन लीला का वर्णन नहीं करता है, अतएव ये सब पुस्तक अग्राह्य हैं। मार्के की बात है कि इन विद्यमान दिग्विजयों में यद्यपि विभिन्नता पायी जाती हैं तथापि कई विषयों में पर्याप्त समता भी रखती हैं। यदि इन उपलब्ध-दिग्विजयों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और इतिहास से लब्ध विषयों एवं उपलब्ध बाह्य प्रमाणों के आधार पर इन विभिन्न विषयों को समन्वय किया जाय तो आचार्य चरित्र की प्रधान घटनाओं की चरित्र-सामग्री भी मिलती है। जो व्यक्ति आचार्य शङ्कर के अद्वैतवाद को समझ नहीं सकते या स्वानुभव नहीं कर सकते हैं, उस वर्ग के व्यक्तियों के लिये अर्थवाद रूप में ये सब आचार्य लघु कथायें पुराणिक शैली में लिखे गये हैं ताकि साधारणजन भी अद्वैत पर स्नेह रक्खें। विद्वानों या बुद्धिमानों के लिये चरित्र कथा वर्णन अल्प विषय हो सकता है पर पामर लोगों के लिये यह एक ही मार्ग है जिसके द्वारा वे लोग अपनी श्रद्धा, भक्ति व स्नेह दिखा सकते हैं। अनुसन्धान विद्वानों की दृष्टी से यदि पुराणों पर आलोचना की जाय तो बहुत से पुराण कथायें असत्य कहलाये जायेंगे। पुराण कथा के गूढार्थ या लक्षणार्थ को बुद्धिमान व विद्वान स्वीकार करते हैं और अनभिज्ञ पामरजन इनका साधारण अर्थ करते हैं और इसमें कोई आपत्ति या हानी किसी को हो नहीं सकता है।

आधुनिक काल अर्थात् श्री बुद्धदेव के बाद अनेक विद्वान यहां पैदा हुए और इनमें से धुरन्धर पन्डितों ने स्वाभिमान द्वारा अपनी भलाई तथा स्व सिद्धान्तों की पुष्टी के लिये नई समस्याओं की पुष्टी की और प्रमाणिकता के लिये प्राचीन पुस्तकों में से कुछ श्लोकों का बदलना या नया बना डालना या पुस्तक से बिलकुल निकाल देना आप लोगों का

एक स्वाभाविक गुणसा हो गया है। आज से प्रायः 400 वर्षों से ऐसा परिवर्तन देखा जाता है। केवल अपौरुषेय ग्रन्थ को छोडकर प्रायः सब ग्रन्थों की एक से अधिक प्रतियां मिलती हैं। यह बडे खेद का विषय है। कुछ लोग इसे पढकर क्रुध होकर कहेंगे कि प्राचीन विद्वानों की टिप्पणी करना ठीक नही है पर सत्य को प्रकट करने में कोई आपत्ति भी नहीं है। यद्यपि इस प्रकार की कथा या घटना या श्लोक या पंक्ति जो सब पीछे से मिलाये गये हैं, इसमें सन्देह नहीं, तथापि जिस किसी समय में यह परिवर्तन किया गया हो उस समय के रचयिता के विचार ऐसे ही थे। प्राचीन पुस्तकों का परिवर्तन शीघ्रही पाया जा सकता है और उससे यह भी मालूम किया जा सकता है कि उक्त घटना कब से मिलाई गयी है और किस समय में घटित हुई है। इस पुण्यभूमि में गुरु शिष्य का भाव यहां तक था कि एक समय शिष्य सब कार्य चाहे भला हो या बुरा, वे अपने गुरु के नाम पर ही करते थे। ऐसी प्रथा उनकी अनेक स्तोत्रों तथा अन्य पुस्तकों में मिलती हैं जिनका रचयिता श्री शङ्कराचार्य नाम से प्रसिद्ध हैं।

यह सबको विदित है कि भागवत संप्रदाय के विद्वान द्वारा महाभारत में शिवकथा अगोप कर दिया गया है। गौतम के न्यायसूत्र से जैसा अन्तिम सूत्र 'इदं तु कन्टकावरणं तत्त्वं हि बादरायणात्' को उडाकर आजकल की नवीन पुस्तकें छपती हैं। भविष्य पुराण के मध्यम पर्व, चतुर्थखण्ड, दसवें अध्याय में लिखा है कि भैरवदत्त विप्र के पुत्र रूप से शङ्कर का अंशावतार हुआ और वह पुत्र शङ्कराचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसने भाष्य लिखकर शैवमार्ग का समर्थन किया। भविष्य पुराण में ऐसी कल्पित कथा जो निराधार अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के विरुद्ध एवं अग्राह्य है, पीछे से जोडी गई है। कुछ विद्वान श्रीशङ्कराचार्य के परम्परा की अवहेलना करते हैं तथा उनके मायावाद को बौद्ध दर्शन का औपनिषद संस्करण भी मानते हैं। ये सब विद्वान प्रमाण रूप से पद्मपुराण के दिये हुए एक श्लोक को उद्धृत करते हैं—'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते। मयैव कथितं देवी कलौ ब्राह्मणरूपिणा।' श्रीविज्ञानभिक्षु ने सांख्यप्रवचन भाष्य की भूमिका में उपर्युक्त वचन को उद्धृत किया है। अवान्तर कालीन द्वैतमतावलम्बि विद्वानों ने उपर्युक्त वाक्य को प्रमाण रूप से मानकर शङ्कराचार्य को प्रछन्न बौद्ध और उनके मायावाद को बौद्ध दर्शन का औपनिषद् संस्करण भी मानते हैं। परन्तु आन्वेषण की समीक्षा करने पर ऐसी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता क्यों कि पद्मपुराण का यह श्लोक अवश्य ही क्षिप्त श्लोक है। मनगढन्त क्षिप्त पुस्तक जो प्रमाणाभास कोटी के हैं उससे श्लोक व पंक्तियां उद्धृत कर कुछ वर्ग अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये प्रचार भी करते हैं। इस कोटी का एक और पुस्तक 'शङ्कर प्रादुर्भाव' भी है जो आचार्य चरित्र का वर्णन करता है। इसमें निन्दा, द्वेष, अवांछनीय विषयों का भरपूर है। इसमें कहा गया है कि आचार्य शङ्कर ने जैन मन्दिरों का ध्वंस कर दिया था, उनके ग्रन्थों को जलाकर भस्म करा दिया था और जिन लोगों ने आचार्य शङ्कर का विरोध किया था उन सबों की हत्या भी करा दी। आचार्य रचित भाष्यों एवं अन्य ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर के कार्य कभी भी ऐसे नहीं हो सकते। यह पुस्तक द्वेष से लिखा हुआ निन्दास्पद पुस्तक है। **Mr. Francis Wilford, Asiatic Researches, Vol. III, 1792** ई० में लिखते हैं **"It is added, that Mahadeva, having vainly contended with the numerous and obstinate followers of the new doctrine, resolved to exterminate them; and for that purpose took the shape of Sancara, surnamed Acharya, who explained the Vedas to the people, destroyed the temples of the Jainas, caused their books to be burned, and massacred all, who opposed him. This tale, which has been, extracted from a book, entitled Sankara-pradurbhava, was manifestly invented, for the purpose of aggrandizing Sancaracharya**

whose exposition of the Upanishads and comment on the Vedanta, with other excellent works, in prose and verse, on the being and attributes of God, are still extant and studied by the Vedanti School." एक और पुस्तक में कहा गया है कि आचार्य शङ्कर अपने साथ कडाई और तेल ले जाते थे और विपक्षी विद्वान जो आपसे शास्त्रार्थ करने आते थे उनसे आप वादा कराते थे कि यदि वे हार जांय तो उन्हें उवलते हुए तेल में उतरना होगा। इस वादा के डर से अनेक विद्वान आपसे शास्त्रार्थ करने से डरते थे| इस प्रकार आचार्य शङ्कर भारत का भ्रमण करते हुए विरोधियों से बिना शास्त्रार्थ किये ही सुविधा से पराजित कर दिग्विजय यात्रा पूर्ण की थी। बदरी सीमा के गांवों में यह कथा सुनायी जाती है। तिब्वती पुस्तकों में भी यह कथा कही गई है। इसी प्रकार विद्वानों ने किसी व्यक्ति की समस्या या मत की पुष्टी तथा प्रामाणिकता दिखाने के लिये ऐसे परिवर्तन करके अथवा कल्पना कर नवीन घटनाओं का उल्लेख कर और अपनी सिद्धि के लिये पुस्तकें छपवायी हैं। इसी प्रकार आचार्य शङ्कर के चरित्र पुस्तकों में, पुराण व इतिहास में, काव्य नाटकों में इस प्रकार के जोड निकाल अदलबदल कर परिवर्तन किया गया है। कुम्भकोण मठ की प्रमाणाभास पुस्तकों में भी यही परिवर्तन की गयी है। यह सब इष्टसिद्धि प्राप्त करने के लिये ही की गयी है। इस अध्याय में इसका पूर्ण विवरण पायेंगे।

प्राचीन भारतीय इतिहास की सामग्री साधारण तौर पर दो भाग में बांटा जा सकता है—(1) साहित्यिक (2) पुरातत्त्वसंबन्धी। साहित्य के स्तुत्य घटनाओं की तिथि परक उचित रूप से अंकन नहीं हुआ। सम्भवतः इस साहित्यिक क्षेत्र की उपेक्षा का कारण ऐतिहासिक मेधा की कमी रही हो अथवा साहित्य के प्रति उन संप्रदायों की उदासीनता रही हो। सचाऊ अल्बेरुणी का 'भारत' खण्ड दो में लिखा है—'हिन्दू घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम के प्रति उदासीन है। तिथि के अनुक्रम के सम्बन्ध में वे अत्यन्त लापरवाह हैं। जब जब उनसे कोई ऐसी बात पूछी जाती है जिसका वे उत्तर नहीं दे पाते तब तब वे कहानियां गढने लगते हैं।' यह कथन अधिकमात्रा में सत्य दीखता है। साहित्यिक तथा पुरातत्त्वसंबन्धी सामग्री के भारतीय, अभारतीय, दो विभाग किये जा सकते हैं। भारत का प्राचीनतम् साहित्य सर्वदा धार्मिक है। पर ये सब काव्यपरक हैं और इनमें उपमादि अलङ्कार का अधिकाधिक समावेश है| विदेशीय इतिहास लेखकों के दृष्टी कोण से तथा उनके ही पदानुगामी भारतीय इतिहास लेखकों के विचारों ने आधुनिक समालोचना पर व्यक्तियों का निर्णय करना तथा उस रास्ते से आगे अनुसन्धान करना अति कठिन हो गया है।

श्री शङ्कराचार्य जी के चरित्र साहित्यिक श्रेणी में ही लिखे हुए हैं| तात्काल इनका चरित्र जानने के लिये इन्हीं सात आधारों पर निर्भर करके चरित्र की सत्यता का आन्वेषण करना चाहिये। यहां इनके पूर्ण विवरण नहीं दिये जाते और जिस परिणाम पर पहुंचा हूं उनका उल्लेख कर देना ही पर्य्याप्त होगा। (1) शास्त्र (2) ऐतिह्य पुस्तक —पुराण आदि (3) प्राचीन एवं नवीन पुस्तकें (काव्यग्रंथ, शङ्करदिग्विजय, मठाम्नाय, इतर सांप्रदायिक ग्रंथ, आदि) (4) प्राचीन शिला लेख, ताम्रपत्रशासन, सनद व शासन एवं इतिहासिक ग्रंथ (5) जैन, बौद्ध, रामानुजीय, मध्व ग्रंथों में आचार्य शङ्कर का उल्लेख (6) पाश्चात्य ग्रंथकारों की आलोचना तथा विदेशी यात्रियों की यात्रा विवरण (7) शास्त्रीय रीति से जटिल विषयों का समन्वय युक्ति अनुमान वाद द्वारा| उपर्युक्त आधारों द्वारा संग्रह रूप में आचार्य शङ्कर का चरित्र वर्णन इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में दिया गया है। अब इस अध्याय में कांची कुम्भकोण मठ के प्रचारों की आलोचना की जाती है जो उपर्युक्त आधारों पर आधारित हैं ता कि पाठकगण जान जांयें कि कुम्भकोण मठ के प्रचारों में कितनी सत्यता है।

शास्त्र—सन्यासग्रहण विधि, महावाक्योपदेश, योगपट्ट (अङ्कितनाम), संप्रदाय, सन्यासक्रम, ब्रह्मचारि, गोत्र, वेद, क्षेत्र, देवदेवी, आम्नाय, सब शास्त्र सिद्ध हैं। इसमें कोई न्यूनता पायी नहीं जा सकती है। ये सब बहुकाल से सिद्ध एवं परम्परागत चले आ रहे हैं। ऐसे शास्त्र सिद्ध वचनों को छोडकर युक्ति तथा अनुमानवाद की ओर शरण लेना (जैसा कि कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में अधिकांश में पाई जाती है) अशास्त्रीय है। जो विषय शास्त्र द्वारा सिद्ध हैं उनका हेतु तथा अनुमान की क्या आवश्यकता है ?

योवमन्येततेत्मे हेतुशास्त्राश्रयो द्विजः |
ससादुभिः बहिष्कार्यः नास्तिको वेद निन्दकः ॥ मनु ॥ (उभे-श्रुति एवं स्मृति)

एतेयानि प्रणीतानी धर्मशास्त्राणि वै पुरा।
तान्येतानि प्रामाणानि न हंतव्यानि हेतुभिः ॥
यस्तानि हेतुभिर्हन्यात् सोंधेतमसिमज्जति। यमः ॥

पुराणं मानवोधर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सते।
आज्ञा सिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ विष्णु ॥

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधू नामात्मन स्तुष्टिरेव च ॥ मनु ॥

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममू लमिदं स्मृतम् ॥ याज्ञवल्क्य ॥

धर्ममूलं वेदमाहुर्ग्रन्थराशिमकृत्रिम् |
तद्विदां स्मृतिशीलेच साध्वाचारं मनः प्रियम् ॥ व्यास ॥

वेदाः प्रमाणं स्मृतय प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम्।
यस्य प्रमाणं न भवेत् प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम् ॥ हारीत ॥

श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः स्मरंति च तथा स्मृतिम्।
तस्मात्प्रमाणमुभयं प्रमाणैः प्रावितं भुवि ॥ मनु ॥

न यस्य वेदा न च धर्मशास्त्रं न वृद्धवाक्यं हिं भवेत्प्रमाणम्।
सोऽधर्मकृद्दृष्टि हतो दुरात्मा नात्माऽपितस्येह भवेत्प्रमाणम् ॥ हारीत ॥

जब कोई समस्या जटिल हो और किसी प्रकार से सिद्ध न किया जा सके तो यह अन्तिम मार्ग युक्ति व अनुमानवाद का है। जब इसकी शरण शास्त्र सिद्ध विषय की आलोचना के लिये लिया जाय तो वह अशास्त्रीय होगा। यह सब को विदित है कि जब शास्त्र सिद्ध विषय को मानने पर न तैय्यार हों तो उनकी क्या दशा होगी सो भगवद्गीता में स्पष्ठ रूप से उल्लेख है—"यशास्त्रविधि मुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्।" आचार्य शङ्कर के नये प्रकाशित चरित्रों में बहुत सी ऐसी कल्पित घटनायें एवं अशास्त्रीय विषयों का भी वर्णन हैं जिसमें समस्या इतनी जटिल बना दी गई है कि उसे निर्णय करने के लिये अनुमान की (शास्त्रीय रीति से) आवश्यकता होती है। इसका कारण विद्वानों के मनगढन्त नये पुस्तकों से अपने लाभ के लिये रचकर तथा पामर लोगों में भ्रम पैदाकर, सत्य के ऊपर

पर्दाडाल स्वकार्य सिद्धि करने के हेतु से, प्रकाशित की गयी पुस्तकें जो अब प्रचार होते हैं। यदि इसकी विवेचना की जाय तो निःसन्देह प्राचीन काल के लिखे हुए ग्रन्थों का अनुकरण करना ही ठीक प्रतीत होता है क्यों कि ये सब ग्रंथ वृद्धपरम्परागत अनुष्ठानों में आये हैं| कुम्भकोण मठ से प्रचारित पुस्तकों में अनेक विषय हैं जो शास्त्र विरुद्ध हैं यथा महावाक्य, महावाक्योपदेश विधि, संप्रदाय, ब्रह्मचारि, योगपट्ट (अङ्कितनाम), सन्यासक्रम व विधि, परमहंस का परिभाषा, आम्नाय आदि। इसीलिए पाठकगणों के जानकारी के लिये यहां विस्तारपूर्वक लिखा गया है। कुम्भकोण मठ के प्रचारों पर विवेचना निम्न पुस्तकों के आधारपर की गई है—(1) शुकरहस्योपनिषद (2) महावाक्यरत्नावली (3) निर्णय सिंधु (4) धर्म सिंधु (5) विश्वेश्वरस्मृति (6) यतिधर्मप्रकाश (7) यतिधर्मनिर्णय (8) चन्द्रिका प्रबोधिनी (9) यतीन्द्रचरितामृत महोदधि, आदि।

ऐतिह्यपुस्तक–पुराणादि — पुराण तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है: (1) महापुराण (18 पुराण), (2) उपपुराण, (3) स्थल पुराण। हमारें यहां महापुराण को पंचम् वेद के समान मानने को कहा गया है। 'पुराणं मानवोधर्मः', 'इतिहास पुराणं पञ्चममिति श्रुतिः', 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपब्रह्मयेत', 'इतिह ऊचुर्वृद्धाः ऐतिह्यं' इत्यादि वचनों से पुराण की प्राधान्यता मालूम होती है। परन्तु आजकल ऐसे पुराणों की अमिश्रित, अक्षिप्त, यथार्थमूल ग्रंथ मिलना अति दुर्लभ हो गया है। द्वेष, राग, असूया एवं अभिमान से भरे इन लोगों ने जो ग्रंथ का परिवर्तन किया है उनहीं लोगों ने इन ग्रंथों की दुर्दशा की है। पूर्व में कुछ दिये उदाहरणों को पढकर (उदाहरणों की एक लम्बी सूची बनाई गई है और जगह की कमी के कारण यहां नहीं दी जाती है) पाठकगण इस विषय की सत्यता को जान गये होंगे। इसी प्रकार कुम्भकोणमठवालों ने अपने कार्य सिद्धि के लिये कुछ इतिहास, काव्य, पुराण एवं आर्षतुल्य ग्रंथों में परिवर्तन करके स्वसिद्धि के लिये कुछ नयी पुस्तक छपवायी हैं। अर्वाचीन काल में रचित गद्य-पद्य को प्राचीन ग्रंथों का नाम देकर प्रमाणाभास रूप में प्रचार हो रहा है। कहा जाता है कि लिङ्ग, कूर्म, वायू, सौर, भविष्योत्तर आदि पुराणों में आचार्य शङ्कर के अवतार होने का विषय उल्लेख है। इन पुराणों में आचार्य शङ्कर के जीवन का कोई विस्तार वर्णन नहीं है। पुराणों में तीर्थों के वर्णन के अवसर पर आचार्य का चरित संकेतित रूप से है। कुम्भकोण मठवाले कहते हैं कि मार्कन्डेय पुराण में पांच लिंगों का और उनकी स्थापना का भी वर्णन है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष अपने मद्रास के वक्तव्य में (2–11–1932) कहते हैं कि ब्रह्माण्डपुराणान्तरगत एक भाग मार्कण्डेय संहिता है और इसके तीसरे परिस्कन्द में श्रीशङ्कराचार्य की कथा उल्लेख है| कुम्भकोण मठाधीष अपने व्याख्यान में एक और पुस्तक का नाम भी लेते हैं–' रुद्रकोटि संहिता '| इसके अलावा कुम्भकोण मठाधीष के अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित पुस्तक में निम्न पुस्तकों को भी पौराणिक प्रमाणों से उल्लेख किया है—भैरव पुराण, केरळोत्पत्ति, जिनविजय, ब्रह्माण्डपुराण, मध्वविजय, मणिमञ्जरी और मणिमञ्जरीभेदिनी। एक और ग्रंथ 'शिवरहस्य' का भी उल्लेख है| यह एक विपुलकाय ग्रंथ है जिसका मुख्य विषय शिवोपासना ही है। कुम्भकोण मठाधीष ने 1932 ई० के भाषण में कहा कि ऋग्वेद में आचार्य शङ्कर के अवतार का उल्लेख है और रुद्राध्याय में भी उल्लेख है। इन सब विषयों पर आलोचना आगे पायेंगे।

यह सब को विदित है कि पुराण अष्टादश हैं। वायुपुराण में उल्लेख है 'यस्मात् पुरा हि अनति इदम् पुराणम्' (1–203), 'प्रथमम् सर्वशास्त्राणाम् पुराणम् ब्रह्मणास्मृतम्। अनन्तरम् च वक्तेभ्यो वेदांस्तस्य विनिश्रताः' (1–60)। पुराण संहिता के संपादक श्रीव्यास हैं और आपने अपने शिष्य लोमहर्षन् को उसका अध्ययन कराया। लोमहर्षन के छः शिष्य थे। अग्निवर्च, मैत्रेय, साम्सपायन्, काश्यप, सावर्णि आदि शिष्यों को लोमहर्षन ने पुराण संहिता जो

आपको श्रीव्यास से प्राप्त हुआ था सो 'पढाया'। अग्निपुराण में उल्लेख है कि श्रीव्यास ने पुराण संहिता अपने छः शिष्यों को पढाया जिनमें चार शिष्यों का नाम उपर्युक्त छः शिष्यों में से नाम पाये जाते हैं। परन्तु ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराण इन शिष्यों को लोमहर्षन के शिष्य ही उल्लेख करता है यद्यपि नामों में कुछ नाम नामान्तर पाये जाते हैं| इसी ग्रंथ को 'मूलसंहिता' अथवा 'पूर्वसंहिता' कहा जाता है। इन्हीं मूलसंहिताओं से कुछ काल पश्चात् पुराण लिखे गये थे यद्यपि पुराणों में जोड बदल व नई कथायें पायी जाती हैं। पुराकाल के मूल पुराण सब खो गये हैं। वृद्ध परम्परा से मालूम होता है कि अठारह पुराण तथा अठारह उपपुराण हैं। उपपुराण सब अर्वाचीन हैं और ये सब मतान्तरों के हैं। महाभारत अठारह पुराणों का उल्लेख करता है। इन पुराणों पर विवेचना करके आलोचना किया जाय तो स्पष्ठ मालूम होता है कि इनमें कुछ पुराण महाभारत काल के बाद के ही लिखे हुए मालूम होते हैं। पुराण एक समय व काल का नहीं है पर उसमें अनेक कालों का विवरण दिया गया है|

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि सूतलोमहर्षण अथवा इनके पुत्र (सौति) उग्रश्रवस द्वारा कथित माने जाते हैं। विष्णु पुराण पराशर द्वारा मैत्रेय को सुनाया गया था किन्तु अन्य सब पुराण नैमिषारण्य में ऋषियों के द्वादशवर्ष यज्ञ के अवसर पर सूत्र द्वारा कथित माने जाते हैं। साधारणतः इनके वर्णित विषय पांच प्रकार के हैं— (1) सर्ग (आदि सृष्टि) (2) प्रतिसर्ग (काल्पिक प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि) (3) वंश (देवताओं और ऋषियों के वंश वृक्ष) (4) मन्वन्तर (कल्पों के महायुग जिनमें मानव जाति का पहला जनक मनु हैं) (5) वंशानुचरित (प्राचीन राजकुलों का इतिवृत्त)—"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणिच| वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पंचलक्षणम्।" वंशानुचरित भविष्य, मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, भागवत् पुराणों में मिलते हैं। गरुड पुराण में भी कुछ वंशानुचरित मिलते हैं।

मत्स्य पुराण में दिये हुए पुराणों का नाम एवं ग्रंथ—ब्रह्म (13,000), पद्म (55,000), विष्णु (23,000), वायु-(शिव पुराण भी कहते हैं) (24,000), भागवत् (18,000) (इस भागवत के जगह कुछ लोग देवी भागवत् को पुराण मानते हैं), नारदीय (25,000), मार्कन्डेय (9,000), आग्नेय (16,000), भविष्य (14,500), ब्रह्मवैवर्त 18,000), लिङ्ग (11,000) (मार्कन्डेय पुराण में लिङ्ग पुराण को नृसिंह पुराण के नाम से उल्लेख है), वराह (24,500), स्कन्द (31,000), वामन् (10,000), कूर्म (18,000), मत्स्य (14,000), गरुड (19,000), ब्रह्माण्ड (12,000)। अब बाजार में जो पुराण मिलते हैं इनमें उपर्युक्त संख्या से भी अधिक या कम संख्याग्रंथ पाया जाता है। इन दोनों भिन्न प्रतियों में कौनसा यथार्थ है सो भगवान ही जाने। मेरे काशी गृह पुस्तकालय में 18 पुराणों की प्रतियां हैं। पत्रात्मक मुद्रित एवं ताळ पत्र अमुद्रित प्रतियां भी हैं। इनमें भी ग्रंथ संख्या भिन्न पाये गये। इससे यही कहा जा सकता है कि मूल पुराण में कालान्तर में बराबर परिवर्तन होते हुए आया है।

देवी भागवत् (1-3-13-16) के अनुसार नीचे दिये अठारह उप-पुराण हैं, यथा—सनत्कुमार, नारसिंह, नारदीय, शिव, दौर्वासा, कपिल, मानव, औशनस, वारुण, कालिका, साम्ब, नन्दिकृत, सौर, पराशर, आदित्य, महेश्वर, भागवत्, वासिष्ठ। हरिवंश एक पर्व माना जाता है और महाभारत का अङ्ग है।

हमारे पूर्वज महऋषियों, यतीश्वरों, पुराकाल के गृहस्थ विद्वानों से, हमलोगों के हित के लिये, धर्मशास्त्र ग्रंथों की रचना है| धर्मशास्त्र ग्रंथों का आधार श्रुति, स्मृति, इतिहास एवं पुराण है। अठारह पुराण सब बराबर

हैं पर धर्मशास्त्र के रचयिताओं ने जिस पुराण के वचनों को ज्यादा लेकर धर्मशास्त्र पुस्तक लिखी है, उसी पुराण को हमलोग ज्यादा प्रामाणिक मानते हैं। देश देशान्तरों से प्राप्त पुस्तकें अथवा ढूंढ निकाल कर नवीन पुस्तकों का उतना प्रामाणिकता नहीं माना जाता जितना कि पुस्तकें जो सर्वसाधारणतः मिलता हो या जो रूढी में परम्परागत आता हो या जो सर्वमान्य हो। ऐसे ही पुराण ज्यादा प्रामाणिक हैं। अपना स्वार्थ सिद्धि प्राप्त करने के लिये नवीन वचनों की सृष्टि कर एवं प्रामाणिक पुराणों में क्षिप्त कर प्रमाणाभास रूप में प्रचार किये जाने वाले पुराण वचन प्रामाणिक नहीं हो सकते हैं। पुराकाल में लोक कल्याण तथा आनेवाले सन्तानों के हित के लिये वे ग्रंथ रचकर चले गयें। शायद उन्हें यह भी मालूम हुआ होगा कि कलि के प्रभाव से एवं काल प्रवाह के साथ ज्यों ज्यों समय बीत रहा है त्यों त्यों लोग भी स्वार्थ के लिये कहीं अपनी मनगढन्त पुस्तकें न कहीं रचना कर लोगों को भ्रम में न डाल दें, इसलिये वे अपने अपने सिद्धान्तों को प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर लिख गये थे। ये सब पुस्तकें वृद्ध परंपरागत रूढी तथा आचरण में आने से इसे बदला नहीं जा सकता है। पर कुछ नवीन पुस्तकें जो बाजारों में मिलती हैं जिसमें नये सिद्धान्तों का प्रचार किया गया है और जो नवीन प्रमाणों पर आधारित हैं, वे सब पुस्तकें बहुकाल तक रह नहीं सकती क्योंकि उनके प्रमाण सब भ्रममूलक, स्वार्थ, मिथ्या और कल्पनात्मक हैं। नवीन काल के पंडितों द्वारा रात रात में ताळपत्रों व पुराने कागजों पर नये श्लोकों को लिखकर सुसमय इन कल्पित पुस्तकों को प्रामाणिक होने का शपत लेकर, प्रचार कर देते हैं। ऐसे स्वार्थपरायण विद्वान क्यों परवाह करें कि ऐसे मिथ्या प्रचारों द्वारा धर्म पर कितना आघात पहुंचता है। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित पुस्तकों में इस कोटि के प्रमाण अधिक पाया जाता है।

प्राचीन एवं नवीन पुस्तकें—आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय (मठाम्नायोपनिषद, सेतु, स्तोत्र) पुस्तक कहा जाता है। यदि इसमें सन्देह भी हो जैसे कि कुम्भकोण मठाभिमानियों ने काशी में 1934—35 में कहा था तो भी यह सब को मानने में कोई इतराज न होगा कि यह पुस्तक अति प्राचीन है और परम्परागत चारों मठों में आज तक व्यवहार रूप से आचार्य शङ्कर के समय से आचरण में चला आ रहा है। यदि यह ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्य के काल ही में न लिखा गया हो तो भी इस में सन्देह नहीं है कि उनके समीप काल ही में लिखा गया था। आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में मठाम्नाय के पद्धति, नियम, सम्प्रदाय, आदि सब परम्परागत आचरण में आने से यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि इस आम्नाय पद्धति के प्रारम्भिक पुरुष आचार्य शङ्कर ही थे। यह पुस्तक सब श्रेष्ठों को ग्राह्य है। कलकत्ता, पाटना व बम्बई अदालतों में इस मठाम्नाय को प्रमाण मानकर इसके आधार पर फैसला भी दिया है। पाटना हाईकोर्ट का अभिप्राय है कि यह पुस्तक आठवीं शताब्दी का लिखा है। इस पुस्तक पर विमर्श पाठकगण आगे पायेंगे।

शंकरविजयादिग्रंथ व आचार्य चरित्र—कुम्भकोण मठ की पुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों से यह प्रतीत होता है कि नीचे दिये हुए सूची में श्रीशङ्करविजय (चरित्र) पुस्तकें उपलब्ध होते हैं और श्रीशङ्कराचार्य का जीवन कथा इन पुस्तकों से प्राप्त हो सकते हैं। लेकिन इस सूची के अनेक पुस्तकें केवल नाम से ही प्रसिद्ध हैं और न तो हस्तलिखित प्रति कहीं मिलती हैं या किसी ने देखा है। इस सूची में दिये शङ्करविजयों में से पांच या छः प्रकाशित हुई हैं। इन सब पुस्तकों की आलोचना आगे पायेंगे।

1. सर्वज्ञ चित्सुखाचार्य—शङ्करविजय अथवा बृहच्छंकरविजय।

2. आनन्दगिरि—आचार्य चरित्र या शङ्करविजय (हस्तलिखित प्रति कुम्भकोणमठ में होने की कथा सुनायी जाती है—कहा जाता है कि डिंडिम टीकाकार ने इसी पुस्तक से उद्धृत किया है। डिण्डिम टीकाकार का अभिप्राय है कि आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि ने बृहच्छंकरविजय लिखा है। काशी के रामतारकमठ की प्रति कुम्भकोण मठ की प्रती के अनुसार होने की कथा भी सुना जाता है।) कुछ विद्वान इस पुस्तक को प्राचीन शङ्करविजय भी कहते हैं।

3. विद्याशङ्कर उर्फ शङ्करानन्द शङ्करविजय अथवा व्यासाचलीय (तंजौर पुस्तकालय)। व्यासाचलीय मद्रास में प्रचुरित है। डा०औफ्रेक्ट इसे व्यासगिरि कृत कहते हैं।

4. गोविन्दनाथ कृत शङ्करविजय अथवा आचार्य चरित्रम् अथवा केरळीय शङ्करविजय।

5. राजचूडामणि दीक्षित—शङ्कराभ्युदय।

6. अनन्तानन्दगिरि या आनन्दगिरि शङ्कर विजय या गुरुविजय या आचार्य विजय—कलकत्ता तथा मद्रास प्रकाशित।

7. सदानन्द—शङ्करदिग्विजय सार। आपको सदानन्द व्यास भी कहते हैं।

8. चिद्विलास—शङ्करविजयविलास (तेलगू एवं ग्रंथाक्षर में प्रकाशित)।

9. माधवीय उर्फ विद्यारण्य श्री मच्छङ्करदिग्विजय अथवा संक्षेप शङ्कर दिग्विजय।

10. वल्लीसहाय—शङ्करविजय अथवा आचार्य दिग्विजय (मदरास पुस्तकालय)।

11. मूकशङ्कर—प्राचीन शङ्करविजय।

12. ... ... —शङ्करविजय कथा (मदरास पुस्तकालय)।

13. शङ्करदेशिकेन्द्र—शंकरविजयविलास काव्य (**Catalogus Catalogorum No** ***6261***)।

14. ... ... —श्रीशंकराचार्य चरित्र (**Burnell No. 4745**)।

15. आनन्दतीर्थ—श्रीशंकराचार्य अवतार कथा (**Rice No. 242**)।

16. ... ... —श्रीशंकराचार्योत्त्पति (**Buhler No. 559**)।

17. हिन्नोली गोपाल शास्त्री—गुरुपरम्परा चरित्र (दो भाग), बम्बई।

18. बृजराज—शंकरविजय सार।

19. ... ... —केरळोत्त्पत्ति (आचार्य शंकर रचित कल्पित कथा सुनाया जाता है)।

20. नीलकण्ठनम्बी—श्रीशङ्कराचार्य चरित्र।

21. ... ... —वेदान्तचूर्णिका (कुम्भकोण मठ का कथन है कि आचार्य शंकर ने इसकी रचना की है)।

22. ... ... —वासनादेहस्तुति (कुम्भकोणमठ का कथन है कि आचार्य शंकर द्वारा रचित ग्रंथ है)।

23. जगन्नाथ—शंकर विलास चम्पू।

24. रामकृष्ण—शंकराभ्युदय काव्य।

25. लक्ष्मणशास्त्री—गुरुवंश काव्य।

26. विद्यारण्य—शंकरविलास (India Office Library, London)।

27. गुरुस्वयंभू नाथ—शंकरानन्द चम्पू (मदरास पुस्तकालय)।

उपर्युक्त सूची की पुस्तक आचार्य शंकर का चरित्र वर्णन करने की कथा कही जाती है और इनमें अधिक पुस्तकें देखने में भी मिलती नहीं हैं। रचयिताओं का नाम एवं काल निर्णय करना कठिन है कारण एक ही नाम के दो या तीन महात्मा जन्मे हैं| अनेक रचयिता के पौर्वापर्य का निर्णय किया नहीं जा सकता है।

कुम्भकोण मठाधीष नीचे सूचित पुस्तकों का भी उल्लेख करते हैं जो आचार्य शङ्कर के चरित्र का विवरण एवं कहेजानेवाले आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा में आये हुए एवं आचार्यों का विवरण भी देता है| इन सब पुस्तकों पर आलोचना आगे पायेंगे।

1. रामभद्रदीक्षित—पतञ्जली विजय (चरित्र)(काव्यमाला)।
2. वाक्पति भट्ट—शङ्करेन्द्रविलास (कुम्भकोण मठ के पांचवां अवतार आचार्य शङ्कर की अवतार कथा)।
3. श्रीहर्ष—नैषध (नळदमयन्ती चरित्र)।
4. सर्वज्ञसदाशिवबोध—पुण्यश्लोकमंजरी (कुम्भमोण मठ गुरु वंशावली)।
5. आत्मबोध— ,, (परिशिष्ट एवं मकरन्द)।
6. सदाशिवब्रह्मेन्द्र—गुरुरत्नमाला (कुम्भकोण मठ गुरु वंशावली)।
7. आत्मबोध—सुषमा (गुरुरत्नमाला का व्याख्या)।
8. स्वयंप्रकाश—प्रभा विमर्शनी।
9. सर्वज्ञ चित्सुखाचार्य—कुम्भकोण मठ का कथन है कि श्रीचित्सुखाचार्य आचार्य शङ्कर के शिष्य थे और आपसे रचित 'मठाम्नायसेतु' है जिसमें कांची मठ का उल्लेख है। कुम्भकोण मठ का यह भी कथन है कि यह 'मठाम्नायसेतु' चित्सुखाचार्य" कृत बृहच्छङ्करविजय के त्रयोदश प्रकरण से उद्धृत है।
10. कविराज राजगोविन्द श्रीसुदर्शन सरस्वती—जगद्गुरु परम्परा स्तुति।
11. शिवरामसूरी—श्रीमुखदर्पण (विरुदावली की व्याख्या)।
12. गुर्रम् वेंकण्ण शास्त्री—श्रीमुख व्याख्या।
13. रामानुज अय्यङ्गार—सिद्धान्त पत्रिका|
14. अभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती—विद्याशङ्कर विजय।
15. ... ...—शङ्कर विजय संग्रह (कूष्मान्ड शङ्कर), तंजौर पुस्तकालय।
16. ... ...—आचार्य विजय।
17. ... ...—जगद् गुरु कथा संग्रह

18. कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले गुरु परम्परा सिद्ध करने के लिये इन पुस्तकों से उद्धृत श्लोक पाये जाते हैं यद्यपि ये सब पुस्तक अब उपलब्ध नहीं हैं।

(1) हरिमिश्रीय—गौडपादोल्लास (2) मंथा—सिद्ध विजय महाकाव्य (3) कृष्ण मिश्र—गुरु विजय (4) सत्गुरु सन्तान परिमळ (5) मेंथा—हयग्रीव वध (6) रमिला—मणिप्रभा (7) सुहल—विद्याभिधान चिन्तामणि (8) सर्वज्ञात्म—सर्वज्ञविलास (9) भवभूति—महापुरुष विलास (10) जयदेव—भक्ति कल्पलतिका (11) अद्वैतानन्द—शान्ति विवरण (12) अद्वैतानन्द—गुरुप्रदीप (13) श्रीहर्ष—शिवशक्ति सिद्धि (14) श्रीहर्ष—स्थैर्य विचारण प्रकरण (15) कल्हना—राजतरङ्गिनी (16) शङ्करानन्द—बृहदारण्यकोपनिषद दीपिका आदि पुस्तकों की एक लम्बी सूची प्रचार किया जाता है।

प्राचीनताम्रशासन—आचार्य शंकर के काल का या समीप काल का कोई शिला लेख या ताम्र शासन या सनद या अन्य शासन अभी तक ऐतिहासिकों से उल्लेख पाया नहीं जाता है। यदि शिला लेख या ताम्र शासन हों तो वे सब अन्धकार के गर्भ में छिपे मालूम होते हैं। इस विषय पर आन्वेषण की आवश्यकता है। एक ताम्र शासन प्रकाशित है जो कहा जाता है कि महाराजाधिराज सुधन्वा ने श्री शङ्कराचार्य को दिया था। इसकी आलोचना आगे पायेंगे। कुम्भकोण मठ के दस ताम्र शासनों का विवरण श्री. टी. ए. गोपीनाथ राव ने अपने से रचित पुस्तक 'Copper plates-Inscriptions of Sankaracharya Matha' में दी है। अचानक हाल ही में उक्त ताम्र शासनपत्रों में एक अधूरा ताम्र पत्र का एक और भाग प्राप्त होने का कथा एवं उसका प्रकाशन हुआ है। उक्त ताम्र पत्र के आक्षेपों के उत्तर रूप में अब यह प्रकाशित किया गया है। इन सब ताम्र पत्रों पर आलोचना पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे।

अन्यमतान्तरों द्वारा रचित ग्रंथ—जिनविजय, मध्वविजय, मणिमञ्जरी, रामानुज चरित्र आदि पुस्तकों में आचार्य शंकर के कुछ चरित्रघटनाओं का उल्लेख है पर ये सब विवादास्पद एवं द्वेष से लिखित निन्दनीय पुस्तक हैं। कुम्भकोण मठ वाले कांची में मठ होने के प्रमाण में कुछ पंक्तियां जो वेदान्तदेशिक से रचित पुस्तक 'गीतातात्पर्य चन्द्रिका' में है, उद्धृत करते हैं। इस पर आलोचना पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे।

पाश्चात्य ग्रंथकारों का मठविषयक अभिप्राय तथा विदेशी यात्रियों का विवरण—इस पुस्तक के तृतीय खंड में पाश्चात्य एवं पूर्वी अनुसन्धान विद्वानों का मठ विषयक अभिप्राय दिया गया है जो कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टी नहीं करता। दूसरे खंड के प्रथम, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ अध्यायों में जगह जगह पूर्वी एवं पाश्चात्य विद्वानों का अभिप्राय दिया गया है जो सब कुम्भकोण मठ के प्रचारों के विरुद्ध ही हैं। इस खंड के चतुर्थ एवं षष्ठ अध्यायों में विदेशी यात्रियों का कांची विवरण एवं बौद्ध व जैन मतों का कांची नगर में प्रभाव आदि विषयों का उल्लेख पायेंगे। कांची में आम्नाय मठ होने का विषय अथवा आचार्य शंकर का निर्याण अथवा-अन्तिम काल में कांची वास करने का वृत्तान्त किसी ने कहा नहीं है।

कुम्भकोणमठ के प्रचारित पुस्तकें—कुम्भकोण मठ का परम अभिमानी एवं प्रिय शिष्य द्वारा रचित 'जगद्गुरु श्रीशङ्कर गुरु परम्परै' पुस्तक में 82 पुस्तकों की सूची दी गई है। सम्भवतः इस पुस्तक के रचयिता का

अभिप्राय हो कि पाठकगण अपने से रचित पुस्तक को पढते समय सोचें तथा उन पर प्रभाव पडे कि यह पुस्तक अनेकानेक आधार एवं प्रामाणिक ग्रन्थों पर निर्भर करके लिखा हुआ चरित्र है। अतएव यह पुस्तक सर्व माननीय है। यदि पाठकगण इन 82 पुस्तकों पर आलोचना करें तो उनको यथार्थ मालूम हो। इस प्रकार की पुस्तकों को छपवाना तो नवीन काल के प्रचार मार्ग का अवलम्बन करना है। इस सूची में आख्याषष्टि, आत्मविद्याविलास, आर्यपटीयम्, गुळीराष्टकम्, छान्दोग्य उपनिषद, तारावळी, भारतम्, भक्तकल्पलतिका, पाणिणीयमहाभाष्य, भागवत्, मनुस्मृति, मातृकापुष्पमाला, ऋग्वेद, राजतरङ्गिनी, रुद्राध्याय, वेदभाष्य, वेदान्तसूत्र, ज्योतिर्गणित, सेतुबन्ध आदि पुस्तकों का नाम दिया गया है। विज्ञ पाठकगण स्वयं जान लें कि इन पुस्तकों से आचार्य शङ्कर के जीवन चरित्र की कौन सी घटनायें पुस्तक के रचयिता को प्राप्त हुई। इन पुस्तकों तथा आचार्य शङ्कर के चरित्र से क्या सम्बन्ध है? इस 82 पुस्तकों की सूची देखकर एक मित्र विद्वान लिखते हैं 'कांची कुम्भकोण मठ का उल्लेख 'तिलकाष्ट महिषबन्धन' पुस्तक में है और कुम्भकोण मठाभिमानियों ने इस पुस्तक को भी क्यों नहीं सूची में मिला लिया?' अन्य एक मित्र लिखते हैं 'चतुषष्टिकलाधीष, ऐन्द्रजालविद्याधुरन्धर, स्वयंभू कुम्भकोण मठ भक्त प्रचारक, कपोलकल्पितविद्यावारिधि, पं. त्रिशंकु (ऊर्ध्वाम्नाय एवं मूलाम्नाय के बीच) से रचित पुस्तक 'स्वयंभू मठ' में कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टि पायी जा सकती है। कुम्भकोण मठ का 'स्येनवार्ता' पुस्तक सूर्य के सामने 'श्वानवार्ता' समान है। और एक पुस्तक जो कुम्भकोण मठ के अनुयायी प्रचारक से प्रकाशित है उसमें 20 पुस्तकों की सूची भी दी गई है। सहजानन्द सन्तानं और योगसार (योगशास्त्र), ललिता सहस्रनाम एवं देवी माहात्म्य (मंत्रशास्त्र), स्येनवार्ता (अर्थशास्त्र), लीलावती (गणित शास्त्र) आदि पुस्तकों का नाम पायेंगे। परमेश्वर जाने कि इन पुस्तकों से और श्रीशङ्कराचार्य के जीवन चरित्र से क्या सम्बन्ध है? लम्बी सूची देने से पामर लोग देखकर तथा प्रामाणिक पुस्तक मानकर इनके अनुयायी बनजाने की अभिलाषा से यह सब कर्तूत किये जा रहे हैं। श्रीआत्रेय कृष्णशास्त्री अपने रचित पुस्तक में इस विषय की पुष्टि भी करते हैं। एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीष के अनुमति से लिखित एवं आपको अर्पित है उसमें एक लम्बी सूची 59 पुस्तकों का नाम दिया गया है। इसी पुस्तक में दूसरी सूची 62 पुस्तकों का नाम है।

कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में दी हुई पुस्तकों की सूची को छःभागों में बांटा जा सकता है—यथा— 1. रचयिता के नाम एवं काल अनजान—'केरलोत्पत्ति' को छोडकर अन्य पुस्तक का नाम जो किसी ने सुना नहीं, देखा नहीं और पढा नहीं और ये पुस्तक अन्यत्र उल्लेख भी नहीं है। 2. अनजान ग्रंथ एवं अप्रसिद्ध व संदेहास्पद रचयिता—किसी ने देखा नहीं, पढा नहीं, सुना नहीं। 3. अनजान व अनुपलब्ध ग्रंथ जो नामी रचयिता के नाम से प्रकाशित या उनसे उद्धृत। 4. ग्रंथ—प्राचीन एवं आधुनिक—प्रचुरित तथा हस्तलिपि प्रति मिलते हैं। 5. उपर्युक्त भागों की पुस्तक जो श्री शंकराचार्य जी के जीवन चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। 6. कुम्भकोण मठ से रचित एवं प्रकाशित एकाङ्गि पुस्तकें।

(1) रचयिता के नाम एवं काल अनजान :–

1. आचार्य विजय 2. जगद्गुरु कथा संग्रह 3. सद्गुरु सन्तान परिमल 4. वेदान्त चूर्णिका
5. वासनादेहस्तुति 6. केरळोत्पत्ति

(2) अनजान ग्रंथ एवं अप्रसिद्ध व संदेहास्पद रचयिता :–

7. प्राचीन शंकरविजय-मूकशंकरेन्द्र 8. पुण्यश्लोकमंजरी-सर्वज्ञसदाशिवेन्द्र या सर्वज्ञ सदाशिवबोध
9. मणिप्रभा-रमिज्ञा 10. हयग्रीव वध-मेंठा (था) 11. सिद्ध विजय महाकाव्य-मंथा

12. विद्याभिधान चिन्तामणी-सुहल 13. गौड-पादोल्लास-हरिमिश्र 14. विद्याशंकर विजय-अभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती 15. शंकरविजयकथा-मदरास पुस्तकालय 16. प्रभाविमर्शनी—स्वयंभू प्रकाश 17. शंकरविजयसंग्रह (कूष्मान्ड शंकर) 18. शंकरविजय विलास-शंकर देशिकेन्द्र 19. शंकराचार्य अवतार कथा-आनन्द तीर्थ।

(3) **अनजान व अनुपलब्ध ग्रंथ जो नामी रचयिता के नाम से प्रकाशित या उद्धृत :–**

20. शंकरेन्द्रविलास-वाक्पति भट्ट 21. सर्वज्ञविलास-सर्वज्ञात्मा 22. महापुरुषविलास-भवभूति 23. गुरुविजय-कृष्ण मिश्र 24. भक्तिकल्पलतिका-जयदेव 25. शान्तिविवरण-अद्वैतानन्द 26. गुरुप्रदीप-अद्वैतानन्द 27. शिवशक्तिसिद्धि-श्रीहर्ष 28. स्थैर्य विचारण प्रकरण-श्री हर्ष 29. बृहच्छङ्करविजय-सर्वज्ञ चित्सुखाचार्य 30. शंकरविजय या आचार्यचरित्र-आनन्दगिरि (हस्तलिपि प्रति कुम्भकोणमठ में उपलब्ध होने को कहा जाता है।) 31. गुरुरत्नमाला-सदाशिव ब्रह्मेन्द्र 32. पुण्य श्लोकमंजरी, परिशिष्ठ एवं मकरन्द-आत्मबोध 33. सुषमा-आत्मबोध।

(4) **ग्रंथ-प्राचीन एवं आधुनिक**—(प्रचुरित तथा हस्तलिपि प्रति प्राप्त होते हैं)—34. शङ्करदिग्विजय अथवा संक्षेप शङ्कर विजय–माधवीय उर्फ विद्यारण्य 35. शङ्करविजयविलास–चिद्विलास 36. शङ्करदिग्विजय सार-सदानन्द 37. गुरुपरम्परा चरित्र (दो भाग)–हिङ्गोली गोपाल शास्त्री 33. शङ्करविजय–व्यासाचलीय (कुछ पुस्तकों में इसे विद्याशङ्कर उर्फ शङ्करानन्द अथवा व्यासाचलीय कहा है। डा. आफ्रेक्ट व्यासाचल को व्यास गिरि कहते हैं।) 39. शङ्करविजय अथवा आचार्य चरित्रम् अथवा केरळीय शङ्कर विजय–गोविन्दनाथ 40. शङ्करविजय या गुरुविजय या आचार्य विजय–अनन्तानन्दगिरि उर्फ आनन्दगिरि (कलकत्ता प्रकाशित) 41. शङ्करविजय–आनन्दगिरि (हस्तलिपि प्रति–काशी रामतारक मठ जो प्रति कुम्भकोणमठ के ग्रंथ से मिलने जुलने की कथा सुनाई जाती है।) 42. आनन्दगिरि शंकरविजय–मदरास मुद्रित 43. शंकर विजय या आचार्य दिग्विजय–वल्लीसहाय 44. शंकरविजयसार–बृजराज (मिर्जापुर) 45. शङ्कराचार्य चरित्र–नीलकण्ठ नम्बी 46. शङ्कराभ्युदय-राजचूडामणि दीक्षित 47. पतञ्जली विजय–रामभद्र दीक्षित 48. श्रीमुख दर्पण–शिवरामसूरी 49. श्रीमुखव्याख्या–गुर्रम वेङ्कण शास्त्री 50. राजतरङ्गिनी–कल्हण 51. नैषध–श्रीहर्ष 52. सिद्धान्त पत्रिका–रामानुज अय्यङ्गार।

(5) **उपर्युक्त भागों की पुस्तक जो श्री शङ्कराचार्य जी के जीवन चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखता**—53. कथासरित सागर—सोमदेव शर्मा 54. राजतरङ्गिनी—कल्हण 55. नैषध—श्री हर्ष।

(6) **कुम्भकोणमठ से रचित एवं प्रकाशित एकङ्गि पुस्तक**—56. प्राचीन शङ्करविजय—मूक शङ्कर 57. पुण्यश्लोक मञ्जरी–सदाशिव बोध 58. परिशिष्ठ—आत्मबोध 59. गुरुरत्नमाला—सदाशिवब्रह्मेन्द्र (परमशिवेन्द्र मठाधीष के शिष्य) 60. सुषमा-आत्मबोध (अद्वैतात्मप्रकाश मठाधीष के शिष्य)।

उपर्युक्त कहे पुस्तकों के विषय में एक पुस्तक जो कुम्भकोणमठाधीष के अनुमति से रचित एवं मठाधीष को अर्पित है, उसमें यों उल्लेख है—

[क] 'पुस्तकें जो कहीं मिलती नहीं और जो देखी नहीं' – नं० 3, 7, 11, 13, 20, 23 व 29.
[ख] 'पुस्तकें प्रस्तुत कहीं मिलती नहीं'—नं० 9, 10, 12, 21, 22, 24 व 27.
[ग] 'पुस्तकें जो देखी नहीं'—नं० 15, 16, 18, 19, 30, 36, 38, 41 व 46.

यद्यपि उपर्युक्त पुस्तकें अदृष्टम्, अज्ञातम्, अश्रुतम्, अप्राप्तम् कोटी के हैं तथापि कुम्भकोणमठाभिमानियों ने श्लोक व पक्तियां उद्धृत कर इन पुस्तकों को प्रमाण में प्रचार करते हैं। पाठकगण स्वयं इस रहस्य का तात्पर्य्य जान लेंगे। अनुपलब्ध पुस्तकों से श्लोक व पक्तियां किस प्रकार उद्धरण किया जा सकता है?

वेद—कुम्भकोण मठाधीष ने अपने भाषण में कहा है कि ऋग्वेद के कुछ मंत्रों द्वारा श्रीशङ्कराचार्य का अवतार संकेतित होता है। आगे आप कहते हैं कि इसी प्रकार श्रीरुद्राध्याय में 'व्युप्तकेशाय' के अर्थ में कहा कि यह भी शङ्कराचार्य के अवतार का ही संकेत करता है। रुद्रभाष्य में इस मंत्र की व्याख्या में पुराणों का वचन 'चतुर्भिः सहशिष्यैस्तु शङ्करोऽवतरिष्यति' का उप प्रमाण देकर बतलाया है। इसी प्रकार अन्य एक मतावलम्बि 'नमः कपर्दिनेच' का अर्थ करते हुए कह सकता है कि यह भी उनके आचार्य के अवतार का संकेत करता है। अन्य मतावलम्बियों ने जब अपने अपने मत का श्रेष्ठत्व सिद्ध करने के लिये वेदों से कुछ पदों को लेकर अपनी व्याख्या से अपने अपने मतों की पुष्ठि करना प्रारम्भ किये, वही रुख व हवा अब अद्वैत मतावलम्बियों को लगने लगा और वे भी वेद के वाक्यों से अपने श्रेष्ठत्व का प्रचार करने लगे। आचार्य शङ्कर का शंकरांश अवतार होने से उनका श्रेष्ठत्व उनका जन्म क्रीडा व उनके द्वारा पुनः प्रतिष्ठित अद्वैत मत ही बोध कराता है। इसके लिये प्रमाण ढूंढकर उसे प्रचार करने की आवश्यकता ही नहीं है। इन प्रमाणों द्वारा आचार्य शङ्कर का जीवन चरित्र सम्बन्ध कुछ नहीं मालूम होता है और इन प्रमाणों से सिद्ध नहीं कर सकते कि कांची कुम्भकोण मठ श्रीआचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित है। 'मम तेजोंऽश सम्भवम्' इस भगवदुक्ति के प्रमाण से प्रत्येक महात्माजन कम या अधिक प्रमाण में ईश्वरांश होता है। समाज में धार्मिक परिवर्तन करने के लिये श्रीशङ्कर का अवतार हुआ था। महाशक्ति संपन्न, दिव्यतेजः पुंज, शङ्करांश-सम्भूत, दिव्य विभूति श्रीआद्यशङ्कराचार्य थे और आपके लिये वेद प्रमाण से अवतार पुरुष होने का विषय सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं है।

पुराण—लिङ्ग, कूर्म, वायु, सौर, भविष्योत्तर आदि पुराणों में कहा जाता है कि श्रीशङ्कराचार्य जी के अवतार का विषय संकेत की गयी है। पर वास्तव में ये सब श्लोक उसी पुराण के हैं अथवा आधुनिक काल के किसी विद्वान द्वारा क्षित किये गये हैं, सो परमात्मा ही जानें। चाहे जो हो, इन पुराणों में आचार्य शङ्कर का जीवन लीला वर्णन विस्तारंपूर्वक नहीं मिलते, अस्मात् ये सब हमारे चरित्र विमर्शन के उपयोगी नहीं हैं। भविष्योत्तर पुराण में कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर का अवतार का संकेत किया गया है। पर विज्ञ पाठकगण जानते हैं कि यह भविष्योत्तर पुराण कितना प्रामाणिक लिया जा सकता है। इस पुराण में इतने अशुद्धियां एवं क्षिप्त विषय भरे हुए हैं कि देखने मात्र से घृणा होती है। पांच सौ वर्ष पूर्व घटित घटनाओं का भी उल्लेख पाया जाता है। आचार्य शङ्कर के बारे में ऐसा कोई जीवन चरित्र नहीं दिया गया है जिसके आधार पर आचार्य के जीवन की लीला का वर्णन किया जा सके। भविष्य पुराग के मध्यम पर्व, चतुर्थ खण्ड के दसवें अध्याय में शङ्कराचार्य का वर्णन यों है—'भैरव दत्त विप्र के पुत्र रूप से शङ्कर का अंशावतार हुआ और वह पुत्र शङ्कराचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ, उसने शङ्कर भाष्य लिखकर शैवमार्ग का समर्थन

किया।' यद्यपि भविष्य पुराण में इस प्रकार की कथा पीछे से मिलाई गई है, इसमें सन्देह नहीं, पर यह निराधार एवं अन्य ग्राह्य प्रमाणों के भी विरुद्ध हैं और यह श्रेष्ठों को ग्राह्य न था और न है। वृद्ध परम्परागत चले आये कथा के विरुद्ध भी है। वायु पुराण के श्लोक ही भविष्योत्तर पुराण में भी उद्धृत हुआ है—'चतुर्भिस्सहशिष्यैस्तुशङ्करोऽवतरिष्यति'। यही श्लोक अन्य पुराणों में भी पाये जाते हैं। मालूम होता है कि इष्टसिद्धि प्राप्त करने के लिये तब तब विद्वान लोग बराबर पुराणों में जोडते हुए आये हैं।

पद्मोत्तर पुराण में 64 अध्याय हैं। इस पुराण के 42 वें अध्याय में भगवान शिव अपने पत्नी पार्वती को कहते हैं कि कलियुग में अनेक मतों का प्रचार होगा और आप स्वयं ब्राह्मण कुल में अवतीर्ण होकर सर्व मतों को खण्डन कर अद्वैत मत का स्थापन करेंगे। मदरास के अडयार पुस्तकालय में हस्तलिपि प्रति उपलब्ध है और कहा जाता है कि यह 350 वर्ष पूर्व लिखा लेखन काल है। इस ग्रन्थ का तेलुगु भाषा अनुवाद प्रति करीब 250 वर्ष पूर्व का है। विज्ञान भिक्षु अपने सांख्य सूत्र भाष्य में इस पुराण के कुछ श्लोकों को उद्धृत कर कहते हैं कि ऐसे प्रामाणिक पुराण ग्रन्थों में भी आचार्य शङ्कर के विरुद्ध (अपचार युक्त) लिखा हुआ है। द्वैतमतावलम्बि विद्वानों ने इन श्लोकों को पद्मोत्तर पुराण से उद्धृत कर अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। कुछ विद्वान पुराण रूप में पद्मपुराण का श्लोक 'मायावाद मसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते। मयैव कथितं देवी कलौ ब्राह्मण रूपिणा' उद्धृत कर आचार्य शङ्कर के मायावाद को बौद्ध दर्शन का औपनिषद संस्करण मानते हैं। आचार्य शङ्कर को प्रछन्न बौद्ध भी कहते हैं। ऐसे अपचार युक्त विषय केवल आधुनिक काल के कुछ लोग जो अद्वैत विरोधी हैं उनके द्वारा क्षिप्त किया गया होगा। इसी प्रकार भार्गव पुराण में 34 वें अध्याय में श्रीरामानुजाचार्य का वर्णन में भी उस मत के विरोधी द्वारा कुछ श्लोकें क्षिप्त किये गये हैं। इन उदाहरणों से मेरा अभिप्राय है कि जब किसी महान की स्तुति या निन्दा करना हो तो स्वार्थ सिद्ध प्राप्त करनेवालों द्वारा अपने अपने हित के लिये पुराणों में क्षिप्त करते हुए आ रहे हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि ये सब पुराण प्रमाण नहीं है पर इन पुराणों के आधार पर निश्चित रूप से निःसन्देह किसी विषय की पुष्टि नहीं किया जा सकता है। इन प्रमाणों से केवल सिद्ध विषयों की पुष्टि की जा सकती है न कि इन्हें मूल व मुख्य प्रमाण माना जा सकता है। पुराण मूल प्रमाण हैं पर ऐसे क्षिप्त श्लोक या कहे जानेवाले उद्धरित श्लोक मूल प्रमाण नहीं हो सकते। ऐसे पुराणों में भी यह नहीं कहा गया है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठस्थापन कर वहीं अधिष्ठित भये।

मार्कन्डेय पुराण—कुम्भकोण मठ के प्रचारक द्वारा रचित पुस्तक में मार्कन्डेय पुराण के नाम से कुछ श्लोक उद्धृत हैं। कुम्भकोण मठाभिमानियों का प्रचार है कि इस पुराग में आचार्य शंकर द्वारा प्राप्त पांच लिङ्गों का वर्णन, उनका प्रतिष्ठा एवं कांची में योग लिङ्ग की प्रतिष्ठा आदि विषयों का उल्लेख है। मार्कन्डेय पुराण अष्टादश पुराण में एक है। मैं ने सात प्रतियां छःस्थानों से मंगवा कर संपूर्ण पुस्तक ढूंढा पर कहीं भी कुम्भकोण मठ द्वारा उद्धृत श्लोक मिला नहीं ('शिवलिङ्गं प्रतिष्ठाप्य चिदंबर सभातले' से प्रारम्भ होकर अन्त पंक्ति 'श्री शारदाख्यपीठे शिवलिङ्ग भोगनामकं चक्रे' तक)। मैं ने श्री भारतधर्ममहामण्डल, काशी, द्वारा प्रकाशित पुस्तक एवं बम्बई मुद्रित मार्कन्डेय पुराण तथा मेरे पूर्वजों से संग्रहित पुस्तक (हस्तलिपि) मार्कन्डेय पुराण प्रतियों को छानबीन कर देखा पर कहीं भी कुम्भकोण मठ से प्रचारित श्लोकों को न पाया और मठ के प्रचार कथा का नामो निशान नहीं था। सम्भवतः मार्कन्डेय पुराण का श्लोक कुम्भकोण मठ द्वारा कल्पित हस्तलिपि पुराण प्रति में होगा? जो विषय देखा नहीं जा सकता, पढा नहीं जा सकता, सुना नहीं गया और अन्यत्र इसका उल्लेख भी पाया नहीं जाता, वैसे ग्रंथों का क्या प्रामाणिकता है? कुम्भकोण मठ के प्रचारानुसार श्री आचार्य शङ्कर व अपने शिष्य सुरेश्वर सहित सशरीर कैलास गमन किये और देवादिदेव

महादेव का स्तुति कर पांच लिङ्गो एवं सौन्दर्यलहरी को वहां से भूलोक लाये। ये सब विषय विवादास्पद हैं एवं केवल कुम्भकोण मठ द्वारा ही प्रचारित यह कल्पित कथा है तथा अन्य किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन शंकर विजय ग्रंथों में इसका उल्लेख पाया नहीं जाता। ऐसे आधार रहित विवादास्पद विषय को जो इस पुराण में उल्लेख होने का प्रचार कर रहे हैं, इन श्लोकों को कहां तक प्रामाणिक माना जाय।

इस पुराण के आधार पर यदि मान भी लें कि योग नामक लिङ्ग की प्रतिष्ठा कांची में हुई थी पर स्कान्द पुराण में योगेश्वर लिङ्ग का वर्णन 'प्रभासक्षेत्र' में किया है। त्रिस्थली में काशी के विश्वेश्वर लिङ्ग को योगेश्वर कहा है। नैपाल व केदार सीमा में योगेश्वर लिङ्ग होने का भी प्रमाण मिलता है। इन सब कथनों में किसे यथार्थ माना जाय। सातवीं व आठवीं शताब्दी के आचार्य शंकर से कहेजानेवाले लिङ्गों की प्रतिष्ठा विवरण के साथ कहेजाने-वाले पुराणोक्त लिङ्गों की प्रतिष्ठा से सम्बन्ध किस प्रकार किया जाय? क्या मार्कन्डेय पुराण अर्वाचीन काल का ग्रंथ है?

कुम्भकोणमठाधीष के मदरास वक्तव्य द्वारा मालूम होता है कि 'रुद्रकोटी संहिता' भी एक ग्रंथ है जिसे आप प्रमाण में प्रचार करते हैं। जिस प्रकार अर्वाचीन पंथों व मतों के प्रकाशित पुस्तकों में नवीन ग्रंथों के नाम पाये जाते हैं और नवीन श्लोक प्रमाण रूप से दिये जाते हैं, उसी प्रकार यह भी एक ग्रंथ है। किसी ने नाम भी न सुना है। क्या यह तांत्रिक या पुराण या उपपुराण या इतिहास या काव्य पुस्तक है? इस ग्रंथ का लेखक एवं काल के विषय में कोई जानता नहीं है। ऐसे अनामधेय ग्रंथों को किस प्रकार प्रामाण्य माना जाय। कुम्भकोणमठ को छोडकर इस भारतवर्ष में कहीं भी यह पुस्तक उपलब्ध नहीं होता। एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोणमठाधीष की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें इस पुस्तक के बारे में लिखा है 'न उपलब्ध है या न मैं ने देखा है'। ऐसे पुस्तकों को प्रमाण रूप में कैसे माना जाय? यदि मान भी लें तो क्या इस पुस्तक में कांची मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित लिखा है? ऐसा तो कुम्भकोण मठ के प्रचारों से दीख नहीं पडता। समय समय पर स्थान स्थान पर अश्रुतं अज्ञातं कोटी के नवीन ग्रंथों का नाम बताकर अपना काय सिद्धि के लिये लोगों को भ्रम में डालकर अपनी इच्छा पूर्ति करने का यह एक मार्ग प्रतीत होता है।

कुम्भकोण मठ कें कुछ पुस्तकों में मार्कन्डेय पुराण के बदले 'मार्कन्डेय संहिता' का उल्लेख है। कहे जाने वाले मार्कन्डेय संहिता से उद्धृत श्लोकों को कुम्भकोण मठ द्वारा पूर्व कहे हुए 'मार्कन्डेय पुराण' के उद्धृत श्लोकों से तुलना किया तो मैं ने भेद न पाया, केवल कुछ पदों के परिवर्तन एवं कुछ नवीन छंदों का जोड आदि पाया। जो सब श्लोक मार्कन्डेय पुराण में होने का कहते हैं वे सब मार्कन्डेय संहिता में भी उपलब्ध हैं। कुम्भकोण मठ के लिये मार्कन्डेय पुराण ही मार्कन्डेय संहिता हो या मार्कन्डेय संहिता को ही पुराण के नाम से भ्रामक प्रचार करते हों। मार्कन्डेय संहिता अष्टादश पुराण व उप पुराण में नहीं गिने जाने के कारण एवं इस पुस्तक की गण्यता व प्रामाणिकता बढाने के लिये 'संहिता' की जगह 'पुराण' कहकर मिथ्या प्रचार किया जा रहा है। कुम्भकोण मठाधीष ने अपने मदरास वक्तव्य (1—11—32) में इस 'मार्कन्डेय संहिता' को ब्रह्माण्ड पुराणान्तरगत तीसरा परिस्कन्द बताया है पर आपके मठ द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकों में कहीं सातवां परिस्कन्द एवं कहीं आठवां परिस्कन्द समयानुसार बताकर उल्लेख किया गया है। ईश्वर जाने इसमें कौनसा सत्य है। संपूर्ण ब्रह्माण्ड पुराण कहीं भी उपलब्ध नहीं है। अनेक पुस्तकालयों के सूचीपत्रों (Catalogues) को देखा पर कहीं भी मार्कन्डेय संहिता मिला नहीं। एक पुस्तकालय में एक से तीस अध्याय पूर्ण एवं 31 वां अध्याय अपूर्ण (2530 श्लोक) प्रति मिला। इसे पांचरात्रागम के एक संहिता माना गया है। यहां श्री मार्कन्डेय महाराजा पृथु को कथा सुनाते हैं।

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित मार्कन्डेय संहिता में आचार्य शंकर का जन्म स्थल कालटी का नाम उल्लेख है, पिता का नाम शिवगुरु का भी उल्लेख है—'लोकानुग्रह तत्परः ... ... श्री शंकराख्यां वहन्'। कुम्भकोण मठ आनन्दगिरि शंकरविजय पुस्तक को प्रमाण रूप में प्रचार करते हैं जिसमें शंकर का जन्म स्थल चिदम्बर बताया गया है और पिता माता का नाम विश्वजित विशिष्ठा का उल्लेख है। काशी में 1935 ई० में जब यह प्रश्न उठा और कुम्भकोण मठाभिमानियों एवं प्रचारकों से पूछा गया तो उत्तर मिला (काशी प्रकाशित पुस्तक में) 'चिदम्बर पदमपि कालटी नामान्तरम्, विश्वजित्पदं शिवगुरुनामान्तरं, विशिष्ठापदं च सतीनामान्तरं' अतएव आनन्दगिरि का कथन ठीक है। इस विषय का विमर्श पाठकगण आगे पायेंगे। यह विषय यहां इसलिये दिया जाता है कि पाठकगण जान लें कि जब जब ऐसे असौकर्य प्रश्न पूछे जाते हैं तब तब विलक्षण उत्तर भी दिये जाते हैं। यथार्थ का प्रचार किया जाय तो ऐसे उत्तर देने की आवश्यकता भी न पडती। कुम्भकोण मठ के प्रचारकों को याद रहे 'तर्क्यतां नतु कुतर्क्यताम्'।

यह भी सुना जाता है कि इस संहिता में स्पष्ट उल्लेख है कि श्रीशङ्कर ने कामाक्षी देवी की उग्रता शान्त कर श्री चक्र की पुनः स्थापना करके वैदिक मार्ग की पूजा प्रारम्भ कराया—'महात्रिपुरसुन्दरीरमण ... ... शङ्करार्यगुरुम्'। इस ग्रंथ में आचार्य शङ्कर द्वारा शृङ्गेरी एवं कांची में मठ स्थापना का वर्णन है। पर आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार चार मठों की स्थापना की थी और मार्कन्डेय संहिता पूर्वाम्नाय पूरी, पश्चिमाम्नाय द्वारका एवं उत्तराम्नाय बद्री मठों का उल्लेख नहीं करता है। क्या इससे यह निर्णय किया जाय कि आचार्य ने उपर्युक्त तीन आम्नायों में तीन मठों की स्थापना न की थी? इसी से स्पष्ठ मालूम होता है कि जिस व्यक्ति ने इस ग्रंथ को तैय्यार किया था या जिस विद्वान ने स्वरचित इन श्लोकों को जोड दी थी उसका ध्येय केवल कांची मठ का प्रमाणाभास तैय्यार करना था। इसकी पुष्टि निम्न कारणों से की जा सकती है। 'मार्कन्डेय संहिता' को पूर्ण पढें तो प्रथमतः ही मालूम पडेगा कि इसकी शैली, छन्द निर्माण, पदप्रयोग सब अर्वाचीन काल का नवीन कल्पित पुस्तक है। सारा ग्रंथ जहां आचार्य का चरित्र वर्णन है वह सब एकाङ्गि एवं पक्षपातयुक्त केवल कांची मठ की महिमा ही गायी है। इसमें कहा गया है कि यदि कोई 'कांचीकामकोटी' का निरादर करें तो वह व्यक्ति, महा अपराधी पुरुष, दण्ड के योग्य है और जो आदर करे वह धन्य है एवं परमसुख प्राप्त करेगा। इसमें दो श्लोक हैं जिसमें स्पष्ठ लिखा है कि कांची कामकोटि कुम्भकोण मठाधीप न केवल साधारण जन समुदाय द्वारा आदरणीय हैं पर ब्रह्मा विष्णु द्वारा भी पूजित व आदरणीय हैं। 'श्रीकांची कामकोटीनिलयशशिकलोत्तंसपूजाधुरीणं, पारीणं श्रीकलायाः परमगुरुपदाधीश्वरं योगिराजम्। ये वा नार्चन्ति भूमौ शुभतरपरमाद्वैतसिद्धान्तमार्गोद्योतं श्रीराज्यसिंहासनपददमहो पामरास्ते पतन्ति॥ कांचीपीठाधिपं ये यतिपतिमखिला चार्यमाखण्डल श्रीसंपन्नं पन्नगारिध्वजविधिहरिभिर्भाव्यमानं शरण्यम्। ते सातत्यं रमन्ते कलशजलधिजायुरारोग्ययुक्ताः स्थानेष्वानन्दभूमस्वनवरतशुभैश्वर्यभाजो महीपाः॥" ऐसे पक्षपातयुक्त ग्रंथ जो नवीन कल्पित है किसप्रकार पुराण में गिना जाय? क्या ये वचन श्री व्यास के थे? अब कुछ वर्षों से कुम्भकोणमठ अपने प्रचार पुस्तकों में इन सब श्लोकों को उद्धृत नहीं करते क्यों कि स्वयं उनको मालूम होगया है कि इन श्लोकों से उनके प्रचारों की पुष्टि नहीं होती। इस संहिता की भाषा, शैली, छन्द, विषय सब स्पष्ठ सिद्ध करता है कि ये सब श्लोक नवीन कल्पित क्षिप्त हैं।

कुम्भकोण मठ द्वारा पांच लिङ्गो की कल्पित कथा वर्णन भी इस संहिता में पाया जाता है। यह विषय विवादास्पद है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि पांचलिङ्गो की कथा विवरण का मूल शिवरहस्य है। पाठकगण शिवरहस्य पर विमर्श आगे पायेंगे। इस कहेजानेवाले शिवरहस्य श्लोक के अर्थ में अनुसन्धान व विज्ञ विद्वानों का अभिप्राय है कि शिवोपासन एवं लिङ्ग पूजा से योग, भोग, वर, मुक्ति व मोक्ष फल प्राप्त किये जा सकते हैं न कि पांच लिङ्गो की

नाम दी गई है। यदि मान भी लें कि योगलिङ्ग का प्रतिष्ठा कांची में हुआ तो इसके आधार पर किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है कि आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार मठ की प्रतिष्ठा भी की थी। आचार्य शङ्कर रचित 'मठाम्नायोपनिषद' में कांची मठ का या आपके आम्नाय पद्धति का उल्लेख नहीं है। आचार्य शङ्कर ने इस भारतवर्ष में अनेक मन्दिरों का निर्माण, देवदेवी प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार की थी तो क्या कहा जाय कि हर एक स्थान में आपने आम्नाय मठ की भी स्थापना की थी? मार्कन्डेय संहिता में उल्लेख है कि चिदम्बर में एक लिङ्ग, केदार नीलकण्ठ क्षेत्रों में एक एक लिङ्ग, शृङ्गेरी में भोग लिङ्ग एवं काञ्ची में 'सर्वोच्च सर्वोत्तम योग लिङ्ग' का प्रतिष्ठा की थी। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार मान लें कि योगलिङ्ग के प्रतिष्ठा से कांची में मठ की स्थापना भी हुई थी तो क्यों नहीं चिदम्बर, नीलकण्ठ व केदार क्षेत्रों में मठों की स्थापना हुई? पूर्वाम्नाय गोवर्द्धनमठ, पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ एवं उत्तराम्नाय जोशी मठ में भी चन्द्रमौळीश्वर लिङ्ग का पूजा सेवन आचार्य शङ्कर के समय से आज पर्य्यन्त चला आ रहा है तो क्यों नहीं इन चन्द्रमौळीश्वर लिङ्गों को पांचलिङ्गों में गिन्ती न की जाय? यदि कुम्भकोण मठ इस बटवारा को मान लें तो यह सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने स्वप्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों को चार लिङ्ग देकर पश्चात् एक लिङ्ग चिदम्बर में प्रतिष्ठा की थी और कांची में योग लिङ्ग का लोप हो जाता है। पाठकगण अब जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ के कल्पित लिङ्गो का बटवारा विवरण में क्या मर्म है? पांच लिङ्गों में तारतम्य कैसे हो सकता है? योग लिङ्ग को ही कुम्भकोण मठ अपने प्रचार पुस्तकों में क्यों "सर्वोच्च सर्वोत्तम" कहते हैं? क्या भोग, वर, मुक्ति व मोक्ष लिङ्ग उत्तम नहीं हैं? क्या ये नीचे श्रेणी के लिङ्ग हैं? ऐसे तो मोक्ष लिङ्ग सर्वोत्तम होना था चूं कि आध्यात्मिक दृष्टि से हर एक व्यक्ति मोक्ष पाने का ही इच्छुक है और यह पद सर्वोत्तम ध्येय का बोध कराता है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि इस ग्रंथ के 72 काण्ड परिस्पन्द 7 व 8 में शंकराचार्य का निर्याण स्थल कांची बतलाया है। यह विषय अन्य ग्राह्य प्रमाणों के विरुद्ध, वृद्ध परम्परागत सिद्ध विषय के विरुद्ध तथा अन्य विज्ञों द्वारा अग्राह्य होने के कारण, कांची को किस प्रकार शंकर का निर्याण स्थल समझा जाय? अवश्य ही यह श्लोक क्षिप्त है। मूल आनन्दगिरि शंकर विजय का एक परिशोधित परिष्कृत्य संस्करण 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में जब तैय्यार किया गया था, उसी समय उक्त परिशोधित संस्करण के बदले हुए विषयों की पुष्टि के लिये मार्कन्डेय संहिता, क्षिप्त शिवरहस्य, आदि ग्रंथ तैय्यार किये गये थे। इस विषय का विमर्श पाठकगण इस अध्याय के आगे और अन्य अध्यायों में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित मार्कन्डेय संहिता में स्पष्ठ उल्लेख है कि श्री सुरेश्वर कांची मठाधीष होने अर्ह थे ('श्री देशिकः पद्मपदं स्वशिष्यं...सशंकरार्यः। सुरेश्वराचार्यवरं स्वशियं...नियोज्य चक्रेऽस्यधराधिपत्यम्।') पर कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र ने 'सुषमा' में श्री सुरेश्वर को मठाधीष होने की योग्यता न थी ऐसा उल्लेख किया है। वर्तमान कुम्भकोणमठाधीष अपने भाषण में इसकी पुष्टि भी की है। कुम्भकोण मठ के मार्कन्डेय संहिता में एवं कुम्भकोण मठ के परिष्कृत्य आन्दगिरि शंकरविजय में स्पष्ठ उल्लेख है कि सुरेश्वराचार्य योगलिङ्ग पूजा के लिये नियोजन किये गये थे (मा. स.—'प्रतिष्ठाप्य सुरेशार्यं पूजार्थं युयुजे गुरुः।' आ. श. वि. 'सुरेश्वरं आहूय योगनामक लिङ्ग पूजय इति तस्मै दत्वा त्वं अत्र कामकोटी पीठं अधिवस इति अवस्थाप्य ... ...')। पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि सुरेश्वराचार्य योगलिङ्ग की पूजा करने योग्य न थे, अतः आचार्य शंकर ने सर्वज्ञात्म श्री चरणेन्द्र को लिङ्ग देकर पूजा सेवा करने को कहा था। इन दोनों भिन्न कथनों में कौन सत्य है? समय समय भिन्न कथायें सुनाने से एवं असत्य को सत्य का रूप रङ्ग देकर प्रचार करने से इसका फल यही होता है।

कुम्भकोण मठ के मार्कन्डेय संहिता एवं कुम्भकोण मठ द्वारा परिशोधित एवं परिष्कृत्य आनन्दगिरि शंकरविजय में पद्मपाद को शृङ्गेरी में बैठाने की कथा सुनाया जाता है। कुम्भकोण मठ के परम प्रामाण्य पुस्तक गुरुरत्नमाला के अनुसार पूर्व में अपने से प्रचारित पुस्तकों में प्रचार किया गया था कि 'पृथ्वीधव और विश्वरूप' जो शृङ्गेरी मठाधीश थे उनकी प्रार्थना पर श्री सुरेश्वर शृङ्गेरी जाकर कुछ दिन वास किये थे। अर्थात् आपका प्रचार था कि विश्वरूपाचार्य और सुरेश्वराचार्य दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। जब अनेक अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि विश्वरूपाचार्य ही सुरेश्वराचार्य थे तब से यह नवीन प्रचार (मार्कन्डेय संहिता एवं परिष्कृत्य आनन्दगिरि शंकरविजय द्वारा) शुरू हुआ कि शृङ्गेरी के प्रथमाचार्य पद्मपादाचार्य थे। इन सब कल्पित विषयों का विमर्श पाठकगण आगे के अध्यायों में पायेंगे।

इस 'मार्कन्डेय संहिता' का दूसरी प्रति न उपलब्ध होने के कारण (सारे भारतवर्ष में हस्तलिपि अथवा मुद्रित प्रति कहीं भी उपलब्ध न होने एवं सार्वजनिक को यह ग्रंथ अश्रुतम अज्ञातम अदृष्टम होने के कारण), कुम्भकोण मठ द्वारा अपने हित के लिये रचना कर अपने मठ में रखने के कारण, अत्यन्त पक्षपाती व श्रेष्ठों को अग्राह्य होने के कारण, इस पुस्तक में कांची छोडकर अन्य आम्नायानुसार मठ स्थापना का विवरण न देने के कारण एवं इसमें उल्लेखित विषय अन्य प्रमाण ग्रंथों द्वारा या वृद्ध परम्परागत आचारविचारों के विरुद्ध होने के कारण, इसको मूल प्रमाण रूप में मानकर विवादास्पद विषयों का निर्णय करना मूर्खता होगा। मेरा अभिप्राय पुराणों को अप्रमाणिक ठहराना नहीं है पर मैं उन श्लोकों को, पंक्तियों को एवं नवीन विषयों का जोड बदलना एवं विवादास्पद करा देना तथा पामर लोगों को इन भ्रामक प्रचारों से भ्रम में डालदेना आदि को ही खण्डन करता हूं और इन विषयों को प्रमाण में नहीं मानते। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि यह ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत है और ब्रह्माण्ड पुराण अष्टादश पुराणों में एक है और श्री व्यास से रचित है। कुम्भकोण मठ के मार्कन्डेय संहिता को पढें तो मालूम होगा कि क्या यथार्थ में श्री व्यास मुनि ऐसे अनर्गल लिख सकते हैं?

कुम्भकोण मठ वाले भैरव पुराण व ब्रह्माण्ड पुराण का भी उल्लेख करते हैं। ईश्वर जाने और कितने पुराणों में शंकर चरित्र का वर्णन किया गया है। यदि इन सब पुराणों में कुम्भकोण मठ का वर्णन हो तो क्यों यह विवाद खडा हुआ? 'अधेनु धेनुमिति ब्रयात्' न्याय के अवलम्बन से और कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचार से यह विवाद उठ खडा हुआ। मठ प्रचारकों की क्या विद्वत्ता है कि एक प्रचार पुस्तक में प्रचारक लिखते हैं कि केरळोत्पत्ति, जिनविजय, मध्वविजय, मणिमंजरी व मणिमंजरिभेदिनी आदि पुस्तक पुराण तुल्य हैं और इन पुस्तकों से भी चरित्र विवरण मिलता है। इन प्रचारकों को धन्यवाद है कि वे यह न लिख गये कि ये सब पुस्तकें अद्वैतियों के लिये ग्राह्य एवं आदरणीय है।

शिवरहस्य—यह निश्चय अभी तक न हुआ कि क्या यह पुलकाय ग्रंथ इतिहास है, पुराण है, उपपुराण है, मतप्रक्रिया स्वतंत्र ग्रन्थ है? कुम्भकोण मठाधीश अपने मदरास भाषण में कहा कि यह शिवरहस्य एक इतिहास एवं द्वैतग्रंथ है और यह एक लक्ष ग्रंथ संयुक्त है। शिवरहस्य ग्रंथ का उल्लेख नीचे दिये हुए स्थानों में पाये जाते हैं :—

1. श्रीयुत राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा रचित संस्कृत हस्तलिपि ग्रंथों की सूची, कलकत्ता ,1871—90 ई०।
2. श्री एफ्. कीलहार्ण द्वारा संपादित दक्षिणी बम्बई के संस्कृत हस्तलिपि ग्रंथों का सूचीपत्र—बम्बई 1869 ई०।

मध्य प्रदेश के संस्कृत हस्तलिपि ग्रंथों की सूची—1874 ई०।

3. गुजरात, काठ्यावाड, सिन्ध देश के प्राइवट पुस्तकालयों में ग्रंथ प्राप्त होते हैं।
4. लन्डन इन्डिया आफीस पुस्तकालय में ग्रंथ उपलब्ध है।
5. कालमाधव (1809 शक) में निर्देशित है।
6. मद्रास प्रान्त के मदुरा व तिरुनेलवेली जिलों में विद्वानों के निज पुस्तकालय में उपलब्ध हैं।
7. काशी राजकीय संस्कृत कालेज सूचीपत्र।
8. लाहोर राजकीय संस्कृत कालेज—सूचीपत्र।
9. श्री 1008 श्री जगद्गुरु गोवर्धन मठाधीष श्री भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज द्वारा संग्रहित तीन प्रतियां।
10. मदरास अडयार पुस्तकालय। आदि।

काशी राजकीय संस्कृत कालेज के सूचीपत्र में शिवरहस्य को पुराणान्तर्गत कहा है। यदि पुराणान्तर्गत मान भी लें तो पता नहीं चलता कि यह अष्टादश पुराण के किस पुराणान्तर्गत है ? इसके रचयिता का नाम भी निःसन्देह अभी तक निर्धारित नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि यह स्कान्दपुराणान्तर्गत है। यदि ऐसा मान लें तो क्या शिवरहस्य के रचयिता श्री व्यास थे ? विद्वानों का अभिप्राय है कि स्कान्दपुराण केवल एक लक्ष ग्रंथों का है जिसे श्री व्यास ने रचा है। मालूम नहीं होता कि किसप्रकार यह शिवरहस्य जो एक लक्ष ग्रंथ का है उसे एक लक्ष ग्रंथ स्कान्दपुराण में मिला दिया गया ? क्या स्कान्दपुराण दो लक्ष ग्रंथों का ग्रंथ है ? मत्स्य पुराण में उल्लेख है कि स्कान्दपुराण अष्टादश पुराण में एक है और 31000 ग्रन्थों का है। यह सबको विदित है कि किसी स्थल या महान् की महिमा बढाने के लिये उस उस स्थल पुराण को स्कान्दपुराण में मिलाकर एवं उस स्थल महिमा का प्रामाणिकता स्कान्दपुराण में कहे जाने का घोषित कर स्कान्दपुराण को एक पुलकाय ग्रन्थ बना दिया गया है। ऐसे परिवर्तित जोड वदल ग्रन्थों के आधार पर किसी विवाद का निर्णय करने में इन क्षिप्त ग्रन्थों को मूल प्रमाण मानना भूल होगा।

लाहोर राजकीय संस्कृत कालेज द्वारा प्रकाशित सूचीपत्र में इस शिवरहस्य को इतिहास माना है। इसमें और एक नवीन नाम भी दिया है। इस शिवरहस्य को कुछ लोग 'शिवधर्मसार' के नाम से भी पुकारते हैं। सूची में इतिहास शीर्षक के नीचे 'शिवरहस्य' उल्लेख कर, रचयिता का नाम व काल 'अनजान (Unknown)' लिखा है। यहां आठ से बारह अंश ही उल्लेख है। यहां नवमांश के पांच अध्याय ही प्राप्त होते हैं। यह ग्रंथ अपूर्ण है।

दक्षिणीभारत तिरुनेलवेली जिले के अडचानी ग्राम के एक विद्वान के यहां एक ताळपत्र पर लिखित शिवरहस्य (अपूर्ण) ग्रंथ मिला। इसमें उल्लेख है कि यह ग्रंथ 12 अंश का 695 आध्यायों तथा 93000 ग्रंथ युक्त है। मदुरा जिला शोलवन्दान से प्राप्त हस्तलिपि प्रति में उल्लेख था कि यह ग्रंथ 12 अंश का 628 अध्यायों तथा 100003 ग्रंथ युक्त है। एक मुद्रित शिवरहस्य पुस्तक के भूमिका में उल्लेख था कि यह ग्रंथ 12 अंश के हैं पर 1000 अध्याय तथा 95000½ ग्रन्थ युक्त का है। श्री 1008 श्री जगद्गुरु गोवर्धन मठाधीष श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने 1936 ई० में लिखा था कि यह शिवरहस्य अनेक जगह उपलब्ध हैं पर 12 अंश का इस ग्रंथ के अध्यायों एवं ग्रंथ संख्या का निश्चय रूप से निर्धारित किया नहीं जा सकता है। पश्चात् लिखते हैं कि आप माननीय महाराज ने बम्बई प्रान्त तथा सिन्ध प्रान्त के तीन जगहों में शिवरहस्य देखा जो 700 अध्याय के 94000 ग्रंथ, 812 अध्याय के 97500 ग्रंथ एवं 943 अध्याय के 100012 ग्रंथ, प्रतियां उपलब्ध हैं। पर ये सब अपूर्ण ग्रंथ

ही उपलब्ध होते हैं| लाहौर सूचीपत्र में जो 'शिवधर्मसार' नाम से इतिहास शीर्षक में दिया गया है, इसके एक लाख ग्रंथ हैं। काशी सूचीपत्र द्वारा प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ जो पुराण शीर्षक है वह 12 अंश के हैं पर कुल 12000 श्लोक हैं और ईशानाख्य रूपम् 4200 श्लोक हैं। रचयिता व काल के विषय में कुछ लिखा नहीं है पर लिखा है 'नवीन', 'अशुद्ध', 'संपूर्ण कल्पं'। मदरास अडयार पुस्तकालय में 1, 2, 3, 4, 6, 11, 12, अंश हैं और यह अपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होता है।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि शिवरहस्य जैंगीषव्य ऋषी द्वारा रचित है। अभीतक किसी ने इस ग्रंथ को पूर्ण संग्रह कर प्रकाशित नहीं किया है| स्कन्दपुराणान्तर्गत शंकरसंहिता का एक भाग 'शिवरहस्य खण्ड' है जो ग्रंथाक्षर लिपि में छपकर प्रकाशित हुआ है और अब कहेजानेवाले यह शिवरहस्य को 'शिवरहस्य खण्ड' होने का अथवा उसके अन्तर्गत होने की कथा कही नहीं जा सकती है चूंकि यह कहेजानेवाले 'शिवरहस्य' स्कान्दपुराणान्तर्गत 'शिवरहस्यखण्ड' में पाया नहीं जाता। ये दोनों भिन्न ग्रंथ हैं। शिवरहस्य स्वतंत्र पुराण भी कहा नहीं जा सकता है चूंकि यह 18 पुराण या 18 उपपुराण का भाग भी नहीं है। पुराण व उपपुराण सबों का नाम व संख्या व ग्रंथ संख्या निर्देष हो चुके हैं तथा शिवरहस्य इसमें पाया नहीं जाता। शिवरहस्य को शङ्करानन्द के आत्म पुराण का भाग भी कहा नहीं जाता है चूंकि शिवरहस्य को ऋषी रचित ग्रन्थों में एक होने का प्रचार किया जा रहा है। इसे आर्ष ग्रन्थ बनाने की चेष्टा में अब प्रचारक लोग इस शिवरहस्य को तृतीय इतिहास होने का भी प्रचार कर रहे हैं। रामायण एवं महाभारत दोनों इतिहास होते हुए भी ये दोनों ऋषियों से (श्रीवाल्मीकि एवं श्रीव्यास) रचित हैं पर प्रचारक लोग इस शिवरहस्य को इन दोनों आर्ष ग्रन्थों से भी उच्च कोटी होने का प्रचार करते हैं। श्रीवेङ्कटेशम पन्तुलु द्वारा रचित कुम्भकोण मठ का प्रचार पुस्तक में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर स्वशरीर सहित श्रीकैलास पहुंच कर देवादिदेव श्रीमहादेव की स्तुती करके शिवरहस्य ग्रन्थ को उनसे प्राप्त की थी। इस कथा से तो प्रतीत होता है कि कैलासपति श्रीमहादेव शिवरहस्य ग्रन्थ लिखकर तैय्यार रक्खे हुए थे ताकि आचार्य शङ्कर इसे प्राप्त कर यह सिद्ध कर सकें कि आप श्रीमहादेव के अवतार ही हैं। इससे यह भी प्रतीत होता है कि कैलास का शिवरहस्य इस भूलोक में आचार्य शङ्कर के पश्चात् ही आया था। कुम्भकोणमठ के भ्रामक प्रचारों का यह एक नमूना है।

निर्णय सिन्धु ग्रन्थ में जो शिवरहस्य उल्लेख है वह अन्य एक भिन्न ग्रन्थ है और यह इतिहास रूप में है। कुम्भकोणमठ के पन्डित प्रचारक का प्रचार है कि श्रीकमलाकर भट्ट ने अपने द्वारा रचित निर्णय सिन्धु में शिवरहस्य का उल्लेख किया है, अतएव यह प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है। श्रीकमलाकर भट्ट अपने ग्रंथ में अपने भ्राता, पिता एवं पितुःपिता द्वारा रचित ग्रन्थों से भी उद्धरण किया है और ये सब ग्रन्थ प्राचीन कहे नहीं जा सकते हैं क्यों कि श्रीकमलाकर भट्ट ने उद्धरण किया है। श्रीकमलाकर भट्ट शिवरहस्य को प्राचीन ग्रन्थ होने का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है| श्रीकमलाकर भट्ट से निर्देषित शिवरहस्य आप के काल के पूर्व का होना निश्चित होता है पर यह नहीं सिद्ध होता है कि जो अंश शिवरहस्य में होने का भ्रामक प्रचार किया जा रहा है सो सब मूल पुस्तक में भी है या कहेजाने वाले श्लोक प्रामाणिक हैं| प्रश्न यह नहीं है कि क्या शिवरहस्य प्राचीन ग्रन्थ है या आधुनिक है पर प्रश्न यह है कि कहे जाने वाले प्रचारित श्लोक सब क्या मूल शिवरहस्य में था या नहीं ?

शिवरहस्य में अर्वाचीन प्रकान्ड पन्डितों का नाम भी अवतार रूप से उल्लेख है जैसा कि श्रीहरदत्ताचार्य, श्री अप्पय्य दीक्षित, आदि। कुम्भकोणमठाधीश अपने मदरास वक्तव्य ताः 1—11—1932 में कहते हैं कि शिवरहस्य में 63 नायनमार का भी उल्लेख है। श्री. आर. बालसुब्रह्मणियम् 'धर्मराज्य' पत्रिका ताः 5-10-1935

के अङ्क में शिवरहस्य के बारे में लिखते हैं—' **The Book, Siva Rahasya is one of the most sacred Saiva upa-puranas that deal with many of the future Avataras of God Siva, such as Sri Haradattacharya and others even in our Kali Yuga ?** इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि यह ग्रन्थ बराबर परिवर्तन होता ही आ रहा है और इसे श्रीव्यास रचित पुराण अथवा उपपुराण में गिना नहीं जा सकता है। और न यह ग्रन्थ आचार्य शङ्कर ने कैलास से भूलोक को लाये जैसा कि कुम्भकोणमठ प्रचार पुस्तकों में उल्लेख है। कुम्भकोणमठाधीश अपने मदरास वक्तव्य 1—12—1932 में इस शिवरहस्य को ' द्वैत ग्रन्थ ' स्पष्ठ कहा है और यह भी कहा है कि अद्वैतियों को यह पुस्तक ग्राह्य न होगा। द्वैत कहने ही से मत प्रक्रिया ग्रन्थ हो जाता है। क्या शिवरहस्य स्कान्दपुराणान्तर्गत है या स्वतंत्र ग्रंथ है या इतिहास रूप में है या शैवपुराणान्तर्गत है या उपपुराण है, इन प्रश्नों का निःसन्देह उत्तर अभी तक नहीं मिला। कुम्भकोणमठ भिन्न जगहों में समय समय पर भिन्न कथनों से (स्कान्दपुराणान्तर्गत, स्वतंत्र ग्रन्थ, इतिहास, उपपुराण) भ्रामक प्रचार करते हैं। कुम्भकोणमठ एक जगह यह भी प्रचार किया है कि स्कान्दपुराणान्तर्गत शिवरहस्य इतिहास शिवरहस्य से भिन्न है। एक प्रचार पुस्तक में इसे शैवपुराणान्तर्गत कहा गया है। कुछ विद्वानों ने इस शिवरहस्य को जो स्कान्द ऋषी द्वारा प्रोक्त होने से पुराण तुल्य एक आर्ष ग्रन्थ माना है। चाहे जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ अवश्य एक महान् ग्रन्थ है और इस ग्रन्थ को एक प्रकान्ड विद्वान ने ही दैवीक शक्ति से इसे रचा होगा और कालान्तर में अन्यों ने इस ग्रन्थ में बराबर विषयों को परिवर्तन करते हुए आये हैं।

शिवरहस्य के नवमांश (सदाशिवांश) के 16 वें अध्याय में श्री शङ्कराचार्य के जीवन चरित्र का वर्णन है। इस नवमांश में कुल 60 अध्याय एवं 7000 श्लोकों का होना कहा जाता है पर एक मुद्रित पुस्तक के भूमिका से प्रतीत होता है कि नवमांश में केवल 6000 श्लोक हैं। इस नवमांश में 1000 श्लोकों का तारतम्य है। श्री 1008 श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्द्धन मठाधीश महाराज ने 1936 ई० में इस नवमांश का एक प्रति दिखाया जिसमें 6360 श्लोक थे। ऐसे परिवर्तनशील एवं भिन्न भिन्न पाठ ग्रन्थ को किस प्रकार विषय सिद्ध करने के लिये मुख्य प्रमाण रूप में माना जाय। जो विषय अन्य अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध हो चुके हैं उसके पुष्टि के लिये ही ऐसे परिवर्तनशील पुस्तकों द्वारा निर्देष किया जा सकता है। अर्वाचीन काल के कुछ महानों का जीवन चरित्र जो आदर्श व अवतार तुल्य था एवं वे स्वयं प्रतिभाशाली थे उनका महत्ता बढाने के लिये ऐसे ग्रथों में उल्लेख करने से ही नहीं होता पर ऐसे उल्लेख से पुराण व ग्रन्थ की पवित्रता, मान्यता व विषय शुद्धता कम होती है।

शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय का निम्न लिखित प्रतियां 1935/36 ई० में प्राप्त हुए थे—

(1)	47 श्लोक	— ग्रन्थाक्षर लिपि	— 1876 ई० प्रकाशित पुस्तक।
(2)	,,	— तेलगू लिपि	— 1876 ई० प्रकाशित पुस्तक।
(3)	60 ,,	— नागरी लिपि	— काशी के जयपुर कृष्ण शास्त्री के निज पुस्तकालय 1867 ई० में संग्रहित।
(4)	59 ,,	— ग्रंथाक्षर लिपि	— मदरास मुद्रालय से प्रकाशित।
(5)	60 ,,	— ,,	— तिरुनेलवेली से ताळपत्र प्राप्त।

(6) 48 ,, — नागरी लिपि — जमखंडी राज्य पुस्तकालय से प्राप्त।

(7) 45½ ,, — ,, — मैसूर राजकीय पुस्तकालय (16 वें अध्याय के बदले यहां 15 वां अध्याय उल्लेख है जहां आचार्य शङ्कर का चरित्र विवरण है)।

(8) 46 ,, — ,, — माधवीय शङ्कर विजय के डिण्डिम व्याख्या में दिये हुए 16 वां अध्याय का एक भाग।

(9) 59 ,, — ,, — निम्न व्यक्तियों द्वारा 1936 ई० में प्राप्त—
(क) पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद—काटमाण्डू, नैपाल।
(ख) पं० नारायण शास्त्री खिस्ते—धारवार।
(ग) श्री वरदाप्रसन्न चक्रवर्ती—ढाका।

(10) 59 ,, — ,, — श्री 1008 श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्धन मठाधीश द्वारा 1935 ई० में प्राप्त प्रतियां। आपको यह प्रतियां मिर्जापुर एवं लाहौर से प्राप्त हुआ था। इन दोनों का लेखन काल 16 वीं शताब्दी कहा जाता है।

(11) 58 ,, — ,, — श्री 1008 श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्धन मठाधीश द्वारा 1936 ई० में प्राप्त प्रति। लेखन काल 18 वीं शताब्दी का है।

(12) 60 ,, — ,, — श्री 1008 श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्धन मठाधीश द्वारा फरवरी 1936 ई० में प्राप्त हुई प्रति। श्रीगोवर्धन मठाधीश के एक जर्मन देशीय भक्त ने लन्डन इन्डिया आफीस पुस्तकालय के प्रति से उद्धृत कर यह प्रति भेजा था। यह प्रति उपर्युक्त नं० 10 प्रति से मिलता जुलता है और 17 वीं शताब्दी का कहा जाता है।

(13) 44 ,, — ,, — कुम्भकोण मठ से काशी में 1935/36 ई० में प्रचारित प्रति।

दक्षिण देश के मदुरा, तिरुनेलवेली जिलों से प्राप्त ताळपत्र प्रतियों में 60 श्लोक का 16 वां अध्याय देखा। स्वर्गीय जयपुर कृष्ण शास्त्री जी से 1867 ई० में संग्रहित हस्तलिपि प्रति भी 60 श्लोक के थे। लगभग 100 वर्ष पूर्व मुद्रित श्रीशङ्करविलास (चिद्विलास) में 47 श्लोकों का 16 वां अध्याय प्राप्त हुआ। करीब 87 वर्ष पूर्व ग्रंथाक्षर लिपि में मुद्रित 16 वां अध्याय भी 60 श्लोक युक्त था। इस पुस्तक के संपादक 'विज्ञापना' शीर्षक में लिखते हैं—'एतत् देशीयेषु केषुचित्पुस्तकेषु 'काञ्च्यामथसिद्धिमाप' इति श्लोक एव अध्याय परिसमाप्तिर्दृश्यते, उत्तरदेशीयेषु पुस्तकेषु 'प्रणनाम महेश्वरं' इति श्लोकान्ते अध्याय समाप्तिर्दृश्यते। श्री चित्सुखाचार्य माधवार्यादि कृत शङ्कर विजयादौ औत्तरपाठमनुसृत्यैव कथा संदर्भस्य प्रदर्शितत्वेन एतादृशा औत्तराह पाठ एव ज्यायान्। एतद्देशीयेषु केषुचित्पुस्तकेषु 'कांञ्च्यां तपस्सिद्धिमवाप्यदण्डी' इति उत्तर ग्रन्थ भागः (भारते कृष्णार्जुनयोः श्री कृष्णस्य महादेव प्रसादोद्भवक कैलास यात्राप्रतिपादको ग्रन्थभागः यथा कैश्चिदुद्धृतस्तथा) स्वाभिप्राय विरोधित्वात् कैश्चित देशीयैः उद्धृत इति निश्चित्य

औत्तरीय पाठानुसारेणैव मुद्रितोऽयं ग्रन्थः।' मैं ने और एक प्रति 'श्री माणिक्य विजय' पुस्तक के प्रथम भाग में ब्रह्माण्डपुराण कथासार दत्तात्रेय जन्मपयपारावार गुरुरत्नावली में 'श्रीशङ्कराचार्य चरित्र' देखा। इसमें कुल 75 श्लोक हैं। इस पुस्तक के चतुर्थ खन्ड में 75 श्लोक प्रकाशित हैं। 60 श्लोक सहित शिवरहस्य के साथ इसे मिलाया और मैं ने कोई विशेष भेद नहीं पाया। वही 60 श्लोक वहां भी उद्धृत हैं। केवल कुछ शब्दों का परियाय या परिवर्तन ही पाया। उपर्युक्त सूची में भी नौ प्रतियां 59 या 60 श्लोक के प्राप्त हुए थे। कुम्भकोणमठ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में केवल 44 श्लोक पाये जाते हैं। अभी तक मेरे संग्रह में 44, 45½, 46, 47, 48, 58, 59 व 60 श्लोकों का प्रतियां प्राप्त हुए हैं और परमात्मा जाने कि और कितने अन्य भिन्न प्रतियां कहां कहां उपलब्ध होंगे?

श्री भगवान शिव अपनी शक्ति पार्वती से कहते हैं और यह कथा वार्तालाप को जैगीशव्य द्वारा कही जाती है। भगवान शिव प्रारम्भ करते हैं 'श्रुणुदेविभविष्यत्सद्भक्तानां चरितं कलौ।' यह कथन भविष्य काल में होने की वार्ता कहा गया है। पश्चात् के श्लोकों में भी सब वार्ता भविष्य काल में ही हैं यथा 'भविष्यति महादेवी शंकराख्यो द्विजोत्तमः।', 'उपनीतस्तदा मात्रा वेदान् साङ्गान् ग्रहिष्यति,' 'तदा मातरमामन्त्रय परिव्राट स भविष्यति।', 'तेषामुद्बोधनार्थाय तिष्ये भाष्यं करिष्यति।', 'अद्वैतमेव सूत्रार्थं प्रमाणेन करिष्यति।' इन श्लोकों के पश्चात् झट से भविष्यकाल वर्णन छोडकर भूतकाल की वार्ता प्रारम्भ होती है। परमेश्वर ने पार्वती को पुनः अपने द्वारा भूत काल में किये विषयों का एवं घटित घटनाओं का भी वर्णन किया। यह असम्भव है। आगे एक श्लोक में आचार्य ने परमेश्वर की स्तुति की है और उसके फलाभूत परमेश्वर का आकार आपको देख पडा—'इति शंकरवाक्येन विश्वेशाख्यादहं वदा। प्रादुर्बभूव लिङ्गात् स्वादलिङ्गोऽपि महेश्वरि'। ऐसा परमेश्वर का रूप देख पडना पार्वती शक्ति को मालूम ही था क्यों कि आचार्य शंकर के चार शिष्यों के अलावा शक्ति स्वयं वहां उस समय उपस्थित थी। भविष्य में होनेवाले विषयों व घटनाओं को छोडकर भूतकाल की बीती हुई कथा पार्वती को सुनाना यहां ठीक नहीं जमता। इसी प्रकार और एक दृष्टान्त भी देता हूं। 'वरकाकोदराधीश राजद्वारस्त्वयाऽम्बया। तमब्रुव महादेवी प्रणतं यतिनां वरम्। शिष्यैश्चतुर्भिश्च युतं भस्मरुद्राक्षभूषणम्।' यह समझ के परे है कि क्यों परमेश्वर ने पार्वती को उसी विषय कह सुनाया जिसे परमेश्वर ने पहिले ही पार्वती के साथ आविर्भाव हो चुके थे और पार्वती को यह सब मालूम ही था। 'सशंकरोमां प्रणनाम मस्करी' यहां भी सन्यासी शंकर ने 'प्रणाम किया' का उल्लेख है। भविष्य में अवतार होने वाले व्यक्ति के विषय को पार्वती के पास सुनाते समय भविष्य काल में घटनेवाले घटनाओं को बतलाते हैं जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में है पर न मालूम कैसे पश्चात् वार्तालाप भूतकाल में कहने लगे? इससे तो स्पष्ठ प्रतीत होता है कि इस अध्याय में क्षिप्त किये श्लोक अनेक हैं। जो कोई विद्वान ने यह सब नवीन श्लोक मिलायी है उसके सूक्ष्म बुद्धि के प्रभाव द्वारा ही भूत काल में लिख कर क्षिप्त की है क्यों कि रचयिता को मालूम था कि वह पुराकाल की वार्ता को अब लिख रहा है। पुराकाल की घटित भावना ने उसके अनजान ही श्लोकों को भी भूतकाल में लिखा दिया। घटित विषयों का वर्णन पुराणों में पश्चात् जोड देने से उस पुराण में नवीन मिलाये गये विषयों की प्रामाणिकता मानना भूल होगी क्यों कि ऐसे घटनायें पुराण के पूर्वापर संदर्भ के साथ न यथार्थ हैं या न ऐतिहासिक दृष्टी से पुराण की प्रमाणिकता की पुष्टी होती है।

कुम्भकोणमठ का कथन है कि आर्ष ग्रंथों में इन त्रुटियों को त्रुटि नहीं कहा जाता है चूंकि पाणिनीय ने स्वयं आर्ष ग्रंथों के रचयिताओं को अपने से रचित नियमादि के बाहर होने का स्वीकार की है। पर यह भी कहा जा सकता है कि किसी एक विद्वान नें आधुनिक काल में जानबूझकर व्याकरण नियमादियों का पालन न करते हुए एवं

जानबूझकर भिन्न कालों में वर्णन एवं कथनों का उल्लेख किया हो ताकि स्वरचित पुस्तक को आर्ष ग्रंथ वर्ग में गिना जाय। शिवरहस्य में भी ऐसे विषयों को जोड दिया गया है। ऐसे विवादास्पद, संदेहास्पद एवं अन्य प्रमाणों से इन विषयों की पुष्टी नहीं होती है, उसे मूल प्रमाण मानना भूल होगी।

उपर्युक्त कारणों से शिवरहस्य में नवीन जोडे गये विषयों पर जब आक्षेप किये गये थे तो कुम्भकोणमठ वालों ने एवं उनके कृपाभाजन विद्वानों ने 'कामकोटि प्रदीपम' में प्रचार किया कि रामायण के नवमाध्याय में भूतकाल व भविष्य काल दोनों उपयोग किया गया है और रामायण प्रमाण पुस्तक है, इसलिये शिवरहस्य की यह त्रुटि भी ठीक है। इससे प्रतीत होता है कि कुम्भकोणमठ के 'सर्वज्ञ' विद्वानों ने नवमाध्याय में दिये श्लोकों को ठीक नहीं पढा। पूर्वकाल में सनत्कुमार ने ऋषी को जो कहा था अब उसे सुमन्त ने राजा दशरथ को कह सुनाते हैं। सनत्कुमार के कथनों को जो प्रत्यक्ष-कथन है उसे जब सुमन्त दोहराते हैं उस समय भविष्य काल में आप कहते हैं (श्लोक 4, 12, 15, 17 आदि) और जब सुमन्त प्रत्यक्ष कथन की समाप्ति करते हैं तब आप अन्य कथनों को भूतकाल में ही कहते हैं। घटित घटनाओं के पूर्व ही कहे गये सनत्कुमार के वचनों को भविष्य काल में एवं घटना घटित होने के पश्चात् उसे वर्णन करते समय भूतकाल में कहना, ये दोनों न्याय व उचित है। यह रीति ठीक है पर ऐसा तो शिवरहस्य में दीखता नहीं है। यहां तो परमेश्वर ने पार्वती को भविष्य में अवतार होनेवाले महान् व्यक्ति के बारे में कहते हैं। निराधार व कुतर्क उत्तर देकर कुम्भकोणमठ प्रचारक पामरजनों के आखों में धूल फेंक सकते हैं पर यह विज्ञों को अग्राह्य है।

शिवरहस्य जो 60 श्लोकों सहित उपलब्ध होते हैं इसमें श्रृङ्गेरी की महिमा, चार आम्नाय मठों के विवरण, सरसवाणी की जय, कैलासगमन आदि विषयों का उल्लेख है जिसे कुम्भकोण मठ अपने से प्रचारित प्रतियों में से उडाकर 44 श्लोकों का ही प्रचार करते हैं। यद्यपि ये सब श्लोक किसी समय में मिलाया ही होगा जैसा कि इस शिवरहस्य अध्याय के इसके पूर्व के श्लोक हैं और क्षिप्त भी हैं तथापि 60 श्लोकों का अध्याय जितने हस्तलिपि एवं प्रकाशित शङ्करविजय उपलब्ध होते हैं, जो कथा वृद्धपरम्परा द्वारा सुना गया है एवं जो विषय इतिहास एवं अन्य ग्राह्य प्रमाण पुष्टी करते हैं, उसी की पुष्टी करती है। अतएव यह कहना ठीक है कि 60 श्लोकों का चरित्र कथा विवरण ठीक है चाहे वह पुराण या इतिहास या स्वतंत्र ग्रंथ या नवीन कल्पित पुस्तक में से लिया गया हो। मार्के की बात है कि 44 या 45 श्लोकों का सोलहवां अध्याय इस प्रकार अविरोध प्रचार किया गया है कि साधारण पाठकगण इसी प्रति को अब विश्वास करने लगे। कुम्भकोण मठ से प्रचारित 44 श्लोकों के प्रति से एवं अन्यत्र उपलब्ध 60 श्लोकों के प्रति से तुलना की गयी तो अनेक श्लोकों में पदों का जोड, निकाल, अदलबदल पाया गया और 25 वें श्लोक में 'भाष्यघुष्य महावाक्यैस्तिष्यजातान् हनिष्यति' एवं 31 वां श्लोक में 'वेद्यो वैद्यः सर्ववेदात्मविद्योभिद्येद दृष्ट्या तव हृत्तमोऽद्य' जोड लिया गया है। कुम्भकोण मठ के 44 वां श्लोक के 'स्वकाश्रमे' के बदले अन्यत्र 'सकामं', 'स्वकाश्रमं', 'स्वकाश्रयं, 'स्वकाश्रय', आदि पाठान्तर भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार 44 वां श्लोक के 'स काञ्च्यामथसिद्धिमाप' के बदले अन्यत्र 'ततो नैजमवापलोकम्', 'ततो लोकमवाप शैवम्', 'स काञ्च्यामथ सिद्धिमवाप शैवम्' पाठान्तर भी पाते हैं। कुम्भकोण मठ के 39 वां श्लोक के प्रथम पंक्ति के पश्चात् 2½ श्लोक 'दुर्वासश्शापतो भूमौ जातां वाणीं विजित्यतां। अगस्त्य चरिते देशे तुङ्गातीरे सुनिर्म्मले। पुण्यक्षेत्रे द्विजवर स्थापयित्वा सुपूजय। यत्रास्ते ऋष्य श्रृङ्गस्य महर्षेराश्रमो महान्। कलावपि ततोऽद्वैत मार्गः ख्यातो भविष्यति।' उडा दिया गया है। इसीप्रकार कुम्भकोण मठ प्रति में 44 वां श्लोक जो 'सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप' के साथ अन्त होता है उसी के बाद 13 श्लोक जो 'काञ्च्यां तपस्सिद्धिमवाप्य दण्डी चण्डीशरूपो जगदाकलैय' से प्रारम्भ होकर 'पुळकाङ्कुर संहृष्टा

प्रणनाम महेश्वरं' तक अन्त होता है, इसे भी निकाल दिया गया है। समय समय पर ऐसे परिवर्तित पुस्तक के आधार पर इसे मूलाधार मान कर विषय का निर्णय किस प्रकार किया जाय? इन त्रुटियों को दिखाने पर और इन शंकाओं का उत्तर न देकर कुम्भकोण मठ अब प्रचार करते हैं कि हमलोगों ने शिवरहस्य को अप्रमाणिक ग्रन्थ ठहराया है। यह भ्रमात्मक प्रचार है। हमलोग यह नहीं कहते कि शिवरहस्य ग्रन्थ अप्रमाणिक है पर अवश्य यह कहते हैं कि परिवर्तनों के साथ जो ग्रन्थ प्रचार किये जा रहे हैं वे सब अप्रमाण हैं। अनेक पाठान्तर प्रतियां प्राप्त होने के कारण, अर्वाचीन काल के महानों का जीवन चरित्र उल्लेख होने से, कालान्तर में समय समय पर परिवर्तित होने के कारण एवं ग्रन्थ के कुछ विषय विवादास्पद तथा निराधार होने के कारण, काशी में प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श' पुस्तिका में प्रामाण्य ग्रन्थों की सूची में उच्चस्थान नहीं दिया गया था। कुम्भकोण मठ की प्रति में जो 15½ श्लोक निकाल दिये गये हैं, वे सब कुम्भकोण मठ के प्रचारों के विरुद्ध ही हैं, अतः निकाल दिये गये। माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, गुरुपरम्परा चरित्र, व्यासाचलीय (माधवीय का दूसरा रूप) एवं चार आम्नाय मठों के रिकार्डों तथा वृद्धपरम्परागत प्राप्त कथा सब 60 श्लोक प्रति की पुष्टी करती है।

माधवीय शङ्करविजय के टीकाकार (अद्वैतसाम्राज्य लक्ष्मी टीका—1824/25 ई० में) ने 46 श्लोकों को ही उद्धृत की है। आचार्य शङ्कर के ईश्वरांश कथन को समर्थन करते हुए इन श्लोकों को उद्धृत किया है ('गौरीरमणावतारत्वं तु श्री शङ्कराचार्यस्योक्तं शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये।')। बाकी सब विषय मूल ग्रन्थ माधवीय श्लोकों में स्पष्ट उल्लेख होने से और वे सब आपको ग्राह्य होने के कारण 'शिवरहस्य' के अन्य श्लोकों को टीकाकार ने नहीं दिया। मूल पुस्तक संक्षेप शंकरविजय में सब विवरण हैं और इसका मूल बृहच्छङ्करविजय है और यह देखने योग्य है, ऐसा टीकाकार ने लिखा है ('एतत्कथाजालं बृहच्छंकर विजय एव श्रीमदानन्दज्ञानाख्यानन्दगिरिविरचिते द्रष्टव्यमितिदिक्।')। माधवीय के टीकाकार माधवीय मूल श्लोक जहां आचार्य शङ्कर का कैलासगमन केदारक्षेत्र का उल्लेख है उसके टीका में कहे जाने वाले शिवरहस्य श्लोक जो कांञ्ची निर्याण स्थल बतलाता है इसके साथ तुलना कर इन भिन्न कथनों का समन्वय क्यों नहीं किया है? माधवीय के मूल श्लोक जहां आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल केदार क्षेत्र बतलाया है वही टीकाकार का अभिप्राय भी है, अतः टीकाकार ने इन भिन्न कथनों का समन्वय नहीं किया अथवा यह भी कहीं नहीं कहा कि कांञ्ची ही निर्याण स्थल है। टीकाकार का उद्देश्य केवल इन श्लोकों का प्रकाश करना था न कि इनका प्रामाणिकता अथवा कहेजानेवाले कथनों का यथार्थता सिद्ध करना था। मूल श्लोक की व्याख्या में इसे नहीं दिया गया है| कुम्भकोणमठ प्रचार सब भ्रमात्मक हैं| टीकाकार स्पष्ठ लिखते हैं 'नवमांश षोडशाध्याय देखने योग्य है' पर यह नहीं लिखते कि सोलहवां अध्याय में केवल 46 श्लोक हैं। इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि कुछ श्लोकों को सोलहवें अध्याय से उद्धृत कर आचार्य शङ्कर को ईश्वरांश अवतार होने की पुष्टी में उद्धृत किया गया है। यदि सोलहवां अध्याय केवल 46 श्लोकों का होता तो टीकाकार अवश्य ऐसा उल्लेख करते। 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' कहने मात्र से यदि माधवीय टीकाकार सिद्धि का अर्थ 'कांञ्ची में तनुत्याग' का अर्थ किया होता तो मूल श्लोक (माधवीय) जो केदारक्षेत्र का उल्लेख करता है और जिसे 'शिवरहस्य' भिन्न वर्णन करने की कथा सुनायी जाती है और यदि इसे स्वीकार किये होते तो अवश्य टीकाकार इन दोनों भिन्न कथनों का समन्वय में टिप्पणी भी अवश्य देते। पर टीकाकार ने ऐसा नहीं दिया है। इससे प्रतीत होता है कि टीकाकार ने कांची में सिद्धि शब्द का अर्थ तनुत्याग नहीं स्वीकार किया है। अतः 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' के पश्चात् श्लोक होना भी निश्चित होता है। यह विषय यहां इसलिये दिया जाता है कि कुम्भकोणमठ का जो भ्रामक प्रचार है कि उत्तरदेशीय पाठ भी 46 श्लोकों का है और इसके समर्थन में टीकाकार का उदाहरण देते हैं पर वास्तव में यह कथन ठीक नहीं है। उपर्युक्त सूची को पढें तो मालूम हो कि 60 श्लोकों की प्रतियां भी उत्तरदेश के ही हैं। गोवर्धन मठाधीश की कृपा से यह सब प्रतियां प्राप्त हुई हैं।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि माधवीय शंकरविजय के अद्वैतराजलक्ष्मी टीकाकार का काल 1825 ई० का है (शालीवाहन शक 1746) और इस पुस्तक में 46 श्लोकों का उल्लेख होने से यही प्राचीन प्रति प्रमाण है और जब तक मुद्रित या अमुद्रित प्रति इसके पूर्व काल का 60 श्लोकों का न दिखाया जाय। इसके उत्तर में मैं यही कहूंगा कि 1936 ई. में श्री 1008 श्री जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धन मठाधीष श्री भारती कृष्ण तीर्थ महाराज ने जो चार प्रतियां भेजी है—मिर्जापुर एवं लाहोर—के प्रतियां 16 वीं शताब्दी, अन्य एक प्रति 18 वीं शताब्दी, लन्डन इन्डिया आफीस पुस्तकालय की प्रति 17 वीं शताब्दी, ये सब 58, 59, 60 श्लोकों का है और ये सब इनसे भी प्राचीन हैं। मदरास में 1873 ई० में मुद्रित व प्रकाशित 60 श्लोक का 16 वां अध्याय है। इसके संपादक लिखते हैं कि यह 60 श्लोक उत्तर देशीय पाठानुसार ही अब प्रकाशित किया जा रहा है। अर्थात् 1873 ई० के पूर्व उत्तर देश में 60 श्लोकों का 16 वां अध्याय उपलब्ध होते थे। काटमान्डू, धारवार एवं ढाका से प्राप्त प्रतियां सब 59 श्लोक के थे और यद्यपि इनके लेखन काल का पता नहीं लगता तब भी यह अनुमान करना गलत न होगा कि इन सब प्रतियों का मूल लेखन काल 17 वीं या 18 वीं शताब्दी ही होगा। माणिक्य विजय जो उत्तर भारत में प्रकाशित पुस्तक है उसमें भी आचार्य शंकर का चरित्र विवरण शिवरहस्य के 60 श्लोकों का ही दिया गया है और श्री माणिक्य प्रभुजी का अवतार काल 1723 ई० का माना जाता है। यह 60 श्लोक की प्रति भी 1825 ई० के पूर्व का ही होना निश्चित होता है।

कुम्भकोण मठ के तीव्र प्रचारक श्री टी. एस. नारायण अय्यर के कथनानुसार आत्मबोध का काल 1741—72 ई० का है एवं कुम्भकोण मठ के अन्य प्रचारक अपने रचित पुस्तकों में 1720 ई० का काल बतलाते हैं पर आत्मबोध अपने को आत्मप्रकाशेन्द्र का शिष्य कहते हैं जिनका निर्याण काल 1704 ई० का है। अतः आत्मबोध का काल 17 वीं शताब्दी का होना निश्चित होता है। आत्मबोध ने 'गुरुरत्नमाला' पर टीका 'सुषमा' नामक पुस्तक के पृष्ठ 33 में शिवरहस्य के श्लोक 'दुर्वासश्शापतो भूमौ जातां वाणीं विजित्यतां' का उल्लेख कर कहते हैं कि यह श्लोक प्रमाण नहीं हो सकता है पर कारण कुछ नहीं देते। आप लिखते हैं 'ये तु अभिनवोद्धन्ड विद्यारण्य स्वामिभिरारचिते विद्याशंकर विजये शिवरहस्य वचनत्वेन प्रतिपादिताः 'दुर्वासश्शापतो भूमौ जातां वाणीं' इत्यादयः श्लोकाः ते न क्वापि शिवरहस्य प्राचीनमातृकासु उपलभ्यन्ते इत्यप्रामाणिक मेव'। आत्मबोध के इन श्लोकों के उल्लेख से सिद्ध होता है कि यह श्लोक 17 वीं शताब्दी में भी पाठ में उपलब्ध थे। इससे कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि यह 2½ श्लोक अर्वाचीन काल में 1825 ई० के पश्चात् जोड ली गई है सो प्रचार कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक ग्रंथ द्वारा ही मिथ्या ठहराता है। आत्मबोध इन श्लोकों को उडा देना चाहते थे चूंकि ये 2½ श्लोक दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी की प्राधान्यता सिद्ध करती है और ये श्लोक कुम्भकोण मठ के कल्पित भ्रामक प्रचारों के विरुद्ध हैं। माधवीय टीकाकर श्री अच्युतराय ने डिण्डिम टीका सहित अपने रचित टीका में इन 2½ श्लोकों को उडाकर शिवरहस्य 16 वां अध्याय प्रकाशित किया है पर 18 वीं शताब्दी का माणिक्यविजय एवं अन्य अमुद्रित प्रतियों में ये 2½ श्लोक पाये जाते हैं।

इसीप्रकार कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि 'कांच्यामथ सिद्धिमाप' के बाद 13 श्लोक अर्वाचीन काल में 1825 ई० के पश्चात् जोड लिया गया है और 1825 ई० के पूर्व ये श्लोक प्रचार में न थे। यह प्रचार भी मिथ्या है। कुम्भकोणमठ से प्रचारित 44 श्लोक या माधवीय के टीकाकार से उद्धृत 46 श्लोक या अन्य कोई प्रति जो 44, 47 श्लोक के हैं, उसमें सर्वज्ञपीठ विवरण, आचार्य शङ्कर का सर्वज्ञपीठारोहण, सरस्वती से विवाद एवं पराजय आदि विषयों का उल्लेख नहीं है पर 60 श्लोक की प्रति में यह सब विषय देखा जाता है। आत्मबोध ने 'सुषमा' में जब

इन विषयों का (सर्वज्ञपीठारोहण) उल्लेख करते हैं और शिवरहस्य, बृहच्छंकरविजय, केरळीय शङ्करविजय आदि को प्रमाण में कहते हैं तो अवश्य आपने 60 श्लोक का शिवरहस्य 16 वां अध्याय का प्रति को ही देखा होगा न कि 44 या 46 श्लोक का 16 वां अध्याय जो ये सब वृत्तान्त नहीं देता। आत्मबोध लिखते हैं 'अस्य अत्र पाठस्तु उचितः सर्वज्ञपीठाधिरोहण समय एव तद्विजयस्य शिवरहस्य—बृहच्छंकरविजय—केरळीय शङ्करविजय—प्राचीनशङ्करविजय—व्यासाचलीयादिषु निरूपितत्वात्।' अतः आत्मबोध 60 श्लोकों का 16 वां अध्याय शिवरहस्य का ही स्पष्ट उल्लेख की है एवं यह 60 श्लोक की प्रति 17 वीं, 18 वीं शताब्दी में भी उपलब्ध था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो 13 श्लोक अब शिवरहस्य से कुम्भकोणमठवालों ने निकाल दिये हैं उसे आत्मबोध ने प्रमाण में लिया था। 'कामकोटि प्रदीपम्' में प्रचार किया जा रहा है कि अर्वाचीन काल में शृङ्गेरी के भक्तों से यह सब श्लोक (2½ एवं 13 श्लोक) जोड लिये गये हैं पर कुम्भकोणमठ के आत्मबोध काल में (कुम्भकोणमठ कथनानुसार 17 वीं शताब्दी) ये सब श्लोक उपलब्ध थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि 16 वां अध्याय 'कांञ्च्यामथ सिद्धिमाप' के साथ अन्त नहीं होता है और कुम्भकोणमठ का प्रचार मिथ्या है। यह भी सिद्ध होता है कि आत्मबोधेन्द्र के पूर्व में भी भिन्न प्रतियां उपलब्ध थे।

कुछ प्रकाशित प्रतियों में शिवरहस्य का यह श्लोक 'त्वदर्थे कैलासाचलवरं सुपाळीगत महासमुद्ध्यच्छन्द्राभं स्फटिकधवलं लिंगकुळकम् ... ... विमुक्ति परतराः' पाया नहीं जाता है। इसी प्रकार और एक श्लोक "तद्योगभोगवरमुक्ति सुमोक्ष ... ... नैजमवापलोकम्' भी पाया नहीं जाता। सम्भवतः चिद्विलासीय शङ्करविजय विलास के अन्त में जो शिवरहस्य का 16 वां अध्याय प्रकाशित है, उससे या उसके मूल से उद्धरण करके यह श्लोक प्रकाशित हुआ हो या अन्य कोई हस्तलिपि मूल प्रति से लिया गया हो। पर 'मिश्रांस्ततोनैजमवाप लोकम्' की जगह पर 'मिश्रान्सकाञ्च्यामथसिद्धिमाप', 'ततोलोकमवापशैवम्', 'सकाञ्च्यामथ सिद्धिमवापशैवम्' का पाठान्तर भी मिलते हैं। कुम्भकोणमठवाले 'सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप' का पाठ प्रचार करते हैं क्यों कि उनके प्रचार का यही मुख्य प्रमाण एवं आधार है कि आचार्य शङ्कर ने कांञ्ची में ही तनुत्याग किये। इस श्लोक के आधार पर यह भी प्रचार करते हैं कि श्री शङ्कर कैलास से पांच लिङ्ग ले आये। 'ततो नैजमवाप लोकम्' पाठ शिवरहस्य के कहे पूर्व कथा संदर्भ एवं अन्य श्लोकों के पद प्रयोग से सम्बन्ध बहुत युक्त है पर कांचीमठ के प्रचार के विरुद्ध होने से कुम्भकोण मठ इस पाठान्तर को मानते नहीं हैं। यदि 'सकांञ्च्यामथसिद्धिमाप' पाठ को ही ठीक पाठ मान लें तो इसमें आपत्ति भी नहीं है। इस श्लोक के बाद 'कांञ्च्यांतपस्सिद्धिमवाप्य दण्डी' से अन्य श्लोक प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व श्लोक में कहे 'काञ्च्यामथसिद्धिमाप' के पद का 'सिद्धि' शब्द का अर्थ 'तपः सिद्धि' निश्चय होता है न कि 'सिद्धि' शब्द का अर्थ कांची में 'तनुत्याग'। इसीलिये तो कुम्भकोणमठ 'सकाञ्च्यामथसिद्धिमाप' के बाद 13 श्लोक अपनी पुस्तक से उडा दिये हैं ताकि वे सुगम रीति से प्रचार कर सकें कि आचार्य शङ्कर का तनुत्याग कांची में हुआ था। 'सिद्धि' पद का अर्थ लाभकर होता है अथवा कुछ प्राप्त करने का लक्षण बोध करता है न कि शरीर त्याग। इसी शिवरहस्य के पूर्व श्लोक जिसे कुम्भकोणमठ मानते हैं उसमें 'कैलासमेष्यत्यसमानसौख्य' तथा अन्त में 'द्वात्रिंशंपर मायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस' इन दोनों पदों पर किसी ने भी ध्यान न दिया है या आलोचना नहीं की है। इस पूर्वापर संदर्भ से प्रतीत होता है कि कांची में शङ्कर का तनुत्याग नहीं हुआ था और सिद्धि शब्द का अर्थ तनुत्याग नहीं है।

विद्वान भट्ट श्री नारायण शास्त्री जी 'सिद्धि' शब्द का अर्थ करते हुए लिखते हैं—'सिद्धि' शब्दो न मोक्षवाचकः। कुतः ? शक्तेर्भानाऽभावात्। न लक्षणया मुख्यार्थ बाधाऽभावात्। न व्यञ्जन मूलाऽभावात्। अतः

साधनार्थः मनोरथस्य सिद्धिमवाप इत्यर्थः।' माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, गुरुपरम्परा चरित्र एवं वृद्ध परम्परा प्राप्त कथा तथा केदार क्षेत्र में आज भी वह स्थल दिखाया जाता है और पूजा भी होती है जहां से आचार्य शंकर का कैलास गमन हुआ था, इन सब प्रमाणों से श्री शंकर का निर्याण स्थल केदार क्षेत्र ही है, न कि कांची। हिमाचल प्रान्त का एक लोकगीत भी इस विषय की पुष्टी करता है। उत्तर प्रदेश के राज्याधिकारी की सहायता से एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका मठाधीष के आशीष से बद्रीनाथ मन्दिर कमिटी ने इस जगह में एक चिन्हात्मक मन्दिर 'कैवल्यधाम' बनवाने का आयोजन कर इस शुभ कार्य आरम्भ भी कर दिया है। हिमाचल प्रदेश गजटियर में भी इसी स्थल को श्री शंकराचार्य का निर्याण स्थल बतलाया है| ऐसे दृढ प्रमाण होते हुए भी कांची को निर्याण स्थल होने का प्रचार करना ठीक नहीं है। चिदम्बर क्षेत्र के दीक्षितर भी चिदम्बर स्थल को शंकर का निर्याण स्थल बतलाते हैं और वे आचार्य शंकर से प्रतिष्ठित लिङ्ग भी दिखाते हैं। आनन्दगिरि चिदम्बर को जन्म स्थल बतलाते हैं। केरळीय शंकरविजय के रचयिता श्री गोविन्द नाथ ने तिरुचूर (केरल राज्य) को श्री शंकर का निर्याण स्थल बतलाया है| आज भी तिरुचूर में एक समाधि स्थल दिखाया जाता है। अपने अपने स्थल की माहात्म्य को बढाने के लिये अपना अपना स्थान निर्याण स्थल बतलाते हैं| इसी प्रकार कुम्भकोण मठ का कांची स्थल भी एक है। सब से लज्जा की बात है कि कुम्भकोण मठाभिमानी कहते हैं कि कांची कामाक्षी मन्दिर में शंकर की समाधि है। आगमशास्त्रानुसार वैदिक हिन्दू मन्दिरों में मूल देव या देवी स्थान के पास समाधि का होना असम्भव है और यह शास्त्र व आचार विरुद्ध है। कामाक्षी मन्दिर की शङ्कर मूर्ति पूर्व काल में श्री बुद्धदेव मूर्ति थी जिसे अब शंकरमूर्ति कहा जाता है। इन सब विषयों का विवरण आगे के अध्याय में पायेंगे। श्री शङ्कर की मूर्ति से उनका निर्याणस्थल बतलाना मूर्खता है। इस तर्क के अनुसार जहां जहां शंकर मूर्तियां हैं क्या वे सब आचार्य शङ्कर के निर्याण स्थल हैं? किसी विषय को सिद्ध करने के लिये नवीन विषयों की कल्पना करना ही उस विषय की असत्यता प्रतीत होती है।

यदि कुम्भकोणमठ वालों का कथन मान लें कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल कांची था तो इससे यह नहीं सिद्ध होता कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नायानुसार गुरु मठ की स्थापना की थी। कुम्भकोणमठ से प्रचारित आचार्य शङ्कर का अष्टोत्तरशतनामावली में एक नामावली है 'काञ्च्यां श्रीचक्रराजाख्य यन्त्र स्थापना दीक्षितः' और इसके अनुसार श्री शङ्कर ने कांची में गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता शान्तकर श्री चक्र की प्रतिष्ठा किये न कि आम्नाय मठ की स्थापना की थी। यदि पांचवां मठ की स्थापना किये होते तो क्यों आचार्य शङ्कर के नामावली में 'चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः।' ऐसा उल्लेख है? यदि पांचवां मठ कांची में स्थापना किये होते तो आचार्य शङ्कर ने अपने से रचित 'मठाम्नाय' में क्यों नहीं उल्लेख किया? मठों की स्थापना करना और मन्दिर निर्माण या जीर्णोद्धार करना, ये दोनों पृथक कार्य हैं और दोनों कार्यों की विधि, नियम, सम्प्रदाय, लक्ष्य, लक्षण, आदि भिन्न भिन्न हैं| काशी में 1935 ई० में कुम्भकोणमठवालों ने एक पुस्तक के प्रथम संस्करण में उपर्युक्त नामावली (आचार्य शङ्कर अष्टोत्तरशतनामावली एवं पूजा पद्धति में) प्रकाशित की थी पर उसी पुस्तक के दूसरे संस्करण में इस नामावली को उडा दिया था। क्यों कि प्रथम संस्करण के प्रकाशन के पश्चात काशी के कतिपय वृद्ध विद्वानों ने कुम्भकोणमठाधीप से प्रश्न पूछा था कि चार दृष्टिगोचर आम्नाय के लिये चार आम्नाय मठों की स्थापना हुई थी और पांचवें मठ की जगह यहां नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर न देकर उक्त नामावली को उडा दिया गया। पाठकगण जान लें कि इस कार्य में क्या मर्म था। 'श्री कांची कामाक्षी अम्बाल स्थल वरलारु' नामक पुस्तक में श्री शङ्कर का निर्याण यों उल्लेख है 'कैलास यात्रा के निमित्त कामकोटी बिलरूप गुफा में उतरकर अन्तर्धानभये।' इसके पूर्व कुम्भकोणमठ का कथन यों था जिसका प्रचार व प्रकाशन काशी में 1935 ई० में पुस्तकों द्वारा की गई थी—'स्व लोकं गन्तुमिच्छुः कांचीनगरे मुक्तिस्थले कदाचिदुपविश्य स्थूल शरीरं

सूक्ष्मेन्तर्धाय सद्रूपोभूत्वा, सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा, चिन्मात्रो भूत्वांऽगुष्ठपुरुषस्तदुपरि पूर्णमखण्डमण्डलाकारानन्दं प्राप्य सर्व जगद् व्यापक चैतन्यमभवत्।' इस विवरण पर जब अनेक आक्षेप होने लगे और अद्वैतियों के लिये 'कारण में विलीन होने के पश्चात् अंगुष्ठ पुरुष होना' असम्भव है, तब यह प्रथम उपर्युक्त नयी कथा सुनाने लगे। यह नवीन निर्याण विवरण किस विषय का सूचक है सो साधारण पाठकगण जान नहीं सकते। इन दोनों भिन्न कथनों में कौन यथार्थ है?

कुम्भकोणमठ द्वारा प्रचारित शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय का 44 श्लोक यों है—'तद्योगभोगवरमुक्तिसुमोक्षयोगलिङ्गार्चनात् प्राप्तजयः स्वकाश्रमे। तान्वै विजित्य तरसाऽक्षत शास्त्रवादैर्मिश्रान् स काञ्च्यामथ सिद्धिमाप॥' इस श्लोक का पाठान्तर भी प्रकाशित हुआ है। 'स्वकाश्रमे' के जगह 'सकामम्' तथा 'काञ्च्यामथसिद्धिमाप' के जगह 'नैजमवापलोकम्' पाठान्तर हैं। अठारहवीं शताब्दी का 'माणिक्य विजय' जहां आचार्य शङ्कर का चरित्र दिया गया है और जिसका 60 श्लोक नवमांश 16 अध्याय शिवरहस्य के 60 श्लोक ही उद्धृत हैं, उसमें उपर्युक्त श्लोक नहीं दिया गया है पर अन्य सब श्लोक हैं। इससे प्रतीत होता है कि 18 वीं शताब्दी में एवं इसके पूर्व में 60 श्लोक युक्त 16 वां अध्याय उपलब्ध थे और इन प्रतियों में अब कुम्भकोणमठ से प्रचारित श्लोक (उपर्युक्त) नहीं थे। अतएव यह श्लोक क्षिप्त है या शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय बराबर परिवर्तित होते हुए आ रहे हैं। 'कांची महिमै' नामक पुस्तक (1927 ई०) जिसमें कुम्भकोणमठ की प्रस्तावना सहित मुद्रित है उसमें उपर्युक्त श्लोक के 'मुक्ति' (कुम्भकोणमठ का प्रचार जो है कि पांच लिङ्गो में एक 'मुक्ति' लिङ्ग है) पद को बदलकर 'सिद्धि' की है। विज्ञ विद्वानों को यह शंका उठी कि योग, भोग, वर, मुक्ति व मोक्ष ऐसे पांच लिङ्गो में मुक्ति और मोक्ष लिङ्ग का भेद न होने से पांच लिङ्ग की जगह चार ही गिन्ती होती है और इस भ्रम के निवारणार्थ अब 'मुक्ति' को निकालकर 'सिद्धि' जोड दिया गया है। समय समय पर भिन्न पाठान्तर प्रचारित करके पामरजनों को और भ्रम में डाल रहे हैं और इसके साथ दुष्प्रचार करते हैं कि शृङ्गेरी मठाभिमानियों ने शिवरहस्य षोडशाध्याय में जोडकर क्षिप्त किया है। जिसप्रकार अन्धे को सारी दुनिया अन्धकार दीखता है उसी प्रकार दुष्कर्म दुष्प्रचार करनेवाले अन्यों को भी अपने समान समझते हैं|

आचार्य शङ्कर अष्टोत्तरशतनामावली में 'कैलासयात्रा संप्राप्त चन्द्रमौळी प्रपूजकः' एक नामावली है। पर शिवरहस्य से प्रतीत होता है कि भगवान शङ्कर ने काशी में आचार्य शङ्कर को लिङ्ग दिये थे। यहां 'कैलासयात्रासंप्राप्त' की पुष्टि नहीं होती| इन दोनों में कौन कथन यथार्थ है? शिवरहस्य में एक नवीन श्लोक जोडकर अष्टोत्तरशतनामावली के उपर्युक्त एक नामावली की पुष्टी में प्रचार किया जाता है। परम्परा प्राप्त इस नामावली के समस्तपद द्वारा 'चन्द्रमौळी' को पांच चन्द्रमौळीलिङ्ग रूप में विस्तृत कर लिया गया है। पाठकगण ध्यान दें कि इस शिवरहस्य के ऊपर पारा में दिये श्लोक में दो बार 'योग' पद उपयोग किया गया है और इसका तात्पर्य क्या है? क्या पांच लिङ्ग—योग, भोग, वर, मुक्ति, मोक्ष—सब योग लिङ्ग हैं? अथवा क्या योगलिङ्ग की पूजा सेवन से भोग, वर, मुक्ति, मोक्ष, योग प्राप्त कर सकते हैं? मुक्ति व मोक्ष लिङ्ग में क्या भेद हैं?

उपर्युक्त शिवरहस्य श्लोक के 'तान्वै' पद के बदले 'प्राप्तान्' शब्द प्रयोग किया गया है और इस पाठान्तर का भी प्रचार हुआ है। इसके अर्थ में प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर विद्वानों से विवाद कर के उन्हें पराजितकर कांची में 'ब्रह्मीभाव' प्राप्त किये—'प्राप्तान्'। ऐसे परिवर्तित श्लोकों के आधार पर विषयों का निःसन्देह निर्णय करना भूल है। यह नहीं मालूम कि और कितने ऐसे परिवर्तित प्रति प्रचार होने को बाकी हैं। उपर्युक्त श्लोक

के 'मिश्रान्' पद स्पष्ठ बोध कराता है कि उत्तरीय भारत के प्रकान्ड विद्वानों से आचार्य शङ्कर ने वादविवाद कर उन्हें पराजित किये। इससे यही कहा जा सकता है कि यह उत्तरीय भारत का प्रसङ्ग है न कि दक्षिग भारत कांचीं का वर्णन। काश्मीर, कामरूपसीमा, मध्यभारत सीमा में कांची नगर का होना निश्चित रूप से मालूम पडता है। आचार्य शङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा में इन सीमाओं में परिभ्रमण किये थे। अतः उत्तर भारत कांची नगर का ही यह संकेत करता है।

कुम्भकोणमठ प्रचार करते हैं कि धर्मप्राण स्वर्गीय पं लक्ष्मण शास्त्री द्रविड (काशी के पन्डितराज पं राजेश्वर शास्त्री द्रविड के पिता) के मकान से एवं काशीराज पुस्तक भण्डार से शिवरहस्य प्रति प्राप्त हुई है। क्या कुम्भकोणमठ वाले कह सकते हैं कि इस उपलब्ध शिवरहस्य में कितनें अंश हैं, अध्याय हैं व ग्रन्थ हैं? क्या यह ग्रन्थ पूर्ण है या अपूर्ण? इसका लेखन काल क्या है? इस प्रति का मूल कहां है? काशी के स्वर्गीय जयपुर कृष्ण शास्त्री से संग्रहित (1867 ई० में) निज पुस्तकालय में भी एक प्रति अपूर्ण शिवरहस्य भी प्राप्त हुआ था जो प्रति कुम्भकोणमठ के प्रचारों की पुष्ठि नहीं करती। जगद्गुरु गोवर्धन मठाधीष द्वारा 1935/36 ई० में प्राप्त शिवरहस्य प्रतियां भी कुम्भकोण मठ प्रचार के विरुद्ध ही हैं। ढाका, धारवार, लन्डन आदि स्थानों से प्राप्त शिवरहस्य प्रति भी कुम्भकोणमठ प्रचार के विरुद्ध हैं। कुम्भकोणमठ एवं आपके भक्तकोटीसब करीब 150 वर्षों से प्रमाणाभास संग्रह करने में तीव्र प्रयत्न करते हुए भी तथा 1825 ई० से कल्पित प्रमाणाभास आधारों पर स्व प्रतिष्ठा स्थापन करने के लिये प्रचार करते हुए भी न मालूम क्यों कुम्भकोणमठ को 1935 ई० तक यह न मालूम था कि आपके परम भक्त शिष्य पन्डितराज पं राजेश्वर शास्त्री के यहां शिवरहस्य उपलब्ध है एवं काशी नरेश के यहां भी उपलब्ध है। पन्डितराज का प्रभाव एवं मान्यता काशी नरेश के यहां जिस मात्रा में थी सो सब काशी विद्वानों को मालूम ही है। क्यों इस विवाद के समय ही इन प्रतियों का 'अविष्कार' 1935 ई० में हुआ? माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्द, कहेजानेवाले व्यासाचलीय, आदि ग्रन्थकर्ताओं के काल में क्या यह शिवरहस्य (कुम्भकोणमठ का प्रचारित प्रति) उपलब्ध न था कि आप लोगों ने कांचों में मठ होने का विषय नहीं कहा। क्या वे द्वेषभाव रखनेवाले थे? क्यों आप सबों ने कांची को निर्याण स्थल नहीं बतलाया?

कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि पूर्व में एक समय श्री श्रृङ्गेरी मठ के एक कर्मचारी ने इस शिवरहस्य को स्वीकार किया है, अतएव यह प्रामाणिक है। किसी के स्वीकार या अस्वीकार पर ग्रन्थों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये ग्रन्थो में प्रमाण लक्षण एवं शास्त्र विदित लक्षणों का होना आवश्यक है। प्रश्न यह है किं क्या अब कहे जाने वाले श्लोक युक्त शिवरहस्य में ये लक्षण घटित हैं? विवादास्पद विषय जो शिवरहस्य में जोड बदल किये गये हैं क्या वे सब प्रामाणिक हैं? क्या ये सब विवादास्पद (उपर्युक्त) विषयों को श्री श्रृङ्गेरी कर्मचारी ने स्वीकार किया है? ग्रन्थ के स्वीकार से यह अर्थ नहीं है कि कहेजानेवाले विवादास्पद निराधार विषयों का भी स्वीकार किया है। सारे भारत की मान्य प्रति एक है और कुम्भकोणमठ की मान्य प्रति अन्य दूसरी है ज़ो प्रथम प्रति से भिन्न है। श्रृङ्गेरी कर्मचारी से स्वीकृत प्रति प्रथम प्रति ही है न कि अब कहे जाने वाले कुम्भकोणमठ की परिष्कृत्य अन्य प्रति। ऐसे भ्रामक प्रचारों से पामर जन कुम्भकोणमठ के जाल में फंसते हैं। कुम्भकोणमठ प्रचारकों का एक और भ्रामक प्रचार नमूना यहां पाठकगणों की जानकारी के लिये देता हूं। 1934/35 ई० में जब वर्तमान कुम्भकोणमठाधीष काशी पधारे थे उस समय काशी के कतिपय प्रकाण्ड विद्वानों और आदरणीय महन्त, मन्डलेश्वर एवं परिव्राजकों ने कुम्भकोणमठ का प्रचार जो है कि आचार्य शंकर ने एक पांचवां आम्नाय मठ कांची में स्थापना कर वहीं

अधिष्ठित भये और कांची मठ गुरु मठ है तथा अन्य चार आम्नाय मठ शिष्य मठ हैं, इस कथन का आधार एवं प्रमाण पूछा था और जब कुम्भकोणमठविषयक वादविवाद काशी में छिडा और धर्मवीर स्वामी श्री लालनाथ जी ने श्री शृङ्गेरी मठाधीष एवं गोवर्धन मठाधीष से प्राप्त हुए दो तार के विषय का भी प्रकाशन किया था और ये दोनों तार के विषय द्वारा कुम्भकोणमठ के भ्रामक प्रचारों का पोल खुल गया था, उस समय कुम्भकोणमठ प्रचारकों ने यह भ्रामक प्रचार शुरू किया था कि शृङ्गेरी मठाधीष ने आपके (कुम्भकोणमठ को) मठ को गुरुमठ स्वीकार कर चुके हैं और शृङ्गेरी मठाधीष काशी के इस विवाद का खण्डन भी किया है और इस विवाद से आपका कोई सम्बन्ध या सहमत नहीं है। उक्त मिथ्या कथन की पुष्टि में कुम्भकोणमठ के एक भक्त शिष्य ने एक पत्र जो शृङ्गेरी से प्राप्त होने की कथा भी सुनाने लगे उसे सबों को दिखाने लगे। पर वास्तव यथार्थ विषय और हीं कुछ था। पाठकगण इस पुस्तक के तृतीयखंड में शृङ्गेरी मठाधीष का अभिप्राय प्रकाशित पायेंगे जो कुम्भकोणमठ के उक्त मिथ्या प्रचार का विरोध करता है। कुम्भकोण मठ प्रचारकों का एक ही ध्येय है, वह यह है कि किसीप्रकार से हो अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करना चाहे वह प्राप्त करने का विधि अनुचित, अन्याय, दुष्कर्म से भी प्राप्त किया जाय। आचार्य शंकर से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में तीन मठ अब भी परम्परागत चला आ रहा है और इन तीन मठों के आचार्यों ने कुम्भकोणमठ के प्रचारों का विरोध किया है। पाठकगण तृतीयखंड में ये तीनों पत्र प्रकाशित पायेंगे। कुम्भकोणमठ प्रचारकों से ऐसे अनेक मिथ्या प्रचारों का विवरण एवं यथार्थता मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद' में पायेंगे।

शिवरहस्य में स्पष्ठ उल्लेख है कि 'यूयं चतुर्दिक्षु मठेषु लिङ्गैः साकं वसन्त्वित्युपदिश्य हर्षात्' अर्थात चार आम्नाय मठों में चार लिङ्गो का बंटवारा हुआ है और पांचवां चिदम्बर क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुआ है। इसी के आधार पर शृङ्गेरी कर्मचारी ने स्वीकार किया था कि देवादिदेव महादेव ने आचार्य शंकर को काशी क्षेत्र में (शिवरहस्य के अनुसार) पांच लिङ्ग दिया था—'एतत् प्रतिगृहाण त्वं पञ्चलिङ्गं सुपुजय।' शिवरहस्य में स्पष्ठ उल्लेख होते हुए भी कुम्भकोणमठ के अष्टोत्तरशतनामावली में शिवरहस्य कथन के विरुद्ध एक नामावली है 'कैलास यात्रासंप्राप्त चन्द्रमौळि प्रपूजकः।' जब लिङ्ग काशी में मिला था तो क्यों आचार्य शंकर कैलास यात्रा की थी? इन दोनों कथनों में एक ही सत्य हो सकता है। इसीलिये तो एक मिथ्या कथन की पुष्टी के लिये कुम्भकोणमठ ने आनन्दगिरि शंकरविजय परिष्कृत्य प्रति में पांच लिङ्गों की मिथ्या कथा जोड ली है और उसी प्रकार मार्कन्डेय संहिता में भी जोड लिया गया है।

मठाम्नाय— यह ग्रन्थ आचार्य शङ्कर द्वारा रचित कहा जाता है। आचार्य शङ्कर अपने चरित्र विषय के बारे में कहीं भी कुछ लिख न गये। आपसे रचित ग्रन्थों से कुछ घटनाओं का ज्ञात होता है और आपने विमतियों के मतों का खन्डन किया है और कुछ बौद्ध नैयायिकों व तार्किकों का पङ्क्तिया उद्धृत कर अपना अभिप्राय का प्रकाश भी किया है। आचार्य शङ्कर आत्रेय गोत्र एवं कृष्ण यजुर्वेदी थे। अपनी इहलीला समाप्त करते समय अद्वैतवाद को अक्षुण्ण रखने के लिये एवं वर्णाश्रमाचारादि धर्मों का परिपालनार्थ, वेद चतुष्टय को विभाग कर उनके महावाक्यों सहित दिक चतुष्टय में चार धामों समीप चार ही आम्नाय मठों की स्थापना की थी। हर एक आम्नाय मठ के आचारविचार, नियम, पद्धति, संप्रदाय, योगपट्ट, वेद, महावाक्य, देव व देवी पीठ, तीर्थ व क्षेत्र आदियों का निर्धारन कर मठाम्नाय ग्रन्थ रचा था। इन चार आम्नाय मठाध्यक्षों के लिये एक व्यवहारिक व्यवस्था भी बना दी थी जिसे 'महानुशासन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस महानुशासन के उपदेश जो उदात्त, उदार, नियमबद्ध तथा उपादेय हैं। आचार्य शंङ्कर ने महानुशासन में मठाध्यक्षों के अनेक गुणों का वर्णन किया है–'शुचिर्जितेन्द्रियो वेद वेदाङ्गादि विशारदः। योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स महास्थानमाप्नुयात'। (श्लोक 10) शुचि, जितेन्द्रिय, वेदवेदाङ्ग विशारद, योगज्ञ, शास्त्रवेत्ता

व्यक्ति ही मठाध्यक्ष पदवी को अलंकृत कर सकता है। आचार्य शङ्कर दूरदर्शी व्यक्ति थे और आपका व्यहार ज्ञान पूर्ण था। आपका व्यवहार ज्ञान आपसे रचित भाष्य एवं मठाम्नाय के अध्ययन से प्रतीत होता है। मठाधीष सदगुणों से युक्त न हों तो उन्हें 'मनीषियों' के द्वारा निग्रह करने योग्य कहा है–'उक्त लक्षण सम्पन्नः स्याच्छेन्मत्पीठभाग् भवेत्। अन्यथारूढपीठोऽपि निग्रहार्होमनीषिणाम्'। कुछ विद्वान 'मनीषि' शब्द का अर्थ 'आचार्य का गृहस्थ शिष्य' कहते हैं। सन्यासी शिष्य मठाधीष बनकर आध्यात्मिक उन्नति में लगते थे और लौकिक व व्यवहारिक विषयों की देखरेख गृहस्थ शिष्य करते थे। ऐसे गृहस्थ मठ के दिवान बनते थे। इससे प्रतीत होता है कि मठाध्यक्षों के चरित्र की देखरेख देश के प्रौढ विद्वानों के ऊपर रखछोडी है। मठाध्यक्षों को स्वयं पद्मपत्र की तरह जगत् के व्यापारों से निर्लिप्त रहना चाहिये। वैदिक संप्रदाय में वेदों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न दिशाओं के साथ माना जाता है यथा- ऋक–पूर्व, यजु- दक्षिण, साम–पश्चिम, अथर्व–उत्तर। आचार्य शङ्कर ने उपरोक्त वैदिक नियम का पालन किया है।

मठाम्नाय ग्रन्थ एवं आम्नाय मठों की गुरुपरम्परा को तत्त्वान्वेषण बुद्धि से परीक्षण किया जाय तो आचार्य शङ्कर का लक्षण व गुण का कुछ अंश मालूम हो सकता है। आचार्य शङ्कर ने आध्यात्मिक मूल दृष्टि से सारे भारतवर्ष की एकता देखी और चार धामों समीप चार धर्मदुर्गों की स्थापना कर वेदमन्त्र की भावना को स्वयं मूर्तिमान करते हुए भारतवर्ष को एकता की ओर आकृष्ट करके संघटन किया। कन्याकुमारी से हिमाचल पर्य्यन्त, काश्मीर से कामरूप एवं द्वारका से पुरी, भारत का यह विस्तृत पुण्य स्वर्णभूमि आचार्य शङ्कर के सामने एक होकर खडी हुई। आपने एक सर्वांगीय समन्वयवाद की प्रतिष्ठा कर देश को एकता में बांध दिया। कुम्भकोणमठाभिमानी प्रचारकों ने 1960 ई० में मासिक पत्र 'कामकोटि प्रदीपम' द्वारा प्रचार प्रारम्भ कर दिया है कि मठों की स्थापना जाती व भाषा के आधार पर होनी चाहिये। आचार्य शङ्कर द्वारा दक्षिणाम्नाय में प्रतिष्ठित मठ शृङ्गेरी मठ है और कुम्भकोणमठाभिमानीयों का प्रचार है कि शृङ्गेरी मठ कर्नाटकीमठ है और तामिलनाड का मठ होना परमावश्यक है तथा आचार्य शङ्कर यद्यपि केरळ देश में जन्म लिये थे तथापि केरलीय लोग पंचद्राविड तामिल वर्ग के अन्तर्गत होने से आचार्य की जन्म भूमि तामिलनाड में मठ होना भी निश्चित होता है। ऐसे दुष्प्रचार से कुम्भकोणमठ वाले अपने धर्म पर ही कुठाराघात करने चले हैं और जिस एकता का अटूट सूत्र से आचार्य शङ्कर ने भारतवर्ष को एकता में बांध रक्खा था अब उसे कुम्भकोण मठवाले तोडने चले। इष्टसिद्धि प्राप्त करने के लिये भारतियों में जाति, भाषा, वर्ग द्वेष का प्रचार करते हुए भी शर्म नहीं आते।

मदरास अड्यार के 'Unpublished Upanishads' शीर्षक पुस्तक में इस 'मठाम्नायोपनिषद्' को श्री शङ्कराचार्य द्वारा रचित उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वेंकटेश स्टीम प्रेस के सूचीपत्र में, राजकीय संस्कृत कालेज प्रकाशित सूचीपत्र में, एवं अन्य सूचनावलियों में—मदरास, मैसूर, पूना, बडोदा, लाहौर, काशी, कलकत्ता, आदि—इस 'मठाम्नाय' को श्री शङ्कराचार्य द्वारा रचित माना है। शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठों में प्रस्तुत तीन मठों के (गोवर्धन, शृङ्गेरी, द्वारका) अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त आचरण से स्पष्ठ मालूम होता है कि यह पद्धति आचार्य शंकर ने प्रारम्भ की थी। प्रबल जन श्रुति एवं प्रौड विद्वानों का दृढ विश्वास इसी की पुष्ठी करता है। इस पुस्तक के तृतीय खंड में जो सब अभिप्राय प्रकाशित हैं उससे स्पष्ठ मालूम होता है कि 'मठाम्नाय' ही मठों की इतिहास जानने के लिये मूल व मुख्य प्रमाण ग्रन्थ है। पाटना हाईकोर्ट का एक मुकद्दमे के फैसले में ता:19-11-1936 ई० के दिन वहां के न्यायाधीशों ने दृढ प्रमाणों के आधार पर 'मठाम्नाय' को प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। वे फैसले में लिखते हैं—'.......... The Scriptures which govern the fundamental doctrines and

origin of the four Mutts are known as Mathamnaya but it is said that this document is really of the eighth century and not of an earlier date which is attributed to it by tradition. The Mathamnaya is, however, accepted as authoritative by Hindus. .... ' प्रत्येक मठ का अन्दरबाह्य व्यवस्था मठाम्नाय प्रमाणों से चलता है। मठ विषयक मुकदमों में भिन्न भिन्न अदालतों ने (बम्बई, सूरत, पाटना, कलकत्ता, आदि) अनेक दृढ व विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर इस मठाम्नाय ग्रन्थ को प्रामाण्य माना है। मठाम्नाय स्तोत्र नित्यपाठ करने के लिये संक्षिप्त रूप में है। इस पुस्तक के चतुर्थ खन्ड में 'मठाम्नाय' प्रकाशित है।

कुछ प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोणमठ का विवरण देकर प्रचार करते हैं उसमें कहा है कि श्री विद्यारण्य ने ही प्रत्येक मठों का वैशिष्ट्य बोधक चिन्ह एवं उनका आम्नाय सब लिखा था और ये सब पद्धति, नियम, संप्रदाय, आदि श्री विद्यारण्य के बाद ही शुरु हुआ था। पर इसके साथ यह भी प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री चित्सुखाचार्य ने मठाम्नाय ग्रन्थ रचा था और इस 'मठाम्नाय' में कांचीमठ उल्लेख है। अन्य एक प्रचार पुस्तक में कहा गया है कि मठों की स्थापना व व्यवस्था के लिये आम्नाय पद्धति की कोई आवश्यकता नहीं है चूंकि मठों की व्यवस्था 'पूजाकल्प' अनुसार ही हुआ है। अब 1960 ई० में यह प्रचार प्रारम्भ हुआ है कि आचार्य शङ्कर ने मठों की स्थापना जाति व भाषा के अभिमान पर मठों की स्थापना की थी। इन भिन्न कथनों में कौन यथार्थ है सो भ्रामक प्रचार करनेवाले ही जानें। यदि कुम्भकोणमठ के कथन को मान लें अर्थात् 14 वीं शताब्दी में लिखित मठाम्नाय है तो प्रश्न उठता है कि क्यों श्री विद्यारण्य ने कांचीमठ या कुम्भकोणमठ की आम्नाय पद्धती नहीं उल्लेख किया? क्या वे पक्षपाती थे या कांची मठ के द्वेषी थे? कुम्भकोणमठ का प्रचार भी है कि श्री विद्यातीर्थ (कांची कामकोटी मठाधीष) ने श्री विद्यारण्य को कांची से भेजकर शृङ्गेरी मठ का पुनः जीवित कराया था। क्या ऐसे महान् अपने गुरुमठ के प्रति इस प्रकार का अपचार कर सकते हैं? यदि 14 वीं शताब्दी में कांची मठ होता और इस मठ का आम्नाय पद्धति भी होता तो अवश्य उल्लेख भी करते। समय समय पर मिथ्या व भ्रामक प्रचारों से तथा एक मिथ्या कथन की पुष्टी के लिये अन्य मिथ्यायें कह कर प्रचार करने से और पामरजन इन विषयों के अनभिज्ञ होने से, प्रचारक अविरोध अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करता है।

काशी में 1935/36 ई० में कुम्भकोणमठाभिमानियों ने आक्षेप किया कि ब्रह्मैवभाव प्राप्त आचार्य श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री नरसिंह भारती जी महाराज, शृङ्गेरी मठाधीश, के 'ग्लोब एडिषन्' जिसमें आचार्य शङ्कर द्वारा रचित ग्रन्थों का संग्रह कर छपवायी थी उसमें इस मठाम्नाय को क्यों नहीं प्रकाशित किया? अतः मठाम्नाय आचार्य शङ्कर द्वारा रचित कहा नहीं जा सकता है। आक्षेप करनेवाले जान लें कि 'ग्लोब एडिषन्' छपवाकर प्रकाशित कराने का उद्देश्य यह था कि आचार्य शङ्कर रचित प्रधान ग्रन्थों का न लोप हो और सुगमता से अद्वैतवाद के स्नेही को ये ग्रन्थ उपलब्ध हों। इस 'एडिषन्' में अनेक स्तोत्र एवं अन्य छोटे ग्रन्थ भी छपवाये नहीं गये थे यद्यपि ये सब स्तोत्र एवं ग्रन्थ आचार्य शङ्कर रचित थे। अतः यह कहना भूल होगी कि अन्य स्तोत्र व ग्रन्थ जो प्रमाण से सिद्ध किया जा सकता है कि ये सब आचार्य शङ्कर द्वारा रचित थे, ये सब आचार्य शङ्कर ने रचा ही नहीं है। मठाम्नाय छपवाने से उनका कोई उद्देश्य पूर्ण नहीं होता चूंकि यह सब को विदित ही है और प्रतिदिन इसका आचरण एवं अनुकरण प्रस्तुत तीनों मठाधीश कर रहे हैं और यह लोप हो जाने का कोई कारण भी नहीं है। 'ग्लोब एडिषन्' को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस पुस्तक में प्रकाशित ग्रन्थ सब आचार्य के अद्वैतवाद वेदान्त के सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। इसमें

मठविषयक ग्रन्थ मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मठाम्नाय ग्रंथ चार आम्नाय मठाधीषों के अन्दरवाह्य व्यवस्था व पद्धति आदि हैं जो उन उनके आचरण में सहायक हो। यह ग्रन्थ सार्वजनिकों या साधारण परिव्राजकों के लिये लिखा नहीं गया था। अतः इसे 'ग्लोब एडिषन्' में छपवाकर प्रकाशित करने में कोई मतलब नहीं है। यदि एक क्षण के लिये मान भी लिया जाय कि यह ग्रंथ प्रामाणिक न होने के कारण ही 'ग्लोब एडीषन्' में उल्लेख नहीं किया गया तो प्रश्न उठता है कि श्री जगद्गुरु शंकराचार्य श्री 1008 श्री चन्द्रशेखर भारती जी महाराज, श्रृंगेरी मठाधीष, ने अपने तार तारीख 13—9—1934 के दिन धर्मवीर श्रीस्वानी लालनाथ जी को, क्यों मठाम्नाय ग्रंथ को इतना प्रामाण्य माना है? तार में आपने कहा—'In our sincere opinion the only basis clearing doubts regarding Acharya Gaddies found in the famous work Mathamnaya Stotra.' वर्तमान श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज जी ने अपने प्रवन्धकर्ता के पत्र ता: 16—1—1961 द्वारा कहते हैं 'पीठानां आचारादि विषये मठाम्नायस्तोत्रं महता अनेहसा प्रमाणतां प्रपद्यमानं पीठस्थैः सर्वैराचार्यैः आद्रियमाणमस्ति।' इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि 'ग्लोब एडिषन' में प्रकाशन न कराने से मठाम्नाय की प्राधान्यता व प्रामाण्यता घटती नहीं है और कुम्भकोणमठ का प्रचार मिथ्या प्रचार है।

कुम्भकोण मठ की चातुर्युता इसमें है कि वे अपने भ्रामक प्रचारों से पामर लोगों को सदा भ्रम में रखते हुए आ रहे हैं। कुम्भकोण मठ के लिये पीठ व मठ दोनों एक ही है। हमारे यहां पीठ जहां प्राणमय कोष देवयोनियों का सदा निवासस्थल है और जिसकी आराधना से मानव अपनी अपनी इष्टसिद्धि प्राप्त करता है, उस स्थल को पीठ कहते हैं। जैसे कांची में कामकोटि पीठ है। यह शङ्कर के वहुकाल पूर्व से ही है। ललिता त्रिशति में 'कामकोटि निलयायी नमः' का उल्लेख है और आचार्य शङ्कर रचित भाष्य में कामकोटि का अर्थ 'श्रीचक्र' वतलाया है। आचार्य शङ्कर ने कांची कामाक्षी की उग्रता को शान्तकर वहां के स्थूलरूप श्रीचक्र की अशुद्धता को निवारण कर श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा की थी। अनादि काल से आये हुए कामकोटि पीठ का नवीन निर्माण अथवा प्रतिष्ठा नहीं किये। पीठ की अधिष्ठात्री कामाक्षी है। मठ जो मनुष्यकोटि के ब्रह्मचारी, विद्यार्थी, परिव्राजक आदियों का निवासस्थल है और जहां वेदघोष सुने जाते हैं उस मठ का अधीश मनुष्यकोटि का व्यक्ति होता है न कि देवयोनि। साधारण वासस्थल मठ अनेक हो सकते हैं और यह स्थलान्तर भी हो सकते हैं। आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार चार आम्नाय मठों की ही स्थापना की थी और इसके नियम, आचरण, पद्धति आदि बनाये जिसे मठाम्नाय व महानुशासन में पाते हैं। साधारण निवास स्थल जिसे भी मठ कहते हैं इन मठों को यह मठाम्नाय नियम पद्धति लागू नहीं होता चूंकि ये सब मठ आम्नाय मठ नहीं हैं। कुम्भकोण मठ भी एक साधारण मठ है जिसकी स्थापना आचार्य शङ्कर के काल के बहुकाल पश्चात् ही हुई थी और अब 150 वर्षों से यह साधारण कुम्भकोण मठ 'आम्नाय मठ' बनने की चेष्टा में तीव्र प्रचार कर रहे हैं। इसी मिथ्या भ्रामक प्रचार का विमर्श व खन्डन इस पुस्तक में किया जा रहा है ता कि साधारण जन यथार्थ विषय जान लें। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कामकोटि पीठ सब को मान्य है इसलिये कांची में मठ भी होना निश्चित होता है। अपने प्रचार में पीठ व मठ दोनों का भेद नहीं करते। कुम्भकोण मठ को यह स्पष्ट मालूम है कि आम्नाय मठ के नाम से वे प्रचार नहीं कर सकते हैं चूंकि आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय व महानुशासन आपको यह अधिकार नहीं देता। इसलिये कुम्भकोण मठ पीठ के नाम से प्रचार कर, पीठ व मठ दोनों एक होने का भ्रामक मिथ्या प्रचार कर, अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। पीठ होने से ही आम्नाय मठ होने का कोई नियम नहीं है। आचार्य शङ्कर ने अनेक क्षेत्रों में पीठों की प्रतिष्ठा की, जीर्णोद्धार किया, पुनः निर्माण कराया, उग्रता शान्त किया, अशुद्धता निवारण किया, वैदिक विधि की पूजा व्यवस्था की, तो क्या कह सकते हैं कि इन

सब पीठों में आम्नाय मठों की भी स्थापना की थी ? शास्त्र विदित आम्नाय केवल सात हैं—चार दृष्टिगोचर और तीन ज्ञान गोचर—अतएव आम्नायानुसार दृष्टिगोचर मठ भी केवल चार ही हैं—गोवर्धन (पूर्व), शृङ्गेरी (दक्षिण), द्वारका (पश्चिम), जोषी (उत्तर)। साधारण मठ चाहे जितना भी समृद्धशालि, धनवान, कीर्तिवान् मठ हो, तो भी उसे आम्नाय मठ कहा नहीं जा सकता है। कुम्भकोण मठाधीष 'परमतपस्वी, प्रकान्ड विद्वान, परमशिवावतार, चलते फिरते देव, दक्षिणामूर्ति अवतार' आदि भले ही हों पर इससे आपसे अलंकृत मठ आम्नाय मठ बन नहीं सकता और कुम्भकोण मठ मठाम्नायानुसार एवं महानुशासन अनुसार 'अधिकार संपन्न' मठ बन नहीं सकता चूंकि यह अधिकार आचार्य शङ्कर से आपको प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसे साधारण अन्य मठ चार आम्नाय मठों की शाखा या उपशाखा या स्वतंत्र मठ ही कहे जा सकते हैं। ऐसा कहना मूर्खता है कि आचार्य शङ्कर के निर्याण स्थल, पीठोद्धारण किये हुए क्षेत्र, कुछ काल क्षेत्र में वासकर विमतों से वादविवाद कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किये हुए स्थल, सर्वज्ञपीठारोहण स्थल, लिङ्ग को प्रतिष्ठा किये हुए स्थल, आदि स्थलों में आम्नाय मठ स्थापना की गयी थी। यदि यह वाद सत्य होता तो भारतवर्ष में अनेक मठ भी होते और इन सब मठों का पृथक पृथक आम्नाय भी होता।

'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' में लिखा है कि आचार्य शङ्कर ने 'श्री विद्या' के आम्नाय पूजा विधि अनुसार ही मठाम्नाय पद्धति रचना की थी। 'श्री विद्या' पद्धति तान्त्रिक व वैदिक दोनों की पूजा पद्धति विधान है जो सब आर्ष 'कल्प' हैं और इसके साथ मठाम्नाय पद्धति व संप्रदाय की तुलना करना अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना एवं भूल होगा। 'श्री विद्या' में एक ही पद्धति है और वैसे ही मठाम्नाय में भी एक ही पद्धति व संप्रदाय होना चाहिये परन्तु स्पष्ट रूप से हमसब यही देखते हैं कि हर एक आम्नाय मठ की पद्धति व संप्रदाय भिन्न भिन्न हैं। 'स्वाध्यायोध्येतव्य:' के अनुसार प्राप्त किये हुए वेद का परित्याग ब्राह्मण कर नहीं सकते| ब्रह्मचारि, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम के कर्म्माधिकार को त्याग कर वैराग्य आने पर सन्यासाश्रम लेते हैं पर जन्म सिद्ध एवं वंश परम्पराप्राप्त वेद के बदले उसके महावाक्य का प्रणव के साथ गुरुमुख द्वारा उपदेश लेकर चिन्तन और मनन करते हैं| उसे अवश्य ही ग्रहण करना पडेगा। इसीलिये आचार्य शङ्कर ने आम्नाय चतुष्टय को दिक चतुष्टय (दृष्टिगोचर) में विभाग कर हर एक दिशा के लिये एक वेद एवं उस महावाक्य की नियुक्ती की। धर्म शास्त्रों में वेद का सम्बन्ध दिशा के साथ होने का भी उल्लेख है। यदि कर्मकान्ड के विवरण को देखें तो इस विषय का पूर्ण ज्ञान एवं कारण मालूम हो जायगा। संस्कृत निघंटु में आम्नाय शब्द का छः अर्थ हैं—(1) वेद, (2) गुरुपरम्परोपदेश प्राप्त वेद व्याकरणादि विद्यास्थानं, (3) सद्गुरु परम्परागत रहस्योपदेश, (4) संप्रदाय, (5) कुलम्, (6) अध्ययनम्। इन अर्थों से स्पष्ट मालूम होता है कि वेद, संप्रदाय, रहस्योपदेश के अनुसार ही आचार्य शङ्कर ने केवल चार मठों की पद्धति बनाई है न कि 'श्री विद्या' के आम्नाय पूजा (कल्प) के अनुसार।

'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' में आगे लिखा है कि जिसप्रकार 'मध्यविन्दु' बिना 'आम्नाय पूजा' नहीं होता उसीप्रकार कांची मठ बिना 'मठाम्नाय' पूर्ण नहीं है। पर आचार्य शंकर रचित 'मठाम्नाय' में कांचीमठ या कुम्भकोण मठ का नाम अथवा पद्धती का नामो निशान नहीं है चूंकि मठाम्नाय पद्धति श्री विद्या का आम्नाय पूजा के आधार पर नहीं लिखा गया है। यदि मान भी लें कि 'श्री विद्या' से 'मठाम्नायपद्धति' का सम्बन्ध है तो आम्नाय का 'विन्दु' पूजा 'मध्य' में होता है। क्या कांची नगर इन चार मठों के मध्य में स्थित है? श्री विद्या में 'मध्यविन्दु' का परिभाशा व लक्षण आदि दिये गये हैं। क्या ये सब कांची नगर में घटित होते हैं| यह कांची नगर दक्षिणाम्नाय के पूर्वी समुद्रतट निकट है। आचार्य शंकर को जिन्हें भारत वर्ष की सरहद एवं भौगोलिक

विवरण पूर्ण ज्ञात था, क्या आप भारत वर्ष के मध्य स्थल के बदले दक्षिणाम्नाय पूर्वीतट का क्षेत्र को चुने होंगे? दक्षिण दिशा में उस आम्नाय का जब आचार्य शंकर का एक निजमठ ('स्वाश्रमे') शृङ्गेरी में स्थापित हो चुका और आम्नाय संप्रदाय व नियमादि बन चुके थे तो क्या आवश्यकता पडी कि एक और मठ की स्थापना पुनः दक्षिणाम्नाय में करें। यदि कांचीनगर भारतवर्ष के मध्य में भी होता तो अनुमान से सन्देह की जगह भी होती। मध्यभारत में एक नगर 'कोंच' या 'कंच' है पर यह मध्य पीठ या आम्नाय मठ का स्थान नहीं है। कुम्भकोणमठ का यह प्रचार मठाम्नाय की आदरणीयता को घटाने की निष्फल प्रयत्न हैं।

कुम्भकोणभठ का यह भी प्रचार है कि 'व्यास पूजा' में जैसा 'पंचकों' की पूजा होती है—कृष्ण, सनकादि, व्यास, शङ्कर, द्रविडगुरु आदि पंचक—उसी प्रकार मठ भी पांच हैं। यह 'कल्प' पूजा पद्धति व उपासना के साथ मठाम्नाय की तुलना करना धर्मशास्त्र पर अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना होगा। व्यास पूजा सब 'कल्प' हैं और यह वेद का एक अङ्ग है ('शिक्षा व्याकरण छन्दो निरुक्त ज्योतिषं तथा। कल्पश्चेति शडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिनः।') इस आर्ष कल्प से एवं मनुष्य द्वारा प्रतिष्ठित मठ से क्या सम्बन्ध है? यहां तो आचार्य शङ्कर द्वारा आम्नायसंप्रदायानुसार चार ही मठ का निर्माण किया हुआ विषय प्रमाण ग्रन्थों से सिद्ध होता है और इन मठों में कल्परीति से पूजा होती है। कल्परीति पूजा पद्धति सब बराबर हैं पर मठ के सम्प्रदाय, वेद, महावाक्य, योगपट्ट आदि नियम पद्धति सब भिन्न हैं तो कैसा कहा जाय कि मठ का निर्माण कल्परीति से हुआ है। गुरु व व्यास पंचक को छोडकर अन्य पंचक में गुरुशिष्य भाव नहीं है (जैसा भामती व अन्यों का)। इसलिये कुम्भकोणमठ का जो प्रचार है कि पंचक के अनुसार पांच मठों में गुरुशिष्य भाव है सो कथन भी मिथ्या है| पाठकगण जान लें कि कुम्भकोणमठ के भिन्न प्रचारों से वे स्वयं नहीं जानते कि किस प्रमाण या आधार पर अपनी मठ की पद्धति सिद्ध किया जाय। समय समय पर भिन्न कथायें सुनाने से ही प्रतीत होता है कि उनका कथन सब कल्पित मिथ्या है|

कुम्भकोणमठ का कथन भी है कि गुरु के लिये कोई नियम, पद्धति की आवश्यकता नहीं है और इसलिये मठाम्नाय ग्रन्थ में उस विषय का उल्लेख नहीं है और कांची मठ मुखिया गुरु मठ है। यदि आचार्य के लिये स्व आचरण मठपद्धति न भी हो तो उनके पश्चात् आने वाले शिष्यों के लिये तो अवश्य होना था? क्या आचार्य शङ्कर आपस में फूटभाव पैदा कराने के लिये ही अपने मठ का नियम व पद्धति न लिख गये? आचार्य शङ्कर समान सौम्य शान्त दूरदृष्टि रखनेवाले क्या इस विषय का भूल कर सकते हैं? यदि मठ होता तो अवश्य मठ पद्धति भी होता। कुम्भकोणमठ के कथनानुसार मान भी लें कि कांची में मठ था और आचार्य शङ्कर स्व आचरण के लिये मठ पद्धति नहीं बनाये तबभी प्रश्न उठता है कि इनका मठ का सम्बन्ध क्या होगा अन्य चार आम्नायानुसार प्रतिष्ठित मठों के साथ? गुरु व शिष्य मठ के आचारविचार, नियम, संप्रदाय, पद्धति आदि अवश्य ही आचार्य शङ्कर लिखे होंगे यदि आप गुरु मठ की स्थापना की होती। आचार्य शंकर रचित मठाम्नाय में ऐसा कोई विषय उल्लेख नहीं है। कुम्भकोणमठ प्रचार करते हैं कि गुरु मठ के लिये मठाम्नाय पद्धति की आवश्यकता नहीं है पर प्रश्न उठता है कि क्यों कुम्भकोणमठ ने एक कल्पित 'मठाम्नायसेतु' पुस्तक की रचना कर और इसे आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य 'श्री चित्सुखाचार्य कृत' कहकर तथा इस मठाम्नायसेतु को बृहच्छंकरविजय (अदृष्टम् अप्राप्तम् कोटि के पुस्तक) से उद्धरण किया गया है, ऐसा मिथ्या प्रचार कर रहे हैं? जब गुरु मठ के लिये पद्धति नहीं है तो अब कैसे पद्धति इस पुस्तक में लिख गये? कुम्भकोणमठ वालों को यह मालूम है कि संप्रदाय पद्धति बिना आम्नाय मठ नहीं हो सकता है और आचार्य शंकर रचित मठाम्नाय में आपका स्थान नहीं है, अतः अपना स्थान दिखाने के लिये ही यह कल्पित मठाम्नाय बनाया गया है। कुम्भकोणमठ के कल्पित मठाम्नाय पद्धति का विमर्श द्वितीय अध्याय में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि मठाम्नाय आधुनिक काल का रचा ग्रंथ है और इस ग्रंथ के रचयिता आचार्य शंकर न थे। कुम्भकोण मठ का उल्लेख जिस किसी ग्रंथ में पाया न जाय वह सब कुम्भकोण मठ के लिये अप्रमाणिक है और यह भावना उनका स्वभाव बन गया है। अपने तीव्र प्रचारों से इन सब ग्रंथों की आदरणीयता घटाने का निष्फल प्रयत्न भी करते हैं। उदाहरण—माधवीय शंकर विजय आधुनिक काल में भट्ट श्री नारायण शास्त्री से शृङ्गेरी मठाभिमानियों द्वारा रचित है, अथवा 18 वीं शताब्दी के 'नवकालिदास' ने इसे रचा था, अथवा मूल व डिण्डिम व्याख्या सहित दक्षिण के पन्डित से रचा हुआ एवं धनपतिसूरि के नाम पर प्रकाश किया हुआ है, किसी शृङ्गेरी मठ के भक्त ने आधुनिक कालमें 'शंकरविजयविलास' नामक ग्रंथ लिखकर चिद्विलास कृत प्रचार किया है (कामकोटी प्रदीपम्), सदानन्द कृत शंकरविजयसार एवं बम्बई प्रकाशित गुरुपरम्परा चरित्र (हिङ्गोली गोपाल शास्त्री) दोनों अप्रमाणिक ग्रंथ हैं, आदि। पाठकगण पूर्व में पढ चुके होंगे कि यह ग्रंथ आचार्य शंकर रचित ही है और मठविषयक निर्णय करने में यही सर्वप्रधान प्रामाणिक ग्रंथ है। यदि मान लें कि मठाम्नाय आधुनिक काल में रचित ग्रंथ है पर जिस किसी समय में भी यह रचा गया हो उस समय में भी आपका मठ न था नहीं तो अवश्य कांची या कुम्भकोण मठ का नाम मठाम्नाय के रचयिता उल्लेख किये होते। आम्नाय, वेद, महावाक्य, संप्रदाय, ब्रह्मचारि, गोत्र, योगपट्ट आदि सब शास्त्र सिद्ध हैं। चार की जगह पांचवां का उल्लेख करना तो केवल कल्पना एवं अशास्त्रीय है।

कुम्भकोण मठ का यह भी भ्रामक प्रचार है कि मठाम्नाय में चार मठ का उल्लेख है कहना गल्त है चूंकि ऊर्ध्वाम्नाय का सुमेरु मठ काशी में है और इसका क्षेत्र कैलास है। यदि दृष्टिगोचर आम्नायानुसार चार की जगह पांच भी मान लें तो कुम्भकोण मठ का इष्ट सिद्धि इससे कैसे प्राप्त होती है? दृष्टिगोचर चार आम्नाय के साथ ऊर्ध्वाम्नाय को भी मिलालें तो इन पांच आम्नायों में भी कुम्भकोण मठ का स्थान नहीं है। परम्परा आचरण से प्रतीत होता है कि ऊर्ध्वाम्नाय, स्वात्मा, निष्कल ये तीनों ज्ञानगोचर ज्ञानाम्नाय हैं—'अथोर्द्धशेषेगौणाये तेऽपि ज्ञानैन सिद्धिदा:।' मठाम्नाय सेतु में सात आम्नायों की पद्धति उल्लेख है और दृष्टिगोचर मठाम्नाय केवल चार ही हैं और यह कोई नहीं कहता कि कुल आम्नाय चार ही हैं। ऐसे भ्रमात्मक प्रचारों से तो केवल अनभिज्ञ ही उनके मायाजाल में पड सकते हैं। यदि पाठकगण इस ऊर्ध्वाम्नाय का पद्धति, नियम व संप्रदाय आदि पर आलोचना करें तो स्पष्ट मालूम होगा कि क्या यह आम्नाय संप्रदाय आदि आध्यात्मिक ज्ञानगोचर हैं या दृष्टिगोचर हैं। ऊर्ध्वाम्नाय का विवरण—'संप्रदाय—काशी, योगपट्ट—सत्यंज्ञानं, ब्रह्मचारि—ब्रह्मतत्त्वे संयोगेन संन्यास:, तीर्थ—मानसं ब्रह्मतत्त्वांवगाहितम्, क्षेत्र—कैलास, देव—निरञ्जन:, देवी—माया, मठनाम—सुमेरु (महेश्वरहिमालय का चोटी), आचार्य:—महेश्वर:।' प्रश्न उठता है की कुम्भकोण मठ द्वारा कल्पित व रचित मठाम्नाय सेतु जिसे चित्सुखाचार्य कृत एवं बृहच्छंकरविजय से ली गई है ऐसा प्रचार जो करते हैं उसमें चार दृष्टिगोचर आम्नाय जिसे कुम्भकोण मठ 'पूर्वाम्नाय' कहते हैं और तीन ज्ञानगोचर आम्नाय जिसे कुम्भकोण मठ 'उत्तराम्नाय' कहते हैं, इन दोनों के बीच में कोई संख्या या आम्नाय न उल्लेख कर कुम्भकोण मठ की आम्नाय पद्धति का विवरण दिया है जिसके पढने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि ये सब न केवल कल्पित हैं पर अशास्त्रीय भी हैं। कुम्भकोण मठ को अच्छी तरह मालूम है कि धर्मशास्त्र प्रकार सात ही आम्नाय हैं और अपना कल्पित आठवां आम्नाय इसमें मिला नहीं सकते। इसीलिये तो आपने अपने से विभाजित 'पूर्वाम्नाय—उत्तराम्नाय' के बीच बिना आम्नाय दिये अपने मठ का संप्रदाय उल्लेख किया है। यह तो त्रिशंकु आम्नाय प्रतीत होता है।

कुम्भकोण मठ के कुछ प्रचार पुस्तकों में 'आम्नाय' शब्द ही छोड दिया गया है और प्रचार करते हैं कि ईश्वर का पांचमुख है इसलिये आचार्य शङ्कर ईश्वरांश होने से आपसे पांच मठ की स्थापना करना निश्चित होता

है। आम्नाय पद्धति, नियम व संप्रदाय आदि शास्त्ररीति से विधान हुआ है न कि सगुणोपासना की मूर्ति के आधार पर। कुम्भकोण मठ के उपर्युक्त कहे युक्ति जो वितन्डावाद है उस युक्ति से कार्तिक (षण्मुख) के छः मुख का छः मठ, दत्तगुरु के तीन मुख का तीन मठ, आदिशेष सहस्रमुख का 1000 मठ, की भी स्थापना क्यों नहीं हुई? यह युक्तिवाद निराधार है। कुम्भकोण मठ के इन भिन्न कथनों से ही स्पष्ट मालूम होता है कि आपके प्रचार सब भ्रामक व मिथ्या हैं और आपका कोई आम्नाय पद्धति नहीं है। यथार्थ विषय का कथन एक होता है न कि भिन्न भिन्न जैसे कुम्भकोण मठ का प्रचार है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि काशी में 'सुमेरु मठ होने से चार मठ होने का निर्णय देना गल्त है'। काशी के सुमेरु मठ व चार आम्नाय मठों के बीच में यह विवाद खडा नहीं हुआ था। कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों से काशी में 1934–35 ई० में प्रश्न उठा था कि क्या कांची कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित था या नहीं? क्या आचार्य शङ्कर कांची मठ में अधिष्ठित भये या नहीं? क्या मठाम्नायनुसार कांची मठ भी एक आम्नाय मठ है या नहीं? क्या कांची मठ मठाम्नाय एवं महानुशासन से बद्ध है? 30—9—1934 के दिन काशी बिहारीपुरी मठ के सार्वजनिक सभा में काशी के प्रकान्ड विद्वानों, आदरणीय मन्डलेश्वरों महन्तों एवं माननीय परिव्राजकों ने निर्णय किया था कि मठाम्नायानुसार एवं महानुशासन से बद्ध चार ही आम्नाय मठ हैं। (मुझ से प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद' में पूर्ण विवरण पाठकगण पायेंगे।) धर्मराज्यकेन्द्र जिसे आम्नाय मठ कहते हैं और जो महानुशासन से बद्ध है उसके अनुसार चार धर्मराज्य-केन्द्र (मठ) हैं। यदि मान लें कि काशी सुमेरुमठ पांचवां ऊर्ध्वाम्नाय है तो इससे कुम्भकोण मठ के प्रचारों का विरुद्ध ही होगा और यह तर्क उनके लिये हानिकारक है। 'शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' का कथन है कि 'गुरुवंश काव्य' में पांच मठों का (चार आम्नाय मठ एवं सुमेरुमठ पांचवां) उल्लेख होने से काशी के प्रकान्ड पन्डितों एवं परिव्राजकों का 1886 ई० का व्यवस्था जो चार ही आम्नाय मठ होने का निर्णय दिया था सो भूल है। इस कुतर्क से अपनी अज्ञानता भी प्रकट होती है। काशी के दिग्गज पन्डितों ने 1886 ई० में कहा है कि धर्मराज्यकेन्द्र जिसे आम्नाय मठ भी कहते हैं और जो मठाम्नाय एवं महानुशासन से बद्ध हैं वैसे मठ चार ही आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित हैं। इसका अर्थ यही होगा कि काशी का सुमेरु मठ धर्मराज्यकेन्द्र स्वरूप एवं महानुशासन बद्ध दृष्टिगोचर आम्नाय मठ माना नहीं जा सकता है चूंकि दृष्टिगोचर आम्नाय चार ही हैं और ज्ञानगोचर (ऊर्ध्व, निष्कल, स्वात्मा) तीन हैं। दक्षिण भारत तिरुचूर नगर में पांच मठ हैं और वे सब मठ वहां के लोग आचार्य शंकर द्वारा स्थापित मानते हैं। सम्भवतः आचार्य शंकर इन स्थलों में कुछ दिन वास किये हों और इससे यह कहना मूर्खता है कि यह मठ भी धर्मराज्यकेन्द्र स्वरूप व महानुशासन बद्ध आम्नाय मठ हैं। काशी सुमेरु मठ आचार्य शंकर का साधारण निवास स्थान (मठ) रहा हो पर यह आम्नाय मठ बन नहीं सकता और यह मठ अधिकार संयत्र 'महानुशासन' से बद्ध भी नहीं है। श्री लक्ष्मण शास्त्री से रचित 'गुरुवंशकाव्य' के टीकाकार इस श्लोक जहां काशी में पांच मठों की स्थापना का उल्लेख है वहां लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर अपने चार शिष्यों सहित—'पद्मपादाचार्यादिभिः'—काशी पहुंच कर अपने सहित पांचों के लिये पांच मठों की स्थापना कर कुछ दिन वहां वास करने के पश्चात् काशी से काश्मीर पहुंचे। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आचार्य शङ्कर ने पांच आम्नाय मठों की स्थापना काशी में की थी। 'मठः छात्रादिनिलयः' 'ब्रह्मघोषो भवेद् यत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः। देव प्रदानकं वेश्म मठ इत्यभिधीयते।' (ब्रह्मपुराण) ऐसे साधारण निवास स्थान मठ अनेक हैं पर क्या ये सब धर्मराज्यकेन्द्र हैं? क्या ये सब महानुशासन से बद्ध हैं? काशी के दिग्गज विद्वानों ने इन ग्राह्य आधारों पर ही अपनी व्यवस्था 1886 ई० में दी थी। श्री कृष्णानन्द कैवल्यधाम एवं अन्य आदरणीय

परिव्राजकों का भी सम्मति चार आम्नाय मठ का ही था। उस समय के विपक्षीदल ने भी चार आम्नाय मठ होने की व्यवस्था दी थी जिसकी प्रति मेरे पास है। चार विषयों पर व्यवस्था काशी में मांगी गयी थी और इस चौथा विषय —मठविषयक—पर दोनों दलों का व्यवस्था एक ही था। यह निर्णय सब काल के लिये और सबों को शिरोधार्य है जो हमारे आर्ष ग्रंथों, प्रामाणिक ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्र से स्नेह रखते हैं। काशी के प्रकान्ड विद्वान 1886 ई० में काशी के सुमेरु मठ का वृत्तान्त पूर्ण जानते थे और सुमेरु मठ के महन्त जी ने भी इस विवाद में भाग लिया था। आपलोगों ने एक साधारण निवासमठ का नाम न लेने का कारण यही था कि यह मठ मठाम्नाय एवं महानुशासन से बद्ध नहीं था जैसा अन्य चार आम्नाय मठ हैं। काशी सुमेरु मठ के माननीय महन्त महाराज ने भी काशी में 1935 ई० में काशी के प्रकान्ड विद्वानों एवं आदरणीय परिव्राजकों से दिये हुए व्यवस्था पर आपने अपनी सम्मती भी दी है। पाठकगण कृपया 'काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद' पुस्तक देखें जहां विवरण दिया गया है।

कुम्भकोण मठ के प्रचारकों से और एक कथा प्रचार किया जा रहा है जो कथा प्रमाण द्वारा सिद्ध किया नहीं जा सकता है और केवल अनुमान पर आधारित है। आपका कथन है कि दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ अद्वैत प्रचार (व्याख्यान सिंहासन पीठ) करने के लिये दक्षिण में मठ की स्थापना की गयी थी और एक दूसरा मठ उसी दक्षिणाम्नाय कांची में वाह्यव्यवस्था—वर्णाश्रमाचारधर्मरक्षण और धर्मप्रचार के लिये—एक और मठ की स्थापना की गयी थी। प्रचारक आगे कहते हैं कि शृङ्गेरी मठ द्वारा केवल ज्ञान प्रचार से धर्म का पुनरुज्जीवन हो नहीं सकता और लोगों के आचार विचार सुधारने के लिये व वाह्य सम्बन्ध रखने के लिये सम्भवतः आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की हो ऐसा अनुमान किया जाता है। तब प्रश्न उठता है कि आचार्य रचित मठाम्नाय में क्यों नहीं इस विषय का उल्लेख किया गया था? इस अनुमान के अनुसार तीन आम्नाय मठ सीमा में क्यों नहीं तीन अन्य मठ वाह्य व्यवस्था के लिये स्थापना की गयी थी? क्यों दक्षिण के लिये ही दो मठ की आवश्यकता पडी? क्या दक्षिण के लोग ज्यादा अधर्मी थे कि आचार्य शङ्कर ने यहां अलग मठ की स्थापना की थी? अद्वैत प्रचार तो चारों आम्नाय मठाधीष करते हैं। वाह्य व्यवस्था—वर्णाश्रमाचारधर्म रक्षण और धर्म प्रचार आचार विचार सुधारक एवं धर्म विधायक—अधिकार भी दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ को ही आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय एवं महानुशासन द्वारा दिया गया है और यहां कांची मठ का नामों निशान नहीं है। अतः ऊपर कहे अनुमान भी निराधार एवं कल्पना मात्र है। मठ कहने मात्र से पद्धति, संप्रदाय, योगपट्ट, वेद, महावाक्य आदि का भी निर्देश होना चाहिये। कुम्भकोण मठ का कल्पित पद्धति सब धर्मशास्त्र ग्रन्थों एवं अन्य प्रमाण ग्रन्थों द्वारा पुष्टि नहीं की जा सकती है। दक्षिणाम्नाय कहने मात्र से कांची मठ को भी दक्षिणाम्नाय मठ पद्धति आदि लागू होना चाहिये था पर कांची मठ इसे स्वीकार नहीं करते। कुम्भकोण मठ का कथन है कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार मठ शिष्य मठ हैं और कांची मठ ही गुरु मठ है। आगे आप यह भी कहते हैं कि आपके संचालन में ये चार शिष्य मठ हैं। कुछ वर्षों से कुछ गण्यमान सज्जन एवं कतिपय विद्वान प्रचार करते हैं कि कांची मठ ने कभी भी अपने को 'सर्वोच्च सर्वोत्तम' कहा नहीं है और ऐसा प्रचार करना आपस में फूट-भाव पैदा करना होगा। मैं उन सज्जनों एवं विद्वानों से अनुरोध करूंगा कि आप लोग कुम्भकोण मठ के 'मठाम्नाय सेतु' को अच्छी तरह पढें। कुम्भकोण मठ का मार्कन्डेय संहिता से कुछ श्लोक उद्धृत कर प्रचार करते हैं और यह श्लोक का तात्पर्य है कि कांची मठाधीष ब्रह्मा, विष्णु से भी पूजित मठाधीष हैं। काशी में 1934–35 ई० में जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा और वर्तमान मठाधीष से अनेक असौकर्य प्रश्न पूछे गये थे तब आपने भाषण देते कहा कि कुम्भकोण मठ किसी समय में भी अपने श्रेष्ठत्व का प्रचार नहीं किया है और दूसरे मठों पर अपना प्रभुत्व का प्रचार भी नहीं किया है और जगद्गुरु पदवी आपको

बहुव्रीहिसमास में लागू होता है। दुःख के साथ लिखना पडता है कि यह कथन सरासर मिथ्या है चूंकि कांची कुम्भकोण मठ का 'मठाम्नाय सेतु' एवं आपके मार्कन्डेय संहिता तथा अन्य प्रचार पुस्तकें जो 1915 ई० से 1935 ई० तक प्रकाशित किये गये थे, ये सब पुस्तकें आपके कथन के विरुद्ध ही कहता है। उलटे चोर कोतवाल को डांटे कहावत का चरितार्थ कर दिखाया है। पाठकगणों के जानकारी के लिये यहां कुम्भकोण मठ के मठाम्नाय सेतु से कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

उक्ताश्चत्वार आम्नाया यतीनां हि पृथक् पृथक्।
ते सर्वे मत्पदाचार्य नियोगेन यथा विधि।
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा।
कुर्वंतं एव सततं अटनं धरणी तले।
विरुद्धाचार संप्राप्तौ मत्पदस्य समाज्ञया।
लोकान् संशलियन्त्वेते स्वधर्मा प्रतिरोधतः।
... ...
तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः।
स स्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
तैरन्यतो न गम्येत मन्मव्याः सर्वतश्चराः।
कामकोटि मठेत्वस्मिन् गुरुरिन्द्र सरस्वती।
सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः।
अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।
... ...
अन्ये मठास्तु चत्वारः आचार्य मत्पदे स्थितम्।
संप्रदायैश्चतुर्भिः स्वैः समर्चन्तु यथाविधि।

उपर्युक्त प्रचार के साथ कुम्भकोणमठ के प्रचारक के अनुमान जमता नहीं है। इन दोनों भिन्न मिथ्या कथनों से पामरजन और भ्रम में पडते हैं। इन भिन्न कथनों से सिद्ध होता है कि कुम्भकोणमठ भगीरथ प्रयत्न से अधेनु को धेनु कहलाने की कोशिश कर रहे हैं। कुम्भकोणमठ के स्वेच्छावाद का प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं है।

कांची मठ का आम्नाय पद्धति प्रमाण द्वारा निश्चय कर लेने के पश्चात ही आपका मठ आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित है या नहीं इस विषय पर आलोचना करनी चाहिये। आम्नाय मठ के लक्षण घटित होना आवश्यक है। यदि प्रमाण ग्रन्थों से सिद्ध किया जाय कि कुम्भकोणमठ का संप्रदाय आम्नाय रहित और शास्त्र विरुद्ध है तो मठ स्थापना का प्रश्न उठता ही नहीं। किसी एक ब्राह्मण व्यक्ति से उसके ब्राह्मण होने का प्रमाण पूछा जाय तो वह व्यक्ति अपना गोत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र आदि बतलाकर अपना परिचय देता है। इसके बदले यदि वह व्यक्ति कहे कि 'मैं भस्म रुद्राक्ष धारण किया हूं या मुद्रा तुलसी धारण किया हूं या नामम् धारण किया हूं और मुझको दिये हुए दान पत्र, शासन आदि को देखो या मेरे धन व ख्याती देखो या मेरे मकान, नौकर, वाहन, आदि देखो और इसके पश्चात् यदि सन्देह हो तो मेरा गोत्र, प्रवर, सूत्र, शाखा, सब पूछो' ऐसा कहना न्याय व उचित नहीं है।

इसी प्रकार कुम्भकोण मठ का कथन है | जब आम्नाय पद्धति, संप्रदाय, वेद, महावाक्य, योगपट्ट, ब्रह्मचारी आदि कुम्भकोण मठ से पूछा जाय तो आप कहते हैं कि 'इन विषयों पर आलोचना पश्चात् होगा और प्रथमतः मेरे मठ से जुटाया हुआ अभिनन्दन, स्वागत, प्रणति, प्रार्थना आमोदन, व्यवस्था पत्र आदि देखो, मेरे मठ के ताम्रशासन देखो और अन्त में मुझे देखो|' यह मार्ग अवलम्बन उचित व न्याय नहीं है। आम्नाय पद्धति, संप्रदाय, नियम आदि का प्रमाण देकर सिद्ध करने के बाद इसकी पुष्टि के लिये अन्य प्रमाण देना न्याय है। फोटो व अर्वाचीन काल का दान पत्र से मठ की प्राचीनता कैसे सिद्ध किया जा सकता है? कांची मठ का अव्यवस्थित धर्मशास्त्र विरुद्ध आम्नाय किस प्रकार आम्नाय मठ होने का सिद्ध कर सकते हैं? यदि कांची मठ गुरुमठ होता या आपका आम्नाय होता तो अवश्य चार की जगह पांच का उल्लेख होता पर वैसा नहीं है—'चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः।' कांची में 'कांच्यां श्रीचक्रराजाख्ययन्त्रस्थापनदीक्षिताय नमः।' का उल्लेख है न कि कांची में आम्नाय मठ स्थापन करने का। महानुशासन कहता है 'मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्चधुरन्धराः। संप्रदायाश्च चत्वार एषा धर्म व्यवस्थितिः॥ चातुर्वर्ण्यं यथायोगं वाङ्मनः कायकर्मभिः। गुरो पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै| धरामालम्ब्य राजानः प्रजाम्यः करभागिनः। कृताधिकारा आचार्या धर्मे तत्तद्वदेव हि॥' शिक्षा देने का अधिकार एवं धर्मविषय विधायक केवल चार मठों के आचार्यों का ही है न कि कोई पांचवें मठ का। कुम्भकोण मठ विवरण 'अनुपनीतस्य वाजपेय यागवत्' सा है।

आम्नाय पद्धति, संप्रदाय, नियम आदि (1) मठाम्नायोपनिषद, (2) मठाम्नाय सेतु (महानुशासन सहित), (3) मठाम्नाय स्तोत्र में पाते हैं। मठाम्नायोपनिषद्—मदरास अडयार पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित उपलब्ध है। इसके हस्तलिपि प्रति उत्तरी भारत में अनेक जगह उपलब्ध होते हैं—कामरूप, नवद्वीप, दरभङ्गा, काशी, फैजाबाद, लाहौर (1934 ई०), बडौदा, पूना, बंबई, आदि। इसमें सात आम्नाय का उल्लेख है। भारत के चार दिशा के चार धामों के समीप चार आम्नाय मठ का उल्लेख है। काशी संप्रदाय का ऊर्ध्वाम्नाय पांचवा है, छटवां आत्माम्नाय परमात्मा मठ एवं सातवां जंबूद्वीपः (निष्कलाम्नाय भी पाठान्तर है)। मठाम्नायसेतु—इस ग्रन्थ का मुद्रित एवं हस्तलिखित प्रति सर्वत्र उपलब्ध है। इसी सेतु के साथ महानुशासन भी मिलाया गया है। कुछ प्रकाशित प्रतियों में 'मठाम्नायसेतु' व 'महानुशासन' अलग अलग दिये गये हैं। इसके अन्त में ऐसा उल्लेख है—'श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मच्छंकर भगवत्कृता मठाम्नायाश्चत्वारः समाप्ताः।' चार पृथक पृथक मठाम्नायस्तोत्रों का यह एकत्र संकलन किया हुआ सेतु है। मठाम्नाय स्तोत्र—चार आम्नाय मठों का अलग अलग स्तोत्र बनाकर प्रकाशित हैं और इन मठों में इसका नित्य पाठन होता है।

इन सब ग्रन्थों में आम्नाय, पीठ, मठ, क्षेत्र, तीर्थ, देवदेवी, महावाक्य, सम्प्रदाय, योगपट्ट, ब्रह्मचारि आदि विषय सब बराबर हैं। इसमें कोई अन्तर नहीं पाया जाता है। भेद केवल प्रथमाचार्यों का नाम में है पर इसका भी समन्वय किया जा सकता है| इस भेद के कारण कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि यह ग्रन्थ अप्रमाणिक है। आम्नाय पद्धति, नियम, संप्रदाय में भेद पाये नहीं जाते। श्रुति में परस्पर विरोध वाक्य होने से क्या श्रुति को अप्रमाण माना जाय? ऐसे विरुद्ध वाक्यों का समन्वय किया जाता है| इसी प्रकार मठाम्नाय के प्रथमाचार्य के नाम भिन्न पाठान्तर का समन्वय पूर्वजों ने किया ही है| अतः इस पुस्तक को आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित आम्नाय मठों की पद्धति, संप्रदाय आदि के निर्णय के लिये प्रधान मूल प्रामाण्य ग्रन्थ माना जाता है। यह पुस्तक स्मृति तुल्य है।

बृहच्छङ्करविजय या प्राचीन शङ्करविजय—माधवीय शङ्कर विजय के प्रारम्भ में "प्रणम्य परमात्मानं श्रीविद्यातीर्थरूपिणम्। प्राचीनशङ्करजये सारः संगृह्यते स्फुटम्।' इस श्लोक के आधार पर कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि माधवाचार्य काल के पूर्व एक शङ्करविजय (प्राचीन शङ्करविजय) ग्रन्थ उपलब्ध था। माधवीय के टीकाकार श्रीअच्युत पन्डित इस पद्य के 'इति कृत सुरकार्यं नेतुमाजग्मरेनं रजतशिखरि शृङ्ग तुङ्गमीशावतारं' 'ईशावतार' पद का टीका करते हुए लिखते हैं 'गौरीरमणावतारत्वं तु श्री.शङ्कराचार्यस्योक्तं शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये', इस प्रकार परमशिव का अवतार श्रीशंकराचार्य लिखकर इस कथा को शिवरहस्य के नवमांश षोडशाध्याय से 46 श्लोकों को उद् धृत कर बाद लिखते हैं 'एतत्कथाजालं बृहच्छंकरविजय एव श्रीमदानन्दज्ञानाभिधानन्दगिरि रचिते द्रष्टव्यमितिदिक्' ऐसा उन्होंने 'बृहच्छंकरविजय' का नाम लिया है। इससे मालूम होता है कि श्रीअच्युत पन्डित (1824 ई०) के पूर्व बृहच्छंकरविजय प्रति उपलब्ध था और प्रसिद्ध ग्रंथ था। यह निश्चितरूप से कहा नहीं जा सकता है कि टीकाकार पं० अच्युतराय ने इस पुस्तक को देखा हो या पढा हो। सम्भवतः यह ग्रन्थ नाम मात्र से प्रसिद्ध रहा हो। आश्चर्य है कि 1824 ई० में जो पुस्तक टीकाकार से निर्देष किया गया है वह अब उपलब्ध नहीं है। सारे भारतवर्ष में कहीं भी इस पुस्तक की प्रति मिलता नहीं है। भिन्न भिन्न स्थलों के बनाये हुए अनेक सूची पत्रों में (18 वी० एवं 19 वी० शताब्दी) इस पुस्तक का नामों निशान नहीं हैं। टीकाकार ने जहां कहीं श्लोकों को उद् धृत किया है उसका मूल ग्रन्थ का नाम भी निर्दिष्ट नहीं किया है। विद्वानों का अनुमान है की चूंकि टीकाकार ने पुस्तक के अन्त में बृहच्छंकरविजय पुस्तक का नाम लिया है इसलिये सम्भवतः आपसे उद् धृत अन्य सब श्लोक इसी पुस्तक से उदधरण किया गया हो!

श्री अच्युतराय पन्डित के पूर्व माधवीय शङ्करविजय के टीकाकार श्री धनपतिसूरि 'डिण्डिम' (1799 ई०) भी इस पद के 'एकदादेवतारूप्याचलस्थमुपतस्थिरे' अर्थ में लिखते हैं कि ब्रह्मादिदेव को ही यह सूचित करता है और आगे आप लिखते हैं 'निगमाचारपरिभ्रिष्ठा ... ... प्रणिपत्य पञ्चवक्त्रं शिवमूच इति प्राचीन विजयोक्तिः।' इस प्रकार श्री धनपतिसूरी भी प्राचीन एक शंकरविजय का नाम लेते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह पुस्तक सब से प्राचीन है। माधवीय मूल में 'संक्षेपशंकरजये सर्गोऽयं प्रथमोऽभवत्' कहने से प्रतीत होता है कि एक बृहत् शंकर विजय पुस्तक था और उसका संक्षेप रूप से यह माधवीय पुस्तक लिखा गया है। श्री धनपति सूरी अपने टीका में लगभग 811 श्लोकों को दिग्विजय यात्रा का वर्णन करते अवसर में 'किसी ग्रन्थ' से उद्धृत किया है जिसका नाम आपने कहीं भी निर्दिष्ट नहीं किया। न मालूम आपने किस मूल पुस्तक से यह सबश्लोक उद्धृत किया है। इसमें 15 सर्ग के दूसरे श्लोक के टीका में 58 श्लोक, चौथे श्लोक की व्याख्या में 402 श्लोक तथा 28 वें श्लोक के व्याख्या में 351 श्लोक उद्धृत किये गये हैं। केवल यह अनुमान है कि ये सब श्लोक आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि से रचित 'बृहच्छंकरविजय' से लिया गया हो जिसका उल्लेख 16 वें सर्ग 103 श्लोक के टीका में किया गया है। इस आधार पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आनन्दज्ञान का नाम ही आनन्दगिरि है जिन्होंने शंकर भाष्य पर टीकायें रची हैं। कुम्भकोणमठ के कुछ प्रचार पुस्तकों में यह भी कहा गया है कि आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री तोटकाचार्य जिनका नाम आनन्दगिरि भी था आपने ही 'बृहच्छंकरविजय' ग्रन्थ रचा था। आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री तोटकाचार्य (आनन्दगिरि) ने कोई शङ्कर विजय ग्रन्थ रचा ही नहीं है। टीकाकार आनन्दगिरि पृथक व्यक्ति हैं और आप श्री शुद्धानन्द के शिष्य थे। इन दोनों को अभिन्न व्यक्ति होने का जो प्रचार कुम्भकोणमठ से पूर्व में किया गया था सो भ्रमात्मक मिथ्या प्रचार है। श्री अच्युत पन्डित से रचित टीका जिसे 'अद्वैतसाम्राज्यलक्ष्मी' टीका के नाम से प्रसिद्ध हैं, आपने श्री धनपति सूरी (डिण्डिम) के समान श्लोकों को उद्धृत नहीं किये। खेद का विषय है कि यह पुस्तक 'शङ्करविजय' जो बृहत् रूप में था और प्राचीन भी था और जिसे अर्वाचीन काल में विद्वानों से 'प्राचीन बृहच्छंकरविजय' के नाम से पुकारा जाता

है वह पुस्तक कहीं भी उपलब्ध नहीं है या किसी ने अभी तक देखा नहीं है। अनेक सूचीपत्र ढूंढे गये और कहीं भी इस पुस्तक का नाम उल्लेख नहीं पाया। कुछ स्वार्थ परायण अपने इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये अश्रुत, अदृष्ट, अज्ञात, पुस्तक से कुछ श्लोक उद्धृत कर इस प्राचीन पुस्तक का नाम लेकर प्रमाणाभास रूप में प्रचार भी करते हैं। आनन्दगिरि शङ्कर विजय जो 19 वीं शताब्दी में मुद्रित हुई है वह पुस्तक कहेजानेवाले आनन्दगिरि कृत बृहच्छंकर विजय नहीं है। कुम्भकोणमठ इस प्राचीन पुस्तक का नाम लेकर प्रमाणाभास में स्वरचित कुछ श्लोक देकर प्रचार भी करते हैं। मार्के की बात है कि माधवीय के टीकाकार ने यद्यपि 811 श्लोक उद्धृत किया है तथापि मूल पुस्तक का नाम नहीं दिया है और यह केवल अनुमान है कि सम्भवतः आपने बृहच्छङ्करविजय से लिया हो चूंकि आपने एक जगह इस पुस्तक का नाम लिया है।

ध्यान देने का विषय है कि इन 811 श्लोकों में भी कांची में आम्नाय मठ स्थापना का विषय बिलकुल नहीं है। अतएव यह निश्चय होता है कि कहेजानेवाले आनन्दगिरि कृत बृहच्छंकरविजय कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टि नहीं करती। यदि आम्नाय मठ की स्थापना यथार्थ होता या कहेजानेवाले बृहच्छंकरविजय में उल्लेख होता तो टीकाकार अवश्य इस विषय को उक्त पुस्तक से उद्धृत करते। टीकाकार 15 वें सर्ग के पांचवें श्लोक जो कांची का उल्लेख करता है उस श्लोक की व्याख्या में कुछ पंक्तियां उद्धृत किया है जैसा टीकाकार ने 15 वें सर्ग के दूसरे एवं चतुर्थ श्लोक की टीका में कुछ श्लोकों को उद्धृत किया है। अर्थात् ये पंक्तियां भी उसी मूल पुस्तक से उद्धृत किया गया है जहां से टीकाकार ने इसी पुस्तक में अन्य जगह उद्धृत किया है। कांची विषय में टीकाकार के उद्धृत पंक्तियां यों हैं– 'परमगुरुः श्रीशंकराचार्यो यत्र किल महादेवः स्वकीय पृथिवीमूर्त्याविर्भूत लिङ्गरूपेणाम्बरेश इति प्रसिद्ध्या वर्तते तस्मिन्काञ्ची नगरे मासमात्रं स्थित्वा शङ्कर प्रतिष्ठापूर्वकं शिवकाञ्चीति पट्टनं निर्माय तत्सेवार्थं ब्राह्मणादीननेक भक्तजनान्संपाद्य तानपि शुद्धाद्वैतवर्त्मनैव सर्ववेदान्ततात्पर्य निर्ग्रंथकार। ततस्तद्देशवासिनः सर्वे ताम्रपर्णीतटादागत्य परमगुरुं नत्वेदमूचुः। हे स्वामिन् ... ... शुद्धाद्वैत विद्याश्रिता बभूवुः।' इति॥ अब पाठकगण जान लें कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। कांची में एक माह वास कर नगर व मन्दिरों का निर्माण व जीर्णोद्धार कर, पूजा सेवादि के लिये ब्राह्मणों को नियोजन कर, अद्वैत विद्या का प्रचार करते हुए वहां आये हुए ताम्रपर्णी नदी तटवासियों से पूछे प्रश्न व सन्देहों का सप्रमाण उत्तर देकर अपने से प्रचारित अद्वैत विद्या प्रकाश किये। टीकाकार ने जिस पुस्तक से इन श्लोकों व पक्तियों का उद्धरण किया है सो पुस्तक गद्यपद्यात्मक चम्पू ग्रंथ प्रतीत होता है।

अन्य एक 'बृहच्छङ्करविजय' श्री चित्सुखाचार्य रचित कहीं कहीं प्रमाण में कहा जाता है। पश्चिमाम्नाय श्री द्वारका मठ में श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य के पश्चात् श्री चित्सुखाचार्य मठाधीश बने। कहाजाता है कि आपका पूर्वाश्रम नाम विष्णु शर्मा था। यह भी कहा जाता है कि आपने 'बृहच्छङ्करविजय' ग्रन्थ रचा था और इस ग्रन्थ के तीन भाग थे (1) पूर्वाचार्य सत्पथ (2) शङ्कराचार्य सत्पथ (3) सुरेश्वराचार्य सत्पथ। इन तीनों भागों में से अभी केवल दूसरा भाग ही (शङ्कराचार्य सत्पथ) उपलब्ध होता है। प्रतीत होता है कि आचार्य श्री शङ्कर का समस्त पीढियों का विवरण इस ग्रन्थ में संग्रह किया गया था। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि कोई अर्वाचीन काल के रचयिता ने इस ग्रन्थ की रचना कर श्री चित्सुखाचार्य के नाम से प्रकाशित किया हो। पर यह आक्षेप एक शंका मात्र ही है। यदि इस ग्रन्थ को श्री चित्सुखाचार्य कृत सिद्ध किया जाय तो यह पुस्तक ही सब से प्राचीन ग्रन्थ माना जा सकता है चूंकि श्री चित्सुखाचार्य आचार्य शङ्कर के दूर काल के व्यक्ति न थे। श्री चित्सुखाचार्य कृत 'बृहच्छङ्करविजय' जबतक समग्र ग्रन्थ मुद्रित या हस्तलिपि प्राचीन प्रति न मिलजाय तब तक इस ग्रन्थ पर अनुमान करके टीकाटिप्पणी करना ठीक नहीं है।

जो कुछ उद्धृत श्लोक एवं उक्त श्री चित्सुखाचार्य कृत बृहच्छङ्करविजय के भाग अब उपलब्ध होते हैं उसमें किसी भाग में भी यह नहीं कहा है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह चित्सुखाचार्य का नाम सर्वज्ञ चित्सुख था और आप उसी गांव में जन्म लिये जहां आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ था तथा श्रीशङ्कर के बाल्यावस्था से निर्याण तक उनका परममित्र व अनुक्षण अनुकरण करनेवाले थे। कुम्भकोण मठ के स्वरचित प्रामाणिक पुस्तक गुरुरत्नमाला की व्याख्या सुषमा में सर्वज्ञ चित्सुखाचार्य के बारे में यों उल्लेख है—'अनुक्षणं उपचरिताचार्यचरणाः सर्ववृत्तान्त साक्षिणः सहजवत् एकाग्रहारोत्पन्ना आजीवं अविरहजुषः श्रीसर्वज्ञ चित्सुखाचार्याः स्वकृतौ बृहच्छंकरविजये ... ...|' माधवीय टीकाकार का कथन है कि आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि कृत बृहच्छंकरविजय ग्रंथ है पर यहां चित्सुखाचार्य कृत बृहच्छंकरविजय कहा गया है। समयानुसार कुम्भकोण मठ स्वरचित श्लोक के रचनाकार कहकर इन दोनों का नाम उपयोग करते हैं। इस प्रचार से प्रश्न उठता है कि ऐसे महान जो आचार्य शङ्कर के साथ एक क्षण भी छोड अलग न हुए थे ऐसे महान का जीवन विवरण अन्य शङ्करविजय कर्ताओं ने क्यों नहीं दिये? आश्चर्य है कि जब भगवान परमशिव काशी में आचार्य शङ्कर को अपना स्वस्वरूप दिखाया और जिसका उल्लेख शिवरहस्य में पाया जाता है, उस समय में भी यह ग्रन्थ क्यों नहीं इनका नाम लिया? कुम्भकोण मठ कुछ श्लोक उक्त बृहच्छंकरविजय से उद्धृत कर प्रचार करते हैं। 'सुषमा' टिकाकार श्रीआत्मबोध को जब ऐसी पुस्तक 17 वीं. शताब्दी अन्त में (कुम्भकोण मठ के कथनानुसार) उपलब्ध था जिससे आपने श्लोकों को उद्धृत किया था तो किस प्रकार ऐसे प्रामाणिक पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है? यह पुस्तक कुम्भकोण मठ में भी नहीं है| कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में स्पष्ट उल्लेख है कि यह 'पुस्तक उपलब्ध नहीं है।' शङ्का उठता है कि अनुपलब्ध पुस्तक से कैसे उद्धृत किया गया था? श्रीआत्मबोध द्वारा उद्धृत अनेक श्लोक के मूल पुस्तक या तो मिलते ही नहीं और यदि मिलते हैं तो उद्धृत श्लोक मूल में पाये नहीं जाते। पाठकगण इस द्वितीय खंड में ऐसे अनेक उदाहरण पायेंगे। कुम्भकोण मठ कुछ श्लोक उद्धृत कर यह सिद्ध करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया, कांची में शारदा से वाद-विवाद कर विजय पाया आदि। अनुपलब्ध पुस्तक एवं अन्य प्रामाणिक ग्रंथ इस पुस्तक से विषय उद्धृत न करने से तथा जो प्रचारार्थ बृहच्छंकरविजय का कहे जानेवाले सब श्लोक श्रेष्टों को अग्राह्य होने से, इन श्लोकों को कैसे मूल प्रमाण माना जाय? चित्सुखाचार्य पुस्तक के आधार पर आत्मबोधेन्द्र कहते हैं ('शिवगुरुरुपनीय शङ्करार्यं निगममशेषमथाध्यजीपत् तम्') कि शिवगुरु ने अपने पुत्र का उपनयन स्वयं किया था और वेदाध्ययन कराया था जो कथा माधवीय, शिवरहस्य, व्यासाचलीय, केरळीय शङ्करविजय, आनन्दगिरि आदि पुस्तकों में दिये हुए कथनों के विरुद्ध हैं| क्या अन्य शङ्करविजय रचयिताओं को यह मालूम न था कि आचार्य शङ्कर के क्षण क्षण साथी श्रीचित्सुखाचार्य ने इनके कथनों के विरुद्ध ही लिख गये हैं? यदि पुस्तक उपलब्ध होता या इस पुस्तक के विषयों को अन्य श्रेष्ठों से सुने होते तो अवश्य अन्य रचयिताओं ने आपका उल्लेख किया होता।

गोविन्दनाथ रचित शङ्कराचार्य चरित्र जो 1931 ई० में प्रकाशित हुआ है उसके प्रस्तावना में कहा गया है कि चित्सुखाचार्य कृत बृहच्छङ्कर विजय का संपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है और प्रकाशक ने इस पुस्तक को देखा नहीं है। कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में भी स्पष्ट उल्लेख है कि चित्सुखाचार्य कृत बृहच्छङ्करविजय उपलब्ध नही है। अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये प्रमाणाभास रूप में कुछ स्वरचित श्लोकों को अब बृहच्छङ्करविजय नाम से प्रचार किया जा रहा है।

1873 ई० में शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय 60 श्लोक समेत प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक के संपादक लिखते हैं 'श्री चित्सुखाचार्य माधवार्यादि कृत शङ्कर विजयादौ औत्तर पाठ मनुसृत्यैव कथा सन्दर्भस्य प्रदर्शितत्वेन एतादृशः औत्तराह पाठ एवं ज्यायान् ... ... औत्तरीय पाठानुसारेणैव मुद्रितोऽयं ग्रन्थः।' इससे प्रतीत होता है कि शिवरहस्य नवमांश का षोडशाध्याय जो 60 श्लोक सहित आचार्य वर्णन करता है वह माधवीय एवं चित्सुखाचार्य कृत ग्रन्थों में भी वैसा ही पाया जाता है। कुम्भकोण मठ के आत्मबोध ने अपने 'सुषमा' टीका में भी इस 60 श्लोक युक्त शिवरहस्य प्रति का उल्लेख किया है। कुम्भकोण मठ प्रचारित शिवरहस्य षोडशाध्याय में 44 श्लोक हैं और आपलोग 16 श्लोक अपने प्रचार पुस्तक से उडा दिया है चूंकि ये सब कुम्भकोण प्रचार के विरुद्ध हैं। अर्थात् बृहच्छङ्करविजय की कथा जो 60 श्लोक समेत शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय में दी कथा से मिलती जुलती है और जिसे कुम्भकोण मठ स्वीकार नहीं करते तो प्रतीत होता है कि बृहच्छङ्करविजय भी कुम्भकोण मठ प्रचारों के विरुद्ध ही है। माधवीय शङ्करविजय को चित्सुखाचार्य बृहच्छङ्करविजय का संग्रह कहा जाता है। माधवीय के टीकाकार ने टीका में आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि कृत बृहच्छङ्करविजय का उल्लेख किया है जिसका संग्रह टीकाकार के अनुमान में माधवीय शङ्करविजय है। माधवीय के विरोध में यदि आनन्दगिरि कृत बृहच्छङ्करविजय होने का कहा जाय तो वह कहेजानेवाले आनन्दगिरि शङ्करविजय माधवीय टीकाकार द्वारा कहा हुआ आनन्दगिरि शङ्करविजय नही है। यह पुस्तक भिन्न ही होगी। यदि बृहच्छङ्करविजय न उपलब्ध हो तो माधवीय शङ्करविजय को ही प्रमाण में स्वीकार करना होगा। पर कुम्भकोण मठ का तीव्र प्रचार है कि माधवीय शङ्करविजय एक अनादरणीय ग्रंथ है।

आनन्दगिरिशंकरविजय — आनन्दगिरि रचित शंकरविजय चाहे वह प्राचीन और बृहत् हो और जो माधवीय का मूल कहा जाता है उसकी प्राधान्यता उतना नहीं दी जाती है जितना कि माधवीय का क्योंकि कहेजानेवाले आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय अब उपलब्ध नहीं है। जो उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय (मुद्रित एवं हस्तलिपि) है, वे सब उपर्युक्त आनन्दगिरि शंकरविजय के प्रतिकूल हैं। माधवीय शङ्करविजय के टीकाकार ने जो कुछ श्लोक उद्धृत किया है वह सब अनुमान किया जाता है कि ये सब श्लोक आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि के प्राचीन और बृहच्छंकर विजय से लिये गये हैं। टीकाकार उल्लेख करते हैं 'एतत्कथाजालं बृहच्छंकरविजय एव श्रीमदानन्दज्ञानाख्यानन्दगिरि विरचिते द्रष्टव्यमिति दिक्।' माधवाचार्य स्वयं 'प्राचीनशंकरजयेसारः संगृह्यते' लिखने के कारण यह ग्रंथ यदि उपलब्ध हो तो यह विषय सब को ग्राह्य है। माधवीय के मूल में 'शङ्करवाक्यसारः' पद के टीका अवसर में टीकाकार लिखते हैं 'शङ्करस्यो भगवतो भाष्यकारस्यायं शांकर आनन्दगिर्याभिधस्तस्य तत्प्रशिष्यस्य वाक्यसारः।' अर्थात् आनन्दगिरि का वाक्यसार। माधवीय डिण्डम टीकाकार का काल 1799 ई० तथा अद्वैवराज्यलक्ष्मी टीका का काल 1824/25 ई० था। आश्चर्य है कि इनको उपलब्ध पुस्तक अब कहां गया? सम्भवतः ये टीकाकार कहीं अन्य जगह से उद्धृत किये हुए श्लोकों को पुनः उद्धृत किये हों अर्थात् आप दोनों ने मूल पुस्तक कहीं देखी न होगी पर कोई अन्य पुस्तक में जहां ये श्लोक उद्धृत किये गये थे उससे पुनः उद्धृत किया हो। माधवीय शंकरविजय के 15 वें सर्ग के दिग्विजय यात्रा विवरण के अवसर में डिण्डिम व्याख्या में अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। ये सब श्लोक मूल श्लोक के टीकारूप में ही दिया गया है। कहीं कहीं वाक्यों को भी उद्धृत किया गया है (माधवीय मूल 15 वें सर्ग पांचवें श्लोक के टीका में)। इससे प्रतीत होता है कि यह प्राचीन बृहत् रूप की पुस्तक गद्य-पद्य समेत एक 'चम्पू काव्य' रूप में रहा होगा। माधवाचार्य ने स्पष्ट रूप से इस प्राचीन ग्रंथ का नाम नहीं लिया है और केवल टीकाकारों का अभिप्राय है कि यह आनन्दज्ञान या आनन्दगिरि रचित शङ्करविजय हो। टीकाकार के उद्धृत पंक्तियां व श्लोक अब उपलब्ध होने वाले आनन्दगिरि शङ्करविजय में कुछ भाग पाये जाते

हैं और यह आनन्दगिरि शंकरविजय पुस्तक पूर्वीय एवं पाश्चात्य सब अनुसन्धान विद्वानों से अप्रमाणिक ग्रंथ होने का ठहराया गया है। प्रोफसर के. टी. तेलङ्ग लिखते हैं—'But these earlier works are not specified by Madhava and a vague mention of them is all that we can find in his Sankaravijaya.' इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि जब तक समग्र आनन्दगिरि कृत प्राचीन शंकरविजय अथवा बृहच्छङ्करविजय प्राप्त न हों और जब तक उन पुस्तकों की प्रामाण्यता सिद्ध न हों तब तक इसे प्रमाण रूप में माना नहीं जा सकता है। कुम्भकोणमठ एक तरफ कहते हैं कि पुस्तक उपलब्ध नहीं है और दूसरी तरफ स्वरचित कुछ श्लोकों को बृहच्छंकरविजय के नाम पर प्रचार करते हैं। ये सब श्लोक केवल कुम्भकोणमठ के गुणगान करनेवाले श्लोक हैं। क्या शङ्कराचार्य के चरित्र विषय में कांची घटना को छोडकर अन्य चरित्र घटनायें उपलब्ध नहीं हुए? आत्मश्लाघार्थ एकाङ्गि दो चार श्लोकों को प्रचार करने मात्र से प्रमाण नहीं हो सकता है। यदि अन्य ग्राह्य प्रमाण पुस्तकें इस आनन्दगिरि में कहेजानेवाले श्लोकों की पुष्ठी करें तो भी माना जा सकता है पर स्पष्ठ देखने में आता है कि सब प्रामाण्य पुस्तक कुम्भकोण मठ प्रचार के समर्थन नहीं करते। माधवीय टीकाकार से उद्धृत श्लोकों में भी यह नहीं कहा गया है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी।

माधवीय टीकाकार का कथन है कि माधवीय का मूल प्राचीन या बृहच्छंकरविजय है। यदि यह पुस्तक उपलब्ध होता और श्रीमाधवाचार्य ने देखा हो तो अन्यों ने भी देखा ही होगा और ऐसा प्रमाण पुस्तक अन्य शङ्करविजय रचयिताओं की दृष्टि में न पडना असम्भव दीखता है। कहीं भी इस पुस्तक का नाम, रचयिता का नाम या उनका समय अन्य ग्रन्थों में भी उल्लेख नहीं है। प्रसिद्ध मूलग्रंथ का अनुपलब्ध होना व अन्यत्र उल्लेख न होने से उस पर वैयर्थ शङ्का उठती है। इस शङ्का की पुष्टी होति है जब हम सब जानते हैं कि आचार्य शङ्कर के शिष्य आनन्दगिरि अथवा टीकाकार आनन्दगिरि ने ऐसा कोई ग्रंथ रचा नहीं है और जो अब उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय है वह एक अन्य आनन्दगिरि से हीं रचित है एवं आचार्य शङ्कर के शिष्य तोटकाचार्य (त्रोटकाचार्य, गिरि, आनन्दगिरि) का परियाय नाम कहीं भी आनन्दज्ञान नाम का होना निर्धारण नहीं किया गया है तथा आनन्दज्ञान या आनन्दगिरि कृत बृहच्छंकरविजय उपलब्ध नहीं होते हैं। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि पंच लिङ्गों की कथा शिवरहस्य में उपलब्ध है और आनन्दज्ञान कृत बृहच्छंकरविजय का मूल शिवरहस्य है। पर यह पुस्तक उपलब्ध न होने से एवं जो उपलब्ध आनन्दगिरि शंकरविजय है उसमें पञ्च लिङ्ग की कथा नहीं होने से तथा कुछ शिवरहस्य प्रतियों में भी पञ्चलिङ्ग का वर्णन न होने से यह शङ्का अधिक होती है कि क्या यथार्थ में कोई ऐसी पुस्तक भी थी? कुम्भकोग मठ के परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय में ही पंचलिङ्ग की नवीन कथा जोड दी गयी है और अन्य मूल मुद्रित व अमुद्रित ग्रन्थों में यह कथा का नामों निशान नहीं है।

एक मार्के की बात है कि माधवीय के टीकाकार ने टीका में जो सब श्लोक व पङ्क्तियां उद्धृत किया है, इनमें से कुछ श्लोक व पंक्तियां (माधवीय मूल 15 वें सर्ग के 1, 4, 5 मूल श्लोकों के टीका) अब उपलब्ध होनेवाले आनन्दगिरि शङ्करविजय में पाते हैं। उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय में अनेक अन्य विषयों पर आलोचना कर अनुसन्धान विद्वानों ने इस पुस्तक को अप्रमाणिक भी ठहराया है। कुम्भकोण मठ का कथन कि वर्तमान उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय ही प्राचीन बृहच्छंकरविजय है सो कथन भूल होगी क्योंकि इस आनन्दगिरि शङ्करविजय का रचना काल चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् ही था और इसे अप्रमाणिक ठहराया गया है। डिण्डिम टीका में उद्धृत श्लोकों व पङ्क्तियों से कहा जा सकता है कि कहेजानेवाले बृहच्छंकरविजय चम्पू रूप में रहा होगा। अब उपलब्ध

आनन्दगिरि शङ्करविजय भी चम्पू रूप में है पर यह पुस्तक अप्रमाणिक ठहराया गया है। कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन 'सर्वज्ञ' विद्वान 'कामकोटी प्रदीपम' में लिखते हैं कि अब उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय ही प्राचीन और वृहच्छंकरविजय है जिसे माधवीय ने अपनी पुस्तक का मूल माना है। पर कुम्भकोण मठ का प्रचार इसके विरुद्ध ही है चूंकि कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि वृहच्छंकरविजय का रचयिता श्री चित्सुकाचार्य हैं और प्राचीन शङ्करविजय का रचयिता मूकशङ्करेन्द्र हैं। कुम्भकोण मठ के आधुनिक विद्वान प्रचारक इस कथन को मिथ्या बना दिया है और आपका अभिप्राय है कि रचयिता आनन्दगिरि हैं। माधवीय मूल में कहीं भी आनन्दगिरि वृहच्छंकरविजय का नाम नहीं लिया है, केवल कहा है 'प्राचीन शङ्करजये'। टीकाकार यदि आनन्दगिरि का नाम लिया है तो सम्भवतः टीकाकार के काल में आनन्दगिरि शङ्करविजय एक प्राचीन पुस्तक माना गया हो। पर इससे सिद्ध नहीं होता कि यह पुस्तक कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी करती है। गुरुरत्नमाला के टीकाकार आनन्दगिरि का नाम नहीं लेते पर एक 'आचार्य विजय' का नाम लेते हैं और इससे उद्धृत पंक्ति सब अब उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्कर विजय में प्राप्त होते हैं। ऐसे भ्रमात्मक मिथ्या प्रचारों का उद्देश्य केवल एक है कि पामर लोगों को भ्रम में डालना।

आनन्दगिरि शङ्करविजय के सम्बन्ध में लोगों में बहुत भ्रम उत्पन्न हुआ है। ग्रन्थरचयिता चार आनन्दगिरि के नाम से जगह जगह समय समय पर भिन्न प्रचार किया जाता है। प्रथम—आचार्य शङ्कर के साक्षात शिष्य श्री तोटकाचार्य या गिरि या आनन्दगिरि। द्वितीय—श्री आनन्दगिरि—भाष्य टीकाकार। तृतीय—श्री आनन्दगिरि—बारहवीं शताब्दी के द्वैताचार्य एवं शङ्करविजय रचयिता। चतुर्थ—श्री आनन्दगिरि—चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी के ग्रंथ रचयिता।

आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय पुस्तक की प्रति निम्नलिखित उपलब्ध होने का समाचार मुझे अभी तक मिला है—

(1) माधवीय शङ्करदिग्विजय के टीकाकार डिण्डिम (1799 ई०) एवं अद्वैतराजलक्ष्मी (1825 ई०) से उद्धृत कुछ श्लोक जिसे वे प्राचीन वृहच्छङ्करविजय कहते हैं और टीकाकारों के कथनों के आधार पर इसके रचयिता आनन्दज्ञान या आनन्दगिरि का अनुमान किया जाता है। यह गद्य-पद्य समेत 'चूम्पू काव्य,' अब उपलब्ध होनेवाले आनन्दगिरि शङ्करविजय जो चम्पू काव्य रूप में है, इसमें कुछ भाग माधवीय टीकाकार से उद्धृत भागों से मिलता जुलता है।

(2) प्रोफसर ऑफ्रक्ट द्वारा संपादित सूचीपत्र में 19 वीं शताब्दी में निर्देषित आनन्दगिरि शङ्करविजय का प्रति जो आक्सफोर्ड (oxford) पुस्तकालय मे उपलब्ध है। अनुसन्धान विद्वानों ने इस प्रति को अप्रमाणिक ठहराया है।

(3) रामतारकमठ, काशी, हस्तलिपि पुस्तक। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह पुस्तक का काल शालीवाहन शक 1737 या 1767 (1815 ई० या 1845 ई०) है। दो प्रचार पुस्तकों में दो भिन्न काल दिये गये हैं। इस पुस्तक का अचानक अविष्कार एवं प्रथम बार प्रचार कुम्भकोण मठ से 1935 ई० में किया गया था जब काशी में कुम्भकोण मठाधीश पधारे थे और जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा। 1961 ई० में इस पुस्तक का एक और प्रति कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वान द्वारा प्राप्त हुआ।

(4) कुम्भकोण मठ से प्रचारित आनन्दगिरि शङ्करविजय। यह पुस्तक किसी ने न देखा है या पढा है। पर कुम्भकोण मठाधीष के काशी यात्रा समय में 1935 ई० में कहा गया था कि काशी रामतारक मठ की प्रति से कुम्भकोण मठ की प्रति मिलता जुलता है और यही प्रामाण्य पुस्तक है। कुम्भकोण मठ के प्रचारकों ने इस पुस्तक से कुछ भाग मुद्रित कर काशी में प्रकाश किये। इस पुस्तक का पूर्ण विवरण तथा कुम्भकोण मठ के विद्वान प्रचारकों द्वारा काशी में 1935 ई० में क्या क्या काले कर्तूत किये गये, सो सब मुझ से प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में पायेंगे।

(5) माननीय (स्वर्गीय) डा० भगवानदास जी के काशी पुस्तकालय की आनन्दगिरि शङ्करविजय हस्तलिपि प्रति। यह पुस्तक 1935 ई० में देखा गया था और यह प्रति कलकत्ता मुद्रित (1881 ई०) पुस्तक से मिलती जुलती है।

(6) मदरास में मुद्रित 1867 ई० में तेलगु लिपि आनन्दगिरि शङ्करविजय।

(7) कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० में नागरीलिपि आनन्दगिरि शङ्करविजय।

(8) म. म. पं कोक्कन्ड वेङ्कटरत्नं पन्तुलु द्वारा 1867 ई० के पूर्व संग्रहित दो हस्तलिपि प्रतियां जो तिरुचिनापल्ली व कांची से प्राप्त किये गये थे। ये दोनों प्रतियां कलकत्ता मुद्रित प्रति से मिलती जुलती है।

(9) (स्वर्गीय) जयपुर कृष्णशास्त्री से संग्रहित 1867 ई० के पूर्व एक अपूर्ण आनन्दगिरि शङ्करविजय की प्रति जो कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० की प्रति से मिलती जुलती है।

(10) श्री वरदाप्रसन्न चक्रवर्ति, ढाका, द्वारा प्राप्त 1935 ई० में बङ्गालीलिपि आनन्दगिरि शङ्करविजय जो प्रति कलकत्ता मुद्रित प्रति से मिलती जुलती है। यह प्रति आपको लौटा दिया गया।

आचार्य शङ्कर के शिष्य श्रीतोटकाचार्य या आनन्दगिरि इस ग्रंथ के रचयिता होने का प्रचार कुम्भकोण मठ वाले पूर्व में अपने प्रचार पुस्तकों में करते थे। पश्चात् कुम्भकोण मठ कें कुछ पुस्तकों में आचार्य के शिष्य आनन्दगिरि जो भाष्य टीकाकार थे इस पुस्तक के रचयिता होने का प्रचार भी किया है। आचार्य शङ्कर के शिष्य श्रीतोटकाचार्य (आनन्दगिरि) इस पुस्तक के रचयिता हो नहीं सकते क्योंकि आपने केवल "तोटकच्छन्दस्कवृत्तोज्वलित श्रुतिसारसमुद्धरण कालनिर्णयाख्य" पुस्तक ही रचे हैं। अनेक स्थलों के संस्कृतग्रंथ सूचीपत्र ढूंढा गया और किसी में इनसे रचित शङ्करविजय का उल्लेख नहीं किया गया है। पूर्वीय एवं पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि आपके अन्य कोई रचित ग्रंथ नहीं है। उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय की शैली व भाषा एवं माधवीय टीका में उद्धृत श्लोकों की भाषा व शैली के साथ आचार्य शङ्कर के शिष्य आनन्दगिरि की भाषा व शैली तुलना करने पर अति व्यतिक्रम पाते हैं। उपलब्ध शङ्करविजय गद्यपद्यात्मक काव्यचम्पू है और इसमें व्याकरण व शैली लक्षण के अनेक अशुद्धियां दीख पडती है। मालूम होता है कि रचयिता व्याकरण शास्त्र का अनभिज्ञ था। इस ग्रंथ को पूरा पढने पर स्पष्ठ मालूम होता है कि यह एक द्वैति द्वारा लिखा गया था और सम्भवतः अद्वैत सिद्धान्त के अनभिज्ञ विद्वान ने शोधनकर पुनः प्रकाश किया हो। इस पुस्तक का विमर्श उदाहरणों के साथ सविस्तार अलग एक पुस्तक में शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा और यहां केवल अन्तिम परिणाम देना पर्य्याप्त होगा। इस ग्रंथ को उस अद्वितीय अद्वैती महान्

श्रीतोटकाचार्य के नाम से प्रचार करना अपचार होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आचार्य के शिष्य ने इसे रचा नहीं है। आनन्दगिरि शङ्करविजय के ग्यारहवें प्रकरण में कुछ श्लोक उद्‌धृत हैं जो चौदहवीं शताब्दी के प० प० श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थ महाराज, श्रृङ्गेरी मठाधीष, द्वारा रचित 'आधिकरणमाला' में पाये जाते हैं। इसी प्रकार चौदहवीं शताब्दी के प० प० श्रीजगद् गुरु शङ्कराचार्य श्रीविद्यारण्य महाराज, श्रृङ्गेरी मठाधीष, द्वारा रचित 'अधिकरणरत्नमाला' ग्रंथ से कुछ श्लोक आनन्दगिरी शङ्करविजय 47 वें प्रकरण में पाये जाते हैं। 19 वां प्रकरण में जहां शाक्त मत खन्डन किया है वहां ग्रंथकर्ता श्रुति के नाम से कुछ उद्‌धृत किया है और यह वाक्य श्रुति से मिलता जुलता नहीं है। स्पष्ट मालूम पडता है कि इस पुस्तक के रचयिता अवश्य ही चौदहवीं शताब्दी के बाद ही रहे होंगे। इस कारण से आपको आचार्य शङ्कर के शिष्य कहना भूल होगा। माधवीय के टीकाकार श्रीअच्युतराय अपनी टीका में कहते हैं कि 'शङ्कर के प्रशिष्य' द्वारा रचित प्राचीन शङ्करविजय है। अतः आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य तोटकाचार्य नहीं हो सकते। पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वान प्रोफसर विल्सन्, Asiatic Researches, 1828 ई० में लिखते हैं—"There is but little reason to attach any doubt to the former (*i. e.* Anandagiri's work) as some of the marvels it records of Sankara which the author professes to have seen, may be thought to affect its creditability, if not its authenticity, and Anandagiri must be an unblushing liar, or the book is not his own." प्रो० विल्सन् का अभिप्राय है कि यह पुस्तक आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य आनन्दगिरि से रचित नहीं है।

आन्ध्रराज्य कर्मचारी श्री एन्. रामेषम्, एक विद्वान, अपने रचित पुस्तक में आनन्दगिरि शङ्करविजय को प्रामाणिक पुस्तक होने का अभिप्राय देते हैं और इसकी पुष्टी में आप श्रीविल्सन् के कथनों का प्रकाश किया है— "It bears internal evidence of being the composition of a period not far removed from that at which he (Sankara) may be supposed to have flourished and we may, therefore, follow it as a very safe guide." श्री एन्. रामेषम् उपर्युक्त कथन में "he" परिनाम पद का अर्थ श्रीशङ्कराचार्य का करते हैं जो बिल्कुल भूल एवं असत्य है चूंकि श्रीविल्सन् स्पष्ट इस वाक्य के पूर्व में आनन्दगिरि के बारे में ही कहा है और "he" परिनाम पद आनन्दगिरि का ही द्योतक है। श्रीविल्सन् के कथन यों हैं—"It is however of little consequence, as even if the work be not that of Anandagiri himself, it bears internal and indisputable evidence of being the composition of a period not far removed from that at which he may be supposed to have flourished ; and we may therefore follow it as a very safe guide in our enquiries into the actual state of the Hindu Religion about eight or nine centuries ago." पाठकगण अब जान जायेंगे कि "he" परिनाम पद आनन्दगिरि का ही द्योतक है न कि आचार्य शङ्कर का। सम्भवतः श्रीरामेषम् ने श्रीविल्सन् के लेख को पूरा न पढें हों और आपने प्रकाश कर दिया जो आपको कुम्भकोण मठ से प्राप्त हुई थी। यदि आपने पूरा लेख पढा हो तो यह कहना पडेगा कि आपने जानबूझ कर ही साधारण पामर पाठकगणों को भ्रम में डालने के लिये यह असत्य प्रकाश किया था। पूर्वापरसम्बन्ध का ख्याल न करते हुए असत्य भ्रामक प्रचार करना तो कुम्भकोण मठ का स्वभाव सा हो गया है और दुःख का विषय है कि पढे विज्ञ विद्वान एवं राज्य कर्मचारी भी इस भ्रामक प्रचारों में सहयोग देते हैं। श्रीविल्सन् आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तक को प्रामाणिक नहीं

मानते पर आप कहते हैं कि इस आनन्दगिरि शङ्करविजय में दिये हुए हिन्दू धर्म की स्थिति 800 या 900 वर्ष पूर्व का विवरण तथा उसका अध्ययन करने में सहायता देती है। आप आनन्दगिरि के बारे में कहते हैं "...... and Anandagiri must be an unblushing liar, or the book is not his own." श्री विल्सन् के लेखों में स्पष्ट उल्लेख है कि आचर्य शङ्कर का निर्याण स्थल केदार क्षेत्र था पर श्री एन्. रामेषम् ने इसे असत्य बनाने की चेष्टा में अपनी पुस्तक के पृष्ट 160 में दो वैष्णव संप्रदाय के विद्वानों का अभिप्राय देकर कहा है कि आचार्य का निर्याण स्थल कांची था। यह विषय सप्रमाण सिद्ध है कि आचार्य का निर्याणस्थल केदार सीमा था और पाठकगण इस विषय का विवरण इस खांड के छठवें अध्याय में पायेंगे। अब कुछ वर्षों से कुम्भकोण मठ यह प्रचार प्रारम्भ कर दिया है कि आचार्य शङ्कर केदार सीमा से ही सशरीर कैलास गमन किये थे पर आप पुनः इस भूलोक लौट आये और आते समय आप देवादिदेव महादेव से पांच लिङ्ग, सौन्दर्यलहरी एवं शिवरहस्य प्राप्त कर इस मृत्युलोक लौटे। कैलास यात्रा पश्चात् आप कांची में वास करते हुए अपनी भौतिक शरीर का त्याग कांची में किया था। पाठकगण जान जांय कि इस नवीन प्रचार में क्या तात्पर्य एवं मर्म है। ऐसे कल्पित कथा का प्रचार से ही अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। पाठकगण स्वयं जान लें कि इस नवीन कल्पित प्रचार में कितनी सत्यता है। खेद का विषय है कि ऐसे कहेजानेवाले अनुसन्धान विद्वान भी अपना अपना नाम देकर इन भ्रामक असत्य प्रचारों में सहयोग देते हैं और कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों की पुष्टी भी करते हैं। हाल ही में डा० वि. राघवन्, मदरास के एक विद्वान, जो स्वयं अनुसन्धान के प्रेमी हैं और जिन्होंने आन्वेषण कर मूल्य लेखों का प्रकाशन किया है और जटिल विषयों पर आन्वेषन कर प्राचीन ग्रन्थ, शिलालेख, शासन, सनद, इतिहास के आधार पर अपना अभिप्राय प्रकट किया है तथा अनुसन्धान विद्यार्थियों के कार्य में सहयोग देकर सहायता की है, ऐसे व्यक्ति, कुम्भकोण मठ से प्रचारित भ्रामक मिथ्या प्रचारों पर जब प्रश्न पूछे गये थे उन पूछे हुए प्रश्नों का सप्रमाग उत्तर न देकर, एक प्रचार पुस्तक की प्रस्तावना में लिखते हैं 'शिलालेख के विषय को विश्वास करनेवाले व्यक्ति शिला पर ही आपनी माथा पटकनी होगी'। ऐसी टीका टीप्पणी करना आपके विद्वत्ता की शोभा नहीं देता। कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचार के प्रभाव से विद्वान भी अपने स्वतंत्र विचारों का परित्याग कर कुम्भकोण मठ के असत्य प्रचार में सहयोग देते हैं। यह विषय खेद का है। यह विषय इसलिये यहां दिया जाता है कि पाठकगण जान जांय कि कुम्भकोण मठ का प्रचार किस प्रकार किया जाता है। मुझ से प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में ऐसे मिथ्या प्रचारों का उदाहरण एवं विद्वानों का खन्डन पायेंगे।

आनन्दगिरि शङ्करविजय के प्रारम्भ में ऐसा लिखा है–'अनन्तानन्दगिरिः अहं अप्रतिहताज्ञस्य भगवतः शिष्यः स्वगुरोः अवतार प्रयोजनं वर्णयामि' और अन्त में 'अनन्तानन्दगिरिगा गुरोर्विजयमुत्तमम् रचितं येतु गृह्णन्ति ते मुक्ताः स्युर्नसंशयः।' इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शंकर के शिष्य अनन्तानन्दगिरि इस पुस्तक के रचयिता हैं। प्रश्न उठता है क्या आचार्य शङ्कर के शिष्य आनन्दगिरि ही अनन्तानन्दगिरि थे या ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं? परन्तु इस पुस्तक के मध्य में आनन्दगिरि का उल्लेख है। प्रथम 32 प्रकरण तक 'इत्यनन्तानन्दगिरिकृतौ' उल्लेख है और पश्चात् यही 'इत्यानन्दगिरिकृतौ' उल्लेख है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के आनन्दगिरि शङ्करविजय प्रति में प्रथम से अन्त तक आनन्दगिरि का नाम ही दिया है। यह ऑक्सफोर्ड की प्रति आनन्दगिरिशंकरविजय कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० प्रति से मिलती जुलती है। यह कहा जाता है कि इस प्रति का पुनः लेखन काल 17 वीं/18 वीं शताब्दी का है। अर्थात् इस पुनः लिखित प्रति का मूल 17 वीं/18 वीं शताब्दी पूर्व का होना निश्चित होता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि अनन्तानन्दगिरि ही आनन्दगिरि थे। आचार्य शङ्कर के और कोई शिष्य इस नाम के न थे और इस पुस्तक के रचयिता को आनन्दगिरि के नाम से परम्परागत रुढी में आया हुआ नाम होने से, अनन्तानन्द को आचार्य शंकर

के शिष्य आनन्दगिरि कहना भी भूल होगी। इस पुस्तक के बारे में प्रो. के. टि. तेलङ्ग लिखते हैं– 'Manuscripts of it do not appear to be numerous, and it is accordingly not much to be wondered at, however much we may regret it, that the only edition of the work which has been printed, namely, the edition published in the Bibliotheca Indica, is one which we cannot help characterising as unsatisfactory.' '... ... ... the work, therefore, cannot have been composed by a pupil of Sankara, consequently not by Anandagiri.' अन्य एक जगह श्री के. टि. तेलङ्ग लिखते हैं—'It may be added here that I have grave doubts as to the Sankaravijaya, published at Calcutta, being really a work of Anandagiri, the pupil of Shankara.'

अद्वैतमतावलम्बी वर्ग में एक आनन्दज्ञान थे जिनका नाम आनन्दगिरि भी कहा जाता है। आप श्री शुद्धानन्द यति के शिष्य थे। अपने से रचित टीका के अन्त में स्पष्ट अपने गुरु शुद्धानन्द का उल्लेख किया है। इसलिये यह कहना भूल होगी कि 'श्री शङ्कर के शिष्य आनन्दगिरि जो टीकाकर्ता भी थे, आपने ही शङ्करविजय पुस्तक की रचना की है।' कुम्भकोण मठ के प्रधान प्रमाण पुस्तक 'पुण्यश्लोकमंजरी' जो मठ से रचित ग्रन्थ है उसमें उल्लेख है कि टीकाकर्ता आनन्दगिरि आचार्य शङ्कर के शिष्य थे। पर अब पाठकगण जान गये होंगे कि यह कथन कितना असत्य है। टीकाकर्ता आनन्दगिरि लिखते हैं 'श्री शुद्धानन्द भगवत्पूज्य शिष्य श्री मदानन्दज्ञान विरचितायां शङ्कर भाष्य टीकायां'। 'न्यायरत्नदीपावली' के व्याख्या में आनन्दगिरि बतलाते हैं कि आप कलिङ्ग देश महाराजा नृसिंह के आश्रम में ग्रन्थ रचा था—'कलिङ्गदेशाधिपतौ नरेन्द्रे ... ... मया निबन्धः।' (तर्कविवेक VI) सम्भवतः पूर्वाम्नाय पूरीजगन्नाथ शांकरमठ में बैठे इस ग्रन्थ को रचा हो। 'तर्कसंग्रह' के प्रस्तावना में उल्लेख है कि आनन्दगिरि द्वारका में वास करते थे पर उपर्युक्त कथनानुसार आप पूरी जगन्नाथ में भी कुछ काल वास किया हो। कुछ अनुसन्धान करनेवाले विद्वानों का अभिप्राय है कि आपका काल 1200 ई० का है और कुछ विद्वान आपका काल श्री विद्यारण्य के बाद होने का बतलाते हैं। एक चित्सुखाचार्य आपके समसामयिक काल के थे जिन्होंने आनन्दबोध के ग्रन्थों पर टीका लिखी थी। चित्सुखाचार्य के विद्यागुरु श्री शुद्धानन्द थे। आनन्दगिरि वेदान्त विषय टीकायें अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें त्रिपुरारिविवर्ण, उपसदनवाक्य, आत्मज्ञान व्याख्या, हरिमेधे व्याख्या, उपाधिखन्डन आदि ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं।

एक ग्रन्थ रचयिता आनन्दानुभव थे जो आनन्दबोध से पृथक थे। श्री आत्मावास के शिष्य श्री आनन्दबोध थे और प्रकाशात्मन के शब्दनिर्णयदीपिका पर टीका लिखी है (न्यायदीपिका)। श्री आनन्दानुभव ग्रन्थकर्ता श्री आनन्दारण्य से पृथक थे और आप ज्ञानामृत (नैष्कर्म्यसिद्धि का टीकाकार) के गुरु थे। श्री नारायण—ज्योतिष—पूज्यपाद के शिष्य आनन्दानुभव थे। यह सब विषय यहां इसलिये उल्लेख किया जाता है कि पाठकगण इन भिन्न नामों से भी परिचित हों ताकि कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचार के जाल में न फंसे।

माधवीय के टीकाकार अच्युतराय छठवें सर्ग 16 वें श्लोक के व्याख्या में लिखते हैं—'अस्य श्रीमच्छंकराचार्यस्य। शिष्यत्वं शिष्यपरंपराद्वारैव न तु साक्षात्। अन्यथाऽन्यपदेन डिण्डिम कृद्व्याख्यात चित्सुखानन्दगिर्योर्ग्रन्थालंकारे पूज्यपाद ज्ञानोत्तम शिष्य चित्सुखेत्यादेः शुद्धानन्द पूज्यपाद शिष्य भगवदानन्द ज्ञानेत्यादेश्च लेखस्य विरुद्धत्वापत्तेः।' इसके बाद इसी टीका में अन्यत्र लिखा पाते हैं 'एतत्कथाजालं बृहच्छङ्करविजय एव श्रीमदानन्दज्ञानाख्यानन्दगिरि विरचिते द्रष्टव्यमितिदिक्'। इससे कहते हैं कि बृहच्छङ्करविजय रचयिता आनन्दज्ञान या आनन्दगिरि थे। पर उपर्युक्त टीका से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य नहीं हैं पर उस

परम्परा के हैं। श्री शुद्धानन्द के शिष्य टीकाकार आनन्दगिरि ने श्री सुरेश्वराचार्य के वार्तिक की टीका लिखी है| आचार्य शंकर के शिष्य आनन्दगिरि श्री सुरेश्वरकृत वार्तिक की टीका न लिखी थी और उनका लिखना सम्भव भी नहीं है| टीकाकार आनन्दगिरि आचार्य शंकर के प्रशिष्य वर्ग के थे। इनसे रचित पुस्तक से प्रतीत होता है कि आपका नाम आनन्दज्ञान भी था और डा० ऑफ्रेक्ट इन्हें आनन्दज्ञानगिरि भी कहते हैं।

आनन्दाश्रम प्रेस ऐतरेयोपनिषद् भाष्य टीका में आनन्दगिरि प्रथम अध्याय प्रथम खण्ड में 'नान्यत्किंचनमिषत' पद की व्याख्या करते समय श्री विद्यारण्य कृत ऐतरेयोपनिषद दीपिका 'दीपिकायान्तु' इस प्रकार तीन जगह पर उल्लेख किया है। श्री विद्यारण्य दीपिका का ग्रंथान्तर से उद्धृत किया है। यह भी उल्लेख है कि विद्यारण्य का दीपिका देखाजाय। इस पुस्तक के अन्त में विद्यारण्य कृत दीपिका भी प्रकाशित है। इससे प्रतीत होता है कि आनन्दगिरि ने विद्यारण्य के पश्चात् ही टीका रचा था। टीकाकार आनन्दगिरि भी इस शङ्करविजय के रचयिता नहीं हो सकते हैं। आपने 'अश्रौतभेदगिरिविदारकाद्वैत न्यायनिर्णयाख्य व्याख्यानरूप शतधार विधायक' रूप में ग्रंथ रचा था और कहीं भी इनसे रचित शङ्करविजय के नाम से प्रमाणरूप में निर्धारन नहीं हुआ है। जो पुस्तक आनन्दगिरि के नाम से प्रचारित है वह अग्राह्य एवं द्वैतवाद प्रतिपादन पुस्तक है और अद्वैती टीकाकार ऐसे लिख नहीं सकते। भाषा, व्याकरण, शैली आदि की तुलना इनके अन्य रचित ग्रंथों से किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस आनन्दगिरि शङ्करविजय के रचयिता आप न थे।

तीसरे एक आनन्दगिरि बारहवीं शताब्दी के थे। आपका जन्म 1119 ई० व निर्याण 1199 ई० था। आपका पूर्वाश्रम नाम वासुदेवाचार्य था। आप श्री अच्युतप्रेक्षाचार्य के शिष्य थे। आपका अन्य नाम भी आनन्दतीर्थ, अनन्तानन्दगिरि, आनन्दज्ञान, आनन्दज्ञानगिरि, ज्ञानानन्द, ज्ञानानन्दगिरि, माधव, आदि था। आपके शिष्यों का नाम पद्मनाभ तीर्थ, माधवतीर्थ, अक्षोम्यतीर्थ आदि थे। आपने 37 ग्रंथों की रचना की थी जिसमें 'शंकरविजय' भी एक था। इन विवरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रंथ रचयिता द्वैतमठ के थे। उपलब्ध आनन्दगिरि शंकरविजय पढने पर यही स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी अद्वैती के द्वेषों से लिखा यह निन्दास्पद ग्रंथ है। इसलिये यह अनुमान करना भूल न होगी कि वर्तमान प्रचारित आनन्दगिरि शंकरविजय का मूल यही पुस्तक रहा हो या यही पुस्तक ही आनन्दगिरि के नाम से प्रचारित हुआ हो।

1867 ई० में प्रकाशित परिष्कृत्य आनन्दगिरि में लिखा है—'भोजराज सदसि कालिदास इव।' कुम्भकोणमठ का प्रचार है और आपके वंशावली सूची (कल्पित) भी पुष्टि करती है कि आचार्य शंकर का काल 509/508 क्रिस्त पूर्व से 477/476 क्रिस्त पूर्व का है| कुम्भकोणमठ के प्रामाणिक पुस्तक सब ऐसा ही उल्लेख करता है। ऐतिहासिक लोग कालिदास का काल तीसरी शताब्दी क्रिस्त पश्चात का बतलाते हैं। कुम्भकोणमठ के कथनानुसार यदि यह ग्रंथ आचार्य शङ्कर के शिष्य आनन्दगिरि या प्रशिष्य वर्ग टीकाकार आनन्दगिरि रचित है तो कैसे ग्रंथ रचित काल में पैदा न हुए व्यक्तियों का नाम लिया गया था? इन दोनो कथनों में एक ही यथार्थ हो सकता है।

इस आनन्दगिरि ग्रंथ (कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० एवं काशी रामतारक मठ हस्तलिपि) के ग्यारहवें प्रकरण में कुछ श्लोक उद्धृत हैं जिसे 'अधिकरणमाला' ग्रंथ में पाये जाते हैं—'अविचार्यं विचार्यं वा ब्रह्माध्यासानिरुपणात्। असंदेह फलत्वाभ्यां न विचारं तदर्हति। अध्यासोऽहं ब्रह्मशब्दो साङ्गब्रह्म श्रुतीरितम्। संदेहान्मुक्तिभावाच्च विचार्यं

ब्रह्म वै ततः ॥ इति ॥' यह ग्रंथ प. प. श्री जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थ जी महाराज, शृङ्गेरी मठाधीश द्वारा रचित था। इसका एक अति प्राचीन हस्तलिपि उपलब्ध होता है जिसमें इसका रचयिता शृङ्गेरी मठाधीष श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी का नाम उल्लेख है। अब यह पुस्तक प्रकाशित भी हुआ है।

शृङ्गेरी मठाधीश श्रीविद्यारण्य (चौदहवीं शताब्दी) रचित 'अधिकरणरत्नमाला' ग्रन्थ में यह श्लोक पाया जाता है—'परिप्लवार्थमाख्यानम् किं वा विद्यास्तुतिस्थुते। जायोनुष्ठान शेषित्वं तेन पारिप्लवार्थकः।' आनन्दगिरि अपने ग्रन्थ में (काशी रामतारक मठ प्रति एवं कलकत्ता प्रति—प्रकरण 47) लिखते हैं कि उपर्युक्त श्लोक आचार्य शङ्कर ने कहा था यद्यपि ये श्लोक अधिकरणरत्नमाला से ही ली गई है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि यह आनन्दगिरि आचार्य शङ्कर के शिष्य न थे पर एक अन्य ग्रन्थकर्ता चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् के आनन्दगिरि थे जिन्होंने श्रीविद्यारण्य रचित ग्रन्थ से श्लोक उद्धृत किया था। इसी आनन्दगिरि में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्य परमतकालानल, लक्ष्मण एवं हस्तामलक को द्वैत एवं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों का प्रचार करने को आज्ञा दी थी। अर्थात् यह पुस्तक बारहवीं शताब्दी के बाद काल का ही रचा मालूम पडता है।

आनन्दगिरि शंकरविजय 56 प्रकरण के अन्त में दो श्लोक पाये जाते हैं—'कथां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभेनापि दुर्भराम। शिखायज्ञोपवीताभ्यां कथं भारो भविष्यति। कथां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रादि दुर्भराम। शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति।' जो माधवीय शङ्करविजय के आठवें सर्ग में भी पाया जाता है। आनन्दगिरि 56 प्रकरण के अन्त में ये दो श्लोक कथा संदर्भ में उस जगह जमता नहीं है चूंकि यह विवाद जो आचार्य शङ्कर एवं मण्डन विश्वरूप मिश्र के बीच हुआ था और जिसका विवरण आनन्दगिरि शङ्कर विजय में दिया गया है वहां ये श्लोकों को न देकर, मण्डन विश्वरूप मिश्र के विवाद में हारने के पश्चात् दस दिन उपरान्त यह विवाद का उल्लेख है जो कथा असम्भव दीखता है। आनन्दगिरि शङ्करविजय में इस विवाद का विवरण जहां 'कुतो मुण्डीत्यवादीत्' से प्रारम्भ होकर विवरण दिया गया है वहां ये श्लोक पाये नहीं जाते। आचार्य शङ्कर एवं मण्डनमिश्र बीच में जो विवाद हुआ था सो कथा केवल परम्परा से सुनी हुई कथा है और जिस विषय को सब शङ्करविजयों में दिया गया है। यह विवाद किसी पूर्व लिखित ग्रन्थ में उल्लेख नहीं हैं। अतः यह कहना भूल न होगी कि इस विवाद का मूल प्रमाण केवल कर्णश्रुत कथा ही है। माधवीय ने भी इस विवाद का विवरण दिया है। डिण्डिम टीकाकार ने माधवीय आठवें सर्ग के मूल श्लोक की टीका में अन्य अनेक श्लोक दिया है जो मूल में नहीं है पर आनन्दगिरि ने इन श्लोकों को संक्षेप रूप में अपने पुस्तक में दिया है। माधवीय ने जो कथा कर्णश्रुत आधार पर परम्परागत चली आ रही है उसी को संग्रह रूप में आपने अपने पुस्तक में कहा है यद्यपि अन्य पुस्तकों में सविस्तार विवरण पाया जाता है। कुम्भकोण मठ के प्रचारक 'कामकोटि प्रदीपम' में कहते हैं कि माधवीय में इन श्लोकों के होने से यह पुस्तक अनादरणीय है चूंकि ये श्लोक अश्लीलता उत्पन्न करती है। पर यह विवरण सब दिग्विजयों में दिये गये हैं और कुम्भकोणमठ के आनन्दगिरि शंकर विजय में सविस्तार भी दिये गये हैं। कुम्भकोणमठ के इस तर्क के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि आनन्दगिरिशङ्करविजय भी अनादरणीय है। कुम्भकोणमठ का प्रचार जो है कि कलकत्ता मुद्रित आनन्दगिरि शंकरविजय शृङ्गेरी भक्तों का परिष्कृत्य प्रति है और माधवीय भी शृङ्गेरी अनुयायियों का रचा हुआ पुस्तक है सो कथन निर्मूल एव निराधार है। चाहे ये श्लोक माधवीय से आनन्दगिरीय में लिया हो या आनन्दगिरीय से माधवीय में लिया हो पर यह निसन्देह कहा जा सकता है कि आनन्दगिरि शङ्करविजय शृङ्गेरी भक्तों का रचा ग्रंथ नही है चूंकि शृङ्गेरीमठ आचार्य भक्त स्वप्न में भी नहीं कहते या सोचते कि आचार्य शंकर का जन्म गोळक था एवं चिदम्बर में हुआ था,

आचार्य शंकर ने अपने शिष्य को आज्ञा दी कि श्रीव्यास जो एक वृद्ध ब्राह्मण रूप में आकर शास्त्रार्थ किया था आपको चपत मार कर गला पकड बाहर फेंक दो, आचार्य का आयू 'शरदां शतं' था, आचार्य ने अपने शिष्यों को बुलाकर द्वैत व विशिष्ठाद्वैत मतों का प्रचार करने को कहा, आचार्य का तनुत्याग कांची में हुआ था, आदि, जो सब विषय आनन्दगिरि शङ्करविजय में पाया जाता है। ऐसे निन्दास्पद पुस्तक कुम्भकोणमठ का ही प्रामाण्य पुस्तक है। ऐसे व्यर्थ कुतर्कों का कीचड फेंकना तो कुम्भकोणमठ का स्वभाव है और इन प्रचारों से अनभिज्ञ पामरजन इनके फैलाये हुए जाल में फंस सकते हैं न कि विज्ञ वर्ग। सम्भवतः आनन्दगिरि शंकर विजय कर्ता ने इन श्लोकों को माधवीय से ही उद्धरण किया हो चूंकि उपलब्ध आनन्दगिरि शंकर विजय का रचना काल चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् का ही निश्चित होता है।

प्रो. के. टि. तेलङ्ग लिखते हैं–' .... And it therefore follows that the author of the Sankaravijaya cannot have lived long, if at all, before the fourteenth century after Christ, and cannot, therefore, be identical with the Anandagiri, who was one of the pupil of Sankaracharya.' इससे यह निश्चित होता है कि कोइ एक अन्य आनन्दगिरि ने चौदहवीं शताब्दी के पूर्वकाल में इस ग्रंथ का रचना न किया हो|

यदि मान लें कि बारहवीं शताब्दी अन्त के आनन्दगिरि ने एक द्वेषात्मक शङ्करविजय रचना कर प्रकाश किया था और वर्तमान उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय का मूल यही पुस्तक था तो यह अनुमान करना गलत न होगा कि श्रीमाधवाचार्य (श्रीविद्यारण्य) ने इस अपचार युक्त ग्रंथ को देखकर एक स्वतंत्र ग्रंथ चौदहवीं शताब्दी में रचना की हो। प्रो० विल्सन् का भी यही अभिप्राय है।

आनन्दगिरि शङ्करविजय में कुछ विलक्षण पाये जाते हैं जो अन्य प्रामाण्य ग्रंथों के विरुद्ध हैं व कुछ घटनायें ऐसा वर्णन है जो द्वैती ही को मान्य है और कुछ विषय वर्णित हैं जो अद्वैती आनन्दगिरि लिख नहीं सकते। इस पुस्तक के अध्ययन से एक लम्बी सूची उपर्युक्त विषयों की बनायी जा सकती है पर यहां केवल कुछ विषयों का ही उल्लेख किया जाता है ताकि पाठकगण जान लें कि क्यों इस पुस्तक को अप्रमाणिक एवं अग्राह्य कहा जाता है। इस ग्रंथ को मूल व मुख्य आधार मानकर किसी विषय का निर्धारन करना उचित नहीं है।

(1) आनन्दगिरि शङ्करविजय में आचार्य शङ्कर का जन्मस्थल चिदम्बर बतलाया है। अन्य सब ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तकों एवं वृद्ध परम्परा कथा तथा अनुसन्धान करनेवाले विद्वानों व राज्य कर्मचारियों का अन्तिम अभिप्राय कालटी ही है और न कि चिदम्बर। कुम्भकोण मठ की प्रामाणिक ग्रंथ शिवरहस्य में शशलग्राम, मार्कन्डेय संहिता में कालटी का ही उल्लेख किया है।

(2) आचार्य शङ्कर के पिता-माता का नाम विश्वजित विशिष्ठा का उल्लेख है पर अन्य सब प्रामाणिक पुस्तक शिवगुरु आर्याम्बा सती का नाम बतलाते हैं।

(3) आचार्य शङ्कर का जन्म गोळक बतलाया है। विश्वजित के छोड चले जाने के तीन वर्ष उपरान्त विशिष्ठा ने पुत्र का जन्म दिया था। यह प्रचार द्वैती वर्ग के लोग प्रारम्भ से कर रहे हैं और कोई अद्वैती स्वप्न में भी ऐसा अपचार उस महान् के प्रति सोच भी नहीं सकता|

(4) आचार्य शङ्कर के दादा दादी का नाम सर्वज्ञ व कामाक्षी का उल्लेख है पर अन्य सब ग्रंथ विद्याधिराज का नाम लेते हैं। काशी रामतारकमठ के परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय में विद्याधिराज को ही शिवगुरु कहा है।

(5) आचार्य शङ्कर के गुरु श्रीगोविन्दभगवत्पाद का निवास स्थल चिदम्बर का उल्लेख है और आचार्य शङ्कर का सन्यास दीक्षा एवं अध्ययन चिदम्बर में होने का वर्णित है। पर अन्य ग्राह्य पुस्तक श्रीगोविन्दभगवत्पाद को नर्मदा तटवासी कहा है और आचार्य शङ्कर का सन्यास दीक्षा एवं अध्ययन नर्मदा तट पर ही हुआ था।

(6) श्रीवेदव्यास जो वृद्ध ब्राह्मण रूप में आकर श्रीशङ्कर से शास्त्रार्थ करने काशी आये थे, आपको आचार्य शङ्कर ने आपके गालों में चपत मारकर अपने शिष्य श्रीपद्मपाद द्वारा उन्हें अधोमुख कर अपने पादों से मारकर बाहर दूर ढकेल देने की आज्ञा दी| आनन्दगिरि शंकरविजय प्रकरण 52 एवं काशी रामतारक मठ प्रति में भी यों उल्लेख है 'इत्याग्रहेण जल्पतो वृद्धस्य कपोलताडनमाचकार। परं (च) पद्मपादं निजशिष्यमिदमाह। एनं परपक्षश्रेष्ठं वृद्धं (भूम्युपरि) अधोमुखं पातयित्वा पादाग्रावलम्बनात् दूरं त्यजेति।' क्या 'आचार्य शंकर जिन्होंने श्रीव्यासकृत सूत्रों पर भाष्य लिखा था ऐसा अपचार कर सकते हैं। आचार्य कृत भाष्य अध्ययन से स्पष्ठ आपके गुण लक्षण का बोध होता हैं और आपने कहीं भी विमतियों पर कडा शब्द का भी प्रयोग नहीं किया है। ऐसे ईश्वरांश व्यक्ति क्या ऐसे दुष्कर्म अपचार भी कर सकते हैं ?

(7) आचार्य शंकर को श्रीव्यास से काशी में 100 वर्ष की आयू का आशीष मिला। पर आचार्य शंकर का आयू केवल 32 वर्ष ही था और आप सोलह वर्ष के थे जब आप श्रीव्यास से भेंट की थी और उस समय आपको सोलह वर्ष का आशीष मिला।

(8) आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्यों परमतकालानल, लक्ष्मण व हस्तामलक को वैष्णव एवं अन्य मतों का प्रचार करने की आज्ञा दी थी। लक्ष्मण पश्चात् श्री रामानुजाचार्य भये और विशिष्ठाद्वैत मत का वेदान्त सूत्रों पर भाष्य का रचना की थी और हस्तामलक पश्चात् उडुपि नगर पहुंच कर द्वैतमत का प्रचार किये। इससे भी आधिक क्या असत्यता हो सकती है ? अद्वैतमत का पुनरुद्धार कर एक समन्वयात्मक दार्शनिक ग्रंथ का रचना करने वाले व्यक्ति क्या आप द्वैत व विशिष्ठाद्वैत का प्रचार कर सकते हैं ? आचार्य शङ्कर द्वारा वैष्णव मत, कापालिकमत, सौरमत तथा गाणपत्यमत के स्थापन की बात भी लिखी है।

(9) आचार्य शङ्कर ने इन्द्र, वरुण, यम और चन्द्र मतों का खन्डन कर अपना मत स्थापन किया। ऐसे मतों का विवरण अन्य ग्रंथों में पाये नहीं जाते।

(10) आचार्य शङ्कर का तनुत्याग काञ्ची में हुआ। अन्य सब प्रमाण इस कथन के विरुद्ध मिलते हैं।

(11) आचार्य शङ्कर का तनुत्याग वर्णन यों है—'स्वयं स्वेच्छया स्वलोकं गन्तुमिच्छुः काञ्चीनगरे मुक्तिस्थले कदाचिदुपविश्य स्थूलशरीरं सूक्ष्मेऽन्तर्धाय सद्रूपो भूत्वा सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा चिन्मात्रो भूत्वा अङ्गुष्ठपुरुष स्तदुपरि पूर्णमखण्ड मण्डलाकारमानन्दमीश्वर सन्निधौ प्राप्य सर्वजगद्व्यापकं चैतन्यमभवत्।' कारण में विलीन होने के पश्चात् अंगुष्ठ पुरुष होना अद्वैतियों के लिये असम्भव है। सर्व चैतन्य को ईश्वर सन्निधि पहुंचना भी असम्भव है। क्या आचार्य शङ्कर को सामीप्य मुक्ति ही मिला ?

(12) भाषा व शैली न तो तोटकाचार्य—(आनन्दगिरि) या टीकाकार आनन्दगिरि का है। व्याकरण अशुद्धियां अनेक हैं। इस पुस्तक में वृद्ध ब्राह्मण रूपी व्यास एवं मन्डनमिश्र से आचार्य शङ्कर का विवाद का वर्णन करते समय आचार्य शङ्कर के मुख से अनर्गल अपचार पदों का उपयोग कराया गया है| श्री शङ्कर रचित भाष्यों को पढा जाय तो यह कोई न कहेगा कि ऐसे महान के मुंह से अपचार शब्द निकले हों। आचार्य के शिष्य या प्रशिष्यवर्ग जिन्होंने आचार्य को देखा है या उनकी कथा सुनी है, वे ऐसा लिख नहीं सकते।

(13) काशी रामतारक मठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय प्रति प्रकरण 56 में (यह पुस्तक कुम्भकोण मठ का परम प्रामाण्य पुस्तक है) यों उल्लेख है—'पद्मपाद सुरेश्वरादि शिष्यकृत करतालैः दिक्करि कर्णकोटर वाद्यां सम्पादयन्तः श्री परमगुरु (प्र) मुखाः कुबेरदिङ्मार्गमवलम्ब्य ... ... मण्डनमिश्र आचकार।' इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर श्री सुरेश्वर के साथ मण्डन मिश्र से वादविवाद करने चले थे जो मण्डन मिश्र सन्यासाश्रम के वाद श्री सुरेश्वर का नाम धारण किये थे। पाठकगण जान लें कि यह कहां तक सम्भव है|

(14) ग्रन्थकार का भौगोलिक ज्ञान बहुत ही साधारण है अन्यथा केदारनाथ से बदरीनाथ जाने के लिये कुरुक्षेत्र मार्ग का उल्लेख नहीं होता|

उपर्युक्त कहे विषयों की पुष्टी में अनुसन्धान विद्वान पं. एन. भाष्याचार्य लिखते हैं (अड्यार प्रकाशन)— 'It is very much to be doubted whether this was written by Anandagiri, the famous disciple of Sri Sankaracharya, for the work is partly in peotry and partly in prose, and the nature of the style and many grammatical errors, show that the author must have been only a beginner in the study of the Sankrit language. It is stated therein that he refuted certain systems, philosophical and sectarian, such as those of Indra, Kubera, Yama, or Chandra, which do not seem to have been mentioned in any Sanskrit work, and therefore can have existed only in the imagination of the writer. It is also stated that he had disciples named Laxmana and Hastamalaka; the former was afterwards called Sri Ramanujacharya and he preached Vaishnava Religion and wrote a Bhashya (commentary) on the 'Vedanta Sutras' while the later went to Udipi and preached the Dwaita Philosophy. There cannot be a sillier statement. By mentioning these two reformers it is pretty certain that the writer of this Shankaravijaya lived after their times ... ... and not during or immediately after the time of Shri Shankaracharya, as we might be led to think, from the writer's statement that he was his disciple.' कुम्भकोणमठ का प्रचार पुस्तक जो मठाधीष के अनुमति से प्रकाशित एवं मठाधीष को अर्पित है उसमें लिखा है—'Anandagiri's Sankaravijaya is equally valueless and obviously forgery; for the author who claims to be a disciple of the great teacher himself, refers to Ramanuja and Madhwa, who lived in the eleventh and twelveth centuries respectively.'

जीवानन्द विद्यासागर ने कलकत्ता में (1881 ई०) आनन्दगिरि शंकरविजय प्रकाशित किया है। यद्यपि इस पुस्तक में अनन्तानन्दगिरि का नाम उल्लेख है तथापि इसे आनन्दगिरि कृत ही माना गया है। इसमें 74 प्रकरण हैं। श्री नवद्वीप गोस्वामी जयनारायग तर्कपञ्चानन ने अनेक जगहों से आनन्दगिरि कृत शंकरविजय की हस्तलिपि प्रतियां संग्रह किया था। इनमें कुछ प्राचीन प्रति थे और कुछ आधुनिक। श्री गोस्वामी जयनारायण जी को कुछ प्रतियां दक्षिण भारत से प्राप्त हुए थे पर अधिकांश उत्तर भारत की प्रतियां थी| म. म. कोकन्ड वेङ्कटरत्नम् पन्तुलु से रचित पुस्तक 1876 ई० में स्पष्ट उल्लेख है कि आनन्दगिरि शंकरविजय की हस्तलिपि प्रतियां दक्षिण भारत में उपलब्ध होते थे और आपको ऐसी प्रतियां तिरुचिनापल्ली व कांची से भी प्राप्त हुए थे। इन सबों की तुलना कर पश्चात् इन हस्तलिपि प्रतियों का प्रामाणिकता का निर्धारन करके बाद कलकत्ता मुद्रालय में जीवानन्द विद्यासागर ने आनन्दगिरि शंकरविजय छपवाया था| यह कहना भूल होगा कि इस पुस्तक का काल 1881 ई० है। पुस्तक के प्राचीनता व नवीनता का निर्णय करने के लिये क्या ग्रंथ कर्ता का काल लिया जाय अथवा पूर्व रचित ग्रंथ का पुनः लेखन काल लिया जाय या ग्रंथ का मुद्रित काल लिया जाय? रचित ग्रंथों का पुनः लेखन काल लेना भूल होगी। जिस समय में भी किसी विद्वान द्वारा यह हस्तलिपि लिखा गया था सो अवश्य वह विद्वान किसी और एक मूल ग्रंथ से ही लिखा होगा। कुम्भकोणमठ के कृपाभाजन विद्वानों का प्रचार है कि कलकत्ता मुद्रित पुस्तक (1881 ई०) अर्वाचीन है और प्रति जो 1867 ई० में मद्रास में कुम्भकोणमठ की अनुमति से मुद्रित है वह इससे पुराकाल का है, सो अभिप्राय भूल है। ऑक्सफोर्ड में उपलब्ध प्रति जो 17 वीं/18वीं शताब्दी का कहा जाता है वह पुस्तक कलकत्ता मुद्रित प्रति से मिलती जुलती है और यह कहना भूल न होगी कि इन दोनों पुनः लेखन प्रतियों का मूल ग्रंथ 17वीं/18 वीं शताब्दी के पूर्व का ही है। आन्ध्र देश के प्रकान्ड विद्वान म. म. को० वेङ्कटरत्नम् पन्तुलु 1876 ई० पूर्व दक्षिग भारत में आनन्दगिरि शंकरविजय का जो दो प्रतियां प्राप्त की थी सो प्रतियां मदरास मुद्रित 1867 ई० के प्रति से भिन्न थे| आपके दिये हुए विवरण द्वारा कलकत्ता मुद्रित पुस्तक से तुलना की गयी और प्रतीत हुआ कि आपसे संग्रहित प्रतियां कलकत्ता मुद्रित प्रति के समान ही हैं। एक मार्के की बात है कि माधवीय के टीकाकार श्री धनपति सूरी के द्वारा उद्धृत श्लोकों व पक्तियों से इस ग्रन्थ के वर्णन की तुलना की गयी और स्पष्ट मालूम हुआ कि जो कुछ संक्षिप्त रूप से है वही यहां बडे विस्तार के साथ दिया गया है और अनेक वही गद्य-पद्य वर्तमान उपलब्ध आनन्दगिरि शंकरविजय में पाये गये। आनन्दज्ञान के कहेजानेवाले 'बृहत् शंकरविजय' का ही आशय लेकर यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है। आनन्दज्ञान ने प्रमाण के तौर पर जिन वैदिक मंत्रों को उद्धृत मात्र किया है, उनकी विस्तृत व्याख्या इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। अतः यह कहना भूल है कि ये दोनो पुस्तकें भिन्न हैं। अनेक विद्वानों की सम्मति है कि दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ की बढती हुई प्रतिष्ठा देखकर एक शाखा मठाधीश ने इस परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय की रचना कर अपने मठ के गौरव तथा महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिये एवं दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ से अपनी पूर्वसम्बन्ध तोडने के लिये, यह पुस्तक प्रचार किया गया था। अतः प्रसिद्ध आनन्दगिरि—आचार्य के शिष्य या दूसरे व्यक्ति भाष्य टीकाकार आनन्दगिरि—को इस पुस्तक का रचयिता मानना नितान्त भ्रम है। इस परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय के बारे में पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वान डा० बर्नल जो तंजौर जिले के न्यायाधीष भी थे (कुम्भकोण मठ तंजौर जिले मे है और आपको इनके मठ का इतिहास पूर्ण ज्ञान था) एवं आपने 'Catalogue of Manuscripts' का संपादन किया था, आप लिखते हैं-' This seems to be quite a modern work written in the interests of the schismatic Mathas on the Coromandal coast which have renounced obedience to the Sringeri Math, where Sankaracharya's legitimate successor resides.' कारोमन्डलकोस्ट सीमा में कांची है। कुम्भकोण मठ

का कथन है कि डा० बर्नल को किसी ने असत्य कह कर धोखा दिया है और आप इन वचनों पर आधार कर लिख दिया है ('कामकोटी प्रदीपम्)'। डा० बर्नल न केवल तंजौर जिला न्यायाधीश थे पर आप एक अनुसन्धान विद्वान भी थे और आपने संस्कृत हस्तलिपि प्रतियों की एक सूची भी संपादन किया है, ऐसे व्यक्ति पूर्ण आन्वेषण किये बिना किसी विषय का निर्णय देना असम्भव दीखता है। डा० बर्नल के कथनों पर कुम्भकोण मठ का उत्तर कहां तक न्याय व उचित है सो पाठकगण ही स्वयं जान लें। उत्तर देते नहीं बनता तो गाली देना या निराधार दोषारोपन करना पतित् पुरुषों का स्वभाव ही है और आश्चर्य नहीं है कि कुम्भकोण मठाभिमानियों ने ऐसा ही किया है। यह आनन्दगिरि शङ्करविजय आचार्य शङ्कर के जीवनवृत्त के सांगोपांग वर्णन के लिये उतना प्रयोजन नही है (चूंकि जीवनवृत्तान्त विवरण अग्राह्य हैं और अन्य प्रामाणिक ग्रन्थ इन विषयों की पुष्टी नहीं करती है और वृत्तान्त निन्दास्पद हैं) जितना विभिन्न कहे जाने वाले धार्मिक संप्रदायों के सिद्धान्तों के विवरण प्रचार करने में महत्त्वशाली है।

एक आनन्दगिरि शंकरविजय तेलगू लिपि में मदरास में मुद्रित पुस्तक (1867 ई०) प्राप्त हुई। इस पुस्तक की भूमिका में कुम्भकोणमठ का श्रीमुख विरुदावली प्रकाशित है और यह पुस्तक कुम्भकोणमठ की अनुमति से ही प्रकाशित हुआ है ऐसा कहना भूल न होगा। इस पुस्तक के आचार्य शङ्कर चरित्र में कांची को प्रधान स्थान मानकर वहीं पीठ व मठ की प्रतिष्ठा का उल्लेख है जो विषय प्राचीन अमुद्रित आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तकों में पाये नहीं जाते। आचार्य का जन्म स्थल चिदम्बर का भी उल्लेख है। पिता माता का नाम विश्वजित विशिष्ठा का भी उल्लेख है। विशिष्ठा के पिता माता का नाम सर्वज्ञ एवं कामाक्षी का भी उल्लेख है। यह तेलगू लिपि पुस्तक कलकत्ता प्रकाशित पुस्तक के समान ही है केवल कहीं कहीं कुछ पदों व वाक्यों व श्लोकों का जोड, निकाल एवं अदल बदल किया गया है और कल्पित नवीन कांची मठ की महत्ता व प्रतिष्ठा बढाने के लिये कांचीमठ के गुण गाये गये हैं। इस पुस्तक में 'भोजराज सदसि कालिदास इव' का उल्लेख भी है। किन्तु पश्चात् तीसरे शताब्दी के कालिदास किस प्रकार किस्त पूर्व पांचवी शताब्दी के आचार्य शङ्कर चरित्र में (कुम्भकोणमठ कथनानुसार) आपका उल्लेख हो सकता है। कलकत्ता मुद्रित शङ्करविजय व अन्य छः प्रतियां जो तंजौर, कांची, तिरुचिनापली, तिरुनेलवेली, काशी व ऑक्सफोर्ड में प्राप्त होते हैं उन सर्वों में दक्षिणाम्नाय में शृङ्गेरि मठ की स्थापना मात्र वर्णन किया गया है और शृङ्गेरी को ही 'निजमठ', 'स्वाश्रमे', 'निजशिष्यपरम्पराम्' आदि का वर्णन है। इस मदरास मुद्रित परिष्कृत्य संस्करण में ये सब उडा दिया गया है और शृङ्गेरी की जगह कांची जोड लिया गया है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि यह परिष्कृत्य संस्करण अर्वाचीन पुस्तक है। मार्के की बात है कि प्रो. विल्सन् ने 1828 ई० मे ही इस आनन्दगिरि शंकरविजय का खन्डन किया था (Asiatic Researches 1828 ई०) और परिष्कृत्य संस्करण 1867 ई० में प्रकाशित हुआ था। कलकत्ता मुद्रित पुस्तक (1881 ई०) के समान ही आनन्दगिरि शङ्करविजय हस्तलिपि प्रति थी जिस पर प्रो. विल्सन् ने टीकाटिप्पनी की थी। अतएव यह निश्चित होता है कि 1867 ई० के पूर्व आनन्दगिरि शङ्करविजय प्रतियां प्राप्त होते थे जिसका विषय कुम्भकोणमठ के प्रचारों का विरुद्ध ही था और इसका परिष्कृत्य प्रति 1867 ई० का है। अतएव यह परिष्कृत्य संस्करण अर्वाचीन काल का कहा जायगा।

इस पुस्तक में भी श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, शृङ्गेरी मठाधीष, द्वारा रचित अधिकरणमाला एवं श्री विद्यारण्य जी महाराज, शृङ्गेरी मठाधीष, द्वारा रचित अधिकरणरत्नमाला के श्लोकों को उद्धृत किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह पुस्तक चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् काल का लिखित पुस्तक है। आचार्य शङ्कर को कहा गया है कि आपके दो शिष्य लक्ष्मण व हस्तामलक थे जिन्होंने पश्चात् विशिष्टा द्वैत व द्वैत मत का प्रचार किया था। एक

जगह उल्लेख है कि श्री शङ्कर ने 'चक्राङ्क' प्रयोग करने को कहा है और एक जगह कहा है कि 'चक्राङ्क' का प्रयोग न किया जाय। इस प्रकार के विलक्षण जो ऊपर पारा में दिये गये हैं सो सब इसमें भी कलकत्ता मुद्रित पुस्तक समान ही पाया जाता है। कलकत्ता प्रति में एवं अन्य प्राचीन हस्तलिपि प्रतियों में जहां शृङ्गेरी का उल्लेख है उस जगह कांची पद जोड लिया गया है। इस पुस्तक में भी शङ्कर का जन्म गोळक, जन्मस्थल चिदम्बर एवं विश्वजित विशिष्ठा का नाम उल्लेख है। इस पुस्तक के भूमिका में कांची मठ बिरुदावली देकर पांचलिङ्गों की नवीन कल्पित कथा विवरण दिया है। पांचलिङ्ग की कल्पित कथा केवल कुम्भकोणमठ को छोडकर अन्य कोई मठाधीष या ग्राह्य प्रमाण पुस्तक या वृद्धपरम्परा प्राप्त जनश्रुति या कथा इस विषय की पुष्टी नहीं करता। आन्ध्र देश के एक विद्वान श्री श्रेष्ठलूरी कृष्णस्वामी अय्या जो एक समय कुम्भकोणमठ के परम भक्त अनुयायी थे, आपने इस आनन्दगिरि को अप्रमाण होने का अनेक कारण देकर अप्रमाण ठहराया है। कलकत्ता मुद्रित पुस्तक का प्राचीन हस्तलिपि प्रति दक्षिण भारत में भी उपलब्ध थे और एक ऐसे प्रति को लेकर पद, वाक्य, श्लोक का जोड, निकाल, अदलबदल कर एक नवीन परिष्कृत्य प्रति आनन्दगिरि शङ्कर विजय को कुम्भकोणमठाभिमानियों से छपवाया गया था। म. म. पं. को. वेङ्कटरत्नम पन्तुलु ने 1876 ई० में अपने रचित पुस्तक में इस आनन्दगिरि शङ्कर विजय का खण्डन भी किया है। आन्ध्र देश के और एक विद्वान श्री वाराणसी वेङ्कटनारायण शास्त्रीजी भी म. म. पं. को. वे. पन्तुलु के किये हुए खण्डनों का समर्थन भी किया था। कलकत्ता मुद्रित पुस्तक एवं मदरास मुद्रित परिष्कृत्य पुस्तक की तुलना पाठकगण आगे पायेंगे। ऐसे परिष्कृत्य क्षिप्तमय प्रमाणाभास पुस्तकों के प्रचार से पामरपाठकगणों की आंखों में धूल फेंका जा रहा है।

कुम्भकोणमठ का कथन है कि आपके यहां एक आनन्दगिरि शंकरविजय पुस्तक अपने मठ में है। पर कुम्भकोणमठाधीष की अनुमति से रचित पुस्तक और जो मठाधीष को अर्पित है उस पुस्तक के रचयिता इस आनन्दगिरि शङ्करविजय के बारे में लिखते हैं—'Works I have not been able to consult.' कुम्भकोणमठ का यह भी प्रचार है कि यह आपका आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तक ही माधवीय के टीकाकारों से निर्देशित आनन्दज्ञान या आनन्दगिरि बृहच्छंकरविजय है। पर जो कुछ भाग इस पुस्तक से काशी में प्रकाशित हुआ था सो सब माधवीय टीकाकारों से उद्धृत भागों में न थे। पर दिग्विजय यात्रा संदर्भ में एवं अन्य जगहों में जो कुछ टीकाकार ने (करीब 811 श्लोक) उद्धृत किया है उन सब विषयों का ही कहीं पर संग्रह रूप में और कहीं विस्तार पूर्वक और कहीं उसी आशय का और कहीं वही श्लोक या पंक्ति उद्धरण आनन्दगिरि शंकरविजय में प्राप्त होते हैं। पूर्व मे ही कहा जा चुका है कि आनन्दगिरि का प्राचीन बृहच्छंकरविजय उपलब्ध नहीं है। ऐसे अनुपलब्ध पुस्तक जो कुम्भकोणमठ के लिये ही मूल प्रामाण्य है उस पुस्तक को क्यों नहीं अपने प्रचारक रचयिता को दिखाया गया था? कुम्भकोणमठ में पुस्तक न होने से आप दिखा न सके। कुम्भकोणमठ को उचित था कि इसे छपवा कर लोकोपकार के लिये प्रकाशित कर देते ताकि कहेजानेवाले ऐसे प्रामाणिक पुस्तक लोप होने से बच जाय। आपका प्रचार भी है कि ऐसे पुस्तक को किसी एक मुकद्दमे में भी 1846 ई० के पूर्व प्रमाण रूप से निर्देश किया था। यदि यह सत्य है तो समझ में नहीं आता कि क्यों इसे मुद्रित कर प्रकाशित नहीं किया गया? प्रचारार्थ जब सैकडों पुस्तकें मुद्रित हो प्रकाश हो रहे हैं तो इसे भी प्रकाश कर देते। जब ग्रंथ ही नहीं है तो कैसे छपवा सकते हैं जिसे इनके पूर्व गुरुओं ने नहीं छपवायी थी। 'अश्रुतम्, अदृष्टम्, अजातम्', कोटी के पुस्तक कुम्भकोणमठ के प्रमाण हैं।

वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के काशी यात्रा समय जब आपके मठ के बारे में वाद-विवाद काशी में छिडा और कुम्भकोण मठ से कहेजानेवाले पुस्तकों की प्रमाण्याप्रामाण्य की चर्चा उठी तब अचानक काशी के रामतारक

मठ में रक्खे हुए (कुम्भकोण मठ के कथनानुसार) आनन्दगिरि शङ्करविजय को प्रामाण्य रूप में प्रचार करने लगे। जब कुम्भकोण मठ की उप क्त आनन्दगिरि शङ्करविजय प्रति दिखाने को पूछा गया था तब काशी के रामतारक मठ की प्रति प्रचार होने लगा। साथ साथ यह भी प्रचार हुआ कि यह रामतारक मठ की प्रति आप के मठ के प्राचीन आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तक से मिलती जुलती है और ये दोनों प्रतियां एक ही हैं। यह भी प्रचार 'कामकोटि प्रदीपम' में किया गया है कि इस पुस्तक का लिपि लेखन काल शालीवाहन शक 1737 है अर्थात् 1815/16 ई० का है। कुम्भकोण मठ अभिमानियों द्वारा काशी में प्रकाशित 'शाङ्करपीठतत्वदर्शन' पुस्तक में एक जगह शालीशक 1737 का उल्लेख है और इसी पुस्तक में अन्यत्र एक जगह शालीशक 1767 का भी उल्लेख है। 1961 ई० में म. म. प. अनन्तकृष्ण शास्त्रीजी, कुम्भकोण मठ के तीव्र प्रचारक, ने इस रामतारक मठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय (पुस्तक नं. 92) का प्रतिलिपि जिसे पन्डित प्रवर यमुनाप्रसादशुक्ल से 27—4—1961 में लिखकर समाप्त की गयी थी, इस प्रति को अपने एक मित्र को दिया था जिसका पुनः प्रति मैंने जून माह 1961 ई० में नकल किया था। इस रामतारक मठ प्रति में उल्लेख है 'शाके 1767 विश्वावसु संवत्सरे वैशाख शुक्ल 13 तद्दिने सप्तनीरपुरे लिखितम्।' मालूम नहीं कि इन भिन्न कथनों में कौनसा सत्य है| प्रमाणाभास पुस्तकें जो रात रात लिखकर बाद प्राचीनता लेबल के साथ प्रचार किये जाते हैं, उस पुस्तक की दशा यही होती है। मैंने इस रामतारक मठ आनन्दगिरि शङ्करविजय को 1936 ई० में पढा था और इस प्रति में शालीशक 1767 विश्वावसु संवत्सर ही स्पष्ठ उल्लेख पाया था। न केवल मैंने इस कहेजानेवाले प्राचीन पुस्तक को देखा पर मेरे साथ और दो विद्वान भी थे जिन्होंने इस पुस्तक की छानबीन कर अध्ययन भी किया। यद्यपि प्राचीनता का लेबल इस पुस्तक पर आरोप किया गया था पर देखने में (1936 ई० में) स्पष्ठ अर्वाचीन काल का ही दीख पडा। चूंकि शक शालीवाहन में दिया गया है और विश्वावसु संवत्सर ठीक प्रतीत होता है इसलिये इस प्रति का लेखन काल 1767 शालीशक ही (1845 ई०) ठीक जमता है न कि शालीशक 1737 (1815 ई०)। 1936 ई० में जब मैं रामतारक मठ के मंहत से मिला था और इस पुस्तक के बारे में पूछा था तो आपने कहा कि आप निश्चित रूप से कह नहीं सकते कि यह पुस्तक रामतारक मठ में पूर्वकाल से ही था चूंकि आप जब इस मठ के महन्त बने थे तो आपके पास इस पुस्तक का होना सन्देह होता है और आपको यह नहीं मालूम कि कब, किसके द्वारा और किस प्रकार यह पुस्तक आपके पुस्तकालय में पहुंचा था। रामतारक मठ के महन्तजी कोई निश्चित रूप से इस पुस्तक के बारे में कह न सके। कुम्भकोण मठ के आनन्दगिरि शंकरविजय प्रति से लिये हुए कुछ भाग एवं रामतारक मठ के प्रति से लिये गये भाग जो काशी में कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में प्रकाशित थे तथा कुम्भकोण मठ के अन्य प्रचार पुस्तकों 1915 ई० से 1931 ई० तक से प्रकाशित भागों को सब संग्रह कर, इस संग्रहित पंक्तियों व श्लोकों को कलकत्ता मुद्रित (1881 ई०) आनन्दगिरि शंकरविजय के साथ तुलना की गयी। कुम्भकोण मठ से ये सब प्रकाशित भाग अक्षरसः कलकत्ते प्रति से मिलते हैं केवल एक दो जगह पदों का परिवर्तन हुआ था और जहां कहीं शृङ्गेरी का उल्लेख था उसी जगह शृङ्गेरी के बदले कांची पद प्रयोग किया गया था। कुछ जगह कुम्भकोण मठ के कल्पित नवीन कथाओं के प्रमाण रूप में स्वरचित पंक्तियां या श्लोक जोड लिये गये थे।

काशी रामतारक मठ के महन्त जी अपने मठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय के प्रामाण्याप्रामाण्य अच्छी तरह जानते हैं| रामतारकमठ के महन्त जी ने आनन्दगिरि शङ्करविजय को अप्रमाण मानकर अपना सम्मतिहस्ताक्षर एक व्यवस्था में किया है जिसे पाठकगण इस पुस्तक के तृतीय खन्ड में पायेंगे। रामतारकमठ के महंत जी अपने पत्र ताः 23—5—1935 में लिखते हैं —'... ... रा. रा. गोपीनाथ शास्त्री एक दिन हिन्दी भाषा में लिखी हुई प्रस्तावना पत्रिका और कुछ कच्चे लिखे हुए कागज ले कर मेरे पास आये और प्रस्तावना पत्रिका के ऊपर सही कराने के लिये

पण्डित राजेश्वरशास्त्री ने भेजा है कहा और उसे पढ सुनाया। हमने उस समय उनको ऐसा समझाया कि हमने इसके पहिले 'श्री आनन्दगिरि के शङ्करदिग्विजय' के ऊपर टीका आक्षेपादि होने के कारण 'विमर्श' नामक पुस्तक में सही किया है, इसलिये हम इस पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते। इसके ऊपर हस्ताक्षर करने में कोई हर्जा नही, इसमें केवल 108 नामावली पूजा विधि है, इसका प्रचार होने के लिये आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है, इसमें श्री आनन्दगिरि के आक्षेपादि विषय का सम्बन्ध नहीं ऐसा उनके कहने से हमने कागज न पढ कर प्रस्तावना पत्रिका के ऊपर सही किया है, यही हकीकत है।' रामतारक मठ महन्त जी एक और अपने पत्र ताः 14—5—1935 में लिखते हैं —'...श्री आनन्दगिरि कृत श्रीशङ्करविजय आक्षेपार्ह ग्रन्थ है और ये आक्षेपार्ह विषयें उस पुस्तक का अप्रमाणिक होने की 'विमर्श' पुस्तक में लोक सहाय के लिये उल्लेख है, वह सही ही है। ... ... आक्षेपार्ह आनन्दगिरि पुस्तक पर मेरी सम्मति नहीं है, यह विषय आपकी जानकारी के लिये लिखते हैं"। कुम्भकोण मठ के भक्त अभिमानियों ने श्री रामतारकमठ के महन्त जी से कहा कि आनन्दगिरि शङ्करविजय का सम्बन्ध प्रकाश होने वाले पुस्तक से नही है पर प्रकाशित पुस्तक 'श्री 108 श्री मदाद्य शङ्कराचार्य पूजा कल्पः' में आनन्दगिरि शङ्करविजय के भागों को देकर प्रचार किया गया था ताकि पामरजन जान लें कि श्री रामतारक मठ के महन्त जी इस आनन्दगिरि को प्रमाण में मानते हैं और आपसे दिये हुए पूर्व अभिप्राय ('आनन्दगिरि शङ्करविजय अप्रमाणिक ग्रन्थ है और यह श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है') को रद्द करदें। यह सब एक षडयन्त्र था। 'परमशिवावतार' कुम्भकोण मठाधीष के भक्त प्रचारकों की लीला! ही अपार है!! पाठकगण इस विषय का विवरण मुझ से प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में पायेंगे।

प्रश्न उठता है कि कलकत्ता मुद्रित व प्रकाशित 1881 ई० की पुस्तक एवं कुम्भकोणमठ की प्रति जो 1846 ई० के पूर्व का कहा जाता है और जो काशी रामतारक मठ के (1815 ई० या 1845 ई०) कहे जाने वाले पुस्तक से मिलता जुलता है, इन दोनों प्रतियों का मूल ग्रथ एक है या भिन्न भिन्न? कुम्भकोणमठ का प्रचार भी है कि माधवीय के टीकाकार से उद्धृत श्लोक व पंक्ति जो सब 'आनन्दज्ञानाख्यानन्दगिरि' विरचित प्राचीन विजय या बृहच्छंकरविजय या आनन्दगिरि शङ्करविजय में हैं, वही पुस्तक कुम्भकोणमठ के आनन्दगिरि शंकरविजय से मिलता जुलता है। अर्थात प्रश्न यह है कि इन दोनों भिन्न पाठान्तरों (कलकत्ता प्रति व उपर्युक्त अन्य तीन प्रतियां) का मूल ग्रंथ एक है या भिन्न? यदि माना जाय कि इन दोनों पुस्तकों के रचयिता भिन्न हैं तो इन दोनों पुस्तकों में जो भेद दीखने की कथा कुम्भकोणमठ सुनाते हैं उसका यथार्थ पाठ निर्णय किस मूल पुस्तक से किया जाय? एक मार्के की बात है कि रामतारक मठ का हस्तलिपि प्रति, कुम्भकोणमठ का प्रति जो रामतारकमठ प्रति से मिलता जुलता है और परिष्कृत्य प्रति (मदरास मुद्रित) ये तीनों कलकत्ता मुद्रित प्रति समान ही हैं। उक्त प्रतियों में से दो प्रति में आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल व पिता माता का नाम बदल दिया गया है। आनन्दगिरि के कथनानुसार चिदम्बर जन्मस्थल व विश्वजित विशिष्ठा पिता माता का नाम दोनों अग्राह्य होने के कारण एवं अन्य प्रामाण्य ग्रंथों के विरोध होने के कारण, रामतारकमठ आनन्दगिरि शंकरविजय के द्वितीय प्रकरण में चिदम्बर के बदले कालटी एवं विश्वजित विशिष्ठा की जगह शिवगुरु आर्याम्बा नाम उल्लेख है। कुम्भकोणमठ प्रचारों (पांच लिङ्ग की कल्पित कथा, कांची में मठ स्थापन आदि) की पुष्टी के लिये मूल ग्रंथ में नवीन पदों, वाक्यों, श्लोकों का जोड, निकाल, अदलबदल किया गया है जिसका विवरण पाठकगण नीचे पायेंगे। अन्य सब विषय अक्षरसः 74 प्रकरणों में बराबर हैं। इन दोनों प्रतियों में जहां भेद पाये जाते हैं सो सब भेद क्षिप्त हैं चूंकि ये नवीन जोड व परिवर्तित भाग निराधार एवं अन्य ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तक के विरुद्ध हैं। कौनसी पुस्तक इन दोनों के मूल है, इस विषय का निर्णय कैसे किया जाय? कुम्भकोणमठ के कथनानुसार भिन्न रचयिता होते हुए भी

वचन, भाषा, शैली आदि दोनों का समान व कथा एक ही होने से, भेद की जगह नहीं है। आचार्य शङ्कर रूप में अवतीर्ण भगवान की कथा चरित्र मूल विषयों में (जन्म स्थल, पिता माता का नाम, सन्यास ग्रहण, भाष्य रचना, आम्नाय मठ स्थापन, निर्याण स्थल आदि) भेद पाया नहीं जाता। रचित रामायण कथा के संपादक अनेक हैं पर कथा विवरण मुख्य विषयों पर एक ही है। यदि कहा जाय कि दोनों के रचयिता एक हैं तो प्रश्न उठता है कि एक ही रचयिता ने एक ही कथा को किस प्रकार भिन्न भिन्न वर्णन कर सकते हैं जैसा कि कुम्भकोणमठ का प्रचार है? अतः रचयिता एक ही हैं और मूल पुस्तक एक ही है और कालान्तर में अपनी इष्ट सिद्धि पूर्ण करने के लिये उसी मूल पुस्तक का परिष्कृत्य प्रति तैय्यार कर प्राचीन लेवल के साथ प्रचार कर देते हैं। अपनी अपनी इष्ट सिद्धि पूर्ण करने के लिये क्षिप्त पुस्तकें भी मूल प्रति के समान ही होते हैं, केवल वह जगह जहां किसी स्थल, घटना, व्यक्ति की महत्ता व श्रेष्टता दिखानी हो, येही भाग भिन्न होते हैं। इसलिये यह कहना कि इन भिन्न पाठान्तरों के रचयिता भिन्न हैं और पुस्तक भी भिन्न हैं सो भूल है। अतएव अब उपलब्ध होने वाले भिन्न पाठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय के रचयिता एक ही हैं और इन भिन्न प्रतियों का मूल भी एक ही है।

पुस्तक की प्राचीनता व नवीनता का निर्णय करने के लिये क्या रचयिता का काल लिया जाय अथवा उस मूल पुस्तक का पुनः प्रति लेखन काल लिया जाय? यदि पुनः लेखन प्रति का काल लिया जाय तो भूल होगा। हस्तलिपि प्राचींनता का सूचक नहीं है। यद्यपि कलकत्ता मुद्रित पुस्तक 1881 ई० का मुद्रित है तथापि वह भी किसी एक प्राचीन हस्तलिपि से ही लिया गया है। श्री नवद्वीप गोस्वामि जयनारायण तर्कपञ्चानन ने अनेक जगहों (उत्तर एवं दक्षिण भारत) से हस्तलिपि प्रतियां प्राप्त की थी और पश्चात कलकत्ता में प्रकाशित कराया। ये सब प्रतियां 17 वीं/18वीं शताब्दी के थे। रामतारकमठ पुस्तक का लेखन काल शालीशक 1737 (1815 ई०) एवं शालीशक 1767 (1845 ई०)—दो भिन्न काल का प्रचार कुम्भकोणमठ करते हैं। आक्सफोर्ड पुस्तकालय की आनन्दगिरि शंकरविजय प्रति (डा० ऑफ्रेक्ट से भी निर्देषित) जो 17 वीं/18 वीं शताब्दी का पुनः प्रति लेखन काल माना जाता है सो रामतारक मठ प्रति से प्राचीन है। यह आक्सफोर्ड प्रति कलकत्ता मुद्रित प्रति से मिलती जुलती है। प्रो० विलसन् ने 1828 ई० में एक आनन्दगिरि शंकरविजय हस्तलिपि प्रति पर अपनी टीका टिप्पाणी की है और यह प्रति आक्सफोर्ड मे उपलब्ध प्रति से एवं कलकत्ता मुद्रित प्रति से मिलती जुलती है। अतः कलकत्ता मुद्रित प्रति का हस्तलिपि प्रति 17 वीं/18 वीं शताब्दी में भी उपलब्ध थे और यह प्रति रामतारकमठ प्रति से भी प्राचीन प्रति है। कुम्भकोण मठ का प्रचार कि रामतारकमठ की प्रति ही सर्व प्राचीन प्रति है सो भूल और मिथ्या है। इन सब उक्त प्रतियों का मूल एक ही होने से यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि रामतारक मठ की प्रति अर्वाचीन काल का परिष्कृत्य प्रति है। कलकत्ता मुद्रित पुस्तक एवं अन्य अमुद्रित पुस्तक जो सब कलकत्ता प्रति समान ही हैं और ये ही प्रतियां प्राचीन हैं, उन सब को अग्राह्य व अप्रमाणिक ठहराने के बाद किस प्रकार अर्वाचीन काल का परिष्कृत्य प्रति रामतारक मठ की पुस्तक को प्रमाण माना जाय? इसीलिये 1935 ई० में काशी के प्रकान्ड विद्वानों ने एवं आदरणीय परिव्राजकों ने अपने दिये हुए व्यवस्था में आनन्दगिरि शंकरविजय को अप्रमाणिक ठहराया था।

पं. राजेश्वर शास्त्री जी, कुम्भकोण मठ के परम भक्त शिष्य, ने 1935 ई० में अचानक अविष्कार किया कि रामतारकमठ में आनन्दगिरि शङ्करविजय एवं आपके यहां शिवरहस्य प्रतियां उपलब्ध हैं| आपने अपने प्रभाव से एवं अपनी टोली की सहायता से इन दोनों का प्रचार भी खूब किया। कुम्भकोण मठ का ये दोनों परम प्रामाणिक पुस्तकें जिसके प्रतियां अधिक-मात्रा में उपलब्ध नहीं होते और जिसे कुम्भकोण मठ अपने प्रचार पुस्तकों में भिन्न भिन्न पंक्तियां

उद्धृत कर प्रचार करा रहे हैं, वैसे बहुमूल्य पुस्तकों को क्यों नहीं इसके पूर्व प्रचार कराया गया? कुम्भकोणमठ विषयक विवाद 1845 ई० से बराबर जारी है और बार बार आपके कहेजानेवाले प्रमाणाभास पुस्तकों का खन्डन हो चुका है और आपके प्रचारक नवीन प्रतियों के खोज में तीव्र प्रयत्न करते थे तो क्यों नहीं आपके भक्त शिष्य के घर में उपलब्ध होने वाले पुस्तकों के पूर्वकाल में प्रचार कराया गया? उन कृपा भाजन विद्वानों को जो आपके मठ स्थापन के लिये एवं महत्ता बढाने के लिये और आपको 'यति सार्वभौम' बनाने की चेष्टा में तीव्र प्रयत्न करते थे, क्या न मालूम था कि काशी में भी प्रमाण पुस्तक उपलब्ध हैं? जब काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद 1934/35 ई० में छिडा और काशी के विद्वानों एवं परिव्राजकों ने आपसे अनेक असौकर्य प्रश्नों से प्रहार किया था और कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की भन्डाफोड हुई और जब कुम्भकोण मठाभिमानी प्रमाणाभास पुस्तकों की खोज में थे उसी समय पं. राजेश्वर शास्त्री ने अचानक यह नवीन अविष्कार किया था। इन सब कार्यों में क्या मर्म है? यदि पाठकगण रामतारकमठ महन्त के पत्र को पढें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि यह सब एक षडयन्त्र रचा गया था।

पाठकगणों की जानकारी के लिये उदाहरणार्थ नीचे कुछ पक्तियां कलकत्ता मुद्रित आनन्दगिरि शङ्करविजय जो प्राचीन मूल प्रति का यथार्थ प्रति है उससे दी जाती है और इसकी तुलना कुम्भकोण मठ प्रति आनन्दगिरि शङ्करविजय व मदरास मुद्रित 1867 ई० का संस्करण (परिष्कृत्य) व रामतारकमठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय जो सब परिष्कृत्य प्रतियां हैं उनके साथ की जाती है। यह तुलना सारे पुस्तक पर की जा सकती है पर यहां कुछ विषय ही दिया जाता है ताकि पाठकगण जान लें कि कहां और क्यों विषयों का वर्णन परिवर्तित कर परिष्कृत्य प्रति तैय्यार किया गया था। परिकृत्य संस्करण के नीचे रामतारक मठ की आनन्दगिरि शङ्करविजय जो प्रति कुम्भकोण मठ की प्रति से मिलता जुलता है और 1867 ई० का मुद्रित प्रति से भी विषय दिया जाता है। मूल प्रति का संस्करण ही कलकत्ता मुद्रित प्रति है। 1867 ई० में मदरास मुद्रित परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तक के संपादक स्वयं इसे परिष्कृत्य प्रति स्वीकार करते हैं। आप लिखते हैं— '... ... पण्डितजन सकाशात् आनीतान् श्री शङ्करविजय ग्रन्थान् अनेकान् आलोच्य क. शिवरामशास्त्री, कौ. सुब्बा शास्त्री प्रमुख पन्डितैः साकं परिष्कृत्य श्रीमद् रामचन्द्रचरणारविन्द भजनासक्त हृदयेन ने. वेंकटसुब्बाशास्त्रिणा स्वकीय सरस्वती विलास मुद्राक्षशालायां मुद्रितोऽभूत। (10—12—1867) आन्ध्र देश के वृद्ध विद्वानों से मैं ने सुना है कि उक्त कहे हुए पण्डितजन सब कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वान थे।

माधवीय की डिण्डिम टीका से प्रतीत होता है कि श्री नारद ब्रह्मा से मिलकर पश्चात् दोनों शिव के पास गये और टीकाकार का कथन है कि यह विषय प्राचीन शंकर विजय से लिया गया है। कलकत्ता मुद्रित पुस्तक में यह विषय पाया जाता है पर रामतारकमठ के प्रति में श्री नारद का उल्लेख ही नहीं है। डिण्डिम टीकाकार से उद्धृत भागों में से बहुत अंश कलकत्ता मुद्रित प्रति में पाया जाता है। इस परिष्कृत्य प्रति में चिदम्बर पद को उडाकर कालटी जोडने की चेष्टा में और कुछ विषयों को भी निकाल दिया गया ताकि इस परिष्कृत्य प्रति को भिन्न पुस्तक कहा जाय। पुस्तक के प्रथम प्रकरण में मुख्य विषयों की सूची दी गयी है जिसमें कांची के बारे में यों उल्लेख है 'काञ्चीनगर निर्माणम् कामाक्षी प्रपञ्च श्री चक्रनिर्माणं मोक्षमार्ग प्रकाशं' पर यहां कांची में आम्नाय मठ स्थापना का विषय या योगलिङ्ग प्रतिष्ठा या आचार्य शंकर का निजपरम्परा नहीं कहा है। आगे के अध्याय में कुम्भकोण मठ अपने प्रचारों की पुष्टी के लिये इन विषयों को क्षिप्त किये हैं पर इन विषयों को प्रथम प्रकरण में उल्लेख करने से भूल गये होंगे। इसी प्रथम प्रकरण में श्रृङ्गेरी के बारे में उल्लेख है 'श्रृङ्गेरी स्थानवासं' जो मठ स्थापना का संकेत करता है। आनन्दगिरि शंकरविजय प्रकरण 62 में श्रृङ्गेरी के बारे में यों उल्लेख है 'सरसवाणीं निधाय एवमाकल्पं स्थिरा भव मदाश्रमे इत्याज्ञाप्य निजमठं

कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा' और यही पंक्ति रामतारकमठ आनन्दगिरि शंकरविजय प्रति में भी पाया जाता है केवल भेद यह है कि 'मदाश्रमे' की जगह 'मदाश्रय' का परिवर्तन किया गया है। माधवीय 12 सर्ग 68 वां श्लोक की टीका में टीकाकार ने शृङ्गेरी के बारे में यों लिखा है—'अत्र प्राञ्चः—मठं कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा...'। आनन्दगिरि शंकरविजय मूल प्रति में कहीं भी ऐसा स्पष्ट कांची में आम्नाय मठ स्थापना का विषय उल्लेख न होने से कांचीं में आम्नाय मठ होने का प्रचार करना मिथ्या प्रचार होगा।

मूलप्रति आनन्दगिरि शंकरविजय

(1) "ततः सर्वात्मकोदेवश्चिदम्बर पुराश्रितः। आकाशलिङ्ग नाम्ना तु विख्यातोऽभून्महीतले' से लेकर 'प्राप्ते तु दशमे मासि विशिष्टागर्भगोलतः। प्रादुरासीन्महादेवः शङ्कराचार्य नामतः। आसीत्तदापुष्पवृष्टिर्देवसङ्घै प्रचोदिता। नेदुर्न्दुभयो दिव्याः स्वर्गलोके चिरं सुखम्" तक है।

परिष्कृत्य आनन्दगिरि शंकरविजय

(1) "कालटाख्येग्रामवर्य्ये केरलालंकृतीकृते। विद्याधिराज नाम्नायः प्राज्ञः शिगुरुर्वेभौ।" से लेकर "शास्त्राण्यपि च सर्वाणि बाल एव व्यगाहत्। चकार मानृशुश्रूषामति मानुष कर्मकृत" तक क्षिप्त हैं। (रामतारकमठ व कुम्भकोण मठ प्रति)

इन दोनों प्रतियों में दूसरा प्रकरण 'तत्रभगवान चतुर्मुखः' से आरम्भ होता है और कलकत्ता मूल प्रति में सातवें पृष्ठ में दिये 'निजलोकमनन्यधौ' तक का वृत्तान्त दोनों में एक ही है। कलकत्ता मूल प्रति में इसके पश्चात् चिदम्बर आचार्य शङ्कर का जन्मस्थल, विश्वजित विशिष्टा पिता माता का नाम, आचार्य शङ्कर का गोलक जन्म विवरण आदि विषयों का उल्लेख है। यह द्वेष से लिखा निन्दनीय विषय श्रेष्ठों को ग्राह्य न होने के कारण एवं अन्य प्रामाणिक ग्रंथ इसके विरुद्ध कहने के कारण तथा परम्परागत आयी हुई कथा विवरण के विरुद्ध होने के कारण, इसे परिष्कृत्य प्रति में निकाल कर इस जगह में 18 नवीन स्वरचित श्लोक जोड लिये गये हैं जो कालटी जन्मस्थल, शिवगुरु आर्याम्बा पिता माता का नाम आदि विषयों का उल्लेख करता है। यह अठारह श्लोक मूल प्रति में क्षिप्त किये गये हैं। पर 1867 मुद्रित पुस्तक में आचार्य का जन्म स्थल चिदम्बर ही बतलाया है। उपर्युक्त दोनों प्रतियों में प्रथम प्रकरण के विषय सब समान ही हैं पर कुछ पदों का जोड निकाल व अदल बदल परिष्कृत्य प्रति में देखा जाता है। इस परिवर्तन से प्रथम प्रकरण का वर्णन भिन्न होने की कथा कही नहीं जा सकती है।

(2) "एवमनेक प्रकारेग बहुशिष्यान् धन्यान् कृत्वा अष्टमे वर्षे प्राप्ते श्रीमद्गोविन्दयोगीन्द्रस्य सदुपदेशात्परमहंसाश्रम स्वीकारं कृतवन्तः श्रीमच्छङ्कर भगवत्पादाचार्य्य सर्वज्ञाः।"

(2) "एवमनेक प्रकारेण बहुशिष्यान्धन्यान्कृत्वाष्टमे वर्षे प्राप्ते निजग्राम समीप वाहिन्यां नद्यां ग्राहग्रहवशात्सन्यस्य कालटाख्या निजग्रामान्निर्गत्य श्रीमद् व्याघ्रपुरमागत्य तत्र गोविन्दयोगी सदुपदेशात्परमहंसाश्रमं स्वीकृतवान् श्रीशङ्कराचार्यः।" (रामतारकमठ व कुम्भकोणमठ प्रति)

इन दोनों प्रतियों में तीसरा प्रकरण का विषय समान ही हैं। उपर्युक्त भेद पाठ इसलिये है कि रामतारक मठ प्रति के दूसरे प्रकरण में आचार्य का जन्म स्थल कालटी का नाम क्षिप्त किया गया है और कलकत्ते मूल प्रति में चिदम्बर उल्लेख है। आचार्य का बाल्यकाल चिदम्बर में बीता। परिष्कृत्य प्रति में आचार्य को अब कालटी से व्याघ्रपुर (चिदम्बर) ले आया गया ताकि आप चिदम्बर भी पहुंचे जैसा कि मूल पुस्तक में उल्लेख है। इस परिष्कृत्य प्रति में कहा है कि

आचार्य शङ्कर श्री गोविन्दभगवत्पाद से चिदम्बर में मिले पर कुम्भकोणमठ का प्रधान प्रामाणिक पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' कहता है कि आचार्य शंकरजी श्री गोविन्दभगवत्पाद से नर्मदा नदी तीर पर मिले और कुम्भकोणमठ का पतञ्जली चरित्र कहता है कि श्री गोविन्दभगवत्पाद बदरिकाश्रम में थे। कुम्भकोणमठ की इन तीनों पुस्तकों में तीन भिन्न कथन सब सत्य नहीं हो सकते। पूछे हुए असौकर्य प्रश्नों के उत्तर में समयानुसार इन नवीन क्षिप्त पुस्तकों का प्रचार करने से दशा यही होती है। सम्भवतः कुछ दिन बाद श्री गोविन्दभगवत्पाद का कांची या कुम्भकोणम् में वास करने का प्रमाण भी प्रचार करें! यहां प्रश्न उठता है कि क्या कुम्भकोणमठ के आत्मबोधेन्द्र ने आनन्दगिरि शंकरविजय का परिष्कृत्य संस्करण देखा है या नहीं या उनके काल में आनन्दगिरि शंकरविजय का परिष्कृत्य संस्करण था या नहीं ? आनन्दगिरि शंकरविजय का 1881 कलकत्ता संस्करण के पश्चात ही आत्मबोधेन्द्र ने 'गुरमा' लिखी थी ? यह प्रश्न इसलिये उठता है कि आत्मबोधेन्द्र के उद्धृत पंक्तियां सब कलकत्ता संस्करण में पाये जाते हैं (1881ई०) और कुछ उद्धृत पंक्तियां परिष्कृत्य प्रति (1845 ई० एवं 1867 ई०) में बिलकुल पाये नहीं जाते। इस प्रकरण का भाग जो 'ननुब्राह्मणानां ब्रह्मचर्य्याद्याश्रम' से प्रारम्भ होता है और 'निरवद्यम्' तक समाप्त होता है, सो भाग दोनों प्रतियों में समान ही मिलते हैं। व्याघ्रपुर जो चिदम्बर के समीप कहा जाता है जहां व्याघ्रपाद जंगल में वास करते थे। यह कथा चिदम्बर क्षेत्र कथा से मिलती है। कोई भी प्रामाणिक पुस्तक श्री गोविन्दभगवत्पाद को चिदम्बर में होने का उल्लेख नहीं करता और यह कथा कल्पित एवं असत्य है। अनेक अन्दरबाह्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्री गोविन्दभगवत्पाद उत्तर भारत में थे न कि दक्षिण भारत में। परिष्कृत्य पुस्तक के तृतीय प्रकरण से सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल चिदम्बर ही है यद्यपि द्वितीय प्रकरण में चिदम्बर को बदल कर कालटी नाम मिला लिया गया है। कलकत्ता मूलप्रति एवं अन्य परिष्कृत्य प्रति के तृतीय प्रकरण में 'साक्षाच्चिदम्बरेश इव विराजमानः' का उल्लेख करता है। परिष्कृत्य प्रति तैय्यार करने वाले विद्वान द्वितीय प्रकरण के चिदम्बर पद को कालटी में बदल दिया पर तृतीय प्रकरण के 'चिदम्बरेश इव' को न बदले। इससे प्रतीत होता है कि दूसरे प्रकरण में विवरित जन्म कथा जो चिदम्बर का है उसी को तीसरे प्रकरण में सूचित करता है। साक्षात् चिदम्बरेश्वर पद आचार्य शङ्कर का विशेषन वाचक पद है। दूसरे प्रकरण में जो कथा चिदम्बरेश्वर के अनुग्रह से उत्पन्न हुआ शङ्कर का ही ('तदा प्रभृति सा नारी चिदम्बर महेश्वरम। तोषयमास पूजाभिर्ध्यानैरात्मगतैः सदा। ... ... चिदम्बरेश्वरं कृत्वा यजमानं द्विजोत्तमाः। तृतीयादिषु मासेषु चक्रुः कर्माणि वेदतः।') इस तीसरे प्रकरण में सूचित करता है ('साक्षात् चिदम्बरेश इव विराजमानः।')। अतः 1867 ई० परिष्कृत्य प्रति, 1881 ई० मूल प्रति एवं अन्य सब हस्तलिपि प्रतियां आचार्य शङ्कर का जन्मस्थल चिदम्बर का ही उल्लेख करता है पर रामतारकमठ परिष्कृत्य प्रति के दूसरे प्रकरण में कालटी का उल्लेख है और विद्वान ने भूलकर इस परिष्कृत्य पुस्तक के तीसरे प्रकरण के कुछ पदों को परिवर्तन नहीं किया। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि रामतारकमठ का परिष्कृत्य पुस्तक भी उसी कोटी की है जिसे विद्वानों ने अप्रमाण होने का अभिप्राय दिया है। रामतारकमठ की प्रति अर्वाचीन काल की परिष्कृत्य प्रति होने का सिद्ध होता है।

चतुर्थ प्रकरण में आचार्य शङ्कर के अन्य शिष्यों का नाम दिया गया है जिसमें से कुछ नाम विवादास्पद हैं और इनमें कुछ शिष्यों का काल आचार्य शङ्कर के काल का नहीं हैं। अन्य ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तक इन शिष्यों का नाम नहीं लेता। इस विषय पर अन्वेषण की आवश्यकता है। चतुर्थ प्रकरण के अन्त में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर अपने अनेक शिष्यों सहित चिदम्बर छोडकर मध्यार्जुन सीमा पहुंचे। द्वितीय व तृतीय प्रकरण के चिदम्बर कथा की पुष्टी चतुर्थ प्रकरण करती है यद्यपि परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय के दूसरे प्रकरण में इसे बदल दिया गया है पर तृतीय व चतुर्थ प्रकरणों का सब विषय जो मूल पुस्तक में पाया जाता है सो ही इस परिष्कृत्य प्रति में है। चतुर्थ प्रकरण में 'चिदम्बर-

स्थलात्' की पुष्टि में परिष्कृत्य आनन्दगिरि के तृतीय प्रकरण में श्रीगोविन्दभगवत्पाद को चिदम्बर स्थल में होने का कहा गया है। अर्थात् द्वितीय प्रकरण में कालटी जन्म स्थल, तृतीय में चिदम्बर आगमन, चिदम्बर में श्री गोविन्दभगवत्पाद से दर्शन तथा सन्यास दीक्षा और चतुर्थ में चिदम्बर स्थल छोड मध्यार्जुन गमन आदि के उल्लेख से इस परिष्कृत्य प्रति के द्वितीय प्रकरण का बदला हुआ विषय को पुनः तृतीय व चतुर्थ में मूल प्रति के समान परिष्कृत्य प्रति को भी बना दिया गया है।

चतुर्थ प्रकरण 'शैवमत निवर्हणम्' से चौवनवां प्रकरण 'व्यासदत्तायुः प्रपञ्चनाम' तक दोनों प्रतियां (मूल व परिष्कृत्य) एक ही समान हैं, केवल व्याकरण भेद, कुछ पदों का जोड निकाल या अदलबदल परिष्कृत्य प्रति में किया गया है। परिष्कृत्य प्रति भिन्न पुस्तक होने का जो प्रचार कुम्भकोण मठ वाले करते हैं (कामकोटि प्रदीपम) सो सब असत्य है। एक विषय पर ध्यान देने योग्य है कि कलकत्ता मूल पुस्तक के तिरुपनवां प्रकरण में 'यावदिच्छाब्दमुर्व्यां हि स्थित्वा पश्चाद्गमिष्यति' एवं 'करेणानीय गंगाम्बु जीवेत शरदां शतम्' का उल्लेख है। इस पर काशी में 1934/35 ई० में कतिपय विद्वानों ने आक्षेप उठाया और जब आचार्य शङ्कर का आयु का प्रश्न उठा तो कुम्भकोणमठाभिमानियों ने कहा कि 'शरद' शब्द का अर्थ 'माह' है अर्थात् आचार्य शङ्कर को श्री व्यास से आशीष केवल सौमाह—8 वर्ष 4 माह—दी गई थी और 'यावदिच्छाब्दमुर्व्यां' का अर्थ आठ वर्ष का ही है। इस कुतर्क की पुष्टी में रामतारकमठ परिष्कृत्य प्रति में मूल पुस्तक का 'यावदिच्छाब्दमुर्व्यां' की जगह 'यावदष्टाब्दमुर्व्यां' क्षिप्त कर प्रचार किया गया था। इस विषय पर आलोचना पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे| अब पाठकगण जान लें कि इष्टसिद्धि प्राप्त करने के लिये क्या नहीं किया जाता है|

(3) 'तस्मात् उदङ मार्गमवलम्ब्य अमर लिङ्गं केदार लिङ्ग दृष्ट्वा कुरुक्षेत्रमार्गात् बदरीनारायण दर्शनं कृत्वा ... ...'।

(3) तस्मादुदङ्मार्गमवलम्ब्य योगविद्या प्राप्त वियत्पथ संचारः कैलासमधिगम्य पार्वती समेतं परमेश्वरं प्रणम्य स्वात्मतयाऽनुसन्धान शीलस्य च परमगुरोरग्रतः परमेश्वरः पञ्चस्फटिक लिङ्गानी प्रकाशयामास। जगदनुग्रहाय अम्बिका स्तव सारेण सहतान्यादय पुनरवनीतलमासाद्य केदारक्षेत्रे एकं मुक्ति लिंगाख्यं तत्र प्रतिष्ठाप्य तत्क्षेत्र पूजकान् पूजार्थं नियोजयामास| ततः कुरुक्षेत्रमार्गाद्बदरी नारायण दर्शनं कृत्वा ... ...'। (नोट—1867 ई० संस्करण में कुछ पाठ भेद है)।

'स तु नारायणः स्फटिकादधः प्रदेशतः उष्ण तीर्थसरितं उत्पादयामास। सर्वे द्विजा स्नात्वा शङ्कराचार्यं तुष्टुवुः। तस्मात् द्वारिकादि दिव्यस्थल विलोकनाय प्रादक्षिण्यं अयोध्यां प्राप।'

'स तु नारायणः स्वपीठाधः प्रदेशात् उष्णजलसरितं उत्पादयामास। सर्वे स्नात्वा शङ्कराचार्यं तुष्टुवुः। तस्मात् द्वारकादि दिव्यस्थल विलोकिनवशात् प्रादक्षिण्येन (तारकमठ प्रति में 'नीलकण्ठक्षेत्रम्प्राप्य' यहां जोड लिया गया है|) नीलकण्ठेश्वरं नत्वा तत्र शिष्यैः पूज्यमानः परमगुरुः वरनामकं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य तत्रस्थान् पूजार्थं नियुज्य ततः क्रमात् अयोध्यां अवाप।'

परिष्कृत्य संस्करण के 55 वां प्रकरण में पांचलिङ्गों की कल्पित नवीन कथा लाकर और इसे प्रामाण्यता देने के हेतु से लिखा गया है। अन्य कोई ग्राह्य प्रमाण पुस्तक एवं सब अन्य शङ्करविजय इस कथा को नहीं सुनाते हैं। कुम्भकोणमठ के क्षिप्त शिवरहस्य श्लोक, एकाङ्गि स्वप्रचारित अग्राह्य मार्कन्डेय संहिता, परिष्कृत्य आधुनिक आनन्दगिरि विजय, में ही यह नवीन कल्पित कथा सुनाया जाता है। कुम्भकोणमठ का एक प्रधान प्रचार है कि आचार्य शङ्कर अपने शिष्य सुरेश्वराचार्य सहित सशरीर इस भूलोक को छोड कैलास पहुंचकर वहां महेश्वर की प्रार्थना कर (कुम्भकोणमठ का वेदान्तचूर्णिका) पांचलिङ्ग एवं सौन्दर्यलहरी के कुछ भाग परमेश्वर से प्राप्त कर पुनः इस मृत्युलोक सशरीर लौट आकर, प्राप्त पांच लिङ्गों में 'सर्वोच्च सर्वोत्तम' योग लिङ्ग को कांची में प्रतिष्ठा की थी। एक प्रचार पुस्तक में यह भी लिखा है कि आचार्य शङ्कर कैलास से 'शिवरहस्य' भी भूलोक ले आये। इस कथा की पुष्टी कुम्भकोणमठ द्वारा कल्पित एवं स्वरचित वेदान्तचूर्णिकास्तुति', 'शिवरहस्य' के एक क्षिप्त श्लोक, कुम्भकोणमठ से प्रचारित 'मार्कन्डेय संहिता' अन्यत्र जो, कहीं उपलब्ध नहीं होता सो करती है। चूंकि कोई शङ्करविजय इस कथा की पुष्टी नहीं करती इसीलिये प्रमाण तैय्यार करने की चेष्टा में इस शङ्करविजय में क्षिप्त किया गया है| 18 वीं शताब्दी का 'माणिक्यविजय' में दिये शिवरहस्य में कुम्भकोण मठ से प्रचारित व कहे जाने वाले श्लोक पाया नहीं जाता है। कुम्भकोणमठ की अनुमति से 1867 ई० प्रकाशित आनन्दगिरिशङ्करविजय पुस्तक में भी पांच लिङ्गों की कथा जोड ली गयी है| इसी प्रकार रामतारकमठ प्रति के 55, 63, 65 एवं 74 प्रकरणों में इन पांच लिङ्गों की कथा एवं उनके बटवारा विवरण जोड लिया गया है पर 17 वीं/18 वीं शताब्दी के आनन्दगिरि शङ्करविजय, प्रो. विल्सन से देखा 1828 ई० का आनन्दगिरि शङ्करविजय तथा कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० प्रतियों में इसका नामो निशान नहीं है। तिरुचिनापली, कांची, तिरुनेलवेली, शोलवन्दान, काशी, नवद्वीप, ढाका, आक्सफोर्ड आदि स्थलों में प्राप्त होने वाले हस्तलिपि आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी इस पांच लिङ्ग की कथा बिलकुल नहीं है। इसी 55 वां प्रकरण में नीलकण्ठ क्षेत्र में वर नामक लिङ्ग की प्रतिष्ठा उल्लेख है 'वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठाप्य' जो विषय मूल आनन्दगिरि मे नहीं है।

इस प्रकरण में श्री मण्डनमिश्र के निवासस्थल का लक्षण व चिन्ह बतलाये गये भाग में रामतारकमठ परिष्कृत्य प्रति में 12 श्लोक हैं जो मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में पाया जाता है पर इन श्लोकों का क्रम बदल दिया गया है और एक या दो श्लोक भी उडा दी गयी है| कुम्भकोण मठ के कृपा भाजन विद्वानों ने मासिक पत्र 'कामकोटी प्रदीपम' में माधवीय शङ्करविजय पर कीचड फेंका है ताकि पामरजन इस पुस्तक को अनादरणीय ठहरायें। इस कीचड में एक कारण भी दिया गया है कि माधवीय का वर्णन आचार्य शङ्कर किस रीति से या कैसे मण्डन मिश्र के घर के आङ्गन में पहुंते जब घर का मूल द्वार बन्द था, वह वर्णन अन्य प्रमाण पुस्तक नहीं करते| कुम्भकोण मठ के ये सब सर्वज्ञ विद्वान परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय (रामतारक मठ प्रति एवं मूल कलकत्ता प्रति) को देखा या अध्ययन किया न होगा। आनन्दगिरि ने भी कहा है कि आचार्य शङ्कर योगबल से आकाश मार्ग द्वारा मन्डन मिश्र घर के आङ्गन पहुंचे जब आप मन्डन के घर का मूल द्वार बन्द देखा था। इसी प्रकार माधवीय पर आक्षेप किया जाता है कि मण्डन मिश्र एवं आचार्य शङ्कर के बीच में वाद प्रारम्भ में जो वाद छिडता है उसका वर्णन अवांछनीय वचनो में किया गया है अतः यह माधवीय अनादरणीय है। यदि कुम्भकोण मठ के विद्वान आनन्दगिरि शङ्करविजय 56 प्रकरण में दिये हुए वर्णन को पढें तो मालूम होगा कि अवांछनीय वचन कहां है। कर्णश्रुत कथा जो परम्परा से आयी है उसी कथा को सबों ने अपने अपने रचित पुस्तकों में दी है। आचार्य शङ्कर के चरित्र में यद्यपि ऐसी कथा शोभता नहीं है तथापि परम्परा प्राप्त जनश्रुति कथा को सबों ने दी है चाहे वह कथा भला हो या बुरा हो। इसी तर्क से यह भी कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर का परकाय प्रवेश काल में कामशास्त्र सीखने की कथा भी शोभता नहीं है पर सब

दिग्विजयों में यह कथा कही गयी है। अपने से कहे प्रमाण पुस्तकों की त्रुटियों को छोड कर अन्य पुस्तकों पर कीचड फेंकना उचित व न्याय नहीं है। प्रकरण 56 से 61 तक दोनों प्रतियां एक ही समान हैं केवल कुछ श्लोक, पद व वाक्यों का अदलबदल और जोड निकाल परिष्कृत्य प्रति में किया गया है।

(4) 'ततः परं सरसवाणीं मन्त्र बद्धां कृत्वा गगनमार्गा देव शृङ्गपुरसमीपे तुङ्गभद्रातीरे चक्रंनिर्माय तदग्रे सरसवाणीं निधाय एवं आकल्पं स्थिराभव मदाश्रमे इति आज्ञाप्य निजमठं कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निज शिष्यं चकार'।

(4) 'ततः परं सरसवाणीं मन्त्र बद्धां कृत्वा गगनविद्यां पीठं निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निजशिष्येषु आचकार।' (1867 ई॰ मदरास परिष्कृत्य प्रति)

'ततः परं सरसवाणीं मन्त्र बद्धां कृत्वा गगन मार्गादेव शृंगगिरि समीपे तुङ्गभद्रा तीरे चक्रं निर्माय तदग्रे परदेवता सरसवाणीं निधाय एवमाकल्पं स्थिराभव मदाश्रये इत्याज्ञाप्य निजमठं कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा भारती सम्प्रदायं निजशिष्येष्वाचकार।' (रामतारक मठ प्रति)

कलकत्ता मूल संस्करण के 62 वां प्रकरण शृङ्गेरी का स्पष्ठ उल्लेख करता है कि आचार्य शङ्कर ने सरसवाणी को मन्त्र बद्ध कर शृङ्गेरी लाकर तुङ्गभद्रानदी तट पर स्थूलरूप श्रीचक्रराज का प्रतिष्ठाकर उसमें सरसवाणी को आकल्प अवस्थित होने की प्रार्थना कर, आचार्य शङ्कर ने अपने 'मदाश्रम' शृङ्गेरी में 'निजमठ' की स्थापना कर वहीं 'विद्यापीठ' का निर्माण कर 'भारती' संप्रदाय का 'निजशिष्यपरम्परा' शुरु की थी और यह विषय कुम्भकोण मठ के प्रचारों के विरोध होने से और ये सब पद—'मदाश्रमे,' 'निजमठ', 'निजशिष्यपरम्परा' आदि—अपने से कल्पित कांची मठ के लिये प्रयोग करने के लिये ताकि आप प्रमाण में इसे दिखा सकें, आपने अपने परिष्कृत्य संस्करण में मूल पुस्तक के विषय को पूरा उडा दिया है। पर एक मार्के की बात है कि रामतारकमठ के परिष्कृत्य प्रति में भी मूल पुस्तक की तरह दिया है जो विषय 1867 ई॰ मदरास पुस्तक से निकाल दिया गया है। रामतारकमठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय में 'मदाश्रमे' के जगह 'मदाश्रय' का पाठ भेद है। 1867 ई॰ मदरास मुद्रित पुस्तक एवं रामतारकमठ प्रति दोनां परिष्कृत्य प्रति होते हुए भी भिन्न पाठ देते हैं और इसी से कहा जा सकता है कि यह आनन्दगिरि शङ्करविजय बराबर परिवर्तित होते आया है।

परिष्कृत्य प्रति में 'गगनविद्यां पीठं निर्माणं कृत्वा' ऐसा जो उल्लेख है उस पद का क्या अर्थ है या तात्पर्य है? दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ की बढती प्रतिष्ठा को स्वयंभू मठ के कुम्भकोण मठाभिमानियों से सहा न गया और आप लोग शृङ्गेरी पर कीचड फेंकने की चेष्टा में यह सब कर्तूत करते हुए आ रहे हैं। आनन्दगिरि में शृङ्गेरी को 'मदाश्रम' 'निजमठ' 'निजशिष्य परम्परा' 'विद्यापीठ' 'व्याख्यानसिंहासन पीठ' आदि पद प्रयोग आपलोगों के लिये कुठार है। इसीलिये शृङ्गेरी पद को उडाने के हेतु से 'गगनविधापीठ' की नवीन कल्पना भी की हो! कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपका कांची मठ जगद्गुरु मठ है, आचार्य शङ्कर का स्व आश्रम व स्व मठ है, आपकी परम्परा ही आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है आदि सब निर्मूल हो जाता है यदि आनन्दगिरि की मूल प्रति में दिये विषय को मान लें, जहां शृङ्गेरी के लिये ये सब विशेष पद प्रयोग किये गये हैं। एक विषय ध्यान देने का है कि 1867 ई॰ परिष्कृत्य प्रति के 62 वां प्रकरण के दिये विषय में शृङ्गेरी का नाम भी नहीं है पर इसी 62 प्रकरण के अन्त में ऐसा उल्लेख है

'गुरोस्सरसवाण्याश्च श्रृङ्गगिरिनिवास स्थापनं नाम द्विषष्ठी प्रकरणं।' कलकत्ता एवं रामतारक मठ प्रतियों में 'श्रृङ्गगिरिस्थान-निवास' का उल्लेख प्रथम प्रकरण एवं प्रकरण के अन्त में है। इससे प्रतीत होता है कि श्रृंगेरी पद को जानबूझ कर ही उडा दिया गया है यद्यपि यह 62 वां प्रकरण आचार्य शङ्कर का श्रृङ्गगिरि निवास कथा का उल्लेख करता है। निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह 1867 ई० की प्रति परिष्कृत्य प्रति है जो कुम्भकोण मठ के अभिमानी विद्वानों से परिवर्तित हुई है। कृपया कुम्भकोण मठाभिमानि अपने प्रामाणिक आनन्दगिरि शङ्करविजय के इस श्लोक को ध्यान से पढें और अपने को सुधार लें—'यस्तद्वैतमतेस्थित्वा भारतीपीठ निन्दकः। सयाति नरकं घोरं यावदाभूत संप्लवं॥'

(5) 'तत्र परमगुरुः द्वादशाब्दं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैत विद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा तदनन्तरं कंचित् शिष्यं सुरेश्वराख्यं पीठाध्यक्षं कृत्वा स्वयं निश्चक्राम।'

(5) 'तत्रैव परमगुरुः द्वादशाब्दकालं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैतविद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा तदनन्तरं पद्मपादाख्यं कंचित् शिष्यं पीठाध्यक्षं कृत्वा भोगनामकं लिङ्गं एतस्मिन्पीठे निक्षिप्य स्वयं निश्चक्राम।' (1867 ई० मदरास प्रति)

'तत्रैव श्रीपरमगुरुः द्वादशाब्दकालं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैत विद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा तदनन्तरं पद्मपादाख्यं (कलिकातादि मुद्रित पुस्तकेषु सुरेश्वराख्यमित्येव पाठोदृश्यतेऽयमेव पाठः उचितः) कश्चिच्छिष्यम् पीठाध्यक्षं कृत्वा भोगनामकं लिङ्गं तस्मिन्पीठे निक्षिप्य स्वयं निश्चक्राम।' (रामतारकमठ प्रति)

आनन्दगिरि शंकरविजय के 63 वां प्रकरण में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर श्रृंगेरी में बारह वर्ष वास करते हुए ब्रह्मविद्या का उपदेश किया था। पश्चात् अपने शिष्य सुरेश्वराचार्य को मठाध्यक्ष बनाकर वहां से चलते भये। मूल ग्रंथ का यह कथा कुम्भकोणमठ प्रचार के विरुद्ध है। कुम्भकोणमठ का कथन है कि सुरेश्वराचार्य कांची में थे। इसीलिये शृङ्गेरी में अब पद्मपादाचार्य का नाम देकर एक परिष्कृत्य प्रति तैय्यार हुआ है। इस प्रचार के पूर्व कुम्भकोणमठ अपने प्रामाणिक पुस्तकों द्वारा प्रमाणाभास उदधरण कर प्रचार करते थे कि शृङ्गेरी में पृथ्वीधवाचार्य और विश्वरूपाचार्य थे और पश्चात् जब यह मालूम हुआ और अनुसन्धान करने वाले विद्वानों ने निसन्देह सिद्ध कर दिया कि विश्वरूपाचार्य ही सुरेश्वराचार्य थे, तब से पूर्व मे प्रचार किये प्रमाणों का प्रचार करना बन्द हुआ और अब यह नवीन कल्पित कथा प्रारम्भ हुई कि शृङ्गेरी में पद्मपादाचार्य थे। इस नवीन प्रचार की पुष्टी के लिये यह परिष्कृत्य संस्करण छपा। पंचलिङ्ग का कल्पित कथा प्रचारकर अब श्रृंगेरी में भोग लिङ्ग का उल्लेख करते हैं। आनन्दगिरि शङ्करविजय के दोनों संस्करण (मूल व परिष्कृत्य) स्वीकार करते हैं कि आचार्य शङ्कर श्रृंगेरी में बारह वर्ष वास किये। आपके 32 वर्ष आयु में 12 वर्ष श्रृंगेरी वास कहने मात्र से प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर को श्रृंगेरी कितना प्यारा था और ऐसे स्थल को आचार्य का 'मदाश्रमे', 'निजमठ' 'निजशिष्यपरम्परा' कहने से कोई आश्चर्य नहीं है।

एक मार्के की बात हैं कि रामतारक मठ की प्रति में ब्राकट में यों उल्लेख है—('कलिकातादि मुद्रित पुस्तकेषु सुरेश्वराख्यमित्येव पाठोदृश्यतेऽयमेव पाठः उचितः)' जिसे पाठकगण ध्यान से नोट करें। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि रामतारक मठ प्रति का लेखन काल शालीशक 1737 (1815 ई०) का है पर जो पुनः लेखन प्रति पन्डित

यमुना प्रसाद शुक्ल द्वारा 27—4—1961 को लिखकर समाप्त किया गया था और जो प्रति म. म. पं. अनन्तकृष्ण शास्त्री द्वारा प्राप्त हुआ था इस प्रति में शालीशक 1767 का उल्लेख है अर्थात् 1845 ई० का है। मैं ने 1936 ई० में जब इस रामतारक मठ की प्रति कि एक और नकल प्रति लिखा था इसमें भी स्पष्ट शालीशक 1767 (1845 ई०) का उल्लेख पाया तथा 63 प्रकरण में ब्राकट में कलकत्ता मुद्रित पुस्तक का उल्लेख था। कलकत्ता प्रति का मुद्रण काल 1881 ई० है। प्रश्न उठता है कि किसप्रकार 1815 ई० या 1845 ई० में या इसके पूर्व काल की प्रति में जो रामतारक मठ की प्रति कहा जाता है, 1881 ई० की प्रति का निर्देश किया जा सकता है? अर्थात् रामतारक मठ की प्रति 1881 ई० के पश्चात् का ही लिखा परिष्कृत्य प्रति है। सम्भवतः अब इसे भी निकालकर एक नयी प्रति तैय्यार कर अति प्राचीनता व प्रामाणिकता का लेबल चिपका कर रामतारकमठ में रख भी सकते हैं चूंकि ये सब प्रतियां परिवर्तन शील थे और अब भी हैं। कुम्भकोण मठ यह भी प्रचार कर सकते हैं कि आधुनिक काल में पं. यमुना प्रसाद शुक्ल ने जो व्यक्ति इस पुस्तक का नकल किया था आपने इसे लिख दिया हो। पर जब मैं ने 1936 में नकल किया था तब भी यह नोट ब्राकट में पाया। अतः यह निसन्देह कहा जा सकता है कि रामतारकमठ की प्रति 1881 ई० के पश्चात् का ही परिष्कृत्य प्रति लिखा हुआ है और न कि 1815 ई० या 1845 ई० जो कुम्भकोण मठ का प्रचार है।

इस 63 वां प्रकरण में यह भी उल्लेख है—'तत्रकिल भगवान्महादेवः स्वकीय पृथिवी मूर्त्याविर्भूत लिंग रूपेण किल एकाम्बरेश इति प्रसिद्ध्यावर्तते तस्मिन्स्थले मासमात्रं स्थित्वा शम्भु प्रतिष्ठा पूर्वकं शिवकांचीति पट्टनं निर्माय, तत्राक ब्रह्मकृत यज्ञ कुंडाविर्भूत विष्णुं वरदराज नामानं समाश्रित्य तत्र विष्णु कांचीति प्रसिद्ध पट्टणं निर्माय तत्सेवार्थं ब्राह्मणादीननेक सेवक भक्त जनान्सम्पाद्य तानपि शुद्धाद्वैत वृत्तिन एव सर्वजनान्कृत्वा सर्ववेदान्त तात्पर्य्यैक निष्ठः परमगुरुः सुखमास'। माधवीय के टीकाकार ने 15 सर्ग के पांचवें श्लोक जो मूल श्लोक कांची का वृतान्त देता है उसकी टीका में यही लिखा है जो विषय ऊपर दी गई है। यही वृतान्त मूल आनन्दगिरि शंकरविजय एवं 1881 प्रति में भी पाया जाता है| आचार्य शंकर कांची में एक माह वास कर शिवकांची व विष्णुकांची नगरों का निर्माण कर तथा ताम्रपर्णीतीर से आये हुए विद्वानों से विवाद किया था। इस प्राचीन शङ्करविजय कथा से सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। इस कमी की पूर्ति के लिये कुम्भकोणमठ वालों ने परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय में अपनी कल्पित कथा जोड ली है–यथा–64 प्रकरण में परमेश्वरी कामाक्षी की बिम्ब प्रतिष्ठा, 65 प्रकरण में श्रीचक्र निर्माण व निजावासयोग्य मठ स्थापना व सुरेश्वराचार्य को योगनामक लिङ्ग देकर मठाधीष बनाना, 66 प्रकरण में मोक्षमार्ग का प्रकाशन एवं 67 प्रकरण में निजशिष्यपरम्परा कांची मठ में प्रारम्भ करना, आदि। मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में या 1881 ई० के प्रति में उपर्युक्त कुम्भकोणमठ का प्रचार का नामो निशान नहीं है। मूल व परिष्कृत्य प्रतियों का 64 प्रकरण दोनों समान हैं।

रामतारकमठ प्रति के 64 प्रकरण में कांची में 'कामाक्षी बिम्ब प्रतिष्ठा' का उल्लेख है पर यह विषय कलकत्ता प्रति में नहीं है। कलकत्ता प्रति यों उल्लेख करता है 'तस्याः परमेश्वर्याः बिम्ब प्रतिष्ठां अष्टधा कारयामीति विद्याकामाक्षी प्रतिष्ठां आचकार।' रामतारक मठ प्रति में भी 'अष्टधा' पद है पर 'विद्याकामाक्षी' की जगह केवल 'श्री कामाक्षी' का उल्लेख है। इससे यही अर्थ प्रतीत होता है कि आचार्य शंकर ने देवी की शक्ति को आठ मूर्तियों में विभाजित की थी। अन्य सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रंथों से यही सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची कामाक्षी मन्दिर में श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा या जीर्णोद्धार की थी और न आपने कामाक्षीमूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। आनन्दगिरि शङ्करविजय भी आगे के प्रकरणों में श्रीचक्र प्रतिष्ठा की पुष्टी करती है न कि कामाक्षी बिम्ब प्रतिष्ठा।

(6) 'तस्मात् सर्वेषां मोक्षफलप्राप्तये दर्शनादेव श्री चक्रं भगवद्भिः आचार्यैः निर्मितम्। इति आनन्दगिरि कृतौ श्री चक्र निर्माणं नाम पञ्चषष्ठि प्रकरणम्।'

(6) 'अतः सर्वेषां मोक्षफलप्राप्तये दर्शनादेव श्री चक्रं प्रभवतीति भगवद्भिराचार्यैः तत्रनिर्मितं। तस्मान्मुक्ति कांक्षिभिः सर्वैः श्रीचक्र पूजा कर्तव्येति निश्चित्य तत्रैव निजावास योग्यं मठपतिं (मठमपि–पाठान्तर) परिकल्प्य तत्र निजसिद्धान्तमद्वैतं प्रकाशयितुमन्तेवासिनं सुरेश्वरमाहूय योगनामकं लिङ्गं पूजयेति तस्मैदत्त्वा त्वमत्र कामकोटि-पीठमधिवसेत्यवस्थाप्य शिष्यजनैः परिपूज्यमानः श्री परम-गुरुः सुखमास। इति आनन्दगिरि कृतौ श्री चक्रनिर्माण-योगलिङ्गस्थापनं नाम पञ्चषष्टिप्रकरणम्।'
(1867 ई० मदरास प्रति एवं रामतारक मठ प्रति)

उपर्युक्त उदाहरणों से पाठकगण जान गये होंगे कि शृङ्गेरी को 'निजमठ', 'मदाश्रमे,' 'निजशिष्य परम्परां,' 'विद्यापीठ निर्माणं,' 'सुरेश्वराख्यं पीठाध्यक्षं कृत्वा,' आदि आनन्दगिरि मूल में कहा गया है और ये सब वर्णन कुम्भकोण मठ के लिये कुठार है। इन विषयों को कुम्भकोण मठ के परिष्कृत्य प्रति से उडा देने का तात्पर्य यह था कि उन पदों को कांची के लिये उपयोग किया जाय क्यों कि प्राचीन व बृहच्छंकरविजय (डिण्डिम से निर्देषित) एवं आनन्दगिरि शङ्करविजय मूल पुस्तक कांची के बारे में केवल पट्टनों का निर्माण, श्री चक्र प्रतिष्ठा, एक माह आचार्य शङ्कर का वास, का ही उल्लेख करता है न कि कांची में आम्नाय मठ स्थापना। इस कमी की पूर्ति यहां परिष्कृत्य संस्करण के 65 वां प्रकरण में की गयी है। आनन्दगिरि शङ्करविजय 65 प्रकरण के प्रारम्भ में 'श्री चक्र निर्माणं' का ही केवल उल्लेख है पर प्रकरण के अन्त में 'श्री चक्रप्रतिष्ठा योगलिङ्ग स्थापनं ... ...' का उल्लेख है। इसी से स्पष्ठ मालूम होता है कि कांची में मठ निर्माण एवं योग लिङ्ग प्रतिष्ठा विवरण सब अर्वाचीन काल में इस पुस्तक में जोड लिये गये हैं नहीं तो प्रकरण के प्रारम्भ में ही इसका उल्लेख होता। कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक पुस्तकों में कहा है कि सुरेश्वर परमहंस सन्यासी न थे और योगलिङ्ग पूजार्ह न थे पर अब यह परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय कहता है कि सुरेश्वर को योगलिङ्ग पूजा के लिये दिया गया और आपको मठाधीप भी बनाया गया। इन भिन्न कथनों में कौन सा सत्य है? इन दोनों कथनों के आधार पुस्तकों को प्रामाण्य होने का शपथ भी करते हैं। समयानुसार भिन्न कथायें कहकर पामरों को भ्रम में डालकर इष्ट सिद्धि प्राप्त करना इन धर्मरक्षकों को भाता नही है। म. म. पं. को. वे. पन्तुलु 1876 ई० में लिखते हैं कि आप स्वयं दो प्रतियां आनन्दगिरि शङ्करविजय का तिरुचिनापल्लि व कांची से प्राप्त किये थे और परिष्कृत्य भाग जो 1867 ई० में दी गई थी सो सब इन प्रतियों में नहीं पाये। आपसे रचित पुस्तक 'शांकरमठ तत्त्वप्रकाशिका' देखने योग्य है। मूल व परिष्कृत्य संस्करण के 66 वां प्रकरण समान ही हैं।

(7) 'निजशिष्यपरम्परां आकल्पं शृङ्गगिरि स्थानस्थां कृत्वा संकलशिष्येभ्यो मोक्षमार्गोपदेशं कृत्वा ... ...।'

(7) 'निजशिष्यपरम्परां आकल्पं काञ्चीपीठादि तत्परस्थायिनीं कृत्वा तन्मुखादेव सकल शिष्येभ्यो मोक्षमार्गोपदेशं कृत्वा ... ...।' (1867 ई० मदरास प्रति)

'निजशिष्य परम्परामाकल्पं काञ्चीपीठादि तत्तत्पट्टण स्थायिनीं कृत्वा तन्मूलादेव सकल शिष्येभ्यो मोक्षमार्गोपदेशं च कल्पयित्वा'' (रामतारकमठ प्रति)

आनन्दगिरि मूल के अनुसार शृङ्गेरी जो आचार्य का स्व आश्रम, निजमठ, विद्यापीठ है और जहां 'भारतीसंप्रदायंनिज-शिष्यंचकार' का भी उल्लेख है इसी की पुष्टी 67 प्रकरण में की गयी है। अब उसे कुम्भकोणमठ अपने परिष्कृत्य प्रति में निकाल कर शृङ्गेरी के बदले कांची जोड लिया है। पाठकगण रामतारकमठ की प्रति में भिन्न पाठ पायेंगे। मूल व परिष्कृत्य प्रतियों के प्रकरण 68 से 72 प्रकरण तक सब मिलते जुलते हैं पर रामतारकमठ के 73 प्रकरण में दिये गुरुस्तोत्र में कुछ अदलबदल पाते हैं।

(8) 'ततः परं सर्वज्ञः सकलगुरुः आचार्यः स्वशिष्यान् परमतकालानलादीन् यतीन् तदन्यांश्च तत्र तत्र विषयेषु प्रेषयित्वा स्वयं स्वेच्छया स्वलोकं गन्तुमिच्छुः काञ्चीनगरे ...।'

(8) 'ततः परं सकललोकगुरुः आचार्यः स्वशिष्यान् परमतकालानलादि यतीन् तदन्यांश्च तत्र तत्र विषयेषु प्रेषयित्वा तदनन्तरं समीपस्थं इन्द्रसंप्रदायानुवर्तिनं सुरेश्वराचार्यं आहूय भो शिष्य इदं मोक्षलिङ्गं चिदम्बर स्थले प्रेषय इति उक्त्वा स्वयं स्वलोकंगन्तुमिच्छुः काञ्चीनगरे ... ...।' (1867 ई० मदरास प्रति व रामतारकमठ प्रति)।

'ततः परं सर्वं लोकगुरुराचार्यः स्वशिष्यान् परमतकालानलादि यतीन्। तदन्यांश्च तत्र तत्र च विषयेषु प्रेषयित्वा तदनन्तरं समीपस्थं सरस्वति संप्रदाय-वर्तिनं सुरेश्वरमाहूय भो शिष्य स्वलोकं गन्तुमिच्छतीत्युक्त्वा काञ्ची नगरे ...।' (कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तक 1915 ई० एवं 1931 ई० से उद्धृत)

इस 74 प्रकरण के परिष्कृत्य संस्करण में दो पाठ भेद मिलते हैं। एक पाठ 'इन्द्रसंप्रदायानुवर्तिनं' एवं दूसरा पाठ 'सरस्वती संप्रदायानुवर्तिनं' है। इसके पूर्व पाठकगण पढ गये होंगे कि मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में 'भारती संप्रदायं निज शिष्येषु' का पाठ था। इन तीन योगपट्टों में— भारती, सरस्वती व इन्द्र—कौन सा यथार्थ है? सरस्वती व भारती जो यतिधर्मशास्त्र में उल्लेखित दसनामी में अन्तर्गत है सो आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नायानुसार दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ को ही लागू होता है। सम्भवतः कुम्भकोण मठ अब 'इन्द्र या इन्द्रसरस्वती' का उपयोग करते हैं ताकि शास्त्रविज्ञ आपसे प्रश्न न पूछें। परिष्कृत्य पुस्तक में 'इन्द्रसंप्रदायानुवर्तिनं' का ही उल्लेख है न कि 'इन्द्रसरस्वती' तथापि मैं ने 'इन्द्रसरस्वती' ली है चूंकि यतिधर्मशास्त्र ग्रन्थों में अलग 'इन्द्र' संप्रदाय का उल्लेख नही है और न इन्द्र प्रत्येक अलग योगपट्ट नाम का ही उल्लेख है। अभिमान से अर्वाचीन काल में परिकल्पित इन्द्र वा आनन्द दोनो 'सरस्वती' के भेद हैं। आचार्य शङ्कर के काल में शुद्ध 'सरस्वती' योगपट्ट ही था। इस योगपट्ट का विवरण पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तक जो 1915 ई० एवं 1931 ई० में प्रकाशित हुए हैं (श्री वेंकटेशम पन्तुलु द्वारा रचित), इसमें 'इदं मोक्षलिङ्गं चिदम्बरस्थले प्रेषय' का उल्लेख नहीं है। पुस्तक रचयिता ने कुम्भकोण मठ से प्राप्त पुस्तकों के आधार पर ही आनन्दगिरि से उदधरण किया है। इससे तो प्रतीत होता है कि कुम्भकोणमठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तक में भी यह पंक्ति नहीं है। समय समय पर भिन्न पाठों का प्रचार क्यों किया जाता है?

1881 ई० मूलप्रति आनन्दगिरि शङ्करविजय के 74 प्रकरण के अन्त में जो विषय उल्लेख है सो परिष्कृत्य रामतारकमठ प्रति में पाया नहीं जाता। यहां आचार्य शङ्कर के तनुत्याग पश्चात् उनके भौतिक शरीर को भूमी में गाड कर तथा उस स्थल में एक समाधि का निर्माण किये जाने का विवरण सब दिया गया है। आगम शास्त्रानुसार एवं वैदिक आचार अनुसार देवदेवी पीठ समीप भौतिक शरीर को जमीन में गाड कर वहां समाधि निर्माण करना निषेध है। समाधि मन्दिर के बाहर हो सकता है पर मन्दिर में होना असम्भव है। आनन्दगिरि शङ्करविजय में कहा है—'तत्रत्या ब्राह्मणाः सर्वे शिष्याः प्रशिष्याश्च उपनिषद् गीता ब्रह्म सूत्राणि सम्यक पठन्तः अत्यन्त शुचिस्थले गर्त्तं कृत्वा तत्र गन्धाक्षत बिल्वपत्र तुलसी प्रसूनादिभीः सम्पूज्य तच्छरीरं समाधिं चक्रुः। तत प्रत्यहं क्षीर तर्पण क्षीरान्न निवेदनादिभिः सर्वोपचारैर्विधिवदभ्यर्च्य ततो महापूजादिने बहुयतीनां ब्रह्म विदां ब्राह्मणानां कर्म्मज्ञान निष्ठानां उत्तमानाञ्च श्रीमदद्वैतविद्या प्रकाशक श्री मत्परमहंस परिव्राजक श्री मच्छंकरगुरुस्वामिनमुद्दिश्य परब्रह्मणोधिया स्वाद्वन्नमूलशाकसूप भक्ष्य घृतदध्यादि समस्त व्यञ्जन युक्त मन्नं वस्त्राभरणैः शाकमीश्वर पूजामेवञ्चक्रुः। पूजां सर्वत्रैवं चक्रुः।' इसी के आधार पर कुम्भकोण-मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य की समाधि कांची कामाक्षी मन्दिर के भीतर आङ्गण में है। कलकत्ता मुद्रित आनन्दगिरि शङ्कर विजय में 'काञ्चीनगरे मुक्तिस्थले' का ही उल्लेख है। यहां आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल मठ में या देवी मन्दिर सन्निधि या कामाक्षी मन्दिर सन्निधि जो कुम्भकोणमठ का प्रचार है उसकी पुष्टी आनन्दगिरि में पाया नहीं जाता है। तथापि कुम्भकोणमठ का प्रचार है 'श्री काञ्च्यामेव श्री कामाक्षीदेवी मन्दिर सविधे तेषां तनुत्याग आसीत्। अद्याऽपि तेषां तत्र समाधिस्थानमस्ति'। इस कथन की पुष्टी न केवल कोई ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तक करते हैं पर यह आगमशास्त्र विरुद्ध है और ऐसा कहना उस महान् के प्रति अपचार करना होगा।

आनन्दगिरि शङ्करविजय के 74 प्रकरण में जहां आचार्य शङ्कर का निर्याण वर्णित है वहां परिष्कृत्य प्रति में 'पूर्णमखण्डाकारमानन्दं प्राप्य' है पर मूल पुस्तक में 'पूर्णमखण्ड मण्डलाकारमानन्दमीश्वर सन्निधौ प्राप्य' का उल्लेख है। क्या कारण है कि 'ईश्वर सन्निधौ' को परिष्कृत्य प्रति में निकाल दिया गया है? सम्भवतः पाठकगण यह न सोचें कि आचार्य शङ्कर को सामीप्य मुक्ति ही मिली थी जैसा कि मूल आनन्दगिरि में पाते हैं, इसलिये कुम्भकोणमठ ने इस पद को उडा दिया है। पर आनन्दगिरि शङ्करविजय में स्पष्ठ उल्लेख है 'स्वलोकं गन्तुमिच्छुः' जो परिष्कृत्य प्रतियों में भी पाये जाते हैं, इसमे भी सामीप्य मुक्ति की ही पुष्टी होती है। अतः यह सम्भव है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि आचार्य शंकर 'देवीसन्निधौ' प्राप्त किये वह प्रचार 'ईश्वर सन्निधौ' के विरुद्ध होने के कारण इस 'ईश्वर सन्निधौ' पद को आपने परिष्कृत्य प्रति से उडा दिया गया हो। यहां 'ईश्वर सन्निधौ' पद कैलास के ईश्वर का ही संकेत करता है न कि कांची के ईश्वर का।

उपर्युक्त दिये गये उदाहरणों द्वारा पाठकगण जान गये होंगे कि इस परिष्कृत्य आनन्दगिरि द्वारा कुम्भकोणमठ किस प्रकार पांचलिङ्ग लाने की कल्पित कथा व उसके बटवारे का विवरण, सुरेश्वर को शृङ्गेरि से कांची में बैठाने का कथा, आचार्य शङ्कर का शृङ्गेरि जो आपके लिये 'मदाश्रमे', 'निजमठ', 'विद्यापीठ', 'निजशिष्य परम्परा' स्थान था उसे उडाकर कांची में जोडने की कथा, आदि, अपने कल्पित प्रचारों की पुष्टि के लिये किया गया है। पाठकजन जानलें कि कांची में मठ स्थापना का मिथ्या प्रचार सब कुम्भकोण मठ के स्वकल्पित एकङ्गि पुस्तकों एवं परिष्कृत्य प्रतियों द्वारा ही की जाती है। इसीलिये डा० बर्नल लिखते हैं कि आनन्दगिरि शंकरविजय (परिष्कृत्य संस्करण) अर्वाचीन काल का रचित पुस्तक है एवं कारोमन्डल सीमा के कुछ उपशाखा मठ जो अपने प्रधान के शृङ्गेरि मठ जहां आचार्य शंकर के साक्षत् अविच्छिन्न परम्परा के आचार्य चले आ रहे हैं, उनसे अपनी सम्बन्ध तोड

की है, उनके इच्छा पूर्ति के लिये लिखी हुई पुस्तक है। ऑक्सफोर्ड का आनन्दगिरि शंकरविजय, 17 वीं/18 वीं शताब्दी पुस्तक, कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० का प्रति, प्रो० विल्सन द्वारा 1828 ई० में टीका टिप्पणी की हुई प्रति, कुम्भकोणमठ की हस्तलिपि प्रति जो 1846 ई० के पूर्व का पुनः लेखन बतलाया जाता है, मदरास मुद्रित 1867 ई० प्रति, रामतारकमठ की प्रति 1815 ई० या 1845 ई०, म. म. पं. को. वे. पन्तुलु से संग्रहित 1876 ई० के पूर्व प्रतियां, काशी में स्वर्गीय डा० भगवानदास के निज पुस्तकालय का आनन्दगिरि शङ्करविजय, स्वर्गीय जयपुर कृष्ण शास्त्री के निज पुस्तकालय की अपूर्ण प्रति, एवं अन्यत्र उपलब्ध प्रतियों को मिलाने पर स्पष्ट मालूम हुआ कि इन सब प्रतियों का मूल एक ही आनन्दगिरि शङ्करविजय है और इन सबों में वर्णित जीवन चरित्र विषय एक ही है यद्यपि कुछ भेद परिष्कृत्य संस्करणों में पाते हैं। यदि एक प्रति इसमें अप्रमाण ठहराया जाय तो सब प्रतियां भी अप्रमाण हैं।

कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र 'आचार्य विजय' से उद्धृत करते हैं—'तृतीय वर्षे चौळकर्म पञ्चमे मौञ्जीबन्धं विध्युक्तितः चक्रुः विप्राग्र्याः।' और यह विषय अब उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय में है। आनन्दगिरि को आचार्य विजय भी कहा जाता है। आत्मबोधेन्द्र से जहां जहां आचार्य विजय का नाम लिया गया है और आपसे ये सब उद्धृत पङ्क्तियां आनन्दगिरि शङ्करविजय में प्राप्त होते हैं। आनन्दगिरि शङ्करविजय का नवीन परिष्कृत्य प्रति जो कुम्भकोण मठ प्रचार कर रहे हैं इस परिष्कृत्य प्रति में आत्मबोधेन्द्र से उद्धृत कुछ पंक्तियां नहीं मिलते हैं। ये सब पंक्तियां आत्मबोधेन्द्र ने प्रमाण रूप स्वीकार कर 'सुषमा' में उद्धृत किया है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मबोधेन्द्र के पास कलकत्ता मुद्रित प्रति ही था न कि कुम्भकोण मठ से अब कहे जाने वाले परिष्कृत्य प्रति। कुम्भकोण मठ का परिष्कृत्य प्रति नवीन और अर्वाचीन काल का है। श्री आत्मबोधेन्द्र ने 'आचार्यविजय' अर्थात् आनन्दगिरि शङ्करविजय के दिये हुए कुछ विषयों को कहीं कहीं स्वीकार भी नहीं किया है उदाहरणार्थ आत्मबोध कहते हैं कि शिवगुरु का देहान्त शङ्कर के उपनयन पश्चात् ही हुआ था पर आचार्य विजय (आ. श. वि.) आचार्य शङ्कर के पिता का देहान्त उपनयन पूर्व ही कहता है। अब कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि सारे आचार्य चरित्र विवरण ग्रन्थों का मूल आनन्दगिरि शङ्कर विजय है तो ऐसे मूल पुस्तक की अवहेलना किस प्रकार आत्मबोधेन्द्र कर सकते हैं? यह कहे जाने वाले मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय सम्भवतः कुम्भकोण मठ में तैय्यार की जा रही हो और इस नवीन पुस्तक की रचना काल में इन विषयों के पूर्ण चर्चा व विमर्श व आन्वेषण से लाभ उठाकर उस नवीन प्रति की पूर्ति करने में सुगम ही होगा। अतः इस विषय की चर्चा आगे काल के लिये छोड दिया जा रहा है।

आनन्दगिरि के बारे में कुम्भकोण मठ का और एक भ्रामक प्रचार ध्यान देने लायक है। कहेजानेवाले 'बृहच्छंकरविजय' से कुछ श्लोक कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में पाया जाता है और आपका प्रचार है कि बृहच्छंकरविजय आनन्दगिरि कृत है। पर जो सब श्लोक उद्धृत किये गये हैं वे सब आनन्दगिरि में उपलब्ध नहीं हैं यद्यपि कुछ श्लोक व पङ्क्तियां इन दोनों पुस्तकों में समान रूप से पायी जाती है। कुम्भकोण मठ की कुछ प्रचार पुस्तकों में इस कहे जानेवाले बृहच्छंकरविजय को आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री चित्सुखाचार्य कृत भी कहते हैं। भिन्न स्थलों में भिन्न रचयिताओं का नाम लेकर व पुस्तक के भिन्न नाम लेकर प्रचार करने से अनभिज्ञ वर्ग के बीच सुगमता से अविरोध प्रचार सकते हैं। पश्चिमाम्नाय श्री द्वारकाधीश श्री चित्सुखाचार्य कृत बृहच्छङ्करविजय का संपूर्ण पुस्तक अभी उपलब्ध नहीं है। इन सब उद्धृत श्लोकों व पंक्तियों का प्रामाणिकता किस प्रकार माना जाय?

कुम्भकोण मठ की स्वरचित पुस्तक 'पुण्यश्लोकमंजरी' में 38 वां मठाधीष धीरशंकर का जन्म स्थल चिदम्बर, गोलक जन्म, विश्वजित विशिष्ठा पितामाता का नाम, दिग्विजयादि यात्रा तथा चरित्र धटनायें सब श्री मदाद्य शङ्कराचार्य के समान वर्णित है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने पांच बार इस भूलोक में अवतार लिया था, प्रथम अवतार 509 क्रिस्तपूर्व एवं अन्तिम पांचवां अवतार 788 ई० का था। कहेजाने वाले कुम्भकोण मठ का 38 वां मठाधीश ने सर्वज्ञपीठारोहण कश्मीर में की थी एवं निर्याण स्थल बदरी सीमा का उल्लेख है। यह कथा आनन्दगिरि से मिलता जुलता है, केवल निर्याण स्थल का भेद है। अतएव कुम्भकोण मठ आनन्दगिरि शङ्करविजय को अप्रमाणिक ठहराना नहीं चाहते चूंके आपके कल्पित आचार्य वंशावली सूची के 38 वां मठाधीष का चरित्र प्रमाण लोप हो जायेगा। इसीलिये कुम्भकोण मठ काशी के कुछ विद्वानों से व्यवस्था ली थी कि यह आनन्दगिरि शङ्करविजय प्रामाणिक पुस्तक है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह पुस्तक आपके 38 वां मठाधीष का चरित्र वर्णन है। इन सब प्रलापों पर आलोचना आगे के अध्याय में पायेंगे।

प्रो. माक्समुलर, प्रो० विलसन, टील, प्रो० तेलङ्ग, डा० बर्नल, प्रो० भन्डारकर, पं एन्. भाष्याचार्य, म. म. को. वें. पन्तुलु, श्री पाठक, काशी के विद्वानों व परिव्राजकों से दी हुई व्यवस्था (1935 ई०), आदि अनेक अनुसन्धान करने वाले विद्वानों ने इस आनन्दगिरि शङ्करविजय को अप्रमाणिक ठहराया है। कहीं भी आप लोगों ने आनन्दगिरि का दो भिन्न प्रतियां प्राप्त होने का या देखने का उल्लेख किया नहीं है। आनन्दगिरि शङ्करविजय की एक ही मूल प्रति है और अन्य सब इसके परिष्कृत्य संस्करण हैं।

कुम्भकोण मठ के प्रचारकों द्वारा काशी में प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु पूजा कल्प' पुस्तक में एक जगह आनन्दगिरि शङ्करविजय के '130 प्रकरण' से कुछ पंक्तियां प्रकाशित की थी ताकि पामरजन जानलें कि काशी रामतारक मठ की आनन्दगिरि शङ्करविजय एक बृहत् पुस्तक है और यह अब उपलब्ध होने वाले आनन्दगिरि शङ्करविजय से भिन्न है। रामतारक मठ के पुस्तक में 74 प्रकरण ही पाया गया। उत्तर भारत में 1950 ई० में प्रकाशित एक पुस्तक में भी इसीका उद्धरण कर 130 प्रकरण कहा गया है। असत्य प्रचार जो 1935 ई० में की गयी थी वही अब अन्यत्र भी प्रचार होने लगा और अनभिज्ञ पामरजन ऐसे भ्रामक प्रचारों के जाल में फंसते हैं और कुम्भकोण मठ की इष्ट सिद्धि भी पूर्ति होती है। 1935 ई० में पत्र व्यवहार कर पूछने पर इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में '130 प्रकरण' के बदले '74 प्रकरण' मुद्रित पाया। कुम्भकोण मठ की प्रचार पुस्तकें सब बडे परिवर्तनशील हैं और जब तक इनके भ्रामक प्रचारो की पोल खोल कर यथार्थ मूल का प्रकाशन न किया जाय तब तक आप अपने कल्पित भ्रामक प्रचारों में आरुढ रहते हैं और पामरजन सत्य को जान नहीं पाते।

वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष ने अपने भाषण में कहा कि आनन्दगिरि का मूल शिवरहस्य है। पर शिवरहस्य में शंकर का जन्म स्थल चिदम्बर, पितामाता का नाम विश्वजित विशिष्ठा, शंकर का जन्म गोलक, आयू 'शरदांशतं', आचार्य ने वृद्ध ब्राह्मणरूप में आये श्री व्यास को निकाल बाहर फेंकने कि आज्ञा एवं वृद्ध ब्रह्मण के गालों में चपत मारना, कांची में सर्वज्ञपीठारोहण एवं मठनिर्माण, आचार्य शंकर का सशरीर कैलास गमन एवं पांचलिङ्गो को वहां से प्राप्त कर पुनः भूलोक लौटना, श्री शंकर द्वारा अन्य मतों (द्वैत, विशिष्ठाद्वैत) का प्रचार कराना एवं इन्द्र, वरुण, यम, चन्द्र मतों का खन्डन करना, तथा आचार्य का कांची में निर्याण होना आदि विषयों का उल्लेख नहीं है पर आनन्दगिरि शंकरविजय में हैं। आनन्दगिरि का मूल शिवरहस्य कहना भूल है। कुम्भकोणमठाधीष ने वक्तव्य में कहा था कि शिवरहस्य एक द्वैत ग्रंथ है और आनन्दगिरि शंकरविजय भी द्वैती से रचित कहा जाता है, इसलिये द्वैत सिद्धान्तों

की पुष्टी के लिये आनन्दगिरि का मूल शिवरहस्य हो सकता है। जो आनन्दगिरि शङ्करविजय को अग्राह्य अप्रमाणिक ठहराया गया है उसे कुम्भकोण मठ की प्रचार पुस्तकों में प्रमाण माना गया है। एक प्रचार पुस्तक में लिखा है—'This conclusion is supported by the statement of Anandagiri (or Totaka). the direct disciple of Sri Sankaracharya, that Sri Sankara left his gross body and took the subtle form at Conjeevaram. He further says that Sankaracharya brought Sphatika Linga from Kailasa ... ...' अब पाठकगण जान लें कि आनन्दगिरि के नाम द्वारा कितना नाटक रचा जा रहा है। उपर्युक्त कथन जो है कि आचार्य शङ्कर के साक्षात शिष्य आनन्दगिरि ही इस शङ्करविजय के रचयिता हैं सो कथन मिथ्या है। और एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीश के अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है, उस पुस्तक में लिखा है—'Anandagiri's Sankaravijaya is equally valueless and obviously a forgery.' एक तरफ प्रामाणिक होने का प्रचार करते हैं और दूसरे तरफ अग्राह्य व अप्रमाणिक होने की घोषणा करते हैं और इन भिन्न कथनों में कौन वास्तविक अभिप्राय है सो जानना कठिन हो जाता है। स्वघोषित इसी अप्रमाणिक व अग्राह्य आनन्दगिरि शङ्करविजय पर इतना प्रचार भी हो रहा है। श्री के. टि. तेलङ्ग, आनन्दगिरि शङ्कर विजय पर पूर्ण अध्ययन और आन्वेषण कर, अपनी आलोचना दी है और इस लेख में आप स्पष्ठ कहते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में पट्नों व मन्दिरों का निर्माण कराकर, श्री चक्र की पुनः प्रतिष्ठा कर एवं वैदिक पूजा के लिये वहां वहां ब्राह्मणों को नियुक्त कर पश्चात् कांची से निकल पडे। आप कहीं यह नहीं कहते कि आचार्य ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी—'... ... he went to Kanchi where he erected a temple and established the system of the adoration of Devi.'

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आनन्दगिरि शङ्करविजय एवं प्राचीन विजय अनुसार माधवीय शङ्करविजय लिखा गया है और यदि माधवीय शङ्करविजय कांची में मठ का उल्लेख न करता हो तो यह कहा नहीं जा सकता है कि कांची में मठ स्थापना नही हुई है क्यों कि आनन्दगिरि शङ्करविजय कांची में मठ स्थापना का उल्लेख करती है और इस विषय को माधवीय ने न लिया हो। कुम्भकोण मठ आगे कहते हैं कि आनन्दगिरि से रचित प्राचीन ग्रन्थ है और इसी पुस्तक से विषय लेना उचित व न्याय है जो विषय माधवीय ने नही कहा है। पाठकगण कृपया उपर्युक्त सब विषयों को पुनः पढें और स्पष्ट मालूम हो जायगा कि आनन्दगिरि शङ्करविजय कहां तक प्रामाण्य कोटी में गिना जा सकता है। प्रश्न है कि कौन पुस्तक प्राचीन व ग्राह्य है? आनन्दगिरि या आनन्दज्ञान या अनन्तानन्दगिरि का कहेजानेवाले प्राचीन बृहच्छङ्करविजय (माधवीय टीकाकार के अनुसार) अथवा मुद्रित व अमुद्रित अनन्तानन्दगिरि या आनन्दगिरि का शङ्करविजय या आचार्य विजय? प्रथम उक्त पुस्तक कहीं भी उपलब्ध नहीं है और इस पुस्तक को अभी तक किसी ने देखा नही है। यदि माधवीय टीकाकार के काल में (1799 ई० एवं 1824/25 ई०) यह पुस्तक होने का अनुमान भी करें चूंकि टीकाकारों से निर्देषित है, आश्चर्य है कि वह अब उपलब्ध नही है! मेरे पूज्यपिता पं. ज. ग. वि. शर्मा ने करीब 10 वर्ष इस पुस्तक के खोज में लगे थे और अनेकानेक पत्र व्यवहार से प्रतीत होता है कि किसी ने यह पुस्तक अभी तक देखा नहीं है। कहेजानेवाले 137 वर्ष पूर्व उपलब्ध (?) पुस्तक अब लोप हो जाने की विषय अविश्वसनीय है चूंकि करीब 125 वर्ष से अनेक अनुसन्धान करनेवाले विद्वान आचार्य चरित्र विषय सामग्री के खोज में प्रयत्न करते हुए आ रहे हैं। बृहच्छङ्करविजय चित्सुखाचार्य कृत भी कहा जाता है और यह पुस्तक भी संपूर्ण प्राप्त नहीं होता। सुना जाता है कि इस बृहच्छङ्करविजय का एक भाग कहीं कहीं मिलता है। पर इसके रचयिता का निर्धारन निश्चित रूप से नहीं हुआ है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि चित्सुखाचार्य आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य थे, पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ वंशावली से

प्रतीत होता है कि श्री चित्सुखाचार्य प्रशिष्य वर्ग के थे, बारहवीं शताब्दी के भारी वेदान्ताचार्य श्री चित्सुखाचार्य (श्री ज्ञानोत्तम के शिष्य) थे, न मालूम इनमें से किसी ने पुस्तक रचा था या अन्य ही कोई व्यक्ति से रचा गया था। ये सब पुस्तकें केवल अनुमान द्वारा कर्णश्रुत है और अदृष्टम् कोटि की पुस्तक हैं। मार्के की बात है कि यद्यपि यह पुस्तक उपलब्ध नहीं होता तथापि माधवीय टीकाकार ने, चाहे जिस ग्रन्थ से अपनी टीका में अनेक श्लोक व पंक्तियां, उदधृत की है, इस उदधरण भाग में भी कांची के वर्णन करते समय कहीं यह कहा नहीं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी। स्वरचित आत्मश्लाघार्थ एकङ्गि कुछ श्लोकों को प्रकाश कर प्राचीन अनुपलब्ध अनजान पुस्तकों का नाम लेकर प्रचार करने मात्र से प्रामाणिक बन नही जाता। अन्य ग्राह्य प्रामाणिक ग्रन्थ भी इन उद्धरणों की पुष्टी करना आवश्यक है चूंकि मूल पुस्तक अनुपलब्ध है। द्वितीय उक्त पुस्तक आनन्दगिरि शङ्करविजय उपलब्ध है और पाठकगण इसके परिष्कृत्य प्रति का विवरण पूर्व ही पढ चुके होंगे। यह श्रेष्ठों से अप्रमाणिक ठहराया गया है। मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में कांची में मठ स्थापना का विषय दिया नहीं है।

दूसरा प्रश्न उठता है कि किस आनन्दगिरि ने इस पुस्तक की रचना की है? आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री तोटकाचार्य या प्रशिष्य किसी से भी लिखा हुआ पुस्तक नहीं है और कुछ विद्वानों का जो अनुमान है आचार्य के शिष्य से लिखा हुआ अन्य कोई पुस्तक होगा सो भी उपलब्ध नहीं है। अभी तक जितने सामग्री आन्वेषण करने पर मिले हैं उसके आधार पर निसन्देह कह सकते हैं कि आचार्य शङ्कर के शिष्य या प्रशिष्य ने शङ्करविजय ग्रंथ लिखा ही नहीं है। एक आनन्दगिरि बारहवीं शताब्दी के थे और आप द्वैती थे। कहा जाता है कि आपने एक शङ्करविजय द्वेष से निन्दनीय पुस्तक लिखी थी। शांकरभाष्य टीकाकार आनन्दगिरि (आपका नाम आनन्दज्ञान भी है) ने भी शङ्करविजय की रचना की नहीं है। जो पुस्तक (मुद्रित व अमुद्रित तथा परिष्कृत्य) अब उपलब्ध हैं वह किसी अन्य आनन्दगिरी द्वारा चौदहवीं शताब्दी पश्चात् ही लिखा होगा चूंकि इस आनन्दगिरी में कुछ उद्धरण हैं जो जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रृङ्गेरी मठाधीष श्री भारती कृष्ण तीर्थ एवं श्रृङ्गेरी मठाधीश श्री विद्यारण्य रचित ग्रंथो में पाये जाते हैं। एक मार्के की बात है कि कलकत्ता मुद्रित पुस्तक 1881 ई० एवं इससे भी पूर्व काल का हस्तलिपि प्रतियों में माधवीय शङ्करविजय के कुछ श्लोक उद्धृत हैं (माधवीय सर्ग 8 श्लोक 20 व 21)। अतः आनन्दगिरि शङ्करविजय चौदहवीं शताब्दी के बाद ही की लिखी हुई पुस्तक है।

माधवीय मूल में कहीं भी मठ स्थापना का विवरण स्पष्ठ कहा नहीं गया है, केवल संकेतित है। श्रृङ्गेरी का प्रस्ताव करते समय यद्यपि मूल श्लोक में मठ निर्माण करने का कोई विवरण नहीं दिया है तथापि डिण्डिम टीकाकार अपनी टीका में लिखते हैं 'अत्र प्राञ्चः। मठं कृत्वा तत्र विद्यापीठं निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निजशिष्यंचकार। यस्त्वद्वैतमतेस्थित्वा भारतीपीठ निन्दकः। सयाति घोरं यावदाभूत संप्लवम्। कंचिच्छिष्यं सुरेश्वराख्यं पीठाध्यक्षमकरोदिति।' टीकाकार ने इस प्रकार उस मूल श्लोक के टीका में प्राचीनशंकरविजय (अनुमान किया जाता है) से उद्धृत कर बतलाया है कि श्रृङ्गेरी में मठ निर्माण,विद्यापीठ निर्माण, भारती संप्रदाय प्रवर्तक, सुरेश्वराचार्य को मठाध्यक्ष नियोजन करना, आदि। इसी प्रकार अब उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय में (मुद्रित व अमुद्रित) भी कहा है। पर कुम्भकोण मठ द्वारा परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय में इन विषयों को निकाल दिया गया है। डिण्डिम टीकाकार का उद्धृत श्लोक सब कलकत्ता मुद्रित 1881ई० का आनन्दगिरि शङ्करविजय के 62 एवं 63 वें प्रकरण में अक्षरस पाये जाते हैं। इसी प्रकार रामतारक मठ के आनन्दगिरि शङ्करविजय प्रति के 62 एवं 63 वें प्रकरण में भी ये ही उद्धरित श्लोक पाये जाते हैं पर यहां सुरेश्वराचार्य के बदले

श्री पद्मपादाचार्य का उल्लेख है और भोग लिङ्ग को भी जोड लिया गया है। डिण्डिम टीका का लेखन काल 1799 ई० का है और 1835 ई० में इसी टीका का पुनः नकल की गयी प्रति से 1863/64 ई० में प्रथम बार यह मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्कर विजय के श्लोक ही को डिण्डिम टीकाकार ने लिया है।

माधवीय 16 सर्ग 93 श्लोक मूल की टीका में टीकाकार लिखते हैं 'इत्येवमतितुष्टो मुनिः श्री शङ्करः सर्वज्ञपीठमध्युष्य तदुपरि स्थित्वा तदपि निजमतस्य गुरुतायैं श्रैष्ठ्याय न पुनर्मानहेतोरथानन्तरं कतिचन सुरेश्वरादीञ्शिष्यान् ऋष्यश्रृङ्गाश्रमादौ विनिवेश्याथ स मुनिर्बदरीं बदरिकाश्रमं कैश्चित्स्वशिष्यैः सहितः सन्प्राप।' टीकाकार प्राचीन शङ्करविजय अनुसार एक कण्ठ से सुरेश्वराचार्य को श्रृङ्गेरी में मठाधिपति होने का एवं भारती संप्रदाय होने का निश्चित होता है। यहां यह भी संकेतित है कि आचार्य अपने इहलीला सब समाप्त कर कुछ शिष्यों सहित अन्त में बदरीकाश्रम पहूंचे। इसी सीमा से आप अपनी अवतार के उद्देश्य को पूर्ण होते देखकर आप निजधाम पहुंचे। कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि सुरेश्वराचार्य कांची मठ में थे और आप 'इन्द्र सम्प्रदाय' के थे एवं आचार्य का निर्याण स्थल कांची था सो सब कल्पित मिथ्या ठहरता है। आधुनिक उपलब्ध अप्रमानिक आनन्दगिरि शङ्करविजय भी टीकाकार के उद्धरणों का समर्थन करता है पर परिष्कृत्य प्रति से ये सब उडा दिया गया है। यतिधर्म शास्त्र में स्पष्ठ उल्लेख है कि अर्वाचीन काल में 'स्वशीलाचारमज्ञाभिमानेन जाता संप्रदायाः आनन्द इन्द्र सरस्वती चेति' अर्थात् नवीन कल्पित इन्द्रसरस्वती पद कैसे सुरेश्वर को लागू हो सकता है जब आप भारती संप्रदाय के थे। इसी प्रकार आचार्य शङ्कर द्वारा कांची में कृत कार्यों का भी विवरण डिण्डिम टीका में प्राचीन शङ्करविजयसे उदधरण किया गया है और कहीं टीकाकार ने या उद्धरित श्लोकों व पंक्तियों में कांची में मठ की स्थापना होना नहीं कहा है। अब उपलब्ध आनन्दगिरि शङ्करविजय भी यह नहीं कहता कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की थी। आनन्दगिरि शङ्करविजय के 65 प्रकरण में उल्लेख है कि जो मुक्ति चाहते हैं वे श्री चक्र की पूजा करें क्यों कि श्री चक्र के दर्शन मात्र से मोक्ष फल प्राप्त होता है। इसके बाद श्री चक्र प्रतिष्ठा वर्णन है। 64/65 प्रकरण में कामाक्षी का भी वर्णन है। परिष्कृत्य प्रति में मठस्थापना का विषय जोड लिया गया है। इन उक्त विषयों को लेकर पामरलोगों के मन में मठ विषय का भ्रम पैदा कराना तो कुम्भकोण मठ की कल्पित रचना है।

माधवीय टीकाकार डिण्डिम ने प्राचीन शङ्करविजय एवं अनेक अन्य ग्रन्थों के आधार पर उद्धृत श्लोकों द्वारा मालूम होता है कि आचार्य शङ्कर एक माह कांची में वास किये थे—'तास्मिन्कांचीनगरे मासमात्रं स्थित्वा'। पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने तीन बार भारत भ्रमण कर पश्चात् बहुकाल कांची मठ में अधिष्ठित थे। आनन्दगिरि शङ्करविजय 63 प्रकरण में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर 12 वर्ष श्रृङ्गेरीमें अधिष्ठित होकर ब्रह्मविद्या का प्रचार किया था। कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र भी 'सुप्रभा' में यही कथा सुनाते हैं। इसी आनन्दगिरि शङ्करविजय के 63 प्रकरण में कांचीवास माह काल का ही बतलाया है। चिद्विलास के अनुसार आचार्य शङ्कर 14 वर्ष श्रृंङ्गेरी में अधिष्ठित थे। आचार्य शङ्कर 8 वर्ष तक कालटी जन्मस्थल में वास करके पश्चात् सन्यास ग्रहण किया। कालटी छोड देश संचार करते हुए नर्मदा नदी से होते हुए काशी व बदरी सीमा पर्य्यटन कर अपने 16 वें वर्ष में श्री काशी में भाष्यों की रचना कार्य समाप्त किया। इसके पश्चात् प्रयाग आदि स्थलों से होते हुए माहिष्मती पहुंच यहां श्री मण्डन विश्वरूप मिश्र से वाद विवाद कर अपने शिष्यों सुरेश्वराचार्य आदियों के साथ श्रृंगेरी आश्रम पहुंच कर और यहां विद्यापीठ की प्रतिष्ठा कर

12 वर्ष वास किये। आपकी आयु 32 वर्ष की थी। शृंगेरी से आप विजय यात्रा में चल पडे और आप अपने दिग्विजय यात्रा में रामेश्वर से उत्तरी भारत पहुंचकर, पूर्व के पूरी जगन्नाथ से पश्चिम के द्वारका एवं उत्तरपूर्व कामरूप से उत्तर पश्चिम काश्मीर सीमाओं में भ्रमण करते हुए, अन्त में केदार-बदरी सीमा पहुंच कर अपने 32 वें वर्ष में इसी सीमा से निजधाम पहुंचे। उपर्युक्त विवरण का आक्षेप कोई नहीं कर सकता है चूंकि ग्राह्य अग्राह्य प्रमाण पुस्तकों से ये सब लिये गये हैं। इस विवरण से स्पष्ट मालूम होता है कि कांची में आचार्य शङ्कर का वासकाल उतना ही था जितना कि आपने अन्य तीर्थ क्षेत्रों में वास किया था। पाठकगण स्वयं जान जांय कि आचार्य शंकर किस प्रकार तीन बार भारत भ्रमण कर सकते हैं जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है, जब आपकी आयु केवल 32 वर्ष का था और जब आप भारत भ्रमण करने चले तो आपकी आयु 29 वर्ष की थी ?

आनन्दगिरि शंकरविजय के 54 वां प्रकरण में (परिष्कृत्य आ. श. वि. में 53 वां प्रकरण के अन्त में) उल्लेख है कि श्रीव्यास ने आचार्य शंकर को 'जीवेत् शरदां शतम्' का आशीष दिया था। अन्य सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रथों में कहा गया है कि श्रीव्यास द्वारा 16 वर्ष की पुनः आयु प्राप्त हुई थी जब कि आचार्य का आयु 16 वर्ष का था ताकि आप भाष्य रचना समाप्त करने के पश्चात् आप अपने अवतार का उद्देश्य कार्य को सम्पूर्ण करें। जब इस विषय का विवाद काशी में उठा था तो कुम्भकोण मठ प्रचारकों ने एवं कृपा भाजन विद्वानों ने अपने दिये हुए व्यवस्था में व्याख्या की कि 'शरद' शब्द का अर्थ 'माह' है। अर्थात् व्यास ने शंकर को 100 माह (शरदांशतं) अर्थात् 8 वर्ष 4 माह की आशीश दी थी। इतना ही नहीं, आ. श. वि. के 53 वां प्रकरण के पद 'यावदिच्छाब्दमुर्व्यांहिस्थित्वा' को बदल कर 'यावद्घाब्दमुर्व्यांहिस्थित्वा' प्रचार भी करने लगे। आचार्य शंकर की आयु 16 वर्ष की थी जब श्री व्यास ने आशीर्वाद दिया था। कुम्भकोणमठ की व्याख्या से प्रतीत होता है कि आचार्य की आयु 24 वर्ष 4 माह का था। शिवरहस्य, माधवीय, चिद्विलास, सदानन्द आदि अनेक प्रामाणिक ग्रंथों से सिद्ध होता है कि आचार्य की आयु 32 वर्ष की ही थी। शरद शब्द का अर्थ माह मान भी लें तो चार माह का काल अधिक होता है। कुम्भकोण मठ कथनानुसार ब्रह्माने भी अलग 8 वर्ष आयु दी थी और इन दोनों आशीषों से आचार्य की आयु 32 वर्ष 4 माह का था। शिवरहस्य का 'द्वात्रिंशतपरमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस' कथन के विरुद्ध भी होता है। इससे शरद शब्द का अर्थ माह ठीक नहीं जमता है। श्री व्यास की आशीष से आचार्य की आयु 24 वर्ष 4 माह का होता है और जब इस पर आक्षेप कर कहा गया था कि आचार्य की आयु 32 की थी तो कुम्भकोण मठवालों ने कहा कि ब्रह्मा ने भी अलग आचार्य को 8 वर्ष की आशीष दी थी और इसलिये आचार्य की आयु 32 वर्ष का था। ऐसे समाधान से आनन्दगिरि शंकर विजय के कथन की पुष्टि करना चाहते थे पर उसी आ. श. वि. में स्पष्ठ उल्लेख है कि श्री व्यास ने श्री ब्रह्मा के वर को ही स्वयं आशीष दी थी अर्थात् ब्रह्मा का आशीर्वाद व्यास के मुख से ही दिया गया था। आनन्दगिरि शंकरविजय यह नहीं कहता कि व्यास ने स्वतंत्र 8 वर्ष का आयू आचार्य को दी थी क्यों कि यह स्वतन्त्रता ब्रह्मा को ही है। अतएव कुम्भकोण मठ का कथन कि ब्रह्मा का आशीष अलग था (श्री व्यास से दिये हुए आशीष के अतिरिक्त) सो भी आनन्दगिरि शंकरविजय अनुसार भूल है।

कुम्भकोणमठ के कृपाभाजन पन्डितों का कथन है कि मीमांसा शास्त्र के विश्वसृजामयनं के भाग में 'शरद' शब्द का रूपलक्षण रीति से माह का अर्थ प्रयोग किया है और वही रीति से श्री व्यास के दिये आशीष 'शरदां शतं' के शरद शब्द का अर्थ मास होगा, न कि वर्ष। इस कर्मकान्ड के जगह जहां 1000 वर्ष का यागादि का विधान दिया है वहां टीकाकारों ने शरद शब्द का अर्थ माह का किया है चूंकि 1000 वर्ष मनुष्य कोटि

द्वारा यज्ञ करना असम्भव है। इसी प्रकार कर्मकान्ड ग्रंथों में अन्य जगहों में भी 'शरद' का प्रयोग किया गया है। टीकाकारों ने कहीं कहीं 'शरद' पद का अर्थ देते कहा है कि 'दिन' का भी ध्योत करता है। 'शतंजीव शरदो वर्धमान शतमानम्भवति शतायुः वै पुरुषः' इस श्रुति के अनुसार पुरुष का परिमित काल 100 वर्ष मात्र ही मालूम होता है। ऐसे स्थिति में विश्वसृजामय यागादि में जो 1000 वर्ष का उल्लेख है वहां 'शरद' शब्द को टीकाकारों ने 'मांह' काल लेने को कहा है न कि सर्वत्र यही अर्थ होने को कहा है। मध्यान्ह के गायत्री उपस्थान में सूर्यदेवता की प्रार्थना करते हुए उस मंत्र को हर एक ब्राह्मण कहता है 'जीवेम शरदः शतं'। यदि कुम्भकोणमठ का दिया हुआ अर्थ 'शरद' को माह मान लें तो नित्य प्रार्थना आयुदेवता से 8 वर्ष का ही होता है। यह तो अश्लील हो जाता है। आशीर्वाद देते समय 'शरद' का अर्थ माह में नहीं लिया जाता है। जब आचार्य की आयु 32 थी और यह विषय सब प्रामाणिक ग्रंथों द्वारा पुष्टि होती है तो कैसे श्री व्यास ने 'शरदां शतं' यानी 100 वर्ष का आशीष दी थी? क्या अष्टादश पुराणकर्ता श्री व्यास नहीं जानते थे कि आचार्य शंकर की आयु अल्प ही था और 32 वर्ष की ही थी?

कुम्भकोणमठ का यह भी प्रचार है कि आचार्य शंकर स्वइच्छा वाले व स्वतंत्र पुरुष थे। पर इतिहास पुराणों में सब अवतार पुरुषों को परतन्त्र होने की कथा ही सुनाते हैं। राम, कृष्ण आदि ईश्वर अवतार पुरुष होते हुए भी परतन्त्र ही थे। भागवत में अनेक कथा दिये गये हैं जो इसकी पुष्टि करती है। आचार्य शंकर ईश्वरांश होते हुए भी आप इह लोक में मनुष्य कोटी में एक थे। आप भी यहां परतंत्र थे। जब आपकी आयु 32 वर्ष की ही थी तो इसी से सिद्ध होता है कि आप परतंत्र पुरुष ही थे। पूछे प्रश्नों का कुतर्क वाद से उत्तर देना इन पन्डितों को शोभता नहीं है। असत्य विषय को कोई भी रङ्गरूप दिया जाय जिसे पामरजन चाहे सत्य मान लें पर विज्ञों को अग्राह्य है।

आनन्दगिरि शंकरविजय में यह भी कहा है कि ब्रह्माने आचार्य शंकर को आशीष दी थी कि आचार्य शंकर अपने इच्छानुसार और कुछ वर्ष वास कर सकते हैं अर्थात् आचार्य शंकर अपने इच्छानुसार जितना वर्ष वास करना चाहें उतना वर्ष इस 'भू' में वास कर सकते हैं। श्री व्यास ने इसी आशीष को ही अपने मुख से आशीष दी थी क्यों कि आपने ब्रह्मा के वर को ही आचार्य शंकर को दी थी। 'शरदांशतं' का अर्थ सौह माह किया जाय जैसाकि कुम्भकोणमठ का कथन है तो यहां ब्रह्मा द्वारा दिये हुए आशीष का विरोध होता है। इसलिये शरद शब्द का अर्थ वर्ष ही है न कि माह। कुछ विद्वान 'शत' शब्द का अर्थ 'अनेक' कहते हैं और 'शरद' का अर्थ 'वर्ष' बतलाते हैं। पर यह भी भूल है चूंकि आचार्य की आयु 32 ही निर्धारन हो चुका था न कि अनेक वर्ष। कुछ पन्डित कहते हैं कि आनन्दगिरि का यह पद 'यावदिच्छाब्दमुर्व्यां' जो ब्रह्मा की आशीष थी उसका पाठ भेद 'यावदष्टाब्दमुर्व्यां' है और यह 8 वर्ष का ही बोध करता है। यदि इसे मान लें तो 'शरदांशतं' अर्थात् 8 वर्ष 4 माह कहना भूल होगा क्यों कि यहां अब्दाष्टक का निर्धारन हो चुका है। व्याकरण रीति से 'अष्टाब्द' कहना ठीक नहीं है पर 'अब्दाष्टकं' ही सही शब्द है। 'तुष्यतु दुर्जन' न्याय से मान भी लें कि शरद का अर्थ मास है तब भी यह निराधार विषय विरोध ही होगा क्यों कि शिवरहस्य के अनुसार ईश्वर का वाक्य है कि 'तुम्हारी आयु 32 ही है' (द्वात्रिंशत्परमायुस्ते)।

शब्द व वाक्य का अर्थ साधारण तौर से जो सब को जानकारी है और जो अर्थ ग्रंथों में निर्धारित हैं उनके आधार पर अर्थ करना उचित और शास्त्रीय है। समीप सर्वजानकारी अर्थ को छोडकर, विषय का असम्बन्ध

अर्थों का शरण लेकर, दूर के अर्थ को अनुमान से एवं तर्क के आधार पर व्याख्या करना और इष्ठसिद्धि प्राप्त करना, न केवल अनुचित है पर पन्डितों को शोभता नहीं है। इसी प्रकार श्रुति स्मृति के वाक्यों को भी जिस प्रकार चाहें वैसा अर्थ कर अपना स्वार्थ प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे काले कर्तूतों से मालूम होता है कि आप के सब प्रचार भ्रमात्मक एवं मिथ्या हैं।

उपलब्ध सब आनन्दगिरि शंकरविजय प्रतियों में-मुद्रित कलकत्ता 1881 ई०, मदरास 1867 ई० परिष्कृत्य संस्करण एवं अमुद्रित 17/18 वीं शताब्दी का आक्सफोर्ड प्रति, तिरुचिनापल्ली, कांची, तिरुनेलवेली, काशी आदि स्थलों में प्राप्त होने वाले प्रतियां एवं नवद्वीप के श्री गोस्वामी जयनारायण तर्कपञ्चानन द्वारा संग्रहित (उत्तर व दक्षिण भारत) अनेक प्रतियां—श्री शंकर का जन्म स्थल चिदम्बर क्षेत्र एवं मातापिता का नाम विशिष्ठा विश्वजित दिया हुआ है। पर कुम्भकोण मठ से अर्वाचीन् काल में प्रकाशित परिष्कृत्य आनन्दगिरि शंकरविजय प्रति एवं काशी में 1935 ई० में अचानक 'अविष्कार' किया हुआ रामतारक मठ की परिकृष्य्य प्रति में चिदम्बर को बदल कर कालटी का उल्लेख कर कुछ नये स्वरचित श्लोक जोड दिये गये हैं और इसी प्रकार मातापिता का नाम भी आर्याम्बा सती शिवगुरु के नाम से बदल दिया गया है। इन परिवर्तनों से अपने इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये व अपने भ्रामक प्रचारों की प्रामाण्यता दिखाने के लिये कहीं कहीं कुछ पद, वाक्य व श्लोकों का जोड निकाल, अदल बदल के अलावा बाकी सब विषय अक्षरसः अन्य उपलब्ध (मुद्रित व अमुद्रित) प्रतियों से मिलता जुलता है जिसका विवरण पाठकगण पूर्व ही पढ चुके होंगे। कुम्भकोण मठ के कुछ प्रचारक व कृपा भाजन विद्वानों ने अपने दिये हुए व्यवस्था में कहते हैं कि आनन्दगिरि शंकरविजय का चिदम्बर स्थल और विशिष्ठा विश्वजित (माता पिता) नाम उल्लेख करना ठीक और उचित ही है क्यों कि कालटी का नामान्तर चिदम्बर है और विशिष्ठा विश्वजित का नामान्तर आर्याम्बा शिवगुरु है— 'चिदम्बर पदमपि कालटी नामान्तरम्, विश्वजित्पदं शिवगुरु नामान्तरम्, विशिष्ठा पदं च सतीनामान्तरं इति कथं न तर्किंतु ... ...'। इस कुतर्क से प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ वाले यद्यपि अपने परिष्कृत्य शंकरविजय में कालटी का उल्लेख किये हैं तथापि वे यह मानने तैय्यार हैं कि अन्य अप्रमाणिक अग्राह्य पुस्तकों का चिदम्बर स्थल उल्लेख भी ठीक है। इस विषय का प्रचार कुम्भकोण मठ ने आन्ध्र देश में भी किया था। इस कुतर्क का समर्थन रामायण के शुनःशेपोपाख्यान के दिये हुए अम्बरीष राजा का दृष्टान्त दिखाते हैं। रामायण के 62 वां सर्ग 27 श्लोक की व्याख्या में श्री नागोजीभट्ट लिखते हैं कि ऋग्वेद ऐतरेयब्राह्मण ('हरिश्चन्द्रोः वैधसः ऐक्ष्वाकोराजाः') द्वारा मालूम होता है कि रामायण के शुनःशपोपाख्यान के 'अम्बरीश राजा ऋग्वेद ब्राह्मण में कहे हरिश्चन्द्र राजा सदृश चरित्र था' और ऐसा कहने से ही यह अम्बरीश को ही श्रुति उक्त नाम हरिश्चन्द्र का ही ज्ञात कराता है, इसलिये अम्बरीश हरिश्चन्द्र का नामान्तर है। 'हरिश्चन्द्रराजसदृशचरित्र' मात्र कहने से अम्बरीश व हरिश्चन्द्र एक ही व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है। ये दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। व्यवहार में (वृत्या) हरिश्चन्द्र पद अम्बरीश का बोध कर सकता है लेकिन वह भी गौण रीति से ही कहा जा सकता है जैसे 'सिंहो देवदत्तः' कहने से ज्ञात होता है कि सिंह का धैर्य्य, वीर्य, तेजस, क्रोध, क्रूर आदि गुणों का ही बोध कराता है न कि देवदत्त को सिंह कह सकते हैं। वेद में 'यजमानः प्रस्तरः' 'आदित्यो यूपः' आदि में भी गुण लक्षण को ही लेकर सामान्यता का अर्थ करना उचित होगा। 'अग्निर्माणकः' का भी अर्थ गुणों को ही बोध करता है। न्याय रीति से कहना उचित है कि हरिश्चन्द्र के गुण लक्षण की तुलना अम्बरीश में है न कि हरिश्चन्द्र ही अम्बरीश हैं। यदि कुम्भकोण मठ के तर्क को मान लें तो गौणरीति होने का संदर्भ ही नहीं रह जाता और गौणार्थ यहां मुख्यार्थ हो जायेगा। कुम्भकोण मठ के न्याय से तो घट भी पट कहा जा सकता है। हरिश्चन्द्र सदृश सब गुणों को लेकर पृथक व्यक्ति पुनः उसी हरिश्चन्द्र की सृष्टी करना भी

लोकशास्त्र विरुद्ध है। इसलिये 'अम्बरीश पद हरिश्चन्द्र को ही बोध करता है' ऐसा कुम्भकोण मठ का प्रचार करना मूर्खता है। हरिश्चन्द्र पद हरिश्चन्द्र सदृश अम्बरीश को ही बोध करता है और यहां गौणरीति से प्रयोग करना चाहिये। पर ऐसे व्याख्या में भी आपत्ति है। यहां एव विषय ध्यान में रखने का है कि पुराणोक्त हरिश्चन्द्र कथा एवं ऐतरेय ब्राह्मण में उक्त हरिश्चन्द्र कथा दोनों भिन्न वर्णित हैं।

त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र के बहुकाल पूर्व उनके वंश में जन्म लिये मान्धाता का पुत्र अम्बरीश थे और हरिश्चन्द्र को अम्बरीश का नामान्तर कहना ठीक जमता नहीं है क्यों कि हरिश्चन्द्र उस समय जन्म भी नहीं लिये थे। वर्तमान व्यक्ति की तुलना पूर्वज व्यक्ति के साथ किया जाता है पर यहां वैसी तुलना भी जमती नहीं है क्यों कि अम्बरीश के बाद ही हरिश्चन्द्र पैदा हुए। आनेवाले सन्तान का (उस समय जो जन्म न लिये) समानता व तुलना व नामान्तर इसके वंश के पूर्वजों के साथ किस प्रकार किया जा सकता है? यह कहना ठीक नहीं है कि हरिश्चन्द्र (जो आनेवाले सन्तान) सदृश अम्बरीश (जो बहुकाल पूर्व आपके पूर्वज) थे। ऋग्वेद में अन्य एक जगह उल्लेख है 'हरिश्चन्द्र मरुद्गणः'। यह जानना चाहते हैं कि कुम्भकोण मठ या आपके कृपा भाजन विद्वान अब इस हरिश्चन्द्र पद का क्या अर्थ करते हैं? ऋग्वेद ब्राह्मण पदों का श्रौतार्थ त्याग करके अम्बरीश विषय में अश्रौतार्थ परिकल्पना करके प्रचार करना लक्षण प्रमाण के विरुद्ध है। अतएव आनन्दगिरि के कहे चिदम्बर क्षेत्र का नामान्तर किस प्रकार कालटी कहा जा सकता है? चोळ मन्डल का चिदम्बर से दूर दक्षिण स्थित अन्य एक सीमा चेर सीमा में कालटी है। ये दोनों शिवक्षेत्र हैं पर इस लक्षण से क्या हम चिदम्बर को कालटी का नामान्तर कह सकते हैं? हिमाचल सीमा में अलकनन्दा तीर पर उत्तर काशी व गुप्त काशी हैं, वरुणा—असी मध्य गंगा तट पर भू कैलास काशी है और दक्षिण में तेङ्काशी (दक्षिन काशी) है, जो सब शिवक्षेत्र हैं। इन सबों का नाम काशी होने से एवं शिवक्षेत्र होने से क्या उत्तर काशी, गुप्तकाशी, काशी, तेङ्काशी, सब नामान्तर हैं? क्या ये सब क्षेत्र एक ही क्षेत्र को ध्योत करती है?

'अलकेवपुरी यत्र कालटी विश्रुतं श्रुता' (चिद्विलास), 'कालट्य-भिख्यो ऽस्ति महान्मनोज्ञः' (माधवीय), 'केरले शशलग्रामे' (शिवरहस्य), आदि प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि केरळ देश के अन्तर्गत कालटी अग्रहार में आचार्यशंकर का जन्म हुआ। शिवरहस्य का शशलग्राम ही कालटी का परियाय पद है। केरळ देश के क्षेत्र माहात्म्य व इतिहास व वृद्धपरम्परा जन श्रुति सब कालटी ही को जन्म स्थल बतलाता है। अनेक प्रमाणों के आधार पर कालटी का नामान्तार शशलग्राम ही कह सकते हैं न कि चिदम्बर। चोळ देश में प्रसिद्ध शिवक्षेत्र चिदम्बर है। 'योगाद्रूढि बलीयसी' के अनुसार 'चोळ मण्डल के प्रसिद्ध शिवक्षेत्र' ऐसा पद रुढी से चिदम्बर का ही ध्योत कराता है और यह केरळ देशीय कालटी अग्रहार का परियाय पद नहीं हो सकता है। आचार्य शङ्कर के मातापिता का नाम किसी प्राह्य पुस्तकों व वृद्धपरम्परा प्राप्त कथा व अन्य प्रमाणों से विश्वजित–विशिष्टा का नाम नहीं मालूम पडता है। इसलिये कुम्भकोग मठ का प्रचार कि शिवगुरु–आर्याम्बा विश्वजित विशिष्ठा का नामान्तर है सो केवल कुम्भकोण मठ के कृपा भाजन विद्वानों का उन्मत्त प्रलाप है। काशी रामतारकमठ आनन्दगिरि शङ्कर विजय में स्पष्ठ उल्लेख है कि श्री विद्याधिराज ही शिवगुरु हैं और अन्य सब प्रामाणिक पुस्तक उल्लेख करते हैं कि शिवगुरु के पिता का नाम विद्याधिराज था। न मालूम किस कुतर्क या वितन्डावाद कारणों को देकर अब कुम्भकोग मठ इस विषय का भी समन्वय करेंगे। आनन्दगिरि शङ्कर विजय को प्रामाण्य पुस्तक बनाने का मठ की तरफ से यह भगीरथ प्रयत्न एवं इस शङ्करविजय के रचयिता अन्य एक आनन्दगिरि को आचार्य शङ्कर के शिष्य ही रचयिता होने का जो सब मिथ्या प्रचार कर रहे हैं, ये सब काले कर्तूत धर्माचार्य को शोभता नहीं है।

श्रीमच्छंकरदिग्विजयः श्रीविद्यारण्य विरचितः (माधवीय शङ्कर दिग्विजय या संक्षेप शङ्कर विजय)—माधवीय शङ्करविजय के प्रारम्भ में उल्लेख है 'प्रणम्य परमात्मनं श्रीविद्यातीर्थं रूपिणम्। प्राचीनेशङ्करजये सारः संगृह्यते स्फुटम्।' और इस श्लोक से माधवाचार्य अपनी पुस्तक के आधार सूचित करते हैं। इस श्लोक से प्रतीत होता है कि इनके काल के पूर्व और एक शङ्करविजय ग्रंथ प्रचुरित था। माधवाचार्य आगे लिखते हैं 'यद्वद्घटानां पटलो विशालो विलोक्यतेऽल्पे किल दर्पणेऽपि। तद्वन्मदीये लघुसंग्रहेऽस्मिन्नुद्वीक्ष्यतां शांकरवाक्यसारः। यथाऽतिरुच्ये मधुरेऽपिरुच्युत्पादाय रुच्यान्तर योजनाऽर्हा। तथेष्यतां प्राकविहृद्यपद्येष्वेषाऽपि मत्पद्य निवेशभङ्गी।' और इन दो श्लोकों से न्यायपूर्वक उपर्युक्त पुस्तक की मान्यता व श्रेष्ठता एवं इस पुस्तक को आदर दृष्टि से स्वीकार करने के लिए न्याययुक्त कारण भी दिये हैं। माधवाचार्य आगे लिखते हैं 'स्तुतोऽपि सम्यक्कविभिः पुराणैः कृत्याऽपि नस्तुष्यतु भाष्यकारः। क्षीराब्धिवासी सरसीरुहाक्षः क्षीरं पुनः किंचकमेनगोष्ठे।' और इससे प्रतीत होता है कि अनेक ग्रंथ व पुराण इसके पूर्व थे और यह माधवीय शङ्करविजय उन ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है। यह अनुमान किया जाता है कि आचार्य शङ्कर के चार शिष्यों ने शङ्करविजय ग्रंथ लिखा है पर कहीं भी इन पुस्तकों का निर्देष या उद्धृतभाग प्राप्त नहीं होते हैं। बृहच्छंकरविजय पुस्तक का नाम लिया जाता है और इस पुस्तक के रचयिता आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि एवं चित्सुखाचार्य होने की कथा भी प्रचार किया जाता है। आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि कृत बृहच्छंकरविजय पुस्तक कहीं उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध अग्राह्य आनन्दगिरि शङ्करविजय का रचना-काल चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् काल का ही है। चित्सुखाचार्य कृत बृहच्छंकरविजय का 'शङ्कराचार्य सत्पथ' भाग उपलब्ध होने का पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ में प्रतीत होता है पर यह अपूर्ण ग्रंथ है। माधवीय के टीकाकार श्रीअच्युत पन्डित (1824/25 ई०) ने माधवीय मूल श्लोक 'इति कृत सुरकार्यं नेतुमाजग्मरेनं रजत शिखरिश्शृङ्ग तुङ्गमीशावतारम्' के 'ईशावतारम्' शब्द की टीका करते हुए लिखते हैं 'गौरीरमणावतारत्वं तु श्रीशङ्कराचार्यस्योक्तं शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये' ऐसा लिखकर इस परमशिव का अवतार श्रीशङ्कराचार्य की कथा को शिवरहस्य के 46 श्लोकों को मात्र उद्धृत कर पश्चात् लिखते हैं 'एतत्कथाजालं बृहच्छंकरविजय एवं श्रीमदानन्दज्ञानाख्यानन्दगिरि विरचिते द्रष्टव्यमितिदिक्।' टीकाकार ने बृहच्छंकरविजय का नाम यहां लिखा है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि श्रीअच्युत पन्डित के समय (1824/25 ई०) बृहच्छंकरविजय प्रसिद्ध तथा उपलब्ध ग्रंथ था। यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है कि श्रीअच्युत पन्डित ने इस पुस्तक को देखा है। सम्भवतः इस पुस्तक का नाम मात्र सुना हो क्यों कि न केवल यह आश्चर्य का विषय है पर असम्भव ही है कि जो पुस्तक 1825 ई० में उपलब्ध था अब वह लोप हो जाय। श्रीअच्युत पन्डित के पूर्व माधवीय शङ्करविजय के टीकाकार श्रीधनपति सूरि (डिण्डिम टीका—1799 ई०) भी इस पद 'एकदा देवता रूप्याचलस्थमुपतस्थिरे' का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि ब्रह्मादि देव को ही यह सूचित करता है और आगे आप लिखते हैं 'निगमाचार परिभ्रष्टानागमाचाररतान्विप्रादिवर्णानवलोक्य सत्यलोकगतेन ... ... शिवलोकमागत्य प्रणिपत्य पञ्चवक्त्रं शिवमूच इति प्राचीन विजयोक्तेः।' इस प्रकार श्रीधनपति सूरि भी प्राचीन विजय का नाम लेते हैं। अनेक जगहों में आपने इस कहेजानेवाले पुस्तक से अनेक श्लोकों व पंक्तियों को उद्धृत कर जगह जगह अपनी टीका में लिख गये हैं। अपने टीका में अन्यान्य प्रामाण्य ग्रंथों से पंक्तियों व श्लोकों को उद्धृत भी किये हैं। श्रीअच्युत पन्डित से रचित टीका जो 'अद्वैतसाम्राज्य लक्ष्मी टीका' के नाम से प्रसिद्ध है इसमें श्रीधनपति सूरि 'डिण्डिम टीका' के समान श्लोकों को उद्धृत नहीं किये हैं। परन्तु श्रीअच्युत पन्डित ने अपने टीका में इस पुस्तक की सूचना दी है। डिण्डिम टीका में उल्लेख की हुई आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय ही प्रचीन विजय है जिसे बृहच्छंकरविजय कहा जा सकता है। पाठकगण इस पुस्तक पर आलोचना इस अध्याय में

पूर्व ही पढ चुके होंगे। इससे निश्चित होता है कि माधवीय शङ्करविजय का आधार व मूल प्राचीन शङ्करविजय है और इसलिये यह माधवीय एक आदरणीय व प्रामाण्य ग्रंथ है। उस समय में उपलब्ध अन्य प्रामाणिक ग्रंथो का आधार प्राचीन शङ्कर चरित्र ग्रंथ रहे होंगे और इन सब ग्रंथों के आधार पर माधवाचार्य ने अपना दिग्विजय पुस्तक लिखा है। माधवीय के दोनों टीकाकारों ने अपनी अपनी टीका में इस विषय की पुष्टी की है।

ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो शिष्ट मर्य्यादा पालन करने वाला एवं वृद्ध परम्परा प्राप्त विषयों का आदर करनेवाला जिसे यह पुस्तक स्वीकार एवं माननीय न हो और इस पर सन्देह हो। आचार्य शङ्कर जयन्ती वार्षिक उत्सव में हर एक जगह इस आदरणीय माधवीय शङ्करविजय का पूजा पारायण किया जाता है। आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में प्रस्तुत तीन मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य इसे प्रामाणिक ग्रंथ मानकर अपने यहां पारायण अवसर पर इस पुस्तक का पाठ कराते हैं। मैं ने विज्ञ वृद्धों से सुना है कि कुम्भकोण मठ में भी करीब 50 वर्ष पूर्व इसी पुस्तक का पारायण या पाठ होता था और अर्वाचीन काल में जब कुम्भकोणमठ का प्रचार तीव्र होने लगा तो इसका पाठ भी बन्द कर दी। कुम्भकोणमठाधीष स्वयं अपने वक्तव्य में (मदरास 1932 ई०) कहा है 'माधवीय शङ्करविजय को संक्षेप शङ्करविजय के नाम से पुकारा जाता है'। अपने भाषण में बारबार माधवीय के श्लोकों को कहकर आचार्य कथा सुनाते थे। परन्तु दूसरे तरफ यह तीव्र प्रचार भी होता था कि यह पुस्तक अप्रमाणिक एवं अनादरणीय है। यदि यह पुस्तक अनादरणीय एवं अप्रमाणिक है तो क्यों कुम्भकोण मठाधीष स्वयं इस पुस्तक का उल्लेख बारबार किया है ? एक तरफ अपने शिष्यों द्वारा इस पुस्तक पर कीचड फेंकने का अनुमति देकर इन कार्यों से सहमत भी रखते हैं और दूसरे तरफ विज्ञ पाठकों व श्रोताओं के लिये इस पुस्तक का उल्लेख कर कथा सुनाते हैं और यह स्वभाव धर्माचार्यों को शोभता नही है। 'आचारश्चैव साधूनां' (मनु) के अनुसार हमारे वृद्ध प्रौढ विज्ञ पूर्वजों ने जिस ग्रंथ का अनुकरण किया है उसी पुस्तक को प्रामाण्य मानना हमलोगों का धर्म है। पूर्वजों पर श्रद्धा भक्ति व गुरुभक्ति रखनेवाले व्यक्ति ही इस पुस्तक को प्रामाण्य मानते हैं। कुछ साधारण त्रुटियां जैसा कि अन्य काव्य पुस्तकों में भी पायी जाती है वैसे इस ग्रंथ में होते हुए भी व्यवहार में यह पुस्तक सब को मान्य, ग्राह्य व प्रमाण है। यह पुस्तक विस्तार रूप से प्रचलित भी है। सेतुहिमाचल पर्य्यन्त यदि 'शङ्करविजय' का नाम लेते हैं तो सबों के हृदय में माधवीय का ही ख्याल आता है। यह पुस्तक सर्वजानकारी एवं सर्वमान्य होने से इस पर सन्देह करना अथवा कुम्भकोण मठाभिमानियों के समान कीचड फेंकना निरर्थक एवं अन्याय है।

ऐसे आदरणीय पुस्तक में कांची में आम्नाय मठ की स्थापना का उल्लेख नही है। कांची का वृत्तान्त देते हुए कहते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मन्दिर निर्माण कराकर एवं वहां ब्राह्मणों को वैदिक पूजा के लिये नियोजन कर, एकमाह वासकर ; वहां से आगे बढे। माधवीय के टीकाकारों ने इस माधवीय मूल श्लोक के अपने अपने टीका में अन्य ग्रन्थों से विषय उद्धृत किया है और इन दोनों टीकाकारों ने भी यह नहीं कहा कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नायमठ की स्थापना की थी। यदि माधवीय मूल में कांची में मठ स्थापना का विषय उल्लेख न हो (मार्के की बात है कि माधवीय मूल में किसी मठ का भी उल्लेख नही है पर संकेतित ही है) और यदि यथार्थ में कांची में मठ की स्थापना हुई हो तो टीकाकार अवश्य अन्य ग्रंथों में से उद्धृत कर इस विषय की पुष्टी करते जैसा कि टीकाकारों ने चार आम्नाय मठों का उल्लेख किया है। अतः कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नही हुई थी।

जब यह पुस्तक सर्व आदरणीय है तो क्यों इस पुस्तक की प्रामाण्यता व अप्रामाण्यता का विवाद किया जाता है और कुम्भकोण मठाभिमानियों से क्यों कीचड फेंका जा रहा है ? यह विवाद वे ही लोग उठाते हैं जिन्हें

इससे प्रयोजन नहीं होता और अपने भ्रामक प्रचारों की पुष्टी नहीं करता अर्थात् कुम्भकोण मठाधीष व उनके अनुयायी भक्त प्रचारकों द्वारा इस पुस्तक को अप्रमाण ठहराने का प्रयत्न किया जा रहा है चूंकि इस पुस्तक में अथवा इसकी टीका में कांचीमठ या कुम्भकोणमठ का नामो निशान नहीं पाया जाता है। वर्तमान 1960 ई० में कुम्भकोणमठ के अनुयायियों द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'कामकोटि प्रदीपम' जो मासिक पत्रिका धर्मप्रचार के नाम से कुम्भकोणमठ के भ्रामक मिथ्या कथनों का प्रचार करने लगा एवं अनर्गल व मिथ्या प्रमाणाभास एकङ्गि स्वरचित प्रमाणों के आधार पर कुम्भकोणमठ को सर्वोच्च सर्वोत्तम महागुरु मठ एवं अन्य चार आम्नाय मठ शिष्य मठ होने का दुष्प्रचार करने लगा, उसी पत्रिका में यह भगीरथ प्रयत्न किया गया है कि माधवीय शङ्करदिग्विजय को अप्रमाणिक व अनादरणीय ठहराया जाय। कुम्भकोणमठ का जो भ्रामक प्रचार व पंचम मठ सिद्ध करने की षडयन्त्र करीब 150 साल पूर्व प्रारम्भ हुआ था अब उस कार्य का शिखर 1960 ई० में परिणत हुआ है। इतना दुष्प्रचार होते हुए भी क्या कहा जाय कि कुम्भकोणमठाधीष इन मिथ्या भ्रामक प्रचारों को जानते नहीं हैं? वर्तमान मठाधीष ने कहा 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है' अतएव यह कहना ठीक है कि 'कामकोटिप्रदीपम' का दुष्प्रचार को भी आप आमोदन करते हैं। 'कामकोटी प्रदीपम' में कहा गया है कि माधवीय शङ्करविजय एक अप्रमाणिक 'कदम्बम्' (खिचडी) है और इस पुस्तक का तीन चौथाई भाग अन्य पुस्तकों से चोरी कर उद्धृत किया गया एक स्वतंत्र ग्रंथ के नाम से श्रृङ्गेरी मठाभिमानियों से प्रचार किया है। इन सब अनर्गल कथनों का उत्तर नीचे दिया जाता है।

माधवीय के मूल श्लोक में 'ईशावतारम्' पद का टीका करते हुए टीकाकार ने शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय से 46 श्लोकों को उद्धृत किया है और इसके एक श्लोक में 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' का उल्लेख है। इसके आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि शङ्कर का तनुत्याग कांची में हुआ और इसलिए वहां मठ भी था। प्रथमतः कांची में आचार्य शङ्कर का तनुत्याग नहीं हुआ था और आचार्य का निर्याण स्थल हिमालय प्रदेश का केदार सीमा था। यहां 'सिद्धि' शब्द का अर्थ तनुत्याग नहीं है पर 'तपस्सिद्धि' ही का अर्थ ठीक जमता है क्योंकि इसी शिवरहस्य में उपर्युक्त कहे श्लोक के पश्चात् यों उल्लेख है 'काञ्च्यां तपस्सिद्धिमवाप्यदण्डी चण्डीशरुपो जगदा कलैया।' यदि मान भी लें कि आचार्य का निर्याण कांची में हुआ था तो भी कैसा कहा जाय कि आचार्य ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी? मठों की स्थापना मठाम्नायानुसार ही हुई है और न कि आचार्य शङ्कर के वासस्थल, निर्याणस्थल, पीठ प्रतिष्ठ क्षेत्र, तीर्थाटनस्थल, मन्दिर व नगर निर्माण स्थल आदि के आधार पर मठ की स्थापना हुई थी। मठों का अनुशासन, नियम, संप्रदाय, प्रणाली, सब शास्त्र रीति से सिद्ध हैं और सब प्रमाणिक पुस्तक केवल चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख करता है।

सर्व आदरणीय माधवीय शङ्करविजय जो श्रेष्ठों को ग्राह्य व प्रामाणिक है ऐसे पुस्तक में कुम्भकोण मठ का नाम न पाने से साधारण लोग एवं विद्वान सब पूछते हैं कि क्यों माधवाचार्य ने अपनी पुस्तक में कुम्भकोण मठ का उल्लेख नहीं किया? कुम्भकोण मठवाले ऐसे प्रश्नों का न्याययुक्त उत्तर दे नहीं पाते और वे निश्चय कर लिये कि इस पुस्तक को किसी प्रकार से भी हो यदि अनादरणीय एवं अप्रमाणिक पुस्तक ठहरा दें तो यह प्रश्न ही उठता नहीं है। कुम्भकोण मठाभिमानियों के ऐसी मनोभावना से ही यह विवाद प्रारम्भ हुआ। कुम्भकोण मठ चाहते हैं कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार मठों पर अपना गुरुत्व का अधिकार जमायें (पाठकगण कृपया कुम्भकोण मठ की मठाम्नायसेतु और आपसे प्रचारित विविध भाषाओं के प्रचार पुस्तकों को पढ़ें) और इस स्वार्थ कार्य का लाभप्रद करने के लिये ही ये सब मिथ्या प्रचार किये जा रहे हैं। दोष समान दीखनेवाले कुछ पंक्तियों (वास्तव में दोषारोपण नहीं किया जा

सकता है चूंकि इन विषयों पर पूर्ण अन्वेषण नहीं किया गया है और अन्तिम निर्णय भी किया नहीं गया है) तथा वहां के दिये हुए विषयों को लेकर इस पुस्तक को अनादरणीय व अप्रमाणिक बनाने की कोशिश की जा रही है।

माधवीय के हर एक सर्ग में स्पष्ट लिखा है कि 'इति श्री माधवीये' और यह प्रत्यक्ष प्रमाण है तो क्यों अनुमान वाद लाकर कुतर्कों की ओट लेकर कुम्भकोण मठ वाले प्रचार कर रहे हैं कि यह पुस्तक अर्वाचीन काल में शृंगेरी भक्तों से रचा पुस्तक है और यह पुस्तक अप्रमाणिक भी है। जहां प्रत्यक्ष प्रमाण न उपलब्ध हो तब अनुमान किया जाता है। यह माधवीय शङ्करविजय जिसका प्रथम टीका 1799 ई० में लिखा गया था सो पूना, बम्बई, बङ्गलूर, मदरास, काशी, आदि स्थलों में प्रकाशित हुए हैं और इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू आदि भाषाओं में हुआ है तथा असुद्रित प्राचीन हस्तलिपि प्रतियां जो काशी, दरभङ्गा, मिर्जापूर, कामरूप, नवद्वीप, कलकत्ता, मदरास, पूना, बडोदा, आदि स्थलों में उपलब्ध हैं, इन सब प्रतियों में श्री माधवाचार्य को श्री विद्यारण्य ही स्वीकार किया है। क्या कारण है कि जो श्रेष्ठों को ग्राह्य था अब उसे न माना जाय? इन सब पुस्तकों में से कुछ मुद्रित माधवीय शङ्करविजय जो उपलब्ध हैं उसके भूमिका में श्री विद्यारण्य विरचित ही लिखा हुआ है। अर्वाचीन काल के कुछ मुद्रित पुस्तकों के भूमिका में यह विवाद खडा किया गया है पर अन्त में इन्हीं पुस्तकों में लिखा गया है कि यह पुस्तक सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य होने के कारण प्रामाणिक माना जायगा। पूना के गणपति कृष्णाजी प्रेस द्वारा मुद्रित प्रथम संस्करण 1863/64 ई० का है और पूना के आनन्दाश्रम मुद्रालय का तीन संस्करण 1891 ई०, 1915 ई०, 1932 ई० का है। इन चारों माधवीय संस्करणों में उल्लेख है 'श्री विद्यारण्य विरचितः श्री मच्छंकरदिग्विजयः।' कल्याणपुरी मुद्रित शङ्करविजय जो 1894 ई० में प्रकाशित हुआ है उस पुस्तक के मुखपत्र में उल्लेख है 'श्री मदराजाधिराज ... ... श्री माधवाचार्यैर्हि ... ... प्रणीतस्य ... ... श्री शङ्करविजयस्य ... ...।' वाविला प्रेस द्वारा, मदरास में, 1926 ई० में मुद्रित शङ्करविजय पुस्तक के मुखपत्र भी कल्याणपुरी मुद्रित मुखपत्र समान ही है, केवल कुछ पदों का अदल बदल एवं विभक्ति का अन्तर है और इसमें भी श्री माधवाचार्य को श्री विद्यारण्य ही माना है। करीब 80 वर्ष पूर्व प्रकाशित काशी के शङ्करविजय में भी इसे श्री विद्यारण्य रचित कहा है। पूना आनन्दाश्रम मुद्रित पुस्तक के भूमिका में उल्लेख हैं '... ... परमदार्शनिकः पण्डितप्रकाण्डपुंगवः श्रीमद्विद्यारण्य स्वामिवरः पूर्वाश्रमीय श्री माधवाचार्याभिधः, एतेनैव पुनर्महामहिमशालिना श्रीमाधवाचार्येण श्री शङ्करदिग्विजय नाम काव्य प्रबन्ध रत्नंव्यरचीति विदितचरमेव विदुषाम्' और यह कथन सब को मान्य है, केवल वही वर्ग इसे अप्रमाणिक ठहराते हैं जिनको इस पुस्तक द्वारा अपने से किये हुए भ्रामक मिथ्या प्रचारों की पुष्टी नहीं मिलती एवं अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने में यह पुस्तक बाधक होती है। माननीय मठाधीष, आदरनीय मण्डलेश्वर, ब्रह्मनिष्ठ परिव्राजक एवं महन्त तथा विज्ञ विद्वान सबों ने इस माधवीय पुस्तक को प्रमाण माना हैं एवं अबभी मानते हैं। आन्ध्र, कर्नाटक, केरळ, महाराष्ट्र, गुजरात, बङ्गाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, आदि सीमाओं में निस्सन्देह इस पुस्तक को आदरनीय व श्री माधवाचार्य रचित माना है। अनुसन्धान करने वाले प्रकाण्ड विद्वानों से प्राप्त पत्र करीब 30 मेरे पास हैं जो माधवीय को प्रमाण पुस्तक मानते हुए कहते हैं कि यह पुस्तक श्री माधवाचार्य ही से रचित है।

कुम्भकोण मठाभिमानियों का कहना है कि यह माधवीय पुस्तक अर्वाचीन काल का रचित है और यह ग्रंथ श्रीमाधवाचार्य द्वारा रचित नहीं है। श्रीवेटूरी प्रभाकर शास्त्री ने 'आन्ध्र पत्रिका' ता० 17—12—1921 के अङ्क में एक लेख प्रकाशित किया था जिसमें कहा गया था कि यह पुस्तक माधवीय रचित नहीं है पर 19 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में भट्ट श्रीनारायण शास्त्री एवं अन्यों से 'व्यासाचलीय' के आधार पर रचित पुस्तक है। वर्तमान

कुम्भकोण मठाधीश जब आप आन्ध्र देश में भ्रमण करते थे तब इस 'आन्ध्र पत्रिका' के प्रकाशित लेख को पुनः अपने प्रचार पुस्तकों में एवं नोटीस रूप में प्रचार कराया था ताकि अनभिज्ञ पामरजनों की जो श्रद्धा व मान्यता इस पुस्तक के प्रति है सो कम हो जाय। परन्तु यहां एक विषय ध्यान देने का है कि श्रीवेठूरी प्रभाकर शास्त्री ने उक्त लेख को किसी के कथन पर विश्वास कर यह लेख प्रकाशित किया था पर जब आप स्वयं इस विषय का अन्वेषण किये तो आपको दृढ प्रमाणों के आधार पर मालूम हुआ कि आपका लेख जो 17—12—21 के 'आन्ध्र पत्रिका' अङ्क में प्रकाशित हुआ था वह न केवल भूल था पर मिथ्या भी था। इसीलिए आपने 'आन्ध्र पत्रिका' ता॰ 25—1—1922 के अङ्क में और एक लेख प्रकाशित किया और इस लेख में सप्रमाण सिद्ध किया कि आपने जो कुछ 17—12—21 के अङ्क में प्रकाशित लेख में कहा है वह सब भूल व मिथ्या है। एक व्यक्ति जिन्होंने यह ग्रंथ स्वयं लिखने का झूठा समाचार दिया था, उनके काल के बहु पूर्व काल का मुद्रित व अमुद्रित माधवीय शङ्करविजय उपलब्ध होते थे और यह कहना मिथ्या है कि यह व्यक्ति ने माधवाचार्य नाम पर यह पुस्तक रचना की है। कुम्भकोण मठवाले इस विषय को पूर्ण जानते हुए भी आप लोगों ने केवल 17—12—21 का लेख ही प्रकाशित किया था और 25—1—22 का लेख को प्रकाशित नहीं किया था। पाठकगण जान लें कि इस प्रचार का क्या मर्म था।

माधवीय के टीकाकार श्रीधनपतिसूरि (डिण्डिम टीका) ने श्रीसदानन्द 'व्यास' कृत शङ्करविजयसार का टीका भी किया है। श्रीसदानन्द व्यास कृत शङ्करविजयसार का काल उसी पुस्तक के 17 वां अध्याय 68 श्लोक में उल्लेख है 'रसगुणवसुचन्द्रे विक्रमादित्य राज्यात्' अर्थात् 1783 ई॰ का (1836 विक्रमी—1780 ई॰) और इसका व्याख्या काल विक्रमशक 1860 अर्थात् 1804 ई॰ का है। यह सदानन्द कृत शङ्करविजयसार माधवीय संक्षेपशङ्करविजय के आधार पर लिखी पुस्तक है। सोलहवें अध्याय के 35 वां श्लोक में उल्लेख है 'पूर्वाचार्यकृतं समीक्ष्य विततंसद्दिग्जयं शांकरं तस्मात्सारमिमं ... ...'। और टीकाकार ने 'पूर्वाचार्य' की टीका यों की है 'पूर्वाचार्यैर्माधवाचार्यैः कृतं विस्तृतं शांकरं सदिग्विजयं सम्यग्वीक्ष्य ....'। माधवीय पर डिण्डिम व्याख्या का लेखन काल 1799 ई॰ है एवं श्रीअच्युतराय टीका का लेखन काल 1824/25 ई॰ है। अर्थात् माधवीय शङ्करविजय 1783 ई॰ या 1780 ई॰ के पूर्व का ही होना निश्चित होता है और कुम्भकोण मठ से जो प्रचार किया जाता है कि एक व्यक्ति ने इस ग्रंथ की रचना की थी सो भूल है चूंकि भट्ट श्रीनारायण शास्त्री का काल 19 वीं शताब्दी का ही था। कुम्भकोण मठ के आत्मबोध जिनका काल 1741 ई॰ या 1720 ई॰ या 17 वीं शताब्दी अन्त का ऐसा भिन्न काल प्रचार किया जाता है सो व्यक्ति 'सुषमा' टीका पृष्ठ 68 में 'संक्षेपशङ्करविजय' का नाम लिया है। अर्थात् कुम्भकोण मठ के कथनानुसार यह माधवीय पुस्तक संक्षेपशङ्करविजय 17 वीं या 18 वीं शताब्दी में उपलब्ध होना निश्चित होता है तथापि भ्रामक प्रचार किया जाता है कि यह अर्वाचीन काल की रचित पुस्तक है। कुम्भकोण मठ के लिये असत्य ही सत्य है।

पूना से प्रकाशित चार संस्करणों में 19 वीं शताब्दी का काल उल्लेख है। आद पुस्तक जैसे रामायण आदि हैं उनका लेखन काल, पढने अथवा पढाने के निमित्त लिखा हुआ पुस्तक का लेखन काल ही, उसका लेखन काल कह सकते हैं। मूल का लेखक अपने लिखित काल का उल्लेख करता है जैसे 'लिखा हुआ' और जो प्रतियां उस मूल ग्रंथ से नकल करते हैं अथवा पश्चात् काल में प्रकाशित करते हैं तो उसमें मूल का लेखन काल देते हैं न कि अब छपवाने या प्रकाश करने का काल। इस माधवीय का मूल प्रति न उपलब्ध होने से आक्षेपार्थी सन्देह करते हैं। इस विषय पर खोजखाज की आवश्यकता है। पूर्ण विश्वास है कि इसका प्राचीन प्रति कहीं न कहीं उपलब्ध ही होगा चूंकि

17 वीं व 18 वीं शताब्दी में उत्तर भारत में अनेक जगह इस पुस्तक की पुनः लिखित प्रतियां उपलब्ध थे। पूना के संस्करण में ग्रंथ का समय तीन भिन्न काल उल्लेख हैं जैसे (ख)–1824 ई०, (ग)–1835 ई०, (घ)–1805 ई०। (ग) प्रति में ग्रंथ का पुनः लेखन समय उल्लेख है पर (ख) व (घ) ग्रंथ दोनों में लेखन काल दिया नहीं गया है। इसलिये ग्रंथ का लेखन काल जो (ग) प्रति में है उसी को लेना न्याय होगा। यद्यपि ये सब हस्तलिपि प्रतियां लेखन काल का उल्लेख करते हैं वे सब किसी और एक मूल पुस्तक से अपने अपने नकल करने का काल ही दिये होंगे जिसे लेखन काल कहा गया है। इन प्रतियों में दिये हुए काल को मूल ग्रंथ का काल मानना जैसा कि कुम्भकोणमठ का भ्रामक प्रचार है सो ठीक नहीं होगा। कुछ उपलब्ध हस्तलिपि प्रतियों के आधार पर ही मुद्रित प्रतियां प्रकाशित हुई हैं। जब मूल प्रति प्राप्त नहीं होती तो मूल ग्रंथ का 'लिखा हुआ' काल 'रचयिता' का काल ही लेना उचित व न्याय होगा। माधवाचार्य अर्थात् श्री विद्यारण्य विरचित पुस्तक जब इसके रचयिता माना गया है तो यह निश्चित होता है कि इस पुस्तक का लेखन काल 1385 ई० का पूर्व ही था। जबतक सप्रमाण निस्सन्देह निश्चय न किया जाय कि श्री माधवाचार्य (श्री विद्यारण्य) द्वारा रचित यह पुस्तक नहीं है तबतक इस पुस्तक का लिखा काल 14 वीं शताब्दी ही माना जायगा क्यों कि प्रबल जनश्रुति व परम्परा रूडी इस विषय की पुष्टी करती है।

अर्वाचीन काल के कुछ विद्वानों ने इस पुस्तक पर सन्देह दृष्टी डालते हुए दोषसमान दीखनेवाले कुछ विषयों को लेकर आक्षेप प्रकाश किया है और इन आक्षेपों को लेकर कुम्भकोणमठ अपने मिथ्या भ्रामक प्राचरों के साथ तीव्र प्रचार करते हैं कि यह पुस्तक अनादरणीय एवं अप्रामाणिक है। आपका आक्षेप है—(1) श्री माधवाचार्य विद्यारण्य की शैली से इस काव्य की शैली भिन्न पडती है और पदमैत्री उतनी अच्छी नही है और रचना भी भिन्न हैं; (2) श्री माधवाचार्य के गुरु का नाम पुस्तक में उल्लेख नही है और विद्यारण्य अपना गुरु का नाम उल्लेख करते हैं; (3) श्री माधवाचार्य ने कुछ व्यक्तियों का नाम इस पुस्तक में देकर श्री आचार्य शङ्कर के समकालीन बनाई है और ये सब नाम इतिहास दृष्टि से आचार्य शङ्कर के काल के साथ समन्वय नहीं होता; (4) इस पुस्तक के कुछ श्लोक अन्य पुस्तकों से मिलती हैं और ऐसे पुस्तक सब श्री विद्यारण्य काल के बाद रचित हैं; (5) इस शङ्करविजय का रचयिता अपने आप को 'नवकालीदास' कहता है और माधवाचार्य ग्रंथ में इस उपादि का कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः यह काव्य नवकालिदास उपादिधारी द्वारा रचना हुई थी; (6) श्री विद्यारण्य रचित ग्रंथों की सूची में इस ग्रंथ का नाम उल्लेख नहीं मिलता; (7) प्राचीन शङ्करविजय में कहे हुए आदि शङ्कराचार्य के जनन काल माधवीय में न कहे जाने से यह पुस्तक माधवाचार्य रचित नही है; (8) इस माधवीय में 'व्यासाचलकवि' का उल्लेख है और आप कुम्भकोण मठाधीष बनकर 15 वीं शताब्दी में थे। आक्षेप है कि इस 15 वीं शताब्दी के 'व्यासाचलकवि' को 14 वीं शताब्दी के श्री विद्यारण्य कैसे उल्लेख कर सकते हैं? अतः यह पुस्तक श्री विद्यारण्य रचित नही है; (9) माधवीय शङ्करविजय के एक हस्तलिपि प्रति में अपने गुरु का नाम 'महेश्वर' का उल्लेख है और श्री विद्यारण्य के गुरु श्री विद्यातीर्थ थे, अतः यह पुस्तक श्री विद्यारण्य रचित नहीं है; (10) वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष जब अपने भ्रमण में आन्ध्र देश से गुजर रहे थे तब आन्ध्र देश के श्री. वि. आर. शास्त्री एवं श्री डि. माधव राव दोनों ने 1938 ई० में एक लेख कुम्भकोणमठ के यशोगान में प्रकाशित किया था। इस लेख में उल्लेख है कि माधवीय शङ्करविजय श्री विद्यारण्य द्वारा रचित नहीं है परन्तु भट्ट श्री नारायण शास्त्री, म. म. कोक्कन्ड वेङ्कटरत्नम पन्तुलु, सिद्धान्ती श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री एवं अन्य दो व्यक्तियों से (कुल पांच व्यक्तियों से) रचित पुस्तक अर्वाचीन काल का है। इन पांच रचयिताओं ने माधवाचार्य का नाम देकर केवल शृङ्गेरी की महत्ता लिखकर प्रचार किया था। श्रीयुत वेमूरी नरसिंह शास्त्री ने जो कुछ विषय भट्ट श्री नारायण शास्त्री से सुना था (उपर्युक्त कहा कथन) उसे अब श्री वेमूरी नरसिंह शास्त्री ने श्री वेटूरी प्रभाकर शास्त्री को

कह सुनाया था और जो विषय श्री प्रभाकर शास्त्री ने 'आन्ध्र पत्रिका' में प्रकाशित किया था। इन सब विषयों का विवरण उक्त लेख में था; (11) यदि मान भी लिया जाय कि श्री विद्यारण्य द्वारा रचित यह पुस्तक है तो यह कहना पडता है कि श्री विद्यारण्य महास्वामी शृङ्गेरी मठ के अध्यक्ष थे, अतः आपसे रचित ग्रंथ में उसी मठ की परम्परा तथा मान्यता का उल्लेख होना न्याय संगत प्रतीत होता है और इसलिये माधवीय में कांची मठ का उल्लेख नहीं है; (12) काव्यमाला के प्रकाशन से प्रतीत होता है कि माधवीय इस प्रकाशन के समय न था चूंकि एक शंकरविजय के रहते दूसरे कोई पुस्तक की आवश्यकता नहीं थी; (13) 'कामकोटि प्रदीपम' जो कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों का प्रकाशन करता है उसमें उल्लेख है कि माधवीय का तीन चौथाई भाग अन्यों से रचित पुस्तकों से चोरिकर अर्वाचीन काल में एक विद्वान ने शृङ्गेरी मठ की महत्ता बढाने के लिये लिखकर प्रकाशित किया है। आपका प्रचार है कि श्रीराजचूडामणि दीक्षितर, श्रीरामभद्र दीक्षितर, श्री उमामहेश्वर कवि, श्री जगन्नाथ कवि आदि रचयिताओं के पुस्तक से लिया गया है। अधिक अंश व्यासाचलीय ग्रंथ से भी लिया गया है।

करीब 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध से आचाय शङ्कर रचित पुस्तकों एवं अन्य ग्रंथ कर्ताओं के विषय में अनुसन्धान विद्वानों से खोजखाज बराबर होता ही आरहा है। इसी समय में, विजयनगर राज्य की नींव, राज्य विस्तार एवं इतिहास विषयों में भी अनुसन्धान विद्वानों ने नयी सामग्री खोज कर प्रकाश भी किया है एवं राज्याधिकारियों से खोजकर अनेक शिलाशासन, ताम्रशासन (चौदहवीं व पन्द्रहवीं शताब्दी) अब प्रकाश भी हुए हैं। इन सब प्राप्त होनेवाले सामग्री के फलभूत कुछ रचयिताओं व प्रकान्ड विद्वानों तथा माननीय व्यक्तियों का काल एवं चरित्र विवरण निस्सन्देह निर्धारण किया जा सकता है। इन सामग्रियों के आधार पर श्रीमाधवाचार्य का चरित्र विवरण पूर्ण ज्ञात होता है। इस खंड के तृतीय अध्याय में इस विषय का पूर्ण विवरण पायेंगे। श्रीमाधवाचार्य को ही श्रीविद्यारण्य, मंत्री माधवाचार्य, सायण के भ्राता माधवाचार्य एवं सायण के पुत्र माधवाचार्य, इन चार भिन्न व्यक्तियों को अभिन्न व्यक्ति होने का मानते थे। चार व्यक्तियों का पृथक् पृथक् चरित्र एक ही में संकलन कर एक ही व्यक्ति होने का विश्वास किया जाता था। इसी विश्वास पर आधारित श्रीमाधवाचार्य रचित संक्षेप शङ्करविजय को भी श्रीविद्यारण्य रचित स्वीकार किया गया था। शिलालेख, ताम्रशासन एवं अन्य ऐतिहासिक दृढ प्रमाणों से प्रतीत होता है कि मन्त्री माधवाचार्य एवं सायण के भ्राता माधवाचार्य दोनों भिन्न व्यक्ति श्रीमाधवाचार्य (श्रीविद्यारण्य) से मिलते हैं। माधव व सायण दोनों भ्राता श्रीविद्यारण्य से मिलकर वेद भाष्य प्राप्त करते हैं और जो 'सायणमाधवीय' के नाम से प्रसिद्ध है। विजयनगर महाराज के आदेश पर मंत्री माधवाचार्य एवं अन्य राजबन्धु बान्धवों के सहित शृङ्गेरी पहुंचते हैं। मंत्री माधवाचार्य एक धीर शूर सेनापति भी थे। इन दोनों माधवाचार्य एवं विजयनगर महाराजा हरिहर बुक्का के लिये श्रीविद्यारण्य 'अखिल गुरु' हैं। आप दोनों ने श्रीविद्यारण्य के गुरु श्रीविद्यातीर्थ के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति भी खूब भेंट की थी। मंत्री माधवाचार्य भी प्रकान्ड विद्वान थे और आपने भी ग्रंथ रचा था। मंत्री माधवाचार्य महाराजा हरिहर बुक्का के 'कुलगुरु' भी थे। सायन माधव भ्राता को कौन नहीं जानता? आपकी विद्वत्ता वेद भाष्य से प्रतीत होता है जिसे श्रीविद्यारण्य ने प्रथम रचा था और जिसकी पूर्ती एवं समीक्षा आप दोनों ने अन्य विद्वानों के सहायता से की थी। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान श्री के. ए. नीलंकण्ठ शास्त्री जी लिखते हैं '**The great commentary on the Vedas composed by a syndicate of scholars with Sayana at their head, ...**' शृङ्गेरी मठाधीष श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ एवं श्रीविद्यारण्य दोनों अपने अपने पूर्वाश्रम में भ्राता थे और दोनों 'एकशिलानगर' से आये थे। श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ कनिष्ठ भ्राता थे। इनके अलावा सायण के पुत्र एक माधवाचार्य थे जिन्होंने 'सर्वदर्शनसंग्रह' ग्रंथ की रचना भी की थी। यदि मान लें कि संक्षेपशंकरविजय

श्रीमाधवाचार्य (श्रीविद्यारण्य) द्वारा रचित नहीं है तो यह अनुमान क्यों न किया जाय कि मंत्री श्रीमाधवाचार्य ने इसे रचा हो या सायण के भ्राता श्रीमाधवाचार्य ने रचा हो? क्योंकि आप दोनों का स्नेह, श्रद्धा व भक्ति श्रृंगेरी मठ के प्रति अत्यधिक था और आपने अद्वैताचार्य श्रीआद्यशङ्कराचार्य का चरित्र लिखा हो। यह भी अनुमान करना भूल न होगा कि यह शुभ कार्य आपने श्रीविद्यारण्य के आदेश पर किया था जैसा कि वेदभाष्य की पूर्ती माधवसायण ने श्रीविद्यारण्य की आज्ञा पर की थी। कुछ वृद्ध विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीमाधावाचार्य, श्रीविद्यारण्य बनने के पूर्व, अपने बाल्यावस्था में जब आप तुङ्गभद्रा समीप वास करते थे उस समय का लिखा यह संक्षेप शङ्करविजय है। सम्भवतः आचार्य चरित्र लिखने के पश्चात् आपने वेदान्त ग्रंथों की रचना की हो। इस विषय का अन्तिम निर्णय करने के लिये आन्वेषण की आवश्यकता है। अब जो सामग्री मिलते हैं वे सब इसी अनुमान पथ पर ले जाते हैं। संक्षेपशङ्करविजय में अपने गुरु का नाम 'श्रीवीद्यातीर्थ रूपिगम्' के उल्लेख से यह शङ्का उठती है कि श्रीमाधवाचार्य उर्फ श्री विद्यारण्य ने ही इसे रचा हो चूंकि आपके गुरु श्रीविद्यातीर्थ थे। चाहे जो हो, श्रीमाधवाचार्य अर्वाचीन काल के न थे और यह पुस्तक 14 वीं शताब्दी का ही रचा हुआ है।

आचार्य शङ्कर के विषय में यह ग्रंथ सब से अधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। इसलिये इस पुस्तक को भी एक आदरणीय प्रामाणिक ग्रंथों में गिने जाने से कोई आपत्ति नही है। उपर्युक्त 13 कारणों को भिन्न स्थलों में भिन्न भिन्न कारणों का प्रचार कर आधुनिक काल के प्रचार विधि अनुसार पामर लोगों में भ्रम उत्पन्न करना एवं इस पुस्तक की आदरणीयता व मान्यता को घटाने की जो भगीरथ प्रयत्न कुम्भकोण मठाभिमानियों से हो रहा है, वही आपत्ति व आक्षेपार्ह है। जिन सब कारणों को देकर माधवीय को अप्रमाणिक व अनादरणीय पुस्तक ठहराने की कोशिश की जा रही है यदि उसी कारणों को लेकर अन्य उपलब्ध प्रामाण्य ग्रथों पर भी आलोचना करके तुलना की जाय तो अनेकानेक कहेजानेवाले प्रामाणिक ग्रंथ अप्रमाणिक एवं अनादरणीय ठहराया जा सकता है। जो सब विषय अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के विरोध नहीं हैं उन सब विषयों को स्वीकार कर लेना ही न्याय व उचित है। कुछ साधारण अल्प विषयों के कारण समस्त पुस्तक की मान्यता व प्रामाणिकता को न स्वीकार करना मूर्खता होगा। भिन्न रामायणों में जैसा कथा विवरण (मूल भाग में नहीं) भेद पाये जाते हैं उसी प्रकार इन सब शंकरविजयों में कुछ भेद पाया जाता है। जो विषय सब विजयों में एक ही तरह कहा गया है उसे हमलोग स्वीकार कर लेना ही न्याय है। जों विषय अधिक मात्रा में कहे गये हैं उन सबों में से जो विषय अन्य प्रमाणिक पुस्तकों से पुष्टी होती है, उसे मानलेना चाहिये। जो सब विषय विरोधरहित हैं उसे ग्राह्य करना उचित है।

1. कुम्भकोण मठवालों का आक्षेप है कि माधवाचार्य का शैली इस माधवीय पुस्तक में नहीं है। परन्तु रचयिता की शैली सब पुस्तकों में एक ही होने का कोई न्याय नहीं दीखता। 'व्यतिरेकेण न्यायामालावत्' विविध पुस्तकों में विविध शैली दीख पडते हैं। रचयिता का काल, देश, परिस्थिति एवं बुद्धि चातुर्यता की ही छाया उसके रचित पुस्तक में शैली रूप में आकर जमता है। इसलिये 'व्यतिरेकेग' न्याय ठीक है। जिन पुस्तकों में रचयिता का परिचय दिया गया हो उसे स्वीकार करना ही न्याय है। श्री सदानन्द व्यास गुरुपरम्परा चरित्र, मणिमंजरीभेदिनी आदि पुस्तकों में इस पुस्तक को माधवीय कृत परिचय देने से इस पुस्तक का रचयिता माधवीय हैं, ऐसा ही मानना होगा। माधवीय के टीकाकर श्री धनपतिसुरि व श्री अच्युतराय पन्डित ने इस पुस्तक को माधवाचार्य कृत स्वीकार किया है। यदि आपलोगों को शंका होती तो अवश्य 1799 ई० या 1824/25 ई० में इस विषय का टीका में उल्लेख करते। गणपतिकृष्णाजीप्रेस एवं आनन्दाश्रम मुद्रालय के अनुसन्धान करने वाले विद्वान व प्रकान्ड विद्वानों

ने हस्तलिपि प्रतियों को संशोधन कर जब इसे 1863 ई० में एवं पुनः 1891 ई० में प्रकाशित किया था तब आपलोग इस विषय को अपने प्रकाशित पुस्तकों में उल्लेख करते पर आपलोगों ने वैसा न किया था। आपलोगों ने भी स्पष्ट इसे माधवाचार्य कृत स्वीकार किया है। अनुभूतिप्रकाश, पञ्चदशी, न्यायमाला, जीवनमुक्तिविवेक आदि पुस्तकें श्री विद्यारण्य रचित हैं पर इसे माधवीय भी कहते हैं चूंकि श्री विद्यारण्य का पूर्वाश्रम नाम माधवाचार्य के नाम से प्रसिद्ध था और यह वदन्ति परम्परा श्रेष्ठों से चला आ रहा है। सम्भवतः रचयिता सन्यासाश्रम के पूर्व जब वे माधवाचार्य थे तब इस संक्षेपशङ्करविजय को लिखा हो और अन्य वेदान्त ग्रंथ सब सन्यासाश्रम पश्चात् लिखे हों। अथवा यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार श्री विद्यारण्य ने अपने से रचित वेदभाष्य को माधवसायण को देकर पूर्तिकर प्रकाशित करने को कहा था उसी प्रकार गृहस्थ माधव को 'शङ्करविजय' भी पूर्तिकर प्रकाश करने को कहा हो और आपको श्री विद्यारण्य के प्रति 'अखिलगुरु' भावना व श्रद्धाभक्ति होने के कारण आपने इस ग्रंथ को श्री विद्यारण्य के नाम से प्रकाशन किया हो। यह अनुमान ठीक ही होगा जब तक इस ग्रंथ को निश्चित रूप से यह सिद्ध किया न जाय कि यह पुस्तक माधवाचार्य रचित नहीं है।

पुस्तक की रचना पद्धति का विचार करना सुलभ नहीं है चूंकि श्रीविद्यारण्य ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं और इन सब ग्रंथों की भाषा व शैली पढने के पश्चात् ही अपना अपना विचार प्रकट करना उचित व न्याय होगा। श्रीविद्यारण्य कृत सब ग्रंथों में क्या रचना पद्धति एक हैं? यदि नहीं है तो क्या ये सब पुस्तकें माधवाचार्य द्वारा रचित नहीं हैं? जैमिनी मीमांसा न्यायमाला में जिस प्रकार कहा गया है उसी प्रकार संक्षेप रूप में इस शङ्करविजय में भी कहा गया है। न्यायमाला के प्रारम्भ में जिस प्रकार धर्मलक्षण संक्षेप में दिया है और इस विषय को बारह नामों में भागकर हर एक का विवरण हर एक अध्याय में दिया है, उसी प्रकार संक्षेप शङ्करविजय में भी प्रारम्भ में प्रथम सारांश देकर पश्चात् 16 अध्यायों का विवरण भी दिया है। इससे मालूम होता है कि न्यायमाला का एवं संक्षेप शङ्करविजय की रचना पद्धति एक ही समान है। कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसंभव, मेघसंदेश आदि पुस्तकों में रचना पद्धति यानी विभिन्न शैली अलङ्कार युक्त दीख पडते हैं। तो क्या इन विभिन्नता के कारण यह कहा जाय कि कालिदास इन पुस्तकों के रचयिता न थे। शैली जो अलङ्कार का भेद है वह काल, परिस्थिति एवं विषय पर निर्भर करता है। विभिन्न काल व परिस्थिति में विषयों का रचना अपनी अपनी मनोभावना के अनुसार विभिन्न अलङ्कार युक्त शैली में लिखे जाते हैं। इसलिये यह कहना कि रचना भेद (शैली) होने से माधवीय कृत कहना भूल है सो आक्षेप निर्मूल है। साधारण कवि जब कोई घटना का वर्णन अद्भुत रूप से लिखते हैं और जिसे साधारण लोग समझ नहीं पाते तो इसमें क्या आश्चर्य कि श्रीविद्यारण्य समान परमदार्शनिक पन्डितप्रकान्डपुंगव एक अद्वितीय मेधा पुरुष की भी रचना ऐसी ही रहा हो। यह तो कवियों की साधारण निरंकुशता है जिसे अंग्रेजी में Poetic License कहते हैं। हर एक काव्य में कहीं कहीं भूल पाया जाता है क्योंकि ये सब पुस्तक काव्यात्मक रचना हैं और जिसमें कवि की मेधा शक्ति, चातुर्यता, कल्पना शक्ति, उक्ति, अलङ्कार, स्व अनुभव मनोभाव, स्व गुण आदियों का भन्डार पाया जाता है। इन काव्यों के पढनेवालों को उचित है कि वे इन त्रुटियों का समन्वय कर यथार्थ अर्थ या तात्पर्य व लक्षणार्थ करें। प्रख्यात् विमर्शक श्रीदन्डिन् ने कहा है 'न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति। यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः।' इसके अनुसार माधवीय कृत काव्य में यदि त्रुटि समान दोष भी हों तो उसे दूषन करना उचित नहीं है। जीवनमुक्तिविवेक, विवरणप्रमेय संग्रह, पञ्चदशी, अनुभूतिप्रकाश, जैमिनीयन्यायमाला, बृहदारण्यकवार्तिकसार, वैयासिकन्यायमाला आदि ग्रंथों में भिन्न भिन्न शैली हैं तो क्या ये सब ग्रंथ श्रीविद्यारण्य कृत कहा नहीं जा सकता है? आचार्य शङ्कर रचित उपदेशसहस्री जो साधारण व्यक्ति अर्थ नहीं कह सकते और आचार्य शङ्कर रचित विवेकचूडामणि

जो सरल, सुगम एवं सर्वसाधारण से अर्थ किया जा सकता है, तो क्या इन दोनों ग्रंथों के रचयिता भिन्न व्यक्ति कह सकते हैं ? सूत्रभाष्य की शैली व चर्पटपंजरिकास्तोत्र (भजगोविन्दम) की शैली क्या एक हैं ?

आक्षेपकों का कथन है कि माधवीय शङ्करविजय में अनेक शैली हैं और सम्मवतः एक ही रचयिता ने इसे न रचना की हो। चम्पू काव्य में भिन्न भिन्न शैली पाये जाते हैं और पूर्वकाल के जितने चम्पू काव्य रचयिता थे तो क्या उनको उन उन ग्रंथों के रचयिता न कहा जाय ? भागवत में अनेक शैली हैं तो क्या भागवत को हमलोग तिरस्कार कर दें ? पुराकाल के साहित्यिक ग्रंथों से उदाहरण दिये जा सकते हैं पर विज्ञ पाठकगणों के लिये इतना ही काफी है। इसी प्रकार माधवीय में भिन्न शैली पाये जांय तो वह उस पुस्तक की अनादरणीयता या अप्रमाणिक होने का कारण न होगा। स्वार्थी अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये ऐसे तुच्छ निराधर कारणों का प्रचार करते हैं पर श्रेष्ठों को यह तर्क ग्राह्य नहीं है।

2. आक्षेपार्थियों का दूसरा कारण है कि श्री माधवाचार्य ने अपने गुरु का नाम उल्लेख नहीं किया है, इसलिये यह पुस्तक माधवाचार्य नहीं है। परन्तु माधवीय के प्रारम्भ श्लोक 'प्रणम्य परमात्मानं श्री विद्यातीर्थरूपिणम्। प्राचीनशङ्करजये सारः संगृह्यतेस्फुटम्॥' ऐसा है। इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि श्री माधवाचार्य के गुरु श्री विद्यातीर्थ थे। अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ को साक्षात् परमेश्वर रूप में ही पूजा करते हैं। डिण्डिम टीकाकार लिखते हैं' 'अनेन स्वगुरोः श्री विद्यातीर्थस्य ईश्वरावतारत्वं तत एव सर्वज्ञत्वं च सूचितम्।' श्रुति कहता है 'यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।' अतः गुरु को ईश्वरदेव समान मानना न्याय उचित है। सहज व साधारण अर्थ जो रुडी में आया है और जो सर्व साधारण लोगों की जानकारी है उस अर्थ को छोडकर बुद्धि चातुर्यता से अन्य ही कुछ दूर भावनाओं का शरण लेकर दूर का अर्थ करना उचित नहीं है। यह शास्त्र रीति भी नहीं है। श्री विद्यारण्य अपनी रचनाओं में भिन्न भिन्न तरह के नमस्कार स्तुति करते हुए देखने में आता है। आपके रचित भिन्न पुस्तकों से यह भी प्रतीत होता है कि पुस्तकों के प्रारम्भ में ही प्रथम श्लोक गुरु जी का नमस्कार होना भी कोई नियम बद्ध नहीं है। यदि आक्षेपार्थों का कारण मान लें कि यह पुस्तक अर्वाचीन काल के पण्डित से रचित ग्रंथ है जिसे श्री विद्यारण्य के नाम से प्रकाशित किया है तो यह कहना होगा कि यह नवीन रचयिता विद्वान बहुत सावधानी से नकल किया होगा और श्री माधवाचार्य के अन्य ग्रंथों की शैलि, पदमैत्री, रचना पद्धति आदि सब विषयों को अत्यन्त ध्यान में रखकर सावधानी से उन ग्रंथों के समान ही रचना किया होगा। पर इस पुस्तक में वैसा न होने से ही यह कहा जाताहै कि इस पुस्तक के रचयिता श्री माधवाचार्य ही होंगे।

3. तीसरा कारण कहते हैं कि इस पुस्तक के रचयिता ने कुछ प्रकान्ड विद्वानों का नाम लेकर, उन विद्वानों व ग्रंथकारों को श्री आचार्य शङ्कर का समसामयिक काल बतलाया है, यद्यपि इतिहास इनमें से कुछ विद्वान ग्रंथकारों को आचार्य शंकर के पूर्व काल के और कुछ आचार्य के पश्चात् काल के होने का निश्चय करता है। अभिनव गुप्ताचार्य, बाण, दण्डी, मयूर, खन्डकार श्री हर्ष, नीलकण्ठ, हरदत्ताचार्य, भट्ट भास्कर, उदयनाचार्य आदि व्यक्तियों का नाम रचयिता ने लिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से एवं व्यक्ति का सशरीर उपस्थित होने की दृष्टि से देखा जाय तो अवश्य यह रचयिता की भूल है। प्राचीन भारत की अनेक घटनायें व व्यक्ति के नाम और चरित्र अभी तक अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ है और जो सामग्री उपलब्ध हैं वह अधूरी एवं कहीं कहीं परस्पर विरोधी अवस्था में भी हैं। अनेक पुराणों व उप पुराणों के दिये हुए घटनायें भी ऐतिहासिक दृष्टि से भूल पायी जाती हैं और ऐतिहासिकों

का कहना है कि पुराण सब अर्वाचीन काल अर्थात् क्रिस्त पश्चात् छठवीं/सातवीं शताब्दी के बाद का काल है। साहित्य के स्तुत्य घटनाओं की तिथिपरक उचित रूप से अंकन नहीं हुआ है। सम्भवतः इस ऐतिहासिक क्षेत्र की उपेक्षा का कारण ऐतिहासिक मेधा की कमी रही हो अथवा इतिहास के प्रति उन संप्रदायों की उदासीनता रही हो। व्यक्तियों के नाम की जगह कहे हुए व्यक्तियों के गुण लक्षण को प्रकाशन करने के लिये, पुराकाल के कुछ रचयिताओं ने उन व्यक्तियों का नाम भी लिया है। ऐसे अनेक दृष्टान्त आर्ष ग्रंथों व पुराणों से दिया जा सकता है। काव्यों में उपमा व अन्य अलङ्कार, कल्पना शक्ति, उक्ति, रचयिता के मनोभाव आदि का अधिकाधिक समावेश होने के कारण घटनाओं की यथार्थता जानना कष्ट हो जाता है। यदि इन काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पूर्वापर संदर्भ व परिस्थिति का ध्यान रखकर किया जाय और इतिहास से लब्ध विषयों के आधार पर एवं विभिन्न विरोधी विषयों को समन्वय किया जाय तो ये सब काव्य के विषय भी चरित्र सामग्री बन सकते हैं। विदेशीय इतिहास लेखकों की दृष्टी कोण से तथा उनके ही पदानुगामी भारतीय इतिहास लेखकों व विमर्शकों के विचारों ने आधुनिक समालोचना पर व्यक्तियों का निर्णय करना तथा उस मार्ग के अवलम्बन कर आगे अनुसन्धान करना अति कठिन हो गया है। पुराकाल के रचयिताओं के भावों को याद रखते हुए एवं देशीय संस्कृति व व्यवहार व आचार विचारों को ध्यान रखते हुए, इन काव्यों की समालोचना की जाय तो अनेक विषय जो आज अग्राह्य हैं (पाश्चात्य विमर्शकों के दृष्टी कोण से) वे सब ग्राह्य बन जायेंगे। पौराणिकों व काव्य रचयिताओं ने अपने रचित पुराण व काव्य के चरित्रनायकों की महत्ता बढाने के लिये एवं प्रख्यात व्यक्ति बनाने के लिये इन प्रकान्ड विद्वानों व ग्रंथकारों का नाम देकर अपनी कल्पना जगत में डूबे हुए चरित्रनायक की प्रशंसा करने के उद्देश्य से ऐसा लिखा भी हो। अथवा यह भी हो सकता है कि इन नामके अन्य विद्वानों की उपस्थिति उस काल में रहा हो जिनका चरित्र अन्धकार के गर्भ में छिपा हो और हमलोगों को न मालूम हो। चौदहवीं शताब्दी के माधवाचार्य (श्री विद्यारण्य) को ही मंत्री माधवाचार्य एवं सायण के भ्राता श्री माधवाचार्य अभिन्न व्यक्ति होने का जैसा पूर्व काल में विश्वास किया जाता था और अन्वेषण करने पर ये सब भिन्न व्यक्ति होने का निश्चित हुआ उसी प्रकार इन नामों के अन्य विद्वान भी रहे होंगे जिनका चरित्र विवरण हमलोगों को न मालूम हो। कहा जाता है कि महाराजा सुधन्वा श्री आचार्य शङ्कर के काल में उपस्थित थे पर इतिहास अभी तक कोई सुधन्वा महाराजा का नाम भी नहीं लिया है तो क्या कहा जाय कि महाराजा सुधन्वा ही भारत में उस समय न थे? इस विषय पर अन्वेषण करने की आवश्यकता है और तब तक इस विषय पर अन्तिम निर्णय किया नहीं जा सकता है और यह भी कहा नहीं जा सकता है कि यह कथन झूठ है। क्या ऐतिहासिकों ने अपने अनुसन्धान कार्य में पूर्णता व अन्तिम सीढ़ी पहुंच चुके हैं? सम्भवतः इन प्रख्यात विद्वानों के नाम लेने से केवल उनके गुण लक्षणों का बोध होता हो न कि उन महानों का चरित्र या उनके आचार्य शंकर का समसामयिक होने का बोध करता हो। उपलक्षण न्याय यहां युक्त है और इसमें कोई दोष नहीं है। इस एक त्रुटि के कारण समस्त पुस्तक को अप्रमाणिक ठहराना मूर्खता ही होगा। आर्ष ग्रंथों में और वेदों में परस्पर विरोध निरूपण के सब विरोधों को निवारण कर एक ही ध्येय का निरूपण करना उचित व न्याय है और यहां समन्वय की आवश्यकता है। उसी प्रकार इस एक त्रुटि का भी समन्वय किया जा सकता है। आचार्य शङ्कर ने अन्य मत मतान्तरों का खन्डन किया था। इन मतान्तरों एवं उनसे प्रचारित ध्येयों का नाम लेने के बदले, रचयिता ने इन मत मतान्तरों के प्रवर्तक या नामी प्रचारकों जो आचार्य शङ्कर के पूर्व काल एवं पश्चात् काल में रहे हों, उनका नाम लिया हो।

4 और 13. कुम्भकोण मठवालों का प्रचार है कि माधवीय शङ्करविजय के अनेक श्लोक अन्यत्र उपलब्ध ग्रंथों से लिये गये हैं और ऐसे पुस्तक श्रीविद्यारण्य काल के पश्चात् रचित हैं। अतः यह पुस्तक माधवाचार्य

रचित नहीं है। ऐसा कथन न केवल भुल है पर मिथ्या प्रचार भी है। यह निस्सन्देह सिद्ध किया जा सकता है कि माधवीय का ही नकल अन्य पुस्तक रचयिताओं ने किया है। यहां तो 'चोर उलटे कोतवाल को डाटे' कहावत का चरितार्थ कर दिखा रहे हैं। एक मार्के की बात है कि जो सब पुस्तकें कुम्भकोण मठवाले नाम लेते हैं और जिनसे नकल करने का दोषारोपण करते हैं वे सब कुम्भकोण मठ में एवं तंजौर के सरस्वती महाल पुस्तकालय में तथा तंजौर जिले में ही प्राप्त होते हैं और ये सब पुस्तक पूर्व में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते थे। दोषारोपण करनेवालों का मर्म पाठकगण स्वयं जान लें। जब तक इन अर्वाचीन पुस्तकों का ठीक रचना काल एवं यथार्थ रचयिता का नाम निस्सन्देह ठीक ठीक निर्णय न कर लें तब तक यह कहना कि माधवीय ही नकल पुस्तक है सो कथन अपनी मूर्खता का प्रकाश करना है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि 'पतञ्जली चरित' श्रीरामभद्र दीक्षित द्वारा रचित है और 'शङ्कराम्युदय' श्रीराजचूडामणि दीक्षित द्वारा रचित एवं 'शङ्करविजय' (व्यासाचलीय) व्यासाचल कवि जो कुम्भकोण मठाधीष थे आपसे रचित है, इन तीनों ग्रंथों से श्लोकों को उद्धृत कर एक स्वतंत्र माधवीय शङ्करविजय के नाम से लिखा ग्रंथ है। पाठकगण इस विषय का विमर्श इसी अध्याय में आगे पायेंगे जहां इन उक्त तीन पुस्तकों का विमर्श किया गया है। उद्धृत श्लोक सब पूर्वापर सम्बन्ध श्लोकों के साथ किस पुस्तक में जमता है व रचयिताओं की शैलि एवं भावों को ध्यान रखकर तुलना किया जाय कि किस पुस्तक में न्याय संगत है तो स्पष्ठ मालूम होगा कि माधवीय से ही ये सब श्लोक चोरी की गई थी। यह विषय केवल वही व्यक्ति जान सकेगा जो इन उक्त तीनों पुस्तकों को पढें और माधवीय को भी पढें तथा पश्चात् तुलना करें। कहेजानेवाले नवीन व्यासाचलीय व शङ्कराम्युदय पुस्तकों के पूर्वापर सम्बन्ध श्लोकों एवं उन पुस्तकों की शैली, पदमैत्री व रचयिताओं के भावों की ओर ध्यान दें तो उद्धृत श्लोक माधवीय शङ्करविजय से ही लिये जाने का सिद्ध करता है। कुम्भकोण मठवालों को माधवीय शङ्करविजय कांटा सा उनके आंखों में चुबता है। यह माधवीय पुस्तक श्रृङ्गेरी का महत्त्व या यशोगान न गाता है या न तो किसी अन्य की निन्दा करता है। वास्तव में आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित आम्नाय मठों का भी उल्लेख नहीं करता है। कुम्भकोण मठ से उक्त तीन पुस्तकों का अन्वेषण दक्षिण भारत के विद्वान कर रहे हैं और अब तक सामग्री जो मिलें हैं उससे यह अनुमान किया जाता है कि उक्त पुस्तक में श्लोक न केवल माधवीय से ही लिये गये हैं पर अन्य श्लोक भी अप्रकाशित अन्य पुस्तकों से लेकर स्वतंत्र रूप से प्रकाश किये गये थे। आशा करता हूं कि शीघ्र ही इस विषय को भी प्रकाश कर सकूंगा। पाठकगणों के सुविधा के लिये उक्त कहे तीन पुस्तकों में माधवीय से उद्धृत श्लोकों का विवरण नीचे दिया जाता है। यह सूची संपूर्ण नहीं है। माधवीय शङ्करविजय से पतञ्जली चरित में 16 श्लोक, शङ्कराम्युदय में 145 श्लोक एवं कहेजानेवाले व्यासाचलीय में 509 श्लोक लिये गये हैं।

ऐतिहासिक विद्वान बतलाते हैं कि श्री रामभद्र दीक्षित जिन्होंने 'जानकीपरिनय' नाटक पुस्तक की रचना की थी, आप तंजौर राज्य के राजाशाहजी (1684/1712 ई०) के समय के हैं। कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपने 'पतञ्जली चरित' भी रचना की थी। कुम्भकोण मठ का प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटी प्रदीपम' में कहा गया है कि नेरूर के श्री सदाशिवब्रह्म के भाई विद्यार्थी श्री रामभद्र दीक्षित एवं श्रीधरवेंकटेश्वर अय्यावाळ् थे। इसी पत्रिका में अन्य एक जगह यह भी उल्लेख है कि श्री सदाशिवब्रह्म का काल 1710 ई० का प्रारम्भ था। अर्थात् श्री रामभद्र दीक्षित ने पतञ्जली चरित की रचना 1710 ई० में कई वर्ष पश्चात् ही किया होगा। 1710 ई० में जब आप बाल्यावस्था विद्यार्थी थे तब आपसे यह ग्रंथ रचा न होगा। माधवीय पुस्तक का नाम संक्षेप शङ्करविजय है। कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र अपने को आत्मप्रकाशेन्द्र का शिष्य कहते हैं जिनका निर्याण काल 1704 ई० का है। अतः आत्मबोध का काल 17 वीं शताब्दी उत्तरार्ध का होना निश्चित होता है या 17 वीं शताब्दी का अन्त भी कहा

जा सकता है। आत्मबोधेन्द्र ने 'सुषमा' पृष्ठ 68 में 'संक्षेप शङ्करविजय' का नाम लिया है। अर्थात् माधवीय 17 वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध या अन्त काल का उपलब्ध पुस्तक निश्चित होता है। 17 वीं शताब्दी में उपलब्ध पुस्तक में किस प्रकार 1710 ई० के पश्चात् काल के रचित पुस्तक से श्लोक चोरी की जा सकती है? कुम्भकोण मठ का प्रचार मिथ्या है। इन प्रचारों के साथ कुम्भकोण मठ यह भी प्रचार करते हैं कि माधव नाम का एक 'नवकालिदास' उपादि प्राप्त विद्वान ने 1710 ई० में माधवीय शङ्करविजय की रचना की थी और इसमें इस 'नवकालिदास' माधव ने श्री रामभद्र दीक्षित द्वारा रचित 'पतञ्जली' चरित के श्लोक उद्धृत किया था। पर कुम्भकोण मठ का उक्त कथन है कि रामभद्र दीक्षित नेरुर श्री सदाशिवब्रह्म के भाईविद्यार्थी थे और श्री सदाशिवब्रह्म का काल 1710 ई० का है, इससे प्रतीत होता है कि 'पतञ्जली चरित' पुस्तक की रचना 1710 ई० के कई वर्ष बाद की ही है। प्रश्न उठता है कि कहेजानेवाले माधव नवकालिदास ने 1710 ई० में किस प्रकार पतञ्जली चरित्र से श्लोक उद्धृत कर सकते हैं जब वह पुस्तक आपके समय में लिखा ही न गया था। कुम्भकोण मठ के प्रमाण से प्रतीत होता है कि माधवीय 17 वीं शताब्दी में उपलब्ध होता था। पूर्वकाल के रचयिता से आगामी काल में रचे जाने वाले पुस्तक का नकल करना असम्भव है। इस कथन से यह भी निश्चित होता है कि कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि माधव नवकालिदास ने शङ्करविजय की रचना की थी सो भी मिथ्या है। बिना कोई प्रमाण दिये अथवा अनुमान करने के लिये बिना कोई सामग्री के आधार पर स्वेच्छावाद से मिथ्या प्रचार करना है कि माधव ने 1710 ई० में इसे रचा था सो कार्य विद्वानों को शोभता नहीं है। न मालूम क्यों ऐसी गन्दी कीचड माधवीय शङ्करविजय पर कुम्भकोण मठाभिमानियों से फेंका जा रहा है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि आपके 54 वां मठाधीश व्यासाचल ने (1498/1507 ई०) इस पुस्तक की रचना की थी चूंकि माधवीय में व्यासाचल का नाम लिया गया है और अब प्रचारित संक्षेपशङ्करविजय में इस उक्त व्यासाचलीय से श्लोक उद्धृत किये गये हैं। यह प्रचार भी भूल है। मदरास राजकीय पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित (1954 ई०) व्यासाचलीय शङ्करविजय को यदि पाठकगण पढें और इस पुस्तक के सम्पादक से लिखा प्रस्तावना पढें तो मालूम होगा कि उक्त व्यासाचल कुम्भकोण मठाधीष न थे। माधवाचार्य का दूसरा नाम ही व्यासाचल था। इस विषय पर आलोचना पाठकगण आगे पायेंगे। मार्के की बात है कि कहेजानेवाले कुम्भकोण मठाधीष से रचित पुस्तक में कांची का नामों निशान नहीं है। इस मिथ्या प्रचार की 1954 ई० में भन्डाफोड हुई। पाठकगण आगे पढेंगे जहां यह निस्सन्देह सिद्ध किया गया कि कहेजानेवाले व्यासाचलीय शङ्करविजय अर्वाचीन काल का है और इसका मूल माधवीय है।

'शङ्कराभ्युदय' का काल भी अर्वाचीन है। कहाजाता है कि श्रीराजचूडामणिदीक्षित ने 'तंत्रशिखामणी' ग्रंथ 1637 ई० में रचा था। अब कुम्भकोणमठ से प्रचार होता है कि आपने शंकरचरित्र शंकराभ्युदय ग्रंथ भी रचा था। यदि इस कथन को मान लें तो यह कहना होगा कि शङ्कराभ्युदय का रचना काल 17 वीं शताब्दी पूर्वार्ध का था। यह एक अपूर्ण पुस्तक 6 सर्ग का होना कुम्भकोण मठ ने प्रथम प्रचार किया था। पश्चात् 1912 ई० में अचानक सातवां व आठवां सर्ग प्राप्त होने का प्रचार भी हुआ। तथापि यह पुस्तक अपूर्ण ही है। कुम्भकोण मठ से स्वरचित व स्वप्रकाशित पुस्तक जिस पर अनुसन्धान विद्वानों ने आलोचना नहीं की है तथा इसकी प्रति कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता उस पर आधार कर विवाद विषयों पर निर्णय करना भूल होगा। कुम्भकोण मठ का प्रचार था कि माधवीय के रचयिता 19 वीं शताब्दि के भट्ट श्रीनारायण शास्त्री थे पर जब आपको यह मालूम हुआ कि 1780 ई० के प्रकाशित पुस्तकों में माधवीय का उल्लेख है तो आप प्रथम मिथ्या प्रचार छोडकर

द्वितीय मिथ्या प्रचार करने लगे कि माधव नवकालिदास ने 1710 ई० में रचा था पर जब यह कथन भी असत्य ठहराया गया तो तृतीय प्रचार शुरु हुआ कि 15 वीं शताब्दी के कुम्भकोण मठाधीष व्यासाचल ने शङ्करविजय रचना की थी जिससे अर्वाचीन काल में माधवीय का प्रचार हुआ। पर यह भी असत्य ठहराया गया है जिसका विवरण पाठकगण 'व्यासाचलीय' शीर्षक विमर्श के नीचे पायेंगे। 14 वीं शताब्दी का रचित पुस्तक माधवीय से व्यासाचलीय (अर्वाचीन 19 वीं शताब्दी), 18 वीं शताब्दी (मध्य भाग) के श्रीरामभद्रदीक्षित एवं 17 वीं शताब्दी मध्य भाग के श्रीराजचूडामणि दीक्षित आदियों ने नकल किया होगा यदि ये सब पुस्तक वास्तव में आपलोगों से रचित हों। अतः 'इन तीनों पुस्तकों से अनेक श्लोक माधवीय में लिये गये हैं' ऐसा कहना मिथ्या है।

कुम्भकोण मठ के प्रमाण पुस्तक 'सुषमा' में श्रीआत्मबोधेन्द्र कहते हैं कि 'संक्षेप शङ्करविजय' के रचयिता ने भूल से आद्यशङ्कराचार्य के पश्चात् पुनः अवतार लिये आचार्य शङ्कर के चरित्र घटना को आद्य शङ्कराचार्य के चरित्र घटना होने की बात माना है। सुषमा पृष्ठ 68 में लिखा है 'इदमेव अधिकाश्मीरं अस्य अखिलवित्पीठाधिरोहणं आदिमाचार्याणां इति भ्रेमुः विद्याशङ्करविजय संक्षेपशङ्करविजयकारादयः।' आत्मबोध जब व्यासाचल का नाम लेते हैं तो आप माधवीय को ही कहते हैं न कि नवीन व्यासाचल जो अब उपलब्ध होता है। माधवीय का नकल ही नवीन व्यासाचल है। 'संक्षेपशङ्करविजय' नाम केवल माधवीय को ही कहते हैं। जब आत्मबोधेन्द्र पुस्तक का नाम लेते हैं, आप रचयिता को ही बोध करते हैं। अतः कुम्भकोण मठ का गुरुरत्नमाला से भी प्राचीन पुस्तक माधवीय है और इसे उन दिनों में व्यासाचलीय भी कहा जाता था। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि 'सुषमा' का रचना काल *1720* ई० है। अर्थात् यदि *1720* ई० का कथन मान लें तो माधवीय 1720 ई० के पूर्व का होना निश्चित होता है।

गोविन्दनाथ एवं केरलीय शङ्करविजय दोनों भिन्न पुस्तक नहीं हैं जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। क्योंकि जो पुस्तक केरलीय शङ्करविजय कहकर प्रचार होता है वह सब विषय अक्षरसः गोविन्दनाथ में ही है। व्यासाचलीय की प्रशंसा में नवीन व्यासाचलीय पुस्तक के संपादक कहते हैं कि गोविन्दनाथ ने उक्त पुस्तक की प्रशंसा यों की है 'सर्वागमास्पदं वन्दे व्यासाचलमिमं कविम्। बभूव शङ्कराचार्यकीर्ति कल्लोलिनी यतः।' यहां एक बात ध्यान देने की है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि व्यासाचल सन्यासी थे और आप कुम्भकोण मठाधीष थे पर गोविन्दनाथ व्यासाचल को स्पष्ठ 'कवि' कहते हैं। नवीन व्यासाचलीय के संपादक आगे केरलीय शङ्करविजय से उद्धृत कर कहते हैं 'अत्युन्नतस्य काव्यद्रोर्व्यासाचल महीरुह'। परन्तु यह श्लोक भी गोविन्दनाथ में पाये जाते हैं। अर्थात् केरलीय शङ्करविजय ही गोविन्दनाथ कृत श्रीशङ्कराचार्य चरितम् है। भिन्न भिन्न स्थानों में समयानुसार दो नाम देकर पामर लोगों को भ्रम में डालने का यह एक मार्ग है। व्यासाचल कवि का उल्लेख से माधवीय का ध्योत होता है। क्योंकि माधवाचार्य अपने को व्यासाचल कहा है 'धन्यो व्यासाचलकविवरस्तत्कृतिज्ञाश्च धन्याः'। डिण्डिम टीकाकार लिखते हैं 'व्यास इवाचलः स्थिरश्चासौ कविश्रेष्ठश्चेति व्यासाचल कविवरो माधवो धन्यः कृतकृत्यः।' 'व्यासो भगवान् बादरायणः प्रसिद्ध एव तद्वदचलः सर्वमान्यत्वेनाखण्ड्यः स चासौ कविवर श्चेति तथा।' गोविन्दनाथ भी व्यासाचल को कवि ही कहा है और इसका मूल व्यासाचल कहा गया है। गोविन्दनाथ कहते हैं 'ब्रह्मा के अवतार विश्वरूप' हैं। पर नया कल्पित व्यासाचल ऐसा कहता नहीं है यद्यपि माधवीय ऐसा ही उल्लेख करता है। ऐसे उदाहरण इन दोनों पुस्तकों का अनेक दिया जा सकता है। अतः गोविन्दनाथ से कहा हुआ व्यासाचल कवि माधवीय ही है। गुरुरत्नमाला रचयिता एवं टीकाकार आत्मबोधेन्द्र ने श्रीविश्वनाथ को चान्डाल रूप में आचार्य शङ्कर के पास आने का वृत्तान्त कहा है और टीकाकार कहते हैं कि यह विषय 'व्यासाचलीय' में है—'विस्तृतमिदं व्यासाचलीये'। परन्तु नवीन प्रकाशित

व्यासाचलीय में इस घटना का उल्लेख नहीं है और माधवीय में यही श्लोक दिया गया है। अतः टीकाकार के अनुसार भी व्यासाचलीय अर्थात् माधवीय ही है न कि नवीन प्रकाशित व्यासाचलीय। गुरुरत्नमाला कहता है कि शङ्कर के पिता ने श्रीशङ्कर का उपनयन किया था और पश्चात् ही आपका देहान्त हुआ। परन्तु नवीन व्यासाचलीय उपनयन पूर्व ही मरने का वृत्तान्त देता है। इस विषय का विवरण व्यासाचलीय श्लोक और माधवीय चतुर्थ सर्ग का 11 वां श्लोक दोनों समान हैं। नवीन प्रकाशित व्यासाचलीय भी यही श्लोक देता है पर कुछ शब्दों का अदल बदल किये गये हैं। इससे भी मालूम होता है कि माधवीय ही व्यासाचलीय है। माधवीय की परिष्कृत्य प्रति व्यासाचलीय है न कि व्यासाचलीय का प्रति माधवीय। यदि नवीन प्रकाशित व्यासाचलीय को माधवीय के साथ मिलाया जाय तो स्पष्ट विदित होगा कि माधवीय का लगभग 520 श्लोक नवीन व्यासाचलीय में लेकर एक परिष्कृत्य प्रति लिखकर तैय्यार किया गया था।

व्यासाचलीय का प्रथम अध्याय कहता है कि केरळ देश के कालटी ग्राम में एक ब्राह्मण जन्म लिया। श्लोक 2 से 42 तक माधवीय अध्याय दो के 6 से 46 श्लोक हैं। जन्म लिये ब्राह्मण का विवरण प्रारम्भ में दिया नहीं गया है पर व्यासाचलीय चतुर्थ अध्याय में प्रथम बार विवरण दिया गया है। प्रथम अध्याय में इस ब्राह्मण के पिता का नाम साधारण रीति से उल्लेख है। इस त्रुटि का कारण केवल यही है कि प्रथमाध्याय के पूर्वापर सम्बन्ध के सब श्लोक उस जगह से निकाल कर अन्य अध्याय में दिये गये हैं। कथा विवरण पूर्वापर सम्बन्ध के साथ वर्णन करना ही न्याय व उचित है जैसा कि माधवीय में उचित रूप में किया गया है।

माधवीय द्वितीय सर्ग 47 श्लोक को दो भाग करके इसके बीच में 22 एवं 117 श्लोक व्यासाचलीय के पूर्ण द्वितीय सर्ग एवं तृतीय सर्ग में उपमन्यु की कथा वर्णित है। व्यासाचलीय के चतुर्थ सर्ग 3 से 30 श्लोक माधवीय सर्ग दो के 49/65, 71/75 एवं 79/84 श्लोक ही हैं। माधवीय में दिये पूर्वापर सम्बन्ध की उचित कथा विवरण को अदल बदल कर एक नवीन व्यासाचलीय तैय्यार हुआ है। व्यासाचलीय चतुर्थ सर्ग के 49/61, 63 एवं 64 श्लोक सब माधवीय पांचवे सर्ग के 68 से 80 एवं 105/106 से ही लिये गये हैं। व्यासाचलीय के श्लोक 71/76, 80/82, 85/86 सब माधवीय सातवें सर्ग के 23/28, 39/40, 44, 57/58 श्लोक हैं। एक मार्के की बात है कि व्यासाचलीय में श्री पद्मपाद का आचार्य शङ्कर से मिलन, कृष्णकाय ब्राह्मण रूप में आये श्री व्यास के साथ आचार्य शङ्कर का विवाद होने के पश्चात्, ही उल्लेख है। परन्तु सब प्रामाणिक पुस्तक श्री पद्मपाद की उपस्थिति इस विवाद के बीच में उल्लेख करता है। श्री पद्मपाद का वर्णन श्लोक 87 से 92 तक में किया गया है जो माधवीय छठवें सर्ग का 1 से 5 एवं 14 वां श्लोक हैं। व्यासाचलीय में आचार्य शङ्कर की मां का देहान्त वर्णन पहिले ही किया गया है (श्लोक 95, 96, 99, 101/103) जो माधवीय चौदहवें सर्ग श्लोक 30, 35, 42, 48/50 ही हैं। माधवीय के कथाविवरण को हेरफेर कर नवीन व्यासाचलीय तैय्यार हुआ है।

व्यासाचलीय सर्ग पांच में आचार्य शङ्कर का प्रयाग गमन एवं कुमारिलभट्ट के साथ दर्शन वर्णन है और इसके श्लोक 3, 5, 9/31 सब माधवीय सातवें सर्ग के 64, 66, 72, 79 से 100 हैं; व्यासाचलीय श्लोक 35/36 माधवीय सातवें सर्ग के 114/115 श्लोक हैं। व्यासाचलीय में एक विषय ध्यान देने की बात है कि इसके रचयिता ने श्री मण्डनमिश्र एवं श्री विश्वरूपाचार्य को भिन्न व्यक्ति होने का कहा है और श्री कुमारिल भट्ट आचार्य शङ्कर को 'मगधवासी विश्वरूप' से मिलने को कहते हैं (श्लोक 34/36)।

व्यासाचलीय सर्ग छः में आचार्य शङ्कर का श्री विश्वरूप के निवासस्थल गमन एवं वहां घटित घटनाओं का वर्णन है। सर्ग के प्रारम्भ में वर्णन है कि आचार्य शङ्कर श्री विश्वरूप के घर में भिक्षा के लिये बैठते हैं और उभयभारती सारे पकवान परोसती हैं। पश्चात् 70 श्लोक अन्य विषयों का वर्णन करते हुए तत्पश्चात् ही उभयभारती आचार्य शङ्कर के हाथ आपोचन देती है। यह असंगत है क्यों कि पकवान परोसने के बाद अथिती को आपोचन देना ही उचित व न्याय है। श्लोक 9 से 77 तक उभयभारती का वर्णन है जो माधवीय सर्ग तीन के श्लोक 10 से 77 ही हैं। व्यासाचलीय श्लोक 84 से 87 माधवीय सर्ग 8 के 45/48 श्लोक हैं। श्लोक 91/95 एवं 97/101 सब माधवीय के श्लोक 61/65, 67/69 और 72/73 ही हैं। श्लोक 104 (माधवीय सर्ग 10 का 76 श्लोक) कहता है कि आचार्य शङ्कर ने विश्वरूप को आत्मविचार पाठ पढाया और फिर 'कहा'। परन्तु क्या 'कहा' सो वर्णन आगे अध्याय में दिया गया है जो सब श्लोक माधवीय सर्ग 10 का 77/103 श्लोक ही हैं। श्री विश्वरूप को सन्यासाश्रम इसी समय देकर आपका नाम श्री सुरेश्वराचार्य रक्खा गया था और व्यासाचलीय में इसी समय (सन्यासाश्रम देने के पश्चात् ही) कहा गया है कि आचार्य शङ्कर ने सुरेश्वराचार्य को अपने से रचित भाष्य पर वार्तिक लिखने को कहा (व्यासाचलीय सातवें सर्ग 28/30 श्लोक जो माधवीय के तेरहवें सर्ग का 2/4 श्लोक हैं)। व्यासाचलीय का यह वर्णन उक्त कथा संदर्भ में असम्भव दीखता है। आचार्य शङ्कर विश्वरूप को सन्यासाश्रम देकर तुरन्त ही वार्तिक लिखने को कहा जब सुरेश्वराचार्य ने शांकरभाष्य का अध्ययन भी प्रारम्भ न किया था, यह असम्भव है। व्यासाचलीय श्लोक 37/45 एवं 46/71 माधवीय तेरहवें सर्ग का 6/14 एवं 40/48, 51/61 तथा 64/70 श्लोक ही नकल किये गये हैं। श्लोक 72 श्री पद्मपाद का तीर्थ यात्रा प्रारम्भ करता है जो माधवीय में एक अलग सर्ग ही है। व्यासाचलीय श्लोक 72/101 माधवीय 14 सर्ग का 1/26, 28 एवं 56/58 श्लोकों का नकल है। माधवीय का 59 श्लोक ही व्यासाचलीय का 102 श्लोक है। 42 श्लोक सब जो 103 श्लोक से प्रारम्भ होता है सो सब कांचीपुर का माहात्म्य है।

व्यासाचलीय सर्ग 8 के श्लोक 1/2 माधवीय 14 सर्ग का 60/61 श्लोक हैं। व्यासाचलीय श्लोक), 19/20, 36/70 माधवीय 14 सर्ग का 62/71, 74/90, 92/105, 107/110 श्लोक हैं। श्लोक 3 माधवीय का चौदहवें सर्ग का 114/133 श्लोक हैं। श्लोक 94 से अन्त तक 47 श्लोक श्रीरामेश्वर में प्रतिष्ठा विवरण दिया गया है।

व्यासाचलीय का नवम सर्ग श्लोक 1 से 28 तक सेतु माहात्म्य दिया गया है। श्लोक 29 से 33 तक माधवीय 14 वें सर्ग का 138/142 श्लोक हैं। यहां एक विषय ध्यान देने की है कि व्यासाचलीय में श्रीपद्मपाद को उनके मामा से विष खिलाने का विवरण देकर यहां समाप्त किया है। यदि उनकी बुद्धि भ्रष्ठ एवं मन्द हो गया हो तो 'पद्मपादिका' ग्रंथ का होना भी असम्भव है। माधवीय के अन्य श्लोक जो इन विवरणों को देकर पश्चात् कहता है कि आचार्य शङ्कर के आशीष से श्रीपद्मपाद की बुद्धि पुनः तीव्र हो गई और पश्चात् आपने अपने मेधा व स्मरण शक्ति से आचार्य शङ्कर की सहायता पाकर पुनः 'पद्मपादिका' लिख डाली थी। यह कथा व्यासाचलीय में उद्धृत करना भूल गये। कापालिक का विवरण श्लोक 35 में दिया है और श्लोक 38 से 49 तक माधवीय सर्ग ग्यारह का 23, 16, 17, 19, 27/32, 37/38 श्लोक ही हैं। श्लोक 52 एवं 54/61 माधवीय सर्ग ग्यारह का 44, 60/67 श्लोक हैं। पश्चात् के 21 श्लोक श्रीविष्णु की स्तुती की है। श्लोक 83 माधवीय ग्यारहवें सर्ग का 74 श्लोक है। श्रीतोटकाचार्य की कथा 84/88 एवं 95/96 में दिया गया है जो माधवीय बारहवें सर्ग के 70/74 एवं 84/85 हैं।

व्यासाचलीय का दसवां सर्ग आचार्य के शिष्यों द्वारा आचार्य को अभिचार से प्राप्त रोग का निवारण करने का प्रयत्न सब वर्णित है। श्लोक 1/3, 5/12 एवं 17 माधवीय चौदहवें सर्ग का श्लोक 4/15 का नकल ही है। यहां चार श्लोक सूर्योदय एवं सूर्यास्त का वर्णन व्यासाचलीय में पाया जाता है जो आचार्य शङ्कर के प्रस्तुत स्थिति एवं कथा के पूर्वापर सम्बन्ध से जमता नहीं है। व्यासाचलीय श्लोक 18 से अन्य विषय प्रारम्भ होता है जब आचार्य शङ्कर के शिष्य जो आचार्य के रोग से स्वयं दुःखित होकर उस रोग निवारणार्थ वैद्यराज की खोज में एवं दवा प्राप्त करने के प्रयत्न में थे, इस ध्येय व कार्य को भूलकर, भ्रमण में निकल पडते हैं। यहां साक्य पर्वत दृश्यों का वर्णन, समुद्रवर्णन, ऋतुवर्णन आदि हैं जो सब काव्यालङ्कार युक्त हैं। व्यासाचलीय ग्यारहवें सर्ग में वर्षाऋतु, हेमन्त, शिशिर आदि का वर्णन 78 श्लोक तक किया गया है। व्यासाचलीय दसवें सर्ग के 117 श्लोक एवं ग्यारहवें सर्ग के 77 श्लोक न केवल आचार्य चरित्र से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखता है पर इन वर्णनों से आचार्य चरित्र पर धब्बा भी लगता है। एक तरफ आचार्य शङ्कर रोग से पीडित शय्या में पडे हुए हैं और दूसरे तरफ उनके शिष्य जो वैद्यराज व दवा लाने के लिये गये थे वे अपना ध्येय भूल कर मायामोह व प्रकृति की क्रीडा में लिप्त होकर भ्रमण कर रहे थे जैसा कि व्यासाचलीय का वर्णन है। माधवीय सोलहवें सर्ग के दो श्लोक 15/16 में वैद्यराज लाने का निर्णय एवं वैद्यराज आनेका वर्णन भी है। मार्के की बात है कि व्यासाचलीय के इन 194 अनावश्यक श्लोकों के पश्चात् ग्यारहवें सर्ग का 78 श्लोक माधवीय का ही प्रतिध्वनि करता है और श्लोक 79 से 92 तक वैद्यराज का आचार्य के साथ वार्तालाप का वर्णन है। श्लोक 93/95, 98/99, 101/103 माधवीय सोलहवें सर्ग का 18/26 श्लोक हैं। माधवीय चतुर्थ सर्ग का 1/3, 11/17; पांचवें सर्ग का 4, 2, 3 61/67 श्लोक सब व्यासाचलीय ग्यारहवें सर्ग के श्लोक 113 से 125 एवं 127/134 ही हैं।

व्यासाचलीय के बारहवें सर्ग में हस्तामलक का वर्णन है। माधवीय सर्ग *12* के *40/42*, श्लोक ही व्यासाचलीय के *2/4*, *11/29* श्लोक हैं। आचार्य शंकर का सर्वज्ञपीठारोहण काश्मीर में उल्लेख है–श्लोक *30/55*–जो माधवीय सोलहवें सर्ग का *55/60*, *62/81* ही हैं। परकाय प्रवेश कथा जो माधवीय के नवम सर्ग के *69*, *70*, *105/106* श्लोक एवं सर्ग दस के *17/18* हैं सो सब व्यासाचलीय के बारहवें सर्ग में *62*, *63*, *66*, *67* *70/71* हैं। श्लोक *79/82* माधवीय सोलहवें सर्ग का *84/87* हैं। माधवीय श्लोक जो 'इत्थं निरुत्तरपदां स विधायदेवीं ... ... याज्ञवल्क्यः' है, इस श्लोक को व्यासाचलीय में कुछ अदल बदल कर जोड भी लिया गया है— 'एवं निरुत्तरपदां स विधाय देवीं ... ... देशमयं जगाम'। कुम्भकोणमठ के आत्मबोधेन्द्र इससे भी एक सीडी और आगे ही बढे हैं जब आप जानबूझ कर 'सुषमा' में एक स्वार्थ अर्थ देने वाला स्वरचित श्लोक जोड कर व्यासाचलीय का नाम लिया है। इस कल्पित उद्धरण के साथ अन्य चार कल्पित व स्वरचित श्लोक भी जोड लिया है जो सब तंजोर जिले में उपलब्ध अमुद्रित प्रतियों में एवं प्रकाशित व्यासाचलीय में प्राप्त नहीं होते।

पाठकगण अब जान गये होंगे कि किसप्रकार माधवीय से श्लोकों को उद्धृत कर नवीन ग्रंथ व्यासाचलीय बना लिया गया है। व्यासाचलीय में प्रथम अध्याय से बारहवें अध्याय तक दिये हुए असम्बन्ध, अनुचित एवं अनावश्यक श्लोकों को निकाल दिया जाय तो शेष व्यासाचलीय पुस्तक माधवीय ही कहना पडेगा। केवल इतना फरक होगा कि घटनाओं का विवरण व्यासाचलीय में आगे पीछे दी गई है। सोलह सर्ग के माधवीय जिसमें लगभग *1850* श्लोक हैं इस पुस्तक को बारह सर्ग के व्यासाचलीय (जिसमें करीब *400* श्लोक कथा असम्बन्ध, अनुचित विषयों का वर्णन एवं अनावश्यक श्लोक हैं) जिसमें *1200* श्लोक से कम हैं इस पुस्तक का संग्रह माधवीय है ऐसा कुम्भकोण

मठ प्रचार करते हैं। पाठकगण स्वयं जान लें कि कुम्भकोणमठ के प्रचार में कितनी सत्यता है। इस 1200 श्लोक में करीब आधा माधवीय के श्लोक हैं और बाकी आधा असम्बन्ध, अनावश्यक एवं अनुचित विषयों का वर्णन है जिसका सम्बन्ध आचार्य चरित्र से कुछ नहीं रखता है। ऐसे नवीन कल्पित पुस्तक को माधवीय का मूल कहना केवल मूर्खता है।

माधवीय शंकरविजय से उद्धृत श्लोकों का विवरण

माधवीय शंकरविजय		पतञ्जलीचरित		शङ्कराभ्युदय		व्यासाचलीय	
अ०	श्लोक	अ०	श्लोक	अ०	श्लोक	अ०	श्लोक
2	6/46					1	2/42
	49/65, 71/75, 79/84					4	1, 3/30
3	10/77					6	9/77
5	87	8	18				
	90/95, 98/101		19, 62/70				
	68/80, 105/106					4	49/61, 63, 64
	4, 2, 3, 60/67					11	123/125, 127/134
6	54, 55, 57/59	8	45/46, 60/62				
[redacted]				1	62/64		
				2	15/19		
						4	87/91
				2	1, 3, 4, 7, 10/13, 20/22, 24/26, 29, 33, 35/39, 41/44		
						4	71/76, 80/82, 85/86
						5	3, 5, 9/31, 35/36
						6	1
	, 133			2	48/50		
	45/48. 61/65, 67/69,					6	84/87, 91/95,
	72/73						97/101
9	75/86, 90			4	34/45, 47/48		
	69, 70, 105, 106					12	62, 63, 66, 67
10	75			2	51		
	76					6	104
	77/103					7	1/27
	17/18					12	70/71

माधवीय शंकरविजय		पतञ्जलीचरित		शङ्कराभ्युदय		व्यासाचलीय	
अ०	श्लोक	अ०	श्लोक	अ०	श्लोक	अ०	श्लोक
11	20/21, 14, 43, 45/52, 71/73			4	64/66, 69/77, 79/81		
12	82, 39, 89			3	40, 43, 46		
	1/37			4	1, 2, 6, 7, 14/33, 50/62		
	70/74, 84/85					9	84/88, 95/96
	40/42, 44/58, 60, 59, 61, 62					12	2, 3, 4, 11/29
13	21, 49, 50, 67, 69, 71/73			2	53/60		
	2, 3, 4. 6/14, 40/48					7	28/30, 37/54
	51 61, 64/68, 70					7	55/71
14	29, 39, 40, 41, 45/47, 149/156, 159/162, 166/168, 170/174			3	2, 5, 6, 7, 15, 16, 19/38		
	11, 30, 35, 42, 48/50					4	92, 95, 96, 99, 101/103
	1/26					7	72/97
	28, 56/58					7	98/101
	62/69, 70, 71, 74/79					8	3/10, 19, 20, 36/41
	80/90, 92/105, 107/110, 114/133					8	42/70, 74/93
	138/142					9	29/33
	16, 17, 19, 23, 27/32, 37/38					9	39/41, 38, 42/49
	44, 60/67, 74					9	52, 54/61, 83
16	3, 28/29			3	39, 41/42		
	82, 91/92			7	65, 68, 69		
	4/15					10	1/3, 5/12, 17
	18/26					11	93/95, 98, 100/103
	55/60, 62/81					12	30/55
	84/87					12	79/82
	I, 2, 3, 11/17					11	113/122

5. पांचवां आक्षेप है कि शङ्करविजय रचयिता ने अपने आपको नवकालिदास का उपादी दी है (प्रथमसर्ग दसवां श्लोक) और श्री विद्यारण्य या माधवाचार्य को यह उपादी कहीं भी न उल्लेख होने से, यह काव्य अन्य किसी माधवाचार्य से रचित है। माधवीय मूल श्लोक 'प्रौढोऽयं नवकालिदास कविता संतान संतानको ... ... ' के टीका में टीकाकार लिखते हैं 'अयं प्रौढो नवकालिदासस्य माधवस्य कविता संतानरूपः ... ...'। माधवीय के टीकाकार ने 'वागेषा नवकालिदासविदुषो दोषोज्झिता दुष्कवित्रातैर्निष्करुणैः क्रियेत विकृता धेनुस्तुरुष्कैरिव।' श्लोक की टीका में लिखते हैं 'तथैवंभूता सर्वदोषविनिर्मुक्ता नवीनकालिदासस्य विदुषोमाधवस्यैषा वाग्दुष्टानां कवीनां समुदायैरत एव निष्करुणैर्विकृता विकारमन्यथाभावं प्राप्ता क्रियेतेत्यर्थः। 'नवकालिदासस्य माधवस्य' कहने से ही माधवाचार्य को ही यह पद संकेत करता है न कि अन्य कोई दूसरे काल का नवकालिदास माधवाचार्य। इस पुस्तक के प्रारम्भ में श्री विद्यातीर्थ का नाम लेने से प्रतीत होता है कि यह माधवाचार्य रचित ग्रंथ है और नवकालिदास उपादीरूप में प्रयोग किया गया है। कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों व पत्रों में अन्य विषयों की पुष्टी के लिये माधवीय टीकाकार का व्याख्या को स्वीकार कर एवं टीकाकार की विद्वत्ता पर प्रशंसा भी करते हुए बराबर प्रचार करते हुए आ रहे हैं। टीकाकार का व्याख्या जब कुम्भकोण मठ के लिये प्रमाण है और इस आधार पर अपने प्रचारों की पुष्टी करते हैं तो क्यों अब नवकालिदास के व्याख्या में टीकाकार के अभिप्राय 'नवकालिदासस्य माधवस्य' को स्वीकार नहीं करते? कुम्भकोण मठ से माधवीय पर कीचढ फेंकने की चेष्टा में टीकाकार की व्याख्या सहायता न करने से आपको यह ग्राह्य नहीं है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 'भागवत्चम्पू' के रचयिता 'अभिनव कालिदास माधव भट्ट' ने इस शङ्करविजय को लगभग 1710 ई० में रचा है। यदि इसे मान लें तो प्रश्न उठता है कि 'प्रणम्य विद्यातीर्थ' पद जो माधवीय में है और जो माधवाचार्य के गुरु का ही संकेत करता है तो क्या अभिनवकालिदास माधव भट्ट के गुरु श्रीविद्यातीर्थ थे? अभिनवकालिदास माधव भट्ट के गुरु अन्य ही विद्वान (गृहस्थ) थे और आपका काल श्रीविद्यारण्य से लगभग 350 वर्ष उपरान्त का ही है। अब कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि माधवीय शङ्करविजय का प्रारम्भ श्लोक 'प्रणम्य परमात्मानं श्रीविद्यातीर्थरूपिणम्' क्षिप्त श्लोक है। परन्तु जितने पुस्तक मदरास, कल्याणपुरी, पूना (चार संस्करण), काशी, अहमदाबाद, आदि स्थलों से मुद्रित हुए हैं उन सबों में यह श्लोक है। प्राचीन हस्तलिपि प्रतियों के आधार पर ही ये सब मुद्रित हुई हैं। अमुद्रित हस्तलिपि प्रतियां काशी, मिर्जापुर, प्रयाग, बडौदा, पूना, धारवार, मदरास, ढाका, नवद्वीप आदि स्थलों में जो प्राप्त होते हैं इन सबों में भी यह श्लोक पाया जाता है। सर्वत्र उपलब्ध प्रतियां क्या परिष्कृत्य क्षिप्त हैं? प्रश्न पूछा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्य—एक परमहंस सन्यासी व अद्वितीय विद्वान —अपने को क्या 'नवकालिदास' का उपादी स्वयं दे सकते हैं? परन्तु यह कहा जाता है कि यह पुस्तक श्रीविद्यारण्य के पूर्वाश्रम में जब आप माधवाचार्य के नाम से प्रसिद्ध थे उस समय का रचा हुआ पुस्तक हो और पश्चात् सन्यासाश्रम के बाद अपने गुरु वन्दना पूर्वक संपूर्ण किया हो। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि सायण के भ्राता माधवाचार्य ने रचना की हो और आपकी श्रद्धा भक्ति श्रीविद्यारण्य के प्रति होने से उनके गुरु के नाम से लिखा हो। इस आक्षेप के साथ कुम्भकोण मठ यह भी कहते हैं कि श्रीविद्यारण्य ने कोई भी काव्य या चम्पू नहीं लिखा है और इस एकमात्र पुस्तक शङ्करविजय का रचयिता माधवाचार्य हैं कहना सो भूल है। क्या माधवाचार्य अपने युवावस्था में एक ऐसे काव्य लिख नहीं सकते थे? सम्भवतः अपने सन्यास परम्परा के प्रथमाचार्य का जीवन चरित्र लिखकर पश्चात् वेदान्त ग्रंथों की रचना किया हो। मदरास राजकीय पुस्तकालय में एक हस्तलिपि प्रति नं. डि. 12174 है जिसमें कुछ श्लोक अधिक जोडे गये हैं और यह जोडे गये श्लोक सब अन्यत्र उपलब्ध पुस्तक—मुद्रित और अमुद्रित—में पाये नहीं जाते। इस

हस्तलिपि प्रति का विवरण पाठकगण आगे पायेंगे जहां सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि इस प्रति के श्लोक क्षिप्त श्लोक हैं और अर्वाचीन काल में किसी स्वार्थपरायण से यह कार्य किया गया था। इस मदरास प्रति डि. 12174 में एक श्लोक है जिसमें गुरु का नाम महेश्वर का उल्लेख है। तो प्रश्न उठता है कि क्या 18 वीं शताब्दी के माधव भट्ट के गुरु महेश्वर थे? ऐसा तो नहीं है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि माधव भट्ट ने 'पतञ्जली चरित' 'शङ्कराभ्युदय' 'व्यासाचलीय' पुस्तकों से श्लोक सब उद्धृत कर एक स्वतंत्र ग्रंथ के नाम से प्रकाश किया था। कुम्भकोण मठ के प्रचारानुसार रामभद्र दीक्षित नेरूर श्रीसदाशिव ब्रह्म के भाई विद्यार्थी थे और श्रीसदाशिव ब्रह्म का काल 1710 ई० का था। इस कथन से प्रतीत होता है कि 'पतञ्जली चरित' पुस्तक की रचना 1710 ई० बहुकाल के बाद का ही था। प्रश्न उठता है कि अभिनवकालिदास माधव भट्ट ने 1710 ई० में किस प्रकार पतञ्जली चरित से श्लोक उद्धृत कर सकते हैं जब वह पुस्तक आपके समय में था ही नहीं? इससे यह निश्चित होता है कि माधव भट्ट ने माधवीय शङ्करविजय की रचना ही नहीं की थी।

6. एक आक्षेप है कि श्री विद्यारण्य रचित ग्रंथ की सूची में कहीं भी इस पुस्तक का उल्लेख न होने से यह काव्य माधवाचार्य रचित कहा नहीं जा सकता है। अनेक रचयिताओं के रचित ग्रंथों की सूची विद्वानों ने संग्रह कर प्रकाशित की है। इनमें से ऐसे भी सूचियां हैं जिनमें कई ग्रंथों का उल्लेख उन उन रचयिताओं के नीचे नहीं पाई जाती है यद्यपि अनुसन्धान विद्वानों से सप्रमाण निश्चित हुआ है कि ऐसे ग्रंथ उनसे ही रचित हैं। तो क्या संग्रहकर्ता के त्रुटि के कारण ग्रंथ को न माना जाय? संग्रहकर्ता को उस समय यह पुस्तक न मिला हो, न मालूम हो, उपलब्ध पुस्तकों में निर्देषित न हुआ हो, इस विषय पर काफी अनुसन्धाम न किया गया हो, हस्तलिपि प्रतियां काफी संख्या में प्रचार में न हों, और इसलिये सूची में न दी गयी हो। पुस्तकालयों के सूचीपत्रों में 'संक्षेपशङ्करविजय' या 'शङ्करदिग्विजय' का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है कि यह माधवाचार्य (श्री विद्यारण्य) द्वारा ही रचना की हुई पुस्तक है। काशी, लाहौर, बडोदा, पूना, कलकत्ता, मदरास, कल्याणपुरी, आदि स्थलों में पुस्तकालयों के सूचीपत्रों में इस पुस्तक को माधवाचार्यं रचित कहा है। उपलब्ध होने वाले मुद्रित व अमुद्रित प्रतियों में भी श्री विद्यारण्य रचित कहा गया है। प्रबल जनश्रुति एवं परम्परा रुडी से भी इस पुस्तक को श्री विद्यारण्य रचित माना जाता है। श्री शङ्कराचार्य द्वारा रचित ग्रंथों की सूची अनेकों ने संग्रह किया है और पश्चात विमर्शकों एवं अनुसन्धान विद्वानों ने इनमें से अनेक ग्रंथ आचार्य शङ्कर द्वारा रचित न होने का प्रमाणयुक्त निश्चय किया है। ऐसे ही कुछ ग्रंथ जो पूर्व सूची में उल्लेख न था अब इस सूची में जोड लिये गये हैं। इसीप्रकार श्री विद्यारण्य रचित कहे जानेवाले ग्रंथों के सूची में से कुछ पुस्तक निकाल दिये गये हैं चूंकि वे सब आपसे रचित नहीं हैं और कुछ पुस्तकों का नाम जोड भी लिये गये हैं। ऐसे स्थिति में सूची में प्रथमतः उल्लेख न होने से क्या ये सब ग्रंथ अब ग्राह्य नहीं हैं? ऐसे अल्प कारणों को केवल कुतर्क ही कहा जायगा।

7. आक्षेपकों का यह भी प्रचार है कि प्राचीन शङ्करविजय में कहे हुए आद्यशङ्कराचार्य का जननकाल माधवीय में न कहे जाने के कारण, यह पुस्तक माधवीय रचित नहीं है। प्रश्न उठता है कि क्या मूल प्राचीन शङ्करविजय पुस्तक उपलब्ध है? अथवा किसी ने इस पुस्तक को देखा है या पढा है? यह पुस्तक कहीं भी उपलब्ध नहीं है। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में भी उल्लेख है 'उपलब्ध नहीं है'। ऐसी स्थिति में कैसे कहा जा सकता है कि प्राचीन शङ्करविजय में जनन काल दिया गया है? मूल पुस्तक न मिलने से ही कहा जा सकता है कि यह कहेजानेवाले श्लोक कल्पित है। अपने प्रचार की पुष्टी के लिये स्व रचित दो चार श्लोकों को अपने

प्रचार पुस्तकों में देकर और प्राचीन शङ्करविजय से उद्धृत श्लोक हैं ऐसा भ्रामक प्रचार करने मात्र से ही प्रमाण नहीं माना जा सकता है। क्या प्राचीन बृहत ग्रंथ से दो चार श्लोक ही उद्धरण लायक थे और अन्य श्लोक कथा संदर्भ में क्यों नहीं दिया गया था? विवादास्पद विषयों में ही उद्धरण दीखते हैं। कालातीत अवतार पुरुषों का काल निर्णय कर लिखना उन दिनों में उचित नहीं समझा जाता था क्योंकि उनका अवतार उनकी इच्छा से एवं काल संदर्भ की आवश्यकता पर ही होता है। इस इच्छा का निरूपण करना उचित नहीं समझा जाता था और सम्भवतः माधवाचार्य ने काल का निर्देष करना छोड दिये हों। इसलिये यह कहना भूल है कि कालनिर्णय न करने से यह पुस्तक माधवाचार्य रचित नहीं है। जिन ग्रंथों में जिन जिन विषयों का उल्लेख नहीं है और ये सब विषय जब अन्य ग्राह्य प्रामाणिक ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं तब उन विषयों को मानना ही न्याय युक्त है-'अनुक्तमविरुद्धमन्यतोग्राह्यमिति न्यायात्'। डिण्डिम टीकाकार श्रीधनपतिसूरि अपनी टीका में प्राचीन शङ्करविजय से (अनुमान की जाती है चूंकि टीकाकारों ने एक या दो जगह प्राचीन विजय एवं बृहच्छङ्करविजय का नाम लिया है और अन्य जगहों में कहीं भी उद्धृत श्लोकों के मूल ग्रंथ का नाम नहीं लिया है) कुछ श्लोकों को उद्धृत किये हैं पर ऐसे उद्धृत श्लोकों में काल निर्णय का श्लोक भी उद्धृत नहीं है। माधवीय मूल में जन्मकुन्डली रचने के लिये कुछ ग्रहों का स्थान उल्लेख है—'सूर्ये कुजे रविसुते च गुरौ च केन्द्रे'। प्राचीन शङ्करविजय की टीका में इसके विरुद्ध कहीं श्लोकों का उद्धरण न करने से यही निश्चित होता है कि प्राचीन शङ्करविजय में भी माधवीय मूल का विषय लिखा होगा। श्रीबाण आदि कविश्रेष्ठ हर्ष चरित्रों में राजाओं का जन्मकाल का उल्लेख न करने से क्या उनका चरित्र ग्राह्य नहीं है? माधवीय शङ्करविजय में जन्मकाल न देने से कोई आपत्ती नहीं है चूंकि जन्म काल अन्य ग्रंथों द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

8. कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि माधवीय में 'धन्यो व्यासाचलकविवरः' का उल्लेख है और आप व्यासाचल 15 वीं शताब्दी में कुम्भकोणमठाधीष थे, अतः *14* वीं शताब्दी के माधवाचार्य इस शङ्कर विजय को लिखे न होंगे। आगे कुम्भकोणमठ यह भी प्रचार करते हैं कि आपके मठाधीष श्री व्यासाचल ने एक शङ्करविजय ग्रंथ भी रचा था। माधवीय के टीकाकार उक्त मूल श्लोक की टीका में लिखते हैं 'व्यास इवाचलः स्थिरश्चासौ कविश्रेष्ठश्चेति व्यासाचल कविवरः माधवः' 'व्यासो भगवान्बादारायणः प्रसिद्ध एव तद्वदचलः सर्वमान्यत्वेनाखण्ड्यः सचासौ कविवरश्चेति।' टीकाकार के अनुसार माधवीय ही व्यासाचल हैं। माधवीय के इस श्लोक का अर्थ यों है 'धन्य है उस काव्य का कर्ता कविवर जो व्यासदेव के समान अचल एवं अखण्डनीय हैं तथा वे लोग भी धन्य हैं जो इस कथा के स्वाद को जानने वाले हैं।' पर कुम्भकोणमठ इसे मानते नहीं हैं। कुम्भकोणमठ का पन्था ही तृतीय पंथा है जो स्वेच्छावाद कोटि का है। कुम्भकोणमठ का कथन है कि माधवाचार्य स्वयं अपने को व्यासाचल नहीं कहे होंगे और माधवीय के टीकाकार की टीका भूल है और यह कुम्भकोणमठाधीष को ही संकेत करता है एवं व्यासाचल जिन्होंने शङ्करविजय रचा था। टीकाकार को कुम्भकोणमठ के अर्वाचीन काल का अभिप्राय स्वीकार नहीं है। यदि टीकाकार (*1799* ई०) जानते कि एक अन्य व्यासाचल कवि भी थे और आप आचार्य शङ्कर के अविच्छिन्न परम्परा के मठाधीष थे एवं आपने शङ्करविजय ग्रंथ की रचना की थी तो अवश्य ऐसा उल्लेख करते। जिस टीकाकार ने अनेक अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर टीका लिखी है और प्रमाणों को उद्धृत किया है, क्या आपको व्यासाचलीय शंकर विजय पुस्तक का होना न मालूम था? टीकाकार के काल में (*1799* ई०) कहेजानेवाले व्यासाचलीय पुस्तक न था। कुम्भकोणमठ का प्रामाणिक पुस्तक 'सुषमा' का रचयिता ने जब व्यासाचल का नाम लेते हैं आप माधवीय को ही कहते हैं न कि नवीन कहेजानेवाले व्यासाचल जो अब उपलब्ध होता है। माधवीय का नकल ही व्यासाचल है। जब आत्मबोध 'सुषमा' में 'संक्षेपशंकरविजय' का नाम लेते हैं तो आप माधवीय को ही कहते हैं। 'सुषमा'

में उद्धृत अनेक श्लोक माधवीय में पाये जाते हैं जिसे आप व्यासाचल से उद्धृत किये जाने को कहा है ('विस्तृतमिदं व्यासाचलीये') और ये सब उद्धरण प्रकाशित व्यासाचलीय में पाया नहीं जाता है। अतः माधवीय ही व्यासाचल है। माधवीय को व्यासाचलीय भी कहा जाता था चूंकि व्यासाचल पद माधवाचार्य को ही बोध करता है। गोविन्दनाथ केरलीय शंकरविजय में 'व्यासाचल कवि' कहा है। यदि आप परमहंस सन्यासी मठाधीष होते तो आपको गोविन्दनाथ 'कवि' पद से न पुकारते। व्यासाचल कवि का उल्लेख से माधवीय का ध्योत होता है। गोविन्दनाथ विश्वरूप को ब्रह्मा के अवतार कहते हैं पर नवीन व्यासाचल ऐसा नहीं कहता पर माधवीय कहता है। 'गुरुरत्नमाला' रचयिता एवं 'सुषमा' टीकाकार ने श्री विश्वनाथ को चांडाल रूप में आचार्य शङ्कर के पास आने का वृत्तान्त कहा है और आगे 'सुषमा' टीकाकार लिखते हैं कि यह विषय व्यासाचलीय में है। परन्तु नवीन व्यासाचलीय में इस घटना का उल्लेख नहीं है पर माधवीय में यह सब श्लोक पाये जाते हैं। 'गुरुरत्नमाला' कहता है कि आचार्य शङ्कर के पिता ने स्वयं बालक शङ्कर का उपनयन किया था पर नवीन व्यासाचलीय उपनयन पूर्व ही पिता के देहान्त का उल्लेख करता है। इस विषय का श्लोक माधवीय व नवीन व्यासाचलीय में समान हैं। कुम्भकोणमठ के प्रमाण पुस्तकों द्वारा एवं उनके प्रचार सामग्री से स्पष्ठ प्रतीत होता है कि माधवीय ही व्यासाचलीय है और अब जो नवीन व्यासाचलीय उपलब्ध होता है सो स्वार्थ परायण का एक परिष्कृत्य प्रति है। अतएव टीकाकार का अभिप्राय है कि व्यासाचल कवि श्री माधवाचार्य को ही बोध करता है सो ठीक ही है।

मदरास राजकीय पुस्तकालय ने 1954 ई० में बारह सर्ग की व्यासाचल पुस्तक को प्रकाशित किया है। इस पुस्तक के भूमिका में 52 वां कुम्भकोण मठाधीष ने ही व्यासाचल पुस्तक की रचना करने का कथन कहा गया है। पाठकगण इस पुस्तक का विमर्श आगे पायेंगे। व्यासाचल के संपादक लिखते हैं कि श्रीमाधवाचार्य ने अपने द्वारा रचित संक्षेपशङ्करविजय में ऐसा उल्लेख किया है 'व्यासाचल प्रमुख पूर्विक पन्डितक्ष्मा भृत्संभृतोच्चतर काव्यतरो सुगूडान् ... ... हिम।' इस स्वरचित कल्पित श्लोक के आधार पर संपादक व्यासाचलीय का प्रामाणिकता सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु उक्त श्लोक पूना से प्रकाशित चार संस्करणों में (1863 ई० से 1932 ई० तक), बङ्गलूर, काशी, अहमदाबाद आदि स्थलों से प्रकाशित संस्करणों में एवं अन्य मुद्रित व असुद्रिव प्रतियां जो काशी, मदरास, कल्याणपुरि पूना, वडोदा, अहमदाबाद, लाहौर, नवद्वीप, मिर्जापुर आदि स्थलों में उपलब्ध हैं, इन सब प्रतियों में यह श्लोक पाया नहीं जाता है। यह कल्पित श्लोक क्षिप्त है। कुम्भकोण मठ प्रचार पत्रिका में उल्लेख है कि पूना मुद्रित 1891 ई० के माधवीय संस्करण में प्रकाशकों ने अपने से जानभूझकर श्लोक जो 'व्यासाचल प्रमुख' से प्रारम्भ होता है उसे छोडकर उक्त पुस्तक प्रकाशित की है क्योंकि 'व्यासाचल' पद व्यासाचल कवि का ही ध्योत करता है न कि 'व्यास इव अचल'। पूना मुद्रित पुस्तक कई हस्तलिपि प्रतियां जो सब अनेक स्थलों से प्राप्त हुए थे, उन सब प्रतियों का परिशीलन अनुसन्धान विद्वानों से करने के पश्चात् माधवीय प्रकाशित हुआ था। कुम्भकोण मठाभिमानियों से कहेजानेवाले यह कल्पित श्लोक जो एक हस्तलिपि प्रति में जोड ली गई है और जो श्लोक सारा भारतवर्ष के अन्य स्थलों में प्राप्त होनेवाले प्रतियों में पाया नहीं जाता, यदि उक्त श्लोक पूना के प्रकाशक को मिलता तो अवश्य इसे भी प्रकाशित करते। पूना के अनुसन्धाम विद्वानों को कोई द्वेष न था या इष्ट सिद्धि प्राप्त न करनी थी कि आप इसे छोड देते। पूना के श्रीगणपति कृष्णाजी प्रेस (1863 ई०) एवं पूना के आनन्दाश्रम सीरीज संस्करणों के प्रकाशक अन्य अनेकानेक प्राचीन ग्रंथों का प्रकाशन किया है और ये दोनों संस्थायें माननीय हैं। कुम्भकोण मठाभिमानियों का इष्ट सिद्धि प्राप्त न होने पर आपलोगों को अन्य आदरणीय व्यक्ति एवं माननीय संस्था 'आनन्दाश्रम' पर टीका टिप्पणी करना एवं कीचड फेंकना न केवल शोभता है पर यह अन्याय भी है। पूना का माधवीय प्रथम संस्करण 1863 ई०

का है न कि 1893 ई० का जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है और उक्त कुम्भकोण मठ का श्लोक 1863 ई० संस्करण में भी पाया नहीं जाता। यदि पूना के प्रकाशक भूल भी की हो तो अन्य स्थलों में जो प्रकाशित व अमुद्रित प्रतियां हैं उन सबों में क्यों नहीं यह श्लोक पाये जाते ?

कुम्भकोणमठ का कथन है कि उपर्युक्त पारा में कहा श्लोक 'व्यासाचल प्रमुख ... ...' एक हस्तलिपि प्रति नं. डि. *12174* जो मदरास राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है उसमें यह श्लोक पाया जाता है, अतएव यह प्रामाणिक है। म. म. श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री जी इस प्रति नं. डि. *12174* के बारे में लिखते हैं कि इस पुस्तक के रचयिता श्री विद्यारण्य हैं (**Catalogue of Mss. by Sri Kuppuswami Sastry—published in 1918**) आप आगे लिखते हैं कि यह प्रति ताळपत्र का *154* पत्र हैं, एक पृष्ठ में *8* पंक्तियां, तेलगू लिपि, पूर्ण *1* से *13* सर्ग एवं अपूर्ण *14* वां सर्ग मात्र है। माधवीय पुस्तक *16* सर्ग का है। इस प्रति नं. डि. *12174* ग्रंथ को पुनः लिखनेवाले का नाम सूचीपत्र में दिया नहीं है और किस मूल प्रति से यह पुनः लिखा गया है इसका भी उल्लेख नहीं है। इस ग्रंथ का काल भी नहीं दिया है। यह भी मालूम नहीं होता कि कब व कहां से व किसके द्वारा यह प्रति प्राप्त किया गया था। पर आश्चर्य की बात है कि इसी प्रकाशित सूची में अन्य ग्रंथों की हस्तलिपि प्रतियों का उल्लेख है जैसा कि नं. डि. *12171*, डि. *12424*, डि० *12425* आदि और इन प्रतियों का काल, नाम व कहां से प्राप्त हुए, इन सब विषयों का उल्लेख है। क्यों प्रति नं. डि० *12174* में ही यह विवरण नहीं दिया गया है ? मदरास राजकीय पुस्तकालय से कब व कहां से यह प्रति नं. डि. *12174* प्राप्त किया गया था, इसका विवरण भी मालूम नहीं होता। इस प्रति में एक मार्के की बात है कि एक छोटा ताळपत्र इस पुस्तक के साथ लगा हुआ है जिसमें यह विषय उल्लेख है 'बहुधान्य वर्ष ... ... चैत्र माह श्यामळा शास्त्री को पुत्र का जन्म ... ... वैशाख माह ... ... चोक्कैय्यापिल्लै को पुत्र का जन्म ... ...'। इस नोट से स्पष्ट निश्चय होता है कि जिस किसी व्यक्ति ने इसे लिखा हो या जब कभी लिखा गया हो यह प्रति राजकीय पुस्तकालय को 'बहुधान्य' वर्ष के पश्चात् ही प्राप्त हुआ था। 'बहुधान्य' वर्ष का अनुरूप *1878/79*ई० का है। अर्थात् यह प्रति पुस्तकालय को *1878/79* ई० के कई वर्ष बाद ही प्राप्त हुई थी। कुम्भकोणमठ का स्वरचित स्वकल्पित मठाम्नाय के अनुसार "संर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमौजगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः। तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः!" आदि का तीव्र प्रचार लगभग *1830* ई० से प्रारम्भ हुआ जब आप कुम्भकोणम से कांची कामाक्षी मन्दिर पर अपना अधिकार स्थापन करने की चेष्टा प्रारम्भ किया था और *1844/46* ई० के ताटङ्क प्रतिष्ठा पश्चात् अपनी स्वप्रतिष्ठा घोषित कर प्रमाणाभास ग्रथों व प्रचार पुस्तकों की प्रचार होने लगा। उसी समय में यह एक परिष्कृत्य माधवीय की प्रति तैय्यार होकर *1878/79* ई० के पश्चात् राजकीय पुस्तकालय पहुंचा होगा। कुछ स्वार्थी विद्वान अपने स्वतंत्र विचार व ध्येयों को परित्याग कर अपनी इष्ठ सिद्धि प्राप्त करने के लिये इन श्लोकों को मूल माधवीय में जोड कर राजकीय पुस्तकालय में रख दिया था। सारे भारतवर्ष में प्रकाशित व अप्रकाशित (तंजौर पुस्तकालय एवं उक्त मदरास पुस्तकालय प्रति को छोडकर) माधवीय शंकरविजय में ये श्लोक पाया नहीं जाता है और निसन्देह कह सकते हैं कि यह श्लोक क्षिप्त ही है। पाठकगण इस खण्ड के आगे अध्यायों में विवरण पायेंगे कि कुम्भकोणमठ व अभिमानियों ने किस प्रकार अपने क्रिया कलापों से *1830* ई० से प्रारम्भ कर *1890* ई० तक किस प्रकार अपने प्रचारों की पुष्ठी के लिये प्रमाणाभास सामग्री तैय्यार करते थे। ऐसे क्षिप्तमय प्रमाणाभास सन्देहास्पद प्रति के आधार पर नवीन व्यासाचलीयं को प्रामाणिक ग्रंथ बनाने की जो चेष्टा हो रही है सो भूल है।

कुम्भकोण मठ का 'सुषमा' टीकाकार आत्मबोध स्वयं अपने रचित ग्रंथ में 27 श्लोकों को जो माधवीय सर्ग 6 के श्लोक 25/49 एवं 51/52 को उद्धृत कर कहा है कि ये सब श्लोक 'व्यासाचल' का ही है। परन्तु उपलब्ध व्यासाचल में ये 27 श्लोक पाये नहीं जाते। अर्थात् कुम्भकोण मठ का आत्मबोध स्पष्ठ माधवीय को ही व्यासाचल कहा है न कि कुम्भकोण मठ का नवीन प्रचार की पुष्टी की है। प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटि प्रदीपम्' में यह तीव्र प्रचार किया गया है कि 'व्यासाचलीय' के दूसरे संस्करण में इन श्लोकों को जोड दिया जाय। अनेक प्रतियों का संशोधन कर मदरास राजकीय पुस्तकालय ने 1954 ई० में 'व्यासाचलीय' प्रकाशित किया था और इसमें ये श्लोक जब पाये नहीं गये तो ये सब श्लोक क्षिप्त ही कहे जायेंगे। न मालूम किस आधार पर अब राजकीय पुस्तकालय इन सब श्लोकों को जोड सकते हैं? मदरास में मैं ने सुना कि राजकीय पुस्तकालय व्यासाचलीय के दूसरे संस्करण में इन श्लोकों को जोड कर प्रकाशित करेंगे। यदि यह सत्य है तो राजकीय कर्मचारियों पर अनुचित पक्षपात होने का दोषारोपण किया जायगा।

माधवीय शङ्करविजय में 16 सर्ग हैं जिसका विवरण माधवाचार्य ने अपने पुस्तक के प्रारम्भ में दिया है और आप कहते हैं 'तत्राऽऽदिम उपोद्घातो द्वितीये तु तदुद्भवः। ... ... इति षोडशभिः सर्गैर्व्युत्पाद्या शाङ्करी कथा।' व्यासाचलीय में 12 सर्ग हैं। यहां का 'तत्राऽऽदिम' पद से यह संकेत नहीं होता कि यह व्यासाचलीय शङ्करविजय है जिसके 12 सर्ग हैं। (कुम्भकोण मठ का प्रचार है 'तत्राऽऽदिम' पद व्यासाचलीय को संकेत करता है) पर माधवाचार्य स्वयं अपने पुस्तक को ही संकेत करते हैं जो माधवीय व्यासाचल 16 सर्ग का है। कुम्भकोण मठ का प्रचार भ्रमात्मक मिथ्या है।

इस नवीन व्यासाचलीय पुस्तक के संपादक लिखते हैं 'There are not enough details about the author Vyasachala either in this work or in other works and so it would be a vain attempt to deal with his life history.' व्यासाचल ग्रंथकार का चरित्र सामग्री प्राप्त न होने से संपादक आपका चरित्र विवरण दिये नहीं है। पर कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके 54 वां मठाधीष व्यासाचलीय ने ही यह ग्रंथ लिखा था और आपका चरित्र सामग्री कुम्भकोण मठ से प्राप्त हो सकता है। परन्तु संपादक इस विषय का उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह आश्चर्य है कि व्यासाचल कांची मठाधीष होते हुए भी अपने मठ का उल्लेख भी किया नहीं है और यह भी न कहा कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ स्थापना कर अपनी परम्परा प्रारम्भ की थी। आप लिखते हैं 'If what Atreya Krishna Sastri says is correct, it is rather strange that Vyasachala who was a head of the Kanchi Kamakoti Mutt, has not even mentioned by name that Mutt, the life of the founder of which is described in this work.' संपादक सन्देह करते हैं कि यथार्थ में क्या व्यासाचल कांची मथाधीष थे? अतः कुम्भकोण मठ प्रचार मिथ्या प्रचार ही है।

माधवीय शङ्करविजय से 520 श्लोकों से भी अधिक उदधृत कर एवं लगभग 600 श्लोक जो कथा से असम्बन्ध अनावश्यक श्लोक हैं उसे इस कथा में जहां तहां जोडकर करीब 1200 श्लोकों का एक नवीन विस्तार कथा 12 सर्ग का पुस्तक तैय्यार किया गया था। इस नवीन पुस्तक को प्रामाणिक ठहराने के लिये माधवीय शंकरविजय का एक नवीन हस्तलिपि तैय्यार कर उसमें स्वकल्पित नवीन श्लोकों को जोडकर प्रमाणाभास तैय्यार किया गया है। पाठकगण इन विषयों का विवरण आगे पायेंगे। माधवीय के 'धन्योव्यासाचलकविवरः' श्लोक के आधार पर कुम्भकोणमठाभिमानियों ने तीन स्व रचित श्लोकों को जोडकर अपने मठ के आचार्य व्यासाचल की पुष्टी करने के हेतु

एवं कल्पित प्रचारों की पुष्टी के लिये यह तैय्यार किया गया हो। कुम्भकोणमठ पुण्यश्लोकमंजरी के आधार पर एक नवीन 'व्यासाचलीय शङ्करविजय' तैय्यार कर और इसे प्रामाणिक पुस्तक ठहराने के लिये माधवीय में इन स्वरचित श्लोकों को जोड लिया हो। एक तरफ कुम्भकोणमठाभिमानियों से तीव्र प्रचार होता है कि माधवीय अप्रमाणिक ग्रंथ है जो अर्वाचीन काल में श्रृङ्गेरी शिष्यों से रचित है और दूसरी तरफ माधवीय के कुछ श्लोकों (जो मूल पुस्तक एवं प्रकाशित प्रतियों में पाये नहीं जाते) को प्रमाण में प्रचार भी करते हैं। न मालूम किस प्रकार अप्रमाणिक पुस्तक के श्लोक अब प्रामाणिक हो गये? मदरास मुद्रित *1926* ई० में माधवीय पुस्तक भूमिका में प्रथम बार इस विषय का उल्लेख किया गया थां। इसके पूर्व प्रकाशित पुस्तकों में यह विषय नहीं दिया गया था। कुम्भकोणमठ प्रचारों की पुष्टी व प्रमाणाभास ऐसे नवीन रीति से किया जाता है। किसी ने कहा है 'असत्य को बार बार दोहराने से एवं रङ्ग रूप देकर उसे अन्य रीतियों द्वारा प्रचार करने से वही असत्य सत्य बन जाता है' और कुम्भकोणमठ इस मार्ग के अवलम्बन से अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं।

9. मदरास राजकीय पुस्तकालय एवं तंजौर पुस्तकालय में हस्तलिपि माधवीय शङ्करविजय उपलब्ध हैं जिनमें प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक पश्चात् तीन श्लोक जिनकी संख्या 2, 3 व 7 हैं सो अधिक पाया जाता है। इसमें संख्या 3 श्लोक में उल्लेख है कि उस ग्रंथ के रचयिता माधवाचार्य के गुरु महेश्वर हैं। मदरास राजकीय पुस्तकालय की प्रति नं. डि. *12174* में यों उल्लेख है 'काश्चिन्महेश्वर गुरुस्मृतिमित्र मोहः संक्षेपशङ्करजयस्रजमातनोमि।' पर ये तीनों श्लोक सब मुद्रित व अमुद्रित प्रतियों में (पूना, काशी, अहमदाबाद, कल्याणपुरी, मदरास, आदि स्थलों से उपलब्ध) पाये नहीं जाते। आन्ध्र, कर्नाटक, महराष्ट्, उत्तर प्रदेश सीमा में उपलब्ध मुद्रित व अमुद्रित प्रतियों में भी ये तीनों श्लोक पाये नहीं जाते। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि ये तीनों श्लोक क्षिप्त हैं। माधवाचार्य प्रथम ही अपने गुरु श्री वियातीर्थ को प्रणाम करते हैं 'प्रगम्य परमात्मानं श्री वियातीर्थरूपिणम् ।' पर अब कुम्भकोण मठ महेश्वर को गुरू बनाते हैं जो यहां ठीक जमता नहीं है। यदि कुम्भकोणमठ का कथन मान लें कि *1710* ई० में अभिनवकालिदास माधव भट्ट ने 'संक्षेपशङ्करविजय' पुस्तक की रचना की थी तो क्या माधवभट्ट के गुरु महेश्वर थे? ऐसा तो प्रतीत नहीं होता। समयानुसार निराधार मित्र कथनों का प्रचार करना ही प्रचारित विषय की असत्यता स्पष्ठ प्रकट होता है। स्वकल्पित श्लोकों को जोड कर प्रचार करने से प्रमाण में नहीं लिये जा सकते हैं। पाठकगण माधवीय प्रति नं. डि. *12174* का वृत्तान्त पूर्व ही पड चुके होंगे।

10. कुम्भकोग मठ का प्रचार है कि वेटूरी प्रभाकर शास्त्री ने कहा है कि माधवीय शङ्करविजय कुछ अर्वाचीन विद्वानों से (भट्ट श्रीनारायग शास्त्री, म. म. को. वेङ्कटरत्नम पन्तुलु, म. म. सिद्धान्त सुब्रह्मण्य शास्त्री, आदि) रचित पुस्तक है और आप लोगों ने माधवाचार्य के नाम से प्रकाशित कर दिया था। पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे कि यह सब कथन कहां तक सत्य है। वेटूरी प्रभाकर शास्त्री ने आन्ध्र पत्रिका ताः 17—12—1921 के अङ्क में यह विषय प्रकाशित किया था। वास्तव में विषय यह है कि वेटूरी प्रभाकर शास्त्री ने (अपना उक्त लेख प्रकाशन के पश्चात्) इस विषय पर अन्वेषण श्रीवेमूरी नरसिंह शास्त्री जी के साथ किया था। इस खोजखाज के फलाभूत अपना निर्णय श्रीप्रभाकर शास्त्री ने आन्ध्र पत्रिका ताः 29—1—1922 के अङ्क में स्पष्ठ रूप से प्रमाण देकर सिद्ध किया था कि जो कुछ विषय आपने 17—12—1921 के दिन लेख में प्रकाशित किया था, वह सब भूल एवं मिथ्या है। मेरे पास श्रीवेमूरी नरसिंह शास्त्री से लिखित एक पत्र है जिसमें इस विषय का एवं कुम्भकोग मठ द्वारा भ्रामक प्रचारों का भन्डाफोड दिया है। आप ही ने प्रथम वेटूरी श्रीप्रभाकर शास्त्री को यह कल्पित मिथ्या समाचार सुनाया था चूंकि

आपने मदरास में एक अन्य व्यक्ति से इस विषय को सुना था। वेटूरी श्रीप्रभाकर शास्त्री ने इस मिथ्या समाचार को सुनकर इसके आधार पर आपने आन्ध्र पत्रिका ताः 17—12—1921 के अङ्क में लेख प्रकाशित कर दिया था। वेमूरी श्रीनरसिंह शास्त्री अपने पत्र में स्पष्ठ लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ का प्रचार सब भ्रमात्मक एवं भूल है। भट्ट श्रीनारायण शास्त्री ने आचार्यशङ्कर चरित्र पुस्तक लिखी थी जो प्रकाशित भी हुई है। आपने कुम्भकोण मठ विषयक प्रचारों पर भी विमर्श लिखा था। अनभिज्ञ पामर लोग समझते हैं कि उक्त चरित्र पुस्तक माधवीय के नाम से ही प्रसिद्ध है। यह केवल भ्रम है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश अपनी यात्रा में जब गुन्टूर में थे तब आपने कहा कि भट्ट श्रीनारायण शास्त्री एक अविश्वसनीय व्यक्ति है एवं मिथ्यावादी है। पर कुम्भकोण मठाधीष दूसरी तरफ इस भट्ट श्रीनारायण शास्त्री के मिथ्यावाद का प्रचार भी करते हैं।

श्रीयुत. टि. एस. नारायण अय्यर, कुम्भकोणमठ के परमभक्त प्रचारक, स्वरचित पुस्तक में कहा है कि माधवीय शङ्करविजय डिण्डिम व्याख्यासहित (मूल एवं टीका दोनों) पुस्तक को भट्ट श्रीनारायण शास्त्री ने स्वयं रचना कर पश्चात् श्री माधवाचार्य (श्री विद्यारण्य) से मूल ग्रंथ रचित है एवं श्री धनपति सूरी से 'डिण्डिमव्याख्या' रचित है ऐसा कहकर प्रकाश किया है। उपर्युक्त कथन भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने वेटूरी श्री प्रभाकर शास्त्री को कहा था ऐसा कहते हुए प्रचार भी करते हैं। पाठकगण कृपया 'आन्ध्र पत्रिका' ताः *25—1—1922* के अङ्क को देखें जहां वेटूरी श्रीप्रभाकर शास्त्री ने अपने लेख में यह सिद्ध किया है कि कुम्भकोणमठ प्रचार असत्य है। एक तरफ अपने प्रचार पत्रिका 'कामकोटिप्रदीपम' एवं अन्य प्रचार पुस्तकों में कहते हैं कि माधवीय शङ्करविजय *1710* ई० व्यासाचल कवि उर्फ अभिनव कालिदास माधव भट्ट से रचित है और दूसरी तरफ कहते हैं कि *19* वीं शताब्दी के भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने माधवीय रचना की थी। माधवीय के अनुसार व्यासाचल कवि ही नवकालिदास हैं। इन दोनों भिन्न कथनों में कौन कथन सत्य है? कुम्भकोणमठ का प्रचार भी है कि व्यासाचल एक कवि का नाम है और आपही का उपादी 'नवकालिदास' था और आपने *1710* ई० में माधवीय शङ्करविजय की रचना की थी। यह 'नवकालिदास' ने 'भागवतचम्पू' का रचना भी की थी। इन भिन्न कथनों के साथ अपने प्रचार पुस्तकों में कहते हैं कि कांची मठाधीष श्री व्यासाचल (*1498 — 1507* ई०) ने व्यासाचल शंकरविजय की रचना की थी। मदरास राजकीय पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित व्यासाचलीय पुस्तक के प्रस्तावना पढें तो इस प्रचार का सत्यता मालूम होगी। व्यासाचलीय के संपादक का अभिप्राय है कि यह शङ्करविजय कुम्भकोणमठाधीष द्वारा रचित नहीं है। यदि कुम्भकोणमठ का कथन सत्य है तो प्रश्न उठता है कि *16* वीं शताब्दी के कुम्भकोणमठाधीष कैसे *18* वीं शताब्दी के माधव भट्ट नवकालिदास एवं व्यासाचल कवि बन सकते हैं जिन्हें इस पुस्तक का रचयिता होने का भी प्रचार करते हैं। जब कुम्भकोणमठ की गुरुवंशावली *18* वीं शताब्दी प्रारम्भ तक का सब कल्पित सूची सिद्ध होती है तो आपका *16* वीं शताब्दी का व्यासाचल यति भी कहां तक सत्य है सो विषय पाठकगण ध्यान दें। कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले गुरुवंशावली का विमर्श पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे। समय समय पर भिन्न कथनों के प्रचार से ही यह स्पष्ठ सिद्ध होता है कि कुम्भकोणमठ का प्रचार असत्य है।

सारस्वत पण्डित श्रीरामकुमार जी के पुत्र श्री धनपतिसूरी थे और आपने *1799* ई० में काशी में माधवीय शङ्करविजय पर स्वरचित डिण्डिम टीका की प्रणयन की थी। श्री सदानन्द व्यास ने काशी में 'शङ्करविजयसार' का प्रणयन *1780* ई० में किया था। आपके कथनानुसार आपसे रचित 'शङ्करदिग्विजयसार' का मूल माधवीय शंकर विजय था और इसी ग्रंथ का सारांश शङ्करदिग्विजयसार है। माधवीय के अनेक श्लोक इस पुस्तक में पाया जाता है। श्री सदानन्द व्यास एक प्रकाण्ड विद्वान थे और आपने अनेक पुस्तकें लिखा है जिसमें अद्वैतसिद्धिसिद्धान्तसार, गीताभाव-

प्रकाश, प्रत्यक् तत्त्व चिन्तामणि, स्वरूपनिर्णय, महाभारततात्पर्य प्रकाश, रामायणतात्पर्यप्रकाश, दशोपनिषद सार, आदि उपलब्ध हैं। रावलपिन्डी के निवासी श्री सदानन्द व्यास काशीधाम में आकर यहीं बस गये। आपने एक शिवमन्दिर काशी के मणिकर्णिकाघाट पर बनवाया था जो आज भी देखने में आता है। श्री सदानन्द व्यास ने श्री धनपतिसूरी को विद्या का दान देकर पश्चात् अपनी कन्या का विवाह भी श्रीधनपतिसूरी के साथ कर दिया था। यही श्री धनपतिसूरी हैं जिन्होंने माधवीय शङ्करविजय पर टीका *1799* ई० में लिखा और अपने श्वसुर से रचित शङ्करविजयसार (जिसे सदानन्दीय भी पुकारा जाता है) पर भी टीका लिखी थी। इस यथार्थ विषय को छिपाकर श्री टी. एस. नारायण अय्यर, कुम्भकोणमठ के परमभक्त तीव्र प्रचारक, प्रचार करते हैं कि तंजौर जिला निवासी भट्ट श्री नारायणशास्त्री ने *19* वीं शताब्दी में माधवीय मूल एवं 'डिण्डिमटीका' स्वयं लिखकर प्रचार किया था और यथार्थ में धनपतिसूरी से रचित डिण्डिम टीका नहीं है। पर अब पाठकगण जान लें कि कुम्भकोणमठाभिमानियों का प्रचार कितना नीच व अल्प बुद्धि श्रेणी की है।

11. कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि श्री विद्यारण्य श्रृङ्गेरी मठाध्यक्ष होने के कारण आपने अपने से रचित 'शङ्करविजय' में श्रृङ्गेरी की महत्ता दिखाई है और कांची का उल्लेख भी नहीं किया है एवं यह पुस्तक एकाङ्गि है। आगे कुम्भकोण मठवालों का यह भी प्रचार है कि श्री विद्यातीर्थ (श्री विद्यारण्य के गुरु) जो कुम्भकोण मठाधीष थे, आपने अपने शिष्य श्री विद्यारण्य को भेजकर श्रृङ्गेरी का पुनः उज्जीवन किया था चूंकि श्रृङ्गेरी मठ इसके पूर्व विछिन्न होकर शिथिल शोचनीय दशा में थी एवं श्री विद्यारण्य परहंस सन्यासी न थे और कांची मठाधीष बनने योग्य न थे इसलिये आपको श्रृङ्गेरी भेजा गया था। कुम्भकोण मठ के उक्त प्रचार से प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ एवं मठाभिमानी सब मानते हैं कि 'शङ्करविजय' पुस्तक श्री विद्यारण्य द्वारा रचित है। तो प्रश्न उठता है कि कुम्भकोण मठ किसलिये इतनी शङ्का करते हैं व विवाद उठाते हैं एवं कीचड फेंक रहे हैं? कुम्भकोण मठ के प्रचारानुसार आपसे भेजे हुए श्री विद्यारण्य क्या गुरुद्रोही थे एवं क्या आप अपने गुरु के प्रति (कुम्भकोण मठाधीष होने का प्रचार किया जाता है) अपचार कर सकते थे कि आपने अपने रचित ग्रंथ में कांची में आम्नाय मठ होने का उल्लेख भी नहीं किया था? यदि कांची में आचार्य शङ्कर ने आम्नाय मठ की स्थापना किया होता और कांची में आम्नाय मठ 14 वीं शताब्दी में होता और कुम्भकोण मठ श्री विद्यारण्य को भेजा होता तो अवश्य श्री विद्यारण्य कांची मठ का उल्लेख करते। पाठकगणों से प्रार्थना है कि माधवीय शङ्करविजय को एक बार पढें और कोई व्यक्ति यह कह नहीं सकेगा कि श्री विद्यारण्य ने कहीं भी श्रृङ्गेरी का यशोगान गाया है या आपने अन्यों की निन्दा की है। श्रृङ्गेरी मठ विद्वान से रचित 'गुरुवंशकाव्य' पुस्तक से यह माधवीय पुस्तक कुछ विषयों में भिन्न दीख पडता है। यदि यह पुस्तक श्रृङ्गेरी मठ से रचित होता तो 'गुरुवंशकाव्य' पुस्तक के समान ही होता पर दोनों भिन्न दीखते हैं। अतः माधवीय को श्रृङ्गेरी की पुस्तक कहना भूल है। प्राप्त होनेवाले सब शङ्करदिग्विजय पुस्तकों में यह सार्वजनिक व श्रेष्ठों को शिरोधार्य है।

12. कुम्भकोण मठ के प्रचारक विद्वानों का कहना हैं कि 'काव्यमाला' के प्रकाशन से यह सिद्ध होता है कि माधवीय इस प्रकाशन के समय न था। श्री सदानन्द व्यास ने 1780 ई० में अपने रचित शङ्करदिग्विजयसार पुस्तक माधवीय के आधार पर ही रचना की थी और श्री धनपति सूरी ने 1799 ई० में डिण्डिम टीका लिखी थी। कुम्भकोण मठ के प्रचारानुसार श्री माधव भट्ट ने 1710 ई० में माधवीय की रचना की थी। अर्वाचीन काल में प्रारंभित 'काव्यमाला सीरीज' है और इसमें उल्लेख न करने से पुस्तक का न होना कथन सो भूल व भ्रामक है। एक कुतर्क है। काव्यमाला सीरीज में अनेक नामी काव्य ग्रंथों का उल्लेख भी नहीं है या न प्रकाशन किया गया है।

कुम्भकोण मठ के तर्क के अनुसार क्या हम कहें कि ये सब प्रसिद्ध ग्रंथ नहीं थे? क्या 'काव्यमाला सीरीज' सारे काव्य ग्रंथों के ठेकेदार ट्रस्टी थे कि आपके न उल्लेख से पुस्तक का न होना निश्चित होता है? ऐसा कहना मूर्खता है। कुम्भकोण मठाभिमानियों का कहना है कि एक शङ्करविजय के रहते दूसरे की कोई आवश्यकता नहीं है और माधवीय अर्वाचीन काल का ही है। इस तर्क से 'सर्वज्ञों' की मूर्खता मालूम होती है। अनेक रामायण उपलब्ध हैं और सब रामायणों को प्रामाण्य मानकर सब अपने अपने आचारानुसार पारायण करते हैं। अन्य रामायण के होने से क्या यह कहा जाय कि श्री वाल्मिकी रामायण इन सबों के पूर्व न था और अन्य रामायण प्रामाणिक नहीं हैं चूंकि कुम्भकोण मठ का कथन है कि एक के रहते दूसरे की आवश्यकता नहीं है?

माधवीय शङ्करविजय में लिखा है कि राजा सुधन्वा का आदेश था कि 'आसेतोरातुषाराद्रेर्बौद्धानां वृद्धबालकान्। न हन्ति यः स हन्तव्यो भृत्यानित्यन्वशान्नृपः।' अर्थात् बौद्धमतानुयायी चाहे बूढा हो या बालक उसे मार डालो और जो बौद्धों को न मारेगा और बचायगा वह भी मार डालने योग्य होगा। पाठकगणों के जानकारी के लिये भारतवर्ष में उस समय की परिस्थिति का वर्णन यहां किया जाता है जो विषय माधवीय शङ्करविजय में दिये विवरण की पुष्टी करती है। चीनी यात्री हिउएन साङ्ग ने अपने यात्रा विवरण पुस्तक में मंजुश्रीबुद्धसत्त्व की भविष्य वाणी का वर्णन किया है, यथा 'उस दिव्य पुरुष ने कहा कि मैं मंजुश्रीबुद्धसत्त्व हूं। परन्तु तू (हीउएन साङ्ग) अब यहां से (भारत से) चला जा क्योंकि दस वर्ष के बाद शिलादित्य मृत्यु को प्राप्त होगा और उसके पश्चात् भारतवर्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा और चारों ओर भयानक खून-खराबी होगी एवं मनुष्य एक दूसरे को मार डालेंगे'। हिउएन साङ्ग का काल 630—645 ई० का है और आप आचार्य शङ्कर के जन्म (684 ई०) के पूर्व भारतवर्ष आये थे। इनके समय में पूर्वमीमांसिक लोग बौद्धमत पर प्रहार कर रहे थे। यह समय पूर्व मीमांसिक श्रीकुमारिल भट्ट का काल था। हिउएन-साङ्ग के वर्णन से प्रतीत होता है कि आपके समय में ही भारत में बौद्धों के नष्ट-भ्रष्ट करने और मार डालने के कार्य आरम्भ होगया था। यह कहना उचित होगा कि हिउएन-साङ्ग ने जो भविष्यवाणी मंजु श्रीबुद्धसत्त्व के मुख से कहलाया है वह उस समय की वर्तमान घटनायें थी। 700 ई० के बाद आचार्य शङ्कर के काल में बौद्धों के नष्ट-भ्रष्ट करने एवं मार डालने के कार्य अधिक हो गया होगा। इसलिये यह कहना भूल न होगी कि राजा सुधन्वा ने इस कार्य का भार अपने नौकरों को सुपुर्द किया होगा जैसा कि माधवीय शङ्करविजय में वर्णित है। यह देखने विचारने की बात है कि हिउएन-साङ्ग ने केवल बौद्धधर्ममय भारत को बतलाने और उनके विजय वर्णन का ही उल्लेख किया है और अन्य विषयों का उल्लेख नहीं किया है। उनका ध्येय बौद्धधर्ममय भारत दिखाना था, इस स्थिति में आप कैसे बौद्धधर्म के मूलोच्छेदन करनेवाले श्रीकुमारिल भट्ट की चर्चा कर सकते थे? कदापि नहीं। हिउएन साङ्ग ने हमारे भारतवर्ष के तीर्थ क्षेत्रों की चर्चा नहीं की है। मथुरा, काशी, द्वारका, पुरी, बदरी, कैलास आदि स्थलों की एवं द्रविडदेश की भगवत्भक्ति तथा वैदिक धर्म-श्रद्धा की चर्चा नहीं की है, क्या इसलिये हम मान लें कि मथुरा द्वारका में श्रीकृष्ण न थे, काशी में श्रीविश्वनाथ न थे, पुरी में पुरुषोत्तम न थे और दक्षिण भारत में भगवत्भक्ति न था? हुउएन-साङ्ग ने कहा कि 20 घोडों पर लादकर 657 पुस्तकें ले गये थे पर कहीं भी हमारे वेद, सूत्र, उपनिषद, गीता आदि की चर्चा नहीं की है, क्या इससे कह सकते हैं कि वेद, उपनिषद, गीता आदि न थे। इसी प्रकार श्रीकुमारिल भट्ट एवं आपके अनुयायियों का न उल्लेख करने से श्रीकुमारिल भट्ट का न होना कैसे सिद्ध कर सकते हैं? बौद्ध धर्म के नष्ट होते देख उनके ग्रंथों के नष्ठ होने की संभावना से एवं बौद्ध धर्म ग्रंथों की रक्षा के लिये श्रीशिलादित्य ने 20 घोडों पर 675 बौद्धधर्म के पुस्तकें भेजे होंगे। शिलादित्य- समान कुछ राजा बौद्धधर्म के पक्षपाती रहे होंगे। कुम्भकोण मठ के कुछ प्रचारक विद्वानों ने काशी में 1935 ई० में यह

प्रचार किया था कि माधवीय शङ्करविजय में इस विषय की वर्णन एवं राजा सुधन्वा द्वारा बौद्धों का नाश किये जाने का वृत्तान्त सब भूल है एवं इतिहास इस विषय की पुष्टी नहीं करता। इस भ्रामक प्रचार का पोल खोलने के लिये ही यह विषय यहां दिया गया है ताकि पाठकगण स्वयं यथार्थता जान लें। माधवीय का वर्णन इतिहास पुष्टी करता है। माधवीय शङ्करविजय को अनादरणीय ठहराने का यह एक मिथ्या प्रचार है।

आन्ध्र देश के एक विद्वान लिखते हैं कि माधवीय के टीकाकार ने मूलश्लोक के 'शांकरवाक्यसारः' की टीका करते समय निराधार अनावश्यक कल्पना कर इस पद का अर्थ बतलाया है। इस पद अर्थ जो सरल और निकट अर्थ है एवं सर्वसाधारण को मालूम होता है वह यही है 'श्री शङ्कराचार्य सम्बन्ध वाक्यों का सार'। पर टीकाकार का अभिप्राय है 'शङ्करस्य भगवतो भाष्यकारस्य अयं शाङ्करः आनन्दगिर्यभिधः तस्य तत्प्रशिष्यस्य वाक्यसारः।' और इसलिये आनन्दगिरि शंकरविजय का सार माधवीय शंकरविजय में है। टीकाकार यह सिद्ध करना चाहते थे जो आपका ख अभिप्राय है कि आनन्दगिरि शंकरविजय ही प्राचीन बृहच्छंकरविजय है और माधवीय का मूल यही है और इसीलिये इतना कष्ट कर सरल व निकट अर्थ जो सर्वसाधारणों को मालूम होता है उसे परित्याग कर कल्पना जगत की दूर के अर्थ को प्रकाश किया है। इन दोनों भिन्न अर्थों से कोई आपत्ती नहीं है चूंकि इससे कुम्भकोणमठ प्रचार की पुष्टी नहीं होती।

कुम्भकोणमठाधीश ने *1932* ई० में मदरास भाषण में कहा है कि आचार्य शङ्कर चरित्र कथा अनेकों ने लिखा है और इसमें माधवीय शङ्करविजय नामक एक पुस्तक है। आनन्दगिरि शंकरविजय, चिद्विलास शङ्करविजय, केरळीय शंकरविजय, व्यासाचलीय शङ्करविजय भी अन्य पुस्तके हैं और ये सब पुस्तक आचार्य शङ्कर का चरित्र कथा विवरण देते हैं। आपने आगे कहा कि इन पुस्तकों में दिये कथा विवरण में भेद स्वल्प हैं पर सबों में जो विषय एक ही समान का विवरण दिया है, उन सब विषयों को हमलोग स्वीकार कर लेना चाहिये। अर्थात् आपका अभिप्राय है कि भिन्न भेद कथनों को स्वीकार करना नहीं चाहिये। कुम्भकोणमठाधीश के भाषण द्वारा दो विषय स्पष्ट प्रतीत होता है कि आपने माधवीय शङ्कर दिग्विजय पुस्तक को स्वीकार कर प्रामाणिक ग्रंथ माना है और जो विषय भिन्न रूप से वर्णन किया है उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। आचार्य शंकर द्वारा कांची में आम्नाय मठ की स्थापना कोई भी ग्राह्य मूल प्रामाणिक पुस्तकों में न कहने से या वृद्धपरम्पराप्राप्त जन श्रुति इसकी पुष्टी न करने से तथा कांची मठ की आम्नाय पद्धति, संप्रदाय, आचार, अनुशासन आदि विषय यतिधर्म शास्त्र ग्रंथों में उल्लेख न होने से एवं आचार्य शंकर द्वारा रचित मठाम्नाय व महानुशासन में कांची मठ का नामो निशान न होने से ही कुम्भकोणमठ के कल्पित भ्रामक प्रचारों का खन्डन किया जाता है। न मालूम क्यों इस खन्डन से कुम्भकोण मठाभिमानी रुष्ठ होते हैं? एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोणमठाधीष की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें माधवीय शङ्करविजय के बारे में लिखा है कि "Probably Spurious, but certainly of little use" कुम्भकोणमठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी जिस पुस्तक से न हो उसे अनादरणीय ठहराना कुम्भकोणमठाभिमानियों का स्वभाव है। कुम्भकोणमठाधीष के भाषण एवं आपके मठ सम्बन्धी प्रचार पुस्तकों में भिन्न भिन्न कथनों का प्रचार भी होता है, उदाहरणार्थ, माधवीय एक माननीय पुस्तक है, माधवीय एक अनादरणीय श्रृंगेरीभक्तों से रचित अर्वाचीन काल का एकाङ्गि पुस्तक है; आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल कालटी है और पितामाता का नाम शिवगुरु आर्याम्बा है, आनन्दगिरि मे वर्णित आचार्य का जन्म स्थल चिदम्बर क्षेत्र एवं पितामाता का नाम विश्वजित विशिष्ठा नाम सब कालटी एवं शिवगुरु आर्याम्बा का नामान्तर है और इसलिये चिदम्बर क्षेत्र ठीक है; ॐतत्सन् महावाक्य नहीं है, ॐतत्सत् महावाक्य है; कांची का आम्नाय

ऊर्ध्वाम्नाय या मूलाम्नाय या मौलाम्नाय या मध्यमाम्नाय है; आचार्य शङ्कर का तनुत्याग कांची में हुआ था, आचार्य शङ्कर हिमालय के केदार सीमा से स्वशरीर कैलास गमन किये थे पर पुनः आप इस भूलोक को कैलास से लौट आये और पश्चात् कांची में वास करते हुए निर्याण प्राप्त किये; काश्मीर में सर्वज्ञपीठोरोहण नहीं किया था कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण करने के पश्चात् कांची लौट कर एक सर्वज्ञपीठ की स्थापना कर उसपर आरोहण किये; आदि ऐसे अनेक भिन्न कथन पाये जाते हैं। इसीलिये यह स्पष्ट कहा जाता कि कुम्भकोणमठ का प्रचार सब भ्रमात्मक, कल्पित एवं असत्य हैं।

कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन व भक्त प्रचारक विद्वान श्रीगुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री जिनको कुम्भकोण मठाधीष ने 'चतुषष्ठिकलात्मकालङ्कार सार्वभौम' की उपादी दी थी, आपने कुम्भकोण मठ को 'सर्वोत्तम सर्वोच्च सार्वभौम जगद्-गुरु' बनाने की चेष्टा में एक पुस्तक 'श्रीमुख व्याख्या' शीर्षक रचना कर 19 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में तीव्र प्रचार किया था। कुम्भकोण मठ के ऐसे परम भक्त से रचित एक अन्य पुस्तक में लिखा है कि माधवीय शङ्करविजय श्रीविद्यारण्य द्वारा रचित है। आश्चर्य तो यह है कि एक समय परिस्थिति के अनुसार अनादरणीय ठहराया जाता है और दूसरी समय इसे आदरणीय पुस्तक होने का भी कहा जाता है। ऐसे प्रचारों से अपनी इष्ट सिद्धि दोनों वर्ग से प्राप्त किया जा सकता है और दोनों दलों को संतुष्ठ भी किया जा सकता है। माधवीय पांचवें सर्ग 103 मूल श्लोक की टीका से प्रतीत होता है कि पञ्चदशी कर्ता श्रीविद्यारण्य ही इस संक्षेप शङ्करविजय का कर्ता हैं जिनका पूर्वाश्रम नाम श्री माधवाचार्य था।

माधवीय शङ्करविजय का मूल ग्रंथ के बारे में भिन्न अभिप्राय प्रकाशित हुए हैं। कुम्भकोण मठ का कथन है कि व्यासाचल शङ्करविजय ही माधवीय का मूल है और 'भागवतचम्पू' के रचयिता नवकालिदास श्रीमाधव भट्ट से रचित ग्रंथ है अथवा भट्ट श्रीनारायण शास्त्री एवं अन्य विद्वानों से रचित पुस्तक है। कुम्भकोण मठ के आत्मबोध 'सुषमा' में माधवीय संक्षेप शङ्करविजय को ही व्यासाचल शङ्करविजय कहा है। कुम्भकोण मठ के प्रचारक यह भी प्रचार करते हैं कि माधवीय का तीन चौथाई श्लोक सब पतञ्जली चरित्र, शङ्कराभ्युदय, व्यासाचलीय एवं पं. जगन्नाथ व पं. उमामहेश्वर द्वारा रचित ग्रंथों से चोरी कर एक स्वतंत्र ग्रंथ माधवीय के नाम से प्रकाश किया गया है। इन भिन्न कथनों में कौन कथन सत्य है सो प्रचारक ही जानें! माधवीय के टीकाकार 'डिण्डिम' के अनुसार प्राचीन बृहच्छंकर विजय माधवीय का मूल है और यह अनन्तानन्दगिरि या आनन्दगिरि रचित शङ्करविजय है। भाष्य टीकाकार आनन्दगिरि या आनन्दज्ञान का नाम भी लिया गया है। एक बृहच्छंकरविजय चित्सुखाचार्य कृत का भी उल्लेख करते हैं। माधवीय रचयिता के अनुसार 'प्राचीन शङ्करविजय' ग्रंथ ही इसका मूल है। पर यह प्राचीन ग्रंथ 'शङ्करविजय' का रचयिता कौन और कब रचा गया था यह किसी को मालूम नहीं है चूंकि यह पुस्तक उपलब्ध नहीं होता। अभी तक किसी ने निस्सन्देह सप्रमाण सिद्ध नहीं किया है कि माधवीय का मूल कौन पुस्तक है? चाहे जिस किसी व्यक्ति से भी यह पुस्तक लिखा गया हो और जिस किसी समय में भी लिखा गया हो, यह पुस्तक श्रेष्ठों को ग्राह्य है और सर्वमान्य आदरणीय पुस्तक है। श्री डि. वेंकटरामय्या द्वारा आंगल भाषा में अनुवादित श्रीपञ्चपादिका ग्रंथ जो गायकवाड ओरियन्टल सीरिज में 1948 में प्रकाशित है उसमें आप अपना अभिप्राय माधवीय शङ्करविजय पर देते हुए लिखते हैं जो मेरे अभिप्राय की पुष्टी करता है—'... ... **and though we may not place implicit faith on its authority, we need not altogether discredit the account.'** श्रृङ्गेरी मठाधीष श्रीविद्यारण्य के शिष्यों में एक गृहस्थ शिष्य श्रीवामन भट्ट बाण थे। श्रीवामन भट्ट ने कोन्डवीडुरेड्डी राजा श्रीपेद्दकोमट्टी वेमा (1398—1415 ई०) का आश्रय पाकर आपने अनेक ग्रंथ रचा था—वेमभूपाल चरित, नलाभ्युदय, रघुनाथ चरित काव्य

पार्वती परिणय, शब्द रत्नाकर आदि हैं। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि आपने अपने गुरु की आज्ञा पर आचार्य शङ्कर का चरित्र कथा लिख कर अपने गुरु के नाम से प्रचार किया था। यह सम्भव है।

शङ्करविजयविलास—श्री चिद्विलास यति— यह शङ्करविजयविलास पुस्तक द्रविड ग्रन्थाक्षर एवं तेलगू लिपि में मुद्रित मिलते हैं। सुना जाता है कि इसकी नागरी लिपि प्रति उत्तर भारत में प्रकाशित हो रहा है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि आचार्य शङ्कर चरित्र कथा जो वृद्ध परम्परागत चली आ रही है उसी चरित्र कथा को श्री चिद्विलास यति अपने शिष्य श्री विज्ञानकन्द को सुनाते हैं। आप कहते हैं 'प्रश्नेनानेन तुष्टोस्मि यत् ज्ञातम् मत्गुरोः मुखात्। तत्ते प्रियाय शिष्याय वक्ष्यामि श्रुनुसादरम्।' प्राचीन काल में जब पुस्तकें एवं मुद्रालय न थे और हमलोगों के पूर्वज महान् सब जो कुछ अपने अपने गुरु मुख द्वारा सुनकर अध्ययन किया था वे ही सब जिसप्रकार आजकल ग्रंथ रूप में मुद्रित होकर बाजारों में मिलते हैं उसी प्रकार यह पुस्तक भी प्राचीन मालूम होता है। श्री चिद्विलास यति रचयिता किसी मठ के अधिपती न थे और न आपका सम्बन्ध किसी मठ के साथ था या न आप किसी मठ की आज्ञा से या अनुमति से इस ग्रंथ की रचना की थी। इसलिये इस पुस्तक की प्रामाण्यता अधिक है।

श्री. पि. पि. सुब्रह्मणिय शास्त्री, बि. ए. (ऑक्सफोर्ड), लिखते हैं — 'Cidvilasa, the author of Sankara Vijaya vilasa, belongs to the circle of pupils who gathered round Sankara during his life time' श्री चिद्विलास यति आचार्य शङ्कर के शिष्यों में एक थे। श्री अनन्तानन्दगिरि व श्री वल्लिसहाय भी अपने रचित ग्रंथों में कहते हैं कि श्री चिद्विलास एवं श्री विज्ञानकन्द दोनों श्री आचार्य शङ्कर के शिष्य थे। कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि शङ्करविजयविलास के रचियिता श्री चिद्विलास यति आचार्य शङ्कर के शिष्य थे। श्री चिद्विलास कृत शङ्करविजयविलास का एक प्राचीन हस्तलिपि प्रति 'लन्डन इन्डिया आफीस पुस्तकालय' में है और यह हस्तलिपि प्रति अर्वाचीन काल का मुद्रित प्रति से मिलती जुलनी है। इस पुस्तक के अन्त में भी (colophon) उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर के शिष्यों में एक श्री चिद्विलास थे। लन्डन पुस्तकालय प्रति में भी यह विषय उल्लेख है। कुम्भकोण मठाभिमानियों व प्रचारकों द्वारा काशी में प्रकाशित पुस्तक 'शाङ्करपीठतत्वदर्शन' में कलकत्ता प्रकाशित 'विश्वकोष' को प्रमाण मानकर अपने से प्रचारित भ्रामक प्रचारों की पुष्टी के लिये उक्त 'विश्वकोष' से कुछ पंक्तियां उद्धृत किया है। उसी 'विश्वकोष' में यह स्पष्ट उल्लेख है 'चिद्विलास–शङ्कराचार्य के एक शिष्य। दाक्षिणात्य में बहुतों का विश्वास है कि ये भी शङ्करविजय नामक संस्कृत भाषा में शङ्कराचार्य का एक चरित्र रचना किये हैं। उस ग्रंथ में चिद्विलास वक्ता और विज्ञानकन्द श्रोता हैं।' यदि उपर्युक्त अभिप्राय को यथार्थ मान लें तो अन्य कोई पुस्तक इसके समता में प्रामाण्य रुप में नहीं ला सकते हैं क्यों कि अन्य चरित्र रचयिता सब श्री शङ्कराचार्य काल के बहुकाल पश्चात् ही रचना की थी। सम्भवतः श्री चिद्विलास ने आचार्य शङ्कर के निर्याण उपरान्त ही इस पुस्तक की प्रणयन की हो। इस पुस्तक में दिये चरित्र विवरणों में कोई ऐसा विषय नहीं है जो ऐतिहासिक दृष्टि से आक्षेप किया जा सकता है। एक शिष्य अपने गुरु भक्ति द्वारा सरल सुबोध भाषा में रचित ग्रंथ मालूम होता है।

यदि कुम्भकोणमठ के सङ्कलित गुरुपरम्परा को देखें तो उस सूची में दो चिद्विलास यतियों का नाम पाते हैं। कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि आपके मठाधीश श्री चिद्विलास ही इस पुस्तक के रचयिता हैं (पं. आत्रेय कृष्णशास्त्री द्वारा रचित पुस्तक में)। कुम्भकोणमठ की कल्पित गुरुवंशावली का विमर्श आगे के अध्याय में पायेंगे जहां यह सिद्ध

किया गया है कि गुरुवंशावली 17 वीं शताब्दी तक का कल्पित है। एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोणमठाधीष के अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें इस वंशावली के बारे में लिखा है कि वंशावली का अधिकांश अंश जो पुण्यश्लोकमञ्जरी में उल्लेख है वह सब कहां तक प्राचीन एवं विश्वसनीय है यह कहा नहीं जा सकता है— 'When I say that the accuracy of the chronology cannot be questioned, it applies only to the latter part of it. We cannot say at present how far the older verses (i. e. Punyaslokamanjari) are genuine of contemporary origin.' इससे सिद्ध होता है कि सारा कार्य कल्पित रचना है। ऐसे कल्पित गुरु वंशावली के 27 वां गुरु एक चिद्विलास यति (564—577 ई०) होने का उल्लेख है। 48 वां कुम्भकोणमठाधीष श्री अद्वैतानन्द बोध उर्फ चिद्विलास (1166—1200 ई०) भी एक हैं और कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि आप ही ने 'शंकरविजयविलास' ग्रंथ की रचना की थी। पर लन्डन पुस्तकालय प्रति एवं मुद्रित उपलब्ध प्रतियों में रचयिता ने अपने को कुम्भकोणमठाधीष होने का विषय क्यों उल्लेख नहीं किया है? यदि कुम्भकोणमठ का कथन सत्य है तो रचयिता ने क्यों कांची में आम्नाय मठ होने का उल्लेख नहीं किया है? क्या आप भूल गये कि आप भी आचार्य शङ्कर प्रतिष्ठित निजमठ के अधीष थे? श्री चिद्विलास ने स्पष्ट केवल चार आम्नाय मठ का ही उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि कांची में आचार्य शंकर ने आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। कुम्भकोणमठ प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटि प्रदीपम' में अब कुम्भकोणमठ प्रचार करते हैं कि यह चिद्विलासीय पुस्तक को किसी एक अनजान व्यक्ति जिनका नाम व विवरण मालूम नहीं होता उसने श्रृङ्गेरी शारदामठ की महत्ता बढाने के लिये लिखकर चिद्विलासीय के नाम से प्रचार किया था। अन्यत्र यह भी प्रचार होता है कि यह पुस्तक श्रृङ्गेरी मठाभिमानी से रचित पुस्तक है और यह एकाङ्गि पक्षपातयुक्त है, अतएव अनादरणीय भी है। पूर्व में प्रचार था कि आपके मठाधीप (1166—1200 ई०) ने इस पुस्तक को रचा है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर के शिष्य ने इसकी रचना की थी। इन भिन्न कथनों का क्या तात्पर्य है? कुम्भकोणमठ को जब मालूम हुआ कि श्री चिद्विलास शङ्करविजयविलास आपके भ्रामक प्रचारों की पुष्टि नहीं करता और चूंकि यह पुस्तक आदरणीय है एवं श्रेष्ठों को ग्राह्य है, अब इस पुस्तक पर भी कीचड फेंकने की चेष्टा की जा रही है जैसा कि कुछ वर्षों से माधवीय को अनादरणीय एवं अप्रमाणिक ठहराने का तीव्र प्रयत्न हो रहा है।

आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल कालटी, पितामाता का नाम शिवगुरु आर्याम्बा, आचार्य के पांचवें वर्ष पिता द्वारा उपनयन संस्कार, विद्याध्ययन, कालटी में आतुर सन्यास ग्रहण, बद्रीवासी श्रीगोविन्द भगवत्पाद के पास सन्यास दीक्षा व शिक्षा, श्रीकुमारिल भट्ट (श्रीभट्टपाद) से भेंट पश्चात् श्रीमन्डन मिश्र से काश्मीर में भेंट व संवाद, केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना, कांची में कामाक्षी व श्रीचक्र प्रतिष्ठा, कांची में सर्वज्ञपीठारोहण ('सर्वज्ञपीठं संस्थानं विजित्य द्वैतवादिनः'—उपलक्षण न्याय से सर्वज्ञपीठ समान स्थल), दिग्विजय यात्रा तथा बदरीकाश्रम में श्रीदत्तात्रेय गुफा से कैलास गमन, आदि विषयों का वर्णन इस पुस्तक में है। इस पुस्तक में वर्णित आचार्य शङ्कर चरित्र कथा मुख्य विषयों में 60 श्लोक युक्त शिवरहस्य एवं अन्य शङ्करविजयों से मिलता जुलता है।

श्रीचिद्विलास कृत शङ्करविजय विलास में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार केवल चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा की थी और कांची में आम्नाय मठ स्थापना का उल्लेख नहीं है। यदि कांची में मठ होता तो अवश्य उल्लेख करते जैसा आपने कांची में श्रीचक्र प्रतिष्ठा एवं विद्वानों से वाद विवाद का उल्लेख किया है।

शृङ्गेरि—'श्रीमठं तत्र निर्माय विद्यापीठमचीक्लृपत्।
चतुर्ष्वेकं वावदूकं सुरेशार्यमग्रिमम्॥
ब्रह्मविद्यावरिष्ठं तं तत्पीठे विनिवेश्य सः।' (अ. 24-श्लो. 30/31)

जगन्नाथ—'एन्द्रयां ककुभि तत्रैकं भोगवर्धन नामकम्।
जगन्नाथस्य चाभ्यर्णे मठमेकमचीक्लृपत्॥
पद्मपादाचार्यवर्यं तन्मठाधीशमातनोत्।' (अ. 30-श्लोक 10/11)

द्वारका—'पश्चिमस्यां हरित्येष मठमेकं विनिर्ममे।
हस्तामलकनामानं तदध्यक्षं ततान सः॥' (अ. 31 श्लो. 5/6)

बदरी—'कोबेर्यां दिशि तत्रैकं मठं दिव्यमकारयत्।
तन्मठे तोटकाचार्यवर्यं छायानुवर्तिनम्॥' (अ. 31-श्लो. 28)

इस पुस्तक में आचार्य शङ्कर का सर्वज्ञ पीठारोहण स्थल कांची में उल्लेख है और अन्य प्रामाणिक पुस्तकें काश्मीर का उल्लेख करता है। इस भिन्नता से कोई आपत्ती भी नहीं है या न कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी होती है। ऐसे भिन्न वर्णित विषयों का समन्वय भी किया जा सकता है और इसलिये इस पुस्तक की प्रामाणिकता पर शङ्का करना मूर्खता होगा। कुम्भकोण मठवाले इस उक्त सर्वज्ञपीठारोहण के आधार पर प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार कांची में मठ की स्थापना की थी। यही भ्रामक व मिथ्या प्रचार है और आपत्ती इसी प्रचार में है। इसके साथ कुम्भकोण मठ का कथन भी है कि कांची में आचार्य शङ्कर ने तनुत्याग किया था अतः मठ का भी होना निश्चित होता है। यह कथन भी भूल है। यदि इस कुतर्क को मान लें तो प्रश्न उठता है कि जहां जहां मठ हैं क्या वह सब जगह निर्याण स्थल हैं? चिद्विलासीय, माधवीय, व्यासाचलीय, सदानन्दीय, शिवरहस्य आदि सब पुस्तकों में केदार सीमा ही निर्याण स्थल बतलाया है। अग्राह्य अप्रामाणिक निन्दास्पद आनन्दगिरि शङ्करविजय में ही कांची को निर्याण स्थल बतलाया है परन्तु अन्य सब पुस्तकें इसके विरोध ही हैं। यदि मान लें कि आचार्य शङ्कर कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया था या निर्याण प्राप्त किया था अतः वहां आपने मठ की स्थापना भी की थी, यह कथन भ्रामक व भूल होगी क्योंकि सर्वज्ञपीठारोहण करना या निर्याण प्राप्त करना तथा आम्नायानुसार अनुशासनबद्ध मठ स्थापना करना, ये दोनों कार्य भिन्न हैं। मठाम्नाय व महानुशासन जो आचार्य शङ्कर द्वारा रचित है उसमें मठों की प्रतिष्ठा, ध्येय, पद्धति, संप्रदाय, गुण लक्षण आदि उल्लेख हैं। यहां कांची का उल्लेख नहीं है। इसलिये कांची में मठ का होना असम्भव है। आम्नाय मठ कहने से ही मठ का आम्नाय, पद्धति, संप्रदाय, महावाक्य, आदि का होना परमावश्यक है और कांची कुम्भकोण मठ का कोई आम्नाय पद्धति नहीं है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि मूल आचार्य शङ्कर का पांचवां अवतार (788 ई० में) अभिनव शङ्कर जो कुम्भकोण मठ के 38 वां मठाधीश थे आपने काश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था। पर आप इस समय कश्मीर में मठ स्थापना का विषय कहा नहीं चूंकि कुम्भकोण मठ का तर्क है कि जहां सर्वज्ञपीठारोहणस्थल है वहां मठ भी है। अतः यह कहना ठीक है कि सर्वज्ञपीठारोहण करना और आम्नायानुसार मठ स्थापना करना दोनों पृथक्‌ कार्य हैं। कुम्भकोण मठ मानते हैं कि कश्मीर में सर्वज्ञपीठ था। यदि आचार्य शङ्कर ऐसे सुप्रसिद्ध कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण न करते तो आपका सर्वज्ञत्व का प्रकाश व्यवहारिक रूप में न हुआ होगा। कश्मीर जिसे 'शारदा देश' कहते हैं जहां दिग्गज विद्वान वास करते थे वहीं सर्वज्ञपीठ होने का प्रमाण मिलता है। क्या यह

सम्भव है कि आचार्य शङ्कर ऐसे पीठ पर आरोहण न किये होंगे? 'सर्वज्ञपीठ' पद से ही बोध होता है कि सर्वज्ञपीठ एक ही हो सकता है और अर्वाचीन काल में अन्य निर्माण किया पीठ इस प्राचीन पीठ के साथ तुलना मात्र की जा सकती है (उपलक्षण) और यह नवीन पीठ सर्वज्ञपीठ हो नहीं सकता। आचार्य के समान दिग्गज सर्वज्ञपन्डित वासस्थल में ही सर्वज्ञपीठ का होना निश्चित होता है। शारदा देश काश्मीर में दिग्गज पन्डितों का होना इतिहास एवं अन्दरबाह्य प्रमाण से सिद्ध होता है और यहां सर्वज्ञपीठ होने की योग्यता रखता है। मुसलमानों से रचित पुस्तकों में भी कश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ (तख्त-इन-सुलैमान) होने का बतलाया है। कांची में ऐसे दिग्गजों का होना सिद्ध नहीं होता अतः कांची में सर्वज्ञपीठ का होना न्याय युक्त भी नहीं है। वर्तमान द्वारका शारदा मठाधीष जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज ने 20—4—1961 के शुभदिन कश्मीर के इस सर्वज्ञपीठ मन्दिर में आचार्य शङ्कर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि चिद्विलास ने कांची में सर्वज्ञपीठ संस्था होने का बर्णन क्यों किया है? श्री चिद्विलास यह नहीं कहते कि आचार्य शङ्कर ने कांची में सर्वज्ञपीठ का निर्माण किया या आरोहण किया या कांची में सर्वज्ञपीठ था। आप कहते हैं 'सर्वज्ञपीठं संस्थानं विजित्य द्वैतवादिनः'। आपका अभिप्राय है कि कांचीस्थल सर्वज्ञपीठ समान स्थल था जहां आचार्य शङ्कर ने उस स्थलवासी विद्वानों एवं आये हुए विरोधी दलों के विद्वानों को वादविवाद से पराजित किया था। यहां उपलक्षण न्याय ठीक है। सर्वज्ञपीठ एक ही हो सकता है। कश्मीर के सर्वज्ञपीठ सदृश कांची में वादविवाद हुआ था और यही अर्थ न्याय व उचित है। गोविन्दनाथ कृत केरळीय शङ्करविजय में कश्मीर सीमा के कंची में सर्वज्ञपीठ पर आरोहण करने का उल्लेख है न कि दक्षिण भारत कांची। काश्मीर इतिहास से एवं वहां के एक शिला लेख से प्रतीत होता है कि कश्मीर में एक कंची नगर था जहां से समृद्धशाली व प्रभावशाली 'कांचुडी' वर्ग के लोग आये थे। कश्मीर के 'शारदी' नगर के पास कंची का होना अनुमान किया जाता है। श्री गोविन्दनाथ ने इसी कंची का उल्लेख किया है न कि दक्षिण भारत का कांची। कश्मीर के कंची से दक्षिण भारत कांची का कोई सम्बन्ध न था और न है। मेरी जानकारी में भारत में पांच कांची नगर हैं—तीन उत्तर भारत एवं दो दक्षिण भारत। आचार्य शङ्कर इन पांच स्थलों में भी गये हों।

कुम्भकोणमठ का प्रचार भी है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में एक नया सर्वज्ञपीठ का निर्माण कर आप स्वयं स्वप्रतिष्ठित सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था। क्या आचार्य शङ्कर अहंकारी एवं स्वप्रतिष्ठा इच्छुक थे कि आपने 'सर्वज्ञ' उपादी का निर्माण कर आप ही ने स्वीकार भी किया था? क्या यह सम्भव है? दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी जिसे 'व्याख्यान सिंहासनपीठ' होने का सिद्ध है इसी श्रृङ्गेरी समीप दक्षिणाम्नाय के कांची में सर्वज्ञपीठ की प्रतिष्ठा करना एवं उस पर आरोहण करना असम्भव दीखता है। पाठकगण जान लें कि आचार्य शङ्कर ने कहीं भी सर्वज्ञपीठ का निर्माण नहीं किया था और आपने प्राचीन काल के परम्परागत आये हुए सर्वज्ञपीठ पर ही आरोहण किया था। कश्मीर का प्राचीन सर्वज्ञपीठ ऐसा सर्वज्ञपीठ था जहां आचार्य शङ्कर समान दिग्गज विद्वान रहा करते थे और इन सबों को वादविवाद में पराजित कर पराजित विद्वानों से 'सर्वज्ञ' की उपादी प्राप्त की थी।

शङ्करदिग्विजयसार-श्री सदानन्दव्यास—इस ग्रंथ के रचयिता एक प्रकान्ड विद्वान थे और आप पुराण प्रवचन वृत्ति से अपनी जीविका चलाते थे। आपसे रचित ग्रंथ—अद्वैतसिद्धिसिद्धान्तसार, गीताभावप्रकाश, प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणी, स्वरुपनिर्णय, महाभारततात्पर्यप्रकाश, रामायणतात्पर्यप्रकाश, महाभारतसारोद्धार, दशोप्रनिषत्सार,

शङ्करदिग्विजयसार, आदि हैं। आप पंजाब देश से काशी पहुंचे। काशी के 'बालूजी का फर्श' नामक मुहल्ले में पुराणों की कथा प्रवचन करते थे। आपने एक शिव मन्दिर काशी के मणिकर्णिकाघाट पर 1797 ई० में बनवाया था। सारस्वत ब्राह्मण श्री रामकुमार जी के पुत्र श्री धनपतिसूरी (माधवीय संक्षेप शङ्करदिग्विजय के टीकाकार 'डिण्डिम') को आपने विद्याध्ययन कराकर अपनी पुत्री का विवाह भी श्री धनपतिसूरी के साथ करा दिया था। 'शङ्कर दिग्विजयसार' पुस्तक 1780/83 ई० में तथा 'गीताभावप्रकाश' 1784 ई० में प्रणयन किया गया था। 'शङ्करदिग्विजयसार' के रचयिता कहते हैं कि आपकी पुस्तक माधवीय संक्षेप शङ्करदग्विजय ग्रंथ का सारांश है। कहीं कहीं तो माधवीय के श्लोकों को उद्धृत किया है। इसे पढकर बृहत्ग्रंथ माधवीय का संक्षेप जाना जा सकता है।

आपसे रचित पुस्तक में कहीं कहा नहीं है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नायमठ की स्थापना की थी या कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया था या आचार्य शंकर का तनुत्याग कांची में हुआ था। यदि कुम्भकोणमठ का प्रचार सत्य होता या आपके कथनो की पुष्टी में प्रमाण होते तो अवश्य प्रकान्ड विद्वान श्री सदानन्द व्यास समान व्यक्ति इन विषयों का उल्लेख करते।

कुम्भकोणमठ का तीव्र प्रचार है कि अर्वाचीन काल के प्रकान्ड विद्वानों (भट्ट श्री नारायण शास्त्री एवं अन्य) से शृङ्गेरी मठ के कुछ स्वार्थी लोग शंकरदिग्विजय पुस्तक लिखवाकर माधवीय के नाम प्रचार कराया था। उपर्युक्त प्रमाण से सिद्ध होता है कि कुम्भकोणमठ का कथन मिथ्या है। माधवीय पुस्तक निश्चित रूप से 1780/83 ई० के पूर्व का ही है और 19 वीं/20 वीं शताब्दी के विद्वानों से रचित नहीं है। श्री सदानन्द व्यास समान प्रकान्ड विद्वान व पौराणिक को माधवीय के रचयिता पर सन्देह न हुआ था और आपने माधवीय को मूल मानकर एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की थी। माधवीय के टीकाकार श्री धनपतिसूरी को सन्देह होता तो अवश्य अपने टीका में इस विषय का उल्लेख करते। इससे प्रतीत होता है कि 18 वीं शताब्दी अन्त तक माधवीय के रचयिता पर सन्देह या वादविवाद ही न खडा हुआ।

गुरुपरम्परा चरित्र–पिङ्गळ गोपाल शास्त्री—यह पत्रात्मक पुस्तक दो भागों में (पूर्व व उत्तर) उपलब्ध हैं। इसमें दिये हुए अनेक अन्तर कथायें और आचार्य शङ्कर के शिष्यों का चरित्र कथा व उनके वंशावली का वर्णन अति सुन्दर रूप में है। इस ग्रंथ से अनेक विषय जो चरित्र से सम्बन्ध रखता है उन सबों का ज्ञात होता है। इस पुस्तक में आचार्य शंकर द्वारा चार आम्नाय मठ स्थापना का उल्लेख है और कुम्भकोणमठ को एक शाखा मठ जो आचार्य शंकर के बहुकाल पश्चात स्थापित होने का वृत्तान्त दिया है। आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल कालटी, पिता माता का नाम शिवगुरु आर्याम्बा, काश्मीर में सर्वज्ञ पीठारोहण एवं निर्याण स्थल केदार सीमा का उल्लेख है। प्रश्न उठता है कि कुम्भकोणमठ से कहेजानेवाले प्रमाण सब पिङ्गल श्री गोपाल शास्त्री को क्या न मालूम था कि आपने कुम्भकोणमठ को एक शाखा मठ होने का उल्लेख किया है। आपको जो कुछ प्रमाण मिले थे सो सब कुम्भकोणमठ को एक शाखा मठ होने का ही सिद्ध करता है।

शंकरदिग्विजयसार-व्रजाराज—यह प्राचीन पत्रात्मक हस्तलिपि 90 पत्रों का एक पुस्तक, श्रीगोविन्द भट्ट, मिर्जापुर, के यहां उपलब्ध है। यहां श्रीशङ्कर भगवत्पाद का चरित्र मनोहररूप में संक्षेप में वर्णित है। इसमें भी आचार्य शङ्कर द्वारा चार आम्नाय मठों की ही स्थापना उल्लेख है। पूर्वी एवं पाश्चात्य चरित्र विमर्शकों ने इसे प्रमाण माना है। कांची मठ का नामो निशान नहीं है।

गुरुवंशकाव्य–काशी लक्ष्मण शास्त्री—इस पुस्तक का प्रथम सात सर्ग वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्, से प्रकाशित है। सर्ग 8 से 19 तक (टीका सहित 15 सर्ग तक) हस्तलिपि प्रति उपलब्ध है जो अभी तक मुद्रित न हुआ। श्रीकाशी लक्ष्मण शास्त्री जी (1705—1741 ई०) श्रृङ्गेरी मठ के विद्वान थे। इस पुस्तक की रचना कहा जाता है कि 1730 ई० में हुई थी। प्रथम तीन सर्गों में आचार्य शङ्कर का जीवन चरित्र संक्षेप में है। इस पुस्तक में कुछ चरित्र विषय हैं जो अन्य आचार्य चरित्र ग्रंथों में पाये नहीं जाते। इस भेद कारण ही कहा जाता है कि माधवीय संक्षेप शङ्करविजय श्रृङ्गेरी मठ से या मठाभिमानियों से रचित पुस्तक नहीं है। यदि श्रृङ्गेरी मठ की माधवीय पुस्तक होती तो अवश्य माधवीय भी 'गुरुवंशकाव्य' में दिये विषयों का भी उल्लेख करता। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि माधवीय पुस्तक श्रृङ्गेरी भक्तों से रचित है सो मिथ्या प्रचार है। गुरुवंशकाव्य में कहा है कि मण्डन मिश्र व विश्वरूप दोनों भिन्न व्यक्ति थे और मण्डन मिश्र गृहस्थ ही रह गये थे पर विश्वरूप सन्यासाश्रम लेकर सुरेश्वराचार्य नाम धारण किये। काशी में आचार्य शङ्कर ने अपने लिये एवं अपने चार शिष्यों के लिये पांच मठों (निवासस्थल न कि आम्नाय मठ) की स्थापना करने का विषय भी उल्लेख है। उस श्लोक के आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने पांच मठों की स्थापना की थी। यह प्रचार भ्रामात्मक है। काशी के ये पांच मठ केवल अस्थिर साधारण निवास स्थल थे चूंकि यहां यह भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर अपने शिष्य सहित कुछ काल काशी में वास कर पश्चात् काशी छोडकर कश्मीर चल पढे। काशी के ये मठ आम्नाय मठ न थे और जिसे आम्नाय, पद्धति, संप्रदाय, महावाक्य, अनुशासन आदि से बद्ध न किया गया था। निवास स्थल 'मठ' अनेक हैं पर ये सब आम्नाय मठ कहलाते नहीं हैं। मठाम्नाय व महानुशासन से बद्ध मठ केवल चार हैं। 'गुरुवंशकाव्य' मूल श्लोक की टीका में टीकाकार लिखते हैं 'पद्मपादाचार्यादिभिः सह (वाराणसीं) प्राप्य आत्माना सह अमीषां शिष्याणां पञ्च मठान्प्रकल्प्य कतिचिद्दिनानि तस्थौ स्थितवान्'। इस विवरण से स्पष्ठ मालूम होता है कि काशी के पांच मठ साधारण निवास मठ थे न कि आम्नाय बद्ध पांच मठ। कुम्भकोण मठ के प्रचार को यदि मान भी लें तो यह पांच मठ स्थापना का विषय कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी नहीं करती चूंकि इस पुस्तक में यह नहीं कहा है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की थी। चार शिष्यों का चार आम्नाय मठ एवं आचार्य शङ्कर का ऊर्ध्वाम्नाय भी मान लें तो भी कांची में ऊर्ध्वाम्नाय का होना कोई पुस्तक उल्लेख नहीं करता। दृष्टिगोचर चार आम्नाय हैं और ज्ञानगोचर तीन आम्नाय हैं जो सात आम्नाय धर्मशास्त्र ग्रंथों में स्पष्ठ उल्लेख हैं। दृष्टिगोचर दक्षिणाम्नाय का एक पुण्यक्षेत्र कांची है जो ज्ञानगोचर ऊर्ध्वाम्नाय हो नहीं सकता। अतएव कुम्भकोण मठ का प्रचार मिथ्या प्रचार है।

गुरुवंशकाव्य में उल्लेख है कि काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण समय ही काम शास्त्र पर जब प्रश्न पूछे गये थे तब आचार्य शङ्कर ने इसी समय राजा अमरूक के मृत शरीर में परकाय प्रवेश कर कामशास्त्र सीखा। ऐसे और कुछ चरित्र वर्णन कथा अन्य पुस्तकों के तुलना में भिन्न पाया जाता है। इस गुरुवंशकाव्य में स्पष्ट उल्लेख है कि कांची में आचार्य ने शिवकाञ्ची व विष्णुकाञ्ची पट्टनों का निर्माण कराया था एवं कामाक्षी देवी की प्रतिष्ठा मात्र की थी। कांची में आम्नाय मठ स्थापना का विषय कहा नहीं है। आचार्य शंकर का निर्याण स्थल केदारसीमा का उल्लेख है।

शिवतत्त्वरत्नाकर–इक्केरी वंश के बसव नायक—कहा जाता है कि यह पुस्तक 1709 ई० में प्रकाशित हुआ था और यह पुस्तक उपलब्ध है। इस पुस्तक में अनेक विषयों का भन्डार है और इनमें दिये कथा से अनेक प्राचीन जटिल विषयों का समन्वय भी किया जा सकता है। मतप्रक्रिया पुस्तक होने से कुछ विषय अग्राह्य भी

हैं। आचार्य शङ्कर के वर्णन में स्पष्ट चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख करता है और यहां कांची में पांचवां मठ का नामो निशान नहीं है।

शंकराचार्य चरित–गोविन्दनाथ या केरळीय शंकरविजय—केरळ देश में आचार्य शङ्कर जीवन चरित्र विषय में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं जो अन्यत्र उपलब्ध कथा वर्णन से भिन्न हैं। ऐसे केरळीय प्रवादों से युक्त आचार्य शङ्कर का जीवन चरित्र उक्त पुस्तक में है। यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि गोविन्दनाथ गृहस्थ कवि थे या यति थे। सम्भवतः आप केरळ देश के थे। 'गौरीकल्याण' के रचयिता श्री रामवारियर के शिष्य एक गोविन्दनाथ थे और प्रमाण नहीं मिलते कि यह पुस्तक आपसे रचित है। अनुमान करने की जगह भी नहीं है। अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि यह पुस्तक 17 वीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है। यथार्थ रचना काल एवं रचयिवा का विवरण पता नहीं चलता। रचयिता की संस्कृत भाषा व शैली साधारण सर्वजानकारी स्वाभाविक है। इस पुस्तक में न अतिशयोक्ति या न कल्पना है। 9 सर्ग का यह पुस्तक पूना में प्रकाशित हुई है। आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल 'वृषाचलम' का उल्लेख है। कश्मीर मन्डलान्तर्गत कांची में सर्वज्ञपीठारोहण का वर्णन है। दक्षिण भारत के कांची से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। काश्मीर देश के शिलालेख से प्रतीत होता है कि काश्मीर में कंचो नगर था। इस कश्मीर देश के कंची नगर से आये हुए वीर प्रभावशाली योद्धावर्ग के लोगों को 'कंचुडी' के नाम से पुकारे जाते थे और इस विषय की पुष्टी कश्मीर में प्राप्त शिलालेख से होती है। कुम्भकोणमठाभिमानियों ने 'कामकोटि प्रदीपम' में प्रचार किया है कि दक्षिण भारत का कांची काश्मीर मन्डलान्तर्गत है। यह कथन उन्मत्त प्रलाप है। इस विषय का विमर्श पाठकगण आगे पायेंगे।

गोविन्दनाथ शङ्करविजय पुस्तक में 'व्यासाचल कवि' का उल्लेख है जो माधवाचार्य को ही संकेत करता है। माधवाचार्य ने अपने को व्यासाचल कवि कहा है और डिण्डिम टीकाकार ने टीका में इस विषय की पुष्टी की है। कुम्भकोणमठ के आत्मबोधेन्द्र 'सुषमा' में माधवीय को ही व्यासाचलीय कहा है जिसका विवरण पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे। कुम्भकोणमठ प्रचार करते हैं कि यह व्यासाचल कवि (गोविन्दनाथ शङ्करविजय में निर्देशित) जो आपके मठाधीष भी थे और जिन्होंने शंकरविजय ग्रंथ रचा है जिसे 'व्यासाचलीय' भी कहा जाता है, उसी विषय का संकेत करता है। गोविन्दनाथ ने व्यासाचल को 'कवि' कहा है और न मालूम आप सन्यासी थे या नहीं। आपका मठाधीष होना भी निश्चित नहीं है। प्रकाशित व्यासाचलीय पुस्तक के संपादक का अभिप्राय है कि यह व्यासाचल कुम्भकोणमठाधीष न थे और आपके चरित्र सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध नहीं होता। कुम्भकोणमठ के प्रचारों की पुष्टी गोविन्दनाथ स्वयं नहीं करते। इस विषय का विमर्श पाठकगण माधवीय शङ्करविजय विमर्श में पायेंगे। केरळीय शंकर विजय में कांची में आम्नायमठ स्थापना का विषय उल्लेख नहीं है।

कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में कहीं गोविन्दनाथ का नाम लेते हैं और कहीं केरळीय शङ्करविजय का नाम लेते हैं ताकि अबोध जन जान लें कि ये दोनों भिन्न पुस्तक हैं। व्यासाचलीय पुस्तक के भूमिका में संपादक ने गोविन्दनाथ एवं केरळीय शङ्करविजय से श्लोक उद्धृत किया है जो सब कुम्भकोण मठ से दिया हुआ विवरण था। कहेजानेवाले केरळीय शङ्करविजय का श्लोक सब गोविन्दनाथ में पाया जाता है। गोविन्दनाथ एवं केरळीय शङ्करविजय दोनों एक ही है।

गोविन्दनाथ केरळीय शङ्करविजय में कहा है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल 'तिरुचूर' था। कुम्भकोण मठ की 'सुषमा' रचयिता आत्मबोध ने गोविन्दनाथ केरळीय शङ्करविजय से कुछ श्लोक उद्धृत किया है। सुषमा पृष्ठ 25 में गोविन्दनाथ के तीसरे सर्ग का पांचवां श्लोक उद्धृत किया है जो गोविन्दनाथ का ही श्लोक है। परन्तु आत्मबोध ने सुषमा पृष्ठ 39 में पुनः कुछ श्लोक उद्धृत किया है जो गोविन्दनाथ में पाया नहीं जाता। अर्थात् आप जानते हुए भी कि ऐसे श्लोक मूल पुस्तक गोविन्दनाथ केरळीय शङ्करविजय में नहीं है तथापि आपने इन नवीन कल्पित श्लोकों को जोड लिया है। कुछ उद्धृत श्लोक जब गोविन्दनाथ कृत केरळीय शङ्करविजय में पाया जाता है और कुछ श्लोक पाया नहीं जाता तो क्या यह कहा जाय कि गोविन्दनाथ केरळीय शङ्कर विजय जो अब प्रकाशित हुई है सो अपूर्ण ग्रंथ एवं परिष्कृत्य है या क्या यह कहा जाय कि आत्मबोध ने स्वकल्पित श्लोकों को अपने प्रचार पुष्टी के लिये गोविन्दनाथ केरळीय शङ्करविजय का नाम लेकर प्रचार किया है? आत्मबोध लिखते हैं 'इति निश्चित्य मनसा श्रीमान् शङ्करदेशिकः। मठे श्री शारदाभिख्ये सर्वज्ञम् निदधन्मुनिम्। सुरेश्वरं वृत्ति-कृतमन्तिकस्थं तदाऽऽदरात्। सम संस्थाप्य तस्मै स्वं वक्तुम् भाष्यं समन्वशात्। स्वशिष्यपारम्पर्येण लिङ्गं स्वं योगनामकं। सेवयैनं कामकोटि पीठे सार्धं वसेति च। इत्याज्ञां संप्रदायास्मैत्यक्तपीठमठस्पृहः। कामाक्ष्या निकटे. जातु संनिविश्य जगद्गुरुः। देहिभिर्दुभजं भेजे देहं तत्रैव संत्यजन्। अखण्डज्योतिरानन्दमक्षरं परमं पदम्। स एव शङ्कराचार्यो गुरुर्मुक्ति प्रदः सताम्। अद्यापि मूर्तं चैतन्यमिव तत्रैव तिष्ठति।' उपर्युक्त श्लोक गोविन्दनाथ केरळीय शङ्करविजय में पाया नहीं जाता है। ध्यान देने का विषय है कि तंजौर पुस्तकालय की हस्तलिपि प्रति में भी पाया नहीं जाता। कुम्भकोण मठ के सब प्रमाणाभास पुस्तकें या तो कुम्भकोण मठ में मिलते हैं या तंजौर पुस्तकालय में ही मिलते हैं और कहीं भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। पाठकगण उक्त श्लोकों को पढें तो प्रतीत होगा कि इन में वही विषय दिये गये हैं जो कुम्भकोण मठ प्रचार कर रहे हैं और जिसका उल्लेख या पुष्टी किसी भी ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तकों में पाया नहीं जाता है और कुम्भकोण मठ प्रचारक प्रमाण की खोज में पुराकाल के पुस्तकों में स्वकल्पित श्लोकों को जोडकर या अदलबदल कर प्रमाणाभास परिष्कृत्य पुस्तकें तैय्यार करते हैं। आत्मबोध से उद्धृत अन्य श्लोक गोविन्दनाथ केरळीय शङ्कर विजय में पाया जाता है पर उपर्युक्त श्लोक नहीं मिलते। आत्मबोध ने कुम्भकोण मठ प्रचारों की पुष्टी के लिये प्रमाणाभास श्लोक तैय्यार कर गोविन्दनाथ केरलीय शङ्करविजय का नाम लेकर प्रचार किया है। पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे कि कुम्भकोण मठ के प्रमाण मार्कन्डेय पुराण व संहिता, शिवरहस्य, माधवीय शङ्करविजय, आनन्दगिरि शङ्कर विजय आदि पुस्तकों के मूल प्रतियों में किस प्रकार क्षिप्त कर परिष्कृत्य प्रति प्रचार किया था। आगे भी ऐसे अनेक उदाहरण पायेंगे। आत्मबोध से निर्देषित अनेक पुस्तक न उपलब्ध होते हैं या न किसी ने सुना या देखा है। यदि मूल मिल भी जाय तो उद्धृत श्लोक पाये नहीं जाते। आचार्य शङ्कर चरित्र विषय में अनेक घटनायें हैं जिनका घटना वर्णन परिवर्तन नहीं पाया जाता है परन्तु कांची मठ का विवादास्पद विषय ही परिवर्तनशील हैं। इसी से सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य है।

केरलदेश में और एक पुस्तक आचार्य चरित्र मलयालम् भाषा में लिखा उपलब्ध होता है और इसे श्रीनीलकण्ठ नम्बी (पट्टाम्बी) ने रचा है। कहा जाता है कि यह पुस्तक भी गोविन्दनाथ कृत केरळीय शङ्करविजय समान ही है। आचार्य का निर्याण स्थल वृषाचलम कहा गया है। आचार्य का निर्याण स्थल अपने क्षेत्रों की महत्ता बढाने एवं स्वक्षेत्र का अभिमान से भिन्न रचयिताओं ने भिन्न स्थल का उल्लेख किया है पर अन्य प्रामाणिक ग्रंथों में इसका समर्थन पाया नहीं जाता है। मुझे यह पुस्तक प्राप्त न हुई पर तिरुचूर के एक विद्वान ने इस पुस्तक का विमर्श लिख भेजा है। सुना जाता है कि इसमें भी कांची में आम्नाय मठ स्थापना करने का विषय उल्लेख नहीं है।

आचार्यदिग्विजय चम्पू-वल्लिसहाय—वातुलगोत्र श्री वल्लिसहाय विद्वान ने 'आचार्यदिग्विजयचम्पू' पुस्तक 1962½ ग्रंथयुक्त रचा था। कहा जाता है कि इनका काल शृङ्गेरी मठाधीष जगद्गुरु शंकराचार्य श्री अभिनव नरसिंह भारती (1767—1770) का समसामयिक काल था। 'आचार्यदिग्विजयचम्पू' में चरित्र वर्णन चिद्विलास के अनुसार ही है। यह अपूर्ण ग्रंथ देवनागरी हस्तलिपि प्रति राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है। आचार्य शंकर का कांची नगर में गमन के साथ यह पुस्तक समाप्त होती है और यह अपूर्ण है।

केरळोत्पत्ति—केरळ देश का इतिहास केरळोत्पत्ति मलयालम भाषा में लिखी पुस्तक है। कहा जाता है कि इस पुस्तक का रचयिता श्री शङ्कराचार्य स्वयं थे। आचार्य शङ्कर ने अपने गुरु गोविन्दभगवत्पाद की आज्ञा पर इस ग्रंथ को रचा था ऐसा कथा भी सुनाया जाता है। इस पुस्तक में 24,000 ग्रंथ हैं। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर कैपल्लि घराने के थे। इस पुस्तक में आचार्य का जन्म स्थल कालटी एवं जन्म गोलक बताया है। माता का नाम महादेवी का उल्लेख है। इसी पुस्तक में लिखा है कि आपके गोलक जन्म विषय को लोक में छिपाने के लिये ही यह ग्रंथ श्री शङ्कराचार्य ने लिखा था। आचार्य शङ्कर ने चार वर्णाश्रम को 72 भागों में बांटा था। यह सब विषय बिलकुल अनर्गल है। इस पुस्तक में कहा है कि श्री भट्टपाद केरळ देश में बौद्धों के साथ वादविवाद किया था। यह विषय इतिहास एवं अन्य प्रमाणों के विरुद्ध है। श्री कुमारिल (भट्टपाद) उत्तरी भारत के थे। आचार्य शंकर की आयु 38 वर्ष का बतलाया है जो भूल है। आचार्य शङ्कर का जन्म कलियुग के 3501 वर्ष में होने का लिखा है अर्थात 400 ई० का बतलाया है। आचार्य शंकर का जन्म राजा चेरुपेरुमान के समय का भी उल्लेख है। इतिहास से मालूम होता है कि राजा चेरुपेरुमान 'मक्का' की यात्रा किया था और इस राजा की कब्र मक्का में है और यहां के शिलालेख से 216 हिजरा यानी 838 ई० का काल प्रतीत होता है। पूर्व में कहा विषय कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल 400 ई० का था सो भूल सिद्ध होता है। ऐसे अनेक अनर्गल अग्राह्य विषयों से भरा यह पुस्तक है। इस पुस्तक में दिये हुए विषय अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के विरुद्ध होंने से अनुसन्धान विद्वान श्री के. टी. तेलङ्ग, श्री Sewell, श्री सुब्बाराव आदियों ने इस पुस्तक के विमर्श में सिद्ध किया है कि यह अप्रामाणिक एवं अग्राह्य पुस्तक है। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं 'The Kongu-desa-rajakkal caritram and the Keralotpatti in its various recensions has often been overrated and are in fact of very little value; so too are the numberless sthalapuranas, mostly recently redactions of popular legends' (Page 21) इस पुस्तक में भी कांची में आम्नाय मठ स्थापना का विषय नहीं है।

पत्रात्मक हस्तलिपि पुस्तक—डा. हुल्टज़ और श्री गोविन्द भट्ट यालेंकर— डा. हुल्टज ने आचार्यों का एक सूचीपत्र बनाया है (गुरुपरम्परा स्तोत्र) जिसे कुम्भकोणमठ प्रचारक विद्वानों ने अपने प्रमाण में कुछ श्लोकों को उद्धृत कर अपने भ्रामक प्रचारों की पुष्टी करते हैं। आप प्रमाण में लिखते हैं 'आगच्छत् स्वेच्छया कांचीं पर्यटन पृथिवीतले। तत्र संस्थाप्य कामाक्षीं जगाम परमं पदम्।' इस प्रचार के साथ कुडली शृङ्गेरीमठ की गुरुपरम्परा से भी श्लोक उद्धृत करते हैं 'स्वेच्छया पर्यटन भूमौ ययौ कांचीपुरं ततः। तत्र संस्थाप्य कामाक्षी देवीं परमगात् पदम्।' (कुडली मठ शृङ्गेरी मठ का शाखा मठ था और अब भी है परन्तु अब कुछ वर्षों से न केवल आप स्वतंत्र मठ बन बैठे पर प्रचार भी करते हैं कि मूल शृङ्गेरी कुडली मठ था और शृङ्गेरी मठ कुडली मठ की शाखा मठ है। यह केवल अनर्गल प्रलाप है और अर्वाचीन काल में कुछ ऐसी शाखा मठ सब एक हो कर तीव्र भ्रामक मिथ्या प्रचार कर रहे हैं।

इस कुडली मठ का इतिहास अलग एक पुस्तक में शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा जहां सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि आपके सब प्रचार न केवल भ्रामक हैं पर मिथ्या भी हैं।)

डा. हल्टज्ज को यह प्रति तंजौर के महाराठा ब्राह्मण श्री मन्नम भट्ट का पुत्र श्री जम्बुनाथ भट्ट से प्राप्त हुआ था। इसके अलावा मुझे अन्य एक हस्तलिपि पुस्तक का विवरण मिला है। इस पत्रात्मक पुस्तक के अनेक श्लोक को डा. हल्टज्ज के आचार्य सूची से मिलाया तो प्रतीत हुआ कि यह दोनों प्रतियां विलकुल मिलती जुलती हैं और डा. हल्टज्ज से निर्देर्षित श्लोकों का मूल पुस्तक यह अन्य प्रति था। डा. हल्टज्ज के उद्धृत श्लोकों में कुछ अधिक श्लोक पाया गया जो अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि ये सब अर्वाचीन काल के क्षिप्त श्लोक हैं चूंकि मूल प्रति में ये सब पाये नहीं जाते। डा. हल्टज्ज से निर्देषित पुस्तक का काल मालूम नहीं होता पर अन्य एक प्रति जो बेलगांव में प्राप्त होता है सो प्राचीन प्रति सिद्ध होता है और डा. हल्टज्ज से उद्धृत श्लोकों का मूल यही पुस्तक प्रतीत होता है। बेलगांव के पं. गोविन्दभट्ट यालेंकर के पास यह हस्तलिपि पत्रात्मक पुस्तिका है जिस पर अनुसन्धान विद्वानों ने अपना विचार इस पुस्तक के वारे में प्रकाश किया है। सम्भवतः यह महराठा ब्राह्मण श्री जम्बुनाथ भट्ट ने (डा. हल्टज्ज को उनसे प्राप्त हुआ था) बेलगांव के महाराठा ब्राह्मण श्री गोविन्द भट्ट से इस पुस्तक का नकल प्राप्त किया हो।

इस बेलगांव की पुस्तिका में श्री शंकराचार्य के पूर्व दस गुरुओं का नाम लेकर अपनी वन्दना समेत पश्चात् उल्लेख है कि श्री शङ्कराचार्य अपना मठ तुङ्गभद्रा नदी तट पर स्थापना करके 12 वर्ष वास करते हुए वहीं विद्यापीठ की भी प्रतिष्ठा कर अपना भारती सम्प्रदाय प्रारम्भ कर बाद श्रृङ्गेरी से कांची पहुंचे। जाते समय आपने श्रृङ्गेरी में श्री पृथ्वीधराचार्य को नियोजन किया था। श्री पृथ्वीधर भारती अपने गुरु का तपस्सिद्धि वृत्तान्त सुनकर अपनी जगह श्रृङ्गेरी में श्री विश्वरूप भारती को बैठाकर पश्चात् श्री पृथ्वीधर भारती कांची पहुंचे। इस पुस्तक के श्लोक यों हैं 'संस्थाप्य स्वमठं कृत्वा तुङ्गभद्रानदीतटे। तत्र स्थित्वा द्वादशाब्दं यतिं पृथ्वीधरामिधम्। विद्यापीठाधिकं कृत्वा भारती संज्ञया गुरुः। आगच्छत् स्वेच्छया कांचीं पर्यठन्पृथ्वीतले। तत्र संस्थाप्य कामाक्षीं जगाम परमं पदं। विश्वरूपयतिं ज्ञाप्य स्वाषयस्य प्रकाशने। स्वयं कांचीमगात्तूर्णं श्री पृथ्वीधरभारती। तद् वृत्तान्तं समाकर्ण्य तपसस्सिद्धये तदा।' गोविन्दभट्ट यालेंकर के पास उपलब्ध पुस्तिका के उपर्युक्त श्लोकों को ही डा. हल्टज्ज ने आचार्य सूचीपत्र में दी है। इन दोनों में एक ही जगह भेद पाया गया। डा. हल्टज्ज लिखते हैं 'विश्वरूपयतिं स्थाप्य स्वाश्रमस्य प्रचारणे' पर बेलगांव पुस्तक में 'विश्वरूपयतिं ज्ञाप्य स्वाषयस्य प्रकाशने।' का भेद है। मालूम नहीं कहां से डा. हल्टज को यह पाठान्तर मिला। जब इन दोनों प्रतियों में अन्य सब श्लोक समान मिलते हैं और केवल कांची के विवरण में ही पाठ भेद पाया जाता है तो निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह पाठ भेद किसी स्वार्थी विद्वान से किया गया है। जिस विषय की पुष्टि अन्य कोई अन्दर बाह्य प्रमाण एवं प्रामाणिक ग्रंथ नहीं करते उसे स्वीकार करना भूल होगी। जब श्रृङ्गेरी को 'स्वमठंकृत्वा' पहिले ही कहा जा चुका है और जिसे कुम्भकोणमठ उद्धृत कर प्रकाश भी किया है तो समझ में नहीं आता कि कांची में पुनः स्व आश्रम व स्वमठ स्थापना करने की क्या आवश्यकता थी? पूर्वापर संदर्भ से यह पद कांची को जंचता भी नहीं है।

कुम्भकोण मठ का भ्रामक प्रचार है कि आचार्य शंकर ने श्रीविश्वरूप यति को कांची में नियोजन किया था और निम्न श्लोक को डा. हल्टज्ज के गुरुपरम्परा स्तोत्र (आचार्य सूचीपत्र) से उद्धृत कर प्रमाण में प्रचार करते हैं 'तत्र संस्थाप्य कामाक्षीं जगाम परमं पदं। विश्वरूपं यतिं स्थाप्य स्वाश्रयस्य प्रचारणे'। पर पाठकगण उपर्युक्त पारा में

दिये सब श्लोकों को पुनः पढें और पूर्वापर संदर्भ के साथ अर्थ करें तो प्रतीत होगा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार मिथ्या व भ्रामक है। कुम्भकोण मठ से निर्देषित श्लोक के पूर्व 1½ श्लोक एवं पश्चात् के 1½ श्लोक, इन दोनों को कुम्भकोण मठ उद्धृत कर प्रकाश नहीं करते। उद्धृत श्लोक के पूर्व श्लोक एवं बाद के श्लोक सब यदि प्रचार करें तो कुम्भकोण मठ के प्रचारों को यह मिथ्या ठहराता है। उपर्युक्त पारा में दिये चार श्लोकों का अर्थ है कि आचार्य शङ्कर ने तुङ्गभद्रा तट पर अपना निजमठ स्थापना कर पश्चात् अपनी यात्रा में कांची साधारण तौर पर पहुंचे, आचार्य शङ्कर 12 वर्ष अपने निजमठ तुङ्गभद्रा तट पर वास किये, श्रीपृथ्वीधर भारती को उस मठ में नियोजन किये, पश्चात् श्रीपृथ्वीधर ने श्रीविश्वरूपयति को अपने मठ यानी तुङ्गातट शृङ्गेरि में बैठाये चूंकि आप स्वयं कांची पहुंचे 'स्वयं कांचीमगात्तूर्णं श्रीपृथ्वीधर भारती। तद्वृत्तान्तं समाकर्ण्य तपसः सिद्धये तदा।' इससे प्रतीत होता है कि श्रीपृथ्वीधर ने श्रीविश्वरूप को शृङ्गेरि में बैठाकर स्वयं कांची पहुंचते हैं। श्लोक की पंक्तियों को हेरफेर करने से एवं पूर्व श्लोक व पश्चात् के श्लोक न देने से यह भ्रामक अर्थ किया जाता है। श्रीविश्वरूप यति शृङ्गेरी में ही रहते हैं और श्रीपृथ्वीधर कांची पहुंचते हैं। यहां 'स्वयं' श्रीपृथ्वीधर को बोध करता है न कि आचार्य शङ्कर को जैसा कि कुम्भकोण मठ का मिथ्या प्रचार है। यहां 'स्वाश्रम' तुङ्गातट (शृङ्गेरि) निजमठ का द्योतक है न कि काञ्ची।

इस बेलगांव पुस्तिका से उपर्युक्त कुछ श्लोक दिये गये हैं और इन श्लोकों के बाद कुछ श्लोक छोडकर, मठ स्थापना के बारे में कहा गया है। तत्पश्चात् गुरुपरम्परा वृत्तान्त है। इन श्लोकों में एक श्लोक है जिसमें आचार्य शङ्कर को 'कूष्मान्डजात' बतलाया गया है। इस विषय की पुष्टी अग्राह्य आनन्दगिरि शङ्करविजय एवं निन्दास्पद मणिमञ्जरी ही समर्थन करते हैं और यह विषय आचार्य शङ्कर भक्तों को ग्राह्य नहीं है। कुम्भकोण मठवालों को क्या परवा है कि आचार्य शङ्कर पर अनर्गल एवं निन्दा शब्द लिखे जांय, जब तक इन पुस्तकों से आपके मिथ्या भ्रामक प्रचारों की पुष्टी होती है। डा० हल्टज्ञ से उद्धृत श्लोक जिस मूल पुस्तक से लिया गया था उसके बारे में पाठकगण जान गये होंगे।

इसी पुस्तिका में बाद के श्लोक जहां गुरुपरम्परा का विवरण दिया गया है वहां यों उल्लेख है। 'श्रीयादवप्रकाशस्य शिष्यो रामानुजोयतिः तेन वैष्णवः सिद्धान्तः स्थापितो गुरु संमते। अच्युतप्रेक्षनाम्नस्तु शिष्यो मध्वाभिधो यतिः। तेनैव भेदसिद्धान्तः स्थापितो गुर्वसंमते।' इस गुरुपरम्परा के बाद आचार्य शङ्कर का जन्म काल, आयु एवं निर्याण काल का उल्लेख भी है। श्रीपाठक ने इसी श्लोक के आधार पर आचार्य शङ्कर का जन्म काल 788 ई० का होना बतलाया है। इसके पश्चात् श्रीमध्वाचार्य एवं मध्वसंप्रदाय का विवरण है। इससे सिद्ध होता है कि यह किसी स्वार्थी और अद्वैतद्वेषी संप्रदाय के व्यक्ति से प्रचारार्थ रचा गया था। ऐसे निन्दास्पद अप्रामाणिक ग्रंथों से कुछ श्लोकों को उद्धृतकर एवं स्वार्थ सिद्ध करने के लिये कुछ श्लोकों की पंक्तियों को हेरफेर कर, पदों को बदलकर जो कुम्भकोण मठ प्रचार करते है सो प्रचार कहां तक इन धर्माचार्यों एवं उनके भक्तों को उचित व न्याय है सो पाठकगण ही निश्चय कर लें। विद्वानों का कर्तव्य है कि डा० हल्टज्ञ के सूची में दिये श्लोकों को प्रथम अध्ययन व विवेचना कर पश्चात् प्रचार करते। क्या कुम्भकोण मठ स्वीकार करते हैं कि आचार्य शङ्कर का जन्म 'कूष्मान्डजात' था एवं आपने द्वैत व विशिष्टाद्वैत मतों का भी प्रचार किया था? इस पुस्तक के कुछ भागों को हेरफेर कर प्रमाण रूप प्रचार करते हैं तो उक्त विषयों को भी क्यों नहीं स्वीकार करके प्रचार करते?

Tibetan History of Buddhism by Lama Taranath—कुछ पूर्वीय एवं पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वान इस पुस्तक द्वारा श्रीआचार्य शङ्कर के चरित्र वर्णन की सामग्री लेते हैं। इस पुस्तक का जर्मन भाषा अनुवाद Mr. Schiefuer द्वारा लन्डन इन्डिया आफीस पुस्तकालय में उपलब्ध है। कहा जाता है कि मूलग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। इस पुस्तक का अनुवाद काल 1608 ई० का था। इसमें कहा गया है कि आचार्य शङ्कर श्रीकुमारिल भट्ट के पूर्व ही जन्म लिया था और श्रीभट्टपाद आचार्य शङ्कर के शिष्य थे। श्रीकुमारिल और श्रीभट्टपाद दोनों को भिन्न व्यक्ति कहा गया है। ऐसे अनेक विवादास्पद अनर्गल विषय दिये गये हैं। श्री मॉक्समुलर इस पुस्तक के बारे में लिखते हैं कि यह अर्वाचीन काल का रचित ग्रंथ है और अधिकांश अविश्वसनीय है–'There is no doubt a very modern compilation and in many cases quite untrustworthy, still it may come in as confirmatory evidence.'

चीनी यात्री—यात्रा विवरण—कुछ चीनी यात्री भारत वर्ष आये और आप सबों ने अपनी यात्रा विवरण अपने अपने रचित पुस्तकों में दिया है। चार चीनी यात्रीयों का रचित पुस्तक उपलब्ध हैं और इनमें श्रीआचार्य शङ्कर का नाम बिलकुल उल्लेख नहीं है। ईतिसङ्ग का काल 673—95 ई० का है और आपने भी आचर्य शङ्कर का नाम उल्लेख किया नहीं है। इससे सन्देह होता है कि आचार्य शङ्कर का जन्म इनके पश्चात काल में हुआ हो। सम्भवतः इन यात्रीयों के काल में पूर्वमीमांसा का भी प्रचार उतना न हुआ होगा कि बौद्ध धर्म का अवनति हुई हो और इसलिये इनका नाम भी नहीं लिया गया है। यद्यपि इन आधारों पर निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है पर इन सबों से उल्लेख न होने से संदेह की जगह रह जाता है। चीनी यात्री शु-मा-चीन 100 वर्ष ईसा के पूर्व; फाह्यान् 399—414 ई०; हिउएन साङ्ग (युवान्च्वांग) 630—645 ई०; ईत्सिङ्ग 673—695 ई०; भारत यात्रा विवरण लिख गये थे। आचार्य शङ्कर का जन्म 684/686 ई० का सिद्ध होता है और जब ईतिसङ्ग भारत आया था उस समय आचार्य शङ्कर बालक थे और आपका नाम इस यात्री ने नहीं लिया था। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल 508 क्रिस्त पूर्व का था और यह केवल कल्पना ही है। श्रीबुद्धदेव (लगभग 547—487 क्रिस्त पूर्व) के कई शताब्दी पश्चात् ही आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ था।

दर्शन प्रकाश (महानुभावपंथ ग्रंथ)—महानुभाव पंथ के ग्रंथ में कहा है कि शक 642 (वि. सं. 777) में श्रीशङ्कराचार्य ने गुहा में प्रवेश किया और उस समय उनकी आयु 32 वर्ष की थी। शृङ्गेरी मठ के प्रमाणों से मालूम होता है कि विक्रमादित्य राज्यशासन के 14 वें वर्ष में आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ था। ऐतिहासिक बतलाते हैं कि दक्षिणापथ चालुक्य वातापि वंशीय पुलकेशिन के पुत्र विक्रमादित्य ने 670 ई० में राज्यशासन प्रारम्भ किया था। अर्थात् आचार्य शङ्कर का जन्म काल 684 ई० का होना निश्चित होता है। दर्शनप्रकाश के अनुसार 687/688 ई० का होना निश्चित होता है। यह सब विषय कुम्भकोण मठ के प्रचारों के विरुद्ध हैं। महानुभाव संप्रदाय के 'दर्शनप्रकाश' जो 1506 शकाब्द या 1638 ई० में लिखा गया था, इस में 'शङ्करपद्धति' नामक किसी एक प्राचीन ग्रंथ से एक उद्धरण है, जिससे आचार्य शङ्कर का निर्याण काल 642 शकाब्द या 720 ई० का प्रतीत होता है।

महाराजा सुधन्वा का ताम्र शासन—श्री शङ्कराचार्य के चरित्र विषयक सामग्री का कोई प्राचीन शिला लेख व अन्य कोई प्रमाण आपके समय का (केवल आपसे रचित मठाम्नाय एवं महानुशासन को छोड) अथवा आपके

समीप काल का उपलब्ध नहीं होते। आचार्य शङ्कर से स्थापित चार आम्नाय मठों में कुछ सामग्री उपलब्ध हैं पर इनका काल निर्णय निश्चित रूप से निर्धारन नहीं हुआ है। परम्परा प्राप्त आचार विचारों एवं कर्णश्रुत कथाओं से ही आपकी चरित्र कथा सामग्री उपलब्ध होती हैं। चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् काल के लिखे चरित्र कथा पुस्तक उपलब्ध होती हैं। 'स्वधर्म प्रकाशिनि' जूलै माह 1928 ई० के अङ्क में एक ताम्रपत्र का नकल प्रकाशित हुआ था। यह ताम्रशासन दान पत्र महाराजा सुधन्वा ने आचार्य शङ्कर को युधिष्ठिर संवत 2663 में दिये जाने का कथा कहा जाता है। 'संस्कृत चन्द्रिका' (कोल्हापुर) के खण्ड 14 सं. 2/3 में भी यह ताम्र पत्र प्रकाशित हुआ है। हमारे प्रामाणिक ग्रंथ सब महाराजा सुधन्वा का नाम आचार्य शङ्कर के काल का ही उल्लेख करता है। आपको इन्द्रदेव का अंश मानते हैं। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि महाराजा सुधन्वा उज्जैयनी राजा थे और कुछ विद्वान महाराजा सुधन्वा को कर्नाटक देश के राजा मानते हैं। श्री कुमारिल भट्ट के जीवन चरित्र कथा में भी महाराजा सुधन्वा का नाम उल्लेख किया जाता है। यह कहा जाता है कि कुमारिल भट्ट महाराजा सुधन्वा के राज दरबार भी गये थे और यहां आपने बौद्धमतानुयायी पन्डितों से वादविवाद किया था। 'जिनविजय' में महाराजा सुधन्वा का उल्लेख है। पर ऐतिहासिक अनुसन्धान विद्वानों ने अभीतक इनका चरित्र विवरण निश्चित रूप से नहीं दिया है। ऐतिहासिकों के लिये आपका नाम एवं चरित्र विवरण सब अन्धकार के गर्भ में धंसा है और इस विषय की खोजखाज करना परमावश्यक है। ऐतिहासिक विद्वानों का अभिप्राय है कि 'सुधन्वा' पद राजा का नामकरण नाम न था पर यह उपादि पद है जो ऐसे पद शासन प्रशस्तीयों मे उपयोग किये जाते थे और सम्भवतः सातवीं/आठवीं शताब्दी का कोई राजा इस उपादि को धारण किया हो। राजा का निजनामकरण नाम न मालूम होने से किसी एक राजा का निर्धारण करना कठिन है।

पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ में यह ताम्र शासन है और उनके रिकार्डों से यही मालूम होता है कि यह ताम्र शासन आचार्य शंकर को ही मिला था। पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ के कथन को न स्वीकार करना भूल होगी चूंकि इस विषय पर काफी खोजखाज नहीं हुई है और अभी तक कोई ऐसा विरोध जनक सामग्री प्राप्त न हुए कि इस ताम्र पत्र के दिये विषय को न स्वीकार करें। इस ताम्र पत्र में दिये हुए विषय सब अन्दर बाह्य प्रमाण एवं अन्य प्रामाणिक ग्रंथ पुष्टी करते हैं। यद्यपि कुछ लोगों का आक्षेप है कि महाराजा सुधन्वा का दिया हुआ ताम्रशासनपत्र नहीं है तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह प्राचीन ताम्रशासनपत्र है जिससे आचार्य शंकर के चरित्र सामग्री उपलब्ध होते हैं। मुझसे प्रकाशित 'काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद' पुस्तक में इस ताम्र पत्र का नकल प्रकाशन किया गया है। इस ताम्र पत्र से स्पष्ठ मालूम होता है कि आचार्य शंकर ने अवैदिक मतों का खन्डन कर अद्वैत मत को पुनः जीवन देकर प्रकाश किया था और आपने महाराजा सुधन्वा को भी चेला बना लिया था। इसमें स्पष्ठ उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। यदि कांची में आम्नाय मठ होता तो अवश्य इसका भी उल्लेख किये होते। 1935 ई० में काशी में जब कांची कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा और भ्रामक मिथ्या प्रचारों की भन्डाफोड हुई थी तब कुम्भकोणमठाभिमानी विद्वानों ने कहा कि महाराजा सुधन्वा का ताम्र शासन की सत्यता अभीतक सिद्ध नही हुई है और अनेकों को यह स्वीकार भी नहीं है अतएव इसके आधार पर निर्णय करना भूल होगी। यदि उस कुतर्क को भी मान लें तो यही कहना होगा कि जिस किसी समय में भी यह ताम्र शासनपत्र लिखा गया था, उस समय में भी कांची में आम्नाय मठ न था, नहीं तो चार आम्नाय मठ की जगह पांच मठों का उल्लेख होता। 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः' (कुम्भकोणमठ के मठाम्नायसेतु) ऐसे कांची महागुरु मठ का नाम न लेना आचार्य के प्रति अपचार होने के भय से ही ताम्रपत्र दाता कांची का नाम लिये होते। पर आपने कांची का नाम नहीं लिया चूंकि कांची में आमनाय मठ न था। इस ताम्र पत्र में उल्लेख है

—'... ... ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुखनिखिलविनेयलोक संप्रार्थनया चतस्रो धर्मराजधान्यो जगन्नाथ-बदरी-द्वारका-शृङ्गर्षी-क्षेत्रेषु भोगवर्धनज्योतिश्शारदाशृंगेरी मठा परसंज्ञकाः संस्थापिताः। ... ... एवं चतुर्भ्य आचार्येभ्यश्चतस्रोदिश आदिष्ट भारतवर्षस्य।'

गद्यवल्लरि-निजात्मप्रकाशानन्दनाथ मल्लिकार्जुन योगीन्द्र—श्रीराजेन्द्रलाल मित्रा ने एक प्राचीन हस्तलिपि प्रति 'गद्यवल्लरि' पुस्तक को सितामडही (मुजफ्फरपुर जिला-बिहार) से प्राप्त की थी। इस पुस्तक में श्रीविद्या के साधनों जैसा न्यास, जप, पूजा आदि का वर्णन हैं। इस पुस्तक में गुरुपरम्परा भी दिया गया है। परमशिव आदिगुरु से लेकर श्रीविद्यारण्य तक के गुरुवंशावली दक्षिणाम्नाय श्रीशृङ्गेरी शारदामठ का ही गुरु वंशावली है। श्रीविद्यारण्य ने एक महान् श्रीमलयानन्ददेव तीर्थ को श्रीविद्या की दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया था। इनका भी परम्परा आपसे प्रारम्भ होकर श्रीआनन्दचित्प्रतिबिम्ब तक दिया गया है। श्रीआनन्दचित्प्रतिबिम्ब के शिष्य श्रीनिजात्म-प्रकाशानन्दनाथ मल्लिकार्जुन योगीन्द्र थे जिन्होंने इस पुस्तक 'गद्यवल्लरि' की रचना की थी। यह दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरि परम्परा का एक शाखा परम्परा है जो मंत्र, तंत्र व योगसाधन के अनुयायी हैं। वह श्रीविद्या जिसके प्रवर्तक श्रीगौडपाद, श्रीशङ्कर एवं श्रीविद्यारण्य आदि थे वही उपनिषद के कहे ब्रह्मविद्या से भिन्न न होने का विषय यह पुस्तक 'गद्यवल्लरि' सिद्ध करता है। मार्के की बात है कि दूर दक्षिण स्थित शृङ्गेरि मठ का प्रभाव उस प्राचीन काल में भी दूर उत्तर तक फैला था। इस 'गद्यवल्लरि' पुस्तक को बङ्गाल राज्य ने प्रकाशित किया है (**Notices on Sanskrit Mss. VII No. 2261**). इससे सिद्ध होता है कि दक्षिणाम्नाय का शृङ्गेरी मठ ही दक्षिणाम्नाय का आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित मूल मठ है और आज तक अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है। कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि कांची मठ आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित, अधिष्ठित तथा गुरु परम्परा के हैं सो कथन की पुष्टी यह ग्रंथ नहीं करती।

पल्लव चरित्रम्—(ताळपत्रात्मक)—म रैंकडैनम्बि श्रीसुब्रह्मणिय अय्यर, संपादक 'तत्वनिधानम्' सूलै, मदरास से 1935 आगस्त माह में लिखते हैं कि आपने एक 'पल्लवचरित्रम्' नामक ताळपत्रात्मक पुस्तक, तामिल भाषा में, देखा था और उस ग्रंथ में से कुछ पंक्तियां आपने उद्धृत भी की थी। आपका कहना है कि यह ग्रंथ का लेखन काल आज से (1935 ई०) करीब 200 वर्ष पूर्व का होगा। इसमें पल्लव राजाओं का चरित्र दिया गया है। इसी पुस्तक में एक जगह आचार्य शङ्कर का चरित्र भी दिया गया है। मुख्य विषयों में चरित्र घटना का वर्णन—जन्म स्थल, पितामाता का नाम, सन्यासदीक्षा, अवैदिकमत खन्डन, अनेक शिष्यों में चार मुख्य शिष्य, चार आम्नाय मठ, कांची कामाक्षी मन्दिर में श्रीचक्रप्रतिष्ठा व नगर निर्माण, दिग्विजय यात्रा, केदार सीमा से स्वधाम गमन—अन्य प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर ही वर्णित हैं। यहां भी कांची में मठस्थापना का उल्लेख नहीं है। इसी पुस्तक में अन्य एक जगह कांची के स्वर्ण कामाक्षी का इतिहास भी दिया है। इसके पश्चात् कुछ अध्यायों के बाद पुस्तक के अन्तिम भाग में अर्वाचीन काल का कांची इतिहास देते हुए उल्लेख है कि कांची में वृष्टी के अभाव से अकाल पडा और कांची के आस्तिक वासिन्दे इसका कारण समझे कि स्वर्णकामाक्षी अपने स्थल से अन्य सीमा ले जाने से आप लोगों की लक्ष्मी भी घर छोड चली गयी। कांची वासिन्दों ने दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी जगद्गुरु महाराज से प्रार्थना की कि शृङ्गेरी जगद्गुरु महाराज अपने कांची शिष्य भक्तों पर कृपा कर तंजौर महाराजा से प्रबन्ध करें कि स्वर्णकामाक्षी को कांची लौटा दिया जाय। इसी अध्याय में यह भी उल्लेख है कि इस प्रार्थना पर शृङ्गेरि जगद्गुरु महाराज ने एक यति श्रीमहादेव सरस्वती को अपने श्रीमुख के साथ तंजौर भेजा था और आपने इस स्वर्ण कामाक्षी कों कांची कामाक्षी

मन्दिर लौटा भेजने का प्रबन्ध करने का भी आदेष दिया था। तत्पश्चात् इस विषय के वारे में कुछ उल्लेख नहीं है। श्रीसुब्रह्मणिय अय्यर लिखते हैं कि न केवल आपने इस पुस्तक में यह कथा पढ़ी है पर वृद्धों से भी यही वृत्तान्त सुना है।

मुसलमानों के आक्रमणों से डरकर एवं मन्दिर मूर्तियों का भङ्ग व चोरी होने के डर से कांची के कामाक्षी मन्दिर से स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति, एकाम्बरेश्वर शिवमन्दिर की मूर्ति, एवं वरदराज मन्दिर की मूर्ति इन तीनों मूर्तियों को कांची के स्थलवासी एवं इन मन्दिरों के धर्मकर्ताओं ने 1695 ई० के पश्चात् काल और 1710 के पूर्व काल में तिरुचि जिला के उदयारपालयम् राज ले गये और स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति मात्र यहां से पश्चात् तंजौर पहुंचा। काञ्ची वरदराज मन्दिर के एक शिलाशासन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि 1710 ई० में श्री अत्तान् जीयर की प्रार्थना पर लाला तोडरमल ने इस वरदराज की मूर्ति को उदयारपालयम से विष्णु कांची लौटा लाने का प्रबन्ध किया था। Sir Charles stewart Crole 1879 ई० में लिखते हैं कि उस समय एक ब्राह्मण श्री सेल्लम भट्टु ने शिव की मूर्ति उदयारपालयम् से कांची लौटा ले आया था। चूंकि स्वर्णकामाक्षी उदयारपालयम् से तंजौर चला गया था और जब अन्य दो मूर्तियां लौटकर कांची लौटा लाया गया तो यह सम्भव है कि कांची के लोग श्रृङ्गेरी को लिखकर प्रार्थना की हो कि स्वर्ण कामाक्षी कांची लौटाने की प्रबन्ध किया जाय। ईस्ट–इन्डिया-कम्पनि के रिकार्डों से मालूम होता है कि कुम्भकोण मठाधीश प्रथम बार 1839 ई० में कांची कामाक्षी मन्दिर के कुम्भाविषेक के लिये कम्पनि कर्मचारियों व मन्दिर के धर्मकर्त्ताओं की सहायता से कांची पहुंचे। ईस्ट-इन्डिया-कम्पनि ने कुम्भकोण मठाधीश को 5—11—1842 के दिन कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी बनाया था। इसके पूर्व कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध (धर्मकर्ता या ट्रस्टी या परिचालन या अधिकार) इस कांची कामाक्षी मन्दिर से बिलकुल न था। प्राचीन रिकार्डों में कुम्भकोण मठाधीष को कांची का पराया पुरुष 'Stranger to Kanchi' कहा गया है। कांची से मैसूर राजा टीप्पू ने एकाम्बरेश्वर मन्दिर की संप्रोक्षन के लिये श्रृङ्गेरी जगद्गुरु महास्वामी महाराज से सविनय प्रार्थना की थी। वालाजाबाद के नवाब ने 1773 ई० में कांची की एक जाती के बीच झगडे का निर्णय करने के हेतु से श्रृङ्गेरी जगद्गुरु महराज को लिखकर सविनय प्रार्थना की थी कि अपना निर्णय लिख भेजने की कृपा करें। श्रृङ्गेरी मठाधीश के निर्णयानुसार नवाब ने एक फरमान निकाला था। इन सब विषयों का विवरण एवं अन्य प्रमाण भी पाठकगण आगे पायेंगे। इन सब घटनाओं से स्पष्ट मालूम होता है कि श्रृङ्गेरी को धर्म व्यवस्था का पूर्ण अधिकार प्राचीन काल में काञ्चो में भी था। ऐसी स्थिति में कांची के लोग श्रृङ्गेरी जगद्गुरु महास्वामी जी से प्रार्थना करना कोई आश्चर्य नहीं है।

उपर्युक्त 'पल्लवचरित्रम्' के कथा को यदि मान लें तो यह भी अनुमान करना न भूल होगी कि श्री महादेव सरस्वति जो श्रृङ्गेरी से भेजे गये थे आप तंजौर में ही रह गये और तंजौर राजा ने आपको आदारभाव से अपने राज्य में रख ली थी। इतिहास से प्रतीत होता है कि उन दिनों में तंजौर के महाराजा व मैसूर के बीच मैत्री का भाव न था यद्यपि खुल्लमखुल्ला संघर्ष न था। संभवतः तंजौर राजा ने श्रृङ्गेरी का सम्बन्ध भी तोडकर अपने लिये अलग एक नवीन सम्बन्ध प्रारम्भ किया हो। सम्भवतः ये ही श्री महादेव सरस्वती (18 वीं शताब्दी प्रारम्भ में) कुम्भकोण मठ के प्रथमाचार्य होकर अपनी वशांवली प्रारम्भ की हो। डा० वर्नल, तंजौर न्यायाधीश एवं अन्य अनुसन्धान विद्वानों के लेखों तथा प्रामाणिक पुस्तकों से प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ था। इस विषय पर प्रमाण रिकार्डों की खोज की जारही है और जो कुछ अब तक मिले हैं सो सब उपर्युक्त अनुमान की पुष्टी करते हैं।

शंकरविलासचम्पू (जगन्नाथ), शङ्कराभ्युदयकाव्य (रामकृष्ण), लघुशंकरविजय (बालकृष्ण ब्रह्मानन्द), आदि नवीन ग्रंथ—उपर्युक्त पुस्तकों को मैं ने देखा नहीं है और कुछ उत्तरीय भारत के विद्वानों को लिखकर इन पुस्तकों में दिये विषय को पूछा था। आप लोगों का कहना है कि श्री जगन्नाथ, श्री रामकृष्ण व श्री बालकृष्ण आदियों से रचित पुस्तकों में चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख है और कांची में आचार्य शङ्कर द्वारा मठस्थापन का उल्लेख ही नहीं है। यद्यपि ये सब आधुनिक काल की पुस्तक हैं पर अवश्य प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर ही लिखे होंगे। जब प्राचीन ग्रंथ एवं मठाम्नाय सब चार मठों का ही उल्लेख करता है तो उसके विरोध में कहनेवाले सब पुस्तक द्वेष या स्वार्थ के लिये ही कल्पना कर रची हुई पुस्तक होनी चाहिये।

शङ्करविलास (विद्यारण्य—लन्डन), शङ्करानन्द चम्पू (गुरुस्वयंभूनाथ), शङ्करविजयकथा (रचयिता मालूम नहीं—मदरास), शङ्करविजयविलास काव्य (शङ्कर देशिकेन्द्र), शङ्कराचार्य (बर्नल नं. 4745), शंकराचार्य अवतार कथा (आनन्द तीर्थ—रईस नं. 242), शङ्कराचार्योत्पत्ति (बुहलर नं. 559) आदि पुस्तकों को मैं ने देखा नहीं है। इनमें से कुछ उपलब्ध नहीं हैं और केवल नाम मात्र की पुस्तक हैं। यह सूची दी जाती है ताकि पाठकगण जान लें कि श्री शंकरचरित्र सामग्री इन पुस्तकों से भी प्राप्त हो सकती है। कुम्भकोणमठ द्वारा कहे जाने वाले प्रामाणिक पुस्तकों के सूची में से इस सूची में कोई पुस्तक नहीं है। अतः कुम्भकोणमठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी ये सब पुस्तकें नहीं करते।

पतञ्जली चरित–श्री रामभद्र दीक्षित–कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्री रामभद्र दीक्षित का काल तंजौर राजा श्री शाहा जी (1684—1712 ई०) का समसामयिक काल था। यह कहा जाता है कि नीलकण्ठदीक्षित, बालकृष्ण भगवत्पाद (वेदान्ती) एवं चोक्कनाथ दीक्षित आदियों ने श्री रामभद्र दीक्षित को संस्कृत साहित्य जगत में प्रकाश कराया था। कहा जाता है कि चोक्कनाथ दीक्षित ने श्री रामभद्र को विद्या शिक्षा देकर पश्चात् अपनी पुत्री का विवाह आपसे कराया था। कुम्भकोणमठ के मासिक प्रचार पत्र कामकोटि प्रदीपम में लिखा है कि श्री रामभद्र दीक्षित का काल 1650/1700 ई० का है। पर इसी पत्रिका में और एक जगह उल्लेख है कि तिरुवसनल्लूर के अय्यावाळ 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे और श्री वेंकटेश्वर को रामभद्रदीक्षित का शिष्य कहा गया है। तंजौर राजा शाहा जी (1684/1712 ई०) ने 1693 ई० में तिरुवसनल्लूर में आ बसे कतिपय विद्वानों को दान दिया था। इस दानपत्र पट्टा में प्रथम नाम पल्लकचेरी वासुदेव दीक्षित का नाम उल्लेख है। आपके शिष्य इस पट्टा के 26 वां नाम वेंकटकृष्णदीक्षित थे एवं सातवां नाम रामभद्रदीक्षितर भी थे। वासुदेव दीक्षितर के गुरु नीलकण्ठ दीक्षितर थे। इस शासन काल के पश्चात् काल में कुछ विद्वान तिरुवसनल्लूर आ बसे जिनमें से एक श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ भी थे। डा. राघवन् का अभिप्राय है कि श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ एवं राजा शाहा जी के दान पट्टा में दिया हुआ नाम वेंकटेश शास्त्री, ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं। 'शाहजी विजयम' पुस्तक के सातवां आठवां सर्गों में दिये विषयों को इतिहास से तुलना करने पर यह सिद्ध होता है कि 'शाहजीविजयम' पुस्तक 1698 ई० के पश्चात् ही श्रीधर वेंकटेश से रचित ग्रंथ है। कामकोटि प्रदीपम में अन्यत्र एक जगह जहां नेरूर के योगी श्री सदाशिव के बारे में लिखा है वहां आप कहते हैं कि श्री सदाशिव ब्रह्म का काल 1710 ई० का था और आपके बाल्यावस्था में आपके साथी भाई विद्यार्थी श्रीधर वेंकटेश्वर उर्फ अय्यावाळ एवं जानकी परिणय के रचयिता रामभद्र दीक्षित भी थे। आत्रेय कृष्ण शास्त्री श्री अय्यावाळ का समय 1625 ई० का बतलाते हैं। इस प्रकार के भिन्न कथनों का प्रचार से भ्रम अधिक होता है। कुम्भकोणमठ के कथनों से प्रतीत होता

है कि श्री वेंकटेश्वर एवं रामभद्रदीक्षित समसामयिक भाई विद्यार्थी थे पर यह भी कहा गया है कि रामभद्र दीक्षित का शिष्य वेंकटेश्वर थे। इतिहास एवं अन्य प्रमाण सिद्ध करता है कि श्रीसदाशिव ब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी का था। चाहे जो हो, इससे प्रतीत होता है कि सदाशिव ब्रह्म के भाई विद्यार्थी रामभद्र दीक्षित एवं अन्य भाई विद्यार्थी सबों का काल 1710 ई० के पश्चात् का ही है। अतः रामभद्र दीक्षित ने पतञ्जली चरित (?) भी 1710 ई० के कई वर्ष बाद ही रचना की होगी।

श्रीरामभद्र दीक्षित के अनेक रिश्तेदार नल्ला दीक्षितर के नाम से प्रसिद्ध थे। इनमें से एक का नाम भूमिनाथ उर्फ नल्ला दीक्षित था। आपसे कम वय के एक नल्लाध्वरी उर्फ नल्ला दीक्षितर भी थे। यह नल्ला दीक्षितर ने शास्त्र अध्ययन रामनाथ मखि के पास किया था और वेदान्तशास्त्र अध्ययत श्रीसदाशिवब्रह्म के पास किय था। आपके परमगुरु परमशिवेन्द्र थे (यह परमशिवेन्द्र कुम्भकोण मठाधीष न थे जैसा कि उनका प्रचार है)। इस परमशिवेन्द्र के पास वेदान्तशास्त्र अध्ययन करता हुआ और एक विद्वान वेंकटकृष्ण दीक्षित भी थे।

रामभद्र दीक्षित व्याकरण शास्त्र के विद्वान थे। आपने 13 ग्रंथ रचा है जिनमें जानकी परिणयम्, शृङ्गार-तिलकमान, परिभाषावृत्तिव्याकरण, षढदर्शनसिद्धान्तसंग्रह आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। कहा जाता है कि आपने 'पतञ्जली' चरित्र ग्रंथ भी रचा है। बम्बई से काव्यमाला सीरिज में यह पुस्तक प्रकाशित हुई है कि जिसकी मूल हस्तलिपि प्रति तंजौर जिले से प्राप्त हुई थी। यहां ध्यान देने की बात है कि जितनी पुस्तक कुम्भकोण मठ अपने प्रचारों के प्रमाण में प्रचार करते हैं वे सब पुस्तक या तो कुम्भकोण मठ से रचित या पुराने पुस्तकों की परिष्कृत्य प्रतियां हैं या तंजौर जिले से ही प्राप्त हुई हैं जिसका अन्य प्रतियां कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। इसका मर्म पाठकगण स्वयं जान लें।

इस पुस्तक में श्रीपतञ्जली का जीवन चरित्र जो हमलोग कथा रूप में कर्णश्रुति से परम्परागत सुनते आये हैं उसीका वर्णन किया है। श्रीपतञ्जली ने सहस्रमुख आदिशेष का रूपधारण कर अपने से रचित व्याकरण भाष्य को सहस्र शिष्यों को बोध कराया। पाठ पढाते समय गुरु और शिष्यों के बीच पर्दा टंगा हुआ था ताकि आदिशेष मुख से निकलते हुए विषैली सांस शिष्यों को हानि न पहुंचांय। एक शिष्य के पर्दा हटा देखने पर सारे शिष्यजन जल भस्म हो गये। पर इन सहस्र शिष्यों में से एक शिष्य उस समय बाहर गया हुआ था और उसके लौट आने पर आदिशेष ने उसे शाप दिया कि वह ब्रह्मराक्षस हो जाय। पर इस शाप से मुक्ति तभी होगी जब वह ब्रह्मराक्षस किसी एक को पढाये जो कुछ वह स्वयं पड चुका था। एक चन्द या चन्द्रगुप्त नामक व्यक्ति को इस ब्रह्मराक्षस ने पूरा व्याकरण भाष्य पढाया और ब्रह्मराक्षस शाप से मुक्त हो गया। इधर चन्द्रगुप्त ने चार वर्णों के चार स्त्रियों से विवाह किया। इस विवाह से चार पुत्र उत्पन्न हुए—भतृहरी, विक्रमादित्य, भट्टि व वररुचि।

अब कुम्भकोण मठ अपने स्वेच्छावाद प्रमाण द्वारा प्रचार करते हैं कि यह ब्रह्मराक्षस ही श्रीगौडपादाचार्य हुए और श्रीचन्द्रगुप्त व्यक्ति ही श्रीगोविन्दभगवत्पाद हुए। गोविन्दभगवत्पाद के शिष्य आचार्य शङ्कर थे। इस अनर्गल विषय का प्रचार करने का कारण यह है कि उपर्युक्त पतञ्जलि चरित पुस्तक जो तंजौर से हस्तलिपि प्राप्तकर मुद्रित हुई है उसके आठवें सर्ग के 71 श्लोक में उल्लेख है 'काञ्चीपुरे स्थितिमवाप स शङ्करार्यः।' इसके आधार पर कुम्भकोण मठ सिद्ध करते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण कांची में हुआ था तथा कांची में मठ था। 'स्थितिमवाप' पद का अर्थ किस प्रकार तनुत्याग कहा जा सकता है? कुम्भकोण मठ के अभिमानी सर्वज्ञ विद्वानों की व्याख्या ही एक तृतीय पंथा

है जिसकी पुष्टी न प्रामाण्य ग्राह्य पुस्तक करते हैं या न श्रेष्ठों को ग्राह्य है। अपने स्वार्थ के लिये अपने गुरु आचार्य शङ्कर व उनके गुरु व परमगुरु के नाम पर धव्वा लगाने पर लाज नहीं आते। पतञ्जली चरित्र से आचार्य शङ्कर चरित्र का सम्वन्ध 'वादरायण सम्वन्ध' ही है और इस पतञ्जली चरित्र में अचानक श्रीशङ्कर का नाम लेकर और इस पतञ्जली चरित्र से पूर्वापर सम्बन्ध न होते हुऐ भी इस प्रकार के एक दो श्लोक इस पुस्तक में पाये जाते हैं जो सन्देहास्पद हैं। यदि मान भी लें कि यह क्षिप्त श्लोक कथा में ठीक जमता है तो इससे सिद्ध न होगा कि श्रीशङ्कर ने कांची में तनुत्याग किया था और मठ की स्थापना भी की थी। 'स्थितिमवाप' का अर्थ है आचर्य शङ्कर कांची में ठहरे या वास किये। मठों की प्रतिष्ठा आम्नायानुसार एवं महानुशासन पूर्वक हुआ है। क्या कांची मठ का आम्नाय पद्धति है? आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय में क्यों नहीं कांची का उल्लेख है? वासस्थल, तनुत्याग स्थल व सर्वज्ञपीठारोहणस्थल सव साधारण निवास के लिये थे न कि आम्नायानुसार धर्मराज्य केन्द्र थे। पामर लोगों की आंखों में धूल फेंक कर पीठ, आम्नायमठ, साधारण निवासस्थल (मठ) आदि शब्दों का भ्रामात्मक मिथ्या कल्पित अर्थ करके स्वार्थ प्राप्त करना महापाप है।

पतञ्जली चरित का श्लोक यों है 'गोविन्ददेशिकमुपास्य चिराय भक्त्या तस्मिन्स्थिते निजमहिम्नि विदेहमुक्त्या। अद्वैतभाष्य मुपकल्प्य दिशोविजित्य कांचीपुरे स्थितिमवाप स शङ्करार्यः।' कुम्भकोणमठ प्रचार मासिक पत्रिका कामकोटि प्रदीपम में कुम्भकोणमठ के विद्वान अव स्वीकार करते हैं कि 'स्थितिमवाप' का अर्थ तनुत्याग नहीं है पर ठहरने या वास करने का ही वोध करता है। पर इस के साथ अपना अभिप्राय भी देते हैं जो उक्त श्लोक में कहा नहीं गया है। आप कहते हैं कि आचार्य शङ्कर कांची में वास करते हुए अपनी इहलीला समाप्त कर कांची में ही निर्याण भये। यह केवल कल्पना है।

कुम्भकोणमठ का कथन है कि आदिशेष (पतञ्जली) के शाप से आया हुआ ब्रह्मराक्षस ही श्री गौडपादाचार्य भये। पर उक्त पतञ्जली चरित पुस्तक में लिखा है कि ब्रह्मराक्षस चन्द्र के साथ बातें करने के पश्चात् आप स्वर्ग जा पहुंचे। आपका प्रमाण पुस्तक ही आपके प्रचारों का विरोध करता है। पतञ्जली चरित्र में उल्लेख है 'व्रज सुखमवनौ कुरु प्रचारं भुजग कृतेरिति तं स शेषशिष्यः। दिवमगमदुदीर्य सो ऽपि बद्ध्वा वटदल संचयमंशुकेप्रतस्थे।' ब्रह्मराक्षस पूर्ण महाभाष्य का अध्ययन नहीं किये थे क्यों कि आप अपने गुरु के पास महाभाष्य अध्ययन की पूर्ती न की थी। कहीं यह नहीं कहा गया है कि इस ब्रह्मराक्षस ने वेदान्त शास्त्र का अध्ययन भी किया था। इस ब्रह्मराक्षस ने श्री चन्द्र को व्याकरण भाष्य पढाने के वाद अपने पाये शाप से मुक्ति पाकर परलोक चले गये और आपको वेदान्त शास्त्र अध्ययन करने का समय कहां था? इस ब्रह्मराक्षस को समय व प्रमेय कहां था कि आप श्री गौडपादाचार्य समान एक प्रकान्ड विद्वान व अद्वितीय व्यक्ति वनते? 'कामकोटि प्रदीपम' पत्रिका में कुम्भकोणमठ के कृपाभाजन पन्डित एवं सर्वज्ञ विद्वान लिखते हैं कि 'स्वर्ग जा पहुंचे' का अर्थ 'हिमालय पर्वत पहुंचे' है। समयानुसार कल्पना कर निकट सुलभ अर्थ को छोड कर असम्वन्ध अर्थों का करना एवं इन भ्रामक प्रचारों से इष्ट सिद्धि प्राप्त करना इन 'सर्वज्ञों' को शोभता नहीं है। पुस्तक रचयिता श्री रामभद्र दीक्षित ने क्यों हिमालय का नाम नहीं ली थी? कुतर्क, कुअर्थ, वितन्डावाद करना पतित विद्वानों का स्वभाव है। सम्भवतः श्री रामभद्र दीक्षित ने इस श्लोक का टीका इस सर्वज्ञ विद्वान पर छोड दिया हो। पतञ्जली चरित कथा कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी नहीं करती। ऐसे निन्दास्पद भ्रामक प्रचारों से न केवल स्वार्थ प्राप्त करते हैं पर अपने गुरु श्रेष्टों के नाम पर भी कलङ्क लगाने का दायित्व रखते हैं।

कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि यह शिष्य श्री चन्द्र जो ब्रह्मराक्षस से व्याकरण भाष्य का अध्ययन किया वही व्यक्ति श्री गोविन्दभगवत्पाद हुए और आप चार वर्णो के चार स्त्रियों से भोग विलास कर चार पुत्र उत्पन्न किया था।

क्या इससे भी अधिक अपचार श्री गोविन्दभगवत्पाद के प्रति हो सकता है ? आत्मसाक्षात्कार प्राप्त सदायोगनिष्ठ में स्थित श्री गोविन्दभगवत्पाद जिन्हें हमारे आदरणीय श्रेष्टों ने आदिशेष का अवतार स्वीकार किया है और आपका देह रसप्रक्रिया से सिद्ध था वैसे महान का कुम्भकोणमठ से प्रचारित पूर्वाश्रम विवरण कथा आपके चरित्र में जमता नहीं है। 'ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः। नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।' ऐसे आत्मसाक्षात्कार प्राप्त परमयोगी निष्ठावान् श्री गोविन्दभगवत्पाद के प्रति भोग विलास की कल्पना कथा प्रचार करना इन धर्माचारियों को शोभता नहीं है। श्री गोविन्दभगवत्पाद के पास जो कोई उपदेश लेने जाय या मिलने जाय तो आप कहते थे 'नाहं, कोहं, सोहं' 'मैं कौन हूं?' 'तुम कौन हो?' 'शरीर व प्राण क्या है?' 'अपने को पहिचानने सीखो।' ऐसे ज्ञानी के प्रति साधारण मनुष्य का भोग विलास गुण को आप पर आरोप करना भूल है। क्या यह सम्भव है कि आदिशेष के अवतार श्री गोविन्दभगवत्पाद को इस अवज्ञाकारी शिष्य ब्रह्मराक्षस से महाभाष्य पाठ पढ कर विद्या प्राप्त करना पडा था? क्या अल्पज्ञ सर्वज्ञ को विद्याध्ययन करा सकता है? आदिशेष के अवतार श्री गोविन्दभगवत्पाद ने तो स्वयं शाप देकर इस अवज्ञाकारि शिष्य को ब्रह्मराक्षस बनाया था और फिर स्वयं ही उससे पाठ पढने गये ऐसा कहना न केवल मूर्खता है पर अपचार एवं गुरु के नाम पर कलङ्क लगाना है। वर्तमान कुम्भकोणमठाधीष ने स्वयं अपने मदरास भाषण में यह सब कथा सुनाई है। ईश्वरांश आचार्य शङ्कर यद्यपि अवतार पुरुष थे तथापि लोकरीति के अनुसार आप एक व्यक्ति ही थे। आप भारतवर्ष का ऐतिहासिक अद्वितीय पुरुष थे। आपका जन्म आज से करीब 1275 वर्ष पूर्व हुआ था। पुराण पुरुषों की कथा की तरह आपके चरित्र में भी अनेक घटनायें बाद जोड ली गयी हैं। ये सब घटनायें शिष्यों के अनन्य भक्ति द्वारा ही बाद जोडे गये हैं, इसमें सन्देह नहीं, तथापि पुराण काल की तुलना में अर्वाचीन काल के ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र में ऐसा जोडना या बदलना न्याय व उचित नहीं है। चाहे कोई कितना भी प्रभावशाली, समृद्धशाली, धर्माचार्य अद्वितीय पुरुष हो उसे कोई अधिकार नहीं है कि वह इस ऐतिहासिक पुरुष के चरित्र में कल्पित घटनायें जोडकर प्रचार करें। ऐतिहासिक चरित्र कथा जो सब प्रमाण ग्रंथों के आधार पर प्रचार होकर श्रेष्टों से स्वीकार किये गये हैं उस कथा को बदलने का अधिकार किसी को नहीं है।

एक ब्राह्मण गोविन्दभट्ट ने चार वर्णों के चार स्त्रियों से (माधवी, मानावती, माया, मातङ्गि) विवाह कर चार पुत्र उत्पन्न किया था—वररुची, विक्रमादित्य, भट्टी, भतृहरी —ऐसा जो कथा कर्णश्रुति द्वारा सुनते आये हैं, अब कुछ लोग इस गोविन्दभट्ट को ही गोविन्दभगवत्पाद मानकर आचार्य शङ्कर के गुरु बना रहे हैं। कुछ विद्वान आपका नाम चन्द्रगुप्त भी कहते हैं और यह भी प्रचार करते हैं कि ये ही चन्द्रगुप्त पश्चात् गुरु गोविन्दभगवत्पाद भये। विक्रमादित्य जो उज्जैयनी देश का राजा था, यह कहा जाता है कि आपका पिता का नाम चन्द्रगुप्त था और आपका काल क्रिस्त पूर्व का है। आचार्य शङ्कर का काल 7 वीं/8 वीं शताब्दी का है। इस विक्रमादित्य के पिता का नाम गोविन्दभट्ट होने का कोई प्रमाण अभी तक मिला नहीं है। आचार्य शङ्कर अपने ग्रंथों में कुमारिल के मत का उल्लेख किया है। अर्थात् आचार्य शङ्कर एवं कुमारिल समसामयिक हों (कुमारिल के वृद्धावस्था में आचार्य बालक रहे हों) या कुमारिल आचार्य काल के पूर्व के हों। कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक में कालिदास का नाम लिया है। अर्थात् कुमारिल के पूर्व कालिदास थे। यह कहा जाता है कि विक्रमादित्य राज्य के नौ रत्नों में कालिदास एक थे। अर्थात् गोविन्दभट्ट का पुत्र विक्रमादित्य के काल में ही आचार्य शङ्कर का होना इन कल्पित प्रचारों से प्रतीत होता है पर आचार्य शङ्कर का काल 7 वीं/8 वीं शताब्दी का था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान डा० राधाकुमुद मुकर्जी लिखते हैं कि अधिकांश अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि कालिदास का काल 5 वीं शताब्दी क्रिस्त पश्चात् का था और आप यह भी लिखते है कि 'मालविकाग्निमित्र' नाटक से प्रतीत होता है कि कालिदास का

काल शुङ्ग राजा पुष्यमित्र का काल होना भी सन्देह किया जाता है। इतिहास से मालूम होता है कि शुङ्ग राजा पुष्यमित्र का काल 184—149 क्रिस्त पूर्व का था। डा० राधाकुमुद मुकर्जी लिखते हैं **' Next, we may refer to the greatest poet of India, Kalidasa, who is generally taken to be of the 5th century A, D. though there is a view that be might have lived in the time of the Sunga King Pushyamitra in the light of his drama called Ma lavikagnimitra.'** कालिदास के बहुकाल पश्चात् कुमारिल भट्ट थे और आपके अन्तिम काल में आचार्य शङ्कर थे तो कैसे कहाजाय कि आचार्य शङ्कर इस उक्त गोविन्दभट्ट या चन्द्रगुप्त जो श्रीगोविन्दभगवत्पाद भये आपसे सन्यासदीक्षा ली थी? अतः आचार्य का काल उज्जैयनी विक्रमादित्य का काल नहीं है एवं गोविन्दभट्ट या चन्द्रगुप्त से आचार्य शङ्कर ने दीक्षा न ली थी।

भट्टि एवं भतृहरि दोनों भाई कहे जाते हैं पर वास्तव में ये दोनों व्यक्ति भिन्न काल में थे और आप दोनों में कोई सम्बन्ध न था। वल्लभी के राजा श्रीधरसेना जिनका काल क्रिस्त पश्चात् चतुर्थ शताब्दी मध्य का माना जाता है आपके राजदरबार पन्डित श्री भट्टि थे। यह भी कहा जाता है कि राजा विक्रमादित्य का भाई श्रीभट्टि थे और राजा विक्रमादित्य ने अपने भाई को राज्य मंत्री की पदवी दी थी। 'वाक्यपादीय' के रचयिता भतृहरि स्वयं अपने ग्रंथ में गुरु का नाम 'वसुरात' कहते हैं। कहा जाता है कि यह वसुरात कश्मीर के चन्द्राचार्य के समसामयिक काल के थे और आप कश्मीर चन्द्राचार्य से भिन्न थे और आपका काल 40 ई० का है। पर यह कथन भी ठीक नहीं जमता यदि प्रथम शताब्दी के भतृहरी एवं सातवीं शताब्दी के भतृहरी को अभिन्न व्यक्ति मान लें। चीनी यात्री इत्-सिङ्ग (673-695 ई०) अपने ग्रंथ में धर्मकीर्ति को समसामयिक व्यक्ति बतलाया है एवं भतृहरी को अपने से 40 वर्ष पूर्व के होने की बात स्वीकार की है। इत्-सिङ्ग के कथनानुसार भतृहरी का स्वर्गवास 651-652 ई० का निश्चय होता है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी एवं माक्समुलर आपको सातवीं शताब्दी का व्यक्ति बताते हैं। इन आक्षेपों से प्रश्न उठता है कि क्या ये चार उक्त व्यक्ति जिनका काल भिन्न भिन्न हैं सो सब श्रीचन्द्रगुप्त या गोविन्दभट्ट के पुत्र थे? क्या प्रमाण है कि चन्द्रगुप्त या गोविन्दभट्ट ने सन्यासाश्रम लिया था? इन नामों में से एक का ब्राह्मण होना प्रतीत होता है और दूसरे का अब्राह्मण होना निश्चित होता है। तो कैसे कहा जाय कि ये दोनों व्यक्ति अभिन्न हैं? क्रिस्तबाद 7 वीं/8 वीं शताब्दी के आचार्य शङ्कर किस प्रकार यह कहे जानेवाले चन्द्रगुप्त या गोविन्दभट्ट के शिष्य बन सकते हैं?

अनुसन्धान विद्वान श्री टि. सुब्बराव लिखते हैं कि श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य ही पतन्जली थे, इसलिये आचार्य शंकर पतञ्जली के शिष्य थे। सम्भवतः कुम्भकोणमठ इस अभिप्राय के आधार पर आचार्य शङ्कर के गुरु व परमगुरु को पतञ्जली चरित (जो कथा आचार्य शङ्कर के जीवन चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखता) से सम्बन्ध जोड कर पतञ्जली चरित में स्वरचित कुछ श्लोकों को जोड कर भ्रामक प्रचार कर रहे हैं। सम्भवतः श्री टि. सुब्बराव ने माधवीय शङ्करविजय पांचवें सर्ग 95 श्लोक जहां कहा गया है 'आप पूर्व में प्रथमतः सहस्रमुख आदिशेष थे पश्चात् स्वयं आप पतन्जलि रूप में अवतार हुए और अब आप श्री गोविन्दयोगी हैं।,' इसके आधार पर अपना अभिप्राय प्रगट किया हो। आपका अभिप्राय भूल है चूंकि माधवीय मूल एवं टीका दोनों आपके कथन की पुष्टी नहीं करती। पतञ्जली के गुण, लक्षण व पान्डित्य भले ही श्री गोविन्दभगवत्पाद में हो सकता है और आप पतञ्जली के अवतार भी हों पर इससे इन दोनों व्यक्तियों को एक कहना मूर्खता है। पतञ्जली का काल श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य काल के बहुपूर्व

काल का था। पतञ्जली ने पाणिनीय व योगसूत्र पर भाष्य रचा है। पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वान श्री मुलर, श्री वेवर, श्री गोल्डस्टकर आदि महाभाष्य का काल 250 क्रिस्त पूर्व से 60 ई० तक का भिन्न काल बतलाते हैं। बृहदारण्य के पांचवें अध्याय, तीन और पांच ब्राह्मण, में कपि गोत्र के एक पतञ्जल का नाम उल्लेख है। पाणिनीय गनपात में भी पतञ्जली व पतञ्जल का नाम उल्लेख है। पतञ्जली का नाम सिद्धान्तकौमुदी में है। पतञ्जली अपने महाभाष्य में एक पुष्यमित्र का नाम लेते हैं जिन्हें ऐतिहासिक लोग शुङ्ग वंश के पुष्यमित्र कहते हैं (184/149 क्रिस्त पूर्व)। यह भी प्रचार किया जाता है कि राजतरङ्गिनी में महाभाष्य का उल्लेख है और कहता है कि चन्द्राचार्य ने महाभाष्य का प्रचार काश्मीर के श्री अभिमन्यु के राज्यकाल में (40 ई०) किया था। पर यह कथा राजतरङ्गिनी पुष्टी नहीं करती। चन्द्राचार्यों से प्रचारित चन्द्र व्याकरण (बौद्ध व्याकरण) का उल्लेख है न कि पाणिनीय व्याकरण। श्री बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र में योग का खन्डन किया है और पतञ्जली इसके प्रवर्तक थे। इसलिये यह कहना उचित है कि पतञ्जली बादरायण के पूर्व थे। पाणिनीय पराशरीय का संकेत करता है और आपका काल पराशरीय के पश्चात् का ही है। अर्थात् पतञ्जली भी आपके बहुकाल बाद ही के थे। कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि दो पतञ्जली थे—एक महाभाष्य के रचयिता जो श्री बादरायण के पश्चात् हुए—दूसरे पतञ्जली जो श्री बादरायण के पूर्व थे। यह कहा जाता है कि पतञ्जली के समय 'माध्यामिकासों' ने चढाई की थी। नागार्जुन के अनुयायी माध्यामिकास थे। नागार्जुन का काल करीब 400 या 500 वर्ष श्री बुद्धदेव के निर्वाण के पश्चात् का था अर्थात् 77 या 43 क्रिस्त पूर्व का काल होता है। आचार्य शंकर का काल 7 वीं/8 वीं ईसा के बाद का है। इसलिये पतञ्जली ही गोविन्दभगवत्पाद भये ऐसा कहना मूर्खता है। इस कल्पित कथा के आधार पर पतञ्जली चरित्र में आचार्य शंकर का चरित्र जोड लेना अपनी अल्प बुद्धि का प्रगटन ही होता है। पतञ्जली के गुण, लक्षण व पान्डित्य भले ही श्री गोविन्दभगवत्पाद में हो सकता है और आप पतञ्जली के अवतार भी हो सकते हैं पर पतञ्जली ही गोविन्दभगवत्पाद भये कहना या पतञ्जली चरित्र से आचार्य शङ्कर के गुरुपीडी की कथा सम्बन्ध रखता है ऐसा कहना उन्मत्त प्रलाप है।

पूर्वापर सम्बन्ध बिना एवं अचानक पतञ्जली चरित में आचार्य शङ्कर का नाम आठवें सर्ग में लाया गया है। मार्के की बात है कि इस आठवें सर्ग में माधवीय शङ्करविजय से 16 श्लोक उद्धृत किये गये हैं और ये सब श्लोक अक्षरसः सब माधवीय से मिलते हैं। कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टी के लिये इन श्लोकों को पतञ्जली चरित पुस्तक जो तंजौर में उपलब्ध था उसमें जोडकर एक नवीन ग्रंथ तैय्यार कर पश्चात् मुद्रित करा दिया है। इस पुस्तक के आठवें सर्ग के श्लोक 18, 19, 62 से 70, 45, 46, 60 से 62 आदि 16 श्लोक माधवीय के पांचवें और छठवें सर्ग से उत्धृत किये गये हैं। अब कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि माधवाचार्य शङ्करविजय में इस पतञ्जली चरित से 16 श्लोक लिया गया है। उलटे चोर चोरी का दोषारोपण कोतवाल पर करने के समान है। कुम्भकोण मठ की कथा है कि माधवीय जो नवकालिदास माधव भट्ट ने 1710 ई० में रचा था और इस में पतञ्जली चरित के श्लोक लिये गये हैं सो असत्य ठहराता है चूंकि कुम्भकोण मठ के कथनानुसार पतञ्जली चरित की रचना 1710 ई० के बाद का ही है। यहां ध्यान देने की बात है कि पतञ्जली चरित में एक ही श्लोक में आचार्य शङ्कर का चरित्र वर्णन किया गया है और यह सन्देहास्पद है। और यह एक श्लोक आचार्य चरित्र का वर्णन उतना नहीं करता जितना कांची के महत्ता का उल्लेख है। इससे तो यह प्रतीत होता है कि कांची नाम लेने के लिये ही यह श्लोक क्षिप्त किया गया हो। पतञ्जली चरित के अनुसार गोविन्दभगवत्पाद बदरीकाश्रम में वास करते थे न कि नर्मदा तटपर जो अन्य प्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध करते हैं। इस पतञ्जली चरित्र विषय के साथ आचार्य शङ्कर चरित्र विषय का सम्बन्ध न होने से निस्सन्देह कहा

जा सकता है कि माधवीय से ही इन श्लोकों को पतञ्जली चरित्र में जोड कर अपने प्रचारों की पुष्टी के लिये प्रचार किया जाता है।

कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में लिखा है कि पाणिनीय भाष्य के प्रचारक श्रीचन्द्रशर्मा (कहीं कहीं चन्द्राचार्य, चन्द्रगुप्त, चन्द्र का नाम भी लेते हैं) ने इस व्याकरण को काश्मीर में प्रचार किया था जब काश्मीर नरेश श्रीअभिमन्यु थे। प्रमाण में राजतरङ्गिनी तरङ्ग एक के श्लोक 173 से 189 तक का कहते हैं। इसी के आधार पर यह भी प्रचार करते हैं कि ये ही चन्द्रशर्मा ने पश्चात् श्रीगौडपाद को जो उस समय ब्रह्मराक्षस रूप में वृक्षपर वास करते थे, शाप से विमोचन की थी और स्वयं सन्यासाश्रम लेकर श्रीगोविन्दभगवत्पाद भये। मैं ने राजतरङ्गिनी तरङ्ग I के 170 से 190 श्लोक तक पढा और जो विषय कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं उसकी पुष्टी वहां नहीं की। चन्द्रशर्मा का अन्य नाम राजतरङ्गिनी में दिया है —'चन्द्राचार्य'। यह चन्द्राचार्य जो काश्मीर में व्याकरण भाष्य का प्रचार किया था आप वैदिक मार्ग के यति न थे और न भये, इसलिये यह कहना भूल है कि आप सन्यासाश्रम लेकर गोविन्दभगवत्पाद भये। राजतङ्गिनी के 176 श्लोक 'चन्द्राचार्यादिभिलब्धाऽऽज्ञाम् तस्मात्तथागमम् प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणं कृतं' के पश्चात् कुछ श्लोकों द्वारा वैदिक मत का खण्डन भी किया गया है। उपर्युक्त श्लोक के अर्थ द्वारा एवं वैदिक मत खण्डन किये जाने के कारण, इस व्याकरण को पाणिनीय व्याकरण कह नहीं सकते। इसलिये यह कहना भूल है कि उक्त चन्द्रशर्मा ने पाणिनीय व्याकरण का भाष्य रचना कर काश्मीर में प्रचार किया था। राजतरङ्गिनी में कहे चन्द्राचार्य भिन्न व्यक्ति हैं। अगले काल में अन्य प्रमाण उपलब्ध होने पर यदि यह सिद्ध भी हो कि कोई एक व्यक्ति चन्द्रशर्मा ने पाणिनीय व्याकरण भाष्य रचना की थी और प्रचार भी किया था तो भी यह चन्द्रशर्मा चन्द्राचार्य से भिन्न व्यक्ति होंगे चूं कि चन्द्राचार्य ने बौद्ध व्याकरण का भाष्य रचा था और प्रचार किया था। व्याकरण अनेक थे–जैन व्याकरण, चन्द्र व्याकरण, बौद्धव्याकरण, पाणिनीय व्याकरण आदि। राजतरङ्गिनी के अनुसार श्रीचन्द्रगोमिन ही चन्द्रव्याकरण के प्रवर्तक थे। पश्चात् काल में और एक चन्द्राचार्य ने भाष्य रचना कर इसका प्रचार भी किया था। राजतरङ्गिनी में कहे 'चन्द्रव्याकरण' पाणिनीय व्याकरण हो नहीं सकता और इसे बौद्ध मत का चन्द्रव्याकरण कहना ही न्याय होगा। राजतरङ्गिनी तरङ्ग एक के 160 श्लोक से 190 श्लोक तक ध्यान से पढा जाय तो स्पष्ठ विदित होगा कि यह चन्द्रव्याकरण ही बौद्ध व्याकरण था। प्राचीन पुस्तकों में आठ वैय्याकरणियों का नाम लिया गया है जिसमें एक 'चन्द्र' का भी नाम है और इसके आधार पर जब चन्द्रनाम राजतरङ्गिनी में देखा तो अनुमान कर लिया कि चन्द्र व्याकरण ही पाणिनीय व्याकरण है। पर राजतरङ्गिनी में दिये कथा के पूर्वापर संदर्भ को छोडकर अनुमान कर लेना भूल है।

राजतरङ्गिनी के उक्त श्लोक में 'चन्द्राचार्यादिभिः' पद का बहुवचन में उपयोग किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि चन्द्राचार्य एवं अन्य बौद्ध सन्यासियों से ही लिखा मालूम होता है। राजतरङ्गिनी में दिये हुए पूर्वापर संदर्भ और इस 176 श्लोक के पश्चात् के श्लोक सब यही पुष्टी करता है कि यह बौद्ध व्याकरण ही था। यहां 'चन्द्र' के बाद 'आचार्य' पद का उपयोग है न कि 'चन्द्रशर्मा'। यदि इस श्लोक में चन्द्र शब्द एक वचन में होता तो भी कह सकते थे कि चन्द्र नाम पूर्वाश्रम नाम था और सम्भवतः आपने पाणिनीय भाष्य लिखकर काश्मीर में प्रचार किये पर राजतरङ्गिनी का श्लोक से यह सिद्ध नहीं होता। यदि 'चन्द्रशर्मादिभिः' होता तो भी ठीक होता। इसलिये 'चन्द्राचार्यादिभिः' कहने मात्र से एवं राजतरङ्गिनी में दिये कथा संदर्भ को ध्यान रखकर यही कहा जा सकता है कि 'बौद्ध भिक्षुओं में चन्द्राचार्य एवं आदि से' ऐसा अर्थ करना उचित है। 'स्वयं च व्याकरणं कृतं' का अर्थ 'अपना व्याकरण रचा' ठीक नहीं जमता चूंकि बौद्धमत के चन्द्राचार्य आदियों से 'अपने बौद्धमत के अनुसार

चन्द्रव्याकरण का भाष्य लिखा है’ ऐसा कहना उचित है। चन्द्राचार्यादि भिक्षु सब बौद्ध मतानुयायी थे। आप लोगों ने वैदिक शास्त्र का खन्डन किया है। नागार्जुनराजा की कथा, अभिमन्यु राजा द्वारा नगर का निर्माण करने का कथा एवं उस नगर में आये हुए चन्द्राचार्यादियों से बौद्धमत के अनुसार व्याकरण भाष्य रचने की कथा तथा काश्मीर में बौद्धमत का प्रभाव, आदि विषयों का वर्णन राजतरङ्गिनी के श्लोक 177 से 190 तक करता है। इससे सिद्ध होता है कि काश्मीर के चन्द्राचार्य पश्चात् श्री गोविन्दभगवत्पाद नहीं भये। ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि अभिमन्यु राजा का काल 40 ई॰ का था। आचार्य शङ्कर काल 7 वीं/8वीं शताब्दी का था। कश्मीर के चन्द्राचार्य गोविन्दभगवत्पाद होकर आचार्य शङ्कर के गुरु हो नहीं सकते।

कामकोटी प्रदीपम (1961) में कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह चन्द्र शर्मा का नाम चन्द्रगुप्त है। ‘गुप्त’ कहने मात्र से प्रतीत होता है कि आप ब्राह्मण न थे और आपने किसप्रकार धर्मशास्त्रविरुद्ध अपने वर्ण के बाहर के स्त्रियों से विवाह किया था? शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्र को किसप्रकार आपने वेदाङ्ग व्याकरण पढाया था जब धर्मशास्त्र इस विषय की पुष्टी नहीं करती? इतिहास से मालूम होता है कि ये चार व्यक्ति-वररुचि, विक्रमादित्य, भट्टी, भतृहरि-भिन्न भिन्न काल के थे और किसप्रकार इन चारों को न केवल समसामयिक बनाया गया पर भाई भाई भी बना दिया गया है? कवियों की जगत ही विलक्षण है और कवि अपनी चातुर्यता व कल्पना से घटनाओं का विवरण विलक्षण रूप में भी वर्णन कर सकते हैं पर ऐसे कविता इतिहास विषयों की पुष्टी में प्रधान मूल प्रमाण बन नहीं सकते। सिद्ध विषयों की पुष्टी प्रमाण में लिये जा सकते हैं।

शङ्कराभ्युदयम्–श्री राजचूडामणि दीक्षित—श्री राजचूडामणि दीक्षित दक्षिण भारत के एक कवि थे। इनके पिता का नाम रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित और माता का नाम कामाक्षी था। कहा जाता है कि आप तंजौर राज्य के राजा रघुनाथ के आश्रय में थे। आपका रचित ‘तन्त्रशिखामणी’ नामक जैमिनीसूत्र पर व्याख्या पुस्तक 1636—1637 ई॰ में रचे जाने को भी कहा जाता है। इस पुस्तक में अपने गुरु श्री वेंकटमखि के बारे में कहते हैं कि आप यज्ञ आदि करते थे। ‘रुक्मणि कल्याण’ पुस्तक भी आपसे रचित है। तंजौर राज्य के मंत्री श्री गोविन्ददीक्षित के पुत्र श्री वेंकटमखि ही श्री राजचूडामणि दीक्षित के गुरु थे। ‘तत्त्वबिन्दु’ (श्री वाचस्पतिमिश्र) पुस्तक के प्रस्तावना में श्री वि. ए. रामस्वामि शास्त्री, M. A., लिखते हैं ‘**Venkateswara Dikshita was the teacher of Rajacudamani Diksita and Nilakantha Diksita—two great writers of the 17th century—who have referred to him in eulogistic terms in their works.**” आपके अभिप्राय में राजचूडामणि दीक्षित का काल 1580—1650 ई॰ का था।

यह प्रचार किया जाता है कि श्री राजचूडामणि दीक्षित ने ‘शङ्कराभ्युदयम् (आचार्य शङ्कर का चरित्र वर्णन) 6 सर्ग में एक अपूर्ण पुस्तक लिखा था। संस्कृत भाषा पत्रिका ‘सहृदया’ में यह प्रकाशित हुआ था पर यह किसी को न मालूम है कि इसका हस्तलिपि मूल कहां से प्राप्त किया गया था या किसने लिखा था या इसे किस विद्वान ने शोधन किया था। इन प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं देता यद्यपि यह प्रश्न कई बार पूर्व में पूछे गये थे। सम्भवतः इसका मर्म जो काले कर्तूत हों और इन कर्तूतों का भन्डाफोड होने के भय से सत्यता का प्रगट नहीं किया हो। कामकोटि प्रदीपम पत्रिका में 1960–61 ई॰ में कहा जाता है कि जो व्यक्ति ने, शङ्कराभ्युदय प्रकाश किया था वह अब परलोक में है और जो व्यक्ति उक्त प्रश्नों के उत्तर चाहते हैं वे परलोक यात्रा करके जान सकते हैं। पाठकगण जान लें कि कुम्भकोणमठ

प्रचारकों का उत्तर कहां तक उचित व न्याय है। कुम्भकोणमठ से शंकराभ्युदय पुस्तक का सातवां व आठवां सर्ग 1912 ई० में दिया गया था और अपने प्रचारों की पुष्टी के लिये ही सब तैय्यार किये गये थे। जब से कुम्भकोणमठ यतिसम्राट व जगद्गुरु सार्वभौम मठ एवं अन्य चार आम्नाय मठों के गुरुमठ बनने की इच्छा से अपना प्रचार शुरु कर दिया था उसी समय का लिखा यह ग्रंथ है–19 वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध का लिखा ग्रंथ है। सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि इस अपूर्ण पुस्तक के 6 सर्ग ही होते हुए भी 1912 ई० में कुम्भकोणमठ ने सातवां और आठवां सर्ग की हस्तलिपि प्रति भेजी थी। इससे यह कहना भूल न होगी कि प्रथम छः सर्ग भी कुम्भकोणमठ से ही देकर प्रचार कराया गया था। तब भी यह ग्रंथ अपूर्ण है। कुम्भकोणमठ अपने प्रचारों की पुष्टी व प्रमाण में इस पुस्तक को बतलाते हैं। स्वरचित एकङ्गि पुस्तक ही तो कुम्भकोणमठ के लिये प्रमाण हैं।

इस पुस्तक में आठवें सर्ग के अन्तिम श्लोक जो कुम्भकोणमठ प्रचार पुस्तकों में देखा जाता है वह यों है 'कम्पातीरनिवासिनीं अनुदिनं कामेश्वरीं अर्चयन् ब्रह्मानन्दमविन्दत त्रिजगतां क्षेमंकरः शङ्करः।' इस श्लोक का अर्थ करते हुए कुम्भकोणमठाभिमानी सर्वज्ञ पन्डितों ने कहा कि 'ब्रह्मानन्द' पद का अर्थ तनुत्याग है और इसलिये आचार्य शङ्कर का निर्याण कांची में होना सिद्ध होता है। पर इस श्लोक का साधारण अर्थ है कि आचार्य शङ्कर ने कांची कामाक्षी देवी की पूजा से ब्रह्मानन्द प्राप्त किये न कि कांची में तनुत्याग किये। यदि मान भी लें कि यह श्लोक क्षिप्त नहीं है तब भी इस श्लोक से यह प्रतीत नहीं होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांचीपुर में ही वास किये या कांची में ही तनुत्याग किये या कांची में एक आम्नाय मठ की स्थापना की थी। कामकोटि प्रदीपम पत्रिका में अब यह प्रचार किया जाता है कि इस श्लोक का अर्थ निर्याण नहीं है पर आचार्य शङ्कर का 'वास' का ही बोध करता है। तो क्या पूर्व में सौकडों प्रचार पुस्तकों में किये गये अर्थ अब भूल व मिथ्या मान लिया गया है? जब तक कुम्भकोणमठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों की पोल न खोली जाती है तब तक आपलोग अपने प्रचार में आरूड रहते हैं और जब सत्य का प्रकटन होता है तो अपना प्रचार भी बदल देते हैं। कुम्भकोणमठ के 'शङ्करजयन्तीमलर' 1953 में इस श्लोक का कुछ पाठ भेद भी दीखता है। 'निवासिनीं' की जगह अब 'उपेत्य' पद का प्रयोग किया जा रहा है। इस परिवर्तन से अब कुम्भकोणमठ कहते हैं कि आचार्य शङ्कर पूर्व में एक बार कांची आये थे और दिग्विजय के बाद पुनः कांची पहुंचे और इसीलिये श्लोक में 'उपेत्य' पद का प्रयोग किया गया है। ऐसे क्षिप्त श्लोकों से विवादास्पद विषयों का निर्णय किया नहीं जा सकता है। काल प्रवाह के साथ श्लोक भी परिवर्तनशील हैं और इसका कारण कुम्भकोण मठ ही जाने। अन्य ग्राह्य प्रमाण एवं परम्पराप्राप्त कथा यह नहीं कहती कि आचार्य शङ्कर ने कांची में ही वास करते हुए तनुत्याग किया था एवं यहां गुरु मठ की स्थापना की थी, अतएव शङ्कराभ्युदय का एक श्लोक के आधार पर जो श्लोक कुम्भकोण मठ से ही दिया गया था, उस पर आधार कर अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के विरुद्ध निर्णय नहीं दिया जा सकता है। कुम्भकोण मठ का प्रचार मिथ्या है।

यदि पाठकगण शङ्कराभ्युदय एवं माधवीयशङ्करविजय दोनों पुस्तकों को पढें एवं दोनों की तुलना करें तो प्रथमतः यह पायेंगे कि शङ्कराभ्युदय पुस्तक के अनेक श्लोकों का भाव व अर्थ व पदमैत्री शैली में माधवीय के साथ समानता रखती है यद्यपि श्लोक के पद भिन्न भिन्न उपयोग किये गये हों और द्वितीयतः यह पायेंगे कि शङ्कराभ्युदय में 146 श्लोक माधवीय से ही उद्धृत किये गये हैं। इसका विवरण पाठकगण इस अध्याय के माधवीय शङ्करविजय पर विमर्श भाग में पायेंगे। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि माधवाचार्य ने ही शङ्कराभ्युदय से माधवीय में चोरी की है पर शङ्कराभ्युदय पुस्तक ही संदेहास्पद है एवं इसका रचना काल 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध का ही है। स्वरचित

पुस्तक पर प्रसिद्ध ग्रंथ कर्ताओं का नाम लेबल छाप कर प्रकाश करने मात्र से प्रमाण नहीं हो सकता है। ग्रंथ रचयिता का नाम, काल, समसामयिक या समीप काल के अन्य ग्रंथों में निर्देष एवं श्रेष्ठों को ग्राह्य तथा अन्दरबाह्य प्रमाण मिलने से ही पुस्तक की प्रामाणिकता निश्चित की जा सकती है। इस दृष्टी से देखा जाय तो 'शङ्कराभ्युदय' अति सन्देहास्पद पुस्तक ठहरता है। तंजौर सरस्वती महाल पुस्तकालय के 'Miscellaneous Papers' से एक पुस्तक 'शङ्कर भगवत्पाद सप्तति' प्रकाश किया गया है जिसमें अनेक श्लोक माधवीय शङ्करविजय के ही हैं। यह भी कहा जाता है कि और एक 'सप्तति' प्राप्त हुई है और प्रकाश होनेवाला है। माधवीय की मान्यना घटाने के लिये 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में एवं कुम्भकोण मठ के मिथ्या प्रचारों की पुष्टी एवं प्रमाणाभास पुस्तकें तैय्यार किये गये थे जो सब माधवीय से अनेक श्लोक लेकर अपने मिथ्या प्रचारों को भी जोड करके नवीन पुस्तकों का नाम भी देकर प्राचीनता का लेबल चिपकाकर प्रचार कर रहे हैं।

अनेक प्राचीन ग्राह्य ग्रंथ एवं अन्य बाह्य प्रमाण होते हुए भी उन सब ग्रंथों व प्रमाणों को छोडकर केवल काव्य पर आधार कर जिसकी पुष्टी अन्य प्रमाण ग्रंथ नहीं करते, किसी विषय का निर्णय करना उचित व न्याय न होगा। काव्य में कवि अपनी कल्पना व कवनशक्ति को कविता रूप में लिखकर साहित्य संसार के भन्डार में भरता जाता है। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि महानों को जब स्वागत व अभिनन्दन पत्र दिये जाते हैं तब विद्वान लोग अपनी कवन शक्ति की झलक कविता में दिखाकर नाना प्रकार की महत्ता वर्णन करते हैं जैसे काशी के कुछ कृपाभाजन विद्वानों ने कुम्भकोण मठाधीश को 1935 ई० में कहा 'आप साक्षात् परमशिव हैं' और 'आप परम-शिवावतार हैं।' क्या कोई प्रारब्ध का मारा परतंत्र व्यक्ति भी परमशिव हो सकता है क्यों कि काशी के कतिपय पन्डितों ने यह कह दिया? अगले काल में इन्ही पत्रों के आधार पर क्या यह विश्वास कर लिया जाय कि 20 वीं शताब्दी में परमशिव ने कुम्भकोण मठाधीष रूप में अवतार लिया था या 20 वीं शताब्दी के कुम्भकोण मठाधीष स्वयं ही परमशिव थे? इसीलिये ऐसे स्वरचित एकाङ्गि काव्य पुस्तकों को मूल व प्रथम प्रमाण मानकर विवादास्पद विषयों का निर्णय करना उचित न होगा। सिद्ध विषयों की पुष्टी के लिये ही प्रमाण रूप में ऐसे काव्य लिये जा सकते हैं। आर्ष ग्रंथों या आर्ष तुल्य ग्रंथों या वृद्ध परम्परा प्राप्त सर्वमानित ग्राह्य कथायें या श्रेष्ठों से स्वीकार किये गये प्रमाणों द्वारा जब किसी विषय का निर्णय कर सकते हैं तब इन सब उक्त प्रमाणों को छोडकर अर्वाचीन काल में रचित काव्य, नाटक, स्तोत्र, आदि पर निर्भरकर विषयों का निश्चय करना उचित न होगा। प्रस्तुत प्रश्न है कि क्या आचार्य शङ्कर ने काञ्ची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी? इस कल्पित मठ का आम्नाय पद्धति क्या है? और जब इस विषय का निर्णय आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय व महानुशासन एवं अन्य धर्मशास्त्र ग्रंथों द्वारा किया जा सकता है तो क्यों काव्य, नाटक, स्तोत्र पर आधार कर निश्चय किया जाय? काशी के कुछ विद्वानों का यह विचार जो 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' (1935 ई०) में प्रकाशित हुआ था इसके उत्तर में कुम्भकोण मठाभिमानियों द्वारा प्रकाशित 'शाङ्करपीठतत्त्व-दर्शन' में कहा गया है कि यदि काव्य को अप्रमाणिक माना जाय तो वाल्मीकि रामायण भी अप्रमाण मानना होगा। इस कुतर्क से कुम्भकोण मठ विद्वानों का पान्डित्य प्रगटन हुआ है। यह नहीं कहा गया है कि काव्य अप्रमाणिक हैं। केवल यही वहां कहा गया था कि अर्वाचीन काल में स्वरचित काव्य या अन्य काव्य पुस्तकों को मूल व प्रथम प्रमाण माना नहीं जा सकता है जब विषयों का निर्णय आर्षग्रंथों या आर्षतुल्य ग्रंथों या धर्म शास्त्र ग्रंथों या अन्य प्रामाणिक ग्रंथों जो बाह्य प्रमाणों से पुष्टी होती है और जो श्रेष्टों को ग्राह्य है, उनके द्वारा किया जा सकता है। वाल्मीकि ऋषि रचित रामायण ग्रंथ है। इसकी गणना आर्ष ग्रंथों में की जाती है। इसकी पूजा व पारायण नित्य किया जाता है। रामायण की महिमा यों वर्णित है 'समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुति मनोहरम्'। यद्यपि रामायण एक महाकाव्य है तब

भी वह आर्ष एवं इतिहास ग्रंथ है और सदा प्रामाणिक था और रहेगा। श्रीवाल्मिकि के पश्चात् अन्य प्रकान्ड विद्वानों ने विविध भाषाओं में अनेक रामायण पुस्तक की रचना की है। क्या ये सब रचयिता वाल्मिकि थे या मुनि थे ? क्या उनसे रचित ग्रंथों को आर्ष ग्रंथों में गणना की जाय ? कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक पुस्तकों के कहेजानेवाले रचयिता (अभी तक निस्सन्देह रचयिताओं का निर्धारन नहीं हुआ है) श्रीसदाशिवबोध, श्रीरामभद्रदीक्षित, श्रीराजचूडामणि दीक्षित (सब अर्वाचीन काल के), श्रीहर्ष आदि क्या ऋषि थे या कहेजानेवाले आपसे रचित ग्रंथ गुरुरत्नमाला, सुषमा, पुण्यश्लोक मंजरी, पतञ्जली चरित, शङ्कराभ्युदय, नैषध काव्य आदि आर्ष ग्रंथ हैं ? क्या ये सब पुस्तक रामायण तुल्य हैं ? काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद जब उठा तो कुम्भकोण मठाभिमानियों ने स्वरचित गुरुरत्नमाला, स्वरचित पुण्यश्लोकमंजरी, पतञ्जली चरित, शङ्कराभ्युदय, नैषध आदि पुस्तकों को प्रधान प्रमाण में कहा था तब काशी के कुछ विद्वानों व आदरणीय परिव्राजकों ने कहा कि ये सब काव्य प्रमाण में नहीं लिये जा सकते जब ये सब पुस्तक आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय व महानुशासन; यति धर्म शास्त्र पुस्तकों; माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय दिग्विजय पुस्तकों के विरुद्ध हैं। पूछे प्रश्नों का उत्तर न देकर पामर जनों के आंखों में धूल झोंकना स्वार्थियों का स्वभाव है।

कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का जन्म कलियुग 2593 में हुआ था। आत्मबोध कहते हैं कि आचार्य शङ्कर ने सुरेश्वराचार्य को सर्वज्ञात्म की निगरानी में कांची में नियोजन कर स्वयं कलियुग 2625 में निर्याण भये। इस आधार पर कुम्भकोणमठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर का काल क्रिस्तपूर्व 508 से 476 तक था। आधुनिककाल कुम्भकोणमठ प्रचारक एवं मठ विद्वानों ने इस काल को क्रिस्तपूर्व प्रथम शताब्दी का होना भी निश्चित करते हैं। उक्त शङ्कराभ्युदय पुस्तक कुम्भकोणमठ का प्रामाणिक ग्रंथ है और इस पुस्तक में आचार्य शङ्कर का काल कलियुग 3889 का उल्लेख है अर्थात् 788 ई० का होना निश्चित होता है। पर कुम्भकोणमठ प्रचारक लोग अब यह भी कहने लगे कि आचार्य शङ्कर का अवतार पांच बार हुआ था और ये पांचों अवतार शङ्कराचार्य कांची मठाधीष थे और शङ्कराभ्युदय में उल्लेख किया हुआ काल पंचम अवतार शङ्कर का काल है। आत्मबोध के अनुसार आचार्य शङ्कर का काल क्रिस्तपूर्व 508 का ही है। पाठकगण स्वयं जान लें कि कुम्भकोणमठ का उत्तर कहां तक उचित व न्याय है।

शंकरविजय—व्यासाचल—पूर्व में कुम्भकोणमठ द्वारा बहुप्रचारित इस पुस्तक के बारे में अब यहां कुछ आलोचना की जाती है। इस पुस्तक के प्रकाशन पूर्व कुम्भकोणमठवालों का प्रचार तीव्र था बनिस्बत प्रकाशन के बाद। अब यह पुस्तक मदरास राजकीय पुस्तकालय द्वारा 1954 ई० में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक के संपादक राज्यकर्मचारी श्री टि. चन्दशेखरन हैं। यह नवीन व्यासाचलीय पुस्तक, नीचे दिये हुए हस्तलिपि प्रतियां जो सब अन्य प्रतियों का नकल ही हैं उनके आधार पर प्रकाशित हुआ है।

(1) मदरास राजकीय पुस्तकालय की हस्तलिपि प्रति नं 6833.

(2) मदरास राजकीय पुस्तकालय की हस्तलिपि प्रति नं 7715.

(3) तंजौर महाराजा शरभोजी के सरस्वती महाल पुस्तकालय की ताळपत्र में लिखित प्रति नं 4209.

(4) मदरास-अडयार पुस्तकालय की हस्तलिपि प्रति नं 40-A-89

(5) कुम्भकोणमठ का ताळपत्र लिखित प्रति–दो भाग–अपूर्ण ग्रंथ। प्रथम भाग 9 सर्ग के 69 श्लोक तक एवं द्वितीय भाग 9 वां सर्ग के 70 श्लोक से 12 सर्ग तक, परन्तु इसमें 12 सर्ग का 20 श्लोक नहीं हैं।

(6) कुम्भकोणमठ का कागज पर लिखित प्रति और इसमें 3 अन्तिम श्लोक नहीं हैं।

उन दिनों में तिरुपति में स्थित मदरास राजकीय पुस्तकालय को लिखकर आपके पास की प्रति नं 6833 का नकल मांगा गया था। इसके उत्तर में राजकीय पुस्तकालय का पत्र नं. R. C. 20/44 ताः 11—1—1944 से प्रतीत होता है कि प्रति नं 6833 ठीक प्रति नही है और इसमें अशुद्धियां अनेक हैं और इसके बदले प्रति नं 7715 का नकल लेने की शिफारिस की थी। आपका कहना है कि प्रति नं 7715 दूसरे किसी और एक प्रति से पुनः लिखागया प्रति है और यह प्रति नं 7715 प्रति नं 6833 का शोधित परिष्कृत्य प्रति है। इसमें 12 सर्ग हैं और यह संपूर्ण ग्रंथ में 2200 ग्रंथ हैं। जो पुस्तक 1954 ई० में 12 सर्ग के साथ प्रकाशित हुई है उसमें 1192 श्लोक हैं। इन सब विवरणों से अनुमान करना भूल न होगा कि व्यासाचल शङ्करविजय प्रति बराबर अदल बदल होते हुए परिष्कृत्य रूप में प्रतियां मिलती थी। इन सब प्रतियों का मूल (हस्तलिपि व मुद्रित) एक ही है! परन्तु इन सब प्रतियों का मूल प्रति या ग्रंथकार का चरित्र विवरण एवं काल कुछ भी अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। इस विषय पर राजकीय पुस्तकालय के विद्वान कर्मचारियों ने काफी अनुसन्धान नहीं की है एवं कुम्भकोणमठ के कृपाभाजन व मठाभिमानी विद्वानों के स्व स्व अभिप्रायों को स्वीकार कर तथा कुछ स्वतंत्र मत के विद्वानों के अभिप्रायों को परित्याग कर, पुस्तक प्रकाशित कर दिया था। जल्दी से प्रकाशित करने की क्या आवश्यकता पडी कि राज्यकर्मचारी विद्वानों ने खोजखोज करना भी छोड दिया था? विवादास्पद, सन्देहास्पद पुस्तकों पर काफी अनुसन्धान की आवश्यकता है। कहेजानेवाले व्यासाचल इस पुस्तक के रचयिता न होने का अनेक प्रमाण मिलते हैं। यह भी निश्चित ही है कि यह कहेजानेवाले नवीन व्यासाचलीय पुस्तक माधवीय का ही परिष्कृत्य प्रति है। पाठकगण कृपया पृष्ठ 199/203 देखें।

इस प्रकाशित पुस्तक का आधार दो पुस्तकें जो कुम्भकोण मठ की दी हुई प्रतियां भी हैं। तंजौर पुस्तकालय की प्रति भी कुम्भकोण मठ की प्रति ही मानना भूल न होगी चूंकि कुम्भकोण मठ के सब प्रामाणिक पुस्तकों की प्रतियां या तो कुम्भकोण मठ में हैं या तंजौर से ही प्राप्त होते हैं और इसके अन्य प्रतियां अन्यत्र नहीं उपलब्ध होते। कुम्भकोण मठ का प्रभाव 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ से मध्य काल तक तंजौर राज्य में अत्यधिक था। यह वही समय है जब प्रमाणाभास पुस्तकें तैय्यार हो कर पुस्तकालयों में रक्खा जाता था। मदरास राजकीय पुस्तकालय के दोनों प्रति कब व कहां और किसके द्वारा प्राप्त किये गये थे सो विषय मालूम नहीं होता। राजकीय पुस्तकालय पत्र द्वारा मालूम होता है कि प्रति नं 7715 एक अन्य प्रति से पुनः लिखा गया था पर वह प्रति कहां, कब और किसके द्वारा प्राप्त प्रति था सो भी मालूम नहीं होता।

कहा जाता है कि इस पुस्तक के रचयिता श्री व्यासाचल थे। इस पुस्तक के संपादक राज्यकर्मचारी श्री टि. चन्द्रशेखरन ने एक प्रस्तावना लिखी है। इस प्रस्तावना में आचार्य शङ्कर का चरित्र संक्षेप में दिया गया है। मार्के की बात है कि इस प्रस्तावना में दिया गया चरित्र विवरण व्यासाचलीय शङ्करविजय से मिलता जुलता नहीं है और कथा वही दी गई है जो आपको कुम्भकोण मठ से उनका नवीन प्रचारित कल्पित कथा प्राप्त हुई थी। प्रस्तावना में व्यासाचलीय पुस्तक में दिये चरित्र वर्णन को ही संपादक को देना न्याय व उचित था पर आपने ऐसा न

करने का कारण आप ही जानते हैं। जब आपने कुम्भकोण मठ के प्रचारित कथा के प्रकाशन अपनी प्रस्तावना में की थी तब आपको उचित था कि इस कथा की तुलना व्यासाचलीय में दिये कथा से करना था, सो भी आपने की नहीं है। अनभिज्ञ पामर लोग प्रस्तावना पढकर कांची की कथा (कल्पित) को ही यह पुस्तक समर्थन करता है ऐसा भाव से प्रभावित होने का यह एक आधुनिक प्रचार मार्ग है। इससे कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टि भी होती है। मेरे अभिप्राय में यह पक्षपात का काम है और राजकीय पुस्तकालय में ऐसा होना उचित नहीं है। पाठकगण इस विषय पर ध्यान दें कि किस प्रकार कुम्भकोण मठ अपने आडम्बर प्रभाव से अन्य व्यक्तियों द्वारा मठ का प्रचार कराता है। इस नवीन व्यासाचलीय मूल में कांची मठ का नामो निशान नहीं है परन्तु राज्यकर्मचारी ने प्रस्तावना में कांची मठ की यशोगान की है। मेरे पिता के वृद्ध मित्र ने इस पुस्तक के संपादक को अगस्त 1956 ई० में इस पुस्तक के बारे में एवं संपादक के पक्षपात कार्यों के बारे में एक संक्षेप विमर्श लिख भेजा था और उत्तर अभीतक प्राप्त न हुआ। स्वर्गीय पं. ज. ग. वि. शर्मा जी ने एक विमर्श व्यासाचलीय पर 1956 मार्च माह में लिख भेजा था और राजकीय पुस्तकालय ने इस पर भी मौन धारण कर ली थी। इन पत्रों में सप्रमाण सिद्ध किये गये थे कि संपादक ने जो कुछ स्वीकार कर लिया था सो सब भ्रामक व मिथ्या है। उत्तर न देने का कारण केवल एक ही हो सकता है कि आपके कर्तूतों की पोल न खुल जाय।

पुस्तक के संपादक लिखते हैं कि इस पुस्तक के रचयिता श्रीव्यासाचल कांची कामकोटि मठ के मठाधीष (52 वां) श्रीमहादेवेन्द्र सरस्वती 1498—1507 ई० के थे और यह विषय पं. आत्रेय कृष्ण शास्त्रीजी के कथनों के आधार पर संपादक ने मान लिया है। कुम्भकोण मठ के तीव्र प्रचारक पं. आत्रेय कृष्ण शास्त्री ने कुम्भकोण मठ को 'सर्वोच्च, सर्वोत्तम, भारत का शिरोमणि मठ व सारा भारत का महागुरु जगद्गुरु मठ' बनाने के प्रयत्न में एक पुस्तक 'जगद्गुरु श्रीशङ्कर गुरुपरम्परा' शीर्षक प्रकाशित किया है। इसमें अनेक अनर्गल मिथ्या विषय हैं जिसका विमर्श पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे। ऐसे विद्वान का कथन कहां तक सत्य माना जाय सो पाठकगण निश्चय कर लें। पुस्तक के संपादक को उचित था कि आप इस विषय पर अनुसन्धान कर पश्चात् स्वीकार करते। न मालूम कैसे श्रीमहादेवेन्द्र सरस्वती या महादेव IV का नाम व्यासाचल पडा? कुम्भकोण मठ का प्रमाण पुस्तक गुरुरत्नमाला जो कुम्भकोण मठ के कल्पित वंशावली का वर्णन करता है उस पुस्तक के 82 वां श्लोक केवल श्रीमहादेवेन्द्र सरस्वती का उल्लेख करता है न कि व्यासाचल। गुरुरत्नमाला के टीकाकार आत्मबोधेन्द्र भी अपनी टीका में व्यासाचल का नाम नहीं लिया है। सम्भवतः श्रीआत्रेय कृष्ण शास्त्री की कल्पना लोक से यह नाम निकला हो। आपका कथन है कि महादेवेन्द्र संरस्वती व्यासाचल पर्वत पर वास किये और वहीं निर्याण भये इसलिये आपका नाम व्यासाचलीय हुआ, यह उत्तर कहां तक ठीक है सो पाठकगण जान लें। पुस्तक मुद्रित होकर प्रकाशन के समय इस पुस्तक के संपादक ने एक टुकडा कागज पर कुछ प्रकाशित किया है और यह टुकडा कागज पुस्तक के साथ जिल्द भी किया गया है। प्रश्न उठता है कि क्यों नहीं प्रथम ही इस कागज में दिये विषय को अपनी प्रस्तावना में लिख दिया? सम्भवतः पुस्तक मुद्रण होने के पश्चात् आपको इस विषय पर अनेक पत्र प्राप्त हुए होंगे या आपने पश्चात् खोजखाज की होगी और अपने बचाव के लिये एक टुकडा कागज छाप कर बाद चिपकादी है। मेरे पास एक पुस्तक है जिसमें यह टुकडा कागज नहीं है। अनभिज्ञ इस पुस्तक को पढें जिसमें टुकडा कागज न हो तो संपादक के भ्रामक कथनों पर विश्वास भी हो जाय। संपादक इस टुकडे कागज पर लिखते हैं '**If what Atreya Krishna Sastri says is correct, it is rather strange that Vyasacala who was a head of the Kanchi Kamakoti Mutt, has not even mentioned by name that mutt, the life of the founder of which is**

described in this work.' संपादक लिखते हैं कि श्रीआत्रेय कृष्ण शास्त्री का कथन यदि ठीक है तो यह आश्चर्यजनक है कि व्यासाचल जिन्हें कांची मठ के मठाधीष कहा जाता है आपने कांची मठ का नाम भी इस पुस्तक में नहीं लिया है। अच्छा होता कि संपादक निडर होकर सत्य विषय को स्पष्ट लिख देते कि कांची मठ के कहेजानेवाले व्यासाचल इस पुस्तक के रचयिता नहीं हैं और आत्रेय कृष्ण शास्त्री का कथन असत्य है। व्यासाचलीय में कांची मठ का नामों निशान नहीं है। यदि वास्तव में मठ होता या मठाधीष ही रचयिता होते तो अवश्य उल्लेख करते। संपादक आगे लिखते हैं कि इस पुस्तक के रचयिता व्यासाचल के बारे में चरित्र विवरण कहीं उपलब्ध नहीं होता है अतएव चरित्र विवरण नहीं दिया जाता है। **'There are not enough details about the author Vyasachaliya either in this work or in any other works and so it would be a vain attempt to deal with his life history.'** क्या कुम्भकोण मठवाले अपने मठाधीष का विवरण नहीं जानते थे या संपादक ने क्यों कुम्भकोण मठ से पूछाताछ नहीं की थी? इसमें क्या रहस्य है? यदि संपादकजी को कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का प्रकाशन करना ही उद्देश्य था तो आपको राजकीय कोष के धन को खर्चकर व्यासाचल पुस्तक प्रकाश करना उचित व न्याय नहीं था।

वास्तव विषय तो यह है कि माधवीय ही व्यासाचलीय था पर अब एक नवीन व्यासाचलीय परिष्कृत्य रूप में माधवीय से 520 श्लोकों से अधिक लेकर एक स्वतंत्र ग्रंथ प्रचार हो रहा है। पाठकगन कृपया पृष्ठ 199/203 देखें। माधवीय शङ्करदिग्विजय के श्लोक ही व्यासाचलीय में पाया जाता है। मदरास विश्वविद्यालय संस्कृत सीरिज नं 13 'श्लोकवार्तिकव्याख्या' पुस्तक की प्रस्तावना में श्री सि. कुन्हन राजा लिखते हैं **'In a work called Sankara vijaya by Vyasacala, known also Vyasagiri and Vyasadri, the story of Sankara meeting Mandana on the direction of Kumarilabhatta is narrated. The verses are more or less taken from the work of Vidyaranya.'** आप यह नहीं कहते कि व्यासाचलीय से माधवीय में नकल किया गया है पर आप स्पष्ठ कहते हैं कि माधवीय का नकल ही व्यासाचलीय है। व्यासाचलीय में दिये हुए असम्बन्ध चरित्र विषय, अनुचित एवं अनावश्यक श्लोकों को निकाल दिया जाय तो शेष व्यासाचलीय पुस्तक माधवीय ही कहना पडेगा। केवल इतना फरक होगा कि घटनाओं का विवरण व्यासाचलीय में हेरफेर कर दिया हो। सोलह सर्ग का माधवीय जो लगभग 1850 श्लोक हैं इस पुस्तक को 12 सर्ग के व्यासाचलीय जिसमें 1200 श्लोक से कम हैं इस पुस्तक का संग्रह माधवीय होने का प्रचार करते हैं। इस 1200 श्लोक में करीब आधा माधवीय के श्लोक हैं और बाकी आधा असम्बन्ध अनावश्यक एवं अनुचित विषयों का वर्णन हैं जिसका सम्बन्ध आचार्य चरित्र से नहीं रखता है (139 श्लोक उपमन्यु की कथा, 203 श्लोक ऋतु व प्रकृति वर्णन आदि)। ऐसे नवीन कल्पित पुस्तक को माधवीय का मूल कहना केवल मूर्खता है। गुरुरत्नमाला की टीका सुषमा पुस्तक में पृष्ठ 68 में 'संक्षेप शङ्करविजय' का नाम लिया गया है। संक्षेपशङ्करविजय नाम केवल माधवीय को ही कहते हैं और आप पुस्तक का नाम लेकर रचयिता का ही बोध करते हैं। कुम्भकोण मठका कथन है कि सुषमा की रचना काल 1720 ई० का है। आत्मबोध जब व्यासाचल का नाम लेते हैं तो आप माधवीय को ही कहते हैं न कि नवीन व्यासाचल जो अब उपलब्ध होता है। माधवीय का नकल ही व्यासाचल है। गुरुरत्नमाला से भी प्राचीन पुस्तक माधवीय है और इसे आत्मबोध ने भी व्यासाचल कहा है। गोविन्दनाथ ने शङ्कराचार्य चरित्र या केरळीय शङ्करविजय में जो 'व्यासाचल कवि' का उल्लेख किया है सो माधवाचार्य को ही बोध करता है न कि कहेजानेवाले व्यासाचल यति। माधवाचार्य स्वयं अपने को व्यासाचल कहा है 'धन्यो

व्यासाचल कविवर' और टीकाकार लिखते हैं 'व्यास इवाचलः स्थिरश्चासौ कविश्रेष्ठश्चेति व्यासाचल कविवरो माधवो धन्यः।' गोविन्दनाथ का मूल व्यासाचल कहा जाता है। गोविन्दनाथ कहते हैं कि ब्रह्मा के अवतार विश्वरूप हैं पर नया कल्पित व्यासाचल ऐसा कहता नहीं है यद्यपि माधवीय ऐसा ही उल्लेख करता है। गुरुरत्नमाला एवं टीकाकार आत्मबोधेन्द्र ने श्रीविश्वनाथ को चान्डाल रूप में आचार्य शङ्कर के पास आने का वृत्तान्त कहा है और टीकाकार कहते हैं कि यह विषय 'विस्तृतमिदं व्यासाचलीये'। पर नवीन व्यासाचलीय में इस घटना का उल्लेख नहीं है और माधवीय सर्ग 6 में यही श्लोक दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि व्यासालीय अर्थात् माधवीय ही है जिसे आत्मबोधेन्द्र ने उल्लेख किया है न कि कहेजानेवाले ननीन व्यासाचलीय। माधवीय के टीकाकार भी इसी विषय की पुष्टी टीका में की है। गुरुरत्नमाला श्लोक 18 कहता है कि शङ्कर के पिता ने उपनयन किया था और पश्चात् आपका देहान्त हुआ। नवीन व्यासाचलीय उपनयन पूर्व ही मरने का वृत्तान्त देता है। इस विषय का विवरण व्यासाचलीय श्लोक और माधवीय चतुर्थ सर्ग का ग्यारहवां श्लोक दोनों समान हैं। नवीन प्रकाशित व्यासाचलीय भी यही श्लोक देता है पर कुछ शब्दों का अदलबदल किया गया है। इससे भी स्पष्ट मालूम होता है कि माधवीय ही व्यासाचलीय है। गुरुरत्नमाला श्लोक 18 के टीका में सुषमा में आत्मबोधेन्द्र ने अनुपलब्ध पुस्तक जो केवल नाम मात्र सुना जाता है 'बृहच्छङ्कर विजय' एवं 'प्राचीन शङ्करविजय' के कहेजानेवाले पक्तियों को उद्धरण कर गुरुरत्नमाला की पुष्टी करते हैं और आत्मबोध आचार्यविजय, शिवरहस्य, केरळीय शङ्करविजय, व्यासाचलीय को मिथ्या ठहराते हैं। ये सब पुस्तक पिता का देहान्त उपनयन पूर्व बतलाता है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कुम्भकोण मठाधीष व्यासाचल ने इस ग्रंथ को लिखा था सो मिथ्या है। यह भी मिथ्या है कि व्यासाचलीय से ही माधवीय के श्लोक लिये गये हैं चूंकि माधवीय ही व्यासाचलीय कहा जाता था।

नवीन व्यासाचलीय के संपादक ने आचार्य शङ्कर के चरित्र सामग्री प्राप्त होनेवाले पुस्तकों की सूची दी है जिसे मैं नीचे उद्धृत करता हूं। इस सूची के साथ अपनी टिप्पनी भी देता हूं ताकि पाठकगण यथार्थ जान लें कि क्या कांची में आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित मठ था या नहीं।

(1) शङ्करविजय—(काव्यचम्पू)—श्री भगवदानन्दगिरि—74 प्रकरण—पाठकगण इस पुस्तक पर विमर्श इस अध्याय में पूर्व ही पढ चुके होंगे। इस अग्राह्य ग्रंथ में भी कांची में आम्नायानुसार धर्मराज्य केन्द्र (मठ) की स्थापना आचार्य शङ्कर द्वारा उल्लेख नहीं है। कुम्भकोणमठ के परिष्कृत्य प्रति में ही कांची में मठ होने का उल्लेख है और अन्य मुद्रित व अमुद्रित प्रतियां जो प्राचीन मूल की प्रति है उसमें कांची में मठ का उल्लेख नहीं है।

(2) शङ्करविजयविलास—चिद्विलास—32 अध्याय—स्पष्ट रूप से चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख है और कांची में मठ स्थापना का उल्लेख नहीं है।

(3) संक्षेपशङ्करविजय—माधवाचार्य—16 सर्ग—चार मठ का संकेत किया है और मूल में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि यह माधवाचार्य द्वारा रचित नहीं है और इस पुस्तक को अनादरणीय ठहराने की चेष्टा में कीचड फेंका जा रहा है। नवीन व्यासाचल के संपादक लिखते हैं '**Its author is Madhava and it consists of sixteen sargas.**'

(4) शङ्कराचार्यचरित्र—गोविन्दनाथ—9 अध्याय—कांचीं में आम्नाय मठ का उल्लेख नहीं है।

(5) आचार्यदिग्विजय—वल्लिसहाय—काव्य चम्पू अपूर्णग्रन्थ—इस अपूर्ण ग्रन्थ में भी कांची में मठ का उल्लेख नहीं है।

(6) शङ्करविजय—व्यासाचल—12 सर्ग—कांची में मठ का उल्लेख ही नहीं है। यह नवीन व्यासाचलीय पुस्तक प्राचीन माधवीय का एक परिष्कृत्य प्रति है। माधवीय को ही व्यासाचलीय कहा जाता है।

(7) शङ्करविजय—केरल भाषा—(आचार्य चरित्रम् रचयिता नीलकण्ठ नम्बी)—कांची में मठ होने का उल्लेख नहीं है।

(8) शङ्कराभ्युदयम्—राजाचूडामणिदीक्षित—6 सर्ग—यह अपूर्ण ग्रन्थ 6 सर्ग का 'सहृदया' में प्रकाशित था और सातवां व आठवां सर्ग कुम्भकोण मठ से दिया गया था। कांची में मठ होने का उल्लेख नहीं है।

(9) बृहच्छङ्करविजय—चित्सुखाचार्य—कुम्भकोणमठ द्वारा प्रचारित पुस्तक आपके मठ में भी उपलब्ध नहीं है और द्वारका मठ में चित्सुखाचार्य 'शङ्करसत्पथ' उपलब्ध है जिसमें कांची में मठ होने का उल्लेख नहीं है। बृहच्छङ्करविजय संपूर्ण ग्रन्थ कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

(10) शङ्करदिग्विजयसार—सदानन्दव्यास—इस पुस्तक का मूल माधवीय है। कांची में मठ का उल्लेख नहीं है।

(11) शङ्करविजयसंग्रह—पुरुषोत्तम भारती
(12) शङ्कराभ्युदय—तिरुमल दीक्षित
(13) शङ्कराचार्य चरित्र—अनन्त कवि
(14) श्री शङ्करदिग्विजयसार—गोविन्दाचल

[ये सब पुस्तकें आधुनिक काल के हैं। मैं ने अभीतक इन पुस्तकों को पढा नहीं है। इससे प्राचीन उपलब्ध पुस्तकों में कहीं भी कांची में मठ का उल्लेख न होने से और ये अर्वाचीन पुस्तक सब इन्हीं प्राचीन पुस्तकों के आधार पर लिखे जाने के कारण अनुमान किया जाता है कि इन पुस्तकों में भी कांची में मठ की स्थापना का उल्लेख नहीं होगा। पाठकगणों को उपलब्ध हो तो वे स्वयं पढकर यथार्थ विषय जान लें।]

(15) श्री शङ्करदिग्विजयसार—श्री व्रजाराज—कांची में मठ का उल्लेख नहीं है।

कुम्भकोण मठ का स्वभाव है कि जहां कहीं कांची का उल्लेख पाते हैं उसी पुस्तक को प्रमाण में दिखाते हैं। इनमें से कुछ ऐसे पुस्तक भी हैं जो श्रेष्टों को ग्राह्य नहीं है और आचार्य शङ्कर का चरित्र वर्णन निन्दीय व द्वेष से लिखा हुआ है। आचार्य शङ्कर का कांची गमन, कांची में कुछ काल वास, मन्दिर व नगर निर्माण, कामाक्षी देवी की उग्रता शान्ति, श्रीचक्र पुनः प्रतिष्ठा, कामाक्षी पूजा से ब्रह्मानन्द प्राप्त, कांची में योगलिङ्ग प्रतिष्ठा, कांची में तपस्सिद्धि प्राप्त, कांची में सर्वज्ञ पीठारोहण, कांची में तनुत्याग आदि विषयों का वर्णन भिन्न भिन्न प्रामाणिक, अप्रामाणिक, अग्राह्य, परिष्कृत्य, स्वरचित एकङ्गि, कल्पित पुस्तकों में पाये जाते हैं। इसके आधार पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की भी प्रतिष्ठा की थी। कामकोटि पीठ आचार्य शङ्कर के पूर्वकाल से ही कांची

में है इस पीठ की अधीधी श्रीकामाक्षी हैं। पीठ होने मात्र से आम्नायानुसार धर्मराज्यकेन्द्र (मठ) का होना या वहां प्रतिष्ठा करने की आवश्यकता भी नहीं है। आचार्य शङ्कर ने मठों की प्रतिष्ठा आम्नायानुसार करके धर्मराज्यकेन्द्रों की प्रतिष्ठाकर और इन केन्द्रों के मठों का संप्रदाय, नियम, आचार, वेद, महावाक्य, अनुशासन सीमा आदि निश्चितकर तथा स्वरचित मठाम्नाय और अनुशासन से बद्ध किया था। इस दृष्टि से देखा जाय तो कांची में आम्नायानुसार मठ की स्थापना आचार्य शङ्कर ने नहीं की थी। साधारण निवासस्थल भी व्यवहार में मठ कहा जाता है पर प्रश्न है कि क्या ये सब निवास स्थल मठों को मठाम्नाय एवं महानुशासन लागू होते हैं? आचार्य शङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा में अनेक तीर्थ क्षेत्र, देव देवी मन्दिर, पीठस्थान भी गये और अनेक जगह कुछ काल वास किये तो क्या कहाजाय कि ये सब निवासस्थल आम्नाय मठ हैं? पामरजन इन विषयों की अनभिज्ञता से कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों को स्वीकार कर लेते हैं।

व्यासाचलीय पुस्तक के संपादक प्रस्तावना में लिखते हैं कि माधवीय कृत संक्षेपशङ्करविजय में इस व्यासाचलीय पुस्तक की प्राचीनता का उल्लेख है। आप लिखते हैं **'The fact that the work is very ancient is attested by Sri Madhavacharya in his introductory chapter of the Samkshepa Sankaravijaya.'** इसका आधार माधवीय में यह श्लोक होने का उल्लेख करते हैं 'व्यासाचल प्रमुखपूर्विक पण्डितक्ष्माभृत्संभृतोचतर काव्यतरोः सुगूढात्। विद्वन्मधुव्रतसुखोरुरसानि सर्वाण्यादातुमय कुसुमान्यहमक्षमोऽस्मि।' पूना से चार संस्करण 1863 ई० से माधवीय प्रकाशित हुआ है एवं कल्याणपुरि, मदरास, काशी अहमदाबाद आदि स्थलों से भी माधवीय प्रकाशित हुआ है और इन सब प्रतियों में यह श्लोक पाया नहीं जाता। माधवीय के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधनपतिसूरि 'डिण्डिम' ने 1799 ई० में एवं पं. अच्युतराय अद्वैतराजलक्ष्मी टीकाकार ने 1824/25 ई० भी ऐसा एक श्लोक पुस्तक में उपलब्ध होने का विषय भी उल्लेख नहीं किया है। माधवीय पर टीका अन्य विद्वानों से भी—गुजराती, माराठी, तामिल, तेलुगू, संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं—किया गया है। इन टीकाकारों ने भी इस श्लोक का होने का विषय कहा नहीं है। अमुद्रित प्रतियां जो काशी, पूना, बडोदा, मदरास, तिरुपति, कल्याणपुरी, पूरी, द्वारका, लाहौर आदि स्थलों में प्राप्त होते हैं इनमें भी यह उक्त श्लोक पाया नहीं जाता। मदरास राजकीय पुस्तकालय के हस्तलिपि प्रतियां **D 12174** में ही केवल उक्त श्लोक पाया जाता है। इस प्रति का विमर्श पाठकगण इसी अध्याय में माधवीय शङ्करविजय शीर्षक विमर्श में पायेंगे। प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि व्यासाचलीय की महत्ता बढाने के लिये ही यह नवीन कल्पित श्लोक पुस्तक में जोड दिया गया है। आश्चर्य का विषय है कि माधवीय प्रतियां जो साधारण तौर पर लगभग 200 वर्षों से उपलब्ध हैं उन सब प्रतियों को विना देखे और इस विषय पर काफी अनुसन्धान न करते हुए तथा प्रति नं **D 12174** जो केवल एक ही प्रति में यह श्लोक क्षिप्त है और जो सन्देहास्पद प्रति है इस पर आधार कर इस राज्यकर्मचारी व्यासाचलीय के संपादक ने प्रस्तावना में ऐसे विवादास्पद विषय को लिखकर पाठकों में भ्रम उत्पन्न करना उचित न था। यदि आपको कुम्भकोण मठ का प्रचार करना था व यशोगान करना था तो क्यों आपने राज्यकोष से खर्च कर पुस्तक छपवाई? क्या मदरास राज्य प्रइवेट व्यक्तियों के प्रचारक का काम भी करते हैं?

यह माधवीय हस्तलिपि प्रति जो राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है इसमें और दो श्लोक भी जोडे गये हैं। उक्त श्लोक की तरह यह दोनों श्लोक अन्यत्र उपलब्ध मुद्रित व अमुद्रित पुस्तकों में पाया नहीं जाता। एक श्लोक में रचयिता के गुरु महेश्वर का नाम उल्लेख है। माधवीय का प्रारम्भिक प्रथम श्लोक जो इस हस्तलिपि में भी पाया जाता

है इसमें रचयिता स्पष्ठ अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ जो परमात्मा स्वरूप हैं आप का नाम लेते हैं — 'प्रणम्य परमात्मानं श्री विद्यातीर्थ रुपिणम्।' इस क्षिप्त श्लोक के आधार पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि माधवाचार्य के गुरु महेश्वर हैं पर अन्य प्रमाण सिद्ध करते हैं कि माधवाचार्य के गुरु श्री विद्यातीर्थ थे, अतएव यह माधवाचार्य द्वारा रचित नहीं है। जिसप्रकार व्यासाचल की महत्ता बढाने एक श्लोक जोडा गया है उसी प्रकार माधवीय की महत्ता घटाने के लिये ये दोनों श्लोक जोडे गये हैं। मदरास राजकीय पुस्तकालय की प्रति में केवल ये तीन श्लोक क्षिप्त हैं पर शेष सब पुस्तक अन्यत्र उपलब्ध पुस्तकों के समान ही हैं। इसी से सिद्ध होता है कि स्वप्रचार की पुष्टी में प्रमाणाभास तैय्यार किये गये थे। उक्त माधवीय प्रति राजकीय पुस्तकालय में कब व कहां से पहुंचा और किसने दिया था या इसका लेखन काल कब था, सो सब मालूम नहीं होता।

नवीन व्यासाचल पुस्तक के संपादक लिखते हैं कि गोविन्दनाथ कृत शङ्कराचार्य चरित्र में व्यासाचल का महत्ता बतलाया है — 'सर्वागमास्पदं वन्दे व्यासाचलमिमं कविम्। बभूव शङ्कराचार्य कीर्ति कल्लोलिनी यतः।' इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह व्यासाचल कवि ही हैं न कि व्यासाचल यति जिनको व्यासाचल पुस्तक के संपादक ने कुम्भकोण मठाधीश होने का कथा पहिले ही सुना गये हैं। क्या व्यासाचल यति ही व्यासाचल कवि हैं? गोविन्दनाथ का व्यासाचळ कवि ही माधवाचार्य हैं चूंकि माधवाचार्य अपने को व्यासाचळ कवि भी कहा है।

गोविन्दनाथ आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल तिरुचूर (केरळ राज्य) बतलाते हैं और श्री पद्मपाद को केरळीय कुन्दा ग्रामवासी बतलाते हैं जब सब को विदित है कि आप चोळदेश वासी थे। गोविन्दनाथ ने केरळ की महत्ता बढाने और अपनी सीमा के साथ प्रेम होने के कारण इन विषयों का उल्लेख किया है। व्यासाचलीय ने मण्डण मिश्र एवं विश्वरूप को भिन्न व्यक्ति माना है पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि विश्वरूप यम के अवतार थे और मण्डण मिश्र ब्रह्मा के अवतार थे। माधवाचार्य ने माधवीय में इन दोनों व्यक्तियों को अभिन्न माना है और ब्रह्मा का अवतार कहा है। गोविन्दनाथ ने मण्डण मिश्र का नाम नहीं लिया है पर कहा है कि विश्वरूप ब्रह्मा के अवतार थे और सरस्वती का अवतार व्यक्ति के पति थे। यदि कुम्भकोण मठ का कथन मान लें तो सरस्वती अवतार व्यक्ति को यम के अवतार व्यक्ति के पत्नि होने का भी मानना पडेगा। गोविन्दनाथ का व्यासाचल कवि माधवाचार्य ही हैं औरआप अपनी पुस्तक में अनेक जगह माधवीय का ही अनुकरण किया है।

माधवीय शङ्करविजय के प्रथम सर्ग 17 वां श्लोक की टीका को यदि ध्यानपूर्वक पढें तो उन्हें स्पष्ठ मालूम होगा कि व्यासाचल अन्य व्यक्ति न थे पर माधव को ही व्यासाचल कहा गया है। पर कुम्भकोणमठ के कृपाभाजन विद्वान श्री पोलगम रामा शास्त्री एवं व्यासाचलीय के संपादक मदरास राज्यकर्मचारी ये दोनों माधवीय श्लोक 17 के आधार पर प्रचार करते हैं कि व्यासाचल और माधव दोनों भिन्न व्यक्ति हैं और व्यासाचल माधव के पूर्व थे। यह असत्य प्रचार है। माधवीय मूल श्लोक का सारांश है 'धन्य है व्यासाचल कवि जो इस काव्य के रचयिता हैं, जहां चरित्रनायक भगवत्पाद हैं, जिनका प्रधान भाव शान्ति है और जिसके फलाभून अविद्या का नाश होता है और वे धन्य हैं जो इसे सीखते हैं।' यहां तो माधव और व्यासाचल को भिन्न व्यक्ति कहा नहीं है। इस श्लोक के बाद माधवीय में यों उल्लेख है 'तत्रादिम उपोद्घातो द्वितीये तदुद्भवः' आदि श्लोकों के पश्चात् अन्त श्लोक है 'इति षोडशभिस्सर्गैव्युत्पाद्या शाङ्करीकथा।' अर्थात् 'उसमें, प्रथम अध्याय उपोद्घात है, उनका जन्म विवरण द्वितीय में है ... ... इस प्रकार श्री शङ्कर की कथा सोलह अध्यायों में वर्णित हैं।' इन श्लोकों से स्पष्ट व निस्सन्देह मालूम होता है कि जो काव्य पूर्व

श्लोक में कहा गया है वह माधवीय है। 'तत्र' का अर्थ व्यासाचलीय कहना ठीक नहीं जमता क्यों कि व्यासाचलीय में केवल 12 सर्ग हैं और विवरण यहां 16 अध्यायों का ही दिया गया है। कुम्भकोणमठ का प्रचार भ्रामक व असत्य है। अतः 'तत्र' 'उसमें' शब्द का अर्थ माधवीय ही है। कुम्भकोणमठ की पुस्तक सुषमा के रचयिता आत्मबोधेन्द्र ने स्वयं स्वीकार किया है कि माधव ही व्यासाचलकवि हैं चूंकि आपने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 27 से 29 तक 27 श्लोकों को जो माधवीय सर्ग 6 के 25 से 49 और 51/52 श्लोक हैं उसे व्यासाचल के श्लोक कह कर उद्धृत किया है। पर प्रकाशित नवीन व्यासाचलीय में ये श्लोक पाये नहीं जाते। कुम्भकोणमठ का प्रचार करनेवाला मासिक पत्रिका कामकोटिप्रदीपम में (1960/61 ई०) यह प्रचार किया गया है कि प्रकाशित व्यासाचलीय में 27 श्लोक छोड दिये गये हैं जो व्यासाचलीय का होना श्री आत्मबोध ने कहा है और नवीन व्यासाचलीय के संपादक से प्रार्थना की गयी है कि आप जब दूसरा संस्करण प्रकाशित करें तो इस 27 श्लोकों को भी मूल पुस्तक में जोड लें। मैं ने एक विश्वसनीय व्यक्ति से सुना है कि नवीन व्यासाचलीय का दूसरा संस्करण प्रकाश होने वाला है और सम्भवतः व्यासाचलीय में अब इन 27 श्लोकों को भी मूल में जोड लिया जायगा। जिसप्रकार राज्यकर्मचारी ने बिना पूर्ण अन्वेषण किये स्वार्थी विद्वानों के प्रचार से प्रभावित होकर पुस्तक की प्रकाशन किया है उसीप्रकार पुनः इन्हीं के प्रभाव से दब कर 27 श्लोक जोड भी लें तो मुझे आश्चर्य न होगा। करीब 150 सालों से कुम्भकोणमठ से किये गये प्रचारों का पूर्ण विवरण मेरे पास है और आपके काले कर्तूतों का विवरण भी मेरे पास है। उक्त 27 श्लोक माधवीय-व्यासाचल का ही है और न मालूम किस आधार पर कहेजानेवाले एक स्वतंत्र नवीन व्यासाचलीय में इसे जोडा जा सकता है। मदरास राजकीय पुस्तकालय ने कुम्भकोणमठ से एवं अन्यत्र प्राप्त प्रतियों के आधार पर प्रथम संस्करण प्रकाशित किया है जिसमें ये 27 श्लोक पाये नहीं जाते और अब किस आधार पर इसे जोड लिया जा सकता है? मदरास राजकीय पुस्तकालय अधिकारियों से प्रार्थना है कि इस विषय पर पूर्ण अन्वेषण किये बिना कुम्भकोणमठ के प्रभाव में दबकर भ्रामक व असत्य प्रचार न करें।

व्यासाचलीय संपादक लिखते हैं कि केरळीय शङ्करविजय में व्यासाचल रचयिता का यशोगान किया है और आपने यह श्लोक उद्धृत किया है 'अत्युन्नतस्य काव्यद्रोर्व्यासाचलमहीरुहः। अर्थप्रसूनान्यादातुमसमर्थोऽहमद्भुतम्।' परन्तु यह श्लोक तो गोविन्दनाथ कृत शङ्कराचार्य चरित्र में ही दीखता है। संपादक ने दो बार दो पृथक नाम से (गोविन्दनाथ कृत शङ्करचरित्र व केरळीय शङ्करविजय) श्लोकों को उद्धृत करने से प्रतीत होता है कि दो पुस्तकों में व्यासाचल का यशोगान हुआ है पर वास्तव में ये दोनों उद्धृत श्लोक एक ही पुस्तक में पाया जाता है। न मालूम किन कारणों से नवीन व्यासाचल के संपादक भी पाठकगणों को भ्रम में डाल रहे हैं। पूर्व कथित पुस्तक में व्यासाचल कवि का उल्लेख है न कि व्यासाचल यति और अब यह उद्धृत श्लोक भी उसी से सम्बन्ध रखता है।

माधवीय सर्ग 2 के 47 श्लोक जो शिवगुरु की धर्मपत्नी अपने पति से कहती है वह यों है 'भक्तेप्सितार्थपरिकल्पन कल्पवृक्षं देवं भजाव कमितः सकलार्थ सिद्ध्यै। तत्रोपमन्युमहिमा परमं प्रमाणं ने देवतासु जडिमा जडिमा मनुष्ये।' नवीन व्यासाचलीय सर्ग 1 का 42 श्लोक यों है 'इतीरिते प्राह तदीयभार्या शिवाख्यकल्पद्रुमाश्रयावः। तत्सेवनातो भविताऽधुनाऽथ फलं स्थितं जङ्गमरूपमैशम्।' और सर्ग 4 का प्रथम श्लोक यों है 'एवं फलप्रदमुनीश्वरमीश्वराणां ईशं भजाव किमितः सकलार्थ सिद्ध्यै। तत्रोपमन्युमहीमा परमं प्रमाणं नो देवतासु जडिमा जडिमा मनुष्ये।' इससे स्पष्ट मालूम होता है कि माधवीय सर्ग 2 के 47 वां श्लोक को विभाजित किया गया है और नवीन व्यासाचलीय में इन दोनों भागों के बीच में पूर्ण सर्ग 2 और सर्ग 3 हैं जहां उपमन्यु की कथा वर्णित है। कुल 139 श्लोक हैं। आचार्य शङ्कर को भगन्दर का रोग होना और आपके शिष्य अपने गुरु की चिकित्सा कराने की आज्ञा प्राप्त करना एवं

शिष्यवर्ग वैद्यराज की खोज में वहां से चल पडना आदि विषयों का उल्लेख है। कथा के इस परिस्थिति में इस नवीन व्यासाचल पुस्तक में स्वाभाविक मनोरमा की मनभावन वर्णन; सूर्यउदय; गिरि व अरण्य वर्णन; समुद्रवर्णन; ऋतुओं का वर्णन; चांदनी का वर्णन; रतोत्सव आदि का वर्णन 113 श्लोकों में किया है। पुनः सर्ग 11 में वर्षा, हेमन्त, शिशिर, आदि ऋतुओं का वर्णन करीब 90 श्लोक हैं। इस नवीन व्यासाचलीय के रचयिता ने कथा के पूर्वापर संदर्भ का ध्यान न देकर अपनी कल्पना शक्ति के भन्डार 203 श्लोकों में दिखाई है। नवीन व्यासाचलीय के रचयिता ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति मनोरमा का वर्णन इन श्लोकों में किया है और जब आपने नवीन व्यासाचलीय की रचना करने लगे तो इन स्वतंत्र श्लोकों को इस पुस्तक में जोड दिया हो। पूर्वापर कथा सम्बन्ध बिना इन श्लोकों को यहां जोड देने का और कोई कारण हो नहीं सकता। मैं ने आन्ध्र देश के एक विद्वान से सुना है कि ये सब श्लोक भी क्षिप्त हैं चूं कि आपने इन श्लोकों को किसी एक काव्य में पूर्व ही पढ चुके थे। दुःख का विषय है कि इस पन्डित से इसका विवरण प्राप्त करने पूर्व ही आपका देहान्त हो गया और आपने उस काव्य पुस्तक का नाम न दे पाये। इस विषय पर अन्वेषण की आवश्यकता है।

आचार्य शङ्कर एक ओर अस्वस्थ पडे हैं और दूसरी ओर वैद्यराज की खोज में गये हुए आपके शिष्य पूर्ण एक वर्ष तक (क्यों कि सब ऋतुओं का वर्णन हुआ है) अपने गुरु के प्रति अपना अपना धर्म व कर्म को भूलकर आनन्द निमग्न देश संचार करने लगे हैं। यह घटना कथा के पूर्वापर संदर्भ के साथ बिलकुल जमता नहीं है। क्या यह सम्भव है कि एक अद्वितीय अवतार महान्पुरुष एक तरफ रोग से पीडित कायक्लेष भोग रहे हैं और दूसरी ओर आपके शिष्य एक वर्ष तक गुरु को भूल कर मौज उडा रहे हैं। मालूम पडता है कि रचयिता साधारण व्यक्ति है जो आचार्य शङ्कर के महत्ता को जानते ही नहीं हैं। क्या ये सब भाग 'व्यासाचल यति' ही से रचित हैं जिनका यशोगान इस नवीन व्यासाचलीय के संपादक ने गायी है। इस पुस्तक के संपादक ने इसे 'सर्वोत्तम' पुस्तक कहा है। भिन्न पुरुष के भिन्न रुचि होती है। किसी ने ठीक ही कहा है '**Appreciation differs with tastes as well as with faculties and habits of thought**' 1961/62 ई० में इस नवीन व्यासाचलीय (1954 ई० में प्रकाशित) के बारे में कुछ पत्रिकाओं में (जो कुम्भकोण मठ के यशोगान करते हैं और आपके भ्रामक प्रचारों की प्रकाशन करते है) विमर्श प्रकाशित हुए हैं जो सब यथार्थ विषय को छिपाकर कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी करते हैं। दूसरे महायुद्ध में डा. गोबल (जर्मन देश नेता) ने कहा था कि यदि असत्य का प्रचार बारबर सैकडों दफा किया जाय तो यही असत्य अन्त में सत्य कहलाता है। सम्भवतः इसी मार्ग का अवलम्बन अब यहां भी हो रहा हो।

नवीन व्यासाचलीय में कृष्णकाय ब्राह्मण रूप में आये श्री व्यास के साथ आचार्य शङ्कर का विवाद होने के पश्चात् ही श्री पद्मपाद का आचार्य शङ्कर से मिलन का वर्णन है पर अन्य सब प्रामाणिक पुस्तक श्री पद्मपाद की उपस्थिति इस विवाद बीच में उल्लेख करता है। व्यासाचलीय में आचार्य शङ्कर की मां का देहान्त वर्णन पहिले ही है जो कथा संदर्भ में जमता नहीं है। व्यासाचलीय सर्ग 6 में वर्णन है कि आचार्य शङ्कर विश्वरूप के घर में भिक्षा के लिये बैठते हैं और उभयभारती परोसती हैं। इस श्लोक के पश्चात् 70 श्लोक हैं जो उभय भारती का वर्णन है और इसके पश्चात् उभयभारती शङ्कर के हाथ आपोचन देती है। भोजन के लिये बैठना तत्पश्चात् 70 श्लोक के बाद आपोचन देना जंचता नहीं है। श्री सुरेश्वराचार्य सन्यासाश्रम जब ली थी उसी समय व्यासाचलीय में कहा गया है कि आचार्य शङ्कर ने सुरेश्वराचार्य को भाष्य पर वार्तिक लिखने को कहा। यह सम्भव नहीं है कि आचार्य शङ्कर विश्वरूप को सन्यासाश्रम देकर तुरन्त ही भाष्य पर वर्तिक लिखने को कहा जब सुरेश्वराचार्य ने शङ्कर भाष्य का अध्ययन भी न की

थी। व्यासाचलीय में श्री पद्मपाद को इनके मामा से जहर खिलाने का वर्णन कर वहां समाप्त की है। उस विष से यदि उनका बुद्धि भ्रष्ठ एवं मन्द हो गया हो तो 'पञ्चपादिका' का होना असम्भव है। माधवीय के अन्य श्लोक जो इस विवरण के पश्चात् कहता है कि आचार्य शङ्कर के आशीष से श्री पद्मपाद की बुद्धि तीव्र होगई और पश्चात् आपने स्मरण कर पुनः पद्मपादिका लिख डाली सो कथा नवीन व्यासाचलीय ने उद्धृत नही किया है। अब पाठकगण जान लें कि माधवीय का नक़ल नवीन व्यासाचलीय है या नवीन व्यासाचलीय ही माधवीय का मूल है जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। माधवीय से 520 श्लोकों से अधिक उद्धृत कर, घटनाओं का वर्णन हेरफेर कर, असम्बन्ध अनावश्यक विषयों का उल्लेख कर (जो करीब 500 श्लोक हैं), माधवीय का नवीन परिष्कृत्य प्रति तैय्यार कर, अब व्यासाचलीय के नाम से प्रचार हो रहा है। संपादक जी लिखते हैं कि यह सर्वोत्तम पुस्तक है। इसका निर्णय पाठकगण स्वयं कर लें। आश्चर्य का विषय तो यह है कि ऐसे 'सर्वोत्तम पुस्तक' में भी यह नहीं कहा है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की थी। कांचीमठ का नामो निशान नहीं है।

माधवीय, सदानन्दीय व अन्य प्रामाणिक पुस्तकें काश्मीर में ही सर्वज्ञपीठारोहण का उल्लेख करता है। पश्चात् काल के मुसलमानों ने इसे 'तख्त-ई-सुलीमीन' के नाम से पुकारते थे। काश्मीर देश का इतिहास भी इसी विषय की पुष्टी करती है। आचार्य शङ्कर का कैलास गमन भी हिमालय के केदार सीमा से ही हुआ था। परन्तु चिद्विलास ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण सदृश पीठ पर आरोहण करने का वर्णन करता है और हिमालय के वदरी सीमा में गुहा प्रवेश का वर्णन किया है। नवीन व्यासाचलीय भी काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण का उल्लेख करता है और उसी सीमा से कैलास गमन का भी वर्णन है। व्यासाचलीय सर्ग 12 का 82 श्लोक यों है 'एवं निरुत्तरपदां स विधायदेवीं सर्वज्ञपीठमधिरुह्यननन्द सभ्यः। मात्रा गिरामपि तथा पुरुषैश्च सभ्यैः संभावितोरुचितदेशमयं जगाम।' इस उपर्युक्त श्लोक का प्रथम पंक्ति माधवीय सर्ग 16 श्लोक 87 ही उद्धृत किया गया है। 'सुषमा' के रचयिता आत्मबोधेन्द्र ने जानबूझकर इस श्लोक को अदलबदल किया है ताकि पामर जन जान लें कि आचार्य शङ्कर ने कांची में अपनी निजमठ की स्थापना की थी और वहीं सर्वज्ञपीठारोहण भी किया। इस उद्देश्य से व्यासाचलीय सर्ग 12 के 82 श्लोक को आपने यों बदल दिया था 'एवं निरुत्तरपदां स विधायदेवीं सर्वज्ञपीठमधिरुह्य मठेस्वक्लृप्ते। मात्रागिरामपि तथोपगतैश्च मित्रैः संभावितः कमपि कालमुवास काञ्च्याम्।' क्या एक परिव्राजक को ऐसे काले कर्तूत का दायित्व ठहरा सकते हैं? मेरा अभिप्राय है कि यह कार्य एक परिव्राजक का नहीं है। पापभयरहित साधारण व्यवहारिक व्यक्ति जो लोभी, स्वार्थी व अहंकारी है उसके इस दुष्कर्म पर परिव्राजक श्री आत्मबोधेन्द्र का नाम देकर प्रचार किया जाता है। अपनी इष्ठ सिद्धि प्राप्त करने के लिये मूल श्लोक को बदल दिया ('ननन्दसभ्यः' के जगह 'मठेस्वक्लृप्ते' और 'रुचिरदेशमयं जगाम' के जगह 'कमपि कालमुवास काञ्च्याम्'।) और कह दिया कि व्यासाचल शङ्करविजय कुम्भकोणमठ के प्रचारों की पुष्टी करती है पर कहेजानेवाले आत्मबोध भूल गये कि व्यासाचलीय स्पष्ठ सर्वज्ञपीठारोहण काश्मीर का ही उल्लेख करता है न कि कांची। यदि आपका क्षिप्त श्लोक यथार्थ है तो आप इस व्यासाचलीय श्लोक 30/31 जो आपके कथन का विरोध करता है उसके उत्तर में क्या जवाब दे सकते हैं? सर्वकाल सबों पर धूल फेंका नही जा सकता है। व्यासाचलीय श्लोक जो काश्मीर मे ही सर्वज्ञपीठारोहण का उल्लेख करता है वह इस प्रकार है 'काश्मीराख्यं मण्डलं तत्र शस्तं यत्रास्ते सा शारदा वागधीशा। द्वारैर्युक्तं मण्डपैः सचतुर्भिः देव्या गेहं यत्र सर्वज्ञपीठम्।' यह श्लोक माधवीय सर्ग 16 का 55/56 श्लोक ही है।

नवीन व्यासाचलीय के संपादक लिखते हैं कि आपको पोलगम श्रीरामा शास्त्री ने (कुम्भकोण मठ के 'सर्वज्ञ' विद्वान, आपने हाल ही में मासिक पत्रिका कामकोटि प्रदीपम में अपनी लेखनी चातुर्यता से स्वेच्छावाद पर,

आधार कर एकङ्गि प्रमाणाभास पुस्तकों से श्लोकों व पंक्तियों को उद्धरण कर कुम्भकोण मठ को सर्वोच्च सर्वोत्तम यति-सम्राट बनाने का भगीरथ प्रयत्न किया था) गुरुरत्नमाला की टीका 'सुषमा' पुस्तक (आत्मबोधेन्द्र रचित) दी थी और यहां आपने देखा कि गुरुरत्नमाला के 33 वां श्लोक की टीका में टीकाकार श्रीआत्मबोधेन्द्र ने व्यासाचलीय के 12 वें सर्ग से 5 श्लोक उद्धृत किया है। आगे आप कहते हैं कि इनमें से एक श्लोक प्रकाशित व्यासाचलीय में उपलब्ध है और चार श्लोक प्रकाशित पुस्तक में पाया नहीं जाता। संपादकजी ने कहा कि एक श्लोक प्रकाशित प्रति में है पर यह नहीं कहा कि वह प्रकाशित श्लोक को अदल बदल कर अपने प्रचारों की पुष्टी करने के लिये क्षित श्लोक को श्रीआत्म-बोधेन्द्र ने उद्धृत किया है। इस श्लोक का विवरण पाठकगण ऊपर के पारा में पायेंगे। संपादकजी के पास दोनों प्रतियां (सुषमा एवं व्यासाचलीय) थी और आप सत्य विषय का प्रकटन कर सकते थे। न मालूम क्यों ऐसा न कर, आपने श्रीआत्मबोधेन्द्र की पुस्तक की महत्ता बढाने के लिये अथवा कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टी के लिये कह दिया कि उद्धृत श्लोकों में से एक श्लोक प्रकाशित पुस्तक में पाया जाता है ताकि अनभिज्ञ पामरजन भ्रम में पड जांय। आत्मबोधेन्द्र से उद्धृत और चार श्लोक जो सर्वज्ञात्म श्रीचरणेन्द्र की नियुक्ति, श्रीसुरेश्वर का आपके (सर्वज्ञात्म) ऊपर निगरानी, आदि विषयों का उल्लेख है सो चार श्लोक प्रकाशित व्यासाचलीय में पाया नहीं जाता। मार्के की बात है कि यह प्रकाशित व्यासाचलीय पुस्तक यद्यपि 6 प्रतियों के आधार पर मुद्रित हुई है और जिसमें से दो प्रतियां कुम्भकोण मठवालों ने दी है और एक प्रति तंजौर पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी तथापि श्री आत्मबोधेन्द्र के उद्धृत चार श्लोक इसमें पाया नहीं जाता। इसका क्या तात्पर्य है? स्वकल्पित श्लोकों पर प्रसिद्ध रचयिता का नाम लेबल देने से प्रमाण नहीं कहा जा सकता है। उक्त पोलगम श्रीरामा शास्त्री ने कामकोटि प्रदीपम मासिक पत्रिका में व्यासाचलीय के संपादक से अर्ज की है कि इन चार श्लोकों को भी व्यासाचलीय के द्वितीय संस्करण में जोड कर प्रकाशित कर दें। सम्भवतः संपादकजी भी प्रभावित होकर प्रकाश कर दें।

इन पांच उद्धृत श्लोकों का अन्तिम श्लोक मैं नीचे देता हूं ता कि पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ वालों की कल्पना शक्ति अतीत है और आप लोग अनर्गल विषय लिखकर प्रचार करने में शर्म नहीं खाते। इस श्लोक में कहा गया है कि उस समय के कुम्भकोण मठाधीष श्रीविपुलानन्द थे और जिनका आज्ञा नैपाल महाराज को शिरोधार्य था और आपको नैपाल राजा ने अपनी श्रद्धा भक्ति दिखायी थी। यह मनगढन्त विषय अनर्गल है। इस कथन का कोई प्रमाण भी नहीं है। कांची मठ अपनी महत्ता व सर्वोच्चता दिखाने एवं यतिसार्वभौम बनने के लिये तथा पामर जनों में अपनी यशोगान से प्रभाव डालने के लिये नैपाल नरेशों का नाम लेकर अनेक पुस्तकों में प्रचार करते हुए आये हैं। इन विषयों का निराकरण नैपाल राज्य ने अपने पत्र ता० 13—5—1940 द्वारा किया है। पाठकगण इस खण्ड के अन्तिम अध्याय में यह पत्र प्रकाशित पायेंगे। आत्मबोधेन्द्र का उद्धृत श्लोक यों है जो व्यासाचलीय (मुद्रित और अमुद्रित) में पाया नहीं जाता—'पीठेतिष्ठति कामकोटि विदिते यः शारदाख्ये मठे। देहीवादिम शङ्करार्य नियमव्रातो व्रतिष्ठोऽधुना। नैपालादि नृपालमौलि विधृत श्रीशासनो नः शिवं। देयादेष जगद्गुरुस्सविपुलानन्दा कृतिश्शङ्करः।'

आत्मबोधेन्द्र द्वारा उद्धृत पांच श्लोकों में से प्रथम व अन्तिम श्लोकों का विवरण ऊपर दिया गया है। अन्य एक श्लोक है जो आचार्य शङ्कर का तनुत्याग कांची बतलाता है। आत्मबोधेन्द्र का यह श्लोक प्रकाशित व्यासाचलीय का 12 सर्ग 82 श्लोक विरोध में ही कहता है। व्यासाचलीय का श्लोक स्पष्ठ कहता है कि आचार्य शङ्कर काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण किया था और उसी सीमा से आचार्य शङ्कर ने 'रुचितदेशमयं जगाम' का ही उल्लेख

है। अतः आत्मबोधेन्द्र का स्वरचित श्लोक क्षिप्त है। यदि आत्मबोधेन्द्र का कथन यथार्थ है तो व्यासाचलीय को असत्य ठहराना पडेगा। इन पांच श्लोको में एक और श्लोक है जिसमें यह कहा गया है कि श्रीशङ्कर रूपी महावृक्ष की नींव कांची है और शाखा रूपी अन्य चार मठ जगभर फैला हुआ है। यह स्वरचित एवं स्वकल्पित व्यासाचलीय श्लोक प्रकाशित एवं अमुद्रित व्यासाचलीय में नहीं है। अन्य कोई प्रमाणिक ग्रंथ (माधवीय, सदानन्दीय, चिद्विलासीय मठाम्नाय, आदि) या वृद्ध परम्परागत आयी हुई कथा या प्रस्तुत तीन आम्नाय मठाधीष इसकी पुष्टी नहीं करते। अतएव स्वख्याती के लिये लिखा हुआ यह यशोगान श्लोक अवश्य क्षिप्त है। कांची मठ को सार्वभौम सर्वोच्च सर्वोत्तम मठ बनाने के इस नाटक में यह एक नाट्य है। जब आम्नायानुसार मठ की स्थापना कांची में नहीं हुई है तब कैसे कांची को बुनियाद माना जाय? व्यासाचलीय के संपादक को उचित था कि आप सत्य विषय का प्रकटन करते और कहते कि श्रीआत्मबोधेन्द्र ने इन चार स्वकल्पित श्लोकों को व्यासाचलीय नाम देकर प्रकाश किया है। इस सब भ्रामक प्रचारों में सहयोग देने का क्या तात्पर्य है?

डा. ऑफ्रेक्ट की सूची में एक शङ्करविजय का उल्लेख है जिसका रचयिता 'व्यासगिरि' कहते हैं और कुछ विद्वानों का अनुमान है कि व्यासाचल ही व्यासगिरि थे। मदरास विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज न० 13 'श्लोकवार्तिकव्याख्या' पुस्तक की प्रस्तावना में श्री सि. कुन्हन राजा लिखते हैं **'In a work called Sankara-vijaya by Vyasacala, known also Vyasagiri and Vyasadri, the story of Sankara ...''** यह व्यासगिरि या व्यासाद्रि शङ्करविजय अलग पुस्तक उपलब्ध भी नहीं है, अतएव व्यासाचल को ही व्यासगिरि या व्यासाद्रि कहा जाता है। कुम्भकोण मठ के प्रचारक श्री एन्. वि. व्यासाचल के बारे में लिखते हैं **'an imperfect Mss in the Tanjore Palace Library. Work I have not been able to consult.'**

माराठी भाषा पुस्तक 'शङ्कराचार्य-त्यांचा संप्रदाय' में इस व्यासाचलीय के बारे में लिखते हैं कि यह कहा जाता है कि व्यासाचलीय शङ्करविजय कांची मठ के 52 वां आचार्य श्री विद्यातीर्थ (श्री विद्यारण्य के गुरु) ने रचा है। पाठकगणों की जानकारी के लिये उक्त पुस्तक के रचयिता का विचार संक्षेप में यहां दिया जाता है। आप कहते हैं कि माधवीय शङ्कर विजय भी इस व्यासाचलीय के आधार पर ही लिखा गया होगा चूंकि माधवाचार्य (श्री विद्यारण्य) अपने गुरु रचित पुस्तक को मूल पुस्तक स्वीकार किया हो। कांची मठ का भी कथन है कि माधवीय का मूल व्यासाचलीय है। आगे आप लिखते हैं कि श्री विद्यारण्य के गुरु श्री विद्यातीर्थ उर्फ श्री विद्याशङ्कर श्री शृङ्गेरी के आचार्य थे और यह विषय परम्परा, ऐतिहासिक एवं व्यवहार प्रमाणों से सिद्ध होता है। कांची मठ चार आम्नाय मठों में एक नहीं है। कांची मठ अपने को मध्यमाम्नाय भी कहते हैं। आगे लिखते हैं कि इससे शंका होती है कि क्या बृहच्छंकरविजय व व्यासाचलीय पुराने ग्रंथ हैं? इसे विश्वास करना मुश्किल है। लेखक का अभिप्राय है चूंकि कांची मठ तीन या चार ठिकानों से अदल बदल करते हुए चले आ रहे हैं, इससे इनका प्राचीन स्थल भी गोचर नहीं होता और इतिहास द्वारा यह सिद्ध नहीं होता कि श्री विद्यातीर्थ एवं श्री विद्यारण्य शृङ्गेरी छोडकर दूसरे कोई मठ में थे।

मदरास राजकीय पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित व्यासाचलीय में आचार्य शङ्कर का न कांची गमन, न वहां आम्नाय मठ की प्रतिष्ठा, न श्रीचक्र की प्रतिष्ठा, न नगर निर्माण, न योगलिङ्ग प्रतिष्ठा, न सर्वज्ञपीठारोहण और न तनुत्याग का उल्लेख है। यह नवीन व्यासाचलीय जो माधवीय का परिष्कृत प्रति है वह सोलहवीं शताब्दी की नहीं है, पर यह पुस्तक 19 वीं शताब्दी की ही है।

नैषध–श्रीहर्ष–श्रीहर्ष रचित नैषध काव्य के 12 सर्ग 38 वां श्लोक यों है :—

सिन्धोर्जैत्रमयं पवित्रमसृजत् तत्कीर्तिपूर्ताद्‌भुतं
यत्र स्नान्ति जगन्ति सन्ति कवयः के वा न वाचंयमाः
यद्बिन्दुश्रियमिन्दुरञ्चति जलं चाविश्य दृश्येतरो
यस्यासौ जलदेवता स्फटिकभूर्जागर्ति यागेश्वरः ॥

उपर्युक्त श्लोक का अन्तिम पद 'यागेश्वर' को 'योगेश्वर' होने का कुम्भकोण मठाधीश वताते हैं और इस नैषध में कहा योगेश्वर लिङ्ग को अपने मठ में पूजित 'योग लिङ्ग' से सम्बन्ध लगाकर प्रचार करते हैं कि कांची मठ का उल्लेख नैषध में भी है। 1935 ई० में काशी में कुम्भकोण मठ द्वारा कहे हुए दो नैषध काव्य प्रतियों को देखा। दोनों प्रतियों के मूल श्लोक में 'यागेश्वर' पद ही है न कि 'योगेश्वर'। यदि क्षणभर मान लें कि इन दोनों प्रतियों में 'योगेश्वर' का ही उल्लेख है तो नैषध काव्य में कहा कांची का योगेश्वर एवं आज से करीव 1200 वर्ष पूर्व आचार्य शङ्कर द्वारा दिया गया योग लिङ्ग का सम्बन्ध 'वादरायण सम्बन्ध' मालूम पडता है। महाभारत युद्ध के पूर्व नलदमयन्ती चरित्र का वर्णन जो नैषध काव्य में है उसके साथ अव से करीव 1200 वर्ष पूर्व अवतार व्यक्ति श्रीशङ्कराचार्य चरित्र वर्णन के साथ क्या सम्वन्ध हो सकता है? निर्णयसागर द्वारा मुद्रित श्रीनारायण भट्ट टीका सहित नैषध काव्य देखा और इसके मूल श्लोक में 'यागेश्वर' पद ही पाया। टीकाकार ने यागेश्वर पद की व्याख्या की है। कुम्भकोण मठाभिमानी विद्वानों से संपादित पुस्तक 'शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' में और एक पुस्तक का उल्लेख करते हैं—नैषध काव्य श्रीमल्लिनाथ कृत टीका सहित जिसमें 'योगेश्वर' पद होने का प्रचार करते हैं। यह मल्लिनाथ टीका सहित नैषध काव्य, 1926 ई० में पालघाट से प्रकाशित हुआ है। इसमें भी 'यागेश्वर' पद ही है और टीकाकार यागेश्वर पद की ही टीका की है। कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य प्रचार है। अव यह पुस्तक के प्रकाशन वाद सम्भवतः आप संपादक लोग और एक कोई अन्य टीकाकार का नाम लें। कुम्भकोण मठ का स्वभाव है कि जव कभी आपके कथनानुसार किसी पुस्तक में आपके मिथ्या प्रचारों के अनुकूल न हो और आपके मिथ्या प्रचारों की पोल खोली जाती है तो झट से स्वेच्छावाद पर आधारित कुछ कारणों को दिखाकर अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थं कहा जा सकता है—आनन्दगिरि शङ्करविजय में आचार्य शङ्कर को श्रीव्यास का आशीष 'जीवेत् शरदांशतं' है पर जव आक्षेप किया गया था तो कुम्भकोण मठ के सर्वज्ञ पन्डितों ने इसका (शारदां शतं) समन्वय 32 वर्ष का करते हैं; आनन्दगिरीय में चिदम्बर जन्मस्थल एवं मातापिता का नाम विशिष्ठा विश्वजित का उल्लेख है और जव आक्षेप किया गया था तो रामायण के अम्वरीष हरिश्चन्द्र का दृष्टान्त देकर चिदम्बर का नामान्तर कालटी एवं विशिष्ठा विश्वजित का नामान्तर आर्याम्वा शिवगुरु कहा गया था; ॐतत्सत् में महावाक्य लक्षण न होते हुए भी कुतर्क व वितन्डावाद से ॐतत्सत् को उपदेष्टव्य महावाक्य बताया गया था; पतञ्जली चरित में 'स्थितिमवाप' पद का अर्थ तनुत्याग प्रचार किया गया था पर जव आक्षेप हुआ तो कहने लगे कि कांची में वास करते हुए पश्चात निर्याण भये और 'स्थितिमवाप' उसका द्योतक है; शङ्कराम्युदय में 'कामेश्वरी अर्चयन् ब्रह्मानन्दमविन्दत' पद का अर्थ निर्याण कहा गया था पर जव आक्षेप हुआ तब अपनी भूरु मान ली; काशी में 1935 ई० में प्रचार किया कि कुम्भकोण मठ ने कभी अपने को सार्वभौममठ, सर्वोच्च, सर्वोत्तम, सर्वसेव्य मठ कहा नहीं है और अन्य चार मठों को शिष्य मठ कहा नहीं है तब आपको कुम्भकोग मठ से रचित व प्रकाशित मठाम्नायसेतु के श्लोकों को दिखाया गया तथा कुम्भकोण मठ प्रचारकों से प्रचारित पुस्तकें 1915 ई० से 1931 ई० तक का भी दिखाया गया तो झट से कह दिया कि आप इन सब पुस्तकों के दायित्व नहीं हैं ('लीडर' पत्र ताः 18—1—1935 और 'पण्डितपत्र' ताः 15—10—1934)।

अब योगेश्वर पद न मिलने पर अपनी चातुर्यता व तर्काभास से अनुमान करने लगते हैं और कहते हैं कि 'यागेश्वर' ही 'योगेश्वर' है। यहां अनुमान करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यागेश्वर पद से ही अर्थ किया जा सकता है। एक तो यह कल्पनात्मक काव्य है, दूसरा चरित्र से असम्बन्धता है एवं तीसरा योगेश्वर पद का उल्लेख न होने से इस पुस्तक को प्रमाण में (आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित कांची मठ है) दिखाना मूर्खता है।

इस श्लोक के अन्तिम पद 'यागेश्वर' कांचीपुर के प्रधानदेव का ही संकेत करता है चूंकि इस श्लोक में कांचीपुर के राजा का वर्णन है। दमयन्ती स्वयंवर में आये हुए राजाओं का वर्णन इस काव्य में किया गया है। इस काव्य पर अनेकों ने टीका लिखी है और जो सब प्रतियां उपलब्ध हैं उन सबों में 'यागेश्वर' पद ही है। श्री हर्ष समान कवि पुराणिक प्रसिद्ध कांची का प्रधान अचल देव को छोड कर उसके बदले कैसे कुम्भकोणमठाधीष के पास का चलन लिङ्ग जो जगह जगह मठाधीष के साथ जाता है, उसका उल्लेख किया हो? कांची माहात्म्य में उल्लेख है 'तत्र कांचीति विख्याता पुरी पुण्यविवर्धिनी। विधातुरश्वमेधार्थे निर्मिता विश्वकर्मणा।' 'अश्वमेधस्य शालायां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। स्थनान्येतानि राजेन्द्र प्रोक्तान्यष्टादशैव हि।' कांची जो विश्वकर्मा से निर्माणित एक याग भूमि थी और जहां ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ किया था वैसे स्थल में यागेश्वर पद न्याययुक्त इस क्षेत्र के पुण्य माहात्म्य व प्रधानदेव श्री एकाम्रनाथ का संकेत किये जाने का ही अर्थ किया जा सकता है न कि ईसा के बाद 7 वीं/8 वीं शताब्दी में आचार्य शङ्कर से दिया गया योग लिङ्ग। यह सब को विदित है कि श्री हर्ष द्विअर्थ पद प्रयोग के लिये मशहूर हैं और टीकाकारों ने यागेश्वर पद को विभाजित कर य+अगेश्वर बनाकर, इन पदों की टीका लिखी है। यदि योगेश्वर पद होता तो इस पद को य+अगेश्वर भाग किया जा नहीं सकता है। कुम्भकोण मठ के विद्वानों ने कहा कि 'य' स्त्री लिङ्ग है और 'अगेश्वर' पुरुष लिङ्ग है और ये दोनों साथ बैठ नहीं सकते। पर यह सर्वज्ञ विद्वान इस विषय को छिपाते हैं कि 'य' के पूर्व इसी श्लोक में 'जलदेवता' पद भी है जो स्त्री लिङ्ग भी है। यदि 'जलदेवता' स्त्रीलिङ्ग ठीक जमता है तो 'य' ठीक ही है। 'य' इसी के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है। इसमें कोई भूल नहीं है। अब कुम्भकोण मठ विद्वान प्रचार करते हैं कि हमारे पूर्वजों ने भूल से मूल में योगेश्वर के बदले यागेश्वर पद लिख दिया था। पर यह तो स्वेच्छावाद है। आश्चर्य है कि कुम्भकोण मठ के 'सर्वज्ञविद्वानों' ने यह न कहा कि हमारे पूर्वज मूर्ख थे।

श्री हर्ष एक कट्टर अद्वैती थे और आपको आचार्य शङ्कर के प्रति भक्ति था और इस विषय पर कोई विवाद नहीं करता पर इससे यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि श्री हर्ष ने नलदमयन्ती चरित्र कथा में कांची का योग लिङ्ग जो आचार्य शङ्कर से प्राप्त हुआ था उसी का निर्देष नैषध में किया है जैसा कि कुम्भकोणमठ आक्षेपकरने पर जवाब देते हैं। नैषध के टीकाकार श्री मल्लिनाथ एवं श्री नारायण अपनी टीका में 'यागेश्वर' पद प्रयोग किया है पर कुम्भकोणमठ के कृपाभाजन विद्वान मठ प्रचार मासिक पत्रिका कामकोटि प्रदीपम में जानबूझकर 'यागेश्वर' के बदले 'योगेश्वर' पद का प्रयोग करते हैं। ऐसे प्रचारक जो मिथ्या कहने व लिखने में शर्म नहीं खाते वे क्या नहीं कह या कर सकते हैं। दुःख की बात है कि ऐसे मिथ्या प्रचार में अन्य विद्वान भी सहयोग देते हैं। श्री नारायण टीकाकार लिखते हैं 'असौ जलदेवता जागर्ति। असौ का? या स्फटिकभूः अगेश्वरः कैलासो जागर्तीति वा।' श्री विद्याधर लिखते हैं 'यस्य कीर्तितडागस्य असौ एष स्फटिकभूः कैलासगिरिरेव याऽगेश्वरो जलदेवता जागर्ति स्फुरति।' श्री चन्डुपन्डित लिखते हैं 'असौ जलदेवता जागर्ति। या स्फटिकभूः कैलासः अगानां पर्वतानां ईश्वरः।' श्री ईशानदेव लिखते हैं 'यस्य कीर्तितडागस्य असौ स्फटिकभूः कैलासगिरिरेव यागेश्वरो महेश्वरो जलदेवता जागर्ति स्फुरति। की दृशी? जलं चाविश्य दृश्येतरा अदृश्या इत्यर्थः।' श्री मल्लिनाथ स्पष्ट लिखते हैं 'स्फटिकलिङ्गे यागेश्वरः इति प्रसिद्धिः।' श्री नारायण लिखते हैं 'यागेश्वरः

स्फटिक इति प्रसिद्धिः।' इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि कोई भी एक स्फटिक लिङ्ग जिसे 'यागेश्वर' कहते हैं न कि आचार्य शङ्कर से दिया हुआ योग लिङ्ग। श्री जीनराज टीकाकार कहते हैं 'यागेश्वर शब्देन स्फटिक निर्मितं शिवलिङ्ग-मिति प्रसिद्धिः।' तेरहवीं शताब्दी के टीकाकार श्रीचन्डु पन्डित 'यज्ञपुरुष' की टीका में लिखते हैं 'तत्रापि जलदेवता यागानां ईश्वरो यज्ञपुरुषो अदृश्यः।' और यह व्याख्या ऐसा कर नहीं सकते यदि नैषध काव्य का पद योगेश्वर हो। इससे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि नैषध काव्य का पद 'यागेश्वर' है न कि 'योगेश्वर' जो कुम्भकोण मठ का मिथ्या प्रचार है।

वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष इस नैषध उक्त श्लोक का अर्थ करते हुए कहते हैं कि कांची के राजा ने पानी का एक बडा तालाब खोदवाया और इस तालाब के पानी से कांची के योगलिङ्ग का अभिषेक हुआ करता था। पर श्लोक का अर्थ दूसरा ही कुछ है। कवि ने कांची के राजा का वर्णन करते हुए कहा है कि समुद्र को भी पराजित करने योग्य विशाल कीर्तितालाब का निर्माण किया था जो कवियों को मूक कर देता है, जहां चांद एक बिन्दु समान दीखता है और जलदेवता चांद स्वयं सफेद व स्वच्छ होने से अदृश्य हो जाता है तथा स्फटिक महालिङ्गसा दीखता है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष के अर्थों की पुष्टी किसी टीकाकार ने नहीं किया है या मूल श्लोक का अर्थ ऐसा नहीं कहता। कुम्भकोण मठाधीष एक विद्वान होते हुए भी ऐसा अर्थ क्यों किया? सम्भवतः स्वार्थ माया ने आपको जकड लिया हो और कांची कुम्भकोण शाखा मठ की महत्ता बडाने के प्रयत्न में प्रमाण तैय्यार किये जाते हों। आप ही को कृपा भाजन विद्वानों ने और अन्य भक्तों ने काशी में 1935 ई० में कहा था 'परमशिवावतार' हैं और आपकी लीला ही अपार है। पाठकगण कृपया मुझसे प्रकाशित 'काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद' पुस्तक पढें तो यथार्थ मालूम हो।

जब प्रश्न उठा कि महाभारत युद्ध के पूर्व दमयन्ती स्वयंवर का वर्णन कलियुग के श्रीशङ्कराचार्य चरित्र वर्णन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, इसके उत्तर में कुम्भकोण मठवालों ने कहा कि नैषध काव्य में एक जगह श्रीनल ने श्रीकृष्ण, श्रीकर्ण, श्रीअर्जुन का उल्लेख किया है और ये सब महान् पुरुष श्रीनल के पश्चात् काल के हैं। इन कुम्भकोण मठाभिमानी सर्वज्ञ पन्डितों को जानना चाहिये कि पुराणिक घटनाओं के लिये वंशावली की दुरुस्ती या खरापन की आवश्यकता नहीं है। यदि इस दृष्टि से पुराणों की आलोचना की जाय तो सम्भवतः बहुत से पुराणों में ऐसे भूल निकलेंगे। इसीलिये तो पुराणिक घटनाओं में ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचना नहीं की जानी है। पर इस पुराण के नियम को आधुनिक काल का 7 वीं या 8 वीं शताब्दी के ऐतिहासिक व्यक्ति का चरित्र वर्णन में लागू नहीं किया जा सकता है। पुराण कथा के गूढार्थ या लक्षणार्थ को बुद्धिमान व विद्वान स्वीकार करते हैं और अनभिज्ञ पामरजन इनका साधारण अर्थ करते हैं। इसमें कोई आपत्ति भी नहीं है। आचार्य शङ्कर एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जिन्होंने 1200 वर्ष पूर्व ऐसे कार्य कर दिखाये जो साधारण व्यक्ति को करने में युग युग लग जाय और भारत के इतिहास में आपका स्थान उच्च है। अपनी विचारों को प्रकट कर आपने एक नया युग का प्रारम्भ किया था। भारत के उस समय की परिस्थिति में आप एक समन्वयात्मक दार्शनिक ध्योयों का प्रकाश न करते तो भारत की इतिहास धारा ही और कुछ होता। आपकी महत्ता न केवल भारत में थी और है पर सारा संसार आपको एक नया युग प्रवर्तक मानता है। यदि यह कहा जाय कि राजा नल ने वास्तव में कांची के योगलिङ्ग का वर्णन किया है जो अभी से 1200 वर्ष पूर्व प्राप्त किया गया था तो यह भी कहा जा सकता है कि श्रीरामचन्द्र ने अपने दक्षिण भारत भ्रमण में मैसूर प्रान्त के कृष्णराजसागर बांध के रङ्गी फुआरों व मनोरञ्जित दृश्य को देखकर आनन्दित हुए। कुम्भकोण मठ के ऐसे कुतर्क से केवल अपनी मूर्खता प्रगट होगी।

कुम्भकोण मठ की कल्पित कथा है कि आचार्य शङ्कर एवं श्री सुरेश्वर दोनों सशरीर हिमालय के वदरी सीमा से कैलास पहुंचे और देवादिदेव महादेव की स्तुति कर उनसे पांचलिङ्ग एवं सौन्दर्यलहरी के कुछ भाग प्राप्त कर (एक प्रचार पुस्तक में 'शिवरहस्य' प्राप्त करने का भी उल्लेख है) पुनः इस भू लोक लौट आकर नीलकण्ठ, केदार, चिदम्बर, व श्रृङ्गेरी में चार लिङ्गो की प्रतिष्ठा कर, अपने लिये सर्वोच योग लिङ्ग रक्खा था जिसे कांची में अपने मठ में छोड निर्याण भये। इस कथा की पुष्टी कोई प्रामाणिक ग्रन्थों में मिलती नहीं है और इस विषय को सिद्ध करने के लिये जहां कहीं कांची का उल्लेख हो या याग या योग पद का उल्लेख हो तो इसे प्रमाण में दिखा कर अपनी स्वार्थ इष्ट सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। यह सब नाटक इसी लिये रचा गया है। कोई शङ्करदिग्विजय इन लिङ्गो का वर्णन नहीं करता। कुम्भकोण मठ ने अग्राह्य अप्रामाणिक मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में इस विषय को जोड कर एक परिष्कृत्य प्रति तैय्यार किया है। शिवरहस्य में पांचलिङ्ग का उल्लेख है पर इस शिवरहस्य के आधार पर ऐतिहासिक व्यक्ति के चरित्र विषयों का निर्णय करने में कहां तक मूल और प्रधान प्रमाण में लिया जा सकता है यह विषय विवादास्पद है चूंकि शिवरहस्य प्रतियां अनेक स्थलों में भिन्न भिन्न पाठ के साथ प्राप्त होते हैं। 18 वीं शताब्दी पूर्वार्ध के एक शिवरहस्य प्रति में यह कहेजानेवाले पांचलिङ्ग का श्लोक भी पाया नहीं जाता। मार्कन्डेय संहिता की प्रति भारत में दो या तीन जगह प्राप्त होते हैं और कुम्भकोण मठ की प्रति में कुछ श्लोक क्षिप्त किये गये हैं जो पांच लिङ्गों का वर्णन करते हैं। इस परिस्थिति में कुम्भकोण मठ योग लिङ्ग के प्रमाण में नैषध दिखाते हैं जो केवल प्रमाणाभास मिथ्या है।

शङ्करेन्द्रविलास—वाक्पतिभट्ट—यह पुस्तक कहीं उपलब्ध नहीं होता और केवल नाम से ही कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित है। अनेक स्थलों के पुस्तकालयों में ढूंडा गया पर कहीं मिला नही। श्री एन्. वेंकटरामन से रचित पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीश की अनुमति से लिखा गया था और आपको अर्पित है उसमें लिखा है कि आपने यह पुस्तक देखा नहीं और यह अब उपलब्ध भी नहीं है—'**Not available at present. Not consulted.**' आश्चर्य तो यह है कि श्री एन्. वेंकटरामन ऐसा लिखते हुए भी आप अपने पुस्तक में शङ्करेन्द्रविलास के दूसरे अध्याय (II canto) से कुछ पंक्तियां अंग्रज़ी में अनुवाद कर उद्धृत किया है। मालूम नहीं कि जो पुस्तक उपलब्ध नहीं है और जिसे देखा ही नहीं उसमें से पंक्तियां कैसे उद्धृत कर रहे हैं? अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि ऐसा कोई पुस्तक ही नहीं है। कुम्भकोणमठ के तीव्र प्रचारक श्री आत्रेय कृष्ण शास्त्री जो मिथ्या प्रचार के लिए मशहूर हैं, आपने भी एक श्लोक अपने प्रचार पुस्तक में उद्धृत किया है। उक्त शङ्करेन्द्रविलास (II canto) से निम्न पंक्तियां प्रकाश किया है **'Visvajit being dead, Visishta, his young wife, wants to perform sati. Her relatives disuade her, as they see signs of pregnancy in her. She returns home, and patiently spends the usual period. But that is soon over, and there is no delivery, nor for another year or so. People suspect dropsy or some other disease. Ashamed of her condition, Visishta takes to temple service, in which she is engaged for one year. Then, at the end of full three years after her husband's death, she delivers a son. Afraid of scandal, the mother casts away the child into the neighbouring forest, where he is nursed and brought up by a tigress, the wife of the sage Vyaghra-pada. At five years of age, his upanayana is performed by the sage, who teaches him the Vedas as well.'**

उपर्युक्त कथा का अधिकांश भाग आनन्दगिरि शङ्करविजय से मिलता जुलता है। आचार्य शङ्कर को विधवा पुत्र, चिदम्बर को जन्म स्थल, पिता माता का नाम विश्वजित विशिष्ठा, विश्वजित का देहान्त के तीन वर्ष पश्चात विशिष्ठा शङ्कर पुत्र का जन्म देना, आदि, सब विषय आनन्दगिरि शङ्करविजय के समान ही हैं। कुम्भकोण मठ न केवल इस कथा को मानते हैं (कुम्भकोण मठ का 'सुषमा' के अनुसार) पर प्रचार भी करते हैं और प्रमाण में उक्त पुस्तक को बतलाते हैं। आनन्दगिरि शङ्करविजय में 74 प्रकरण हैं। मूल आनन्दगिरीय में द्वितीय प्रकरण में जन्म स्थल कालटी, पिता माता का नाम शिवगुरु आर्याम्बा का उल्लेख कर और पुस्तक के कुछ अन्त प्रकरणों में अपने प्रचारों की पुष्टी के लिये (कांची में मठ स्थापना एवं पांचलिङ्ग की कथा) कुछ पंक्तियां क्षिप्त कर एक परिष्कृत्य प्रति तैय्यार किया गया है। यह परिष्कृत्य प्रति एवं आनन्दगिरि मूल दोनों समान ही हैं केवल भेद उक्त विषयों में पाया जाता है। इससे भी आश्चर्य है कि कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रमाण पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' की टीका 'सुषमा' में आत्मबोदेन्द्र ने इस आचार्य शङ्कर के गोळक जन्म का समर्थन करते हुए कारण भी देते हैं। जो कुछ वहां कहा गया है वह आचार्य शङ्कर के लिये शोभता नहीं है। यह उन्मत्त प्रलाप पुस्तक श्रेष्टों को अग्राह्य है चाहे वह पुस्तक अनभिज्ञ पामरजनों को ग्राह्य हो। बडी लज्जा की बात है कि कुम्भकोण मठ व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के हेतु से सारे अद्वैतमतावलम्बी वर्ग के मुह में कालिख पोतने तैय्यार हैं। जब ऐसे दुष्प्रचारों की पोल खोली जाती है तो कुम्भकोण मठाधीश इसे निराकरण भी करते नहीं पर इन प्रचारों की पुष्टी भी करते हैं जब आप कहते हैं कि शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है और वे जिस ढंग से आपको रखेगें वह आपको स्वीकार है (पन्डितपत्र—काशी—ता: 15...10—1934) और आपके भक्तकोटी आपको 'परमशिवावतार' 'चलते फिरते देव' 'दक्षिणामूर्तिअवतार' का प्रचार भी करते हैं। दुनिया आडम्बर में लिप्त है और अर्वाचीन काल के दो महायुद्धों ने अधिकांश लोगों को कपटी, द्वेषी व स्वार्थी बना दी है और स्वतंत्र विचार के विद्वान इने गिने ही मिलते हैं जो आडम्बर से मोहित न होकर, आधुनिक काल के प्रचारमार्गों से प्रभावित न होकर, लछिमिनियां के मोह में न फंस कर, अपना अभिप्राय देते हैं। पर ऐसे विद्वान भी चुपचाप बैठ जाते हैं क्यों कि उन्हे मालूम है कि आप दुनिया को सुधार नहीं सकते। ऐसे परिस्थिति में दुष्प्रचार व मिथ्याभ्रामक प्रचार ही सत्य का रूप धारण कर समाज में फैलता है।

1935 ई० में काशी में जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा तो इस विषय पर भी चर्चा हुई। कुम्भकोण मठाभिमानी विद्वानों से उत्तर मिला कि जो कथा शङ्करेन्द्रविलास में दी गई है वह आद्यशङ्कराचार्य का नहीं है पर कुम्भकोण मठ के पांचवा अवतार शङ्कराचार्य जो 38 वां मठाधीश थे, आपका चरित्र कथा है। तो प्रश्न उठता है कि आचार्य शङ्कर का अवतार कितने बार हुआ चूं कि शङ्करेन्द्रविलास में दी हुई कथा आनन्दगिरि शङ्कर विजय की कथा से समानता रखता है और आनन्दगिरि आद्यशङ्कर का ही वर्णन करता है। काशी में यह भी कहा गया था कि आनन्दगिरि शङ्करविजय (परिष्कृत्य प्रति छोडकर जो आद्य शङ्कर का चरित्र वर्णन करता है) जो उपलब्ध है वह भी इसी पांचवें शङ्कर (38 वां कुम्भकोण मठाधीश) अवतार की कथा का वर्णन करता है। पर परिष्कृत्य प्रति एवं आनन्दगिरि मूल दोनों पुस्तक 74 प्रकरणों में समानता रखती है केवल आचार्य का जन्म स्थल, मातापिता का नाम, कांची में मठ स्थापन एवं पांचलिङ्गों की कथा परिष्कृत्य में भिन्नता दीखती है। अर्थात् आनन्दगिरि शङ्करविजय (मूल व परिष्कृत्य) आद्यशङ्कराचार्य का ही चरित्र वर्णन करता है।

आचार्य शङ्कर के चरित्र घटनाओं के आधार पर एवं अर्वाचीन काल के अनुसन्धान विद्वानों के कुछ विचारों के अनुसार व उनके कथनों की पुष्टी के लिये आचार्य शङ्कर चरित्र के मुख्य घटनाओं से पांच घटनायें लेकर पांच

भिन्न शङ्कर अवतार होने की कथा सुनायी जाती है। आचार्य शङ्कर के महत्त्व और आदर को घटाने की दृष्टी से कुछ रचयिताओं ने द्वेष व निन्दनीय चरित्र वर्णन किया है उन सब पुस्तकों को भी प्रमाण में लेकर अपने प्रकाशित कथा की पुष्टी भी करते हैं। कुम्भकोण मठ के पांच शङ्कर अवतार व्यक्तियों का विवरण—(1) कांची का प्रथम शङ्कर जो कालटी में जन्म लिया और भाष्य रचना की थी। आपका काल क्रिस्त पूर्व 508/476 का है। कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि चिदम्बर कालटी का नामान्तर है और आनन्दगिरि शङ्करविजय का चिदम्बर स्थल उल्लेख करना ठीक है। (2) द्वितीय शङ्कर का नाम कृपाशङ्कर है (28–69 ई०) जो कुम्भकोण मठ में 9 वां मठाधीष थे। आपही वास्तव में षण्मतस्थापनाचार्य थे जिन्होंने तांत्रिकों को परास्त कर वैदिक मार्ग का प्रतिष्ठा की थी। (3) कुम्भकोण मठ के 16 वां मठाधीष उज्वलशङ्कर (329—367 ई०) ही तृतीय अवतारी पुरुष थे जिन्होंने सारा भारतवर्ष भ्रमण कर दिग्विजय यात्रा की थी। राजा कुलशेखर ने आपके दिग्विजय यात्रा में साथ दिया था और यह राजा एक कवि बन गये। (4) कुम्भकोण मठ का 20 वां मठाधीष ही चतुर्थ शङ्कर थे जिनका नाम अर्भक शङ्कर या शङ्कर चतुर्थ या मूकशङ्कर या शङ्करेन्द्र ऐसे अनेक उर्फनाम हैं। आपका काल 398—437 ई० का है। आपने दिग्विजय यात्रा कर काश्मीर तक पहुंचे। (5) कुम्भकोण मठ का 38 वां मठाधीष ही पांचवा अन्तिम अवतार व्यक्ति थे और आपका नाम धीरशङ्कर या अभिनव शङ्कर था। आपका काल 788/840 ई० का है। आपके चरित्र घटनायें सब वही हैं जो अब उपलब्ध होने वाले शङ्करदिग्विजयों में वर्णित हैं। कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि कुम्भकोण मठ के 38 वां आचार्य को ही मूल आद्यशङ्कर मानकर सबों ने चरित्र लिखा है। इन पांच शङ्करों ने अपने प्रथम मुख्य शिष्य गौड ब्राह्मण ही को चुना था जैसा कि आद्यशङ्कर ने किया था। पांच शिष्यों का नाम—सुरेश्वराचार्य, सुरेश्वर, गौडसदाशिव, मातृगुप्त, सच्चिद्विलास। पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ का भ्रामक मिथ्या प्रचार की सीमा कहां तक है। यह सब विवरण कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों से लेकर दिया गया है ताकि पाठकगण स्वयं इन विषयों की सत्यता जान लें एवं कुम्भकोण मठ की कल्पना जगत में कुछ काल भ्रमण कर इस कल्पित आनन्द को भी प्राप्त करें। आचार्य शङ्कर का अवतार श्रीबुद्धदेव के काल के (पांचवीं शताब्दी क्रिस्त पूर्व) कई शताब्दी पश्चात ही हुआ था और आपसे रचित भाष्यों में दिये विवरणों के आधार पर निश्चित होता है कि आपका काल 7 वीं/8 वीं शताब्दी का ही था। वाह्य प्रमाण भी इसी की पुष्टी करता है। आचार्य शङ्कर का काल कदापि श्रीधर्मकीर्ति के पूर्व का हो नहीं सकता है।

कुम्भकोण मठ के स्वेच्छावाद पर आधारित एक कल्पित कथा का नमूना यहां देता हूं जो कथा काशी में 1935 ई० में कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों से प्रचार कराया गया था। इस अनर्गल उन्मत्त प्रलाप पर आलोचना करना व्यर्थ है। पाठकगण आगे अध्याय में कुम्भकोण मठ के वंशावली का विमर्श पायेंगे जहां प्रमाण युक्त सिद्ध किया गया है कि यह कुम्भकोण मठ 17 वीं शताब्दी अन्त या 18 वीं शताब्दी प्रारम्भ में स्थापित मठ है। पाठकगण कृपया इस खंड के छठवें अध्याय को भी पढें। कुम्भकोणमठ का प्रचार है कि 508 क्रिस्त पूर्व अवतार लिये शङ्कराचार्य ने कोई मठ की स्थापना न की थी और आपने केवल अपनी निज गुरु परम्परा निजआश्रम कांची में प्रारम्भ कर कांची मठ में वास करते हुए तनुत्याग की थी। वही अविच्छिन्न गुरुपरम्परा कांची में आजतक चली आ रही है। कांची के 9 वां मठाधीष (28—69 ई० में) कृपाशङ्कर जो दूसरे बार अवतार लिये शङ्कराचार्य थे आपने श्रृङ्गेरी में एक शिष्य मठ स्थापना कर अपने शिष्य 'सुभट्ट विश्वरूप' को भेज कर शिष्यपरम्परा प्रारम्भ की थी और श्रृङ्गेरी मठ कांची मठ का शिष्य मठ है। कांची के 38 वां मठाधीष एवं पांचवां अन्तिम अवतार शङ्कराचार्य धीर शङ्कर ने चार मठों की स्थापना कर उन मठों को मठाम्नाय व महानुशासन से बद्ध किया। ये चारों मठ शिष्य मठ हैं और कांची गुरु मठ है। पाठकगण स्वयं जान लें कि इस बकवास में कितनी सत्यता है।

प्राचीनशंकरविजय—मूकशंकर—मूकपंचशती के रचयिता मूक कवि जिनका सम्बन्ध कांची मठ से न था आपको कुम्भकोणमठवालों ने अपने मठ के गुरुवंशावली में जोड लिया है। प्रमाण मिलते हैं कि आप कांची कामाक्षी मन्दिर की कामाक्षी माता का सेवक भक्त थे और माता के आशीर्वाद से 'वाचाल' भये और पंचशती ग्रन्थ की रचना की थी। आपका काल 16 वीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है। कामाक्षी कृपा से आप वाचाल भये तथापि कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आप अपने गुरु श्री विद्याघन (कुम्भकोण मठाधीष) के आशीर्वाद से बोलने लगे। यह कल्पित कथा है। श्री के. बालसुब्रह्मणिय अय्यर, कुम्भकोण मठ के परमभक्त अनुयायी ने 'श्री मूकपञ्चशती' पुस्तक के प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा है कि मूक कवि की कविता शक्ति एवं वाचाल श्री कामक्षी देवी के आशीष से ही पाये। मूककवि अपने गूंगापन का संकेत मूकपञ्चशती में किया है और आप स्पष्ट कहते हैं कि गूंगापन का निवारण कामाक्षी के अशीर्वाद से ही हुआ था। आपने कहीं श्री विद्याघन का नाम या आपके आशीष से गूंगापन निवारण होने का कहा नहीं है। कांची कामाक्षी मन्दिर का परिचालन ट्रस्टी रूप में 'कुम्भकोणम् शङ्कराचार्य' को ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी से 5—11—1842 में प्राप्त हुआ था। इसके पूर्व कुम्भकोण मठ ने उस समय के चेंगलपेट कलक्टर श्री ए. फ्रीज से अनुमति मांग कर 1839 ई० में कामाक्षी मन्दिर का कुम्भाविषेक किया था। कलक्टर के प्राचीन रिकार्डों से यह सब स्पष्ट मालूम होता है। 17 वीं शताब्दी अन्त में जब कांची नगर एक युद्ध क्षेत्र वन गया था उस समय कांची के मन्दिरों के धर्मकर्ताओं एवं भक्त लोग मूर्तियों को उदयारपालयम ले गये थे और उस समय भी कांची मठ के आधीन में कामाक्षी मन्दिर न था। ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी रिकार्डों से एवं कांची में प्राप्त होने वाले शिलाशासन से तथा उदयारपालयम जमीन्दार से दिया हुआ ताम्रशासन दान पत्र से यह सिद्ध होता है कि कांची मठ के अधीन में या परिचालन में कामाक्षी मन्दिर न था। इसलिये यह कह नहीं सकते कि कामाक्षी के सेवक भक्त मूककवि कांची मठ की देवी की उपासना करते थे क्यों कि कामाक्षी पीठ कांची मठ के अधीन या परिचालन में था।

यद्यपि रचयिता अपने को केवल मूककवि कहा है पर कुम्भकोण मठावालों ने आपको मूकशङ्करेन्द्रसरस्वती का नाम दिया है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपने प्राचीन शङ्करविजय रचा था। यह पुस्तक कहीं भी उपलब्ध नहीं है। किसी पुस्तकालय के सूचीपत्रों में इस पुस्तक का उल्लेख नहीं है। पर कुम्भकोण मठ कहीं कहीं एक या दो श्लोकों को देकर अपने प्रचार पुस्तकों में मूकशङ्कर का नाम देते हैं। कुम्भकोण मठ की पुस्तक में यह भी लिखा है कि 'The latter is not procurable.' 'I have not been able to consult.' तथापि श्लोकों को प्रमाण रूप में दिया जाता है। ध्यान देने की बात है कि आचार्य चरित्र घटनाओं के प्रमाण में श्लोक निर्देश नहीं किया जाता है पर विवादास्पद विषयों की पुष्टी में दिया जाता है। पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे कि कुम्भकोण मठ का प्रचार था कि आपके मठाधीष श्री चिद्विलास ने शङ्करविजयविलास लिखा था, आपके मठाधीष व्यासाचल ने शङ्कर विजय लिखा था पर खोजखाज करने पर निश्चित हुआ कि यह प्रचार मिथ्या है वैसे ही यह भी एक मिथ्या कथा है। कामकोटि प्रदीपम में यह कहा जाता है कि प्राचीन शङ्कर विजय आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि रचित है पर अब कैसे मूकशङ्करेन्द्र रचित कहा जाता है? पाठकगण आगे के अध्याय में सिद्ध किया पायेंगे कि मूककवि कुम्भकोण मठाधीष न थे।

गुरुराजरत्नमालास्तव या गुरुरत्नमालिका—श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र।

सुषमा—(व्याख्या—गुरुरत्नमाला)—श्रीआत्मबोधेन्द्र—कुम्भकोण मठ के पूर्वाचार्यों का श्रीपरमेश्वर से लेकर श्रीआचार्य शङ्कर तक तत्पश्चात् के कहेजानेवाले मठाधीषों का इतिहास इस पुस्तक 'गुरुरत्नमाला'

में दिया गया है। कांची कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले मठाधीषों की गुरुपरम्परा सूची पर काफी अन्वेषण किया गया है और इस परम्परा के सूची पर विमर्श पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे जहां सिद्ध किया गया है कि कुम्भकोण मठ की परम्परा सूची 17 वीं शताब्दी अन्त तक का एक कल्पित सूची है। यहां गुरुरत्नमाला के कहेजानेवाले रचयिता श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र के बारे में विवरण पायेंगे और प्रमाण युक्त सिद्ध किया गया है कि श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र इस पुस्तक के रचयिता नहीं हैं।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि इस गुरुरत्नमाला पुस्तक के रचयिता श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र सरस्वती थे। कुम्भंकोण मठ के प्रमाण पुस्तकों में सर्वप्रथम व प्रधान प्रमाण का स्थान गुरुरत्नमाला को दिया जाता है। 'आत्मविद्या-विलास' के रचयिता श्रीसदाशिवब्रह्म का समाधि दक्षिण भारत नेरूर गांव में है जहां आज भी हजारों भक्तकोटिजन प्रतिवर्ष अपनी श्रद्धा भक्ति उस समाधि में चढाते हैं। इस नेरुर समाधि की पूजा व सेवा आदि एक ब्राह्मण कुटुम्ब के परम्परा से आज प्रायः 200 वर्षों से करते हुए चले आ रहे हैं। इस कुटुम्ब का कुम्भकोण मठ से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह समाधि कुम्भकोण मठ के अधीन में या संचालन में भी नहीं है। सुना जाता है कि मैसूर महराजा ने कुछ जमीन इस समाधि के नाम से दान दिया है और इसके आय से समाधि की पूजा व सेवा आदि खर्च किया जाता है। इतिहास से मालूम पडता है कि 200 वर्ष पूर्व महाराजा मैसूर के अधीन में यहां जमीन थी और अर्वाचीन काल में ही यह सीमा तिरुचि जिला में मिलाया गया था। नेरूर में श्रीसदाशिवब्रह्म के भक्तों का एक समीति भी है जो श्रीसदाशिवब्रह्म की आराधना, पूजा आदि कार्य प्रतिवर्ष करता हुआ चला आ रहा है। कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध इस समीति से भी कुछ नहीं है। इस समीति ने सदाशिवब्रह्म के बारे में कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की है जिससे स्पष्ठ प्रतीत होता है कि इस समाधि का कुम्भकोण मठ से कोई सम्बन्ध नहीं है। आपकी पुस्तकों में यह भी कहा गया है कि गुरुरत्नमाला के रचयिता श्रीसदाशिवब्रह्म नहीं थे और आपका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ के साथ कुछ न था। अन्यत्र प्रकाशित पुस्तकों में भी इसी की पुष्टी की गयी है। नेरूर गांव कावेरी नदी तट पर स्थित है और यहीं काशी विश्वनाथ का मन्दिर है। कहा जाता है कि इस विश्वेश्वर मन्दिर का निर्माण पुदुकोट्टै के राजा ने किया था। इसी मन्दिर के आहाते में पीछे भाग में एक बिल्ववृक्ष के नीचे श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र की समाधि है। यहां का समाधि और मन्दिर दोनों पृथक हैं और भिन्न व्यक्तियों के संचालन में हैं। कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध किसी प्रकार का इस समाधि या मन्दिर के साथ नहीं है।

श्री सदाशिवब्रह्म रचित अनेक ग्रन्थ व स्तोत्र हैं और यदि पाठकगण इन सब पुस्तकों को पढें और अब कहे जानेवाले पुस्तक गुरुरत्नमाला को पढें तो स्पष्ठ विदित होगा कि श्री सदाशिवब्रह्म के काव्यधारा, शैली व भाव जो उनके रचित पुस्तकों में पाया जाता है सो गुरुरत्नमाला में पाया नहीं जाता है। कहा जाता है कि आपके पुस्तक की टीका श्री आत्मबोधेन्द्र ने की थी जिसे 'सुषमा' कहते हैं। कुम्भकोणमठ का कथन है कि 'सुषमा' का रचना काल 1642 शक अर्थात् 1720 ई० का है। इस सुषमा का एक परिशिष्ट भी है जिसमें 13 श्लोक हैं जो 54 वां मठाधीष से लेकर 60 वां मठाधीष तक का वर्णन करता है। इसमें सन्देह नहीं कि गुरुपरम्परा के संग्रहकर्ता एक वैय्याकरणी थे। मूल ग्रन्थ गुरुरत्नमाला व उसकी टीका 'सुषमा' एवं सुषमा में उनसे उद्धृत अनेक श्लोक (प्रायः सब पुस्तक जिससे उद्धृत किये जाने की कथा सुनायी जाती है सो सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं) सब रचयिता के व्याकरण शास्त्र का पान्डित्य दीखता है। पर कुम्भकोणमठ के लिये अभाग्यवश यह सब श्लोक स्पष्ठ विदित करता है कि इन सब पुस्तकों के रचयिता एक ही व्यक्ति थे। भाव व शैली व भाषा सबों में एक ही तरह का है। अनेक उदाहरण देकर इस विषय

को सिद्ध किया जा सकता है पर यह विषय अन्य एक पुस्तक में दिया जाता है और शीघ्र ही प्रकाश भी होने वाला है। यदि पाठकगण इन सब पुस्तकों को पढें तो उन्हें स्पष्ट माल्म हो जायगा। इन सब श्लोकों के रचयिता का वेदान्त और धर्मशास्त्र ज्ञान बहुत कम दीखता है। जब आप लिखते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य परमहंस सन्यासी न थे, ॐतत्सत् उपदेष्टव्य महावाक्य है एवं कहेजानेवाले अभिनव या धीर शङ्कर का गोलक जन्म होने का कारण देते हैं, सो सब आपको यति होने का भी कहने में संकोच होता है। कोई परिव्राजक ऐसे बकवास लिख नहीं सकते और यह निस्सन्देह किसी एक स्वार्थी अधपढ विद्वान से लिखा गया पुस्तक है और अब परिव्राजक के नाम से प्रचार हो रहा है। आपका कवन शक्ति स्पष्ट दीखता है जब पाठकगण इनसे रचे हुए अनेकानेक श्लोकों को पढें जो सुषमा में उद्धृत किये गये हैं। यह सब स्वरचित श्लोक अन्य ग्रन्थों से उद्धृत किये जाने की कथा भी सुनाते हैं। पर ये सब निर्देषित अधिकांश पुस्तक अनुपलब्ध हैं।

आत्मबोधेन्द्र से रचित सुषमा में दिये गये अनेक प्रमाण पुस्तकों की सूची में से कुछ पुस्तकें मैं नीचे देता हूं। अब पाठकगण जान लेंगे कि स्वरचित गुरुरत्नमाला को मूल प्रमाण बनाने के लिये ही सुषमा टीका में अनेक अनुपलब्ध पुस्तकों से प्रमाण दिखाया जा रहा है और पाठकगण इन प्रमाणों की सत्यता की शोधन भी कर नहीं सकते। इन पुस्तकों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(1) पुस्तक व रचयिता का नाम अनजान—आचार्यविजय, जगद्गुरु कथा संग्रह, सद्गुरु सन्तान परिमळ, आदि। (2) अनजान व अप्रसिद्ध पुस्तकें और अनजान व अप्रसिद्ध रचयिता—प्राचीन शङ्करविजय (मूकशङ्करेन्द्र), पुण्यश्लोकमञ्जरी (सर्वज्ञ सदाशिवेन्द्र), मणिप्रभा (रमिला), हयग्रीववध (मेंथा या मेधु), सिद्धविजय (मंथ भट्ट), विद्याभिधान चिन्तामणि (सुहल), गौडपादोल्लास (हरिमिश्रीय), विद्याशङ्कर विजय (शमिनबोद्धन्ड विद्यारण्य भारती), आदि। (3) अप्रसिद्ध व अनजान पुस्तकें जो नामी रचयिता के नाम दिये गये हैं—शङ्करेन्द्र विलास (वाक्पति भट्ट), सर्वज्ञविलास (सर्वज्ञात्म), महापुरुषविलास (भवभूति), गुरुविजय (कृष्ण मिश्र), भक्तकल्पलतिका (जयदेव), शान्ति विवरण, गुरुप्रदीप (अद्वैतानन्द), शिवशक्तिसिद्धि (श्रीहर्ष), स्थैर्य विचारण प्रकरण (श्रीहर्ष), आदि। (4) जानबूझकर क्षिप्त एवं स्वरचित श्लोकों व पंक्तियों को प्रमाण रूप में दिये गये हैं और इन पुस्तकों की परिष्कृत्य प्रतियों को प्रकाश कर प्रमाण में दिखाते हैं—शिवरहस्य (नवमांश षोडषाध्याय), आनन्दगिरि शङ्कर विजय, व्यासाचलीय शङ्करविजय, केरळीय शङ्करविजय, शङ्करानन्द बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका, श्रीहर्ष रचित नैषध काव्य, आदि। शिवरहस्य में कहेजानेवाले श्लोक 17 वीं/18 वीं शताब्दी की हस्तलिपि प्रतियों में उपलब्ध नहीं होते। कुम्भकोण मठ 45 श्लोकों का षोडषाध्याय प्रचार करते हैं पर सुषमा टीकाकार एक जगह 60 श्लोक युक्त षोडषाध्याय का उल्लेख करते हैं और 16 वीं/17 वीं शताब्दी के प्राचीन प्रतियां 60 श्लोक युक्त हैं। पाठकगण आनन्दगिरि शङ्करविजय के बारे में पढ चुके होंगे। माधवीय को ही व्यासाचलीय कहा जाता था और इस विषय की पुष्टी आत्मबोधेन्द्र ने सुषमा में की है। माधवीय के टीकाकार ने माधवाचार्य को ही व्यासाचल कवि कहा है और श्रीगोविन्दनाथ ने इसकी पुष्टी की है। माधवीय से 520 श्लोकों को लेकर और अन्यत्र उपलब्ध श्लोकों को भी लेकर एक नवीन परिष्कृत्य प्रति तैय्यार किया गया है जिसे व्यासाचलीय कहा जाता है। श्रीगोविन्दनाथ रचित शङ्कराचार्य चरित को ही केरळीय शङ्करविजय कहा जाता है और सुषमा में उद्धृत केरळीय शङ्करविजय के कुछ श्लोक श्रीगोविन्दनाथ शङ्कराचार्य चरित पुस्तक में है। ये दोनों अभिन्न पुस्तक होते हुए भी दो भिन्न नाम जगह जगह देकर दो भिन्न पुस्तक होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं। शङ्करानन्द बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका का अमुद्रित प्रतियां केवल दो जगह प्राप्त होते हैं और सुषमा में उद्धृत श्लोक उक्त दीपिका में पाया नहीं जाता। नैषध के एक श्लोक का अन्तिम पद 'यागेश्वर' को 'योगेश्वर' बना डाली है। उक्त प्रथम भाग के आचार्य विजय से सुषमा में उद्धृत श्लोक अग्राह्य

आनन्दगिरि शङ्करविजय में पाये जाते हैं पर वहां आनन्दगिरि का नाम नहीं लिया गया है। ऐसे उदाहरण अनेक दिया जा सकता है पर यह सब विषय अन्य एक पुस्तक में प्रकाश होने के कारण यहां विवरण दिया नहीं जाता है। कहा जाता है कि उक्त सब पुस्तकें कुम्भकोण मठ के पूर्वाचार्यों की महत्ता व यशोगान करती है। एक पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीष की अनुमति से रचित और आपको अर्पित है उसमें रचयिता लिखते हैं कि उपर्युक्त पुस्तकें 'अब कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं।'

सुषमा के रचयिता आत्मबोधेन्द्र का काल 1704 ई० से 1746 ई० का कहा जाता है चूंकि आप कुम्भकोण मठाधीश महादेव V के भाई विद्यार्थी थे और इस मठाधीष का काल 1704/46 ई० का कहा जाता है। कुम्भकोणमठ की पुस्तक 'मकरन्द' के अनुसार आत्मप्रकाशेन्द्र के शिष्य आत्मबोधेन्द्र थे और आप महादेव V एवं श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ् के भाई विद्यार्थी थे। 18 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में ये सब उक्त पुस्तकें आत्मबोधेन्द्र को उपलब्ध थे जब आपने इन पुस्तकों से श्लोकों को उद्धृत किया था पर 1923 ई० में अन्य एक रचयिता जो कुम्भकोण मठ का वृत्तान्त कुम्भकोण मठाधीष की अनुमति से लिखे थे आप को ये सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं था। इस में क्या रहस्य है? क्या ये सब पुस्तकें चोरी हो गई या जलकर भस्म हो गयी थी? करनल मेकन्ज़ी 19 वीं शताब्दी में कहते हैं कि कुम्भकोण मठ के पुस्तकालय में केवल कुछ इने गिने पुस्तक ही थे। अर्थात् 19 वीं शताब्दी में ही कुम्भकोण मठ के पुस्तकालय में पुस्तक न थी। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार इन प्रसिद्ध पुस्तकों का एक ही प्रति होना असम्भव दीखता है। परन्तु इन में से अधिकांश पुस्तक अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते और जो उपलब्ध होते हैं उसमें उदधृत श्लोक या पंक्तियां पाया नहीं जाता। क्या यह कहा जाय कि अन्य प्रतियां भी जलकर भस्म हो गयी या चोरी हो गयी थी? स्वरचित कल्पित श्लोकों की प्रामाण्यता दिखाने के लिये नामी रचयिताओं का नाम, अनजान अनुपलब्ध पुस्तकों का नाम, अनजान रचयिताओं का नाम दिया गया है। श्री शङ्करानन्द ने उपनिषदों पर दीपिकाओं की रचना की थी और श्री शङ्करानन्द के नाम से सुषमा के कुछ श्लोक उद्धृत कर कहा गया है कि यह बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका से लिया गया है। श्री शङ्करानन्द कृत बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका अभी तक मुद्रित नहीं हुई है और हस्तलिपि प्रतियां भी अधिक संख्या में प्राप्त नहीं होते। भारत के अनेक स्थलों के पुस्तकालयों में खोजखाज करने पर पता चला कि दो प्रतियां—मदरास और तंजौर में उपलब्ध हैं। यह उदधृत श्लोक इन दोनों दीपिका प्रतियों में नहीं पाये जाते। मालूम नहीं कि आत्मबोधेन्द्र को यह श्लोक कहां से टपक पडा। सुषमा में नैषध काव्य का 12 सर्ग 38 वां श्लोक उद्धृत किया है पर यह भी भूल है 'यागेश्वर' के बदले 'योगेश्वर' का उल्लेख किया है। सुषमा में अनेक श्लोक व्यासाचलीय नाम देकर उद्धृत किया गया है पर ये सब श्लोक प्रकाशित व्यासाचलीय में पाया नहीं जाता। आचार्यविजय के उद्धृत श्लोक आनन्दगिरि में पाया जाता है। केरळीय शङ्करविजय के उद्धृत कुछ श्लोक श्री गोविन्दनाथ कृत शङ्कराचार्य चरित में पाया जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण सुषमा से दिया जा सकता है। सुषमा में निर्देशित अधिकांश पुस्तक जब उपलब्ध नहीं होते तो उन निर्देशित प्रमाणों की यथार्थता कैसे पता लगाया जा सकता है और जो पुस्तकें उपलब्ध हैं उनमें उद्धरण किया हुआ विषय पाया नहीं जाता।

श्री एस. वि. वेंकटेशन व श्री एस. वि. विश्वनाथन ने कुम्भकोण मठ के ताम्र शासनों पर (Ep Ind. Vol. XIV) अपना विमर्श प्रकाशित किया है और आप लिखते हैं '... ... one of the teachers, the third in apostolic descent from Sadasiva (1527 AD), composed a Guru-raja-ratna-mala-stava, of which the following are the closing stanzas: ... ...' श्री सदाशिव से तीसरे

मठाधीष श्री आत्मबोध (1586-1638 ई०) थे और कहा जाता है कि आपने सुषमा पुस्तक रचा है। इन विमर्शकों के कथनानुसार गुरुरत्नमाला के रचयिता श्री आत्मबोध थे पर गुरुरत्नमाला के अन्त में यों उल्लेख है 'इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र कृतिषु गुरुराजरत्नमालास्तवः संपूर्ण।' इन दोनों भिन्न कथनों में कौन सा सत्य है? केवल वही जानता है जिसने यह पुस्तक की रचना कर दूसरों का नाम दिया है। जब यह प्रश्न पूछा गया तो कुम्भकोण मठ कहने लगे कि श्री आत्मबोध की आज्ञा पर श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने गुरुरत्नमाला रचा था और इसलिये दोनों कथन ठीक है। पाठकगण स्वयं जान लें कि यह उत्तर कहां तक न्याययुक्त है। जब असौकर्य प्रश्न पूछे जाते हैं तो कुतर्क एवं स्वेच्छावाद पर आधारित उत्तर भी मिलते हैं। इस लेख से प्रतीत होता है कि गुरुरत्नमाला का रचना काल श्री आत्मबोध का काल (1586/1638 ई०) ही है। परन्तु यह भी भूल है। इसका विवरण आगे पायेंगे।

गुरुरत्नमाला के आधार पर Ep. Ind. Vol. XIV में कांची मठ वंशावली दी गई है। यह सूची आचार्य शङ्कर एवं श्री सुरेश्वर से प्रारम्भ होकर शिवेन्द्र तक मठाधीषों का नाम दिया गया है। इस सूची में 55 मठाधीषों का नाम हैं। कुम्भकोण मठ और आपके अनुयायीयों व प्रचारकों से प्रचारित अन्य अनेक पुस्तकों से एक सूची बनायी गयी है जिसमें आत्मबोध के शिष्य को लेकर (अर्थात् बोध III उर्फ योगेन्द्र उर्फ भगवन्नाम) 59 मठाधीषों का नाम है। अनेक आचार्यों के दो या तीन उर्फनाम हैं और समय समय पर भिन्न भिन्न नाम दिये जाते हैं। इन दोनों सूची में नाम और संख्या भेद भी हैं। कुम्भकोणमठविषयक प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटि प्रदीपम' में दिया हुआ गुरु शिष्य परम्परा यों है—(56) सर्वज्ञ सदाशिवेन्द्र (1524/39 ई०), (57) परमशिवेन्द्र (1539/86 ई०), (58) आत्मबोधेन्द्र या विश्वाधिकेन्द्र (1586/1638), (59) भगवन्नाम बोधेन्द्र (1638/1692 ई०), (60) आत्मप्रकाशेन्द्र या गोविन्दसंयमी (1692/1704 ई०) और आपके शिष्य आत्मबोध (सुषमा टीकाकार) थे। कुम्भकोण मठ के गुरुपरम्परास्तोत्र में सर्वज्ञ सदाशिव को 52 वां मठाधीश, परमशिवेन्द्र को 53 वां मठाधीष और आत्मबोध को 54 वां मठाधीष कहा है। कुम्भकोण मठाधीष की अनुमति से रचित पुस्तक एवं आपको अर्पित है उस पुस्तक के रचयिता श्री एन. वेंकटरामन ने सर्वज्ञ सदाशिव को 54 वां मठाधीष कहा है और तत्पश्चात् क्रम से55, 56, 57 एवं 58 वां मठाधीष आत्मप्रकाशेन्द्र कहा है। इन तीनों सूची में संख्या भेद हैं। काल प्रवाह के साथ कुम्भकोण मठ की वंशावली भी परिवर्तनशील हैं। कल्पित सूची में हेरफेर करने से दोष भी नहीं है। कुम्भकोण मठ चाहते हैं कि ऐसे परिवर्तनशील निराधार वंशावली में दिये परमशिवेन्द्र के शिष्य श्री सदाशिव ब्रह्म ही गुरुरत्नमाला के रचयिता हैं इस कथन को विश्वास कर लें।

कामकोटि प्रदीपम में कहा है कि 'सुषमा' के टीकाकार आत्मबोध ने परमशिवेन्द्र को अपना परमेष्ठि गुरु कहा है। पर ऊपर पारा में दिये सूची से विदित होता है कि परमशिवेन्द्र परापरगुरु होते हैं न कि परमेष्ठिगुरु जैसा कि आत्मबोध ने कहा है। कुम्भकोण मठ के 'सर्वज्ञ' पन्डित श्रीपोलगम रामा शास्त्री यतिधर्म शास्त्र ग्रंथों को मिथ्या ठहराकर अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करने एक नवीन गुरु क्रम पीडी का आविष्कार किया है। आप कहते हैं कि गुरु क्रम पीडी यों है गुरु–परमगुरु–परापरगुरु–परमेष्ठिगुरु। अतः आत्मबोध का कथन ठीक है। यतिधर्म समुच्चय, वैद्यनाथ दीक्षितीयम्, यतिधर्मनिर्णय आदि यतिधर्म शास्त्र ग्रंथों में गुरुक्रम पीडी यों उल्लेख है गुरु–परमगुरु–परमेष्ठिगुरु–परापरगुरु। 'परमशिवावतार' कुम्भकोण मठाधीष के सर्वज्ञ पन्डित के लिये धर्मशास्त्र पुस्तक अग्राह्य और मिथ्या हो सकता है पर मेरे समान अनपढ आस्तिक के लिये ये सब ग्रंथ शिरोधार्य हैं। दुःख का विषय है कि विद्वत्गोष्टि भी इन दुष्प्रचारों में सहयोग देते हैं।

कुम्भकोण मठ के ताम्रशासन संपादक गुरुरत्नमाला के बारे में लिखते हैं कि गुरुरत्नमाला रचयिता का काल के पूर्व दूरकाल की गुरुवंशावली प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है—'... The author cannot be regarded as an authority regarding the generations of the gurus remote to that from his time, but the tradition embodied by him in relation to epoch may be treated with some consideration.' पर आश्चर्य तो यह है कि यही विद्वान इसी गुरुवंशावली के आधार पर कुम्भकोण मठ को आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। एक प्रचार पुस्तक जो वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें उल्लेख है कि गुरुवंशावली का प्रारम्भ से अधिकांश भाग अविश्वसनीय है। आप लिखते हैं—'When I say that the accuracy of the chronology cannot be questioned, it applies only to the later part of it. We cannot say at present how far the older verses are genuine and of contemporary origin.' ऐसे परिस्थिति में गुरुवंशावली सूची का मूल गुरुरत्नमाला को प्रमाण में कैसे लिया जाय ?

कुम्भकोण मठ का कथन है कि श्रीआत्मबोध के आज्ञा पर श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र सरस्वती ने गुरुरत्नमाला की रचना की थी अर्थात् आपका काल कुम्भकोण मठ के कल्पित गुरुवंशावली के अनुसार 1586/1638 ई० का था। श्री टि. ए. जि. राव, कुम्भकोण मठ ताम्रशासनों के और एक संपादक, लिखते हैं (यह पुस्तक मठाधीष के अनुमति से लिखकर आपको अर्पित है)—'Regarding the traditional history of the Kamakoti Peetha, its antiquity, and its superiority over the other mathas of Sankaracharya, a number of Sanskrit works have been written; of these the most important one is the Gururatnamalika-stotram by Sadasivabrahmendra Saraswati with a commentary on it written by Atmabodhendra Saraswati; both the author and the commentator were students in and eventually occupied the pontifical seat in this matha. They lived in the latter half of the 17th centnry A. D.' श्री टी. ए. जि. राव का कथन है आप दोनों का काल 17 वीं शताब्दी उत्तरार्ध का था। कल्पित वंशावली में आत्मबोध का काल 1568/1638 ई० का दिया गया है। पर मकरन्द में कहा गया है कि आत्मप्रकाशेन्द्र के शिष्य आत्मबोधेन्द्र थे और महादेव V एवं श्रीधरवेंकटेश अय्यावाळ के भाई विद्यार्थी आत्मबोधेन्द्र थे। तंजौर राजा शाहाजी ने 1693 ई० में तिरुवसनल्लूर में आ बसे कतिपय विद्वानों को दान दिया है और इस दान पट्टावली में श्रीवेंकटेश शास्त्री का नाम भी है। इस शासनकाल के पश्चात् काल में कुछ और विद्वान तिरुवसनल्लूर आ बसे जिसमें एक श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ भी थे। डा० राघवन् का अभिप्राय है कि श्री श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ एवं राजा शाहाजी से निर्देशित श्रीवेंकटेश शास्त्री दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। कामकोटि प्रदीपम में कहा गया है कि तिरुवसनल्लूर के श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे और वेंकटेश्वर को श्रीरामभद्र दीक्षित का शिष्य कहा गया है। कामकोटि प्रदीपम में एक जगह यह भी कहा गया है कि नेरूर के सदाशिवब्रह्म का काल 1710 ई० का था। आत्रेय कृष्ण शास्त्री श्रीअय्यावाल का समय 1625 ई० का बतलाते हैं। श्रीमहादेव V का काल 1704/1746 ई० का है। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार आत्मबोध इसी काल में सुषमा की रचना की होगी। अर्थात् गुरुरत्नमाला इसके पूर्व में रचा हुआ होगा। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार श्रीसदाशिवब्रह्म 1710 ई० में विद्यार्थी थे। अतः गुरुरत्नमाला 1710 ई० के कई वर्ष पश्चात् ही रचा ग्रंथ होगा। यदि इसे मान लें तो कैसे कहाजाय कि गुरुरत्नमाला की टीका सुषमा काल 1720 ई० का था। इस समय में गुरुरत्नमाला पुस्तक ही रचा नहीं गया था। भिन्न काल 1586/1638 ई०, 17 वीं शताब्दी पूर्वार्ध,

17 वीं शताब्दी उत्तार्ध ; 18 वीं शताब्दी पूर्वार्ध, के प्रचार से यथार्थता मालूम नहीं होता और भ्रम अधिक होता है। सन्देह भी होता कि क्या इनमें से एक भी सत्य है? वास्तव तो यह है कि पुण्यश्लोकमंजरी, गुरुरत्नमाला, परिशिष्ठ, मकरन्द, सुषमा, आदि सब पुस्तक 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में लिखी पुस्तक है।

प्रथम बार वेदान्त पञ्चप्रकरणी नाम से एक पुस्तक प्रकाश हुई थी। इस पुस्तक में श्री सदाशिवब्रह्म रचित 'आत्मविद्याविलास' देकर पश्चात् चार और भी ग्रंथ दिये गये थे। इन चार ग्रंथों की प्रामाणिकता सिद्ध करने व महत्ता बढाने एवं इन चारों के रचयिता श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ही होने का प्रचारार्थ तथा अपना स्वार्थ सिद्ध प्राप्त करने के लिये ही इन चार ग्रंथों को 'आत्मविद्याविलास' के साथ प्रकाश किया गया था। यहां उल्लेख है 'श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मत्परमशिवेन्द्र सरस्वती श्री चरण शिष्येण विदितवेदितव्येन परोरजसा श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्रेण कृताः बोधार्या— गुरुरत्नमालिका — आत्मविद्याविलास — शिवमानसिकपूजा — सपर्यापर्यायस्तवः इति पञ्चकृतिः।' प्रथम पुस्तक के अन्त में यों उल्लेख है–' इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मज्जगद्गुरु भगवत्पाद विरुद श्री सदाशिवबोधेन्द्र सरस्वती प्रणीतं बोधार्या प्रकरणम्।' योगनिष्ठ श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र न कभी जगद्गुरु थे, न आपको भगवत्पाद का विरुदावली था और न आपके नाम में कहीं भी 'बोध' का पद प्रयोग किया गया था। आत्मसाक्षात्कारप्राप्त ब्रह्मनिष्ठ योगी श्री सादशिव ब्रह्म की महत्ता बढाने के लिये मठ का सम्बन्ध या नाता जोडने की आवश्ययता नहीं है। आज भी नेरूर समाधि में आपके भक्त आपसे मिलते हैं। ऐसे स्वतंत्र व्यक्ति को न मालूम क्यों मठ के बन्धन से बांधा जा रहा है। प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ प्रथमतः इस योगिराज महान् को कुम्भकोग मठ के आचार्य वंशावली में नाम जोडना चाहते थे और इस उद्धेश्य से प्रचार होने लगा कि आपकी विरुदावली 'श्री मज्जगद्गुरु भगवत्पाद' आदि थे। न मालूम क्यों आपका नाम वंशावलि में जोडा नहीं गया था? 'आत्मविद्याविलास' के रचयिता श्रीसदाशिवब्रह्म लिखते हैं 'परमशिवेन्द्र श्रीगुरु शिष्येणेत्थं सदाशिवेन्द्रेण। रचितेयमात्मविद्याविलास नाम्नी कृतिः पूर्णा।' उक्त कहा 'बोधार्या प्रकरण' आचार्य शङ्कर से रचित 'स्वात्मनिरूपणम्' पुस्तक ही है और इसे श्रीसदाशिवब्रह्म से रचित कहना न केवल मिथ्या प्रचार करना होगा पर लोगों को धोखा भी देना होगा। आत्मबोधेन्द्र ने 'सुषमा' में कहा है कि बोधार्या प्रकरण के रचयिता श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र हैं। पर कुम्भकोण मठ प्रचारक इन विषयों पर क्यों ध्यान दें जब तक उनका स्वार्थ सिद्धि प्राप्त होता है। 'आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परागत भारत के मुखिया शिरोमणी कांचीमठाधीष–परमशिवावतार–चलतेफिरते देव–दक्षिणामूर्ति अवतार' (कुम्भकोण मठ से प्रचारित) के मठानुयायियों का कालाकर्तृत धिक्कारने लायक है। 'सपर्यापर्यायस्तव' के 26 वां श्लोक ध्यान से पढने पर प्रतीत होता है कि इस पुस्तक के रचयिता आचार्य शङ्कर थे न कि नेरूर के सदाशिवब्रह्म। उक्त पुस्तक का प्रकाशन श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र के कहेजाने वाले रचित ग्रंथों का प्रकाशन के लिये न था पर कुम्भकोण मठ का 'जगद्गुरुपरम्परास्तव', 'जगद्गुरुपरम्परानाममाला,' एवं कुम्भकोण मठ के कल्पित चार ताम्र शासनों का प्रकाशन के लिये था जो सब उक्त पुस्तक में प्रकाश किये गये हैं। श्रीसदाशिवब्रह्म रचित गुरुरत्नमाला ग्रंथ नहीं है। कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों की पुशी के लिये अद्वितीय महनों का नाम या प्रख्यात रचयिताओं का नाम स्वरचित पुस्तक में देकर प्रमाणाभास पुस्तकें लिखकर प्रकाशन किया गया था।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 56 वां मठाधीश श्री सदाशिवबोधेन्द्र ने 'प्रवीरसेतुभूपाल' को तत्वोपदेश किया था। कुम्भकोणमठ कहते हैं कि श्री सदाशिवबोधेन्द्र का काल 1524/1539 ई० का था। परन्तु इतिहास नहीं कहता कि 1524/39 ई० में दक्षिण भारत में सेतुराज्य नाम का कोई राज्य था। 'प्रवीर' कौन थे? जब राज्य न था और राजा न था किस प्रकार तत्वोपदेश किया था? कल्पना व मिथ्या का भी सीमा होता है पर यह दुष्प्रचार सीमातीत है।

श्री सदाशिवब्रह्म का जन्मस्थल मदुरै नगर था। कुछ लोग कावेरी तीर पर जन्म स्थल होने का कथा सुनाते हैं पर प्रमाण नहीं मिलता। आप आन्ध्र देश ब्राह्मण थे। आपकी माता का नाम पार्वती एवं पिता का नाम सोमनाथ अवधानी था। आपका पूर्वाश्रम नाम शिवरामकृष्ण था। बाल्यावस्था में आपका विवाह भी हुआ। आप इसी समय संसार बन्धन के कष्टों पर सोचविचार करने लगे। इसके फलाभूत गृहस्थ जीवन आरम्भ करने पूर्व ही संसार बन्धन के कष्टों से अलग हो जाने का निश्चय कर विचार करने लगे कि ज्ञान प्राप्ति ही मोक्ष का मूल साधन है और 'तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्' के अनुसार अपने गुरु श्री परमशिवेन्द्र के पास पहुंचे। श्री परमशिवेन्द्र कुम्भकोण मठाधीश न थे जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। श्री परमशिवेन्द्र ने श्री शिवरामकृष्ण को सन्यासाश्रम देकर सदाशिवेन्द्र का नाम देते हुए दीक्षा दी थी। 'आचार्यवान्पुरुषोवेद' 'आचार्यादेवविदिताविद्या साधिष्टं प्रापत्' के अनुसार गुरु के पास अध्ययन कर उनकी कृपा से ज्ञान प्राप्ति की। कुम्भकोण मठवाले आपको श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्रसरस्वती, श्री सदाशिवेन्द्रसरस्वती, श्री मज्जगद्गुरुभगवत्पादविरुद श्री सदाशिवबोधेन्द्रसरस्वती, आदि नामों से प्रचार करते हैं और आपके गुरु का नाम परमशिवेन्द्रसरस्वती का नाम लेते हैं। 'आत्मविद्याविलास' में उल्लेख है 'परमशिवेन्द्र श्रीगुरु शिष्येणेत्तं सदाशिवेन्द्रेण। रचितेयमात्मविद्याविलास नाम्नी कृतिः पूर्णाः,' 'परमशिवेन्द्रार्य पादुकां नौमि,' 'श्रीगुरु परमशिवेन्द्रादेशवशोद्भूत दिव्य महिमाहम'। नवमणिमाला में लिखते हैं 'परमशिवेन्द्रं भजेहमश्रान्तं', 'श्रीमत्परम शिवेन्द्रं श्रीदेशिकानां वयं मुदा'। सिद्धान्त कल्पवल्लि में उल्लेख है 'तमहं परमशिवेन्द्रं वन्देगुरुमखिलतन्त्र जीवातुम्' 'इत्थं परमशिवेन्द्रानुग्रह भाजन सदाशिवेन्द्रकृता।' आपसे रचित किसी भी पुस्तक में 'इन्द्रसरस्वती' योगपद का नामो निशान नहीं है। आपसे रचित किसी ग्रन्थ में या स्तोत्र में या गायन गीत में अपने गुरु का कांची मठाधीष या किसी मठ का मठाधीष होने का उल्लेख नहीं है। इन दोनों महापुरुषों का कोई सम्बन्ध कांची मठ या कुम्भकोण मठ से न था। कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि 57 वां कुम्भकोण मठाधीष परमशिवेन्द्र (1539–1536 ई०) के शिष्य श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र सरस्वती थे और आपने श्री आत्मबोधेन्द्र 58 वां मठाधीष के (1586–1638 ई०) आज्ञा पर गुरुरत्नमाला पुस्तक की रचना की थी, यह सब कथा कल्पित है।

कुम्भकोण मठ के कुछ विद्वानों ने प्रचार किया था कि श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र श्रीरामसुब्बा शास्त्री (तिरुवस-नल्लूर) से वेदान्त शास्त्र का अध्ययन किया था। इस कथा का प्रमाण भी नहीं मिलता। केवल स्वप्रतिष्ठा से किया हुआ प्रचार है। श्रीसदाशिवब्रह्म अपने किसी ग्रंथ में भी इनका नाम नहीं लेते। अथवा आपके समसामयिक विद्वानों ने भी यह न कहा कि आप के विद्यागुरु श्रीरामसुब्बा शास्त्री थे। श्रीश्रृङ्गेरी मठाधीष जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीनरसिंह भारतीजी से रचित सदाशिवेन्द्र स्तुति द्वारा श्रीसदाशिवब्रह्म के योगसिद्धि, आत्मसाक्षात्कार एवं योगिक लीलाओं का वर्णन मिलता है। श्रीसदाशिवब्रह्म रचित ग्रंथ—ब्रह्मसूत्रवृत्ति, योगसुधाकर, सिद्धान्तकल्पवल्ली, केसरवल्ली, आत्मविद्याविलास, सूतसंहितासार, आदि हैं। आपसे रचित स्तोत्र–शिवमानसिक पूजा, दक्षिणामूर्ति ध्यान, आत्मानुसन्धानम्, स्वप्रोधितम्, नवमणिमाला, नववर्णरत्नमाला, स्वानुभूतिप्रकाशिका, मनोनियमनम्, आदि हैं। अद्वैतरसमंजरी नामक ग्रंथ है जिसमें 62 गायन गीत हैं जो वेदान्त तत्वों का प्रकाश करता है और यह पुस्तक आपसे रचा हुआ कहा जाता है पर कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि यह पुस्तक आपके शिष्य श्रीनल्लादीक्षित ने ही रचा था। आपका आत्मविद्याविलास ग्रंथ प्रसिद्ध है।

कुम्भकोण मठ का गुरुवंशावली यों है—(56) सर्वज्ञसदाशिवेन्द्र (1524/39 ई०), (57) परमशिवेन्द्र (1539/86 ई०), (58) आत्मबोधेन्द्र या विश्वाधिकेन्द्र (1586/1638 ई०), (59) भगवन्नाम बोधेन्द्र (1638

1692 ई०), (60) आत्मप्रकाशेन्द्र या गोविन्द सम्यमी (1692/1704 ई०) और आपके शिष्य आत्मबोध (सुषमा टीकाकार) थे। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि 57 वां मठाधीष श्रीपरमशिवेन्द्र के शिष्य श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र थे जिन्होंने 'गुरुरत्नमाला' की रचना 58 वां मठाधीष आत्मबोधेन्द्र की आज्ञा पर की थी। अब देखें कि यह वंशावली कहां तक यथार्थ है। यदि सिद्ध हो जाय कि यह कल्पित सूची है और श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र एवं आपके गुरु श्रीपरमशिवेन्द्र का कोई सम्बन्ध कांची कुम्भकोण मठ के साथ न था तो यह भी कहना होगा कि 'गुरुरत्नमाला' एवं 'सुषमा' भी स्वरचित कल्पित पुस्तक हैं।

सदाशिवब्रह्मेन्द्र के गुरु परमशिवेन्द्र ने शिवगीता भाष्य और दहरविद्याप्रकाशिका ग्रन्थ रचा है। श्री परमशिवेन्द्र अपने पुस्तकों में गुरु का नाम 'अभिनव नारायणेन्द्र' का उल्लेख करते हैं 'श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती पूज्यपाद शिष्य श्री परमशिवेन्द्र सरस्वती विरचिता ... ...' (दहरविद्याप्रकाशिका)। इससे प्रतीत होता है कि आपके दीक्षा गुरु श्री अभिनव नारायणेन्द्र थे। यदि परमशिवेन्द्र कुम्भकोण मठाधीष थे तो क्यों आपके गुरु अभिनव नारायणेन्द्र का नाम गुरु वंशावली में नहीं है? दीक्षा प्राप्त शिष्य जब मठाधीष है तो आपके गुरु भी मठाधीष होना था चूंकि वंशावली गुरु शिष्य परम्परा का ही होता है। कुम्भकोण मठ के गुरु वंशावली में श्री परमशिवेन्द्र के गुरु सर्वज्ञसदाशिव बोध का नाम उल्लेख है और इसके पूर्व मठाधीश चन्द्रचूड III का नाम उल्लेख है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सदाशिवब्रह्मेन्द्र के गुरु परमशिवेन्द्र कुम्भकोण मठाधीष न थे। कुम्भकोण मठ का कथन भी है कि श्री परमशिवेन्द्र ने अपने रचित 'तात्पर्यप्रकाशिका' पुस्तक में श्री अप्पयदीक्षित से रचित 'आत्मार्पणस्तुति' का उदाहरण दिया है अतएव परमशिवेन्द्र अप्पयदीक्षित काल के पश्चात् काल के हैं। यह कथन ठीक है। पर अनुसन्धान विद्वानों ने अप्पयदीक्षित का कालनिर्णय भी निश्चित किया है और इन विद्वानों में एक श्री महालिङ्ग शास्त्री ने प्रमाण युक्त सिद्ध किया है कि आपका काल 1520—1593 ई० का था (Jorm III)। कुछ विद्वान अप्पयदीक्षित के देहान्त काल को 40 वर्ष पश्चात् का बतलाते हैं। मदरास विश्वविद्यालय से प्रकाशित (1935) 'सिद्धान्तलेषसंग्रह' (श्री अप्पयदीक्षित) पुस्तक Vol. I में अनुवादक श्री एस. एस. सूर्यनारायण शास्त्री लिखते हैं 'All that is certain is that the best part of Appayya's work seems to belong to the second half of the 16th century; whether he died at the close of that century or in the first quarter of the seventeenth is uucertain." अर्थात् तात्पर्य प्रकाशिका के रचयिता परमशिवेन्द्र का काल 17 वीं शताब्दी का होना निश्चित होता है पर कुम्भकोण मठ का कथन है कि परमशिवेन्द्र का काल 1539/1586 ई० का था। इससे यह निश्चय होता है कि 'तात्पर्यप्रकाशिका' के रचयिता परमशिवेन्द्र अन्य एक व्यक्ति थे और आपका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ के साथ कुछ न था। परमशिवेन्द्र से रचित 'दहरविद्याप्रकाशिका' में आपने कहा है कि श्री त्रयम्बकमसि आदियों की प्रार्थना पर यह पुस्तक रची गयी थी। तंजौर महराठा महाराजा श्री शाहाजी (1684—1712 ई०) का मंत्री श्री त्रयम्बकमसि थे। इतिहास इसका पुष्टी करता है। अर्थात् 17 वीं शताब्दी में लिखी हुई 'दहरविद्याप्रकाशिका' 'तात्पर्यप्रकाशिका' के रचयिता परमशिवेन्द्र अन्य ही व्यक्ति हैं और आप कुम्भकोण मठ के 57 वां मठाधीष (1539/86 ई०) नहीं थे। स्वकल्पित गुरुरत्नमाला पुस्तक को प्रामाणिक पुस्तक बनाने की चेष्टा में श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र का नाम दिया गया है।

कामकोटि पदीपम में कहा गया है कि 'अद्वैतभूषण' (सूत्रभाष्यव्याख्या) के रचयिता बोधेन्द्र ने अपने गुरु का नाम गीर्वाणेन्द्र कहा है और आपसे रचित अन्य पुस्तकों में अन्यत्र अपने गुरु का नाम विश्वाधिकेन्द्र कहा है।

आगे लिखते हैं कि गीर्वाण योगी को किसी एक जगह 'अद्वैतपीठस्थितदेशिक' कहे जाने के कारण एवं विश्वाधिकेन्द्र कुम्भकोण मठ के मठाधीष होने के कारण गीर्वाणेन्द्र एवं विश्वाधिकेन्द्र दोनों अभिन्न व्यक्ति हैं। कुम्भकोण मठ के 'सर्वज्ञ पन्डित' श्रीपोलगम रामाशास्त्री उपर्युक्त कथा सुनाकर इसे प्रमाण में प्रचार करते हैं। यह सब मिथ्या प्रचार है। कुम्भकोण मठ के अन्य विद्वान इसके विरोध में कहा है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष के षष्टिअब्दपूर्ति अवसर पर कामकोटि कोषस्थान द्वारा ब्रह्मसूत्र भाष्य 1954 ई० में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक के उपोद्घात में लिखा है 'अद्वैत भूषणम् कर्तारः बोधेन्द्र सरस्वत्यः ... गुरूणां नाम भेदात् नेमे भगवन्नाम माहात्म्यख्यापन परग्रन्थ रचितारः प्रसिद्ध बोधेन्द्र इतिभाति।' अद्वैतभूषणम् के रचयिता बोधेन्द्र सरस्वती थे। गुरु के नाम में भेद पाने से आप भगवन्नाम माहात्म्य ग्रंथों के रचयिता नहीं हैं सो स्पष्ट विदित होता है। इससे यह भी निश्चित होता है कि दो बोधेन्द्र थे। एक बोधेन्द्र जो गीर्वाणेन्द्र के शिष्य थे और दूसरे बोधेन्द्र जो भगवन्नाम माहात्म्यों का प्रकाश किया था। मदरास राजकीय ओरियन्टल सीरीज में 'आभोगः कल्पतरुव्याख्या' 1955 ई० में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक की प्रस्तावना व टिप्पणी शास्त्ररत्नाकर पोलगम श्रीरामा शास्त्री एवं पन्डितराज श्री एस. सुब्रह्मणिय शास्त्री ने लिखी है और इस प्रस्तावना में उल्लेख है 'बोधेन्द्रः (A. D. 1700)—अद्वैतभूषणाख्यायाः व्याख्यायाः कर्तारः।' 'कामकोटि प्रदीपम' में पोलगम श्रीरामा शास्त्री ने जो प्रचार किया है उसे क्यों नहीं यहां आपने कहा? समय समय भिन्न जगहों में भिन्न प्रचार करना तो कुम्भकोण मठाभिमानियों का स्वभाव है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि गीर्वाण योगी को 'अद्वैतपीठस्थितदेशिकः' कहने से आप ही कुम्भकोण मठाधीष विश्वाधिकेन्द्र हैं। कांची नगर का जो सब प्राचीन शिलाशासन थे अब प्रकाश हुए हैं उससे तो प्रतीत होता है कि अद्वैत सिद्धान्त प्रचारार्थ कई परिव्राजक अपने शिष्यों के साथ मठ में वास करते थे। अनेक शिष्यों के साथ गुरु का निवास स्थल जहां अद्वैत सिद्धान्तों का पाठ होता है उसे अद्वैत पीठ कहा जा सकता है ('ब्रह्मघोषो भवेद् यत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः। देव प्रदानकं वेश्म मठं इत्यभिधीयते—ब्रह्मपुराण') ('मठः छात्रादीनिलयः')। कांची में श्रीउपनिषद्ब्रह्मेन्द्र मठ, अपने को प्रथम अद्वैत मठ होने का प्रचार भी करते हैं। तंजौर में एक गृहस्थ समृद्धशाली प्रकान्ड विद्वान श्रीगोविन्द दीक्षितर थे और आपको 'अद्वैतस्थापकाचार्य' की उपादि थी। आपको किस प्रकार कहा जाय कि आप कांची मठ मठाधीष थे? श्रीधर्मराजाध्वरी के दो गुरु थे एक यति नृसिंहाश्रम सरस्वती और दूसरे वेलाङ्गुटि (वेलांगुलि) ग्रामवासी श्रीवेंकटनाथ थे। यह भी कहा जाता है कि आप श्री नृसिंहाश्रम के प्रशिष्य थे। श्रीधर्मराजाध्वरी का पुत्र रामकृष्ण ने 'वेदान्तशिखामणि' नामक टीका लिखी है। श्रीनृसिंहाश्रम भी श्रीमधुसूदन के समकालीन काशीस्थ प्रौढ वेदान्ती थे। दक्षिण से काशी में आकर रहने लगे। भट्टोजी दीक्षित के घर के सब लोग इनके शिष्य थे। आपने अनेक ग्रंथों का रचना की थी। श्रीधर्मराजाध्वरी 'वेदान्तपरिभाषा' में श्रीवेंकटनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं 'श्रीमद्वेङ्कटनाथाख्यान् वेलांगुटि निवासिनः। जगद्गुरूनहं वन्दे सर्वतन्त्र प्रवर्तकान्।' सर्वतन्त्र प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीवेंकटनाथ किस मठ के जगद्गुरु थे? यह निश्चित है कि आप कांची कुम्भकोण मठ के जगद्गुरु मठाधीष न थे। शिष्य अपने अनन्य भक्ति से गुरु को जगद्गुरु, अभिनवशङ्कर, सर्वतन्त्रप्रवर्तक, अद्वैतविद्यास्थापनाचार्य, आदि उपादि देते हैं तो क्या इससे कहा जाय कि ये सब कांची मठ को ही लागू होता है या इन सबों का सम्बन्ध कांची मठ के साथ था? अतः यह कहना मूर्खता है कि गीर्वाणेन्द्र कुम्भकोण मठाधीष थे और आपही का उर्फ नाम विश्वाधिकेन्द्र था।

कामकोटि प्रदीपम में कहा गया है कि श्री मधुसूदन सरस्वती ने 'श्रीराम विश्वेश्वरमाधवानाम्' ऐसा तीन गुरुओं का नाम लेकर वन्दना की है अतः श्री मधुसूदन के परमगुरु श्री राम हैं। आगे लिखते हैं कि श्री विश्वेश्वर ही विश्वाधिकेन्द्र हैं (स्वेच्छावाद प्रमाण!) और आपके गुरु परमशिवेन्द्र हैं अर्थात् श्री मधुसूदन के लिये भी परमगुरु हैं। परन्तु पहिले श्री

राम को परमगुरु कहा है और इस भिन्न कथन का समन्वय करते हुए कुम्भकोण मठ के 'सर्वज्ञपन्डित' कहते हैं कि श्री राम ही ईश्वर हैं और आपने शिवपूजन की थी इसलिये श्री राम या परमशिव दोनों एक हैं अर्थात् परमशिव या परमशिवेन्द्र जो 57 वां मठाधीष थे आप मधुसूदन के परमगुरु थे। ऐसे तो शिव के अष्टोत्तरशत या त्रिशती या सहस्रनाम से अनेक अन्य नाम भी लिया जा सकता है और सबों को ही एक कहा जा सकता है पर क्या प्रारब्ध का मारा परतंत्र भिन्न व्यक्ति सब एक ही अभिन्न व्यक्ति हैं? वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष के साथ वास करनेवाले एवं कुम्भकोण मठ के परम अभिमानी यति श्री अनन्तानन्देन्द्र सरस्वती ने अपने रचित पुस्तक 'Saintly seers of the ship of Brahmavidya' में श्री मधुसूदन के बारे में जो कुछ लिखा है सो सब कुम्भकोण मठ के प्रचार को मिथ्या ठहराता है। आप लिखते हैं 'Sri Madhusudana Sarasvati ... ... is said to belong to the village of Kottalipalli in Faridpur district in Bengal' 'His original name was Kamala Nayana. After studying Nyaya under *One Sri Rama* who is one of the three Gurus mentioned by him in his Advaita Siddhi and Gudartha Dipika, he went to Varanasi where he was intiated into Sanyasa by Visvesvara under the name of Madhusudana Sarasvati. It was while studying at Varanasi that he wrote most of his works' कुम्भकोग मठ के परम अभिमानी ने यह नहीं कहा कि 'एक कोई श्री राम' ही कुम्भकोण मठाधीष परमशिवेन्द्र थे और काशी के श्री विश्वेश्वर ही कुम्भकोण मठाधीष विश्वाधिकेश्वर थे। सर्वज्ञ पन्डित अपनी विद्वत्ता बेचकर परतंत्र बनते हैं तों यही हाल होता है।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय था कि मधुसूदन सरस्वती दक्षिण भारत के थे पर इस अभिप्राय का आधार या प्रमाण नहीं था। अब प्रमाण मिलते हैं जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्री मधुसूदन सरस्वती बङ्गाल देश के थे। मदरास राजकीय ओरियन्टल सीरीज में प्रकाशित 'आभोगः कल्पतरुव्याख्या' पुस्तक की प्रस्तावना व नोट शास्त्र रत्नाकर पोलगम श्री रामाशास्त्री एवं पन्डितराज श्री एस. सुब्रह्मणिय शास्त्री ने लिखा है। आप लिखते हैं "मधुसूदन सरस्वत्यः (A. D. 1520)—एते च वङ्गदेशीयाः इति प्रसिद्धिः।" न मालूम क्यों श्री पोलगम राम शास्त्री 'कामकोटि प्रदीपम' में भिन्न प्रचार करने लगे हैं? श्रीमधुसूदन सरस्वती जी का जीवन वृत्तान्त सामग्री अब उपलब्ध होते हैं—(1) पन्डित हरिदाससिद्धान्तवागीश के पास 'वैदिकवादमीमांसा' और 'भवभूमि वार्ता' जो कोटालीपाडा का इतिहास है और जिसे राघवेन्द्र कविशेकर ने 1667 ई० में लिखा था, इससे सामग्री मिलते हैं। (2) 'कुलपञ्जिका' से भी विषय प्राप्त होते हैं। (3) विश्वकोष। (4) अद्वैतसिद्धि के उपोद्घात में श्री राजेन्द्रघोष का अभिप्राय। (5) मधुसूदन सरस्वती जी का आश्रम लेने के पहले व पश्चात् का जीवन वृत्तान्त सप्रमाण प्राप्त होते हैं और ऐसा कोई विवरण दक्षिण भारत में मिलता नहीं है। (6) दक्षिण भारत के विद्वानों ने अभी तक सिद्ध न कर सके कि आप दाक्षिणात्य थे। (7) मधुसूदन के पूर्वाश्रम ज्येष्ठ भ्राता श्री यादवानन्द न्यायाचार्य की संतति पीढी में आया हुआ दसवां सन्तति एक श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ति हैं। आप कलकत्ता बेथ्यून कालेज के अध्यापक थे। आपने अपनी वंशावली विवरण अनुसन्धान पत्रिकाओं में प्रकाश किया है। (8) फरीदपुर जिला में मधुमती नदी है और श्री मधुसूदन इस नदी की बाढ में वरुण की कृपा से नदी पार किया था और यह कथा आज भी सुनाया जाता है। मधुसूदन अपने गांव छोडकर काशी जाते समय इस नदी को पार करना पडा था। (9) मधुसूदन के पिता का नाम श्री पुरन्धराचार्य था और आपके स्मृति में आज भी इस गांव में आपसे प्रतिष्ठित मन्दिर 'दक्षिणामूर्ति कालिका' आपका याद कराता है। (10) 1920 ई० में इस गांव में 'मधुसूदन सरस्वती मन्दिर' नामक पुस्तकालय भी खोला गया है। (11) 'भक्तिरसायन' ग्रन्थ के उपोद्घात में श्री गोस्वामी दामोदर

शास्त्री ने उक्त विषयों का पुष्टी करते हैं। आप अपने गुरु म. म. श्रीयदुनाथ शर्मा भट्टाचार्य (नव्य-न्याय शास्त्र अध्यापक-नवद्वीप) से सुनी हुई कथा का प्रकाशन किया है। उक्त सामग्री के आधार पर सिद्ध होता है कि मधुसूदन दाक्षिणात्य न थे।

श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ति से प्राप्त वंशावली का विवरण—श्री राममिश्र—माधव—गोपाल—गणपति—सनातन—कृष्ण गुणार्णव—जितामित्र, आचार्यशेखर, पुरन्धराचार्य—(पुरन्धराचार्य के पांच पुत्र) श्रीनाथचूडामणि, यादवानन्द न्यायाचार्य, कमलनयन (मधुसूदन सरस्वती-सन्यास नाम), वागीश गोस्वामी या वागीशचन्द्र, नाम न मालूम —(यादवानन्द के चार पुत्र) गौरीदास तर्क पञ्चानन, विश्वनाथ, रघुनाथ, माधव अविलम्ब सरस्वती—(माधव अविलम्ब के वशज) वाणीनाथ—रुद्रराम—घनश्याम — रमापति — गौरीप्रसाद — मदनमोहन —ज्ञानदाकण्ठ—चिन्ताहरण। श्री मधुसूदन का भ्राता श्री यादवानन्द की पीडी में दसवां वंशज श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ति हैं और आप कलकत्ता वेथ्यून कालेज में अध्यापक हैं।

श्रीमधुसूदन सरस्वती का पूर्वाश्रम नाम कमलनयन था। पूर्वबङ्गाल, फरीदपुर जिला, कोटालिपाडा गांव में एक श्रीपुरन्धराचार्य के पांच पुत्रों में (चार पुत्र का भी कथा कही जाती है) एक कमलनयन थे। शहाबुद्दीन गोरी का अत्याचार क्रिया कलापों के कारण लगभग 1400 ई० में उत्तर भारत के काश्यप गोत्र कन्नौजी ब्राह्मण श्रीराम मिश्र और अन्य कुछ विद्वान बङ्गाल नवद्वीप में आकर बसे। श्रीराम मिश्र के छठवें वंशज श्री पुरन्धराचार्य थे। पुरन्धर के पिता कृष्ण गुणार्णवाचार्य नवद्वीप छोडकर पूर्व बङ्गाल में यशोहर गांव में जा बसे। पर पुरन्धर यहां से पुनः फरीदपुर जिला कोटालीपाडा गांव में आ बसे। आपने यहां मकान बनवाई और 'दक्षिणामूर्ति कालिका' मन्दिर भी बनवाया। श्रीकमलनयन का जन्म यहीं हुआ था। श्रीकमलनयन ने श्रीहरिराम तर्कवागीश के पास न्याय शास्त्र पढा और आप श्रीकमलनयन के प्रथम विद्यागुरु थे, जिन्हें आपने 'अद्वैतसिद्धि' और 'गूढार्थदीपिका' में 'श्रीराम' के नाम से उल्लेख किया है। कमलनयन अपने बाल्यावस्था में ही अपनी आशा व ध्येय पर पानी फिरते देखकर और कांचन उपार्जन के लिये जन्म बिताना व्यर्थ समझकर आप कोटालीपाडा गांव छोडकर काशी पहुंचे। काशी में श्रीविश्वेश्वर सरस्वती से सन्यासाश्रम दीक्षा लेकर श्रीमधुसूदन सरस्वती का नाम धारण किया। सन्यासदीक्षा के पश्चात आपने श्रीमाधव सरस्वती के पास वेदान्त पाठ पढा। आपके विद्यागुरु का नाम 'अद्वैतसिद्धि' और 'गूढार्थदीपिका' में आपने दिया है। काशी के चौसट्टी घाट पर स्थित गोपाल मन्दिर में वास करते हुए आपने ग्रंथों की रचना की थी। नव्य अद्वैतवेदान्त के इतिहास में मधुसूदन नाम अग्रगण्य है और अपने समय के सन्यासी सम्प्रदाय के अग्रणी थे। इनसे रचित प्रधान ग्रंथ—संक्षेपशारीरक टीका, गूढार्थदीपिका (गीता टीका), सिद्धान्तबिन्दु (दशश्लोकी टीका), वेदान्तकल्पलतिका (मुक्ति के स्वरूप का विवेचक ग्रन्थ), अद्वैत रत्नरक्षण (भेदरत्न का खण्डन), अद्वैतसिद्धि ('न्यायामृत' नामक द्वैत ग्रन्थ का खण्डन), आदि हैं। अद्वैतसिद्धि को सिद्धनामांन्त ग्रंथों में चतुर्थ ग्रंथ कहा जाता है ब्रह्मसिद्धि (मण्डनमिश्र), नैष्कर्म्यसिद्धि (सुरेश्वराचार्य), इष्टसिद्धि (विमुक्तात्मा), अद्वैतसिद्धि (मधुसूदन सरस्वती)। अद्वैतसिद्धि में श्रीमधुसूदन सरस्वती ने अप्पयदीक्षित को सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। इन दोनों महापुरुषों का काल 16 वीं शताब्दी उत्तरार्ध व 17 वीं शताब्दी प्रारम्भ तक का ही था। यह कहा जाता है कि श्रीअप्पय दीक्षित ने श्रीनृसिंहाश्रम के प्रभाव में आकर शाङ्कर मत का ग्रहण किया था। श्रीनृसिंहाश्रम श्रीमधुसूदन के समकालीन काशीस्थ प्रौढ वेदान्ती थे। श्रीतुलसीदास आपके मित्र थे और श्रीपुरषोत्तम सरस्वती आपके शिष्य थे। जब मुसलमान फकीरों ने सन्यासियों पर अत्याचार करने लगे थे तब श्रीमधुसूदन ने बीरबल की सहायता प्राप्त कर अकबर से मिले थे (J. R. A. S. July 1925)

इसी समय यह निश्चय हुआ कि ब्राह्मण सन्यासी तीर्थ, आश्रम, सरस्वती योगपट्ट धारण करें और अब्राह्मण सन्यासी बाकी सात योगपट्ट धारण करें (वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, भारती) और अब्राह्मण सन्यासी वन्दूक आदि स्वरक्षणार्थ रख सकते हैं। अन्त काल में मधुसूदन सरस्वती काशी छोड हरिद्वार पहुंचे और आपका निर्याण वहीं हुआ।

श्रीप्रहलाद चन्द्रशेखर दीवानजी, M. A, L.L.M., Bombay, Civil service, Judicial Branch 'सिद्धान्तविन्दु' पुस्तक की प्रस्तावना में लिखते हैं '... ... and hold A. D. 1540. the approximate date fixed by the editor of the Vedantakalpalatika to be the proper birth date of our author.' '... ... the only evidence that we have of the period for which he lived is that contained in the Introduction to the 'Harilila' based upon the 'Vaidika-vadamimansa' according to it he lived for 107 years.' '... ... we arrive at 1540 to 1647 as the life time of our author according to the materials now at our commnad.' इससे प्रतीत होता है कि मधुसूदन सरस्वती का काल 1540 से 1647 तक का था। उपर्युक्त जीवन विवरण से सिद्ध होता है कि श्रीमधुसूदन या आपके गुरु या परमगुरु किसी का भी सम्बन्ध कांची मठ से बिलकुल न था। इन धर्माचार्यों को ऐसे मिथ्या प्रचार शोभता नहीं है।

'सिद्धान्तविन्दु' के उपोद्धात में उल्लेख है 'श्री शङ्कराचार्य नवावतारं विश्वेश्वरं विश्वगुरुम् प्रणम्य।' श्री मधुसूदन अपने गुरु की महत्ता और अपनी श्रद्धा भक्ति विनय वन्दना पूर्वक यहां दिखाई है। अपने गुरु को श्री शङ्कराचार्य के नवीन अवतार पुरुष एवं काशी के विश्वगुरु श्री विश्वेश्वर समान कहा है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि यहां का विश्वगुरु पद कांची मठ का संकेत करता है। यह प्रचार असत्य है। विश्वगुरु का अर्थ मठाधिपति नहीं है। टीकाकार श्री पुरुषोत्तम कहते हैं 'विश्वगुरुम्–विश्वेषां हितोपदेष्टारं'। श्री मधुसूदन सरस्वती के शिष्य श्री पुरुषोत्तम थे और आपने 'सिद्धान्तविन्दु' की टीका लिखी है। आप कहते हैं 'इति श्री मधुसूदन सरस्वती श्री पादशिष्य पुरुषोत्तम विरचितो बिन्दुसंदीपनाख्यो ग्रन्थः।' मूल में श्री मधुसूदन ने या टीकाकार श्री पुरुषोत्तम ने कहीं भी यह न कहा कि विश्वेश्वर का अर्थ विश्वाधिकेन्द्र भी है या विश्वेश्वर ही कुम्भकोण मठाधीष विश्वाधिकेन्द्र हैं। 'सिद्धान्तविन्दु' के अन्त में कहा है 'श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री विश्वेश्वर सरस्वती भगवत्पूज्यपाद शिष्य श्री मधुसूदन सरस्वती विरचितः सिद्धान्तविन्दुनामाग्रन्थः समाप्तः।' श्री मधुसूदन ने दो या तीन ग्रन्थों में अपने विद्यागुरु का नाम लिया है पर अन्य सब ग्रन्थों में दीक्षागुरु श्री विश्वेश्वर सरस्वती का नाम ही लिया है। जहां विद्यागुरु का नाम लिया है वहां भी अपने दीक्षागुरु का नाम जोडकर उल्लेख किया है। मधुसूदन नाम के अनेक ग्रंथ रचयिता थे पर इनमें कुछ ही 'सरस्वती' योगपट्ट नामधारी थे। म. म. श्रीअभ्यङ्कर शास्त्री जी का कहना है कि कुल 25 मधुसूदन नामधारी ग्रंथ रचयिता थे जिनमें पांच 'सरस्वती' भी थे पर आप इनकी सूची नहीं दी है। डा० ऑफ्रेक्ट ने सूची में 15 या 16 मधुसूदन नाम लिया है पर इनमें एक ही 'मधुसूदन सरस्वती' का नाम है। आप ही 'सिद्धान्तविन्दु' के रचयिता हैं। अद्वैतसिद्धि अन्तभाग नौ श्लोकों के द्वितीय श्लोक में मधुसूदन ने तीन गुरुओं का नाम लिया है—राम, माधव, विश्वेश्वर। पुस्तक के अन्त में लिखा है'इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री विश्वेश्वर सरस्वती श्री चरणशिष्य श्री मधुसूदन सरस्वती विरचितायामद्वैतसिद्धौ ... ... '। श्री विश्वेश्वर सरस्वती आपके दीक्षागुरु थे। Baroda—Oriental Institute 1933— द्वारा प्रकाशित 'सिद्धान्तविन्दु' के संपादक श्री प्रहलाद चन्द्रशेखर दिवानजी हैं। आप प्रस्तावना में लिखते हैं '... ... and in the second of the nine verses at the end of the work he acknowledges his indebtedness to Madhava Sarasvati for having become versed in making out

the meanings of the scriptures.' इससे प्रतीत होता है कि आपके विद्यागुरु श्री माधव सरस्वती थे। म. म. श्री अभ्यङ्कर शास्त्री ने 'सिद्धान्तविन्दु' पुस्तक का एक लम्बी उपोद्घात लिखा है जो पढने लायक है। श्री मधुसूदन सरस्वती के पूर्वाश्रम विद्यागुरु श्री हरिराम तर्कवागीश थे और आपने न्याय शास्त्र आपसे पढा था। श्री मधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैतसिद्धि' और 'गूढार्थदीपिका' में 'श्री राम' के नाम से उल्लेख किया है।

श्री मधुसूदन के मित्र तुलसीदास थे (1497—1623 ई०)। श्री मधुसूदन के साथ निवास करने वाले सन्यासियों को मुसलमान फकीर लोग कष्ट देते थे और श्रीमधुसूदन ने बीरबल द्वारा शाहनशाह अकबर (1556—1605 ई०) को यह विषय कहला भेजा था। पश्चात् श्री मधुसूदन स्वयं अकबर से मिले। इतिहास से प्रतीत होता है कि बीरबल का देहान्त 1586 ई० में हुआ था। अर्थात् श्री मधुसूदन अकबर से 1586 ई० पूर्व ही मिले होंगे। मधुसूदन ने सन्यास दीक्षा 1586 ई० के अनेक वर्ष पूर्व ही ली होगी। कुम्भकोण मठ वंशावली में कहा है कि विश्वाधिकेन्द्र (अर्थात् श्री मधुसूदन के गुरु श्री विश्वेश्वर—कुम्भकोण मठ की व्याख्या) 1586 में सन्यास लेकर मठाधिपति भये (1586—1638 ई०)। यह कैसे हो सकता है कि श्री मधुसूदन के गुरु विश्वाधिकेन्द्र थे जिन्होंने सन्यासाश्रम श्री मधुसूदन के पश्चात् ही ग्रहण किया था। काशी के श्री विश्वेश्वर सरस्वती का काल 15 वीं शताब्दी अन्त का है। 15 वीं शताब्दी अन्त के काशीवासी श्री विश्वेश्वर सरस्वती और 16 वीं शताब्दी उत्तरार्ध के कांची वासी मठाधिपति विश्वाधिकेन्द्र ये दोनों किस प्रकार अभिन्न एक व्यक्ति हो सकते हैं। कामकोटि कोषस्थान से प्रकाशित 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' के उपोद्घात में लिखा है 'संक्षेपशारीरक सारसंग्रहः श्री विश्वेश्वर सरस्वती शिष्य श्री मधुसूदन सरस्वतीभिः कृतः ... ... कालः कि. प. 1550'। यह कुम्भकोण मठ प्रचारों के विरुद्ध है। हर्ष नैषध में कांची और यागेश्वर देखा तो कुम्भकोण मठ ने झट से कांची व योगेश्वर बना डाली उसी प्रकार यहां 'विश्व' पद एवं 'राम' पद मिल जाने से श्री मदुसूदन को अपनी कल्पना जगत में कुम्भकोण मठ परम्परा होने की कथा भी सृष्टी कर ली है। सिद्ध होता है कि श्री विश्वेश्वर सरस्वती एवं श्री मधुसूदन का सम्बन्ध कुम्भकोण मठ के साथ कुछ न था और विश्वाधिकेन्द्र का कल्पित नाम कल्पित सूची में जोड ली है। पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे कि कुम्भकोण मठ का 56 वां मठाधीष एवं 57 वां मठाधीष भी कल्पित हैं और जो कुछ प्रमाण कुम्भकोण मठ देते हैं वे सब मिथ्या हैं।

कुम्भकोण मठ 'सुषमा' और 'पुण्यश्लोकमंजरी, परिशिष्ठ' के आधार पर प्रचार करते हैं कि विश्वेश्वर सरस्वती उर्फ विश्वाधिकेन्द्र ही बोधेन्द्र के गुरु थे और आप ही का नाम नवशङ्कर या अभिनवशङ्कर भी था और आपने रुद्रभाष्य रचा था। 'रुद्रभाष्य' के रचयिता अभिनवशङ्कर थे पर यह श्री अभिनवशङ्कर का सम्बन्ध कुम्भकोण मठ के साथ कुछ न था। श्री अभिनवशङ्कर के शिष्य श्री वेंकटनाथ थे। श्री वेंकटनाथ ने गीतापर 'ब्रह्मानन्दगिरि' टीका लिखी है। टीका के प्रारम्भ में लिखते हैं 'श्री मद्रामब्रह्मश्रीचरणस्मरण परिणत स्फुरणः' और अध्याय के अन्त में लिखते हैं 'इति परमहंसपरिव्राजक सार्वभौम श्रीमद द्वैतविद्या प्रतिष्ठापनाभिनवशङ्कराचार्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीमद्रामब्रह्मानन्दतीर्थ भगवत्पूज्यपादानां शिष्येग श्री वेंकटनाथेन कृते ... ...'। यही श्री रामब्रह्मानन्दतीर्थ अभिनवशङ्कर थे। 'पाषान्डगजकेसरी' पुस्तक भी आपसे रचित है। इससे स्पष्ठ सिद्ध होता है कि 'रुद्रभाष्य' कर्ता 'श्री अभिनवशङ्कर' कुम्भकोण मठाधीष न थे और न आपका नाम विश्वेश्वरसरस्वती या विश्वाधिकेन्द्र था जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है।

'ब्रह्मतत्वप्रकाशिका' पुस्तक (1909 ई०) की प्रस्तावना में श्री टि. के. बालसुब्रह्मणिय अय्यर लिखते हैं 'This village (Tiruvasanallur) was at that time particularly blessed in her teachers and pupils. There was Ramabhadra Dikshita ... ..., there was also Sri Venkatesa,

yet in his teens ... ... and there was Sadasiva, the subject of our sketch, a student yet.' इससे प्रतीत होता है कि वेंकटेश्वर, गोपालकृष्ण, सदाशिव आदि तीनों बाल्यावस्था में एक ही समय में भाई विद्यार्थी थे। आगे आप लिखते हैं **'It was about 1738 A. D. that Sadasiva roamed into the forest adjoining Tiruvarangulam, a few miles off Pudukotah ... ... he was seen by the then ruler of the State Vijaya Raghunatha Tondaman (1730—69 A. D.) ...... Sadasiva directed him to his fellow pupil Gopalakrishna Sastri who was then living in Bhikshandarkovil. This Sastri was accordingly invited to the court and by a copper plate Sasana dated 1738 A. D., that still exists, grants of land were made to him.'** डा. राघवन् **'A Seminar on Saints—Part I'** —में लिखते हैं जो विषय उपर्युक्त श्री टि. के. बालसुब्रह्मणिय अय्यर के कथनों की पुष्टि करता है—**'Sadasivendra, before he renounced life, was the native of the well known village, Tiruvisanalloor on the Cauvery, near Kumbakonam which Shahaji the Mahratta king of Tanjore, A. D. 1684—1712, gave away as Sahajipuram to 46 scholars. Among these was Moksham Somasundara Avadhani, who was the father of our saint whose civil name was Sivarama. Sivarama as a student was in the company of three outstanding personalities of the time, Ramabhadra Dikshita, Sridhara Venkatesa Ayyaval and Gopalakrishna Sastri, the last of whom later became, at Sadasivendra's instance, the preceptor of the Tondaman chief of Pudukottah ... ... Sivarama renounced life, sought the feet of the sannyasin Paramasivendra Sarasvati, and himself entered the order as Sadasivendra Saraswati.'** लगभग 1738 ई॰ में सदाशिवब्रह्म जङ्गलों में भ्रमण करते थे और इसी समय पुदुकोट्टा राजा विजयरघुनाथ तोन्डैमान ने (1730—60 ई॰) आपसे भेंट की थी। सदाशिव ने अपने भाई विद्यार्थी गोपालकृष्ण से मिलने को कहा था। 1738 ई॰ के ताम्रशासन से मालूम होता है कि गोपालकृष्णशास्त्री पुदुकोट्टै पहुंचे और महाराजा ने भूदान दिया था। यहां ध्यान देने की बात है कि 18 वीं शताब्दी प्रारम्भ तक सदाशिव के पिता जीवित थे। मालूम होता है कि विद्याभ्यास काल में आपको विरक्ति आनेपर आप घर छोड चल पडे। आपका गुरु का काल 17 वीं शताब्दी उत्तरार्ध एवं 18 वीं शताब्दी प्रारम्भ के कुछ वर्ष थे। डा. राघवन कहते हैं कि शिवराम ने (श्री सदाशिवब्रह्म सन्यासनाम) 'सन्यासी परमशिवेन्द्रसरस्वती' के पास सन्यास दीक्षा ली थी। यदि परमशिवेन्द्र कुम्भकोण मठाधीष होते तो आप अवश्य उल्लेख करते परन्तु आपने केवल 'सन्यासी परमशिवेन्द्र' ही कहा है। डा. राघवन कुम्भकोण मठ प्रचारों के समर्थक होते हुए भी क्यों आपने कुम्भकोण मठाधीष होने का विषय नहीं उल्लेख किया ?

पुदुकोट्टै राजा विजयरघुनाथराय तोन्डैमान (1730—69 ई॰) ने श्री सदाशिवब्रह्म से अनुग्रह व आशीष प्राप्त कर आपसे लिखी रेती को (मन्त्राक्षरों का उपदेश रेती पर लिख कर करते थे) संग्रह कर अपने राजमहल ले आकर उसकी पूजन करते थे एवं 'श्रीविजय' नामक आन्ध्र भाषा में देवी (अम्मन्) सिक्का तैय्यार भी किया था। सदाशिवब्रह्म के आज्ञा पर दक्षिणामूर्ति एवं बालापरमेश्वरी की पूजन अपने राजमहल के मन्दिर में राजा ने प्रारम्भ की थी। 1738 ई॰ में सदाशिवब्रह्म ने राजा को उपदेश दिया था। बाल्यावस्था से ही परमज्ञानी थे इसलिये आपका जन्म 18 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में होना निश्चित होता है।

तंजौर सरस्वती महाल पुस्तकालय में 'आत्मविद्याविलास' पुस्तक की एक प्रति (नं Ms. 7687) है जिसके अन्त में श्री मल्हारि पन्डित से तंजौर राजा शरभोजी I को लिखा हुआ पत्र का नकल भी दिया है। 'सहेन्द्रविलास' के प्रस्तावना में डा. राघवन उपर्युक्त विषय की पुष्टि करते हुए लिखते हैं '... ... ... at Dipambapuram, the gift village bearing the queen-mother's name, the Pandita met the holy Sadasiva Brahmendra, submitted to him the prayer of Serfoji for progeny ... ... ' तजौर राजा शरभोजी I (1712—1728 ई०) के एक दर्बारी पन्डित मल्हारि पन्डित राजा को पत्र लिखकर कहते हैं कि आप ने दीपाम्बापुरम गांव में सदाशिवब्रह्मेन्द्र को प्रत्यक्ष देखा था 'सदाशिव ब्रह्मरूपं ब्रह्मादाक्ष चिरेप्सितम्'। और आपने राजा को पुरुष सन्तति होने की प्रार्थना कर, उनका अशीर्वाद प्राप्तकर, उनका भिक्षावन्दन भी कराया था। अतः श्री सदाशिव ब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी का ही है।

तंजौर राजा शाहाजी ने 1693 ई० में तिरुवसनल्लूर ग्रामवासी कतिपय विद्वानों को दान दिया था। इस दान पट्टा में प्रथम नाम पल्लकचेरी वासुदेव दीक्षितर का उल्लेख है और आपके तीन शिष्यों (वेंकटकृष्ण दीक्षितर, भास्कर दीक्षितर, रामभद्र दीक्षितर) का नाम भी दिया गया है। वासुदेव दीक्षित के गुरु नीलकण्ठ दीक्षित थे। रामभद्र दीक्षित के रिश्तेदार नल्ला दीक्षितर के नाम से अधिक थे। एक का नाम भूमिनाथ उर्फ नल्ला पन्डित था। बालचन्द्रमखि के पुत्र नल्लाध्वरी उर्फ नल्ला दीक्षित थे और आप कम वयस के थे। आपने शास्त्रों का अध्ययन रामनाथमखि के पास और वेदान्त शास्त्र श्रीसदाशिवब्रह्म के पास अध्ययन किया था। श्रीसदाशिवब्रह्म के आशीष से कहाजाता है कि आपने 'अद्वैतरसमञ्जरी' एवं टीका 'परिमळ' की रचना की थी। आपने अपने गुरु श्रीसदाशिवब्रह्म एवं परमगुरु श्रीपरमशिवेन्द्र की स्तुती की है। श्रीपरमशिवेन्द्र के पास अन्य एक विद्वान श्रीवेंकटकृष्ण दीक्षित ने वेदान्त शास्त्र का अध्ययन किया था। इन विवरणों से निस्सन्देह सिद्ध होता है कि श्रीपरमशिवेन्द्र का काल 17 वीं शताब्दी का था और श्रीसदाशिवब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी का था।

उपर्युक्त दान शासनपट्टा में उल्लेखित विद्वानों के अतिरिक्त कतिपय विद्वान 1693 ई० के पश्चात तिरुवसनल्लूर आ बसे और इनमें एक विद्वान श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ थे। डा० राघवन का अभिप्राय है कि श्री वेंकटेश अय्यावाळ एवं दान शासन पट्टा में 1693 ई० में उल्लेख किया हुआ श्रीवेंकटेश शास्त्री ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं। श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ से रचित 'शाहजी विजयम' के सातवें/आठवें सर्गों में दिये विषयों को इतिहास के साथ तुलना करने पर प्रतीत होता है कि 'शाहजी विजयम' 1698 ई० के समय का रचा ग्रंथ है। सदाशिवब्रह्म के मित्र नामसिद्धान्त श्रीबोधेन्द्र का काल भी यही था। भगवन्नाम माहात्म्य प्रकट करनेवाले श्रीनामसिद्धान्त बोधेन्द्र एवं 'अद्वैतभूषणम्' के रचयिता बोधेन्द्र दोनों पृथक व्यक्ति हैं। एक का काल 18 वीं शताब्दी का था और दूसरे का काल 15/16 वीं शताब्दी का था। 'अद्वैतभूषणम्' के रचयिता बोधेन्द्र गीर्वाणेन्द्र के शिष्य थे और आपका काल भगवन्नाम बोधेन्द्र बहुकाल पूर्व का ही था।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपके 60 वां मठाधीष श्रीआत्मप्रकाशेन्द्र सरस्वती उर्फ श्रीगोविन्दसम्यमी थे। आपका दीक्षा नाम श्रीअध्यात्मप्रकाशेन्द्र सरस्वती था और आप गोविन्दपुरवासी होने के कारण आपके भक्तों ने प्रेम व भक्ति से 'गोविन्दसम्यमी' के नाम से संबोधित करते थे और यह नाम आपका दीक्षा नाम न था। सन्यासियों का दीक्षा नाम एक ही होता है और यह नाम बदला नहीं जाता है। एक दीक्षा नाम धारण करने के

पश्चात अन्य दीक्षा नाम धारण करना यतिधर्म शास्त्र विरुद्ध है। इसी प्रकार अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती भी दीक्षा नाम है। आप परमशिवेन्द्र के गुरु थे और सदाशिवब्रह्म के परमगुरु थे। यह दीक्षा नामधारी अन्य दीक्षा नाम ग्रहण नहीं कर सकते। कुम्भकोण मठ का कथन है कि अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती का दूसरा नाम सर्वज्ञसदाशिव बोधेन्द्र सरस्वती था और आप परमशिवेन्द्र के गुरु थे। एक दीक्षा नाम अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती के होते अन्य दीक्षा नाम सर्वज्ञसदाशिवबोधेन्द्र सरस्वती धारण किया नहीं जा सकता है। सन्यासाश्रम धारण विधि क्रम में नामकरण व योगपट्ट देने के पश्चात् दीक्षा दी जाती है और यह नामकरण व योगपट्ट एक ही नाम हो सकता है। व्यवहारिक नाम भक्तों से दी जाती है और ये नाम अनेक हो सकते हैं। इसलिये अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती (श्रीपरमशिवेन्द्र के गुरु) और सर्वज्ञसदाशिवबोधेन्द्र सरस्वती दोनों पृथक व्यक्ति हैं।

कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आपके वंशावली में दिये हुए संवत्सर का ठीक अनुरूप ईस्वी में करते समय प्रायः सब भूल करते हैं क्योंकि 'प्रभवादि षष्ठि संवत्सर का चक्र' एक को भी छोड दें या आगे व पीछे लें तो 60 वर्ष का अन्तर होता है और श्रीपरमशिवेन्द्र के काल निर्याण में यह भूल प्रायः सब करते हैं। कुम्भकोण मठ का कथन है कि परमशिवेन्द्र का निर्याण काल 1586 ई० था। यदि षष्ठि संवत्सर का एक भी चक्र जोड लें तो 1646 ई० का ही होता है। अब देखें कि क्या यह ठीक काल है। परमशिवेन्द्र के पश्चात 10 मठाधीष होने की सूची देते हैं जिनका मठाधिपत्य काल यों थे—वर्षों में 52, 54, 12, 42, 37, 31, 37, 40, 17 और दसवां मठाधिपत्य काल केवल 7 दिन था। इसे जोडने पर 322 वर्ष होते हैं। अर्थात् वर्तमान मठाधीष का मठाधिपत्य प्रारम्भ काल 1646+322=1968 ई० का होना था। यह भी भूल है। असौकर्य प्रश्नों पर न्याययुक्त उत्तर देते नहीं बनता कुतर्क व वितन्डावाद करने लगते हैं। कुम्भकोण मठ को मालूम है कि आपका गुरुवंशावली एक कल्पित वंशावली है और श्रीपरमशिवेन्द्र का काल 1586 ई० न था और इसीलिये जगह जगह भिन्न समय पर भिन्न उत्तर भी देते हैं।

श्री सदाशिवब्रह्म के बाल्यावस्था में आपके भाई विद्यार्थी एवं मित्र महाभाष्य गोपालकृष्ण शास्त्री को आपने पुदुकोट्टै राज्य के राजगुरु पदवी में नियोजन करने का राजा को आज्ञा दी थी। राजगुरु गोपालकृष्ण शास्त्री जी को राजा ने दो गांव—मुक्ताम्बाळपुरम एवं ब्रह्मविद्यापुरम—1739 ई० में दान दिये थे। सदाशिवेन्द्र के समाधि पर चबूतरा का निर्माण एवं दिवाल निर्माण तथा दो ग्राम का दान 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में किया गया था। तंजौर के राजा तुकोजी (1728—36 ई०) एवं केरळ महाराजा श्रीरामवर्मा (कार्तिकाई तिरुनाळ) (1758—98 ई०) दोनों सदाशिवेन्द्र के समकालीन थे। ये सब दृढ प्रमाण अब भी उपलब्ध हैं। इससे यह निश्चित होता है कि सदाशिवब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी का ही था। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष के पास कुछ वर्षों से वास करने वाले एवं '**Saintly seers of the ship of Brahmavidya**' के रचयिता श्री अनन्तानन्देन्द्र सरस्वती लिखते हैं '**... ... He was the Guru of the Pudukkottai Royal family ... ... He belongs to the 18th century. He was the disciple of Paramasivendra Saraswati ... .**' श्री सदाशिवब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी निश्चित होता है। कामकोटि कोशस्थान से प्रचुरित 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' के उपोद्घात में लिखा है 'ब्रह्मतत्वप्रकाशिका —श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र विरचिता ... ... काल 1800.' परन्तु कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र के गुरु श्री परमशिवेन्द्र (1539–86 ई०) थे और परमशिवेन्द्र का शिष्य श्री आत्मबोध (1586—1638 ई०) की आज्ञा पर श्री सदाशिवेन्द्र ने गुरुरत्नमाला रचा था अर्थात् 17 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होना निश्चित होता है। यहां दो भिन्न

कथन हैं—16 वीं शताव्दी में गुरुरत्नमाला रचा गया था या 17 वीं शताव्दी प्रारम्भ में रचा गया था। 18 वीं शताव्दी का व्यक्ति श्री सदाशिवब्रह्म किसप्रकार 16 वीं शताव्दी अन्त या 17 वीं शताव्दी प्रारम्भ में जन्म लेकर पश्चात् इस पुस्तक की रचना कर सकते हैं? यदि इस कल्पित कथा को मान लें तो श्री सदाशिव ब्रह्म की आयु 200 वर्ष का होना था और इसका भी मिथ्या प्रचार करना पडेगा। श्री सदाशिवब्रह्म और श्री वेंकटकृष्णदीक्षितर (कामकोटि प्रदीपम में वेंकटरामदीक्षितर का नाम उल्लेख है जो भूल है) दोनों 18 वीं शताव्दी के थे और सदाशिवब्रह्म को 200 साल वय दिया जाय तो क्या वेंकटकृष्णदीक्षितर भी 200 साल जीवित थे? आत्मसाक्षात्कार प्राप्त योगनिष्ठ सर्वबन्धन से मुक्त श्री सदाशिवब्रह्म की महत्ता वढाने के लिये मठ का सम्बन्ध जोडने की आवश्यकता नहीं है।

सुषमा का काल 1720 ई० का वतलाते हैं। अतः गुरुरत्नमाला 1720 ई० के पूर्व की ही पुस्तक कहना पडेगा। पर गुरुरत्नमाला की रचना 1720 ई० में या इसके पूर्व न था चूंकि मासिक पत्रिका कामकोटि प्रदीपम में स्पष्ट उल्लेख है कि नेरूर श्रीसदाशिवब्रह्म का काल 1710 ई० का ही है। इसी पत्रिका में यह भी उल्लेख है कि आपके भाई विद्यार्थी श्रीधरवेङ्कटेश अय्यावाळ एवं श्रीरामभद्रदीक्षित थे और अय्यावाळ का काल 18 वीं शताव्दी प्रारम्भ था। आत्रेय कृष्ण शास्त्री अय्यावाळ का काल 1625 ई० का वतलाते हैं अर्थात श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र का काल 17 वीं शताव्दी का पूर्वार्ध था। कामकोटि प्रदीपम में श्रीरामभद्रदीक्षित का काल 1650—1700 ई० का भी उल्लेख है। इसी कामकोटि प्रदीपम में कहा गया है कि श्रीरामभद्र दीक्षित के शिष्य श्री श्रीधर वेङ्कटेश अय्यावाळ थे। ऐसे परस्पर विरोध कथनों एवं भिन्न काल विवरण देकर कुम्भकोण मठ प्रचार मासिक पत्रिका कामकोटि प्रदीपम में मिथ्या प्रचार का प्रकाश किया जाता है। दृढ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्रीसदाशिवब्रह्म का काल 18 वीं शताव्दी था और आपके गुरु श्रीपरमशिवेन्द्र का सम्बन्ध किसी मठ के साथ न था और आपके गुरु अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती थे जिनका सम्बन्ध कांची मठ से विलकुल न था। अतएव निस्सन्देह कहा जा सकता है कि गुरुरत्नमाला का रचयिता नेरूरके श्रीसदाशिवब्रह्म न थे।

पुण्यश्लोकमंजरी–सर्वज्ञसदाशिवबोध—कुम्भकोण मठाधीप सर्वज्ञ सदाशिव बोध (1523—39 ई०) द्वारा संपादित कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि भिन्न काल के भिन्न रचयिताओं से रचित पुण्यश्लोकों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इन प्राचीन पुण्यश्लोकों के साथ कुछ नवीन श्लोक भी जोडे गये हैं। अर्थात कुम्भकोण मठ की भावना है कि पाठकगण विश्वास कर लें कि कुम्भकोण मठ के पूर्वाचार्यों का काल जो 508 क्रिस्तपूर्व से प्रारम्भ होता है उस वंशावली के हर एक आचार्य का जन्म, सन्यासग्रहण, पीठाभिषिक्त व निर्याण काल एवं आचार्यों का संग्रह रूप में चरित्र वर्णन (16 वीं शताव्दी तक) श्लोक रूप में इधर उधर पडा था और श्रीसदाशिवबोध ने इन सव श्लोकों का संग्रह कर पुण्यश्लोक मंजरी नामक पुस्तक का संपादन किया था। प्रश्न उठता है कि 508 क्रिस्त पूर्व से लेकर ईसा के वाद 16 वीं शताव्दी तक यानी 2000 वर्षों का इतिहास कहां व किस रूप में था ताकि आपने इन सव श्लोकों का संपादन किया था? भिन्न काल के श्लोक रचयिताओं की भाषा, शैली, भाव भी भिन्न होना था पर पुण्यश्लोकमंजरी से यह प्रतीत नहीं होता है। क्या कारण है कि 16 वीं शताव्दी में ही यह सब रचा गया था और आपके पूर्वाचार्यों ने इस काम को क्यों नहीं किया था? पुण्यश्लोकमंजरी, गुरुरत्नमाला, गुरुपरम्परास्तोत्र, सुषमा, परिशिष्ठ, मकरन्द आदि का प्रणयन अचानक एक ही समय में क्यों किया गया था? 18 वीं शताव्दी प्रारम्भ में स्थापित मठ जिसे आम्नाय मठ, गुरु मठ, मुखिया शिरोमणि जगद्गुरु मठ, सार्वभौम मठ वनाने का तीव्र प्रयत्न प्रारम्भ किया गया था उस प्रचार की पुष्टी में क्या ये सव तैय्यार किये गये थे? 18 वीं शताव्दी पूर्व में चाहे यह मठ

शाखामठ रूप में रहा हो, चाहे स्वतंत्र अद्वैतमतानुयायी मठ रहा हो या मठ की स्थापना ही न हुई हो उस समय इन प्रमाणाभासों की आवश्यकता न थी और पुस्तक भी न थी। प्रमाणयुक्त जब सिद्ध किया जा सकता है कि कुम्भकोण मठ की गुरुवंशावली 17 वीं शताब्दी अन्त तक की एक कल्पित सूची है तो पुण्यश्लोकमंजरी को किस प्रकार प्रमाण में लिया जाय ?

इस पुस्तक में 109 श्लोक हैं जो कांची कुम्भकोण मठाधीषों का चरित्र वर्णित हैं। इसमें अशुद्धियां हैं। पुण्यश्लोकमंजरी के आधार पर गुरुरत्नमाला रचा गया है और गुरुरत्नमाला के बारे में पाठकगण पूर्व में पढ चुके होंगे। यह कहा जाता है कि श्रीआत्मबोध ने पुण्यश्लोकमंजरी की सूची टीका बनाई है जिसे मकरन्द कहते हैं। आन्ध्र देश के एक विद्वान लिखते हैं कि आपने एक प्रति पुण्यश्लोकमंजरी देखा है जिसमें 'मुक्तिलिङ्ग' का उल्लेख है न कि 'योगलिङ्ग' जो कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं। सम्भवतः 16 वीं शताब्दी के बाद ही कुम्भकोण मठ को योगलिङ्ग प्राप्त हुआ हो या पुण्यश्लोकमंजरी में उल्लेख किया 'मुक्ति लिङ्ग' मिथ्या हो। पुण्यश्लोकमंजरी में श्रीविद्यातीर्थ (श्रीविद्यारण्य के गुरु) को कांची मठाधीष होने की कथा कही गयी है परन्तु विजयनगर राज्य महाराजाओं से दिये हुए शासन पत्रों व शिला शासनों तथा विजयनगर राज्य इतिहास स्पष्ठ सिद्ध करता है कि श्रीविद्यातीर्थ शृङ्गेरी मठाधीष थे और आपके समीप काल में रचित अन्य ग्रंथों से इस विषय की पुष्टी होती है। पुण्यश्लोकमंजरी की अशुद्धियां एवं भूल सब जगह जगह दिया गया है और यहां पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं हैं। एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीष की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें लिखा है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि पुण्यश्लोकमंजरी के प्राचीन रचित श्लोक सब कितनी विश्वसनीय व सत्य है–'We cannot say at present how far the older verses are genuine and of contemporary origin.' स्वरचित एकाङ्गि पुस्तकों को मूल व प्रधान प्रमाण मानकर विवादास्पद विषयों का निश्चय करना न्याय नहीं है। ऐसे एकाङ्गि पुस्तक सिद्ध विषय की पुष्टी के लिये प्रमाण में लेना उचित है। अन्य सब ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तकें एवं इतिहास के बाह्यप्रमाण तथा चार आम्नाय मठों में उपलब्ध रिकार्डों से सब यह निश्चित होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना न की थीं तो वंशावली सूची जो पुण्यश्लोकमंजरी देता है यह अवश्य ही एक कल्पित सूची है।

वेदान्तचूर्णिका–आचार्य शङ्कर–कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर के इस भूलोक वास के बीच में एक समय आप सशरीर कैलास गये थे (कुम्भकोण मठ की कुछ प्रचार पुस्तकों में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्य श्री सुरेश्वर को भी सशरीर अपने साथ कैलास ले गये) और वहां आप देवादिदेव महादेव से भेंटकर आपकी स्तुति की थी। यही स्तुति वेदान्तचूर्णिका के नाम से कहलाता है। कुम्भकोग मठ प्रचार करते हैं कि यह स्तुति आचार्य शङ्कर द्वारा रचित है। कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि इस स्तुति से देवादिदेव महादेव संतुष्ठ होकर पांच लिङ्ग आचार्य शङ्कर को दिया था (कुछ प्रचार पुस्तकों में यह लिखा है कि इन लिङ्गो के साथ आचार्य शङ्कर ने सौन्दर्यलहरी एवं शिवरहस्य भी प्राप्त किया था) और आचार्य शङ्कर पुनः इस भूलोक लौट आये, तत्पश्चात्, कांची में वास करते हुए वहीं तनुत्याग किया था। महादेवांश आचार्य शङ्कर को कैलास जाने की आवश्यकता नहीं थी। आचार्य शङ्कर अवतारी पुरुष होते हुए भी आप एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और आपके जीवन चरित्र में ऐसे कल्पनात्मक कथा जमती नहीं है। आचार्य चरित्र पौराणिक कथा नहीं है। कल्पना जगत की यह एक कथा है और कल्पना करने की आवश्यकता इसलिये पडी की कुम्भकोण मठ का जो पांच लिङ्ग कथा है और जिसकी पुष्टी कोई प्रामाणिक पुस्तक या परम्पराप्राप्त कथा या कोई

शङ्करदिग्विजय नहीं करता उस कथा की पुष्टि के लिये यह प्रमाण वेदान्तचूर्णिका तैय्यार किया गया था। इस कल्पित स्तुति की पुष्टी में शिवरहस्य में एक श्लोक क्षिप्त किया गया और पश्चात् मार्कण्डेय संहिता में भी कुछ श्लोक जोड लिये गये। अग्राह्य निन्दास्पद आनन्दगिरि शङ्कर विजय में इस कथा को जोड कर एक क्षिप्त प्रति 19 वीं शताब्दी में तैय्यार किया गया था। अब पाठकगण जान लें कि क्यों वेदान्तचूर्णिका की सृष्टि की गई थी।

काशी में श्री विश्वेश्वर आचार्य शङ्कर को पांच लिङ्ग देने की कथा शिवरहस्य में उल्लेख है और यह भी अनेक श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है। कहे जाने वाले शिवरहस्य का श्लोक जो पांच लिङ्गो का नाम लेता है वह श्लोक कुछ मुद्रित एवं अमुद्रित शिवरहस्य प्रतियों में नहीं मिलता। यह श्लोक क्षिप्त है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि यह श्लोक पांच लिङ्ग का नाम नहीं लेता पर स्पष्ठ कहता है कि लिङ्ग की अर्चना, पूजा व सेवा से मनुष्य योग, भोग, वर, मुक्ति व मोक्ष प्राप्त कर सकता है। कुम्भकोण मठ प्रचार का प्रधान बुनियाद ही यह कल्पित पांच लिङ्ग की कथा है जिससे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि चार आम्नाय मठों में चार लिङ्ग देकर पांचवां कांची मठ में रख दिया था अतएव पांचलिङ्ग होने से पांच मठ का होना निश्चित होता है। पर आचार्य शङ्कर आम्नाय मठों की स्थापना आम्नाय पद्धति अनुसार की थी और कांची मठ का कोई अलग आम्नाय पद्धति न होने से पांचवा मठ का प्रश्न उठता नहीं है।

वेदान्त चूर्णिका स्तोत्र की भाषा, शैली व भाव से आचार्य शङ्कर की भाषा, शैली व भाव में पृथवी आकाश का अन्तर मालूम पडता है। आचार्य शङ्कर रचित ग्रन्थों के किसी सूचीपत्र में भी इसका नामोनिशान नहीं है। इसे पढने पर प्रतीत होता है कि किसी एक साधारण पन्डित द्वारा लिखी गयी स्तुति है। आचार्य शङ्कर का अपने इहलीला मध्य में कैलास गमन जब असत्य है तो वेदान्त चूर्णिका की क्या आवश्यकता है। कुम्भकोण मठ ऐसे चूर्णिका की सृष्टी कर पामरलोगों के आखों में चूर्णिका फेंककर कार्य सिद्धि प्राप्त करते हैं।

वासनादेहस्तुति–अनजान रचयिता–कुम्भकोण मठ ने इस स्तोत्र का रचयिता व काल नहीं दिया है और यह ग्रन्थ अनुपलब्ध भी है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि इस स्तुति में 'इन्द्र' पद जो 'इन्द्रसरस्वती' में है उस उपादि का प्राप्त करने का इतिहास इस ग्रन्थ में है। कुम्भकोण मठाभिमानी द्वारा रचित पुस्तकों में इसे आचार्य शङ्कर द्वारा रचित कहा गया है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष ने काशी में 1935 में कहा कि किसी एक वृद्ध ने आपको सुनाया है कि 'वासनादेहस्तुति' नाम से प्रसिद्ध एक श्लोक बद्ध स्तुति ग्रन्थ है परन्तु इस समय वह प्राप्त नहीं है। आप कहते हैं कि इसी पुस्तक से उद्धृत किया हुआ कुछ श्लोक किसी एक निबन्ध में आपने देखा था और वह निबन्ध कब और कहां देखा था सो आपको अब याद नहीं है। इस निबन्ध में कहा गया था कि श्री सुरेश्वराचार्य ही 'इन्द्र संप्रदाय' के प्रवर्तक थे। उपर्युक्त विषय काशी में एक प्रचार पुस्तक में प्रकाश हुआ था। पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ अपने प्रधान प्रामाणिक पुस्तकों का विवरण एवं इसकी प्रामाणिकता की कथा किस रीति से सुनाते हैं। कुम्भकोण मठाधीष कहते हैं 'किसी एक वृद्ध ने सुनाया' कि वह व्यक्ति 'किसी एक निबन्ध में देखा' पर वह पुस्तक या निबन्ध 'इस समय प्राप्त नहीं होता'। क्यों नहीं स्पष्ठ कह देते कि यह स्वरचित कल्पनात्मक कथा है। स्वेच्छावाद के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। किसी ने इस ग्रन्थ को देखा नहीं, नाम सुना नहीं, पढा नहीं पर उद्धृत करने के लिये कुछ श्लोक या पक्तियां तैय्यार हैं। न केवल उद्धृत किये जाते हैं पर 'इन्द्र' उपादि प्राप्त होने का कल्पित कथा भी लिखकर प्रचार करते हैं। इस कल्पित कथा पर आलोचना पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ इस ग्रन्थ के आधार पर सिद्ध करते हैं कि उनका 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट सर्वोच्च योग पट्ट है जो केवल कुम्भकोण मठाधीश को ही लागू होता है चूंकि आपकी परम्परा आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है। पाठकगण इस विषय का विमर्श आगे के अध्याय में पायेंगे। यतिधर्मशास्त्र ग्रन्थों में दसनामी योगपट्ट ही उल्लेख हैं 'तीर्थाश्रमवनारण्य गिरिपर्वतसागरा सरस्वती भारती पुरि चेति दशैवहि।' और इसमें 'इन्द्र' योगपट्ट या 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट का नाम नही है। हर एक योगपट्ट का आध्यात्मिक अर्थ है और यह भौतिक या व्यवहारिक नहीं है। धर्मशास्त्र पुस्तकों में 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट का लक्षण या अर्थ नहीं दिया है पर शुद्ध सरस्वती का उल्लेख है। यतिधर्मनिर्णय ग्रन्थ में स्पष्ठ उल्लेख है कि सरस्वती संप्रदाय का भेद आनन्दसरस्वती एवं इन्द्रसरस्वती है और यह नवीन नाम स्वशीलाचार व अभिमान से अर्वाचीन काल में परिकल्पित योगपट्ट नाम है। धर्मशास्त्र ग्रंथों को तिरस्कार व अवहेलना कर इस अप्रामाणिक अश्रुतं, अजातं, अपाठं स्तुति ग्रन्थ को किस प्रकार प्रमाण में लिया जाय।

कूष्माण्ड शंकरदिग्विजय—यह पुस्तक अप्रकाशित है पर कुछ पुस्तकालयों में एवं आन्ध्र देश कृष्णा व गोदावरी जिला के कुछ विद्वानों के पास हस्तलिपि प्रतियां प्राप्त होते हैं। आन्ध्र देश में प्राप्त होनेवाले प्रतियों में उल्लेख है कि आन्ध्र द्रविड देश के सन्धिस्थल पर यानी काळहस्ती क्षेत्र के देवालय में एक शिशु मिला और उसीका नाम शङ्कर पडा। इस शिशु का जन्म अयोनि होने के कारण पितामाता का नाम शङ्कर व अम्बिका कहा गया है। आगे इस पुस्तक में लिखा है कि जिसप्रकार सीता भूमि से उत्पन्न हुई वैसे ही शङ्कराचार्य भी देवालय में प्राप्त हुए। ऐसे अनेक कल्पित कथाओं से भरा हुआ यह पुस्तक है। जीवन चरित्र वर्णन कहीं कहीं द्वेष से लिखा व निन्दास्पद है जो सब विषय श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है और कोई प्रामाणिक पुस्तक इन कथाओं की पुष्टी भी नहीं करती। इस पुस्तक में उल्लेख है 'शङ्करं कुंकुकाभासं मुनिं कूष्माण्ड सम्भवम्। भाष्यकारं स्तुमोनित्यमुधद्भास्कार सन्निभम्।' ऐसे अग्राह्य निन्दास्पद पुस्तक में भी यह नहीं कहा है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी।

उपर्युक्त पुस्तक के अलावा तंजौर सरस्वती महाल पुस्तकालय में एक हस्तलिपि ग्रंथ 'शङ्करविजयसंग्रह' शीर्षक, छः अध्यायों का एवं 107½ श्लोकों की, पुस्तक उपलब्ध है जिसे 'कूष्माण्डशङ्करविजय' भी कहा जाता है। यहां आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल कालटी का उल्लेख है पर जन्म वित्ररण विलक्षण है—'इत्युक्त्वाखलु कूश्मांडबीजमेकं प्रदाय च। तद्रक्षणाय यत्नेन स्तंभमूले प्रचिक्षिप। जलमासिच्य तन्मूले वल्लीं पुष्पं फलं तथा। न छेदय फलं पक्वं स्वयमेव पतिष्यति। ... ... सा बीजञ्च ततः सम्यक स्तंभमूले निधाय च। जलमासिच्य यत्नेन ररक्षा सुचिरं मुदा। फलमेकं तदापक्वं स्तंभाग्रान्निपपातह। फलेच पतिते तत्र महापुरुषमीश्वरं। दृष्ट्वा बालकमादाय संररक्ष प्रयत्नतः। तदानीं वालरुदितं श्रुत्वा तत्राखिळा जनाः।' इस पुस्तक में चरित्र घटना विवरण विस्तारपूर्वक नहीं दिया गया है और आचार्य शङ्कर के मुख्य जीवन घटनाओं का उल्लेख भी नहीं है। कांची में मठ स्थापना का भी उल्लेख नहीं है।

राजतरङ्गिणी—कल्हण—यह ग्रंथ हमारे भारत वर्ष का प्रथम इतिहास पुस्तक माना जाता है क्योंकि प्रथम बार ऐतिहासिक दृष्टी व रूप में यह पुस्तक लिखी गयी थी। इस पुस्तक में काश्मीर का इतिहास पाया जाता है। श्रीचम्पक पन्डित के पुत्र श्रीकल्हण इस पुस्तक के रचयिता थे। 1148 ई० में इस पुस्तक का प्रगयन प्रारम्भ हुआ और श्रीकल्हग ने 1150 ई० में पुस्तक लिखकर समाप्त किया था। कल्हग कहते हैं कि पुराकाल का ऐतिहासिक चरित्र वर्णन आपने नीलमतपुराण के आधार पर ही लिखा है। काश्मीर के तीर्थ, क्षेत्र व स्थल माहात्म्य पुस्तकों से भी आपने विषयों का संग्रह किया है। अन्य ग्रंथ जो सुव्रत, नरेन्द्र, हेलराज, पद्ममिहिर आदियों से रचित हैं, इनसे भी विषय

लिये गये हैं। गोणार्द इतिहास से भी विषय लिये गये हैं। राजतरङ्गिणी में 8 तरङ्ग हैं। यह ग्रंथ अंग्रेज़ी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है। डा० आर. एस. त्रिपाठी इस पुस्तक के बारे में लिखते हैं—'**Kalhana's account of Kashmir for a few centuries immediately preceeding his time is quite reliable, but for the earlier period he too is unfortunately subject to strange lapses.**'

इस पुस्तक में शङ्कराचार्य का उल्लेख नहीं है। काशी राजकीय पुस्तकालय के अधिकारी श्री एस. एन. झारखन्डी से प्रार्थना की गयी थी कि आप कृपया संपूर्ण राजतरङ्गिणी पढकर बतायें कि राजतरङ्गिणी में आचार्य शङ्कर का उल्लेख है या नहीं। श्रीझारखन्डीजी अपने पत्र 4—12—1935 में लिखते हैं—'**There is no mention of Sankaracharya in Rajatarangini. Not relying on myself alone, I consulted Sri P. Gopinath Kaviraja also and he also said that Rajatarangini does not mention Sankaracharya ... ...**'

कुम्भकोण मठ अपने कल्पित गुरुवंशावली की पुष्टी के लिये एवं अपने से कल्पित मठाधीष व्यक्तियों की महिमा बढाने के निमित्त से राजतरङ्गिणी में दी हुई कथा संदर्भ के बीच अपने मठाधीष को भी प्रवेश कर और अपनी कल्पित कथा भी राजतरङ्गिणी में दी हुई कथा के साथ मिलाकर इस मिश्रित कथा का प्रचार करते समय अपनी प्रचार पुस्तकों में राजतरङ्गिणी का नाम प्रमाण में दिखाते हैं। कुम्भकोण मठ की कल्पित कथा और आपके मठाधीषों का नाम राजतरङ्गिणी में पाया नहीं जाता। इन विषयों का विमर्श पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे। कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके अनेक मठाधीष काश्मीर में वास किये थे और इनमें कुछ मठाधीषों का निर्याण भी काश्मीर में हुआ था। कहेजानेवाले आपके मठाधीष उज्वल शङ्कर, गौडसदाशिव, सुरेन्द्र, शङ्कर IV, मातृगुप्त, ब्रह्मानन्दघन I, चन्द्रशेखर II, शङ्कर V, सच्चिद्विलास, बोध II, चन्द्रशेखर III, अद्वैतानन्दबोध, आदियों का सम्बन्ध काश्मीर से था एवं आप सब उस काल के काश्मीर राजा से सम्मानित हुए थे। ये सब कथन मिथ्या है चूंकि राजतरङ्गिणी इनका नाम नहीं लेता और काश्मीर नरेश से सम्मानित होने की कथा भी नहीं कहती और कांची मठ का गंध भी इस पुस्तक में नहीं है। राजतरङ्गिणी में दी हुई कथा के बीच में अपनी कल्पित कथा जोडकर राजतरङ्गिणी को प्रमाण में प्रचार करने से आपके कल्पित कथाओं का प्रमाण राजतरङ्गिणी बन नहीं सकता। प्रख्यात् पुस्तकों का नाम देकर पामरलोगों की आखों में धूल फेंकना तो इनका स्वभाव है।

श्रीमुखदर्पणम्—शिवरामसूरि (1888 ई.)। श्रीमुख व्याख्या—गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री (1925 ई.)। सिद्धान्त पत्रिका—वेदान्त रामानुज अय्यङ्गार (1925 ई.)।

कुम्भकोण मठ की बिरुदावली जिसे दक्षिणभारत में 'श्रीमुख' कहते हैं उसे मूल आधार व मुख्य प्रमाण मानकर कुम्भकोण मठ सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि आपका मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित एवं महागुरु का साक्षात् परम्परा मठ है। मठ विरुदावली में दिये पदों को लेकर, उन से बोध होनेवाले विषयों की पुष्टी करने के लिये आपसे कहे जाने वाले एकाङ्गि प्रामाणिक पुस्तकों से पंक्तियां व श्लोकों को उद्धृत् कर अपने प्रचारों का फल प्राप्त करने की चेष्टा इन पुस्तकों में की गयी है। कुम्भकोण मठ द्वारा कहेजानेवाले समस्त प्रामाणिक (या प्रमाणाभास!) पुस्तकों पर आलोचना व विमर्श पाठकगण पूर्व ही पढ चुके होंगे। कुम्भकोण मठ द्वारा परिष्कृत्य संस्करण पुस्तक जो मूल पुस्तकों से भिन्न पाया जाता है एवं कुम्भकोण मठ द्वारा रचित आधुनिक 19 वीं शताब्दी में एकाङ्गि पुस्तकों के आधार पर इन विषयों की पुष्टी की गयी है। श्रीमुखदर्पण एक पुस्तक है जो तंजौर जिले से प्रकाशित हुआ है। कुम्भकोण मठ द्वारा

परिष्कृत्य नवीन आनन्दगिरि शङ्करविजय, शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय जिसमें से अनेक श्लोक उडा दिया गया है और जो 16 वीं व 17 वीं शताब्दी की मूल प्रति से भिन्न पाठ कुम्भकोण मठ की प्रति में पाया जाता है; मार्कन्डेय संहिता जो अष्टादशपुराणान्तर्गत नहीं है और अप्रकाशित है जिसकी हस्तलिपि प्रति मिलना कठिन है चूंकि सारेभारतवर्ष में इने गिने प्रतियां दक्षिण भारत में ही उपलब्ध हैं तथा इसमें दिये हुए विषय जो श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं हैं; आधुनिक काल में रचित कुछ काव्य पुस्तक जिसका रचयिता सन्देहास्पद है—पतञ्जलीचरित व शङ्कराभ्युदय; कहे जाने वाले नवीन व्यासाचलीय (प्रकाशित प्रति) जिसमें कांची का नामो निशान नहीं है; नैषध काव्य जिसका एक पद बदलकर कल्पित व्याख्या की जाती है; कुम्भकोण मठ द्वारा रचित एकङ्गि पुस्तकें—18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध एवं 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध—पुण्यश्लोकमंजरी, गुरुरत्नमाला, सुषमा, परिशिष्ठ, मकरन्द आदि; वेदान्तचूर्णिका जिसका नाम न कोई सुना है, न पढा है, न देखा है और न उपलब्ध है; वासनादेहस्तुति जो अश्रुतम्, आज्ञातम्, अदृष्टम् कोटी का है; स्येनवार्ता (मुद्राध्याय) एक कल्पित पुस्तक जो उपलब्ध नहीं है; आदि, कुम्भकोण मठ से कहे जाने वाले प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर श्रीमुखदर्पणम पुस्तक रची गयी है। इन सब एकङ्गि स्वरचित स्वकल्पित प्रमाणाभास पुस्तकों के आधार पर विवादास्पद विषयों का निर्णय करना उचित न होगा।

आन्ध्र देश के एक विद्वान श्रीगुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री को 'चतुषष्टिकलात्मकालङ्कार सार्वभौम' की उपादि कुम्भकोण मठाधीश्व ने देकर इस कृपाभाजन विद्वान से एक पुस्तक 'श्रीमुखव्याख्या' शीर्षक लिखवायी थी जो 1925 ई० में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में कुम्भकोण मठ को चतुर्दिक आम्नाय मठ के संम्राट मठ एवं भारतवर्ष में मुखिया शिरोमणि मठ बनाने की चेष्टा की गयी है। उपर्युक्त कहे श्रीमुखदर्पण की तरह यह भी एक पुस्तक है जहां विरुदावली में दिये पदों से बोध होनेवाले विषयों की व्याख्या की गयी है।

कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन पन्डित श्रीगुर्रमवेङ्कण्ण शास्त्री ने अपने से रचित श्रीमुखव्याख्या को आन्ध्र भाषा में अनुवाद कर इसे 'सिद्धान्त पत्रिका' का नाम देकर श्रीवेदान्त रामानुज अय्यङ्गार के नाम से प्रकाशित करायी है। पामर लोगों को यह कहा गया कि यह 'सिद्धान्त पत्रिका' पुस्तिका श्रीवेदान्त रामानुज अय्यङ्गार द्वारा रचित था। पर 'सिद्धान्त पत्रिका' एवं श्रीवेदान्त रामानुज अय्यङ्गार का पत्र पडने पर तथा कुछ विद्वानों के साथ आपके वार्तालाप विवरण से स्पष्ठ मालूम होता है कि यह कार्य सब श्रीगुर्रमवेङ्कण्ण शास्त्री का ही था। सिद्धान्त पत्रिका का आधार 20 पुस्तकों का नाम लिया जाता है और पाठकगण इन पुस्तकों का विमर्श आगे पायेंगे।

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित मठों में जो विरुदावली, मुद्रा, मठचिन्ह, झन्डा, आदि सब व्यवहारिक वस्तु और व्यवहारिक आचार जो सब हमलोग देखते हैं वह सब आचार्य शङ्कर के काल में या आपके समीप काल में प्रारम्भित नहीं है। आचार्य शङ्कर ने अपने से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों के लिये मठाम्नाय पद्धति बनाकर, धर्म-व्यवस्था और प्रचार के लिये इन मठों का धर्मराज्य शासन सीमा निर्धारण कर एवं मठाधीष के गुण लक्षण का विवरण दिया था जो सब 'मठाम्नाय व महानुशासन' में पाते हैं। यह स्पष्ठ कहा जा सकता है कि 'मठविरुदावली या श्रीमुख' न आचार्य शङ्कर द्वारा रचित हैं या न तो आपके शिष्यों द्वारा रचित हैं या न इन शिष्यों के (अर्थात् चार आम्नाय मठाधीषों से) भक्तों द्वारा रचा गया था। प्राचीन काल के विद्वानों का अभिप्राय था जिसकी पुष्टी अनुसन्धान विद्वानों के अभिप्रायों से होती है कि श्रीविद्यारण्य के काल में ही यह सब व्यवहारिक चिन्ह, झन्डा, मुद्रा, विरुदावली, आदि प्रारम्भ हुआ था चूंकि विजय नगर राज्य के महाराजाओं ने (श्रीबुक्क, श्रीहरिहर, श्रीहरिहर II) श्रीविद्यारण्य एवं श्रीभारतीकृष्ण तीर्थजी को एवं आपसे अधिष्ठित श्रृङ्गेरी मठ को अपनी श्रद्धा भक्ति से सब अर्पण कर आपके दिव्यज्योति

का प्रकाश कराया था। श्रृङ्गेरी का इतिहास भी यही कहता है कि श्रीबुक्क व हरिहर काल के पूर्व श्रृङ्गेरी में पर्णशाला कुटि ही था और मठ ऋषि आश्रम समान था। हजारों भक्त यात्रा भाव में गुरु दर्शनार्थ श्रृङ्गेरी जाते थे और उन दिनों में यह सब आधुनिक काल का व्यवहारिक चिन्ह व आडम्बर वहां न था। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान श्री के. आर. वेङ्कटराम अय्यर लिखते हैं कि 'श्रृङ्गेरी संस्थान' का प्रारम्भिक काल 14 वीं शताब्दी था और इसके पूर्व श्रृङ्गेरी मठ केवल आश्रम था। श्रीबुक्क हरिहर के पश्चात् अनेक महाराजाओं से श्रृङ्गेरी मठाधीष सब पूजित व सम्मानित होने के कारण बाह्य व्यवहार के लिये इन सब व्यवहारिक वस्तुओं का उपयोग होने लगा। इसके पूर्व भक्तों व शिष्यों से अनन्य भक्ति द्वारा अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार अपने अपने गुरुओं को विशेष रूप से यशोगान करनेवाले पदों से संबोधित किया जाता था। 14 वीं शताब्दी पूर्व दान पत्रों में (ताम्रशासन, शिलाशासन व अन्य शासनों) 'प्रशस्ती भाग' में यह विरुदावली पाया नहीं जाता है। अभी तक अति प्राचीन काल का कोई प्रमाण नहीं मिला है जिसमें विरुदावली का उल्लेख हो। श्रीमुख विरुदावली व्यवहार के लिये ही तैय्यार किया गया था। मठ या मठाधीश को जब कोई व्यक्ति या संस्था लिखते हैं तो आपको इन विरुदों से संबोधित किया जाता है जैसा कि व्यवहार में राजा महाराजाओं को किया जाता है। दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ में यह सब व्यवहारिक चिन्ह 14 वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ था और अन्यों ने इसका अनुकरण पश्चात् किया हो। विरुदावली में जो विशेषन दिया गया है और यशोगान किया गया है वे सब न आचार्य शङ्कर या न आपके शिष्यों द्वारा रचित हैं। देश, काल व परिस्थिति के अनुरोध से कालान्तर में उस उस मठ के भिन्न कालों में किसी एक से अथवा अनेकों से रचित मालूम होता है। भिन्न काल के इन विरुदावलियों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालान्तर में विशेषणों का जोड, बदल, नवीन पदों का परिवर्तन होता हुआ आ रहा है। प्रबल अधिकारियों की सहायता से अपने अपने महत्ता बढाने, शिष्यों की भक्ति पर दबकर एवं श्रीआद्यशङ्कराचार्य की महिमा बढाने के लिये ऐसे विशेषणों को जोडकर एक विरुदावली तैय्यार की गयी है। लोक व्यवहार के लिये अभिमान से अर्वाचीन काल में रचित विरुदावली पर आधार कर मठों की प्राधान्यता व आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित मठों की संख्या विषयों पर निर्णय नहीं कर सकते हैं। अभिमान व स्वेच्छा से रचा हुआ विरुदावली है। आर्ष व आर्ष तुल्य ग्रंथ, शङ्करविजयादि ग्राह्य प्रामाणिक ग्रंथों, ऐतिहासिक व उपलब्ध बाह्य प्रमाणों एवं अन्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध हुआ विषय की पुष्टी के लिये ये सब विरुदावली विशेषण प्रमाण में ले सकते हैं न कि मूल प्रमाण मानकर विवादास्पद विषयों पर निर्णय दिया जा सकता है। जब विरुदावली के विशेषन सब आर्ष ग्रंथों व प्रामाणिक ग्रंथों के विरोध में हैं जैसा कि कुम्भकोण मठ की विरुदावली है तब इसके आधार पर कैसे कुम्भकोण मठविषयक विवाद का निर्णय किया जाय? मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि ये सब विरुदावली प्रमाण नहीं हैं या ये सब असत्य हैं। मेरा कहना यह है कि जब तक विरुदावली के विशेषण सब वृद्ध श्रेष्ठों से स्वीकार किये गये प्रामाणिक ग्रंथों द्वारा सिद्ध न हो तब तक इन विरुदावली को मूल आधार मानकर विषयों का निर्णय करना मूर्खता होगी। कुम्भकोण मठ से कहे जानेवाले सब प्रामाणिक ग्रंथों का खोजखाज कर उसपर आलोचना की गयी और इनके प्राचीन प्रतियों व मूल प्रतियों से स्पष्ठ सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार सब भ्रामक व मिथ्या है। पाठकगण इस अध्याय में इसका विवरण पायेंगे। कहेजानेवाले प्रमाण सब जब प्रमाणाभास सिद्ध होते हैं तो उसके आधार पर लिखा हुआ विरुदावली कैसे प्रमाण बन सकता है। किसी ब्राह्मण से उसका गोत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र, पूछा गया तो झठ से उस ब्राह्मण ने कहा 'मेरा यज्ञोपवीत देखो, शिखा देखो, त्रिपुन्ड्र देखो और क्या ये सब चिन्ह साबित नहीं करते कि मैं ब्राह्मण हूं।' ये सब बाह्य चिन्ह होते हुए भी यदि उस ब्राह्मण का गोत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र न हो तो वह ब्राह्मण कहलाने योग्य नहीं है। उसी प्रकार जब तक दृढ विश्वसनीय प्रमाणों से यह निसन्देह सिद्ध न हो कि कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित था तब तक इन विरुदावलियों को मूल प्रमाण मानना मूर्खता होगी।

कुम्भकोण मठ द्वारा रचित व प्रचारित मठाम्नाय सेतु (जिसे आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री चित्सुखाचार्य द्वारा रचित होने का कल्पित कथा सुनाते हैं) में स्पष्ट उल्लेख था कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठ शिष्य मठ हैं और कांची मठ ही जगद्गुरु मठ है और अन्य चार मठाधीष केवल श्री गुरु पदवी के अर्ह हैं तथा ये चार आम्नाय मठ कांची मठ के संचालन में हैं और कांची मठ के आज्ञा बिना भ्रमण नहीं कर सकते परन्तु कांची मठ चतुर्दिक्मठ संम्राट होने से कहीं भी भ्रमण कर सकते हैं (विवरण के लिये पृष्ठ 142 देखें)। कुम्भकोण मठ द्वारा रचित पुण्यश्लोक-मंजरी में श्रीविद्यातीर्थ को कांची मठाधीष होने की कथा कही गयी है परन्तु विजयनगर राज्य का इतिहास एवं शिला-शासन व अन्य शासन पत्रों से स्पष्ट विदित होता है कि आप शृङ्गेरी मठाधीष थे। कुम्भकोण मठ का प्रचार था कि क्रिस्त प्रथम शताब्दी में आपके मठाधीष कृपाशङ्कर ने एक 'सुभद्र विश्वरूप' को शृङ्गेरी भेजकर वहां शिष्य मठ की स्थापना की थी अतएव शृङ्गेरी मठ कांची का शिष्यमठ है। कुम्भकोण मठ का यह भी प्रचार था कि शृङ्गेरी मठ बहु काल विछिन्न हो शून्य पडा था और कुम्भकोण मठाधीष श्रीविद्यातीर्थ ने श्रीविद्यारण्य को शृङ्गेरी भेजकर शृङ्गेरी मठ का उद्धार किया था। आप यह भी प्रचार किये थे कि श्रीविद्यारण्य परमहंस सन्यासी न थे एवं कांची के योगलिङ्ग पूजार्ह न थे इसीलिये आपको शृङ्गेरी भेजा गया था। कुम्भकोण प्रचार पुस्तकों में यह भी प्रचार शुरू कर दिया था कि शृङ्गेरी मठाधीष ने एक क्षमापत्र आपको लिख दिया था। शृङ्गेरी के प्रति मिथ्या, भ्रामक व दुष्प्रचार होने लगा और शृङ्गेरी मठाधीष व मठ कर्मचारियों व मठाभिमानियों की उदासीनता से लाभ उठाकर कुम्भकोण मठ का प्रचार तीव्ररूप धारण कर लिया था। इसके फलाभूत वेदमूर्ति श्रीसुब्रह्मणिय सिद्धान्ती को यथार्थ विषय का प्रकटन करना पडा और आपने प्रजोत्पत्ति वर्ष के पंचाङ्ग की पीठिका में कुम्भकोण मठ को शाखा मठ होने का उल्लेख किया था। यदि कांची कुम्भकोण मठ प्रथम में इन मिथ्या वा दुष्प्रचारों का प्रचार न करते या शृङ्गेरी मठ की निन्दा न करते या कुछ प्रभावशाली अधिकारियों व भक्तों के प्रभाव से धर्मविषयों पर व्यवहारिक न्यायालय में निर्णय लेकर दूसरों पर कीचड न फेंकते तो वेदमूर्ति श्रीसुब्रह्मणिय सिद्धान्ती को भी कुम्भकोण मठ के बारे में सत्य विषय प्रकाश करने की आवश्यकता न होती। कांची कुम्भकोण मठ स्वयं इस विवाद को खडाकर, द्वेष व निन्दास्पद पुस्तकों का प्रचार कराकर पश्चात् जब इन विषयों का भंडा फोड दिया गया था तब कुम्भकोणमठ उन पर दोषारोपण करते हुए कहते हैं कि शृङ्गेरी मठाभिमानियों ने कांची मठ को शाखा मठ कह दिया है। क्या सत्य का प्रकाश करना दुष्प्रचार है? यहां तो गीदड की कहानी याद आती है। पञ्चाङ्ग लिखने के बहुकाल पूर्व ही से कांची मठ का दुष्प्रचार प्रारम्भ हो गया था और यह समझ के परे है कि अपने को अद्वैती कहनेवाले एवं आचार्य शङ्कर के परम्परा कहनेवाले किसप्रकार ऐसे द्वेषात्मक पुस्तक रचकर प्रचार कर सकते हैं। पाठकगणों से प्रार्थना है कि आपलोग इस मूल विषय को याद रक्खें कि किसने इस विवाद को खडा किया था? काशी में 1935 ई० में यह कहा गया था कि 'श्रीमुख दर्पण, श्रीमुखव्याख्या एवं सिद्धान्त पत्रिका' आदि पुस्तकें शृङ्गेरी मठाभिमानियों के मिथ्या प्रचार के फलाभूत लिखा गया था और कुम्भकोण मठ इस विषय में निर्दोषी है। परन्तु पाठकगण अब जान जायेंगे कि गीदड बकरी की कहानी कहां तक यहां चरितार्थ होती है।

श्री गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री ने बडी दिलचस्पी से कुम्भकोण मठ की तरफ से तीव्र प्रचार प्रारम्भ किया था। आप वेदान्त श्री रामानुज अय्यङ्गार का सहायता प्राप्त कर कुम्भकोण मठ का प्रचार आपके नाम से स्वयं किया तथा अन्यों से भी कराया। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्री वेदान्त रामानुज अय्यङ्गार के सभापतित्व में 27-4-1872 ई० के दिन एक सभा हुई और सभापति ने दोनों (कुम्भकोण मठ प्रचारों का आमोदन करने वाले एक वर्ग और द्वितीय वर्ग इन भ्रामक मिथ्या प्रचारों का खन्डन करनेवाले कुछ विद्वान) दलों के विषयों को ग्राह्य कर अपना दृढ निर्णय दिया था जो निर्णय 'सिद्धान्त पत्रिका' में प्रकाशित है। इसी प्रकार कांची के एकाम्रेश्वर मन्दिर में आङ्गिरस वर्ष चैत्र बहुळ

चतुर्थी के दिन कुम्भकोण मठाभिमानियो एवं कृपाभाजन विद्वानों की एक सभा हुई जिसमें 'श्री मुखव्याख्या' पर भी आलोचना की गई थी। ध्यान देने की बात है कि यह सभा पुलीस बन्दोबस्त एवं उनके संरक्षण में हुई। श्री मुखव्याख्या में इन विषयों का उल्लेख है। न मालूम क्यों राजकीय पुलीस महकमे की सहायता से धर्मविषयों पर निर्णय किया जा रहा है। ऐसी घटना काशी में भी 1935 ई० में देखी गई थी। मुझसे प्रकाशित 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' पुस्तक में ऐसे अनेक घटनाओं का विवरण पायेंगे। मदरास सभा के बारे में कुछ प्रश्न उस समय में भी उठा था और अब भी वही प्रश्न पूछे जाते हैं पर इन प्रश्नों का उत्तर न मिला था और न मिल रहा है। (1) जब मदरास में उस समय अनेक स्वतंत्रमत रखने वाले निस्पक्षपात विद्वान थे और आप लोग इस कार्य में सहयोग देने के लिये तैय्यार थे एवं ऐसे गण्यमाण विद्वानों का निर्णय दोनों दलों के लिये शिरोधार्य था, इन सबों को छोडकर किसने और क्यों वेदान्त श्री रामानुज अय्यङ्गार एक विशिष्टाद्वैत मतावलम्बी को इस विवादास्पद विषय पर निर्णय देने के लिये कहा? इसमें क्या रहस्य था? (2) किसकी आज्ञा या अनुमति से श्री रामानुज अय्यङ्गार ने आज्ञा पत्र भेजा! (3) क्या प्रमाण है कि उक्त आज्ञा पत्र सबको भेजा गया? क्या यह पत्र वास्तव में सब को भेजा गया था? (4) क्या विपक्षी दल के विद्वानों को भी इस सभा में बुलाया गया था? (5) क्या इस मदरास सभा में दोनों दलों के विषयों पर आलोचना की गयी थी? (6) आचार्य शङ्कर द्वारा रचित 'मठाम्नाय' जो केवल चार मठ का ही उल्लेख करता है, क्या इस सभा ने इस पुस्तक को अप्रामाणिक ठहराया था? (7) क्या इस सभा ने स्वीकार किया है कि कुम्भकोण मठ का उपदेष्टव्य महावाक्य ॐतत्सत् है? (8) क्या इन्द्रसरस्वती योग पट्ट धर्मशास्त्र ग्रन्थों में कथित दसनामी में एक गिना गया है और यह सर्वोच्च योगपट्ट स्वीकार की है? (9) इस सभा ने कांची मठ के लिये कौनसा आम्नाय लागू होने का निश्चय की है? (10) धर्म शास्त्र पुस्तकों में जो चार संप्रदाय मात्र उल्लेख किया है उसे तिरस्कार कर इस सभा ने क्या पांच संप्रदाय होने का निश्चय किया है? (11) कुम्भकोण मठ का वेद क्या है? (12) क्या विवादास्पद विषयों का निर्णय करने में मठ विरुदावली व मठ मुद्रा को प्रधान व मूल प्रमाण मानना एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों को तिरुस्कार करना न्याय था? (13) क्या इस सभा में वृद्धपरम्परागत आई हुई पुस्तकें और श्रेष्ठों का ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तकों पर (मठाम्नाय व महानुशासन, माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, 60 श्लोक युक्त शिवरहस्यषोडषाध्याय आदि) विचार किया गया था? (14) कुम्भकोण मठ का विरुदावली जो आधुनिक काल का रचित है एवं बाह्य व्यवहार के लिये उपयोग होता है तथा आपके मठ मुद्रा को मूल आधार व प्रमाण में कैसे माना जाय जब सब अन्य प्रामाण्य ग्रन्थ इनके विरुद्ध हैं? ऐसे अनेक प्रश्न उस समय पूछे गये थे और उत्तर दे न पाये और अन्त में पुलीस बन्दोबस्त और उनके संरक्षण में सभा हुई थी। इस पुलीस बन्दोबस्त के कारण विपक्षी दल के विद्वानों ने इस सभा में भाग न ले सके। उक्त दोनों सभाओं का विवरण मेरे पास है और आपके काले कर्तूतों की सूची भी है।

मदरास शहर के कुछ गण्यमान सज्जन व विद्वान श्री रामानुज अय्यङ्गार से मिले और आपसे उक्त सभा का विवरण पूछा था। इन विद्वानों ने श्री अय्यङ्गार से यह भी पूछा था कि "क्या आपने 20 पुस्तकों को देखा या पढा था जिसके आधार पर आपने निर्णय दिया और जो आपके नाम से 'सिद्धान्त पत्रिका' प्रकाशित हुई थी?' श्री रामानुज अय्यङ्गार ने उत्तर दिया कि आपने इन बीस पुस्तकों में से कुछ पुस्तकों का नाम भी सुना नहीं है और जो पुस्तकें आपने पढी है उन सबों में कांची कुम्भकोण मठ का उल्लेख भी नहीं है। आगे आपने यह भी स्पष्ठ कहा कि जो कुछ घटना सभा में घटी थी (विवरण ऊपर पारा में दी गई है) ये सब आपकी अनुपस्थिति में ही घटी थी। आपने कहा कि इस मठ विवाद के बारे में आप कुछ जानते नहीं हैं और कुम्भकोण मठाभिमानी कुछ गण्यमाण सज्जन एवं श्री गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री आकर आपसे प्रार्थना की थी कि क्या वे आपका नाम उपयोग कर सकते हैं? आपने कहा कि इस प्रार्थना

पर आपने अपनी सम्मति दी थी। इस वार्तालाप के अन्त में आपने कहा कि मठों की स्थापना आम्नायानुसार हुई थी और दक्षिणाम्नाय का एक मात्र अद्वैतमठ श्रृङ्गेरी है। सिद्धान्त पत्रिका के संपादक श्री रामानुज अय्यङ्गार ने मई माह 1872 ई॰ में एक पत्र लिखा था और उपर्युक्त विषय सब इस पत्र में दिया गया था। म. म. को. वेंकटरत्नम पन्तुलु से रचित पुस्तक (1876 ई॰) 'शाङ्करमठतत्वप्रकाशिका' में भी उपर्युक्त विषयों का विवरण वहां पायेंगे। ऐसी ही घटना काशी में भी 1935 ई॰ में घटी और पाठकगण यदि काशीरामतारकमठ के महन्त का पत्र पढें तो कुम्भकोण मठ के काले कर्तूतों का विवरण वहां पायेंगे। मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद' शीर्षक में यह पत्र प्रकाशित है। 1935 में काशीपुरी में जो विद्वानों ने कुम्भकोण मठ के आडम्बर व मिथ्या भ्रामक प्रचार के मायाजाल में पडकर अपनी अपनी व्यवस्था दी थी पश्चात् कुम्भकोण मठ के विरुद्ध प्रचार भी करने लगे और इनमें कुछ विद्वानों ने भी इनके भ्रामक प्रचारों पर कडी आलोचना कर पत्र लिखे हैं जो सब 'काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद' नामक पुस्तक में प्रकाशित हैं। अतः यह कहना भूल न होगी कि आपका कर्तूत पूर्व में भी ऐसा ही रहा होगा।

श्रीरामानुज अय्यङ्गार लिखते हैं कि आपको 20 पुस्तकें श्रीगुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री से प्राप्त हुई थी। श्रीगुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री ने म. म. कोक्कन्ड वेंकटरत्नम पन्तुलु को भी ये ही 20 पुस्तकें भेजी थी। उक्त दोनों विद्वानों को गुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री ने स्वरचित 'श्रीमुखव्याख्या' पुस्तक भी भेजी थी। 'सिद्धान्त पत्रिका' निर्णय इन 20 पुस्तकों के आधार पर दिया गया था। (1) 'स्वकृत श्रीमुखव्याख्या' ('स्वकृत' अर्थात् श्रीगुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री)—मठ विरुदावली पर विमर्श पाठकगण पढ चुके होंगे। इस श्रीमुखव्याख्या में विरुदावली के पदों की व्याख्या और कुम्भकोण मठ से कहेजानेवाले प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले पुस्तकों का विमर्श पाठकगण पढ चुके होंगे और यह निसन्देह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक 'श्रीमुखव्याख्या' कुम्भकोण मठ के भ्रामक व मिथ्या प्रचारों की विस्तार व्याख्या करता है। जब कांची मठ का न आम्नाय है, न आम्नाय पद्धति व संप्रदाय हैं, न वेद व महावाक्य है, न ग्राह्य प्रामाणिक पुस्तकें कुम्भकोण मठ के कथनों की पुष्टी करता है तो कैसे आपसे स्वरचित व कल्पित बाह्य चिन्ह विरुदावली, मुद्रा, झन्डा, के आधार पर विवादास्पद विषयों का निर्णय किया जाय? क्या आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय व महानुशासन को निराकरण कर दिया जाय? (2) कुम्भकोणादि षण मठ श्रीमुख—छः मठों का विरुदावली। इसके रचयिता व काल किसी को मालूम नहीं है। श्रीशङ्कराचार्य के काल पश्चात् कालान्तर में उस उस मठ के भिन्न समय में भक्तों के अनुरोध से एवं बाह्य व्यवहार के लिये किसी एक से अथवा अनेकों से रचित मालूम होता है। अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि ये सब विरुदावली 14 वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ था। कालान्तर में विशेषणों का जोड, निकाल, अदलबदल कर परिवर्तित होता हुआ आ रहा है। प्रबल अधिकारियों की सहायता से अपने अपने मठ की महत्ता बढाने एवं श्रीआद्यशङ्कर की यशोगान करने के लिये ऐसे विशेषणों को जोडकर एक विरुदावली तैय्यार की गयी है। अभिमान व स्वेच्छा से आधुनिक काल में रचना की हुई विरुदावली को विवादास्पद विषयों के निर्णय करने के लिये मूल व प्रधान मानना मूर्खता होगी। सिद्ध विषय की पुष्टी में इसे प्रमाण माना जा सकता है। अनेक प्रामाणिक पुस्तक अब भी उपलब्ध हैं जो कुम्भकोण मठ विरुदावली के विरुद्ध हैं। (3 & 4) सहजानन्दसन्तान व योगसार—ये दोनों योगशास्त्र पुस्तक हैं और इनमें आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित आम्नाय मठों का उल्लेख नहीं हैं। आचार्य शङ्कर चरित्र कथा के साथ असम्बन्ध पुस्तकों का नाम देकर एक लम्बी सूची बना देने मात्र से अनभिज्ञ जन ही कुम्भकोण मठ के माया जाल में पड सकते हैं। (5 & 6) ललिता सहस्रनाम व देवी माहात्म्य—आचार्य शङ्कर के पूर्व काल से कांची में कामकोटि पीठ होने का निश्चित होता है ("कामकोटि निलयायी नमः") और ऐसे पूर्वस्थित पीठ का निर्माण आचार्य शङ्कर द्वारा निर्माणित

हुआ है कहना सो भूल है। आचार्य शङ्कर ने अपने दिग्विजय यात्रा में अनेक तीर्थ, क्षेत्र व पीठ स्थलों पर गये थे और अनेक जगह देवी की उग्रता शान्त कर चक्रों की अशुद्धता निवारण कर पुनः प्रतिष्ठा भी की, मन्दिर निर्माण कराया और अनेक जगह मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया था। अतः यह कहना भूल होगी कि आचार्य शङ्कर ने उन स्थानों में नवीन पीठ या मठ का निर्माण किया था। कांची में गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता शान्त कर वहां के श्री चक्र की अशुद्धता निवारण कर पुनः श्री चक्र की प्रतिष्ठा कर, मन्दिरों के निर्माण का प्रबन्ध कर, पश्चात् आप कांची से आगे बढे। मठ की स्थापना आम्नायपद्धति के अनुसार हुई है परन्तु कांची में ऐसा कोई आम्नाय मठ की स्थापना नहीं हुई है। शास्त्र स्पष्ठ उल्लेख करता है कि आम्नाय सात हैं जिसमें चार दृष्टिगोचर और तीन ज्ञानगोचर हैं। इन मठों का संप्रदाय, आचार, नियम, वेद, महावाक्य, धर्मराज्य शासन सीमा आदि सब आचार्य द्वारा रचित मठाम्नाय व महानुशासन में है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित आम्नाय मठ सब धर्मराज्य केन्द्र हैं। मठ साधारण तौर पर परिव्राजकों, छात्रों व ब्रह्मचारियों का वास स्थल कहलाता है। पीठ देवयोनियों का निवास स्थल है। आम्नाय मठ, साधारण मठ, पीठ इन भिन्न शब्दों का अर्थ भी भिन्न हैं। यदि कहा जाय कि जहां पीठ हैं वहां मठ भी हैं तो इस रीति से भारतवर्ष में अनेक मठ बन जायेंगे चूंकि आचार्य शङ्कर ने अपने भारतवर्ष परिभ्रमण में अनेक पीठों का उद्धार किया था। यह कोई नहीं कहता कि कामकोटि पीठ नहीं है पर इस पीठ की अधीषी तो कामाक्षी हैं न कि मनुष्यकोटि का एक व्यक्ति। क्या ललितासहस्रनाम व देवी माहात्म्य आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित आम्नाय मठों का उल्लेख करता है? न मालूम क्यों आचार्य शङ्कर चरित्र कथा सम्बन्धी पुस्तकों की सूची में देवी माहात्म्य एवं ललितासहस्रनाम का उल्लेख किया जाता है? विवाद तो इस विषय का है कि क्या आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नायानुसार धर्मराज्य केन्द्र की स्थापना की थी या नहीं और इस प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर पीठ होने का विषय क्यों लाया जाता है? (7) स्येनवार्ता—पाठकगण इस पुस्तक पर विमर्श आगे पायेंगे। कुम्भकोण मठ विद्वान कहते हैं कि मठ की मुद्रा से सिद्ध होता है कि कांची मठ ही प्रधान जगद्गुरु मठ है और इस विषय का प्रमाण 'स्येनवार्ता' है जहां कहा गया है कि 'दो अंगुल वर्तुलाकार मुद्रा' जगद्गुरुमठ का ही होता है और कांची मठ को छोडकर अन्य किसी मठ की मुद्रा दो अंगुल वर्तुलाकार नहीं है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कौटल्य अर्थशात्र का एक भाग स्येनवार्ता है। ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी के श्रीकौटल्य एवं ईसा पश्चात् सातवीं/आठवीं शताब्दी में जन्म लिये आचार्य शङ्कर का कोई सम्बन्ध नहीं है। पाठकगण स्वयं जान लें कि इस प्रमाण में कितनी न्याय है। (8) लीलावती गणित शास्त्र—न मालूम गणित शास्त्र के साथ आचार्य शङ्कर प्रतिष्ठित मठों का क्या सम्बन्ध रखता है? सम्भवतः कुम्भकोण मठ की मुद्रा की वर्तुल आकार नापने के लिये लीलावति रचित गणित शास्त्र की आवश्यकता हो! या चार मठ संख्या की व्याख्या में पांचमठ बनाने की चेष्टा जो कुम्भकोण मठ करते हैं उसके लिये गणित शास्त्र की आवश्यकता हो! (9) शिवरहस्य—पाठकगण इस अध्याय में शिवरहस्य पर विमर्श पड चुके होंगे और यह ग्रंथ (मूलप्रति) कांची मठ के प्रचारों की पुष्टी नहीं करता। सुषमा रचयिता 60 श्लोक युक्त शिवरहस्य षोडशाध्याय प्रति का निर्देष करते हैं और यह 60 श्लोक युक्त प्रति 16 वीं/17वीं शताब्दी की प्रति है। कुम्भकोण मठ इसे स्वीकार नहीं करते। (10) मार्कन्डेय संहिता—पाठकगण इस पुस्तक पर विमर्श पूर्व में ही पढ चुके होंगे। इन संदेहास्पद क्षिप्त श्लोकों के आधार पर विवादास्पद विषयों का निर्णय कर नहीं सकते। (11) आनन्दगिरि शङ्करविजय—यह अप्रामाणिक द्वेषात्मक निन्दास्पद पुस्तक श्रेष्टों को ग्राह्य नहीं है। इसका अप्रकाशित परिष्कृत्य प्रति 1845 ई० का कहा जाता है और एक मुद्रित प्रति 1867 ई० का है। परन्तु 17 वीं/18 वीं शताब्दी की प्रति, 1828 ई० के पूर्व काल की प्रति एवं 1881 ई० की प्रति जो सब मूल प्रति समान ही हैं, इनमें कांची मठ का उल्लेख नहीं है। परिष्कृत्य प्रतियां सब मूल प्रति की तुलना में समान हीं हैं केवल भेद वहां पाया जाता है जहां क्षिप्त किये गये हैं।

(12) व्यासाचलीय—मदरास राजकीय पुस्तकालय द्वारा 1954 ई० में यह पुस्तक प्रकाशित है और इस पुस्तक में कांची मठ का नामो निशान भी नहीं है। (13 & 14) केरळीय शङ्कराचार्य चरित्र और शङ्कराभ्युदय—ये दोनों पुस्तक नहीं कहता कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी। कांची में अन्य घटनाओं के वर्णन से यह नहीं कहा जा सकता है कि आचार्य ने आम्नायानुसार मठ की स्थापना भी की थी। (15) शङ्करविजय विलास—यह ग्रंथ चिद्विलास रचित है। इस पुस्तक में स्पष्ठ उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने चार ही आम्नाय मठों की स्थापना की थी। कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करने मात्र से आम्नायानुसार धर्मराज्यकेन्द्र की स्थापना नहीं होता है। ये दोनों कार्य भिन्न हैं और विधि व उद्देश्य भी भिन्न हैं। (16) आचार्याष्टक—चूंकि इस स्तोत्र का विवरण (रचयिता व काल) मालूम नहीं पडता, मैं खोज कर न सका। आचार्याष्टक अनेक हैं। जब अन्य अनेक प्रामाणिक ग्रंथ कुम्भकोण मठ के प्रचार की पुष्टी नहीं करता तो इस अष्टक स्तोत्र से क्या प्रयोजन है? (17) माधवीय—कांची में मन्दिर निर्माण का उल्लेख है पर आम्नाय मठ स्थापना का उल्लेख नहीं है। टीकाकार ने अन्य ग्रंथों से भी श्लोक व पंक्तियां व्याख्या में उद्धरण किया है और टीकाकार भी कांची में मठ स्थापना का विषय नहीं कहते। एक तरफ इस पुस्तक को अनादरणीय ठहराने के लिये कुम्भकोण मठ अपने प्रचारों से इस पुस्तक पर कीचड फेंकते हैं और दूसरे तरफ प्रामाणिक होने का भी प्रचार करते हैं। (18) मणिमञ्जरिभेदिनी—तृतीय सर्ग में आचार्य का कांची गमन व भेदवादियों को विवाद में पराजित करना तथा श्रीचक्र का जीर्णोद्धार करना और मुक्तिदायिनी कामाक्षी के प्रति अपना श्रद्धाञ्जली चढाने का वर्णन मात्र है। कांची में आम्नाय मठ होने का उल्लेख नहीं है। परन्तु इसी पुस्तक में शृङ्गेरी का उल्लेख करते समय कहा है—'ममचाश्रमे' एवं शृङ्गेरी में 12 वर्ष वास तथा वहां मठ निर्माण का भी उल्लेख है। (19) विद्याशङ्कर विजय—कहा जाता है कि एक यतिश्रेष्ठ अभिनवोद्धन्ड विद्यारण्य भारती से रचित पुस्तक है पर यह पुस्तक किसी को अब उपलब्ध नहीं होता। (20) गुरुपादस्तव—इस स्तोत्र का रचयिता व काल मालूम नहीं है और मैंने देखा भी नहीं है। जब अन्य प्रामाणिक ग्रंथ कांची में मठ स्थापना का विषय नहीं देता तो इस स्तोत्र से क्या प्रयोजन है?

अब पाठकगण जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ का 20 आधार पुस्तकों की प्रामाण्यता क्या है और इन्हीं प्रमाणाभास परिष्कृत्य एवं चरित्र से असम्बन्ध पुस्तकों के आधार पर विरुदावली पदों की व्याख्या में अपने भ्रामक मिथ्या प्रचारों की पुष्टी कर रहे हैं। इन पुस्तकों के आधार पर विरुदावली की व्याख्या एवं दर्पण लिखकर प्रचार करते हैं। इन्हीं प्रमाणाभास आधारों पर 'सिद्धान्त पत्रिका' प्रकाशित किया गया है जो पुस्तक कुम्भकोण मठ को सर्वोच्च, सर्वोत्तम, सर्वसेव्य, सार्वभौम जगद्गुरु मठ एवं भारतवर्ष का मुखिया शिरोमणि मठ होने का भ्रामक व मिथ्या प्रचार भी करती है। प्रश्न उठता है कि क्यों चार मठाधीष अपने मठ विरुदावली में कांची का नाम उल्लेख नहीं करते और क्यों ये चार विरुदावली कांची को जगद्गुरु मुखिया मठ भी नहीं मानते? कांची मठ अपने को गुरु मठ कहते हैं और अन्य चार मठ शिष्य मठ होने का प्रचार करते हैं परन्तु ये चार शिष्य मठ कांची को गुरु मठ होने का स्वीकार नहीं करते। इस पुस्तक के तृतीय खण्ड में प्रकाशित पत्रों से विदित होता है कि वर्तमान तीन मठों ने कांची मठ प्रचार का विरोध किया है।

श्री मुखव्याख्या या सिद्धान्त पत्रिका के तृतीय अध्याय में श्री रामानुज अय्यङ्गार कहते हैं कि 'शास्त्री ने ऐसा कहा', अर्थात् शास्त्री पद श्रीगुरुमवेंकण्ण शास्त्री को संकेत करता है और इस शास्त्री के कथनानुसार श्री रामानुज अय्यङ्गार ने अपना निर्णय दिया है। श्री अय्यङ्गार का पत्र एवं अन्य विद्वानों के साथ आपका वार्तालाप विवरण इस

विषय की पुष्टी करता है। स्वेच्छावाद के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि श्री रामानुज अय्यङ्गार ने दोनों दलों के प्रमाणों पर दीर्घ आलोचना कर अपना निर्णय दिया है सो प्रचार कहां तक सत्य है, सो विषय पाठकगण स्वयं जान लें।

श्री मुख व्याख्या पुस्तक में लिखा है कि कांची मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित एवं आपसे अधिष्ठित है और आपकी परम्परा आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है; पुष्पगिरि, विरुपाक्षी, कुडली, शृङ्गेरी, आवणी ये पांच मठ विद्यारण्य परम्परा के हैं; इसमें पुष्पगिरि विद्यारण्य की साक्षात् परम्परा है और पुष्पगिरि का शिष्य मठ विरुपाक्षी है चूंकि विद्यारण्य के शिष्य यहां बैठें; शृङ्गेरी प्रतिष्ठा परम्परा है; कुडली व आवाणी दोनों शृङ्गेरी की शाखा मठ है। श्री मुखव्याख्या के रचयिता श्री गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री अन्यत्र यह भी प्रचार किये थे कि विरुपाक्षी का शिष्य मठ पुष्पगिरि है और शृङ्गेरी उसका शिष्य है अर्थात ये सब शिष्य मठ हैं। यह भी प्रचार करते हैं कि श्री विद्यारण्य ने विरुपाक्षी व पुष्पगिरि दो शाखा मठ स्थापित किये। इन भिन्न प्रचारों द्वारा यह मालूम नहीं होता कि वास्तव में कुम्भकोण मठ का प्रचार क्या है। आधार रहित स्वेच्छावाद से कल्पित कथाओं का प्रचार करना उन्मत्त प्रलाप कहलाता है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि आपलोग भ्रामक मिथ्या प्रचार नहीं करते और अन्यों पर श्रेष्ठत्व का दावा नहीं करते पर पाठकगन उक्त प्रचार पढकर जान जांय कि इनका कथन कहां तक सत्य है ? आन्ध्र देश के एक विद्वान का अभिप्राय है कि कुम्भकोण मठ इन भ्रामक प्रचारों द्वारा पुष्पगिरि मठ को प्रोत्साहित या उकसा कर और शृङ्गेरी को एक प्रशिष्य मठ बनाने की इच्छा से ही ये सब काले कर्तूत किये जा रहे हैं। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष अपने आन्ध्र देश भ्रमण में पुष्पगिरि मठ के सर्वाधिकारि से मिलकर इन सब विषयों पर आलोचना की थी। आन्ध्र देश के कतिपय कृपा भाजन विद्वानों द्वारा यह प्रयत्न किया गया कि शृङ्गेरी मठ का प्रभाव आन्ध्र देश में घट जाय और ये सब शाखा मठों का सम्बन्ध कुम्भकोण मठ के साथ हो जाय तो आप 'सार्वभौम मठ' होने का विषय सुविधा से प्रचार कर सकते हैं। 1936/37 ई॰ में आन्ध्र देश से प्राप्त कुछ पत्र मेरे पास हैं जो उक्त काले कर्तूतों का विवरण देता है। पुष्पगिरि मठ सर्वाधिकारी ने चार आम्नाय मठ होने की व्यवस्था दी है जो इस पुस्तक के तृतीय खंड में प्रकाशित है। शिला शासन, ताम्रशासन, विजयनगर का इतिहास, शृङ्गेरी मठाधीषों से प्राचीन काल में रचित ग्रन्थ एवं अन्य दृढ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जगद्गुरु श्री विद्यातीर्थ जी शृङ्गेरी मठाधीष थे और जगद्गुरु श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज के पश्चात् जगद्गुरु श्री विद्यारण्य जी महाराज 1380 ई॰ में शृङ्गेरी मठाधीश हुए। बङ्गाल राज्य से प्रकाशित 'गद्यवल्लरी' भी श्री विद्यातीर्थ एवं श्री विद्यारण्य को शृङ्गेरी परम्परा के आचार्य कहा है और यहां आचार्य शङ्कर से लेकर श्री विद्यारण्य तक का गुरुवंशावली भी है जो सिद्ध करता है कि श्री विद्यारण्य साक्षात् आद्यशङ्कराचार्य की साक्षात् परम्परा के हैं। अतः गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री का कथन कि पुष्पगिरि मठ श्री विद्यारण्य का साक्षात् परम्परा का है सो कथन केवल बकवास है। पाठकगण जान लें कि आचार्य शङ्कर ने कोई अपनी अलग परम्परा नहीं प्रारम्भ की थी और आपसे प्रतिष्ठित चार मठों के मठाधीश ही आपके परम्परा के हैं। विरुपाक्षी और पुष्पगिरि मठों के श्रीमुखों में शृङ्गेरी का नाम है जैसा 'श्री शृङ्गेरी विरुपाक्षी' और 'श्री शृङ्गेरी विरुपाक्षी पुष्पगिरि'। पं. गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री इसका उलटा अर्थ करते हैं कि पुष्पगिरि की शाखा विरुपाक्षी है और शृङ्गेरि प्रतिष्ठा मठ होते हुए भी श्री विद्यारण्य की ही शाखा मठ है। ऐसे उलटे पढने वाले मुसलमान कहलाते हैं और हमलोग सीदे पढने वाले हिन्दू हैं। कुम्भकोण मठ और आपके सर्वज्ञ विद्वान जो सब 'स्थितिमवाप' 'कामेश्वरी अर्चयन्' 'ब्रह्मानन्दमविन्दत' 'काञ्च्यांसिद्धिमवाप' आदि पदों का अर्थ तनुत्याग व्याख्या करनेवाले ; ॐतत्सत् को उपदेष्टव्य महावाक्य होने का बतानेवाले ; धर्मशास्त्र में सात आम्नायों के बीच में मौलाम्नाय नामक एक आठवें आम्नाय की सृष्टि करनेवाले ; अभिमान व स्वशीलाचार से अर्वाचीन काल में

परिकल्पित 'इन्द्र सरस्वती' को सर्वोच्च योगपट्ट होने की घोषणा करनेवाले; चार वेद की जगह पांचवां वेद होने का प्रचार करनेवाले; धर्मशास्त्र में उल्लेख चार संप्रदाय की जगह पांचवां 'मिथ्यावार' संप्रदाय का घोषणा करनेवाले; गुरु पीढी क्रम को बदलनेवाले यथा गुरु—परमगुरु—परापरगुरु—परमेष्ठिगुरु; 'शरदां शतं' की व्याख्या आठ वर्ष चार माह करनेवाले; कालटी का नामान्तर चिदम्बर क्षेत्र एवं विशिष्ठा विश्वजित का नामान्तर आर्याम्बा शिवगुरु होने का प्रचार करनेवाले; भारत के उत्तरपश्चिम कोने में स्थित कश्मीर देश के अन्तर्गत दक्षिण भारत का कांची नगर होने का प्रचार करनेवाले; 'शिलाशासन पर विश्वास करनेवाले शिला पर ही अपनी माथा पटकनी होगी' ऐसा प्रचार करनेवाले; श्री सुरेश्वराचार्य एवं श्री विद्यारण्य को परमहंस सन्यासी न होने की घोषणा करनेवाले; द्वेषात्मक निन्दनीय पुस्तक जो आचार्य शङ्कर का जन्म गोळक बतलाता है उस पुस्तक को प्रमाण में स्वीकार करनेवाले; आदि, क्या कह या लिख नहीं सकते? तो इसमें आश्चर्य नहीं कि 'श्रीमुखव्याख्या' द्वारा मिथ्या प्रचार भी करते हों। स्वार्थी को न भय है और न लज्जा। 'सिद्धान्त पत्रिका' में श्रृङ्गेरी मठ का जो श्रीमुख विरुदावली दिया है उसमें जानबूझकर अनेक अशुद्धियों के साथ प्रकाश किया गया है। इन विरुदावलियों पर आलोचना करना ही व्यर्थ है। अतएव श्रीमुखदर्पण, श्रीमुखव्याख्या, सिद्धान्त पत्रिका, सब द्वेषात्मक मिथ्या प्रचार पुस्तक हैं।

स्येनवार्ता—(मुद्राध्याय)—श्रीकौटल्य!—कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि उपर्युक्त पुस्तक के मुद्राध्याय में लिखा है कि कांची व काश्मीर देश में देव से निर्माणित सर्वज्ञपीठ पर जो यति आरूढ करता है वही जगद्गुरु है और वही 'दो अंगुल वर्तुलाकार मुद्रा' रख सकता है और कांची मठ की मुद्रा दो अंगुल वर्तुलाकार है इसलिये यह जगद्गुरु मठ है। उक्त पुस्तक उपलब्ध नहीं है और किसी ने न सुना है, न देखा है या न पढा है। यह पुस्तक किसी भी सूचीपत्रों में उल्लेख पाया नहीं जाता। जिस प्रकार अदृष्ट, अश्रुत, अनजान वेदान्त चूर्णिका व वासनादेहस्तुति पुस्तकों का नाम लेते हैं उसी प्रकार उक्त पुस्तक है। श्रीआत्मबोध जिन्होंने अनेक कल्पित पुस्तकों का उल्लेख किया है आपने भी स्येनवार्ता का नाम भी नहीं लिया है। इस पुस्तक के रचयिता व काल भी मालूम नहीं है। श्रीमुख व्याख्या एवं सिद्धान्त पत्रिका में गुर्रम वेङ्कण्ण शास्त्री ने इस पुस्तक का नाम लिया है पर विवरण नहीं दिया है। कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि यह अर्थशास्त्र पुस्तक है और श्रीकौटल्य ने रचा है। यह पुस्तक कुम्भकोण मठ में भी उपलब्ध नहीं है। कुम्भकोण मठ पूर्व में प्रचार किये थे कि आचार्य शङ्कर काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण नहीं किये थे चूंकि काश्मीर में सर्वज्ञपीठ न था और आचार्य शङ्कर का सम्बन्ध काश्मीर के साथ बिलकुल न था। आपका प्रचार है कि आचार्य शङ्कर कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया था। परन्तु कुम्भकोण मठ के कल्पित स्येनवार्ता से प्रतीत होता है कि कश्मीर में देव से निर्माणित सर्वज्ञपीठ था। कुछ प्रचार पुस्तकों में यह भी प्रचार हुआ कि कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने के पश्चात् कांची में पुनः स्वनिर्माणित सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था। कुम्भकोण मठ की पुस्तक में लिखा है कि 508 क्रिस्त पूर्व जन्म लिये आद्यशङ्कराचार्य ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया था और आचार्य शङ्कर के पांचवां अवतार एवं कुम्भकोण मठ के 38 वां मठाधीष अभिनव शङ्कर (788 ई०) ने काश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था। समय समय पर भिन्न कथायें सुनाकर प्रचार करनेवाले कुम्भकोण मठ कथनों पर कैसा विश्वास किया जाय। न मालूम अब कैसे और किस प्रमाण पर स्वीकार करते हैं कि कश्मीर में सर्वज्ञपीठ था और आचार्य शङ्कर ने यहीं सर्वज्ञपीठारोहण किया था। इन भिन्न कथनों के सम्बन्ध में 1960/61 में प्रचार किया गया कि दक्षिण भारत का कांची नगर उत्तर भारत के पश्चिम कोने में स्थित कश्मीर मन्डलान्तर्गत है अतः कश्मीर का सर्वज्ञपीठ कांची का सर्वज्ञ पीठ ही है और यहां कश्मीर का अर्थ कांची है। कुम्भकोण मठ सर्वज्ञ पन्डितों की मेधा का यह एक नमूना है जो

सीमातीत है। पाठकगण जान लें कि समयानुसार प्रचार भी कैसे परिवर्तनशील हैं। गण्यपुरुषों का बचन एक होता है पर यहां तो ये 'सर्वज्ञविद्वान' सब बहुवचनवादी दीख पडते हैं।

आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय में कांची मठ का उल्लेख नहीं है और अन्य अनेक प्राह्य प्रमाण सिद्ध करते हैं कि आचार्य ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना न की थी तो इस 'मुद्राध्याय' से क्या प्रयोजन है? स्येनवार्ता तो कपोतवार्ता या श्वानवार्ता मालूम पडता है और यह पुस्तक 'तिलकाष्ठमहिषबन्धन' समान है। आचार्य शङ्कर जो काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण किये और सबों से सर्वज्ञ होने की स्वीकृति प्राप्त की थी क्या आपके समय में मुद्रा थी? इस 'दो अंगुल वर्तुलाकार' मुद्रा के प्रवर्तक कौन थे और क्या कुम्भकोण मठ सिद्ध कर सकते हैं कि आपकी मुद्रा 476 क्रिस्त पूर्व (कुम्भकोण मठ कथनानुसार) काल से उपयोग में चला आ रहा है? यदि मान भी लें कि आचार्य शङ्कर के समय से श्रीमुखविरुदावली और मुद्रा थी तब प्रश्न उठता है कि कुम्भकोण मठ के मुद्रा में क्यों आचार्य शङ्कर का नाम नहीं है? श्री चन्द्रमौलीश्वर का नाम है। क्यों नहीं आपका नाम देवनागरी लिपि में लिखा गया था? आचार्य शङ्कर जो मत प्रवर्तक थे और आप का सम्बन्ध सारे भारतवर्ष के साथ था और जब उस समय की लीपि प्राकृत व देवनागरी में लिखा जाता था तो कुम्भकोण मठ की मुद्रा ऐसा क्यों नहीं है? 19 वीं शताब्दी के मध्य काल पश्चात, 19 वीं शताब्दी अन्त काल, 20 वीं शताब्दी मध्य काल तक की मुद्रा की तुलना की गयी थी और इसमें भी भेद पाये गये अर्थात् मुद्रा भी परिवर्तित होता आया है। मुद्रा के आकार से यदि अनुपस्थित मठ जगद्गुरु आम्नाय मठ बन सकता है तो ऐसे मठ भी हजारों में कल्पित किये जा सकते हैं क्यों कि मुद्रा के आकार भी अनेक होते हैं। यह कहा जाता है कि मठों में मुद्रा, श्रीमुख, झन्डा, जमीन्दारी संस्था, आदि व्यवहारिक चिन्ह सब श्रीविद्यारण्य काल के बाद का ही है अर्थात् 14 वीं शताब्दी अन्त काल। क्या यह सम्भव है कि श्री कौटल्य ने 14 वीं शताब्दि में उपयोग होने वाले मुद्रा का विवरण करीब 1750 वर्ष पूर्व ही लिख गये? ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी के श्री कौटल्य एवं ईसा पश्चात् 7 वीं/8 वीं शताब्दी में जन्म लिये आचार्य शङ्कर का सर्वज्ञपीठारोहण एवं आपके मठ से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मणिप्रभा (रमिला), हयग्रीववध (मेंठा), सिद्धविजयमहाकाव्य (मंथा)
विद्याभिधान चिन्तामणि (सुहल), गौडपादोल्लास (हरिमिश्र),
सर्वज्ञविलास (सर्वज्ञात्मा), महापुरुष विलास (भवभूति),
गुरुविजय (कृष्ण मिश्र), भक्तिकल्प लतिका (जयदेव),
शान्ति विवरण (अद्वैतानन्द), गुरुप्रदीप (अद्वैतानन्द),
शिवशक्तिसिद्धि व स्थ्यैर्यविचारण प्रकरण (श्रीहर्ष),
कथासरितसागर (सोमदेव), राजतरङ्गिणी (कल्हण),
सद्गुरुसन्तानपरिमल (अनजान रचयिता) आदि ॥

उपर्युक्त काव्य, नाटक, कथा, इतिहास, जीवन चरित्र, आदि पुस्तकों का नाम देकर और कुछ पंक्तियों व श्लोकों को प्रमाण में देकर कहते हैं कि ये सब उक्त पुस्तकों से लिये गये हैं। ये सब पुस्तक कुम्भकोण मठ के कल्पित गुरु वंशावली सूची के आचार्यों की महत्ता बढाने एवं अनभिज्ञ पामर जनों को दिखाना है कि कांची मठ के सब मठाधीष अद्वितीय महान् थे। उपर्युक्त सब पुस्तकें श्री आचार्थ शङ्कर के जीवन चरित्र का विवरण नही देते इसलिये इन पुस्तकों पर आलोचना नहीं की जाती है। कल्पित गुरुवंशावली के आचार्यों पर आलोचना आगे अध्याय में की गई है और वहां प्रमाण युक्त सिद्ध किया गया है कि 17 वीं शताब्दी अन्त तक के दिये हुए व्यक्तियों का सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से कुछ

भी न था, अतः उक्त पुस्तकों का विमर्श भी आगे अध्याय में दिया गया है। जब कुम्भकोण मठ ही आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित मठ नहीं है तब उनके गुरु वंशावली सिद्ध करने से क्या प्रयोजन है। यह तो 'अनुपनीतस्य यागवत्' सा है। कुम्भकोण मठाधीष की अनुमति से रचित पुस्तक जो अर्पित है उसमें स्पष्ट कहा है कि शान्तिविवरण, गुरुप्रदीप, कथासरितसागर एवं राजतरङ्गिणी को छोड अन्य सब उक्त पुस्तक उपलब्ध नहीं हैं। जब पुस्तक उपलब्ध न थे और न हैं तो किस प्रकार पंक्तियों व श्लोकों को उद्धृत किया गया? कांची मठाधीष के यशोगान व महत्ता द्योतक श्लोकों को छोडकर क्या उक्त पुस्तक के अन्य भाग भी प्राप्त होते हैं? अथवा क्या यह कहा जाय कि स्वरचित आत्मश्लाघार्थ श्लोकों को उन पुस्तकों से कल्पित सम्बन्ध कराया गया है? आत्मबोध से निर्देषित 90 फी सदी पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं और ये पुस्तकें न किसी ने सुना है, देखा है या पढा है। पांच फी सदी सब परिष्कृत्य प्रति एवं क्षिप्त श्लोक ही हैं। बाकी पांच फी सदी यदार्थ उद्धरण हैं।

ताटङ्क प्रतिष्ठा–मुकद्दमा विवरण— कुम्भकोण मठ ने द्वेषात्मक आनन्दगिरि शङ्करविजय का परिष्कृत्य प्रति 1845 ई० के पूर्व तैय्यार कर इसमें कुम्भकोण मठ की पंचलिङ्ग कल्पित कथा एवं कांची में मठ होने का विषय जोडकर; उक्त क्षिप्त श्लोकों को व पंक्तियों के प्रमाण में शिवरहस्य 60 श्लोक युक्त षोडषाध्याय को 45 श्लोकों में घटा कर एवं अनुपलब्ध मार्कन्डेय संहिता में पांचलिङ्ग की कथा एवं कांची में मठ प्रतिष्ठा की कथा जोडकर; शङ्कराभ्युदय पुस्तक के रचयिता श्रीराजचूडामणि दीक्षित का नाम देकर; पतञ्जली चरित में कुछ श्लोकों को क्षिप्त कर; आपसे स्वरचित (18 वीं शताब्दी अन्त एक 19 वीं शताब्दी में) पुण्यश्लोकमंजरी, गुरुरत्नमाला, सुषमा आदि पुस्तकों को प्रचार कर; शिवरहस्य के श्लोकों को अदलबदल, जोड निकाल एवं क्षिप्त कर एक नवीन प्रति तैय्यार कर; सुषमा में कहेजानेवाले उद्धृत श्लोकों की सूची बनाकर; माधवीय संक्षेपशङ्करविजय से अनेक श्लोकों को लेकर पतञ्जली चरित, शङ्कराभ्युदय में जोडकर तथा एक नवीन व्यासाचलीय पुस्तक तैय्यार कर; श्रीमुखविरुदावली तैय्यार कर और उसकी व्याख्या में श्रीमुखिदर्पण एवं व्याख्या भी तैय्यार कर; मुद्रा, झन्डा एवं अन्य बाह्य चिन्ह तैय्यार कर; इन उक्त स्वकल्पित आधारों पर एक मठाम्नायसेतु तैय्यार कर और उसें आचार्य शङ्कर के शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य कृत कहकर तथा इस मठाम्नाय सेतु में चतुर्दिक मठों का संम्राट मठ कांची मठ होने का विषय एवं एक कल्पित अशास्त्रीय आम्नाय पद्धति उल्लेख कर; 18 वीं/19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में तंजौर राज्य के महराठा महाराजा की सहायता प्राप्तकर तथा तंजौर जिला के कुछ निवासी मठ अभिमानियों व कृपाभाजन विद्वानों की भी सहायता प्राप्तकर यह प्रचार प्रारम्भ हुआ कि आपका मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित और अधिष्ठित था तथा यह जगद्गुरु मुखिया मठ है। यह समय ऐसा था जब कभी अन्य मठाधीष अपने भ्रमण में कुम्भकोणम् आयें तो आप अपना प्रभाव दिखाकर उन्हें अपमान करते हुए पत्र प्राप्त किये गये थे और राजकीय कर्मचारियों की सहायता प्राप्तकर इन मठाधीषों के भ्रमण में भी अडचन देते थे। 17 वीं शताब्दी अन्त तक एवं 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध तक कुम्भकोण मठ कांची में न होने का प्रमाण ईस्ट इन्डिया कम्पनी रिकार्डों से एवं इतिहास तथा शिलाशासन व ताम्रशासन से स्पष्ट विदित होता है। कांची नगर में जहां कुम्भकोण मठ स्थित है वह जमीन 18 वीं शताब्दी में राज्य का जमीन था और पाइमायिश रिकार्ड इसका पुष्टि करता है। कुम्भकोणम् में कुम्भकोण मठ जहां स्थित है वह मठ तंजौर राजा श्रीशरभोजि ने 1821 ई० में बनवा दिया था (मठ के शिलाशासन अनुसार)। अर्थात् आपका कुम्भकोणम् वास 18 वीं शताब्दी अन्त या 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ काल ही होगा और इसके पूर्व आपके कथनानुसार आप तंजौर में वास करते थे। इसी समय में प्रमाणाभास सामग्री सब तैय्यार किये गये थे। 18 वीं शताब्दी अन्त में कांची में दो मठों का निर्माण हुआ और इन दोनों मठों की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये प्रमाणाभास तैय्यार किये गये थे। इसी प्रकार तिरुची जिला का तिरुवानकावल मठ जो

अखिलान्डेश्वरी मन्दिर समीप है और जो शिलाशासन द्वारा स्पष्ट विदित होता है कि यह मठ पाशुपत शैवाचार्य की परम्परा की थी और 17 वीं शताब्दी में कुछ काल तक मध्व संप्रदाय व्यक्तियों के भी आधीन में था। तत्पश्चात् 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में कुम्भकोण मठ के आधीन में यह मठ आया है। वास्तव में विषय यह होते हुए भी आप प्रचार करते हैं कि आपका कांची मठ एवं तिरुवानकावल मठ अनादि काल से आपके पास है और कुम्भकोण मठ की प्राचीनता इसी से सिद्ध होता है। यह सब मिथ्या प्रचार है।

तीन स्थलों में मठों का निर्माण कर और प्रचारार्थ प्रमाणाभास पुस्तकें तैय्यार करके लगभग 1837 ई० में कुम्भकोण मठाधीष कांची की कामाक्षी देवी का कुम्भाभिषेक करने के निमित्त से और अपने शिष्य टोली एवं कृपाभाजन व्यक्तियों के प्रोत्साहन व सहायता से एवं ईस्ट-इन्डिया कम्पनी से कुम्भाभिषेक करने की अनुमति प्राप्त कर (पाठकगण आगे अध्याय में प्रमाण पायेंगे कि कैसे कुम्भकोण मठाधीष कुम्भकोणम से कांची पहुंचे और उस समय के चेङ्गलपेट जिला कलक्टर श्री ए. फ्रीज व कांची के तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव का क्या रिपोर्ट हैं और उस समय के पुराने रिकार्डों में कुम्भकोणमठाधीष को '**Stranger to Kanchi**' कहा गया था) आप कांची 1839 ई० में आकर कामाक्षी देवी की कुम्भाभिषेक कर पश्चात् एक शिलाशासन खोदवा कर उसे मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दी। इसके पश्चात् राज्य कर्मचारियों की सहायता प्राप्त कर और (हेड शिरस्तदार और नायब शिरस्तदार–रेवेन्यू बोर्ड-ईस्ट इन्डिया कम्पनी-मदरास) तंजौर राजा के प्रभाव से एवं अपने टोली की प्रोत्साहन से कुम्भकोण मठाधीष ने ईस्ट-इन्डिया कम्पनी से कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी प्राप्त करने के इच्छा से अपनी अर्जी पेश की थी। चेङ्गलपेट कलक्टर ने कुम्भकोण मठाधीष को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर 5—11—1842 के दिन नियोजन किया था। रेवेन्यू बोर्ड, मदरास, के प्रश्न पर चेङ्गलपेट कलक्टर लिखते हैं कि कुम्भकोण मठाधीष को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त करने का कारण आपके सम्पत्ति पर ख्याल रखते हुए किया गया था अन्यथा आपका कोई हक मन्दिर पर न था। सार्वभौम मठ बनने की चेष्टा में एवं अपने से कल्पित मठाम्नाय में दिये देव देवी पीठों के अधिकारी निरीक्षक बनने की आवश्यकता पडने पर कुम्भकोणम् से आप कांची पहुंचे और कामाक्षी देवी (कामकोटिपीठ) मन्दिर का परिचालक भी बन गये। 1842 ई० तक के 'कुम्भकोणम् शङ्कराचार्य' अब 1843 ई० में 'श्री कांची कामकोटि जगद्गुरु शङ्कराचार्य' बनकर अपनी महत्ता का प्रचार प्रारम्भ कर दिये। अब आप कुम्भकोणम् से कांची पहुंचे और अपनी शिष्य टोली की संख्या भी अधिक बढा ली। प्रारम्भ में ही आपको सफलता प्राप्त होने से आपने कांची में भी अन्य मठ के मठाधीषों को अपने मठ के सामने से पालकी पर गुजरने से रोकने का प्रयत्न भी किया था और आप एक समय 'शैवसिद्धान्त मठ' के मठाधीष को अपने कांची मठ के सामने पालकी गुजरने से रोकने का प्रयत्न भी किया था पर चेङ्गलपेट कलक्टर ने आपके अर्जी को ना मंजूर किया था। प्राचीन रिकार्डों द्वारा एवं कचहरी के फैसला द्वारा प्रतीत होता है कि आप लोगों का उपादि 'शिक्क उडयार' (अर्थात् छोटे स्वामी और आप दोड्डउडयार के श्रेणी से नीचे श्रेणी के थे) था और आज से कई पीढियों के मठाधीष सब 'होयसला कर्नाटकी ब्राह्मण' वर्ग से ही आते हैं और पूर्व काल में आपका मुद्रा भी कर्नाटकी लिपि में था। कांची कामकोटि मठ का पूर्व नाम कांची शारदा मठ था और यह विषय कुम्भकोण मठ स्वयं स्वीकार करते हैं। प्राचीन रिकार्डों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि 18 वीं शताब्दी अन्त तक दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदामठ का प्रभाव कांची में भी था और दक्षिणाम्नाय में शारदा पीठ या मठ ये दोनों श्रृंगेरी के ही द्योतक हैं। अतएव यह अनुमान भूल न होगी कि आप का सम्बन्ध एक समय श्रृंगेरी मूल प्रधान मठ के साथ रहा होगा और पश्चात् आपने अपनी नाता तोड कर न केवल स्वतंत्र मठ बने पर सार्वभौम मठ बनने की चेष्टा में प्रवृत्त हुए। इस अनुमान की पुष्टी तंजौर जिले के न्यायाधीष एवं अनुसन्धान विद्वान डा० बर्नेल ने स्वयं की है (पृष्ठ 159 में देखियेगा)।

ममता व अहंकार ने आपको यहां न छोडा और अब धीरे 'कांची कामकोटि जगद्गुरु शङ्कराचार्य' तिरुची जिला में भी अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न शुरू कर दिये। तंजौर के 'कुम्भकोणम् शङ्कराचार्य' एक समय जो केवल तंजौर जिला में ही प्रख्यात थे अब 19 वीं शताब्दी में चेंगलपेट जिला में भी अपनी टोली संख्या बढा ली थी और पश्चात् तिरुची जिला की ओर आगे बढे। 18 वीं शताब्दी में तैय्यार की हुई कार्यक्रमसूची के अनुसार आपको अविरोध विजय प्रथम ही प्राप्त होने से, इस कार्यक्रम सूची के अनुसार तिरुवानकावल (अखिलान्डेश्वरी मन्दिर के समीप) में एक मठ पूर्व ही स्थापित कर रक्खे थे। यह तिरुवानकावल का मठ पाशुपत शैवाचार्य परम्परा के अधीन में था। एक शिला लेख जो इस मठ में था और जिसका विवरण राजकीय रिकार्डों में प्रकाशित हैं, इससे प्रतीत होता कि यह मठ शैवाचार्य परम्परा का मठ था। इस परम्परा के आचार्य मन्दिर में पूजा सेवादि कार्य करते थे। यह भी प्रतीत होता है कि 17 वीं शताब्दी के बाद कुछ वर्षों के लिये यह मठ मध्व संप्रदाय व्यक्ति के हाथ में भी था। पश्चात् 18 वीं शताब्दी अन्त में या 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में ही कुम्भकोण मठ इसे प्राप्त की होगी। आज से करीब 100 वर्ष पूर्व इनका नाम 'कुम्भकोणम् स्वामी' था और दक्षिण भारत के सब अद्वैतमतावलम्बी दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के ही शिष्य थे। केवल तंजौर जिला छोडकर अन्य किसी भी जिला में आपका नाम न मालूम था और शिष्य टोली न थी। इतिहास व अन्य प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है कि 17 वीं शताब्दी मध्य तक भी तंजौर जिले के लोग शृङ्गेरी मठ के शिष्य ही थे। एक व्यक्ति श्रीअनन्तावधानी जो शृङ्गेरी मठ की तरफ से तंजौर जिले में गुरु दक्षिणा व भेंट स्वीकार करता था चूंकि शृङ्गेरी मठ को यह परम्परागत अधिकार था, कुम्भकोण मठ ने उस अधिकार को आपसे छीन लिया। तंजौर राजा से प्रार्थना कर एवं वहां के राज्यकर्मचारियों की सहायता से उक्त गुरु दक्षिणा स्वीकार करने से बन्द कराया था। इससे स्पष्ठ प्रतीत होता है कि शृङ्गेरी का धर्मराज्य शासन सीमा में तंजौर भी अन्तर्गत था यद्यपि तंजौर राजा के प्रभाव से और कुम्भकोण मठाधीष के चातुर्यता से इस अधिकार को छीन लिया गया। शृङ्गेरी मठ व मठाभिमानी शिष्य चुप मार बैठ गये चूंकि शृंगेरी मठाधीष ऐसे व्यवहारिक विषयों में प्रवेश करना उचित नहीं समझते थे। अब शृंगेरी मठ पर इतनी कीचड फेंकी जा रही है और शृंगेरी मठ के विरुद्ध खुल्लम खुल्ला प्रचार भी होते हैं तथापि शृंगेरी मठाधीष न केवल स्वयं चुप मार बैठे हैं पर अन्यों को भी इन दुष्प्रचारों का खन्डन करने से रोकते भी हैं। कुम्भकोण मठ को इससे अविरोध दुष्प्रचार करने में सुगमता ही है। कुम्भकोण मठ के प्रचार व आडम्बर ने कुछ स्वार्थी विद्वानों को आपके कृपाभाजन बना दिया था और अब कुम्भकोण मठ ने अभिमानी अनुयायी भक्त कोटि के द्वारा अपना प्रचार बहुदूर तक फैला दिया। इस विषय को वही व्यक्ति समझ सकता है जो कुम्भकोण मठ का इतिहास, आपके कार्यक्रमसूची एवं आपके कृत्य 1800 ई० से 1961 तक का पढा हो, देखा हो या अनुभव किया हो। दक्षिण भारत के समस्त शिष्यगणों के पूर्वज शृंगेरी को ही गुरुमठ मानते हुए आये हैं और यही एक दक्षिणाम्नाय का मूल प्रधान गुरु मठ था। अब कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों, आडम्बरों, नवीन प्रचार मार्ग अवलम्बन, पामरजनों की अनभिज्ञता, हिन्दुओं का सादर भक्ति एक यति के प्रति, मनुष्य वर्ग के कमजोरियों पर फायदा उठाकर कुम्भकोण मठ व मठाभिमानी प्रचार के द्वारा साम दान भेद दन्ड मार्ग का अवलम्बन कर अपने ओर आकर्षित करना, शृंगेरी मठ की उदासीनता, इन सब कारणों ने अपने अपने कुटुम्ब पूर्वजों से आचरित आचरण के विरुद्ध जाने का मार्ग दिखाया। आप लोगों का आचरण ऐसा है मानो जैसा गुरु बाजारों में बिकते हैं कि जिसे चाहे उसे स्वीकार कर लिया या जैसे कपडे पहने या उतारे जाते हैं वैसे गुरु भी बदले जाते हैं। मैंने ऐसे सैकडों सज्जनों को देखा है जो एक समय शृंगेरी में गुरुजी से मन्त्रोपदेश लिया था और वे ही अब गुरुमठ के प्रति अपचार कर रहे हैं।

अखिलाण्डेश्वरी की ताटङ्क प्रतिष्ठा कर अपनी विजय पताका तिरुची में फहराते हुए आप पुनः 1846 ई० के पश्चात् स्वधाम तंजौर पहुंचे और तंजौर राजा ने आपको रू० 7000 की भेंट चढाई थी। अब प्रचार पुस्तकें तामिल, तेलगू, संस्कृत (ग्रंथाक्षर व देवनागरी लिपि) आदि भाषाओं में छपकर प्रकाश होने लगे। जहां कहीं प्रमाणों की आवश्यकता पडी और जब जब विपक्षी दल ने आसौकर्य प्रश्न पूछे थे उन सब आक्षेपों के उत्तर में प्रमाण तैय्यार किये गये। 1867 ई० में आनन्दगिरि शङ्करविजय की परिष्कृत्य प्रति मुद्रित हो प्रचार होने लगा। 1872 ई० में सिद्धान्त पत्रिका तैय्यार हुई और इसी समय मदरास, तंजौर, कुम्भकोणम्, तिरुवल्लूर, कांची स्थलों में कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों द्वारा प्रचार सभायें हुई जहां आपके कहे जाने वाले प्रमाण पुस्तकों का प्रचार किया गया। शृंगेरी मठ पर कीचड फेंकना प्रारम्भ भी हुआ। इन भ्रामक मिथ्या प्रचारों का खण्डन में 1876 ई० में एक पुस्तक 'शाङ्करमठतत्त्व प्रकाशिका' भी प्रकाशित हुई थी। कतिपय प्रकान्ड विद्वानों ने इस मिथ्या प्रचार का खन्डन भीं किया था पर कुम्भकोण मठ की तीव्र प्रचार और आपके आडम्बरों ने इस सत्य प्रकटन पर पर्दा डाल दी थी। उत्तर भारत में लगभग 1886 ई० में प्रकान्ड विद्वानों द्वारा यह निश्चित हुआ था कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। यह निर्णय कुम्भकोण मठ प्रचारों के विरुद्ध होनेसे आपका प्रचार अब दक्षिण भारत से उत्तर भारत पहुंचा। 19 वीं शताब्दी अन्त में श्री सुदर्शन महादेव (कुम्भकोण मठाधीष) ने प्रचारार्थ सारे भारत का परिभ्रमण करने निमित्त यात्रा में चल पडे। आपके प्रचारों का तीव्र विरोध आन्ध्र देश में हुआ और आप पूरी जगन्नाथ से दक्षिण भारत लौट आये। अपनी यात्रा पूर्ण भी न कर सके। पर आप जहां जहां पहुंचे वहां वहां आपने एक कृपाभाजन टोली बना ली थी ताकि आप इनके द्वारा प्रचार कराकर अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकें। कृपाभाजन विद्वानों ने इस कार्य में सहयोग भी दिया था। 20 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष ने अपने पूर्वजों के इस अपूर्ण कार्य को संपूर्ण किये। आप उत्तर भारत में परिभ्रमण करते हुए खूब प्रचार भी किया था। भिन्न भिन्न प्रचार सामग्री घर घर, गली गली, सडकों सडकों, में इतनी संख्या में पाये गये मानो अब इन प्रचारों का तूफान उठा हो। 1915 ई० से 1961 ई० तक का मुद्रित मठविषयक प्रचार पुस्तक (तामिल, तेलगू, मलयाळम, कर्नाटक, महराठी, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं में) मेरे पास करीब 60 से भी अधिक प्राप्त हुए हैं और इससे मेरे उक्त कथनों की पुष्टी होता है। वर्तमान मठाधीष अविरोध काशी पहुंचने तक खूब प्रचार करते हुए आये पर काशी में आपके प्रचारों का भन्डा फोड दिया गया और इसके फलाभूत 1935 ई० में 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' प्रकाशित हुई। अब यह पुस्तक उसी का बृहत् संस्करण है।

श्रीआत्रेय कृष्ण शास्त्री से रचित पुस्तक 'शङ्करगुरुपरम्परै' भूमिका में रचयिता लिखते हैं कि विवाहादि शुभ कार्यों में चन्द्रमौळीश्वर भेंट (गुरु दक्षिणा रूप में) जो दी जाती है उसे प्राप्त करने का योग्य अधिकारि जो आचार्य शङ्कर के साक्षात् परम्परा के हैं उस परम्परा (कुम्भकोण मठाधीषों) का जीवन चरित्र सबको अवश्य मालूम होना चाहिये और इस हेतु से यह पुस्तक लिखा गया है। आगे लिखते हैं कि युवक विद्यार्थी को वास्तव विषय जानना परमावश्यक होने से यह चरित्र कथा पुस्तक उनके उपयोग के लिये लिखा जाता है। इससे प्रश्न उठता है कि यह भेंट कुम्भकोण मठ प्राप्त करने के पूर्व अर्थात 18 वीं शताब्दी के पूर्व कौन इसे स्वीकार करता था? कुम्भकोण मठ स्थापना के पूर्व काल में जो मठाधीष इसे स्वीकार करते थे क्या वे आचार्य शङ्कर के साक्षात् परम्परा के न थे? यह अधिकार कुम्भकोण मठ को किसने और कब दिया था? दक्षिण भारत के हर एक कुटुम्ब में पूर्वजों से आचरित आचार को अब क्यों बदलने की चेष्टा की जाती है? क्या इस पुस्तक प्रकाशन के पूर्व किसी को यह न मालूम था कि कौन 'योग्य अधिकारि' था? अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिससे सिद्ध होता है कि आज से 200 वर्ष पूर्व यह अधिकार दक्षिणाम्नाय मठ शृंगेरी को ही था। यह अधिकार दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ ने अपनी शाखा, उपशाखा

एवं कुछ स्वतंत्र मठ जो शृंगेरी को मूल प्रधान गुरु मठ मानते थे उनको उस सीमा के लिये दे दिया था जैसे पुष्पगिरि विरुपाक्षी, आवणि, कुडलि, शिवगङ्गा, आदि हैं। उसी प्रकार यह शाखा कुम्भकोण मठ भी यह अधिकार शृंगेरी से प्राप्त किया होगा। पाठकगण जान लें कि ऐसे पुस्तक प्रचार कर दक्षिण भारत के शृङ्गेरी मठ शिष्यों को किस प्रकार अपनी टोली में लेने की चेष्टा की जा रही है। आचार्य शङ्कर प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय का शृङ्गेरी मठ को कुम्भकोण मठ वाले दक्षिणाम्नाय से न तो निकाल सकते हैं या न तो उस मठ पर चोट पहुंचा सकते हैं और इसी लिये तो उक्त शृङ्गेरी मठ के शिष्यों को अपनी टोली में मिला लेने का तीव्र प्रयत्न हो रहा है। कुम्भकोण मठ की भावना है कि यदि दक्षिण भारत में शृङ्गेरी मठ का शिष्य वर्ग न हों तो शृङ्गेरी मठ की प्रख्याती, प्रभाव घट जायगी और उस जगह आप अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर शोभायमान हो सकते हैं और इस इच्छा पूर्ति के लिये ही अब यह तीव्र प्रयत्न हो रहा है। ऐसे, प्रयत्न से सिद्ध होता है कि शृंगेरी का प्रभाव पर और सारे दक्षिण भारत के शिष्यों का शृङ्गेरी मठ के प्रति आदर भाव पर न सहते हुए और उनके प्रभाव व मान्यता को घटाने की चेष्टा में पामरजनों के बीच यह भ्रामक मिथ्या प्रचार किया जा रहा है। प्रचार उस वर्ग के लिये आवश्यकता है जो कोई नई समस्या खडी करते हैं या वर्तमान स्थिति व आचार विचारों को बदलना चाहते हैं और इसमें आश्चर्य नहीं है कि कुम्भकोण मठ तीव्र प्रचार करते हों। शृङ्गेरी मठ की उदासीनता, इन मठाधीषों के उदार चित्त एवं सबों को आत्मावै देखना, आप आदरणीय मठाधीषों का व्यवहारिक प्रवृत्ति मार्ग में दिलचस्पी न लेना, अपने धर्मराज्य सीमा में बहुवर्ष परिभ्रमण न करना, इन सब कारणों ने कुम्भकोण मठ को ध्यैर्य देकर एक अवसर भी प्राप्त हुआ कि आप अपने मिथ्या प्रचारों को अविरोध प्रचार कर सकें। शृङ्गेरी मठ की उदासीनता के कारण आपके शिष्य भी चुप मार बैठें हैं। कुम्भकोण मठ की संपत्ति, आडम्बर, प्रभाव, प्रचार मार्ग, आदियों ने लोगों को मोहित कर दिया है और इस 150 वर्ष से अविरोध प्रचार ने एक शिष्य टोली आपके लिये तैय्यार की है जो दिनरात आपके कार्य की सफलता प्राप्त करने में इस टोली के सदस्य सहयोग देते हैं। मेरे समान गृहस्थ और क्या कर सकता है केवल सत्य का प्रकटन कर चुप मार बैठना ही होगा चूंकि न मेरे पास वह संपत्ति, आडम्बर, प्रभाव, हां में हां मिलानेवाली टोली हैं या न मैं नवीन प्रचार मार्ग का अवलम्बन कर सकता हूं। कुम्भकोण मठ की मठाम्नायसेतु में कहा गया है कि कुम्भकोण मठ के प्रथमाचार्य आचार्य शङ्कर ने चार शिष्य मठों की स्थापना की थी और विधि भी बनायी थी; ये चार शिष्य मठाधीष कांची मठ आज्ञा बिना कहीं भ्रमण नहीं कर सकते हैं पर कांची मठ कहीं भी भ्रमण कर सकते हैं; ये चार शिष्य मठ कांची मठ के संचालन व शासनाधीन में हैं; कांची मठ भारतवर्ष का मुखिया शिरोमणि सार्वभौम मठ है; कांची मठाधीष ही 'जगद्गुरु' पदवी के अर्ह हैं और ये चार शिष्य मठ केवल 'गुरु' पदवी के अर्ह हैं। यह मठाम्नायसेतु आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य द्वारा रचना की गयी थी, ऐसा कुम्भकोण मठ का कथन है। इसके आधार पर सैकडों पुस्तकें भिन्न भाषाओं में लिखकर 1850 से 1961 ई० तक खूब प्रचार किया गया है। प्रश्न उठता है कि क्या वर्तमान तीनों आम्नाय मठाधीष एवं उनके लाखों भक्त शिष्य मन्डली कुम्भकोण मठ प्रचारों को स्वीकार करते हैं और क्या वे स्वीकार करते हैं कि तीनों आम्नाय मठाधीष कांची मठाधीष के शिष्य हैं और केवल श्रीगुरु पदवी के अर्ह हैं? क्या मैं उम्मीद कर सकता हूं कि वर्तमान तीन मठाधीष एवं आपके शिष्य वर्ग इस विषय को हाथ में लेकर सत्य का प्रकटन करेंगे?

कुम्भकोण मठविषयक प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटी प्रदीपम' में 1961 ई० में प्रचार किया जाता है कि कांची मठ तामिलनाड का मठ है और पूर्व में आचार्य शङ्कर ने अपने जन्म लीला स्थल में मठ की स्थापना न करना असम्भव दीखता है और यह विषय हरएक तामिलनाड के व्यक्ति को सोचविचार करने का समय आ गया है। आगे

आप प्रचार भी करते हैं कि शृङ्गेरी मठ कर्नाटक देश का मठ है और आप तमिलनाड में आकर यहां की संपत्ति कर्नाटक देश ले जाते हैं। द्वेष राग से मनुष्य कितना पतित हो जाता है। पाठकगण जान लें कि आचार्य शङ्कर ने मठों की प्रतिष्ठा आम्नायानुसार की थी न कि जाति व भाषा आदि के आधार पर। आचार्य शङ्कर ने जिस आध्यात्मिक सूत्र से सारे भारतवर्ष की एकता को बांध रक्खा था अब उस सूत्र को कुम्भकोण मठानुयायी जाती भाषा के विषैली प्रचारों के आधार पर तोडने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे दुष्प्रचार से दक्षिणाम्नाय के स्मार्थ अद्वैतमतावलम्बीयों में परस्पर फूटभाव एवं द्वेष उत्पन्न करता है। अपने को 'परमशिवावतार' 'चलते फिरते देव' 'दक्षिणामूर्ति अवतार' कहलाने वाले वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष की आंखों के सामने यह सब दुष्प्रचार होते हुए भी आप अपनी अनजानता प्रकट करते हैं। इसमें क्या तात्पर्य है? पाठकगण जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ की योजना क्या थी, क्या उद्धेश्य था, किस भावना से प्रचार किया गया था और किस प्रकार इस कार्य में सफलता प्राप्त की।

काशीधाम में 1935 ई० में जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा और जब इनके प्रचारों की पोल खोली गयी थी और पूछे प्रश्नों का और आक्षेपों का प्रमाण व न्याय युक्त उत्तर न दे सके ('काशी में कुम्भकोणमठ विषयक विवाद' शीर्षक पुस्तक में पूर्ण विवरण दिया गया है) तो कुम्भकोण मठाधीष के अनुयायियों ने एक पुस्तक जिसे कुम्भकोण मठ के सर्वाधिकारी श्री कुप्पुस्वामी ने प्रकाशित किया है और जो एक मुकद्दमे का फैसला इसमें दिया गया है उस पुस्तक को लेकर काशी के गण्यमान सज्जनों,' अमीरों, विद्वानों, परिव्राजकों, महन्तों एवं पत्र संपादकों के घर पहुंच कर सबों को दिखाया गया। इस मुकद्दमे के आधार पर यह प्रचार किया गया था कि कचहरी के फैसला ने कुम्भकोण मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित तथा कुम्भकोण मठाधीष ही आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा के हैं ऐसा सिद्ध किया है। अब पाठकगणों की जानकारी के लिये यहां उस फंसला का विवरण दिया जाता है ताकि यथार्थ जान जांय।

तिरुची जिला जम्बुकेश्वर मन्दिर के अखिलाण्डेश्वरी देवी की ताटङ्क प्रतिष्ठा के विषय में एक विवाद 19 वीं शताब्दी (मध्य) में खडा हुआ और यह विषय अदालत तक पहुंचा। उक्त मन्दिर के कुछ कार्यकर्ता और वहां के कुछ गण्यमान् सज्जनों की प्रार्थना पर शृंगेरी मठाधीष ने इस देवी की ताटङ्क प्रतिष्ठा स्व कर कमलों से करने की अनुमति दी थी। अनुमति प्राप्तकर यहां इस प्रतिष्ठा का प्रबन्ध किया जा रहा था। पूर्व में तिरुची कलक्टर ने भी इस प्रबन्ध पर आमोदन किया था। इस बीच में उक्त मन्दिर के कुछ पुराने ट्रस्टियों का अदल बदल हुआ था और नये ट्रस्टी का चुनाव भी हुआ था। इसके पश्चात् कुम्भकोण मठ की कार्यक्रम सूची के अनुसार उक्त मन्दिर के दो ट्रस्टियों की सहायता प्राप्तकर एवं तंजौर राजा के प्रभाव का उपयोग कर कुम्भकोण मठाभिमानियों ने गुप्त रीति से प्रबन्ध किया कि यह ताटङ्क प्रतिष्ठा कुम्भकोण मठाधीष द्वारा ही होनी चाहिये। तिरुची कलक्टर के पास इस उद्देश्य को लेकर पहुंचा गया और अर्जी भी दी गयी थी। कुम्भकोण मठ के अभिमानियों व उक्त मन्दिर के धर्मकर्ता एवं वहां के अन्य कर्मचारियों की सहायता से यह प्रतिष्ठा कुम्भकोण मठाधीष से ही कराये जाने का विषय जब मालूम हुआ तब शृंगेरी मठ का एक अभिमानी भक्त श्री सेषा जोस्यर ने कचहरी में अर्जी पेश की कि ताटङ्क जीर्णोद्धार करने का अधिकार केवल शृंगेरी मठ को ही है चूंकि पूर्व में शृंगेरी मठाधीषों ने इस ताटङ्क का जीर्णोद्धार किया था। उक्त अर्जी के अनुसार विपक्षीदल कुम्भकोणमठाधीष एवं अन्य इस अर्जी पर आक्षेप किया और यह मुकद्दमा प्रारम्भ हुआ। दोनों दलों ने अपना अपना प्रमाण पेश किये। इस दावा में एक अर्जी पेश कर श्री शेषा जोस्यर कहते हैं कि आपने कुछ प्रमाण पेश किया है और अनेक अन्य प्रमाण जो

इस दावा सम्बन्ध में पेश करना था सो सब न आपके पास अब है और न आपको अभी तक श्रृंगेरी मठ से प्राप्त हुआ। उन दिनों में जगद्गुरु श्री श्रृंगेरी मठाधीष भ्रमण में थे।

यद्यपि दोनों दलों ने अपना अपना प्रमाण पेश किया था परन्तु न्यायाधीष ने फैसले में स्पष्ट कहा है कि इस दावा में अन्य कोई विषय पर निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है और यह ताटङ्क जीर्णोद्धार करने का अधिकार उसी को प्राप्त होगा जो पूर्व में एकमात्र पूर्ण सर्वाधिकार के आधार पर इस अधिकार का उपयोग किया हो। अतः कचहरी में प्रश्न उठा नहीं कि क्या कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित मठ है और आपका परम्परा अविच्छिन्न परम्परा है ? न्यायाधीष ने भी इस विषय पर अपना निर्णय भी नहीं दिया था। कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि कचहरी फैसला में निश्चित हुआ है कि कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित है सो प्रचार मिथ्या है। श्री शेषा जोस्यर ने जो कुछ प्रमाण कचहरी में पेश किया था (अन्य अनेक प्रमाण पेश न कर सके चूंकि आपको श्रृंगेरी से प्राप्त न हुआ था) उसके आधार पर न्यायाधीष ने निर्णय दिया कि श्रृंगेरी मठ द्वारा ताटङ्क प्रतिष्ठा पूर्व में करने का कोई पूर्ण एकमात्र हक केवल श्रृंगेरी मठ को ही यह अधिकार होने का प्रमाण इन पेश किये प्रमाणों पर साबित नहीं होता। न्यायाधीष आगे लिखते हैं कि प्रमाण पत्रों में केवल शङ्कराचार्य पद प्रयोग से श्रृंगेरी मठ को ही पूर्णतौरपर सर्वाधिकार होने का निश्चय नहीं होता। लेकिन न्यायाधीष ने कुम्भकोण मठ को यह पूर्ण सर्वाधिकार होने का निर्णय भी नहीं दिया है। न्यायाधीष स्पष्ट फैसले में लिखते हैं कि श्रृंगेरी के अभिमानी से श्रृंगेरी मठ का पूर्ण हक केवल श्रृंगेरी मठ को ही होने का पूर्ण तौर पर साबित नहीं हुआ और यह अधिकार कुम्भकोण मठ को है या नहीं इस विषय पर आलोचना करने की आवश्यकता नहीं है क्यों कि कानून के अनुसार यह अधिकार एक को न होने से दूसरे के अधिकार पर जांच करने की आवश्यकता नहीं है। श्रृंगेरी के अभिमानी ने श्रृंगेरी मठ को पूर्ण सर्वाधिकार होने का विषय सिद्ध न कर सका अतः यह दरख्वास्त खारिज किया जाता है। पाठकगण इस विषय का विवरण न्यायाधीष के फैसला (Case No. 95 of 1844—District Court of Trichinopoly) में देख सकते हैं। अब पाठकगण जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ के प्रचारों में कितनी सत्यता है। कुम्भकोण मठ के सर्वाधिकारी श्री कुप्पुस्वामी जिन्होंने न्यायाधीष के निर्णय को प्रकाशित किया है, आप इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ के प्रमाण ग्रन्थों से साबित होता है जो कचहरी ने निर्णय दिया है। परन्तु न्यायाधीष के फैसले में ऐसा कोई निर्णय नहीं दिया गया है कि कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित या अधिष्ठित है और आपका परम्परा आचार्य का अविच्छिन्न परम्परा है। कुम्भकोण मठ के कहे जाने वाले प्रमाण ग्रन्थों के बारे में पाठकगण इस अध्याय को पूर्ण पढें तो कुम्भकोण मठ के निर्देषित ग्रन्थों को बारे में यथार्थता मालूम हो जायगा। अपने मिथ्या भ्रामक प्रचारों को रातदिन बार बार कहने मात्र से विषय की सत्यता सिद्ध नहीं की जा सकती है। आचार्य शङ्कर ने कहा है 'नहिंमृशं कृत्वा अजरामरो भवती ... ...' जो भी रूप रङ्ग मिथ्या को दिया जाय तब भी मिथ्या मिथ्या ही है।

सारांश—इस अध्याय में दिये हुए विषयों के आधार पर एवं परम्परागत सुनते आये हुए प्रामाणिक कथा व ग्रन्थों के आधार पर यही स्पष्ट सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा की थी और इन आम्नाय मठों को महानुशासन से बद्ध किया था और कांची में देवी की उग्रता शान्त कर, श्री चक्र की अशुद्धता

निवारण कर, श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा कर और वहां ब्राह्मणों को पूजादि के लिये नियोजन कर, वहां से आगे बढे। नगर व मन्दिर निर्माण कराने का प्रवन्ध भी किया था। इन्हीं आधारों पर इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में आचार्य शङ्कर का जीवन चरित्र कथा दी गई है। कांची में कामाक्षी देवी की उग्रता शान्त करने से, श्री चक्र की पुनः प्रतिष्ठा करने से, कांची में कुछ माह वास करने से या मन्दिर व नगर का निर्माण कराने से, यह सिद्ध नहीं होता कि आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार धर्मराज्यकेन्द्र (मठ) की स्थापना की थी। आम्नाय मठों का संप्रदाय, वेद, महावाक्य, योगपद, आम्नाय, देवदेवी पीठ, धर्मराज्य शासन सीमा, आदि सब प्रमाण ग्रन्थों द्वारा निश्चित रूप से सिद्ध हैं और ये सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रन्थ केवल चार दृष्टिगोचर आम्नाय मठों का ही उल्लेख करता है। अन्य तीन आम्नाय ज्ञानगोचर हैं। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार यदि मान भी लें कि आचार्य शङ्कर ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया था पर इससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि आम्नाय मठ की स्थापना कांची में हुई थी चूंकि ये दोनों कार्य पृथक हैं और इनके ध्येय, विधी व आधार भी पृथक हैं। कामकोटि पीठ आचार्य शङ्कर के पूर्व काल का पीठ है और पीठ होने मात्र से आम्नाय मठ होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस तर्क से मठाम्नाय पद्धति जो आचार्य शङ्कर से रचित ग्रन्थ है वह झूठ बन जायगा। भारतवर्ष में अनेक पीठ हैं जहां आचार्य शङ्कर गये थे तो क्या कहा जाय कि इन सब पीठों में भी आम्नाय मठ की स्थापना हुई थी ? साधारण निवास स्थल को मठ कहते हैं, मठाम्नायानुसार एवं महानुशासन से बद्ध धर्मराज्य केन्द्र को आम्नाय मठ कहते हैं और देवयोनियों का निवासस्थल को पीठ कहते हैं। अतः मठ,आम्नाय मठ और पीठ के भिन्न अर्थ हैं और एक की जगह दूसरे का उपयोग कर नहीं सकते। साधारण व्यवहार में पीठ को आसन भी कहते हैं पर आचार्य शङ्कर ने पीठ पद का प्रयोग देवयोनियों के निवासस्थल को ही कहा है। अतः यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी।

दक्षिण भारत में जो अपचार आद्यशङ्कर एवं उनके परम्परा आचार्यों के प्रति हो रहा है इसे कुम्भकोण मठ के नवीन शिष्य भक्त जो अर्वाचीन काल में यह शिष्य मन्डली वनी है वे इन अपचार कृत्यों को स्वीकार नहीं करते और आप लोगों की दृष्टि में अन्यों पर कीचड फेंकना अपचार कार्य नहीं है। शिष्य अपने अनन्य भक्ति से गुरु का यशोगान भले ही करें और इसमें किसी को आपत्ती नहीं है पर आक्षेप किया जाता है जब कुम्भकोण मठ एवं आपके अनन्य भक्त दूसरों पर द्वेषात्मक निन्दनीय प्रचार करते हुए तथा अन्यों का अधिकार को छीनकर एवं उन्हें अनादरणीय ठहराने की चेष्टा करते हुए अपने गुरु का यशोगान करते हैं। यह यशोगान एवं स्वप्रख्याती गुरु की ममता व अहंकार को प्रोत्साहित कर और वही अहंकार गुरुदेव को स्वयं देवयोनी होने की बात मानने में वाध्य करता है और आक्षेप तभी होता है जब कि इन यशोगान से अपनापन आ जाता है और स्वार्थ सिद्ध करने के लिये भ्रामक व मिथ्या प्रचार किया जाता है। इतने दुष्प्रचार होते हुए भी और शृङ्गेरी के प्रति निन्दनीय कर्तूत घटित होते हुए भी न जाने ये लोग किन कारणों से मौनधारण कर लिया है। सम्भवतः आप सब कुम्भकोण मठ योजना के समर्थक हैं और उनके कार्य में सहयोग देते हैं और आप लोगों को अपनी भूल भी न मालूम होती हो। इनमें से कुछ हैं जो यह भी कहते हैं कि शृङ्गेरी की निन्दा कोई नहीं करता और यह कल्पित है। इस मंडलि के सदस्यों से प्रार्थना करूंगा कि आपलोग कृपया कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों को पढें। अपने दुष्प्रचारों से विवाद खडा कर पश्चात् जब इन दुष्प्रचारों का भन्डा फोड दी जाती है तो यही वर्ग कहता है कि ऐसे खन्डनकार सब धर्म की अवहेलना करते हैं। इनसे भी मेरी प्रार्थना है कि आप इन दुष्प्रचारों को प्रथम बन्द करा दें ताकि विवाद की जगह ही रह न जाय। इस विवाद के प्रवर्तक कौन थे ? प्राचीन काल में कुछ हिन्दू मतावलम्बी लोगों द्वारा शृङ्गेरी के प्रति किये गये अपचार व हानी को देख कर टीपू सुल्तान ने शृङ्गेरी मठाधीश को लिखा था—'People who have sinned against

such a holy personage like you are sure to suffer the consequences of their misdeeds at no distant date. They will do evil deeds smiling, but will suffer the consequences weeping. Treachery to gurus will undoubtedly result in the destruction of the line of discent.' यह पत्र अब भी उपलब्ध है। टीपू सुल्तान का कथन कि लोग हंसते हुए आनन्दित होकर अपने गुरु के प्रति कुकर्म करते हैं और इसका फल भोगते समय रोते हैं एवं गुरु के प्रति अपचार करना कुल का क्षय होता है, सो कथन कितना सत्य है। शर्म की बात है कि यद्यपि हमलोग अपने को हिन्दू कहते हैं और अपने धर्म की महत्ता का घोषणा करते हैं तथापि गुरु के प्रति अपचार करते हुए इस दुष्कर्म को स्वीकार नहीं करते और एक मुसल्मान हमारे इस दुष्कृत्य को दिखाकर सद्बुद्धि का बोध कराता है।

कुम्भकोण मठ के लिये आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ एक बाधा है और आपके लिये कुठार भी है। दक्षिण में इस मठ की उपस्थिति से कुम्भकोण मठ अपने मिथ्या भ्रामक प्रचारों का पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। सम्भवतः इसीलिये 1960/61 ई० में अब नया प्रचार शुरु हुआ है कि कांची मठ तामिलनाड का मठ है और तामिलवर्ग के लोगों को कुम्भकोण मठ के शिष्य मन्डली का सदस्य बनना उनका कर्तव्य होगा तथा शृङ्गेरी कर्नाटक देश का मठ है और आपका सम्बन्ध कर्नाटकों से है। ममता, अहंकार एवं स्वार्थ से मनुष्य इतना पतित होता है कि वह आचार्य शङ्कर के प्रति अपचार करने में भी तैय्यार होता है। क्या आचार्य शङ्कर ने जाति व भाषा के आधार पर मठों की स्थापना की थी? जिस आध्यातिमक सूत्र से आचार्य शङ्कर ने भारतवर्ष का संघटन कर एकता दिखाई थी अब उसी सूत्र को कुम्भकोण मठ वाले तोडने चले। शृङ्गेरी मठ को दक्षिणाम्नाय से कुम्भकोण मठ अलग नहीं कर सकता है या न तो शृङ्गेरी मठ का महत्त्व, प्रभुत्त्व, प्रख्याती, गौरव आदि पर चोट पहुंचा सकता है। इसीलिये तो दक्षिणाम्नाय के स्मार्थ अद्वैतमतावलम्बी भक्तों के बीच भ्रामक मिथ्या प्रचारों से उन्हें अपनी तरफ आकर्षित करने की तीव्र चेष्टा की जा रही है। इसके फलःभूत दक्षिणाम्नाय शिष्यों के बीच राग द्वेष उत्पन्न होकर फूट की भावना से नवीन वर्ग बनने लगा है। हर एक हिन्दू, यति के प्रति आदर सद्भाव रखता है और आपके कथनों को भी स्वीकार कर लेता है। अनभिज्ञ पामरजन इन आडम्बरों से मोहित होकर यतियों के प्रचारों को सुनकर उनके मायाजाल में पड भी जाते हैं। सम्भवतः श्रेष्ठों ने इसीलिये कहा है कि यति के काषायवस्त्र एवं दन्ड के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति अर्पण करो। यदि व्यक्तिगत यति का आचारविचार ठीक न हो तो उस तुरीयाश्रम के चिन्हों के प्रति आदर भाव घट जाने की संभावना से ही श्रेष्ठों ने तुरीयाश्रम के चिन्हों के प्रति आदर भाव प्रगट करने को कहा है न कि उस यति के प्रति।

अध्याय—2

श्रीमच्छङ्कराचार्य रचित मठाम्नाय पद्धति

(संप्रदाय)

पाठकगण मठाम्नाय ग्रन्थ के विषय में इस खण्ड के प्रथम अध्याय में पढ चुके होंगे। यहां कांची कुम्भकोण मठ से प्रचारित कांची मठ की आम्नाय पद्धति के विषय में आलोचना की जाती है। कुम्भकोणम् से 1894 ई० में प्रकाशित कांची मठ का मठाम्नायसेतु में यों उल्लेख है 'इति परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्कर भगवत् पूज्यपाद शिष्य श्रीसर्वज्ञचित्सुखाचार्य विरचिते बृहच्छङ्करविजये आम्नायतद्भेद निर्वचनन्नाम त्रयोदशप्रकरणं।' इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर के शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य से रचित मठाम्नायसेतु है और बृहच्छङ्कर विजय का एक भाग है। पर मठाम्नायसेतु एवं स्तोत्र जो आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में परम्परा रूडी से आचरण में चला आ रहा है, जो सर्वो को ग्राह्य है और जिसकी प्राचीन प्रति अब भी उपलब्ध हैं तथा जिसका प्रकाशन अडयार, मदरास से मठाम्नायोपनिषद नाम से हुआ है, इसमें स्पष्ठ उल्लेख है कि मठाम्नाय श्रीमच्छङ्कराचार्य से विरचित है। कहेजाने वाले चित्सुखाचार्य विरचित मठाम्नाय में जो अधिक श्लोक कांची मठ के बारे में उल्लेख हैं सो सब मठाम्नायोपनिषद में या अन्य किसी प्रकाशित या अप्रकाशित मठाम्नाय ग्रंथों में नहीं हैं। इस नवीन कल्पित कांची मठ की मठाम्नाय पद्धति का विवरण धर्मशास्त्र ग्रंथ, यति धर्म ग्रंथ, वेदान्त ग्रंथ और पुराण पुष्टी नहीं करते। अतएव यह कहना ठीक होगा कि कांची मठ से स्वरचित कुछ श्लोकों को मूल मठाम्नायसेतु में जोड कर इस कल्पित पद्धति का प्रामाण्यता दिखाने के लिये श्रीचित्सुखाचार्य का नाम लेकर कुम्भकोण मठ भ्रामक मिथ्या प्रचार कर रहे हैं। संपूर्ण बृहच्छङ्करविजय कहीं उपलब्ध नहीं है और यह एक सुगम रास्ता है कि अनुपलब्ध पुस्तक का नाम लेकर मिथ्या प्रचार करना।

जिसप्रकार एक ब्राह्मण को पहिचानने के लिये उसका वेद, गोत्र, प्रवर, सूत्र आदि पूछ कर बाद यज्ञोपवीत एवं ब्राह्मणों के अन्य बाह्य चिन्ह को देखकर उसके कथन की पुष्टी करते हैं उसी प्रकार हर एक सन्यासी को पहचानने के लिये उनका महावाक्य दीक्षा, योगपट्ट, संप्रदाय, आदि जानना आवश्यक है। अधिकार संपन्न आम्नाय मठों के लिये आम्नाय पद्धति का होना भी परमावश्यक है। आचार्य शङ्कर रचित मठाम्नाय ही प्रामाणिक ग्रन्थ है जिसमें उक्त विषयों का उल्लेख है। मठ व आम्नाय पदों से मठाम्नाय बना है।

कांची कुम्भकोण मठ की आम्नाय पद्धति यदि आचार्य शङ्कर रचित चार दृष्टिगोचर आम्नाय पद्धति में एक हो जाय तो कांची मठ उक्त चार आम्नाय मठों के एक मठ के अन्तर्गत होना, शाखा या उपशाखा मठ रूप में, निश्चित होता है। एक ही आम्नाय में दो भिन्न भिन्न आम्नाय पद्धति नहीं हो सकता है। अतः कांची मठ इन चार आम्नाय मठों के एक मठ की पद्धति का ही अनुसरण करते आचरण में ला सकते हैं और यह कांची मठ शाखा मठ ही होगी। पर कांची मठ आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों से अपना सम्बन्ध जोडना नहीं चाहते हैं। आपका तृतीय पंथा के अनुसार आप अपना सम्बन्ध आचार्य शङ्कर से ही जोडते हैं ताकि आपका मठ आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित चार आम्नाथ मठों के बहिर्भूत हो और आपके यह प्रचार करने में सुविधा भी हो "सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः" "ते सर्वे मत्पदाचार्य नियोगेन यथा विधि"। "तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदेस्थिताः।" "मन्मख्याः

सर्वेतश्वराः।" "अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।" इस कल्पित कथा का प्रचार करने के लिये प्रामाणाभास रूप में एक नवीन कल्पित मठाम्नायसेतु रचना कर चित्सुखाचार्य का नाम देकर मिथ्या भ्रामक प्रचार कर रहे हैं।

मठ— साधारण तौरपर किसी महान् यति का आश्रम या सन्यासियों का निवासस्थल या ब्रह्मचारी छात्रों का निलय समझते हैं। अमर कोष में उल्लेख है "मठः छात्रादिनिलयः"। ब्रह्मपुराण में उल्लेख है "ब्रह्मघोषो भवेद यत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः। वेद प्रदानकं वेश्म मठ इत्यभिधीयते।" ऐसे मठ अनेक हो सकते हैं। ऐसे साधारण निवासस्थलों को मठ कहने में कोई आपत्ति भी नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या ये सब मठ व मठाधीष अधिकार संपन्न मठ या परिव्राजक हैं? क्या ये सब आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित एवं मठाम्नायान्तर्गत हैं? आचार्य शङ्कर प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों के सिवा अन्य साधारण मठ क्या ये महानुशासन से बद्ध हैं? आम्नायानुसार एवं महानुशासन अनुसार "अधिकार संपन्न" का अर्थ है "जहां के अध्यक्ष को धर्मशासन में उस सीमा का अधिकार हो।" इस दृष्टि से मठ विषय में आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों को ही अधिकार संपन्न मानना उचित व न्याय होगा चूंकि आचार्य शङ्कर ने स्वयं महानुशासन में स्पष्ट ऐसा कहा है। इस पुस्तक के चतुर्थ खण्ड में महानुशासन प्रकाशित है।

कुम्भकोण मठ अपने मठ को 'शारदा मठ' और पीठ को 'कामकोटी' कहते हैं और दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ को 'शृंगेरी मठ' और 'शारदा पीठ' करते हैं। कैसे आपका मठ शारदा मठ हुआ जब आपके पीठ की अधीश्वी कामाक्षी है और मठ की पूजित मूर्ति 'त्रिपुरसुन्दरी' है। आपके मठ द्वारा कचहरी में (Case No. 95/1844) दिये हुए कथन में आपने कहा है कि कामाक्षी देवी से नीची श्रेणी में गिनेजाने वाली सरस्वती-शारदा हैं और आचार्य शङ्कर ने ऐसे छोटे श्रेणी देवी के मन्दिर में श्री चक्र की प्रतिष्ठा नहीं की थी। यदि यह कथन कुम्भकोण मठाधीष ने अपने अधिकारी द्वारा सत्य मानकर कहा हो तो क्यों छोटी श्रेणी की देवी का नाम अपने मठ जिसे भारतवर्ष का मुखिया सिरताज सर्वोच्च मठ होने की घोषणा करते हैं उसके साथ धारण कर रहे हैं? समयानुसार भिन्न कथनों द्वारा चाहे वह अवद्ध, मिथ्या या भ्रामक हो अपना इष्ठ तिद्धि प्राप्त करने के लिये कही जाती है सो सब अल्प बुद्धि का प्रदर्शन करना है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि 'कामकोटि' का कोटि शब्द गोष्ठ से कोष्ठ होकर तथा कोटि में परिवर्तन हुआ है इसलिये कामकोटि का अर्थ मठ जो कामाक्षी समीप है अर्थात मठ भी कहते हैं। पर आचार्य शङ्कर कृत ललिता त्रिशती भाष्य में कामकोटि का अर्थ श्रीचक्र कहा है। आचार्य शङ्कर ने कोटि का अर्थ गोष्ठ या कोष्ठ या मठ नहीं कहा है। कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचार को यदि मान भी लें कि श्री शङ्कराचार्य ने कांची में बहुकाल वास किया था, यहीं सर्वज्ञपीठारोहण किया था, श्रीचक्र प्रतिष्ठा कर यहां एक नवीन पीठ का निर्माण किया था, कांची कें मन्दिरों व नगर का निर्माण कराया था और अन्त में कांची के कामाक्षी मन्दिर में निर्याण हुआ था, इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ स्थापना करके उसका नियम व संप्रदाय भी बनाया था। आचार्य शङ्कर यदि आम्नाय मठ की स्थापना कांची में किये होते तो अवश्य ही अपने से रचित मठाम्नाय में कहेजानेवाले कांची आम्नाय मठ का संप्रदाय व नियम का उल्लेख करते। मठाम्नाय एवं अन्य प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थो में कांची आम्नाय मठ का नामो निशान नहीं है। ऐसी दशा में आचार्य शङ्कर ने संघर्ष उत्पन्न करने के लिये अपना मठ स्थापित करेगें, ऐसी कल्पना भी ठीक नहीं जमती। आम्नाय मठ, साधारण मठ और पीठ का अन्तर है। पीठ की अधीश्वी शक्ति है। पीठ 'कामकोटि' (श्रीचक्र स्थूल रूप में) अनादि काल से आचार्य शङ्कर के पूर्व से ही है। यह कहना भूल है कि आचार्य ने कांची में पीठ का निर्माण किया था। आपने गुहावासिनी कामाक्षी देवी की उग्रता शान्त कर श्री चक्र की अशुद्धता निवारण कर श्रीचक्र का जीर्णोद्धार किया जैसे आपने अन्य क्षेत्रों में किया था। कोई ग्राह्य प्राचीन प्रमाण पुस्तक

कुम्भकोण मठ के प्रचार का समर्थन नहीं करता। साधारण मठ निवास स्थल या आश्रम होते हैं। आम्नाय मठ 'अधिकार संपन्न' होते हैं और ये मठाम्नायान्तर्गत होते हैं तथा महानुशासन से बद्ध हैं। पामर जन पीठ, आम्नाय मठ और साधारण मठ का भेद न जानने के कारण कुम्भकोण मठ 'पीठ' के नाम पर आम्नाय मठ होने का भ्रामक मिथ्या प्रचार करते हैं। मठाम्नाय में स्पष्ट उल्लेख है 'चतुर्दिक्षु प्रदेशेषु प्रसिध्यर्थं स्वनामतः। चतुष्टयमठान् कृत्वा शिष्यान् स्थापयद् विभुः॥' माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय आदि अनेक प्रामाणिक पुस्तकें चार आम्नाय मठ होने का निश्चित रूप से कहता है।

आम्नाय—निघन्टु में आम्नाय का 6 अर्थ दिया है—(1) वेद (2) गुरुपरम्परोपदेश प्राप्त वेद व्याकरणादि विद्यास्थानं (3) सद्गुरुपरंपरागत रहस्योपदेश (4) सम्प्रदाय (5) कुलं (6) अध्ययनं। यति धर्म शास्त्र ग्रंथों में उल्लेख है 'अथोर्द्धशेषे गौणाये तेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः' अर्थात् तीन आम्नाय ऊर्ध्व, आत्मा, निष्कल तीनों ज्ञान गोचर हैं और बाकी चार आम्नाय दृष्टिगोचर चार दिशायें हैं। मठाम्नायानुसार दृष्टिगोचर दिशा चार ही का वर्णन है और तीन ज्ञानगोचर हैं। पूना के प्राचीन प्रति मठाम्नाय पद्धति, तंजौर पुस्तकालय का मठाम्नाय, अडयार मदरास पुस्तकालय का मठाम्नायोपनिषद, कामरूप, काशी एवं नवद्वीप में उपलब्ध प्राचीन मठाम्नाय प्रतियां, चार आम्नाय मठों में उपलब्ध प्राचीन प्रतियां, फैजाबाद से प्रकाशित मठाम्नाय, यतिधर्मनिर्णय एवं अनेक मुद्रित व अमुद्रित मठाम्नाय प्रतियों में सात आम्नाय का ही उल्लेख है जिसमें तीन आम्नाय ज्ञानगोचर या आध्यात्म-स्थल दिया गया है। अतः शेष चार आम्नाय दृष्टिगोचर दिशा का ही द्योतक है। कुम्भकोण मठ का आचार्य अष्टोत्तरशत नामावली में भी (काशी में प्रकाशित–1935 ई०) उल्लेख किया है 'चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठाता' अर्थात् दृष्टिगोचर चार आम्नाय ही हैं।

> शरीरब्रह्ममीमांसाभाष्यकर्त्ताहि सद्गुरुः।
> मुनिः श्रीशङ्कराचार्यो लोकोपकरणाय वै॥
>
> चतुर्दिक्षु प्रदेशेषु प्रसिद्ध्यर्थं स्वनामतः।
> चतुष्टयमठान् कृत्वा शिष्यान्स्थापयद् विभुः॥
>
> चकार संज्ञामाचार्य्यश्चतुर्णां नाम भेदतः।
> क्षेत्रञ्च देवताश्चैव शक्तिं तीर्थं पृथक् पृथक्॥
>
> संप्रदायांश्च नाम्नाञ्च भेदञ्च ब्रह्मचारिणाम्।
> चतुष्कं मठानाञ्च शिष्यान् देवान् व्यवस्थया॥
> एवं प्रकल्पयामास लोकोपकरणाय वै। (मठाम्नायसेतु आठवीं शताब्दी)

नित्यकर्म सन्ध्यावन्दन में भी उपस्थान के पश्चात् चार दृष्टिगोचर आम्नाय (दिक) का नमस्कार करते हैं और यह प्रथा दक्षिण में ब्राह्मण वर्ग त्रिकाल सन्ध्या में करते हैं। कुम्भकोण मठ का कहेजानेवाले मठाम्नायसेतु (कुम्भकोणम से 1894 ई० में प्रकाशित) में उपर्युक्त श्लोक पाये जाते हैं और कुम्भकोण मठ भी सात आम्नाय ही मानते हैं। कुम्भकोण मठ की पुस्तक में आश्चर्य का विषय तो यह है कि चार दृष्टिगोचर आम्नाय को 'पूर्वाम्नाय' कहकर एवं ज्ञानगोचर आम्नाय को 'उत्तराम्नाय' कहकर, इन दोनों विभागों के बीच में बिना संख्या या अन्य कोई द्योतक चिन्ह न देकर अपना कल्पित मठ का कल्पित नियम संप्रदाय सब देकर पश्चात् 'इति मुख्याम्नायः' कहकर इति कर

दी है। धर्मशास्त्र सिद्ध केवल सात आम्नाय हैं और यह आठवां 'मुख्याम्नाय' कहां से टपक पडा? कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में भिन्न भिन्न आम्नायों के नाम दिये गये हैं जो सब यतिधर्मशास्त्र ग्रन्थों में पाये नहीं जाते— (1) ऊर्ध्वाम्नाय (2) मौलाम्नाय (3) मध्यमाम्नाय (4) मूलाम्नाय (5) मुख्याम्नाय। पूर्व भाग में चार आम्नाय एवं उत्तर भाग में तीन आम्नाय देकर कुल सात आम्नाय के बीच में किस प्रमाण पर आधार कर (कुम्भकोण मठ के लिये स्वेच्छावाद ही प्रमाण है) मुख्याम्नाय को जोड लिया गया है? मुख्याम्नाय न तो चार दृष्टिगोचर आम्नाय पद्धति में है या न तो तीन ज्ञानगोचर में है। सम्भवतः यह त्रिशंकु आम्नाय होगा जैसा कि श्रीविश्वामित्र ने सृष्टि की थी। कुम्भकोण मठ के मठाम्नाय में उल्लेख है 'अथोर्ध्वशेषेगौणायेतेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः।' अर्थात् तीन आम्नाय (ऊर्ध्व–आत्मा–निष्कल) को ज्ञानगोचर मानते हैं। प्रश्न उठता है कि कुम्भकोण मठ कैसे 'ऊर्ध्व' को दृष्टिगोचर आम्नाय में दिखाकर अपना मठ का आम्नाय 'ऊर्ध्व' की कुछ पुस्तकों द्वारा प्रचारित कर रहे हैं?

कुम्भकोण से 1894 ई० में प्रकाशित कांची कुम्भकोण मठ का मठाम्नायसेतु के अन्त भाग में उल्लेख है– 'इतिपरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमच्छङ्कर भगवत्पूज्यपादशिष्य श्रीसर्वज्ञ चित्सुखाचार्य विरचिते बृहच्छंकरविजये आम्नायतद्भेदनिर्वचनन्नाम त्रयोदश प्रकरणं।' यह कहे जाने वाले बृहच्छङ्करविजय न मठ में उपलब्ध है या कहीं अन्यत्र। किसी ने देखा नहीं व पढा नहीं है। अनेक कल्पित श्लोक अनुपलब्ध पुस्तकों का नाम देकर प्रचार करना तो कुम्भकोण मठ का स्वभाव है। कहे जाने वाले बृहच्छङ्करविजय पुस्तक के बारे में पाठकगण इस खण्ड के प्रथमाध्याय में पढ चुके होंगे। पाठकगण यह भी पढ चुके होंगें कि कुम्भकोग मठ का श्री आत्मबोध द्वारा उद्धृत अनेक श्लोक सब स्वरचित एवं कल्पित हैं। जब तक पूर्ण बृहच्छङ्करविजय पुस्तक उपलब्ध न हो एवं उस प्रति का प्रामाणिकता सिद्ध न हो तब तक इस पर आधार कर विवादविषयों पर निर्णय करना मूर्खता होगी। वृद्ध परम्परागत रूढी से एवं आम्नाय मठों के आचरण से तथा अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर यही विश्वास किया जाता है कि 'मठाम्नाय' आचार्य शङ्कर से रचा ग्रन्थ है। पटना, बम्बई, कलकत्ता हाईकोर्ट के फैसलों में वहां वहां के न्यायाधीष मठाम्नाय को आचार्य शङ्कर रचित एवं यह ग्रन्थ आठवीं शताब्दी का ग्रन्थ स्वीकार किया है। ऐसे प्रामाण्य ग्रन्थ में कांची कुम्भकोण मठ का नामो निशान नहीं है। इस आक्षेप का निवारणार्थ अब कुम्भकोण मठ मिथ्या भ्रामक प्रचार करते हैं कि मठाम्नाय अनुपलब्ध बृहच्छङ्करविजय में है और यह श्री चित्सुखाचार्य रचित है। इस कथन में कितनी सत्यता है सो पाठकगग स्वयं जान लें। एक विषय मार्के की है कि कुम्भकोण मठ मानते हैं कि यदि मठ हो तो आम्नाय पद्धति का होना आवश्यक है और इसीलिये तो कल्पित स्वरचित मठाम्नाय पद्धति तैय्यार किया गया है। पर इसके साथ कुम्भकोण मठ के अनुयायी, भक्त, अभिमानियों द्वारा यह भी प्रचार होता है कि कांची मठ आचार्य शङ्कर का निजमठ (गुरुमठ) है, अतः गुरु को आम्नाय पद्धति की आवश्यकता नहीं है तथा कांची मठ का आम्नाय पद्धती नहीं है। कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तको में यह भी कहा गया है कि कांची मठ का आम्नाय पद्धति चार आम्नाय मठों की पद्धतियों का संग्रह ही है, अतः कांची मठ का अलग आम्नाय पद्धति होने की आवश्यकता नहीं है। यह भी प्रचार किया गया है कि मठाम्नाय पद्धति सब अर्वाचीन काल में कल्पित हैं और मठाम्नाय आचार्य शङ्कर द्वारा रचित नहीं है। एक तरफ प्रकाशित प्रचार पुस्तकों में मठाम्नाय देते हैं और दूसरी तरफ अपने अनुयायियों से भिन्न भिन्न कथायें लिखाकर प्रकाशित कराते हैं। इन भिन्न कथनों में कौन कथन सत्य है सो परमात्मा ही जाने। ऐसे भिन्न कथनों से भिन्न वर्ग के लोगों को, विद्वान व अनपढ व्यक्तियों को, आक्षेप करने वालों को व प्रतिपक्ष दलों को दिखावा प्रमाण रूप में दिखाने के लिये ही यह सब नाटक रचा जा रहा है। 1935 में काशी में जब विद्वान लोग

कुम्भकोण मठ के कल्पित प्रचारों पर आक्षेप कर के प्रश्न पूछना शुरु कर दिया था तब कुम्भकोण मठवालों ने भिन्न भिन्न कथनों का प्रचारित प्रमाणाभास पुस्तकों को भिन्न भिन्न व्यक्तियों को दिखाकर पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर देने लगे थे। ऐसे कार्य में भिन्न कथनों का उपयोग समयानुसार कर लाभ उठाते हैं। सत्य का ध्येय एक है, मार्ग एक है, मनसावाचाकर्मणा कृत्य एक है और इस पथ के अनुगामी ही महान् कहलाते हैं। कुतर्क से सूर्य को चन्द्र एवं चन्द्र को सूर्य अथवा नवीन मन्डल की सृष्टी करने से न अपने को लाभ है या न लोकोपकार है।

भारतवर्ष को ज्ञान यज्ञ भूमि मानकर यागानुशासन अनुसार शास्त्र सम्मत चार वेदों के चार दिशाओं के लिये चार भिन्न आम्नाय पद्धति श्रीआचार्य शङ्कर ने बनायी है। यह शास्त्रीय पद्धति किसी से भी तोडा नहीं जा सकता है। यह शास्त्र सिद्ध है कि पूर्व में ऋक्, दक्षिण में यजु, पश्चिम में साम व उत्तर में अथर्वण होना चाहिये। ये चार दृष्टिगोचर चार दिक् के हैं। कांची कुम्भकोण मठ भिन्न भिन्न अम्नाय का प्रचार करते हैं यथा ऊर्ध्वाम्नाय, मौलाम्नाय, मूलाम्नाय, मध्यमाम्नाय, मुख्याम्नाय, आदि पर शास्त्र सम्मत सात आम्नायों में केवल 'ऊर्ध्व' को छोड कोई अन्य आम्नाय कांची मठ का नामो निशान नहीं है। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित आम्नाय स्तोत्र या सेतु में सात आम्नाय का ही उल्लेख है और ऊर्ध्वाम्नाय ज्ञानगोचर होने से कांची का दृष्टिगोचर आम्नाय शास्त्र सम्मत नहीं है। ऊर्ध्वाम्नाय भी कांची मठ का नहीं हो सकता है चूंकि काशी जो भू कैलास माना गया है और 'जो त्रिकंटक विराजिते' है और कुछ विद्वान एवं मान्य पुस्तकें ऊर्ध्व का लक्षणार्थ से काशी का सुमेरु मठ को ऊर्ध्व मानते हैं। पाठकगण यदि मठाम्नाय में दिये ऊर्ध्वाम्नाय की पद्धति देखें तो उन्हें स्पष्ट मालूम होगा कि ऊर्ध्वाम्नाय ज्ञानगोचर ही है, यथा— संप्रदाय–काशी, योगपट्ट-सत्यंज्ञानं, ब्रह्मचारी–ब्रह्मतत्त्वे संयोगेन संन्यासः, तीर्थ–मानसंब्रह्मतत्त्वांवगाहितम्, क्षेत्र—कैलास, देव—निरञ्जनः, देवी—माया, मठ—सुमेरु (कैलास का ऊर्ध्व निवास स्थल), आचार्य—महेश्वर। इस संप्रदायानुसार कांची मठ ऊर्ध्वाम्नाय नहीं हो सकता है। यदि मान भी लें कि ऊर्ध्वाम्नाय का लक्षणार्थ से दृष्टिगोचर मठ बना लिया गया हो तो भी काशी का सुमेरु मठ ही ऊर्ध्व बन सकता है न कि दक्षिणाम्नाय कांची। चाहे जो भी युक्ति से इसे सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाय तब यही प्रश्न उठता है कि मठाम्नाय के रचयिता व मठों के प्रतिष्ठाकर्ता ने ऊर्ध्वाम्नाय को ज्ञानगोचर ही माना है, अतएव इसके विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाय सो अग्राह्य है। निघन्टु में दिये हुए आम्नाय के 6 अर्थों को छोडकर अब कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 'श्रीविद्या' के उपासक जिसप्रकार आम्नाय पूजा करते हैं उसी प्रकार मध्य बिन्दु समान आपका मठ आम्नाय है। श्रीविद्या आम्नाय पूजा की पद्धति एक ही पद्धति एवं संप्रदाय है पर मठाम्नाय पद्धति व संप्रदाय भिन्न हैं। पूजादि कल्पशास्त्र पद्धति हैं और इसका मठाम्नाय पद्धति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। कुम्भकोण मठ का मुख्याम्नाय, मूलाम्नाय या मौलाम्नाय सब स्वकल्पित मठ आम्नाय हैं। पाठकगण आगे पायेंगे कि जो पद्धति इन आम्नायों का होने का प्रचार करते हैं वे सब कल्पित एवं अशास्त्रीय हैं। इसलिये यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कुम्भकोण मठ की कोई आम्नाय पद्धति नहीं है और आपका मठ 'अधिकार संपन्न' भी नहीं है। यदि क्षणभर मान लें कि कुम्भकोण मठ का आम्नाय पद्धति मध्यमाम्नाय ठीक है तो प्रश्न उठता है कि क्या कांची भारत के मध्य में है जैसा कि अन्य चार दृष्टिगोचर आम्नाय चार दिशाओं में हैं? 'कांची' पद से ही श्रीविद्या का मध्य पीठ माना जाता है और 'कंच' पद नगर का नाम है। सती का अङ्ग 51 स्थलों में गिरने से 51 पीठ भये और कांची पीठ इनमें से एक है। देवी पीठ होने से ही वहां आम्नाय मठ होने की कोई आवश्यकता नहीं है। मठाम्नाय पद्धति एवं देवी पीठों की पूजा पद्धति भिन्न हैं। आचार्य शङ्कर ने जिस प्रकार चार दिशा में चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी और जिस अद्वितीय पुरुष को भारत वर्ष की सीमा भली भांती मालूम था, क्या आप दक्षिणाम्नाय स्थित कंची को मध्यमाम्नाय बना सकते थे? भारत के

मध्य में कंच या कोंच नाम का एक शहर है और यही स्थल मध्यमाम्नाय होने लायक है। पर यह भी श्रीविद्या पूजा पद्धति के अनुसार ही होंगा न कि मठाम्नाय पद्धति अनुसार। कुम्भकोण मठ व्यास पूजा पंचक का भी दृष्टान्त देते हैं सोभी न्याय व उचित नहीं है। व्यासपूजा पंचक में आगम पूजा पद्धतिका संप्रदाय व नियम लागू होता है और यह मठाम्नाय पद्धति व संप्रदाय से भिन्न है। ऐसे कुतर्कों से पामरजन कुम्भकोण मठ के मायाजाल में पड सकते हैं। स्वकल्पित कांची ऐसे मठ के लिये त्रिशंकु आम्नाय व स्वेच्छावाद संप्रदाय ही लागू हो सकता है न कि आचार्य शङ्कर रचित व शास्त्र सम्मत मठाम्नाय। आम्नाय पद्धति विषय का निर्णय व प्रमाण नीचे दिये हुए पुस्तकों के आधार पर ही लिया गया है—(1) मठाम्नायोपनिषद् (2) शुकरहस्योपनिषद् (3) महावाक्य रत्नावली (4) निर्णय सिंधु (5) धर्म सिंधु (6) विश्वेश्वर स्मृति (7) यतिधर्म प्रकाश (8) यतिधर्मनिर्णय (9) चन्द्रिका प्रबोधिनी (10) यतीन्द्र चरितामृत महोदधि आदि।

तीर्थ व क्षेत्र तथा देव व देवी—दृष्टिगोचर चार आम्नायों में चार क्षेत्र व तीर्थ हैं जिसे चतुर्धाम कहते हैं। पूर्व में पुरीजगन्नाथ पुरुषोत्तम, दक्षिण में रामक्षेत्र रामेश्वर, पश्चिम में द्वारिका या द्वारका व उत्तर में बदरिकाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके तीर्थ यों हैं—महोदधि, तुङ्गभद्रा, गोमती व अलकनन्दा। इसी प्रकार तीन ज्ञान गोचर आम्नायों के क्षेत्र व तीर्थ यों हैं—ऊर्ध्व—कैलास, मानसं ब्रह्मतत्वांवगाहितम्; आत्मा—नभस्सरोवर, त्रिपुटी; निष्कल—अनुभव, सत् शास्त्र श्रवणं। कांची किस आम्नाय का क्षेत्र है? कांची भले ही सप्तपुरी में एक व श्रीविद्या का ओड्याण पीठ एवं एक महाक्षेत्र हो सकता है पर प्रश्न है कि कांची किस आम्नाय का क्षेत्र है। आम्नाय केवल सात हैं और कांची का कोई अलग आम्नाय नहीं है। यह दक्षिणाम्नाय का अन्तर्गत एक पुण्य क्षेत्र है। इसके परे जो नाम भी दिया जाय सो कल्पित होगा और मठाम्नायान्तर्गत नहीं होगा। मथुरा, काशी, हरिद्वार, प्रयाग, तिरुपदी, श्रीशैलं, चिदम्बर आदि अनेक क्षेत्र हैं और ये सब माननीय पुण्य क्षेत्र हैं पर ये सब क्षेत्रों का अलग अलग आम्नाय नहीं हो सकते हैं। उस उस आम्नाय के अन्तर्गत ही ये सब पुण्य क्षेत्र हैं। केवल पुण्यक्षेत्र या महापीठ होने मात्र से वहां आम्नाय मठ होना आवश्यक नहीं है।

देव व देवी क्षेत्र के होते हैं चूंकि क्षेत्रों में ही देवयोनियों का निवासस्थल, जो पीठ कहा जाता है, माना जाता है। कांची क्षेत्र में देवी पीठ है पर इस क्षेत्र का कोई अलग आम्नाय पद्धति नहीं है। अन्य क्षेत्रों के देव देवी समान इस कांची के देव देवी हैं। कामाक्षी पीठ एवं देवगर्भा पीठ आचार्य शङ्कर के पूर्व से ही हैं और यह कांची कामकोटी पीठ की अधीश्वरी कामाक्षी हैं। तान्त्रिक ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि कांची का पीठ देवगर्भा (सति का कङ्काल अङ्ग गिरने से) है और इसकी अधीश्वरी "आदि पीठ परमेश्वरी" है। शिवकांची का कालीमन्दिर ही देवगर्भा पीठ है। आचार्य शङ्कर ने देवी की उग्रता शान्तकर और वहां के श्रीचक्र की अशुद्धता निवारण किया था। ज्ञानगोचर आम्नाय के देव देवी—ऊर्ध्व—निरंजन, माया; आत्मा—परमहंस, मानसीमाया; निष्कल—विश्वरूप, चिच्छक्ति हैं।

कांची कुम्भकोणमठ का भ्रामक प्रचार है कि रामेश्वर क्षेत्र में शृङ्गेरी नहीं है अतः शृङ्गेरी मठ का क्षेत्र रामेश्वर नहीं है और शृङ्गेरी मठ रामेश्वर से बहुत दूर होने से चतुर्धाम क्षेत्र सीमा में शृङ्गेरी मठ नहीं है इसलिये यह अर्वाचीन काल का कल्पित मठ है। सम्भवतः कांचीमठवाले सेतुबन्धन को ही रामेश्वर क्षेत्र मानते हैं। क्षेत्र माहात्म्य पुस्तकों एवं स्थल पुराण से प्रतीत होता है कि रामेश्वर क्षेत्र की सीमा मलनाड प्रान्त के पहाडों तक है जिसके अन्तर्गत शृङ्गेरी भी है। जैसे अयोध्या क्षेत्र का महाश्मशान काशी था अर्थात् अयोध्या का सीमा काशी सीमा तक था उसीप्रकार रामेश्वर क्षेत्र का सीमा पर्वत तक फैला था। क्या काशी की सीमा असी-वरुणा सरहद मानें या पंचकोसी का सीमा मानें

या काशी खण्ड माहात्म्य में दिये गये सीमा को लिया जाय। उसी प्रकार रामेश्वर क्षेत्र का सरहद क्या सेतुबन्धन माना जाय या रामेश्वर तक माना जाय या मलनाड प्रान्त पर्वत तक माना जाय। प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थों में तुङ्गभद्रा नदी रामेश्वर क्षेत्र का तीर्थ कहे जाने से रामेश्वर क्षेत्र सीमा शृंगेरी तक होने का सिद्ध होता है। शृंगेरी मठ चतुर्धाम रामेश्वर स्थल में ही क्यों नहीं है इसका कारण व प्रमाण इस पुस्तक के प्रथम खण्ड चौथा अध्याय में देकर सिद्ध किया गया है कि क्यों आचार्य शङ्कर ने शृंगेरी गिरिस्थल को समुद्रतट रामेश्वर की अपेक्षा चुना था। शिवरहस्य एवं अन्य प्रामाणिक शङ्करविजयादी ग्रन्थों में शृंगेरी को दक्षिणाम्नाय मठ कहा गया है एवं शृंगेरी को 'निजमठ' 'मदाश्रमे' 'निजशिष्यंचकार' 'विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा' 'भारती संप्रदाय' आदि विशेषणों से वर्णन किया गया है। कुम्भकोण मठ के ऐसे भ्रामक प्रचारों से तथा शृङ्गेरी मठ पर कीचड फेंकने से शृंगेरी को कुछ हानी नहीं होता और न भिज्ञ लोग आपके मायाजाल में पड सकते हैं।

संप्रदाय—मठाम्नाय में कहा है 'मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्चधुरन्धराः। संप्रदायाश्च चत्वार एषा धर्म व्यवस्थितिः॥' इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि चार ही संप्रदाय हैं। यति धर्म निर्णय एवं मठाम्नाय में इन संप्रदायों का नाम उल्लेख हैं—'कीटवारो भोगवार आनन्दवार एव च। भूरिवारश्च चत्वारः संप्रदायाः प्रकीर्त्तिताः।' ये चारों संप्रदाय दृष्टिगोचर आम्नाय में लागू होते हैं। ज्ञानगोचर आम्नाय के संप्रदाय यों हैं—ऊर्ध्व-काशी, आत्म-सत्त्वतोषः, निष्कल-सच्छिष्यः। यतिधर्मनिर्णय एवं अन्य धर्मशास्त्र पुस्तकों में इन संप्रदायों का लक्षण व परिभाषा भी उपलब्ध होते हैं, यथा—

भोगवार—भोगोविषय इत्युक्तं वार्यते एन जीविनां।
संप्रदायो यतिनां च भोगवारस्सउच्यते॥

कीटवार—कीटंपातकमित्युक्तं वार्यते एन जीविनां।
संप्रदायो यतिनां च कीटवारस्सउच्यते॥

(पाठान्तर)

कीटादयो विशेषग वार्यन्ते जीवजन्तवः।
भूतानुकम्पया नित्यं कीटवारः स उच्यते॥

भूरिवार—भूरि शब्देन सौवर्ण्यं वार्यते एन जीविनां।
संप्रदायो यतिनां च भूरिवारस्सउच्यते॥

आनन्दवार—आनन्देति विलासोयो वार्यते एन जीविनां।
संप्रदायो यतीनां चानन्दवारस्सउच्यते॥

कुम्भकोण मठ का स्वकल्पित एवं स्वरचित मठाम्नाय सेतु में 'मिथ्यावार' संप्रदाय का नाम दिया है। मठाम्नाय एवं अन्य धर्मशास्त्र ग्रंथों में चार संप्रदाय का ही उल्लेख है और इनकी परिभाषा भी दी गयी है पर कहीं भी कुम्भकोण मठ का 'मिथ्यावार' का नामो निशान नहीं है। कांची कुम्भकोण मठ का मिथ्यावार संप्रदाय मिथ्या ही है अर्थात् मिथ्या पद के अनुगामी हैं।

योगपट्ट (अङ्कितनाम)—सन्यासियों का अङ्कित नाम दस ही हैं। ये सब नाम अति प्राचीन हैं। काल प्रवाह के साथ एवं अवैदिक मतों के प्रभाव से ये सब अन्धकार के गर्भ में जा छिपे थे। पर आचार्य शङ्कर ने इन

नामों का पुनरुद्धार कर उसमें नवीन जीवन देकर इन्हें प्रचलित किया था। कुम्भकोण मठ के अभिमानी प्रचारकों का कथन जो है कि आचार्य शङ्कर ने इन नामों को प्रथम बार खोजकर 'दसनामी' अङ्कितनामों का नवीन प्रतिष्ठा की थी सो कथन भूल और भ्रामक है। ये सब नाम आदिकाल में कब प्रचलित हुआ और किससे प्रचलित किया गया था इस विषय पर अन्वेषण की आवश्यकता है। इतना तो निश्चित है कि ये सब अङ्कित नाम आदि काल में थे (आचार्य शङ्कर का काल के पूर्व) और इसके स्थापित होने का उद्देश्य महान् व उच्च है। इस पुण्य भारत में वैदिक धर्म को अक्षुण्ण रखने, विरोधी आततायी यवनों से सनातनधर्मावलम्बी जनता की रक्षा करना व वैदिक धर्म का प्रचार तथा प्रसार करना इस संस्था के पुनरुद्धार के भीतर प्रधान उद्देश्य दीख पडता है। इन दस योगपट्ट को 'दसनामी' भी कहते हैं। दसनामी संप्रदाय के सन्यासियों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये परिश्रम किया है और कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि दसनामी सन्यासी संप्रदाय आचार्य शङ्कर के साथ सम्बन्ध है। दसनामी शब्द का सादारण अर्थ है 'दश नाम को धारण करनेवाले।' इन नामों के रहस्य का परिचय आचार्य शङ्कर के मठाम्नाय से भलीभांत प्रतीत होता है। इन पदवियों की कल्पना भौतिक नहीं है पर आध्यात्मिक है। इन दस नामों की आध्यात्मिक दृष्टि व्याख्या स्वयं आचार्य रचित हैं। इससे मालूम होता है कि ये पदवियां उन्हीं लोगों के लिये प्रयोग किया जाता है जिनमें इसे धारण करने की योग्यता हो। इन पदवियों का निज वास्तविक रूप आरम्भिक काल में ऐसा ही था पर अब अधिक मात्रा में देखा जाता है कि जो कोई व्यक्ति उस उस संप्रदाय के अन्तर्गत प्रवेश करता है वह उसी नाम से पुकारा जाता है और गुणदोष का विचार कोई नहीं करता। ये दस नाम सर्वत्र व्यापक तथा बहुली भूत है। संन्यासियों का यह दसनाम व उसके गुण लक्षण तथा ध्येय सब आचार्य शङ्कर की दूरदर्शिता को अच्छी तरह सूचित करती है। इन दस नामों में कोई बडा व छोटा नहीं है। सब समान हैं। कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि इन नामों में कुछ नाम उच्च कोटि के हैं सो भूल व भ्रामक है।

तीर्थाश्रमवनारण्य गिरिपर्वतसागराः।
सरस्वती भारती च पुरीत्येते दशैवहि॥

निर्णय सिन्धु, धर्म सिन्धु, विश्वेश्वर स्मृति, यतिधर्मनिर्णय, चन्द्रिका प्रबोधिनी, वैद्यनाथीय, आदि धर्मशास्त्र पुस्तकों में केवल दसनाम का ही उल्लेख या संकेत किया है। उपर्युक्त श्लोक का 'दशैवहि' पद से स्पष्ट मालूम होता है कि दसनाम ही हैं और ग्यारहवां नाम नहीं है। दसनाम—तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती, पुरी। ज्ञान गोचर आम्नाय के योगपट्ट—ऊर्ध्व—सत्यंज्ञानं, आत्मा-योगः, निष्कल—गुरुपादुका।

तीर्थ—त्रिवेणीसंगमे तीर्थे तत्त्वमस्यादि लक्षणे।
स्नायात् तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामा स उच्यते॥

आश्रम—आश्रमग्रहणे प्रौढः आशापाश विवर्जितः।
यातायातविनिर्मुक्त एतदाश्रमलक्षणम्॥

वन—सुरम्यनिर्जने देशे वासं नित्यं करोति यः।
आशापाशविनिर्मुक्तो वननामा स उच्यते॥

अरण्य—अरण्ये संस्थितो नित्यमानन्दं नन्दने वने।
त्यक्त्वा वैरं सर्वमिदं विश्वमाख्यं लक्षणं किल॥

गिरि—वासोगिरिवरे नित्यं गीताभ्यासे हि तत्परः।
गम्भीरा चलबुद्धिश्च गिरिनामा स उच्यते॥

पर्वत—वसेत्पर्वतमूलेषु प्रौढो यो ध्यान तत्परः।
सारासारं विजानाति पर्वतः परिकीर्तितः॥

सागर—वसेत्सागर गम्भीरे घनरत्नपरिग्रहः।
मर्यादाश्चान लङ्घेन सागरः परिकीर्तितः॥

सरस्वती—स्वरज्ञानवशो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः।
संसारसागरे साराभिज्ञो य स सरस्वती॥

भारती—विद्याभारेण सम्पूर्णः सर्वभारं परित्यजेत्।
दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्तितः॥

पुरी—ज्ञान तत्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्वोपदे स्थितः।
परब्रह्मरतो नित्यं पुरीनामा स उच्यते॥

कांची कुम्भकोण मठ "इन्द्रसरस्वती" योगपट्ट उपयोग करते हैं और इनका कथन है कि यह 'इन्द्र सरस्वती' नाम कुम्भकोण मठाधीषों का प्रधान गुण लक्षण व श्रेष्ठतर व यशोगान का द्योतक है एवं कुम्भकोण मठाधीष के अलावा कोई भी इस पदवी का उपयोग नहीं कर सकता है तथा यह पदवी कुम्भकोण मठ का सर्वोच्च श्रेष्ठत्व का बोध कराता है। कुम्भकोण मठ का मठाम्नाय सेतु में उल्लेख है—"कामकोटी मठेत्वस्मिन् गुरुः इन्द्रसरस्वती"। "एषां नाम तु विख्यातं इन्द्रपूर्वा सरस्वति"। यह ग्यारहवां नवीन योगपट्ट 'इन्द्रसरस्वती' किसी धर्मशास्त्र पुस्तक में उल्लेख नहीं है केवल यतिधर्मनिर्णय में है। इस पुस्तक में दसनाम का उल्लेख कर टिप्पणी दी है कि इन दस नामों में से कुछ नामों का भेद भी पाये जाते हैं और ऐसे भेद नाम "पूर्वोक्त तीर्थाश्रमादीनां मध्ये केषांचिन्नाम्नां स्व स्व शीलाचारमताभिमानेनजाताः संप्रदायाः तत्तन्नाम भेदाश्च" और सरस्वती संप्रदाय का भेद "इन्द्रसरस्वती एवं आनन्द सरस्वती" हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि कुम्भकोण मठ का ग्यारहां नाम "इन्द्रसरस्वती" योगपट्ट अभिमान से परिकल्पित नवीन प्रारम्भित नाम है और आचार्य शङ्कर के काल में केवल शुद्धसरस्वती पदवी ही थी। यदि यह सरस्वती का भेद इन्द्रसरस्वती या आनन्दसरस्वती आचार्य शङ्कर के काल में होता तो अवश्य आचार्य शङ्कर इस भेद नाम की भी परिभाषा देते और स्व रचित मठाम्नाय में भी उल्लेख करते तथा हमारे धर्मशास्त्र ग्रन्थों के रचयिता भी इस नाम को उल्लेख कर दसनामी की जगह ग्यारहनामी कहते। "दशैवहि" का अर्थ है कि दस ही नाम हैं। यह नाम अभिमान से परिकल्पित आधुनिक होने के कारण और कुम्भकोण मठ प्रचार के अनुसार कि यह "इन्द्रसरस्वती" पदवी आप ही को लागू होता है इसलिये यह कहना भूल न होगी कि कुम्भकोण मठ भी आधुनिक काल में कोई प्रवर्तक द्वारा प्रतिष्ठित होकर आपका वंशावली चली आ रही है।

कुम्भकोण मठ का एक प्रमाणाभास स्वकल्पित स्तोत्र 'वासनादेहस्तुति' का नाम ले कर, आचार्य शङ्कर रचित कह कर, प्रचार करते हैं कि कुम्भकोण मठ की 'इन्द्रसरस्वती' पदवी पाने की कथा व प्रमाण इसमें है। पाठकगण इस स्तोत्र पर विमर्श द्वितीय खण्ड प्रथमाध्याय में पढ चुके होंगे। कुम्भकोण मठ के प्रचारक कहते हैं कि यह पदवी इन्द्रसरस्वती पाने की एक प्राचीन कथा है जो सिद्ध करता है कि आचार्य शङ्कर ने मध्यमाम्नाय (अब

मुख्याम्नाय न रहा और यह मध्यमाम्नाय में परिवर्तित हो गया) मठ की प्रतिष्ठा कांची में की थी। आपकी कल्पित कथा है कि जब श्री सुरेश्वराचार्य को घोर बीमारी थी तो आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्य के लिये देवताओं का भिषक् अश्विन की सहायता ली जिसपर इन्द्र क्रुद्ध होकर इस भू भारत में आ कर अपने 'वज्रायुध' को अश्विन पर फेंका पर वज्रायुध आगे न बढते देखकर और आचार्य शङ्कर की महत्ता व बल देखकर और इसका कारण आचार्य शङ्कर ही समझ कर, इन्द्र ने अपनी सर्वोच्च श्रेष्ठत्व द्योतक पदवी 'इन्द्र' आचार्य शङ्कर को दी थी। आगे आप प्रचार करते हैं कि कांची मठ ही आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविछिन्न परम्परा के हैं अतः 'इन्द्र' पदवी केवल कांची कुम्भकोण मठाधीष ही उपयोग कर सकते हैं और अन्य नहीं। सरस्वती पदवी प्राप्त करने का कारण प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने सरसवाणी को वादविवाद में जीता था और इसलिये सरस्वती पदवी पायी। इस प्रकार 'इन्द्रसरस्वती' पदवी पाने का दो कल्पित कथायें सुनाते हैं।

पाठकगण उपर्युक्त श्लोक में 'सरस्वती' अङ्कित नाम का आध्यात्मिक लक्षण पढ चुके होंगे और यह जान गये होंगे कि अङ्कित नाम भौतिक कारणों के आधार पर नही दिया जाता है जैसा कुम्भकोण मठ की कथा में सुनाया गया है। सरसवाणी से वादविवाद करने से 'सरस्वती' पदवी प्राप्त हुई सो कथा भूल है और यह केवल भ्रामक प्रचार है। कुम्भकोण मठ के इस प्रचारानुसार यह भी कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर उभय भारती को विवाद में पराजित करने से एवं सर्वज्ञपीठारोहण करते समय भारती की आज्ञा पाने से 'भारती' अङ्कित नाम वाले सब आचार्य शङ्कर के साक्षात् परम्परा के हैं, ऐसा क्यों नहीं कहा जा सकता है? आचार्य शङ्कर ने श्री शारदा देवी से विवाद करने से आपकी परम्परा क्यों नहीं 'इन्द्रशारदा' कहलाते? अथवा कांची की कामाक्षी सन्निधि पर विपक्षियों से वादविवाद कर पश्चात् सर्वज्ञपीठारोहण करने की कल्पित कथा जो कहा जाता है, इसके अनुसार क्यों नहीं 'इन्द्रकामाक्षी' का नाम लिया गया? उच्च श्रेणी देवी कामाक्षी को छोडकर नीचे श्रेणी देवी सरस्वती (कुम्भकोण मठ कथनानुसार) का नाम क्यों लिया गया? पामरजन क्या जाने शास्त्र की बातें और यति के प्रचार में पडकर वे भी असत्य को सत्य मानते हैं। 'वासनादेहस्तुति' कल्पित स्तोत्र अप्रामाणिक है और इसमें कहे जाने वाली कथा कुम्भकोणमठ से प्रचारित किसी भी प्रामाणिक या अप्रामाणिक शङ्करविजय ग्रन्थों में पायी नही जाती, यह कथा केवल कुम्भकोगमठ की कल्पना जगत में है। यह कथा कहे जाने वाले कुम्भकोण मठ के व्यासाचलीय में भी नहीं है और इस पुस्तक में दिये हुए विवरण कुम्भकोण मठ के प्रचार का ही विरोध करता है। ऐसी कल्पित कथा से केवल आचार्य शङ्कर का अपचार करना होगा। एक और कथा भी कुम्भकोण मठ सुनाते हैं कि 'इन्द्र' पद 'सुरेश्वर' का परियायवाचक शब्द है और आचार्य शङ्कर ने सुरेश्वर को (पूर्वाश्रम में मण्डन मिश्र) विवाद में हराया था और आपको अपना शिष्य बनाया, अतः आचार्य शङ्कर को 'इन्द्र' पदवी मिली। कुम्भकोण मठ के इन दोनों कल्पित अनुमानों से कि आचार्य शङ्कर ने अपनी महत्ता व गौरव समझ कर इस नाम को धारण किया था या अपने से हराये हुए व्यक्तियों का नाम लेना गौरव का द्योतक है सो सब कथन अनर्गल विषम है। शंकरांश आचार्य शङ्कर एक अवतार पुरुष, इन साधारण तुच्छ विषयों द्वारा अपना गौरव बढाने की कथा जो कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं सो सब आचार्य शङ्कर को भाता नहीं। व्यवहार में पराजित पुरुष का नाम लेकर तथा विजयी द्योतक पद जोडना ही उचित है जैसा इन्द्रजित, विश्वजित, सरस्वतीजित, आदि। सम्भवतः कुम्भकोग मठ ने सोचा होगा कि प्राचीन काल की घटनाओं की सत्यता जानना मुश्किल है और उन कल्पित कथाओं को कोई भी विरोध नहीं कर सकता है अतः आप अपना प्रचार अविरोध कर सकते हैं। परन्तु इनके कथन की सत्यता व पोल खोलने के लिये काफी सामग्री उपलब्ध हैं और इन

सामग्री की आलोचना करने पर एवं कुम्भकोण मठ का इतिहास पढने पर प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ का कल्पित प्रचार आधुनिक काल की ही कल्पित कथा है और इन कथाओं का कोई आधार भी नहीं है।

कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले श्रीआत्मबोधेन्द्र ने अपने से रचित पुस्तकों में अनेक श्लोक बृहच्छङ्कर विजय' से उद्धृत किया है। यह सिद्ध नहीं हुआ कि श्रीआत्मबोध से उद्धृत श्लोक सब बृहच्छङ्करविजय में पाये जाते हैं चूंकि यह पुस्तक को किसी ने न देखा है, न पढा है अथवा न उपलब्ध है। श्रीआत्मबोध से उद्धृत अन्य श्लोक भी अन्य ग्रंथों का नाम लेकर प्रायः सब उन पुस्तकों में पाये नहीं जाते। आप बृहच्छङ्करविजय से उद्धृत कर लिखते हैं—'शुद्धा सरस्वती चेन्द्रानन्द पूर्वा च भारती।' श्रीआत्मबोध के कथन से निश्चय होता है कि कुम्भकोण मठ का भ्रामक प्रचार जो कहता है कि 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट विशेष अलग नाम कुम्भकोग मठ को ही लागू होता है और 'इन्द्रसरस्वती' सर्वोच्च श्रेष्ठ का द्योतक है, सो कथन भ्रामक एवं मिथ्या है। यह कथन प्रमाण रहित है। श्रीआत्मबोध के अनुसार शुद्ध सरस्वती या भारती अङ्कित नाम उपयोग हो या आनन्द या इन्द्र पदवी के साथ हो अथवा केवल भारती हो। इन भिन्न कथनों में कौन सा सत्य है? आश्चर्य का तो यह विषय है कि आचार्य शङ्कर को इस विशेष पदवी से जो गौरवित किया गया या स्वयं इस सर्वोच्च गौरव पदवी को धारण किये थे (कुम्भकोण मठ का कथनानुसार) वैसी पदवी को आचार्य शङ्कर ने न कहीं उल्लेख किया है या आपके अनेक शिष्य एवं आपके रचे ग्रंथों के व्याख्याकर्ता विद्वानों ने न कहीं कहा है। कुम्भकोण मठ की कल्पित गुरुवंशावली में सर्वज्ञात्मा, ज्ञानोत्तम, आनन्दज्ञान, मूककवि, अद्वैतानन्द, शङ्करानन्द आदियों को कुम्भकोण मठाधीष बनाया गया है और ये सब महान अपने अपने रचित पुस्तकों में न कांची मठ का उल्लेख किया है या न 'इन्द्रसरस्वती' पदवी का। तीर्थ अङ्कित नाम के बाद इन्द्रसरस्वती या आनन्द के पश्चात् 'इन्द्रसरस्वती' न केवल पद जमते हैं पर इनकी सन्धि से परस्पर विरोध भी होता है। सन्यासाश्रम लेते समय अङ्कित नाम एक ही धारण किया जाता है न कि दो योगपट्ट। कुम्भकोण मठ की अनुमति से प्रकाशित आपके मठ का ताम्र शासनों में (केवल एक अर्वाचीन काल का ताम्र शासन को छोड कर) 'इन्द्रसरस्वती' का नामों निशान नहीं है (पाठकगण द्वितीय खण्ड के पांचवें अध्याय में विवरण पायेंगे)। कहेजानेवाला एक ताम्रशासन 17 वीं शताब्दी के अन्त का है और इसमें 'इन्द्रसरस्वती' का उल्लेख है पर यह ताम्र शासन कुम्भकोण मठाधीश द्वारा ही दिया गया ताम्रशासन है और इस शासन के अन्वेषण संपादक लिखते हैं—'The non-coincidence of the most important item of the date, viz., the lunar eclipse, reflects upon the genuineness of the grant itself.' ताम्रशासन संपादक लिखते हैं—'Quite modern' 'not wholly intelligible' ऐसे अशुद्ध, अग्राह्य, स्वरचित ताम्रशासन में ही 'इन्द्रसरस्वती' पद का उपयोग हुआ है। मार्के की बात है कि कहेजानेवाले ताम्रशासन जो सब अन्यों से दिया गया है उनमें 'इन्द्रसरस्वती' का नामों निशान नहीं है।

कुछ प्रामाणिक शङ्करविजयों से प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर को 'भारती' का योगपट्ट था। कुम्भकोण मठ द्वारा कहे हुए प्रमाण पुस्तक चिद्विलास शङ्करविजय विलास में भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर 'भारती' थे। कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक पुस्तक आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी कहा है–'भारती संप्रदाय निज शिष्यं चकार'। रेणुका तंत्र में भी आचार्य शङ्कर को 'भारती' कहा गया है। प्रश्न उठता है कि 'भारती' योगपट्ट धारण करते हुए भी कैसे आचार्य शङ्कर ने 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट धारण किया? कुम्भकोग मठ जो अपने को आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा के कहते हैं सो आपको क्यों नहीं 'भारती' नाम पडा? 'भारती' अङ्कितनाम से

दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ के अन्तर्गत आ जाने के डर से आपने 'इन्द्रसरस्वती' पद को धारण किया है। प्रमाणाभास रूप में अपने से कल्पित व रचित पुस्तक में 'भारती' अङ्कित नाम भी होने की बात लिख ली चूंकि प्रबला जनश्रुति कहती है कि आचार्य शङ्कर 'भारती' थे।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि 'इन्द्र' शब्द विशिष्ठतरत्त्व का परिचायक है। यह कथन भूल है। यदि है तो कुम्भकोण मठ क्यों नहीं धर्मशास्त्र पुस्तकों, यतिधर्म पुस्तकों एवं मठाम्नाय के आधार पर इसे सिद्ध करते? स्वकल्पित 'वासनादेहस्तुति' जो किसी ने न देखा, न सुना, न पढा, न सूची पत्रों में उल्लेख किया और जो अनुपलब्ध है उसके आधार पर विवादास्पद विषयों का निर्णय कैसा किया जाय? साधारण तौर पर व्यवहार में भी श्रेष्ठतरत्त्व का परिचायक तभी हो सकता है जब वह उत्तर पद हो और न पूर्व पद जैसा —नरेन्द्र, मृगेन्द्र, गजेन्द्र आदि में है। ऐसा तो 'परमशिवेन्द्र सरस्वती', 'चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती', 'महादेवेन्द्र सरस्वती' नामों में नहीं है। 'इन्द्र' पद मध्य में होने से 'इन्द्र' शब्द श्रेष्ठतरत्त्व का परिचायक कभी नहीं हो सकता है। 'इन्द्रसरस्वती' पदवी पाने की कथा सुनाते समय इस पद को विभाजित कर 'इन्द्र' व 'सरस्वती' के लिये दो पृथक् कारण देकर कहा गया। इससे 'इन्द्र' व 'सरस्वती' दोनों भिन्न होने का निश्चित होता है। इन्द्र पद पूर्व में उपयोग करने से अर्थ दूसरा ही होता है। एक मित्र लिखते हैं कि 'इन्द्रजालविद्याधुरन्धर' व्यक्ति 'इन्द्र' पद को पूर्व में उपयोग करते हैं।

सरस्वती से प्रारम्भित 'इन्द्रसरस्वती' किस प्रकार सरस्वती से श्रेष्ठत्व होने को कहा जा सकता है? ये सब अङ्कित नाम आध्यात्मिक दृष्टि से देखे जाते हैं और इनका लक्षण भी सब शास्त्र विदित हैं। शास्त्र सिद्ध 'सरस्वती' एवं अभिमान से परिकल्पित अर्वाचीन काल का नवीन 'इन्द्रसरस्वती' इन दोनों योगपट्ट की परिभाषा व लक्षण एक ही हैं। कुम्भकोणमठ द्वारा रचित एवं प्रकाशित मठाम्नायसेतु में 'सरस्वती' का ही लक्षण व परिभाषा दी गयी है न कि 'इन्द्रसरस्वती' का। इससे भी प्रतीत होता है नवीन कल्पित 'इन्द्रसरस्वती' का लक्षण भी 'सरस्वती' समान ही है। अतः किस प्रकार कल्पित इन्द्रसरस्वती श्रेष्ठत्व का बोध कर सकता है? भिन्न विषयों में एवं एक की अपेक्षा जब दूसरे से तुलना की जाती है तो श्रेष्ठत्व का बात उठता है। कुम्भकोणमठ से कहे हुए बृहच्छङ्करविजय में 'आनन्द' व 'इन्द्र' दोनों समान कहा गया है तो अब श्रेष्ठत्व किससे है? प्रामाणिक शास्त्र ग्रन्थ 'यतिधर्मनिर्णय' में स्पष्ठ कहा है कि स्वशीलाचार अभिमान से परिकल्पित 'आनन्द' व 'इन्द्र' पद हैं तो किसप्रकार सरस्वती से श्रेष्ठत्व का गिना जा सकता है? इन्द्र व आनन्द दोनों सरस्वती में अन्तर्गत हैं। मठाम्नायानुसार सरस्वती योगपट्ट दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ का होने से यह कांची कुम्भकोणमठ श्रृङ्गेरी मठ की शाखा मठ ही है। यह नहीं कहा जाता है कि 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट नहीं है पर हमलोगों का कहना है कि यह अङ्कित नाम सरस्वती का भेद है और नवीन कल्पित है। हमलोग कुम्भकोण मठ के उस प्रचार का विरोध करते हैं जब वे 'इन्द्रसरस्वती' को विशेष श्रेष्ठत्व की जगह देते हैं। जब श्रेष्ठत्व की बात छिडती है तो यह कहना पडता है कि 'इन्द्रसरस्वती' संप्रदाय 'सरस्वती' संप्रदाय ही है और इसे यदि न स्वीकार करें तब यह 'इन्द्रसरस्वती' दसनामी के बहिर्भूत मानना पडेगा।

इस खण्ड के एक अध्याय में पाठकगण पढ चुके होंगे कि कुम्भकोणमठ के परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्कर विजय में किस प्रकार कुम्भकोणमठ द्वारा 'इन्द्रसरस्वती' पद को जोडा गया है—'इन्द्रसरस्वती संप्रदाय वर्तिनं सुरेश्वरमाहूय'—जो मूल प्रति आनन्दगिरि शङ्कर विजय में नहीं है। मूल प्रति आनन्दगिरि शङ्कर विजय में उल्लेख है 'भारती सम्प्रदायं निजशिष्यं चकार'। आचार्य शङ्कर का योगपट्ट भारती था न कि इन्द्रसरस्वती। इस विषय की

भंडाफोड काशी में 1935 ई० में पूर्णरूपेण हो चुका था और उस समय न कुम्भकोण मठ या न उनके अनुयायी भक्तों ने 'इन्द्र' पद प्राप्त करने का एवं इसके श्रेष्ठत्व कहलाने का विषय सिद्ध कर सके।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि यह विशेष अङ्कितनाम 'इन्द्रसरस्वती' केवल कांची कुम्भकोण मठाधीष को ही लागू होता है। यह कथन भी मिथ्या है चूंकि अन्य परिव्राजक जो कुम्भकोण मठ से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते थे इस नाम को धारण किये हैं। आचार्य शङ्कर काल के पश्चात् किसी एक महान् ने इस नाम को प्रारम्भ किया हो और इनके अनुयायी इस नाम को धारण करते हों। सरस्वती योगपट्ट के साथ अपने शीलाचार के प्रभाव द्वारा अभिमान से 'इन्द्रसरस्वती' व 'आनन्दसरस्वती' प्रारम्भ किया हो पर धर्म शास्त्र एवं यतिधर्म ग्रन्थ केवल शुद्ध सरस्वती का ही उल्लेख करता है। कुछ आदरणीय परिव्राजकों का नाम नीचे दिया जाता है और ये माननीय परमहंसों का सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से नहीं था और इस सूची से सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का उपर्युक्त कहा प्रचार सब मिथ्या है।

(1) श्री रामचन्द्र इन्द्रसरस्वती (उपनिषद् ब्रह्म योगी)—आपने कांची में उपनिषद ब्रह्मेन्द्रमठ की स्थापना की थी। आपके गुरु का नाम श्री वासुदेव इन्द्रसरस्वती था और इस मठ के अधीष 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट धारण करते हैं। इस मठ के विषय में एक मार्के की बात है कि एक श्री महादेव इन्द्रसरस्वती ने विरिञ्चिपुरम ग्राम में जो कांची समीप है वहां के आलय की पूजादि प्रबन्ध 1892 ई० में श्री श्रृङ्गेरी मठाधीष की सहायता से एवं श्री अप्पय दीक्षित के वंशजों द्वारा किया गया था। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि कांची कुम्भकोणमठ की नीवं इस कांची उपनिषद ब्रह्मेन्द्र मठ के कोई एक महान् प्रभावशाली शिष्य ने डाला था। यह स्वतन्त्र मठ कांची व कुम्भकोणम् में मठों की स्थापना भी की। पश्चात् अपनी टोली की सहायता से इस नवीन मठ को सर्वोच्च सर्वोत्तम बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया।

(2) श्री गीर्वाण इन्द्रसरस्वती—श्री अप्पय दीक्षित के समसामयिक व 'प्रपंचसारसंग्रह' आदि ग्रन्थों के रचयिता।

(3) श्री बालकृष्ण इन्द्रसरस्वती—'न्यायामोद' के रचयिता। आपके गुरु श्री राघव इन्द्रसरस्वती थे।

(4) श्री आनन्दबोध इन्द्रसरस्वती—'योगवाशिष्ठव्याख्या' के रचयिता। आपके गुरु श्री गङ्गाधर इन्द्रसरस्वती थे।

(5) श्री बोध इन्द्रसरस्वती—'अद्वैतभूषणं' के रचयिता। इस पुस्तक के व्याख्याकर्ता श्री वासुदेव इन्द्रसरस्वती थे।

(6) श्री गोपाल इन्द्रसरस्वती—आप श्री वेंकटनारायण के गुरु थे जिन्होंने चम्पूरामायण पर टीका लिखी थी।

(7) श्री सदाशिवब्रह्म इन्द्रसरस्वती—कुम्भकोण मठ का 'गुरुरत्नमाला' पुस्तक के कहे जाने वाले रचयिता, एक महान् योगी सिद्ध पुरुष, कुम्भकोण मठ के मठाधीष न थे और आपका सम्बन्ध मठ से न था। पाठकगण इस विषय का विवरण प्रथमाध्याय में पढ चुके होंगे। आपने अपने

से रचित ग्रन्थों में कहीं भी 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट का उल्लेख नहीं किया है तथापि रूढी में 'इन्द्रसरस्वती' का अङ्कित नाम होने का विश्वास किया जाता है।

(8) अर्वाचीन काल में तंजौर जिले में श्री वासुदेव इन्द्रसरस्वती (सिद्धान्तलेषतात्पर्यसंग्रह के रचयिता) एवं श्री रामब्रह्म इन्द्रसरस्वती (अद्वैतसिद्धान्त गुरु चन्द्रिका के रचयिता) भी थे।

कुम्भकोण मठ के अभिमानी प्रचारकों द्वारा काशी में 1935—40 ई० में संपादित पुस्तक 'शांकर पीठतत्त्वदर्शन' में कहा है कि 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट 'सरस्वती' अङ्कित नाम का भेद है। इस विषय को हमलोग भी मानते हैं। विवाद तो इस विषय पर है जो उपर्युक्त पाराओं में दिये गये हैं और जो सब प्रचार भ्रामक व मिथ्या हैं। शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन के संपादकों को शोभता नहीं जब वे हमारे धर्मशास्त्र एवं यतिधर्म ग्रंथों के रचयिताओं को तथा आचार्य शङ्कर को मूर्ख बनाते हैं। शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन के पृष्ठ 26/27 में लिखा है कि 'इसे न मानने से सरस्वती संप्रदाय को ही आप सब नहीं मानना पडेगा।' इन संपादकों का क्या पान्डित्य, न्याय व अविवेकता है? यदि कोई कहे 'नवीन वर्ग यज्ञोपवीत पहन ले तो वह वर्ग ब्राह्मण नहीं है' तो क्या इसका अर्थ किया जाय कि ब्राह्मण वर्णाश्रम ही नहीं है? जब सनातनधर्मावलम्बी पूछते हैं कि यह नवीन वर्ग जो यज्ञोपवीत अब धारण किये हैं वे किस प्रकार ब्राह्मण कहलाये जा सकते हैं तो क्या इसके उत्तर में कहना उचित व न्याय होगा कि ब्राह्मण ही ब्राह्मण नहीं हैं। 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' (काशी में 1935 ई० में प्रकाशित) में दिये हुए पंक्तियों को ठीक न पढकर 'शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' में उत्तर लिख देना इन कुम्भकोण मठाभिमानी संपादकों को शोभता नहीं है। हमलोगों का कहना है कि 'इन्द्रसरस्वती' दसनामी के 'सरस्वती' अङ्कित नाम का एक भेद है जो अर्वाचीन काल में (आचार्य शङ्कर काल पश्चात्) किसी एक महान के शीलाचार प्रभाव से एवं उनके अभिमान से कल्पित है (यतिधर्म निर्णय के अनुसार) और यह 'इन्द्रसरस्वती' एक अलग नामसे दस नामी में एक नाम कहा जा नहीं सकता है एवं यह नाम सर्वश्रेष्ठ होने का द्योतक नहीं है। श्रीश्रृंगेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज ने नेरूर के महान् योगी सिद्ध परिव्राजक श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र सरस्वती की यशोगान में स्तोत्र अवश्य लिखा है और आपने अपनी श्रद्धा भक्ति भी दिखाई है पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि 'इन्द्रसरस्वती' एक विशेष श्रेष्ठ सर्वोत्तम दसनामी में अन्तर्गत है चूंकि इन्द्रसरस्वती अलग योगपट्ट नहीं है और यह 'सरस्वती' में ही अन्तर्गत है। यह भी कहना भ्रामक मिथ्या प्रचार है कि श्रीसदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने कांची कुम्भकोण मठ की 'गुरुरत्नमाला' रची थी। अनभिज्ञ पामर लोगों को ऐसे निराधार कल्पित कथाओं से समझाया जा सकता है पर भिज्ञ व वृद्धों को यह ग्राह्य नहीं हैं। पाठकगण कृपया इस खण्ड के प्रथमाध्याय में 'गुरुरत्नमाला' शीर्षक भाग को पढें।

कुम्भकोण मठ का मठाम्नायसेतु जो कुम्भकोणम् से 1894 ई० में प्रकाशित हुआ है उसमें एक मार्के का श्लोक है जिसे पाठकगण ध्यान से पढें :—

"चत्वारपूर्वआम्नायास्समुख्याश्चोत्तरात्रयः।
संप्रदायास्तथापंच नामानि दशचेरितं ॥ 55 ॥"

"इति श्रीदशानामाभिधानानि। इतिश्रीशङ्कराचार्य पथे मठाम्नायाः ॥"

"पूर्वोक्त तीर्थाश्रमादीनांमध्ये केषांचिन्नाम्नां स्व स्व शीलाचार
मताभिमानेन जातास्संप्रदायास्तत्तन्नाम भेदाश्च ... ...
सरस्वती संप्रदाय भेदावानन्दसरस्वती इन्द्रसरस्वती चेति ... ...।"

इससे प्रतीत होता है कि सात आम्नाय के बीच में जिसकी संख्या या आम्नाय नहीं है और जो धर्मशास्त्र ग्रंथों एवं यतिधर्म ग्रंथों में उल्लेख नहीं है वहां पर कुम्भकोण मठ का स्वकल्पित मठाम्नाय त्रिंशकु लोक समान है। यह स्थिति केवल स्वेच्छावाद संप्रदाय से हो सकता है। इसीलिये आचार्य शङ्कर द्वारा रचित चार संप्रदाय ('सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्म व्यवस्थितिः") की जगह अब पांच (मिथ्यावार) हो गया है। अङ्कितनाम दस होने का उल्लेख है पर इनका इन्द्रसरस्वती इस दसनामी में नहीं है। कुम्भकोण मठ के मठाम्नायसेतु में दस नाम के लक्षण व परिभाषा भी दी है (श्लोक 45 से 54 तक) और यहां भी इन्द्रसरस्वती नहीं है। पर इसके पश्चात् जो उल्लेख है सो हमलोगों के कथन की ही पुष्टि करता है। शीलाचार के प्रभाव द्वारा अभिमान से प्रारम्भित सरस्वती संप्रदाय का भेद आनन्द व इन्द्र दोनों नवीन कल्पित हैं।

कुम्भकोण मठ के एक अनुयायी विद्वान ने 1935 ई० में एक लेख प्रकाश किया था और आपका विचार है कि दसनाम (योगपट्ट) के लिये आचार्य शङ्कर ने दस मठों की स्थापना की थी और इस दस मठ में कांची एक है। आगे आप कहते हैं कि 'आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी' यह कथन भूल है। इस कुतर्क से उस विद्वान की यतिधर्म शास्त्र पर अनभिज्ञता प्रगट होती है। योगपट्ट सब सन्यासियों का अङ्कित नाम है और इन नामों की कल्पना आध्यात्मिक है और भौतिक नहीं है। आचार्य शङ्कर ने स्वयं इन नामों की व्याख्या की थी। सन्यासियों का गुण लक्षण भी दिया गया है। मठ की स्थापना आम्नाय पद्धति अनुसार की गयी है जिसका नियम, संप्रदाय, योगपट्ट, वेद, महावाक्य, ब्रह्मचारी, धर्मराज्यसीमा, आदि सब मठाम्नाय में उल्लेख हैं। आम्नाय मठ सब धर्मराज्य केन्द्र हैं और ये 'अधिकार संपन्न' हैं। योगपट्ट सर्वसाधारण सन्यासियों को लागू होता है। योगपट्ट के आधार पर मठ स्थापना की गई थी कहना सो भ्रामक व कल्पित कथा है। इन सब अङ्कितनामों को चार आम्नाय मठों में विभाजित करने से ही प्रतीत होता है कि योगपट्ट मठाम्नायान्तर्गत है। पामर लोगों को भ्रम में डालने के लिये ही ये सब भिन्न भिन्न कथायें समय समय पर सुनाया जाता है।

ब्रह्मचारी—आम्नाय में चार ब्रह्मचारियों का वर्णन है—प्रकाश (पूर्व), चैतन्य (दक्षिण), स्वरूप (पश्चिम) व आनन्द (उत्तर)। धर्म शास्त्र पुस्तकों में इन चारों का लक्षण वर्णित हैं, यथा—

स्वरूप—स्व स्वरूपं विजानाति स्वधर्म्मं परिपालकः।
स्वानन्दे क्रीडतो नित्यं स्वरूपो वटुरुच्यते॥

प्रकाश—स्वयञ्ज्योतिर्विजानाति योग युक्त विशारदः।
तत्वज्ञान प्रकाशेन तेन प्रोक्तः प्रकाशकः॥

आनन्द—सत्यज्ञानमनन्तं यो नित्यंध्यायेत तत्त्ववित्।
स्वानन्देरमते चैव आनन्दः परिकीर्तितः॥

चैतन्य—चिन्मात्रं चेत्यरहितं अनन्तमजरंशिवम्।
योजानाति स वै विद्वान् चैतन्यं तद्विधीयते॥

ज्ञानगोचर आम्नाय के ब्रह्मचारि हैं यथा—ऊर्ध्व—ब्रह्मतत्त्वे संयोगेन संन्यासः, आत्मा—संन्यासः, निष्कल—संन्यासः। कुम्भकोणमठ का कल्पित पांचवा ब्रह्मचारी संप्रदाय 'सत्यब्रह्मचारी' कहां से टपक पड़ा? मठाम्नाय एवं धर्मशास्त्र पुस्तकों में उल्लेख नहीं है। यों तो विशेष गुणों के आधार पर ब्रह्मचारी का अनेक विभाग कर सकते हैं पर प्रश्न है कि

आम्नायानुसार क्या कोई प्रामाणिक ग्रन्थ में पांचवां ब्रह्मचारी का नाम उल्लेख है? यदि यह नाम प्रचलित होता तो क्यों नहीं मठाम्नाय एवं यतिधर्म शास्त्र रचयिताओं ने इस नाम को छोड दिया था?

गोत्र—'यतिधर्मनिर्णय' उत्तर भाग में चार गोत्रों का उल्लेख है यथा—'वसिष्ठो भार्गवश्चैव काश्यपस्तदनन्तरम्। भारद्वाजश्च चत्वारि गोत्राणि कथितानि वै।' इसका पाठान्तर भी है यथा पूर्व में काश्यप, दक्षिण में भूर्भुवः, पश्चिम में अविगत तथा उत्तर में भृगु। कुम्भकोण मठ का मठाम्नाय सेतु जो 1894 ई० में कुम्भकोणम् से प्रकाशित हुआ है उसमें भी चार गोत्र ही देते हैं तो प्रश्न उठता है कि आपके मठ का गोत्र क्या है? मठाम्नाय सेतु, यतिधर्म एवं अन्य धर्मशास्त्र पुस्तकों में केवल चार गोत्र दिये गये हैं तो अब कुम्भकोण मठ का पांचवां नाम कहां से टपक पडा?

आचार्य—आचार्य शङ्कर के अनेक शिष्य थे और इस शिष्यवर्ग में परिव्राजक और गृहस्थ भी थे। इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में दिये हुए आचार्य चरित्र में पाठकगण इस विषय का विवरण पायेगें। इस शिष्यटोली में से आचार्य शङ्कर का मुख्य शिष्य चार थे—श्री पद्मपाद, श्री सुरेश्वर, श्री हस्तामलक, श्री तोटक। पुराण वचनानुसार भी सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर के मुख्य शिष्य चार ही हैं जो आपके अवतार के उद्देश्यों की पूर्ती करने में अपने अपने कैंकर्य से हाथ बढाया—'चतुर्भिस्सहशिष्यैस्तु शङ्करोऽवतरिष्यति'। मठाम्नाय में भी उल्लेख है—'उक्ताश्चत्वार आम्नाय यतीनां हि पृथक पृथक। ते सर्वे चतुराचार्य नियोगेन यथाविधि॥' यतिधर्मनिर्णय में—'आचार्य शिष्यश्चत्वारः सर्व्वलोकेपुविश्रुताः।' ऐसा उल्लेख है।

कुम्भकोण मठ का प्रथम आचार्य श्री भगवत्पाद स्वयं होने का कल्पित कथा सुनाते हैं। आम्नायानुसार चार ही दृष्टिगोचर धर्मराज्यकेन्द्र की स्थापना करके इनके परिपालनार्थं नियमादियों को स्व रचित मठाम्नाय में उल्लेख कर एवं इन चार दृष्टिगोचर आम्नाय मठों को स्वरचित महानुशासन से बद्धकर, आचार्य शङ्कर स्वयं हिमालय के केदार सीमा से निजलोक जा पहुंचे। आचार्य शङ्कर कहीं भी अलग पांचवां निजमठ का निर्माण नहीं किया चूंकि आपका 'स्वाश्रम', 'निजमठ' श्रृङ्गेरी ही था और इस विषय को सब प्रामाणिक ग्रंथ भी समर्थन करते हैं। दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी में बारह वर्ष काल वास किये हुए आचार्य शङ्कर (कुम्भकोण मठ पुस्तकों के अधार पर) जिनकी आयु केवल 32 वर्ष का था, अन्य जगह निजमठ प्रतिष्ठा करने की आवश्यकता नहीं थी। यदि अन्य निजमठ प्रतिष्ठा करते तो अवश्य स्वरचित मठाम्नाय में उल्लेख करते या अपने परम्परा परिपालनार्थं नियमादि बनाते या निजमठ से अन्य आम्नाय मठों का सम्बन्ध, नियम आदि का उल्लेख करते। आचार्य शङ्कर ने कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं किया है। आचार्य शङ्कर के साधारण निवास स्थल, मन्दिर निर्माण या मूर्तियों का जीर्णोद्धार स्थल, देवदेवी की उग्रता शांतकर पुनः सौम्य चक्र की प्रतिष्ठा स्थल, विपक्षीदलों से वादविवाद स्थल, सर्वज्ञपीठारोहण स्थल व निर्याण स्थल आदियों में मठ प्रतिष्ठा करना ठीक नहीं है चूंकि मठों की प्रतिष्ठा आम्नायानुसार ही हुआ है। आचार्य शङ्कर न कांची में बहुकाल वास किये और न आपने कांची में तनुत्याग किया था। जब कांची में आम्नाय मठ स्थापना ही नहीं हुई है तो आचार्य शङ्कर का प्रथमाचार्य होकर अपनी गुरु वंशावली चलाना भी मिथ्या है। वर्तमान तीन आम्नाय मठों के जगद्गुरु शङ्कराचार्य कांची कुम्भकोग मठ की वंशावली को आचार्य शङ्कर की गुरु वंशावली नहीं स्वीकार करते (पाठकगण तृतीय खंड देखें)

कुम्भकोण मठ का कथन है कि आचार्य शङ्कर के लिये आम्नाय पद्धति की आवश्यकता नहीं है, अतः मठाम्नाय भी नहीं है। यह कथन भ्रामक है। यदि मान भी लें कि आचार्य शङ्कर ने अपने लिये पद्धति व नियम न बनायें हों पर जब आप अपनी वंशावली चलाना चाहते थे और व्यवहार के लिये आपका निजमठ से एवं अपने से प्रतिष्ठित अन्य चार मठ के साथ क्या सम्बन्ध होना था तथा अपनी वंशावली परिपालनार्थ अपने वंशावली आचार्यों के लिये नियमादि विषयों का अवश्य उल्लेख किये होते पर यह भी देखने में नहीं आता है। शिष्यों को अपने गुरु के प्रति कैसा व्यवहार व भाव होना चाहिये था इसका भी उल्लेख नहीं किया है। आपस में संघर्ष या वादविवाद उत्पन्न करनेवाले ऐसे कार्य आचार्य शङ्कर ने कभी नहीं किये होंगे। आचार्य मठ के लिये यदि मठाम्नाय की जरुरत नहीं थी तो क्यों कुम्भकोण मठ ने एक कल्पित मठाम्नाय रचना कर और इसे आचार्य शङ्कर के शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य द्वारा रचित कहकर प्रचार कर रहे हैं? इन दो कथनों में कौन सत्य है? अतः यह निस्सन्देह कह सकते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। कहेजानेवाले कांची मठ वंशावली का विमर्श पाठकगण अध्याय तीन और चार में पायेंगे जहां सिद्ध किया गया है कि 17 वीं शताब्दी अन्त तक की कांची मठ वंशावली एक कल्पित मिथ्या वंशावली है। अतः आचार्य शङ्कर ने अपने से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में चार शिष्यों को बैठाया था और अपने लिये निजमठ कहीं भी स्थापना नहीं की थी। ज्ञानगोचर तीन आम्नाय के आचार्य—ऊर्ध्व—महेश्वरः, आत्मा—चेतनः, निष्कल—सद्गुरु हैं।

मठनाम—चतुर्दिक आम्नाय मठ का नाम—पूर्व में गोवर्धन, दक्षिण में शृङ्गेरी शारदा, पश्चिम में कालिका या द्वारका शारदा, उत्तर में ज्योतिष्मन मठ या ज्योतिमठ है। ज्ञानगोचर मठों का नाम—ऊर्ध्व—सुमेरु (कैलास पर्वत का ऊर्ध्व—निवासस्थल), आत्मा—परमात्मा मठ, निष्कल—सहस्रार्कद्युति मठ है। कांची कुम्भकोण मठ अपने मठ का नाम शारदा मठ कहते हैं। कांची शारदा मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित न होने से एवं कांची दक्षिणाम्नायान्तर्गत होने से तथा दक्षिणाम्नाय में अलग एक शारदा मठ कहलाने से, आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदा मठ का कांची मठ एक शाखा मठ होना निश्चित होता है। कुम्भकोण मठ की अनुमति से प्रकाशित ताम्र शासनों में भी 'शारदा मठ' का ही उल्लेख है और पाठकगण इन ताम्रशासनों पर विमर्श पांचवें अध्याय में पायेंगे। एक मुकद्दमे में (1935 ई०) अदालत ने कांची कुम्भकोण मठाधीश को 'शिक्कुडयार' नाम होने का भी निर्णय दिया है। 'शिक्कुडयार', कर्नाटक भाषा पद, का अर्थ है 'छोटे स्वामी' अर्थात् शाखा या उपशाखा मठ के छोटे स्वामी। करीब दो सौ वर्षों से इनके मठाधीश सब कर्नाटक के हैं। दो सौ वर्षों के प्रारम्भिक काल एवं उन्नीसवीं शताब्दी के रिकार्डों से सिद्ध होता है कि आपका मठ शाखा मठ है। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी के शारदा को अपने कांची में मिलाकर दक्षिणाम्नाय स्मार्थ लोगों को भ्रम में डालकर अपना स्वार्थ प्राप्त करने में सुलभ ही था चूंकि उन दिनों में सारा दक्षिणाम्नाय के अद्वैतमतावलम्बी वासिन्दे शृंगेरी मठ के ही शिष्य थे। कुम्भकोण मठ अपने स्वरचित मठाम्नाय में 'शारदा मठ' का उल्लेख किया है और बाह्य व्यवहार में इस नाम का उपयोग अब नहीं करते। पर कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में 'कामकोटि मठ' का नाम देते हैं और आप प्रचार करते हैं कि 'कोटि' शब्द 'गोष्ठ' से 'कोष्ठ' होकर 'कोटि' में परिवर्तन होने से 'कामकोटि' पद मठ का द्योतक है। आचार्य शङ्कर ललिता त्रिशती भाष्य में 'कामकोटि' का अर्थ 'श्री चक्र' कहा है। अब प्रश्न उठता है कि इन दो भिन्न कथनों में (शारदा—कामकोटि) कौन सत्य है? 1844 ई० में कुम्भकोण मठ अदालत में कहा है कि कामाक्षी से शारदा—सरस्वती नीचे श्रेणी की शक्ति है। क्यों अब नीचे श्रेणी की शारदा का नाम अपने 'सर्वोत्तरस्सर्वसेव्यः' मठ के साथ जोड रहे हैं? कामकोटि का अर्थ 'कामाक्षी मन्दिर समीप का मठ' कहते हैं पर कहे जाने वाले

कुम्भकोण मठ के एक ताम्र शासन (दस ताम्रशासनों में प्रायः सब शासन अविश्वसनीय एवं कल्पित होने का राजकीय कर्मचारी एवं अन्य विमर्शकों ने कहा है) से प्रतीत होता है कि आपका मठ विष्णु कांची में था। अर्थात् कामाक्षी मन्दिर समीप मठ का निर्माण अर्वाचीन काल का ही है। राजकीय रिकार्डों के परिशीलन से प्रतीत होता है कि विष्णु कांची एवं शिव कांची मठ दोनों आधुनिक काल में प्रतिष्ठित मठ हैं।

वेद—वेद चार हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म से युधिष्ठिर को कहा गया विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र में भी चार वेद का प्रमाण है— "चतुरात्मा चतुर्भाविश्चतुर्वेदविदेकपात्।" महन्यासादि मंत्र में भी चतुर्वेद का ही उल्लेख है। यह पुराणिक कथा सब को मालूम है जो वेदव्यवस्थापक कृष्णद्वैपायन श्री व्यास (श्री पराशर के पुत्र) ने महाभारत युद्ध के पूर्व किसप्रकार वेद का चतुर्विभाग किया था और इन चार संहिता (वेद) को पृथक चार शिष्यों को पढाया था। "ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः" नृसिंह तापनीयोपनिषद में उल्लेख है। छान्दयोग्य 7-1-2 एवं मुण्डकोपनिषद 1-1-5 भी चार वेद का ही उल्लेख करता है। सर्व वेद पारायण एवं ब्रह्म यज्ञ जपादि में ऋक्, यजु, साम, अथर्वण ही का क्रम है पर अर्थज्ञान एवं यज्ञानुष्ठान के लिये यजुर्वेद प्रथम है, पश्चात् ऋक् व सामवेद हैं।

इष्टप्राप्ति (सर्वानन्दप्राप्ति) और अनिष्ट परिहार (सर्वदुख निवृति) इन दोनों का पारलौकिक विधि की जानकारी करानेवाला अपौरुषीक ग्रन्थ वेद कहा जाता है। सृष्टि के पूर्व ब्रह्मा को यह उदय हुआ पश्चात् आपने मरीचि, अत्रि, आदि के द्वारा इसका प्रकाश कराया। कालान्तर में यह बृहत् व अनन्त होगया। द्वापर के अन्त में कृष्णद्वैपायन ने इसे चार भागों में विभाग किया। इसीलिये आपको वेदव्यास कहा जाता है। आपसे परम्परागत यह वेद चला आ रहा है। वेद में संहिता (यज्ञादि कर्म विधि) व ब्राह्मण (ज्ञान उपदेश उपनिषद) दो भाग हैं। न जानकारी उपायों को प्रत्यक्ष और अनुमान से बोध कराने से ही 'वेद' नाम पडा ('प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता'।) वेद परमेश्वर का श्वास स्वयं उत्पन्न हुआ है। यह अपौरुषीक है। धर्माधर्म को जानने का मूल प्रमाण वेद है। वेद में जहां एक ही धर्म को भिन्न प्रकार से कहा गया हो वहां विकल्प व्यवस्था करना चाहिये। वेद के पश्चात् स्मृति प्रमाण में माना जाता है। वेद के विरुद्ध यदि स्मृति कहे तो वह अग्राह्य अप्रमाण है। स्मृति के पश्चात् प्रमाण शिष्टाचार है। यदि शिष्टाचार वेद व स्मृति के विरुद्ध हो तो वह अग्राह्य है। वेद का तीन विभाग हैं —कर्मकान्ड, उपासना कान्ड, ज्ञान कान्ड।

यागादि में होतृवर्ग कहेजानेवाले ऋत्विकों से घोषित होनेवाले स्तोत्र, शस्त्र प्रयोगविधि, आदि का विवरण जो मंत्र व ब्राह्मण भाग, निविदिपरेशम्, कुन्तापम्, वालकिल्यम्, उपनिषद, खिल आदि भागों का संग्रह कर इसे ऋग्वेद कहा गया। श्रीव्यास ने अपने शिष्यों में एक शिष्य श्री पइल को उपदेश देकर ऋग्वेद परम्परा प्रारम्भ किया था। इसे अध्ययन करनेवाले ऋग्वेदी कहे गये। यागादि में अध्वर्यु वर्ग कहेजाने वाले ऋत्विकों से उपयोग कियेजानेवाले मंत्र भाग, प्रयोगविधि, आदि का विवरण जो ब्राह्मण भाग, प्रकीर्ण, उपनिषद, आदि भाग सब संग्रह कर यजुर्वेद कहा गया। श्री व्यास ने श्री वैशम्पायन को उपदेश देकर परम्परा प्रारम्भ किया था। यागादि में उद्गाता वर्ग कहेजानेवाले ऋत्विकों से घोषित होने वाले स्तोत्र साम भाग, ब्राह्मण, प्रकीर्ण, उपनिषद आदि भाग सब संग्रह कर सामवेद कहा गया। श्री व्यास ने अपने शिष्य श्री जैमिनी को उपदेश कर परम्परा शुरू की थी। उपर्युक्त तीन भागों के अन्य, यागादि में जो अधिकांश उपयोग न किया जाता हो, वैसे मंत्र व अनेक कल्पों का संग्रह कर चतुर्थ भाग को अथर्वण कहा गया। श्री व्यास ने अपने शिष्य श्री सुमन्तु को पढाया था और यह परम्परा भी प्रारम्भ किया था।

ऋग्वेद—ऋग्वेदाचार्य श्री पइल ने इन्दिरप्रमथ और बाश्कल को यह वेद प्रथम पढाया था। इन्दिरप्रमथ ने ऋक संहिता को पद, क्रम, जटा में विन्यास कर अपने पुत्रों माण्डूकेय, बोध्य, अग्निमित्र को पढाया। माण्डूकेय ने अपने पुत्र शाकल और अपने शिष्यों—वेदमित्र, सौश्री, आदियों—को उपदेश किया था। शाकल ने ऋक संहिता को घन, दन्ड, माला, आदि में विन्यास कर वात्सिय, गोसत्य, शिशिर, मुद्गल, आदियों को उपदेश किया। बाश्कल के पुत्र ने बाश्कली वेद शाखा के वाक्यों का एक और भाग प्रारम्भ किया था। इसे बालायनी ने अध्ययन किया। शाकल के शिष्यों से इस ऋग्वेद को आठ अष्टक में विभाग कर और हर एक अष्टक को आठ अध्यायों में पुनः विभाजित कर इसका अध्ययन किया था। ऐतरेय ब्राह्मण इस वेद का प्रयोग, अनुष्ठान क्रम का विवरण देता है। बाश्कल के शिष्यों ने प्रश्न और अनुवाक् में विभाजित कर अध्ययन किया था। इनके अनुष्ठानक्रम का विवरण कौशीतक ब्राह्मण में पाया जाता है। इतना विभाग होते हुए भी वेद एक ही है। केवल स्वल्प पाठभेद एवं खिल मंत्रों में तारतम्य देखा जाता है। इसीलिये शाकल शाखा—बाश्कल शाखा में भेद पाया जाता है। आश्वलायन, सांख्यायन, आदि ऋषियों ने श्रौत कल्पसूत्र, ग्रह्य कल्पसूत्र, परिभाषा, सूत्र, आदि ग्रन्थों की रचना की थी। ग्रह्य कल्पसूत्र रीति के अनुसार ऋग्वेद की 6 शाखा माना जाता है परन्तु ऋक् संहिता एक ही है। इस ऋक् संहिता को ऋषियों ने दस मण्डल में विभाज्य किया था—शातर्चन मण्डलम्, गार्त्समद म०, वैश्वामित्र म०, वामदेव्य म०, आत्रेय म०, भारद्वाज म०, वसिष्ठ म०, प्रगाथा म०, पवमान म०, महासूक्त म०। ऋक्संहिता दस मण्डलों में विभाजित होने से इसे 'दशतयी' कहा जाता है। ऋक् संहिता में कुछ पाठभेद हैं—शाकलशाखा, ऐतरेय ब्राह्मण, आश्वलायन सूत्र, सांख्यायनसूत्र, कल्प सूत्र और इन भेदों के कारण 'शाकलाः, बाष्कलाः, आश्वलायनाः, सांख्यायनाः, मान्डूकेयाः,' आदि शाखा नाम प्रसिद्ध भी हैं। ऋग्वेद में 1028 सूक्त हैं और 10,600 ऋक् हैं। करीब 2450 ऋक् गायत्री छंद में और करीब 800 ऋक् अनुष्टुप छंद में हैं और 4000 ऋक् से भी अधिक त्रिष्टुप छंद में हैं। कुछ ऋक् मिश्रित छंदों में भी हैं।

यजुर्वेद—श्रीवेदव्यास से श्रीवैशम्पायन ने यजुर्वेद पाठ पढा था। मंत्र ब्राह्मणात्मक यजर्वेद 86 शाखा में विभाजित हैं। इनमें अनेक शाखा अब लोप हो गये हैं। यजुर्वेद में एक शाखा चरक शाखा है। इसमें बारह शाखायें हैं—चरकाः, आह्वरकाः, कठाः, प्राच्यकठाः, कपिष्ठलकठाः, चारायणीयाः, वारतान्तवीयाः, श्वेताः, श्वेततराः, औपमन्यवाः, पाताण्डिनेयाः, मैत्रायणीयाः (कालाप)। इसमें मैत्रायणीय का 6 भाग हैं—मानवाः, वाराहाः, दुन्दुभाः, छागलेयाः, हरिद्रवीयाः, श्यामायनीयाः। पतञ्जली के महाभाष्य से मालूम होता है कि एक समय में कठ यजु एवं कालाप यजु के अनुयायी बहुतेरे गांव गांव में वास करते थे पर वर्तमान काल में इन दोनों शाखा के अनुयायी इनेगिने ही मिलते हैं। कठ के कुछ अनुयायी काश्मीर में अब भी मिलते हैं और कालाप के अनुयायी एक या दो अब भी गुजरात में मिलते हैं। इन दो शाखा के संस्कार विधि अब नहीं मिलते हैं।

यजुर्वेदाचार्य श्रीवैशम्पायन के अनेक शिष्य थे। एक समय मेरु शिखर में ऋषियों की एक सभा हुई थी। इस सभा में शामिल न होनेवालों को हत्या पाप लगने का शपथ भी सबों ने लिया था। कुछ कारणों से वैशम्पायन (श्रीवाजसनि के पुत्र) इस सभा में जा न सके। आप अपने आश्रम में शिष्यों को वेद पाठ कराते थे। ऋषि के भांजा बालक ने वेद पाठ बीच में आ खडा हुआ और आपने एक दर्भ से उस बालक को रोका चूंकि वेदपाठ करते समय गुरु शिष्य बीच में किसी का आना निषेध है। ऋषियों के शपथ के अनुसार यह बालक मर गया और वैशम्पायन को हत्या पाप लग गया। एक शिष्य चरक ने कहा कि हम सब तपस्या कर इस हत्या पाप का प्रायश्चित

व निवृत्ति कर देगें। आपके और एक शिष्य श्रीयाज्ञवल्क्य ने कहा कि आपके सब शिष्यों से तपस्या करने पर भी इस पाप का निवृत्ति न होगी और इसका निवृत्ति केवल मैं ही कर सकता हूं। वैशम्पायन इसे सुनकर और जो ब्राह्मणों पर टीका टिप्पणी निन्दनीय होने के कारण याज्ञवल्क्य से सीखे हुए वेद को उगल देने को कहा और तुरन्त आश्रम छोड चले जाने को कहा। याज्ञवल्क्य ने सीखे वेद को उगल दिया जो अग्निज्वाला रूप प्रकाशित हुआ। गुरु के आज्ञानुसार सारस्वत वर्ग के लोग तित्तिरि पक्षी का रूप धारण कर इस उगले हुए वेद को खा गये। पुनः इसे पारायण करते समय मंत्र और ब्राह्मण दोनों मिश्रित ही पाठ में आया। तित्तिरि से उगले हुए वेद का भक्षण कर पुनः इसका अध्ययन प्रारम्भ होने से इसे तैत्तिरीय शाखा कहा जाता है। क्या आपका नाम तित्तिरी था या क्या आपका नाम पक्षी की तरह उठा कर खा जाने से तित्तिरीय नाम पडा, सो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। आपके अनुयायी सब तैत्तिरीय (कृष्ण यजु) कहलाने लगे।

याज्ञवल्क्य ने अपने तपोबल से श्रीआदित्य की स्तुति कर एवं आदित्य को अपना गुरु मानकर उनके पास पुनः यजुर्वेद का अध्ययन किया। आदित्य की कृपा से आपने यजु का पुनः अध्ययन कर, एक अलग यजुशाखा प्रारम्भ किया था जिसे शुक्ल यजु संहिता कहते हैं। सूर्य भगवान वाजि नाम का सफेद घोडा रूप धारण कर याज्ञवल्क्य को उपदेश किया था। इसीलिये इसे शुक्ल (सफेद) यजुर्वेद और वाजसनेय शाखा नाम पडा। मंत्रों का अर्थ गद्य रूप में ब्राह्मण जो बनाया था उसे सतपथ ब्राह्मण या याज्ञवल्क्य ब्राह्मण कहते हैं। शुक्लयजु में 15 शाखायें हैं—काण्वाः, माध्यन्दिनाः, जाबालाः, सौधियाः, शाफेयाः, तापनीयाः, कपोलाः, पौण्डरवत्साः, आवटिकाः, परमावटिकाः, पराशरीयाः, वैनेयाः, वैधेयाः, वैनतेयाः, बैजावापाः। इन पन्द्रह में औधेयाः और गालवाः को जोड कर सत्तरह शाखा होने की कथा भी कहते हैं। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि ये दोनों शाखा पन्द्रह में अन्तर्गत होने से अलग गिना नहीं जा सकता है। इस पन्द्रह शाखा में काण्व शाखा एवं माध्यन्दिन शाखा ही मुख्य माना जाता है। शुक्ल यजुर्वेद 40 अध्यायों में विभाग किये गये हैं। काण्व और माध्यन्दिन शाखा में पाठ भेद और अधिक पाठ भी पाया जाता है। इन दोनों शाखाओं में शतपथ ब्राह्मण नामक अलग ब्राह्मण भाग और उपनिषद भाग भी हैं। पारस्कर ग्रह्यसूत्र और कात्यायन ग्रह्य सूत्र इसके सूत्र हैं। कृष्ण यजुर्वेद में 86 शाखा और शुक्ल यजुर्वेद में 15 शाखा मिलकर यजुर्वेद में 101 शाखायें हैं ('यजुर्वेदतरोरासन् शाखा एकोत्तरं शतम्। तत्रापि च शिवाः शाखा दश पञ्च च वाजिनाम्। तत्रापि मुख्या विज्ञेया शाखा या काण्वसंमिता।')। काण्डभेद के कारण 100 से अधिक शाखा बन जाने से यजुर्वेद को 'शततयी' भी कहते हैं। तैत्तिरीय (कृष्ण यजु) के अधिकांश अनुयायी दक्षिण भारत में हैं और वाजसनेयिन् (शुक्ल यजु) के अधिकांश अनुयायी उत्तरी भारत में हैं। शुक्ल व कृष्ण दोनों शाखा यजुर्वेद ही कहलाता है न कि पृथक वेद। कृष्ण यजु के सूत्रकर्ता—भारद्वाज, बोधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ, वैखानस, हिरण्यकेशिन आदि हैं। शुक्ल यजु के सूत्र कर्ता—पारस्कर, कात्यायन आदि हैं। यजु का कोई निर्धारित छंद नहीं है। वैदिकमंत्र में ऋक् या यजु होता है। कृष्ण यजु ब्राह्मण—संहिता के ब्राह्मण भाग, तैत्तिरीय ब्राह्मण, काठक ब्राह्मण आदि हैं।

सामवेद—श्री वेदव्यास से जैमिनी ने सामवेद का अध्ययन किया था और आप सामवेदाचार्य भये। जैमिनी ने अपने पुत्र सुमन्तु और पौत्र सुमन्वा को सामवेद का उपदेश किया था। जैमिनी का शिष्य सुकर्मा ने सामवेद को 1000 शाखा में विभाजित कर अपने शिष्य हिरण्यनाभ को 500 शाखा और शिष्य पौष्यञ्जी को 500 शाखा उपदेश किया था। आपके शिष्य परम्परा द्वारा सामवेद का प्रचार हुआ था। कालान्तर में अध्ययन करने के निषेध काल में अध्ययन

करने के हेतु से इस दोष के कारण अनेक शाखा लोप हो गये। सामवेद के 7 शाखायें हैं—राणायनी, शाट्यमुग्रया, कपोलाः, महाकपोलाः, लाङ्गलायनाः, कौथुमाः, शार्दूलाः। सामवेद के सूत्रकर्ता—द्राह्यायन, जैमिनीय, गोभिल, आदि हैं। सामवेद में ऋक् को गायन रूप में परिवर्तन किया गया है। सामसंहिता में करीब 1549 ऋक् पाये जाते हैं। जिसमें से 75 ऋक् ऋग्वेद से लिया गया है। ब्राह्मण सब गद्यात्मक हैं। कुछ पुस्तकों में 9 शाखाओं का उल्लेख भी है—राणायनीयाः, शाट्यायनीयाः, शाट्यमुग्राः, खल्वलाः, महाखल्वलाः, लाङ्गूलाः, कौथुमाः, गौतमाः, जैमिनीयाः। गौतम के 6 भाग हैं—आसुरायणीयाः, वातायनाः, प्रञ्जलयः, वैनभृतः, प्राचीनयोग्याः, नैगमीयाः। इनमें राणायनीयं, कौथुमीयं, जैमिनीयं ही प्रसिद्ध हैं। सामवेद के पर्वभेद—आग्नेय पर्वा, भावमान पर्वा, ऐन्द्र पर्वा। इसके अलावा ऋक् तन्त्र, सामतन्त्र, संज्ञालक्षण, धातुलक्षण, औचित्यम् भाग भी हैं। सुपर्ण प्रेक्षम, वालखिल्यम्, सौर्यम्, आरण्यकम्, आदि विभाजित भी हैं। सामवेद का आठ ब्राह्मण भाग भी हैं—महाब्राह्मणं, षड्विंशब्राह्मणं, सामविधान ब्राह्मणं, आर्षेयब्राह्मणं, दैवब्राह्मणं, संहितोपनिषद ब्राह्मणं, वंश ब्राह्मणं, छान्दोग्य ब्राह्मणं। पूर्वार्चिकम् और उत्तरार्चिकम् भेद भी हैं। प्रकृति, ऊहन्, रहस्यम्, ये तीन गानभेद भी हैं। सामगाचार्य तेरह हैं। सामवेद के दस प्रवचनाचार्य थे। संहिता भेद के कारण सामवेद को 'सहस्रतयी' भी कहते हैं। शास्त्रों में 'त्रयी' तीन वेद—ऋक्, यजु, साम—को कहा गया है।

अथर्वण वेद—श्री वेदव्यास से श्री सुमन्तु ऋषी ने अथर्वण वेद का अध्ययन कर अथर्वणाचार्य भये। अथर्वण वेद का 6 शाखायें हैं—पिप्पलाः, शौनकाः, दामोदाः, तोतायनाः, जाबालाः, ब्रह्मपलाशाः, कुनखी, देवदर्शि, चारणविद्या। इन सबों में कुल 12,000 मंत्र हैं। गोपद नामक ब्राह्मण है। पांच कल्प हैं—नक्षत्र कल्प, विधान कल्प, संहिताकल्प, आभिचार कल्प, शान्ति कल्प।

इन चार वेदों में कहे गये कर्मों के प्रयोगों का विवरण देनेवाला सूत्र ग्रंथ 35 हैं। ये सब ग्रन्थ पूर्ण रूप में मिलते नहीं हैं। परन्तु इनके नाम सब स्मृतियों में पाया जाता है। अपने गृह्य सूत्रों में न कहेजानेवाले आचारों को ऋग्वेदी वर्ग शौनक के कथनानुसार, यजुर्वेदी वर्ग बोधायन के अनुसार, सामवेदी वर्ग राणायनीय कथनानुसार, अथर्वणवेद वर्ग कौशिक कथनानुसार अनुष्ठान् करते हैं।

यदि यह कहा जाय कि शुक्ल यजु पांचवा वेद है (जैसा कि कांची मठ का प्रचार है) तो यह कथन आर्ष ग्रन्थ के विरुद्ध होता है। यदि इसे आर्ष ग्रन्थ के विरुद्ध माना जाय तो यह वेद बहिर्भून कहना ही उचित होगा न कि पांचवां वेद। शुक्ल व कृष्ण दोनों यजुर्वेद के ही विभाग हैं न कि अलग अलग वेद हैं। दक्षिण भारत में ब्राह्मण लोग अभिवादन करते समय 'यजुशाखाध्यायी' कहते हैं चाहे वह ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदी हो या कृष्ण यजुर्वेदी हो। इसे भिन्न वेद मान लें तो यह पांचवां वेद होने का कथन (कांची मठ का प्रचार) इस मंत्र के विरुद्ध होता है—'चतुरो वेदानधीयीत सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वतः'। यह भी कहा जाता है कि ब्रह्मा के चतुर्मुख से चार वेद ही निकले न कि पांचवां। इसलिये कांचीमठ का जो प्रचार है कि शुक्लयजु अलग एक पांचवां वेद है सो भ्रामक व मिथ्या प्रचार है। कुम्भकोण मठ प्रचारानुसार यदि हर एक वेद की शाखा को भी अलग वेद माना जाय तो पांच से भी अधिक वेदों की कल्पना कर सकते हैं। आम्नायानुसार भी वेद चार ही हैं।

यजुर्वेद का महावाक्य 'अहंब्रह्मास्मि' शुक्ल यजुर्वेद से ही लिया गया है तथापि इसे शुक्लयजु कहकर अलग वेद का महावाक्य नहीं कहा जाता पर यजुर्वेद का ही महावाक्य कहा जाता है क्यों कि कृष्ण व शुक्ल दोनों एक ही

यजुर्वेद की ही शाखा है। कुम्भकोण मठ प्रचारानुसार यदि मान लें कि कृष्ण यजु अलग वेद है तो इसका महावाक्य कहां है और क्या है? इन चार महावाक्यों में कोई भी कृष्ण यजु में नहीं है। आम्नायानुसार एवं यागादि क्रमानुसार पूरी का ही ऋक् हो सकता है न कि शुक्ल यजु, कुम्भकोण मठ के कथनानुसार। उक्त आधार पर दक्षिणाम्नाय मठ शृंगेरी को यजुर्वेद होना निश्चित होता है। कांची कुम्भकोण मठ का अलग आम्नाय न होने से एवं कांची कुम्भकोणम् दक्षिणाम्नाय के अन्तर्गत होने से दक्षिणाम्नाय का यजुर्वेद ही कांची को लागू है। प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा स्पष्ट मालूम होता है कि आचार्य शङ्कर कृष्ण यजुर्वेदी थे और श्री सुरेश्वराचार्य शुक्ल यजुर्वेदी थे। कुम्भकोण मठ अपने को आचार्य शङ्कर के अविच्छिन्न साक्षात् परम्परा कहते हैं तो आपका कहेजाने वाले आम्नाय मठ का वेद भी यजुर्वेद होना था न कि ऋग्वेद जैसा कुम्भकोण मठ का प्रचार है। कांची कुम्भकोणमठ चार वेद को पांच में विभाग करने के बदले अच्छा होता कि 'पुराण इतिहास' जिसे वेद समान आर्ष पंचम वेद व्यवहार में माना जाता है उसे अपना वेद कहते। यदि कुम्भकोण मठ का कल्पित ऋक् भी मान लें तो इस वेद का महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म' होना चाहिये पर कुम्भकोण मठ 'ॐतत्सत' को ऋक् वेद का महावाक्य होने का प्रचार करते हैं। अपने से कल्पित आम्नाय में वेद की आवश्यकता होने से एवं वेद चार ही होने से अब अपने कुबुद्धि चातुर्यता से स्वेच्छावाद आधार पर पांच वेद कर रहे हैं। अब पाठकगण जान गये होंगे कि कुम्भकोणमठ का प्रचार सब भ्रामक व मिथ्या है।

महावाक्य—महावाक्य वह है जो दो छोटे वाक्यों को जोडकर एक वाक्य बनाकर और जो विशिष्ट विषय को बतलाये। ऐसे वाक्य कर्मकाण्ड में भी दीखता है। उदाहरण 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत', 'समिधो यजति' इन दोनों वाक्य पृथक् पृथक् याग विशेषों को बोध करता है और एक वाक्य याग का प्रधान वाक्य है और दूसरा यागादि का अङ्ग बोध करनेवाला वाक्य है। इन दोनों वाक्यों की जोड से ही एक विशेष विषय का संपूर्ण बोध करता है। ऐसे दो वाक्यों का जोड ही महावाक्य कहलाता है। इसी प्रकार उपनिषद में भी छोटे छोटे वाक्य हैं जो अवान्तर वाक्य एवं महावाक्य के नाम से विभाजित हैं। जीव व ईश्वर के स्वरूप को पृथक् पृथक् बतलानेवाले वाक्य को अवान्तर वाक्य कहते हैं। बृहदारण्य के छठवें अध्याय में जीव के जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ती अवस्थाओं को बोध करनेवाले वाक्य को जीव सम्बन्धी अवान्तर वाक्य कहलाते हैं। सृष्टी, प्रलय, आदि को बोध करनेवाले वाक्य ईश्वर सम्बन्धी अवान्तर वाक्य कहलाते हैं। इनमें वाक्य जैसे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ईश्वर के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को बोध कराता है। वाक्य जैसे 'नद्दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येः' जीव के शुद्धस्वरूप का बोध करता है। इन अवान्तर वाक्यों द्वारा जीवेश्वर के सामान्य स्वरूपों के बाद जीवेश्वर के शुद्ध स्वरूपों का पूर्ण जानकारी होने पर ही, पश्चात् 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से वे दोनों एक ही हैं, इसे पूर्ण रूप से समझ सकते हैं। जीवेश्वर का ऐक्य, शुद्ध चैतन्य स्वरूप ही है। प्रश्न उठता है कि जब अवान्तर वाक्यों से इसका बोध होता है तो क्यों महावाक्यों की आवश्यकता है? आवश्यकता इसीलिये है कि यदि महावाक्य न हों तो जीव अलग ईश्वर अलग इस प्रकार के विपरीत ज्ञान का नाश न होगा। इसीलिये जीवेश्वर भेद ज्ञान को निवारण करनेवाले वाक्य ही महावाक्य कहलाता है या जीव ब्रह्म ऐक्य बोध करनेवाले वाक्य ही महावाक्य कहलांता है। महावाक्य में जीव पद, ब्रह्म पद एवं ऐक्य बोध करनेवाला पद होना आवश्यक है।

महावाक्य अनेक हैं। इसके दो वर्ग हैं—(1) मनन महावाक्य (2) उपदेष्टव्य दीक्षा महावाक्य। मनन महावाक्य अनेक हैं जो महावाक्यरत्नावली में पाया जाता है पर उपदेष्टव्य महावाक्य चार वेदों के चार ही महावाक्य हैं। मनन महावाक्य उपदेष्टव्य नहीं हैं। वे तो मनन, चिन्तन व ध्यान के लिये हैं। परिव्राजकों को

सदा ब्रह्म चिन्तन करने के लिये कहा है इसीलिये मनन महावाक्य अनेक हैं। 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' के अनुसार प्राप्त किये हुए वेद का परित्याग नहीं कर सकते। परम्परा से प्राप्त किये हुए वेद का महावाक्य लेकर उस परम्पराप्राप्त वेद के बदले महावाक्य चिन्तन करना आवश्यक है। वेद चार हैं और उपदेष्टव्य महावाक्य उन चार वेदों का चार महावाक्य हैं। सन्यासियों को अपने गुरु मुख द्वारा महावाक्य की दीक्षा लेना परमावश्यक है और उस दीक्षा महावाक्य को उपदेष्टव्य महावाक्य कहते हैं।

शुकरहस्योपनिषद में चार महावाक्य का उल्लेख है 'अथ महावाक्यानि चत्वारि। यथा ॐप्रज्ञानं ब्रह्म, ॐ अहं ब्रह्मास्मि, ॐ तत्त्वमसि, ॐ अयमात्मा ब्रह्म।' श्रीविद्यारण्य रचित पञ्चदशी के पाचवें अध्याय महावाक्य-विवेक में इन चार महावाक्यों का ही अर्थ दिया गया है। इस अध्याय को कभी शुकरहस्योपनिषद के साथ प्रकाश करने से पाठकगण भूल से कभी इसे शुकरहस्योपनिषद का भाग ही समझ लेते हैं। शिवतत्त्व सुधानिधि का नवमाध्याय जो स्कन्दपुराण में सनत्कुमार संहिता के मलयाचल खंड का भाग है उसमें महावाक्य का पूर्ण विवरण है—'प्रज्ञानं ब्रह्म चेत्यादी महावाक्य चतुष्टयम्। महावाक्य चतुर्वाक्यं ऋग्यजुस्सामसम्भवं॥' कुम्भकोणम् के समीप वास करनेवाले एक प्रकान्ड विद्वान तथा 'ब्रह्मविद्या' के संपादक श्री श्रीनिवास शास्त्रीजी थे। आपको कुम्भकोण मठ का वृत्तान्त पूर्ण रूपेग मालूम होते हुए भी आपसे रचित 'चिन्तामणि टीका' ग्रंथ (ब्रह्मविद्या की टीका) जो 1896 ई० में मुद्रित हुई है उसमें आपने चार ही महावाक्य का उल्लेख किया है। आप लिखते हैं—'महावाक्य चतुष्टयं—संख्याग्रहणं रूढ्या महावाक्यत्वं नान्येषामिति द्योतयितुम्। प्रज्ञानं ब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, इति, अत्रहि वाक्यानि वेदक्रमेण निरूपितानि।' इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि उपदेष्टव्य महावाक्य चार ही हैं। चार वेदों का ध्येय परब्रह्म निरूपग ही है। वेदान्त वाक्य सब चिद्रूप ब्रह्म को ही निरूपण करता है। वेद, स्मृति, न्याय, (युक्ति) के परस्पर विरोध निरूपग सत्र विरोध नहीं हैं, सवों का ध्येय एक ही है। वेद शब्द है। शब्द प्रत्यक्ष अनुसरण से प्रमाण होता है और इसीलिये प्रत्यक्ष प्रमाण से ही शब्द रूपी वेद के विरोधों को निवारण किया जाता है। प्रत्यक्ष दो प्रकार के हैं—अनात्म प्रयत्क्ष व आत्म प्रत्यक्ष। अनात्म प्रत्यक्ष वस्तु किसी काल में ही दीखता है और फिर छिप जाता है। अनादि नित्य वेद को अनात्म प्रत्यक्ष का उपजीव्य माना जाता है। आत्मा सदा प्रत्यक्ष होते हुए भी ब्रह्म को छोड देहों से सम्बन्ध होने के कारण, यह प्रत्यक्ष भी वेद का उपजीव्य न होगा। असंसारि आत्मप्रत्यक्ष ही वेद का उपजीव्य हो सकता है। आत्मा को ब्रह्म जानकर संसार को त्याग कर असंसारी होता है। ब्रह्मस्वरूप स्थिति मोक्ष है और पुरुषार्थ का मुख्य सङ्गी एवं साधन है! अनेक साधनों में मुख्य साधन जीवब्रह्म ऐक्य ज्ञान ही है। अविद्या का दूर होते ही मोक्ष होता है। प्राण होते हुए भी मोक्ष का अनुभव (जीवन्मुक्ति), देह तिरस्कार के बाद मोक्ष का अनुभव (विदेह मुक्ति), इन दोनों को लेकर मोक्ष का स्वरूप फलाध्याय में दिया गया है।

'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऋग्वेद)—जिस चैतन्य से पुरुष रूप को देखता है, गंध सूंघता है, बोलता है, आदि ऐसे शुद्ध जीव चैतन्य प्रज्ञानं कहलाता है। ब्रह्म से प्रारम्भ होकर स्थावर तक सब प्राणियों में एक ही चैतन्य है जो ब्रह्म कहलाता है। यह प्रज्ञानं कहलानेवाला जीव रूप एवं ब्रह्म एक ही है। प्रज्ञान सर्वव्याप्त ब्रह्मस्वरूप होने के कारण अपने पास के प्रज्ञान भी ब्रह्म ही है। इस महावाक्य का यही तात्पर्य है। (ऋक् ऐतरेय 9—3)

"अहं ब्रह्मास्मि" (यजु)—यह महावाक्य संसार को दूर कर आत्मा ही ब्रह्म है निरूपण करता है। साधन चतुष्टय संपन्न ब्रह्म विद्याधिकारि मनुष्य देह में बुद्धिसाक्षीयुक्त व्याप्त जीवन है। स्वभाव से परिपूर्ण चैतन्य ब्रह्म है। मैं ब्रह्म हूं इसका तात्पर्य है। (यजु बृहदारण्यक 1-4-10)।

"तत्त्वमसि" (सामवेद)—ब्रह्मस्वरूप स्थिति मोक्ष है। अनेक साधनों में मुख्य साधन जीव ब्रह्म ऐक्य ही है और इसका ज्ञान ही साधन है। जीवन का बुद्धिसाक्षी स्वरूप को बोध करता है "त्वं" पद। जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले ईश्वर के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को बोध करता है "तत्"। तुम ब्रह्म हो इसका तात्पर्य है। (सामवेद छांदोग्य 8–7)।

"अयमात्मा ब्रह्म" (अथर्वण)—अविद्या का दूर होते ही मोक्ष होता है। यह "अयमात्मा ब्रह्म" से ज्ञात होता है। जीवात्मा ही ब्रह्म है। "अयम्"—स्वप्रकाश होने के कारण अपरोक्ष का बोध करता है। "आत्मा"—अहंकार से लेकर देह तक सबों का अधिष्ठान् एवं साक्षी जो चैतन्य है उसका बोध करता है। "ब्रह्म" प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से इस प्रपंच की जानकारी अधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूप का बोध करता है। यह आत्मा ही ब्रह्म है इसका तात्पर्य है। (अथर्वण मांडुक्य—2)।

श्री गोविन्दभगवत्पाद ने श्री आचार्य शङ्कर को शिष्य की शाखा का महावाक्य को प्रणव के साथ प्रथम उपदेश कर पश्चात् तीनों महावाक्यों का अर्थ बोध कराया। यही विधि सब धर्मशास्त्र ग्रन्थों में उल्लेख है। अतः इन चार महावाक्यों का ही उपदेश दिया। इसके द्वारा शारीरिक मीमांसा शास्त्र के सार को भी उपदेश दिया। यह विधि सब यतियों की दीक्षा देते समय लागू होता है। महावाक्य सर्वशास्त्रों का निचोड ध्येय है।

इस उपदेष्टव्य महावाक्य के विषय में कुम्मकोण मठ एवं आपके अनुयायी भक्त प्रचारकों से प्रकाशित पुस्तकों में भिन्न भिन्न कथा सुनाया गया है जिसका विवरण संग्रहरूप में नीचे दिया जाता है। इन सब प्रलापों का उत्तर पाठकगण नीचे पायेंगे। यथार्थ व सत्य कथन के लिये बार बार व समय समय पर भिन्न कथनों की आवश्यकता नहीं है और एक मिथ्या को सिद्ध करने के लिये अब कुम्भकोण मठ बहुमिथ्या का प्रचार करने लगा। धर्मशास्त्रभिज्ञ व विद्वानों के लिये ये भिन्न उन्मत्त प्रलाप काफी हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि ये सब प्रचार मिथ्या हैं पर पामर जन क्या जानें शास्त्र की बातें और उनलोगों के लिये यह लिखा जा रहा है।

(1) कुम्भकोणम् से मुद्रित 1894 ई० के कांची कुम्भकोण मठ का स्वकल्पित मठाम्नाय में उल्लेख है 'शक्तिः श्री कामकोट्येव प्रणवश्चोपदेश्यवाक्' अर्थात् 'ॐ' कांची मठ का उपदेष्टव्य महावाक्य है।

(2) कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों एवं श्री आत्मबोध द्वारा रचित 'सुषमा' में 'ॐतत्सत्' को महावाक्य कहा है।

(3) वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष श्री काशी में कहा कि 'ॐतत्सत्' आपके मठ का महावाक्य नहीं है और जो पुस्तक में 'ॐतत्सत्' महावाक्य उल्लेख है वह सब पुस्तक आपके मठ अनुमति विना प्रकाश हुई है। पाठकगण इस विषय का विवरण 'पन्डित पत्र', काशी, ताः 15—10—1934 के अङ्क में एवं 'लीडर' इलहाबाद, ताः 21—10—1934 के अङ्क में पायेंगे।

(4) कांची कुम्भकोण मठाधीषों को चारों महावाक्यों का उपदेश दिया जाता है और कांची मठ का सरस्वती संप्रदाय ही में ऐसा चार महावाक्यों का उपदेश होता है। कुम्भकोण मठ को ही चारों महावाक्यों का अधिकार है और अन्य चार शिष्य मठों को यह अधिकार नहीं है। शिष्य मठों के लिये एक एक महावाक्य ही लागू है।

(5) कांची मठ गुरु मठ होने से कोई एक महावाक्य निर्धारित नहीं है और सब महावाक्य आपके मठ के लिये लागू है। एक पुस्तक में यह भी लिखा है कि कुम्भकोण मठाधीषों को महावाक्य उपदेश नहीं किया जाता है चूंकि आपका मठ गुरु मठ है। उपदेश केवल शिष्य मठों एवं साधारण यतियों को होता है।

(6) चार वेद के चार महावाक्यों को अब कुम्भकोण मठ ने पांच वेद और पांच महावाक्य बना डाला है, यथा—कांची मठ—ऋग्वेद, ॐतत्सत्; पूरी गोवर्धन मठ—शुक्ल यजुर्वेद, प्रज्ञानंब्रह्म; शृंगेरीमठ–कृष्णयजुर्वेद, अहंब्रह्मास्मि ; द्वारका मठ-सामवेद, तत्त्वमसि ; ज्योर्तिमठ—अथर्वण वेद, अयमात्मा ब्रह्म ॥

(7) 'ॐतत्सत्' पुराण इतिहास में उल्लेख होने से ही यह महावाक्य वेद में कहे हुए चार महावाक्यों से भी उत्तम व सर्वोच्च है।

(8) चार महावाक्यों का उपलक्षण ही 'ॐतत्सत्' में है और इसीलिये सरस्वती संप्रदाय में चार महावाक्यों का उपदेश होता है।

(9) 'ॐतत्सत्' में 'सत्' जीव को बोध करता है और इसमें ब्रह्म पद भी होने से 'ॐतत्सत्' महावाक्य है।

(10) तीन महावाक्यों का नाम लेकर 'आदि' पद जो निर्णयसिन्धु में दिया है, वह 'आदि' पद से अनेक अन्य वाक्य भी होने का निर्धारन होता है और इसीलिये ॐतत्सत् भी महावाक्य है।

(11) महावाक्यरत्नावली के स्वानुभूति भाग के महावाक्यों की सूची में 'ॐतत्सत्' उल्लेख है।

जीवब्रह्म का ऐक्य बोध करानेवाला वेद उपनिषद वाक्य को महावाक्य कहते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या 'ॐ तत्सत्' में यह लक्षण हैं? क्या 'ॐ तत्सत्' में जीव व ऐक्य बोध करनेवाले पद हैं? क्या 'ॐ तत्सत्' में वाक्य लक्षण हैं? भगवत्गीता में स्पष्ठ उल्लेख है 'ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।' और आचार्य शङ्कर ने अपने रचित भगवत्गीता भाष्य में इन तीनों 'ॐ, तत्, सत्' को ब्रह्म निरूपण पद ही माना है-जैसा कि मूल में कहा है। ब्रह्म का ये तीन परियायवाचक पद 'ॐ, तत्, सत्' से क्या वाक्य बन सकता है? इसमें वाक्य का लक्षण ही नहीं है जैसे कर्ता, कर्म, क्रिया के संग्रह से ही वाक्य बन सकता है न कि परियायवाचक पदों के संग्रह से। जब इसमें वाक्य का लक्षण ही नहीं है तो महावाक्य कैसे बन सकता है। इसमें जीव पद या ऐक्य बोधक पद भी नहीं है चूंकि ये तीनों ब्रह्म का निरूपण करता है। श्रीविद्यारण्य रचित पञ्चदशी के अन्तर्गत महावाक्य विवेक में केवल चार का ही उल्लेख है। शुकरहस्योपनिषद में भी चार महावाक्यों का ही उल्लेख है। 'ॐ तत्सत्' महाभारत से लिया गया है और यह उपनिषद में नहीं पाया जाता है जैसे अन्य महावाक्य पाये जाते हैं। यदि 'ॐ तत्सत्' उपदेष्टव्य महावाक्य होता तो क्यों नहीं इसे शुकरहस्योपनिषद, धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु, आदि ग्रंथों में उल्लेख किया गया? शुकरहस्योपनिषद में परमशिव श्रीशुकमुनि को कहते हैं कि आदि गुरु शिव से आजतक उपदेश क्रम से एवं श्रौत के अनुसार चार ही महावाक्य हैं। साधारण मनन महावाक्य अनेक होते हुए भी श्रौत प्रमाण से ये ही चार उपदेष्टव्य हैं। जब भगवान कृष्ण ने ही ॐ तत् सत् को तीन ब्रह्म निरूपण पद माना है तो अब कुम्भकोण मठाभिमानी चले भगवात् श्री कृष्ण के वाक्य को असत्य बनाने (काशी में प्रकाशित 1935/40 में 'शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' पुस्तक को देखिये)। सब से आश्चर्य तो यह है कि वर्तमान कुम्भकोण मठाधीष काशी में कहा कि 'ॐ तत्सत्'

महावाक्य नहीं है (पन्डितपत्र 15—10—34 एवं लीडर 21—10—34) पर आपके भक्त अनुयायी व शिष्यों ने अपने रचित 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' में निर्णय करने चले कि ॐ तत्सत् महावाक्य है। श्री आत्मबोध अपने सुषमा व्याख्या में 'ॐ तत्सत्' को महावाक्य कहा है पर अब वर्तमान मठाधीष इसे महावाक्य न होने का सिद्ध करने चले तो क्या आश्चर्य है कि वर्तमान मठाधीष के संपादक शिष्य भी आपके निर्णय के विपरीत सिद्ध करने चले। एक व्यक्ति अपने बुद्धि चातुर्यता से दूसरे व्यक्ति को चाहे मूर्ख बना दे पर दुःख तो इस बात का है कि भगवान श्रीकृष्ण के कथन को भी असत्य बनाने की चेष्टा की जा रही है और ये विद्वान व परिव्राजक अपने को हिन्दू एवं धर्म प्रचारक व वर्णाश्रमाचारादि विधिविदायक कहते हैं।

काशी में 1935 ई० में पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्मा जी से प्रकाशित पुस्तक "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" में जो उल्लेख है कि महावाक्य चार हैं, इस कथन पर कुम्भकोण मठाभिमानियों ने टिप्पणी की थी। "चार महावाक्य हैं" इस कथन का तात्पर्य यह है कि उपदेष्टव्य महावाक्य चार ही हैं। हमलोगों के कहने का तात्पर्य यह नहीं था कि इन चार महावाक्यों को छोड अन्य महावाक्य नहीं हैं। मनन महावाक्य अनेक हैं पर उपदेष्टव्य महावाक्य जो मठाम्नाय में उल्लेख हैं, वे केवल चार ही हैं। इस विषय का विस्तार उक्त पुस्तक में उस समय नहीं किया गया था चूंकि हमलोगों ने यह सोचा था कि कुम्भकोण मठाधीष एवं आपके शिष्य कृपा भाजन वर्ग जो अपने को सर्वज्ञ, विद्वान, अनुसन्धान पन्डित व महामहोपाध्याय होने का प्रचार करते हैं वे सब इस साधारण विषय जो धर्मशास्त्र एवं शुकरहस्यो-पनिषद में उल्लेख हैं सो सब आपलोगों को भी मालूम होगा। पर अब आपकी टिप्पणी से आप लोगों का पान्डित्य मालूम हुआ। वितन्डावाद व कुतर्क करना विद्वानों को शोभता नहीं है।

'ॐतत्सत्' के 'सत्' पद का अर्थ जीव नहीं है। कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों ने अपने स्वेच्छावाद व तर्क चातुर्यता से यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि 'सत्' शब्द जीव का बोध करता है और इसमें ब्रह्म बोधक पद भी होने से 'ॐतत्सत्' महावाक्य है। भगवान कृष्ण ने भगवतगीता में कहा है कि यह 'सत्' शब्द ब्रह्म निरूपण पद है और आचार्य शङ्कर ने भी 'सत्' को ब्रह्म निरूपण पद ही माना है। नैयायिक लोग अस्तित्व सात पदार्थों का कहा है। सत् को द्रव्य, गुण, कर्म में होने का कहते हैं। सांख्य मत में सत् जो प्रकाशमान है वह सत है। यह प्रकाश धटादि वस्तुओं में भी हैं। इसलिसे सत् पद का अर्थ जीव का बोध कहीं नही होता। तैत्तिरीय श्रुति में 'सन्तमेनं ततो विदुरिति' के सत् पद जीव बोध करता है जो कुम्भकोण मठाभिमानि विद्वानों ने कहा है उससे भी अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं होती। 'सच्चत्यच्चाभवदिति' के श्रुति में सत् पद का प्रकाश (मूर्तपदार्थ) बोध करने से और 'सदेवसोम्येदमग्र आसीद्' श्रुति के सत् पद द्वारा ब्रह्म का ही निरूपण होता है। 'सत्यं ज्ञानं अनतं ब्रह्म' श्रुति के सत्य पद (जो सत् का परियाय है) ब्रह्म का निरूपण करता है। इसलिये कुम्भकोण मठ के विद्वानों का कथन कि 'ॐतत्सत्' का 'सत्' पद का अर्थ जीव बोध करता है सो कथन प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा सिद्ध नहीं होता। सत् पद का अर्थ 'अस्ति' है जो सबों से माना गया है। इस प्रकार का अस्तित्व घटादि में भी है। घटादि में ब्रह्मज्ञान आने तक वह व्यवहारिक अस्तित्व है अर्थात जीव का बोध है। पर सर्वव्यापक घटमटादि में पारमात्मिक सत्य ही है। यदि अस्तित्व को पारमार्थिक कहा जाय तो ब्रह्म को छोड कर और दूसरे अन्य को पारमार्थिक सत् न होने से ब्रह्म को ही केवल वह पारमार्थिक सत् है। ॐतत्सत् के सत् का अर्थ यदि जीव हो तो ऐसा भी कहना उचित होगा 'ॐतत् जीवः' पर ऐसा कहीं भी नहीं है। क्या ॐ व तत् पद दोनों जीव का बोध करता है अथवा जीव ब्रह्म का प्रतिपादन करता है? प्रथम वाद में 'अप सिद्धान्त' (गलत् सिद्धान्त) होता है और

द्वितीय में तात्पर्यग्राहक लिङ्ग का अभाव है। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों में 'असि' पद से ब्रह्म का ही बोध करता है। ॐतत्सत् में इस प्रकार का तात्पर्य लिङ्ग दीखते नही हैं। 'सर्वस्यात्मत्वाच ब्रह्मास्तित्वसिद्धिः। सर्वोहि आत्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति।' इस सूत्र भाष्य वाक्य से कोई भी वेदान्तशास्त्र विज्ञ 'सत्' को जीव बोध पद नहीं कहेगा क्यों कि सब में ब्रह्म है पर कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन सर्वज्ञ विद्वानों ने भगीरथ प्रयत्न कर 'सत्' शब्द का अर्थ जीव बोधक होने का कहा है। ब्रह्म का सत् भाव होने का आचार्य शङ्कर ने दिखाया है। यहां का संदर्भ भी वैसा ही है। 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासात्' सूत्र से साधन चतुष्टय संपत्ति के बाद पुनः साधन चतुष्टय संपत्ति होने का सारा प्रपंच के कारणाभूत अविद्या द्वारा उत्पन्न होता है और इसे नष्ट करने का यह ब्रह्म ज्ञान ही एक मात्र साधन है और इसे प्राप्त करने का मार्ग ब्रह्म विचार ही है, ऐसा आचार्य शङ्कर ने प्रकटन किया है।

'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' के संपादक विद्वानों को धर्मशास्त्र पुस्तक सब अप्रमाण हैं क्योंकि उनका प्रमाण स्वेच्छावाद है। 'स्वाध्यायोध्येतव्य' के अनुसार परम्परा प्राप्त वेद का त्याग किया नहीं जा सकता है। सन्यासाश्रम लेते समय अपनी अपनी शाखा सम्बन्धी महावाक्य का प्रणव के साथ प्रथम उपदेश लेकर बाद तीन महावाक्य का भी उपदेश लेकर पश्चात् अर्थ बोध किया जाता है। यह क्रम सब यतियों को लागू है। यह विधि धर्मशास्त्रानुसार एवं रूढी में है। प्रणव के साथ महावाक्य का उपदेश देना चाहिये ऐसा धर्मशास्त्र में कहने मात्र से मालूम होता है कि महावाक्य का उपदेश परमावश्यक है और इस उपदेश का क्रम धर्मशास्त्र पुस्तकों में उल्लेख है। कठोपनिषद के अनुसार प्रणव का उपदेश आवश्यक है पर यह क्रम तो सर्व परिव्राजकों को लागू है और यह शास्त्र सम्मत भी है। प्रश्न यह है कि प्रणव के साथ महावाक्यों का उपदेश किस रीति से किया जाय? सब धर्मशास्त्र पुस्तकों में व शुकरहस्योपनिषद आदि ग्रंथों से प्रतीत होता है कि सन्यासियों को महावाक्य का उपदेश आवश्यक है। इस प्रश्न का उत्तर न देकर एवं सन्यासियों को उपदेष्टव्य महावाक्यों का उपदेश क्रम न बतलाकर कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों द्वारा केवल प्रणव का उपदेश उल्लेख करना न्याय नहीं है। श्रीआत्मबोध बृहच्छङ्करविजय (चित्सुखाचार्य कृत) से प्रमाण उद्धृत कर कहते हैं कि कामकोटि का उपदेश केवल प्रणव है—'शक्तिः श्रीकामकोट्येव प्रणवश्चोपदेश्यवाक्' तो प्रश्न उठता है कि क्या कांची कुम्भकोण मठाधीषों को महावाक्य का उपदेश नहीं होता? कुम्भकोण मठ के कथनानुसार प्रतीत होता है कि महावाक्यों का उपदेश आपके यहां नहीं होता है। अतः ऐसे कथन से आपके मठाधीषों का सन्यासाश्रम भी सिद्ध न होगा। धर्मशास्त्र पुस्तकों में स्पष्ट उल्लेख है कि महावाक्यों का उपदेश प्रणव के साथ परमावश्यक है। एक मार्के की बात है कि 'ॐ तत्सत्' छोड कर अब केवल 'ॐ' हो गया है। भिन्न कथनों का क्या तात्पर्य है?

कुम्भकोण मठ का और एक कथन है कि श्रीगोविन्दभगवत्पाद ने आचार्य शङ्कर को चारों महावाक्य का उपदेश दिया था इसीलिये चारों महावाक्य कुम्भकोण मठ का ही है और यहां चार महावाक्यों का उपदेश होता है तथा अन्य चार शिष्य मठों को एक एक ही उपदेश होता है। इस वाद (यह 'अवयुत्यानुवाद' है) से मालूम होता है कि 'ॐ तत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य नहीं है। चूंकि एक ही साथ, एक ही समय और एक ही मुख से चार महावाक्यों का एक साथ उपदेश करना असम्भव है इसलिये प्रश्न उठता है कि इन चार महावाक्यों में कौनसा प्रथम उपदेश किया जाय? पश्चात् बाकि तीन किस प्रकार उपदेश किया जाय? सब यतियों को प्रणवके साथ अपने अपने वेद के महावाक्य को प्रथम उपदेश कर बाद प्रणव के साथ तीन महावाक्यों का उपदेश दिया जाता है और इनके अर्थ बोध किया जाता है। श्रीगोविन्दभगवत्पाद ने आचार्य शङ्कर को 'ॐ तत्सत्' की दीक्षा या

उपदेश नहीं किये। स्व वेद के महावाक्य का प्रथम उपदेश लेने के पश्चात् बाकी तीनों महावाक्यों का उपदेश लेना, यह क्रम सब परिव्राजकों को आश्रम लेते समय उपयोग किया जाता है। अतः यह कहना मिथ्या है कि कुम्भकोण मठ को ही चार महावाक्य हैं और आपको ही चारों का उपदेश होता है तथा अन्य शिष्य मठों को एक एक होता है। ऐसे भ्रामक मिथ्या प्रचार से केवल धर्मशास्त्र अनभिज्ञ पामर जन आपके माया जाल में पड सकते हैं। मठाधीष भी सन्यासाश्रम लेने के पश्चात् ही व्यवहार रीति से मठाधीष बनते हैं इसलिये उपर्युक्त धर्मशास्त्र क्रम सब यतियों को लागू है।

सरस्वती संप्रदाय में चार महावाक्यों का उपदेश होता है ऐसा कहने से प्रश्न उठता है कि क्या अन्य योगपट्ट वाले सन्यासी इन चार महावाक्यों का दीक्षा अपने अपने पूर्वाश्रम शाखा सम्बन्धी महावाक्य से प्रारम्भ कर दीक्षा नहीं लेते या इन चार का मनन नहीं कर सकते? जब दसनाम सब बराबर हैं तो श्रेष्ठत्व भाव कहां से आया? सरस्वती अङ्कित नाम धारण करने वाले सब यतियों को चार महावाक्य उपदेश होता है तो कैसा कहा जाय कि कुम्भकोण मठ को ही लागू है एवं इस मठ का यही विशेषता है? यह कहना भूल है कि महावाक्यों का उपदेश अङ्कित नाम पर आधारित है। सम्भवतः कुम्भकोण मठ का "इन्द्रसरस्वती" का 'इन्द्र' पद क्षत्रिय गुण का द्योतक होने से और चतुर्दिक सम्राट बनने की अभिलाषा से कुम्भकोण मठ को यह श्रेष्ठत्व का भाव आया हो।

यह कहना भी मूर्खता है कि गुरु के लिये कोई एक महावाक्य निर्धारित नहीं है। आचार्य शङ्कर भी तो एक समय गुरु गोविन्दभगवत्पाद के चेले थे और आप अपने गुरु के पास पहुंच यतिधर्मानुसार सन्यासाश्रम लेकर महावाक्यों का उपदेश भी लिया था। शङ्करविजयादि ग्रन्थों में जो कहा है कि आचार्य ने श्री गोविन्दभगवत्पाद से चारों महावाक्यों का उपदेश लिया सो ठीक ही है और इस उपदेश का क्रम धर्मशास्त्र ग्रन्थों में उल्लेख है तथा यह धर्म शास्त्र आधारित विधि सबों को शिरोधार्य है। आचार्य शङ्कर ईश्वरांश होते हुए भी संप्रदायानुसार ही आपने अपने गुरु से महावाक्य का उपदेश लिया था पर कुम्भकोण मठ कहते हैं कि गुरु के लिये उपदेश आवश्यक नहीं है। तो क्या कुम्भकोण मठाधीष सब आचार्य शङ्कर से श्रेष्ठ हैं कि आपको महावाक्यों का उपदेश आवश्यक नहीं है और आप सब यति धर्मशास्त्र के विरुद्ध आचरण कर सकते हैं?

शिष्य की शाखा गुरु को होना आवश्यक नहीं है। गुरु किसी शाखा का भी हो सकता है। चूंकि गुरु को चार महावाक्यों का उपदेश देने की योग्यता है इसीलिये गुरु की शाखा ही में शिष्य होना भी आवश्यक नहीं है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि चार महावाक्यों का अधिकार आपको ही है। किसने यह अधिकार दिया? धर्म शास्त्र ग्रन्थों व मठाम्नाय में ऐसा दीखता नहीं है। चार ही महावाक्य होने के कारण पांचवा हो नहीं सकता। इन चारों में एक ही का स्वशाखानुसार क्रम से अनुसरण कर सकते हैं। यदि इन चार में प्रथमोपदेश महावाक्य का अनुसरण करें तो कुम्भकोण मठ इन चार मठों के किसी एक मठ की शाखा बन जायगी। सम्भवतः इस कारण से कुम्भकोण मठ ने एक नवीन कल्पित अशास्त्रीय पांचवा उपदेष्टव्य महावाक्य की रचना किया हो। यदि यह कहा जाय कि कुम्भकोण मठ का अङ्कित नाम 'इन्द्रसरस्वती' का विशेष श्रेष्ठतर रीति यही है तब क्या उपदेष्टव्य चार महावाक्यों "तत्त्वमस्यादि" के साथ आपका नवीन कल्पित महावाक्य भी उपदेश होता है? ऐसा तो रूढि में दीखता नहीं है। अन्य परिव्राजक 'इन्द्रसरस्वती' अङ्कित नाम धारण करनेवाले 'ॐतत्सत्' की दीक्षा कभी लेते ही नहीं हैं और आप लोगों को भी केवल चार ही उपदेष्टव्य महावाक्य हैं।

हमारे धर्मशास्त्र ग्रन्थों में निर्णय सिंधु अति प्राचीन है। इसी ग्रन्थ के आधार पर धर्मसिन्धु लिखा गया है। निर्णयसिन्धु का एक संग्रह टीका धर्म सिन्धु है। धर्मसिन्धु के सम्पादक श्री कृष्णाजी रामचन्द्र शास्त्री उपोद्घात में लिखते हैं—'आधुनिक जनानामधीत धर्म शास्त्रीय मीमांसादि ग्रन्थानां धर्म जिज्ञासूनां सुखेन बोधाय परमकृपालुतया साद्रहृदयाः पन्डिताः काशीनाथोपाध्यायाः माधव निर्णय सिन्ध्वादि ग्रन्थ सिद्धार्थान् विविभ्य निर्णयसिन्धु क्रमेणैव धर्मसिन्धु साराख्यं ग्रन्थं व्यतनिषुः।' निर्णय सिन्धु में यदि विस्तार पूर्वक न लिखा हो तो धर्मसिन्धु के वाक्य को लेकर आचरण कर सकते हैं। निर्णयसिन्धु में स्पष्ट न लिखने के कारण धर्मसिन्धु के वाक्य को ही निर्णयसिन्धु का वाक्य मानना होगा। 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' के बताये हुए पृष्ठों 444 व 536 में महावाक्य के विषय में कुछ नहीं है। पामर जनों को भ्रम में रखना तो कुम्भकोणमठ प्रचारकों का स्वभाव है। धर्मसिन्धु पृष्ठ 368—तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धः में लिखा है—'दक्षिण कर्णे प्रणवमुपदिश्य तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मीति ऋग्वेदादि महावाक्येष्वन्यतमं शिष्य शाखानुसारेणोपदिश्य तदर्थं बोधयेत् ... ...'। धर्मसिन्धु के अनुसार ही विश्वेश्वरस्मृति भी आदेश देता है। मालूम नहीं होता कि किस उद्देश्य से 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' के सम्पादकगण लिख गये कि विश्वेश्वरस्मृति भी चार महावाक्यों को उपदेश एक साथ देने का प्रतिपादन करता है। नीचे उद्धृत पंक्तियों से पाठकगण जान जायेंगे कि कुम्भकोण मठ का प्रचार कहां तक सत्य है। मनगढन्त व्यवस्थाभास देने वाले विद्वानों के काले कर्तूत का यह भी एक नमूना है। विश्वेश्वरस्मृति—'ततः अयमात्माब्रह्म (बृह—2, 5, 19), तत्त्वमसि (छान्दो॰ 6, 8, 7), प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐता 5, 3), इत्यादिनी शिष्य शाखा वाक्योपदेश पूर्वकं उपदिशेत्। तेषाम् अर्थं च बोधयेत्।' यतिधर्मनिर्णय, उत्तरभाग, में स्पष्ट उल्लेख है—'तत उदङ्मुखाय नित्य शुद्ध मुक्त सत्य परमानन्दान्ताद्वय ब्रह्म प्रतिपादक प्रणवं दक्षिणे कर्णे त्रिवारं प्रांमुखः सन्नुपदिशेत्। प्रणवस्यचार्थमाचार्य्यवचनेन बोधयेदाचार्य्य वचनञ्च पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतानीत्यादि। ततश्च अयमात्मा ब्रह्म। तत्त्वमसि। प्रज्ञानं ब्रह्म। अहं ब्रह्मास्मि। इत्यादीनि शिष्यशाखा वाक्योपदेश पूर्व्वकमुपदिशेत्। तेषामर्थञ्च बोधयेत्। ततो नाम दद्यात्।' इन सब धर्मशास्त्र ग्रथों से स्पष्ट मालूम होता है कि चार महावाक्यों का उपदेश स्वशाखा से प्रारम्भ होता है और यह क्रम सब परिव्राजकों को लागू होता है। प. प. श्री आत्मानन्देन्द्र सरस्वती स्वामी जी का भी यही धर्मशास्त्र मत है।

निर्णयसिन्धु में तीन महावाक्य देकर 'आदि' पद का उपयोग करने से कुम्भकोण मठ के कृपा भाजन विद्वान कहते हैं कि इस 'आदि' पद से अनेक महावाक्य भी होने का सिद्ध होता है और इसलिये 'ऊतत्सत्' भी महावाक्यों में एक ले सकते हैं। उपदेष्टव्य महावाक्य चार ही हैं। यदि 'ॐतत्सत्' प्रथमतः वाक्यों का जोड होता एवं महावाक्य का लक्षण होता तो 'ॐतत्सत्' को महावाक्य होने का विचार कर सकते हैं। 'ॐतत्सत्' में न वाक्य लक्षण हैं और न महावाक्य लक्षण घटित हैं। जानवरों की सूची देते समय यदि कहा जाय 'आदि' तो इसका अर्थ न होगा कि कोई जंगम या पदार्थ की सूची भी दें। महावाक्य लक्षणयुक्त वाक्य ही 'आदि' के बदले में लिया जासकता है। निर्णयसिन्धु में 'आदि' पद के पूर्व लिखा है कि 'ऐसे वाक्यों का अर्थ बोध करना', इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'आदि' पद की जगह केवल महावाक्य लक्षण युक्त वाक्यों का ही उपयोग कर सकते हैं। तत्त्वमस्यादि वाक्यों के तात्पर्यों का समान में वाक्य होना आवश्यक है। धर्मशास्त्र, यतिधर्मग्रन्थ, उपनिषद, मठाम्नाय आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में केवल चार उपदेष्टव्य महावाक्यों का उल्लेख करता है और ये चार महावाक्य चार वेदों के हैं। इनमें से कुछ महावाक्य देकर बाकी को 'आदि' पद से संकेत करने से बाकी चार महावाक्यों में जो उल्लेख नहीं हुआ है उसी का 'आदि' पद द्योतक है।

कुम्भकोण मठ यजुर्वेद को भागकर (कृष्ण व शुक्ल) चार वेद की जगह पांच वेद होने का प्रचार कर अब पांचवे वेद का महावाक्य की खोज मे हैं। कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोधेन्द्र ने शृङ्गेरी को कृष्णयजु का 'अहंब्रह्मास्मि' और पूरी जगन्नाथ को शुक्लयजु का 'प्रज्ञानं ब्रह्म' कहा है। श्री आत्मबोधेन्द्र यह नही जानते थे कि 'अहंब्रह्मास्मि' कृष्ण यजु से नहीं लिया गया है पर यह शुक्ल यजु से लिया गया है और श्री आत्मबोधेन्द्र के बंटवारा के अनुसार "अहंब्रह्मास्मि" पूरी के शुक्ल यजु मठ को ही होना था। इसी प्रकार आप यह भी नहीं जानते थे कि 'प्रज्ञानं ब्रह्म' ऋग्वेद का महावाक्य है और यह शुक्ल यजु में पाया नहीं जाता। तथापि आपने 'प्रज्ञानं ब्रह्म' को शुक्ल यजु का महावाक्य बतलाया है। सब को विदित है कि आचार्य शङ्कर कृष्ण यजुर्वेदी थे और आपका शिष्य श्री सुरेश्वराचार्य शुक्ल यजुर्वेदी थे। यजुर्वेद का महावाक्य शुक्ल यजु मे ही पाया जाता है। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी आचार्य शङ्कर का "स्वाश्रम" "निजमठ" था और आपके पश्चात् श्री सुरेश्वराचार्य शृङ्गेरी में मठाधीष बने और दक्षिणाम्नाय का यजुर्वेद महावाक्य 'अहंब्रह्मास्मि' को शृङ्गेरी मठाम्नाय में उल्लेख किया गया था। कुम्भकोण मठ अपने मठ का वेद ऋग्वेद कहते हैं जिसका महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म' है पर इसके बदले 'ॐतत्सत्' कहते हैं। कुम्भकोण मठ अपने को आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा कहते हैं पर आपके मठ का वेद आचार्य शङ्कर का वेद (यजुर्वेद) भी नहीं है। कांची दक्षिणाम्नाय में होने से ऋक् होना असम्भव है चूंकि आम्नायानुसार एवं यागानुशासनानुसार पूर्व में ऋक् होना शास्त्रीय सम्मत है। पूर्वाम्नाय पूरी का ऋक् किस प्रमाण व आधार पर दक्षिणाम्नाय कांची में लाया गया? यदि मान भी लें कि कांची का वेद ऋक् है तो आपका महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म' होना था न कि 'ॐतत्सत्'। कुम्भकोण मठ अपने को आदि शङ्कर के साक्षात् परम्परा कहने वाले मठ के लिये न अलग आम्नाय है, न वेद है या न महावाक्य। यदि "ॐतत्सत्" महावाक्य है तो यह किस आम्नाय एवं किस वेद का महावाक्य है? चार दृष्टिगोचर आम्नाय, चार संप्रदाय, चार वेद, चार महावाक्य, चार प्रधान शिष्य होने मात्र से चार ही मठ हैं और पांचवां का प्रश्न उठता ही नहीं।

महावाक्य रत्नावली पुस्तक में 'ॐ तत्सत्' का नामो निशान नहीं है। महावाक्य रत्नावली के स्वानुभूति वाक्य भाग में जिस प्रकार महावाक्य में जीव ब्रह्म ऐक्य बोध होता है उसी प्रकार के स्वानुभूति वाक्यों में भी प्रतीत होता है। इस स्वानुभूति भाग में भी 'ॐ तत्सत्' का उल्लेख नहीं है। पर कुम्भकोण मठ के विद्वानों का कथन है कि 'ॐ तत्सत्' महावाक्यरत्नावली के स्वानुभूति वाक्य समान हैं। यह प्रचार भ्रामक है। इस स्वानुभूति भाग में 118 स्वानुभूति वाक्य हैं और इसमें नौवां वाक्य ('सद्योज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवाहमोंतद्यत्परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः सोऽहमों तद्रामभद्रः परंज्योति रसोऽहमोम्') में 'अहमोंतद्यत्परंब्रह्म' का उल्लेख है। इसमें 'अहं' शब्द होने से इस वाक्य का अर्थ जीव ब्रह्म ऐक्य बोध करता है ऐसा जो कथन कुम्भकोण मठाभिमानी विद्वानों का है सो कथन भूल है क्योंकि महावाक्यरत्नावली के जीव ब्रह्म ऐक्य प्रकरण में इस वाक्य का उल्लेख नहीं है। 'ॐतत्सत्' ऐसा कहीं भी दिखाई नहीं देता।

कुम्भकोण मठ का कथन जो है कि चार महाबाक्यों के साथ अन्य महावाक्यों का भी उपदेश दिया जाता है सो कथन धर्मशास्त्र ग्रंथ एवं यतिधर्म ग्रंथ द्वारा सिद्ध नहीं होता। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार कि महावाक्यरत्नावली का महावाक्य भी उपदेश दिया जाता है सो असत्य प्रचार है। निर्णय सिन्धु, धर्म सिन्धु, विश्वेश्वर स्मृति, यतिधर्म निर्णय, आदि प्रामाणिक ग्रंथ कुम्भकोण मठ प्रचारों के विरुद्ध ही हैं। महावाक्यरत्नावली महावाक्यों का एक भन्डार है और यह पुस्तक यतिधर्म शास्त्र क्रम में लिखा नहीं गया है। इस रत्नावली में वेद शाखा की जगत्

मिथ्या निरूपण करनेवाले एवं अद्वैत मत का निरूपण करनेवाले अनेक वाक्यों को एकत्र कर संग्रहरूप में प्रकाश किया गया है। रत्नावली के महावाक्य सब मनन के लिये ही हैं न कि उपदेश के लिये। शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन के संपादकों ने महावाक्य विचार करते समय लिखा है 'एवं' अर्थात् 'इसप्रकार' इस विषय की आलोचना की जाती है। इस एवं पद से स्पष्ट मालूम होता है कि ये संपादक धर्मशास्त्र में न कहे हुए विषय को अपनी बुद्धि चातुर्यता से अब सिद्ध करना चाहते हैं। इसका अर्थ है कि 'नवीन रीति' का अनुसरण किया जा रहा है। यदि कुम्भकोण मठ अपना वेद 'पुराणइतिहास' कहते (जिसे हमसब वेद समान मानते हैं) और महाभारत के 'ॐ तत्सत्' को इसका ब्रह्मनिरूपण पदों का संग्रह कहते तो इसमें किसी को आपत्ति न होता। यदि कोई यति कहे कि वह शास्त्र सम्मत चार सम्प्रदायों का अन्तर्गत नहीं है या इनसे सम्बन्ध नहीं है या कहे कि सन्यासाश्रम देते समय यह पांचवां कल्पित महावाक्य 'ॐतत्सत्' का ही दीक्षा व उपदेश दिया गया था तो यह कहने में भूल न होगी कि वह यति शङ्करमतानुयायी का नहीं है।

कुम्भकोण मठ के कृपा भाजन विद्वानों ने अपने अपने लेख में प्रकाशित किया है कि चार महावाक्यों का उपलक्षण 'ॐतत्सत्' में है और सरस्वती संप्रदाय के मठाधीश को इन चारों महावाक्यों का उपदेश दिया जाता है। उपलक्षण देते समय यह उसी वर्ग का होना आवश्यक है जिस वर्ग के साथ मिलाया जाता है। उदाहरणार्थ यदि कहा जाय कि 'कुत्ता भात नही खाता' तो इसका अर्थ न होगा कि 'गाय भात खा सकती है'। यहां कुत्ता उपलक्षण में उन सब जन्तुओं का संकेत करता है जो भात खाते हैं। 'मुझे किताब दो' और यहां किताब की जगह कपडा या पत्थर का संकेत नहीं किया जाता है। उसी प्रकार अवाक्य ॐतत्सत् (ब्रह्म निरूपण तीन पदों का संग्रह) को चार महावाक्य जो वाक्य हैं और महावाक्य लक्षण भी घटित हैं इसका उपलक्षण नहीं हो सकता। ॐतत्सत् में महावाक्य का लक्षण भी नहीं है (जीव ब्रह्म ऐक्य बोध)। अतः पंचम मठ एक कल्पना है।

शासनाधीन सीमा—आचार्य शङ्कर ने कर्मज्ञानमयी भारत भूमि को यज्ञ का वेदि मानकर याग क्रमानुसार एवं आम्नायानुसार इस यज्ञवेदि भूमि को चार भागों में विभाग कर और आध्यात्म सूत्र से भारत भूमि का संघटन कर और देशवासियों के कल्याण सुख के लिये इन चार दृष्टिगोचर दिशाओं जहां चतुर्धाम समीप में स्थित हैं वहां चार धर्मराज्यकेन्द्र या धर्मदुर्ग (आम्नाय मठ) का प्रतिष्ठा करके, इन्हें स्वरचित मठाम्नाय व महानुशासन द्वारा बद्ध कर के, अपनी अवतार के उद्देश्यों को अक्षुण्ण रखने व वर्णाश्रमाचारादि विषयों की रक्षा करने व धर्मप्रचार करने के लिये अपने चार शिष्यों को वहां वहां बैठाकर अपनी इहलोक लीला समाप्त की थी। आचार्य रचित महानुशासन में इन चार मठों का शासनाधीन धर्मराज्य सीमा भी उल्लेख है—पूर्वाम्नाय—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, उत्कल; दक्षिणाम्नाय—आन्ध्र, द्रविड, केरळ, कर्नाटक; पश्चिमाम्नाय—सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र; उत्तराम्नाय—कुरु, काश्मीर, पाञ्चाल, काम्बोज।

कांची कुम्भकोणमठ की शासनाधीन सीमा का उल्लेख नहीं है। यदि आम्नाय मठ होता तो धर्मराज्यसीमा का भी उल्लेख होता। कुम्भकोण मठ के स्वरचित एवं कल्पित मठाम्नायसेतु में भी कुम्भकोण मठ का कोई धर्मराज्य शासन सीमा नहीं दिया गया है। इससे निश्चित होता है कि कुम्भकोण मठ का स्वतंत्र रूपसे भारतभूमि पर धर्मशासन सीमा भी नहीं है और आप स्वतंत्ररूप से भारत वासी के किसी वर्ग पर भी अपना धर्माधिकार का प्रभाव डाल नही सकते। यदि ऐसा करें तो आचार्य शङ्कर रचित महानुशासन एवं अपने से कहे हुए प्रमाण मठाम्नायसेतु का अनुशासन के विरुद्ध ही होगा। कुम्भकोण मठ का धर्मशासन अधिकार दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ से ही पूर्वकाल में प्राप्त हुआ होगा चूंकि

कांची कुम्भकोण दक्षिणाम्नाय में अन्तर्गत है। आचार्य शङ्कर से नाता जोडने का और कोई मार्ग नहीं है केवल आचार्य से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों के साथ। धर्मराज्य सीमा लम्बी चौडी होने के कारण हर एक आम्नाय मठों ने अपने धर्मराज्य सीमा में शाखा व उपशाखा मठों की प्रतिष्ठा कर तथा परिव्राजकों को धर्म प्रचार के लिये भेजा था। कालान्तर में इनमें से कुछ स्वतंत्र बन बैठे और पश्चात् अपनी भ्रामक मिथ्या प्रचार प्रारम्भ कर दी। इनमें से एक मठ अपने को सर्वोच्च सर्वोत्तम घोषित कर चतुर्दिक यतिसम्राट बन बैठे। कांची कुम्भकोण मठाधीश उर्फ शिक्कुडयार स्वामी जी का धर्मराज्यशासन सीमा मठाम्नायानुसार एवं महाशासनानुसार न होने से अपने चार आम्नाय मठों के शिरोमणि मुखिया मठ एवं यतिसम्राट बनने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। पर आचार्य शङ्कर प्रतिष्ठित चार आम्नाय जगद्गुरु मठाधीष आपको न मुखिया होने का स्वीकार करते हैं और न आपका मठ आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित मानते हैं। पाठकगण इस पुस्तक के तृतीय खंड में इसका विवरण पायेंगे। 'दि लाइट् आफ दि ईस्ट', कलकत्ता, जूलै 1894 ई०; 'केसरी', पूना, एप्रल 1898 ई०; केरळ कोकिल' भाग पांच अङ्क पांच; 'श्री शङ्करविजय चूर्णिका', बम्बई, 1898 ई०; 'प्रजापति संवत्सर पञ्चाङ्ग', कल्याणपुरि, 1871—72; इन्डिया गवर्मेन्ट, सिमला, को मैसूर कमिश्नर का पत्र नं 2396-101 ताः 27—7—1868 एवं इन्डिया गवरमेन्ट का पत्र न० 1360 ताः 19—9—1868; इत्यादि; से स्पष्ट मालूम होता है कि दक्षिणाम्नाय का आचार्य मठ शृंगेरी है और दक्षिण का अन्य मठ शाखा मठ हैं। 1843 ई० में दक्कन हैदराबाद कचहरी द्वारा निश्चित होकर एवं निजाम हैदराबाद के प्रइम मिनिस्टर ने फरमान द्वारा घोषित की है कि दक्षिणाम्नाय का शृंगेरी गुरुमठ है और जो कोई भी चिल्लर मठाधीष नैजाम राज्य आयें तो वे शृंगेरी से श्रीमुख बिना प्राप्त किये भ्रमण नहीं कर सकते। इन चिल्लर मठो की सूची में कुम्भकोण मठ का नाम भी है। इस प्रकार के पत्र अन्य राज्यों से भी प्राप्त हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्वकाल में व्यवहार में भी कुम्भकोण मठ को शाखा मठ माना जाता था।

कुम्भकोण मठ के कल्पित मठाम्नाय सेतु में दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ का धर्मराज्य सीमा उल्लेख है यथा—"आन्ध्रौड्रलाटकर्णाटकोङ्कणा ष्टङ्कणा अपि। शृङ्गेर्यधीना देशास्ते संश्रिता दक्षिणा पतम्॥" इनमें औड्र व लाट जो उत्तरी भारत के हैं उसे दक्षिणाम्नाय में मिलाया गया है और दक्षिणाम्नाय द्रविड को छोड दिया गया है। इसमें क्या रहस्य है? क्या 'द्रविडस्थान' (?) का शङ्कराचार्य बनने की अभिलाषा से दक्षिणाम्नाय से द्रविड वर्ग को निकाल दिया है? या अब जो प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटी प्रदीपम' द्वारा हो रहा है कि कुम्भकोण मठ तामिल द्रविड मठ है और तामिलनाड के तामिल जनवर्ग आपके मठ को समृद्धशाली बनायें और शिष्य बनें चूंकि दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ कर्नाटक मठ है, इस प्रचार की पुष्टी करने के लिये यहां जानबूझ कर 'द्रविड' को छोड दिया गया है? जो कोई व्यक्ति कुम्भकोण मठ का इतिहास 1830 ई० से लेकर 1960 ई० तक का जानता है और जिसने आपके प्रचारों व काले कर्तूतों का अनुभव किया है वही व्यक्ति जान सकता है कि इन दुष्प्रचारों में क्या रहस्य है।

सन्यासक्रम—कुछ लोगों का कहना है कि कलियुग में सन्यासाश्रम धारण करना निषेध है—'अश्वमेधं (अग्निहोत्र-पाठान्तर) गवालम्भं सन्यासं पलपैतृकम्। देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौपञ्च विवर्जयेत।' यह कथन ठीक नहीं है चूंकि यह वचन जहां कहा गया है वहां कुछ लक्षण व परिस्थिति भी संकेत किया गया है और जबतक उक्त संकेतित लक्षण व परिस्थिति हो तब तक सन्यासाश्रम धारण नहीं करने का आदेश है पर यह नहीं कहा गया है कि सन्यासाश्रम ही धारण नहीं करना चाहिये। 'प्रवृत्तिलक्षणं कर्म्म ज्ञानं सन्यासलक्षणं। तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान।' इस वचनानुसार सन्यासग्रहण प्रसिद्ध है क्योंकि ज्ञान के सदृष पवित्र मोक्षसाधन कुछ भी नहीं है और

यही एक मार्ग है—'यतः ज्ञानात् परतरं नहि।' 'ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः।' श्रीव्यास स्मृति वचन से स्पष्ठ मालूम होता है कि कलियुग में सन्यासाश्रम लेना निषेध नहीं है—'यावद्वर्णविभागोस्ति याव द्वेदः प्रवर्त्तते। अग्निहोत्रञ्च संन्यासं तावत् कुर्य्यात् कलौयुगे।' नारद परिव्राजकोपनिषद, पराशर, अत्रि, अङ्गिरा, कात्यायन, मनुसंहिता, ब्रह्मपुराण, जावालोपनिषद, महानिर्व्वाण तंत्र, सौरपुराण व काशीखंड आदि के वचनानुसार प्रमाणयुक्त सिद्ध होता है कि कलियुग में सन्यास ले सकते हैं—'यदहरेव विरजेत, तदहरेव प्रव्रजेत,' 'ब्रह्मचर्या देव प्रव्रजेत' (जाबाली), 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' (महानारायण उपनिषद), 'अथ परिव्राड विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रह' (जाबाली) आदि वचनानुसार सन्यास ग्रहण शास्त्रयुक्त है।

'विहितानां कर्म्मणां विधिना परित्यागः न्यासः सन्यास इति,' 'कर्म्मत्यागान्न संन्यासो न प्रेषोच्चारणेनतु। सन्धयोर्जीवात्मनो रैक्यं सन्न्यासः परिकीर्तितः,' 'ऋतञ्च सूनृतावाणि कविभिः परिकीर्त्तिता। कर्म्म स्वसङ्गमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते' (भागवत), 'निरालम्बं समाश्रित्य सालम्बं विजहाति यः। स संन्यासी च योगी च कैवल्यं पदमश्नुते,' 'द्वे रूपे वासुदेवस्य चरंचाचरमेवच। चरं सन्यासिनां रूपमचरं प्रतिमादिकम्।' आदि वचनों से सन्यास लक्षण प्रतीत होता है। आचार्य शङ्कर अपने रचित गीता भाष्य में स्पष्टरूप से सन्यास धर्म की तत्त्वों को कहा है ('तच्च सर्वकर्मसन्यासपूर्वकादात्मज्ञान निष्ठारूपात् धर्मात् भवति।')। सब संकल्पों का परित्याग ही सन्यास है क्योंकि इस स्थिति में कर्म सब ज्ञान में अन्त होता है। निष्काम्य कर्म करना ही सन्यास है। सब कर्मों को ब्रह्मार्पणमस्तु कर देना ही सन्यास है। कर्मबुद्धिहीन होना ही सन्यास है। अथर्व्व वेद के आश्रमोपनिषद एवं सन्यासोपनिषद में सन्यासाश्रम का चार वर्ग उल्लेख है—'चतुर्विधाभिक्षवस्तु कुटीचक बहूदका। हंस परमहंसश्चयो यः पश्चात्स उत्तमः।' कुटीचक, बहूदक, हंस, परपहंस और कुछ ग्रंथों में छः वर्ग उल्लेख हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत व अवधूत। इन चार वर्ग में अब तीन वर्ग प्रचलित नहीं हैं। आजकल के सन्यासी सब परमहंस वर्ग के ही हैं। जो परिव्राजक तत्त्वज्ञानी हैं उन्हें परमहंस सन्यासी कहा जाता है। ब्रह्मचारी से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ एवं वानप्रस्थ से सन्यास आश्रम ग्रहण किया जा सकता है। धर्मशास्त्र का भी यही आदेश है। विरक्त एवं तत्त्वज्ञानी ब्रह्मचारी भी सन्यासाश्रम गृहण कर सकता है–'ब्रह्मचर्या देव प्रव्रजेत'। परमहंस के लक्षण–'परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेष्वेकरात्र अन्नादनपरः करपात्री एक कौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेक शाटोधरो वा भस्मोद्धूलनपरः सर्व्वत्यागी।'

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्रीसुरेश्वराचार्य एवं श्रीविद्यारण्य महास्वामी परमहंस सन्यासी न थे चूंकि आप गृहस्थाश्रम से सन्यासाश्रम लिया था और श्रीसुरेश्वराचार्य वादविवाद बाजी मे हारने के कारण सन्यासाश्रम धारण किया था। ये दोनों 'योग लिङ्ग' पूजार्ह न थे। यह भी प्रचार करते हैं कि इसी कारण से कुम्भकोण मठाधीष श्रीविद्यातीर्थ ने श्रीविद्यारण्य को श्रृङ्गेरी भेजकर के विच्छिन्न हुए श्रृङ्गेरी मठ का पुनरुद्धार किया था। प्रमाण ग्रंथ, शिलाशासन एवं इतिहास सिद्ध करता है कि श्रीविद्यातीर्थ श्रृङ्गेरी मठाधीष थे और श्रीविद्यारण्य भी श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ के पश्चात् श्रृंगेरी मठाधीष भये। कुम्भकोण मठ के अनर्गल व उन्मत्त प्रलाप पर आलोचना करना ही व्यर्थ है। पाठकगण उपर्युक्त विषयों को पढने के बाद स्वयं जानलेंगे कि कुम्भकोण मठ के प्रचार में कितनी सत्यता है। श्रीसुरेश्वराचार्य एवं श्रीविद्यारण्य महास्वामी को परमहंस सन्यासी न होने का कथन सो यतिधर्म और धर्मशास्त्र पर अपनी अज्ञानता दिखाना है।

ब्राह्मण भेद—'कर्णाटक द्राविडाश्च महाराष्ट्रान्ध्रगुजराः। द्राविडाः पञ्च विख्याता विन्ध्यदक्षिणवासिनः॥ सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडा उत्कल मैथिलाः। पञ्चगौडा इतिख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः॥' दश विध ब्राह्मण कहा गया है—पांच द्राविड (दक्षिण) एवं पांच गौड (उत्तर)।

पाठकगण अब जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ का स्वरचित व कल्पित आम्नाप पद्धति क्रम आचार्य शङ्कर द्वारा रचित आम्नाय पद्धति अनुसार नहीं है और यह मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित भी नहीं है। सन्यास ग्रहण विधि, महावाक्यों के उपदेश विधि व दीक्षा, योगपट्ट, संप्रदाय, ब्रह्मचारी, गोत्र, वेद, पीठ, आम्नाय आदि सब शास्त्रों से सिद्ध हैं। इन में किसी की भी न्यूनता पायी नहीं जा सकती और यह सब बहुकाल पूर्व ही सिद्ध एवं परम्परा द्वारा चली आ रही है। ऐसे शास्त्रानुकूल पद्धतियों को छोडकर स्वकल्पित प्रचारों की पुष्टी के लिये युक्ति, कुतर्क, अनुमान की ओर शरण लेना अशास्त्रीय एवं अनुचित है।

कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों ने कहा है—'... ... **the details contained in the different amnayas apply collectively to the Kanchi Peetha.'** अर्थात् चार आम्नायों के भिन्न स्वतंत्र आम्नाय पद्धति, नियम, क्रम, संप्रदाय आदि सब समग्ररूप में कांची मठ को लागू होता है। कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों की विद्वत्ता का यह एक नमूना है। क्या चार वेद, चार महावाक्य, चार संप्रदाय, चार ब्रह्मचारी, चार गोत्र, चार धाम, दस योगपट्ट, चार देव देवी तीर्थ क्षेत्र, आदि समग्र रूप में कांची मठ को लागू होता है? यदि ऐसा होता तो क्यों आचार्य शङ्कर ने अपने मठाम्नाय में ऐसा उल्लेख न किया था? क्या केवल कांची मठ के मठाधीषों को ही चार महावाक्यों का उपदेश एक साथ होता है? यदि ऐसा होता तो क्यों आचार्य ने मठाम्नाय में उल्लेख नहीं किया? धर्मशास्त्र भिन्न विधि कहता है। यदि दस नाम लागू होता है तो 'इन्द्रसरस्वती' को एक विशेष श्रेष्ठ एवं सर्वोच्च नाम जो केवल कुम्भकोण मठाधीषों को ही लागू होता है, ऐसा क्यों मिथ्या प्रचार किया जाता है। चार मठ के चारों आम्नाय पद्धति भिन्न पद्धतियां हैं और इन भिन्न पद्धतियों के नियमादि सब उस उस मठ के आचार्यों से उन उन नियमों का पालन करते हुए परम्परागत चली आ रही है और यह नियमादि सब धर्मसिन्धु, निर्णय सिन्धु, विश्वेश्वरस्मृति, यतिधर्मनिर्णय, शुकरहस्योपनिषद, मठाम्नायोपनिषद आदि ग्रंथों से पुष्टी होती है। ऐसे भिन्न पद्धतियों व नियमों का समग्र आचरण करना न केवल धर्मशास्त्र के विरुद्ध है पर असम्भव भी है। ऐसे अनर्गल प्रचारों से धर्मशास्त्र अनभिज्ञ पामर जन आपके माया जाल में फंस सकते हैं। आश्चर्य का तो यह विषय है कि कुम्भकोण मठ ने एक कल्पित मठाम्नाय अपने मठ के लिये रचना करके एवं इसे श्रीचित्सुखाचार्य कृत कहते हुए अपने मठ का अलग एक आम्नाय पद्धति का प्रचार करते हैं और इस कांची कल्पित मठाम्नाय में समग्र आम्नाय पद्धति नहीं दिया गया है। इस कल्पित आम्नाय पद्धति में पांचवां वेद, पांचवां महावाक्य, पांचवां ब्रह्मचारी, पांचवां संप्रदाय, आदियों का धर्मशास्त्र विरुद्ध कल्पना कर एक नवीन ग्रंथ रचा गया है। क्या कुम्भकोग मठ का प्रचार सत्य है या मठ से कहेजानेवाले श्रीचित्सुखाचार्य रचित कांची मठाम्नाय सत्य है या मठ के कृपाभाजन विद्वानों का प्रचार सत्य है, सो विषय कुम्भकोण मठ ही जानें। 'विनायकं कुर्वाणो रचयामास वानरः' के अनुसार कुम्भकोण मठ अपने भ्रामक प्रचार की पुष्टी करने चले तो अपने हाथ से अपना गला ही काटने चले।

अध्याय—3

श्रीविश्वरूपाचार्य (श्रीसुरेश्वराचार्य), श्रीविद्यातीर्थ, श्रीविद्यारण्य।

कांची कुम्भकोण मठ का एक कल्पित गुरुवंशावली सूची प्रकाशित हुई है। इस कल्पित गुरुवंशावली का आधार कुम्भकोण मठ से स्वरचित एकाङ्गि पुस्तकें हैं—पुण्यश्लोकमंजरी, गुरुरत्नमाला, सुषमा (गुरुरत्नमाला का टीका), परिशिष्ठ, गुरुपरम्परा स्तोत्र एवं मकरन्द आदि। पाठकगण इस कल्पित गुरुवंशावली का विमर्श इस खण्ड के चौथे अध्याय में पायेंगे और यहां प्रमाण द्वारा सिद्ध किया गया है कि आपकी गुरुवंशावली सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक का एक कल्पित सूची है। कुम्भकोण मठ अपने मठाधीष वंशावली सूची में श्रीसुरेश्वराचार्य एवं श्रीविद्यातीर्थ का नाम देकर इन दोनों को कांची मठाधीष बनाया है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्रीविद्यातीर्थ कांची मठाधीष ने श्रीविद्यारण्य को शृंगेरी भेजकर उस मठ का जीर्णोद्धार कराकरके विच्छिन्न हुए शृंगेरी परम्परा का पुनः प्रारम्भ कराया था। इस अध्याय में इन तीन अद्वितीय महानों का विवरण देकर सिद्ध किया गया है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार न केवल भ्रमात्मक है पर मिथ्या भी है।

श्री सुरेश्वराचार्य (विश्वरूपाचार्य)

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों एवं आपके अनुयायी, शिष्यों व प्रचारकों द्वारा रचित पुस्तकों में से आपके कुछ कथन (श्री सुरेश्वराचार्य के विषय में) नीचे सूचीरूप में दिया जाता है ताकि पाठकगण स्वयं जान लें कि कुम्भकोण मठ का प्रचार क्या है।

(1) कुम्भकोण मठ की प्रामाणिक पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' में कहे जाने वाली गुरु वंशावली सूची दी है और इसमें श्री आचार्य शङ्कर के पश्चात् श्री सुरेश्वराचार्य से सूची प्रारम्भ हुई है। पर कुछ प्रचार पुस्तकों में श्री शङ्कराचार्य एवं श्री सुरेश्वराचार्य को छोडकर आपकी वंशावली श्री सर्वज्ञ श्री चरण से प्रारम्भ हुआ है। कुम्भकोण मठ की 1957 ई० में प्रकाशित एक पुस्तक में आपकी वंशावली में श्री सुरेश्वराचार्य को दूसरा मठाधीष और श्री सर्वज्ञ श्री चरण को तीसरा मठाधीष दिखाया गया है।

(2) श्री सुरेश्वराचार्य परमहंस सन्यासी न थे और योग लिङ्ग के पूजार्ह न थे, इसलिये कांची मठाधीष भी न थे—'अयं सुरेश्वरः स्वयं अपरमहंसतया परमहंसैकसमध्यासनीये जगद्गुरुणा स्वपीठे शिष्यपीठेषु वा न निवेशितोऽपि।' कुम्भकोण मठ के अभिमानी प्रचारक व प्रचार पुस्तक रचयिता श्री एन्. के. वेंकटरामन का अभिप्राय है कि श्री सुरेश्वराचार्य अपने पूर्वाश्रम में गृहस्थ थे इसलिये परमहंस सन्यासी योग्य न थे। श्री आत्मबोध लिखते हैं कि सुरेश्वराचार्य को शास्त्रार्थ में हराकर और विवाद में किये हुए बाजी के फलाभूत आपको सन्यासाश्रम देने के कारण आप परमहंस सन्यासी न थे।

(3) चूंकि श्री सुरेश्वराचार्य मठाधीष होने के योग्य न थे अतः आपको कांची मठाधीष सर्वज्ञ श्री चरणेन्द्र सरस्वती के निगरानी में एवं अन्य चार शिष्य मठों के मुखिया रूप में संचालन के लिये कांची में आचार्य ने आपको नियोजन किया।

(4) शृङ्गेरी में श्री विश्वरूपाचार्य मठाधीष थे। कुम्भकोणम् से 1894 ई० में प्रकाशित कांची मठ का मठाम्नायसेतु में उल्लेख है 'आचार्यो विश्वरूपकः।' गुरुरत्नमाला के टीकाकार श्री आत्मबोध का काल 1741—1772 ई० का है (श्री टि. एस. नारायण अय्यर के अनुसार) और आप भी शृङ्गेरी के आचार्य 'आचार्यो विश्वरूपकः' कहते हैं। पर कुम्भकोण मठ का परम भक्त प्रचारक श्री टि. एस. नारायण अय्यर, बी. ए., बी. एल., लिखते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य का नाम शृङ्गेरी वंशावली में 1856 ई० के बाद ही दिया गया है और इसके पूर्व शृङ्गेरी आचार्य वंशावली में पृथ्वीधव या विश्वरूप ही आचार्य थे। आपका सिद्धान्त है कि विश्वरूपाचार्य एवं सुरेश्वराचार्य, ये दोनों व्यक्ति, पृथक पृथक व्यक्ति हैं और शृङ्गेरी वंशावली में विश्वरूपाचार्य ही थे, न कि सुरेश्वराचार्य। विश्वरूपाचार्य यम देवता के अवतार थे और सुरेश्वराचार्य ब्रह्मा के अवतार थे अतः ये दोनों पृथक व्यक्ति हैं।

(5) गुरुरत्नमाला में लिखा है श्री सुरेश्वराचार्य ने शृंगेरी में बहुकाल वास किये और आपने शृंगेरी मठाधीष पृथ्वीधव या विश्वरूपाचार्य की प्रार्थना पर वहां वास किया था ('स्थिरबोधघन प्रतापदाम्नोः गुरु पृथ्वीधव विश्वरूपनाम्नोः। चिरमर्थनयोप तुङ्गभद्र सरसः सौनु सुरेश्वरः स भद्रम्॥')

(6) कुम्भकोण मठ के कर्मचारी द्वारा प्रकाशित पुस्तक में ऐसा उल्लेख है '... ... ... इस आज्ञा पर सुरेश्वराचार्य जी शृङ्गगिरि पहुंच 18 वर्षतक गुरु आज्ञानुसार वहां सकल कामों को करके वापिस गुरु के पास कामकोटि पीठ को आये।'

(7) श्री सुरेश्वराचार्य शृंगेरी में मठाधीष नहीं हुए चूंकि आपकी धर्मपत्नी सरसवाणी (शारदा रूप में शृंगेरी में स्थित हैं) को आप पूजा नहीं कर सकते थे।

(8) श्री सुरेश्वराचार्य कांची मठाधीष बने और आप 70 वर्ष मठाधीष थे। आपका तनुत्याग कांची मठ के आंगन में हुआ। कुछ प्रचार पुस्तकों में 'पुण्यरस' गांव जो कांची समीप है, यही आपका निर्याण स्थल बतलाता है। कुछ पुस्तकों में कांची नगर निर्याण स्थल बताकर प्रचार करते हैं कि 'मण्डनमिश्र अग्रहार' (एक वीथि का नाम) इस कथन की पुष्टी करता है। आपकी निगरानी में सर्वज्ञ श्रीचरणेन्द्र योगलिङ्ग की पूजा करते थे।

(9) शृंगेरी में पृथ्वीधव को मठाधीष बनाया गया पर आप वहां बहुत दिन न रहे और आप कांची को लौट आये जब आपको श्री आचार्य शङ्कर के ब्रह्मीभाव होने का समाचार मिला और आपके जगह एक विश्वरूप को शृंगेरी में नियोजित किये।

(10) कांची के छठवें मठाधीष श्री कैवल्य योगी के आज्ञा पर आपके सातवां मठाधीष श्री कृपाशङ्कर ने 'विश्वरूप' को शृङ्गेरी भेजा।

उपर्युक्त दस कथनों का सार ही दिया गया है और कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों से अन्य भिन्न भिन्न कथन यहां नहीं दिया जाता है चूंकि वे सब उन्मत्त प्रलाप ही हैं। पाठकगण इसे पढकर स्वयं जान लेंगे कि कुम्भकोण मठ के प्रचार कहां तक सत्य है। आपकी वंशावली सूची विविध प्रकार के मिलते हैं। इन भिन्न वंशावली सूची में

कौनसा वंशावली यथार्थ है सो कुम्भकोण मठ ही जाने। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार आचार्य शङ्कर का काल क्रिस्ताब्द पूर्व 508 से 476 तक है। श्री सुरेश्वर का काल 476 से 406 क्रिस्त पूर्व का दिया गया है। सर्वज्ञ श्रीचरण का काल दो प्रकार का दिया गया है—476 से 364 क्रिस्त पूर्व एवं 406 से 394 क्रिस्त पूर्व। श्री सुरेश्वर को कांची मठ का मठाधीष भी कहा गया है और मठाधीष न होने का भी प्रचार किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि सुरेश्वर सब मठों के मुखिया थे और आप सर्वज्ञ श्रीचरण पर निगरानी करते थे। यदि यह प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जाय कि सुरेश्वर कुम्भकोण मठ में न थे तो इन सब भिन्न कथनों का भंडाफोड हो जाता है। सुरेश्वर को जो कारण देकर परमहंस सन्यासी न होने की कथा सुनाते हैं इससे तो यही कहना पडेगा कि कुम्भकोण मठ वाले धर्मशास्त्र पुस्तकों में कहे हुए विषयों पर अपनी अनभिज्ञता दिखा रहे हैं और हमारे शास्त्रकारों को मूर्ख बना रहे हैं। कुम्भकोण मठ प्रचार की पुष्टी कोई भी धर्मशास्त्र पुस्तक नहीं करती। कुम्भकोण मठ वालों से प्रार्थना करूंगा कि वे धर्मशास्त्र पुस्तक एवं निरालम्ब उपनिषद को पढें ताकि मालूम हो जायगा कि कौन सन्यासी है और कौन परमहंस है। श्री सुरेश्वर से रचित वार्तिक, नैष्कर्म्यसिद्धि एवं मानसोल्लास को पढें तो स्पष्ट मालूम होगा कि कुम्भकोण मठ का प्रथम कारण जो है कि बाजी में हार होने से परमहंस योग्य न थे सो कारण न केवल भूल व भ्रम है पर असत्य भी है। क्या गृहस्थाश्रम उपरान्त सन्यासाश्रम लेने से परमहंस नहीं होते? धर्मशास्त्र पुस्तक कुम्भकोण मठ प्रचार का समर्थन नहीं करता। जब श्री विद्यारण्य का दृष्टान्त दिया जाता है तो कुम्भकोण मठ कहते हैं कि श्री विद्यारण्य शृङ्गेरी मठाधीष न थे। ऐसे कुतर्क व बकवास से अपनी इष्टसिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। कुम्भकोण मठवाले व्यासपूजा के दिन गुरु पंचक में श्री सुरेश्वराचार्य की पूजा करते हैं और न मालूम अब कैसे आप परमहंस सन्यासी बन गये? एक तरफ भ्रामक प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने मठ निर्माण पंचक के अनुसार किया है और दूसरी तरफ प्रचार है कि सुरेश्वर परमहंस सन्यासी न थे और मठ में न थे। कैसे गुरु पंचक में आपका नाम मिला लिया गया है?

श्री टि. एस. नारायण अय्यर ने आपकी प्रचार पुस्तक में भगीरथ प्रयत्न कर शृंगेरी की महिमा घटाने और कांची मठ को सर्वोच्च सर्वोत्तम बनाने की कोशिश किया है और आपका कथन है कि शृंगेरी मठवालों ने 1856 ई० के पश्चात ही सुरेश्वर को अपने मठ वंशावली में नाम जोड लिया है। पर कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोध ने अपनी पुस्तक में (1741—72 ई०) विश्वरूप को शृंगेरी में मठाधीष होने की कथा सुनायी है और चूंकि विश्वरूप ही सुरेश्वर थे इसलिये शृंगेरी के कथन को 100 वर्ष पूर्व ही कुम्भकोण मठ ने स्वीकार किया है कि शृंगेरी में सुरेश्वराचार्य थे। सम्भवतः श्री नारायण अय्यर अपने मठ के प्रामाणिक पुस्तकों को न पढें हों तब भी आपका प्रचार है कि शृंगेरी ने 1856 ई० के बाद ही सुरेश्वर को अपना मठाधीष बनाया है। विश्वरूप यम के अवतार थे या ब्रह्मा के अवतार थे इसपर आलोचना करने की आवश्यकता नहीं है चूंकि प्रस्तुत विषय से यह सम्बन्ध नहीं रखता है। किस आधार पर आपने यम का अवतार बनाया है सो आप ही जाने चूंकि न केवल कुम्भकोण मठाधीष ही सर्वज्ञ हैं पर उनके अनुयायी भी सब सर्वज्ञ दीख पडते हैं। यदि यह सिद्ध कर दिया जाय कि विश्वरूप ही सुरेश्वर थे तो आपका प्रचार मिथ्या हो जायगा।

यह सब को विदित है कि आचार्य शङ्कर ने अपने सोलहवें वयस में भाष्य रचना समाप्त कर पश्चात् अपने सत्तरहवें वर्ष में मण्डन विश्वरूप से वादविवाद करके सन्यासाश्रम देकर अपना शिष्य बनाया। बाद तीर्थाटन करते हुए शृङ्गेरी पहुंचे। यह भी सब को विदित है कि आचार्य शङ्कर की आयु 32 थी। यदि मान भी लें कि आचार्य शङ्कर के 17 वें वर्ष में सुरेश्वर शृंगेरी पहुंचे तो किस प्रकार कुम्भकोण मठ कहते हैं कि सुरेश्वराचार्य 18 वर्ष शृंगेरी में रहकर

बाद अपने गुरु से कांची में आकर मिले? यदि आचार्य जीवित होते तो उनकी आयु 35 वर्ष का होता। ऐसे अनर्गल प्रचार से आचार्य का अपचार ही होता है। श्रृङ्गेरी के मठाधीश सुरेश्वराचार्य को वहां से हटाने की यह एक कल्पित कथा मालूम पडती है।

कुम्भकोण मठ का प्रामाणिक पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर कुछ वर्ष श्रृङ्गेरी में वास किये —'कलयन्निलयं च तुङ्गभद्रातटि नीरोधसि वेधसः स्त्रिया द्राक्। कतिचिच्छरदोऽत्यवीवहद्यो यतिराट् क्वापि मठे स मेऽस्तु सद्यः।' गुरुरत्नमाला के टीकाकार अपनी टीका में 'कुछ वर्ष' की टीका करते हुए लिखते हैं 'बारह वर्ष'—'अब्दान द्वादश सोऽत्यवीवहदधि व्याख्यान सिंहासनं। शिष्यान् स्वान् विनयन् स्वभाष्य सरणौ श्रीतुङ्गभद्रा तटे।' इसी प्रकार कुम्भकोण मठ की प्रामाणिक पुस्तक आनन्दगिरि शङ्करविजय भी कहती है—'तत्रैव परमगुरुः द्वादशाब्दकालं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैतविद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा ... ...।' इसी आनन्दगिरि में श्रृङ्गेरी का उल्लेख करते हुए श्रृंगेरी को 'मदाश्रमे' एवं वहां 'निजमठं कृत्वा' तथा 'भारतीसंप्रदायं निजशिष्यं चकार' आदि विषय कहा गया है। आनन्दगिरि शङ्करविजय सुरेश्वराचार्य को श्रृंगेरी में ही मठाधीश होने का कहा है। आचार्य शङ्कर का 'मदाश्रमे', 'निजमठ', 'निजशिष्यं चकार' ऐसे श्रृंगेरी में आचार्य के वाद वहीं सुरेश्वराचार्य का मठाधीश होना निश्चित होता है। कुम्भकोण मठ की गुरुरत्नमाला भी कहती है कि सुरेश्वराचार्य श्रृंगेरी में बहुकाल थे। सुरेश्वराचार्य 'शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत काण्व शाखी' होने के कारण और आचार्य स्वयं 'कृष्ण यजुर्वेदि' होने के कारण दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठ जो यजुर्वेद का मठ है उसी में श्रीसुरेश्वराचार्य को बैठाने की कथा भी कुछ पुस्तकों में पायी जाती है।

कुम्भकोण मठ का कथन जो है कि सुरेश्वराचार्य श्रृंगेरी में न थे चूंकि आप अपनी पत्नी की पूजा नहीं कर सकते थे सो कथन अनर्गल है। शिवांश आचार्य शङ्कर ने शक्ति की स्तुति व पूजन की है जो शक्ति शिव की धर्मपत्नी थी, उसी प्रकार सुरेश्वराचार्य भी शक्ति की पूजन क्यों नहीं कर सकते थे? आध्यात्म दृष्टी के व्यक्ति भौतिक दृष्टी से देखनेवाले पुरुष नहीं हैं। माता शारदा की पूजन पराशक्ति ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी की पूजन थी और है। सर्वसङ्ग परित्यागी संसार बन्धन से परे ऐसे अद्वितीय व्यक्ति को भौतिक दृष्टी से देखना और नाता जोडना सो अपचार है। 'सिद्धान्तबिन्दु' ग्रंथ के प्रस्तावना में श्री दिवानजी लिखते हैं—'He (Sureswaracharya) was a very pet pupil of the Acharya and was therefore installed by him on the principal Gadi of the Math at Sringeri in the Mysore State.' आपका कहना है कि श्रीसुरेश्वराचार्य श्रृंगेरी में थे। इस पुस्तक के तृतीय खण्ड में अनेक अभिप्राय, व्यवस्था आदि प्रकाशित हैं जो सब उक्त कथन की पुष्टी करती है।

श्रीसुरेश्वराचार्य का निर्याण स्थल भी भिन्न जगह कहा जाता है और यथार्थ जगह अभी तक कुम्भकोण मठ से निश्चित नहीं हुआ है। कुम्भकोण मठ प्रचार की पुष्टी में प्रमाण नहीं मिलते। कांची में न मन्डनमिश्र अग्रहार है और न कोई सुरेश्वराचार्य का बृन्दावण है। अपने मठ में समाधि बना लेना तो आसान है और अर्वाचीन काल में कांची मठ के भीतर इस नवीन निर्माणित समाधि के आधार पर विवादास्पद विषय का निर्णय किया नहीं जा सकता है। स्मारक स्तम्भ, चिन्ह, मन्दिर, समाधि, मूर्ति प्रतिष्ठा आदि अनेक जगह बन सकता है तो क्या इन सब जगहों में श्रीसुरेश्वराचार्य का निर्याण स्थल बताया जाय? कुम्भकोण मठ 'पुण्यरस' ग्राम का उल्लेख करते हैं और यह गांव कहां है? श्रीश्रृंगेरी में श्रीसुरेश्वराचार्य का समाधि स्थल भी दिखाया जाता है जहां एक समाधि मन्दिर आज भी दीख पडता है। पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ में भी कहा जाता है कि श्रीसुरेश्वराचार्य पश्चिमाम्नाय में ही निर्याण भये।

कुछ विद्वान काशी में सुरेश्वराचार्य का निर्याण स्थल बतलाते हैं। पुष्पगिरि मठ की पुस्तकों से प्रतीत होता है कि सुरेश्वराचार्य का निर्याणस्थल काशी ही था।

बम्बई से प्रकाशित दो पुस्तकों में देखा कि पृथ्वीधर या पृथ्वीधव नाम दोनों श्री हस्तामलक का पूर्व नाम था। इस अभिप्राय की पुष्टी में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। पूर्वाम्नाय मठ की एक पुस्तक से इस विषय को लिया गया है। यदि पृथ्वीधव या पृथ्वीश्वर को श्री हस्तामलक होने का विषय मान लें तो किस प्रकार कुम्भकोण मठ का कथन 'पृथ्वीधव या विश्वरूप' शृङ्गेरी में थे माना जाय? यह निश्चितरूप से सिद्ध किया जा सकता है कि श्री विश्वरूप ही श्री सुरेश्वर थे। क्या कुम्भकोण मठ कहते हैं कि श्री हस्तामलक ही सुरेश्वराचार्य थे? यदि मान लें कि पृथ्वीधव ही हस्तामलक थे और जो हस्तामलक शृंगेरी में मठाधीश बनने का विषय कोई भी न कहने से एवं इस कथन का कोई प्रमाण न मिलने से यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीधव शृंगेरी में न थे अर्थात् विश्वरूप ही शृङ्गेरी मठाधीश थे। इस विषय की पुष्टी कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोधेन्द्र करते हैं जब आप शृङ्गेरी के लिये कहते हैं 'आचार्यो विश्वरूपकः इति'।

कुम्भकोण मठ का जो कथन है कि आपके मठ के सातवां मठाधीष ने श्री विश्वरूप को शृङ्गेरी भेजा था सो केवल बकवास है। क्या कांची मठ के प्रथम छः आचार्यों तक के काल तक शृङ्गेरी मठ ही न था? या क्या आचार्य शङ्कर ने शृङ्गेरी में मठ की स्थापना ही न की थी? आचार्य के शिष्य विश्वरूप (श्री सुरेश्वराचार्य) इस बीच में कहां थे और क्या करते थे? 'सुभद्र विश्वरूप' जो व्यक्ति को कांची से शृङ्गेरी भेजे जाने की कथा सुनायी जाती है, क्या आप आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री विश्वरूपाचार्य से भिन्न थे? कुम्भकोण मठ का भ्रामक प्रचार भी है कि आद्यशङ्कराचार्य जो 508 क्रिस्त पूर्व अवतार लिये थे आपने कांची में मठ की स्थापना की थी और आद्यशङ्कराचार्य के द्वितीय बार अवतारी पुरुष श्री कृपा शङ्कर (कांची मठ के सातवां मठाधीश) ने शृङ्गेरी में मठ स्थापना कर 'सुभद्र विश्वरूप' को वहां भेजा था। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का अवतार पांच बार हुआ था। आचार्य शङ्कर का काल निर्णय संग्रह रूप में इस पुस्तक के प्रथम खण्ड द्वितीय अध्याय में पाठकगण पायेंगे। वहां अनेक प्रमाण व आधारों पर यह सिद्ध किया गया है कि आचार्य शङ्कर का काल सातवीं शताब्दी का अन्त ही है। शृङ्गेरी मठ गुरुपरम्परा में आचार्य शङ्कर का जन्म 14 विक्रमाब्द में तथा तिरोधान 46 विक्रमाब्द में होने का उल्लेख है और यह विक्रम संवत ठीक मालूम पडता है। अन्वेषण इसी विषय का है कि यह विक्रमाब्द कौन सा है व इसके प्रवर्तक कौन थे व भारतवर्ष में उस समय कितने विक्रमाब्द थे और ये कब कब प्रारम्भ हुए और कब भारत के भिन्न भागों में प्रचलित हुए? शृङ्गेरी मठ प्रमाण ग्रन्थों में आचार्य शङ्कर का जन्म 'विक्रम' में देकर पश्चात् श्री सुरेश्वराचार्य का काल 'शालीशक' में देने से, शृङ्गेरी मठ के आचार्य वंशावली के प्रत्येक आचार्यों का काल गणना करने वाले व्यक्ति जिसने आधुनिक अब्द नाम के साथ समन्वय कर प्रकाश किया था सो व्यक्ति इन दोनों अब्दों का यथार्थ काल न जान कर और अपने अभिप्राय से (जो निराधार था) 'विक्रमाब्द' व 'शालीशक' का समन्वय कर एवं जो पूर्व आचार्य का काल निश्चितरूप से आपको मालूम था उसके आधार पर गणना कर श्री सुरेश्वराचार्य को 700 साल दिया था। शृङ्गेरी मठ आचार्य वंशावली में कल्पित नामों को जोडकर इस 700 वर्ष का बंटवारा नहीं करना चाहते थे और यथार्थ में आपने अपनी गणना की भूल से प्राप्त 700 वर्ष को श्री सुरेश्वराचार्य के लिये रख दिया था। कुम्भकोण मठ की कल्पित वंशावली जो 508 क्रिस्त पूर्व से प्रारम्भ होता है इस वंशावली के साथ, गलत से दिये हुए काल जिसकी गणना अन्य एक व्यक्ति ने की थी उस शृङ्गेरि काल के साथ (प्रथम शताब्दी क्रिस्त पश्चात्) मिलाने की कोशिश में यह कथा अब कहते हैं कि कुम्भकोण मठ के कृपाशङ्कर (आचार्य शङ्कर का द्वितीय बार अवतार एवं कुम्भकोण मठ का सातवां मठाधीष–कुछ प्रचार

पुस्तकों में 9 वां मठाधीष भी कहा गया है) ने विश्वरूप को श्रृङ्गेरी भेजा था। इस भ्रामक मिथ्या प्रचार से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि श्रृंगेरी मठ का गणित काल जो प्रथम शताब्दी क्रिस्त पश्चात् का था उस काल निर्णय से कुम्भकोण मठ का काल निर्णय (508 क्रिस्त पूर्व) भी ठीक जमता है। पाठकगण यदि प्रथम खन्ड के द्वितीय अध्याय पुनः पढें तो मालूम होगा कि आचार्य शङ्कर का काल न 508 क्रिस्त पूर्व का था या न प्रथम शताब्दी का था पर सातवीं शताब्दी अन्त का ही था जिसकी पुष्टी श्रृंगेरी मठ के ग्रन्थों से सिद्ध होता है। अतएव कांची मठ से प्रथम शताब्दी में सुभट्ट विश्वरूप को श्रृंगेरी भेजे जाने की कथा मिथ्या है। कुम्भकोण मठ एक जगह कहते हैं कि पृथ्वीधर या विश्वरूप श्रृंगेरी में थे और एक जगह कहते हैं कि पृथ्वीधर श्रृंगेरी से कांची लौट आने के बाद विश्वरूप को भेजा गया अर्थात् पृथ्वीधव व विश्वरूप पृथक व्यक्ति हैं। पाठकगण स्वयं जान लें कि इन सब भिन्न कथनों में कितनी सत्यता है।

अद्वैताचार्यों में श्री सुरेश्वराचार्य का स्थान बहुत ऊंचा है। अपने अपने मठ की महत्ता बढाने के लिये आपका नाम लेना तो स्वाभाविक है। पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ में श्री सुरेश्वाचार्य थे ऐसा द्वारका मठ कहते हैं। दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ वंशावली में भी श्री सुरेश्वराचार्य का नाम पाया जाता है। प्रस्तुत प्रश्न यह नहीं है कि श्री सुरेश्वराचार्य इन दोनों मठों में किस मठ में थे? प्रश्न तो यह है कि क्या श्री सुरेश्वराचार्य कांची मठाधीष थे? इसी प्रश्न का उत्तर यहां दिया जाता है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठ सब समान ही हैं और सम्भवतः श्री सुरेश्वराचार्य इन मठों में कुछ काल तक वास किये हों। कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके मठ में श्री सुरेश्वराचार्य मठाधीष बने और श्रृङ्गेरी में श्री विश्वरूपाचार्य मठाधीष बने। कुम्भकोण मठ के प्रधान प्रामाणिक पुस्तक गुरुरत्नमाला एवं आपके मठाम्नाय सेतु आदि पुस्तकों में विश्वरूप को श्रृङ्गेरी का मठाधीष कहा गया है। अर्थात् कुम्भकोण मठ का कथन है कि श्री सुरेश्वराचार्य और श्री विश्वरूपाचार्य दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। यदि प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जाय कि श्री विश्वरूपाचार्य ही श्री सुरेश्वराचार्य थे तो इससे यह भी सिद्ध होता है कि श्री सुरेश्वराचार्य कांची मठ में न थे। सब से प्रथम विचारणीय बात यह है कि क्या आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी या नहीं? पाठकगण इस पुस्तक के प्रथम खन्ड एवं द्वितीय खन्ड के प्रथम दो अध्यायों को पढें तो स्पष्ट यह सिद्ध होगा कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। जब मठ ही नहीं है तो सुरेश्वराचार्य का होना भी असत्य है। पर यहां कुम्भकोण मठ की भ्रामक मिथ्या प्रचारों की यथार्थता जानने के लिये ही यह आलोचना की जा रही है। इससे यह भी मालूम हो जायगा कि क्या विश्वरूपाचार्य यम के अवतार थे या क्या सुरेश्वराचार्य ब्रह्मा के अवतार थे या क्या दोनों ब्रह्मा के ही अवतार थे। कुम्भकोण मठ अपने परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय में श्रृङ्गेरी के मठाधीष श्री पद्मपादाचार्य को दिखाया है और अपने से प्रचारित एकाङ्गि अप्रामाणिक मार्कन्डेय संहिता (केवल क्षिप्तभाग) को इसका मूल प्रमाण कहा जाता है। इस प्रकार पृथ्वीधव या पृथ्वीधर, श्री विश्वरूपाचार्य, श्री पद्मपादाचार्य, श्री हस्तामलकाचार्य आदियों को श्रृङ्गेरी मठाधीष होने का प्रचार करते हैं और पाठकगण जान लें कि इन भिन्न कथनों में कितनी सत्यता है। 'गुरुरत्नमाला' कहता है कि सुरेश्वराचार्य श्रृङ्गेरी में बहुकाल वास किये थे और आप पृथ्वीधव व विश्वरूप के अनुरोध पर वहां वास किया था। यहां पर श्री पद्मपाद का उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि गुरुरत्नमाला के रचना काल एवं 'सुषमा' टीका काल के पश्चात् काल में ही अपने स्वरचित प्रमाणों में पद्मपाद को जोड लिया गया है।

श्रीविश्वरूपाचार्य ही श्रीसुरेश्वराचार्य थे और निम्न दिये प्रमाण सब इसकी पुष्टी करती है। अतः श्रीसुरेश्वराचार्य कांची मठ में न थे। (1) मठाम्नाय, माधवीय शङ्करविजय, चिद्विलास शङ्करविजय विलास, सदानन्द शङ्करविजय, आनन्दगिरि शङ्करविजय (जो हमलोगों को अग्राह्य है पर कुम्भकोण मठ का प्रमाण पुस्तक है), बम्बई

मुद्रित गुरुपरम्परा चरित्र, गुरुवंशकाव्य, वह्निसहाय आचार्य दिग्विजय चम्पू, आदि अनेक प्रामाणिक ग्रंथों में श्रीसुरेश्वराचार्य को शृंगेरी का मठाधीश होने का उल्लेख है। अर्वाचीन काल के अनुसन्धान करनेवाले विद्वानों एवं वृद्ध प्रकान्ड पन्डितों का भी यही अभिप्राय है। उत्तर भारत में प्रकाशित (पूरी, कलकत्ता, नवद्वीप, कामरूप, दरभङ्गा, पटना, काशी, इलहाबाद, फैजाबाद, लाहोर, कश्मीर, बडोदा, अहमदाबाद, द्वारका, पूना, नासिक, नागपूर आदि स्थलों से प्रकाशित) अनेकानेक पुस्तकों में स्पष्ट कहा है कि श्रीसुरेश्वराचार्य दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ में थे।

(2) माधवीय शङ्करदिग्विजय, सदानन्द शङ्करविजय, गोविन्दनाथ शङ्कराचार्य चरित्र, काशी लक्ष्मण शास्त्री रचित गुरुवंशकाव्य, व्यासाचलीय शङ्करविजय, राजचूडामणि दीक्षित शङ्कराभ्युदय, आदि पुस्तक बार बार उल्लेख करते हैं कि विश्वरूप ही सुरेश्वराचार्य हैं। चिद्विलास, आनन्दगिरि, वह्निसहाय ये तीनों मण्डन मिश्र को सुरेश्वराचार्य कहते हैं। गुरुवंशकाव्य और व्यासाचलीय दोनों कहते हैं कि आचार्य शङ्कर अन्य एक गृहस्थ मण्डन मिश्र से भी मिले। माधवीय के अनुसार मण्डन मिश्र, विश्वरूप व सुरेश्वर सब एक ही व्यक्ति का नाम मालूम पडता है। 'मण्डन' किसी का नामधेय नहीं है पर यह पदवी या उपादी है। 'मण्डन' शब्द का अर्थ अलङ्कार या भूषण या सर्वोच्च सर्वोत्तम या विद्वान मण्डली के सिरमोर भी कहा जाता है। उन दिनों में प्रकान्ड पन्डित को पन्डित मन्डली के मण्डन स्वरूप होने के कारण 'मण्डन' पदवी दी जाती थी और श्रीविश्वरूप को इस पद से संबोधित किया जाता था। श्रीविश्वरूप गौडब्राह्मण थे और इसलिये 'मिश्र' के नाम से संबोधित किया गया था। वार्तिककार का नाम मण्डन विश्वरूपमिश्र था न कि केवल मण्डन मिश्र पर आपके पश्चात् काल की पुस्तक रचयिताओं ने आपको इस छोटे नाम से संबोधित करने लगे। इससे अर्वाचीन काल के विद्वानों में भ्रम उत्पन्न हुआ और पदवी को नामधेय मानकर दोनों मण्डन मिश्र को एक ही व्यक्ति होने की कथा लिख गये। यद्यपि 'ब्रह्मसिद्धि' के रचयिता मण्डन मिश्र पृथक थे उस मण्डनमिश्र उर्फ श्रीसुरेश्वर से जिन्होंने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' लिखी थी तथापि इस नाम के भ्रम में इन दोनों को एक ही व्यक्ति मानने लगे। उस समय वास्तव में दो व्यक्ति 'मण्डन मिश्र' के नाम से थे। यद्यपि एक का नाम श्रीविश्वरूप था तथापि आपके पान्डित्य, महत्ता व प्रख्याति के कारण आपको मण्डन मिश्र (पन्डित मन्डली के मण्डन स्वरूप गौडजाति ब्राह्मण) के नाम से पुकारा जाता था पर आपके गांववाले प्रेमीजन अपने प्रेम, भक्ति व अभिमान से आपको 'उम्बक' (पिता) नाम से पुकारते थे। आप सन्यास धारण करने के बाद सुरेश्वराचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए। आपका चरित्र सब शङ्कर विजयों में पाया जाता है। आपके अलावा एक और मण्डनमिश्र थे जो आचार्य से मिले और आप गृहस्थ ही रह गये। आप ही ब्रह्मसिद्धि के रचयिता हैं। म. म. प्रो. एस. कुप्पुस्वामी शास्त्रीजी का भी यही अभिप्राय है। व्यासाचल शङ्करविजय एवं गुरुवंशकाव्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दो व्यक्ति, श्रीविश्वरूप एवं श्रीमण्डन मिश्र, दोनों आचार्य शङ्कर से मिले। श्रीविश्वरूप को मण्डनमिश्र की पदवी से संबोधित करने के कारण एवं भूल से पदवी को व्यक्ति का नाम समझ कर ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। अतः चिद्विलास, आनन्दगिरि, वह्निसहाय आदियों से रचित शङ्करविजयों में जो उल्लेख है कि मण्डन मिश्र ही सुरेश्वराचर्य हुए उस 'मण्डन मिश्र' का तात्पर्य श्रीविश्वरूप ही है चूंकि एक अन्य मण्डन मिश्र जो आचार्य शङ्कर के माहिष्मती नगर पहुंचने के पूर्व आपसे मार्ग में मिले थे वह मण्डन मिश्र गृहस्थ रह गये और आपने सन्यासाश्रम नहीं लिया और माहिष्मती के मण्डन मिश्र सन्यासाश्रम लेकर श्रीसुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध भये। माधवीय शङ्करविजय में 'उम्बेक' के उल्लेख से कुछ विद्वान इस 'उम्बेक' को अलग व्यक्ति मानकर भवभूति से अभिन्न होने की बात मानते हैं और भवभूति को 'वचनमाला (बालक्रीडा पर टीका)' एवं 'बालक्रीडा व्याख्या' में दिये कुछ श्लोकों के आधार पर विश्वरूप मानते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति टीका को 'बालक्रीडा' ग्रंथ कहते हैं। माधवीय में उल्लेख 'उम्बेक' पद का अर्थ 'पिता' है जो माहिष्मति के वासी श्रीविश्वरूप को प्रेम से इस नाम से पुकारते थे।

अब भी उस सीमा के लोग 'उम्वक' का अर्थ पिता कहते हैं और वैसा पुकारते भी हैं। यह रूढी है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि उम्बेक और मण्डन मिश्र दोनों भिन्न व्यक्ति हैं चूंकि उम्बेक ने मण्डन रचित 'भावनाविवेक' ग्रंथ पर टीका लिखी है। कुमारिल भट्ट के पुत्र जयमिश्र ने 'श्लोकवार्तिक' पर टीका लिखी है जो टीका का पूर्वभाग श्रीकुमारिल भट्ट के शिष्य श्रीउम्बेक ने पहिले ही लिख चुके थे। इस विषय पर समालोचना प्रस्तुत प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है इसलिये यहां इस विषय का पूर्ण समालोचना की नहीं जाती है।

(3) आचार्य शङ्कर रचित श्रीदक्षिणामूर्ति स्तोत्र पर श्री सुरेश्वराचार्य का 'मानसोल्लास' वार्तिक का टीकाकार श्री रामतीर्थ लिखते हैं कि श्री विश्वरूपाचार्य ही श्री सुरेश्वर हैं, यथा—'तच्छिष्यैर्विश्वरूपाचार्यैः सुरेश्वरापरनामभिस्तत्पद्यबन्धार्थं तत्वं तात्पर्यतो मानसोल्लास नाम्ना वार्तिकात्मनाग्रन्थसन्दर्भेणाविष्कृतम्।'

(4) पराशर माधवीय, Vol. I, पृष्ठ 57, में श्री माधवाचार्य कहते हैं 'इदञ्चवाक्यं नित्यकर्म्म-विषयत्वेन वार्तिके विश्वरूपाचार्यैः उदाजहार—आम्रे फलार्थ इत्यादि ह्यापस्तम्बस्मृतेर्वचः। फलवत्वं समाचष्टे नित्यानामपि कर्मणां॥ इति।' उपर्युक्त श्लोक श्री सुरेश्वर के बृहदारण्यक संबन्धवार्तिक का श्लोक 97 है। श्री विश्वरूपाचार्य ने उद्धृत किया है कहकर श्री सुरेश्वर के श्लोक को दिया गया है और यह विषय विश्वरूपाचार्य ही सुरेश्वराचार्य होने की पुष्टी करती है।

(5) विवरणप्रमेयसंग्रह में श्री विद्यारण्य कहते हैं—'तत्तारतम्यं च तदेतत् प्रेयः पुत्रात् इत्यस्याः श्रुतेः व्याख्यानावसरे विश्वरूपाचार्यैः दर्शितम्—वित्तात् पुत्रः पुत्रात् पिण्डः पिण्डात् तथेन्द्रियम्। इन्द्रियेभ्यः प्रियः प्राणः प्राणात् आत्मा परः प्रियः॥' उपर्युक्त श्लोक श्री सुरेश्वर के बृहदारण्यकवार्तिक II (4)1029 में है। विश्वरूपाचार्य ने ऐसा तारतम्य दिखाया है कहकर श्री सुरेश्वराचार्य के श्लोक को उद्धृत करने से यह प्रतीत होता है कि विश्वरूपाचार्य ही सुरेश्वराचार्य थे।

(6) जीवनमुक्तिविवेक में श्री विद्यारण्य कहते हैं—'तदाहुः विश्वरूपाचार्याः—शुभैराप्नोतिदेवत्वं निषिद्धैर्नारकीं गतिम्। उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां मानुष्यं लभतेऽवशः।' यह श्लोक श्री सुरेश्वराचार्य के नैष्कर्म्यसिद्धि के श्लोक 41 वां है। विश्वरूप ने कहा है कहकर श्री सुरेश्वर के श्लोक उद्धृत किया गया है अर्थात् विश्वरूप ही सुरेश्वर हैं।

(7) याज्ञवल्क्य स्मृति पर श्री विश्वरूपाचार्य का बालक्रीडा व्याख्या की एक टीका 'वचनमाला' है जिसमें यह श्लोक है—'अवनम्य मनुसुरेश्वर योगीश्वर तीव्रकिरण गुरुचरणान्। शास्त्राणां व्याकर्तृन् कर्तृनपि देवता निखिलाः।' म. म. टि. गणपति शास्त्री जी 'बालक्रीडा' के संपादक लिखते हैं कि विश्वरूपाचार्य ही को उपर्युक्त श्लोक में सुरेश्वर का नाम दिया गया है। वेदात्म यतीश्वर एक जगह 'भवभूति सुरेशाख्यं' का उल्लेख किया है और आपका अभिप्राय है कि 'भवभूति' एक उपादी है जैसे शिवदास और सुरेश्वर रचित मानसोल्लास एवं बालक्रीडा में शिव का यशोगान व स्तुति की है।

(8) पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ का ताम्रशासन जिसे महाराजा सुधन्वा ने आचार्य शङ्कर को देने की कथा सुनाते हैं उसमें भी 'विश्वरूपापरनाम सुरेश्वराचार्यान्' ऐसा उल्लेख है। इसी ताम्र शासन में यह भी उल्लेख है कि श्री हस्तामलक का परनाम पृथ्वीधर है और आपको शृंगेरी का मठाधीश कहा गया है। पर कुम्भकोण मठ पृथ्वीधर को शृंगेरी मठ में और हस्तामलक को पूर्वाम्नाय जगन्नाथ मठ में दिखाते हैं अर्थात् थे दोनों पृथक व्यक्ति होने की कथा सुनाते हैं।

(9) पूर्वाम्नाय जगन्नाथ गोवर्धन मठ के गुरुपरम्परा में आचार्य शङ्कर के चार राज शिष्य व बारह साधारण शिष्य एवं चार जगद्गुरु शिष्यों के नाम उल्लेख है। आचार्य के चार जगद्गुरु शिष्यों का नाम— 'पञ्चपादादिकर्तारं पद्मपादं सनन्दनम्। वार्त्तिकादि ग्रन्थकारं विश्वरूपं सुरेश्वरम्॥ पृथिवीधराख्यं श्री मद्धस्तामलक योगिनम्। तोटकं चानन्दगिरिं प्रणमामि जगद्गुरुन्'। इससे प्रतीत होता है कि विश्वरूप का नाम सुरेश्वर था। पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ का ताम्रशासन एवं पूर्वाम्नाय गोवर्धन मठ का गुरुपरम्परा दोनों हस्तामलक का परनाम पृथ्वीधर कहता है पर कुम्भकोण मठ पृथ्वीधर व हस्तामलक को भिन्न व्यक्ति कहते हैं और पृथ्वीधर को शृंगेरी का मठाधीश बताते हैं और हस्तामलक को गोवर्धन मठ का आचार्य कहते हैं।

(10) तैत्तिरीय उपनिषद दीपिका में श्री शङ्करानन्द लिखते हैं—'वक्ष्येऽधुनाशङ्कर विश्वरूप वाचा विनिर्णीत समस्त वाक्यं। कृष्णं यजुस्तित्तिरिनाम चिन्हं पदार्थशुद्ध्यर्थमतीव सार्थं॥' उपर्युक्त श्लोक में विश्वरूप पद श्री सुरेश्वर का वार्तिक को बोध कराता है। अर्थात् श्री विश्वरूप ही श्री सुरेश्वराचार्य हैं। यहां एक मार्के की बात है कि कुम्भकोण मठ श्री शङ्करानन्द को अपने मठ के मठाधीष कहते हैं पर आपसे रचित पुस्तकों में कहीं भी 'इन्द्रसरस्वती' का अङ्कित नाम नहीं लिया है (कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 'इन्द्रसरस्वती' योग पट्ट केवल आपके मठाधीषों का अङ्कित नाम है और कुम्भकोण मठाधीष सब इसे धारण करते हैं) और आप अपने गुरु का नाम आनन्दात्म सरस्वती कहते हैं पर कुम्भकोण मठ की वंशावली अनुसार 'श्री विद्यातीर्थ इन्द्रसरस्वती' आपके गुरु थे। विजयनगर राज्य इतिहास एवं दानशासनपत्र व शिलाशासन आदि अनेक दृढ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्री विद्यातीर्थ जी शृङ्गेरी मठाधीष थे न कि कहेजानेवाले कांची मठाधीष। कुम्भकोण मठ के मिथ्या प्रचार का यह एक नमूना है। इस विषय को आगे विस्तरित किया गया है।

(11) सुरेश्वराचार्य की समाधि शृंगेरी में है। वृद्ध परम्परा से यही सुना गया है कि व्याख्यान सिंहासन पीठ में आचार्य शङ्कर के पश्चात् आप ही वहां के मठाधीष बने और आपका निर्याण शृंगेरि में ही हुआ। पर कांची में इनका निर्याण स्थल कहकर कुम्भकोण मठ तीन जगह बताते हैं (1) कांची मठ आङ्गन में समाधि है (2) कांची के पास एक गांव 'पुण्यरस' में निर्याण हुआ जहां एक उद्यान व बृन्दावन है (3) कांची नगर में हुआ और एक वीथी का नाम भी 'मण्डनमिश्र अग्रहार' के नाम से पुकारा जाता है। कांची नगर का स्थलपुराण, नगर इतिहास, जिला गजटियर, ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी का रिकार्ड, नगर म्युनिसिपल रिकार्ड आदि देखे गये और कहीं भी पुण्यरस ग्राम का उल्लेख एवं मण्डन मिश्र अग्रहारम् का उल्लेख नहीं पाया। केवल कांची मठ व मठानुयायी अपने प्रचार पुस्तकों में इन नामों का उपयोग करते हैं। वीथी का नाम 'मण्डन मिश्र अग्रहार' किसने दिया और कब दिया गया सो किसी को मालूम नहीं है। कांची म्युनिसिपल रिकार्डों (पुराकाल के) में भी इस नाम की वीथी नहीं है। चाहे जो हो, श्रीसुरेश्वराचार्य के पूर्वाश्रम नाम से वीथी का नाम देना उचित व न्याय प्रतीत नहीं होता है। यह कहा जाता है कि शुक्ल यजुर्वेद अनुयायी कुछ लोग एवं कुछ गौड ब्राह्मण विद्वान कांची में पुराकाल में वास करते थे और सम्भवतः इस निवास स्थल का नाम 'मण्डनमिश्र अग्रहार' कहा गया हो, यदि मण्डन मिश्र वीथी कांची में होने का विषय मान लिया जाय। 'मण्डन मिश्र अग्रहार' से यह नहीं सिद्ध होता कि श्रीसुरेश्वराचार्य कांची मठ में मठाधीष थे। व्यासाचलीय व गुरुवंशकाव्य दोनों ग्रंथ मण्डन मिश्र और विश्वरूप को पृथक व्यक्ति माना है और विश्वरूप ही सुरेश्वराचार्य हैं ऐसा उल्लेख है। कुम्भकोण मठ का 'मण्डनमिश्र अग्रहार' कथन भी मिथ्या हो जाता है चूंकि 'मण्डनमिश्र' 'श्रीसुरेश्वराचार्य' न थे पर अन्य एक अलग व्यक्ति थे। कुम्भकोण मठ के श्रीआत्मबोधेन्द्र कहते हैं कि एक

मठाम्नाय में विश्वरूप को श्रृंगेरी का मठाधीष कहा है और इस विषय पर व्याख्या करते हुए आप आगे कहते हैं कि विश्वरूप एवं पृथ्वीधव दोनों में अधिक अन्योन्यता होने के कारण पृथ्वीधव की जगह में विश्वरूप को कहा गया है। कुम्भकोण मठ द्वारा मानी हुई बात है कि श्रृंगेरी में विश्वरूपाचार्य थे और यदि यह सिद्ध हो जाय कि श्रीविश्वरूप ही श्रीसुरेश्वराचार्य थे तो कुम्भकोण मठ को मानना भी होगा कि सुरेश्वराचार्य श्रृङ्गेरी मठाधीष थे। श्री एन्. के. वेङ्कटेसन (कुम्भकोण मठ के अनन्य भक्त प्रचारक एवं कुम्भकोण मठ प्रतिनिधि बडोदा सम्मेलन में) ने अपने से रचित मठ प्रचार पुस्तक के द्वितीय संस्करण में विश्वरूपाचार्य को सुरेश्वराचार्य मान लिया है पर अब आपका प्रचार है कि विश्वरूपाचार्य ही कांची मठाधीष थे अर्थात् आपका कहना है कि 'गुरुरत्नमाला' एवं कुम्भकोण मठ की 'मठाम्नायसेतु' जो विश्वरूप को श्रृंगेरी मठाधीष होने का कहता है सो मिथ्या कथन है। क्या अब कुम्भकोण मठ का पूर्वकथन कि विश्वरूपाचार्य श्रृंगेरी में थे सो असत्य है?

(12) यह निस्सन्देह सिद्ध है कि विश्वरूपाचार्य ही सुरेश्वराचार्य थे और आप कांचीमठ में थे ही नहीं। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार 'विश्वरूपाचार्य श्रृंगेरी मठाधीष थे' इससे सिद्ध होता है कि श्री सुरेश्वराचार्य ही श्रृंगेरी मठाधीष थे। कुम्भकोण नगर समीप नड्डुकावेरी ग्रामवासी एक प्रकान्ड विद्वान ब्रह्म श्री श्रीनिवास शास्त्री जी जिन्हें इस कुम्भकोण मठ विषयक पूर्ण कथा विवरण मालूम था, आप श्री विश्वरूप को श्री सुरेश्वर कहकर श्रृंगेरी का मठाधीष बनाया है—'अद्राक्षंभाग्ययोगाच्छ्रुतिहृदयविदामग्रणीर्योगिराजो। येन श्री विश्वरूपोन्ययमि पुखरे शारदापीठरम्ये। तुङ्गाभङ्गानुषङ्ग प्रतिकल कलित स्वाश्रम ध्यानयोगे। श्रृङ्गेरीधाम्नितस्य श्रतिशिखरगुरोः पावनं जन्मदेशं॥'

(13) कुम्भकोणम् के ब्रह्म श्री हालास्यनाथ शास्त्री जी 'जगद्गुरु तारावलिस्तुति' में लिखते हैं 'सुरेश्वर परम्परा कृत सपर्य तुङ्गासरित्तटाश्रय सरोरुहासन कळत्र सेवोत्सुकं।' आधुनिक काल के विद्वानों का अभिप्राय यहां नहीं दिया जाता है चूंकि अभाग्यवश अनेक कारणों से कुछ आधुनिक विद्वानों का स्वभाव हो गया है कि जब वे किसी की स्तुति करते हैं तो उन्हें महत्ता की चोटीमें बिठाने का प्रयत्न करते हैं और ऐसे विद्वान, यशोगान गाया हुआ व्यक्ति व संस्था के कृपाभाजन हो जाते हैं। ऐसे पन्डितों से रचित काव्य व पुस्तकों से अभिप्राय लेना न्याय न होगा चूंकि इसमें यथार्थता का मात्रा बहुत कम रहता है।

(14) श्रृङ्गेरी गुरुपरम्परा में ऐसा लिखा है—'विश्वंमायामयत्वेनरूपितं यत्प्रबोधतः विश्वं च यत्स्वरूपं तं वार्तिकाचार्यमाश्रये।' इससे प्रतीत होता है कि विश्वरूपाचार्य ही वार्तिकाचार्य यानी सुरेश्वराचार्य होकर श्रृङ्गेरी मठाधीष बने।

(15) कुम्भकोण मठ मठाधीष वंशावली में श्री सुरेश्वराचार्य के बाद सर्वज्ञ श्री चरणेन्द्र सरस्वती (संक्षेपशारीरकं के रचयिता) का नाम दिया है। यदि आपको भी कुम्भकोण मठाधीष न होने का प्रमाणयुक्त कारण देकर सिद्ध किया जाय तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आपसे कहेजानेवाले पूर्वाचार्य श्री सुरेश्वराचार्य भी कांची मठ में न थे। पाठकगण इस खन्ड के चतुर्थ अध्याय में यह सिद्ध किया हुआ पायेंगे कि सर्वज्ञ श्री चरण कांची मठ के मठाधीष न थे। अब कुम्भकोण मठ यह प्रचार करते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य कहीं भी मठाधीष होकर बैठे न थे और आप मठों के संचालक व मुखिया बनकर रहे और इसीलिये कांची मठाधीष सर्वज्ञ श्रीचरण बने। ऐसे भ्रमात्मक एवं निराधार प्रचार से दोनों पक्षों के निर्णय पर अपनी सम्मति देने का एक मार्ग मिलजायगा तथा अपने मिथ्या प्रचारों की पुष्टी भी होगी। इसीलिये यहां सर्वज्ञ श्रीचरण का भी उल्लेख किया गया है ताकि पाठकगण सत्यता जान लें।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि पश्चिमाम्नाय द्वारका मठाधीष श्री ब्रह्मस्वरूप को पढाने के लिये विद्यागुरु बनकर सर्वज्ञ श्री चरण कांची से द्वारका गये और वहां कुछ वर्ष वास किये। पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ इस भ्रामक मिथ्या प्रचार का घोर विरोध कर प्रमाण युक्त सिद्ध किया है कि यह प्रचार असत्य है। श्रीसुरेश्वराचार्य की निगरानी में सर्वज्ञ श्री चरण कांची में थे और अब ये ही दोनों व्यक्ति द्वारका कैसे पहुंचे एवं शिष्य अपने गुरु को कैसे पाठ पढाने लगे? इस समय कांची में कौन था? यदि मान लें कि ब्रह्मस्वरूप अलग व्यक्ति हैं तो इसमें क्या प्रमाण है कि आपने सर्वज्ञ श्रीचरण से पाठ पढा था?

(16) कुम्भकोण मठ के एक प्रचार पुस्तक में उल्लेख है 'तत्र संस्थाप्य कामाक्षीं जगाम परमं पदम्। विश्वरूप यतिं स्थाप्य स्वाश्रमस्य प्रचारणे॥' इस श्लोक से कुम्भकोण मठ भ्रम पैदा कराते हैं कि कांची में विश्वरूप यति थे। पर इस श्लोक के पूर्व श्लोक एवं बाद के श्लोकों को ध्यान से पढा जाय और पूर्वापर संदर्भ को ध्यान में रखकर अर्थ किया जाय तो यहां स्पष्ठ मालूम होता है कि पृथ्वीधर भारती श्रृंगेरी में विश्वरूप यति को बैठाकर स्वयं पृथ्वीधर कांची पहुंचे 'स्वयं कांचीमगात्तूर्णं श्री पृथ्वीधर भारती। तद्वृत्तान्तं समाकर्ण्य तपसः सिद्धये तदा।' विश्वरूप श्रृंगेरी में थे न कि कांची में। बेलगांव के श्री गोविन्दभट्ट यार्लेकर के पास एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति है जिसमें यह सब श्लोक पाये जाते हैं और जो कुछ डा० हल्टज ने उद्धरण किया है वह सब उक्त बेलगांव प्रति में पाया जाता है। अनुसन्धान विद्वानों ने अनेक कारण देकर सिद्ध किया है कि यह प्रति अप्रामाणिक एवं अग्राह्य है। कुम्भकोण मठ का एक प्रामाण्य पुस्तक मार्कन्डेय संहिता में यह श्लोक होने का प्रचार करते हैं 'काञ्च्यां श्री कामकोटौ तु योगलिङ्गमनुत्तमम्। प्रतिष्ठाय सुरेशार्य पूजार्थन् युयुजे गुरुः॥' कुम्भकोण मठ से प्रचार किया हुआ प्रामाणिक पुस्तकों द्वारा स्पष्ठ मालूम होता है कि विश्वरूप ही सुरेश्वराचार्य थे और कुम्भकोण मठ का जो प्रचार भी है कि श्री सुरेश्वराचार्य योगलिङ्ग पूजार्ह न थे सो भी मार्कन्डेय संहिता द्वारा असत्य ठहरता है। कुम्भकोण मठ का प्रथम प्रचार था कि विश्वरूप श्रृंगेरी के आचार्य थे, पश्चात् प्रचार हुआ है कि श्रृंगेरी में पृथ्वीधर थे, बाद कहा गया कि पृथ्वीधर या विश्वरूप श्रृंगेरी में थे, फिर प्रचार हुआ कि विश्वरूप श्रृंगेरी से कांची लौट आकर वहीं वास किये, पश्चात् प्रचार हुआ कि कुम्भकोण मठाधीष (सातवां/नौवां) श्री कृपा शङ्कर (आचार्य शङ्कर का द्वितीय बार अवतार) ने एक सुभट्ट विश्वरूप को श्रृंगेरी भेजा और अब प्रचार होता है कि अपने मठ में श्री विश्वरूपाचार्य (श्री सुरेश्वराचार्य) मठाधीष थे एवं श्रृंगेरी में श्री पद्मपाद थे (कुम्भकोण मठ का परिष्कृत्य आ. श. वि.)। उपर्युक्त इन भिन्न कथनों में कौन सा सत्य है सो कुम्भकोण मठ ही जाने जो इन सब भ्रामक मिथ्या प्रचार के प्रवर्तक हैं। इस पुस्तक में जगह जगह उक्त प्रचारों पर आलोचना की गयी है अतएव यहां विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है।

अनेक प्रमाण व कारण दिया जा सकता है पर उक्त निर्देशों से जब निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य कांची मठ में न थे एवं श्री विश्वरूप ही श्री सुरेश्वराचार्य भये और श्रृंगेरी मठाधीष श्री विश्वरूपाचार्य (श्री सुरेश्वराचार्य) ही थे तथा कुम्भकोण मठ का प्रचार सब मिथ्या है, तो अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है।

श्रीमण्डन मिश्र—श्रीसुरेश्वराचार्य

कुछ विद्वानों का जो अभिप्राय था कि मण्डनमिश्र ('ब्रह्मसिद्धि' रचयिता) ही श्रीसुरेश्वराचार्य थे सो भूल है। अन्वेषन करने पर जो सब सामग्री अब उपलब्ध होते हैं सो सब इन विद्वानों के अभिप्राय को भूल ठहराता है। अब उपलब्ध होनेवाली सामग्री यदि उक्त विद्वानों को प्राप्त हुई होती तो अवश्य अपना अपना अभिप्राय भी भिन्न ही देते। 'मण्डन' पद किसी व्यक्ति का नाम नहीं है पर यह पदवी प्रकान्ड पन्डितों को दिया जाता था और 'मिश्र' पद

गौड ब्राह्मण होने का संकेत करता है। कुछ विद्वानों ने मण्डनमिश्र पद को व्यक्ति का नाम समझकर दो भिन्न व्यक्तियों को जिन्हें इस पदवी से संबोधित किया जाता था उन्हें एक ही अभिन्न व्यक्ति होने की कथा लिख गये। म. म. श्रीकुप्पुस्वामी शास्त्री एवं श्रीदिनेश चन्द्र भट्टाचार्य ने अनेक प्रमाण देकर विस्तार पूर्वक आलोचना करते हुए सिद्ध किया है कि मण्डनमिश्र व श्रीसुरेश्वराचार्य ये दोनों पृथक व्यक्ति थे। मण्डनमिश्र के 'ब्रह्मसिद्धि' पुस्तक जिसे मदरास राजकीय पुस्तकालय ने प्रकाशित की है इस पुस्तक की प्रस्तावना में श्रीकुप्पुस्वामी शास्त्री ने इस विषय पर आलोचना की है। पाठकगण कृपया इस प्रस्तावना को पढें। इस विषय पर जब मैं ने कुछ विद्वानों से परामर्श लिया था वे सब निम्नलिखित कारण देकर कहा कि मण्डनमिश्र व सुरेश्वराचार्य पृथक् व्यक्ति हैं।

(क) संक्षेपशारीरक एवं इसकी व्याख्या में श्रीमण्डन मिश्र के सिद्धान्दों का खन्डन किया गया है और श्रीसुरेश्वराचार्य के सिद्धान्तों की पुष्टी की गयी है।

(ख) श्रीविद्यासागर द्वारा रचित टीकारत्न जो पंचपादिका की व्याख्या है इसमें दोनों (एक पक्ष मण्डन–वाचस्पति एवं दूसरा पक्ष श्रीविमुक्तात्मन्) के सिद्धान्तों की तुलना करते हुए इन दोंनों की भिन्नता को दिखाया है। यह सब को विदित है कि श्रीसुरेश्वराचार्य के सिद्धान्तों का अनुयायी विमुक्तात्मन हैं।

(ग) श्रीसुरेश्वराचार्य रचित नैष्कर्म्यसिद्धि के एक टीकाकार ने अपरोक्ष ज्ञान की चर्चा करते हुए वहां मण्डन-वाचस्पति के सिद्धान्तों का खण्डन किया है। अपने इस चर्चा के प्रमाण में मण्डनमिश्र द्वारा रचित 'ब्रह्मसिद्धि' (अध्याय IV) के श्लोकों को उद्धृत किया है।

(घ) मण्डनमिश्र ज्ञान–कर्म–समुच्चय सिद्धान्तों को माननेवाले हैं और श्रीसुरेश्वराचार्य कर्म्म समुच्चय सिद्धान्तों का तिरस्कार किया है।

(ङ) मण्नडमिश्र ने श्रीभतृहरि के सिद्धान्तों के साथ स्फोटवाद की पुष्टी की है पर श्रीसुरेश्वर इन दोनों मीमांसा सिद्धान्तों का स्वीकार नहीं करते।

(च) श्रीवाचस्पति जो मण्डन के सिद्धान्तों का कट्टर अनुयायी थे आपने श्रीसुरेश्वर के ग्रंथों पर विमर्श न लिखा। श्रीआनन्दगिरि के अनुसार श्रीवाचस्पति का काल श्रीसुरेश्वराचार्य का काल के पश्चात् का ही है। 'त्रैय्यन्तनिष्ठिता' में वाचस्पति का संकेत है। वाचस्पति स्फोटवाद पर अपना भिन्न अभिप्राय रखते थे और इसीलिये आपने एक स्वतंत्र ग्रंथ रचा था, नहीं तो आप मण्डन के 'स्फोट सिद्धि' का विस्तार कर ग्रंथ लिख जाते।

(छ) श्रीप्रकाशात्म यति ने अपने ग्रंथों में (विवरण तथा शब्दनिर्णय) सुरेश्वर के मत का मण्डन किया है और मण्डन के मत खण्डन किया है। मन्डनमिश्र को ब्रह्मसिद्धिकार कहा है न कि सुरेश्वराचार्य।

(ज) आनन्दबोध ने अपने 'न्यायमकरन्द' में ब्रह्मसिद्धि से अनेक उद्धरण दिया है और उसके मत को स्वीकार भी किया है। अन्य स्थानों पर आपने श्रीसुरेश्वराचार्य के मत को स्वीकार भी किया है। ग्रंथकार ने श्रीसुरेश्वराचार्य और मन्डनमिश्र को भिन्न भिन्न व्यक्ति माना है।

(झ) आनन्दानुभव रचित 'न्यायरत्नदीपावली' (आनन्दगिरि टीका सहित) में जो कुछ सन्यास के प्रसङ्ग में लिखा है वह सब स्पष्ट मन्डनमिश्र व सुरेश्वराचार्य को पृथक् व्यक्ति सिद्ध करता है। अन्य

एक पुस्तक है 'न्यायदीपावली' जिसके रचयिता आनन्दबोध हैं और जिसका टीका आनन्दगिरि ने की है अतः यह पुस्तक 'न्यायरत्नावली' से भिन्न है। आनन्दबोध से आनन्दानुभव पृथक हैं। आनन्दबोध के गुरु आत्मावास थे। चित्सुख ने भी आनन्दबोध ग्रंथ पर टीका लिखी है। नारायण-ज्योतिष-पूज्यपाद के शिष्य आनन्दानुभव आनन्दारण्य से पृथक हैं। आनन्दारण्य के शिष्य ज्ञानामृत (नैष्कर्म्यसिद्धि के टीकाकार) हैं। इन नामों द्वारा भ्रम में पडकर अपना भूल अभिप्राय देते हैं, इसीलिये यहां इसका उल्लेख किया जाता है।

मन्डनमिश्र भी अद्वैतवादी हैं परन्तु आपका अद्वैतवाद आचार्य शङ्कर के अद्वैतवाद से भिन्न है। श्रीसुरेश्वराचार्य ने नैष्कर्म्यसिद्धि तथा वार्तिक में जिस अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है उससे भी मन्डन का सिद्धान्त भिन्न है। माधवीय शङ्करविजय में लिखा है कि आचार्य के शिष्यों ने कहा कि सुरेश्वराचार्य गृहस्थाश्रम में एक प्रसिद्ध कर्मकाण्डी मीमांसक थे और इसी शङ्करविजय में इस बात का प्रतिवाद भी उल्लेख है। श्रीसुरेश्वराचार्य ने कहा कि ज्ञान काण्ड के ऊपर आपका आग्रह किसी से भी कम नहीं है। इस शङ्करविजय के आधार पर विद्वानों ने सुरेश्वर और मण्डन को एक ही अभिन्न व्यक्ति माना था। पर शङ्करविजय के कथन से यह सिद्ध नहीं होता कि 'ब्रह्मसिद्धि' के रचयिता मन्डन मिश्र ही सुरेश्वराचार्य भये चूंकि 'मन्डन' पदवी श्रीविश्वरूपाचार्य को भी था। तीव्र कर्म्मकान्डी श्रीकुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डली में मण्डन विश्वरूप मिश्र का स्थान ऊंचा था और आप अपने गृहस्थाश्रम में एक कट्टर कर्म्मकान्डी मीमांसक थे और इसीलिये आचार्य शङ्कर के अन्य शिष्यों ने श्रीसुरेश्वराचार्य पर सन्देह किया था सो ठीक ही प्रतीत होता है पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आप अपने पूर्वाश्रम में 'ब्रह्मसिद्धि' पुस्तक की रचना की थी। ब्रह्मसिद्धि के रचयिता मन्डनमिश्र एक गृहस्थ थे और आपने सन्यासाश्रम ग्रहण नहीं किया। आपके वृद्धावस्था में ही आचार्य शङ्कर ने आपसे भेंट की थी। उस समय मन्डन विश्वरूप मिश्र (श्रीकुमारिल भट्ट के शिष्य) की आयु बहुत ही कम थी ब्रह्मसिद्धि के रचयिता मन्डनमिश्र की अपेक्षा। आचार्य शङ्कर इन दोनों व्यक्तियों से मिलते हैं और मन्डन विश्वरूप मिश्र को ही सन्यास दीक्षा देते हैं। गुरुवंशकाव्य एवं व्यासाचलीय इन विषयों की पुष्टी करता है। श्रीहिरियण्णा से 1923/24 ई० में प्रकाशित लेखों में, म. म. श्रीकुप्पुस्वामि शास्त्री द्वारा 1937 ई० में ब्रह्मसिद्धि की भूमिका में, श्रीदिनेशचन्द्र भट्टाचार्य अपने रचित पुस्तक 'Cultural Heritage of India' में, श्री के. ए. नीलकन्ठ शास्त्री अपनी पुस्तक 'History of South India' में, आदि, मन्डनमिश्र व विश्वरूप को भिन्न व्यक्ति होने का निश्चय किया है। अग्राह्य पुस्तक मणिमंजरी भी इस भेद को बतलाता है। सम्भवतः मन्डनमिश्र ने 'ब्रह्मसिद्धि' की रचना आचार्य शङ्कर के भाष्य को देखकर लिखा हो और इस पुस्तक के उत्तर रूप में श्रीसुरेश्वराचार्य ने नैष्कर्म्यसिद्धि रचा हो।

मण्डन मिश्र रचित ब्रह्मसिद्धि के द्वितीय व तृतीय अध्याय का ही विस्तार रूप में श्री सुरेश्वराचार्य रचित सम्बन्ध वार्तिक में पाया जाता है और कुछ श्लोक इन दोनों पुस्तकों में समान ही पाया जाता है। अतः आधुनिक काल के कुछ विद्वानों ने इन दोनों व्यक्तियों को अभिन्न मान लिया था। पर इन कारणों से दो भिन्न व्यक्तियों को एक अभिन्न व्यक्ति निश्चय करना उचित व न्याय नहीं है। आचार्य शङ्कर के बृहदारन्यक भाष्य पर वार्तिक श्री सुरेश्वराचार्य ने लिखा है और इस वार्तिक की प्रस्तावना रूप में सम्बन्धवार्तिका नामक ग्रन्थ भी रचा है। इस प्रस्तावना (सम्बन्ध वार्तिका) का विषय आचार्य के भाष्य में पाया नहीं जाता। इसमें 1500 श्लोक से भी कुछ अधिक हैं। प्रश्न उठता है कि यह एक लम्बी प्रस्तावना लिखने का क्या कारण या आवश्यकता थी। यह प्रस्तावना श्री प्रभाकर व श्री भतृप्रपंच के सिद्धान्तों का खन्डन है। मन्डन मिश्र ने भी प्रभाकर के सिद्धान्तों का खन्डन किया है। ब्रह्म सिद्धि का तीसरा

अध्याय जो इस ग्रंथ का आधा से भी अधिक भाग है, इसमें प्रभाकर के 'नियोगवाद' का खन्डन किया है। इन खन्डनों के कारण शालिकनाथ और आपके शिष्य एवं आपके ग्रंथ के अन्य टीकाकारों ने साबर भाष्य पर भट्ट के विमर्श को निराकरण किया है। इन सब खन्डनों के उत्तर रूप में श्रीसुरेश्वराचार्य को एक लम्बी प्रस्तावना लिखना पडा जिसमे मन्डन के सब विवादों को अपनी पुस्तक में दोहराकर और जगह जगह अपना विचार भी साथ देकर शालिकनाथ के सिद्धान्तों पर तीव्र खन्डन किया है। इस घटना के कुछ शताब्दी बाद आये हुए विद्वानों ने इस परिस्थिति एवं कारणों को न जानकर या इस विषय पर आलोचना न करके कहने लगे कि मन्डनमिश्र व सुरेश्वर दोनों अभिन्न हैं चूंकि दोनों द्वारा रचित ग्रंथों में कहीं कहीं समता पायी जाती है। सम्भवतः आप लोग मानने न तैय्यार थे कि सुरेश्वराचार्य ने मन्डनमिश्र के पुस्तक से ही नकल किया है और आपके विचार में ऐसा मानने से श्रीसुरेश्वराचार्य की महत्ता घटती है। पुराकाल के शास्त्र पुस्तक रचयिता अपने पूर्व के विद्वानों या आचार्यों के भाव या विचारों को नकलकर या उसके साथ अपना विचार भी मिलाकर या उन विचारों को बदलकर अपने ग्रंथ में देते थे। भोज के 'श्रृङ्गार प्रकाश' व 'भाव-प्रकाश' एवं दर्शन शास्त्र के अनेक रचयिताओं ने ऐसा ही किया है। पुराकाल के विद्वान अपने अपने गुरु या प्रकान्ड विद्वानों या भूतपूर्व आचार्यों के सिद्धान्तों व विचार व उनके वाद पर अपनी व्याख्या या टीका टिप्पणी या उसका संग्रह रूप लिखकर कहते थे कि यह सब उनका ही कथन है। ऐसे दृष्टान्त अनेक दिया जा सकता है। जब श्रीसुरेश्वराचार्य को अनेकों के वाद पर खन्डन करना था तो ऐसी परिस्थिति में आपने जहां कहीं अपने विचारों के साथ समता पाते थे उसे भी उद्धृत कर अपने सिद्धान्त की पुष्टी करते थे। इसमें कोई आपत्ति अथवा रचयिता का महत्त्व घटता नहीं। इसलिये यह कहना भूल है कि श्रीसुरेश्वराचार्य ने श्रीमन्डन मिश्र के श्लोकों एवं आपके विवादों को नकल करने से ये दोनों व्यक्ति अभिन्न हैं। श्रीप्रभाकर भी एक प्रकान्ड विद्वान थे और सुरेश्वराचार्य के पूर्व आपकी महत्ता ऊंची थी।

श्री विद्यातीर्थ

माधवाचार्य के सर्वदर्शन संग्रह में निम्न लिखित श्लोक पाया जाता है—'पारंगतं सकलदर्शन सागराणां आत्मोचितार्थं चरितार्थित सर्वलोकम्। श्री शार्ङ्गपाणितनयं निखिलागमज्ञं सर्वज्ञविष्णु गुरु मन्वहमाश्रयेऽहम्।' इस श्लोक को देखकर कुम्भकोण मठ के गुरुवंशावली बनानेवाले श्री विद्यातीर्थ को भी अपने से कल्पित कुम्भकोण मठ के गुरुवंशावली में श्री विद्यातीर्थ का नाम जोड कर प्रकाशित किया है कि श्री विद्यातीर्थ का पूर्वाश्रम नाम सर्वज्ञविष्णु है और आप श्री शारङ्गपाणि के पुत्र थे। श्री विद्यातीर्थ को अपने गुरुवंशावली में जोड लेने का आधार एक श्लोक है जो कुम्भकोण मठ का कथन है कि यह श्लोक श्री शङ्करानन्द के बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका में पाया जाता है यथा—'काञ्चीपीठजुषः कठोरधिषणा निर्धूतदुर्धूर्तेह। द्वैतित्रातदुराग्रहग्रहभयान् मायाविदूरक्रियान्। आचार्यान् मम चन्द्रमौलि चरण ध्यानैकता नाशयान्। विद्यातीर्थ महेश्वरान् हृदि सदा विद्योतमानान् भजे॥' कुम्भकोण मठ की एकङ्गि पुस्तक पुण्यश्लोकमंजरी में ऐसा उल्लेख है 'विज्वारण्यजशार्ङ्गपाणितनयः सर्वज्ञविष्णुः श्रयन्, संन्यासं गुरु चन्द्रशेखरमुनेरास्थाय पीठां गुरोः। योगेशस्य च चक्रराज वसतेर्देव्याश्च सक्तोऽर्चने, श्री मन्माधव—बुक्क—भारतीयति प्रष्ठैर्महिष्ठैर्नुतः॥'

पाठकगणों की जानकारी के लिये यहां कुम्भकोण मठ प्रचार का सारांश दिया जाता है। कुम्भकोण मठ की प्रथम प्रामाणिक पुस्तक 'पुण्यश्लोकमंजरी' में लिखा है कि श्री विद्यातीर्थ उर्फ विद्याशङ्कर कांची पीठ में 73 वर्ष रहकर श्री शङ्करानन्द शिष्य के साथ हिमालय पर्वत पहुंचे और वहां 15 वर्ष तपश्चर्या कर 1384 ई० में वहां

समाधिस्थ हुए। कुम्भकोण मठ व आपके अनुयायियों, प्रचारकों द्वारा रचित पुस्तकों में भिन्न भिन्न कथायें भी प्रचार किया जाता है। आपलोगों का प्रचार है कि विद्येश उर्फ विद्यानाथ उर्फ विद्याशङ्कर उर्फ श्री विद्यातीर्थेन्द्रसरस्वती के गुरु चन्द्रचूड II उर्फ गङ्गेश्वर थे। कुम्भकोण मठ का ताम्र शासन (ता: 9—7—1291 ई०) जिसे Archaeological Dept. ने इस ताम्र शासन की यथार्थता एवं असलियत स्वीकार नहीं किया है और अन्य अनुसन्धान विद्वानों ने भी अपने विमर्श में इसे अग्राह्य ठहराया है, उस ताम्रशासन के संपादक एवं कुम्भकोण मठ के प्रचारक लिखते हैं कि यद्यपि इस ताम्रशासन में दान प्राप्त करनेवाले का नाम नही है पर यह चन्द्रचूड II (श्री विद्यातीर्थ के गुरु) को ही होने का अभिप्राय देते हैं और इस अभिप्राय का कोई प्रमाण या आधार नहीं देते। एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि श्री विद्यारण्य ही श्री विद्याशङ्कर थे और ये दोनों व्यक्ति भिन्न नहीं हैं। कुम्भकोण मठ के तीव्र प्रचारक श्री वेंकटेशम पन्तुलु आपका काल 1296 ई० से 1384 ई० का बताते हैं और एक प्रचार पुस्तक में 1297 ई० से 1370 ई० तक मठाधीष बनकर कांची में वास किये एवं 1370 ई० से 1385 ई० तक श्री विद्यातीर्थ अपने शिष्य श्री शङ्करानन्द के साथ हिमालय में वास किये थे। श्री एन्. वेंकटरामन 73 वर्ष एवं श्री पन्तुलु 70 वर्ष आपका मठशासन काल बतलाते हैं। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि आप 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट भी धारण किये थे। सायण, माधव, वेदान्तदेशिक, भारती कृष्ण आदि आपके शिष्य थे। श्री शङ्करानन्द भी आपके शिष्य थे और श्री माधव (श्री विद्यारण्य) ने श्री शङ्करानन्द को अपना गुरु मानकर आपसे सन्यासाश्रम लिये। कुम्भकोण मठ का यह भी प्रचार है कि मध्व संप्रदाय के बढते प्रचार को रोकने के लिये आपने अपने आठ शिष्यों को आठ नये मठों की स्थापना कर वहां वहां बैठाये जिसमें एक विद्यारण्य भी थे जो विरूपाक्षी मठ के अधीश थे। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि शृंगेरी मठ 800 वर्ष से विच्छिन्न पडा था और इस शोचनीय स्थिति को सुधारने के लिये आपने श्री विद्यारण्य को वहां भेजा था एवं श्री भारती कृष्ण उर्फ ब्रह्मानन्द को वहां का मठाधीष पदवी में नियोजन किया था। कुम्भकोण मठ की प्रामाण्य पुस्तक पुण्यश्लोकमंजरी में इन आठ मठों की स्थापना का वर्णन करता है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि इन आठ मठों में पांच मठ-विरूपाक्षी, पुष्पगिरि, शृंगेरी, करवीर, शिवगङ्गा-अब भी दिखाई देते हैं। आगे आप प्रचार करते हैं कि शृंगेरी मठ का पुनः जीवन देकर विच्छिन्न परम्परा को सुधारा था अतः शृंगेरी मठ कांची मठ का शाखा मठ है। श्री पन्तुलु लिखते हैं कि श्री हरिहर, बुक्क, सायण, माधव आदि कांची नगर आकर श्री विद्यातीर्थ के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति अर्पण कर पूजा की थी। कुम्भकोण मठ के एक प्रचार पुस्तक में यह भी लिखा है कि शृङ्गेरी मठ का जो मुद्रा 'विद्याशङ्कर' के नाम है सो कांची मठाधीष श्री विद्यातीर्थ से विद्या पद लिया गया है और श्री विद्यातीर्थ के शिष्य श्री शङ्करानन्द से शङ्कर पद लिया गया है। श्री विद्यारण्य ने शृङ्गेरी मठ का उद्धार किया था और इन दोनों के शिष्य थे। उक्त सब कारणों को देकर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ कांची मठ का शाखा मठ है। यह प्रचार न केवल मिथ्या और भ्रामक है पर यह कथन उन्मत्त प्रलाप है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि श्रीविद्यातीर्थ का पूर्वाश्रम नाम सर्वज्ञविष्णु था और आप सारङ्गपाणि के पुत्र थे। यह विषय माधवाचार्य के सर्वदर्शनसंग्रह के एक श्लोक के आधार पर कहते हैं। पर इसी ग्रंथ में माधवाचार्य का भाई श्रीसायण के पुत्र श्रीमाधवाचार्य ने सर्वज्ञविष्णु से लिखा हुआ पंक्तियां उद्धृत कर लिखते हैं— 'तदुक्त विवरण विवरणे सहज सर्वज्ञविष्णु भट्टोपाध्यायैः—न चात्र हेतुदृष्टान्तयोरेक प्रकाशरूपान्वयः शङ्कनीयः, तमोविरोध्याकारो हि प्रकाश शब्द वाच्यः, तेनाकारेणैक्यमुभयत्रास्तीति।' सर्वज्ञविष्णु भट्टोपाध्याय से रचित रिजुविवरण जो पंचपादिका विवरण पर व्याख्या है इससे उक्त पंक्तियां ली गयी है। इस पुस्तक में श्रीसर्वज्ञविष्णु अपने को स्वामी इन्द्रपूर्ण के शिष्य एवं श्रीजनार्दन के पुत्र कहते हैं—'इति स्वामीन्द्रपूर्ण पूज्यपादशिष्य—सर्वशास्त्र विशारद

जनार्दनात्मज—सर्वज्ञविष्णु भट्टोपाध्यायकृतौ ......।' माधवाचार्य रचित श्लोक में जो शारङ्गपाणी का नाम है वह नाम यातो उर्फ (परनाम) नाम होना चाहिये या जनार्दन नाम का छन्दपरियायनाम (metrical paraphrase) होना चाहिये। कहीं भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि आपने सन्यासाश्रम ग्रहण किया था। पर दृढ प्रमाण मिलते हैं कि सर्वज्ञविष्णु गृहस्थ थे और आपको कम से कम दो पुत्र भी थे। कुम्भकोण मठ का कथन है कि श्रीविद्यातीर्थ ब्रह्मचर्य्याश्रम से सन्यासाश्रम लिया था पर यह कथन मिथ्या ठहरता है। श्रीसर्वज्ञविष्णु के एक पुत्र 'तर्कभाषाप्रकाशिका' के रचयिता श्रीचेन्नु भट्ट थे। श्रीचेन्नु भट्ट स्वयं लिखते हैं—'श्रीहरिहर महाराज परिपालितेन सहज सर्वज्ञविष्णु देवाराध्य-तनूजेन सर्वज्ञानुजेन चेन्नु भट्टेन विरचितायां ... ... ।' श्रीचेन्नु भट्ट ने सार्वभौम के 'रामसौन्दर्य लहरि' पर व्याख्या रची है और वहां आप कहते हैं—'हरिहरराज समाजे निखिल निगमवित्समागतोलोकः। वचसां यस्य, विभूत्या सकुतुकहृदयो वितन्यते कामं॥ श्रीविष्णुदेवरार्यस्य चेन्नभट्टोयमात्मजः। रामसौन्दर्यलहरि काव्यं व्याख्यातुमिच्छति॥' आपने 'निरुक्ति' पुस्तक भी रचना की थी जिसपर श्रीविष्णुभट्ट ने एक वृत्ति की रचना की है। एक मार्के का विषय है कि इस वृत्ति में माधवाचार्य के श्लोक जो ऊपर दिया गया है उसे यहां दोहराया गया है तथा 'तर्कभाषा प्रकाशिका' का प्रथम श्लोक भी है—'सकृन्नत्वापि यं लोको लभते शान्ति सम्पदं। सनः पायादपायेभ्यो योगानन्दनृकेसरी।' भारद्वाजगोत्र बोधायन सूत्र श्रीमायण के तीन पुत्र थे—माधव, सायण, भोगनाथ। सायण के पुत्र का नाम भी माधव था। यह माधवाचार्य मायण का पोता था। सायण के पुत्र एवं मायण के पोता माधवाचार्य से रचित ग्रंथ 'सर्वदर्शनसंग्रह' है न कि मायण के पुत्र एवं सायण के भ्राता माधवाचार्य से। अनेक विद्वान इस विषय में भूल अभिप्राय रखते हैं। 'सर्वदर्शनसंग्रह' के रचयिता माधवाचार्य के गुरु सर्वज्ञविष्णु एक गृहस्थ था। सायण के बडे भाई माधवाचार्य का गुरु सर्वज्ञविष्णु कहना तो भूल है। 'सर्वदर्शनसंग्रह' के अन्त में रचयिता का नाम उल्लेख है न कि प्रारम्भ में जहां सायण-माधव का नाम लिया गया है। इन निर्देषों से स्पष्ट मालूम होता है कि सर्वज्ञविष्णु (सन्यास नाम श्री विद्यातीर्थ) कांची मठाधीष न थे।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्रीशङ्करानन्द रचित बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका में दिये हुए श्लोक 'काञ्चीपीठ जुष ... ... ।' के आधार पर निश्चित होता है कि श्रीविद्यातीर्थ कांची मठाधीष थे। श्रीशङ्करानन्द का यह दीपिका अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। अनेक पुस्तकालयों को लिखकर यह प्रयत्न किया गया कि इस पुस्तक का हस्तलिपि प्रति कहीं मिल जाय पर 5 साल की खोज व्यर्थ रहा। पश्चात् मालूम हुआ कि दो हस्तलिखित प्रतियां मदरास, अडयार पुस्तकालय और तंजौर पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। इन प्रतियों को संपूर्ण पढा गया और कहीं भी कुम्भकोण मठ से उद्धृत् श्लोक का नामो निशान नहीं पाया। मेरे पूज्य पिता के एक मित्र दक्षिणभारत का एक वृद्ध आदरणीय विद्वान ने भी इसे पूरा पढा था और आप भी लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ से उद्धरण किया श्लोक उक्त पुस्तक में नहीं पाया। तंजौर पुस्तकालय प्रति में भी यह श्लोक पाया नहीं जाता। सम्भवतः कुम्भकोण मठ को अपनी कल्पना जगत से प्राप्त हुआ होगा। कुम्भकोण मठ का आधार भी असत्य है। मुझे आश्चर्य न होगा कि मेरे कथन को असत्य बनाने के प्रयत्न में अब इन श्लोकों को इन पुस्तकों में जोड लें या एक नयी प्रति तैय्यार कर पुराने लेबल चिपका कर उसे प्रचार भी करें। सत्य विषय तो यह है कि कुम्भकोण मठ से प्रचारित श्लोक बृहदारण्यक उपनिषद दीपिका में नहीं है।

कुम्भकोण मठ के पुण्यश्लोकमंजरी से प्रतीत होता है कि श्रीविद्यातीर्थ (51 वां मठाधीष) के गुरु श्रीचन्द्रशेखर (50 वां मठाधीष) थे पर कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में आपका गुरु चन्द्रचूड II उर्फ गङ्गेषर का नाम दिया गया

है। Ep. Indica, Vol. XIV में कुम्भकोण मठ की गुरुरत्नमाला पुस्तक के आधार पर एक वंशावली सूची प्रकाशित है जिसमें चन्द्रशेखर को 45 वां मठाधीष और श्रीविद्यातीर्थ को 46 वां आचार्य दिखाया गया है। एक प्रचार पुस्तक में 50 वां व 51 वां मठाधीष दिखाया गया है और अन्य पुस्तकों में 45 वां व 46 वां दिखाया गया है और प्रश्न उठता है कि पांच और मठाधीष कहां से टपक पडे जब आपके मठ की मूल प्रमाण पुस्तक गुरुरत्नमाला ही 46 वां मठाधीष कहता है। एक सूची में श्रीविद्यातीर्थ का शिष्य श्रीशङ्करानन्द को दिखाया गया है और अन्य एक सूची में शिवयोगिन् दिखाया गया है। इस दूसरी सूची में शङ्करानन्द को शिवयोगिन का शिष्य बनाया गया है। यथार्थ वंशावली सूची में ऐसे भेद पाये नहीं जाते और भिन्न सूची भी नहीं होती। श्रीशङ्करानन्द अपने से रचित पुस्तकों में अपने को शङ्करानन्द सरस्वती कहते हैं न कि 'शङ्करानन्द इन्द्र सरस्वती'। अपने से रचित पुस्तकों में अपने गुरु का नाम श्री आनन्दात्म सरस्वती कहते हैं। आपने कहीं भी आप से रचित पुस्तकों में विद्यातीर्थ का नाम नहीं लिया है। श्रीविद्यातीर्थ के गुरु श्रीनरसिंह तीर्थ थे और आप शृङ्गेरी मठाधीष थे। बम्बई मुद्रित गुरु परम्परा चरित्र में स्पष्ट उल्लेख है कि कांची का मठ एक शाखा मठ है (जो अब कुम्भकोणम् आ गया है) और यह कांची मठ श्रीविद्यातीर्थ के समय स्थापित हुआ था। इस पुस्तक के तृतीय खन्ड में अनेक अभिप्राय, विचार, व्यवस्था प्रकाशित हैं जो सब कांची मठ को शाखा मठ होने का निश्चय करता है। गुरुपरम्परा में यह भी उल्लेख है कि श्रीविद्यातीर्थ 1228 ई० में सन्यासाश्रम लिये और 1332 ई० में निर्याण हुए पर पुण्यश्लोकमंजरी केवल 73 वर्ष बतलाकर कहता है कि श्रीविद्यातीर्थ अपने शिष्य श्रीशङ्करानन्द के साथ हिमालय पहुंचकर 15 वर्ष वास करने के पश्चात् वहीं निर्याण हुए। शृंगेरी परम्परा में श्री विद्यातीर्थ को 105 वर्ष देते हैं पर कुम्भकोण मठ 85 या 88 वर्ष देता है। इन भिन्न कथनों से केवल भ्रम ज्यादा होता है न कि कुम्भकोण मठ प्रचारों की पुष्टी होती है।

यह सब को विदित है कि योगपट्ट नाम केवल दस हैं और कोई भी सन्यासी दो अङ्कित नाम धारण नहीं कर सकते। यह यतिधर्मशास्त्र विरुद्ध है। श्री विद्यातीर्थ या विद्याशङ्कर तीर्थ में तीर्थ अङ्कित नाम है और इसके साथ कुम्भकोण मठ का 'इन्द्रसरस्वती' कैसे उपयोग हो सकता है? श्री विद्यातीर्थ के पूर्व इस मठ में कोई तीर्थ अङ्कित नाम का मठाधीष न था और आपका प्रचार है कि 'इन्द्रसरस्वती' अङ्कित नाम केवल कांचीमठ को ही लागू है तो अब कैसे तीर्थ अङ्कित नाम बीच में टपक पडा?

दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ में श्री नरसिंह तीर्थ के बाद श्री विद्यातीर्थ मठाधीष भये। श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री जी 'History of South India' (पृ० 420) पुस्तक में लिखते हैं कि केरळ (तिरुवनन्दपुरम्) में श्री शृङ्गेरी जगद्गुरु तथा श्री मध्वाचार्य इन दोनों के बीच में सम्भवतः 1198 ई० से 1275 ई० के भीतर शास्त्रार्थ वादविवाद हुआ जिसमें श्री मध्वाचार्य की हार हुई। इससे प्रतीत होता है कि शृङ्गेरी के आचार्य श्री नरसिंह तीर्थ या श्री विद्यातीर्थ ने इस वादविवाद में भाग लिया हो।

1346 ई० के एक शिलालेख में विजयनगर के महाराज श्रीहरिहर राय शृंगेरी का उल्लेख करते लिखते हैं—'विद्यातीर्थाय गुरवे परस्मै तेजसे नमः। यस्यनंगीकृत स्नेहदशाहानिः कदाचन।' आपने शृंगेरी मठाधीश श्रीविद्यातीर्थ गुरुजी महाराज की स्तुती किया था।

विजयनगर महाराजा श्रीहरिहर II के शिलाशासन जो शृंगेरि का उल्लेख करता है उसका एक श्लोक यों है—'विद्यातीर्थ यतीन्द्रोयमतिशेतेदिवाकरम्। तमोहरति यत्पुंसामन्तर्बहिरहर्निशम्।' महाराजा हरिहर II द्वारा

1384 ई० एवं 1386 ई० में दिये हुए शासन दोनों शृंगेरी मठ का ही है। एक और शासन 1386 ई० का है जो शृंगेरी मठ के विद्वानों को दिया गया है।

गुरुपरम्परास्तोत्र में यों उल्लेख है—'अविद्याच्छन्न भावानां नृणां विद्योपदेशतः। प्रकाशयति यस्तत्त्वं तं विद्यातीर्थं माश्रये।' श्रीविद्यातीर्थं को शृङ्गेरी मठाधीष कहा गया है।

वारङ्गल (एकशिलानगरम्) से आये हुए एक बालक को श्रीविद्यातीर्थं ने शृंगेरी में 1328 ई० में सन्यास दीक्षा देकर श्रीभारती कृष्णतीर्थं के नाम से अपना शिष्य बनाया। श्रीभारती कृष्ण तीर्थ के पूर्वाश्रम भ्राता भी 1331 ई० में सन्यासाश्रम लिया और आप विद्यारण्य नाम धारण किये। एक शिलानगरम् के ये दोनों भाईयों का पूर्वाश्रम वृत्तान्त निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। इनकी जीवन चरित्र कथा पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई है पर ये सब वृद्ध परम्परा प्राप्त कर्णश्रुति कथा ही है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीविद्यारण्य का पूर्वाश्रम नाम माधव था पर आप माधव मंत्री से भिन्न व्यक्ति थे। माधव मंत्री आङ्गिरस गोत्र चौन्ड्य के पुत्र थे। इसी समय और एक माधव थे जो भारद्वाज गोत्र मायण के पुत्र और सायण के भाई थे। मायण का पुत्र सायण को एक पुत्र माधव के नाम से था। उपर्युक्त श्रीविद्यारण्य हम्पी जाकर पश्चात् विजयनगर राज्य की नींवडाली। एक शिलानगरम् के ये दोनों व्यक्तियों का उल्लेख 'गुरुवंशकाव्य' एवं 'विद्यारण्यकालज्ञान' ग्रंथों में पाया जाता है।

1346 ई० में विजयनगर के महाराजा हरिहर अपने भाईयों, सालों, बहिनोइयों एवं सेनापतियों को साथ लिये शृंगेरी पहुंचकर श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ को अपनी श्रद्धा भक्ति अर्पण कर शृंगेरी मठ को भूदान दिया था। शृंगेरी मठाधीष श्रीभारती कृष्ण तीर्थजी महाराज ने अपने गुरु शृंगेरी मठाधीष श्रीविद्यातीर्थं (श्रीविद्याशङ्कर) की समाधि पर एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था और इस मन्दिर के उद्घाटन अवसर पर विजयनगर राज्य का माधव मंत्री ने महाराजा श्रीबुक्क की भेंट लेकर शृंगेरी में उपस्थित थे। श्रीविद्यारण्य जो उस समय काशी में थे आपको महाराजा बुक्क ने शृङ्गेरी मठाधीष श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ महाराजा के श्रीमुख सहित समाचार भेजा था कि श्रीविद्यातीर्थं मन्दिर का निर्माण हो चुका है और इस मन्दिर का उद्घाटन होनेवाला है अतएव आपसे सविनय प्रार्थना की कि आप जल्द लौट आयें। श्रीविद्यारण्य काशी से लौट आये और श्रीबुक्क के साथ शृङ्गेरी पहुंचे। 1356 ई० में महाराज बुक्क I का शासन पत्र द्वारा मालूम होता है कि आप शृङ्गेरी आये और मठ को दान भी दिया था। महाराजा बुक्क ने एक अग्रहार का दान भी दिया था। महाराजा हरिहर II से प्राप्त राजचिन्ह, मर्य्यादा, अन्य भेंट सब शृङ्गेरी मठाधीष श्रीविद्याशङ्कर को अर्पित कर दिया था। शृङ्गेरी में विद्याशङ्कर का आलय 1338 ई० में निर्माण किया गया था। 1392 ई० के एक शिलाशासन से मालूम होता है कि श्रीविद्यातीर्थं के निर्याण उपरान्त शृङ्गेरी में आपकी मूर्ति व मन्दिर आदि निर्माण हुए और इस मूर्ति की पूजा का भी प्रबन्ध किया गया था। एक ताम्र शासन शक 1574 का उल्लेख करता है 'विद्याशङ्कर देवस्य शारदायाश्च पूजने' (Ep. Car. Vol. VI)। श्रीविद्यारण्य स्वयं अपने गुरु को कई जगह 'विद्यातीर्थं महेश्वरं' ऐसा उल्लेख किया है। महाराजा बुक्क ने एक शिलाशासन में श्रीविद्यातीर्थं की स्तुती की है और श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ एवं श्रीविद्यारण्य का भी उल्लेख किया है। उपर्युक्त सब विषय Archaeological विभाग के प्रकाशन से लिया गया है और पाठकगण विषय विस्तार वहां पायेंगे। प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र शासन, ऐतिहासिक ग्रंथ आदियों द्वारा यह निश्चित होता है कि श्रीविद्यातीर्थं शृंगेरी में मठाधीश थे न कि कांची में। कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य है।

श्रीलूविस राइस, मैसूर गजटियर Vol. I पृ. 473 एवं श्रीसूर्यनारायण राव से रचित 'विजयनगर का इतिहास' ये दोनों प्रामाणिक पुस्तकों में श्रीविद्यातीर्थ को शृंगेरी का मठाधीष कहा गया है। मणिमंजरी भेदिनी में श्रीरामयोगीन्द्र लिखते हैं—'श्रीशारदा की आज्ञा से माधवाचार्य को सन्यासाश्रम देकर, श्रीविद्यातीर्थ ने वेदभाष्य लिखने को कहा।'

शृंगेरी मठाधीश श्री भारती कृष्ण तीर्थ के समय में विजयनगर महाराजा की सहायता से श्री विद्यातीर्थ के स्मृति में एक सुन्दर मनभावन विस्मय आनन्ददायक मन्दिर का निर्माण हुआ था। शृंगेरी शिलाशासन इस विषय का पुष्टी करता है। इसके अतिरिक्त शृंगेरी के समीप सिंहगिरि स्थल में एक शिला की चारों तरफ ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं श्री विद्यातीर्थ अपने दोनों शिष्यों (श्री भारती कृष्णतीर्थ एवं श्री विद्यारण्य) के साथ चार मूर्तियां विद्यमान् हैं। इन मूर्तियों के ऊपर भाग में लक्ष्मीनरसिंह की मूर्ति है। इस मूर्ति के ऊपर भाग में शिवलिङ्ग है। इस समग्र मूर्तियों को चतुर्मूर्ति विद्येश्वर कहते हैं। श्री विद्यातीर्थ सिंहगिरि में अनेक वर्ष वास करते हुये मंत्र, तंत्र, योगसाधन आदि में प्रवीण थे। उपर्युक्त चतुर्मूर्ति जब बनकर तैय्यार हुआ था तब श्री विद्यातीर्थ ने अपने शिष्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ को कहा था कि आपके लम्बिका योग में 12 वर्ष पश्चात् आप स्वयं ऐसी मूर्ति बन जायेंगे। श्री विद्यातीर्थ लम्बिका योग में एक तहखाने में जा बैठ गये। 12 वर्ष तक कोई भी व्यक्ति आपको बाधा न देने की आज्ञा देकर योगनिष्ठ में बैठ गये। पर तीन वर्ष बाद जब श्री भारती कृष्ण तीर्थ विजय यात्रा में मठ से बाहर गये थे तब आपके एक शिष्य ने इस तहखाने का दर्वाजा खोल देखा और वहां केवल एक लिङ्गमूर्ति पाया। शिष्य के इस अपचार से श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी ने उस जगह जहां श्री विद्यातीर्थ लम्बिका योगनिष्ठ में थे एक शिवलिङ्ग मूर्ति की प्रतिष्ठा की और चतुर्मुख विद्येश्वर की पूजा आदि का प्रबन्ध भी किया था। यही स्थल श्री विद्यातीर्थ की समाधि है। श्री विद्यातीर्थ हिमालय जाने की कथा जो कुम्भकोण मठ सुनाते हैं सो कल्पित और झूठ है। भक्तिसुधातरङ्गिनी में यों कहा है 'लम्बिकायोगनिरतमम्बिका पतिरूपिणम्। विद्याप्रदं नतौघाय विद्यातीर्थं महेश्वरं॥ विद्यारण्य प्रमुखैर्विद्यापारंगतैः सेव्यम्। अद्यापि योगनिरतं विद्यातीर्थं नमामि योगीशम॥' इस पुस्तक के प्रथम खन्ड छठवां अध्याय में श्री विद्यातीर्थ का विवरण दिया गया है। ऐसे दृढ प्रमाणों के रहते हुए भी कुम्भकोण मठ श्री विद्यातीर्थ को 'श्री विद्यातीर्थ इन्द्रसरस्वती' बनाकर अपने कांची-कुम्भकोण मठ का अधीश बना डाला है। कुम्भकोण मठ का मिथ्या प्रचार सीमातीत है। तथापि इस कलियुग में आपको सत्य का स्वरूप होने का प्रचार भी हो रहा है। न मालूम क्यों विज्ञ सज्जन एवं विद्वान वर्ग इस असत्यता का प्रगटन न करके चुप मार बैठे हैं। जब श्री विद्यातीर्थ ही कांची मठ में न थे तो कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि आपने शृङ्गेरी मठ को पुनः जीवन देकर श्री विद्यारण्य को भेजा था सो सब कथा कल्पित और असत्य है। कुम्भकोण मठ के पुस्तक में यह भी लिखा है कि श्री विद्यारण्य शृंगेरी में मठाधीश न थे और पाठकगण इस असत्य दुष्प्रचार के स्वरूप को अब जान गये होंगे। कहेजानेवाले धर्माचार्य के अधर्म प्रचार से कुछ लोग मोहितहोकर सत्य का निजस्वरूप भी भूल बैठे हैं और यह कलि की महिमा है।

विजयनगर महाराज श्री हरिहर I ने 1346 ई० में भूदान श्री भारती कृष्ण तीर्थ को दिया था। श्री बुक्क ने 1356 ई० में भूदान दिया है जब आप श्री विद्याशङ्कर मन्दिर पहुंचे थे। इस शासन के प्रारम्भ में महाराजा ने श्री विद्यातीर्थ को अपनी श्रद्धाञ्जली भेंट की है। शृंगेरी में आज पर्य्यन्त यह रूढी में है कि श्री विद्याशङ्कर के नाम से मठ की मुद्रा उपयोग की जाती है। परम्परा से यह विश्वास भी किया जाता है कि श्री विद्याशङ्कर यद्यपि विदेह मुक्त हुए तब भी आप मठ की निगरानी करते हैं। इस परम्परागत रूढी के अनजानना से श्री आर. नरसिंहाचार एवं

श्री एम्. एच. कृष्णा दोनों ने अपने रचित पुस्तकों व प्रकाशित लेखों में अभिप्राय प्रकाशित किया है कि महाराजा बुक्क ने 1356 ई० में श्री विद्याशङ्कर से स्वयं भेंट की थी और श्री विद्यातीर्थ 1356 ई० तक जीवित थे। पर शासन स्पष्ट कहता है कि महाराजा बुक्क ने 'श्री विद्यातीर्थ श्री पादङ्गलु का दर्शन' किया था अर्थात् शृंगेरी में विद्याशङ्कर मन्दिर के निर्माण पश्चात् महाराजा बुक्क जो प्रथमबार शृंगेरी आया था आपने 'विद्याशङ्कर लिङ्ग का दर्शन' किया था। मार्के की बात है कि इस शासन में जो दान दिया गया था सो विद्याशङ्कर मन्दिर की पूजा आदि के लिये था। यदि श्री विद्यातीर्थ जीवित होते तो विद्याशङ्कर मन्दिर का निर्माण व मन्दिर मूर्ति की पूजा की प्रबन्ध न होता। यदि श्री विद्याशङ्कर जीवित होते तो यह दान श्री विद्यातीर्थ को ही दिया जाता पर दान पत्र श्री भारती कृष्ण तीर्थ का नाम देता है। इससे सिद्ध होता है कि महाराजा बुक्क श्री विद्यातीर्थ से 1356 ई० नहीं मिले। ऐसे और कुछ ताम्र शासन शक 1308, शक 1309, ई० 1408 तथा ई० 1356 के हैं जो उल्लेख करता है कि यह सब दान श्री विद्यातीर्थ के सामने दिया गया था। पर इसका ठीक अर्थ एक ही हो सकता है कि दान देने वाले व्यक्ति श्री विद्यातीर्थ के परम्परा महिमा को ध्यान में रख कर आपके आशिष की मनोकामना कर दान दिया गया था न कि श्री विद्यातीर्थ के जीवन काल में दान दिया गया था। जब शासन में कहा जाता है कि देवदेवी सन्मुख यह दान दिया जाता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि सशरीर देव देवी वहां उपस्थित थे पर यही कहना ठीक होगा कि दानदाता सर्वव्यापी अन्तरयामी देव देवी का ध्यान कर उनके साक्षि भून यह दान दिया था। उसी प्रकार उक्त शासनों में भी श्री विद्यातीर्थ का नाम लिया गया था। आज भी शृङ्गेरी मठ में यह रूडी है कि श्री विद्यातीर्थ (श्री विद्याशङ्कर) मठ की निगरानी करते हैं और मुद्रा भी आपके नाम से है तो क्या यह कहा जाय कि श्रीविद्यातीर्थ अब भी सशरीर जीवित हैं?

कुम्भकोण मठ के श्री एन्. वेंकटरामन लिखते हैं कि मध्व संप्रदाय का अत्यधिक प्रचार होने से एवं रोमन केथोलिक के अधिक प्रचार पुर्चिगीस भारत सीमा में होने से, श्रीविद्यातीर्थ ने आठ मठों की स्थापना की थी। हर एक भारती ने इतिहास में पढा होगा कि वास्को-डि-गामा ने कालिकट में 1498 ई० में आया था। श्री विद्यातीर्थ के निर्याण पश्चात् लगभग 150 वर्ष बाद वास्को–डि–गामा भारत आया था और पश्चात् ही पुर्चीगीस भारती वासिन्दे भये और तत्पश्चात् पुर्चिगीस शासन प्रारम्भ हुआ। पुर्चिगीस वासीन्दे प्रथम बार 1509 ई० में ही यहां वास करना प्रारम्भ किया था। ऐसे स्थिति में श्री एन्. वेंकटरामन का कथन कहां तक सत्य है सो पाठकगण जान लें। श्री विद्यातीर्थ का समसामयिक काल ही श्री मध्व (श्री आनन्दतीर्थ) का काल था। आपका संप्रदाय प्रचार आपके निर्याण के पश्चात् ही हुआ था। मध्व संप्रदाथ की बढता प्रभाव श्री विद्यातीर्थ काल के पश्चात् ही हुआ था। वास्तव में विषय यह है श्रीविद्यारण्य ने महाराजा हरिहर II की सहायता प्राप्त कर शाखा मठों की स्थापना की थी ताकि अपने आम्नाय धर्मराज्य सीमा में धर्मप्रचार हो। कुम्भकोण मठ का एक ही उद्देश्य 150 वर्षों से था और अब भी है कि जिस प्रकार भी हो शृंगेरी की निन्दा की जाय और दक्षिणाम्नाय अद्वैतमतावलम्बियों के बीच फूटभाव पैदा की जाय ताकि इस वर्ग के कुछ लोग आपके अनुयायी बनें। कुम्भकोण मठ या मठाभिमानी इस कार्य को करने में शर्म भी नहीं खाते। श्री विद्यातीर्थ ने शाखा मठों की स्थापना नहीं की थी।

श्री विद्यारण्य

कुम्भकोण मठ का कथन है कि कांची मठाधीप श्री विद्यातीर्थ के शिष्य श्री विद्यारण्य थे और आप अपने गुरु की आज्ञा पर कांची से शृंगेरी मठ पहुंचकर इस मठ की विच्छिन्न परम्परा को पुनः आरम्भ करते हुए मठ का उद्धार किया था। पश्चात् आठ शाखा मठों का निर्माण किया था। एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि श्री विद्यारण्य शृङ्गेरी मठ के

अधीश नहीं थे और आप विरूपाक्षि मठ में थे। और एक प्रलाप है कि श्री विद्याशङ्कर ही श्री विद्यारण्य हैं और आप कहते हैं कि श्रृङ्गेरी मठ भ्रामक प्रचार करते हैं कि श्री विद्यातीर्थ और श्री विद्यारण्य दोनों श्रृङ्गेरी मठाधीश थे और श्री विद्यारण्य एवं श्री विद्याशङ्कर दोनो भिन्न व्यक्ति हैं। श्री विद्यारण्य द्वारा श्रृङ्गेरी मठ स्थापित होने से एवं श्रृङ्गेरी मठ के श्रीमुख में श्री विद्याशङ्कर का नाम होने से कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि ये दोनों व्यक्ति अभिन्न हैं। इतना ही नहीं, कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्री विद्यारण्य परमहंस सन्यासी न थे एवं योगलिङ्ग पूजार्ह न थे अतः कांची मठाधीश श्री विद्यातीर्थ ने श्री विद्यरण्य को श्रृंगेरी भेजा था। एक प्रचार पुस्तक में यह भी उल्लेख है कि श्री भारती तीर्थ एवं श्री विद्यारण्य दोनों एक ही व्यक्ति हैं। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश जिन्हें कहा जाता है आप द्वेषराग के परे हैं और पारमार्थ मार्ग के अवलम्बन करने वाले हैं, आपने स्वयं अपने मदरास नगर के 1932 ई० के भाषण में कहा है कि श्री विद्यारण्य ने 'कुछ शिथिल पुराने मठ का उद्धरण किया था (अर्थात् दक्षिणाम्नाय का पुराना मठ श्रृंगेरी मठ है) और कुछ नवीन मठों की भी स्थापना की थी'। कुम्भकोण मठ एवं आपके अनुयायी प्रचारकों की प्रचार पुस्तकों में दिये विषयों को ध्यान में रखकर कुम्भकोण मठाधीश के वक्तव्य का अर्थ किया जाय तो यही अर्थ होता है कि श्रृङ्गेरी जो प्राचीन मठ था वह शिथिल होकर विच्छिन्न पडा था और कांची मठाधीष श्री विद्यातीर्थ ने श्री विद्यारण्य को भेज कर श्रृङ्गेरी मठ का उद्धार किया। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के मदरास भाषण में अनेक कथन विवादास्पद एवं द्वेषभाव से कहे हुए कथन हैं। ऐसे होते हुए भी कुम्भकोण मठाधीश को समदृष्टी भाव रखनेवाले व्यक्ति कहा जाता है। आपने अपने भाषण में कुम्भकोण मठ के भ्रामक व मिथ्या प्रचारों का भी खूब प्रचार किया था। अब देखें कि इन कथनों में कितनी सत्यता है।

एकशिलानगरम जिसका आधुनिक नाम वारङ्गल है यहां के दो ब्राह्मण युवक जो भाई थे आप दोनों ने घर छोडकर तुङ्गा नदी किनारे से होते हुए श्रृङ्गेरी पहुंचे। इन दोनों भाईयों का वंशवृत्तान्त एव इनके पूर्वाश्रम का जीवन कथा कुछ भी दृढ प्रमाण रूप में नहीं मिलता है। इन दोनों भाइयों का जीवन कथा सन्यासाश्रम उपरान्त प्रमाण रूप में मिलते हैं। इनकी जीवनी कथा सब जनश्रुति परम्पराप्राप्त कथायें हैं और अर्वाचीन काल में रचित पुस्तकों में पाये जाते हैं। कहा जाता है कि बडे भाई का नाम माधवाचार्य था। आपके छोटे भाइ प्रथम घर छोड चले। छोटे भाई के गमन से दुखित होकर बडे भाई श्रीमाधव अपने छोटे भाई की खोज में घर छोड चले। छोटा भाई अपने भ्रमण में श्रृङ्गेरी पहुंचे। आपने 1328 ई० में श्रृंगेरी मठाधीष श्रीविद्यातीर्थ से सन्यासाश्रम लेकर श्रीभारती कृष्णतीर्थ नाम धारण करते हुए श्रीविद्यातीर्थ के शिष्य बने। इस बीच में बडे भाई धनप्राप्ति के लिये माता श्रीभुवनेश्वरी की आराधना करने लगे। इस घोर तपस्या बीच में आपको आकाशवाणी से मालूम हुआ कि आपको इस जन्म में धन प्राप्त न होगा। इस वाणी को सुनकर आप परम दुखित होकर तुङ्गा नदी किनारे से होते हुए आप भी श्रृंगेरी पहुंचे। आपने अपने छोटे भाई को वहां एक सन्यासी रूप में देखा और आपने भी 1331 ई० में सन्यासाश्रम लेकर श्रीविद्यारण्य नाम धारण कर लिया। यद्यपि श्रीभारती कृष्ण तीर्थ श्रीविद्यारण्य से वयस में छोटे थे पर सन्यासाश्रम में बडे थे और आप श्रीविद्यातीर्थ के बाद श्रृङ्गेरी गद्दी में बैठे। श्रीभारतीकृष्णतीर्थ श्रृङ्गेरी में ठहर गये पर श्रीविद्यारण्य वहां से निकल पडे और भ्रमण करते हुए अन्त में मतङ्ग पर्वत जो हम्पी नगर पास था वहां आकर वास करने लगे। इसी जगह में दो भाई हरिहर व बुक्क ने आपसे भेंट की थी और श्री विद्यारण्य के आशीष से ये दोनों भाई विजयी होकर विजयनगर राज्य की स्थापना की थी। आपने इन दोनों भाइयों द्वारा अप्रेल 18, 1336 ई० के शुभ दिन में राज्य की नीवं डलवायी थी। पश्चात् श्रीविद्यारण्य यहां से तीर्थाटन में चल पडे और आप काशी जा पहुंचे। श्रृङ्गेरी मठाधीष श्रीभारती कृष्णतीर्थ के श्रीमुख एवं महाराजा बुक्क की विनय प्रार्थना पर श्रीविद्यारण्य काशी से

लौट आये। श्रीविद्यारण्य कुछ वर्ष मतङ्ग पर्वत जो हम्पी विरुपाक्षी मन्दिर समीप है वहीं तपस्या करते रहे। यह वही समय था जब और एक भारद्वाज गोत्र के मायण नामक ब्राह्मण के दो पुत्र माधव एवं सायण (दोनों प्रतापरुद्र के मंत्री थे) आपके पास आकर अपनी 'नापुत्रस्य' वृत्तान्त कह सुनाये। श्रीमाधव का पुत्र सन्तान न होने से वंश का नाम मिट जाने के भीति से आपने श्रीविद्यारण्य से आशीष मांगी। तब श्रीविद्यारण्य इन दोनों भाइयों का वंश नाम निरन्तर रहने के लिये आपसे अपूर्ण रचित वेद भाष्य को देकर इसे संपूर्ण कर लिखने को कहा था। इस वेद भाष्य को संपूर्ण कर माधवीय व सायणीय के नाम से प्रकाशित करने को कहा था ताकि इन दोनों का नाम सदा के लिये इस भूमि पर रह जाय।

उक्त दो माधवाचार्य के अलावा एक माधव मंत्री थे। आप आङ्गिरस गोत्र श्री चाउण्ड के पुत्र थे। इनके अलावा सायण के पुत्र श्री माधव भी थे। ये चार माधवाचार्य पृथक पृथक हैं और इनका वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

श्री विद्यारण्य काशी से लौटकर हम्पी पहुंचे और बिजयनगर महाराजा बुक्क के साथ शृङ्गेरी पहुंचे। महाराजा बुक्क ने इन दोनो गुरुओं को अग्रहार का दान किया। यह सब विषय शासन पत्रों एवं शिलाशासनों से सिद्ध होता है। शृंगेरी से एक मील दूर पर एक ग्राम श्री विद्यारण्यपुर है और इस ग्राम के इतिहास से सिद्ध होता है कि श्री विद्यारण्य शृंगेरी मठाधीष थे। 1380 ई० में श्री भारती कृष्ण तीर्थ का निर्याण हुआ और श्री विद्यारण्य शृङ्गेरी मठाधीश भये। विजयनगर महाराजा हरिहर II ने जब श्री विद्यारण्य 1380 ई० में शृङ्गेरी गद्दी पर बैठे आपको अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पण कर शृंगेरी मठाधीश श्री विद्यारण्य को राज चिन्ह (श्वेतछतरी, शङ्ख, तोरण, नगाडा, घंटा, वाद्य, पालकी, मुकुट, रसाल, आदि) अर्पण किया था जिसे विधारण्य ने अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ को अर्पण कर दिया था। आज भी शृंगेरी में यह सब राजचिन्ह देखे जाते हैं और जब शृङ्गेरी आचार्य का नगर प्रवेश जुलूस निकलता है तो वही परम्परा प्राप्त रूढी आज भी देखने में आता है। शृङ्गेरी के एक मन्दिर में चौदहवीं शताब्दी का खुदा हुआ एक शिला में श्री विद्यारण्य मुकुट व राजवस्त्र आभूषणों सहित धारण किये हुए और पालकी में बैठे हुए तथा विजयनगर महाराजा से वह पालकी अपने कंधे में उठाये हुए दृश्य देखा जाता है। इस दृश्य में सब राजचिन्हों का विवरण भी पाया जाता है। 1386 ई० में श्री विद्यारण्य का विदेह मुक्ति हुई। यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है कि किस स्थल में आपका निर्याण हुआ। पम्पापुरी एवं शृङ्गेरी में आपकी समाधि है। इन दोनों में एक जगह समाधि और दूसरी जगह आपका स्मारक मन्दिर होना निश्चित होता है। महाराजा हरिहर II शृङ्गेरी पहुंच कर एक अग्रहार 'विद्यारण्यपुर' नामक श्री विद्यारण्य के स्मारक चिन्ह रूप में स्थापना की। श्री भारती कृष्णतीर्थ की समाधि मन्दिर जो भारतीरामनाथ के नाम से प्रसिद्ध है एवं श्री विद्यारण्य का अधिष्ठान जो विद्याविश्वेश्वर मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, इन दोनों मन्दिरों के लिये महाराजा ने वृत्तियां दी थी। श्री विद्यारण्य रचित 'देव्यपराधक्षमास्तोत्र' (इस स्तोत्र को आचार्य शङ्कर रचित कहते हैं पर यह भूल है) में अपने को पचासी वर्षों से भी अधिक जीवित रहने का उल्लेख किया है—'मयापञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि'। हरिहर II के समय का एक शिलालेख से पता चलता है कि 1386 ई० में श्री विद्यारण्य का निर्याण हुआ था। हरिहर II ने 1387 ई० में श्री विद्यारण्यपुर का दान किया था। शिलाशासनों के आधार पर यही प्रतीत होता है कि श्री विद्यारण्य हरिहर I से पूजित भये, बाद बुक्क ने भी अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पण की थी और तत्पश्चात् हरिहर II ने भी आपको अपना सम्पत्ति, राजचिन्ह, श्रद्धाभक्ति, आदि सब अर्पण किया था। शृङ्गेरी ताम्र शासन पत्रों में श्री विद्यारण्य की विपुल प्रशंसा की गयी है। 1384 ई० के ताम्र शासन पत्रों से प्रतीत होता है कि हरिहर ने श्री विद्यारण्य का अनुग्रह प्राप्त कर ज्ञान साम्राज्य को पाया जो अन्य नरेशों

से अप्राप्य था। 1385 ई० में हरिहर II के पुत्र कुमार चिक्कराय ने उस समय जो एक छोटी रियासत का शासक था, श्री विद्यारण्य को भूदान दिया था। 1386 ई० में हरिहर ने शृंगेरी मठ को भी भूदान दिया था।

मुहम्मद तुगलक अपने सेनापतियों व मुख्य कर्म्मचारियों को पीछे छोडकर दिल्ली लौट गया। इसी समय नायकों ने 1331 ई० में आन्ध्र देश के समुद्र किनारे की सीमा को स्वतंत्र देश बना लिया था। इसी प्रकार दक्षिण में तोन्डैमन्डलम सीमा भी स्वतंत्र बन बैठी। ऐसे समय में दो भाई हरिहर व बुक्क कुछ लोगों को इकट्ठा कर अपना अधिकार जमाना चाहते थे पर वल्लाल III ने इन पर धावा कर इन्हें पीछे हटाया। हरिहर बुक्क हारते हुए पीछे लौटे। इसी समय विरुपाक्षी मन्दिर के पास श्रीविद्यारण्य वास करते थे और हरिहर बुक्क दोनों ने आपसे मिलकर अपना वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीविद्यारण्य ने इन दोनों को आशीर्वाद देकर पुनः धावा करने के लिये आज्ञा दी। इस द्वितीय धावे में विजय पाकर लौट आये और पुनः श्रीविद्यारण्य का आशीष लेकर आपकी आज्ञा पर विजयनगर राज्य की स्थापना की। दोनों भाइयों ने 1336 ई० में तुङ्गभद्रा नदी किनारे विद्यानगर नामक नगर की स्थापना की थी। इसी नगर का नाम पश्चात् विजयनगर पडा। श्रीविद्यारण्य ने हरिहर का राज्याभिषेक करवाया। श्रीविद्यारण्य के आशीर्वाद से इन दोनों भाइयों ने पश्चिम समुद्र किनारे से पूर्व समुद्र किनारे तक अपना राज्य की सीमा बढा ली। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि शृंगेरी मठाधीश को 'कर्नाटक सिंहासन स्थापकाचार्य' पदवी से पुकारे जाते हैं। जैसे इन्द्र को बृहस्पति, श्रीराम को वसिष्ठ, चन्द्रगुप्त को चाणक्य, शिवाजी को रामदास थे वैसे विजयनगर राज्य के लिये श्रीविद्यारण्य थे। श्रीयुत के. आर. वेङ्कटराम अय्यर, भूतपूर्व D. P. I. पुदुक्कोटै राज्य, Indian Express पत्रिका ता. 2—11—1960 के अङ्क में लिखते हैं—'Between A. D. 1294 and 1326, the Khiljis and Tughlaks succeeded in destroying the Hindu Kingdoms of Devagiri, Warangal and Dvarasamudra and penetrated far into Pandian Kingdom. Further expansion and consolidation were stemmed by the efforts of the 'rebel' heroes of Warangal and Kampili. The brothers HariharaRai and Bukka Rai, who had been captured by the muslims and later sent to the Deccan to put down the Hindu rising, came under the influence of the Sage Sri Vidyaranya (about 1331) and they together conceived the great plan of establishing the kingdom of Vijayanagar, which within a few years established hegemony over the Peninsula south of the Tunga-Bhadra and the Krishna. The average Hindu cared more for the preservation of his faith than the consolidation of political power. The protection of the faith was a matter of prime importance to the Kapalikas and Lingayats and to the Manabharas and Vaishnavas, no less than to the Smarthas holding allegiance to the Sringeri Mutt. ... ... The Raya represented Hindu political sovereignty and spiritual sovereignty had to be definitely conceded to the heads of the great monasteries of the different sects. The most influential among them all was the head of the Sringeri Mutt, whom the emperor invested with quasi-royal authority excercising complete control over millions of his disciples in all matters of faith and ritual.

प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं—'If the new danger from

Islam was to be effectively combated, it was necessary that the power of the various Hindu States should be consolidated by welding them into one strong state, and that they should be prevented from continuing in their normal condition of mutual hostility. Harihara had gone a long way towards securing this so that, in 1346, the entire family of five brothers and their chief relatives and lieutenants could meet at Sringeri, the seat of the Hindu pontiff, to celebrate the conquest of dominions extending from sea to sea by holding a great festival (Vijayotsava) in the presence of the most eminent spiritual leader of the Hindu community.' (Page 231) ' Their meeting with Vidyaranya (Forest of Learning) thus probably furnished them with the best and perhaps the only means of following the promptings of their hearts ; it needed a spiritual leader of his eminence to receive them back from Islam into Hinduism and to render the act generally acceptable to Hindu Society.' (Page 229) ' ... ... and founded a new city opposite to Anegondi on the south bank of Tungabhadra to which they gave the significant names Vijayanagara (city of victory) and Vidyanagara (city of learning), the second name commemorating the role of Vidyaranya in the momentous events. Here, in the presence of God Virupaksha, Harihara I celebrated his coronation in proper Hindu style on 18 April, 1336 (Page 230).'

'किं ब्रह्मा न चतुर्मुखः किमु हरिर्दोष्णोर्न चाम्रडितं, किं वा शम्भुरसौ न दृष्टि विषये वैषम्यमालक्ष्यते। इत्यालोच्य चिरं विनिश्चितधियः पश्चाद्विपश्चिद्गणाः, विद्यारण्यगुरुं किमप्यवयविज्योतिः परं मन्वते॥' इस श्लोक से मालूम होता है कि श्रीविद्यारण्य कितने माननीय अद्वितीय बहुप्रख्यात व्यक्ति थे। ऐसे ही गुण श्रीविद्यातीर्थ एवं श्रीभारती तीर्थ को भाता है। ये त्रिमूर्तियां अद्वितीय महान् थे।

कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि श्रीविद्याशङ्कर ही श्रीविद्यारण्य थे और ये दोनों अभिन्न व्यक्ति हैं सो प्रचार न केवल सीमातीत असत्य है पर यह उन्मत्त प्रलाप है। श्रीविद्यातीर्थ भी श्रीविद्याशङ्करतीर्थ के नाम से पुकारे जाते थे और यह दोनों नाम श्रीविद्यातीर्थ के समय में ही प्रचलित था। पाठकगण कृपया प्रथम खण्ड अध्याय 6 पढें जहां इस विषय पर आलोचना की गयी है। श्रीविद्यातीर्थ (श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ) एवं श्रीविद्यारण्य दोनों अद्वितीय महान् विजयनगर महाराजाओं से पूजित एवं उनके दिये हुए शिला व ताम्र शासनों से स्पष्ट मालूम होता है कि ये दोनों अद्वितीय महान् व्यक्ति भिन्न व्यक्ति थे। कुम्भकोण मठ की मिथ्या कल्पना है कि श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ का नाम श्रीविद्यारण्य को ही है। शृंगेरी मठ मुद्रा व श्रीमुख से प्रतीत होता है कि श्रीविद्यातीर्थ का परिपाठ नाम विद्याशङ्कर भी है। जब दृढ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्रीविद्यातीर्थ शृंगेरी मठाधीश थे और कांची मठ से आपका कोई सम्बन्ध न था तो प्रश्न उठता ही नहीं कि आपने श्रीविद्यारण्य को कांची से शृंगेरी भेजकर शृंगेरी मठ का उद्धार कराया था। यह केवल बकवास है। श्रीगौडपादाचार्य एवं श्रीआचार्य शङ्कर समान श्रीविद्यारण्य भी श्रीविद्या अनुष्ठान कर्मों का उद्धार किया था। श्रीविद्यारण्य के पास एक यति मलैयानन्ददेवतीर्थ श्रीविद्या का उपदेश लिये थे। इनकी शिष्य परम्परा वंशावली में श्रीनिजात्मप्रकशानन्दनाथ मल्लिकार्जुन योगी ने ' गद्यवल्लरी ' नामक श्रीविद्या प्रकरण ग्रंथ रचा था। इसमें गुरु वंशावली दी हुई है। इस वंशावली से स्पष्ट मालूम होता है कि श्रीविद्यारण्य शृंगेरी मठाधीष थे और श्रीविद्यारण्य का पूर्वाचार्य

परम्परा वही है जो श्रृङ्गेरी की गुरुपरम्परा है। बङ्गाल राज्य ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। पुराकाल के प्रामाणिक ग्रंथों, विजयनगर महाराजाओं से प्राप्त दान पत्र व शासनों (शिलाशासन, ताम्रशासन आदि) व ऐतिहासिक पुस्तकों से निस्सन्देह सिद्ध होता है कि श्रीविद्यातीर्थ श्रृङ्गेरी मठाधीप थे और आपके शिष्य श्रीविद्यारण्य भी इसी परम्परा में आये थे और श्रीविद्यातीर्थ का नाम श्रीविद्याशङ्करतीर्थ भी था, अतः यह कहना भूल व मिथ्या है कि श्रीविद्याशङ्करतीर्थ और श्रीविद्यारण्य अभिन्न हैं।

कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि श्रीविद्यारण्य परमहंस सन्यासी न थे और योगलिङ्ग के पूजार्ह न थे सो सब पागलखाने की बात है। यतिधर्म शास्त्र पुस्तक कुम्भकोण मठ प्रचारों के विरुद्ध ही कहता है। ऐसे दुष्प्रचार से कुम्भकोण मठ के अनुयायी व प्रचारक धर्मशास्त्र पर अपनी अनभिज्ञता एवं मूर्खता का प्रदर्शन करा रहे हैं। इस पुस्तक के अन्य भाग में इस विषय पर पूर्ण आलोचना की गयी है और ऐसे प्रलापों पर यहां आलोचना करना ही व्यर्थ है।

एक असत्य प्रचार यह भी है कि श्री भारतीकृष्णतीर्थ एवं श्री विद्यारण्य दोनों व्यक्ति अभिन्न हैं। विजयनगर महाराजा श्री बुक्क ने एक स्तुती में कहा है (शिलाशासन से उद्धृत)—'विद्यातीर्थाब्जनिमति शुभे भारती तीर्थपद्म, नित्यं वृत्ताद्वयचिदमृतानन्द सौरभ्यभाजि। विद्यारण्यद्युमणि महिम प्राप्त लक्ष्मीविलासे, भूयो भूयो विहरति मुखी बुक्कभूगलहंसः॥' (शिलाशासन) इससे प्रतीत होता है कि श्री विद्यातीर्थ के दो शिष्य श्री भारतीकृष्ण तीर्थ एवं श्री विद्यारण्य पृथक व्यक्ति थे। 'वैय्यासिकन्यायमाला' व 'पञ्चदशी के तृप्तिदीप' प्रकरणों में देखा जाता है कि श्री भारतीकृष्ण तीर्थ एक प्रकाण्ड विद्वान थे। 'वैय्यासिकन्यायमाला' प्रारम्भ में उल्लेख है 'प्रणम्य परमात्मनं श्री विद्यातीर्थ रूपिणं'। 'कालमाधव' में आपका स्मरण किया गया है। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि पञ्चदशी की रचना विद्यारण्य तथा भारतीकृष्ण तीर्थ ने मिलकर की है। विद्यारण्य के साक्षात् शिष्य श्री रामकृष्ण थे। रामकृष्ण भट्ट ने पञ्चदशी टीका के आरम्भ में तथा अन्त में आप दोनों का नाम उल्लेख किया है—'नत्वा श्री भारतीतीर्थ विद्यारण्यमुनीश्वरौ। मयाऽद्वैतविवेकस्य क्रियते पदयोजना॥ इति श्री प. प. श्री भारती तीर्थ विद्यारण्य मुनिवर्य किङ्करेण श्री रामकृष्ण विदुषा विरचित पददीपिका ... ...॥' प्रकान्ड विद्वान भारतज्योतिरत्न डा० एस. राधाकृष्णन् आपसे रचित पुस्तक **'The Vedanta according to Sankara And Ramanuja'** में लिखते हैं—**'Tradition is divided as to the authorship of The Pancadasi. Vidyaranya is said to have written the first six chapters and Bharati tirtha the other nine (see Pitambarasvamin's ed., P. 6). Niscaladasa in his Vrthiprabhakara (P. 424), assigns the first ten to Vidyaranya and the other five to Bharati tirtha.'** पुराकाल के राज शासनों एवं प्राचीन ग्रन्थों में जो श्रृङ्गेरी में उपलब्ध हैं वहां उल्लेख है—'वाचालं कुरुते मूकं मूकं वाचाल पुङ्गवम्। विद्यारण्य गुरोश्चित्रं चरितं चतुराननात्।' 'यस्तु व्याख्यान काले रचयति हिमवत्सानु निर्भेदभिन्नस्फर्जद्गङ्गा प्रवाहानुकरणममलो भारती तीर्थ एषः।' 'भाट्टं संघट्टयन्तं कटुरटनपटुम् कार्तिकं मूर्छयन्तं, बौद्धानुद्धावयन्तं क्षपणकफणितं तूर्णमाचूर्णयन्तम्। उद्दण्डं खण्डयन्तं समितिगुरुमतं तत्त्वमद्वैतयन्तं, चार्वाकं खर्वयन्तं भजत यतिपतिं भारतीतीर्थ संज्ञम्॥' इन सब उक्त प्रमाणों के आधार पर निस्सन्देह कह सकते हैं कि श्री भारतीतीर्थ व श्री विद्यारण्य भिन्न व्यक्ति थे और यह महत्ता आप दोनों को अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ (श्री विद्याशङ्कर तीर्थ) के आशीर्वाद से प्राप्त हुआ था।

श्री विद्यातीर्थ के शिष्यवर्ग में एक शिष्य श्री शङ्करानन्द भी कहा जाता है। आपने ज्ञानोपदेश विद्यातीर्थ से प्राप्त किये और सन्यासदीक्षा श्री आनन्दात्मा से लिये थे। श्री शङ्करानन्द की स्वरचित पुस्तकों द्वारा उक्त कथन की पुष्टी होता है। श्री विद्यारण्य ने श्री शङ्करानन्द से विद्या प्राप्त किये। इसलिये शङ्करानन्द विद्यागुरु हुए पर विद्यारण्य के दीक्षागुरु विद्यातीर्थ ही थे। आपने इसलिये इन दोनों महापुरुषों की स्तुती की है—'नमः श्री शङ्करानन्द गुरुपादाम्बुजन्मने।' शङ्करानन्द ने शाङ्करमत पुष्ट करने के लिये 'ब्रह्मसूत्रदीपिका', 'गीतातात्पर्य बोधिनी' (जिसे 'शङ्करानन्दी' भी कहते है), 27 उपनिषदों का दीपिका आदि उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखा है। 'आत्मपुराण' भी आपका रचित ग्रन्थ है। कुम्भकोणमठ आपको अपने मठ की अधीश कहते हैं पर श्री शङ्करानन्द ने अपने रचित किसी भी ग्रन्थ में इस विषय का उल्लेख नहीं किया है और न आप 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट धारण किया था। शङ्करानन्द जी का सम्बन्ध कांचीमठ से कुछ भी न था।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्री कण्ठ शिवाचार्य के शिष्य माधव, सायण, भोगनाथ, सङ्गम् आदि थे। पर श्रीकण्ठ तो शिवाचार्य थे। आप परमात्मतीर्थ के शिष्य थे और आपसे वेदान्त उपदेश पाये। कुछ विद्वानों की भूल है कि परमात्मतीर्थ को श्रीविद्यातीर्थ मान लेते हैं। ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं। श्रीकण्ठ भाष्य पढने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर ने श्रीकण्ठ के अनेक मत व वादों पर अपने विचारों व वादों से उसे परिष्कृत्य व शोधन कर अपना भाष्य रचा हो। उदाहरणार्थ 'पुच्छब्रह्मवाद' एक है। अभिनवगुप्त के 'प्रत्यभिज्ञविमर्शिक' के टीकाकार श्रीखेमराज ने श्रीकण्ठ के पंक्तियों को उद्धृत किया है। 'न्यायकुण्डली' व 'कौमुदी' के रचयिता श्रीकर (श्रीधर भी आपका नाम लेते हैं) ने श्रीकण्ठ भाष्य से उद्धृत किया है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीकण्ठ का काल श्रीरामानुजाचार्य के बाद का है। आप एक समय शिवाचार्य थे। आपका वासस्थल श्रीशैल बतलाया जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी अभिप्राय है कि आपका काल 900 ई० के बाद का नहीं है। श्री एस. एस. सूर्यनारायण शास्त्री—'**The Sivadvaita of Sri Kantha** नामक पुस्तक में लिखते हैं—'**Very little is known of Srikantha's place, period or parentage.' '... ... ... that he (Srikantha) was the earliest of the known commentators, that he succeeded Sankara and Ramanuja too and that, he came after Haradattacharya but before Ramanuja.'** इससे प्रतीत होता है कि उक्त अभिप्राय भूल है।

काश्मीर शैववाद के अनुयायी श्रीक्रियाशक्ति एक प्रकान्ड ज्ञानी थे। वैदिक विद्वान एवं आङ्गिरस गोत्र माधव मंत्री जो आपके शिष्य थे अपने गुरु को प्रसन्न करने के लिये वेद, पुराण, संहिता के तत्वों का सार 'शैवागमसार संग्रह' नामक एक ग्रंथ रचा है। श्रीक्रियाशक्ति महाराजा बुक्क I और हरिहर II के राजगुरु भी थे। 'विद्यारण्य काल ज्ञान' पुस्तक से मालूम होता है कि क्रियाशक्ति श्रीविद्यारण्य के पास उपनिषद् तत्वों एवं वेदान्त तत्वों का उपदेश लिया था। आपका निर्याण 1388 ई० है। 1389 ई० में हरिहर I के पुत्र इम्मडि बुक्क राय ने एक गांव का प्राचीन नाम बदलकर 'श्रीविद्याशङ्करपुरम्' नाम रक्खा था और इस गांव को वहां के स्थित 'विद्याशङ्करलिङ्ग' की पूजा सेवादि के लिये गांव को दान में दिया था। 'विद्याशङ्कर विग्रहाय गुरवे' ऐसा शासन में लिखा है। कुछ विद्वानों का अभिप्राय जो है कि श्रीक्रियाशक्ति ही श्रीविद्यारण्य थे सो अभिप्राय निराधार व भूल है। श्री एस. वि. वेङ्कटेश्वर का कथन जो है कि श्रीविद्यातीर्थ, श्रीभारतीतीर्थ, श्रीकण्ठ ये तीनों नाम एक ही व्यक्ति का था और आपका नाम श्रीविद्याशङ्कर भी था और ये सब अभिन्न व्यक्ति हैं सो कथन भूल है। ये तीनों व्यक्ति भिन्न हैं।

श्री विद्यातीर्थ के शिष्य श्री विद्यारण्य के अलावा और एक अन्य श्री विद्यारण्य थे। शृंगेरी मठाधीश श्री पुरुषोत्तम भारती (1479—1517 ई०) के शिष्य विद्यारण्य थे। विजयनगर महाराजा श्री कृष्णदेवराय के निमन्त्रण पर और अपने गुरु की आशीष को पहुंचाने के लिये यह अन्य विद्यारण्य विजयनगर पहुंचे। शृङ्गेरी गुरु महाराज का आशीष पाकर विजयनगर महाराजा ने अनेक देशों को सुलभ से जीता।

वेदभाष्य की रचना से श्री विद्यारण्य का बहुत ही सम्बन्ध है। एक समय भारद्वाज गोत्र माधव व सायण दोनों विद्यारण्य (पूर्वाश्रम नाम माधवाचार्य) के पास आकर अपने 'नापुत्रस्य' कथा सुनायी और अपना वंश मिट जाने की भीति से श्री विद्यारण्य से आशीष मांगी। श्री विद्यारण्य अपने रचित वेदभाष्य को देकर इसे संपूर्ण करने को कहा और 'सायणमाधवीय' के नाम से प्रकाश करने को कहा। यही भाष्य अब 'सायणमाधवीय' के नाम से प्रसिद्ध है। शृंगेरी मठाधीश श्री भारती कृष्ण तीर्थ महाराज ने 120 ब्राह्मणों को विजयनगर राज्य से प्राप्त ग्रामों का बंटवारा किया। इन 120 ब्राह्मणों में तीन ब्राह्मणों ने (श्री नारायण वाजपेय याजी, श्री नरहरिसोमयाजी, श्री पान्डुरङ्ग दीक्षित या पण्डरि दीक्षित) माधवाचार्य के भ्राता सायणाचार्य को वेद भाष्य रचने के कार्य में अपनी अपनी सहायता दी थी। पश्चात् इस भाष्य का प्रचार भी इन तीन ब्राह्मणों द्वारा ही हुआ था। श्री नारायण वाजपेय को 'मंत्रसिद्धि' की उपादी दी गयी थी एवं श्रीपान्डुरङ्ग दीक्षित व श्री नरहरि सोमयाजी दोनों को 'पेद्दविद्यावल्लभर' की उपादी दी गयी थी। इन तीनों विद्वानों को पुरस्कार दिये जाने से यह कहा नहीं जा सकता है कि श्री विद्यारण्य ही सायण के भ्राता श्री माधवाचार्य थे और आपने वेद भाष्य रचा था। वेद भाष्य रचना कार्य में इन तीनों प्रकाण्ड विद्वानों ने माधव-सायण को सहायता प्रदान करने से ही श्री विद्यारण्य के सन्मुख उक्त पुरस्कार एवं उपादी दिये गये थे चूंकि प्रथमतः श्रीविद्यारण्य ने ही अपने से रचित वेदभाष्य ग्रन्थ माधव को दी थी और जिसे माधवाचार्य ने अपने भाई सायणाचार्य को भाष्य निरीक्षण कर व संपूर्ण करने को कहा था।

एकशिलानगर के दो भाई—कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि एक शिलानगरम (वारङ्गल) के वासी दो भाई थे और ये दोनों गृहस्थाश्रम ग्रहण न कर वैराग्य आने पर सन्यासाश्रम ग्रहण कर श्रीविद्यारण व श्रीभारती कृष्ण तीर्थ नाम धारण किये। श्रीभारतीकृष्णतीर्थ 1328 ई० में सन्यास दीक्षा ली थी और श्रीविद्यारण्य 1331 ई० में सन्यासाश्रम ग्रहण किया था। श्रीविद्यारण्य के आशीष से 1336 ई० में विजयनगर राज्य की नींव डाली गयी थी। श्रीभारतीतीर्थ का विदेहमुक्ति 1380 ई० में एवं श्रीविद्यारण्य का ब्रह्मीभाव 1386 में हुआ था। इन दोनों भाइयों का पूर्वाश्रम जीवन वृत्तान्त कुछ भी प्रमाण रूप में नहीं मिलता। जो कुछ भी मालूम होता है उसका आधार 'गुरुवंशकाव्य' एवं 'विद्यारण्य कालज्ञान' पुस्तक हैं। विजयनगर महाराजा हरिहर, बुक्क व हरिहर II तीनों ने अपनी अपनी श्रद्धाजली व भेंट इन दोनों यतिराजाओं को समर्पण किया था। श्रीविद्यारण्य द्वारा रचित ग्रंथों में प्रधान ग्रंथ–(1) अनुभूति प्रकाश (कुछ उपनिषदों की पद्यात्मक व्याख्या। श्रीविद्यातीर्थ को यहां अपना मुख्य गुरु माना है—'सोऽस्मान् मुख्यगुरुः पातु विद्यातीर्थ महेश्वरः।'); (2) जीवनमुक्ति विवेक—(सन्यास धर्म का निरूपण किया गया है और यह पुस्तक 'पञ्चदशी' के पश्चात् लिखा गया मालूम पडता है); (3) पञ्चदशी (अद्वैत वेदान्त के तथ्यों का प्रतिपादन किया गया है और इसके टीकाकार श्रीरामकृष्ण ने इस ग्रंथ का रचयिता 'श्रीभारतीतीर्थ विद्यारण्य मुनीश्वरौ' दोनों का नाम लिया है); (4) विवरणप्रमेयसंग्रह (पञ्चपादिका विवरण के ऊपर यह व्याख्या ग्रंथ है); (5) बृहदारण्यक वार्तिकसार (श्रीसुरेश्वराचार्य के वार्तिक का संक्षेप ग्रंथ है); (6) दृग्दृश्यविवेक (कहा जाता है कि दोनों आचार्यों ने

इस ग्रंथ की रचना की थी पर टीकाकार श्रीब्रह्मानन्द भारती का अभिप्राय है कि श्रीभारतीकृष्णतीर्थ ने इस पुस्तक की रचना की थी और टीकाकार निश्चलदास का अभिप्राय है कि श्रीविद्यारण्य ने रचा है। कुछ हस्तलिपि प्रति में आनन्दज्ञान की टीका भी मिलायी गयी है और इसे शङ्कर रचित कहा जाता है। सम्भवतः यहां शङ्कर का अर्थ भारतीतीर्थ व विद्यारण्य हो); (7) ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं आचार्य शङ्कर के अपरोक्षानुभूति पर दीपिका (ये सब दीपिका श्रीविद्यारण्य कृत हैं); (8) अधिकरणरत्नमाला या वैयासिकरत्नमाला (ब्रह्मसूत्र का अधिकरण पूर्वपक्ष और सिद्धान्त दिये गये हैं। कुछ विद्वान इसे श्रीविद्यारण्य रचित कहते हैं पर श्रीअप्पैय दीक्षित का अभिप्राय है कि श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ द्वारा रचित पुस्तक है)।

'प्रणम्य परमात्मानं विद्यातीर्थ महेश्वरं' (शङ्करदिग्विजय), 'श्री शङ्करानन्द पदं हृदब्जे विभ्राजते तद्यतयो विशन्ति' (विवरण प्रमेय संग्रह), 'मम श्री शङ्करानन्द गुरु पादाम्बुजन्मने। सविलास महामोहग्रास ग्राहैक कर्मणे।' (पञ्चदशी प्रकरणम्), 'सोऽस्मान् मुख्यगुरुः पातु विद्यातीर्थ महेश्वरः' (अनुभूति प्रकाश) आदि श्लोकों से प्रतीत होता है कि विद्यारण्य के दो गुरु थे—ज्ञान व दीक्षागुरु श्री विद्यातीर्थ एवं विद्यागुरु श्री शङ्करानन्द थे। श्री शङ्करानन्द के दो गुरु थे-आश्रमदीक्षा गुरु श्री आनन्दात्मा एवं ज्ञानविद्या गुरु श्री विद्यातीर्थ। श्री भारतीकृष्णतीर्थ से रचित वैय्यासिक-न्यायमाला में अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ को आप नमस्कार करते हैं—'प्रणम्य परमात्मानं श्री विद्यातीर्थ रूपिणम्। वैय्यासिकन्यायमालाश्लोकैस्संगृह्यते स्फुटम्।'

श्री मायणाचार्य के तीन पुत्र—दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठाधीश श्री विद्यारण्य जिनका पूर्वाश्रम नाम माधवाचार्य था और जिनके आशीष से विजयनगर राज्य का नींव डाला गया एवं राज्य निर्माण हुआ आपको श्री मायण के पुत्र माधवाचार्य होने का जो अभिप्राय कुछ विद्वानों का है सो भूल प्रतीत होता है। दो भाई जो एकशिलानगरम् (वारङ्गल) से आये थे और पश्चात् सन्यासाश्रम लिया था इनका कोई सम्बन्ध भारद्वाज गोत्र मायण के वंश से नहीं है। भारद्वाज गोत्र, बोधायन सूत्र, तैत्तिरीय शाखा के श्री मायणाचार्य एवं श्रीमति के तीन पुत्र थे—माधव, सायण, भोगनाथ जो सब प्रकान्ड विद्वान भये। ये तीनों भाई श्री विद्यारण्य के कृपाभाजन थे। मायण के पुत्र माधवाचार्य ने पराशरस्मृति व्याख्या (पराशर–माधव), व्यवहार माधवीय, कालमाधवीय (कालनिर्णय), जैमिनीय न्यायमाला विस्तार आदि ग्रन्थों की रचना की थी। अपने रचित ग्रन्थों में माधवाचार्य अपने पितामाता का नाम, भाइयों का नाम एवं गुरु-का नाम उल्लेख करते हैं–'श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता। सायणो (भोग) नाथश्च मनोवुद्धि सहोदरौ॥ बोधायनं यस्य सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी। भारद्वाजं कुलं यस्य सर्वज्ञः सहिमाधवः॥' (पराशरमाधवीय) 'प्रणम्य परमात्मानं श्री विद्यातीर्थरूपिणम्। जैमिनीन्यायमाला श्लोकैस्संगृह्यते स्फुटम्॥' (जैमिनी न्यायमाला)। उपर्युक्त माधवाचार्य का भ्राता श्री सायणाचार्य ने शुभाषित सुधानिधि, प्रायश्चित सुधानिधि (कर्म विपाक), अलङ्कार सुधानिधि, धातुवृत्ति, वेद भाष्य, पुरुषार्थ सुधानिधि, यज्ञतंत्रसुधानिधि, आयुर्वेद सुधानिधि, आदि ग्रन्थों की रचना चौदहवीं शताब्दी में की थी जब महाराजा कम्पण्ण, सङ्गम II, बुक्क I एवं हरिहर II का राज्य शासन था। सङ्गम I के द्वितीय पुत्र कम्पण्ण एवं हरिहर के छोटे भाई थे। विजयनगर राज्य पूर्व भाग का शासन निर्वाह (नेल्लूर व कडप्पा) आपके हाथ में था। कम्पण्ण के पुत्र सङ्गम II थे और आपके बाल्यावस्था में श्री सायणाचार्य राज्य निर्वाह करते थे। सङ्गम II के राज्य निर्वाह करने की योग्यता व वयस आने पर श्री सायणाचार्य ने शासन निर्वाह राजा के हाथ सौंप कर आप बुक्क I के राज्य में आ बसे (1350—1379 ई०)। श्री सायणाचार्य हरिहर II (1379—1399 ई०) के राज्य में भी उच्चस्थान प्राप्त किया था।

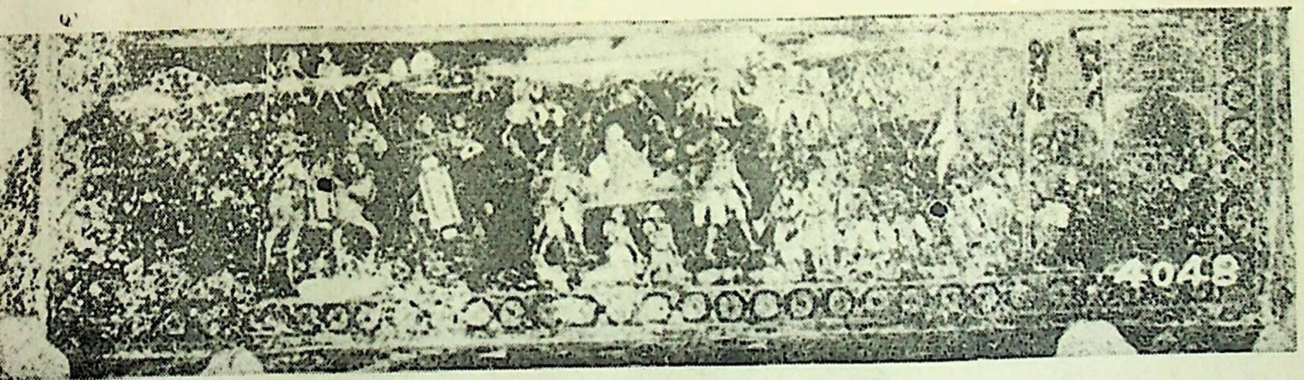
'इति पूर्व पश्चिम समुद्राधीश्वरारिरायविभाल श्री कम्पराज महाप्रधान भरद्वाज वंश मौक्तिक—मायण रत्नाकर सुधाकर—माध्व कल्पतरु सहोदर श्री सायणार्य विरचिते सुभाषित सुधानिधौ'; 'तस्य मन्त्रिशिरोरत्नमस्ति मायणसायणः। तेन मायण पुत्रेण सायणेण मनीषिणा। ग्रन्थः कर्मविपाकाख्यः क्रियते करुणावता।' (प्रायश्चित्त सुधानिधि—कर्मविपाक); 'तेन मायण पुत्रेण सायणेन मनीषिणा आख्यया माधवीयेयं धातुवृत्तिर्विरच्यते'; 'इति श्रीमत् पूर्व—पश्चिम—दक्षिणोत्तर समुद्राधिपति बुक्कराय प्रथमदेशिक माधवाचार्यानुजन्मनः श्री मत्सङ्गमराज सकलराज्यधुरन्धरस्य सकलविद्या निधानभूतस्य भोगनाथाग्रजन्मनः श्री मत्सायणाचार्यस्य कृतावलङ्कारसुधानिधौ।'; 'महेन्द्रवन्माननीयो मन्त्री मायण सायणः। मण्डलेषु कृतचार मण्डलः सायणो जयति मायणात्मजः। मन्त्रि मायणसायण स्त्रिजगती मान्यापदानोदयः।' (अलङ्कार सुधानिधि); "भरद्वाजान्वय भुजा तेन सायणमन्त्रिणा। व्यरच्यत विशिष्टार्थः सुभाषित सुधानिधिः।'; 'तस्य (सङ्गमस्य) मन्त्रि शिरोरत्न ... ... करुणावता।' 'श्री माधव भोगनाथ सहोदरस्य मायणनन्दस्य सायणाचार्यस्य कृतौ प्रायश्चित सुधानिधौ।'; 'तस्या (संगमस्या) भूदन्वय गुरुस्तत्त्व सिद्धान्तदर्शकः। सर्वज्ञः सायणाचार्यो मायणार्य तनूद्भवः। उपेन्द्रस्येव यस्यासीदिन्द्रः सुमनसां प्रियः। महाकृत नामाहर्ता माधवार्यः सहोदरः। अधीताः सकला वेदास्ते च दृष्टार्थ गौरवाः। तत्प्रणीतेन तद्भाष्य प्रदीपेन प्रथीयसा।' (यज्ञतन्त्रसुधानिधि)। उक्त प्रमाणों द्वारा भारद्वाज गोत्र श्री मायण के तीन पुत्रों का विवरण मालूम पडता है। मायणाचार्य के द्वितीय पुत्र श्री सायणाचार्य थे और आपने अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ को अपनी श्रद्धाभक्ति दिखायी है। आप ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं 'यस्य निश्वसितं वेदा वेदोभ्यो योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ महेश्वरम्।'

सायणाचार्य अपने रचित अलङ्कार सुधानिधि ग्रंथ में अपने भ्राता माधवाचार्य को कहते हैं कि आप 'अनन्त भोग संसक्त' हैं और अन्यत्र कहते हैं कि आप 'प्रतिवसन्त में सोमयाग' करनेवाले हैं। माधवाचार्य अपने को 'त्रिकांड मीमांसा मण्डन' भी कहते है। श्रीविद्यारण्य अपने रचित वेद भाष्य माधव सासण को देकर उसे निरीक्षण कर सम्पूर्ण करने को कहा एवं 'सायणीयम्' के नाम से प्रकाश करने को कहा था। इससे सिद्ध होता है कि भारद्वाज गोत्र माधवाचार्य चौदहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में भी गृहस्थ ही थे। ऐसा कोई शासन (शिला, ताम्रपत्र अन्य पत्र) या कोई प्रामाण्य प्राचीन ग्रंथ चौदहवीं शताब्दी या पश्चात् काल का अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि भारद्वाज गोत्र माधावाचार्य ही श्रीविद्यारण्य थे और ये दोनों अभिन्न थे। जो कोई विद्वान अभिप्राय रखते हैं कि माधवाचार्य ही विद्यारण्य थे, ये बिना किसी प्रमाण के मान लेते हैं कि श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ के निर्याण काल 1380 ई० के पूर्व ही माधवाचार्य ने 1370 ई० या 1377 ई० में सन्यासाश्रम धारण कर लिया था। ऐतिहासिक प्रमाण, शिलालेख, ताम्रशासन, अन्य शासन पत्र एवं वृद्ध परम्परा प्राप्त कथा सब यही सिद्ध करती है कि विजयनगर के राजा हरिहर I एवं बुक्क I जब श्रीविद्यारण्य से मिले (प्रायः 1331 ई० में) तथा इन दोनों के राज्य शासन काल पर्य्यन्त तक आप लोगों ने श्रीविद्यारण्य को सन्यासी रुप में ही देखा था न कि गृहस्थ रूप में। इनके पश्चात् महाराजा हरिहर II ने भी श्रीविद्यारण्य को सन्यासाश्रम में देखा था। पुर्तुगीज यात्री नुनीज एवं अन्य विदेशीय यात्रियों (फेरिश्ता, बकनन् आदि) ने अपनी अपनी रचित पुस्तकों में स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि एक सन्यासी का आशीर्वाद प्राप्त कर विजयनगर राज्य की नीवं डाली गयी और राज्य का विस्तार इस सन्यासी के आशीष द्वारा ही हुआ तथा इस सन्यासी के नामानुसार ही नगर का नाम भी दिया गया था। यह भी उल्लेख है कि इस सन्यासी का प्रभाव हरिहर एवं बुक्क दोनों पर अत्यधिक था। इन विवरणों से मालूम होता है कि श्रीविद्यारण्य ही पुस्तक में उक्त सन्यासी थे और गृहस्थ माधवाचार्य भिन्न व्यक्ति थे। यदि इन दोनों को अभिन्न माना जाय तो कोई ऐसा दृढ प्रमाण नही मिलता है कि गृहस्थ माधवाचार्य प्रायः 1330 ई० में सन्यासाश्रम धारण किया था। यदि भारद्वाज गोत्र के माधवाचार्य

1330 ई० में सन्यासाश्रम धारण किये होते तो आप बुक्क हरिहरमहीपाल के 'कुलगुरु' कहे नहीं जा सकते। आप श्री विद्यारण्य की तरह 'अखिलगुरु' कहे जाते। सायणाचार्य कहते हैं कि माधव 'अनन्त भोग संसक्त' है एवं प्रति वसन्त 'सोमयाग ' करते थे। इस वर्णन से सिद्ध होता है कि माधवाचार्य चौदहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में भी गृहस्थ थे। यदि मान लें कि भारद्वाज गोत्र माधवाचार्य व्यक्ति ही श्री विद्यारण्य थे तो अनेक परस्पर विरोधी प्रमाण मिलते हैं तथा ऐतिहासिक प्रमाण जो शिलालेख, ताम्रपत्र शासन, प्रामाणिक ग्रंथ आदियों से मिलते हैं उन सब को झूठा ठहराना पडेगा।

माधवाचार्य को मंत्री एवं कुलगुरु कहा गया है यथा—'इन्द्रस्याऽऽङ्गिरसो नलस्य सुमतिः शैव्यस्य मेधातिथिः। धौम्यो धर्मसुतस्य वैन्यनृपतेः स्वौजा निमेर्गौतमिः। प्रत्यग्दृष्टिररुन्धती सहचरो रामस्य पुण्यात्मनो। यद्वत्तस्य विभोरभूत्कुलगुरुर्मन्त्री तथा माधवः॥' (पराशर स्मृति व्याख्या)। श्री विद्यारण्य को 'कुलगुरु' कह नहीं सकते चूंकि आपकी महत्ता ख्याती इससे भी ऊंची पदवी की थी और आप 'अखिलगुरु' थे। श्री बुक्क व हरिहर II श्री विद्यारण्य को कुलगुरु कह नहीं सकते चूंकि आप दोनों के लिये श्री विद्यारण्य सूर्य्य थे, ब्रह्म विष्णु महेश के अतीत थे और ऐसे अद्वितीय दिव्यतेजपुंज पण्डितप्रकाण्डपुंगव महान के चरणकमलों में अपनी राजचिन्ह संपत्ति आदि निछावर कर दिया था। ऐसे अद्वितीय महान् को कुलगुरु कहना ठीक जमता नहीं है। महाराजा बुक्क स्वयं श्रृङ्गेरी मठाधीश से प्रार्थना कर आपसे श्रीमुख प्राप्त कर पश्चात् अपने विनय प्रार्थना सहित श्री विद्यारण्य को जो उस समय काशी में थे (लगभग 1356 ई०) प्रार्थना भेजी कि विद्यारण्य काशी से लौट आने की कृपा करें। श्री बुक्क महिपाल का भाव श्री विद्यारण्य के प्रति भीति, श्रद्धा, विनय, आदर, दासत्व आदि का था जो सब विषय शिलाशासन व ताम्रशासन से सिद्ध होते हैं। अब इस उक्त भाव के साथ और एक घटना की तुलना करें जो प्रकाशन करता है कि श्री बुक्क महिपाल का भाव श्री माधवाचार्य के प्रति क्या था। तैत्तिरीय संहिता एवं ऋक् संहिता की भूमिका में श्री सायणाचार्य कहते हैं कि राजा बुक्क ने आज्ञा दी ('अन्वशात्') कि माधवाचार्य भाष्य लिखें और इस पर माधवाचार्य ने राय दी कि राजा बुक्क सायणाचार्य को भाष्य लिखने के लिये आज्ञा दें। महाराज बुक्क ने सायणाचार्य को भाष्य लिखने के लिये कहा—'आदिशन्माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने, सद्याहनृपतिं राजन् सायणार्यो ममानुजः। सर्वं वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्त्वे नियुज्यताम, इत्युक्तो माधवार्येण वीरबुक्क महीपतिः। अन्वशात्सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने।' (यजुर्वेद भाष्य)। इसी प्रकार की घटना पुरुषार्थ सुधानिधि एवं अन्य ग्रन्थों में पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वीर बुक्क का भाव श्री विद्यारण्य के प्रति आदर, भय, विनय व श्रद्धा का था और जिन्हें 'अखिलगुरु' एवं 'आद्यात्म गुरु' कहा था तथा माधवाचार्य के प्रति प्रशंसा व आदर का भाव था। माधवाचार्य एवं विद्यारण्य दोनों भिन्न व्यक्ति थे। गुरुवंश काव्य में लिखा है—'माधवीयमितिसायणीयमित्यादरादतिवरोऽर्थित आभ्याम्। वेदशास्त्रगकृतीः सकलास्ताः साधु संव्यधित तद्द्वयनाम्ना।' टीकाकार ने 'वेदशास्त्रगकृतीः' का टीका की है यथा—'वेद भाष्य धातुवृत्ति न्यायामाला-द्यायाः'। गुरुवंशकाव्य, शिवतत्त्वरत्नाकर एवं श्री विद्यारण्य कालज्ञान आदि पुस्तकें स्पष्ठ उल्लेख करते हैं कि श्री विद्यारण्य ने अपने दयालु स्वभाव के कारण स्वरचित वेद भाष्य एवं धातृवृत्ति आदि ग्रन्थों को माधव व सायण के हाथ देकर उसे पूर्ति करने को कहा और इस ग्रन्थ को माधवीय सायणीय नाम से प्रचार करने को कहा। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्री विद्यारण्य एक पृथक व्यक्ति थे और आपका सम्बन्ध माधवाचार्य एवं सायणाचार्य के प्रति दया एवं शिष्य का भाव था।

श्री माधवाचार्य के भागिनेय विद्वान अहोबल पण्डित थे। आपने तेलगू भाषा की एक व्याकरण पुस्तक संस्कृत में लिखी है। इसी ग्रन्थ में आपने 'माधवीया धातुवृत्ति' को श्री विद्यारण्य की रचना बतलायी है—'वेदानां

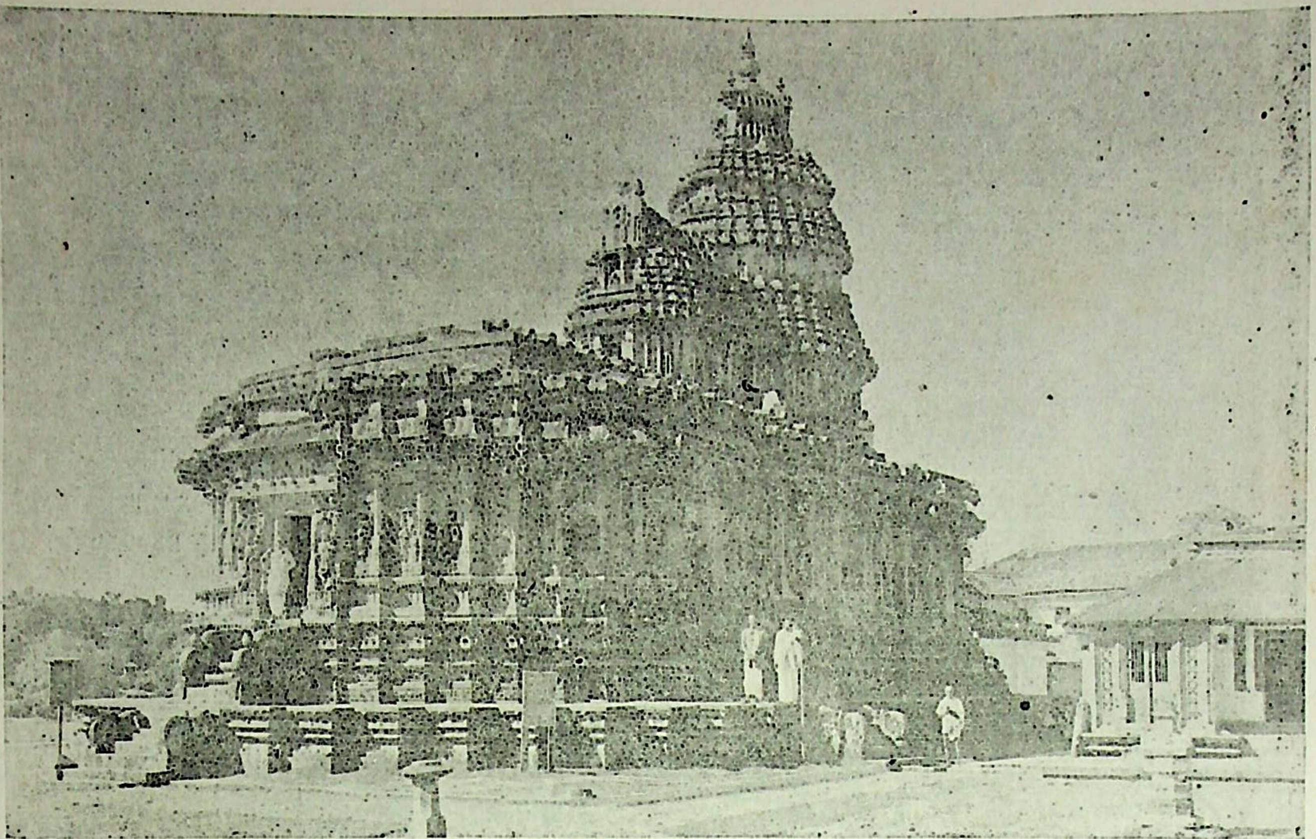


नगर प्रवेश जुलूस में राज मर्य्यादा व चिन्हों के साथ दक्षिणाम्नाय श्री शृंगेरी मठाधीश श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री 1008 श्री विद्यारण्य स्वामीजी महाराज—हम्पी मन्दिर जा रहे हैं (पम्पाति मन्दिर के प्राचीन चित्र से लिया हुआ एक दृश्य)

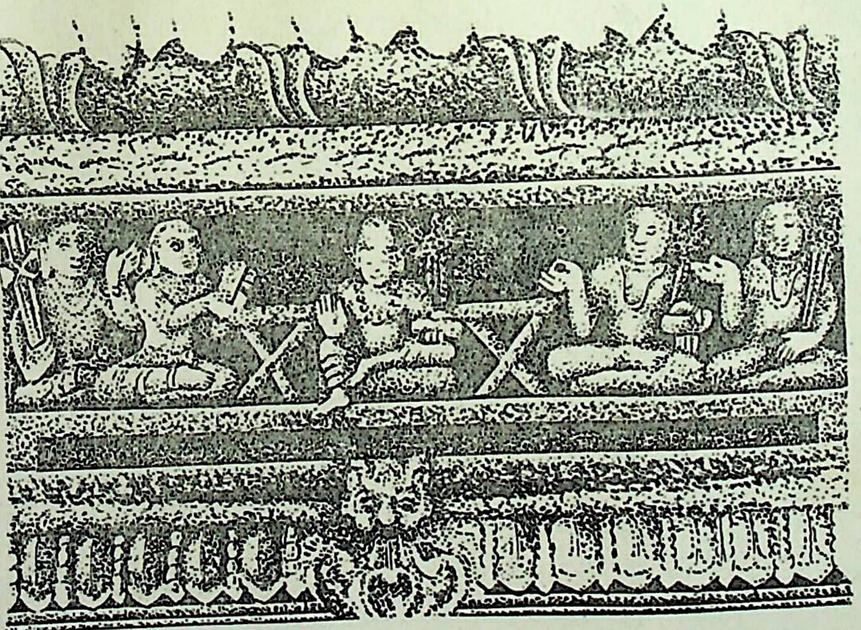
(By courtesy–Author of 'Transcendental Wisdom')

* * * * * * * * * *

नोट—अशुद्ध—पुस्तक पृष्ठ 356, लाइन 18/19—'शृंगेरी के एक मन्दिर में चौदवीं शताब्दी का खुदा हुआ एक शिला में शुद्ध—'पंपाती मन्दिर (हम्पी में) के एक अति प्राचीन चित्र में'



श्री विद्याशंकर मन्दिर—श्री शृङ्गेरी (चौदहवीं शताब्दी में निर्माणित)



श्रृङ्गेरी के एक मन्दिर में (चौदहवीं शताब्दी निर्माणित) शिला पर खुदा हुआ
आद्य श्री शङ्कराचार्य जी की मूर्ति एवं आपके प्रसिद्ध व मुख्य चार शिष्य



श्री शिवपार्वती मूर्ति तथा भद्रेश्वर जल लिङ्ग (एकशिलानगरी)



श्री भद्रकाली देवी (एकशिलानगरी)

* * * * * * * * * *

नोट—पृष्ठ 77—लाइन 15/17—में दिया गया विषय मेरे एक मित्र द्वारा प्राप्त हुआ था और मैं जल्दी में उक्त दैनिक समाचार पत्र द्वारा विषय शोध कर न सका। इस विषय पर जांच किया जा रहा है।

भाष्यकर्ता विंवृत (विविध) मुनिवचो धातुवृत्तेर्विधाता। प्रोद्यद्विद्यानगर्यो हरिहरनृपतेः सार्वभौमत्वदायी। वाणी नीलाहिवेणी सरसिजनिलया किङ्करीति प्रसिद्धा। विद्यारण्योऽग्रगण्योऽभवदखिलगुरुः शङ्करो वीतशङ्कः ॥' अहोबल पन्डित के मामा श्री माधवाचार्य थे अतः यह विषय प्रमाण माना जायगा। आप ने विद्यारण्य की प्रशंसा में जगद्गुरु कहा है (श्री विद्यारण्य दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठ के आचार्य थे)। आपने 'अखिलगुरु' कहा है न कि 'कुलगुरु' जो माधवाचार्य थे। आगे आप कहते हैं कि वेदभाष्य एवं धातुवृत्ति के रचयिता श्री विद्यारण्य हैं। इस विषय के साथ यदि तुलना की जाय कि उक्त पुस्तकों में क्या कहा गया है तो भिन्न कथन पाते हैं। उक्त पुस्तक में लिखा है-'इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये वेदार्थ प्रकाशे।' और प्रस्तावना श्लोक—'तेन मायण पुत्रेण सायणेन मनीषिणा। आख्यया माधवीयेऽयं धातुवृत्तिर्विरच्यते।' तथा वेदभाष्य के हर एक अध्याय, अनुवाक, खण्ड में उल्लेख है कि यह ग्रन्थ श्री सायण से रचित ग्रन्थ है। इन दोनों भिन्न कथन जो प्रमाण व आदरणीय हैं किस प्रकार समन्वय किया जाय? एक रिश्तेदार कहते हैं कि श्री विद्यारण्य कृत है और रचयिता कहते हैं कि श्री सायण कृत है और दोनों भिन्न परस्पर विरोधी कथन हैं। इसका समन्वय उत्तर गुरुवंशकाव्य में है जिसे पहिले ही यहां बतलाया जा चुका है। श्री विद्यारण्य रचित पुस्तकों का प्रकाशन (संशोधन के साथ) माधव-सायण के हाथ सुपुर्द किये गये थे जब आप दोनों भाई श्री विद्यारण्य से प्रथम बार भेंट की थी और आप दोनों ने अपनी अभिलाषा एवं कथा कह सुनायी थी। उपर्युक्त कारण से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि माधवाचार्य ही विद्यारण्य थे। श्री विद्यारण्य 1331 ई० में सन्यासाश्रम धारण किया था और माधवाचार्य गृहस्थ ही रह गये थे अतः ये दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। विजयनगर इतिहास से उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे। यदि अभिन्न मान लें तो पूर्व पारा में दिये प्रमाणों के विरुद्ध होता है। ऋग्वेद भाष्य के प्रारम्भ एवं अन्त में 'निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्।' 'पुमर्थांश्चतुरोदेयात् विद्यातीर्थं महेश्वरः।' ऐसा उल्लेख है और गुरु विद्यातीर्थ की स्तुती की है। श्री विद्यारण्य द्वारा प्रथम यह भाष्य लिखा गया था और पूर्व में आपही ने अपने गुरु के नाम पर स्तुती की थी। पश्चात् विद्यारण्य से इसे प्राप्त कर श्री सायणाचार्य ने इस ग्रन्थ को पूर्ति किया था। सायणाचार्य ने भी वही श्री विद्यातीर्थ के नाम पर स्तुति की थी। इसमें कोई सन्देह की जगह या आश्चर्य की बात नहीं है। माधव सायण के गुरु श्री विद्यातीर्थ एवं श्री भारती कृष्ण तीर्थ थे।

माधवाचार्य कहते हैं—'प्रज्ञामूलमही विवेक सलिलैः सिक्ता बलोपघ्निका। मन्त्रैः पल्लविता विशाल विटपैः संध्यादिभिः षड्गुणैः। शक्त्याकोरकिता यशः सुरभिता सिद्या समुद्यत्फला। संप्राप्ता भुविभाति नीतिलतिका सर्वोत्तमं माधवन्।' आप अपनी वर्णन ऐसा किया है। माधवाचार्य के समान सायणाचार्य पण्डित व समृद्धशाली और मंत्री भी थे। 'अस्ति श्रीसंगमक्ष्मापः पृथ्वीतल पुरंदरः। यत्कीर्ति गौक्तिकादर्शेत्रिलोक्या प्रतिबिंब्यते। तस्य मन्त्रि शिखारत्नमस्ति मायणासायणः। यः ख्यातिं रत्नगर्भेति यथार्थ यति पार्थिवीम्। तेन मायण पुत्रेण सायणेन मनीषिणा। ग्रन्थः कर्मविपाकाख्यः क्रियते करुणावता।' निम्न प्रमाण से प्रतीत होता है कि सायण भी निबन्धकर्ता एवं मंत्री थे— 'इति पूर्वे कम्पराज सुत संगमराज महामंत्रिणा मायणपुत्रेण माधव सहोदरेण सायणेन विरचितायां माधवीयायां, धातुवृत्तौ शब्विकरणाभ्यादयः।' निम्न प्रमाण से मालूम पडता है कि भोगनाथ भी पन्डित थे 'इति भोगनाथ सुधिया संगम भूपाल नर्म सचिवेन। श्रीकण्ठपुर समृद्धै शासनपत्रेषु निर्मिताः श्लोकाः।' माधवाचार्य स्वयं लिखते हैं—'श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता, सायणोभोगनाथश्च मनोबुद्धि सहोदरौ। यस्य बोधायनं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी, भारद्वाजं कुलं यस्य सर्वज्ञः सहि माधवः॥' सायणाचार्य के अलङ्कार सुधानिधि, प्रायश्चित सुधानिधि में उल्लेख है— 'माधव भोगनाथ सहोदरस्य मायण नंदनस्य सयणाचार्यस्य।' इससे आपका कुटुम्ब विवरण मालूम होता है। माधव

व सायण के उपर्युक्त श्लोकों द्वारा माधव के उपर्युक्त पद 'मनोबुद्धिसहोदरौ' की पुष्टी होती है और दोनों भाई समृद्धशाली व पन्डित थे।

यह सब को विदित है कि धातुवृत्ति को माधवीय कहते हैं पर इस ग्रंथ में—'इति पू० सायणेन विरचितायां माधवीयायां धातुवृत्तौ शब्विकरणाभ्यादयः' ऐसा उल्लेख है। और एक जगह लिखा है 'तेन मायण पुत्रेण सायणेन मनीषिणा। आख्यया माधवीयेयं धातुवृत्तिर्विरच्यते।' इसी प्रकार ऋक् संहितादि भाष्यादि में दीख पडते हैं—'कृपालुर्माधवाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः' और ग्रंथ समाप्ति में 'इति सायणाचार्य विरचिते माधवीये' लिखा है। पूर्व में सायण का नाम नहीं है। ऐतरेयतैत्तिरीयारण्यक भाष्य में 'कृपालु सायणाचार्य ... ...।' ऐसा उल्लेख है और अन्त में 'सायणाचार्य विरचिते माधवीये' है। इसमें पूर्व में माधवाचार्य का नाम नहीं है। अथर्व संहिता भाष्य के प्रारम्भ एवं अन्त में 'सायणाचार्य' का ही उल्लेख है। यहां माधवीय का नाम नहीं है। पूर्व में कहा जा चुका है कि सायणाचार्य द्वारा ही वेद भाष्य संपूर्ण किया गया था। श्रीविद्यारण्य रचित वेद भाष्य को एक समय माधव-सायण दोनों ने श्रीविद्यारण्य से प्राप्त किया था और विजयनगर महाराजा के प्रोत्साहन से एवं अन्य कुछ प्रकान्ड विद्वानों की सहायता से इस प्राप्त भाष्य की पूर्ति कर प्रकाश किया था। भाष्य में माधव व सायण दोनों का नाम देने से अनुमान कर सकते हैं कि सायण से भाष्य पूर्ति की गयी हो एवं माधवीय से पुनः संशोधन किया गया हो अथवा श्रीविद्यारण्य से रचित अपूर्ण भाष्य को पूर्ण कर और आपके आदेश अनुसार इसे माधवीय-सायणीय नाम से पुकारा जाता हो।

भारद्वाज गोत्र मायण के तृतीय पुत्र भोगनाथ थे और आप कंपण्णा के पुत्र राजकुमार संङ्गम II के मित्र व सचिव (नर्मसचिव) थे। बिट्रगुन्टा शासन पत्र में उल्लेख है—'इति भोगनाथ सुधिया सङ्गम भूपाल नर्म सचिवेन। श्रीकण्ठपुरसमृद्धयै शासन पत्रेषु विलिखिताः श्लोकाः।' आप भी विद्वान थे और आपका रचित पुस्तक 'उदाहरण माला, रामोल्लास, महागणपतिस्तव, श्रृङ्गार मंजरी व गौरीनाथाष्टक' प्रसिद्ध हैं। सायण से रचित अलङ्कार पुस्तक में अपने भाई के पान्डित्य के बारे में लिखते हैं—'तेषामुदाहरणानि भोगनाथ काव्येषु द्रष्टव्यानि।'

सायण के तीन पुत्र थे जिनमें एक माधव या मायण नाम का था—'तत् संव्यञ्जय (1) कम्पण व्यसनिनः सङ्गीतशास्त्रे तव प्रौढिं (2) मायण गद्यपद्य रचना पान्डित्यमुन्मुद्रय। शिक्षां दर्शय (3) शिङ्गण क्रमजटा चर्चासु वेदेष्विति स्वान् पुत्रानुपलालयन् गृहगतः सम्मोदते सायणः।' (अलङ्कार सुधानिधि)। इस माधव (मायण) ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' ग्रंथ लिखा है—'श्रीमत्सायणदुग्धाब्धि कौस्तुभेन महौजसा। क्रियते माधवार्येन सर्वदर्शनसंग्रहः।' चूंकि प्रथम में आपने सायण माधव लिखा है इसलिये अन्त में आपने अपने पिता का नाम लिया है। आपने वेदान्ताचार्य या वेदान्तदेशिक और जयतीर्थ (आनन्दतीर्थ पर टीका) रचित ग्रंथों से पंक्तियां व श्लोक उद्धृत किया है। मायण के पुत्र माधवाचार्य कहीं भी ग्रंथ में अपने गुरु का नाम सर्वज्ञविष्णु नहीं कहा है पर सायण के पुत्र (मायण का पोता) माधव('सर्वदर्शनसंग्रह' का रचयिता) अपने गुरु का नाम शारङ्गपाणी का पुत्र सर्वज्ञविष्णु का नाम लिया है। विद्वानों का भूल है कि वे मायण का पुत्र माधवाचार्य को ही सर्वदर्शनसंग्रह का रचयिता मानते हैं और इस आधार पर मायण के पुत्र माधवाचार्य के गुरु सर्वज्ञविष्णु का नाम लेते हैं पर दृढ प्रमाण निश्चय करता है कि सायण के पुत्र माधव ने सर्वदर्शनसंग्रह पुस्तक की रचना की थी और आपके गुरु सर्वज्ञविष्णु थे।

मंत्री माधवाचार्य—मायण के पुत्र माधवाचार्य के समकालीन माधव मंत्री (अमात्य माधव) भी एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उक्त माधव मंत्री विजयनगर महाराजा बुक्क I एवं हरिहर II के मंत्री थे। बुक्क व हरिहर अपने मंत्री माधव को 'मदरास उडैयार' के नाम से भी पुकारते थे। एक शिलालेख में आपको 'उपनिषन्मार्गप्रवर्तकाचार्य' भी कहा गया है। माधव मंत्री आङ्गिरस गोत्र चावुन्ड एवं मचाम्बिका के पुत्र थे। माधव मंत्री कुछ वर्षों के लिये

विजयनगर महाराजा हरिहर I के अनुज मारप्पा के मंत्री भी थे। पश्चिमी समुद्रतट प्रदेशों के शासक मारप्पा थे। पश्चात् आप बुक्क I एवं हरिहर II के मंत्री बने। न केवल आप योग्य शासक थे परन्तु आप वीर योद्धा भी थे। शिला लेख में आपको 'भुवनैकवीरः' कहा गया है। शिलालेख में कुछ श्लोक हैं जो माधव मंत्री का विवरण देता है—'आशान्त विश्रान्तयशाः स मंत्री दिशो जिगीषुर्महता बलेन। गोवामिषां कौंकण राजधानी मन्येन मन्येऽरुणदर्णवेन। प्रतिष्ठितास्तत्र तुरुष्कसङ्घान् उत्पाट्य दोष्णा भुवनैकवीरः। उन्मूलिता नाम करोत प्रतिष्ठां श्रीसप्तनाथादिसुधाभुजां यः।' 'गोत्रे योऽङ्गिरसां प्रचण्डतपसश्च चावुण्ड पृथ्वीसुर, प्रष्ठादुद्भवमेत्यनीतिसरणौ दत्तांघिर्य धैषणीम्। सूरिः सन्नपि सर्वदानवमनः प्रह्लाद दानोचितां, यद्भूयः कवितां व्यनक्ति तनुते नो कस्य तेनाद्भुतम्।' माधव मंत्री ने पश्चिमीसमुद्र तीरस्थ प्रदेशों के मुसलमानों (तुरुकों) को परास्त कर राज्य का सीमा बडा दिया था। बुक्क ने आपको बनवासी प्रान्त का शासक नियुक्त किया।

माधव मंत्री विद्वान भी थे। सूतसंहिता पर 'तात्पर्य दीपिका' नामक व्याख्या लिखी है। कुछ विद्वान भूल से इस पुस्तक की रचयिता भारद्वाज गोत्र मायण के पुत्र माधवाचार्य का नाम लेते हैं। पर यह अन्य माधवाचार्य आङ्गिरस गोत्र के थे और मंत्री भी थे। 'श्रीमत्काशीविलासाख्य क्रियाशक्तीश सेविना। श्रीमत् त्र्यम्बक पादाब्ज सेवा निष्णात चेतसा।' 'वेदशास्त्र प्रतिष्ठात्रा श्रीमन्माधव मन्त्रिणा। तात्पर्यदीपिका सूतसंहिताया विधीयते।' एक ताम्र शासन में उल्लेख है—'अयं माधव मंत्री द्वितीय हरिहरस्य सेनानीः पिताऽस्य चावंड भट्टः। माता माचाम्बिका। गोत्रमाङ्गिरसन्। गुरुश्च क्रियाशक्तिः।' मंत्री माधव के गुरु शैवाचार्य काशीविलासक्रियाशक्ति थे। आप त्रयम्बक के उपासक थे। अपने रचित पुस्तक में लिखते हैं 'श्रीमत्काशीविलास क्रियाशक्ति परमभक्त त्र्यम्बक पादाब्ज सेवापरायणेनोपनिषन्मार्ग प्रवर्तकेन श्रीमाधवाचार्येण विरचितायां सूतसंहिता तात्पर्यदीपिकायाम्।'

मदरास राजकीय G. O. No. 961, Public ता॰ 2—8—1913 में काशीविलासक्रियाशक्ति के बारे में उल्लेख है जो यहां दिया जाता है। इसमें कुम्भकोण मठ भ्रामक प्रचारों का उत्तर भी है और विज्ञ इसे समझ लेंगे। 'One point of interest in the Dandapalle plates is the mention of Kriyasakti—Desika. This Saiva teacher whose full name was Kasivilasa Kriyasakti is referred to in terms of high esteem in the records of Bukka I. He was the teacher of Harihara II and his general Muddana Dandanayaka. It is not clear if this teacher has in any way to be connected with the Advaita Mutt at Sringeri, which institution is believed to have received substantial support from Madhavacharya-Vidyaranya (briefly called Madhava), the prime minister of Bukka I; for simultaneously with Madhavacharya-Vidyaranya, there was another minister of Bukka also called Madhava, who was a direct pupil of Kriyasakti and an adherent of pure Saivism as distinguished from Advaitic monism. Madhavacharya-Vidyaranya must be distinct from the Madhava just mentioned.' महाराजा बुक्क ने श्री माधवमन्त्री को श्रृंगेरी कई बार भेजा था और माधव मंत्री ने श्रृंगेरी मठाधीश श्रीभारतीकृष्ण तीर्थजी को भेंट चडाई थी। दक्षिण भारत Epigraphy (1916 ई॰) व 1380 ई॰ का ताम्र शासन तथा गुरुवंशकाव्य उल्लेख करता है कि माधव मंत्री को श्रृंगेरी भेजा गया था। कहा जाता है कि माधव मंत्री की मृत्यु काल 1391 ई॰ का था। इस माधव मंत्री के जीवनवृत्तान्त घटनाओं को श्रृंगेरी मठाधीश श्रीविद्यारण्य के ऊपर आरोपित किये जाते हैं जो सब नितान्त भ्रान्त हैं। इसीप्रकार भारद्वाज गोत्र मायणाचार्य के पुत्र माधवाचार्य के जीवन घटनाओं को श्रृंगेरी मठाधीष श्रीविद्यारण्य पर आरोपित करते हैं और यह भूल है।

अध्याय—4

कुम्भकोणमठ गुरुपरम्परा सूची की विमर्श

किसी एक अद्वितीय ईश्वरांश महान व्यक्ति से किसी एक तीर्थ व क्षेत्र व पुण्य शुद्ध स्थल में एक शास्त्रीय पीठ की स्थापना करके, उस पीठ पर अधिष्ठित देवदेवी की सेवा पूजादि स्वयं करते हुए तथा धर्मोपदेश करते हुए और अपने स्थूल शरीर को त्याग करने के पूर्व, उस स्वप्रतिष्ठित पीठ के परिपालन के लिये अपने बदले एक प्रतिनिधि किसी एक योग्य व्यक्ति को चुनकर एवं अपने द्वारा पुनः प्रतिष्ठित मत व सिद्धान्तों को अक्षुण्ण रखने एवं धर्म प्रचार करने के हेतु परम्परा के प्रवर्तक बनते हैं और इसीप्रकार हर एक व्यक्ति जो भूतपूर्व व्यक्ति के प्रतिनिधि होकर आता है वह क्रम से इस पीडी को बिना विच्छिन्न किये आज पर्य्यन्त इस परम्परा को चलाते हुए आ रहे हैं उसी परम्परा को मूल पुरुष के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा कहते हैं। शिष्य का चुनना, दीक्षादेकर अपने संप्रदाय में ले लेना, गुरु का उपदेश प्राप्त करना, परम्पराप्राप्त नियमादि आचार विचारों का शिक्षादेना, शिष्य को मठाधीष बनने योग्य बनाना, गुरु शिष्य नाता का भाव उत्पन्न कराना, पीठों की पूजादि के लिये व्यवस्था कराना, अपने शिष्य, भक्त, अनुयायियों को धर्मोपदेश देना या इसका प्रबन्ध अन्यरीति से कराना, आदि सब काम परमावश्यक है जब प्रस्तुत मठाधिपति मठ छोड चलते हैं या विदेहमुक्ति प्राप्त करते हैं। आचार्य शङ्कर ने मठाधीशों को राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिये, धर्मप्रचार केलिये, वर्णाश्रमधर्म तथा सदाचार की प्रचार और रक्षा के लिये, धार्मिक सुव्यवस्था बनाये रखने के लिये ताकि वैदिक धर्म अक्षुण्ण रूप से प्रगतिशील बना रहे, अपने निर्दिष्ट प्रान्तों में भ्रमण करने को कहा है और इसका विवरण महानुशासन में पाया जाता है। आचार्य पद के लिये अनेक सद्गुणों की नितान्त आवश्यकता है—पवित्र, जितेन्द्रिय, वेद वेदाङ्ग विशारद, योग का ज्ञाता, सकल शास्त्रों में निष्णात पन्डित ही मठाधीश बनने के अधिकारि हैं। आचार्य शङ्कर ने चार धामों के समीप चार पीठों की सेवापूजन एवं धर्म प्रचार तथा अपने अवतार के उद्देश्यों को अक्षुण्ण रखने के लिये इन चार पीठों में जहां देवयोनि सदा वास करते हैं उसी के निकट चार धर्मराज्य केन्द्र रूप में चार मठों की भी स्थापना करके इन मठों के लिये नियम, पद्धति, संप्रदाय, आदि से बद्ध किया था। मठों में मनुष्य योनि वास करते हैं। उपर्युक्त पीठों की प्रतिष्ठा करने वाले ईश्वरांश मूल व्यक्ति अपने शरीर त्याग समय तक जिसप्रकार उन अधिष्ठात्री की पूजा सेवन करते हुए आये थे और जिस उद्देश्य से वह मूल महान पुरुष इन परम्पराओं को प्रारम्भ किया था उसी प्रकार आपके प्रतिनिधि भी इसे पीरपालन करते हुए चले आना, इस नियम को ही गुरु शिष्य परम्परा क्रम कहा जाता है। जब कभी इस परम्परा प्रतिनिधि यात्रा निमित्त या तपस्या के लिये या अन्य कारणों के लिये मठ छोडकर तीर्थ, क्षेत्र, वन, पर्वत जाते हैं तो उस पीठ की पूजा सेवा आदि के लिये और किसी को चुनते हैं या जो महान् इस संसार बन्धन से बिलकुल छुटकारा पाने के इच्छुक हैं वे अपने प्रतिनिधि को चुनकर उसे परम्परा प्राप्त गूढ विषयों का उपदेश देकर एवं परम्परा प्राप्त मठ संप्रदाय व व्यवहारिक नियमादियों का परिपालन करने के लिये प्रबन्ध कर बाद स्वयं चले जाते हैं। मठों की रूढी यही है। यह शास्त्र सम्मत भी है।

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों की परम्परा में गुरु शिष्य होते हुये चले आते हैं। साधारण मठ केवल निवास स्थान हैं पर चार आम्नाय मठ धर्मराज्यकेन्द्र हैं। आचार्य शङ्कर के सब निवास स्थल या निर्याण स्थल जो व्यवहारिक रीति में मठ भी कहलाते हैं वे सब आम्नाय मठ हो नहीं सकते चूंकि इन साधारण निवास

स्थल मठों में आम्नाय पद्धति व संप्रदाय अलग लागू नहीं होता। इन आम्नाय मठों के मठाधीश का निर्याण पश्चात् अथवा मठाधीश का मठ छोड चले जाने के बाद शिष्य अब अपने पूर्व मठाधीश का प्रतिनिधि बनकर उस मठ की परम्परा प्राप्त संप्रदाय व नियमों का पालन करता है। जब शिष्य अपने गुरु का प्रतिनिधि बनकर उस आम्नाय मठ का अधीश होकर बैठता है तो इसे व्यवहार रूप में 'पीठाभिषिक्त' कहते हैं। यहां पीठ का व्यावहारिक अर्थ आसन है। जहां पीठ है वहीं पीठाभिषेक भी होता है। यदि कुछ कारणों से ऐसा न किया जा सकता हो और अन्य स्थल में पीठाभिषेक भी हुआ हो तब भी नवीन आचार्य अपने धर्मराज्यकेन्द्र अर्थात् देवयोनिपीठ के पास जो आम्नाय मठ स्थित है वहां आकर कुछ समय वास करना अथवा पूजा सेवादि कामों का निर्वाह एवं अधिकार स्वहस्त में ले लेना, अपने भक्त शिष्यों को उपदेश करना, तथा मठ का व्यावहारिक विषयों का निर्वाह करना, यही रूढी में आया हुआ है। अपनी निर्धारित धर्मराज्य को छोडकर ('महानुशासन' के अनुसार) परधर्मराज्य में जाकर उस सीमा का शिक्षाधिकार प्राप्त करना क्या उचित एवं न्याय है? या आचार्य शङ्कर द्वारा इन आम्नाय मठों के अध्यक्षों के लिये बांधी हुई व्यावहारिक सुव्यवस्था का उल्लङ्घन करना उचित है? आम्नाय मठों के अध्यक्ष अपने अपने धर्मराज्य सीमा वासी शिष्यकोटि भक्तों के आध्यात्मिक गुरु हैं। मठाम्नाय में उक्त चार आम्नाय मठाधीश अपने आम्नाय के शिष्य भक्त धार्मिक प्रजा वर्ग को छोडकर अन्य आम्नाय जगह पर अपने धर्मराज्यकेन्द्र को ले जाना एवं वहां शिक्षाधिकार प्राप्त करना न्याय नहीं है। ऐसा करने से आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय व महानुशासन के विरुद्ध होता है। परम्परा प्रवर्तक मूलपुरुष के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा में आनेवाले प्रतिनिधि (कुम्भकोण मठ प्रचार के अनुसार) को आचार्य शङ्कर से व्यवस्थापित अनुशासन के विरुद्ध जाना उस मूल पुरुष का अपचार करना होगा।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपके बारह आचार्य लगातार उत्तरी भारत में 276 वर्ष भ्रमण करते थे और इस बीच काल में कोई भी आचार्य कांची आये ही नहीं। इसीप्रकार यह भी प्रचार करते हैं कि करीब 1100 वर्ष आपके मठाधीश कांची के बाहर ही वास करते हुए निर्याण भी हुए। प्रश्न उठता है कि इन बारह आचार्य किसप्रकार कांची के कामकोटिपीठ की पूजन सेवन की? या आपके बदले कामकोटिपीठ की पूजासेवादि कार्य कौन करता था? इन दिनों में कांची मठ का परिचालन कौन करता था? आपके भक्त शिष्य 276 वर्ष तक किस प्रकार बारह आचार्यों के अनुपस्थिति पर चुप मार बैठे थे? उत्तरी भारत में आपको किस वर्ग ने 'कामकोटि पीठ के शारदा मठाधीश' होने का स्वीकार किया था? इन बारह आचार्यों का पीठाभिषेक कहां कहां और कब हुआ? क्या इन सबों को बाल्यावस्था ब्रह्मचारी आश्रम से ही सन्यासाश्रम दिया गया था? कब और किसने आम्नाय उपदेश किया था? क्रिस्त पूर्व 508 से 1704 ई० तक के काल में करीब 1100 वर्ष आपके मठाधीश कांची छोड बाहर वास करने का कथा कही जाती है और आप लोगों का निर्याण स्थल का भी कोई निर्देषित खास जगह बताया नहीं गया है। उक्त काल के आचार्यों को किसने, कब और कहां इनको पीठाभिषिक्त किया था? कामकोटि पीठ की पूजासेवन एवं कांची शारदा मठ का निर्वाह कौन करता था? कांची से इस लम्बे अनुपस्थिति काल में आपके शिष्य भक्त वर्ग क्या आपको याद भी न किया था? क्या कारण था कि दक्षिणाम्नाय छोडकर आपके आचार्य सब अन्य तीन आम्नायों में भ्रमण करते थे? आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठों के अध्यक्षों ने अपना अपना स्वधर्म छोड कर कहां चले गये थे?

प्रतिष्ठित पीठ की अधीश्वरी मूर्ति जो उस पुण्यस्थल में प्रतिष्ठा की गयी है उस स्थल की मूर्ति को वहां से हटाकर जगह जगह ले जाना शास्त्र विरुद्ध है। प्रतिष्ठित मूर्ति को उस पीठ से उठाकर ले जाने से वह मूर्ति स्थान भ्रष्ट हो जाती है और पूजार्ह नहीं होती। जो सब मूर्तियां एक स्थान में प्रतिष्ठित नहीं हैं और चलन में हैं उन मूर्तियां

को जगह जगह साथ ले जा सकते हैं। कामकोटि पीठ की अधीषि कामाक्षी स्थूल रूप में प्रतिष्ठित हैं और वह मूर्ति कामकोटि पीठ से हटाकर कहीं भी ले जांय तो वह मूर्ति स्थानभ्रष्ठ हो जायगी और पूजार्ह न होगी। यदि काशी के विश्वनाथ लिङ्ग को उखाड कर मदरास ले जांय तो यह स्थान भ्रष्ट मूर्ति पूजार्ह न होगा। इसीलिये काशी के विद्वानों ने 1935 ई० में कहा था कि कांची नगर की कामकोटि पीठ की अधीषी को पीठ से निकालकर यदि कुम्भकोणम ले गया हो जैसा कि कुम्भकोण मठ का कथन है कि 'कांची कामकोटि पीठ अब कुम्भकोणम आ गया है।' तो यह कांची की कामकोटि अब अन्यत्र स्थल कुम्भकोणम् में पूजार्ह हो नहीं सकती है। उक्त विषय को छिपाकर कुम्भकोण मठाभिमानी विद्वानों ने प्रचार किया कि काशी के विद्वानों ने कामकोटि पीठ को पूजा योग्य न होना का निर्णय दिया है। यह केवल असत्य प्रचार है। काशी के गण्यमान विद्वानों एवं आदरणीय परिव्राजकों ने यह कहा था कि स्थानभ्रष्ठ मूर्ति पूजार्ह नहीं है क्योंकि कुम्भकोण मठ का प्रचार था कि 'कांची कामकोटि पीठ अब कुम्भकोणम् आ गया है'। काशी के विद्वानों ने प्रतिष्ठित मूर्ति के बारे में कुछ न कहा था। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में लिखा है कि आचार्य शङ्कर कांची में 'योगलिङ्ग की प्रतिष्ठा' की थी। एक स्थल पर प्रतिष्ठित मूर्ति अब कैसे कुम्भकोण मठाधीष के हाथ में चलन रूप में आ गया? योगलिङ्ग की प्रतिष्ठा मूर्ति कांची में कहां है? इसी प्रकार मठ, आम्नाय मठ, पीठ आदि शब्दों का भिन्न अर्थ होते हुए भी कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में साधारण निवासस्थल मठ एवं आम्नाय पद्धति व संप्रदाय से बद्ध आम्नाय मठ की जगह पीठ पद का उपयोग करते हैं चूंकि 'कामकोटि' सबों को मान्य है। पामर जन इन पदों का यथार्थ अर्थ न जानने के कारण कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों की यथार्थता समझते नहीं हैं और कुम्भकोण मठ प्रचार मायाजाल में फंस जाते हैं।

कांची कुम्भकोण मठ प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने अपने लिये निजाश्रम कांची में निजमठ की स्थापना करके आप वहीं अधिष्ठित भी हुए और आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा कांची मठाधीष आज पर्य्यन्त आ रहे हैं। कांची मठ की धारणा एवं प्रचार है कि आचार्य का सर्वप्रधान मठ यही कांची कामकोटि मठ है और आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित अन्य चार आम्नाय मठ कांची गुरु मठ की शिष्य शाखा मठ हैं। इस प्रचार की पुष्टी एकङ्गि प्रमाणों द्वारा किया जाता है। पाठकगण इनके प्रमाण पुस्तकों का विमर्श इस खण्ड के प्रथम अध्याय में पायेंगे जहां यह निस्सन्देह सिद्ध किया गया है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार सब भ्रामक एवं मिथ्या है और इनके प्रचार का प्रतिपादन में कोई अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। जो कुछ उपलब्ध हैं वे सब स्वरचित एकङ्गि, कल्पित, परिष्कृत्य और क्षिप्त पुस्तकें हैं तथा उनका समर्थन किसी अन्य प्रमाण द्वारा जो श्रेष्ठों को ग्राह्य है उससे नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि शङ्कराचार्य के समय में कांची पवित्र तीर्थस्थल था और वहां का कामकोटि पीठ आचार्य शङ्कर काल के पूर्व से ही था और आचार्य ने गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता शान्त कर, श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा कर, वैदिक मार्ग की पूजाविधि प्रारम्भ कर, ब्राह्मणों को इस कार्य में नियोजन कर मन्दिरों का पुनः निर्माण कराकर, कांची नगरी को सुशोभित किया था। आचार्य शङ्कर ने न वहां आम्नायानुसार धर्मराज्य केन्द्र (मठ) का स्थापना की थी और न वहां आप बहुत दिन ठहरे तथा न वहां आपका विदेह मुक्ति हुआ। आम्नाय मठ विषयक विवरण इस खण्ड के द्वितीय अध्याय में पायेंगे और वहां यह प्रमाणरूप से सिद्ध किया गया है कि कांची मठ का कोई आम्नाय पद्धति या संप्रदाय अलग नहीं है और जो कुछ पद्धति होने का प्रचार करते हैं सो सब कल्पित व अशास्त्रीय है और आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना न की थी। कुम्भकोण मठ का जो कुछ सम्बन्ध कांची नगर से एवं वहां के कामाक्षी मन्दिर के साथ यथार्थ में था उसका विवरण इस खण्ड के छठवें अध्याय में पायेंगे। कुम्भकोण मठ का ताम्रशासन पर विमर्श इस खण्ड के पांचवें अध्याय में पायेंगे। उपर्युक्त अध्यायों में दिये हुए विषयों द्वारा यह दृढ निश्चय होता है कि कांची में आचार्य

शङ्कर ने आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। कांची मठ का इतिहास एवं कब और किससे मठ स्थापित हुई थी इन विषयों पर काफी अनुसन्धान किया गया है और पुराकाल का कुछ प्रमाणों की खोज की जा रही है। आशा है कि शीघ्र ही इस विषय को पुस्तक रूप में प्रकाश कर सकूंगा। कांची मठ का जो प्रचार है कि कांची कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित है तथा आपकी परम्परा आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है, इन विषयों का ही यहां आलोचना की जाती है। इस खण्ड का सातों अध्याय पढने पर यह सिद्ध हो जायगा कि कांची में या कुम्भकोणम् में आम्नाय मठ की स्थापना न हुई थी और आचार्य शङ्कर वहां न अधिष्ठित भये। अब रहा साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा का विषय और इस विषय की आलोचना अध्याय तीन और चार में की जाती है। जब यह सिद्ध किया जा चुका है कि कांची में आचार्य शङ्कर ने आम्नाय मठ की स्थापना न की थी तो आपकी वंशावली भी कल्पित है पर ऐसे कहने मात्र से पाठकगण इसे स्वीकार न करें। यह भी कह सकते हैं कि वंशावली के आधार पर मठ का होना क्यों न स्वीकार किया जाय? इसीलिये यहां कुम्भकोण मठ की गुरु वंशावली पर विमर्श किया जाता है ताकि पाठकगण स्वयं जान लें कि कुम्भकोण मठ के प्रचार में कितनी सत्यता है।

कुम्भकोण मठ अपनी गुरु वंशावली बनाकर प्रचार करते हैं कि आपकी मठ की परम्परा आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है और इस वंशावली की आधार पुस्तकें (1) पुण्यश्लोकमंजरी, (2) गुरुरत्नमाला (3) सुषमा (गुरुरत्नमाला पर व्याख्या) (4) परिशिष्ठ एवं मकरन्द और (5) जगद्गुरु परम्परा स्तोत्र हैं। इन एकाङ्गि स्वरचित पुस्तकों का विमर्श पाठकगण इस खण्ड के प्रथमाध्याय में पायेंगे इसलिये यहां पुनः इस विषय की आलोचना की नहीं जाती है। इन स्वरचित पुस्तकों के अलावा कोई बाह्य प्रमाण इनके कथनों की पुष्टी में प्राप्त नहीं होता। कुम्भकोण मठ कुछ काव्य, नाटक, चम्पू, कथा, इतिहास, जीवनचरित्र पुस्तकों का नाम लेते हैं। इन सब पुस्तकों द्वारा अपनी वंशावली की यथार्थता सिद्ध करने के लिये और कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले आचार्यों की महत्ता बढाने एवं पामरजनों को दिखाने को आपके कथन सब प्रमाण युक्त हैं, इन पुस्तकों का नाम देते हैं। इन पुस्तकों पर विमर्श आगे पायेंगे। इन पुस्तकों पर आलोचना प्रथमाध्याय में भी की गयी है।

बृहत-कथा नामक अनेक कथाओं की एक संग्रह पुस्तक पैसाची भाषा में प्रचलित था और काश्मीर के सोमदेव ने इस बृहत-कथा से अनेक कथायें संस्कृत भाषा में अनुवाद कर ग्यारहवीं शताब्दी में कथासरितसागर नाम से एक पुस्तक प्रकाशित किया था। आपके समसामयिक श्री क्षेमेन्द्र थे और आपने भी बृहतकथामंजरी की रचना की थी। बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेव चरित्र लिखा था। कथाकोष नामक एक पुस्तक भी उपलब्ध है जिसमें अनेक कथायें भी हैं। कल्हण का राजतरङ्गिणी (1150 ई०) जो नीलमतपुराण एवं काश्मीर स्थल माहात्म्य के आधार पर लिखा गया था सो काश्मीर का इतिहास वर्णित है। मिस डफ द्वारा रचित 'Indian chronology' भी एक पुस्तक है। इसमें से अनेक नाम लेकर अपने कल्पित कथा की पुष्टी में प्रमाण दिखाते हैं। तपस्वी, ग्रन्थ रचयिता, भाष्य रचयिता, वेदान्ताचार्य, टीकाकार, प्रकान्ड विद्वान, आदियों का नाम कथासरितसागर, बृहतकथामंजरी, विक्रमाङ्कदेव चरित्र, भोजचरित्र, राजतरङ्गिणी, इन्डियन क्रानलाजी एवं अन्य काव्य नाटक चम्पू ग्रन्थों में पाये जाते हैं और इन नामों को लेकर एक सूची बनालेना कोई कठिन कार्य नहीं है। उपर्युक्त पुस्तकों में अनेक घटनायें वर्णित हैं और इन घटनाओं के बीच में अपना कल्पित मठाधीश का नाम भी जोडकर अपनी कथा भी इसी में मिलाकर और इस कथा की पुष्टी के लिये उन ग्रन्थों का नाम भी लिया जाता है ताकि पामरजन इसे पढकर सत्य कथा समझें। जब इन निर्देषित पुस्तकों को पढा जाता है तो कथा और ही कुछ पाया जाता है और मठ का नाम या मठाधीषों का नाम उन पुस्तकों में पाया नहीं

जाता है। पुराकाल घटना (चाहे कल्पित या सत्य हो) की पुष्टी के लिये दिया हुआ प्रमाणों पर कौन अन्वेषण करता है और जब ये सब प्रमाण एक यति के मठ से प्रचारित होता है तो पाठकगण यति के प्रति आदर भक्ति भाव होने से उसे सत्य स्वीकार कर लेते हैं। जब तक कुम्भकोण मठ प्रचार का पोल न खोला जाय तब तक वे (भ्रामक प्रचार प्रवर्तक) अपनी कल्पना में ही आरूढ रहेगें। इन उपलब्ध सामग्रियों द्वारा एक मठवंशावलीसूची बना लेना कठिन कार्य नहीं है और इन सामग्रियों को प्रमाण रूप में निर्देष कर एक प्रमाणाभास सूची बना लेना भी सहज ही है। ऐसा एक गुरुवंशावली कुम्भकोण मठ ने तैय्यार किया है जिसपर विमर्श आगे पायेंगे।

कुम्भकोण समीप नडुकावेरी ग्रामवासी प्रकान्ड विद्वान भट्ट श्री नारायण शास्त्री जिनको कुम्भकोण मठ इतिहास पूर्णरूप से मालूम था आप कुम्भकोण मठ विषय में लिखते हैं—'अपूर्वम्, अश्रुतम्, अज्ञातम्, अदृष्टम्।' पर कुम्भकोण मठ 'यतिचक्रवर्ति' पदवी पाने की लालसा से क्या क्या कर नहीं सकता है। गुरुरत्नमाला के आधार पर गुरुवंशावली बनायी गयी है और कुम्भकोणम् से श्री एस. वि. वेङ्कटेशन व श्री एस. वि. विश्वनाथन लिखते हैं– **'The author can not be regarded as an authority regarding the generation of the gurus remote from his time ... . (Ep. Ind. Vol. XIV)'** श्री एन. वेंकटरामन द्वारा रचित पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीष की अनुमती से रचित एवं आपको अर्पित है उस पुस्तक में रचयिता लिखते हैं— **'When I say that the accuracy of the chronology can not be questioned it applies only to the latter part of it. We cannot say at present how far the older verses are genuine and of contemporary origin.'** इस पुस्तक के रचयिता वंशावली का अधिकांश भाग को विश्वास नहीं करते। जब कुम्भकोण मठ का प्रचारक स्वयं इस वंशावली की पूर्वार्ध भाग को स्वीकार नहीं करते तो कहां तक इस वंशावली को प्रमाण में लिया जाय? इस कल्पित वंशावली के हरएक मठाधीष के चरित्र पर अन्वेषण किया गया है जिसका संक्षेप रूप में पाठकगणों के जानकारी के लिये नीचे विवरण दिया जाता है। इनके वंशावली में आचार्य शङ्कर से 60 वां आचार्य (1704 ई०) तक का आलोचना की गयी है। कुम्भकोण मठ कथनानुसार आपके 61 वां आचार्य महादेव V के काल से कुम्भकोण मठ कंची छोडकर चले और 62 वां आचार्य चन्द्रशेखर IV तंजौर जा बसे। अठारहवीं शताब्दी प्रारम्भ से लेकर आज पर्य्यन्त का कुम्भकोग मठ का वृत्तान्त मेरे अगले पुस्तक में दिया जायगा।

कांची कुम्भकोण मठ गुरुवंशावली सूची को अन्वेषण दृष्टी कोण से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग 508 क्रिस्त पूर्व से 788 ई० का है। कुम्भकोण मठ वंशावली अनुसार आचार्य शङ्कर का जन्म काल क्रिस्त पूर्व 508 का है। आपके कथनानुसार आचार्य शङ्कर ने इस भूलोक में पांच बार अवतार लिया था। आचार्य शङ्कर का अन्तिम अवतार पुरुष कुम्भकोण मठ का 38 वां आचार्य 788 ई० का था और इनके साथ अवतार कथा भी समाप्त होती है। इसलिये प्रथम भाग को क्रिस्त पूर्व 508 से 788 ई० तक का लिया गया है। दृड प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है कि श्री बुद्धदेव के निर्याण पश्चात् कई शताब्दी बाद ही आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ था। श्री बुद्ध देव का काल क्रिस्त पूर्व पांचवीं शताब्दी का है, अतएव यह कहना भूल है कि आचार्य शङ्कर का जन्म 508 क्रिस्त पूर्व का था। कुम्भकोण मठ के परम भक्त से रचित प्रचार पुस्तक में यह भी कहा गया है कि आचार्य शङ्कर का जन्म श्री बुद्धदेव के सिद्धान्तों का खन्डन के लिये नहीं हुआ था। आचार्य शङ्कर रचित भाष्यों को पढा जाय तो यह स्पष्ट मालूम होगा कि आपने कई जगह बौद्धमत का खन्डन किया है और कुम्भकोग मठ प्रचार पुस्तक का कथन केवल बकवास है।

सम्भवतः आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि आचार्य शङ्कर का जन्म क्रिस्तपूर्व 508 का काल ठीक है चूंकि आपने बौद्ध मत का खन्डन नहीं किया है। अनेक दृढ प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध है कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल क्रिस्त पश्चात् सातवीं शताब्दी अन्त काल का ही है। पाठकगण कृपया इस पुस्तक के प्रथम खण्ड द्वितीय अध्याय के पृष्ठ 17 से 27 तक पढें तो यह विषय विदित होगा। कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने पांच बार अवतार लिया था यह कथा इष्ठ सिद्धि प्राप्त करने के लिये एक कल्पित कथा है जो श्रेष्ठों को अग्राह्य है, प्रमाण ग्रन्थ समर्थन नहीं करते, वृद्धपरम्परागत जनश्रुति पुष्टी नहीं करती एवं यह कथा अन्य स्वीकृत प्रमाणों को असत्य ठहराती है। स्वेच्छावाद से परिकल्पना करना अशास्त्रीय है। जब आचार्य शङ्कर का जन्म 508 क्रिस्त पूर्व का नहीं है और जब प्रमाणों द्वारा सिद्ध होता है कि आपका जन्म क्रिस्त पश्चात् सातवीं शताब्दी अन्त का ही है तो यह लगभग 1300 वर्ष काल का कहेजानेवाले गुरुवंशावली भी कल्पित सूची ठहराता है।

इस वंशावली का द्वितीय भाग 788 ई० से 1385 ई० तक का है। चिदम्बर क्षेत्र में विश्वजित विशिष्ठा के घर में जो गोळक पुत्र का जन्म होने की कथा कुम्भकोण मठ सुनाते हैं वह अद्वैतमतावलम्बियों को एवं आचार्य शङ्कर के प्रति श्रद्धा व आदरभाव रखनेवालों को यह कथा अग्राह्य है। यह कथा द्वेष से द्वैती द्वारा रचित आनन्दगिरि शङ्करविजय, मणिमञ्जरी एवं मध्वविजय आदि ग्रंथों में दिया गया है। आद्यशङ्कराचार्य के अन्तिम अवतार व्यक्ति शङ्कर V कुम्भकोण मठ का 38 वां आचार्य थे। इनसे लेकर 51 वां आचार्य विद्यातीर्थ तक का काल यानी 788 ई० से 1385 ई० तक वंशावली का दूसरा भाग माना गया है। इस खण्ड के अध्याग तीन व चार में यह निस्सन्देह सिद्ध किया गया है कि आपसे कहेजानेवाले आचार्य सूची के आचार्य कुम्भकोण मठाधीष न थे। स्वरचित एकाङ्गि पुस्तकों या स्वरचित श्लोक व पंक्तियां जो उपलब्ध निर्देषित पुस्तकों में पाया नहीं जाता या निर्देषित पुस्तकें उपलब्ध नहीं होते, इन आधारों पर वंशावली को प्रमाण में लेना भूल होगी। जब तक स्वतंत्र बाह्य प्रमाण इन कथनों की पुष्टी नहीं करती तब तक स्व कथनों पर विश्वास किया नहीं जा सकता है। कांची मठ का लगभग 1900 वर्ष का इतिहास (क्रिस्त पूर्व 508 से 1385 ई० तक) में यह प्रचार किया जाता है कि करीब तीन चौथायी काल आचार्यों ने उत्तरी भारत में बिताया है। पर उत्तरीभारत में कहीं भी कोई प्रमाण–अन्दर बाह्य–नहीं मिलता जिससे कुम्भकोण मठ की कथा की पुष्टी की जा सकी। अन्यत्र उपलब्ध प्रख्यात नामों को लेकर सूची बना देने मात्र से वंशावली प्रमाण में लिया नहीं जा सकता है। 51 वां आचार्य विद्यातीर्थ के बाद आपके आचार्य उत्तरी भारत में अपना वास छोडकर दक्षिणी भारत का सम्बन्ध जोडने लगे। इस 1900 वर्ष का मठ इतिहास में दक्षिण भारत में भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता और जो कुछ कथा प्रचार किया गया है सो अन्वेषण करने पर सब असत्य ही निकला। इस काल में दक्षिण भारत के अनेक राजा, महाराजाओं से कई स्थलों में संस्था, मठ, यति, विद्वान एवं अन्य मतावलम्बी वर्गों को दान देने का प्रमाण मिलते हैं पर कहीं भी कांची मठ या कांची मठाधीश का नामों निशान नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि कांची में मठ होने का विषय दक्षिण भारत के वासिन्दों को भी पता न था। इस मध्य काल में कांची एवं समीप सीमा में अनेक विद्वानों ने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया था पर किसी में भी आपके मठ का नामों निशान नहीं है। क्या 'जगत विख्यात भारत का शिरोमणि मुखिया महागुरुमठ' (कुम्भकोण मठ कथनानुसार) के प्रति आप लोगों को द्वेष था कि आपलोगों ने इस मुखिया मठ का नाम भी न लिया।

इस वंशावली का तृतीय भाग 1385 ई० से 1704 ई० तक का है। श्रीविद्यातीर्थ के पश्चात् आपका मठ दक्षिण भारत से अपना सम्बन्ध जोडने लगा और इसके पूर्व काल में आपके कथनानुसार उत्तर भारत में आपके

आचार्य सब भ्रमण करते थे। कुम्भकोण मठ दक्षिण भारत के राजाओं से (विजयनगर द्वितीय वंश, मदुरानायक, तंजौर महराठा वंश, पुदुकोट्टै) दिये हुए कुछ शासन पत्र व ताम्रशासन प्रमाण रूप में दिखाते है। पर इन ताम्र शासनों से यह सिद्ध नहीं होता कि कांची में जो 'यतिराज, शङ्करगुरवे, परमहंसपरिव्राजक, शङ्करार्य' आदि नाम उल्लेख हैं और जिसमें कांची मठ या मठाधीष का नाम या कामकोटि का नाम नहीं दिया गया है ऐसे सब पद आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविन्छिन्न परम्परा के थे। कुछ ताम्र पत्रों में कांची में शारदा मठ का उल्लेख है और यह शारदा मठ दक्षिणाम्नाय का श्रृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा ही था चूं कि दक्षिणाम्नाय में आचार्य शङ्कर से स्थापित शारदा मठ केवल श्रृंगेरी ही था। गुरुरत्नमाला रचयिता ने 59 आचार्य तक का नाम लिया है और तत्पश्चात् 60 वां आचार्य अद्वयात्म-प्रकाश 12 साल तंजौर जिला में वास करते हुए कुम्भकोणम के पास निर्याण हुए ऐसी कथा भी सुनायी जाती है। आपसे प्रारम्भ कर पश्चात् सब आचार्य तंजौर जिला में ही वास करते हुए और वहीं अपना मठ भी स्थापित कर एक नवीन वंशावली प्रारम्भ की थी। कुम्भकोण मठ कथनानुसार अब आपका केन्द्र कांची से तंजौर जिला आ गया। इस अध्याय में कहेजानेवाले आचार्यों का विवरण पायेंगे।

इस वंशावली का चौथा भाग 1704 ई० से प्रारम्भ होता है और आज पर्य्यन्त चला आ रहा है। आपके वंशावली का 61 वां आचार्य महादेव V के समय से आपलोग सब तंजौर में ही वास करने लगे। कुम्भकोण मठ से जो कुछ कथा 61वां एवं 62वां आचार्य के बारे कही जाती है उन कथाओं का समर्थन न इतिहास या न प्राचीन रिर्कार्डों से होता है। आपका सम्बन्ध कांची से विलकुल न था। इस खण्ड के छठवां अध्याय में इस विषय का विवरण पायेंगे। आपके आचार्य सब तंजौर में वास करते हुए एवं तंजौर राजाओं से सम्मानित होते हुए आपका परम्परा तंजौर में प्रारम्भ होकर वंशावली चलने लगी। कुम्मकोण मठ के प्रचार पुस्तक एवं आपसे दिये हुए प्रमाण सब इस विषय को सिद्ध करते हैं। तंजौर का यह परम्परा कांची की शाखा शारदा मठ के कुछ रिकार्डों को प्राप्त कर पश्चात् प्रमाणाभास पुस्तक व अन्य सामग्री तैय्यार कर 'भारतवर्ष का शिरोमणि मुखिया-यतिसम्राट-सार्वभौम' पंचम मठ बनने की लालसा से प्रचार प्रारम्भ हुआ। भट्ट श्रीनारायणशास्त्री द्वारा रचित विमर्श (19 वीं शताब्दी) एवं 1876 ई० में प्रकाशित 'शाङ्करमठतत्त्वप्रकाशिका' पुस्तकें सिद्ध करते हैं कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ था। तंजौर जिला न्यायाधीश डा० बर्नेल भी इसी विषय की पुष्टी भी करते हैं जब आप कहते हैं—'This seems to be quite a modern work written in the interests of the schismatic Mathas on the coromandal coast which have renounced obedience to the Sringeri Math, where Sankaracharya's legitimate successor resides.' 1898 ई० अप्रेल 'केसरी' पत्र में स्पष्ट कहा गया है कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ है। 1898 ई० में प्रकाशित 'श्रीशङ्करविजयचूर्णिका' भी कुम्भकोण मठ को शाखा मठ माना है। 1894 ई० जूलै माह प्रकाशित 'दि लइट आफ दी ईस्ट' में भी इसी विषय की पुष्टी की गयी है। इलाका कचहरी, हैदराबाद, ता: 11—3—1845 को फैसला देता है कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ है और इस आधार पर घोषणा की गयी थी '... ... ... if other Sanyasis belonging to other Maths such as Kudalgi, Sivaganga, Avani, Pushpagiri, Virupakshi, Kumbhakonam etc., come and try to pass themselves off as entitled to such honour, no one should believe them or offer them worship.' मदरास राज्यपाल 23—4—1885 के दिन लिखते हैं जो विषय आपको प्रो० विलियम्स ने कहा था—'One of the few well-ascertained facts in the life of Sankara, better known as Sankaracharya, one of the greatest religious

leaders India has ever produced, is that he founded the Sringeri Monastry in the 8th century.' मदरास समीप कांची नगर का मठ क्यों नहीं उल्लेख किया गया कि कांची मठ अचार्य शङ्कर से स्थापित था? 'Studies in the history of the Third Dynasty of Vijayanagara' शीर्षक पुस्तक में डा० एन्. वेंकटरमणय्या लिखते हैं—'... ... branches of this Matha (Sringeri) were established at Pushpagiri, Virupakshi and Kumbhakonam.' प्रो० विल्सन लिखते हैं—'... ... whether he (Sankara) was more than a passing piligrim at Conjeevaram is doubtful.' 'Cumbakonam—A branch Mutt of Shankaracharya.' ऐसे अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं जो निस्सन्देह सिद्ध करता है कि पूर्व में कुम्भकोण मठ शाखा मठ था। 1935 ई० काशी में कुम्भकोण मठ प्रचार का वास्तविक रूप प्रकाश किया गया और आपके प्रचारों को भ्रामक व मिथ्या होने का विषय सिद्ध किया गया था। आपके आचार्य तंजौर राजा के आश्रय में रहकर, उनका बल व प्रभुत्व प्राप्तकर आपके आचार्य अन्य आदरणीय परिव्राजकों, शाखा मठाधीषों व अन्य मत के मठाधीषों को तंजौर जिला सीमा में भ्रमण करने से रोकने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ था। इस कार्य को साधने में आपको तंजौर राजा का अधिकार एवं प्रभुत्व प्राप्त हुआ था। दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठ का उदासीन स्वभाव, श्रृङ्गेरी मठ के आचार्यों का उदार चित्त एवं समदृष्टि व समभाव रखनेवाले, व्यावहारिक विवादों एवं 'मैं मैं तू तू' से बहुदूर रहनेवाले, मनुष्य की कृत्रिमता व काले कर्तूतों से बहुदूर रहनेवाले, ऐसे श्रृंगेरी मठाधीषों का स्वभाव होने के कारण तंजौर के 'चिक्कउडयार' (छोटेस्वामी) अब भारतवर्ष का शिरोमणी मुखिया पंचम मठ बनने का साहस हुआ। ममता ने आपको पकड ली और इसके फलाभूत जो प्रचार अब बीसवीं शताब्दी में देखा जाता है उसका नीवं, प्रचार सामग्री, कार्यक्रम विवरण, आदि सब इसी काल में तैय्यार हुआ था। आपका मठ इतिहास आज से करीब 200 वर्ष का ही है जिसे विश्वास किया जा सकता है। इसके पूर्व काल का इतिहास कल्पित है। इस कल्पित सूची में कुछ विलक्षण विषय हैं जो सब सिद्ध करता है कि यह सूची कल्पित ही है। इन विषयों का विवरण नीचे दिया जाता है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कांची मठ आचार्य शङ्कर का निजमठ है और इस मठ की धर्मराज्यसीमा सारा भारतवर्ष है। इसे सिद्ध करने के लिये इस वंशावली में 4 तामिल, 1 नम्बूदरी, 15 आन्ध्र, 14 कर्नाटक, 1 उत्तरीभारत गौड, 1 काश्मीरी ब्राह्मण गौड, 1 गौडब्राह्मण आन्ध्र देश का, 3 महाराष्ट्र, 18 द्रविड (तामिल, आन्ध्र, कर्नाटक ऐसा अलग न देकर और इन तीनों वर्गों को द्रविड बताया गया है और इनकी दी हुई कथा द्वारा इन 18 नामों को इन तीन वर्ग में विभाजित किया जा सकता है), तथा 5 नाम अनजान वर्ग (मूकशङ्कर, बोधभगवन्नाम, अद्वयात्मप्रकाश, महादेव, चन्द्रशेखर IV, इन पांचों का वर्ग विवरण कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में नहीं दिया गया है) आचार्यों का नाम देकर प्रचार करते हैं कि कन्याकुमारी से काश्मीर तक के दशविध ब्राह्मण आपके मठ के अधीश थे और इसलिये आपका मठ जगद्गुरु शङ्कराचार्य का निज मठ है। आचार्य शङ्कर से लेकर वर्तमान मठाधीश तक 68 आचार्य आपके वंशावली में दिया गया है। अनेक पुस्तकों से एवं भारतवर्ष के विविध स्थलों से नाम लेकर एक वंशावली सूची बनायी गयी है। वंशावली जो क्रिस्तपूर्व 508 से प्रारम्भ होकर आपके 60 वां आचार्य (पश्चात के आचार्य सब कांची छोड तंजौर चले गये थे) 1704 ई० तक इनमें 30 आचार्य करीब 1156 वर्ष कांची में वासकर कांची में निर्याण हुए और 30 आचार्य करीब 1056 वर्ष तक कांची छोडकर उत्तरी भारत एवं दक्षिणी भारत परिभ्रमण करते हुए कांची के बाहर स्थलों में निर्याण हुए। कांची व समीप स्थलों में अर्वाचीन काल के कुछ इनेगिने समाधियों को छोडकर इन 60 आचार्यों की समाधि कहीं भी पायी नहीं जाती। इस वंशावली में जहां जहां आचार्य का निर्याण स्थल

बतलाया गया है उसी जगह के नया एक शिष्य का भी नाम देकर वंशावली में जोड दिया गया है। अपने मठ कांची को छोड अन्यत्र वास करते हुए और इस 1056 वर्ष कांची के कांची मठ से सम्बन्ध न रखते हुए रहने का कारण वहां वहां के शिष्य लिये गये थे ताकि यह साबित करने में सुविधा हो कि गुरु ने शिष्य को दीक्षा देकर मठाधीश बनाया था। यद्यपि उत्तर भारत में रहते हुए दक्षिण भारत के शिष्य को चुना जा सकता था तथापि वैसा किया नहीं गया परन्तु श्री विद्यातीर्थ पश्चात् सब दक्षिणी भारत के ही थे। उत्तर भारत में पीठाभिषिक्त नवीन मठाधीश न कांची आये और न उनका सम्बन्ध कांची से था। आश्चर्य है कि आचार्य शङ्कर का मूल निजमठ कांची होते हुए भी जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है, ये मठाधीश मूल मठ के साथ सम्बन्ध न रक्खे थे। अन्य चार आम्नाय मठों में जब शिष्य की दीक्षा दी जाती है और जब मठाधीश बनते हैं तो वे सब अपने अपने मठ में (केन्द्र स्थान) आकर कुछ काल अवश्य वास करते हैं और पश्चात यात्रा में निकलते हैं पर ऐसा तो इसके पूर्वार्ध वंशावली के इतिहास से मालूम नहीं होता। दीक्षा कब दी गयी थी, किससे दी गयी थी, आपका वयस क्या था, इन सब का विवरण नहीं दिया गया है। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में लिखा है 'We find often that the successor belongs to the district or country where the previous guru happens to die.' वंशावली में अविच्छिन्न परम्परा दिखाने के लिये यह सुगम रास्ता निकाला गया है। यदि ऐसा न हो तो वंशावली में भङ्ग हो जाय।

गुरुरत्नमाला के अनुसार कुम्भकोण मठ की वंशावली आचार्य शङ्कर से प्रारम्भ होकर पश्चात् श्री सुरेश्वराचार्य का उल्लेख करता है। कुम्भकोण मठाधीश को अर्पित एक पुस्तक में आपकी वंशावली सर्वज्ञात्म से प्रारम्भ होता है और यहां सुरेश्वराचार्य को छोड दिया गया है। इस पुस्तक के रचयिता लिखते हैं—'Thus leaving out Sureshwaracharya, who did not occupy the Kanchi Pitha at all, ...' इसीप्रकार कुम्भकोण मठ के अन्य प्रचार पुस्तकों में भी सुरेश्वराचार्य का नाम नहीं दिया गया है। 1957 ई० में प्रकाशित मठ पुस्तक में सुरेश्वराचार्य को द्वितीय आचार्य दिखाया गया है। गुरुरत्नमाला व्याख्याकर्ता ने भी आचार्य शङ्कर से वंशावली प्रारम्भ कर सुरेश्वराचार्य को भी वंशावली में लिया है। इन भिन्न कथनों का क्या तात्पर्य है? श्री पन्तुलु, कुम्भकोण मठ प्रचारक, पुस्तक रचयिता, लिखते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य परमहंस सन्यासी न थे और आप योग लिङ्ग पूजार्ह न होने से कांची मठाधीश नहीं बने एवं सुरेश्वराचार्य की निगरानी में सर्वज्ञात्म को मठ में बैठाया गया और श्री सुरेश्वर अन्य चार मठ के आचार्यों के मुखिया बनकर कांची में वास किये। कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रमाण मार्कन्डेय संहिता पुस्तक जो अन्यों को अनुपलब्ध है और श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है उसमें स्पष्ठ उल्लेख है कि श्री सुरेश्वराचार्य कांची में मठाधीश बने। वर्तमान मठाधीश ने भी अपने मदरास भाषण में इस पुस्तक का उल्लेख किया है। न मालूम क्यों अब इस 'मार्कन्डेय संहिता' का निराकरण करके कहते हैं कि सुरेश्वराचार्य कांची मठाधीश नहीं बने। इसी प्रकार कुम्भकोण मठ से परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी सुरेश्वराचार्य को कांची मठाधीश कहा गया है। कुम्भकोण मठ से जितना भ्रामक प्रचार सुरेश्वराचार्य के विषय में किया गया है उसका विवरण अध्याय तीन में पायेंगे। मठ वंशावली में प्रारम्भ आचार्य का नाम भिन्न नामों को देकर पामरजनों में भ्रम पैदा करते हैं। कुम्भकोण मठ का जो कथन है कि 'ब्रह्मचारी को ही केवल सन्यास दिया जाता है और पीठ में बाल्यावस्था में बैठाया जाता है' इसका प्रमाण 16 वीं शताब्दी तक के दिये हुए आचार्यों के विवरण से पुष्टी नहीं होती। आपकी गुरुवंशावली को छानबीन कर देखा और दो या तीन जगह छोडकर और कहीं भी किसी का वयस लिखा नहीं पाया। क्या सब आचार्यों को उनके उनके बाल्यावस्था में सन्यासाश्रम दिया गया था? केवल सर्वज्ञात्म बालक को संन्यास देने से यह कहना कि हमारी

गुरुपरम्परा में सब बालक ब्रह्मचारी ही सन्यासाश्रम लेते हैं यह ठीक नहीं जमता जब तक यह सिद्ध न किया जाय कि गुरुपरम्परा में आये हुए सब आचार्य ब्रह्मचारी एवं बालक ही थे। कहा जाता है कि सत्यबोध 96 वर्ष, ज्ञानानन्द 63 वर्ष, शुद्धानन्द 81 वर्ष, आनन्दज्ञान 69 वर्ष, कैवल्यानन्द 83 वर्ष, सुरेश्वर 58 वर्ष, चन्द्रशेखर (I) 63 वर्ष, मठाधीश बनकर मठ में थे और ऐसा उदाहरण इनकी वंशावली से अनेक दिया जा सकता है। प्रश्न उठता है कि इन आचार्यों ने अपने अपने शिष्य को कितने वयस में सन्यासाश्रम दिया था और कब दिया था? क्या ये सब बालक ब्रह्मचारी थे? गुरु के निर्याण पश्चात् शिष्य मठाधीश बनता है और मठाधीश बनते समय इन आचार्यों का वयस क्या था? यदि नाबालिक ब्रह्मचारी थे तब आपकी निगरानी के लिये कौन था जैसे सुरेश्वराचार्य की निगरानी में सर्वज्ञात्म थे। क्या बाल सन्यासी मठ व्यवहारिक विषयों को संभालने की शक्ति थी?

कुम्भकोण मठ वंशावली में प्रथम चौदह आचार्यों का सन्यासदीक्षा कब और कितने वयस में दी गयी थी उसका उल्लेख नहीं है पर 15 वां आचार्य श्रीगङ्गाधर के विषय में लिखा है कि आपको बारहवें वयस में सन्यासाश्रम दिया गया था। कुम्भकोण मठ प्रचारक श्री एन्. वि. लिखते हैं—'But it is doubtful if the practice of early ordination prevailed from the very begining.' कुम्भकोण मठ के परम भक्त प्रचारक स्वयं सन्देह करते हैं कि बालक ब्रह्मचारियों को ही सन्यासाश्रम दिया गया था। जब प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि सुरेश्वराचार्य से प्रारम्भ होकर सब मठाधीश बाल ब्रह्मचारी. वयस में ही सन्यासाश्रम दिया गया था तो भी कुम्भकोण मठ इस विषय का प्रचार बराबर करते हैं। वंशावली प्रारम्भ आचार्यों का मठशासन काल 70, 112, 96, 63, 81, 69, 83, आदि वर्ष दिया गया है और इसके पश्चात् आचार्यों 15, 17, 18, 19, 21, 24, 26, 27, 29, 31, आदियों का शासन काल 12, 8, 10, 13, 10, 15, आदि वर्ष दिया गया है। बाल ब्रह्मचारी को सन्यासाश्रम देकर गुरु के निर्याण पश्चात् ये बाल सन्यासी मठाधीश बनते हैं अर्थात् इन सब आचार्यों की आयु अल्प थी और वे सब 25 से 30 वर्ष की आयु में निर्याण हुए होंगे। इसमें क्या रहस्य है कि लगातार सब आचार्य अल्पायु के थे? पूर्व में दीर्घ काल देकर पश्चात् अल्प काल देने से प्रतीत होता है कि क्रिस्तपूर्व 508 से जो वंशावली प्रारम्भ है उसमें अधिक या कम वर्ष देकर वंशावली को वर्ष काल के साथ समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है। पुराकाल का चरित्र विवरण न जानने का कारण अनेक हो सकते हैं पर यह समझ में आता नहीं कि अर्वाचीन काल के कुम्भकोण मठाधीषों अर्थात् 61 आचार्य से 67 आचार्य तक (1704 से 1908 तक) का विवरण वंशावली में क्यों नहीं दिया गया है? एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीश की अनुमति से रचित है उसमें स्पष्ट कहा है कि 61 से 67 आचार्यों का विवरण मिलता नहीं है—'Full particulars are not available about Acharyas from 61 to 67. What I have given below about them are taken from Mr. N. K Venkatesan's book. But his dates are in accurate.' यदि विवरण देने लायक होता या यथार्थ में घटनायें घटित होती तो कुम्भकोण मठ विवरण देते। प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ को अपने आचार्यों का विवरण मालूम नहीं है। कुम्भकोणमठाधीश को अर्पित प्रचार पुस्तक में यह भी लिखा है—'............ The link between ज्ञानानन्द or ज्ञानोत्तम and शुद्धानन्द is weak.' आप स्वयं मानते हैं कि वंशावली का विवरण ठीक नहीं है।

कुम्भकोण मठ वंशावली 508 क्रिस्त पूर्व से प्रारम्भ होता है। श्री आत्रेय कृष्ण शास्त्री लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ आचार्य 1 से 11 तक (सर्वज्ञात्म से सच्चिद्घन) सब अद्वितीय महानों का विशिष्ट चरित्र विवरण संक्षेप

में दिया जाता है। अद्वितीय विशिष्ठ चरित्र कहने मात्र से इन महानों की अद्वितीयता एवं विशिष्ठता का विवरण क्यों नहीं दिया गया है? आप कहते हैं कि 750 वर्ष का प्रारम्भिक आचार्यों का विवरण आपको मालूम नहीं है। आप सर्वज्ञात्म श्री चरणेन्द्र सरस्वती का काल क्रिस्तपूर्व 476 से क्रिस्तपूर्व 364 तक का कहते हैं। पर कुम्भकोण मठ की (जुबली संस्करण–1957) पुस्तक में सुरेश्वराचार्य को 476 क्रिस्तपूर्व से 406 क्रिस्त पूर्व का दिया गया है और सर्वज्ञ श्री चरणेन्द्र तृतीय आचार्य को 406 क्रिस्त पूर्व से 394 क्रिस्त पूर्व का कहा गया है। इन दोनों भिन्न कथनों में कौन यथार्थ है या दोनों कल्पित हैं? सुरेश्वराचार्य का 70 वर्ष निगरानी कहने मात्र से क्या समझा जाय कि सर्वज्ञश्रीचरण सर्वज्ञ न थे जिन्हें आचार्य शङ्कर ने सर्वज्ञ कहकर बुलाया था। चौथे, पांचवें, छठवें व सातवें आचार्यों का निर्याण काल क्रिस्त पूर्व 298, 235, 154, 85 दिया गया है पर आत्रेय कृष्ण शास्त्री ने तृतीय, चोथे, पांचवें, छठवें व सातवें आचार्यों का निर्याण काल क्रिस्त पूर्व 364, 268, 205, 124, 55 का दिया है। इस प्रकार इन भिन्न कथनों में हर एक आचार्य का 30 वर्ष का फरक पडता है। ऐसे भिन्न कथनों से सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या वंशावली यथार्थ है? इसी प्रकार सच्चित्सुख का मठशासन प्रारम्भिक काल एक जगह 481 ई० कहा गया है और दूसरी जगह 471 ई० है; गङ्गाधर II का काल 915 ई० और 916 ई०; विद्यातीर्थ का काल 1297/1370 ई० एवं 1370/1385 ई० तक हिमालय वास कहा गया है और अन्यत्र 1296 ई० से 1384 ई० का दिया गया है; आत्मबोध (विश्वाधिक) का मठशासन प्रारम्भिक काल 1586 ई० और अन्य जगह 1584 ई० का है; बोध III का निर्याण काल एक जगह 1692 ई० कहा गया है और दूसरी जगह 1690 ई० कहा गया है; चन्द्रशेखर IV का शासन काल एक जगह 1746 ई० से 1783 ई० तक एवं दूसरी जगह 1729 ई० से 1789 ई० तक का है; चन्द्रशेखर V का निर्याण काल 1851 ई० दिया गया है और अन्यत्र 1849 ई० का भी दिया गया है; महादेव VII का निर्याण काल 1891 ई० का है एवं 1889 ई० का भी है; प्रस्तुत मठाधीश का मठशासन प्रारम्भिक काल एक जगह 1908 ई० दिया गया है और दूसरी जगह 1907 ई० दिया गया है। तेरहवें आचार्य तक (272 ई०) का काल 'कलिवर्ष' में दिया गया है और चौदहवें आचार्य से 'शक वर्ष' में दिया गया है। प्रश्न उठता है कि 'कलिवर्ष' का ठीक प्रारम्भिक काल कब था और इस कलिवर्ष के साथ प्रचलित नाम वर्ष ईस्वी में किस आधार पर और कैसे परिवर्तन किया गया? कलिवर्ष कहने मात्र से सम्भवतः इस वंशावली के रचयिता ने सोचा होगा कि इसकी यथार्थता एवं इस काल पर अन्वेषण करना कठिन होगा और पामरजन इसे मान लेंगे। पुण्यश्लोकमंजरी आधार पर इनका काल निर्णय किया गया है। पुण्यश्लोकमंजरी का रचना 16 वीं शताब्दी कहा जाता है। प्रश्न उठता है कि क्रिस्तपूर्व 508 से लेकर 1523/39 ई० तक अर्थात् लगभग 2000 वर्ष से अधिक काल तक कोइ प्रमाण पुस्तक मठ में क्यों न थी जिसके आधार पर वंशावली बनायी जा सके। मठ की स्थापना पश्चात्, 2000 वर्ष उपरान्त, वंशावली बनायी गयी है और ऐसे अर्वाचीन काल की कल्पित वंशावली को किस प्रकार प्रमाण में लिया जाय? जितने श्लोक पुण्यश्लोकमंजरी में हैं वे सब इन 2000 वर्षों तक कहां थे और किस रूप में था। अचानक एक वंशावली अर्वाचीन काल में तैय्यार कर प्रचार करने मात्र से वंशावली प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है।

कुम्भकोण मठाधीश को अर्पित एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि सुरेश्वराचार्य कांची मठाधीष न भये और 12 आचार्यों का मठशासन काल अनुमान से यदि 20 साल हरएक आचार्य का मान लें तो कुल 240 वर्ष होता है और इसे विद्याघन के निर्याण काल से घटायें तो 77 ई० आचार्य शङ्कर का निर्याण काल लिया जा सकता है— 'Thus leaving out Sureshwaracharya who did not occupy the Kanchi-pitha at all, we have 12 Acharyas between Sankara and Gangadhara I; and on an average of

20 years for each, we get a total of 240 years for them. If we deduct this from 239 S. E. or A. D. 317, given as the date of Vidyaghana's death, we get A. D. 77, or the third quarter of the first century A. D., roughly for Sri Sankara's Niryana.' इस कथन से प्रतीत होता है कि पुस्तक रचयिता कुम्भकोण मठ वंशावली का प्रारम्भिक काल क्रिस्त पूर्व 508 का मानते नहीं हैं। आपका अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण प्रथम शताब्दी क्रिस्त पश्चात् का है एवं जो काल कुम्भकोण मठ की प्रधान प्रमाण पुस्तक पुण्यश्लोकमंजरी के आधार पर इन बारह आचार्यो का दिया गया है यथा 32, 112, 96, 63, 81, 69, 83, 41, 58, 45, 63, 37 सब आपके अभिप्राय में कल्पित मिथ्या है। कुम्भकोण मठ प्रचारक सुरेश्वर को मठाधीष न होने का कहते हैं पर कुम्भकोण मठ की प्रमाण पुस्तकें परिष्कृत्य आ० शं० वि० एवं मार्कन्डेय संहिता सुरेश्वर को मठाधीष कहा है। क्या कुम्भकोण मठाधीष एवं आपके प्रचारक 'पुण्यश्लोकमञ्जरी' को प्रमाण में नहीं मानते? एक तरफ इस पुस्तक की प्रामाण्यता पर प्रचार करते हैं और दूसरी तरफ अप्रमाण ठहराते हैं। इस प्रचार का मर्म क्या है? वर्तमान मठाधीश काशी में 1935 ई० में कहा कि 'ॐ तत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य नहीं है और जो पुस्तकें 'ॐ तत्सत्' को महावाक्य कहता है वे सब कुम्भकोण मठ के अनुमति से लिखे नहीं गये और आप इसके दायित्व नहीं हैं (लीडर पत्र 21—10—1934)। कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र रचित 'सुषमा' (गुरुरत्नमाला पर टीका) में 'ॐतत्सत्' को महावाक्य कहा है। क्या वर्तमान मठाधीष सुषमा को प्रमाण में नहीं मानते? मालूम होता है कि इस कुम्भकोण मठ का स्वभाव ही भिन्न कथनों से भ्रम उत्पन्न करना है। मदरास एवं अन्य स्थलों के समाचार पत्रों द्वारा प्रचार करते हैं कि कुम्भकोण मठाधीष 'समदृष्टि' भाव रखनेवाले हैं और दूसरी जगह अपने मठ को सर्वोच्च सर्वोत्तम होने का प्रचार भी करते हैं। आचार्य शङ्कर का निर्याण काल 476 क्रिस्त पूर्व का है या प्रथम शताब्दी क्रिस्त पश्चात् का है? कल्पित वंशावली में परिवर्तन करने से कोई हानी भी नहीं है!

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार मठों में भिन्न भिन्न काल दिये गये हैं। आचार्य शङ्कर का काल निर्णय उपलब्ध सामग्री के आधार पर सातवीं शताब्दी माना गया है (पृष्ठ 17/27 देखिये)। इस आधार पर सब मठों में दिये गये काल भूल प्रतीत होता है। शृङ्गेरी मठ में आचार्य शङ्कर का जन्म काल 'विक्रम शक चौदह' का उल्लेख है और तत्पश्चात् शाली शक में वर्ष दिया गया है। शृङ्गेरी मठ वंशावली की सूची बनानेवाले विद्वान ने शृंगेरी मठ में उपलब्ध सामग्री जो विक्रमशक चौदह का उल्लेख करता है उसे उज्जैनी विक्रम शक मानकर एवं इसे शाली शक का अनुरूप कराने की चेष्टा में जो 600 साल से अधिक का अन्तर पाया जाता है एवं इन दोनों उज्जैनी विक्रम व शालीशक के भेद को समन्वय करने की चेष्टा में श्रीसुरेश्वराचार्य का काल 700 वर्ष होने का भूल से दे दिया था। शृङ्गेरी मठ वंशावली की सूची रचयिता ने यह भूल अवश्य की है पर इस रचयिता ने कल्पित नामों को जोडकर अपने मठ वंशावली की सूची में 700 वर्ष को इन कल्पित नामों में बांटा नहीं है जैसा कि कांची मठ वंशावली में पाया जाता है। शृंगेरी मठ में उपलब्ध अति प्राचीन सूची में दिये नाम को ही पुनः प्रकाशित किया है। आचार्य शङ्कर का उक्त समय 'विक्रमार्काब्द चौदह' वातापि (वादामि) के दक्षिणापथ चालुक्य राज्य का प्रथम विक्रमार्क का समय है। राजा आदित्य प्रथम विक्रमादित्य के भाई थे। पुलकेशिन II के पश्चात् आपके द्वितीय पुत्र विक्रमादित्य I राजा भये। कहा जाता है कि विक्रमादित्य I का शासन काल प्रारम्भ 670 ई० का था। इससे प्रतीत होता है कि आचार्य का जन्म 684 ई० का है। शृंगेरी मठ वंशावली सूची बनानेवाले की भूल यही थी कि चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य को छोडकर उज्जैनी विक्रमादित्य का काल लिया था। ऐतिहासिक विद्वानों का दृढ

अभिप्राय है कि उज्जैनी विक्रमशक दूर दक्षिण में उन दिनों में प्रचलित न था और यह उत्तरीय विक्रम शक के प्रारम्भ काल के 500 वर्ष उपरान्त ही दक्षिण भारत में यह उज्जैनी विक्रम शक प्रचार हुआ था। तुङ्गभद्रा व शृंगेरी समीप वातापि चालुक्य वंश का विक्रमादित्य राज्य शासन ही शृंगेरी को मालूम हुआ होगा न कि दूर उत्तर का उज्जैनी विक्रमशक। कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि शृंगेरी मठ 800 वर्षों तक विन्छिन्न पडा था और कुम्भकोण मठाधीश ने इस मठ का उद्धार किया था सो कथन न केवल अनर्गल है पर उन्मत्त प्रलाप है। शृंगेरी वंशावली सूची में दिये आचार्यों की पीडी अविन्छिन्न रूप से आठवीं शताब्दी प्रारम्भ से आज तक चली आ रही है और इस पीडी के हरएक अचार्यों का विवरण सब अन्दर बाह्य दृढ प्रमाणों से सिद्ध होता है। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान एवं भूतपूर्व D. P. I. श्री के. आर. वेङ्कटरामय्यर से रचित पुस्तक 'Transcendental Wisdom' पढने योग्य पुस्तक है। आचार्य शङ्कर का जन्म श्रीबुद्धदेव के कई शताब्दी के पश्चात् ही हुआ है और यह सर्व सम्मत है। वि. स्मित के अभिप्राय में 486—487 क्रिस्त पूर्व बुद्धदेव का काल है; फ्लीट एवं गीगर का अभिप्राय क्रिस्तपूर्व 483 का है और कुछ विद्वान बुद्धदेव का परिनिब्बान 543 क्रिस्तपूर्व का कहते हैं। इन आधारों पर कैसे कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर का जन्म क्रिस्तपूर्व 508 में हुआ था जो कुम्भकोण मठ का प्रचार है।

कुम्भकोण मठ वंशावली में सब से आश्चर्य विषय है कि आचार्य शङ्कर के चरित्र घटनाओं में से पांच घटनाओं को लेकर अपनी वंशावली में पांच बार आचार्य शङ्कर का अवतार दिखाकर पांच शङ्कर का नाम दिया गया है। जिस प्रकार आचार्य शङ्कर के मुख्य शिष्य गौडब्राह्मण सुरेश्वराचार्य थे उसी प्रकार चार बार पुनः पुनः अवतारी शङ्कर के मुख्य शिष्य उत्तरी भारत के गौड ब्राह्मण का नाम ही दिया गया है। प्रथम शङ्कर का अवतार स्थल कालटी एवं पिता माता शिवगुरु आर्याम्बा और आपका काल क्रिस्तपूर्व 508 से 476 तक का दिया गया। आपका निर्याण स्थल चिदम्बर कहा जाता है। प्रथम शङ्कर भाष्यकर्ता थे और आपका मुख्य शिष्य सुरेश्वराचार्य थे। द्वितीय शङ्कर का अवतार कुम्भकोण मठ वंशावली का 9 वां आचार्य कृपाशङ्कर थे। आप ही यथार्थ षणमतस्थापनाचार्य थे। आपका काल 28 ई० से 69 ई० का है। आपके मुख्य शिष्य सुरेश्वर थे। श्रीसुरेश्वर महाराष्ट्री थे और आपका पूर्वाश्रम स्थल महाबलीश्वर था। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कृपाशङ्कर के गुरु श्रीकैवल्य योगी की आज्ञापर इस दूसरे शङ्कर ने एक सुभट्ट विश्वरूप को शृङ्गेरी भेजकर मठ की वंशावली चलायी थी। तृतीय शङ्कर का अवतार कुम्भकोण मठ वंशावली के 16 वां आचार्य उज्ज्वल शङ्कर थे (329 ई० से 367 ई०)। आप केरळ देश राजा कुलशेखर को आशीष देकर आपको विद्वान कवि बनाया था। यह उज्ज्वल शङ्कर भारत का दिग्विजय यात्रा कर काश्मीर तक पहुंचे थे। आपका मुख्य शिष्य काश्मीर देश के देवमिश्र का पुत्र गौड सदाशिव था। चतुर्थ शङ्कर का अवतार कुम्भकोण मठ वंशावली के 20 वां आचार्य अर्भक शङ्कर या शङ्कर IV या मूकशङ्कर या शङ्करेन्द्र थे (398 ई० से 437 ई०) और आप काश्मीर राजाओं से पूजित हुए। आपका मुख्य शिष्य मातृगुप्त या चन्द्रशेखर I या सार्वभौम या चन्द्रचूड था। आप कोंकण देश के महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। पांचवां शङ्कर का अवतार कुम्भकोण मठ वंशावली के 38 वां आचार्य धीर शङ्कर या अभिनव शङ्कर या शङ्कर V (758 ई० से 788 ई०) थे। आपका जन्म चिदम्बर क्षेत्र और पिता माता का नाम विश्वजित विशिष्ठा था। विश्वजित के घर छोड चले जाने के पश्चात् एवं तीन वर्ष उपरान्त विशिष्ठा ने शङ्कर बालक का जन्म दिया था। आपने दिग्विजय यात्रा कर, कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण कर, चार दिशाओं में चार आम्नाय मठों की स्थापना कर, पश्चात् केदार सीमा से दात्रेत्तय गुहा में प्रवेश किये। आपका मुख्य शिष्य सच्चिद्विलास थे। पूर्वाश्रम में कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि इस पांचवें शङ्कर का ही जीवन वृत्तान्त सब शङ्करदिग्विजयों के रचयिताओं ने कुम्भकोणमठ के 38 वां आचार्य को ही आद्यशङ्कराचार्य होने की भावना कर

चरित्र वर्णन किया है। यह भी प्रचार करते हैं कि आधुनिक काल के सब अनुसन्धान विद्वान एवं ऐतिहासिक इस पांचवें शङ्कर जिनका काल 788 ई० का है आप ही को आद्यशङ्कर मानते हैं। जिसप्रकार कुम्भकोण मठ मठाम्नाय में चार वेद की जगह पांचवां वेद का उल्लेख है, चार उपदेष्टव्य महावाक्य की जगह पांचवां उपदेष्टव्य महावाक्य का उल्लेख है, धर्मशास्त्र अनुसार कहे हुए चार संप्रदाय की जगह पांचवां नवीन संप्रदाय जोडा गया है, दस योगपट्ट की जगह ग्यारहवां अङ्कितनाम का उल्लेख है, उसी प्रकार अवतार पुरुष एक आचार्य शङ्कर की जगह अब पांच शङ्कर भी कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में पाया जाता है। कुम्भकोण मठ वंशावली में ही यह कथा सुनायी जाती है। अन्य मठ वंशावली में या उनके निर्देषित ग्रंथों में या प्रामाणिक शङ्करविजयों में या वृद्ध परम्परागत जन श्रुति या भारत वर्ष इतिहास में या पुराणों में कुम्भकोण मठ प्रचार की पुष्टी नहीं है। ये सब दृढ प्रमाण एक शङ्कर की कथा ही सुनाता है। कुम्भकोण मठ वंशावली को मान्य बनाने के लिये कल्पना जगत के मिथ्यानगर वासी इन्द्रजाल पुरुषों का नाम लेकर स्वेच्छावाद के आधार पर सूची बनायी गयी है और इस पर आलोचना करना ही व्यर्थ है।

कुम्भकोण मठ वंशावली में आचार्यों का अनेक उर्फ नाम दिया गया है। पुण्यश्लोकमंजरी, गुरुरत्नमाला, सुषमा (कुम्भकोण मठ की स्वरचित प्रचार पुस्तकें), ताम्रशासन, मठ एवं आपके अनुयायी भक्त प्रचारकों द्वारा रचित पुस्तकों में से संग्रह कर कुछ नाम उर्फ नामों के साथ दिया जाता है। न मालूम क्यों और कैसे एक व्यक्ति को भिन्न नाम दिया गया है। भिन्न जगहों में समय समय पर भिन्न नाम देकर पामरजनों को भ्रम में डालकर अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। सर्वज्ञ, सर्वज्ञात्मन, सर्वज्ञश्रीचरण, सर्वज्ञश्रीचरणेन्द्रसरस्वती; आनन्दज्ञान, आनन्दगिरि, आनन्दज्ञान योगी; कैवल्यानन्द, कैवल्ययोगी, सच्चिदानन्द; सुरेश्वर, महेश्वर; चित्घन, शिवानन्द, चन्द्रशेखर, चन्द्रचूड; गङ्गाधर, गीषपति; गौडसदाशिव, बालगुरु, सदाशिव; विद्याघन, मार्ताण्ड, सूर्य्यदास; शङ्कर IV, अर्भक शङ्कर, मूकशङ्कर, शङ्करेन्द्र; चन्द्रशेखर, सार्वभौम, मातृगुप्त, चन्द्रचूड; सच्चिदानन्दघन, सिद्धगुरु, चिदानन्दघन; चित्सुखानन्द, चिदानन्द; शङ्कर V, धीरशङ्कर, अभिनव शङ्कर; महादेव, उज्ज्वल, शोभन; बोध, सान्द्रानन्द; चन्द्रशेखर, चन्द्रचूड; अद्वैतानन्दबोध, चिद्विलास; चन्द्रचूड, गङ्गेश्वर, चन्द्रशेखर; महादेव IV, व्यासाचल; आत्मबोध, विश्वाधिक; बोध III, योगेन्द्र, भगवन्नाम, शिवेन्द्र, बोधेन्द्र; अद्वयात्मप्रकाश, गोविन्द; आदि ऐसे उर्फ नामों से प्रचार होता है। सूची बनाते समय प्रथम बार जिन कथा पुस्तकों से नाम लिया गया था वह नाम एक है, इसकी पुष्टी के लिये जिस काव्य, चम्पू, नाटक, चरित्र आदि पुस्तकों का नाम लेते हैं उनमें दिये हुए नाम दूसरा नाम होता है और इन दोनों भिन्न नाम का समन्वय भी कर देते हैं, मठ ताम्र शासनों में दिये हुए नाम जो इन दोनों उक्त नामों से मिलते नहीं हैं उसे भी उर्फ नाम में जोड लिया गया है, और जब जब प्रश्न इन भिन्न नामों के आधार पर उठे थे उसके समाधान में जो नया नाम दिया गया है उसे भी उर्फ नामों की सूची में जोड लिया गया है। वंशावली यथार्थ होता तो नाम भी एक ही होता पर कल्पित वंशावली को सत्य रूप देने के प्रयत्न में इन नामों को जोडा गया है। सन्यासाश्रम लेते समय दीक्षा नाम एक ही दिया जाता है और सब यतिधर्मशास्त्र पुस्तकों में ऐसा ही कहा है। शिष्य, भक्त, अनुयायी अभिमान व प्रेम व भक्ति से व्यावहारिक नाम देते हैं। कुम्भकोण मठ कामकोटि प्रदीपम मासिक पत्रिका में कहा है कि आचार्यों का भिन्न दीक्षा नाम भी होता है। लज्जा की बात है कि कुम्भकोण मठ के 'सर्वज्ञविद्वानों' को यतिधर्म शास्त्र सब अप्रामाणिक व अग्राह्य है जहां स्पष्ठ कहा है कि दीक्षा नाम एक ही दिया जाता है। गुरुरत्नमाला के आधार पर Ep. Ind. Vol XIV में कुम्भकोण मठ वंशावली प्रकाशित है और यहां आद्यशङ्कर से शिवेन्द्र तक 55 आचार्यों का नाम दिया गया है और एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीश कि अनुमति से रचित एवं अर्पित है उसमें दी सूची में आद्यशङ्कर से लेकर शिवेन्द्र तक 59 आचार्यों का नाम दिया गया है। न मालूम इस सूची में अधिक चार

नाम कैसे टपक पडा? इन दोनों सूचीयों में भिन्न नाम भी पाया जाता है और कुछ नामों का अदलबदल, जोड निकाल भी किया गया है। ऐसे परिवर्तनशील वंशावली को कैसे यथार्थ माना जाय? यह सब कल्पना जगत का क्रिया कलाप है।

इस वंशावली में 80 फीसदी से अधिक आचार्यों का निर्याण स्थल या जन्म स्थल का निर्देष नदी किनारा, देश की सीमा, पर्वत का नाम, आदि दिया गया है। पर्वत का नाम, नदी का नाम, देश सीमा लेने मात्र से कोई एक निर्देषित स्थल का बोध नहीं होता है अतः इनके कथनों का शोधन कर यथार्थता पता नहीं लगाया जा सकता है। इससे इनको भ्रामक मिथ्या प्रचार करने में सुगम ही है। यदि इन आचार्यों का जन्म व निर्याण स्थल ठीक न मालूम हो तो ऐसा ही उल्लेख करना उचित था न कि कल्पित नामों को देकर पामरजनों को भ्रम में डालकर अपनी कल्पित वंशावली की झूठी महत्ता बढाने का प्रयत्न करना। कुम्भकोण मठ वंशावली में अद्वितीय महान, तपस्वी, भाष्य टीका ग्रन्थ रचयिता, अद्वैताचार्य, आदियों का नाम देकर एवं इनको राजा महाराजाओं से पूजित होने का तथा सेतुहिमाचल पर्य्यन्त सुप्रसिद्ध होने का विवरण दिया गया है और ऐसे सुप्रसिद्ध महानों की समाधि भी न मालूम होना आश्चर्य व सन्देहास्पद है। ऐसे महानों की समाधि भी न होने का क्या कारण था? कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में निर्देषित स्थल यों है और पाठकगण स्वयं इसका मर्म जान लें—जन्मस्थल—पान्डिय नाडु; चेरनाडु; चोळनाडु; कर्नाटक सीमा; तामिल नाडु; कोंकण सीमा; पालार, गडिलम, ताप्ती, पिनाकिनि, गरूड, चन्द्रभागा, वेगवती, भीमा, तुङ्गभद्रा, कुन्डी, मणिमुक्ता, उत्तरपेन्नार, पम्पा, वशिष्ठ, आदि नदियों का किनारा; रत्नगिरि, श्रीमुष्णम्, छायावनम्, विल्वारण्य, नागारण्य, आदि स्थलों का नाम दिया गया है। निर्याण स्थल—श्री शैल, विन्ध्या, शेषाचलम्, अगस्थ्य, सह्य, हिमालय, व्यासाचल, आदि पर्वतों का नाम; गोदावरी, गडिलम, नदी किनारा; कांची, पुण्यरस, वृद्धाचलं, त्र्यम्बक, उज्जैयिनी, काश्मीर, गोदावरी, काशी, जगन्नाथ, रत्नगिरि, अरुणाचल, चिदम्बर, श्वेतारण्य, आदि स्थलों का नाम और उनके सीमा में; दत्तात्रेय गुफा; आदि का नाम दिया गया है। आश्चर्य का विषय है कि इन स्थलों में या इन सीमाओं में कहीं भी समाधि दीखता नहीं है और कांची मठ या मठाधीषों का गंध भी पाया नहीं जाता। कुम्भकोण मठ का असत्य प्रचार सीमातीत है।

कुम्भकोण मठ वंशावली सूची के 60 आचार्य तक के आचार्यों में 30 आचार्य का वास एवं निर्याण स्थल कांची बतलाया गया है और 30 आचार्यों का वास स्थल एवं निर्याण स्थल कांची से बहुतदूर स्थलों का नाम लिया गया है। 30 आचार्यों का निर्याण कांची में होने की कथा सुनायी जाती है पर कांची नगर में या इसके पास स्थलों में कोई समाधि मिलता नहीं है। करीब आज से 150 वर्ष का अर्वाचीन काल की कुछ समाधि कांची के आसपास होने की कथा सुनाते हैं और इनके अतिरिक्त कहीं भी अन्य समाधि मिलती नहीं है। कहेजानेवाले कांची आचार्यों का कांची वास एवं निर्याण तथा कांची के बाहर वास एवं निर्याण का विवरण नीचे दिया जाता है। इस सूची के अध्ययन से अनेक आक्षेप व सन्देह उठते हैं और इनका उत्तर कहीं मिलता भी नहीं।

एक प्रचार पुस्तक में लिखा है आपके आचार्य 14 से 25 तक उत्तर भारत में भ्रमण कर जगत् प्रख्यात भये और बाद के आचार्य 26 से 34 तक कांची में वासकर शान्ती में साधारण जीवन बिताया। इसका क्या अर्थ है? 276 वर्ष का जगत विख्यात प्रख्याती के पश्चात् 162 वर्ष के लिये साधारण परिव्राजक बनकर कांची में रहे, कहने का यही तात्पर्य है कि आप की कथा सब कल्पित है।

आचार्य	काल (क्रिस्त पूर्व)	कांची वास एवं निर्याण (वर्ष)	कांची बाहर वास एवं निर्याण (वर्ष)
1/6	508/124	384	—
7	124/55	—	69
	(क्रिस्त पश्चात्)		
8	55/28	83	—
9	28/69	—	41
10	69/127	58	—
11/12	127/235	—	108
13	235/272	37	—
14/25	272/548	—	276
26/34	548/710	162	—
35	710/737	—	27
36/44	737/1040	303	—
45/51	1040/1385	—	345
52/53	1385 1498	113	—
54	1498/1507	—	9
55	1507/1523	16	—
56/60	1523/1704	—	181

यह कथा भी सुनायी जाती है कि आपके मठ का 61 वां आचार्य कांची नगर छोडकर दक्षिण भारत में परिभ्रमण करते थे और आपके 62 वां आचार्य तंजौर पहुंचकर वहीं अपना केन्द्रमठ स्थापना कर वहीं वास करने लगे थे।

आचार्य	काल (क्रिस्त पश्चात)	निर्याणस्थल	शासन वर्ष
61	1704/1746	मदरास समीप	42
62/63	1746/1814	कुम्भकोणम्	68
64	1814/1851	नाम प्राप्त नहीं होता	37
65	1851/1891	शिवगङ्गा राज्य	40
66	1891/1907	कलवाय	17
67	1907	,,	7 दिन

वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश वंशावली के 68 वां आचार्य हैं और आप 1907 ई० में (कुछ प्रचार पुस्तकों में 1908 ई० भी कहा गया है) सन्यासाश्रम लेकर मठाधीष बने। आपका गुरु 18 वर्ष बालक 67 वां आचार्य केवल सात दिन के लिये आचार्य थे। इनके निर्याण के बारे में कई किंवदन्तियां सुनी जाती है और यथार्थ परमात्मा जाने। आपके आचार्य 14 से 25 तक 276 वर्ष के लिये उत्तर भारत में वास किये और वहीं निर्याण भये। आश्चर्य है कि 11 आचार्य लगातार कांची आये नहीं और इस काल में कांची मठ में कौन था? क्या 276 वर्ष के

लिये अपने केन्द्रस्थान कांची को बिल्कुल भूल गये थे और यहां के शिष्य भक्त वर्ग भी आपको भूल गये थे? जब कांची में मठ ही न था और आचार्य न थे तो कैसे कांची आते? पर इसके पश्चात् कुछ आचार्य कांची में ही वास किये थे। कुछ आचार्यों का कांची वास एवं कुछ आचार्यों का कांची बाहर वास ऐसे बार बार बतलाया गया है। यदि सब आचार्य कांची के बाहर ही वास कर निर्याण होने का वृत्तान्त सुनाया जाय तो कांची मठ का होना ही सिद्ध नहीं होता इसीलिये सम्भवतः 1156 वर्ष कांची वास एवं 1056 वर्ष कांची के बाहर वास करने की कथा सुनायी जा रही है। 51 वां आचार्य विद्यातीर्थ तक लगभग सब आचार्य उत्तर भारत में वास कर, उसी सीमा में परिभ्रमण करते हुए वहीं निर्याण भये और लगातार 276 साल तक कांची लौटे भी नहीं। अपनी वंशावली की पुष्टी के लिये काश्मीर, मगध, उज्जैन आदि राज्य के महाराजाओं का नाम एवं उस समय के उत्तरी भारत प्रकान्ड विद्वानों का नाम देकर, चरित्र घटनाओं के बीच अपने आचार्यों का नाम भी जोडकर कल्पित कथा का प्रचार करने लगे। इसकी पुष्टी में जो कुछ काव्य, नाटक, चम्पू आदि पुस्तकों का निर्देष किया गया है उन पुस्तकों में कुम्भकोण मठ या कांची मठाधीष का नामो निशान नहीं है। कुम्भकोण मठ कथनानुसार आपके आचार्य अद्वितीय महान, प्रकान्ड विद्वान, तपस्वी थे और आप सब अनेक राजाओं से सम्मानित हुए थे तो क्यों दक्षिण भारत के चोळ, चेर, पान्डिय या कांची राजा के चरित्रों में कहीं भी उल्लेख नहीं है? राजतरङ्गिणी पुस्तक उत्तर भारत काश्मीर राज्य का इतिहास है। राजतरङ्गिणी से कुछ घटनाओं को लेकर उस कथा संदर्भ में अपनी कल्पित वंशावली के आचार्यों का नाम देकर इस मिश्रित कथा का प्रचार करते हैं। विद्यातीर्थ के पश्चात् सब अचार्य अचानक दक्षिण भारत के साथ सम्बन्ध रखने लगे और उत्तर भारत का कई शताब्दी के पूर्व सम्बन्ध तोड दिये। उत्तर भारत में कहीं भी कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे कुम्भकोण मठ प्रचार की पुष्टी की जाय। इसी काल में कुम्भकोण मठ दक्षिण भारत से ताम्रशासन व अन्य प्रमाण सब मिलने का प्रचार भी करते हैं। कुम्भकोण मठ के अचार्यों का चरित्र पढा जाय तो इनसे दिये हुए इतिहास को दो भागों में बांटा जा सकता है—पूर्वभाग श्रीविद्यातीर्थ के काल तक जब आप सबों का सम्बन्ध उत्तर भारत के साथ था और उत्तर भाग श्रीविद्यातीर्थ के पश्चात् जब नया सम्बन्ध दक्षिण भारत के साथ प्रारम्भ हुआ। पूर्व भाग कथा की पुष्टी में एक भी प्रमाण नहीं दे सकते चूंकि कोई प्रमाण आपके पास नहीं है। जो कुछ प्रामाणाभास प्रचार करते हैं वे सब शोधन करने पर असत्य ठहरते हैं। पाठकगण इसी अध्याय में इसका विवरण पायेंगे। दक्षिण भारत के साथ सम्बन्ध होने का जो कुछ प्रमाण कुम्भकोण मठ देते हैं उनमें यद्यपि बहुत से असत्य ठहराये गये तथापि कुछ प्रमाण सिद्ध करते हैं कि कांची कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ था और इसीलिये यह मठ शारदा मठ के नाम से और आचार्य 'चिक्कउडयार' (छोटे स्वमी) के नाम से पुकारा जाता था। आश्चर्य तो यह है कि श्रीविद्यातीर्थ तक जो ख्याती, महत्ता, गौरव उत्तर भारत में स्थापना करने की कथा सुनायी जाती है वह सब क्यों अचानक विद्यातीर्थ के काल पश्चात् मन्द पड गया? आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविन्छिन्न परम्परा के आचार्य सब जो प्रख्यात होने की कथा कुम्भकोण मठ सुनाता है उनके जन्मस्थल या समाधि सब प्रसिद्ध होना था पर ऐसा तो दीखता ही नहीं है। उत्तर भारत में आपका नाम भी कोई सुना नहीं है। अब से करीब 150 वर्ष से तीव्र प्रचार होते हुए भी आपका नाम उत्तर भारत में मालूम न था और जब वर्तमान मठाधीश काशी पहुंचे (1934/35 ई०) और कुम्भकोण मठ विषयक विवाद प्रारम्भ हुआ तो इसके फलाभूत कुछ लोगों को आपका मठ मालूम हुआ।

यदि कांची में आचार्य शङ्कर का निजमठ होता एवं आपके साक्षात् अविन्छिन्न परम्परा कांची में होता तो क्यों श्रीरामानुजाचार्य, श्रीवेदान्तदेशिक, श्रीअप्पय्य दीक्षित, तंजौर के 16 वीं व 17 वीं शताब्दी के अन्य प्रकान्ड विद्वान जो कांची या कांची समीप वास करते थे तथा इनके पूर्व काल या पश्चात् काल के विद्वानों ने 'जगत विख्यात

कांची मठ ' का उल्लेख भी नहीं किया था ? क्या ये सब प्रकान्ड विद्वान आचार्य शङ्कर के निजमठ को नहीं जानते थे ? यदि कुम्भकोण मठाधीष आद्यशङ्कर के साक्षात् अविन्छिन्न परम्परा के होते तो आपके सन्मुख एवं आपके मठ सीमा में विद्वान 'पदवाक्यप्रमाण, पारावारपारीष, श्रीमदऽद्वैत विद्याचार्य' आदि पदविग्रां उपयोग नहीं करते। श्रीरामानुजाचार्य ने 11 वीं शताब्दी में अपने द्वारा रचित ग्रंथों की प्रचार के लिये आपने मेलकोट, श्रीरङ्गम व कांची में केन्द्र स्थापित किया था। कांची में इस समय विशिष्ठाद्वैत वाद का प्रचार खूब हुआ और अद्वैतवाद का खण्डन तीव्र रूप से होने लगा। प्रश्न उठता है कि आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविन्छिन्न परम्परा के आचार्य सब कांची में इस समय क्या करते थे ? यदि मठ होता एवं परम्परा होती तो अवश्य इस खण्डन का उत्तर देते। यह भी कहा जाता है कि श्रीरामानुजाचार्य एक समय बोधायन वृत्ति ग्रंथ की खोज में श्रीशारदा पीठ पहुंचे। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीरामानुजाचार्य काश्मीर शारदा पीठ पर पहुंचे। श्रीरामानुजाचार्य का काल 1017 ई० से 1137 ई० का था। इससे सिद्ध होता है कि कांची में उस समय मठ न था।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपका मठ कांची में क्रिस्त पूर्व 476 से है। 400 ई० में समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत पर चढाई की थी जब श्रीविष्णुगोप कांची का राजा था। उस समय आपका कांची मठ कहां था ? कांची का महेन्द्रवर्मन I (सातवीं शताब्दी) जैनमतानुयायी थे और आप अन्य मतों के विरोधी भी थे। श्रीअप्पर के प्रभाव से आप शैवमत अनुयायी भये। श्रीअप्पर एवं श्रीतिरुज्ञानसम्बन्दर के प्रभाव से ही कांची एवं दक्षिण भारत में जैनमत का पतन हुआ। इन दिनों में कांची मठवाले कहां थे ? नरसिंहवर्मन I (640 ई०) के शासन काल में चीनी यात्री हुवन् चाङ्ग कांची पहुंचा था। कांची यात्रा विवरण भी अपनी रचित पुस्तक में दी है पर कहीं कांची शङ्कर मठ का उल्लेख किया नहीं है यद्यपि कांची नगर का वर्णन विस्तार रूप में किया है। ऐसे 51 प्रश्न तैय्यार किया गया है और इन प्रश्नों को यहां न देकर मैं कहना चाहता हूं कि मेरी दृढ धारणा है कि कांची में कोई मठ था ही नहीं और जो मठ अब देखते हैं सो आचार्य शङ्कर के कई शताब्दी पश्चात् काल में स्थापित शाखा मठ है।

कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आपका 16 वां आचार्य उज्ज्वल शङ्कर दिग्विजय यात्रा कर कश्मीर पहुंचे और वहीं कालापुरी नामक स्थल में निर्याण हुआ ; आपका 17 वां आचार्य गौडसदाशिव काश्मीर पन्डित देवमिश्र के पुत्र थे और पिता ने अपने पुत्र को सिन्धु नदीं में फेंक दिया था और वही बालक बचाया गया एवं उज्ज्वल शङ्कर ने सन्यासाश्रम देकर अपना शिष्य बनाया था ; आपका 18 वां आचार्य सुरेन्द्र काश्मीर में थे और कश्मीर राजा नरेन्द्रादित्य के भांजा श्री सुरेन्द्र के दर्बार में एक चार्वाक को विवाद में हराया और राजा ने इस योगी को कुछ काल राजसिंहासन पर बैठाया था ; आपका 20 वां आचार्य शङ्कर IV या मूक शङ्कर कश्मीर राजा मातृगुप्त एवं राजा प्रवरसेना द्वारा पूजित हुए और आचार्य ने मातृगुप्त का अहंकार को दबाने के लिये मेंथा द्वारा 'हयग्रीववध' नाटक लिखवाया था ; आपका 21 वां आचार्य मातृगुप्त सन्यासाश्रम लेकर मठाधीष बने ; आपका 31 वां आचार्य ब्रह्मानन्दघन को कश्मीर राजा ललितादित्य जब आप कांची आये तब मठाधीष को कश्मीर में एक बडा क्षेत्र का दान दिया था ; आपका 34 वां आचार्य चन्द्रशेखर II कश्मीर राजा ललितादित्य के दर्बार पन्डित शंकुणा (बौद्ध मतानुयायी) को विवाद में हराया ; आपका 38 वां आचार्य अभिनव शङ्कर कश्मीर राजा जयपाद विनयादित्य के काल में कश्मीर गये और वहां सर्वज्ञपीठारोहण किया था ; आपका 39 वां आचार्य सच्चिद्विलास भी काश्मीर गये और वहां आनन्दवर्धन ('ध्वनी' का रचयिता) से पूजित हुए जब कश्मीर राजा अवन्ति वर्मन राज्य करते थे ; आपका 46 वां आचार्य बोध II ने कश्मीर राजा कलश की सहायता से मुसलमानों को मार भगाया था ; आपका 47 वां आचार्य चन्द्रशेखर को कश्मीर राजा

जयसिंह ने पूजा की थी ; आपका 48 वां आचार्य अद्वैतानन्द बोध चिद्विलास ने अभिनव गुप्त को विवाद में हराया था। उपर्युक्त कुम्भकोण मठ प्रचारों का आधार राजतरङ्गिणी का नाम लेते हैं। राजतरङ्गिणी पूरा पढा गया और कुम्भकोण मठ द्वारा निर्देषित श्लोकों को बार बार पढा गया तथा इस राजतरङ्गिणी की आंगल भाषा अनुवाद को भी पढा गया। इसके अतिरिक्त कश्मीर इतिहास ग्रन्थों को भी पढा गया। कहीं भी कांची मठ का या आपके मठाधीष का उल्लेख नहीं पाया। कश्मीर राजा एवं आपके चरित्र सब राजतरङ्गिणी में पाया पर कांची मठ का गंध भी न पाया। कुम्भकोण मठ ने राजतरङ्गिणी एवं अन्य काव्य, नाटक, चम्पू, चरित्रकथा, में दिये कथा को उद्धृत कर अपनी कल्पित कथा को इसी में जोडकर, प्रमाण में राजतरङ्गिणी का नाम लेकर प्रचार करते हैं। मैं ने काशीराजकीय पुस्तकालय कर्मचारी श्री झारखन्डी से इस विषय के बारे में चर्चा उठायी थी और आप अपने पत्र में लिखते हैं कि राजतरङ्गिणी में कांचो मठ या कांची मठाधीश का नामो निशान नहीं है। आपने काशी के प्रकान्ड पन्डित श्री गोपीनाथ कविराज से भी इस विषय का चर्चा की थी और आपने भी कहा कि कांची मठ की कथा राजतरङ्गिणी में पायी नहीं जाती। काशी का प्रसिद्ध प्रोफसर एवं पुरातत्व व प्राचीन इतिहास पन्डित डा० अल्टेकर से मैं ने इस विषय पर चर्चा की थी और आपका अभिप्राय भी था कि राजतरङ्गिणी कांची मठ या कांची मठाधीष का उल्लेख नहीं करता। आपका अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। विद्यावारिधि, पुरातत्त्व विशारद, म० म० डा० शिवनाथ शर्मा जी (आचार्य, डि. ओ. सी., डि. ओ. एल. आदि), एक प्रकान्ड विद्वान एवं काश्मीर वासी, को एक पत्र लिखकर कुम्भकोण मठ प्रचारों का विवरण पूर्ण रूपेण देकर आपसे प्रार्थना की थी कि आप कृपया इस विषय पर अन्वेषण कर सत्यता प्रकट करें। आप कश्मीर इतिहास के पूर्ण भिज्ञ हैं। आप कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हैं और कश्मीर विद्वत्परिषद् के मंत्री भी हैं। कुम्भकोण मठ से प्रचारित हर एक कथा का विवरण सविस्तार देकर आप को एक पत्र लिखा गया। म. म. डा० शिवनाथ शर्मा जी अपने पत्र ता: 3—10—60 में मुझ से पूछे हुए प्रश्नों का सविस्तार प्रमाणयुक्त उतर देकर मेरे ऊपर आपने कृपा की। इस लम्बे पत्र में मठविषयक अनेक समाचार हैं पर मैं यहां आपके अन्तिम अभिप्राय में से कुछ पंक्तियां उद्धृत करता हूं। आप लिखते हैं—'कश्मीर में कांची कुम्भकोणं मठ वा इस मठ से अधिष्ठित या अधिकृत किसी भी आचार्य का नाम रूप लोकोक्ति, किंवदन्ती, शास्त्रोक्ति से प्रचलित या विख्यात नहीं है। इस पीठ या उपपीठ के किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का इतिहास यहां स्वप्न में भी नहीं है, जाग्रदवस्था की तो बात ही नहीं। इस देश में किसी महापुरुष ने भौतिक नहीं छोडा है, नहीं यहां पर किसी ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति की समाधि ही है। नहीं यहां पर अन्यान्य पुरुषों की समाधि पर पूजन होता है। स्थानीय इतिहास में ऐसी कोई गाथा का सर्वथा अभाव है। कश्मीर महादेव का स्थान है, सर्वत्र शिव ही विराजमान हैं, कांची–कामकोटीपीठ कोई यहां पर नहीं है।' अब पाठकगग जानलें कि कुम्भकोण मठ प्रचार में कितनी सत्यता है।

कुम्भकोण मठ वंशावली सूची के आचार्यों में ग्रंथकर्ता, महान परिव्राजक एवं विद्वानों का नाम दिया गया है। कहेजानेवाले इनसे रचित ग्रंथों को पढा गया और आप सबों ने अपने रचित पुस्तकों में कहीं भी कांची मठ का उल्लेख किया नहीं है या अपने को कांची मठ का अधीश भी कहा नहीं है। अपने रचित पुस्तकों में अपनी अपनी दीक्षा गुरु व विद्यागुरु का नाम दिया है और ऐसा नाम कुम्भकोण मठ वंशावली में पाया नहीं जाता। वंशावली में दूसरी ही भिन्न नाम देकर इन ग्रंथ रचयिताओं का गुरु बनाया गया है। इस विषय का विवरण इसी अध्याय में आगे पायेंगे। इससे कहा जा सकता है कि ऐसे ग्रंथकर्ता कुम्भकोग मठ आचार्य न थे।

कुम्भकोण मठ वंशावली सूची में आचार्य शङ्कर से 60 वां आचार्य अद्वयात्मक प्रकाश उर्फ गोविन्द (1704 ई०) तक अधिकांश आचार्यों का नाम भिन्न भिन्न दिया गया है और अनेक आचार्यों का नाम दो या तीन हैं।

इस 60 आचार्यों के नाम में अधिकांश उन उन आचार्यों के गुरु, परमगुरु, परमेष्ठिगुरु का नाम दोहराया नहीं गया है जो रीति कुछ मठों की वंशावली सूची से प्रतीत होती है। दीक्षा समय जब शिष्य का नामधेय दिया जाता है तो शिष्य के परमगुरु या परमेष्ठि गुरु या परापरगुरु का नाम या वंशावली के कुछ विख्यात आचार्यों का नाम दिया जाता है परन्तु कुम्भकोण मठ वंशावली के अधिकांश नामों में ऐसा प्रतीत नहीं होता है। दो या तीन बार एक ही नाम दोहराया गया है। कुम्भकोण मठ का 61 वां आचार्य श्रीमहादेव हैं और आपके शिष्य चन्द्रशेखर हैं। इसके पश्चात् नाम सब महादेव या चन्द्रशेखर के नाम से 68 वां आचार्य (वर्तमान मठाधीष) तक चला आया है। शिष्य को परपगुरु का नाम दिया गया है। ये दोनों रीति जो आपके वंशावली में देखा जाता है इससे प्रतीत होता है कि 61 वां आचार्य से ही आपका मठाधीशों का नामधेय रीति ठीक रिवाज से आ रहा है और सम्भवतः 61 वां आचार्य ही आपके मठ का प्रथमाचार्य रहे होंगे। इसके पूर्व के आचार्य अर्थात् प्रथमाचार्य से 60 वां आचार्य तक का उपलब्ध यथार्थ जीवन चरित्र सामग्री के साथ कुम्भकोण मठ से कहे हुए प्रमाणों पर अन्वेषण किया जाय तो यह सिद्ध होता है कि 60 वां आचार्य तक की परम्परा कल्पित वंशावली है। प्रथमाचार्य श्रीशङ्कराचार्य से 51 वां आचार्य श्रीविद्यातीर्थ तक यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन नामों में कोई भी कांची मठ में अधीश न थे। इस विषय का विवरण आगे पायेंगे।

कुम्भकोण मठ ताम्रशासन में कुछ ताम्रशासन कांची शारदा मठ का ही उल्लेख करता है और कुम्भकोण मठाधीष का नाम 'चिक्कउडयार' है जो एक मुकद्दमे में अदालत से यह नाम निश्चित किया गया है। चिक्कउडयार पद का अर्थ छोटे स्वामी अर्थात एक 'दोड्डउडयार' (बडे स्वामी) के आप छोटे स्वामी हैं। दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठाधीष को 'दोड्डउडयार' के नाम से भी पुकारा जाता है। यह पद कर्नाटक भाषा में है। पूर्व में कुम्भकोण मठ मुद्रा भी कर्नाटक भाषा में था। करीब 200 वर्ष से कुम्भकोण मठ के आचार्य सब कर्नाटकी हैं। दृढ प्रमाणों द्वारा सिद्ध हुआ है कि आचार्य शङ्कर ने दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी में शारदा पीठ व मठ की स्थापना की थी। कांची भी दक्षिणाम्नाय में है और आप अपने मठ को कांची शारदा मठ कहते हैं (आधुनिक काल में कामकोटि मठ नाम से प्रचार हो रहा है)। कुम्भकोण मठाधीष प्रथम वार कांची कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी पदवी पर 5—11—1842 ई० में ईस्ट–इन्डिया–कम्पनी से नियोजन किये गये थे। इसके पूर्व कांची कामाक्षी मन्दिर आपके हाथ न था। 1842 ई० मे आपका नाम 'कुम्भकोण शङ्कराचार्य' से बदलकर कांची कामाक्षी मन्दिर अपने हाथ में आने के उपरान्त 'कांची कामकोटि जगद्गुरु शङ्कराचार्य' बन गये। ईस्ट–इन्डिया–कम्पनी के रिकार्डों का छानबीन किया गया और प्रमाणरूप में अनेक पत्र प्राप्त हुए हैं जिसमें आपको 1842 ई० के पूर्व 'कुम्भकोण शङ्कराचार्य' का नाम ही दिया गया है। मदरास राज्य से उपलब्ध होनेवाले कुछ रिकार्डों से प्रतीत होता है कि आपका कांची मठ अर्वाचीन काल में ही आपसे प्रारम्भित है और यह मठ आचार्य शङ्कर के समय से नहीं है। आपको '**Stranger to Kanchi**' कहा गया है। कांची का स्वर्णकामाक्षी को आप उदयारपालयम् नहीं ले गये थे। इन सब विषयों का विवरण आगे अध्याय में पायेंगे। यहां संक्षेप में इसलिये दिया जाता है कि पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ की यथार्थ स्थिति क्या थी और आप अब क्या बनने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

कांची कुम्भकोण मठ अपने को आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा कहते हैं और इस प्रचार के फलाभूत आपका कर्तव्य होगा कि आप आचार्य शङ्कर के उद्देश्यों को अक्षुण्ण रक्खें व विपक्षी दलों के प्रचार जो आचार्य शङ्कर मत के कुठाराघात बने थे उसे आप रोक करके आचार्य शङ्कर के मत का पुनः प्रचार करें। कुम्भकोण मठ

कथनानुसार आपके मठाधीष 476 क्रिस्तपूर्व से यह काम अपने हाथ में ले लेने का प्रचार करते हैं। प्रश्न उठता है कि आपके मठाधीशों ने क्या किया जब ऐसा प्रमेय पूर्व में उठा था। आपके आचार्यों का वृत्तान्त पढा गया पर कहीं भी यह नहीं पाया गया कि आपके पूर्वाचार्यों ने विपक्षीदलों के प्रचार को रोक सके। विपक्षी दलों ने भी आपका मठ या मठाधीश का नाम भी अपने रचित ग्रन्थों में नहीं लिया है। कांची इतिहास पढते समय अनेक शंकायें उठती हैं कि क्यों अन्यों ने आपके 'जगत विख्यात मठाधीशों' का नाम भी नहीं लिया है?

1. अरवन अडिगल जो कावेरीपट्टनम् विहार के प्रधान थे और जिन्होंने द्वितीय शताब्दी ई० में मणिमेखलै को बौद्ध मतानुयायी बनाया था व बौद्ध मत का प्रचार भी किया था तथा पश्चात् कांची आकर निर्याण प्राप्त किया था, आपके साथ कांची मठाधीश का क्या सम्बन्ध था? आपने क्यों नहीं 'जगतविख्यात भारतवर्ष का शिरोमणि मुखिया' कांची मठ का उल्लेख किया? उस समय के कांची मठाधीश इस प्रचार को रोकने का क्या प्रयत्न किया था? इसी प्रकार चतुर्थशताब्दी ई० का नादगुत्त, पांचवीं शताब्दी का चेरा बुद्धदत्त जो कांची विहार के प्रधान थे, पांचवीं/छठवीं शताब्दी का बोधिधर्म जो कांची का राजकुमार था, पांचवीं शताब्दी वसुबन्धु का छात्र दिङ्गनाग जिनका जन्म कांची में हुआ था और नलन्दा के प्रकान्ड विद्वान थे, तिरुनेलवेली के धर्मपाल (पांचवीं/छठवीं शताब्दी) जो कांची विहार के प्रधान थे, इन उक्त प्रकान्ड विद्वानों के साथ एवं बौद्ध मत प्रचारकों के साथ कांची मठ का क्या सम्बन्ध था? इन विद्वानों से रचित ग्रन्थों में कांची मठ का उल्लेख क्यों नहीं है? आपके कहेजानेवाले मठाधीश सच्चित्सुख I, चित्सुख I, सच्चिदानन्दघन आदियों ने पांचवीं/छठवीं शताब्दी में क्या क्या कारवाइयां की थी? यदि कुम्भकोण मठ कहते कि आपके आचार्य द्वितीय शताब्दी से छठवीं शताब्दी तक कांची में ही वास करते थे तो प्रश्न उठता कि इस समय के बौद्ध धर्म प्रचार के विरुद्ध आपके मठाधीशों ने क्या किया था? इस प्रश्न से बचने के लिये कुम्भघोण मठ प्रचार करते हैं कि आपके आचार्य सब 500 वर्ष के लिये कांची के बाहर परिभ्रमण करते थे और प्रायः सबों ने उत्तर भारत में वास किया था। कुम्भकोण मठ वंशावली सूची बनाने वाले व्यक्ति ने बडी चातुर्यता से अन्यत्र उपलब्ध नामों को लेकर इतिहास की घटनाओं के साथ संघर्ष न होने लायक कल्पित कथायें जोडकर एक सूची बनायी है। 'उत्तर भारत में भ्रमण करते थे' कहने मात्र से यह कहना उचित होगा कि आपके मठ आचार्यों ने आद्यशङ्कर के उद्देश्यों का एवं मत प्रचार करने के ध्येयों की पूर्ति न की थी तथा आप सब अपने कर्त्तव्यता से च्युत हो गये।

2. शीलभद्र का गुरु धर्मपाल जो एक कांचीपुर अधिकारी का पुत्र था और नलन्दा विद्यालय के आचार्य बने, आपने अपने ग्रंथ में कांची विषय देते हुए भी कांची में मठ होने का विषय दिया नहीं है। यदि मठ होता तो अवश्य उल्लेख करते।

3. तंजौर जिला के बुद्धमित्र (ग्यारहवीं शताब्दी) ने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। आप चोळ देश राजा वीरराजेन्द्र के कृपाभाजन विद्वान थे। आपने बौद्ध मत का प्रचार किया था। कांची मठाधीशों ने इसे रोकने के लिये क्या प्रयत्न किया था?

4. बारहवीं शताब्दी में पान्डिय राज्य के अनुरौद्ध कांची के मुलसीमविहार का प्रधान बने और आपने तीन नामी ग्रंथों की रचना की थी। आपने अपने मत का प्रचार भी कांची में खूब किया था। कांची मठ में चन्द्रशेखर III (1098–1166 ई०) व अद्वैतानन्द बोध (1166–1200 ई०) मठाधीष होने का प्रचार किया जाता है और आप दोनों ने इस प्रचार को रोकने में क्या प्रयत्न किया था? जब कांची में ही यह महान कार्य था इसे छोडकर उत्तर भारत में भ्रमण करते थे ऐसा कहना क्या उचित व न्याय है? जब अपने घर में ही धर्मप्रचार कर न सके तो अन्यत्र जाकर क्या किये होंगे कि आप सब 'जगत विख्यात मठाधीष' भये? करीब तीन सौ वर्षों तक (बारवीं शताब्दी तक) बर्मा देश में बौद्ध धर्म जो प्रचार हुआ था सो सब कांचीपुर ही से हुआ था और 1192 ई० में लङ्का से प्रचार होने लगा। दसवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का प्रभाव कांची में बहुत था और कहेजानेवाले कांची शङ्कर मठ ने इसके विरुद्ध कुछ कारवायी भी न की थी। यदि मठ होता तो अवश्य कुछ न कुछ इस अवैदिक मत प्रभाव को घटाने का प्रयत्न किये होते।

5. चीनी यात्री हुवन-च्याङ्ग पन्द्रह वर्ष (630-645 ई०) भारत का भ्रमण किया था और 641 ई० के पूर्व आप कांची पधारे थे। आप हर्ष के राज्य में 8 वर्ष रहे और नलन्दा विद्यालय में दो साल रहे। अपने द्वारा रचित 'सि–यु–कि' पुस्तक में अपना भ्रमण का विवरण दिया है। उस समय कांची मठाधीष बोध I (618—655 ई०) होने का कहा जाता है। आप कांची में ही वास करते थे और आपका निर्याण भी वहीं होने का प्रचार भी करते हैं। हुवन-च्याङ्ग ने कांचीपुर का विवरण विस्तार पूर्वक किया है पर यहां कांची मठ का नामों निशान नहीं है। बौद्ध, जैन, अन्यमतों का वर्णन है पर आचार्य शंकर मठ का गंध भी नहीं है। यदि मठ होता तो अवश्य उल्लेख करते।

6. पल्लवराजा नरसिंह वर्मन II (आठवीं शताब्दी) ने एक शासन में जो कांची कामाक्षी मन्दिर में पाया गया था उसमें 'अजिवाक' के कार्यों का विवरण दिया है और 'अरिवर' (अरहत) मन्दिर का उल्लेख भी है। राजा नरसिंह वर्मन II ने कांची के कैलासनाथ मन्दिर का निर्माण किया था। आपको 'शिवचूडामणि', 'शैवन्' आदि उपादी भी थी। आपने आजिवाकों को दान दिया है। आश्चर्य है कि यह राजा इन उपादियों को धारण करते हुए भी कांची के शंकर मठ जिसे 'जगत् विख्यात् भारत का मुखिया मठ' होने का कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं इसे छोडकर आजाविकों को दान दिया था। अजाविक एक तरह के शैवतान्त्रिक थे जो अवधूत भी थे और बायें हाथ से भिक्षा लेते थे। कांची में यदि आचार्य शङ्कर का मठ होता तो यह दान शंकर मठ को मिलता न कि अजाविकों को।

7. दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म का सुनहरा काल दूसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक था। कांची व कावेरीपट्टिनम् दोनों नगर बौद्ध धर्म प्रचार के केन्द्र थे। भिक्षु एवं भिक्षुणी धर्म प्रचार खुल्लम खुल्ला करते थे। अनेक ग्रंथ रचे गये थे। कांची मठ वंशावली अनुसार मठाधीष सुरेश्वर (69–

127 ई०) से लेकर 16 आचार्य सच्चिदानन्दघन (527—548 ई०) तक सब आचार्य कांची छोडकर भ्रमण करते हुए धर्मप्रचार करते थे और प्रज्ञानघन (548—564 ई०) से लेकर 9 आचार्य चन्द्रशेखर (692—710 ई०) तक सब आचार्य कांची में ही वास करते थे। प्रश्न उठता है कि ये सब कांची मठ के कहेजानेवाले आचार्यों ने इस 600 वर्ष में क्या किया था? जब अपने कांची केन्द्र ही में आग जल रहा था उसे न बुझा कर उत्तर भारत में भ्रमण करते थे ऐसा कहना न्याय नहीं है। छठवीं/सातवीं शताब्दी में 9 आचार्य कांची में वास करने की कथा कही जाती है पर आप सबों ने बौद्ध धर्म के प्रभाव को रोकने में क्या क्या कारवाइयां की थी? वास्तव विषय यह है कि आचार्य शंकर का जन्म सातवीं शताब्दी अन्त/आठवीं शताब्दी का था और आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठों द्वारा प्रचार सब 8 वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हुआ था। पर कुम्भकोण मठ इस विषय को स्वीकार नहीं करते और आपका प्रचार है कि आचार्य शङ्कर के पश्चात् 476 क्रिस्त पूर्व से आपका कांची मठ था। इस कल्पित कथा के साथ उस काल के ऐतिहासिक परिस्थिति ठीक जमता नहीं है।

8. सातवीं/आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में बौद्धमत का परमविरोधी एवं उस मत की अवनति का मूल कारण शैवमत प्रचार ही था न कि आचार्य शङ्कर का अविच्छिन्न परम्परागत कांची मठाधीश एवं आपके धर्म प्रचार। इस समय बौद्धमत में भी परिवर्तन हुआ था और तान्त्रिकों का प्रभाव अधिक था। बौद्ध तान्त्रिक जिन्हें वज्रायन, तंत्रायन व मंत्रायन के नाम से पुकारे जाते थे। यह समय था जब शैवाचार्य श्री सम्बन्दर ने बौद्ध विद्वान बुद्धनन्दी व सारिपुत्र को विवाद में हराया था। सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक पान्डिय व पल्लव का प्रभाव अधिक था। तेरहवीं शताब्दी में कांची के बुद्धपल्ली का उल्लेख है एवं 14 वीं शताब्दी में कांची बुद्धादित्य का प्रचार भी वर्णित है। इस समय के कहेजानेवाले कांची मठाधीश महादेव IV, चन्द्रचूड, विद्यातीर्थ व शङ्करानन्द थे। आप सबों ने कांची में क्या किया था? न बौद्धमत ग्रन्थों में या समसामयिक विद्वानों से रचित अन्य पुस्तकों में कांची मठ का उल्लेख पाया जाता है। यदि मठ होता तो अवश्य कहीं न कहीं व किसी एक समय आपका उल्लेख होता। दक्षिण में जैनधर्म प्रचार एवं वैदिकधर्म का पुनरुत्थान तथा शैवाचार्य एवं वैष्णवाचार्य मतों का प्रचार के कारण बौद्धधर्म का प्रभाव घट गया था। इस कार्य में कांची मठ का कुछ भी हाथ न था। कांची, कावेरीपट्टिनम्, मदुरा, नागपट्टिनम् आदि नगर बौद्ध धर्म प्रचार के केन्द्र थे। कांची में बौद्धमत पुस्तक (पाली भाषा में) बहुत मशहूर थी। क्या कांची मठाधीश इन दिनों में सो रहे थे। कांची के पल्लव राजा स्वयं बौद्धमतानुयायी थे और बौद्धमत का प्रचार भी किये थे। क्यों नहीं कहेजानेवाले 'भारतशिरोमणिमुखिया जगद्गुरुमठ जगत् विख्यात्' मठाधीशों ने इसे रोक सके? इससे प्रतीत होता है कि कांची मठ 'अश्रुतम्, अदृष्टम्, अज्ञातम्' कोटि में गिने जाने वाला मठ था।

कुम्भकोण मठ की वंशावली सूची से कुछ आचार्यों का चरित्र विमर्श एवं कुम्भकोण मठ प्रचारों पर आलोचना नीचे की जाती है।

1. आचार्य शङ्कर—(508 से 476 क्रिस्तपूर्व) अब उपलब्ध होनेवाले दृढ प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि आचार्य शङ्कर का काल सातवीं शताब्दी अन्त/आठवीं शताब्दी का था। अतः कांची मठ

का काल ठीक नहीं। आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। अचार्य शङ्कर के साधारण निवासस्थल, सर्वज्ञपीठारोहणस्थल, निर्याण स्थल, मन्दिर या नगर निर्माण स्थल एवं देवदेवियों की अशुद्धता व उग्रता शान्त किये हुए मन्दिरों का स्थल, श्रीचक्र व अन्य चक्रों की प्रतिष्ठित व अशुद्धता निवारण कर पुनः प्रतिष्ठित स्थल, आदि स्थलों में आम्नाय मठ का भी निर्माण होना जो सब कथन कुम्भकोण मठ का है सो सब भूल व मिथ्या है। जिस मठ को आम्नाय पद्धति लागू होता है, आचार्य शङ्कर द्वारा रचित महानुशासन नियमों से जो मठ बद्ध हैं और जो धर्मराज्य का केन्द्रस्थान है, उसी मठ को आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित मठ कहा जाता है। चार दृष्टीगोचर आम्नाय के केवल चार आम्नाय मठ हैं और आचार्य शङ्कर ने अपने लिये कहीं भी अलग मठ की स्थापना नहीं की थी। आचार्य शङ्कर कांची में लगभग माह काल वास कर, कामाक्षी की उग्रता को शान्त कर पुनः श्रीचक्र की प्रतिष्ठाकर, इन मन्दिरों में वैदिकमार्ग पूजाविधि से पूजन के लिये वहां के ब्राह्मणों को नियोजन कर, कांची नगर निर्माण कराने के लिये राजा को आज्ञा देकर, पश्चात् आप वहां से चल पडे। इस उक्त आधार पर कहना कि आचार्य शङ्कर ने वहां मठ की स्थापना की थी सो भूल है। यदि आम्नाय मठ स्थापित किये होते तो उस मठ की आम्नाय पद्धति भी बनाये होते और आप से रचित मठाम्नाय में कांची मठ का नामों निशान नहीं है। पाठकगण इस खण्ड को पूरे पढें तो स्पष्ट मालूम होगा कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना नहीं की थी। यदि कुम्भकोण मठ की कल्पित कथा को भी मान लें कि आचार्य ने कांची में ही सर्वज्ञपीठारोहण किया था एवं वहीं विदेह मुक्ति प्राप्त की थी, तो इससे सिद्ध नहीं होता कि कांची में आम्नाय मठ की स्थापना भी की थी। आचार्य शङ्कर काल के पूर्व से ही कामकोटि पीठ है और आचार्य ने यहां कोई नवीन पीठ की स्थापना नहीं की थी। पीठ होने से ही आम्नाय मठ होने की आवश्यकता नहीं है। भारत में 50/51 शक्ति पीठ हैं और इन सब पीठों में आम्नाय मठ नहीं हैं। आचार्य शङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा में अनेक तीर्थ क्षेत्र व पुण्य स्थलों में वास किये, अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया था एवं चक्र प्रतिष्ठा भी की थी। क्या इन सब जगहों में आम्नाय मठ की भी स्थापना हुई थी? आचार्य शङ्कर की आयु 32 वर्ष का था। अपनी सोलहवीं वयस में भाष्य रचना की थी और 12 वर्ष शृङ्गेरी में वास किये थे। भारतवर्ष का भ्रमण भी किया था तथा आपसे प्रतिष्ठित अन्य तीन आम्नाय मठों में भी (पूरी, द्वारका व बदरी) कुछ समय वास किये थे। अपनी 32 वर्ष आयु में कितना वर्ष शेष बचा होगा कि आप कांची में वास कर सकते थे? आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल केदार-बदरी सीमा है न कि कांची। जब कांची में मठ ही न था तो वहां के मठ में अधिष्ठित भये कहना मिथ्या प्रचार करना है।

2. श्री सुरेश्वराचार्य—(476—406 क्रिस्त पूर्व) इस खण्ड के तृतीय अध्याय में इस विषय पर आलोचना की गयी है। श्री सुरेश्वराचार्य कांची कल्पित मठ में थे ही नहीं।

3. सर्वज्ञात्मा—(406—364 क्रिस्तपूर्व) प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संक्षेप शारीरक' के रचयिता श्री सर्वज्ञात्मा को मठाधीश बनाया गया है। सर्वज्ञात्मा मुनि ने 'प्रमाण लक्षण' 'पंच प्रक्रिया' ग्रन्थों की भी रचना की थी। आपके संक्षेपशारिरक पर अनेक टीकायें विद्यमान हैं जिनमें नृसिंहाश्रम की तत्त्वबोधिनी, मधुसूदन का सारसंग्रह, पुरुषोत्तम दीक्षित की सुबोधिनी, रामतीर्थ की अन्वयार्थप्रकाशिका हैं। श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं—
'Sarvajnatman was the next great Advaita author; he flourished in Travancore at the end of the tenth century. His authoritative Samkshepa-Sariraka, with its fine literary flavour is his chief work but he also wrote Pancha Prakriya and Pramana Lakshana. This last work, on epistemology, is accepted by Mimamsakas as well as Vedantins. Jnanaghana's Tattavasudhi is another treatise of about same time;

its author finds mention in the Sringeri list of pontiffs.' (P. 344) मठाधीश होने की कथन के प्रमाण में कुम्भकोण मठ कहते हैं कि संक्षेप शारीरक ग्रन्थ में सर्वज्ञात्मा ने अपने को 'देवेश्वर पूज्यपाद' का शिष्य कहा है और 'देवेश्वर' नाम 'सुरेश्वर' का दूसरा नाम ही है, इसलिये सर्वज्ञात्म कांची मठाधीश भये। इसके व्याख्या में भी 'देवेश्वर पूज्यपाद' का अर्थ सुरेश्वराचार्य कहा गया है चूंकि ऐसी श्रुति है कि गुरु का नाम नहीं लेना (गुरोनाम न गृण्हीयादिति श्रुतेः)। कुम्भकोण मठ की कथा भी है कि एक महादेव नाम का सात वर्ष बालक (ताम्र्मपर्णीतीरस्थ) आचार्य शङ्कर से लगातार तीन दिन विवाद किया और आचार्य ने चौथे दिन उसे 'सर्वज्ञ' की पदवी देकर सन्यासाश्रम देते हुए पश्चात् कांची मठाधीश बनाये। चूंकि सुरेश्वराचार्य योगलिङ्ग पूजार्ह न थे और परमहंस सन्यासी न थे इसलिये आपको सर्वज्ञ बालक की निगरानी में नियोजित किया। कुम्भकोण मठ की इस कल्पित कथा से प्रतीत होता है कि सर्वज्ञात्म के गुरु आचार्य शङ्कर थे। आचार्य शङ्कर से सन्यासाश्रम लेकर सुरेश्वराचार्य के शिष्य भये ऐसा जो कुम्भकोण मठ का प्रचार है सो सब अनर्गल है। 'देवेश्वर' पद की यदि व्याख्या की जाय तो यह पद आचार्य शङ्कर को ही लागू हो सकता है न कि सुरेश्वराचार्य को चूंकि देवादिदेव परमेश्वर महादेव जो सब देवों के ईश्वर हैं उनके अंश आचार्य शङ्कर थे और आपको ही देव का ईश्वर यानी देवेश्वर कहना उचित होगा। कुम्भकोण मठ का कथन है कि सर्वज्ञात्म के गुरु आचार्य शङ्कर थे। पर यह भी व्याख्या ठीक नहीं जमता चूंकि 'संक्षेपशारीरक' ग्रन्थ के अन्त में भी देवेश्वर का नाम ही दिया गया है। यदि गुरुवन्दना में परियाय नाम दिया गया हो या छंद में पदों को ठीक जमाने के लिये ऐसा पद उपयोग किया हो तो उस परियाय नाम की व्याख्या की जा सकती है और अपना अभिप्राय भी दिया जा सकता है पर जब ग्रन्थकर्ता ग्रन्थ के अन्त में भी इसी पद का उपयोग करते हैं तो यह स्पष्ठ सिद्ध होता है कि 'देवेश्वर' परियाय नाम पद नहीं है पर यही यथार्थ नाम सर्वज्ञात्म के गुरु का है। पुस्तक के अन्त में (Colophon) यथार्थ नाम देना ही रूढी में है। संक्षेपशारीरक प्रथमाध्याय अन्त में उल्लेख है 'प्रथमाध्याय समाप्तिः।' 'इति श्री देवेश्वर पूज्यपाद शिष्य श्री सर्वज्ञात्ममुनेः कृतौ शारीरक मीमांसा भाष्य प्रकरण वार्तिके संक्षेपशारीरके प्रथमोध्यायः।' इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि श्री भगवत्पाद द्वारा रचित शारीरक मीमांसा भाष्य जो वार्तिक रूप है उसका संक्षेप रूप में संक्षेपशारीरक ग्रन्थ श्री देवेश्वर के शिष्य श्री सर्वज्ञमुनि द्वारा रचित है। अध्याय अन्त में 'देवेश्वर पूज्यपाद' नाम सर्वज्ञात्म के गुरु का नाम है। सर्वज्ञात्म से रचित 'प्रमाण लक्षण' में सर्वज्ञात्मा ने स्पष्ठ उल्लेख किया है कि आपके गुरु का नाम 'देवेश्वरपूज्यपाद' है। इसी पुस्तक में यह भी स्पष्ठ उल्लेख है कि सर्वज्ञात्मा के गुरु श्री देवेश्वर पूज्यपाद का गुरु 'देवानन्दपाद' थे और श्री देवानन्दपाद का गुरु का नाम 'श्रेष्ठानन्दपाद' था। इससे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि संक्षेप शारीरक के रचयिता सर्वज्ञात्मा का सम्बन्ध किसी भी शांकर मठ से बिलकुल न था और आप किसी मठ के मठाधीश भी न थे। सर्वज्ञात्म के गुरुवंशावली यों है—श्रेष्ठानन्दपाद—देवानन्दपाद–देवेश्वरपाद–सर्वज्ञात्म मुनि। यह निस्सन्देह सिद्ध हुआ कि कुम्भकोण मठ का प्रचार न केवल भूल है पर मिथ्या प्रचार भी है।

संक्षेपशारीरक ग्रंथ में निम्न श्लोक पाया जाता है—'श्रीदेवेश्वरपादपङ्कजरजः संपर्क पूताशयः सर्वज्ञात्मगिराङ्कितो मुनिवरः संक्षेपशारीरकं। चक्रे सज्जन बुद्धि मण्डित (वर्धन) मिदं राजन्यवंशेनृपे श्रीमत्यक्षतशासने मनुकुलादित्ये भुवं शासति॥' कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके मठाधीश सब 'इन्द्रसरस्वती' एक विशेष योगपट्ट धारण करने वाले हैं और इन्द्र पद श्रीआचार्य शङ्कर को देवेन्द्र ने दिया था इसलिये सर्वज्ञात्ममुनि का नाम श्रीसर्वज्ञात्म श्रीचरणेन्द्र सरस्वती है। ग्रंथ रचयिता स्वयं अपने को सर्वज्ञात्ममुनि कहते हैं। आपने 'इन्द्रसरस्वती' अङ्कित नाम का उपयोग नहीं किया है। उपर्युक्त श्लोक से यह भी प्रतीत होता है कि 'सर्वज्ञात्ममुनि' ने संक्षेपशारीरक ग्रंथ श्रीमनुकुलादित्य राजा के राज्यकाल में ही रचना की है। श्री टि. ए. गोपीनाथ राव, Archaeological Dept., Travancore

अधिकारी एवं कांची मठ ताम्रशासनों के संपादक, Travancore Archaeological Series Vol. II में लिखते हैं कि उपर्युक्त श्लोक में निर्देषित मनुकुलादित्य, केरळदेश का राजा था जो करीब 978 इ० में राज्य करता था। दसवीं शताब्दी का सर्वज्ञात्ममुनि किस प्रकार क्रिस्तपूर्व 476—364 में कांची मठाधीश बन सकते हैं। दसवीं शताब्दी में श्रीसर्वज्ञात्ममुनि केरळ देश में वास करते थे। उक्त श्री टि. ए. गोपीनाथ राव लिखते हैं—'The pedigree of the author as given in the latter work (Pramana Lakshna) does not disclose any relationship with Sankaracharya and his Matha. Where from Atmabodhendra Saraswati (the commentator of the Gururatnamalika) got the detailed history of Sarvajnatma is not patent and in the absence of this information we have to take his statement cum-grano-salis (with a grain of salt).' आपका दृढ अभिप्राय है कि सर्वज्ञात्म का सम्बन्ध शङ्कराचार्य से न था या न किसी मठ के साथ और आगे आप कहते हैं कि कुम्भकोण मठ का प्रचार निराधार व कल्पित है। प्रसिद्ध इतिहास विद्वान श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्रीजी का अभिप्राय भी यही है। आप लिखते हैं 'I have no doubt that Manukuladitya of Sarvajnatman was the Kerala ruler, Bhaskara Ravi Varman about 978—1030 A. D. The late T. A. Gopinatha Rao proved this conclusively. The King had the name Manukuladitya.' सर्वज्ञात्ममुनि रचित 'पंचप्रक्रिया' पुस्तक के प्रस्तावना में श्री टि. आर. चिन्तामणि ने प्रमाणयुक्त सिद्ध किया है कि श्रीसुरेश्वराचार्य के शिष्य श्रीसर्वज्ञात्म न थे और आपका काल करीब 200 वर्ष सुरेश्वराचार्य काल के पश्चात् का ही था एवं सर्वज्ञात्म विरुवांकूर वासी थे। कुम्भकोण मठ का कथन सब मिथ्या है।

कुम्भकोण मठ की कथा है कि महादेव नामक बालक अपने सातवें वर्ष में आचार्य शङ्कर से तीन दिन विवाद किया और चौथे दिन आचार्य ने उसे सन्यासाश्रम देकर सर्वज्ञात्म का नाम दिया। इससे प्रतीत होता है कि यह बालक सचमुच सर्वज्ञ था जो ईश्वरांश आचार्य शङ्कर के साथ वादविवाद किया। ऐसे प्रकान्ड विद्वान सर्वज्ञ बालक के लिये श्रीसुरेश्वराचार्य को निगरानी के लिये नियोजन किया कहना आचार्य शङ्कर के ऊपर अपचार है। ईश्वरांश सर्वज्ञ आचार्य शङ्कर की बुद्धि क्या मन्द थी कि आपने उस बालक को 'सर्वज्ञ' कहा? इस बालक के नित्य जीवन सुविधाओं के प्रबन्ध के लिये क्या सुरेश्वराचार्य को कांची में रक्खा गया था? कुम्भकोण मठ के कथनानुसार सर्वज्ञ सर्वज्ञात्म को विद्याध्ययन की आवश्यकता नहीं थी और सुरेश्वराचार्य यद्यपि प्रकान्ड पन्डित थे पर सर्वज्ञ न थे और क्या आप सुरेश्वर से पाठ पढे? क्या आचार्य शङ्कर ने प्रकान्ड विद्वान व अद्वितीय व्यक्ति श्रीसुरेश्वराचार्य को ऐसे अल्प साधारण काम के लिये रक्खा था? कल्पना कथा की सीमा भी होती है पर यह सीमातीत है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि यह सर्वज्ञात्म कुछ काल तक द्वारका में वासकर श्रीपद्मपाद के पश्चात् आये हुए द्वारका मठाधीश श्रीब्रह्मस्वरूप को पाठ पढाया था। यह निराधार कथन मिथ्या है। प्रश्न उठता है कि कांची के कहेजानेवाले सुरेश्वराचार्य जो व्यक्ति सर्वज्ञात्म की निगरानी 70 वर्ष तक करते थे आपको छोड सर्वज्ञ कब और कैसे द्वारका पहुंचे? क्या ब्रह्मस्वरूप की विद्वत्ता कम थी कि आपको सर्वज्ञात्म से विद्याध्ययन करना पडा था? द्वारका मठ परम्परा में सुरेश्वराचार्य, चित्सुखाचार्य एवं सर्वज्ञानाचार्य का नाम दिया गया है और कुम्भकोण मठ ने सुरेश्वराचार्य एवं सर्वज्ञानाचार्य को अपने मठ परम्परा में ले लिया और चित्सुखाचार्य को आचार्य शङ्कर के अनेक शिष्यों में एक शिष्य होने की कथा भी सुनाने लगे।

पूर्व में कुछ विद्वानों का अभिप्राय था कि दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के श्रीबोधघनाचार्य (श्रीनित्यबोधघनाचार्य) का दूसरा नाम सर्वज्ञात्म श्रीचरण था क्यों कि श्रीनित्यबोधघनाचार्य श्रीसुरेश्वराचार्य के शिष्य थे और आप शृंगेरी मठ में सुरेश्वराचार्य के बाद मठाधीष भये। सर्वज्ञात्म के गुरु देवेश्वर को सुरेश्वर होने की कथा स्वीकार कर एवं मनुकुलादित्य को 'आदित्य चोळ' होने की कथा भी स्वीकार कर इन विद्वानों ने शृंगेरी के नित्यबोधघनाचार्य को सर्वज्ञात्म कहने लगे। यह निराधर कथा ही भूल है एवं विद्वानों का अभिप्राय भी भूल हैं। श्री टि. ए. गोपीनाथ राव, श्री टि. आर. चिन्तामणि एवं श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री आदियों का अभिप्राय है कि सर्वज्ञात्म का समय दसवीं शताब्दी का है और आप केरळ राज्य राजा मनुकुलादित्य (दसवीं शताब्दी) के राज्य शासन काल में ग्रंथों का प्रणयन किया था। सर्वज्ञात्म की गुरुवंशावली में गुरु देवेश्वर, परमगुरु देवानन्द, परमेष्ठि गुरु श्रेष्ठानन्द का नाम दिया है। नित्यबोधघनाचार्य के शिष्य ज्ञानघनाचार्य हैं जो शृंगेरी मठाधीष बने। श्रीज्ञानघनाचार्य से रचित ग्रंथ 'तत्वशुद्धि' में प्रकाशात्मन के विवरण ग्रंथ का आमोदन करते हैं और आपका काल लगभग दसवीं शताब्दी पूर्वार्ध था। तत्त्वशुद्धि ग्रंथ के प्रारम्भ में ही अपने गुरु का नाम व विवरण देते हैं—'व्याख्या गर्जितनिर्जिताजडधियः कण्ठीरवाशङ्कया, तर्कारण्य निषण्ण वादिकरिणो निःश्रेयसाद्रौ स्थिति:। विद्यावृष्टिसुपक्वशिष्ययतिसस्यैः क्षमाक्षोभते, शश्वद्बोधघनस्य यस्य गुरुवे तस्मै नमः श्रेयसे।' श्रीबोधघनाचार्य को 'सनातनं स्वानुभवं प्रकाशयन्' एवं शिष्यों को 'निनाय सद्धर्मपथं' ऐसा विवरण गुरुवंशकाव्य में दिया है। विद्वानों का अभिप्राय है कि ज्ञानघनाचार्य का काल दसवीं शताब्दी का प्रारम्भ का है। इससें स्पष्ट मालूम होता है कि नित्यबोधघनाचार्य के साथ सर्वज्ञात्म का कोई सम्बन्ध न था और यह नाम आपका परनाम भी नहीं है। पद्मपाद के पंचपादिका पर टीका 'पंचपादिकाविवरण' ग्रंथ का रचयिता प्रकाशात्मन थे। आप शृंगेरी मठाधीश श्रीबोधघनाचार्य के समसामयिक काल के थे।

शृङ्गेरीमठाधीश श्री ज्ञानघनाचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ 'तत्वशुद्धि' को बहुकाल पश्चात् श्री अप्पय्य दीक्षित (सोलहवीं/सत्तरहवीं शताब्दी) ने प्रशंसा की है। श्री ज्ञानघनाचार्य का शिष्य 'विद्याश्री' के रचयिता श्री ज्ञानोत्तमाचार्य थे। आप अपने गुरु पश्चात् शृङ्गेरी मठाधीश भये। अपने रचित पुस्तक में गुरु का नाम भी लेते हैं—'श्रीज्ञानघनाचार्य शिष्य ज्ञानोत्तमभट्टारकेन विरचिता ... ...।' शृङ्गेरी मठाधीश श्री ज्ञानोत्तमशिव के एक शिष्य विज्ञानात्म थे। आपने 'तात्पर्यद्योतिनी' व 'नारायणोपनिषद् टीका' की रचना की है। श्री ज्ञानोत्तमशिव के दूसरे शिष्य श्री चित्सुख थे। आप सिंहाचल प्रदेश के थे। आपका सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'तत्त्वप्रदीपिका' (चित्सुखी) है और अन्य ग्रन्थ भावप्रकाशिका, अभिप्राय प्रकाशिका, भावतत्त्वप्रकाशिका, भावद्योतिनी, न्यायमकरन्द टीका, प्रमाणरत्नमाला-व्याख्या, खण्डनखण्डखाद्य-व्याख्यान, अधिकरणसङ्गति, तथा अधिकरणमञ्जरी हैं। श्री चित्सुख के गुरु शृङ्गेरी मठाधीश श्री ज्ञानोत्तमाचार्य द्वारा रचित 'न्यायसुधा' एवं 'ज्ञानसिद्धि' पुस्तकों का निर्देश मिलता है पर यह दोनों पुस्तकें अब उपलब्ध नहीं हैं। श्री चित्सुखाचार्य लिखते हैं 'एवं हि न्यायसुधायामस्मदाराध्यपादैरुपपादितं—संसारकारणभूताविद्या यद्यप्येकैव तथापि संत्येव बहवः आकाराः।' नयनप्रसादिनि के रचयिता लिखते हैं 'आराध्यपादाः स्वगुरवः ज्ञानसिद्धिकाराः। पादशब्दश्च पूजार्थः तत्प्रणीतं च वेदान्तप्रकरणं न्यायसुधा।' श्री चित्सुख के शिष्य शुकप्रकाश और आपके शिष्य अमलानन्द थे। श्री सुरेश्वर का नैष्कर्म्यसिद्धि और श्री विमुक्तात्मन का इष्टसिद्धि पर व्याख्याकर्ता एवं मङ्गलम् निवासी श्री महोपाध्याय ज्ञानोत्त मिश्र, गृहस्थ गौड ब्राह्मण व्यक्ति, आप शृङ्गेरी मठाधीश श्री ज्ञानोत्तम शिव से भिन्न हैं। कुछ विद्वान इन दोनों को अभिन्न होने की भूल से मानते हैं। अद्वैतदीपिका का रचयिता चित्सुखी के तीसरे/चतुर्थ परिच्छेद में श्रीज्ञानोत्तमशिव को 'श्री गौडेश्वराचार्य प. प. ज्ञानोत्तम पूज्यपाद' ऐसा उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि श्री ज्ञानोत्तम शिव भी गौड ब्राह्मण थे। गृहस्थ ज्ञानोत्तम ने अपने रचित इष्टसिद्धि व्याख्या पुस्तक में

आनन्दानुभव एवं अनुभूतिस्वरूप रचित व्याख्याओं से पंक्तियां उद्धृत किया है। गृहस्थ ज्ञानोत्तम का काल बारहवीं शताब्दी अन्त का ही है। इसलिये ये दोनो व्यक्ति भिन्न हैं। श्री ज्ञानोत्तमशिव का शिष्य श्री विज्ञानात्म ने स्वरचित तात्पर्यद्योतिनी में अपने गुरु को जगद्गुरु कहा है 'ज्ञानोत्तम त्रिभुवन गुरवे नित्यमस्तुप्रणामः।' श्री चित्सुखाचार्य ने श्रृङ्गेरी मठाधीश ज्ञानोत्तम शिवाचार्य का वर्णन ऐसा किया है—'ज्योतिर्दक्षिगामूर्ति व्यासशङ्करशद्वितं ज्ञानोत्तमाख्यं तं वन्दे।' उक्त आचार्यों के बारे में कुछ प्रचार पुस्तकों में भिन्न अभिप्राय देकर प्रचार होता है और इसलिये यहां वास्तविक विषय दिया जाता है ताकि पाठकगण यथार्थ जान लें।

4. सत्यबोध—(364—268 क्रिस्तपूर्व) एक ब्राह्मण गृहस्थ ज्ञानोत्तम ने नैष्कर्म्यसिद्धि पर टीका लिखी है। आप श्रृंगेरी मठाधीष श्रीज्ञानोत्तमाचार्य से भिन्न हैं। आपने अपने ग्रंथ में श्रीसत्यबोध का उल्लेख किया है। यह भी कहा गया है कि सत्यबोध का 'पदकशत' अन्य अवैदिक मतों का नाश कर दिया था। कुम्भकोण मठ ने इस सत्यबोध के नाम को अपने वंशावली सूची में जोड ली। कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता कि सत्यबोध कांची मठाधीष थे या आपसे किसी मठ का सम्बन्ध था। यदि सत्यबोध का 'जगतविख्यात भारत का शिरोमणिमुखिया मठ' (कुम्भकोण मठ कथनानुसार) का अधीश होना यथार्थ होता तो अवश्य ज्ञानोत्तम ऐसा उल्लेख करते। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपने भाष्य-त्रय पर वार्तिक एवं पदकशत ग्रंथों की रचना की थी पर ये सब ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं—'We have not got any of them.' पदकशत से यही मालूम होता है कि यह पुस्तक केवल 100 श्लोकों का संग्रह है। कुम्भकोण मठ को ग्रंथ उपलब्ध हो या नहीं पर जब नाम उपलब्ध हैं तब अपने इष्ट काम्य की सिद्धि प्राप्त होती है।

5. ज्ञानानन्द—(268—205 क्रिस्तपूर्व) नैष्कर्म्यसिद्धि का टीकाकार ब्राह्मण गृहस्थ महोपाध्याय श्रीज्ञानोत्तम मिश्र को ज्ञानानन्द का नाम देकर कुम्भकोण मठ वंशावली में नाम जोड लिया गया है। आपसे रचित ग्रंथ से सत्यबोध का नाम जब लिया गया था तो आपका नाम भी लेना कुम्भकोण मठ के लिये आवश्यक पडा। ज्ञानोत्तम चाहे ब्रह्मचारी हों या गृहस्थ पर इन्हें सन्यासाश्रम लेने की कल्पना कर ज्ञानानन्द का नाम दिया गया है। आपसे सन्यासाश्रम धारण करने का प्रमाण नहीं मिलता पर आपका ब्रह्मचारी या गृहस्थ होने का प्रमाण मिलते हैं। विद्वानों का अभिप्राय है कि आपका काल बारहवीं शताब्दी अन्त का ही है। महोपाध्याय ज्ञानोत्तम मिश्र के नाम से एक कट्टर अद्वैतमतानुयायी ब्राह्मण गृहस्थ 'मङ्गळ' नाम अग्रहार में वास करते थे। आपके अनेक शिष्य भी थे। उक्त गृहस्थ विद्वान ज्ञानोत्तम ने स्वरचित इष्टसिद्धि टीका में आनन्दानुभव, अनुभूतिस्वरूप, चित्सुख, आदियों से रचित ग्रंथों में से अनेक विषयों का उल्लेख किया है। संन्देह उठ सकता है कि ज्ञानोत्तम नाम साधारणतः गृहस्थों को नहीं दिया जाता है अतः आप सन्यासी भी हों। ज्ञानोत्तम स्वयं इसका कारण देकर उत्तर देते हैं और आप अपने ग्रंथ में कहते हैं कि आपको अपने पिता के गुरु का नाम दिया गया है—'चोलेषु मङ्गलमिति प्रथितार्थनाम्नि ग्रामेवसन् पितृगुरोरभिधांदधानः। ज्ञानोत्तमः सकलदर्शनपारदृश्वा नैष्कर्म्यसिद्धि विवृतिं कुरुते यथावत्। ... ... इति भट्टोपाध्याय ज्ञानोत्तम मिश्र विरचितायां ... ...।' उक्त श्लोक से प्रतीत होता है कि आपका पिता श्रृंगेरी मठाधीश एवं 'विद्याश्री' ग्रंथ रचयिता श्री ज्ञानोत्तमाचार्य के शिष्य थे और अपना गुरु का नाम ज्ञानोत्तम अपने पुत्र को नाम दिया था। प्राचीन रिकार्डों एवं ग्रंथों से मालूम होता है कि उन दिनों में श्रृङ्गेरी में महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, केरळ, तामिल एवं गौड ब्राह्मण मठ के शिष्य थे। अतः ज्ञानोत्तम सन्यासाश्रम नाम नहीं है और आप गृहस्थ या ब्रह्मचारी हों।

ज्ञानोत्तम मिश्र से रचित 'चन्द्रिका व्याख्या' पुस्तक के अन्त भाग में यह श्लोक है—'वस्तुख्याति विद्यातिवातिमिरं नैष्कर्म्यसिद्धिस्फुट व्याख्याचन्द्रिकया विधूय सुधियां सदृदृष्टिमुन्मीलयन्। अन्तस्संभृतशान्तवेदनसुधोद्योतः समुद्योतते सर्वज्ञाश्रमचन्द्रमास्त्रिजगतीसर्वज्ञ चूडामणिः।' कुम्भकोण मठ वंशावली सूची के रचयिता ने उपर्युक्त श्लोक का तात्पर्य व अर्थ समझा नहीं होगा। यथार्थ विषय तो यह है कि किसी एक अन्य व्यक्ति से रचित यह यशोगान श्लोक जिसमें रचयिता का यश गाया गया है इसे चन्द्रिका व्याख्या पुस्तक के अन्त में जोड दिया है। इस नवीन जोडे हुए श्लोक को पुस्तक का मूल भाग समझकर कुम्भकोण मठ प्रचार करने लगे कि यह श्लोक सर्वज्ञात्म का संकेत करता है। पर उक्त श्लोक को ध्यान से पढने पर स्पष्ट प्रतीत होता है यह यशोगान श्लोक पश्चात् जोड दिया गया है। इस 'व्याख्या चन्द्रिक' (चन्द्रिका नाम की व्याख्या) को 'चन्द्र' (सर्वज्ञाश्रमचन्द्रमा) रचयिता से ही लिखा जा सकता है। यह निस्सन्देह निश्चित है कि चन्द्रिका नाम की व्याख्या ज्ञानोत्तम मिश्र ने ही लिखी थी। उपर्युक्त श्लोक का 'सर्वज्ञाश्रम' पद ज्ञानोत्तम का ही नाम है और यह पद उसी का संकेत करता है। सम्भवतः यह नाम सन्यासाश्रम धारण करने के पश्चात् का हो। आश्रम लेने के पश्चात् रचयिता के कोई एक शिष्य ने यह यशोगान श्लोक लिखकर पुस्तक में जोड दिया हो। उक्त श्लोक के आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं 'सर्वज्ञ' का नाम इसमें है और यह कुम्भकोण मठाधीष को ही संकेत करता है। परन्तु उपर्युक्त कारणों से सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार भूल है। यह पद सर्वज्ञात्म का बोध नहीं करता परन्तु ज्ञानोत्तम का बोध करता है। ज्ञानोत्तम का सन्यास नाम ज्ञानानन्द होने का कोई प्रमाण इस श्लोक से नहीं मिलता।'सर्वज्ञाश्रम' में 'आश्रम' अङ्कितनाम (दसनामी में एक) है और इसके पश्चात् कुम्भकोग मठ का 'इन्द्रसरस्वती' या शुद्ध 'सरस्वती' योगपट्ट नहीं जोडा जा सकता है।

6. शुद्धानन्द—(205-124 क्रिस्तपूर्व) आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि ने आचार्य शङ्कर के भाष्यों का तथा श्रीसुरेश्वराचार्य के वार्तिकों पर टीकायें लिखी हैं। आप भाष्यों के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। कुम्भकोण मठ ने आपको भी अपनी वंशावली में सातवां आचार्य होने का प्रचार करते हैं। आनन्दगिरि रचित पुस्तकों में आपने अपने गुरु का नाम शुद्धानन्द कहा है और कुम्भकोण मठ की वंशावली में इस शुद्धानन्द को छठवां आचार्य बना दिया है ताकि आपके शिष्य आनन्दज्ञान का सातवां आचार्य होना प्रमाग में दिया जा सके। जब प्रमाण से सिद्ध होता है कि टीकाकार आनन्दगिरि कांची या कुम्भकोग मठाधीश न थे तो शुद्धानन्द का मठाधीश होना भी असम्भव है। कुम्भकोग मठ का प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोग मठाधीश की अनुमति से रचना की गयी थी और आपको अर्पित है उसमें उल्लेख है—'...... the link between ज्ञानानन्द or ज्ञानोत्तम and शुद्धानन्द is weak' अर्थात् कुम्भकोण मठ को अपने वंशावली पर विश्वास नहीं है।

7. आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि—(124—55 क्रिस्तपूर्व) आपने भाष्यों व वार्तिकों पर टीकाएं लिखी हैं। आपसे रचित टीका को आनन्दगिरि टीका कहते हैं। आपके गुरु शुद्धानन्द थे ('श्री शुद्धानन्द भगवत्पूज्य शिष्य श्री मदानन्दज्ञान विरचितायां शङ्कर भाष्य टीकायां।') और आपको भी छठवां मठाधीश बनाया गया है। जब शिष्य मठाधीश बनाये गये तो आपके गुरु को भी मठाधीश बनाना आवश्यक है। पामरजन की आखों में धूल फेंकने का यह एक मार्ग है। आनन्दगिरि द्वारा रचित ग्रन्थ—न्यायनिर्णय, गीताभाष्यटीका, पञ्चीकरण विवरण, उपदेशसाहस्री टीका, उपनिषद भाष्यों पर टीकायें, बृहदारण्यकवार्तिक टीका आदि। आनन्दगिरि ने इन किन्हीं पुस्तकों में न कांची मठ का उल्लेख किया है या अपने को मठाधीश होने का कहीं भी कहा नहीं है। कुम्भकोण मठ वंशावली बनाने वाले ने न केवल विद्वान यतियों का नाम दिया है पर विख्यात यतिश्रेष्ठों का नाम भी जोड लिया है। अपने मठ को 'जगत्

विख्यात भारत का शिरोमणि मुखिया मठ ' बनाने के प्रयत्न में आनन्दगिरि का नाम कैसे छोड सकते हैं ? कांची मठ का विशेष अङ्कितनाम इन्द्रसरस्वती न आनन्दगिरि को है या न आपके गुरु शुद्धानन्द को है। बरोडा से प्रकाशित ' तर्कसंग्रह ' ग्रन्थ की प्रस्तावना म. म. श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री ने लिखी है और आपका अभिप्राय है कि यह आनन्दगिरि ही चौदहवीं शताब्दी का सर्वज्ञविष्णु के पिता जनार्दन हैं। आनन्दज्ञान ने अपने ऐतरेय उपनिषद भाष्य टीका में श्री विद्यारण्य दीपिका का उल्लेख किया है। अर्थात् आपका काल चौदहवीं शताब्दी का ही था। श्री विद्यारण्य का काल चौदहवीं शताब्दी का है। कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि आपका काल बारहवीं शताब्दी का ही था। ब्रह्मचारी से सन्यासग्रहण करनेवाले कुम्भकोण मठाधीश आनन्दज्ञान उर्फ आनन्दगिरि जिनका निर्याण काल 55 क्रिस्तपूर्व का कुम्भकोण मठ से कहा जाता है, यह व्यक्ति भाष्य वार्तिक टीकाकार आनन्दगिरि नहीं हो सकते जो चौदहवीं शताब्दी के थे।

8. कैवल्यानन्द उर्फ कैवल्य योगी उर्फ सच्चिदानन्द—(55 क्रिस्तपूर्व से 28 ई० तक) कुम्भकोण मठ आचार्य चरित्र में आपके बारे में कुछ भी कहा नहीं गया है अतः बिना सामग्री के अन्वेषण करना कठिन है। बिना अन्य विवरण दिये पिता माता का नाम मात्र देने से एवं निर्याण स्थल पुण्यरस ग्राम कहने से प्रमाण नहीं होता कि आप कुम्भकोण मठाधीश थे। जब आपके कहेजानेवाले पूर्व आचार्य सब मठाधीश न थे तो आपका भी मठाधीश होना असम्भव है। आपकी समाधि कहीं भी नहीं है।

9. कृपाशङ्कर—(28–69 ई०) कुम्भकोण मठ वंशावली रचयिता ने आचार्य शङ्कर चरित्र से मुख्य पांच चरित्र घटनाओं को लेकर पांच शङ्कराचार्य का नाम देकर अपनी वंशावली में नाम जोड लिया है। प्रथम शङ्कर केवल भाष्यकर्ता थे। आपके नौवां आचार्य द्वितीय शङ्कर का अवतार होने का प्रचार करते हैं। आपको ' षणमतस्थापनाचार्य' (शिव, स्कन्द, हरि, गणेश, शक्ति, सूर्य) कहते हैं। प्रचार करते हैं कि यह द्वितीय शङ्कर तान्त्रिक उपासनाओं को वैदिक स्वरूप प्रदान किया था। आपकी चरित्र सामग्री अन्वेषणार्थ न उपलब्ध होने से आपके चरित्र पर आलोचना नहीं की जा सकती है। कुम्भकोण मठ आपके बारे में कहते हैं आप आन्ध्रदेश के आत्मनसोमयाजी के पुत्र गङ्गय्या थे और आप विन्ध्या पर्वत पास निर्याण भये और कुछ चरित्र देते नहीं। इन विषयों की यथार्थता जानना मुश्किल है। यदि कोई कहे कि काशी के भोलनाथ का लडका महादेव ने आश्रम लेकर शङ्कर स्वामी भये तो इस विवरण मात्र से यथार्थता कैसे जाना जा सकता है ? इनके समसामयिक काल या समीप काल के ग्रन्थों में आपका नाम निर्देष हुआ हो या आप ही स्वयं प्रकान्ड विद्वान या विख्यात व्यक्ति हों या आपका चरित्र घटना की सामग्री उपलब्ध हो तो आपको यथार्थ व्यक्ति जाना जा सकता है। बिना कोई आधार या प्रमाण दिये केवल नाम मात्र लेने से वंशावली बन नहीं जाती। हां, स्वेच्छावाद के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कृपाशङ्कर ने अपने गुरु कैवल्य योगी के आज्ञानुसार सुभद्र विश्वरूप को शृंगेरी मठधीष बनाया था। इस कल्पित कथा का प्रचार करने का कारण भी है। आचार्य शङ्कर का जन्म 508 क्रिस्त पूर्व का एवं निर्याण 476 क्रिस्तपूर्व का कांची मठ बतलाते हैं। यह किसी को ग्राह्य भी नहीं है। बुद्धदेव के कई शताब्दी पश्चात् आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ और बुद्धदेव का काल पांचवीं शताब्दी क्रिस्तपूर्व का माना जाता है। शृंगेरी प्रमाण ग्रंथों में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर का जन्म 14 विक्रमाब्द एवं निर्याण 46 विक्रमाब्द है तथा यहीं सुरेश्वराचार्य एवं अन्य आचार्यों का काल शालीशक में दिया गया है। इस वंशावली के आचार्यों का काल गणना करनेवाले व्यक्ति ने इन दोनों अब्दों का यथार्थ प्रारम्भिक काल न जानने से और अपने अभिप्राय पर आधारित विक्रमाब्द व शालीशक का समन्वय कर आचार्य शङ्कर का काल प्रथम शताब्दी होने का एवं सुरेश्वराचार्य को 700 वर्ष

जीवित होने की एक सूची बनायी थी। श्रृंगेरी मठ में जो विक्रमाब्द व शालीशक दिया है सो ठीक ही है पर अन्वेषण करने का विषय तो यह है कि श्रृंगेरी में उक्त विक्रमाब्द कौनसा है, इसके प्रवर्तक कौन थे, किस राजा के राज्य काल का यह संकेत करता है, इस समय कितने नामाब्द थे, कितने विक्रमाब्द थे, ये प्रत्येक विक्रम राज्य काल कब प्रारम्भ हुए और भारत वर्ष के अन्य भागों में कब प्रचलित हुए, आदि। श्रृंगेरी मठ का काल गणना करनेवाले व्यक्ति ने उज्जैनी या मालवा विक्रमाब्द लेकर अपना काल निर्णय किया था। चाहे जो हो, आचार्य शङ्कर का जन्म दक्षिणापथ राज्य के वातापि (बदामी) चालुक्य वंश के पुलकेशिन II के द्वितीय पुत्र विक्रमादित्य I के राज्यकाल में आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ। दूर दक्षिण का श्रृंगेरी उस समय इस चालुक्य वंशी विक्रमराज्य के अन्तर्गत या आपके राज्य सीमा पास रहा हो और श्रृंगेरी मठ का प्रमाण जो 'विक्रमाङ्क' कहता है सो चालुक्यवंशी विक्रम का ही संकेत करता है। इसके अनुसार शङ्कर का जन्म सातवीं शताब्दी अन्त का है। पूर्व में श्रृंगेरी वंशावली काल गणना करनेवाले व्यक्ति ने भूल से प्रथम शताब्दी कहा था। कोई यह न पूछे कि किस आधार पर आप शङ्कर का जन्म 508 क्रिस्तपूर्व का कहते हैं जब श्रृंगेरी वंशावली प्रथम शताब्दी कहता है, इसके उत्तर में कुम्भकोण मठ एक मिथ्या प्रचार प्रारम्भ किया कि कांची मठ के नौवां आचार्य ने विश्वरूप को भेजकर श्रृंगेरी मठ का अधीश बनाया और श्रृंगेरी मठ का प्रारम्भ काल यही था तथा कांची मठ का वृत्तान्त 600 साल पूर्व का ही था। इस दुष्प्रचार से क्या यह कहा जाय कि कांची के नौ आचार्यों तक के काल में श्रृंगेरी मठ ही न था या आचार्य ने मठ की स्थापना ही न की थी? आचार्य के शिष्य विश्वरूप (सुरेश्वराचार्य) इस बीच काल में कहां थे और क्या करते थे? एक मिथ्या की पुष्टी दूसरी मिथ्या से की जाती है। जब यह प्रश्न पूछा गया तो उत्तर मिला कि दो विश्वरूपाचार्य थे—प्रथम विश्वरूपाचार्य ब्रह्मा के अवतार थे और दूसरी विश्वरूप यम के अवतार थे जिन्हें प्रथम शताब्दी में श्रृंगेरी भेजा गया था। यह सब उन्मत्त प्रलाप है। इस पर विमर्श अन्यत्र पायेंगे। श्रृंगेरी वंशावली आचार्यों का कालगणना करनेवाले व्यक्ति की भूल गणना काल के साथ अपनी कल्पित वंशावली में कल्पित काल की पुष्टी के लिये यह मिथ्या कथा का प्रचार किया जा रहा है। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में लिखते है—'But neither (Kanchi and Sringeri) Calender can be relied on as to the dates at this period.' श्रीतेलङ्ग, श्रीतिलक, श्रीराजेन्द्रनाथघोष आदियों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल सातवीं शताब्दी अन्त का ही है। श्रृंगेरी ने अपनी वंशावली में अनामधेय गोत्र व कल्पित नामों को जोडकर इस 700 वर्ष का बंटवारा की नहीं है पर कालगणना चाहे वह भूल हो या ठीक हो इस काल को सुरेश्वराचार्य के लिये रख दिया गया था। कुम्भकोण मठ ने पांचवी शताब्दी क्रिस्त पूर्व से 1704 ई० तक का 2200 वर्ष को अन्यत्र उपलब्ध कुछ नामों को लेकर जिनका सम्बन्ध मठ के साथ न था, कुछ कल्पित नाम, कुछ अन्य मठों के मठाधीश आदि ऐसे 60 नाम लेकर इस 2200 वर्ष का बंटवारा करते हुए एक वंशावली तैय्यार की है जिसका विवरण इस अध्याय में पायेंगे।

10—15. सुरेश्वर, चित्घन, चन्द्रशेखर, सचित्घन, विद्याघन, गंगाधर—(69—329 ई०) कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि पांच बार आचार्य का अवतार हुआ था और जैसे प्रथम शङ्कर के मुख्य शिष्य गौड ब्राह्मण व उत्तर भारत के थे उसी प्रकार अन्य चार शङ्कर को भी मुख्य शिष्य उत्तर भारत के व्यक्तियों का नाम चुना गया है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि महाराष्ट्र ब्राह्मण महेश्वर को सुरेश्वर का नाम देकर मठाधीश बनाया गया है। केवल नाम देने मात्र से वंशावली प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है। आचार्य 11 से 15 तक का जीवन चरित्र न देने से इन आचार्यों के जीवन चरित्र पर अन्वेषण करने की सामग्री कोई नहीं मिलती। कब, किससे और कहां पर इन आचार्यों को दीक्षा दी गयी थी और कब व कहां से ये आचार्य पीठाभिषिक्त हुए और उत्तर भारत के किस वर्ग ने

आपको कांची मठाधीश होने का स्वीकार किया था, इन सब विषयों पर अन्वेषण किया जाय तो मालूम होता है कि यह सब नाम कल्पित हैं। ग्यारहवां आचार्य चिद्घन को कहा जाता है कि आप शिवाद्वैत के पक्षपाती थे। पर शिवाद्वैत मत कश्मीर में आठवीं शताब्दी के बाद प्रचार हुआ था। लकुलीश का पाशुपत मत के घोर प्रचार के प्रतिक्रिया रूप में शिवाद्वैत मत का प्रचार हुआ था। कुम्भकोण मठ का कथन है कि चिद्घन का काल 127—172 ई० है और इस काल में शिवाद्वैत मत का प्रचार न था।

16—19. उज्ज्वल शङ्कर—(329—367 ई०) कहा जाता है कि आप आचार्य शङ्कर के तीसरा अवतार थे। आपसे राजा कुलशेखर को कवित्त्व शक्ति प्राप्त हुई थी। आचार्य शङ्कर की चरित्र घटना को आपके चरित्र में जोड लिया गया है। आप अपने दिग्विजय यात्रा में भारत का भ्रमण करते हुए कश्मीर जाने की कथा सुनाते हैं। आपका निर्याण कश्मीर के कलापुरी में होने का उल्लेख है। इस विषय पर जांच करने के लिये और कश्मीर इतिहास व स्थल पुराण व कथा की जांच के लिये मैं ने पन्डित प्रवर म. म. डा० शिवनाथ शर्मा जी, श्रीनगर, को लिखा था। आपका उत्तर मिला कि यह कथा असत्य है और कश्मीर में कहीं भी कांची मठाधीश की समाधि नहीं है। कोई भी प्रामाणिक या अप्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थ या वृद्ध परम्परा जन श्रुति आचार्य शङ्कर के पांचबार अवतार कथा का समर्थन नहीं करता। आपके शिष्य कश्मीर ब्राह्मण मंत्री का पुत्र गौडसदाशिव 17 वां आचार्य (367–375 ई०) थे। आपको अपने बाल्यावस्था में आपके पिता द्वारा नदी में फेंकना, आपकी रक्षा, अन्य से पालन पोषण व कृपाशङ्कर से सन्यास-आश्रम लेना, यह सब कथा बृहतकथा मंजरी से किसी अन्य व्यक्ति के चरित्र से लेकर अपनी वंशावली में जोड लिया है। डा० शिवनाथ शर्मा जी लिखते हैं कि यह सब कथा कश्मीर में प्रचलित नहीं है और कश्मीर इतिहास या चरित्र के साथ कांची मठ का सम्बन्ध कुछ न था और न है। कुम्भकोण मठ कथा सुनाते हैं कि 18 वां आचार्य सुरेन्द्र (375–385 ई०) कश्मीर महाराजा नरेन्द्रादित्य के भ्रातृज सुरेन्द्र के दरबार में चार्वाकों को वाद में परास्त किया था और आपको राजसिंहासन में भी बैठाया गया था। कश्मीर इतिहास सिद्ध करता है कि कश्मीर महाराजा नरेन्द्रादित्य I का काल पांचवां छठवां शताब्दी था और प्राचीन काल का उपलब्ध सिक्का से इस विषय की पुष्टी होती है। मि. स्टीन द्वारा अनुवादित राजतरङ्गिणी (I-65) में राजा का उल्लेख है पर कांचीमठ या सुरेन्द्रयोगी या कांची मठ की कथा का गंध भी नहीं पाया। कश्मीर के प्रकान्ड विद्वान डा० शिवनाथ शर्मीजी ने भी कश्मीर में उपलब्ध पुस्तकों की छानबीन कर देखा और कांची मठ का स्वकल्पित कथा असत्य निकला। राजतरङ्गिणी का नाम लेने से (जो कथा इस पुस्तक में वर्णित नहीं है) सम्भवतः पामरजन आपके कथा को मान लें पर अनुसन्धान विद्यार्थी या विद्वान इसे न मानेगें जब तक प्रमाण द्वारा सिद्ध न किया जाय। आपके 19 वां आचार्य विद्याघन II उर्फ मार्तान्ड उर्फ सूर्यदास (385–398 ई०) का चरित्र विवरण नहीं दिया गया है केवल कहा गया है कि आप श्वेतकुष्ठ से पीडित थे और सूर्यभगवान की आशीष से अच्छे होगये और आपका निर्याणस्थल गोदावरी नदी तट कहा जाता है। कथा पुस्तकों से नाम व घटना लेकर एक कल्पित सूची बना लेना सुविधा है। जब तक अन्दर बाह्य प्रमाणों से कुम्भकोण मठ कथनों की पुष्टी न हो तब तक आपके कथनों में विश्वास करलेना मूर्खता होगी चूंकि आपका प्रचार न केवल भ्रामक हैं पर मिथ्या भी हैं। आपके आचार्य 15, 17, 18 व 19 सब अल्प आयु में निर्याण भये और आपके पूर्वाचार्यों को दीर्घ आयु होने का दिखाया गया है। अन्यत्र प्राप्त नामों की एक कल्पित सूची के साथ काल का समन्वय एवं बंटवारा करने के लिये ऐसा किया गया है। कब सन्यासाश्रम ग्रहण किये, कब और कहां पीठाभिषिक्त हुए, क्या ब्रह्मचारी थे या गृहस्थ, किस वर्ग ने आपको 'कामकोटि पीठाधीश' होने का स्वीकार किया था, इन सब प्रश्नों का उत्तर मिलता नहीं है। इसमें क्या मर्म है?

20. शङ्कर-IV-(398-437 ई०) आपका तीन उर्फ नाम था—अर्भक शङ्कर, मूकशङ्कर एवं शङ्करेन्द्र। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आप जन्म से मूक थे और कुम्भकोण मठाधीश श्री विद्याघन के आशीर्वाद से वाचाल हो गये। कुम्भकोण मठ आपको आचार्य शङ्कर का चौथा अवतार मानते हैं। कुम्भकोण मठ प्रचार का सारांश दिया जाता है—मूकशङ्कर कश्मीर पहुंचे जहां मातृगुप्त एवं प्रवरसेन राज्य करते थे और आप दोनों ने आपकी सेवा की थी। मातृगुप्त के दर्प का दलन करने के लिये मूकशङ्कर ने एक घुडसाल के निरीक्षक तथा हस्तिपक को विद्या का प्रसाद प्रदान किया और दोनों ने क्रम से 'मणिप्रभा' एवं 'हयग्रीववध' दो नाटक लिखे। इन दोनों का नाम रामिल तथा मेण्ठ था। मूकशङ्कर ने कश्मीर राजा से कहकर हिमालय में 'सुषमा' नामक पथ बनवाया। मातृगुप्त जब राज्य छोड काशी चले तो मूकशङ्कर भी साथ गये और वहां आपको सन्यासाश्रम देकर 21 वां आचार्य काशी में बनाया। मूकशङ्कर ने कामाक्षी की स्तुति में 'मूकपञ्चशती' लिखी है और आपका 'शङ्करविजय' भी प्रधान ग्रन्थ है। उक्त कुम्भकोण मठ प्रचार में आपके मठ विषयक प्रचार में कितनी मात्रा की सत्यता है सो पाठकगण नीचे पायेंगे।

कांची कामाक्षी की स्तुति जो पञ्चशति के रचयिता मूक कवि ने गायी है वह हृदयग्राहणी, स्निग्ध, रसनय तथा आनन्द का स्रोत है। ऐसे कवि को कांची मठ के आचार्य सूची में न मिला लेना कुम्भकोण मठ के लिये मूर्खता होगी क्यों कि आपका उद्देश्य कांची मठ को 'जगत् विख्यात् भारत का शिरोमणि मुखिया मठ' बनाना था। रचयिता अपने ग्रंथ में अपने को 'मूककवि' स्पष्ठ कहा है पर कांची मठवालों ने आपको 'मूकशङ्करेन्द्र सरस्वती' बना डाला है। वृद्ध परम्परा जनश्रुति एवं वृद्ध विज्ञों का विश्वास है कि मूककवि कांची मन्दिर के सेवक थे और आपने अपनी देवी उपासना से कामाक्षी देवी से कवि बनने का वर प्राप्त किया था। आपका काल सोलहवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है। कमाक्षी की कृपा से मूक वाचाल हुए पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आप कुम्भकोण मठाधीष विद्याघन के आशीष से वाचाल भये। 'कामाक्षी विलास' एक प्राचीन पुस्तक है जिसमें मूकशङ्कर का उल्लेख है। 'श्रीमूक महाकवि प्रणीता-श्रीमूकपञ्चशति' जो कामकोटि कोशस्थान, कुम्भकोणम, 1944 ई० में प्रकाशित है और जिसमें वर्तमान कुम्भकोण मठाधीषजी का श्रीमुख भी प्रकाशित है, इस पुस्तक की प्रस्तावना कुम्भकोण मठ के परमभक्त प्रचारक श्री के. बालसुब्रह्मणिय अय्यरजी, अडवोकेट, मदरास, ने लिखी है। आप लिखते हैं मूक कहने से गूंगा अर्थ है और रचयिता का गूंगापन कामाक्षी देवी के आशीष से रचयिता के मुख में जो ताला लगा था सो खुलकर अपने मुख से कवितागान मधुप्रवाह समान स्रोत होने लगा और आपकी कवनशक्ति देवी की आशीष से प्राप्त हुई और आप इसीलिये मूककवि के नाम से प्रसिद्ध भये। आपका गूंगापन इस पंचशति में जगह जगह संकेतित है। आर्य शतक एवं स्तुति शतक में आपके गूंगापन का बोध होता है और रचयिता स्वयं कहते हैं कि देवी की आशीष व कृपा से आप वाचाल भये। कुम्भकोण मठ के इस कथन से सिद्ध होता है कि आपका पूर्व प्रचार जो कुम्भकोण मठाधीष विद्याघन के आशीष से वाचाल भये और कविता कवन शक्ति प्राप्त की सो मिथ्या ठहरता है। श्रीमूक को महाकवि कहा गया है न कि कांची मठाधीष जगद्गुरु शङ्कराचार्य। काल प्रवाह के साथ अपनी कल्पित प्रचार भी परिवर्तन होता है।

यह निश्चित है कि आपने कोई शङ्करविजय ग्रंथ रचा नहीं है परन्तु कुम्भकोण मठ के आत्मबोध ने कुछ श्लोकों को उद्धृत कर कहा है कि यह मूकशङ्कर विजय से लिया गया है। पाठकगण इसके पूर्व द्वितीय खंड के प्रथम अध्याय में पढ चुके होंगे कि आत्मबोध से उद्धृत अधिकांश पंक्तियां व श्लोक या तो अनुपलब्ध अश्रुतम् अज्ञातम पुस्तक से लिये गये हैं या उपलब्ध पुस्तक में उद्धरण मिलते ही नहीं हैं और आपका उद्धरण सब निराधार एवं प्रमाणा-भास हैं। आत्मबोध के नाम से जो नाटक रचा जा रहा है उसकी पोल अब खुल गयी है। कुम्भकोण मठ प्रचार

पुस्तक में रचयिता लिखते हैं कि मूकशङ्करविजय पुस्तक उपलब्ध नहीं है पर आत्मबोध उद्धृत करते हैं —'**The latter is not procurable, but Atma-bodha quotes extensively from it.**' कुम्भकोण मठ कथनानुसार जब यह पुस्तक आत्मबोध को 17/18 वीं शताब्दी में उपलब्ध था तो अब कैसे इस 200 साल में वह पुस्तक गुम हो गयी? कुछ श्लोकों की रचना कर और उसे अनुपलब्ध, अश्रुत, अज्ञात पुस्तकों का नाम देकर प्रमाणाभास रूप में प्रचार करना कुम्भकोण मठ का स्वभाव हो गया है। कुम्भकोण मठ का यह जो नाटक अब रचा जा रहा है इसका कार्यक्रम सूची एवं प्रचार सामग्री सब 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में तैय्यार होकर बाद 19 वीं शताब्दी में इस प्रचार का विय्या बोकर अब इस 20 वीं शताब्दी में इस विषैली वृक्ष को उगा रहे हैं। पञ्चशती के रचयिता मूक कवि का सम्बन्ध कांची मठ से नहीं है और इस कवि ने कहीं भी अपने को मठाधीष होने का विषय भी उल्लेख नहीं किया है। इनका जन्मवृत्तान्त, कुलवृत्तान्त, उपदेश गुरु, कब और कहां सन्यासाश्रम लिया था, पीठाभिषिक्त कब हुए, इन सब विषयों का विवरण दिया नहीं गया है। क्या मूककवि बाल्यावस्था में ब्रह्मचारि आश्रम से सन्यास लिया था?

राजतरङ्गिणी (III-260—262) में केवल यह उल्लेख है कि मातृगुप्त ने मेन्थ (मेण्ठ) की प्रशंसा की क्योंकि इस कवि ने 'हयग्रीववध' नाटक रचा था। राजतरङ्गिणी में यह उल्लेख नहीं है कि मूकशङ्कर के आशीर्वाद एवं आपकी सहायता से 'हयग्रीववध' नाटक रचना की गयी थी और यह कार्य मूकशङ्कर ने मातृगुप्त के दर्प की दलन करने के लिये किया था। यह कल्पित कथा कुम्भकोण मठवालों ने राजतरङ्गिणी कथा के साथ जोड ली है। अपने कल्पित कथा को जोडकर राजतरङ्गिणी का नाम प्रमाण में प्रचार करना भ्रामक एवं झूठ है। राजतरङ्गिणी की तीसरी तरङ्ग का 106 से 323 श्लोक तक छानबीन कर पढा गया और कहीं भी मूकशङ्कर या कांची मठ या कांची मठाधीष का नामो निशान नहीं है। राजतरङ्गिणी में धुडसाल का निरीक्षक तथा हस्तिपक का नाम भी नहीं है। इस राजतरङ्गिणी के तीसरा तरङ्ग में एक जगह 'अश्वपादसिद्ध' पद का उपयोग किया गया है। पूर्वापर संदर्भ के साथ इस पद का अर्थ किया जाय तो इस पद का अर्थ 'धुडसाल का निरीक्षक' नहीं होता है। यह कुम्भकोण मठ की कल्पना है। राजतरङ्गिणी कहता है यह अश्वपाद सिद्ध ने मातृगुप्त को कहा कि मातृगुप्त को परमेश्वर दर्शन देकर उसकी अभिलाषा पूर्ण करेंगे। ऐसा कहकर श्रीअश्वपादसिद्ध अन्तरधान हो गये। ऐसे सिद्ध पुरुष कैसे धुडसाल निरीक्षक हो सकते हैं! राजतरङ्गिणी में मातृगुप्त का वर्णन करते समय लिखा है कि मातृगुप्त परमेश्वर शम्भु को देखकर स्तुति करने लगे और मातृगुप्त ने परमेश्वर को तीन लोक के 'जगद्गुरु' कहा है क्योंकि आप जगत के ईश्वर हैं। इस स्तुति से शम्भु परमेश्वर ने मातृगुप्त को दर्शन दिया और आज्ञा दी कि 'तुम सन्यासाश्रम ग्रहण करो।' राजतरङ्गिणी के 274 श्लोक में 'जगद्गुरु' पद देकर एवं इसके आगे 'सन्यासाश्रम ग्रहण करो' देखकर कुम्भकोण मठ ने कल्पना कर ली कि मातृगुप्त ने कांची मठाधीष मूकशङ्कर को ही 'जगद्गुरु' पद से संबोधित किया है। पर राजतरङ्गिणी मूल श्लोक में स्पष्ट उल्लेख है 'शिवशंभु' और 'जगद्गुरु' पद जो मूकशङ्कर को लागू हो नहीं सकता है। मातृगुप्त ने परमेश्वर शिवशम्भु की स्तुति की है न कि नर मूकशङ्कर को जिनका नामो निशान राजतरङ्गिणी में नहीं है। यदि कांची मठ का कथन सत्य है तो प्रश्न उठता है कि कल्हण ने आपसे रचित राजतरङ्गिणी में क्यों नहीं मूकशङ्कर का नाम लिया है या कांची मठ या कांची मठाधीष का। अनुसन्धान विद्वानों ने अपने लेखों व विमर्शों में उल्लेख किया है कि 'हयग्रीववध नाटक' कहीं उपलब्ध नहीं होता। कवि मेन्था या मेण्ठ का काल ठीक निर्धारित नहीं हुआ है। ऐसे अनुपलब्ध नाटक से कुम्भकोण मठ के आत्मबोध ने कुछ श्लोक उद्धृत कर लिखा है कि यह श्लोक 'हयग्रीववध' नाटक से लिया गया है। 17 वीं शताब्दी के आत्मबोध को उपलब्ध पुस्तक अब कैसे 200 साल में अनुपलब्ध होगया?

चूंकि राजतरङ्गिणि में 'हयग्रीववध नाटक' का नाम लिया है इसलिये यह नाटक मातृगुप्त काल में रहा होगा। श्रीक्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में एवं राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में इस नाटक का निर्देश करते हैं। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में लिखा है कि ऐसे ग्रंथ अब सब लोप होगये हैं—'These interesting works are practically lost to us.'

यह कहा जाता है कि 'हयग्रीववध नाटक' में एक श्लोक है जहां यह कहा गया है कि शङ्करेन्द्र के आशीष से मेण्ठ या मेन्था ने विद्याप्राप्तकर 'हयग्रीववध' की रचना की थी और यह नाटक दर्प मातृगुप्त की अपेक्षा सर्वसाधारण व विद्वों से प्रशंसा की गयी थी। यदि मान लें कि यह श्लोक हयग्रीववध से लिया गया है तो इससे कांचीमठ प्रचारों की पुष्टी नहीं होती। इस श्लोक में 'शङ्करेन्द्र' एवं 'परकवितामर्षिणो मातृगुप्तान्' पदों को देखकर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि 'शङ्करेन्द्र' पद कांची मठाधीश मूकशङ्कर को ही संकेत करता है। पर कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में उर्फ नाम यों हैं—अर्भक शङ्कर, शङ्कर IV, शङ्करेन्द्र, मूकशङ्कर। ये सब नाम आपसे निर्देषित प्रमाण पुस्तकों में भिन्न भिन्न नाम होने से इन सब नामों को संग्रह कर परनाम होमे की कथा प्रचार करते हुए उन पुस्तकों को प्रमाण में दिखाते हैं। पञ्चशती का रचयिता 'मूक कवि' थे और इस नाम को लेकर 'मूकशङ्कर' बना डाला, आद्यशङ्कर का चौथा अवतार होने की जो कल्पित कथा कुम्भकोण मठ सुनाते हैं इसलिये आप 'शङ्कर IV' पुकारे जाते हैं, बच्चे को नदी में फेंकना एवं रक्षा करना व सन्यासाश्रम देना आदि कथा एक छोटे बालक का होने से 'अर्भक' नाम जोड लिया गया है और अब 'हयग्रीववध' का शङ्करेन्द्र जोड लिया गया है। क्या प्रमाण है कि मूककवि 'पञ्चशती' रचयिता ही काश्मीर के शङ्करेन्द्र थे या क्या प्रमाण है कि काश्मीर का शङ्करेन्द्र ही काञ्ची मठाधीश थे? कल्हण ने राजतरङ्गिणी में क्यों मूकशङ्कर या काञ्ची मठ या काञ्ची मठाधीश या काञ्ची कामाक्षी का उल्लेख नहीं किया है? कुम्भकोण मठ का स्वेच्छावाद को छोड कोई प्रमाण इनके प्रचारों का समर्थन नहीं करता। म. म. डा० शिवनाथ शर्मा जी, श्रीनगर, से लिखते हैं कि 'शङ्करेन्द्र' पद का कोई सम्वन्ध कांची मठ से नहीं है और यह कुम्भकोण मठ की कल्पना है। इसीप्रकार 'परकवितामर्षिणो' पद को देखकर कुम्भकोण मठ ने कल्पना कर ली कि मातृगुप्त के दर्प को दलन करने के लिये मूकशङ्कर ने मेण्ठा से 'हयग्रीववध' नाटक की रचना करवायी थी। यदि कुम्भकोण मठ की कथा सत्य है तो कल्हण ने क्यों इस विषय को भी उल्लेख नहीं किया?

रमिला रचित मणिप्रभा पुस्तक का नाम कुम्भकोण मठ लेते हैं पर रमिला का मणिप्रभा न किसी ने सुना है या न देखा है। पुस्तकालयों के सूची पत्रों में इसका गंध भी पाया नहीं जाता। पर कुम्भकोण मठ के आत्मबोध ने इस कहेजानेवाले नाटक की प्रस्तावना से कुछ पंक्तियां व श्लोक उद्धरण किया है। आत्मबोध द्वारा उद्धरित अधिकांश श्लोक व पंक्तियां सब अनजान, अज्ञात, अनुपलब्ध पुस्तकों से लिये गये हैं और जो पुस्तकें उपलब्ध हैं उनमें आपका उद्धरण पाया नहीं जाता। रमिला को घुडसाल निरीक्षक कहा गया है और राजतरङ्गिणी को प्रमाण में उल्लेख करते हैं। पर राजतरङ्गिणी में न घुडसाल निरीक्षक का वर्णन है या न रमिला का मणिप्रभा। राजतरङ्गिणी के 'अश्वपाद' पद को लेकर पूर्वापर सम्बन्ध व संदर्भ का ख्याल न कर, राजतरङ्गिणी में दिये हुए कथा संदर्भ के साथ अपनी कल्पित कथा के सम्बन्ध का ख्याल न कर, राजतरङ्गिणी में दिये कथा संदर्भ के साथ अपनी कल्पित कथा जोडकर प्रचार करने से प्रमाण नहीं हो सकता है। राजतरङ्गिणी यदि मेण्ठ कवि का नाम लिया है तो क्यों नहीं रमिला का नाम नहीं लिया है? मार्के की बात है कि आत्मबोध का उद्धरण कहेजानेवाले मूलनाटक 'मणिप्रभा' से नहीं है पर नाटक के प्रस्तावना से किया गया है। मणिप्रभा नाटक मूल जहां नाटक पात्रों का वार्तालाप व उनके द्वारा कथा कही जाती है वहां से उद्धरण न करने से ही सिद्ध होता है कि किसी ने यह नाटक देखा नहीं है। सूत्रधार व नटी का संभाषण जो

प्रस्तावना है सो कल्पना कर स्वयं रच भी सकते हैं और यहां आत्मबोध ने इसी कार्य को किया है। मूक, अर्भक, शङ्करेन्द्र, जगद्गुरु आदि पदों को भिन्न स्थलों के भिन्न पुस्तकों से लेकर और इन पदों को कांची मठाधीष के साथ सम्बन्ध जोडने के लिये एवं मठ के कल्पित आचार्यों का नाम भी देकर तथा कांची को सर्वज्ञपीठ होने का प्रचार कर एक कल्पित श्लोक रचना कर प्रमाण में प्रचार किया गया कि यह श्लोक 'मणिप्रभा' नाटक की प्रस्तावना से ली गयी है। पाठकगण इस एक उद्धृत श्लोक को पढें तो जान जायेंगे कि यह कल्पित श्लोक को एक ही ध्येय से रचना की गयी है कि कांची मठ प्रचारों की पुष्टी हो—'सूत्रः मूकार्भोऽपि जगद्गुरोः करुणया विद्याघनस्याप्तवागाचार्योऽस्ति हि शङ्करेन्द्र विरुदः सर्वज्ञपीठाधिपः। अर्चाकिंकर मातृगुप्त कवितागर्वस्य निर्वासना याथायोऽश्वपनागपावपि कवी रामिल्लमेदू क्षणात्।' जो कथा राजतरङ्गिणी समर्थन नही करती उस कथा की पुष्टी में 'मणिप्रभा' नाटक की प्रस्तावना को प्रमाण में दिखाते हैं। क्या उक्त नाटक की पूरी प्रस्तावना प्राप्त होती है? प्रचारार्थं स्वख्याती में एक श्लोक मात्र होने से यही कहा जायगा कि यह श्लोक स्वरचित कल्पित है चूंकि इस श्लोक में दिये हुए विषय सब अन्य ग्राह्य प्रमाण पुस्तकों के विरुद्ध हैं। यदि एक क्षण मान भी लें कि उद्धृत श्लोक यथार्थ श्लोक है न कि कल्पित तो भी कुम्भकोण मठ प्रचारों की पुष्टी नहीं होती। अनेक दृढ प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि काश्मीर में सर्वज्ञपीठ है और आचार्य शङ्कर ने वहीं सर्वज्ञपीठारोहण किया था न कि कांची में। उपर्युक्त श्लोक में 'सर्वज्ञपीठाधिपः' का अर्थ कांची कैसे कहा जा सकता है? संभवतः शङ्करेन्द्र काश्मीर के सर्वज्ञपीठ का आचार्य रहे हों और यह कश्मीर के शङ्करेन्द्र का क्या सम्बन्ध है कांची के मूक शङ्कर से।

कुम्भकोण मठ और एक 'अश्रुतम्, अदृष्टम्, अज्ञातम्' पुस्तक 'हरिमिश्रीय' का नाम लेते हैं और कहते हैं कि शङ्करेन्द्र ने राजा प्रवरसेना की सहायता प्राप्त कर हिमालय सीमा में 'सुषमा' नामक दर्रा बनवाया। शङ्करेन्द्र और आपका कश्मीर में रहने का प्रमाण अथवा इस विषय पर अन्वेषण करने की आवश्यकता नहीं है पर प्रश्न है कि किन प्रमाणों के आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि उक्त कश्मीर के शङ्करेन्द्र ही कांची मठाधीष मूकशङ्कर थे? शङ्करेन्द्र का सम्बन्ध कांची से कुछ भी नहीं था।

कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि मातृगुप्त एवं प्रवरसेन राजाओं ने मूकशङ्कर के प्रति आदर सत्कार दिखा कर आपकी पूजा की थी। राजतरङ्गिणी के तृतीय तरङ्ग में जहां करीब 250 श्लोक मातृगुप्त का चरित्र वर्णन करता है वहां कांची मठ या कांची मठाधीश या कामकोटि पीठ या मठ का नामों निशान नहीं है। जिस कल्हण ने मातृगुप्त चरित्र वर्णन विस्तार पूर्वक 250 श्लोकों में की है क्या आप भूल गये या द्वेष रखते थे कि कांची के मूकशङ्कर या कांची मठाधीश शङ्करेन्द्र का भी उल्लेख नहीं किया था? यदि मूकशङ्कर काश्मीर आते या मातृगुप्त से मिलते तो अवश्य कल्हण उल्लेख करते। तोरमान का पुत्र प्रवरसेन काश्मीर राजा था। आपकी अनुपस्थिति में उज्जैनी विक्रमादित्य से भेजा हुआ मातृगुप्त को विक्रमादित्य के आदेश पर कश्मीर का राजा बनाया गया था। विक्रमादित्य के मरण पश्चात् एवं प्रवरसेन के लौटने पर मातृगुप्त ने राज्यशासनाधिकार प्रवरसेन को लौटा दिया और स्वयं वाराणसी चले गये और वहीं सन्यासाश्रम धारण किया था। यह कथा राजतरङ्गिणी में है। **Stein** द्वारा आङ्गल भाषा अनुवादित राजतरङ्गिणी में आपने अपना अभिप्राय दिया है कि यह राजा तोरमान वही व्यक्ति है जिसे पूर्व में प्रख्यात हूण आक्रमणकारी तोरमान कहा जाता था और आपका काल 490—510 ई० का था। आपका पुत्र मिहिराकुल हूण का काल 510-540 ई० का है। कुम्भकोण मठ से मूकशङ्कर का काल 398-437 ई० का दिया है। प्रश्न उठता है कि कांची के मूकशङ्कर जिनका निर्याण 437 ई० में हुआ था आप कैसे 490 ई० के तोरमान से मिल सकते थे। कल्हण राजतरङ्गिणी में

दिया काल भी कांची मठ से दिया काल के साथ मिलता नहीं है। राजतरङ्गिणी तीसरा तरङ्ग का 105/107 श्लोक में कहा है कि प्रवरसेन का जीवन एक कुम्हार के घर में बीता था। कल्हण के अनुसार मातृगुप्त का काल विक्रमादित्य प्रथम शताब्दी था। Stein ने हुवन-त्वाङ्ग और माक्समुलर के कथनों पर आधारित कर छठवीं शताब्दी कहा है। कुछ ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि विक्रमादित्य जिसने पत्रदेकर मातृगुप्त को कश्मीर भेजा था वह विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त II थे और आपका काल 375—413 ई० का है। विक्रमादित्य का समय कल्हण के अनुसार प्रथम शताब्दी, स्मित् के अनुसार चौथी व पांचवी शताब्दी एवं Stein के अनुसार छठवीं शताब्दी का है। 398—437 ई० के मूकशङ्कर व्यक्ति कश्मीर के मातृगुप्त से पहिली, चौथी, छठवीं शताब्दी में कैसे मिल सकते हैं? यदि कुम्भकोण मठ का प्रचार भी मान लें कि कांची के मूकशङ्कर कश्मीर के मातृगुप्त से कश्मीर में 408—413 ई० के बीच काल में मिले थे तो और एक सन्देह भी उठता है। विक्रमादित्य के मरण पश्चात् मातृगुप्त राज्य छोड चले और स्मित् के अभिप्राय में विक्रमादित्य का मरण काल 413 ई० का था। अर्थात् मातृगुप्त का राज्यशासन काल 408 से 413 ई० का था। प्रवरसेन 413 ई० में काश्मीर पहुंचते हैं और आपके आगमन पश्चात् मातृगुप्त राज्यशासन छोड काशी के लिये रवाना होते हैं। स्मित ने चन्द्रगुप्त II विक्रमादित्य का मरण काल 413 ई० का उल्लेख किया है। राजतरङ्गिणी में (तीसरा तरङ्ग) कल्हण ने स्पष्ठ उल्लेख किया है कि मातृगुप्त काशी में केवल दस साल जीवित थे और आपने वहां सन्यासाश्रम धारण किया था। अर्थात् 413 ई० में मातृगुप्त कश्मीर छोड चले और 423 ई० में आपका देहान्त काशी में हुआ। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि मातृगुप्त ही मूकशङ्कर के शिष्य बने और मूकशङ्कर के निर्याण (437 ई०) पश्चात् आप कांची मठाधीष भये। इतिहास द्वारा सिद्ध होता है कि मातृगुप्त का मरण काल 423 ई० का था और यही व्यक्ति किस प्रकार 437 ई० में कांची मठाधीष बन सकते हैं? सम्भवतः कुम्भकोण मठ अब यह भी प्रचार कर सकते हैं कि राजतरङ्गिणी का कथन है कि मातुगुप्त दस वर्ष जीवित रहे सो भूल है। परन्तु कुम्भकोण मठ उसी राजतरङ्गिणी के आधार पर अपनी कल्पित कथा की पुष्टी भी करते हैं। यदि स्मित् का कथन मान लें कि विक्रमादित्य का मरण काल 413 ई० का था तो यह मातृगुप्त राजतरङ्गिणी के अनुसार सन्यासाश्रम लेकर कांची मठाधीष बन नहीं सकते।

21. चन्द्रशेखर I—(437-447 ई०) आपका उर्फ नाम सार्वभौम, मातृगुप्त, चन्द्रचूड I आदि नाम भिन्न सूत्रीयों में भिन्न भिन्न नाम दिया जाता है। कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि इतिहास प्रसिद्ध मातृगुप्त ने कांची मठाधीश मूक शङ्कर से काशी में सन्यासाश्रम लेकर कांची मठाधीश भये और इसका प्रमाण राजतरङ्गिणी का नाम लेते हैं। राजतरङ्गिणी तृतीय तरङ्ग का 106 से 323 श्लोक तक मातृगुप्त का चरित्र वर्णन है। पाठकगणों की जानकारी के लिये संक्षेप में राजतरङ्गिणी में वर्णित मातृगुप्त का चरित्र यहां दिया जाता है। मातृगुप्त ने राजा विक्रमादित्य की सेवा में कुछ वर्ष बिताया। अपनी सेवा से राजा विक्रमादित्य को प्रसन्न किया। विक्रमादित्य इस सेवक के बुद्धिचातुर्यता, कल्पना कविता शक्ति एवं सेवा भक्ति से प्रसन्न होकर एक गुप्त पत्र लिखकर इसको दिया और कहा कि इस पत्र को कश्मीर मंत्री के पास पहुंचा दे। मातृगुप्त कश्मीर पहुंचकर इस पत्र को मंत्री के पास दिया। काश्मीर राज्य विक्रमादित्य के शासनाधीन में था। मातृगुप्त उस कश्मीर सीमा का राजा बनाया गया। पांच वर्ष राज्यशासन करने के बाद मातृगुप्त का पूर्व मालिक राजा विक्रमादित्य का देहान्त हुआ और इसी समय प्रवरसेना भी यात्रा संपूर्ण कर राज्य को लौट आया। मातृगुप्त ने प्रवरसेना को राज्यनिर्वाह कार्य सौंप कर आप कश्मीर राज्य छोड काशी पहुंचे। यहां काशी में सन्यासाश्रम लिया। प्रवरसेना ने प्रार्थना की कि मातृगुप्त राज्य छोड न जांये पर मातृगुप्त इसे स्वीकार न किया। तत्पश्चात् प्रवरसेना ने काशी निवासी मातृगुप्त को धन भेजा। मातृगुप्त अपने राज्यशासन काल में अधिकांश समय योग व तपस्या में बिताते थे और कभी कभी तपस्या में मगन हो जाते थे। शंभू महादेव की आराधना व स्तुति करते

हुए मातृगुप्त अपना जीवन समय विताते थे। इस घोर तपस्या समय एक सिद्ध व्यक्ति अश्वपाद सिद्ध ने मातृगुप्त से कहा कि परमेश्वर महादेव एक दिन दर्शन देकर मातृगुप्त की अभिलाषा को पूर्ण करेंगे। ऐसा कहकर यह सिद्ध पुरुष अन्तरध्यान हो गये। इस घटना के कुछ काल पश्चात मातृगुप्त की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर परमेश्वर दर्शन देकर आदेश किया कि मातृगुप्त इस अनित्य जगत का त्याग कर सन्यासाश्रम लेना उचित होगा। राजतरङ्गिणी तीसरा तरङ्ग का 320 श्लोक–'अथ वारणसीं गत्वा कृतकाषाय संग्रहः। सर्वं सन्यस्य सुकृती मातृगुप्तोऽभवद्यतिः'। मातृगुप्त ने काशी में सन्यासाश्रम धारण कर काशी में ही निर्याण भये। राजतरङ्गिणी में उल्लेख है कि मातृगुप्त के राज्यशासन छोड चले जाने के वाद काशी में आप दस वर्ष ही जीवित थे।

उपर्युक्त पारा में दिया हुआ मातृगुप्त का विवरण सब सत्य है जो सब राजतरङ्गिणी से लिया गया है। इस 250 श्लोक में न मूकशङ्कर या अर्भकशङ्कर या शङ्करेन्द्र का नाम उल्लेख है या न कांची मठ या मठाधीश का नाम दिया है अथवा यह भी नहीं कहा है कि मातृगुप्त का सन्यास नाम सार्वभौम उर्फ चन्द्रचूड उर्फ चन्द्रशेखर था या आपका योगपट्ट 'इन्द्रसरस्वती' था। राजतरङ्गिणी यह भी नहीं कहता कि मातृगुप्त के साथ मूकशङ्कर या शङ्करेन्द्र काशी पहुंचे और आपने सन्यास दीक्षा दी थी। कुम्भकोण मठ वालों ने देखा कि इतिहास में एक जगह एक प्रसिद्ध व्यक्ति का सन्यासाश्रम लेने की कथा है और इसे अपने वंशावली सूची में जोड ली। राजतरङ्गिणी की कथा में कुम्भकोण मठ ने अपनी कल्पित कथा जोड कर प्रचार करने लगे। कांची से बहुदूर स्थित काश्मीर का राजा मातृगुप्त था और आप कांची से बहुदूर स्थित काशी में सन्यासाश्रम लिया था। कुम्भकोण मठ के प्रचारानुसार 'सार्वभौम चन्द्रशेखर इन्द्र सरस्वती' नाम मातृगुप्त का था और ऐसे विख्यात व्यक्ति का नाम कल्हण ने राजतरङ्गिणी में क्यों नहीं उल्लेख किया? सम्भवतः इस त्रुटी के कारण कुम्भकोण मठवालों ने कल्हण को कांची मठाधीश न बनाये। राजतरङ्गिणी कथा के साथ मूकशङ्कर का नाम जोडकर प्रचार किया जा रहा है कि मूकशङ्कर ने मातृगुप्त को सन्यासाश्रम देकर शिष्य बनाया। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक से प्रतीत होता है कि मातृगुप्त ने 408 से 413 ई० तक राज्यशासन किया था और विक्रमादित्य का मरण काल 413 ई० का था। मूकशङ्कर का निर्याण 437 ई० का होना प्रचार किया जाता है। राजतरङ्गिणी के अनुसार मातृगुप्त सन्यासाश्रम पश्चात् काशी में 10 वर्ष जीवित थे अर्थात् आपका निर्याण काल 423 ई० का होता है। अतः मातृगुप्त 437 ई० में कांची मठाधीश भये कहना यह असत्य प्रचार है। सार्वभौम मातृगुप्त सन्यासाश्रम के पश्चात् एक दिन के लिये भी कांची न आये और न आपका पीठाभिषेक हुआ। अपने धर्मराज्यकेन्द्र (मठ) में पीठाभिषेक होना ही रूढी और परम्परा प्राप्त आचार है परन्तु त्रिशंकु लोक का स्वयंभू कांची मठ का मिथ्यावार संप्रदाय जो स्वेच्छावाद पर आधारित है उस कांची मठ की रूढी अन्य ही होती है। कश्मीर के विद्वान म. म. डा० शिवनाथ शर्मा जी अनेक प्राचीन ग्रन्थों व पुस्तकों की खोजखाज कर पश्चात् 3—10—1960 को लिखते हैं कि कांची मठ प्रचार की समर्थन सामग्री यहां उपलब्ध नहीं होती और मठ प्रचार असत्य है।

मातृगुप्त एक कवि था एवं कुछ वर्षों के लिये कश्मीर देश का राजा भी था। आपका काल प्रवरसेन का काल ही है अर्थात् लगभग 580 ई० का। आपका समसामयिक छठवीं शताब्दी का उज्जैयनी राजा विक्रमादित्य हर्ष था। मातृ का परनाम काली है और गुप्त का परनाम दास है और सम्भवतः मातृगुप्त ही कालिदास थे। इतिहास बताता है कि विक्रमादित्य ने कालिदास को अपना राज्य का एक भाग दिया था। मातृगुप्त को एक कवि कहा गया है और आप विक्रमादित्य प्राप्त एक गुप्त पत्र द्वारा कश्मीर का राज्यनिर्वाह आपको सौंपा गया तथा आप कुछ वर्षों के लिये राजा भी थे। राजतरङ्गिणी में अनेक विद्वानों, सिद्ध पुरुषों एवं कवियों का नाम उल्लेख हैं पर कालिदास का नाम नहीं

दिया गया है। सम्भवतः मातृगुप्त ही कालिदास थे इसलिये राजतरङ्गिणी में कालिदास का अलग उल्लेख नहीं है। कालिदास रचित पुस्तकों में कश्मीर का वर्णन है और आपसे दिया उदाहरण, उपमा, उपमेय एवं प्रकृति का वर्णन सब काश्मीर का ही है। मातृगुप्त अपना घर व पत्नी छोड बहुत दूर जा वास किये थे और वैसा ही कालिदास ने मेघदूत में घर और पत्नी छोडकर जानेवाले व्यक्ति की विरह वेदना का वर्णन अति रम्य में किया है। राजतरङ्गिणी तीसरा तरङ्ग का 252 श्लोक—'नाकारमउद्वहसी ... ... फलत एव तव प्रसादह।' को मेघदूत के 113 श्लोक से मिलायें तो यह प्रतीत होता है कि इन दोनों का तात्पर्य व भाव एक ही है। इन कारणों से अनुमान किया जाता है कि मातृगुप्त ही कालिदास हैं। श्री आर. सि. दत्त का भी अभिप्राय है कि मातृगुप्त ही कालिदास थे। काश्मीर का विद्वान मंख ने मातृगुप्त को सुबन्धु, भारवी, भाण के समसामयिक काल का बतलाया है। भारवी रचित 'किरातार्जुनीयम' का रचना काल लगभग 634 ई० का कहा जाता है। यदि पाठकगण मातृगुप्त को कालिदास होने का स्वीकार करें तो मातृगुप्त कांची मठाधीष नहीं हो सकते। कालिदास का काल आचार्य शङ्कर से पूर्वकाल का था और निस्सन्देह कह सकते हैं कि मातृगुप्त को कुम्भकोण मठ का 21 वां आचार्य होने की जो कथा सुनायी जाती है सो असत्य ठहरती है।

(22—24) परिपूर्णबोध, सचित्सुख, चित्सुख—(447—527 ई०) इन आचार्यों का चरित्र विवरण दिया नहीं गया है। निर्याणस्थल जगन्नाथ एवं रत्नागिरि समीप कहा गया है पर कहीं आपलोगों की समाधि दीखता नहीं है। न मालूम किस आधार पर कुम्भकोण मठ कहते हैं सचित्सुख ने आर्यभट्ट का प्रायश्चित कराया था?

(25) सच्चिदानन्दघन—(527—548 ई०) आपका उर्फ नाम सिद्धगुरु एवं चिदानन्दघन है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि आपका चरित्र वर्णन मेण्ट भट्ट से रचित 'सिद्धविजयमहाकाव्य' में है। मठ प्रचार पुस्तक में यह भी उल्लेख है कि यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है—'**not available at present.**' कुम्भकोण मठ से प्रचारित जहां कहीं चरित्र सामग्री उपलब्ध हैं उन पर अन्वेषण करना सरल है और ऐसी सामग्री सब छानबीन करने पर प्रमाणाभास ही निकली है। सिद्धविजय महाकाव्य पुस्तक अनुपलब्ध कहते हुए भी दो श्लोक मात्र उद्धृत कर प्रमाण में कहते हैं कि सच्चिदानन्दघन योगी व सिद्ध पुरुष थे और आप लिङ्ग रूप में बदल गये। इन दो श्लोकों में कांचीमठ या इस योगी को कांची मठाधीश होने का विषय नहीं है। यदि मान लें कि सच्चिदानन्द नाम का एक योगी था पर क्या प्रमाण है कि इस योगी का सम्बन्ध कांची मठ के साथ था? कथामंजरी में उपलब्ध नाम व कथा को लेकर अपनी मठ सूची में मिला लेने से प्रमाण नहीं होता। यहां ध्यान देने का विषय है कि आचार्य नं. 14 से 25 तक बारह आचार्य करीब 276 वर्ष (272—548 ई०) कांची केन्द्रमठ छोडकर उत्तर भारत में वास करते थे। उत्तर भारत में एक भी प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर यह कहा जाय कि कामकोटि मठ के आचार्य सब यथार्थ में उत्तर भारत में थे। न किसी की समाधि मिलती है, न किसी का उल्लेख किसी अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, न किसी का जीवन चरित्र उन उन स्थल माहात्म्य या लोक कथा द्वारा उपलब्ध होता है या न किसी का वृत्तान्त जनश्रुति द्वारा सुना जाता है। आश्चर्य तो यह है कि अपने मठ को 'जगतविख्यात भारत का शिरोमणी मुखिया मठ,' 'आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा', 'चार आम्नाय मठों का गुरु मठ' कह एवं 'सारे भारत वर्ष का परमाचार्य' कहनेवाले आचार्यों का नामो निशान भी उतर भारत में नहीं है। क्यों नहीं कांची मठ वैसा प्रसिद्ध है जैसा अन्य चार आम्नाय मठ हैं? वर्तमान आचार्य का बारह वर्ष से अधिक भारतवर्ष भ्रमण द्वारा, आपसे आधुनिक काल के प्रचार मार्ग का अवलम्बन द्वारा एवं मदरास व बम्बई नगर के कुछ दैनिक व साप्ताहिक व पक्ष पत्रों में प्रचारार्थ प्रचारों

द्वारा, अब कुछ लोग आपका नाम सुनने लगे। एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि 'ये सब आचार्य उत्तर भारत जाकर कामकोटिपीठाधिपति भये'। उत्तर भारत में कहां कामकोटि पीठ या मठ है? कहां कांची मठ का केन्द्र था? किस वर्ग ने उत्तर भारत में आपको कांची मठाधिपति होने का स्वीकार किया था? अन्य तीन आम्नाय मठों के मठाधीशों ने क्या आपको स्वीकार किया था? आपके मठ के 26 वां आचार्य से लेकर 12 या 13 आचार्य कांची में ही वास करने का प्रचार भी करते हैं। सम्भवतः लगातार 276 वर्ष उत्तर भारत भ्रमण व वास करते करते थक गये होंगे और अब दक्षिण भारत लौट चले। यदि दक्षिण कांची को न आते तो प्रश्न उठता कि आपका मठ हीं नहीं है और इसे छिपाने के लिये आचार्यों का कांचीवास वृत्तान्त भी बीच बीच में दिया गया है।

(26/30) प्रज्ञानघन, चिद्विलास, महादेव, पूर्णबोध, बोध—(548–655 ई०) कहा जाता है कि ये पांच आचार्य कांची में आराम व शान्ति का जीवन विताये। इनका जीवन विवरण प्रचार पुस्तकों में नहीं दिया गया है। चीनी यात्री हुवन-च्वाङ्ग 629 से 645 ई० तक भारत भ्रमण किया था और आप कांची भी आये। अपनी यात्रा विवरण पुस्तक में कांची के बारे में विस्तार पूर्वक लिखा है। कुम्भकोण मठ वंशावली की 30 वां आचार्य बोध I 618 ई० से 655 ई० तक कांची में वास करने का प्रचार करते हैं। हुवन-च्वाङ्ग ने कांची का सामाजिक व धार्मिक विवरण दिया है पर कांची मठ या मठाधीष का नाम भी नहीं है। यथार्थ विषय तो यह है कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल 7 वां शताब्दी अन्त का था और आपसे मठ स्थापना काल आठवीं शताब्दी पूर्वार्ध का था।

(31/32) ब्रह्मानन्दघन I (655—668 ई०), चिदानन्दघन I (668—672 ई०) उर्फनाम शीलनिधि भी है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कश्मीर नरेश ललितादित्य एवं भवभूति ने आपकी सेवा की थी। इसका प्रमाण राजतरङ्गिणी तरङ्ग चार का श्लोक 131–145 कहते हैं। भवभूति रचित महापुरुषविलास का पांचवां उल्लास को भी प्रमाण में प्रचार करते हैं। राजतरङ्गिणी चौथा तरङ्ग का 130 से 150 श्लोक तक ध्यान से पढा गया और यहां न शीलनिधि का नाम है या न ब्रह्मानन्दघन का नाम है। राजतरङ्गिणी में न कांची का उल्लेख है या न कांची मठ या मठाधीश का नाम। राजतरङ्गिणी में काश्मीर नरेश ललितादित्य की विजययात्रा का वर्णन है। इस यात्रा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ललितादित्य अपने राज्य कश्मीर से विजय प्राप्त करते हुए दूर दक्षिण तक पहुंचे। कुम्भकोण मठवालों ने 'दूरदक्षिणतक पहुंचे' वाक्य को देखकर अब अपनी कल्पित कथा जोड ली है कि ललितादित्य नरेश जब दूर दक्षिण आये तब आप कांची भी पहुंचे और आचार्य ब्रह्मानन्दघन को अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पण की थी। पर यह नवीन मिश्रित कथा राजतरङ्गिणी में पाया नहीं जाता। अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है जो इतिहास पुस्तकों में पायी जाती है कि कश्मीर नरेश ललितादित्य ने कनौज तक ही विजय पायी और आप गङ्गा तट तक ही पहुंचे थे। आप दक्षिण कभी गये न थे। इस काल में दक्षिण में चालुक्य राज्य था और यह कहना उन्मत्त बात है कि किसी राजा ने चालुक्य राजा को हराया था। चालुक्य ने हर्ष को भी नर्मदा के दक्षिण के आगे बढने से रोका था। 1935 ई० में काशी में जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा था तब कुम्भकोण मठाभिमानीयों ने स्वीकार किया था कि राजतरङ्गिणी इस विषय का उल्लेख नहीं करता पर आप लोगों ने पुण्यश्लोकमंजरी दिखा कर प्रचार किया कि नरेश ललितादित्य कांची पहुंचे थे। कुम्भकोण मठ से स्वरचित 19 वीं शताब्दी की एकङ्गि पुस्तक जो आचार्य वंशावली 508 क्रिस्तपूर्व से देता है उस पुस्तक पर विमर्श पाठकगण प्रथमाध्याय में पढ चुके होंगे। स्वरचित पुस्तकों द्वारा स्वमहत्ता बढाना स्वाभाविक ही है और जब अन्य प्रमाणों से इसकी पुष्टी न हो इसे स्वीकार नहीं कर सकते। इसी प्रकार और एक असत्य प्रचार भी करते हैं कि ब्रह्मानन्दघन का शिष्य चिदानन्दघन जो कुम्भकोण मठाधीष भये

आपने महाराणी रत्ता के लडके को कर्नाटक सिंहासन पर बैठाया था। राणी रत्ता के लडके को कश्मीर नरेश ने राजच्युत किया था। इस प्रचार का प्रमाण कुम्भकोण मठ की कल्पना एवं स्वेच्छावाद है। राष्ट्रकूट का अपभ्रंश नाम (रत्ता) रद्य है और यह नाम किसी व्यक्ति का नहीं है। राजतरङ्गिणी के अनुसार ललितादित्य का काल 699-735 ई० का था पर Stein के अनुसार ललितादित्य का काल 725 से 760 ई० तक का है। कुम्भकोण मठ वंशावली के 31 वां आचार्य ब्रह्मानन्दघन का काल 655 से 668 एवं 32 वां आचार्य चिदानन्दघन का काल 668 से 672 इ० का दिया है। इससे तो सिद्ध होता है कि कश्मीर नरेश ललितादित्य ने कांची मठाधीश से भेंट कर पूजा सेवादि न की थी। राजतरङ्गिणी में जो कथा नहीं है उसमें अपनी कल्पित कथा जोडकर राजतरङ्गिणी का नाम लेकर प्रमाण में प्रचार करना काला कर्तूत है।

भवभूति से रचित कहेजानेवाले पुस्तक 'महापुरुषविलास' जो उपलब्ध नहीं है (कुम्भकोण मठ कहते हैं 'not available') इस अनुपलब्ध पुस्तक से दो श्लोक उदधृत कर प्रमाण में कहा जाता है कि भवभूति ने कांचीमठाधीश की सेवा की थी। अनुपलब्ध पुस्तक से श्लोक उद्धृत कैसा किया गया? जितने प्रमाण अभी तक देते हैं सो सब प्रमाण न केवल अनुपलब्ध हैं पर 'अश्रुतम, अदृष्टम व अज्ञातम्' कोटि के हैं। इन दो उदधृत श्लोकों में भवभूति यह नहीं कहता कि किस आचार्य को ललितादित्य नरेश ने अपनी श्रद्धा भक्ति दिखायी थी या किस आचार्य को कश्मीर का एक बडा छेत्र का दान दिया था। श्लोक पढने से ही स्पष्ठ प्रतीत होता है कि यह कल्पित श्लोक है। मिस. डफ् की अभिप्राय है कि भवभूति का काल 690 ई० के पश्चात् का है। यदि इस काल को मान लें तो भवभूति कुम्भकोण मठ के 31 वां व 32 वां आचार्यों को न देखा होगा चूंकि इन दोनों का निर्याण काल भवभूति के पूर्व का ही है। 'मालतीमाधव' का एक भाग के रचयिता भवभूति का काल 693-729 ई० के मध्य भी कहा जाता है। भवभूति के समय में आचार्य शङ्कर विद्यमान थे। ऐसी स्थिति में कैसा विश्वास किया जा सकता है कि भवभूति ने आचार्य शङ्कर पीठी के 31 वां व 32 वां आचार्यों का सेवन किया था जब आप स्वयं इस पीठी के मूल पुरुष के समय विद्यमान थे? म. म. डा. शिवनाथ शर्मा जी, श्रीनगर, से लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध कश्मीर देश से कुछ न था और जो कुछ प्रचार कुम्भकोण मठ द्वारा हो रहा है वह सब असत्य है।

(33) सच्चिदानन्द II—(672—692 ई०) आपका उर्फनाम भाषा परमेष्ठी है। आपका चरित्र सामग्री कुछ भी उपलब्ध नहीं होता पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आपने कांची मठ का जीर्णोद्धार किया था। यह प्रचार इसलिये किया जाता है कि इनके पूर्वाचार्य नं. 14 से 25 तक कांची में न वास करने से मठ की मरम्मत जरूरत थी और आपने मठ की मरम्मत करायी और पामरजन यह विश्वास कर लें कि कांची में मठ था। आचार्य शङ्कर का जन्म काल सातवीं शताब्दी अन्त का था और कांची में शङ्कर मठ होना भी असम्भव है।

(34) चन्द्रशेखर II—(692-710 ई०) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपने बौद्धमतानुयायी विद्वान मंत्री शंकुण्ण जो कश्मीर नरेश ललितादित्य दर्बार का मंत्री था उनको वाद में हराया था। इसका प्रमाण राजतरङ्गिणी तरङ्ग चार श्लोक 215 एवं 246 से 262 तक का प्रचार करते हैं। राजतरङ्गिणी पढा गया और कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि शंकुण्ण चन्द्रशेखर मे मिले या विवाद किया और शंकुण्ण पराजित भये। राजतरङ्गिणी की कथा वर्णन दूसरी ही है। वहां उल्लेख है कि एक रससिद्ध नाम का कंकणवर्षण थे और आपका भाई शुकुण्ण था जो बुक्कार देश से आया था। आपके पास एक रससिद्धमणि था जिसे आपने दक्षक के अनुग्रह से प्राप्त किया था। इस मणि को राजा प्राप्त करना चाहते थे और नरेश ने आपसे उस मणि को मांगा। इन सब विषयों का ही विस्तार वर्णन

राजतरङ्गिणी में पाया जाता है। पूर्व में कुम्भकोण मठ ने प्रचार किया था कि आपके 31 वां आचार्य के समय में कश्मीर नरेश ललितादित्य कांची आकर आपकी सेवा की थी पर अन्वेषण द्वारा सिद्ध हुआ कि नरेश ललितादित्य किसी समय में भी नर्मदा के दक्षिण आये ही नहीं और कांची मठ का प्रचार असत्य है। कश्मीर नरेश ललितादित्य का काल 699—735 ई० या 725–760 ई० का होना इतिहास बतलाता है और कांची मठाधीश का काल 655–668 ई० का कहा जाता है। उसी प्रकार यह भी एक असत्य प्रचार है। राजतरङ्गिणी में जो विषय उल्लेख नहीं है उस विषय को वहां होने का प्रचार कर राजतरंगिणी का नाम देकर इष्टसिद्धि प्राप्त करना न केवल असत्य प्रचार है पर यह एक पाप कर्म है जो धर्माचार्य को शोभता नहीं है।

(35—36) चित्सुख उर्फ बहुरूप (710--737 ई०) एवं चित्सुखानन्द उर्फ चिदानन्द (737—758 ई०) चित्सुख कांची बाहर वास करते थे और चिदानन्द कांची मे थे। चरित्र सामग्री उपलब्ध न होने से यथार्थता जानना कठिन है।

(37) विद्याघन III--(758—788 ई० जनवरी माह) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपका पूर्वाश्रम वृत्तान्त कुछ भी मालूम नहीं होता पर आप द्रविड थे और आपका नाम सूर्यनारायण था। आपका निर्याण चिदम्बर में जनवरी माह 788 ई० में हुआ था। यह भी प्रचार करते हैं कि मुसलमानों के आक्रमणों से दक्षिण देश में धर्म की अवनति हो रहा था और आपने धर्म को पतन होने से बचाया था। इसके पुष्टी में प्रमाण देते हैं पर यह कहां से उद्धृत किया गया है इसका विवरण नहीं देते—'प्रचिते परितस्तुरुष्क चक्रे निचिते म्लेच्छगवीविभू म्नि वक्रे।' मिस डफ् से रचित 'Indian chronology' में उल्लेख है कि 758 ई० से 788 ई० के बीच अरबी मुसलमानों ने पश्चिमी भारत के सीमा पर बराबर चडाई व लूट करते थे और उक्त अरबी मुसलमान गुजरात तक ही पहुंचे थे। पश्चिमी सीमा के आक्रमणों से दूर दक्षिण पूर्वी सीमा की कांची नगर में या आसपास के सीमा में क्या प्रभाव पडा था कि इन आक्रमणों द्वारा दक्षिण पूर्वी सीमा में धर्म भ्रष्ठ होने लगा? जहां कहीं कोई घटना की उल्लेख ग्रन्थों में पाते हैं और जो घटना कांची मठ के इतिहास से सम्बन्ध नहीं भी रखता हो या जहां कहीं कांची पद का उल्लेख हो जिसका सम्बन्ध कांची मठ के साथ न भी हो या जहां कहीं यति का नाम पाते हों, इन सब को संग्रह कर, इसके साथ अपनी कल्पित कथा जोडकर प्रचार करना तो कुम्भकोण मठ का स्वभाव है।

(38) शङ्कर V—(788 मई माह–840 ई०) कुम्भकोण मठ की जो कल्पित कथा है कि आचार्य शङ्कर ने पांच बार अवतार लेकर इस भारत वर्ष में पांच बार आविर्भाव हुए और ये पांचो अवतार पुरुष कांची मठाधीश थे, इनमें अन्तिम पांचवां अवतार पुरुष आपके मठ के 38 वां अधीश थे। आचार्य शङ्कर के जीवन चरित्र में पांच मुख्य घटनाओं को लेकर पांच आचार्यों का जीवन चरित्र लिखा गया है। इस कल्पित कथा का समर्थन न कोई प्रामाणिक ग्रंथ करता है, न शङ्कर दिग्विजयों में उल्लेख हैं, न श्रेष्ठों को ग्राह्य है और न वृद्धपरम्परा जनश्रुति पुष्टी करती है। कुम्भकोण मठ को संख्या पांच से बडा प्रेम है। आपने पांचवां उपदेष्टव्य महावाक्य, पांचवेद, पांच संप्रदाय, पांच ब्रह्मचारी, पांच दृष्टिगोचर आम्नाय, पांच मठ, पांच अवतारी शङ्कर, आदियों की रचना कर स्वेच्छावाद के आधार पर प्रचार करते हैं। आर्ष ग्रन्थ, धर्मशास्त्र ग्रंथ, श्रेष्ठों से स्वीकृत प्रामाण्य ग्रंथों के विरुद्ध इन उपर्युक्त विषयों का रचना की है। 'अन्यमिन्द्रं करिष्यामि' वचनानुसार आपने भी एक नवीन मंठ का निर्माण कर उसकी पुष्टी में नवीन ग्रंथों की रचना भी कर डाली थी। जब इन दुष्प्रचारों की कृत्रिमता की पोल खोली जाती है तो आप और आपके अनुयायी क्रुध होते हैं और जान लेने की धमकी भी देते हैं।

आपका 37 वां आचार्य विद्याघन III का निर्याण समय प्रभव वर्ष पुष्य माह (जनवरी माह 788 ई०) होने का प्रचार करते हैं और आपका 38 वां आचार्य शङ्कर V का जन्म काल विभव वर्ष वैशाख माह (मई माह 788 ई०) का उल्लेख करते हैं। प्रश्न उठता है कि इस बीच पांच महिने तक मठ में कौन था? क्या मठ का धर्मराज्यसिंहासन खाली पडा था? बालक शङ्कर मई माह 788 ई० में जन्म लेते ही मठाधीश बन नहीं सकते और धर्मशास्त्रानुसार बालक के पांचवां वयस में ही उपनयन किया जा सकता है और तत्पश्चात् सन्यासाश्रम देकर दीक्षा दी जाती है। उपनयन दो प्रकार के होते हैं—काम्योपनयन व नित्योपनयन। सातवें वर्ष में ही उपनयन करने का धर्मशास्त्र आदेश देता है पर यदि कोई ब्रह्म-तेजस प्राप्त करने का इच्छुक हो तो वह पांचवें वर्ष में उपनयन कर सकता है ('ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे')। यदि मान लें कि इस बालक शङ्कर का उपनयन पांचवें वर्ष में हुआ था तो प्रश्न उठता है कि इस पांच वर्ष 5 माह के लिये कांची मठ का मठाधीष कौन था? मठ निर्वाह कौन करता था? कामकोटि पीठ के देवदेवियों का पूजा सेवा कौन करता था? ब्रह्मचर्याश्रम से सन्यासाश्रम धारण किये हुए व्यक्ति ही 'सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम योग लिङ्ग' की पूजा करने योग्य है जो कुम्भकोण मठ का कथन है सो अब इस पांच वर्ष पांच माह कौन योग्य सन्यासी योग लिङ्ग की पूजा करता था? अपने परम्परा को 'अविच्छिन्न परम्परा' घोषित करने वाले कुम्भकोण मठ अब इस विच्छिन्नता का क्या उत्तर देते हैं?

कुम्भकोण मठ की चातुर्यता भी सीमातीत है। इस विच्छिन्नता न होने की अपने कल्पित कथाओं द्वारा उत्तर देने की कोशिश की है। आपकी कथा है कि इस पांचवां शङ्कर के जन्म पूर्व ही आपके मठाधीश 37 वां आचार्य विद्याघन III को आपके निर्याण पूर्व आचार्य शङ्कर एवं श्री पद्मपादाचार्य दोनों ने अशरीरवाक् द्वारा कहा था कि 'अब जो बालक शङ्कर आनेवाला है तुम उसे कांची मठ का अधीश पदवी पर नियोजन करना एवं उसे अपनी पादुका भी देना।' इस आज्ञा पर विद्याघन ने अपने निर्याण पूर्व अपने शिष्यों को आज्ञा दी थी कि बालक शङ्कर ही को मठाधीश बनाना और उसे पादुका भी देना। शिष्यों ने गुरु की आज्ञा का परिपालन भी किया। पर प्रश्न उठता है कि इस बालक को कौन पहिचाने और कहां खोज की जाय क्यों कि उस समय कोई जानता न था कि यह आगामी काल में जन्म लेने वाला शङ्कर कब, कहां और किस के घर में जन्म लेने वाला है। विद्याघन का निर्याण इस शङ्कर बालक का जन्म के पांच माह पूर्व ही हो चुका था और अशरीरवाक् ने 'कब, कहां व किसके घर में जन्म होने वाला है' इसका विवरण दिया नहीं था। पाठकगण स्वयं जान लें कि आक्षेप का उत्तर कहां तक न्याययुक्त है। चाहे जो हो, चिदम्बर में बालक मिला और उस बालक को मठाधीश बनाने का निश्चय भी हो गया। पर इस बालक का उपनयन कब हुआ और किसने 'ब्रह्मोपदेश' किया था और पांच वर्ष तक कहां और किससें पोशित हुआ था इसका विवरण कुम्भकोण मठ देते हैं। शिशु शङ्कर की माता ने अपने पति मरण के तीन वर्ष उपरान्त शिशु का जन्म दिया। माता लज्जा से इस शिशु को चिदम्बर क्षेत्र समीप वन में छोड आती है और यह शिशु व्याघ्रपाद के व्याघ्रपत्नी से पालित होता है। बालक के पांचवें वर्ष में व्याघ्रपाद मुनि ने बालक का उपनयन संस्कार किया था और इस वटु को वेद भी पढाया। कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि आद्य शङ्कराचार्य स्वयं इस भूलोक में आकर इस बालक शङ्कर को दीक्षा देकर सन्यासी बनाये। बालक शङ्कर ने आद्यशङ्कराचार्य से ही उपदेश प्राप्त किया था। कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि आद्यशङ्कर के साथ ब्रह्मा भी इस भूलोक आये और आद्यशङ्कर ने अपनी पादुका भी इस बालक को दिया ताकि यह बालक इसकी सहायता से वायुमन्डल में भ्रमण करते हुए भारतवर्ष के कोने कोने जा सके। एक प्रचार पुस्तक में उल्लेख है कि श्री पद्मपाद ने बालक को पादुका दी थी। उपर्युक्त कथा का समर्थन कोई प्रामाणिक ग्रन्थ या वृद्धपरम्परा जनश्रुति नहीं करता है। ऐन्द्रजालविद्याधुरन्धरों की कल्पना जगत का यह एक काल्पनिक झलक है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि चिदम्बर में द्रविड विश्वजित के यहां शङ्कर का जन्म विभव वर्ष वैशाख माह में हुआ था और आपकी कथा वाक्पतिभट्ट रचित शङ्करेन्द्र विलास में है। इस पुस्तक पर विमर्श प्रथमाध्याय में पढ चुके होंगे। यह पुस्तक जो अश्रुत, अदृष्ट व अज्ञात है उस पुस्तक के द्वितीय खण्ड का सारांश उद्धृत कर प्रचार करते हैं। अनुपलब्ध पुस्तक का प्रमाण सब प्रमाणाभास हैं चूंकि यह स्वरचित व स्वकल्पित कथायें हैं जो किसी प्रामाणिक पुस्तक द्वारा पुष्टी नहीं होती। इन उद्धृत पंक्तियों द्वारा प्रचार करते हैं कि विश्वजित के मरण पश्चात् आपकी पत्नी विशिष्ठा 'सती' होने की इच्छा प्रकट करती है पर उनके बन्धु विशिष्ठा को गर्भवती देखकर घर लौटा ले आते हैं। सालभर बीत जाता है और प्रसव का निशान भी दिखायी नहीं पडता। विशिष्ठा चिदम्बर मन्दिर में सेवाकार्य में लग जाती है। पतिमरण का तीन वर्ष पश्चात् विशिष्ठा शङ्कर शिशु का जन्म देती है। लोकोपवाद के भय से इस शिशु को जङ्गल में छोड आती है और इस वन में व्याघ्रपाद मुनि इस शिशु को पालनपोशन कर उपनयन व वेदाध्ययन कराते हैं। यही कथा अक्षरसः आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय में पाया जाता है। न मालूम कैसे अनुपलब्ध शङ्करेन्द्रविलास में दी हुई कथा आ. शं. वि. में पाया जाता है। आ. शं. वि. कथा को अब वाक्यपति भट्ट के नाम से प्रचार किया जाता है। कुम्भकोण मठ प्रधान प्रमाण पुस्तक गुरुरत्नमाला एवं सुषमा में इस गोळक जन्म का समर्थन करते हुए कारण भी देते हैं। आप कहते हैं चूंकि आचार्य शङ्कर का भूलोक में यही अन्तिम अवतार था (यानी पांचवां) और आपको कुछ कर्मफल प्रारब्ध शेष होने के कारण और जिसे आप इस जन्म द्वारा बितानी थी और पुनः जन्म लेनी थी, इस शेष प्रारब्ध को आपने अपने माता के गर्भ में बिताकर, पुनः जन्म बन्धन से छूटकर तीन वर्ष उपरान्त इस भूलोक में आये। यह कारण श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है। ईश्वरांश शङ्कर को प्रारब्ध व कर्मफल कैसे लिप्त कर सकता है? आप तो स्वतन्त्र हैं। संसार को हेय दृष्टी से देखनेवाले पुरुष कार्य का कर्ता भी हों तो उससे क्या? आपको संसार बन्धन में डाल नहीं सकता है। संसार कल्पित व असत्य है। ज्ञान प्राप्त पुरुषों को एवं स्वतन्त्र पुरुषों को कर्म कदापि लिप्त नहीं कर सकता। श्री शङ्कर वासनाहीन थे। ऐसे ईश्वरांश अवतार महानों पर ऐसी कल्पित कथा कहकर उसे समर्थन करने के लिये अशास्त्रीय, अग्राह्य, न्यायरहित कारणों को देना सन्यासाश्रम को शोभता नहीं है। पर स्वार्थी इस काले कर्तूत से डरते भी नहीं। ऐसे बकवास पर आलोचना करना ही व्यर्थ है।

कुम्भकोण मठ यह भी प्रचार करते हैं कि सब शङ्करविजय ग्रंथकर्ताओं ने भूल से कुम्भकोण मठ का 38 वां आचार्य शङ्कर V के चरित्र को ही आद्यशङ्कराचार्य का चरित्र मानकर शङ्करविजय लिखी है। अर्थात् आपके कथन से क्या यह कहा जाय कि माधवीय, कहेजानेवाले व्यासाचलीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, आदि ग्रंथों के कर्ता सब मूर्ख थे कि आप इस विषय का उल्लेख नहीं किया था? आपके 38 वां आचार्य ने 'आद्यशङ्कर से सन्यासाश्रम लेकर कांची मठाधीश बने' ऐसी कथन से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि विद्याघन III के निर्याण पश्चात् जो कांची मठ पांच वर्ष से अधिक विच्छिन्न पडा था अब वह अविच्छिन्न हो गया और आपका साक्षात् आद्यशङ्कर परम्परा पुनः चालू हो गयी। इस कल्पित कथा की सत्यता पाठकगण स्वयं जान लें। कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि पूर्वी एवं पाश्चात्य विद्वानों ने आपके 38 वां आचार्य जिनका जन्म काल 788 ई॰ का है इसे भूल एवं अनभिज्ञता द्वारा अपनी अपनी अभिप्राय दिया है कि प्रथम व मूल शङ्कराचर्य का जन्म 788 ई॰ का है। इस पुस्तक के प्रथम खन्ड पूर्ण एवं द्वितीय खण्ड के प्रथमाध्याय को पढें तो इस प्रचार का पोल खुल जायगी। अपने कल्पित वंशावली जो 508 क्रिस्तपूर्व से प्रारम्भ होता है उसे यथार्थ सिद्ध करने के प्रयत्न में अनुसन्धान विद्वानों को भी अनभिज्ञ होने का प्रचार करते हैं। धर्माचार्यो के धर्मप्रचार का नमूना यही है।

आपका कश्मीर गमन एवं वाक्पति भट्ट को विवाद में परास्त करने का प्रमाण में कहते हैं कि एक पुस्तक 'सदुगुरुसन्तान परिमल' में उल्लेख है पर यह भी कहते हैं कि इस पुस्तक के रचयिता का नाम मालूम नहीं है और यह पुस्तक भी उपलब्ध नहीं है। पर ऐसे अश्रुत व अदृष्ट पुस्तक से दो श्लोक उद्धृत कर कहते हैं कि 'सद्गुरु सन्तान परिमल' पुस्तक देखो। राजतरङ्गिणी चौथा तरङ्ग का श्लोक 488 से 500 तक में कल्हण ने कई विद्वानों का नाम उल्लेख किया है जो 8 वीं एवं 9 वीं शताब्दी में प्रसिद्ध थे और इन नामों में एक नाम वाक्पति भट्ट का है। इस नाम को लेकर दो श्लोक रचनाकर पश्चात् यह कथा कल्पित किया गया कि आचार्य शङ्कर V ने वाक्पति भट्ट से विवादकर परास्त किये। स्वकल्पित 'सद्गुरुसन्तान परिमल' को छोड क्या कुम्भकोण मठ के पास कोई बाह्य प्रमाण है? कश्मीर विद्वान म. म. डा. शिवनाथ शर्माजी लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ का जो सम्बन्ध कश्मीर राज्य चरित्र साथ जोडते हैं वह सब असत्य है।

आनन्दगिरि शङ्करविजय में दिया शङ्कराचार्य चरित्र को लेकर अपने वंशावली में जो 508 क्रिस्तपूर्व से प्रारम्भ होता है इस सूची में 8 वीं शताब्दी के शङ्कर का नाम को पांचवां शङ्कर होने की कथा सुनाकर वंशावली 19 वीं शताब्दी में तैय्यार किया गया ताकि आधुनिक काल में आचार्य शङ्कर का काल निर्णय जो हुआ है उसकी भी पुष्टी हो। आ. श. वि. पर विमर्श पाठकगण पूर्व ही पढ चुके होंगे।

39. सच्चिद्विलास—(840—873 इ॰) उत्तर भारत के प्रसिद्ध विद्वानों का नाम लेकर यह कहा जाता है कि ये सब विद्वान आपके सेवकों में से थे पर इस कथन का प्रमाण कहीं मिलता नहीं है। पद्मपुर निवासी कनौजी ब्राह्मण ने सन्यासाश्रम लेकर सच्चिद्विलास के नाम से कांची मठाधीश भये ऐसा जो प्रचार किया जाता है इसका क्या प्रमाण है?

40—45. महादेव उर्फ उज्ज्वल या शोभन (873—915 ई॰), गङ्गाधर (915—950 ई॰), ब्रह्मानन्दघन II (950--978 ई॰), आनन्दघन (978—1014 ई॰), पूर्णबोध II (1014—1040 ई॰), परमशिव (1040—1061 ई॰)—ये छः आचार्य अपने पूर्वाश्रम में कर्नाटकी ब्राह्मण थे और आप सबों का निर्याण स्थल सह्य पर्वत कहा गया है। इन सब आचार्यों का चरित्र विवरण न देने से अन्वेषण सामग्री का अभाव है।

46. बोध II (1061—1098 ई॰) आपका उर्फ नाम सान्द्रानन्द व बोधेन्द्र है। आप ही 'कथासरितसागर' रचयिता सोमदेव हैं। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि सोमदेव ने 45 वां आचार्य परमशिव की सेवा सह्यपर्वत में करते थे और पश्चात् सन्यासाश्रम लेकर मठाधीश बने। आगे प्रचार करते हैं कि धारानरेश भोजराज ने मोतियों से जडी पालकी दी थी और आपने इसी पालकी पर बैठकर दक्षिणयात्रा की थी। यह भी कहते हैं कि कश्मीर नरेश कलस की सहायता से आपने कांची के आसपास मुसलमानों को मार भगा दिया था। कुम्भकोण मठ वंशावली रचयिता ने सोमदेव द्वारा रचित कथासरितसागर से अनेक नाम व घटनायें लेकर अपने वंशावली की पुष्टी के लिये अन्य उपलब्ध प्रमाणों को देकर एक सूची बनायी है। अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिये वंशावली रचयिता ने आपका भी नाम वंशावली में जोड लिया है।

• सोमदेव कश्मीर देश के विद्वान थे। आपका समसामयिक काल का विद्वान क्षेमेन्द्र था और आपने बृहत् कथा मंजरी रचा है। कश्मीर नरेश कलस के माता सूर्यमती के दिल बहलाने के लिये सोमदेव ने इस पुस्तक की रचना

की थी। इतिहास पुस्तकों से स्पष्ट मालूम होता है कि यह पुस्तक 1063—1089 ई० के मध्य काल में रचा गया था जब कश्मीर नरेश कलस का शासन काल था एवं जब सूर्यमति जीवित थी। कथासरितसागर का 18 भाग में 124 तरङ्ग हैं और इस पुस्तक में 21,000 श्लोक से भी अधिक पाया जाता है। मिस डफ का अभिप्राय है कि यह सोमदेव का काल 1063—1082 ई० का है। कश्मीर के इतिहास से मालूम होता है कि सोमदेव कश्मीर में 1063 से 1089 ई० तक वहीं थे। यह भी कहा जाता है कि दक्कन में बृहत्-कथा के नाम से पैसाची भाषा में कथाओं का एक संग्रह पुस्तक उपलब्ध था और इस बृहत-कथा पुस्तक को काश्मीरी सोमदेव ने बारहवीं शताब्दी में संस्कृत भाषा में अनुवाद करके कथा-सरित-सागर के नाम से लिखा था। जो सोमदेव कश्मीर में 1063 से 1089 ई० तक वास करते हुए और राजा कलस एवं राजमाता सूर्यमती से सम्मानित हुए थे आप कश्मीर से दूर दक्षिण जा कर 1061 ई० में मठाधीश बने कहना बिल्कुल असम्भव है। परमशिव का निर्याण 1061 ई० का है। अर्थात् सोमदेव 1061 ई० के कई वर्ष पूर्व ही कश्मीर छोडकर सह्यपर्वत आये होंगे और यह भी असत्य ठहरता है चूंकि इन दिनों में सोमदेव कश्मीर में ही थे। क्या सोमदेव ब्राह्मण थे, क्या ब्रह्मचारी थे या क्या गृहस्थ थे? क्या आप सन्यासाश्रम लेने योग्य व्यक्ति थे? यदि कुम्भकोण मठ का कथन सत्य है तो कश्मीर का इतिहास असत्य हो जाता है चूंकि प्रमाण युक्त यह सिद्ध हुआ है कि सोमदेव कश्मीर राजा कलस एवं राजमाता सूर्य्यमती से सम्मानित हुए और आपने सूर्यमनी के दिल बहलाने के लिये कथायें सुनाते थे एवं कथासरित सागर की रचना की थी। यह विपुल ग्रन्थ (18 भाग, 124 तरङ्ग, 21,000 श्लोक) बाल्यावस्था में लिखा न गया था कि आप इसे समाप्त कर बाल्यावस्था में ही दक्षिण भारत आ पहुंचे। सोमदेव के अनेक कथाओं में ईश्वर एवं धर्म पर अवहेलना की गयी है एवं हंसी भी उडायी गयी है। आपके कथा चरित्रनायक सब मूर्ख, चोर, उचक्के, बदमाश, कतलकरनेवाले, डाका डालने वाले एवं स्त्री जो अपने पुरुष का कतल करती है और पर पुरुषों के साथ भोगविलास करती है। कुछ प्रेम कथायें हैं जो काम भरे विषयों से भरपूर हैं। ऐसी रचना करनेवाले व्यक्ति का जीवन कैसा रहा होगा जब आप खासकर राजमहल में भी समय बिताते थे, यह विषय पाठकगण स्वयं निश्चय कर लें। यह कहाजाता है कि सोमदेव अपने जीवन के अन्त काल में शैवमत के बैरागी रूप में भ्रमण करते थे।

प्रश्न उठता है कि धार के भोजराजा ने पालकी क्या कथासरितसागर रचयिता सोमदेव को दी थी या कांची मठाधीश सोमदेव को दी थी? धार के भोजराज का देहान्त 1061 ई० के पूर्व ही हो चुका था और आप सोमदेव को पालकी देते समय जीवित न थे। सोमदेव, क्षेमेन्द्र, मघ, पद्मगुप्त, विशाखदत्त, आदि विद्वानों को राजा महाराजाओं ने सम्मान कर पुरस्कार दिया था। इतिहास, चरित्र एवं कथा पुस्तकों में इनका विवरण मिलता है। सम्भवतः किसी राजा ने सोमदेव को पालकी दी होगी पर इसका अर्थ यह नहीं है कि सोमदेव कांची मठाधीश बनकर पालकी में बैठ भ्रमण करते थे।

कांची भी चोळ देश की राजधानी थी जहां वीरराजेन्द्र, अधिराजेन्द्र एवं कुलोत्तुङ्ग ऐसे दिग्गज प्रभावशाली शूर राजा थे और जिनका प्रभाव सारे दक्षिण में था। ऐसे दिग्गज वीर राजा होते हुए भी एक सन्यासी की सहायता द्वारा कश्मीर राजा कलस से सहायता मांगी थी ताकि आप मुसलमानों को भगा सकें ऐसा जो प्रचार कुम्भकोण मठ करते हैं सो केवल बकवास है। यह समय ऐसा था कि कांची समीप या आसपास सीमा में कोई प्रभावशाली मुसलमान राजा न था जो इनको सामना कर सके। दक्षिण भारत का इतिहास इन विषयों का स्पष्ट उल्लेख करता है। चूं कि राजा कलस से सोमदेव सम्मानित भये एवं राजमाता सूर्य्यमति के दिल बहलाने के लिये कथायें सुनाते थे, इस घटना को लेकर कुम्भकोण मठ ने कल्पित कथा जोड ली है कि कश्मीर राजा कलस का सहायता प्राप्त कर

मुसलमानों को भगाया था। म. म. डा. शिवनाथ शर्माजी का अभिप्राय है कि कथासरितसागर के रचयिता सोमदेव ने सन्यासाश्रम नहीं लिया था और कुम्भकोण मठ का प्रचार भ्रामक है।

(47) चन्द्रशेखर III—(1098—1166 ई०) आपका उर्फ नाम चन्द्रचूड है। कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि कवि मंख, कृष्णमिश्र, जयदेव, सुहल आदि आपके आचार्य के कृपापात्र थे। प्रचार करते हैं कि आपने विद्यालोल कुमारपाल के दर्बार में हेमाचार्य को परास्त किया था और कश्मीर नरेश जयसिंह आपके सेवक थे। इन नामों को भिन्न पुस्तकों से संग्रह करके अपनी कल्पित कथा में जोडकर प्रचार किया जाता है। क्या कुम्भकोण मठ अपने स्वेच्छावाद प्रमाण को छोड सिद्ध कर सकते हैं कि कश्मीर विद्वान मंख ने आपकी सेवा की थी? कृष्णमिश्र ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' पुस्तक की रचना की है और यह पुस्तक उपलब्ध है। इसमें कांची मठ या मठाधीष या चन्द्रशेखर का नामो निशान नहीं है। कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि कृष्णमिश्र ने 'गुरुविजय' पुस्तक की रचना की है पर आप स्वयं कहते हैं कि यह अब उपलब्ध नहीं है—'not available at present.' ऐसे अनुपलब्ध, अश्रुत, अदृष्ट व अज्ञात पुस्तक से एक श्लोक उद्धृत कर कहते हैं आचार्य चन्द्रचूड का नाम है। पर इस श्लोक से यह सिद्ध नहीं होता कि उक्त चन्द्रचूड कांची मठाधीश थे क्योंकि इस श्लोक में कांची का नाम या मठाधीष होने का कोई उल्लेख नहीं है। चन्द्रशेखर III का नाम वंशावली सूची में देकर अब कैसे चन्द्रचूड का नाम लेते हैं? इसे प्रमाण में दिखाने के लिये ही चन्द्रचूड नाम को उर्फ नाम होने की कल्पना कर ली है। एक मार्के का विषय है कि कुम्भकोण मठ जितने श्लोक प्रमाण में देते हैं और जिसका मूल पुस्तक उपलब्ध नहीं होते उन सब श्लोकों को संग्रह कर देखा तो मालूम पडा कि प्रायः सब श्लोकों की शैली, भाषा व छन्द एकसा दीखती है। अर्थात् एक व्यक्ति से ये सब रचे गये हैं। कृष्णमिश्र से रचित पुस्तक जो उपलब्ध है उसे प्रमाण में न देकर और जो अनुपलब्ध है उसे प्रमाण में दिखाने का क्या रहस्य है? कहते हैं कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' में भी आचार्य का संकेत किया है। क्या कुम्भकोण मठ इस भाग को दिखा सकते हैं? काशी के दो विद्वानों ने इसे सम्पूर्ण पडा था और कहीं भी आचार्य का या कांची मठ या मठाधीष का नामो निशान नहीं है। कृष्ण मिश्र का काल चन्द्रशेखर के पूर्व का ही था।

कुम्भकोण मठ कहते हैं कि जयदेव ने भी आपकी सेवा की थी। जयदेव द्वारा रचित 'चन्द्रालोक' व 'प्रसन्नराघव' दोनों पुस्तक उपलब्ध हैं पर इनमें कांची मठ या मठाधीश का उल्लेख नहीं है। पर कुम्भकोण मठ कहते हैं कि जयदेव रचित 'भक्ति-कल्प-लतिका' पुस्तक जो अब उपलब्ध नहीं हैं—'not available at present.' उसमें कांची व चन्द्रचूड का उल्लेख है और प्रमाण में एक श्लोक मात्र उद्धृत किया है। जो भी प्रमाण दिया जाता है सो सब अनुपलब्ध पुस्तक से ही देते हैं और इस काले कर्तूत का क्या मर्म है? कुम्भकोण मठ कहते हैं कि सुहल जो कश्मीर का वैद्यराज था, आपने एक वैद्यशास्त्र पुस्तक 'वैद्याभिधान चिन्तामणि' की रचना की है जो पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है—'not available at present'—पर इस पुस्तक में चन्द्रचूड का नाम लिया गया है। उद्धृत कल्पित श्लोक को यथार्थ मान लें तो भी यह सिद्ध नहीं होता कि चन्द्रचूड कांची मठाधीश थे या आपका नाम चन्द्रशेखर था। श्लोक में 'चन्द्रचूड' पद देखकर प्रमाण में कहना भ्रामक है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि आपने हेमाचार्य को विवाद में परास्त किया था। हेमाचार्य जैनमत के आचार्य हैं और आपका काल बारहवीं शताब्दी का है। कुम्भकोण मठ के पास क्या प्रमाण हैं कि आप सिद्ध कर सकते हैं कि चन्द्रशेखर उर्फ चन्द्रचूड ने हेमाचार्य को परास्त किया था? ऐसे मिथ्या भ्रामक प्रचारों से आपकी महत्ता बढती नहीं है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि 'ब्रह्मविद्याभरण' के रचयिता अद्वैतानन्द बोध चन्द्रशेखर III उर्फ चन्द्रचूड के शिष्य थे। अद्वैतानन्द बोध अपने

रचित पुस्तक में स्पष्ट कहते हैं कि आपके विद्यागुरु काशी के रामानन्दतीर्थ थे और सन्यासदीक्षा गुरु भूमानन्द सरस्वती थे। अब शायद कुम्भकोण मठ यह प्रचार कर सकते हैं कि चन्द्रशेखर उर्फ चन्द्रचूड ही भूमानन्द थे और इसका प्रमाण 'तिलकाष्ठमहिषबन्धन' में है!

48. अद्वैतानन्दबोध--(1166—1200 ई०) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपका पिता प्रेमेश थे और आपका पूर्वाश्रम नाम सीतापति था और आपका उर्फ नाम चिद्विलास था। आपने श्री हर्ष एवं मन्त्रशास्त्री अभिनवगुप्त को परास्त किया था। इतिहास द्वारा सिद्ध होता है कि अभिनव गुप्त 100 वर्ष पूर्व काल के थे और अद्वैतानन्द बोध आपसे मिल भी न सकते थे। प्रचार करते हैं कि अद्वैतानन्द बोध उर्फ चिद्विलास रचित ग्रन्थ ये हैं—ब्रह्मविद्याभरण, शान्तिविवरण एवं गुरुप्रदीप। 'ब्रह्मविद्याभरण' रचयिता एक प्रख्यात विद्वान यति को गुरु वंशावली में न जोडने से कुम्भकोण मठ वंशावली की महत्ता घट जाने के ख्याल से आपका नाम भी जोड दिया गया है और आपका उर्फ नाम चिद्विलास होने का भी प्रचार कर रहे हैं। रचयिता अपने ग्रन्थ में कहते हैं कि आपने रामानन्दतीर्थ के पास ब्रह्मसूत्र भाष्य पढा था पर कुम्भकोण मठ 'तीर्थ' अङ्कित नाम को बदल कर 'रामानन्द सरस्वती' के नाम से प्रचार करते हैं। अद्वैतानन्द जी कहते हैं कि आपका सन्यासदीक्षा गुरु 'भूमानन्द सरस्वती' थे और इस विषय को गुप्त रखने के लिये इसका प्रचार नहीं करते। इसके प्रचार से सिद्ध होगा कि अद्वैतानन्द आपके मठ वंशावली में एक नहीं हो सकते। प्रचार पुस्तकों में कहा गया है कि 47 वां आचार्य का निर्याण पहिले ही हो चुका था इसलिये 48 वां आचार्य अद्वैतानन्द काशी के रामानन्द सरस्वती के पास विद्याध्ययन किया था पर यह न कहा कि 48 वां आचार्य किससे सन्यास दीक्षा ली थी। यदि यह विषय सब को विदित हो जाय तो कुम्भकोण मठ के 47 वां आचार्य चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती उर्फ चन्द्रचूडेन्द्र सरस्वती का मठाधीश होना असत्य हो जाता है। इन दोनों मे गुरु-शिष्य सम्बन्ध नहीं है। श्री अद्वैतानन्द लिखते हैं कि आप कौन्डिन्य गोत्र के हैं, पिता—प्रेमनाथमखि, माता—पार्वती, पूर्वाश्रमनाम—सीतापति, सन्यासनाम-अद्वैतानन्द, विद्यागुरु-रामानन्दतीर्थ, दीक्षागुरु-भूमानन्द सरस्वती, हैं।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि अद्वैतानन्दबोध उर्फ चिद्विलास ने 'शङ्करविजयविलास' पुस्तक की रचना की है। आश्चर्य है कि कहेजानेवाले कांची मठाधीश चिद्विलास ने अपने 'शङ्करविजयविलास' में यह नहीं कहा है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी। आपने अध्याय 24, श्लोक 30/31, में शृङ्गेरी में मठ स्थापना ; अध्याय 30, श्लोक 10/11 में जगन्नाथ में मठ स्थापना ; अध्याय 31, श्लोक 5/6, में द्वारका में मठ स्थापना ; अध्याय 31, श्लोक 28, में बदरी में मठ स्थापना का उल्लेख किया है। आपने आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमाचल सीमा का दत्तात्रेय गुफा कहा है न कि कांची जो कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं। पाठकगण इस पुस्तक पर विमर्श प्रथमाध्याय में पायेंगे।

अद्वैतानन्द बोधेन्द्र सरस्वती का मठाधीश होने के प्रमाण में कुम्भकोण मठ कहते हैं कि श्रीहर्ष ने अपने रचित 'शिवशक्तिसिद्धि' में चिद्विलास व कांची का उल्लेख किया है और यह पुस्तक 'शिवशक्तिसिद्धि' अनुपलब्ध है-'not available at present.' इसी प्रकार हर्ष का और एक पुस्तक 'स्थैर्य विचारण प्रकरण' में 'चिद्विलास' का नाम उल्लेख होने का भी प्रचार करते हैं। उक्त प्रमाणों के आधार पर अद्वैतानन्द का उर्फ नाम चिद्विलास होने का कहते हैं। अनुपलब्ध पुस्तकों से किस प्रकार एक श्लोक उद्धृत किया गया है? उक्त प्रमाणों के आधार पर कैसे कहा जा सकता है कि चिद्विलास ही अद्वैतानन्द थे? अद्वैतानन्द अपने रचित पुस्तको में कहीं भी अपना विवरण देते समय अपने को मठाधीश न कहा या कहीं भी मठ का नाम भी न लिया तथा कांची मठ का नामों निशान भी नहीं है।

जब कहेजानेवाले मठाधीष स्वयं इस विषय का उल्लेख नहीं करते तो क्या प्रयोजन है ऐसी प्रमाणाभास प्रचार करने से। 'शान्तिविवरण' व 'गुरुप्रदीप' दोनों अनुपलब्ध होते हुऐ भी 'not available at present' प्रमाणाभास रूप में कुछ स्वरचित श्लोक उदधृत करते हैं। हर्ष रचित 'नैषध' काव्य में योगलिङ्ग का वर्णन किये जाने का भी प्रचार करते हैं। 'यागेश्वर' जो कांची का मुख्य देव हैं उसे बदलकर 'योगेश्वर' होने का मिथ्या प्रचार करते हैं। पाठकगण इसका विवरण प्रथमाध्याय में पायेंगे। उपर्युक्त अनुपलब्ध एवं अदृष्ट पुस्तकों के आधार पर किस प्रकार निश्चय किया जा सकता है कि आपने हर्ष को परास्त किया था। मांत्रिक गुप्त का काल 100 वर्ष आपके पूर्व का ही था। अद्वैतानन्द ने कहीं भी अपना उर्फ नाम चिद्विलास नहीं कहा है। सन्यास दीक्षा देते समय यतिधर्म शास्त्रानुसार एक ही दीक्षा नाम भी दिया जाता है और सन्यासियों का दीक्षा नाम एक से अधिक नहीं होता। शिष्यवर्ग अनन्य भक्ति व प्रेम से व्यवहारिक नाम देते हैं जो गुरु का विशेष यशोगान करता है। अतः कुम्भकोण मठ के आचार्यों का विविध नाम यतिधर्मशास्त्र विरुद्ध है।

(49/50) महादेव III—(1200–1247) तथा चन्द्रचूड II—(1247–1297 ई०)महादेव III का कोई चरित्र विवरण न देने से आपके चरित्र पर आलोचना की नहीं जा सकती है। पचासवां आचार्य चन्द्रचूड II का उर्फ नाम गङ्गेषर व चन्द्रशेखर भी होने का प्रचार करते हैं। भिन्न पुस्तकों के भिन्न नामों का संग्रह कर उर्फ नाम होने का प्रचार करते हैं। ताकि ये सव पुस्तक प्रमाणाभास रूप में दिखाया जाय। पचासवां आचार्य मठाधीष बनने के प्रमाण में कांची मठ का ताम्रपत्र नम्बर एक को दिखाते हैं जो अनुसन्धान विद्वानों एवं पुरातत्त्व विभाग के राज्य-कर्मचारियों से अविश्वसनीय ताम्रशासन पत्र ठहराया गया है। इस ताम्रशासन का विवरण आगे अध्याय में पायेंगे।

(51) श्रीविद्यातीर्थ—(1297 से 1385 ई०) श्रीविद्यातीर्थ के बारे में तृतीय अध्याय में पूरा विवरण दिया गया है। वहां निस्सन्देह सिद्ध किया गया है कि श्रीविद्यातीर्थ कांची मठाधीश न थे पर आप श्रृंगेरी मठाधीष थे।

(52) शङ्करानन्द–(1385–1417 ई०) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपका जन्मभूमि तिरुवडमरुदूर था, आपका पूर्वाश्रम नाम महेश था एवं आपने श्री विद्यारण्य के साथ आठ शाखा मठ स्थापना कार्य में सहायता की थी। यह भी प्रचार करते हैं कि आपने ईश, केन, प्रश्न व बृहदारण्यक उपनिषदों पर टीकायें लिखी हैं। आपने आत्मपुराण (उपनिषदों की चर्चा) एवं भगवद्गीता पर भाष्य (गीतातात्पर्यबोधिनी) भी रचा है। आपके कांची मठाधीश होने के प्रमाण में कुम्भकोण मठ एक श्लोक शङ्करानन्द रचित बृहदारण्यक दीपिका में से उदधृत कर कहते हैं कि श्री विद्यातीर्थ कांची मठाधीश थे और आपका शिष्य शङ्करानन्द भी मठाधीश थे।

शङ्करानन्द एक उत्कृष्ठ वेदान्ती थे और आपसे रचित सब ग्रन्थ आदरणीय हैं इसलिये कुम्भकोण मठ ने आपका नाम वंशावली में जोड लिया है। आपने प्रस्थानत्रयी पर दीपिका लिखी है। ब्रह्मसूत्र दीपिका सरलभाषा में ब्रह्मसूत्र की व्याख्या है और गीता की टीका जिसे शङ्करानन्दी भी कहते हैं, आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। कैवल्य, कौषीतकी, नृसिंहतापनीय, बृहदारण्यक, नारायण, आदि उपनिषदों पर दीपिका भी प्रसिद्ध हैं। श्रीशङ्करानन्द अपने रचित पुस्तक में लिखते हैं—'भक्त्या प्रणम्य स्वगुरुमानन्दात्म सरस्वतीं। क्रियते श्रीमद्भगवद्गीता तात्पर्य बोधिनी॥ इति श्रीमत्परम हंस परिव्राजकाचार्य श्री मदानन्दात्म सरस्वती शिष्य श्री शङ्करानन्द कृतौ ... ...।' कांची मठ का विशेष योगपट्ट 'इन्द्रसरस्वतीं' जो सब आचार्यों को होने की कथा सुनाते हैं सो श्री शङ्करानन्द को नहीं है चूंकि आप स्वयं सरस्वती कहते हैं न कि इन्द्रसरस्वती। आपके गुरु आनन्दात्म सरस्वती थे न कि श्री विद्यातीर्थ। आपसे रचित अनेक ग्रन्थ हैं पर

आपने कहीं भी यह न कहा कि आप विद्यातीर्थ के शिष्य थे। इससे प्रतीत होता है कि शङ्करानन्द कांची मठ में न थे। एक साधारण सन्यासी से दीक्षा प्राप्तकर अन्य साधारण सन्यासी किस प्रकार मठाधीश बन सकते हैं ? अविच्छिन्न परम्परा का तात्पर्य क्या है ? ऐसी दशा में गुरु शिष्य भाव की शैली कहां चली गयी ?

बृहदारण्यकदीपिका का श्लोक 'कांचीपीठजुषः कठोरधिषणा ... ...' होने का जो कथा सुनाते हैं और जिसके आधार पर श्री विद्यातीर्थ एवं श्री शङ्करानन्द को कांची मठाधीश बनाया गया है सो श्लोक उक्त पुस्तक में पाया नहीं जाता है। कल्पित व स्वरचित श्लोक को श्रीशङ्करानन्द रचित कहकर मिथ्या प्रचार करते हैं। इस विषय का पूर्ण विवरण तृतीय अध्याय में 'श्री विद्यातीर्थ' शीर्षक विमर्श में पायेंगे। अतएव यह निश्चित है कि श्रीविद्यातीर्थ और शङ्करानन्द कांची मठाधीश न थे।

(53) पूर्णानन्द सदाशिव—(1417—1498 ई०) कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि नैपाल नरेश ने आपकी पादपूजा कर आपकी सेवा की थी। नैपाल राज्य से प्राप्त पत्र ताः 13—5—1940 में लिखा है—'I write to inform you that the Government of Nepal have never acknowledged the head of the Kanchi Kamakoti Peetha as their Guru .. ..' नैपाल राज्य ने कांची मठाधीश को गुरु नहीं माना है।

(54) महादेव IV-(1498-1507 ई०) आप व्यासाचल पर्वत पर रहने के कारण आपका उर्फ नाम व्यासाचल भी कहते हैं। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपने 'शङ्करविजय' ग्रंथ का रचना की है जिसे व्यासाचलीय भी कहते हैं। आपके मठाधीष होने के प्रमाण में ताम्रपत्र शासन दो और तीन नन्बर जो विजयनगर महाराजा से 1428 शक में प्राप्त हुआ था उसका प्रचार करते हैं। 'व्यासाचलीय' पुस्तक मदरास राजकीय पुस्तकालय द्वारा 1954 ई० में प्रकाशित हुआ है। कुम्भकोण मठ से दो हस्तलिपि प्रतियां, तंजौर पुस्तकालय की एक प्रति एवं अन्यत्र उपलब्ध तीन प्रतियों को संशोधन कर पश्चात् यह व्यासाचलीय प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में कांचीमठ का नामो निशान नहीं है। इस पुस्तक के संपादक (राज्य कर्मचारी) भूमिका में लिखते हैं कि यह आश्चर्य का विषय है कि कांची मठाधीष से स्वयं रचित पुस्तक में यह उल्लेख नहीं है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की थी अतः आपका मठाधीष होना भी सन्देहास्पद है। पाठकगण इस विषय पर पूरा विवरण प्रथमाध्याय में पायेंगे। ताम्रशासन नंवर दो व तीन पर विमर्श पांचवें अध्याय में पायेंगे। इन ताम्रशासनों से मठ प्रचार की पुष्टी नहीं होती। यह दोनों शासन पत्र कांची मठ का नहीं है और अन्यों का शासन पत्र द्वारा अपने मिथ्या प्रचारों की पुष्टी करते हैं। अन्यत्र उपलब्ध नामों को लेकर एवं प्रमाणाभास पुस्तकों के आधार पर सूची बना लेने से अविन्छिन्न परम्परा कही नहीं जा सकती है।

(55) चन्द्रचूड III—(1507-1523 ई०) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि सोमशेखरानन्द, कामकोटि मठाधीश, जो नैपाल नरेश से पूजित हुए थे आप ही चन्द्रचूड हैं। पर सोमशेखरानन्द का नाम चन्द्रचूड होने का कोई प्रमाण नहीं देते। चन्द्रचूड का मठाधीश होने का प्रमाण में ताम्रशासन नं. चार का उल्लेख करते हैं जो विजयनगर महाराजा कृष्णदेवराय से शक 1444 में दिये जाने का प्रचार करते हैं। कुम्भकोण मठ की प्रामाणिक पुस्तक गुरुरत्नमाला में उल्लेख है कि आपके आचार्य नैपाल नरेश से पूजित हुए थे। उक्त कुम्भकोण मठ प्रचार सब मिथ्या एवं भ्रामक हैं। डा० बुहुलर लिखते हैं कि दक्षिण भारत का एक यति लगभग 1503 ई० में नैपाल गया था

और आपका नाम सोमशेखरानन्द था—'A Swami of South India went to Nepal about 1503 and that he was named Somasekarananda.' इसे देखकर कुम्भकोण मठ कहने लगे कि सोमशेखरानन्द ही चन्द्रचूड III हैं पर न मालूम किस आधार पर इसका प्रचार करते हैं? यदि कुम्भकोण मठ का प्रचार सत्य होता तो क्यों डा० बुहलर ने यह नहीं कहा सोमशेखरानन्द कांची मठाधीष थे या सोमशेखरानन्द का कांची मठ से सम्बन्ध का उल्लेख नहीं किया? 'दक्षिण भारत का एक यति' कहने मात्र से किस प्रकार कहा जा सकता है कि आप ही कांची मठाधीश थे? दक्षिण भारत से अन्य कोई एक प्रकान्ड विद्वान परिव्राजक या विख्यात यति नैपाल गये होंगे। चन्द्रचूड III 1507 ई० में मठाधीष भये और सोमशेखरानन्द 1503 ई० में नैपाल जाते हैं तो कैसे कहा जाय कि कांची मठाधीष चन्द्रचूड III कांची मठाधीष होकर नैपाल गये थे? एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि चन्द्रशेखर, चन्द्रचूड, सोमशेखरानन्द, महादेव, सदाशिव, परमशिव आदि नाम केवल नामान्तर हैं इसलिये सोमशेखरानन्द की जगह चन्द्रचूड नाम भी ठीक है। पर यतिधर्मशास्त्र ग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख है कि सन्यासाश्रम लेते समय दीक्षा नाम एक ही दिया जाता है और यही नाम से यति संबोधित किये जाते हैं। भक्त शिष्य वर्ग अनन्य भक्ति से व्यवहारिक अन्य नाम से पुकारते भी हैं तथापि दीक्षा नाम एक ही होता है। कुम्भकोण मठ के लिये यतिधर्मशास्त्र ग्रंथ सब अग्राह्य हैं। यों तो शिव का अष्टोत्तर शत या सहस्रनामावली भी हैं और क्यों नहीं इन सब नामों से भी पुकारे जांय। कुम्भकोण मठ के इस कुतर्क पर आलोचना करना ही व्यर्थ है। अब सम्भवतः कुम्भकोण मठ यह भी कह सकते हैं कि सोमशेखरानन्द 1503 ई० में नैपाल गये थे और यह नाम 54 वां मठाधीष महादेव IV का ही संकेत करता है तथा चन्द्रचूड जो 1507 ई० में मठाधीष भये यदि आप न गये हों तो इनके गुरु मदादेव IV गये होंगे। महादेव IV के साथ सोमशेखरानन्द का कोई सम्बन्ध नहीं है तब भी कुम्भकोण मठ का प्रचार होगा कि महादेव IV के आज्ञा पर सोमशेखरानन्द नैपाल गये थे और आपका सम्मान वहां हुआ चूंकि आप महादेव IV का श्रीमुख ले गये थे। मनगढन्त कल्पना कथा का अन्त नहीं होता। पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ का प्रचार कितना स्वरूप धारण कर सकता है। एक झूठ को सत्य बनाने का प्रयत्न में सौ झूठ कहना पडता है। ताम्रशासन नम्बर चार के बारे में आगे अध्याय में विवरण पायेंगे। यह ताम्रशासन आपके प्रचार की पुष्टी नहीं करता।

(56) सर्वज्ञसदाशिव बोध—(1523—1539 ई०) कुम्भकोण मठ का परम प्रामाणिक पुस्तक पुण्य-श्लोक-मंजरी जहां आपके मठ आचार्यों का वृत्तान्त दिया गया है उसका रचयिता सर्वज्ञ सदाशिव बोध हैं। इस पुस्तक पर विमर्श प्रथमाध्याय में दिया गया है। कहा जाता है कि विजयनगर महाराजा कृष्णदेवराय ने एक ताम्र शासन (नं. पांच) आपको दिया था। इस ताम्रशासन का विमर्श अगले अध्याय में पायेंगे। कुम्भकोण मठ की प्रचार है कि रामनाड राजा प्रवीर से सदाशिव बोध सम्मानित हुए थे। पर इतिहास कहता है कि रामनाड राज्य का प्रतिष्ठा इस काल में नहीं हुई थी और प्रवीर नाम का कोई राजा भी न था। सोलहवीं शताब्दी पूर्वार्ध में रामनाड राज्य न होते हुए भी वह राज्य होने का जो मिथ्या प्रचार करते हैं वे ही धर्माचार्य के नाम से पुकारे जाते हैं।

(57) परमशिव II—(1539-1586 ई०) कुम्भकोण मठ का कथन है कि योगीराज सिद्धपुरुष नेरूर के श्रीसदाशिवब्रह्म ('आत्मविद्याविलास' के रचयिता) का गुरु श्रीपरमशिव II हैं और श्रीसदाशिवब्रह्म ने 'गुरुरत्नमाला' पुस्तक रची थी। यह भी कहते हैं कि श्री परमशिव II ने शिवगीता पर टीका एवं दहरविद्याप्रकाशिका ग्रन्थ की रचना की थी। श्री सदाशिव ब्रह्म कहते हैं कि आपके गुरु परमशिवेन्द्र थे और इसे देख कर कुम्भकोण मठ ने परमशिवेन्द्र को अपनी वंशावली सूची में जोड ली है। पर यह परमशिवेन्द्र अपने से रचित ग्रन्थ 'शिवगीताव्याख्या' एवं

'दहरविद्याप्रकाशिका' में स्पष्ट कहते हैं कि आप अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती के शिष्य थे। गुरुरत्नमाला में उल्लेख है कि परमशिवेन्द्र के गुरु सर्वज्ञ सदाशिव बोधेन्द्र थे। पर इसकी पुष्टी श्री परमशिवेन्द्र नहीं करते और आपका गुरु अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती थे। अर्थात् नेरूर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र का गुरु परमशिवेन्द्र और आपका गुरु अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती का कोई सम्बन्ध इस मठ से नहीं है चूंकि कुम्भकोण मठ वंशावली अनुसार सर्वज्ञसदाशिव बोधेन्द्र के शिष्य परमशिवेन्द्र और आपका शिष्य सदाशिव ब्रह्म थे। ये दोनों परम्परा भिन्न हैं। सदाशिव ब्रह्म का काल तंजौर राजा तुलजा जी (1729—36 ई०), पुदुकोट्टै महाराजा विजय रघुनाथ राय (1730—1769 ई०) एवं तिरुवङ्कूर के महाराजा रामवर्मा कार्तिक (1758-1798 ई०) के समसामयिक काल है। पुदुकोट्टै राजगुरु श्री गोपालकृष्ण शास्त्री जो व्यक्ति श्री सदाशिव ब्रह्म की बाल्यावस्था में भाई विद्यार्थी थे, आपको राजा ने 1739 ई० में भूदान दिया था। परमशिवेन्द्र 'दहरविद्याप्रकाशिका' में कहते हैं कि आपने श्री त्र्यम्बक मखी की प्रार्थना पर यह पुस्तक लिखी है। त्र्यम्बक मखी तंजौर राजा शाहा जी (1684—1711 ई०) एवं राजा शरभोजी (1711—1728 ई०) के राजमंत्री थे। आपने रामायण पर टीका 'धर्मकूट' लिखी है (1719 ई०) और आप 1750 ई० तक जीवित थे। इतिहास व अन्यत्र उपलब्ध शासन पत्रों द्वारा निश्चित होता है कि सदाशिव ब्रह्मेन्द्र का काल 18 वीं शताब्दी का ही है। परमशिव का काल 1539—1586 ई० का कहा जाता है। अर्थात् 18 वीं शताब्दी के सदाशिव ब्रह्म के गुरु 16 वीं शताब्दी के कुम्भकोण मठाधीश परमशिव हो नहीं सकते। इन सब विषयों पर विमर्श प्रथमाध्याय में 'गुरुरत्नमाला' शीर्षक विमर्श में पायेंगे। इससे सिद्ध होता है कि सदाशिव ब्रह्मेन्द्र एवं परमशिवेन्द्र का सम्बन्ध कांची मठ से न था।

(58) आत्मबोध—(1586—1638 ई०) आपका उर्फ नाम विश्वाधिक एवं आपका काशी वास तथा आपसे रुद्रभाष्य ग्रंथ की रचना आदि का उल्लेख प्रचार पुस्तकों में पायी जाती है। यह भी कहते हैं कि आपके आज्ञा पर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने गुरुरत्नमाला की रचना की थी। श्रीरुद्रभाष्य का रचयिता अभिनव शङ्कर थे और इनका नाम देखकर कुम्भकोण मठ ने आपको वंशावली सूची में जोड ली है। अभिनव शङ्कर के बदले आपका नाम भी बदलकर आत्मबोध उर्फ विश्वाधिक नाम कुम्भकोण मठ ने दे दिया है। अभिनव शङ्कर का दीक्षा नाम रामब्रह्मानन्द तीर्थ था। अभिनव शङ्कर का योगपट्ट न सरस्वती था या न इन्द्रसरस्वती जो कुम्भकोण मठ का अङ्कितनाम होने का प्रचार करते हैं। रुद्रभाष्य रचयिता अभिनव शङ्कर का नाम न तो आत्मबोध था या न विश्वाधिक। अभिनव शङ्कर ने 'पाषान्डगज केसरी' नामक पुस्तक की रचना की है। आप वेंकटनाथ के गुरु थे। वेंकटनाथ ने भगवद्गीता पर टीका लिखी है जिसे आप अपने गुरु के स्मरण में एवं आपको अर्पित कर 'ब्रह्मानन्दगिरि' का नाम दिया है। इससे सिद्ध होता है कि रुद्रभाष्य रचयिता आपके मठाधीष न थे। आत्मबोध एक कल्पित नाम है जिन्हें रुद्रभाष्य के रचयिता कही जाती है। श्रीसदाशिव ब्रह्म का काल 18 वीं शत्ताब्दी का है। 1638 ई० में निर्याण हुए आत्मबोध व्यक्ति किस प्रकार 18 वीं शताब्दी में जन्म लेनेवाले व्यक्ति को 'गुरुरत्नमाला' लिखने की आज्ञा दे सकते हैं ? प्रथमाध्याय में 'गुरुरत्नमाला' शीर्षक विमर्श में इस आचार्य का विवरण पायेंगे जहां सिद्ध किया गया है कि यह सब कल्पित हैं।

(59) बोध —(1638-1692 ई०) आपका उर्फ नाम शिवेन्द्र, योगेन्द्र व भगवन्नाम दिया गया है। परम भागवत भक्त शिरोमणि बोधेन्द्र जिन्होंने नामसंकीर्तन की महिमा बढाई है और आपका नाम दक्षिण भारत में विख्यात है, आपको भी कुम्भकोण मठ वंशावली में जोड ली गयी है। आपकी समाधि कुम्भकोण समीप कावेरी तट गोविन्दपुरम में है। कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आप कांची मठाधीश थे। आपने अपना जीवन भारत के

तीर्थ क्षेत्राटन में एवं नाम संकीर्तन में बिताया है। आप स्वतंत्र पुरुष थे और आपका सम्बन्ध किसी मठ के साथ न था। आपकी समाधि जिस मठ में है वह गोविन्दपुरम मठ पुराकाल से ही एक स्वतंत्र मठ था और अब भी है। इस मठ का सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से कुछ भी नहीं है और निर्वाह भी स्वतंत्र पुरुष से हो रहा है जिनका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से नहीं है। इस मठ का संप्रदाय भी भिन्न है। कुम्भकोण मठ का प्रचार पुस्तक में उल्लेख है कि भगवन्नाम बोधेन्द्र के बारे में नडुकावेरी ब्रह्मश्री श्रीनिवास शास्त्री का कहना है कि कामकोटि पीठाधिपति मूकशङ्कर का मूकपंचशति एवं श्रीधर की स्तुति सब संस्कृत भाषा में उच्चतर मानना चाहिए। इस कथन से कुम्भकोण मठ यह सिद्ध करना चाहते हैं कि श्रीभगवन्नाम कांची मठाधीश थे। उक्त श्री श्रीनिवास शास्त्री का भाई नडुकावेरी भट्ट श्रीनारायण शास्त्री अपने रचित पुस्तक 'आचार्य चरित्र विमर्श' द्वितीय भाग में अनेक प्रमाणों को देकर सिद्ध किया है कि कांची मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित नहीं है और यह अर्वाचीन काल का मठ है। कुम्भकोण समीप नडुकावेरी ग्रामवासी कुम्भकोण मठ वृत्तान्त अच्छी तरह जानते थे। प्रथमाध्याय में गुरुरत्नमाला शीर्षक विमर्श में इस आचार्य का विवरण पायेंगे जहां सिद्ध किया गया है कि भगवन्नाम बोधेन्द्र का सम्बन्ध कांची मठ के साथ न था।

कुम्भकोण मठ रचित गुरुरत्नमाला पुस्तक जहां वंशावली सूची दी गयी है वहां 59 वां आचार्य बोधेन्द्र तक का ही उल्लेख किया है। वंशावली अर्थात् जब कभी भी किसी व्यक्ति से यह लिखा गया होगा उसमें सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक का ही कल्पित नाम व अन्यत्र प्राप्त नामों को संग्रह कर एक कल्पित गुरुवंशावली सूची तैय्यार कर अविच्छिन्न परम्परा होने के प्रमाण में प्रचार हो रहा है। अतः यह कहना भूल न होगी कि कुम्भकोण मठ की नींव 18 वीं शताब्दी में ही डाला गया था और यही मठ का प्रारम्भिक काल है। सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक का वंशावली बिलकुल कल्पित है और यह विमर्श पुस्तक इस विषय की पुष्टी करता है।

(60) अद्वयात्म प्रकाश-(1692-1704 ई०) आपका उर्फ नाम गोविन्द भी कहते हैं और आपका निर्याण गोविन्दपुर में हुआ था। चूंकि कुम्भकोग मठ से कहेजानेवाले आपके गुरु की समाधि गोविन्दपुर में है इसलिये आपका निवास व निर्याण भी गोविन्दपुर कहा गया। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि आप श्रीधर वेंकटेश अय्यावाळ के गुरु थे। तंजौर राजा शाहाजी से भी आप सम्मानित होने का प्रचार करते हैं। कुम्भकोण मठ प्रचार मासिक पत्रिका कामकोटि प्रदीपम में कहा गया है कि श्रीधरवेंकटेश के भाईविद्यार्थी नेरूर के सदाशिव ब्रह्म थे। अतः क्या यह कहा जाय कि अद्वयात्म प्रकाश उर्फ गोविन्द ही नेरूर सदाशिव ब्रह्म के गुरु थे? श्री सदाशिव ब्रह्म अपने गुरु 'परमशिवेन्द्र' का नाम लेते हैं। अतः क्या यह भी कहा जा सकता है कि श्रीधरवेंकटेश अय्यावाळ भी श्री परमशिवेन्द्र के पास विद्याध्ययन किया था? श्री सदाशिव ब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी का ही है। चाहे जो हो, यदि कुम्भकोण मठ प्रचार को स्वीकार कर लें तो यही सिद्ध होता है कि आप तंजौर राजा के आश्रय में थे और आपने तंजौर में एक नया मठ स्थापना कर पश्चात् परम्परा प्रारम्भ किया था। आपके पश्चात् आये हुए आचार्यों ने भी तंजौर राजाओं—प्रतापसिंह 1739/63 ई०, तुलजाजी 1763/87 ई०, अमरसिंह 1787/98 ई०, शरभोजी II 1798/1833 ई०, शिवाजी 1833/1855 ई०,—का आश्रय एवं प्रभुत्व प्राप्त कर इस परम्परा जो 18 वीं शताब्दी प्रारम्भ में शुरु हुई थी उसे जीवित रखते हुए चले आ रहे थे। 17 वीं शताब्दी अन्त काल में कांची एक युद्ध क्षेत्र बन गया था और यह वही समय है जब कांची के तीन मुख्य मन्दिरों के धर्मकर्ताओं ने मुसलमानों के आक्रमणों से डरकर मूर्ति एवं आभूषन सब उदयारपालयम ले गये थे। इतिहास रिकार्डों से प्रतीत होता है कि इस समय कांची में मठ न था और आपका सम्बन्ध कांची कामाक्षी मन्दिर के साथ कुछ भी न था। इन सब विषयों का विवरण अध्याय छः में पायेंगे।

(61—68) महादेव V 1704—1746 ई०, चन्द्रशेखर IV 1746—1783 ई०, महादेव VI 1783—1814 ई०, चन्द्रशेखर V 1814—1851 ई०, महादेव VII उर्फ सुदर्शन 1851—1891 ई०, चन्द्रशेखर VI 1891—1907 ई०, महादेव VIII 1907—1907 ई० (सातदिन), चन्द्रशेखर VII 1907—ई०, वर्तमान मठाधीश। जो कुछ चरित्र सामग्री अब तक उपलब्ध हुए हैं उससे यही सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ 18 वीं शताब्दी प्रारम्भ में तंजौर में स्थापित होकर; पश्चात् 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में कुम्भकोणम् आकर, 1821 ई० में राजा शरभोजी की सहायता द्वारा मठ का निर्माण करा कर; पश्चात् अपनी नाता कांची के कामाक्षी मन्दिर के साथ 1839 ई० में जोड कर; 1842/43 में कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी प्राप्त कर; 1845/46 में अखिलान्डेश्वरी देवी की ताटङ्क प्रतिष्ठा कर; यतिसम्राट सार्वभौम मठ बनने की अभिलाषा से प्रमाणाभास तैय्यार कर प्रचार प्रारम्भ हुआ। एक प्राचीन प्रति ताळपत्र में लिखित 'पल्लवचरित्र' में उल्लेख है कि महादेवसरस्वती जो शृङ्गेरी से भेजे गये थे उन्होंने तंजौर में ही वास किये। इसका विवरण पृष्ठ 229/30 में दिया गया है। सम्भवतः 18 वीं शताब्दी के यही महादेव सरस्वती आपके मठ का प्रथमाचार्य रहे हों! कुम्भकोण मठ का कथन है कि श्री आत्मबोधेन्द्र ने गुरुरत्नमाला की टीका सुषमा को महादेव V (1704—46 ई०) के समय में लिखा था। इसी समय में अन्य प्रमाणाभास पुस्तकें भी तैय्यार किये गये थे। महादेव V का निर्याण स्थल मदरास समीप कहा जाता है पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। एक प्रचार पुस्तक जो मठाधीश की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें लिखा है—'Full particulars are not available about Acharyas 61 to 67. What I have given below about them are taken from Mr. N. K. Venkatesan's book. But his dates are inaccurate.' आप कहते हैं कि 61 से 67 आचार्यों का संपूर्ण चरित्र विवरण उपलब्ध नहीं होता और आचार्यो का काल भी ठीक नहीं है। पुराकाल का विवरण न मिलने का अनेक कारण यथार्थ हो सकता है और कारण कहा भी जा सकता है पर 18 वीं/19 वीं शताब्दी के 'कांचीमठ के जगत विख्यात मठाधीश एवं भारत का शिरोमणि मुखिया सार्वभौम मठ' का चरित्र न उपलब्ध होना आश्चर्य का विषय है। क्या यह अनुमान करना ठीक न होगा कि इन सब आचार्यों के जीवन में ऐसी कोई घटना न घटी जो उल्लेख किया जा सके अथवा जीवन घटनायें ऐसी थी जिसे प्रकाश किया जा न सका हो। यदि 508 क्रिस्तपूर्व से आचार्यों का जीवन वृत्तान्त दे सकते हैं तो क्या कारण है कि समीप काल के 200 वर्षों का वृत्तान्त दिया जा न सका। यदि इनका वास्तविक वृत्तान्त दिया जाय यो यह सिद्ध हो जाय कि आप सब आचार्य तंजौर राजाओं का आश्रय व प्रभुत्व प्राप्तकर और आपका मठ तंजौर राजा से प्रतिष्ठित हो कर एवं आपका सम्बन्ध कांची से या कांची कामाक्षी मन्दिर से पूर्व में कुछ भी न होने का विषय सब निश्चित हो जाने के डर से इन आचार्यों का चरित्र दिया नहीं गया है। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में लिखा है—'His (62nd Acharya Chandrasekhara IV 1746—1783 A. D.) immediate predecessors seem to have led a wandering life, mostly in the southern districts, during the troublous times of the Karnatic wars. But Kanchipuram continued to be the nominal headquarters of the Matha.' कर्नाटक युद्ध का प्रभाव कांची मठ में कितना पडा और यथार्थ में कांची नगर में क्या घटा इन विषयों का विवरण आगे के अध्याय में पायेंगे। इस ऐतिहासिक घटना के बीच में अपनी कल्पित कथा को जोड कर जिसका आधार कुम्भकोण मठ का स्वेच्छावाद है, प्रचार करते हैं। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में जो कथन कहा गया है कि कांची छोड चले जाने के बाद कांची केवल नाम के वास्ते ही मठ का केन्द्र था—'nominal headquarters of the Matha'—सो कथन से इस विषय की पुष्टी करना चाहते हैं कि पुराकाल का मूल मठ सो अब नहीं रहा। प्रश्न तो यह है कि क्या वास्तव में कांची में आपका मठ था? क्या कुम्भकोण मठ स्वरचित एकाङ्गि कल्पित स्वेच्छावाद प्रमाणों

को छोडकर ग्राह्य प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कर सकते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की थी ? कांची में शारदा मठ (दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा मठ रूप में जहां के आचार्य 'चिक्क उडयार' के नाम से संबोधित होते थे) होने का भी प्रचार करते हैं पर कामकोटि मठ कब और किससे प्रतिष्ठित हुआ था ? कुम्भकोण मठ का ताम्रशासन सब 'शारदामठ' का ही उल्लेख करता है तो क्यों अपने मठ नाम 'शारदा मठ' होने का प्रचार नहीं करते ?

बासठवां आचार्य चन्द्रशेखर V (1746—1783 ई०) के बारे में कुम्भकोण मठ की प्रचार पुस्तक में लिखा है—'It must have been in the time of this Acharya that the Kamakoti Pitha was permanently removed from Kanchipuram to Kumbhakonam ... ... The gold image of Kamakshi had been removed first to Udayarpalayam; and then to Tanjore, where it has since been permanently located. And on the invitation of Raja Pratapa Simha (1740—1763) to Tanjore, the matha was permanently removed to Tanjore; but Kumbhakonam on the sacred Kaveri was found more suitable for its location; and the Kanchi Kamakoti Pitha has since then had its headquarters in this town.' उपर्युक्त कल्पित कथनों में कितनी मात्रा की सत्यता है सो विषय जानने के लिये पाठकगण कृपया पांचवां व छठवां अध्याय पढें। ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी रिकार्डों से, उस काल का राजकीय कर्मचारियों से लिखी हुई पत्रों द्वारा एवं पुराकाल के शिलालेख तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि उक्त घटनाओं के साथ आपका कोई सम्बन्ध न था, अतएव कांची मठ स्वर्ण कामाक्षी को न ले गये। पुराकाल रिकार्डों में आपके मठाधीश को 'कांची का नवागन्तुक' एवं 'अपरिचित' कहा गया है। यदि आपका मठ 508 क्रिस्तपूर्व से वहां होता तो आपको 'नवागन्तुक' कहा नहीं जाता।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 63 वां आचार्य महादेव VI (1783—1814 ई०) के समय में (1797 ई० में) श्रृङ्गेरी मठाधीश 'अभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती' ने कांची मठाधीश को एक क्षमा पत्र लिख कर दिया है कि श्रृङ्गेरी मठाधीश न भ्रमण करेंगे या न पादपूजा स्वीकार करेंगे। कांची मठाधीश अपने को 'परमाचार्य, सर्वज्ञ, सर्वसङ्गपरित्यागी, आत्मावारेद्रष्टव्य व्यक्ति, समभाव समदृष्टी' आदि विशेषणों से भूषित किये हुए एवं आद्यशङ्कराचार्य के 'साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा' कहने वाले मठाधीश का उक्त कर्तूत क्या उचित व न्याय था ? परनिन्दा करना, असत्य भ्रामक प्रचार करना तो कुम्भकोण मठ का स्वभाव ही है। क्या कुम्भकोण मठ दिखा सकते हैं या प्रमाण दे सकते हैं कि 'अभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती' श्रृङ्गेरी मठाधीश थे ? श्रृङ्गेरी आचार्य परम्परा में जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती III उक्त काल में मठाधीश थे और आपका मठशासन काल 1770 से 1814 ई० तक था। 1797 ई० में जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती III मठाधीश थे न कि 'अभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती'। चूंकि श्रृङ्गेरी मठ इन सब उन्मत्त प्रलापों पर आक्षेप नहीं करते और इन दुष्प्रचारों से दूर रहते हैं और इन असत्य भ्रामक प्रचारों के विवाद विषयों में भाग नहीं लेते तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कुम्भकोण मठ निराधार दुष्प्रचारों से परनिन्दा करें। अपने को अद्वैती कहने वाले परमाचार्य का इस काला कर्तूत से पाठकगण स्वयं जान लें कि आपमें कितनी योग्यता थी और प्रचारकों में कितनी है।

64 वां आचार्य चन्द्रशेखर V (1814–1851 ई०) के बारे में कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में लिखा है– 'In his day, the temple of Sri Kamakshi at Kanchi not then under the management of the mutt ... ...', अर्थात् आपका अभिप्राय है कि इसके पूर्व काल में कांची कामाक्षी मन्दिर का अधिकार मठ को था। ईस्ट-इन्डिया कम्पनी रिकार्ड, जिला कलक्टर श्री ए. फ्रीज व कांची तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव के पत्रों, मदरास बोर्ड-आफ-रेवन्यू एवं कांची कामाक्षी मन्दिर के परम्परागत धर्मकर्ता (स्थलत्तार व स्थानीकर) के रिकार्डों द्वारा यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि किसी समय में भी कांची मठ का अधिकार कामाक्षी मन्दिर पर न था। प्रथम बार कुम्भकोणम् से कांची आकर तथा ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी राजकीय महकमें से अनुमति प्राप्तकर 1839 ई० में आपने कुम्भाभिषेक किया था। पश्चात् ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी के सनद ता. 5—11—1842 के अनुसार प्रथम बार आपको मन्दिर का ट्रस्टी बनाया गया था। आपके 68 वां आचार्य ने 1948 ई० में इस पदवी से हट गये और मन्दिर का निर्वाह मदरास राज्य का H. R. C. E. Board ने अपने हाथ में ले लिया। इन सब विषयों का विवरण छटवें अध्याय में पायेंगे। कुम्भकोण मठ धन्यवाद के पात्र हैं कि आपने कम से कम एक बार तो सत्य कथन कहा कि कामाक्षी मन्दिर का अधिकार उन दिनों में आपके हाथ में न था। तंजौर राजा शरभोजी ने 1821 ई० में कुम्भकोणम् में एक मठ का निर्माण कराया था जो विषय इस मठ के एक शिलाशासन से मालूम होता है।

तंजौर राज्य मंत्री गोविन्द दीक्षीत के वंशज श्रीवेङ्कट सुब्रह्मणिय दीक्षित थे जो कुम्भकोण में रहते थे। आपने ही सन्यास लेकर चन्द्रशेखर V का नाम धारण किया। यह सब कर्नाटकी ब्राह्मण वर्ग एक समय मैसूर प्रान्त होयसाला मण्डल से आये हुए थे और तंजौर में वास करते थे। इस वंशज के श्रीगोविन्ददीक्षित एक समय तंजौर राज्य का मंत्री था और आपका प्रभुत्व, प्रभाव व पान्डित्य अपार था। इसीलिये आपलोगों ने तंजौर राजा का आश्रय पाकर उनके प्रभाव व प्रभुता की सहायता भी पाकर इष्ट काम्य पूर्व में प्राप्त किये थे। 64 वां आचार्य पश्चात् सब आचार्य 65, 66, 67 एवं वर्तमान 68 वां आचार्य इसी वंशज के हैं। आप लोगों को कर्नाटकी भाषा पद 'चिक्क उडयार' (छोटे स्वामी) की पदवी थी चूं कि आचार्य शङ्कर से दक्षिणाम्नाय प्रतिष्ठित श्रृङ्गेरी शारदा मठाधीशों को कर्नाटकी भाषा में 'दोड्ड उडयार' (बडे महान स्वामी) के नाम से भी पुकारा जाता था। कांची मठ की मुद्रा उन दिनों में कर्नाटकी भाषा में थी और आपका मठ नाम 'शारदा मठ' था। इससे प्रतीत होता है कि आप सब आचार्य एक समय दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा मठ के अधीश थे। चन्द्रशेखर V के काल में ही (1814-1851 ई०) ताटङ्क प्रतिष्ठा मुकद्दमा चली थी जिसका विवरण पाठकगण प्रथमाध्याय में पायेंगे। उन दिनों में मठ का सर्वाधिकारी श्री गणपति शास्त्री थे। कहा जाता है कि श्री गणपति शास्त्री ने अपने समय में इस नवीन प्रतिष्ठित कुम्भकोण मठ को समृद्धशाली व प्रख्यात बनाया था। आपके समय में अन्तिम तंजौर राजा, राजा शिवाजी, ने एक आचार्य का 'कनकाभिषेक' किया था और इसके द्वारा आपने मठ के लिये जमीन भी खरीदी थी। श्रेष्ठ विज्ञ वृद्धों से यह भी सुना जाता है कि श्री गणपति शास्त्री ने इस नवीन प्रतिष्ठित मठ को 'स्वतंत्र, सर्वोत्तम, सर्वोच्च, जगत् विख्यात, सार्वभौममठ, यतिसम्राट' बनाने का एक कार्यक्रम भी तैय्यार किया था और इसके अनुसार इस प्रचार के लिये सामग्री व प्रमाणाभास भी तैय्यार किया था। चाहे जो हो, अब से यह मठ दिन पर दिन अपना प्रभुत्व एवं धर्मशासन सीमा तंजौर एवं आसपास सीमा पर भी फैलाने लगे। प्रथमबार 1839 ई० में कुम्भकोणम से कांची आकर कामाक्षी का कुम्भाभिषेक कराकर पश्चात् 5.11.1842 में मन्दिर पर अधिकार प्राप्त कर तत्पश्चात् तिरुची की अखिलान्डेश्वरी की ताटङ्क प्रतिष्ठा कर कांची, तंजौर एवं तिरुची जिला का एक हिस्सा पर अपना धर्म प्रभुत्व जमाया। एक समय के तंजौर जिला 'कुम्भकोणम् शङ्कराचार्य' अब 'कांची कामकोटिपीठ जगद्गुरु शङ्कराचार्य' बन गये। इनसे कल्पित प्रमाणाभासों का विवरण प्रथमाध्याय में जगह जगह पायेंगे।

65 वां आचार्य महादेव VII (1851—1891 ई०) का उर्फनाम श्री सुदर्शन भी था। आपने इस मठ के नाम को विख्यात बनाने, मठ की महत्ता बढाने, मठ प्रचार सामग्रियों का प्रचार कर प्रमाणाभास को प्रमाण होने का विषय सिद्ध करने एवं अपने मठ को सर्वोत्तम, सर्वोच्च, सार्वभौम मठ बनाने के लिये आप दिग्विजय यात्रा में चल पडे। आपका ध्येय उत्तर भारत भ्रमण करते हुए वाराणसी तक पहुंचने का आयोजन था पर आप पूरीजगन्नाथ से लौट दक्षिण भारत आये। मठ प्रचार पुस्तक में लिखा है—'He started on an all-India tour, but when he went as far as Jagannath, he had to return, owing to certain obstacles.' कहा जाता है कि आप कुछ अडचन तथा बाधाओं के कारण दक्षिण लौट आये। 'कुछ रुकावट तथा बाधाओं के कारण' कहने से क्या तात्पर्य है? इन बाधाओं का विवरण दिया नहीं गया है। यह वह समय था जब कुम्भकोण मठ ने प्रमाणाभास पुस्तकें तैय्यार कर जैसे अप्रामाणिक परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय, अनुपलब्ध अग्राह्य मार्कन्डेय संहिता, क्षिप्त शिवरहस्य नवमांश षोडशोध्याय, श्रीमुख दर्पण, श्रीमुख व्याख्या, नवीन मठाम्नाय सेतु, श्री रामानुज अय्यङ्गार द्वारा प्राप्त सिद्धान्त पत्रिका, शङ्करचरित्र में नवीन कथायें जोड कर, प्रचार प्रारम्भ किया था। स्वरचित एकाङ्गि प्रमाणाभास पुस्तकें—गुरुरत्नमाला, पुण्यश्लोक मंजरी, सुषमा व्याख्या—भी प्रकाश होकर प्रचार होने लगा था। कुम्भकोण मठ आम्नाय मठ बनने की लालसा से चार वेद, चार उपदेष्टव्य महावाक्य, चार संप्रदाय, चार ब्रह्मचारी, चार दृष्टिगोचर आम्नाय, आचार्य शङ्कर के चार मुख्य शिष्य एवं दस अङ्कित नाम जो सब धर्मशास्त्र एवं यतिधर्म प्रामाणिक ग्रन्थो से पुष्टी की गयी है उसके बदले आपके कुम्भकोण मठ ने पांच वेद, पांच उपदेष्टव्य महावाक्य, पांच संप्रदाय, पांच ब्रह्मचारी, पांच दृष्टीगोचर आम्नाय, आचार्य शङ्कर के पांच शिष्य, पांच बार अवतार लिये शङ्कर का चरित्र, ग्यारह अङ्कित नाम आदियों का नवीन रचना कर एक मठाम्नाय सेतु तैय्यार कर प्रचार करने लगे। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित 'मठाम्नाय' एवं 'महानुशासन' को असत्य ठहराने का प्रचार भी होने लगा। माधवीय शङ्करविजय की मान्यता व प्रामाणिकता को घटाने का उद्देश्य से इस पुस्तक पर अपने प्रचारों द्वारा कीचड फेंकने लगे। उक्त सब प्रचारों द्वारा प्रचार करने लगे कि कांची कामकोटि मठ जो आचार्य शङ्कर द्वारा निजमठ रूप में प्रतिष्ठित हुई थी उसी में आप अधिष्ठित भये और केवल कांची परम्परा एकमात्र आचार्य शङ्कर का अविच्छिन्न परम्परा है और अन्य चार आम्नाय मठ शिष्य परम्परा मठ हैं। आपका मठ ही 'जगत् विख्यात, सर्वोच्च, मुखिया, सार्वभौम' मठ है और आपलोग सब जगद्गुरु पदवी के अर्ह हैं और अन्य चार मठ केवल 'श्री गुरु' पदवी के अर्ह हैं। यह भी प्रचार हुआ कि अन्य चार शिष्य मठ आपकी आज्ञा बिना भ्रमण नहीं कर सकते। यदि पाठकगण इन दुष्प्रचारों पर सन्देह करें कि कोई बुद्धिमान अद्वैतमतावलम्बी हिन्दू ऐसा प्रचार नहीं कर सकता है, उनको मैं प्रमाण देकर सिद्ध कर सकता हूं कि जो कुछ मैं ने कहा है सो सब सत्य हैं और ये सब कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों से ही लिये गये हैं। ऐसे भ्रामक मिथ्या प्रचारों के कारण देश के कुछ विज्ञ सज्जनों के हृदय में दुःख हुआ और वे अन्य स्वतंत्र मत रखनेवाले विद्वानों के साथ मिलकर इन प्रचारों का खूब खन्डन भी किया। जगह जगह सभायें हुई और कुम्भकोण मठ के प्रचारों का खन्डन भी किया गया था। इसी समय उत्तर भारत में मठविषयक चर्चा उठी और 1886 ई० में काशी के 79 दिग्गज प्रकान्ड विद्वानों व आदरणीय परिव्राजकों ने एक व्यवस्था दी थी कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। कुछ अन्य शाखा मठ भी प्रचार शुरु कर दिया था कि आपकी शाखा मठ ही पूर्व में मूल मठ था और जो मूल मठ है सो शाखा थी। ऐसी परिस्थिति में कुम्भकोण मठ के 65 वां आचार्य महादेव VII उर्फ सुदर्शन दिग्विजय यात्रा निमित्त कुम्भकोणम् से चल पडे और अपने मठ प्रचारों की पुष्टी करते हुए आगे बढे। पर पूरी जगन्नाथ से आपको लौट आना पडा। उन दिनों में आन्ध्र देश में जो सनसनी फैली थी और आपके प्रचारों का खन्डन किया गया था, उन सबको आप रोक न सके और खण्डनकारों से न सामना कर सके। अब कुम्भकोण मठ इस विषय

को मानने तैय्यार न होंगे पर अपने प्रचार पुस्तकों में लिखते हैं 'कुछ बाधाओं के कारण' लौट आये। क्यों नहीं इन बाधओं की सूची बनाकर प्रकाश कर देते? उन दिनों में प्रकाशित एवं म. म. कोक्कन्ड वेंकटरत्नम पन्तुलु से रचित 'शांकरमठतत्त्वप्रकाशिका' पुस्तक पढा जाय तो स्पष्ट मालूम होगा कि कुम्भकोण मठ का कर्तूत सब काले कर्तूत थे। जैसे युद्धक्षेत्र में सेना विपक्षीदल के बल पर दबने लगता है, पीछे हटने लगता है व पराजित होने वाला है तब वह दल सुसमय मे ही हारने के पूर्व पीछे हट जाता है जिसे आंगल भाषा में 'Retreat in good order' कहते हैं उसी प्रकार कुम्भकोण मठाधीश ने किया था। विज्ञ विद्वानों के खण्डन का प्रभाव अधिक होने से कुम्भकोण मठाधीश अपना प्रचार बन्द कर दिया था।

66 वां आचार्य चन्द्रशेखर VI (1891—1907 ई०) का चरित्र न देने से आपका चरित्र विवरण 'जगत विख्यात्' महत्त्वपूर्ण न होने का संकेत करता है। कुछ पुस्तकों में 1908 ई० निर्याण काल दिया है और कुछ पुस्तकों में 1907 ई० दिया है। आपके पश्चात् 67 वां आचार्य श्री महादेव VIII अपने 18 वें वर्ष में मठाधीश बने। आप केवल सात दिन के लिये मठाधीश थे और आपका निर्याण पराभव वर्ष (1907 ई०), फाल्गुन माह, शुक्लपक्ष प्रथमा के दिन हुआ था। मठ प्रचार पुस्तक में उल्लेख है–'**In his eighteenth year, he succeeded to the Peetha, but owing to his deep grief over the siddhi of his guru, he himself attained siddhi in the same village after seven day's time.**'—अठारह वर्ष का युवक आचार्य भये और आप अपने गुरु के निर्याण से बहुत दुःखित होकर उस वियोग को सह न सके और आप भी सात दिन बाद इस लोक से चलते भये। आपके मरण के बारे में अनेक किंवदन्तियां हैं पर सब अफवाह हैं।

वर्तमान श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी श्री कुम्भकोण मठ वंशावली सूची में 68 वां आचार्य हैं। आपका जन्म 20—5—1894 था और आपने सन्यासाश्रम 1907 ई० में लिया था। आपने 1914 ई० में कुम्भकोणमठ निर्वाह व अधिकार अपने हाथों में ले लिया था। आप स्वार्थ तथा परमार्थ के मर्मज्ञ माने जाते हैं। आपने भारत वर्ष की यात्रा की है। आपके पूर्वाचार्य (65 वां मठाधीश) महादेव VII उर्फ सुदर्शन (1851—1891 ई०) से अधूरा छोडा कार्य को आपने अपने भ्रमण में पूर्ण किया था। आपकी काशी यात्रा समय (1934/35 ई०) ही काशी में आपके मठ प्रचारों के बारे में वादविवाद खडा हुआ। आपने अपनी यात्रा में कृपाभाजन विद्वानों का सहायता प्राप्त कर 'अनुमोदन पत्र, अभिनन्दन पत्र, स्वागत पत्र, व्यवस्थापत्र, प्रार्थना पत्र, प्रमाण पत्र' आदि पत्रों का संग्रह किया था और अब इनके द्वारा अपने प्रचारों की पुष्टी की जाती है। आपका दिग्विजय यात्रा विवरण पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है जिसमें काशी यात्रा बिवरण यथार्थ में दिया नहीं गया है। काशी में जो हालत आपके मठ पर बीती और जिस प्रकार आपके भ्रामक मिथ्या प्रचारों का भन्डा फोड दिया गया था, सो सब विवरण आपकी पुस्तक में पायी नहीं जाती है। मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्मा एवं मेरे सामने काशी में 1934—35 ई० में जो कुछ घटा और जो हालत आपके मठ के बारे में बीती थी उसी का विवरण एवं कुम्भकोण मठ विषयक विवाद विवरण सब मुझ से प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में दिया गया है। कुम्भकोण मठ की बनावटी ख्याती 'सार्वभौम मठ' को प्रचार करने के लिये आपने बहुत उद्योग किया है। आपके मठ बारे में जो कुछ प्रचार 1915 ई० से हो रहा है और जिस प्रचार का शिखर 1960-62 में पहुंच चुका है इसकी तुलना में आपके पूर्वाचार्यों ने उतना प्रयत्न किया न होगा। भारत के विविध भाषाओं में आपके मठ प्रचार पुस्तक उपलब्ध होते हैं और प्रचार सामग्री की बंटवारा आधुनिक काल के प्रचार मार्गों के अवलम्बन द्वारा होता है। ऐसे समय में जब नवीन् सभ्यता से अपने धर्म के प्रति साधारण जनों में विश्वास की शैली कम होती जा रही है तो कुम्भकोण मठाधीश का धर्मोपदेश एवं

स्वयं धर्मानुष्ठान की शैली ऐसे युग में प्रशंसनीय है और हम सब कृतज्ञ हैं। पर इसके साथ यह भी कहना पडता है कि ऐसे धर्म प्रचार कार्यों के साथ अपना मठ का भ्रमात्मक मिथ्या प्रचार कदापि न करने की कृपा करें। व्यक्तिगत कोई चाहे कितना ही महान पुरुष हो पर यह व्यक्ति को अधिकार नहीं है कि वह परम्परा प्राप्त दृढ प्रमाणों के आधार पर जो वृद्ध श्रेष्ठों को ग्राह्य था ऐतिहासिक व्यक्ति की कथा को अपने भ्रामक मिथ्या प्रचारों से बदल दें या उसे स्वकल्पित स्वेच्छावाद प्रमाणाभास एकङ्गि प्रमाणों के आधार पर उक्त दृढ प्रमाणों पर पर्दा डालकर उसे अप्रमाणिक ठहरांय।

आपके पूर्वजों को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी जो 5—11—1842 को प्राप्त हुई थी उसे आपने 1948 ई॰ में ट्रस्टी पदवी से इस्तिफा दे दी थी। सुना जाता है कि कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर ने आपके मठ के ऊपर अनेक दोषारोपण कर एक लम्बी पत्र मदरास राज्य को भेजा था जिसके फलाभून आपने इस पदवी से इस्तिफा दे दी थी। पर कुम्भकोण मठ इस्तिफा देने का कारण और ही कुछ बताते हैं। सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि कुम्भकोण मठाधीश सब अपने को 'कांची कामकोटि पीठाधीश' कहते हैं पर आपके मठ का सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर जहां 'कामकोटि पीठ' है इसके साथ पूर्व काल में (1842 ई॰ के पूर्व) न था और न 1948 ई॰ पश्चात् है। अन्य चार आम्नाय मठ के अधीश अपनी अपनी पीठ का निर्वाह अपने हाथ में रक्खे हैं पर कुम्भकोण मठ की देवी पीठ आपके निर्वाह में नहीं है। इसीलियें अपनी गलत को सुधारने के लिये अब भगीरथ प्रयत्न कर इस मन्दिर का निर्वाह अपने हाथ में ले लेने की कोशिश हो रहा है। 1955 ई॰ में आपने कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह HRCE Board से प्राप्त करने निमित्त प्रयत्न किया था पर सब प्रयत्न विफल रहे। पुनः 1960 ई॰ में यह प्रयत्न किया गया कि कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह अपने हाथ आ जाय। सुना जाता है कि कामाक्षी मन्दिर के कुछ स्थानीकर इस निर्वाह पदवी (ट्रस्टी पदवी) कुम्भकोण मठाधीश को न देने का समर्थन करते हुए मदरास राजकीय अभिप्राय का विरोध भी किया था। यह भी सुना जाता है कि कुम्भकोण मठाधीश ने HRCE Board को 15—2—1960 के दिन एक पत्र लिखकर कहा कि आपने अपना मठाधिकार सब त्याग कर दिया है और आपके शिष्य श्री जयेन्द्रसरस्वती को अधिकार दे दिया है। पर व्यवहार में, कुम्भकोण मठ प्रचार पत्रों में एवं मदरास के कुछ पत्रिकाओं में जो आपकी यशोगान दिनरात करती रहती है उन सबों में देखा जाता है कि वर्तमान 68 वां आचार्य ही मठाधीश अब भी हैं यद्यपि आपने अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये कानून की आखों में अपनी इस्तिफा दे दी है। सुना जाता है कि हाल ही में मदरास राज्य का HRCE Board ने आपके शिष्य 69 वां आचार्य को ट्रस्टी पदवी पर नियोजन किया है। इसके विरोध में कामाक्षी मन्दिर का स्थानीकर ने HRCE Board के फैसले पर अपील दर्ज किया है। यह सब विषय इसलिये दिया जाता है कि पाठकगण जान लें कि 'चलतेफिरतेदेव', 'परमशिवावतार,' 'दक्षिणामूर्ति अवतार' कहे जाने वाले कुम्भकोण मठाधीश स्वार्थ के मर्मज्ञ हैं या परमार्थ के मर्मज्ञ हैं? आपके मुकद्दमे एवं व्यावहारिक विषयों की एक सूची बनायी है जो अन्यत्र पायेंगे। परमार्थ के मर्मज्ञ इन सब वासना विषयों से दूर रहते हैं। परमशिवावतार की लीला ही अपार है!

कुम्भकोण मठाधीश बननेवाले 69 वां आचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती हैं। आपको 1954 ई॰ में सन्यासाश्रम दिया गया था। आप तामिल वर्ग के हैं। अब तक जो कर्नाटक ब्राह्मण ही मठाधीश बनते थे उस रूडी को तोडा गया है। सम्भवतः जो 'कामकोटि प्रदीपम' में प्रचार हो रहा है कि कुम्भकोण मठ तामिलनाड का मठ है और तामिलनाड के लोग इसे समृद्ध बनायें तथा आचार्य शङ्कर से स्थापित जो दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरि मठ है सो कर्नाटक मठ है, उसकी पुष्टी में यह कार्य किया गया हो! तामिलनाड मठ के लिये तामिल वर्ग का आचार्य बनाने से ही प्रचार करने में सुविधा होगी।

अध्याय--5

कांची कुम्भकोण मठ का ताम्र शासन

कुम्भकोण मठाधीश ने दक्षिण भारत के तंजौर तथा आसपास जिलों के स्मार्त निवासियों की एक शिष्य टोली बनाई। यह टोली एवं कुम्भकोण मठ के द्वारा प्रायः 150 वर्षों से प्रचार किया जा रहा है कि श्रीआचार्य शङ्कर ने एक पांचवा मठ कांची में स्थापना की तथा वहीं अधिष्ठित होकर कांची में निर्याण हुए थे। कांची मठ की साक्षात् महागुरु परम्परा ही आजतक कुम्भकोण मठ की परम्परा में अविच्छिन्न रूप द्वारा पायी जा रही है। इस कल्पित प्रचार द्वारा अब यह घोषित कर रहे हैं कि श्रीआचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चारों मठों का गुरु मठ कांची मठ है और इसका धर्मराज्य सीमा चार मठों की सीमा को परिचालन का ही है। कुम्भकोण मठ के कल्पित मठाम्नायसेतु में यह भ्रामक प्रचार स्पष्ट उल्लेख है। आगे आप प्रचार भी करते हैं कि कुम्भकोण मठ की कांची कामकोटि देवी (कामाक्षी) तथा दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी की देवि (शारदा), ये दोनों शक्तिपीठ इनके मठ का है। कुम्भकोण मठाधीशों को विशेष रूप से अलग सर्वश्रेष्ठ योगपट्ट 'इन्द्र' एवं 'सरस्वती' का है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कांची कामकोटि पीठ की अधिष्ठात्री कामाक्षी है और इनके मठ का नाम शारदा मठ है (अब कुछ वर्षों से व्यवहार में और प्रचार पुस्तको में कामकोटि मठ का नाम लेते हैं और शारदा मठ का नाम नहीं लेते)। दक्षिणाम्नाय मठ श्रीशृङ्गेरी की धर्मराज्य सीमा जो सारे दक्षिण भारत की है (आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय एवं महानुशासन पुष्टी करता है) उस दक्षिणाम्नाय सीमा के समस्त आचार्य शङ्कर भक्तों में कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों ने न्यूनता एवं फूटभाव उत्पन्न करके दो दल बना दिया है।

प्रस्तुत कुम्भकोण मठाधीश 1914 ई० में अपने मठ का निर्वाह हाथ में लिये यद्यपि उन्हें सन्यास आश्रम की दीक्षा 1907 ई० में दिया गया था। कुम्भकोण मठाधीश अपने दीर्घ प्रयत्न तथा लोक व्यवहार की निपुणता व चातुर्यता द्वारा अनेक शिष्यों, अनुयायियों व अभिमानियों को एकत्रीत करके अपने तथा कुम्भकोण मठ के यशोगान तथा आधुनिक रीति से प्रचार करने के योग्य एक टोली बना ली। स्वयं प्रख्याती एवं अन्यों के यशोगान ने उनके दिल में अहङ्कार व ममता उत्पन्न कर दिया और इसके फलाभूत आपने तंजौर जिले की सीमा छोडकर तथा 'चिक्क उडयार' पदवी को छोडकर, अब इस मठाधीश ने भारतवर्ष की पदवी 'श्रीमज्जगद्गुरु' पाने के प्रोत्साहन से अपने शिष्य टोली में भाव पैदा कर दिया है। कुम्भकोण मठाधीश की नवीन रीति के प्रचारों का नमूना जो आज भी देखने में आता है, वह भ्रामक प्रचार दक्षिणी भारत के लोगों में भ्रम पैदा कर दिया है तथा चारों शङ्कर मठों के अनुयायियों में फूट भाव उत्पन्न कर दिया है। 1910 ई० तक दक्षिणी भारत में इनका नाम केवल तंजौर तथा आसपास के जिलों में मालूम था। 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में प्रमाणाभास पुस्तकें सब तैय्यार होकर अपने प्रचारों की पुष्टी में स्वकल्पित प्रमाणों का भी तैय्यारी की गयी थी। 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में जब इनका प्रचार समस्त भारत वर्ष पर 'श्रीमज्जगद्गुरु' पदनी पाने की चेष्टा प्रारम्भ हुई थी तब इन्होंने अपने पूर्व स्थिति को (चिक्क उडयार—छोटे स्वामी) त्याग कर दिया। 1916 ई० में कुम्भकोण मठ का एक प्रचार पत्र 'आर्य धर्मम्' नाम से प्रकाशित होने लगा और इस पत्र द्वारा इनके कल्पित भ्रामक मिथ्या प्रचारों का विस्तार होने लगा। कुम्भकोण मठ कृपाजन विद्वान्, शिष्य भक्त व अनुयायियों द्वारा इस 35 वर्ष काल में करीब 60 प्रचार पुस्तकें तामिल, तेलगू, कर्नाटक, मलयालम, आङ्गल, हिन्दी, मराठी, ग्रन्थाक्षर व नागरीलिपि संस्कृत आदि भाषाओं में छपकर प्रकाशित हुए हैं। मेरे

पास 60 पुस्तकें हैं और न मालूम कितनी और भी उपलब्ध होंगे। मठ प्रचारकों ने भी मठ की ख्याती शहर शहर गांव गांव गाते हुए प्रचार करने लगे।

यदि आचार्य शङ्कर के समसामयिक काल अथवा उनके समीप काल के ग्रंथ कुम्भकोण मठ के प्रचारों का समर्थन करें तो इसमें आपत्ति नहीं है। अथवा आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चार मठाधीश इनके प्रचारों को स्वीकार व समर्थन कर लें तो इन प्रचारों से किसी को भी आपत्ति नहीं हैं। क्योंकि आचार्य शङ्कर की समसामयिक पुस्तकें भी नहीं मिलती अथवा अन्य ग्रंथ भी उनके समीप काल के नहीं मिलते तथा कुम्भकोण मठ के प्रचारों का समर्थन चार मठाधीश भी नहीं करते, इसलिये इन्हें अपने प्रचारों की पुष्टी के लिये नये कल्पित भ्रामक ग्रंथों की रचना करना पडा। शङ्कर दिग्विजय ग्रंथ जो अब उपलब्ध हैं और जो प्राचीन, सर्वमान्य व आदरणीय हैं उस किसी पुस्तक में भी आपके प्रचारों का समर्थन नहीं है। इतिहास, शिलालेख, ताम्रशासन, एवं वृद्ध परम्परागत कथा भी इन प्रचारों की पुष्टी नहीं करती। कुम्भकोण मठ श्रीआचार्य शङ्कर का स्वयं मठ होता तो चार मठों के प्रथमाचार्यों द्वारा रचित ग्रंथों में अवश्य उल्लेख होता? पर कोई ऐसा ग्रंथ आपके मठ का समर्थन नहीं करता। कुम्भकोण मठ के प्रचारित प्रमाणाभास सब अर्वाचीन काल के हैं और सब एकाङ्गि हैं। यदि इन एकाङ्गि पुस्तकों का छानबीन किया जाय तो यह निःसन्देह निश्चित होता है कि यह सब स्वार्थ के लिये ही कल्पित रचे गये हैं अथवा पुराकाल की पुस्तकों में क्षिप्त किये गये हैं। जिस प्रकार इन 150 सालों से अनेकानेक नवीन कल्पित पुस्तक जो पुरा काल में सुना न, देखा न, पढा न, गया हो वे सब अब पुराकाल रचित ग्रंथ के नाम से नवीन प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में यह कहना आश्चर्य न होगा कि अचानक कुम्भकोण मठ कोई एक कल्पित पुस्तक श्रीआचार्य शङ्कर द्वारा रचित कहकर एक ग्रंथ दिखायें जिसमें इनके मठ को सर्वोच्च, सर्वोत्तम व महागुरु पीठ व मठ का वर्णन हो। कुम्भकोण मठ समीप नडुकावेरी वासी प्रकान्ड पन्डित श्रीभट्ट श्रीनारायण शास्त्रीजी आपके मठ के विषय में लिखते है 'अपूर्वम्, अश्रुतम्, अज्ञातम्, अदृष्टम्'। पर 'यतिचक्रवर्ति' पदवी पाने की लालसा से क्या क्या किया नहीं जा रहा है। चक्रवर्ति क्षत्रिय का गुण है तथा श्रीआचार्य शङ्कर के 'आत्मज्ञान' ये दोनों विपरीत हैं तथापि सर्वोच्च सर्वोत्तम श्रीआचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा कहनेवाले कुम्भकोण मठ इसका कोई परवाह नहीं करते। इनके प्रचारित प्रायः सब पुस्तकें उसी जिले से प्रकाशित हैं जहां पर इनका समीप काल से प्रभाव अधिक है। इन प्रचारित पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियां जो कुछ भी उत्तरभारत में प्राप्त होती हैं उन सबों में इनके द्वारा उद्धृत पंक्तियां पायी नहीं जाती, अथवा पाये जांय तो शब्दों का अदल बदल नवीन जोड किया हुआ क्षिप्त ही मालूम पडता है। उत्तर भारत के प्रकान्ड विद्वानों एवं ग्रंथ रचयिताओं को क्या कांची के विरुद्ध द्वेष था? ये सब ग्रंथ शृंगेरी को ही दक्षिणाम्नाय मठ होने का क्यों उल्लेख करते हैं? इस प्रकार की अनेक त्रुटियों के कारण कांची मठवाले ग्रंथों को छोडकर शासन पत्र, ताम्रशासन, अदालत के निर्णय इत्यादि दिखाकर व प्रचार करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि इनका कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ ही महागुरु मठ एवं पांचवा सर्वोत्तम सर्वोच्च मठ है।

दानादि धर्म कर्मों में पुराकाल के लोग संकल्प करते समय अथवा दान देते समय अथवा शासन पत्र लिखते समय वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र व पर्व इत्यादि का ध्यान रख कर कर्म करते थे एवं इन विवरणों को शासनों में स्पष्ट उल्लेख करते थे। यथार्थ में दान दिया गया हो तो इन विषयों को पंचाङ्ग से उद्धृत कर लिखते थे। इन विषयों के गलत होने से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि ऐसे शासन पत्र कल्पित तथा अर्वाचीन हैं और स्वार्थ के लिये ये सब नये रचे गये हैं। कुम्भकोण मठ के अनेक शासनों में इन विषयों की त्रुटी अधिकमात्रा में पायी जाती है। शासन लिपि का भी ध्यान देना आवश्यक है। कालान्तर होने पर भाषा की लिपी भी बदलती है और

शासन काल की प्रचलित लिपि का ही होना परम आवश्यक है। कुम्भकोण मठ के कुछ शासन पत्र की लिपि उस काल के शासन का बोध नहीं करती। शासनों में शासन भाषा रचयिता का नाम तथा शासन पत्र (ताम्रं, शिला इत्यादि) के बनाने वालों का नाम भी दिया जाता है। इनमें त्रुटी हो तो वह शासन भी ग्राह्य नहीं है। शासनों में दान देने वाले का नाम तथा दान प्राप्त करने वालों का नाम भी स्पष्ट रूप से उल्लेख रहता है। यदि इनमें भी भूल हो तो उस शासन को अर्वाचीन तथा कल्पित कहा जा सकता है। दान देने वालों का नाम इतिहास व अन्य प्रमाणों से पुष्टी होनी चाहिये नहीं तो वह शासन कल्पित कहा जा सकता है। समयानुकूल काव्य शैली और भिन्न पदों का उपयोग पृथक पृथक होने के कारण शासन काल की शैली व भाषा का ध्यान भी रखनी चाहिये। शासन में दी हुई संपत्ति का मालिक उस समय के शासन देने वाले के हक व अधिकार में होना परम आवश्यक है। दूसरों की संपत्ति दान दाता को दान देने का अधिकार नहीं है। कुम्भकोण मठ के शासन पत्रों में कुछ ऐसी त्रुटी भी पाई जाती है। श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं कि ताम्र शासनों का जांच करते समय निम्न दिये विषयों पर ध्यान रखना चाहिये— '(1) Opening is with an invocation, (2) Preamble—The Prasasti—name and achievements of the ruler and his ancestors—this may be in a set form found common to several records, (3) Description of the actual donor, (4) Description of the donee, (5) Description of the gift and description of the object given, (6) Conditions of the gift and (7) Date and details of the Sashana with description of the place etc.' इन सब विषयों को ध्यान में रख कर कुम्भकोण मठ की शासनों पर आन्वेषण किया जाय अथवा विवेचना किया जाय तो हम यह स्पष्ठ रूप से कह सकते हैं कि अनेक शासन पत्र जो सब कल्पित तथा अर्वाचीन काल के हैं।

प्रायः सौ साल पूर्व जब Col. Mackenzie साहब ने शासनों के द्वन्ढ में अपने कर्मचारियों को प्रत्येक जगह पर भेजा था तब आपको कर्मचारियों द्वारा पता चला कि कुम्भकोण मठ में सौ से भी ज्यादा शासन हैं। Col. Mackenzie के कर्मचारी (महराष्ट्र भाषा अनुवादक) श्री बाबूराव कहते हैं कि जब वे ताम्रशासन की खोज में कुम्भकोण मठ पहुंचे तो उन्हें मालूम हुआ कि कुम्भकोण मठ के पास प्रायः 125 ताम्र शासन हैं। श्री बाबू राव लिखते हैं कि रूपया चार खर्च कर के फलफूल इत्यादि देनेपर कुम्भकोण मठ के कर्मचारी ने आपको एक 'अग्रहार' ले जा कर ताम्र शासनों को दिखाया। इसका पूर्ण विवरण Col. Mackenzie के संग्रह, Vol. II, तथा श्री Wilson से प्रकाशित पुस्तक (1828 ई०) में पायेगें। श्रीयुत एम्. सुब्रह्मणियम् ने 'हिन्दू' मदरास के पत्र 27—6—1954 में एक लेख प्रकाश किया है। आप लिखते हैं :—'In the light of the information supplied by Bapu Rao, it is clear that at this time, the Mutt was in possession of 125 Copper plate grants, each consisting of 5 or 6 plates. But we are at a loss to make out what became of them as only 10 Copper plate grants that are published by Gopinatha Rao are in the possession of the Mutt to-day. It is said however that many of the copper plates were melted down for being converted into copper vessels ... ...' इससे प्रतीत होता है कि ताम्रशासनों को गला कर ताम्र धातु के बर्तन बनाये गये। क्या यह सम्भव है ? क्या कोई अपने प्रमाणों को नाश कर सकता है ? सुना जाता है कि यह सब ताम्र शासन 'शारदा मठ' के नाम से था और बहुत सा शासन श्री श्रृङ्गेरी शारदा मठ का था। क्यों कि ये सब शासन पत्र कांची मठ के भ्रामक प्रचारों के विरुद्ध थे इसलिये इन ताम्र शासन पत्रों को नष्ट कर दिया गया। Col. Mackenzie के कर्मचारी श्रीयुत बाबू राव कुम्भकोण

मठ के कर्मचारी के पास ये सब शासन पाये। यह कहा जाता है कि श्री शृङ्गेरी की शाखा मठ के कर्मचारी के पास कुछ शासन पत्र थे और सम्भवतः उनसे यह सब शासन पत्र प्राप्त किये गये होंगे। कुम्भकोण मठ ताम्रशासनों में 'शारदामठ' का उल्लेख है और इसे 'कामाक्षी' का ही 'शारदा मठ' कह करके, एक ही होने का प्रचार कर, इन 'शारदा मठ' ताम्रशासनों को अपना बतलाते हैं। कांची का कहेजानेवाले 'कामकोटि मठ' अब कैसे 'शारदा मठ' बन गया? स्वेच्छावाद के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित दक्षिणाम्नाय का 'शारदा' पीठ व मठ दोनों शृङ्गेरी ही है।

श्री एस. वि. वि., श्री टि. ए. जि. राव तथा अन्य विद्वानों ने 1890 ई० से 1920 ई० तक केवल 10 शासन का ही छानबीन करके स्व विचारों को प्रकाशित किये हैं। यह प्रकाशन कुम्भकोण मठ की आज्ञा से की गई थी। कुम्भकोण मठ द्वारा सौ से भी अधिक शासन पत्र होने की कथा सुनाई गई थी, मालूम नहीं अब वे सब कहां गये? केवल कुम्भकोण मठ वाले ही जानते हैं। अन्य शासन पत्रों का विनियोग व समाप्ती सम्भवतः ये सब उनके प्रचार के विरोध तथा अप्रयोजन पाये जाने के कारण उन शासनों को प्रकाशित न करके, ताम्र शासनों को गला कर ताम्र धातु का पात्र बना लिये हों। अन्य शासनों का अप्रकाशन का कारण केवल दो ही प्रतीत होता है—(1) जो कथा प्रथम सुनाया गया था अब उस प्रकार उतने शासन पत्र उनके पास नहीं है या (2) यदि है तो वे सब कुम्भकोण मठ के विरुद्ध हैं। श्री एन्. रामेशम, नवम्बर 1961 ई०, 'कल्कि' दीपावली अङ्क में लिखते हैं कि आपको कुम्भकोण मठाधीश ने हाल ही में एक ताम्र शासन चद्दर दिया था जो पूर्व प्रकाशित नम्बर एक शासन पत्र का एक और भाग है। पूर्व में 1916 ई० में ताम्र शासन प्रकाशित हुए थे तब यह उक्त शासन पत्र का नामो निशान नहीं था। विमर्शकों ने इस ताम्रपत्र पर अनेक त्रुटियां दिखाकर इसे अग्राह्य ठहराया था। सम्भवतः इन त्रुटियों के शोधन में अचानक एक और ताम्रपत्र 1961 ई० में मिलने की कथा सुनायी गयी हो। आन्वेषणार्थ इन सब शासनों की छानबीन करनी परम आवश्यक है। कुम्भकोण मठ वाले क्यों नहीं राजकीय पुरातत्व महकमा को दिखा कर इन अन्य शासनों की छानबीन कराते? इसमें रहस्य है। कुम्भकोण मठ द्वारा सुना जाता है कि समीप काल में आपको कुछ प्राचीन काल के शासन पत्र प्राप्त हुए हैं। मालूम नहीं, यह सब शासनों द्वारा अब क्या नये कथा सुनाने में प्रयोग किये जायेगें?

श्री टि. ए. गोपीनाथ राव, Supdt. of Archaeology, Travancore State, ने कुम्भकोण मठ के 10 ताम्र शासनों पर अपना विचार पुस्तक रूप से 1916 ई० में प्रकाशित किया है। यह पुस्तक कुम्भकोण मठाधीष की आज्ञा से लिखकर उनको अर्पित किया गया है। श्री गोपिनाथ राव लिखते हैं कि कांची कामकोटि मठ कांची में 1686 ई० तक था और तत्पश्चात् मुसलमानों के उपद्रव होने के कारण मठाधीष तंजौर के महाराजा प्रताप सिंह के बुलावे पर आपके पास चले गये। बाद यहां से कुम्भकोणम् गये। यह कहा जाता है कि कुम्भकोण मठाधीष कांची के 'स्वर्ण कामाक्षी' को भी साथ ले गये। यह कथा कल्पित एवं भ्रामक है। पाठकगण ऐसे विषयों की सत्यता व विमर्श अन्य अध्याय में पायेंगे जहां पर ऐसे विषय का विवेचना किया गया है।

कुम्भकोण मठ वालों का कहना है कि 'कामकोटि' पद का 'कोटि' शब्द गोष्ठ से कोट्टम हुआ तत्पश्चात कोटि हुआ और इस शब्द का अर्थ निवास स्थान है। 'कामकोटि' पद का अर्थ कामाक्षी देवी के निकट का मठ। श्री आचार्य शङ्कर रचित ललिता त्रिशती भाष्य में कामकोटि पद का अर्थ 'श्री चक्र' ऐसा उल्लेख है।

कुम्भकोग मठ कथनानुसार कांची के कामाक्षी देवी मन्दिर के पास इनका मठ होना चाहिये था पर कोई मठ यहां नहीं है। सुना जाता है कि दो तीन साल पूर्व एक मकान कामाक्षी मन्दिर की सन्नधि वीथि में कुम्भकोण मठ को दान दिया गया था। सम्भवतः यह नवीन प्राप्त मकान ही पुराकाल का मठ होने का प्रकाश भी करें? शिव कांची में तो कुम्भकोण मठ का मठ है पर ताम्र शासन से प्रतीत होता है कि प्रथमतः इनका मठ विष्णु कांची में था और बाद वहां से यह मठ शिवकांची आया। पुराकाल के रिकार्डों द्वारा मालूम होता है कि ये दोनों मठ (विष्णु कांची—शिव कांची में) सब अर्वाचीन प्राप्त हैं। पाठकगण ऐसे विषयों की सत्यता को अन्य अध्यायों में पायेगें। शासन पत्र के संपादक लिखते हैं "During the earlier part of the stay at Kanchipura of the Swamis of this line they had their matha in Vishnu Kanchi, on the west temple of Hastisailanatha, that is, of the Varadarajaswami, it is only at a comparatively later period a new matha seems to have been erected in Sivakanchi.' म. म. कोक्कन्ड वेंकटरत्नम् पन्तुलु से प्रकाशित 1876ई० पुस्तक में लिखते हैं कि यह शिव कांची मठ उस समय (पुस्तक प्रकाशन काल) से 30 या 40 वर्ष पूर्व एक शूद्र का मकान था और बाद उसे खरीद कर मठ बनाया गया। कुम्भकोण मठ के प्रचारित पुस्तकों में भी यह स्पष्ट लिखा है कि इनका मठ 'अत्तियूर' में था और 'अत्तियूर' विष्णु कांची को कहते हैं। पर यहां का मठ भी अर्वाचीन काल का है।

श्रीगोपीनाथ राव लिखते हैं 'If we may judge of the relative antiquity of the two mathas from the epigraphical records existing with them at present, we are obliged to state that the Kumbakona Matha seems to be older; but I am fully aware that such a conclusion is and cannot be final.' 'निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता' कहते हुए भी 'कुम्भकोण मठ का शासन पत्र ही अति प्राचीन है तथा उनका मठ ही प्राचीन है' ऐसा क्यों संपादक ने लिखा है? प्रचारार्थ तथा आत्म श्लाघार्थ किया गया है। इतिहास स्पष्ट रूप से बतलाता है कि कोंकणी वर्मन या अविनिता (गङ्ग का शासन) के दूसरे वर्ष के राज्य काल में इस राजा ने श्रृङ्गेरी सीमा निवासी ब्राह्मणों को दान दिया है। कोंकणी वर्मन का काल कुम्भकोण मठ के 1291 ई० के बहु वर्ष पूर्व काल का है। श्रृङ्गेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीज्ञानघनाचार्य द्वारा रचित 'तत्वशुद्धि' ग्रंथ एवं आपके परम्परा में आपके शिष्य श्रीज्ञानोत्तमाचार्य द्वारा रचित 'विद्याश्री' ग्रंथ, ये सब दसवीं शताब्दी के हैं। 12 वीं तथा 13 वीं शताब्दी के शिलालेख व ताम्रशासन भी हैं जिनमें श्रृङ्गेरी का संकेत तथा उल्लेख भी है। ऐसी स्थिति में क्यों श्रीयुत टि. ए. जि. राव ने कहा कि कुम्भकोण मठ का शासन पत्र (1291 ई०) ही प्राचीन हैं। ऐसे मिथ्या भ्रामक प्रचारों से लोगों में भेदभाव उत्पन्न करके स्व शिष्य टोली की संख्या बढाने में काम आती है। सम्भवतः कुम्भकोण मठ ऐसी पुस्तकों को लिखने की आज्ञा देकर प्रचार करते हैं।

मदरास के एक विद्वान डा० वि. राघवन् जो व्यक्ति स्वयं अनुसन्धान के प्रेमी हैं और जिन्होंने जटिल विषयों पर आन्वेषन कर प्राचीन ग्रंथ, शिलालेख, शासन पत्र, सनद, इतिहास के आधार पर अपना अभिप्राय प्रकट किया है, ऐसे व्यक्ति, कुम्भकोण मठ से प्रचारित श्रीसदाशिव ब्रह्म के बारे में भ्रामक मिथ्या प्रचारों पर जब आक्षेप किया गया था उन पूछे हुए प्रश्नों का सप्रमाण उत्तर न देकर कुम्भकोण मठ के एक मैठ प्रचार पुस्तक की प्रस्तावना में आप लिखते हैं 'शिलालेख के विषय को विश्वास करने वाले व्यक्ति शिला पर ही अपनी माथा पटकनी होगी।' अब दूसरी तरफ श्री एन्. रामेशम नवम्बर 1961 ई० में एक मदरास पत्रिका में कांची कुम्भकोण मठ

के ताम्रशासनो का प्रचार कर सिद्ध करने चले कि कुम्भकोण मठ आद्यशङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित, अधिष्ठित एवं साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है। सम्भवतः डा० राघवन् का अभिप्राय श्री एन्. रामेशम को लागू नहीं होता होगा। जो विद्वान वास्तविक सत्य विषय का प्रगटन करते हैं उनके लिये ही डा० राघवन् का नियम लागू होता होगा। एक समय शिलालेख को विश्वास नहीं करते और उनसे प्राप्त चरित्र सामग्री आपको अग्राह्य है और अन्य समय ताम्रशासन व शिलाशासन सब ग्राह्य हो जाते हैं। पाठकगण ऐसे भ्रामक प्रचारों का मर्म स्वयं जान लेंगे। प्रचार के प्रभाव द्वारा एवं व्यक्ति के दबाव में आकर विद्वान अपना स्वतंत्र विचारों को त्याग देते हैं और यह स्थिति शोचनीय है।

ताम्रशासन—1

यह कहा जाता है कि एक ताम्र चद्दर में लिखा हुआ यह शासन 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल श्री विजयगन्डगोपालदेवन्' ने 'शङ्कराय्र्यगुरवे' को 'वत्सरे खर संज्ञिते, प्राप्ते कर्काटकं पुण्यराशिं कमल बान्धवे मित्र दैवत नक्षत्र युक्तायां शुक्र पक्षे इंदोवारेण युक्तायां दशम्यामं सुमुहुत्तके' के दिन 'अम्बिकापुरम्' गांव दान देकर 108 ब्राह्मणों का नित्य भोजन कराने को कहा है। यह शासन द्राविड ग्रन्थाक्षर लिपि संस्कृत भाषा में लिखा है। दानदेनेवाले का हस्ताक्षर तामिल लिपि में है। इस शासन का अन्य चद्दर खो जाने की कथा भी कही जाती है। यह शेष चद्दर इस शासन का अन्तिम पृष्ठ है। कुम्भकोण मठ इस शासन का काल शक 1207 अनुरूप 9-7-1291 ई० सोमवार का प्रचार करते हैं।

इस शासन में उल्लेख है कि "एक मठ जो हस्तिशैलनाथ मन्दिर के समीप है" (विष्णुकांची) और इस संकेत से कुम्भकोण मठ कहते हैं कि इनका मठ विष्णुकांची में होने के कारण यह ताम्र शासन कांची मठ के आचार्य को ही सूचित करता है। श्री एस. वि. वि. शासन संपादक लिखते हैं "The name of the Matha is evidently borrowed from the name कामकोट्याम्बिका of the goddess at Conjeevaram." कुम्भकोण मठ के कथनानुसार "कामकोटि" अर्थात 'कामाक्षी देवी के समीप का मठ'। श्रीएन्. वि. पन्तुलु जो कुम्भकोण मठ के अनुयायी व प्रचारक थे, वे लिखते हैं "For the name Kamakshi indicates that, from the earliest times, the matha was situated near the Kamakshi temple." इससे सिद्ध होता है कि कामकोटि मठ कामाक्षी मन्दिर के पास होना था। पर ताम्र शासन विष्णुकांची में मठ होने का उल्लेख करता है। किसी को अभीतक मालूम नहीं कि किस समय व क्यों कांची कामकोटि मठ कामाक्षी मन्दिर के समीप छोड कर विष्णुकांची गये। और एक कुम्भकोण मठ के भक्त प्रचारक श्रीयुत एन्. वि. लिखते हैं "If the then Sankaracharya was living there, it must have been a temporary arrangement." श्रीयुत ठी. ए. जी. राव, शासन संपादक, लिखते हैं :—"In the mathamnaya, the name of the temple near which the Kamakoti Sarada Matha was situated is said to be Satyavrata Kshetra, another name of Attiyur (the present Vishnu-Kanchi). Hence the matha should have been situated in Vishnu-Kanchi and near the temple of Varadarajaswami."

दान प्राप्त करनेवाले का नाम इस शासन में स्पष्ठ उल्लेख नहीं है। केवल 'शङ्कराय्र्यगुरवे' लिखा है। शासन संपादक का विचार है कि चूं कि यह शासन कुम्भकोण मठवाले के पास है इसलिये कहा जा सकता है कि यह

दान कुम्भकोण मठाधीश को ही दिया गया है यद्यपि शासन में दान प्राप्त करनेवाले का नाम स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। शासन को अपनाने व धारण करने अथवा अधिकार रखने मात्र से ही आप इसके स्वामी बन नहीं सकते क्यों कि ऐसे विवादास्पद शासन पत्र अन्यत्र से भी प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्यत्र से प्राप्त करने का ढंग चाहे जैसा रहा हो। 'नित्यान्नदान', 'निगमान्तरहस्यार्थ विवरण,' 'इन्दुमौळी' शब्दों के प्रयोग द्वारा कुम्भकोण मठवाले कहते हैं कि इन पदों का अर्थ कुम्भकोण मठ के आचार्य को ही सूचित करता है। पर यह सब पद विशेषण किसी माननीय तपस्वी यति को भी लागू हो सकता है। जब तक प्रमाण पूर्वक यह सिद्ध न किया जाय कि कांची में और अन्य कोई भी मठ न था एवं अन्य आदरणीय तपस्वी यति न थे और केवल कांची कामकोटि मठ ही था तब तक निश्चित रूप से कह नहीं सकते कि यह शासन कांची कामकोटि मठाधीष को ही दिया गया है। इस शासन के अन्य पृष्ठ न होने के कारण किस प्रकार निस्सन्देह कह सकते हैं कि यह शासन कांची मठ का था। (नवम्बर माह 1961 में कहा गया कि इस ताम्रपत्र का एक और पृष्ठ अब मिल गया है पर ताम्रपत्र से प्रकाशित सामग्री कांची मठ प्रचारों के विरुद्ध ही है)। कुम्भकोण मठ के भक्त प्रचारक श्री एन्. वि. इस ताम्रशासन के बारे में लिखते हैं—'It does not mention by name the Sankaracharya to whom it was given' आश्चर्य का विषय है कि कांची मठ जो कांचीमठाम्नायानुसार 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः।' मठ होते हुए भी ऐसे सार्वभौम जगद्गुरु आचार्य का नाम दानदेनेवाले ने नहीं दिया है। Archaeological विभाग के राज्यकर्मचारी श्री एच. के. एस., शासन में उल्लेख किया हुआ पद 'श्रीशङ्करार्य्यगुरवे' के बारे में, कुम्भकोण मठ प्रचार के विरुद्ध ही लिखते हैं-'This explanation is far fetched. To the holy guru Sankararya would be the plain interpretation of the phrase Sri Sankararya Guruveh.' मदरास राज्य G. O. No. 1260, Public, 25—8—1915, मे लिखा है'– It belongs to the 13th Century A. D. and mentions the teacher Sankararya (or Sankarayogin) who received the grant of a village from the Chola chief Vijayagandagopaladeva, for the purpose of feeding 108 Brahmanas. It is not clearly stated in the record if the Matha presided over by the Sankararya herein referred to, was identical with the Sankaracharya matha at Conjeevaram.' न मालूम किस आधार पर दानप्राप्त व्यक्ति कांची मठाधीश होने का एवं कांची मठ का बतलाते हैं?

श्री टि. ए. जि. राव लिखते हैं—'It is only at a comparatively later period, a new matha seems to have been erected in Sivakanchi ... ...' कुम्भकोण मठ के प्रथम प्रचारानुसार आपका मठ कामाक्षी मन्दिर समीप होने का बतलाते हैं पश्चात् कुम्भकोग मठ मठाम्नायसेतु के अनुसार कांची मठ विष्णुकांची में होने का उल्लेख है। कुम्भकोण मठ के अन्य प्रचारित पुस्तकों में कांची मठ शिव कांची में होने का प्रमाण देते हैं। इन तीनों प्रचारों में कौन सत्य है? विष्णु कांची का मठ जो अर्वाचीन काल का है, इसका पुराना सर्वे (Survey) नम्बर 620—4/Y है और यह जमीन राजकीय रिकार्डों में पुराकाल में 'Government Purambokku land' (राजकीय जमीन) कहा गया है। अर्थात नवाब काल में एवं ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी काल में यह राजकीय जमीन थी न कि कांची मठ की जमीन थी। इसी प्रकार शिवकांची में कांची मठ का पुराना सर्वे (Survey) नम्बर 925 है और यह जमीन राजकीय पुराने रिकार्डों में 'Inam dry lands' (इनाम सूखा जमीन) कहा गया है न कि कांची मठ की जमीन थी। अर्थात् पुराकाल में ये दोनो कांची मठ न था और ये दोनो अर्वाचीन

काल का मठ ही है। समय समय पर भिन्न भिन्न कथाओं द्वारा प्रचार करके सत्यपर पर्दा डाल करके उनके द्वारा भ्रामक मिथ्या प्रचारों से लोगों को भ्रम में डाला जाता है। आक्षेप करने पर उत्तर भी तैय्यार रहता है और विषयों को कल्पित कर भिन्न विद्वानों के नाम से क्या क्या नहीं कहा व किया जाता है।

इस शासन के चौथे से सातवें पंक्ति तक जिसमें शासन काल का विवरण दिया है वह कुम्भकोण मठ कथनानुसार 9—7—1291 ई० या 1292 ई० का नहीं है। विद्वानों व राजकीय कर्मचारी द्वारा पञ्चाङ्ग के अनुसार गणित समय 4—7—1351 ई० का ठीक जमता है। Archaeological विभाग के कर्मचारी ने इस ताम्र पत्र का काल 4—7—1351 ई० का बतलाया है। Archaeological विभाग के कर्मचारी श्री एच, के. एस. इस शासन के बारे में Ep. Ind. Vol. XIII में लिखते हैं—'The details of date given in lines 4 to 7 do not work correctly either for A. D. *1291* or for A. D. *1292*; but in the cyclic year Khara which occurred 60 years after i. e. in A. D. 1351, Monday, the tenth tithi of the bright half of Karkataka, correspond to 4th July *1351*, when the Nakshatra Visakha ended at 16 hours 20 minutes after mean sunrise and Anuradha commenced consequently in the last quarter of the day.' इससे सिद्ध होता है कि इस शासन पत्र का काल *1351* ई० का था न कि 1291 ई० का, जैसा कि कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं।

दक्षिणी भारत मन्दिर शिला लेख नम्बर 350 द्वारा प्रतीत होता है कि कांचीपुर में श्रीविष्णु मन्दिर के पास 1378 ई० में श्री प. प. वेदेन्द्र सागर श्रीपाद, वेदमठ के आचार्य को, एक गांव दान देने का उल्लेख है। अर्थात् विष्णुकांची में इस उक्त काल के पूर्व काल से ही वेदमठ का होना निश्चित होता है। उन दिनों में कांचीपुर में बौद्ध, जैन, अजाविक, तान्त्रिक, लोगों के अवनति काल होने पर शैव, अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत प्रचारों के अनेक मठ थे। कांची मन्दिर के कुछ प्राचीन शिलाशासनों द्वारा कुछ महान यतियों का नाम भी उपलब्ध होते हैं जो सब कांची में मठ में वास करते थे। अतः यह सिद्ध होता है कि कांची में अनेक मठ थे। सम्भवतः इस कांची मठ का शासन कांची के वेदमठ का हो जिसे अब कुम्भकोण मठ अपना होने का बतलाते हैं। ताम्रशासन में कांची शङ्कर मठ या कामकोटि मठ का नाम न लेने से तथा दान प्राप्त करनेवाले व्यक्ति का नाम न देने से और जो कुछ गुणगान किये गये हैं उससे प्रतीत होता है कि यह किसी महान् सन्यासी या विद्वान गृहस्थ या ब्रह्मचारी को भी लागू हो सकता है और चूंकि वेद मठ विष्णु कांची में स्थित था और ताम्रशासन में उल्लेख है 'जो मठ विष्णु कांची में स्थित है,' अतः इस वेद मठ के कोई एक मठाधीश को दिया गया ताम्रशासन हो सकता है। अथवा यह भी हो सकता है कि यह शासन विष्णु कांची के अन्य एक मठ को दिया गया हो। दान देनेवाले श्रीविजयगन्डगोपालदेव का ऐतिहासिक काल 1250 या 1260 ई० होने का प्रमाण देते हैं। पर शासन में दिये विवरण के अनुसार काल 4—7—1351 ई० का होना निश्चित होता है। यदि इस काल को स्वीकार कर लें तो विजयगन्डगोपालदेव दान दे नहीं सकते क्यों कि यह शासन उनके काल के पश्चात का ही है।

कांची के अन्यत्र उपलब्ध शिला लेखानुसार श्रीविजयगन्डगोपालदेव का राज्यकाल 1250 ई० का बोध होता है। कुछ ऐतिहासिकों का अभिप्राय 1260 ई० का भी है। श्रीगोपिनाथ राव 'चेन्तमिल' में 'चोळवंश' शीर्षक लेख में लिखते हैं कि मदुरा में 1251 ई० में श्रीसुन्दरपान्डियन ने राज्यशासन हाथ में लिया था और यह पाण्डिय राजा ने विजयगन्डगोपालदेवन को कहा कि वह व्यक्ति 'जङ्गल का आग' है। इससे प्रतीत होता है कि

विजयगन्डगोपाल 1251 ई० में जीवित था। और यही पान्डिय राजा ने 1262 ई० में युद्ध में विजयगन्डगोपाल को मार डाला। आपका नाम त्रिभुवन चक्रवर्ति विजय गन्डगोपालदेव था और आपका काल कुछ ऐतिहासिक विद्वान 1250 ई० से 1285 ई० तक का मानते हैं। टीका (या गन्डगोपाल जो जटावर्मन सुन्दर पान्डियन से मारा गया था) का पुत्र मनुमसिद्धि जिसका नाम विजयगन्डगोपाल भी था एवं अन्य एक विजयगन्डगोपाल ये दोनों तेलगू चोळ राज्य पर अधिकार जमाना चाहते थे पर मनुमसिद्धि मुत्कूर के युद्ध में 1283 ई० में मारे गये थे। सुन्दरपान्डियन काल के कुछ वर्ष पश्चात् काकतिया गणपति ने तेलगू चोळ राज्य का पुनः स्थापन किया था। श्री के. ए. एन्. शास्त्री लिखते हैं—'In the north, Rajendra III, commanded the alliance of Choda Tikka of Nellore, also called Gandagopala, who had been attacked by Someswara in 1240 A. D.' 'Finally, he (Sundara Pandya) led an expedition further north in which he killed Gandagopala in battle and occupied Kanchi.' 'At the end of the campaign he performed a Virabhisheka at Nellore.' 'In the Andhra country, the power of the Velananti chodas had disappeared after 1186 and its distracted political condition was an invitation to a ruler like Ganapati to enter and exploit its fertile lands ...' 'This conquest he completed between 1209 and 1214 and made the Telugu chodas of Nellore acknowledge his suzerainty.' 'When Sundara Pandya withdrew, Ganapati, at the instance of the poet Tikkana, assisted Manuma Siddhi, the son of choda Tikka, against his domestic enemies and seated him firmly on the Nellore throne.' दक्षिण में तेलङ्गि चोळ गन्डगोपाल थे और उत्तर में तेलङ्गी पल्लव गन्डगोपाल थे। मालूम नहीं कि किस विजयगन्डगोपाल ने इस शासन को दिया था? कहा जाता हैं कि इस शासन में 'चोळ' पद का उल्लेख होने से दक्षिणी तेलङ्गी चोळ विजयगन्डगोपाल ने दान दिया था। पर इतिहास अभीतक स्पष्ट रूप से यह नहीं बताता कि यह चोळ विजयगन्डगोपाल का क्या सम्बन्ध था चोळ वंशावलियों से जो राजेन्द्र चोळ III से समाप्त हुआ। श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं—... ... ... and it is not known what relation, if any, the Telugu chodas of the Renadu country in the Ceded districts, one of the minor dynasties of this epoch, bore to their namesakes of the Tamil land, though they claimed descent from Karikala, the most celebrated of the early Chola monarchs of the Sangam age.' कुछ ऐतिहासिक लोग दो गन्डगोपाल होने का विषय मानते नहीं हैं। उनका अभिप्राय है कि उत्तर के गन्डगोपाल दक्षिण गन्डगोपाल के अन्तर्गत ही थे और उन्हें 'पल्लव' कह करकें पुकारना ठीक नहीं है। सम्भवतः पान्डिय राज्य की अवनति पर यह बिजयगन्डगोपाल ने 'तोन्डैमन्डल' सीमा पर अपनी अधिकार व प्रभुत्व जमायी होगी।

Madras G. O. 985 Home (Education) 31—8—1920 में विजयगन्डगोपाल का विवरण दिया गया है, यथा—'It appears therefore clear that there existed two chiefs by name Vijaya-Gandagopala, one a Telugu-Chola in the south and another a Telugu-Pallava in the north, both ruling almost contemporaneously in the central Tamil and Telugu districts of the Madras Presidency. In this connection, it may be noticed that, in No. 624 of Appendix B, a damaged inscription of partly in Tamil

verse, a Vira Gandagopala is mentioned as born of the Bharadwaja gotra in the illustrious Pallava Kula. The southern Vijaya Gandagopala calls himself a chola in the Conjeevaram copper plate.' श्री एच्. के. एस (**Archaeological** कर्मचारी) नेल्लूर जिला में प्राप्त हुए विजयगन्डगोपाल के अन्य शासन के बारे में लिखते हैं—'**The authors of the Nellore Inscritions themselves suggest 'Parama' as a probable reading. The epithet given to Vijayagandagopala in this record show that he must have belonged to the Pallava race. 'Parna' is perhaps a misreading for 'Pallavas.'** ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि 1262 ई० में विजयगन्डगोपाल देव युद्ध क्षेत्र में मदुरा के जटावर्मसुन्दरपान्डिय (1251—1268 ई०) से मारे गये थे। नेल्लूर में जब सुन्दरपान्डियन का वीराभिषेक 1263 ई० में हुआ था तब विजयगन्डगोपालदेव जीवित न थे। यथार्थ चाहे जो हो, यह स्पष्ट माल्रूम नहीं होता कि विजयगन्डगोपालदेव का क्या विवरण था।

डा० हल्टज का कहना है कि अनेक अन्य राजाओं की पदवी भी 'गन्डगोपाल' थी व 'विजय' शब्द केवल विजेता का ही विशेष गुण बोध कराता है और इसलिये विजयगन्डगोपालदेव का विशेष विवरण इस अधूरे नाम से पाया नहीं जा सकता है। डा० कील्हार्ण का कहना है कि वीरगन्डगोपाल तथा विजयगन्डगोपाल दोनों एक ही नाम हैं। कुछ ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि विजयगन्डगोपाल का पुत्र वीरगन्डगोपाल था चूं कि अन्य शासनों में 'पिल्लैयार' पद का प्रयोग किया गया है। कुछ ऐतिहासिक विद्वान 'पिल्लैयार' पद का अर्थ '**Feudatory state**'—खिदमती जागीरदारी' कहते हैं। कुछ इतिहास पुस्तकों में कहा है कि इनके वंशज पल्लव 'पेरुञ्जिङ्ग देव' थे। इतिहास यह भी उल्लेख करता है कि टिका II 1278 ई० में तथा मन्न-गन्डगोपाल 1282/83 ई० में गद्दी पर बैठे। यदि यह शासन अन्य एक विजयगन्डगोपालदेव का 1291/92 ई० में होने की सत्यता है तो कैसे और दो राजा इस गद्दी पर बैठे? क्या ये दोनों भी विजयगन्डगोपाल के साथ मिलकर तीनों राज्य करते थे? अथवा क्या उक्त तीनों 'विजयगन्डगोपाल' पदवी धारण करने वाले अभिन्न व्यक्ति थे? ऐतिहासिक विद्वान अब बतलाते हैं कि टीका का नाम भी गन्डगोपाल था—'**... ... the choda Tikka of Nellore, also called Gandagopala ...**' —जो तेलगू चोळ था। आप मदुरा के जटावर्म सुन्दर पान्डियन (1251—68 ई०) से मारे गये थे। अर्वाचीन काल में कुछ ताम्र शासन अन्यत्र प्राप्त हुए हैं जिसमें रङ्गनाथ गन्डगोपाल का नाम भी उल्लेख है। सम्भवतः यही विजयगन्डगोपाल हों! टीका के मरण पश्चात् आपका शासन भी उल्लेख है। नेल्लूर शासन से प्रतीत होता है कि एक 'त्रिभुवन चक्रवर्ति विजयगन्डगोपाल' थे जो 1290 ई० में राज्याधिकार प्राप्त किया था। ऐतिहासिक विद्वान 'मदुरान्तक प्रतापी चोळ' जिसका नाम 'रङ्गनाथ' और 'राजा गन्डगोपालदेवन' भी था आपही को विजयगन्डगोपाल होने का अभिप्राय रखते हैं और नेल्लूर शासन का सम्बन्ध आपसे ही लगाते हैं। यदि मान भी लें कि विजयगन्डगोपाल 1291 ई० में थे तब भी ताम्रशासन में दिया काल विवरण 1291 ई० का नहीं होता है। ताम्र शासन के चौथे से सातवें पंक्ति में दिये विवरण द्वारा राजकीय कर्मचारी के शोधन पर माल्रूम होता है कि ताम्रशासन का काल 4—7—1351 ई० का है। परन्तु इस समय कांची में कोई तेलगू चोळ न था। अतः यह ताम्र शासन अग्राह्य है। ऐसे विवादास्पद तथा इतिहास सिद्ध विषयों के विरुद्ध शासनों की क्या प्रामाणिकता है?

• इस ताम्रशासन में दानदाता का नाम 'देव श्री गन्डगोपाल' का उल्लेख है पर शासन के अन्त में दानदाता का हस्ताक्षर 'विजयगन्डगोपाल' का है और यह समझ में नहीं आता कि क्यों इन दोनों नाम में भिन्नता

पायी जाती है। सम्भवतः शासन लेखन काल के पश्चात् काल में अन्य से हस्ताक्षर किया गिया हो। हस्ताक्षर लिपि एवं अक्षर का निर्माण सत्र न तो बारहवीं शताब्दी का है या न तो तेरहवीं शताब्दी का पर अर्वाचीन काल का प्रतीत होता है। एक मार्के की बात है कि विजयगन्डगोपाल तेलगू (नेल्लूर) चोळ थे और आपने हस्ताक्षर तामिल भाषा में किया है जो ठीक नहीं प्रतीत होता है चूं कि आप अपना हस्ताक्षर तेलगू लिपि में करते थे। अन्यत्र उपलब्ध शासन पत्रों में हस्ताक्षर तेलगू भाषा लिपि में ही की गयी है। तामिल लिपि में हस्ताक्षर असम्भव मालूम पडता है। शासन पत्र संस्कृत भाषा में लिखा गया है जो ठीक प्रतीत होता है।

इस ताम्रशासन में एक और मार्के की बात है जहां उल्लेख है—'नित्यान्नदान विधिसन्तर्पितात्म द्विजन्मने' और यहां 'द्विजन्मने' पद का प्रयोग किया गया है। द्विजन्मने पद स्पष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मचारी या गृहस्थ या वानप्रस्थ का ही द्योतक पद है न कि सन्यासियों का चूं कि सन्यासियों को 'द्विज' का संबोधन किया नहीं जाता है। यहां ध्यान देने का विषय है कि इस ताम्र शासन में 'शङ्करार्यगुरवे' का उल्लेख है न कि शङ्कराचार्य। राजकीय कर्मचारी श्री एच. के. एस. लिखते हैं कि यह ताम्रशासन शङ्कराचार्य को देने का कथन जो प्रचार किया जाता है सो भूल है— 'This explanation is far fetched. To the holy Guru Sankararya would be the plain interpretation of the phrase 'Sri Sankararya Guruveh.' इससे यह कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति जिनको 'शङ्कर-आर्य गुरु' (श्रेष्ठ गुरु) पद से संबोधित किया जाता था और जो 'द्विजन्मने' थे आर्थात् प्रकान्ड विद्वान ब्रह्मचारी या गृहस्थ या वानप्रस्थ थे और जिनके अनेक शिष्य थे उनको यह शासन दिया गया था। सन्यासी वर्ग जन्म या वर्ण के अतीत हैं—'जन्मजातिरहिताः' और इसलिये 'द्विजन्मने' एवं 'शङ्कर आर्यगुरवे' पद से अद्वैत मठाधीश श्री शंकराचार्य का होना असम्भव है।

कुम्भकोग मठ वंशावली अनुसार श्रीचन्द्रचूड II उर्फ गङ्गेश्वर 1247 से 1297 ई॰ तक मठाधीश थे। ताम्र शासन इनका नाम नहीं देता पर केवल 'शङ्करार्य्यगुरवे' ही उल्लेख करता है। कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक ग्रंथ 'गुरुरत्नमाला' की वंशावली सूची अनुसार शङ्कर नाम के 19 वें आचार्य शङ्करेन्द्र थे और उनका काल 398—437 A. D. का है, 33 वें श्रीशङ्कर थे और उनका काल 788—840 A. D. का है। पर कुम्भकोण मठ की आज्ञा से रचित और अर्पित पुस्तक में 19 वां शङ्करेन्द्र को 20 वां शङ्कर IV उर्फ अर्भक शङ्कर उर्फ मूकशङ्कर उर्फ शङ्करेन्द्र के नाम से पुकारा गया है। उसी प्रकार 33 वें शङ्कर को इस पुस्तक में 38 वां आचार्य शङ्कर V उर्फ धीर शङ्कर उर्फ अभिनव शङ्कर के नाम से पुकारा गया है। कुम्भकोण मठ के गुरु वंशावली में 5 शङ्करों का उल्लेख है। (1) आद्यशङ्कर 508—476 क्रिस्तपूर्व (2) कृपाशङ्कर 28—69 ई॰ 9 वां आचार्य (3) उज्ज्वल शङ्कर 329—367 ई॰ 16 वां आचार्य (4) शङ्कर IV 398—437 ई॰ 20 वां आचार्य तथा (5) शङ्कर V 788—840 ई॰ 38 वां आचार्य। इन पांचों शङ्करों का नाम इस शासन से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। किस प्रकार 'शङ्करार्य्य गुरवे' चन्द्रचूड II उर्फ गङ्गेषर का सूचित कर सकता है? कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ का सर्वप्रामाण्य ग्रंथ 'गुरुरत्नमाला' से उद्धृत कांची मठाधीषों का नाम Ep. Indica Vol. XIV में प्रकाशित है। इस आचार्य सूची से तथा अन्य एक पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीश की आज्ञा से लिखकर उनको अर्पित की हुई पुस्तक की सूची से वंशावली मिलाया जाय तो उनसे बहुत भिन्नता दीख पडता है। केवल कुम्भकोण मठ ही जाने कि इसमें कौनसी गुरु वंशावली सूची सत्य है। कुम्भकोण मठ के शासन पत्रों के संपादक श्री एस. वि. वेंकटेशन् व श्री एस. वि, विश्वनाथन 'गुरुरत्नमाला' के बारे में लिखते हैं—(Ep. Ind. Vol. XIV) 'The author cannot be regarded

as an authority regarding the generations of the gurus remote from his time ... ' पर कांची कुम्भकोण मठ इस पुस्तक के आधार पर ही तो कांची कामकोटी मठ के आचार्य सब श्रीआद्यशङ्कराचार्य के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा के हैं ऐसा प्रचार कर रहे हैं। अन्य एक पुस्तक जो कुम्भकोण मठ की अनुमति से रचित व अर्पित है उसमें श्री एन्. वि. लिखते हैं ' When I say that the accuracy of the chronology cannot be questioned, it applies only to the later part of it. We cannot say at present how far the older verses are genuine and of contemporary origin.' कुम्भकोण मठ के भक्त व प्रचारक स्वयं इनके गुरुवंशावली को निःसन्देह प्रमाणयुक्त व यथार्थ मानने को तैय्यार नहीं हैं।

कुम्भकोण मठ के परमभक्त एवं कुम्भकोण मठ ताम्र शासनों के संपादक व विमर्शक श्री एस. वि. वि. लिखते हैं—" It remains to consider who was the guru in the geneological list corresponding to Sri Sankararya guru alias Sankara yogin mentioned in the copper plate grant of Vijayagandagopala. There are in the list only two such names which would be thought of viz. No. 19 Sankarendra and No. 33 Sri Sankara. The date of the plate being 1291 A. D. it would hardly be of the time of No. 19, as in that case there would be *30* generations from him to Sadasiva of *1503* A. D. covering a period of only 2 centuries. So the Sankara of the plate should be indentified with No. 33. We then get 16 generations for a period of 215 years i e. on the average of *13½* years for a generation. This should not be regarded as a low figure, as in most cases a man becomes a head of the matha only when advanced in years and is generally succeeded by the oldest among his disciples. Counting back at the same rate of 13½ years, we get the 9th century A. D. for the great Sankaracharya. It has been shown elsewhere that this date agrees with all known or inferable data, external and internal, in relation to the date of Sankaracharya." इससे स्पष्ट मालूम होता है कि ताम्र शासन को सिद्ध करने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा है। यदि हमलोग उपर्युक्त विषयों को मान लें तो उससे निश्चय होता है कि कुम्भकोण मठ की गुरुवंशावली जो आद्यशङ्कर 508 या 509 B. C. से लेकर 1291 A. D. तक का जो वंशावली चन्द्र चूड II तक का है वह सब गलत व मिथ्या है। इनकी वंशावली आद्यशङ्कर प्रथमाचार्य 508 B. C. से लेकर के चन्द्रचूड II (1247—1297 A. D.) तक 50 आचार्य होते हैं। और आप श्री आद्यशङ्कर का काल 9 वीं शताब्दी होने का उल्लेख करते हैं पर अनेक आन्तरिक व ब्राह्य प्रमाणों से श्री आद्यशङ्कर का काल निर्णय 7 वीं शताब्दी अन्तिम अथवा 8 वीं शताब्दी के होने का निश्चय होता है।

कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रामाणिक पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' जिसके रचयिता नेरूर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र का नाम लिया जाता है और जिसके आधार पर आचार्य शङ्कर का अविच्छिन्न साक्षात् परम्परा होने की घोषना की जाती है उस पुस्तक में हरएक मठाधीशों का काल निश्चित रूप में कहा गया है। मठाधीशों का जन्मकाल, सन्यासग्रहणकाल पीठाभिषिक्त काल, मठशासन काल, निर्याण काल जो सब वर्ष, माह, पक्ष, तिथि, नक्षत्र के नाम से दृढ रूप में निर्धारित हैं सो सब अपना इच्छानुसार या अपनी सुविधा के लिये या इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये बदला जा नहीं सकता है। कुम्भकोण मठ के कुछ सर्वज्ञ विद्वान एवं मठ विषय प्रचारक (श्री एस. वि. वेंकटेशन, श्री एस. वि.

विश्वनाथन, श्री एन्. वेंकटरामन, श्री एन्. रामेशम, आदि) 'गुरुरत्नमाला' में निर्देषित काल को अपने इच्छानुसार बदलने की कोशिश की है। अर्थात् आप लोग 'गुरुरत्नमाला' को अप्रामाणिक ठहराते हैं। श्री एस. वि. वि. दोनों ने 'गुरुरत्नमाला' में दिया प्रथमाचार्य का काल 508 क्रिस्तपूर्व को अपने स्वेच्छा से काल निर्णय कर इस वंशावली का प्रथमाचार्य का काल नवीं शताब्दी का होना कहा है और आप दोनों ने गुरुरत्नमाला को प्रमाण में लिया है। श्री एन्. वेंकटरामन ने प्रथम शताब्दी क्रिस्तपूर्व प्रारम्भिक काल कहा है और आपने भी गुरुरत्नमाला को प्रमाण में लिया है। इसी प्रकार श्री एन्. रामेशम ने आचार्य शङ्कर का काल प्रथम शताब्दी क्रिस्तपूर्व का कहा है और आपने 'गुरुरत्नमाला' की वंशावली सूची आधार पर उक्त अभिप्राय दिया है। आप भी गुरुरत्नमाला में दिये काल को स्वीकार नहीं करते और स्वेच्छा से कहेजानेवाले हर एक आचार्य का काल निर्णय करते हैं। तो क्या आप भी गुरुरत्नमाला को प्रमाण में नहीं लेते? एक तरफ गुरुरत्नमाला को प्रमाण में प्रचार करते हैं और दूसरी तरफ जब असौकर्य प्रश्न पूछा जाता है एवं जिसका उत्तर देना असम्भव है तब गुरुरत्नमाला में दिये विषय को स्वीकार नहीं करते। अब पाठकगण जान लें कि अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये क्या क्या कह या कर नहीं सकते?

कुछ पिछले वर्षों से बराबर सुनता आ रहा हूं कि कुम्भकोण मठ के पास और कुछ ताम्रशासन पत्र अर्वाचीन काल में प्राप्त हुए हैं पर वे सब क्या क्या कहानियां सुनाते हैं सो सुनाया नहीं गया था। मैं ने पुरातत्वविभाग के एक राज्यकर्मचारी से 1960 ई० में यह भी सुना था कि कुम्भकोण मठाधीश ने आपको एक ताम्रशासन पत्र पर अपनी अभिप्राय देने को कहा था। 19 वीं शताब्दी में कर्नल मेकन्जी को 125 ताम्रशासन पत्र होने की कथा सुनायी गयी थी पर केवल 10 ताम्र पत्र ही प्रकाश किये गये थे। पश्चात् पता चला कि बाकी सब ताम्रपत्र गलाकर पात्र बनाये गये थे। सम्भवतः अब ये सब पात्र से पुनः शासनपत्र बन गये होंगे! उक्त ताम्रपत्र नम्बर एक जिसका विवरण ऊपर दिया गया है उस ताम्र पत्र का और एक भाग का और एक चद्दर अचानक मिलने का खबर भी अब मिलता है। इस नवीन ताम्र पत्र के संपादक एवं कुम्भकोण मठ विषयक सामग्रियों के प्रचारक तथा आन्ध्र राज्य कर्मचारी नवम्बर 1961 ई० में 'कल्कि' दीपावली अङ्क में लिखते हैं कि आपके भाग्यवश यह अधूरा ताम्र चद्दर आपको मिला और आपने जो कुछ पूर्व में इस ताम्र पत्र से सामग्री प्राप्त होने की आशा की थी सो सब आपको अब मिल गया। आगे आप लिखते हैं कि कुछ माह पूर्व कुम्भकोण मठाधीष ने आपको यह उक्त ताम्र पत्र दिया था। प्रथमतः यह प्रश्न उठता है कि यह ताम्र शासन पत्र कब, कहां से और किसके द्वारा मिला था? इतने वर्ष कहां था और किस अवस्था में थी? अब अचानक कैसे और कहां से मिला? क्यों नहीं इन ताम्र पत्रों को राजकीय पुरातत्व महकमा को भेजकर इसका असिलियत पता नहीं लगाया गया? अब प्राप्त होनेवाले ताम्र पत्र का दूसरा भाग जो 1916 में प्रकाश हुआ था और इसके संपादक ने इस ताम्र पत्र का काल 1291/92 ई० का होना निश्चित किया था सो काल राजकीय कर्मचारी ने गलत होने का साबित कर यह सिद्ध किया था कि उक्त ताम्र पत्र में दिये हुए विवरणों के आधार पर इसका काल निर्णय 4—7—1351 ई० का होता है। आपने अनेक आक्षेप एवं शङ्कायें उठायी थी कि इस दान पत्र के दाता कौन 'गन्डगोपाल' थे?—चोळ या पल्लव? किस 'गन्डगोपाल' ने दान दिया था चूंकि इस नामधारी 'गन्डगोपाल' भिन्न भिन्न समय में भी थे? सम्भवतः इन सब आक्षेपों के उत्तर में इस 46 वर्ष के बीच काल में एक प्रमाणाभास ताम्रशासन तैय्यार कर अचानक 1961 ई० में ताम्रपत्र प्राप्त होने की कथा सुनायी जा रही हो! श्रीरामेशम उक्त आक्षेप के उत्तर में अब कहते हैं कि उक्त ताम्र पत्र का एक भाग जो आपको कुछ माह पूर्व प्राप्त हुआ था उससे प्रतीत होता है कि इस ताम्र शासन पत्र का काल 1111 ई०, जूलै माह, 17 ता:, सोमवार है न कि 1291/92 ई० या 1351 ई०। अन्यत्र उपलब्ध शासनों के आधार पर अब अनुमान करते

हुए सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि इस शासन के दाता 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महावल विजयगन्डगोपाल' थे जो मन्मसिद्धि व तम्मु सिद्धि के पिता भी थे। अब प्रश्न उठता है कि क्या पूर्व में ताम्रपत्र विमर्शकों एवं राजकीय कर्मचारियों से किये हुए आक्षेपों के उत्तर में यह प्रमाणाभास ताम्र पत्र दिखाया जा रहा है? चूंकि श्रीरामेशम का अनुमान तथा आपका निर्णय ताम्र पत्र में दिये हुए सामग्री पुष्टी नहीं करती। पामरजन आपके वहकावे में भले ही आ जांय पर ऐतिहासिक विद्वान एवं पुरातत्व विभाग आपके निर्णयों को स्वीकार नहीं करते।

श्री रामेशम का अनुमान काल जो 1111 ई० का है सो ठीक प्रतीत नहीं होता। ताम्र पत्र में 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महावलः' का उल्लेख है और यह पदवी एक छोटे राज्य के राजा ने धारण की थी। ग्यारहवीं शताब्दी के राजेन्द्रचोळ जो उत्तर भारत गङ्गा तट तक अपनी विजय पताका फहरायी थी और जो प्रभावशाली भी था, उनके सामने एक खिदमतीजागीरदारी के राजा अपने को 'त्रिभुवन चक्रवर्ति' पदवी धारण नहीं कर सकता है। राजेन्द्र चोळ एवं आपके पश्चात् राजा सब प्रभावशाली थे और पुनः वारहवीं शताब्दी पूर्वार्ध में कुलोत्तुङ्ग I ने दो बार कलिङ्ग पर चढाई की थी और आप भी प्रभावशाली थे। आपके सामने तेलगू सीमा के खिदमति जागीरदारी राजा अपने को 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महावल' पदवी धारण करना असम्भव है। कुलोत्तुङ्ग का मरण पश्चात् आपका राज्य शिथिल होता चला। अर्थात् वारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में ही अन्योंने अपना अपना प्रभुत्व जमाने लगे। राजराज II (1146—1173) के शासन काल के अन्त में ही वेङ्गी के वेलनाड चोळ स्वतंत्र बन बैठे। इनके पश्चात् काल में ही नेल्लूर के तेलुगु चोळ (विक्रम चोळ—*1118—1135* ई० के एक खिदमती जागीरदारी) भी स्वतंत्र वन बैठे। परन्तु कुलोत्तुङ्ग III(*1178—1218* ई०) के काल में नल्लसिद्धि एवं आपके भाई तम्मु सिद्धि, 1187 ई० से, कुलोत्तुङ्ग के आधीन में पुनः आगये थे। किसी भी दक्षिण भारत इतिहास पुस्तक में यह सब विषय पाया जाता है। इससे यह प्रतीत होता है कि 1111 ई० में एक खिदमती जागीरदारी राज्य का राजा अपने को 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महावल' की पदवी धारण नहीं कर सकता था। ताम्र पत्र में दिये दान काल को हर एक 60 वर्ष आगे पीछे ले जाकर अनुमान से काल निर्णय किया नहीं जा सकता है जैसा कि श्री रामेशम ने किया है। इतिहास से उपलब्ध सामग्री द्वारा ही काल की पुष्टी करना चाहिये। प्रथम कहा गया कि 1291 ई० है और जब यह गलत साबित हुआ तो अब *1231* ई०, *1171* ई०, *1111* ई०, *1051* ई०, *991* ई०, *931* ई० आदि का होना भी अनुमान कर प्रचार किये जा रहे हैं। उक्त कालों में *1111* ई० के लिये कुछ पुष्टी सामग्री अन्य शासनों द्वारा उपलब्ध होने से श्री रामेशम का अनुमान है कि यही काल ताम्र पत्र का हो सकता है! 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महावल' पदवी धारण करने वाले विजयगन्ड गोपाल *1250—1285* ई० में एक थे और नेल्लूर शासन के अनुसार दूसरे 'त्रिभुवन चक्रवर्ति विजयगन्डगोपाल' *1290* ई० में राज्यशासन हाथ में लिया था और आपको मदुरान्तक प्रतापि चोळ जिनको रङ्गनाथ या राजगन्डगोपाल भी कहा जाता था। इन दोनों का काल के साथ ताम्र शासन में दिये हुए काल विवरण के साथ ठीक जमता नहीं है और ताम्र शासन के अनुसार दान की तारीख *4—1—1351* ई० का था। अर्थात् *1111* ई० भी ठीक काल प्रतीत नहीं होता और *1351* ई० में कोई तेलगू चोळ ही न था।

विष्णु कांची के विष्णु मन्दिर में एक शिलाशासन शक वर्ष *1127* का है जो तेलगू चोळ राजा 'तम्मुसिद्धि' का है। आपके बडे भाई मन्मसिद्धि एवं इन दोनों का पिता श्री गन्डगोपाल का भी नाम उल्लेख है। अर्थात् तम्मुसिद्धि का दान शासन का काल 1205 ई० का था। इतिहास से प्रतीत होता है कि *1187* ई० से कुलोत्तुङ्ग के अन्त काल तक तेलगू चोळ राजा नल्लसिद्धि एवं आपके भ्रातर तम्मुसिद्धि ने कुलोत्तुङ्ग III (*1178—1218* ई०) का प्रभुत्व

स्वीकार किया था। यह भी प्रतीत होता है कि काकतिया गणपति राजा (आपका काल *1199—1262* ई०) ने कवि टिक्कण्णा (**' He was niyogi Brahmin of the court of Manumasiddhi, chief of Nellore and subordinate of Kakatiya Ganapati.' ' Tikkanna himself was a successful courtier and diplomat, and on one occassion he secured Ganapati's aid for Manumasiddhi in regaining his throne.'**) के आदेश पर चोळ टीका का पुत्र मनुमसिद्धि को अपनी सहायता देकर राज्य में दुश्मनों को हराकर मनुमसिद्धि को स्थिरतापूर्वक राज्यगद्दि में बिठाया था। ताम्रशासन पत्र में उल्लेख है 'पट्टाभिषेचनात् ऊर्ध्वम् वर्षे च सति षोडषे' अर्थात् विजयगन्डगोपाल के राज्य शासन के सोलहवें वर्ष में दिया हुआ शासन पत्र था। ताम्रशासन के संपादक श्री रामेशम का अभिप्राय है कि यह ताम्र शासन *1111* ई० में दिया गया था। अर्थात् विजयगन्डगोपाल ने राज्यशासन 1095 ई० में अपने हाथ में ले लिया। यह काल कुलोत्तुङ्ग प्रथम 1070-1122 ई० का काल था। यह असम्भव है कि कुलोत्तुङ्ग के सामने खिदमती जागीरदारी राजा अपने को 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल' की पदवी धारण कर सकते हैं। अर्थात् ग्यारहवीं/बारहवीं पूर्वार्ध शताब्दी का कोई भी गन्डगोपाल इस शासन के दाता नही हैं। बारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में ही ये खिदमती जागीरदारी राजा स्वतंत्र बन बैठे पर वे भी बारहवीं शताब्दी अन्त काल में कुलोत्तुङ्ग का प्रभुत्त्व स्वीकार किया था। यदि गन्डगोपाल का राज्यकाल 1095 ई० का था तो किस प्रकार आपके पुत्र तम्मुसिद्धि का काल 1205 ई० का हो सकता है (कांची विष्णु मन्दिर शिलाशासनानुसार)? पर तम्मुसिद्धि का काल शिलाशासन पुष्टी करता है। अतः गन्डगोपाल का अनुमान काल ठीक जमता नहीं है। काकतिया गणपति ने 1199 ई० के पश्चात् ही मनुमसिद्धि (तम्मुसिद्धि के भ्राता) के दुश्मनों को हराकर राज्य में स्थिरतापूर्वक बिठाया था। बारहवीं शताब्दी अन्त और तेरहवीं शताब्दी प्रारम्भ व्यक्ति के पिता क्या लगभग 100 वर्ष राज्य शासन किया था? श्री रामेशम का अनुमान इतिहासिक घटनाओं के साथ जमता नहीं है।

इस नवीन प्राप्त ताम्रशासन के एक भाग में उल्लेख है 'स्वात्मारामाय विदुषे पोप्पिळ्ळि प्रथितात्मने' और श्रीरामेशम का प्रचार है कि यह पद 'स्वात्मारामाय विदुषे' एवं 'पोप्पिळ्ळि' दोनों कांची मठ शङ्कराचार्य का ही द्योतक है अतः यह ताम्र पत्र कांची मठ का ही है। आगे आप कहते हैं कि 'पोप्पिळ्ळि' घराना या वंश नाम है जो केरळ व तेलगू देशों में व्यक्ति के नाम के साथ घराना या वंश नाम भी देना रूडी में चला आया है। आपका तर्क भी है कि जिस प्रकार आचार्य शङ्कर 'कैप्पिळ्ळि' वंश के थे उसी प्रकार 'पोप्पिळ्ळि' भी घराना नाम है। 'कैप्पिळ्ळि' घराना नाम श्रीशङ्कराचार्य के पूर्वाश्रम का द्योतक है न कि प. प. आचार्य शङ्कर का सन्यास नाम का द्योतक है। इसी प्रकार इस ताम्र पत्र में 'पोप्पिळ्ळि' घराना नाम देने से ही सिद्ध होता है कि दान प्राप्त व्यक्ति यति हो नहीं सकता है। इसी ताम्र पत्र में एक और जगह 'द्विजन्मने' पद दान प्राप्त करनेवाले को कहा है जो ब्राह्मण ब्रह्मचारी या गृहस्थ का ही द्योतक है न कि सन्यासियों का। इस उक्त द्विजन्मने के साथ अब घर का नाम 'पोप्पिळ्ळि' ठीक जमता है चूंकि घराना नाम या वंश नाम सन्यासियों को दिया नहीं जाता है और इससे सिद्ध होता है कि दान प्राप्त करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मचारी या गृहस्थ ही है। सन्यासी वर्ग जन्म या वर्ण के अतीत हैं 'जन्मजातिरहिताः' और इसलिये 'दिजन्मने' एवं 'पोप्पिळ्ळि' दोनों सन्यासी का द्योतक नहीं है। 'स्वात्मारामाया विदुषे' यह विशेषण पद कोई एक महान तपस्वी प्रकान्ड विद्वान व्यक्ति को भी लागू हो सकता है। जब तक ताम्र पत्र में स्पष्ठ कांची मठ या कांची मठाधीश या ऐसा कोई विशेष पद जो कांची मठ को ही लागू होता हो इन सब का उल्लेख न हो या जब तक यह सिद्ध न हो कि कांची में कांची मठ को छोड अन्य कोई संस्था, मठ या गुरुकुल न था, तब तक इन पदों से केवल कांची मठ का सम्बन्ध नहीं लगाया जा सकता है। कांची इतिहास एवं अन्य शिला शासनों से स्पष्ठ

सिद्ध होता है कि कांची में (विष्णु कांची में) वेद मठ था, गुरुकुल थे, साधारण यतियों का मठ भी था। इस नवीन प्राप्त 1961 ई० में प्रकाशित ताम्रशासन से दान देनेवाले का नाम एवं काल जो पूर्व में अग्राह्य था उसे सुधारने के लिये ही अब प्रचार हो रहा है। यदि उक्त दोनों विषयों को मान भी लें तो भी दान प्राप्त करनेवाले का नाम निस्सन्देह निर्धारण किया नहीं जा सकता है। मुझे आश्चर्य न होगा कि इन आक्षेपों के उत्तर में 1963 इ० में और एक ताम्र पत्र भी अचानक प्राप्त हो सकता है जो कांची मठ या मठाधीश का नाम भी लिया हो।

यद्यपि ताम्रपत्र में 'शंकरार्य गुरवे' का उल्लेख है तथापि श्री रामेशम 'शङ्कराचार्य गुरवे' होने की कल्पना कर भ्रामक प्रचार करते हैं। 'शंकरार्य' एवं 'शंकराचार्य' पदों के अर्थ भी भिन्न हैं। श्री रामेशम कृपया श्री एच. के. एस. के लेखों व विमर्शों को पढ़ें तो अपनी भूल मालूम होगी। ऐसे प्रचारों को ही भ्रामक मिथ्या प्रचार कहते हैं। शर्म की बात है कि राज्य कर्मचारी भी ऐसे प्रचारों में सहयोग देते हैं। उक्त दोनो पत्रों में कुछ विशेषन पद दान प्राप्त करने वाले के बारें में कहा गया है पर कहीं दान प्राप्त करने वाले का नाम या पता या मठ का नाम भी दिया नहीं है और ऐसे विशेषन पद 'नित्यान्नदान' 'विधिसन्तर्पितात्म', 'द्विजन्मने', 'निगमान्तर रहस्यार्थ', 'शिष्येभ्यस्सुवित्रणवते', 'तपोधनाय मुनये', 'शिवध्यान रतात्मने', 'स्वात्मारामाय विदुषे' जो किसी एक तपस्वी विद्वान ब्राह्मण जो गुरुकुल आश्रम चला था जैसे विष्णु कांची का 'वेद मठ' था उसे भी लागू हो सकता है। किस आधार पर यह निस्सन्देह कहा जाय कि यह ताम्र पत्र के उक्त विशेषण केवल कांची मठाधीश को ही लागू हो सकता है जब तक उक्त ताम्र पत्र में कांची मठ या मठाधीश का नाम नहीं लिया है। मदरास राज्य G. O. 1260 (1915 ई०) में लिखा है कि उक्त ताम्र पत्र में यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि 'शंकरार्य' जिस मठ के अधीश थे वही मठ कांची मठ के शंकराचार्य का मठ था—'It is not clearly stated in the record if the Matha presided over by the Sankararya herein referred to, was identical with the Sankaracharya Matha at Conjeevaram.' मुझे आश्चर्य न होगा कि श्री रामेशम अब इस त्रुटि के निवारण में और एक ताम्र पत्र प्राप्त होने की कथा सुनाकर इस आक्षेप के उत्तर में प्रचार भी करें। जैसे कांची मठ के मठाम्नाय में कांची मठ को 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' कहा है, इसे अब सिद्ध करने चले एक नवीन शिष्य टोली।

यह शासन कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ का नहीं है और सम्भवतः कल्पित है। प्रथमतः कुम्भकोण मठ से प्रचारित शासन समय 1291 ई० का ताम्रशासन में दिये काल विवरणों के साथ एवं पंचाङ्ग के अनुसार ठीक जमता नहीं है। ताम्रशासन में दिये हुए विवरण 4—7—1351 ई० का बतलाता है। अब इसे सुधारने के लिये ताम्र शासन का एक और भाग 1961 ई० में प्राप्त होने का प्रचार करते हैं और जिससे इस शासन का काल *1111* ई० का होना प्रचार करते हैं। पर यह भी ठीक नहीं जमता। दूसरा—'शासन पत्र में दिये हुए कुछ विशेषण पदों से कांची मठ या कांची मठाधीश ही का उल्लेख है' यह निर्णय किया नहीं जा सकता है। सम्भवतः यह दूसरे कोई अन्य मठ का हो। 'द्विजन्मने' पद से शङ्का भी उठती है कि क्या 'आर्यगुरु—शङ्कर' सन्यासी थे? इसकी पुष्टी अब उपलब्ध होने वाले प्रथम चद्दर करता है जहां दान प्राप्त करने वाले का घराना नाम या वंश नाम 'पोप्पिळ्ळि' दिया गया है। तीसरा—दानदेने वाले का नाम, विवरण व उसका इतिहास सब विवादास्पद है और इतिहास कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टी निस्सन्देह नहीं करती है। ताम्रशासन का काल 4—7—1351 ई० का है और इस समय कांची में कोई तेलगू चोळ न था। अब 1961 ई० में कहेजाने वाले ताम्रशासन का काल *1111* ई० का भी ठीक नहीं है चूं कि इस काल में 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल विजयगन्डगोपाल' का होना भी सन्देह है।

क्यों कि कुलोत्तुङ्ग प्रथम के काल तक प्रभावशाली राजाओं के सामने खिदमती जागीरदारी राजा 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल' का पदवी धारण कर नहीं सकते। चौथा—कुम्भकोण मठ के प्रथम कथनानुसार इनका मठ कामाक्षी देवी मन्दिर के पास होना था तो अब आप कैसे विष्णु कांची का मठ कहते हैं? जो मठ विष्णु कांची में है वह तो अर्वाचीन काल में प्राप्त मकान है जिसे अब मठ बनाया गया है। वास्तव विषय यह है कि शिवकांची का मठ भी अर्वाचीन काल का है। इन भिन्न प्रचारों से मालूम होता है कि कुम्भकोण मठ स्वयं अपने मठ का यथार्थ इतिहास भी नहीं जानते। पांचवा—शासन की भाषा में, व्याकरण, शैली, लिपि आदि की बहुत त्रुटी हैं और उस काल के अन्यत्र प्राप्त शासनों से तुलना किया जाय तो यह शासन उससे मिलता जुलता नहीं है।

ताम्रशासन—2

यह कहा जाता है कि राजा श्री वीर नरसिंह ने तुङ्गानदी तट श्री विरूपाक्षी देवता सन्मुख श्री सदाशिव सरस्वती के शिष्य श्री महादेव सरस्वती को शुक्ल वर्ष, माघ माह, माघ महोदय पर्व अर्थात् शक *1429* में इलिचापुर तथा वेङ्पाक्कम् के दो गावं को दान में दिये थे। वार, दिन तथा तिथि का उल्लेख नहीं है।

श्री टी. ए. जी. राव लिखते हैं "Nandinagari character and in the Sanskrit language on three plates. ... ... its execution is very shabby; the alphabet itself is rather peculiar and the formation of the letters somewhat curious. ... ... The year S 1429 does not really correspond to the cyclic year Sukla, which falls in the year S 1432."

श्री वीर नरसिंह, नायक राजा था, जो वैष्णव मत के बडे अभिमानी थे। शक *1429* का अनुरूप *1507* ई॰ का होता है। दक्षिण भारत के प्रसिद्धि ऐतिहासिक श्री वृद्धगिरीषन द्वारा रचित 'The Nayaks of Tanjore' पुस्तक में लिखा है' कि श्री वीरनरसिंह नायक 1509 ई॰ में प्रथमतः उस राज्य के कर्मचारी हो कर आये। इससे स्पष्ट प्रतीत होता कि राज्य के एक कर्मचारी श्री वीरनरसिंह नायक इस शासन पत्र काल 1507 ई॰ में कदापि दान शासन देने अर्ह न थे। अन्यत्र इनका शासन पत्र 1510 ई॰ से 1530 ई॰ तक का उपलब्ध होता है। पंचाङ्ग व गणित कालानुसार शुक्ल वर्ष 1509—10 ई॰ में पडता है। कुम्भकोण मठ की वंशावली के अनुसार चन्द्रचूड III *1507–1524* ई॰ का उल्लेख है। यदि शासन काल *1509–10* ठीक है तो शासन में दिये हुए दानप्राप्ती व्यक्ति का नाम 'महादेव सरस्वती' ठीक नहीं है। महादेव IV उर्फ व्यासाचल का काल 1498–1507 ई॰ का है। पर यह भी गलत प्रतीत होता है चूं कि आपका निर्याण काल अक्षय वर्ष, आषाढ कृष्ण प्रथमा, कहा गया है अर्थात् इसका अनुरूप जुलै–अगस्त 1506 ई॰ का होता है। इनके गुरु श्री सदाशिव का काल 1417—1498 ई॰ का है। श्री महादेव के शिष्य चन्द्रचूड III का काल 1507—1523 ई॰ का है। यदि शासन प्राप्त करने वाले का नाम ठीक है तो शासन काल ठीक नहीं जमता। इस प्रकार नाम व काल में परस्पर का विरोध है। मार्के की बात है कि इस शासन में दिन एवं तिथि का उल्लेख नहीं है। दक्षिण में पुराकाल के लोग दानादि कर्म करते समय वर्ष, मास, पक्ष, वार, तिथि आदि का बिना उल्लेख किये कोई काम नहीं करते थे। शासन काल ठीक न होने से एवं दान देने वाले नायक राजा सन् 1507 ई॰ में राज पदवी या कर्मचारी न होने से यह शासन पत्र ठीक नहीं है। शासन पत्र में न 'कांची मठ' का नाम उल्लेख है या न 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट। केवल यति का नाम है इसलिये किस प्रकार से इनके सम्बन्ध को कांची मठ से जोडा जा सकता है? तुङ्गानदी तट पर दिये हुए दान केवल शृङ्गेरी अथवा विरूपाक्षी आदि शाखा मठों को ही हो सकता है न कि कहे जाने वाले कांची मठ।

ताम्रशासन—3

यह शासन उपर्युक्त ताम्र शासन नं. 2 के समान ही है। केवल इतना ही भेद है कि इस शासन में 'कुडियान्तान्डलम्' नामक गांव को दान में देने का उल्लेख है। एक ही राजा द्वारा दो शासन एक ही समय में एक ही श्रीमहादेव सरस्वती को देने की कथा सुनाई जाती है। कुम्भकोण मठ के 55 वें आचार्य चन्द्रचूड III का काल 1507—1523 ई० का है। शासन काल शक 1429 गलत होने के कारण शासन काल 1510 ई० ठीक माना गया है। तब यह दोनों शासन (नं 2 व 3) चन्द्रचूड III को ही देना था न कि श्रीमहादेव सरस्वती को। कुम्भकोण मठाधीष सब विशेष 'इन्द्रसरस्वती' योग पट्ट धारण करनेवाले, क्यों अब केवल 'सरस्वती' का नाम ऐसा इस शासन में दिया गया है? यद्यपि दान प्राप्त यति के यशोगान किये गये हैं तथापि इनका संबन्ध कांची मठ से उल्लेख नहीं किया गया है और न कांची मठ का उल्लेख है।

कुम्भकोण मठ का प्रामाणिक ग्रंथ गुरु-राज-रत्न-माला-स्तव (गुरुरत्नमाला) में निम्नलिखित श्लोक है :—

निजनीवृदवग्रहेतिखेदं त्यज नेपाल नृपाल पूज्यपादः।
सपुरोमम साधु सन्निधत्तां विपुलानन्द सदाशिवोऽप्रमत्तः॥

इस श्लोक के आधार पर कुम्भकोण मठवाले प्रचार करते हैं कि कांची कामकोटि मठ के आचार्य नैपाल नरेश से पूजित हुए। इस विषय के सम्बन्ध में नैपाल राज्य द्वारा प्राप्त पत्र जो इस पुस्तक के अन्य भाग में प्रकाशित है उससे मालूम होता है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार सब मिथ्या एवं भ्रामक है। डा० बुहुलर लिखते हैं—'Swami of South India went to Nepal about 1503 and that he was named Somasekharananda.' गुरुरत्नमाला के श्लोक तथा डा० बुहुलर के कथन के आधार पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि जो यति दक्षिणी भारत से नैपाल गया था वह कुम्भकोण मठ का शिष्य यति था। कुम्भकोण मठ के प्रचारित कुछ पुस्तकों में प्रचार किया गया है कि कुम्भकोण मठाधीष ही नैपाल गये थे और वे नैपाल नरेश द्वारा पूजित हुए। डा० बुहुलर के कथन से मालूम होता है कि कोई एक यति श्रीसोमशेखरानन्द के नाम का 1503 ई० में नैपाल गया था। कुम्भकोण मठ के गुरुवंशावली से प्रतीत होता है कि श्रीसदाशिव सरस्वती का काल 1417–1498 ई० का है व महादेव IV का काल 1498—1507 ई० का है एवं चन्द्रचूड III का काल 1507—1523 ई० का है। इस वंशावली में 'सोमशेखरानन्द' का नामों निशान भी नहीं है। कुम्भकोण मठ के शासन पत्रों का संपादक लिखते हैं—'Our copper plates show that Chandrasekhara was also named Chandrachuda. Somasekhara may be another varient as it has the same meaning. It is more than merely possible that the Sadasiva of the stotra may have sent one of his disciples Chandrachuda alias Somasekhara to Nepal at the request of its king.' अब कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि चन्द्रशेखर या चन्द्रचूड या सोमशेखरानन्द सब केवल नामान्तर हैं पर अर्थ सब का एक ही है इसलिये सोमशेखरानन्द अर्थात् चन्द्रचूड अर्थात् चन्द्रशेखर अर्थात् महादेव इत्यादि। क्यों नहीं शिव अष्टोत्तरशत नामावली का सब नाम ले लेते? सब का अर्थ व तात्पर्य एक ही तो है? यतिधर्मशास्त्रानुसार सन्यास दीक्षा देते समय दीक्षा नाम दिया जाता है जो एक ही नाम होता है न कि अनेक। शिष्य वर्ग भक्ति व प्रेम से विशेष यशोगान का अनेक नाम व्यवहारिक रूप में दे सकते हैं पर दीक्षा नाम एक ही होता है। अतः कुम्भकोण मठाधीशों का अनेक दीक्षा नाम होना यह अशास्त्रीय है। सदाशिव का काल 1417—1498 ई० का है तो किस

प्रकार से 1503 ई० में सदाशिव अपने शिष्य को नैपाल भेज सकते हैं? सदाशिव के शिष्य महादेव IV थे न कि यति सोमशेखरानन्द। ऐसे भ्रमात्मक प्रचार करते हुए भी आपको शरम नहीं आती। ये सब युक्तिवाद तथा अनुमानवाद कल्पनाओं से भी अतीत हैं। स्वार्थ के लिये असाध्य को साध्य करने की चेष्टा में व मिथ्या को सत्य का रूप देने की कोशिश में आप द्वारा यह सब नाटक रचा जा रहा है। सोमशेखरानन्द का सम्बन्ध कांची मठ से कुछ भी नहीं है। यदि प्रमाण होता तो अवश्य डा० बुहुलर स्पष्ट रूप से कांची मठ का नाम लेते। उन दिनों में दक्षिणाम्नाय शारदा मठ शृङ्गेरी ही था। यह दक्षिण देश यति चाहे स्वतन्त्र रूप से नैपाल यात्रा के लिये गए हों अथवा श्रीशृङ्गेरी से भेजा गया हो। पाठकगण स्वयं जान लें कि आप द्वारा ऐसे भ्रामक प्रचारों का क्या तात्पर्य है।

विजयनगर इतिहास पुस्तक में उल्लेख है कि 1509 ई० के अप्रेल जूलाई माह के बीच में वीर नरसिंह का मरण हुआ था और कृष्णदेवराय जूलाई माह 1509 ई० में राजा बने। कहा जाता है कि वीरनरसिंह ने शुक्लवर्ष माघमाह (जनवरी/फरवरी 1510 ई०) में यह दान पत्र दिया था। वीर नरसिंह के मरण पश्चात् यह दान देने की कथा ठीक नहीं जमती। कुम्भकोण मठ का कथन है कि शासन काल शक 1429 का है अर्थात् जनवरी/फरबरी 1507 ई० का होता है। यह गलत होने के कारण एवं शासन पत्र में शुक्ल वर्ष का उल्लेख होने से तथा पञ्चाङ्ग के अनुसार शुक्ल वर्ष शक 1432 में होने से जनवरी/फरवरी 1510 ई० ही ठीक काल है। ताम्र पत्र के संपादक स्वयं इस भूल को स्वीकार करते हैं।

ताम्रशासन—4

यह शासन राजा श्री कृष्णदेवराय ने कृष्णवेणी नदी तीर से कांचीपुर निवासी श्री महादेव सरस्वती के शिष्य श्री चन्द्रचूड सरस्वती यतिराज को, स्वभानुवत्सर, मार्गशीर्ष मास, गोडवादसी, शक 1444 (अनुरूप 1522—23 ई० या 1523—24 ई०) के दिन दो गांव को (काट्टुप्पाट्टु तथा पोडऊर) दान दिये जाने का उल्लेख करता है। पोडऊर गांव का नाम कृष्णरायपुर के नाम से दान काल में नाम बदल दिया गया था। कुम्भकोण मठ इस शासन का काल 1521—22 ई० का बतलाते हैं। इस शासन में प्रथम बार कांची नगर का उल्लेख पाया जाता है। संस्कृत भाषा व नन्दिनागरी लिपि में शासन लिखा गया है।

शासन पत्रों में शासन लेखकों का नाम दिया जाना एक रूढी थी पर इस शासन पत्र में केवल 'उरुकवि' का पद उल्लेख है। कुम्भकोण मठ प्रचारक इस 'उरुकवि' पद को लेखक का नाम बतलाते हैं पर राजकीय कर्मचारी (Archaeological Dept.) श्री युत एच. के. एस लिखते हैं '... ... it may, however, mean simply great poet.'

शासन पत्र का स्वभानु संवत्सर का अनुरूप शक 1442 पडता है न कि शक 1444 जैसा कुम्भकोण मठ का कथन है। इस शासन में तारीख या तिथि, दिन व नक्षत्र का उल्लेख नहीं है। शासन पत्र के संपादक लिखते हैं 'The date of the grant is Saka 1444, Swabhanu, marga Seersha, Godavadasi. There is apparently a mistake here either of the Saka or of the cyclic year, as Swabhanu would be Saka 1442 and not 1444. It is curious that neither the date of the month nor the Tithi or Nakshatra is given.'

इस शासन पत्र के बारे में संपादक लिखते हैं: 'The poetry is of a low order. The inscription has several orthographical peculiarities. Stops are not supplied in their proper places. Here and there we find the confusion of long and short i and u ... '

इस शासन में चन्द्रचूड को 'शिवचेतस, यतिराज, धीमत' के गुणों द्वारा यशोगान किया गया है। और इसलिये कुम्भकोण मठ कहते हैं कि यह शङ्कराचार्य का ही गुण हैं इसलिये यह शासन कुम्भकोण मठ के आचार्य को ही दिया गया है। पर ऐसे सब विशेषण पद अन्य किसी भी आदरणीय विद्वान तपस्वी परिव्राजक को भी लागू हो सकता है। 16 वीं शताब्दी में 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' पदवी सर्वसाधारण रूप में प्रयोजन किये जाने का अनेकों प्रमाण अन्यत्र श्रृङ्गेरी आदि मठों में मिलते हैं। आश्चर्य है कि कांची मठ जिसे साक्षात् आद्यशङ्कर के अविच्छिन्न गुरु परम्परा होने का प्रचार किया जाता है, वैसे महागुरु मठ के मठाधीष को क्यों नही 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' पदवी से संबोधन किया गया है? श्री आद्यशङ्कर के समसामयिक काल अथवा उनके समीप काल में इस पद का उपयोग न किये जाने का कारण भी हो सकता है पर 16 वीं शताब्दी में इन विशेष पदों का उपयोग न किये जाने का कारण कुछ भी नहीं हो सकता है। इससे निश्चित होता है कि आप 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' पदवी के अर्ह न थे यद्यपि आप अपने कल्पित मठाम्नाय में कहा है 'सर्वेश्वरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः।'

कांची मठ के गुरुपरम्परा में उल्लेख है :—

"चन्द्रशेखर योगीन्द्रः विद्यानाथ यतिर्महान्।
... ...
... ...
इमेह्यष्टस्मृताः शिष्याः श्रीविद्यातीर्थयोगिनः।
शङ्करानन्दयोगीन्द्रः पूर्णानन्दस्तथैव च
महादेवश्च तच्छिष्यः चन्द्रशेखर एव च॥

चन्द्रशेखर का नाम कुम्भकोण मठ की गुरुपरम्परा में दिया गया है पर शासन पत्र स्पष्ठ चन्द्रचूड का नाम उल्लेख करता है। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित पुस्तक जो मठाधीष को अर्पित है उसमें चन्द्रचूड का उल्लेख है। मार्के की बात है कि इनके मठ के मठाधीशों का बहुनाम पाया जाता है। आप विविध पुस्तकों में भिन्न भिन्न नाम देकर प्रचार करते हैं। भगवान जाने कि कौन सा नाम चन्द्रचूड या चन्द्रशेखर यथार्थ दीक्षा नाम है। शासन के संपादक लिखते हैं—'The names Chandrachuda Saraswati and Chandrasekhara Saraswati being idential in meaning, both may be taken as representing one and the same teacher.' शिव सहस्रनाम स्तोत्र में सब पदों का एक ही अर्थ या तात्पर्य बोध करता है तो क्यों नहीं अन्य नामों को भी ले लिया जाता? सन्यासियों को दीक्षा देते समय दीक्षा नाम भी दिया जाता है जो नाम एक ही होता है। इस दीक्षा नाम से ही यति संबोधित किये जाते हैं। यह धर्मशास्त्र विधि है। शिष्य अनन्य भक्ति व प्रेम से व्यवहारिक नाम भले ही दें पर दीक्षा नाम एक ही होता है! सम्भवतः आपको यतिधर्मशास्त्र विधि लागू नहीं होता हो!

इससे तो आश्चर्य का यह विषय है कि सोमशेखरानन्द यति जो नैपाल गये थे उसे आप चन्द्रचूड या चन्द्रशेखर नाम देकर कुम्भकोण मठाधीष होने का प्रचार भी करते हैं। शासन पत्र के संपादक लिखते हैं—

'The plate editors say that the Swami referred to must be either the donee of the grant or his guru's guru Poornananda alias Chandrachuda. The Poornananda of the guruparampara will then be a surname of Chandrachuda of our grant.' इसे पाठकगण पढकर यथार्थ जान लें। ऐसा भगीरथ प्रयत्न निष्प्रयोजन है। असाध्य को साध्य बनाने की चेष्टा से ही कुम्भकोण मठ की यथार्थता को जानी जा सकती है। वास्तविक विषय को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है।

गुरुपरम्परा-स्तव में यह श्लोक है—

"श्रीपूर्णानन्द मौनीन्द्रं नेपाल नृपदेशिकं
अव्याहृ वस्त्र संचारं संश्रयामि जगद्गुरुं॥

नैपाल राज्य द्वारा प्राप्त पत्र से यह विदित होता है कि आपका सब प्रचार मिथ्या व भ्रामक है। यह पत्र सातवें अध्याय में प्रकाशित है।

प्रथम बार इस ताम्र पत्र में 'कांचीपुर निवासय' का उल्लेख है पर ऐसा पद ताम्र पत्र 2, 3 व 5 में नहीं पाये जाते हैं यद्यपि ये सब विजयनगर महाराज से ही दिये जाने की कथा सुनायी जाती है। सम्भवतः पश्चात् इस पद को जोड लिया गया हो। इस शासन में 'शारदा मठ' का नाम उल्लेख है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय का शारदा पीठ व मठ शृङ्गेरी ही है और 'शारदा मठ' पद शासन पत्र में उपयोग होने से स्पष्ट मालूम होता है कि यह कांची शारदा मठ श्रीशृङ्गेरी शारदा मठ का शाखा मठ था। और इसीलिये कांची शारदा मठ के मठाधीषों की पदवी 'चिन्कुडयार' अर्थात् 'छोटे स्वामी' था। यह पदवी 'चिन्कुडयार' कांची कुम्भकोण मठाधीष को लागू होने का निश्चय कचहरी द्वारा 1935 इ० के एक दावा के निर्णय में दिया गया है। Madras G. O. 1260 Public, 25—8—1915 में लिखा है—'Chandrachuda Saraswati was a follower of the school of Mayavadins started by Sankaracharya and a resident of Conjeevaram. He presided over the Sharada-Matha at that place. Hence we might presume that Chandrachuda Saraswati was a member of Sankaracharya's lineage, provided the name Sharada-Matha is still applied to its present seat at Kumbakonam.' ... ... 'The manager of the Matha at Kumbakonam who was consulted on the point states that the name Sharada-Matha is even now borne by the Sankaracharya Matha at that place and the date of the removal of the matha from Conjeevaram to Kumbakonam happened recently about 186 years ago, in the Sadharana year during the reign of the Maratha King Pratapa of Tanjore. If even this were so it looks suspicious why the name Sankaracharya is not mentioned even incidently in any one of the copper plates under reference.'

इससे सिद्ध होता है कि इस शासन पत्र को कहां तक सत्य माना जाय। 1915 ई० में कुम्भकोण मठ लिखते हैं कि करीब 186 साल पूर्व कांची मठ कांची से कुम्भकोण परिवर्तन हुआ था जब तंजौर के राजा प्रताप सिंह का राज्य काल था (अर्थात् 1729 ई० में जाने का कथन है)। दक्षिण भारत का प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों में प्रताप सिंह का राज्य काल 1739 से 1763 ई० का उल्लेख करता है। सैयाजी (Saiyaji) को एक काट्टु राजा

द्वारा राजच्युत किया गया पश्चात् उसी वर्ष अगस्त माह 1738 में पुनःसैयाजी ने राज सिंहासन पर आ बैठे। इसके पश्चात् यहां संघर्ष हुआ और इसके फलाभूत प्रताप सिंह 1739 ई० में राजा बन बैठे। कुछ ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि राजा प्रताप सिंह तंजौर गद्दी पर 1749 में बैठे। Madras G. O. No. 183, Finance, ता: 23—9—1921 में लिखा है: "These are charters issued in Saka 1680 (A. D. 1758) and saka 1681 (A. D. 1759) during the reign of Pratapa Simha of the Tanjore Maratha dynasty, who wrested the kingdom from his weaker elder brother Sahuji or Saiyaji and ascended the throne in about *1749*, ruling it till his death in 1765 A. D.' जब प्रताप सिंह का राज्यकाल प्रारम्भ 1739 या 1749 से होने का निश्चित होता है तो तब किस प्रकार कुम्भकोण मठ वाले कहते हैं कि 1729 ई० में राजा प्रतापसिंह के निमन्त्रण पर मठाधीश ने कांची छोड कर तंजौर गये? कुम्भकोण मठ के प्रचारित अन्य पुस्तकों में तंजौर जाने का काल भिन्न भिन्न वर्ष (ईस्वी में)बतलाये गये हैं–(1) 1686 (2) 1743/63 (3) 1729 (4) 1767 (5) 1780 इत्यादि। इतने विविध कालों का उल्लेख द्वारा प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ वाले स्वयं यथार्थ काल नहीं जानते। यदि घटना सत्य होती तो अवश्य ही आपको यथार्थ परिवर्तन वर्ष भी मालूम होता। अनुमान की अवश्यकता ही नहीं है। इस विषय पर पूर्ण आन्वेषण सामग्री अन्य अध्याय में दिया गया है। कुम्भकोण मठ वाले उन दिनों में कामाक्षी मन्दिर के न अधिकारी व स्वामी थे और न वे 'स्वर्णकामाक्षी' को तंजौर ले गये। ऐतिहासिक कथा में अपना नाम जोड करके एवं अन्यों द्वारा कृत कार्य को अपने नाम द्वारा होने का प्रचार करके ऐसा मिथ्या प्रचार कर रहे हैं। 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट जो विशेष कुम्भकोण मठ का योग पट्ट है इसका उल्लेख शासन पत्र में नहीं है। शासन पत्र के सम्पादक लिखते हैं: 'The tradition of the Matha tells us that it was at the invitation of king Sarabhoji of Tanjore that the Acharya removed to Kumbhaghonam.' इतिहास में राजा शरभोजी I का काल 1712—28 ई० तथा शरभोजी II का काल 1798—1833 ई० का उल्लेख किया गया है। कुम्भकोण मठ के प्रचार के अनुसार मठ का परिवर्तन कांची से उदयारपालयम् व उदयारपालयम् से तंजौर और अन्त में तंजौर से कुम्भकोणम् जाने की कथा सुनाते हैं। यह घटना यथार्थ घटित होती तो अवश्य घटना काल भी मालूम होता और आपके भिन्न कथनों से भ्रामक व मिथ्या प्रचार की पुष्टी होती है। कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके कांची कामकोटि मठ का नाम शारदा मठ है और अब भी कांची कुम्भकोण मठ शारदा मठ से ही पुकारा जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि एक समय में दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदा मठ का शाखा मठ कांची शारदा मठ था। मार्के की बात है कि कुम्भकोण मठवालों द्वारा प्रचारित पुस्तकों में केवल कांची कामकोटी पीठाधिपति जगद्गुरु इत्यादि उपादी का उपयोग किया जाता है ताकि साधारण अनभिज्ञ जनवर्ग जान लें कि यह एक स्वतन्त्र सर्वोच्च सर्वोत्तम मठ है। यदि 'कांची शारदा मठ' पद का उपयोग सर्वसाधारण रूप में करें तो अनभिज्ञ जनवर्गको भी इनके सर्वोच्च स्वतंत्र मठ बनने का प्रचार पर सन्देह हो जायेगा और इसीलिये इस पद का उपयोग नहीं किया जाता है। प्रश्न उठने पर उसके समाधान रूप में उत्तर देने के लिये एवं विशेष रूप से इस पद का उपयोग करने के लिये ही किसी अन्य पुस्तकों में 'शारदा मठ' का नाम गुप्त रीति से उल्लेख कर प्रमाणाभास रूप में लिख कर रक्खे हैं। ऐसे भ्रमात्मक प्रचारों से तो कुम्भकोण मठवाले अपने स्वार्थ उद्देश ही की प्राप्ति करते हैं। यहां ध्यान देने की बात है कि कुम्भकोण मठ राजकीय कर्मचारी को भी सरासर मिथ्या कहते हुए भी आप लोग धर्माचार्य व सत्यपथानुगामी के नाम से पूजित हो रहे हैं। स्वार्थ से मनुष्य कितना पतित हो जाता है।

ताम्रशासन — 5

इस शासन में राजा श्रीकृष्णदेव राय, तुङ्गभद्रा नदी तीर पर विरुपाक्ष के सन्मुख, श्रीचन्द्रशेखर सरस्वती के शिष्य श्रीसदाशिव सरस्वती को, वैशाख पूर्णिमा, विशाखा नक्षत्र, शक 1450 के दिन उदयम्बाकम गांव दान में देने का उल्लेख है। जो संस्कृत भाषा नन्दिनागरी लिपि में लिखा हुआ है। यह शासन पत्र पूर्व शासन (उपर्युक्त नं 4) के छः साल बाद दिया गया है। इस मध्य में चन्द्रचूड का निर्याण हो गया था और उनकी जगह श्रीसदाशिव मठाधीश हो बैठे थे। शासन काल में इस गांव का नाम भी कृष्णरायपुर नाम से बदला गया। कुम्भकोण मठ का कथन है कि विरोधी वर्ष का अनुरूप 1529—1530 ई० का है। पञ्चाङ्ग व गणित रीति एवं शासन के अनुसार तारीख 3—2—1528 ई० का होना निश्चित होता है। शासन में 'शारदामठ-कांची' का उल्लेख है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय का शारदा मठ शृङ्गेरी है और न मालूम किन प्रमाणों के आधार पर कांची शारदा मठ को कुम्भकोण मठ अपना ही मठ बतलाते हैं? शृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा कांची शारदा मठ है। यदि आपका मठ कांची शारदा मठ है तो क्यों नहीं इस नाम को आप प्रचार करते हैं? क्यों आप अपने मठ को कांची कामकोटि मठ कहते हैं?

गुरुरत्नमाला में सदाशिव को चन्द्रचूड का शिष्य बतलाया है (Ep. India Vol. XIV)। अन्यत्र प्रकाशित मठ के गुरुपरम्परा के अनुसार महादेव के शिष्य चन्द्रशेखर का नाम बतलाया है। (Ep. Ind. Vol. XIII) कुम्भकोण मठ का कथन है कि चन्द्रशेखर एवं चन्द्रचूड दोनों एक ही है क्यों कि दोनों पदों का तात्पर्य व अर्थ एक ही है। पूर्व शासन में चन्द्रचूड का उल्लेख था और इस नाम को गुरुपरम्परा के चन्द्रशेखर के साथ समन्वय किया गया था और अब इस शासन में चन्द्रशेखर दिया गया है और इसे चन्द्रचूड के साथ समन्वय किया जा रहा है। क्या चन्द्रचूड ही चन्द्रशेखर हैं? अथवा क्या इन दोनों शासनों (उपर्युक्त नं. 4 या 5) के अन्तर काल के छः साल में कांची मठ के महन्त का निर्याण हुआ? अथवा क्या परिवर्तन हुआ? आपके मठ में सन्यास दीक्षा देते समय क्या एक से ज्यादा दीक्षा नाम देने का रूढी है? क्या यतिधर्मशास्त्र एक से ज्यादा दीक्षा नाम देने का अधिकार देता है? ऐसे शंकाओं के समाधान जो अब नहीं मिलते हैं। भिन्न भिन्न कथनों से यह स्पष्ट मालूम नहीं होता कि कौनसा कथन सत्य है? यदि मठ का उल्लेख होने की कथा भी मान लें तब कैसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह शासन कांची कामकोटि मठाधीश का ही है। शासन पत्र के संपादक लिखते हैं—'Not only is the poetry of a low order but the rules of the meter are transgressed here and there.' शासन संपादक का अभिप्राय है कि ताम्रशासन खोदनेवाले ने खुदायी द्वारा भूल किया हो और चन्द्रचूड की जगह चन्द्रशेखर लिखा हो? ऐसा अनुमान करना भूल है क्यों कि शासन के अनेक विषयों में दान प्राप्ती पुरुष या यति का नाम ठीक जानना परमावश्यक होने के कारण इस नामका भूल होना सर्वथा असम्भव है। न मालूम क्यों ऐसे कल्पित शासन पत्र को सत्य बनाने में असाध्य प्रयत्न किया जा रहा है। इसमें क्या रहस्य है?

कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तक जो मठाधीश को अर्पित है, उसमें सर्वज्ञ सदाशिवबोध का काल 1523-1529 ई० बतलाते हैं। शासन तो केवल 'सदाशिव' नाम उल्लेख करता है पर मठ के गुरु नामावली से प्रतीत होता है कि एक 'सर्वज्ञ सदाशिव बोध' उस समय कुम्भकोण मठाधीश थे। इन भिन्न नामों में कौनसा नाम सत्य है। शासन पत्र में क्यों नहीं 'इन्द्रसरस्वती' का उल्लेख है? श्री एस. डी. स्वामिकण्णु पिल्लै के गणितानुसार शासनकाल का ता. 3—5—1528 है और न कि 1529—30 ई०। Madras G. O. 1260 में लिखा है—'It

looks suspicious why the name Sankaracharya is not mentioned even incidentally in any one of the copper plates under reference.' 1686 ई० पूर्व के कुम्भकोण मठ के शासन पत्रों द्वारा किसी भी पत्र में 'शङ्कराचार्य' पद का उपयोग ही नहीं हुआ है। यथार्थ मठ व परम्परा होता तो अवश्य उसका यथार्थ नाम भी उल्लेख होता?

ताम्र शासन नंबर दो, तीन, चार व पांच का भूमिका के 17 या 18 श्लोक सर्वों में समान हैं और विजयनगर महाराज का यशोगान गाया गया है। ये सब शासन पत्र 21 वर्ष के बीच में (1507—1528 ई०) प्राप्त होने की कथा भी सुनाई जाती है।

ताम्रशासन — 6

यह एक अपूर्ण शासन पत्र है जिसका एक ही पत्र (पृष्ठ) उपलब्ध है। इस शासन के अन्य चद्दर (पृष्ठ या पृष्ठों) के खो जाने की कथा भी सुनायी जाती है। इस चद्दर के एक ही तरफ लिखा हुआ है। इस लेख में चन्द्रमा से प्रारम्भ कर कर्नाटक राज्य की राजवंशावली का उल्लेख है और राजा बुक्क तक इसका अन्त किया हुआ है। इस अधूरे ताम्र पत्र से कुछ पता नहीं चलता कि किसने, किसको, कब, कहां एवं क्या दान दिया था।

इस अधूरे ताम्रपत्र द्वारा केवल एक सन्देहात्मक भाव उठता है। विजयनगर के राजा श्री बुक्क व हरिहर व हरिहर II सब दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदा मठ के परम श्रद्धालु भक्त एवं शिष्य थे। इनकी श्रद्धा व भक्ति, आदरणीय प्रेम तथा विश्वास सब श्री विद्यातीर्थ एवं श्री विद्यारण्य के प्रति इनसे दिये हुए दान शासनों द्वारा (शिलालेख, ताम्रशासन एवं अन्य शासन पत्र) स्पष्ठ प्रतीत होता है। राजकीय पुरातत्वविभाग ने इन शासनों का प्रकाश किया है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त शासन पर (जिसमें राजा श्री बुक्क तक का नाम दिया गया है) सन्देह होना कि यह अधूरा ताम्र शासन दक्षिणाम्नाय श्री श्रृङ्गेरी शारदा मठ का ही अथवा श्रृङ्गेरी शारदा मठ के शाखा शारदा मठ को दिया गया है, ऐसा सन्देह होना असम्भव व अप्रमाणीक अनुमान न होगा। सम्भवतः यह शासन राजा श्री बुक्क अथवा आपके वंशज द्वारा श्री श्रृङ्गेरी शारदा मठ को दिया गया हो। अब इस अधूरा शासन पत्र का कांची शारदा मठ में होने से यह प्रतीत होता है कि एक समय कांची का शारदा मठ दाक्षिणाम्नाय श्री श्रृङ्गेरी शारदा मठ का शाखा मठ रहा हो अथवा कांची मठ ने किसी एक अन्य द्वारा यह शासन प्राप्त किया हो। यह भी असम्भव नहीं है कि ये सब ताम्र पत्र श्रृङ्गेरी के शाखा कांची शारदा मठ एजन्ट के पास रहा हो और इन शासनों को कुम्भकोण मठ ने उससे प्राप्त किया हो। प्रथमतः ताम्र पत्रों में 'कांची शारदा मठ' का उल्लेख द्वारा सन्देह हुआ कि यह कांची मठ श्री श्रृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा मठ रहा हो और अब इस अधूरे ताम्र पत्र से इस सन्देह की पुष्टी होती है।

कांची शारदा मठ के आचार्यों का नाम 'चिक्कउडयार' था अर्थात् 'छोटे स्वामी' और ये दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ के आचार्यों 'दोड्ड उडयार' अर्थात् 'बडे स्वामी' के अधीन थे। प्रायः दो सौ वर्षों से कांची कुम्भकोण मठ में सब कर्नाटकी ही हैं और इनका मठ मुद्रा पूर्व में कर्नाटकी लिपि में ही था। 18 वीं शताब्दी व 19 वीं शताब्दी में प्रकाशित अनेक पुस्तकों में कुम्भकोण मठ को शाखा मठ कहा गया है। 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' बनने की लालसा ने प्राचीन सम्बन्ध तोड कर अब नवीन नाता श्री मदाद्य शंकराचार्य से ही जोडने की कोशिश हो रही है।

ताम्रशासन—7

इस शासन में पुदुकोट्टै राजा श्रीविजयरघुनाथ तोन्डैमान ने कांचीपुर समीप 'Ulkadaippavani' में वास करनेवाले एक ब्राह्मण पावनि श्रीवेंकटय्यन् के पुत्र वेंकटकृष्णयन् को शक 1613, दुन्दुभि वर्ष, तारीख 15, तामिल माह 'तयी', के दिन धान्य आदी का दान दिये जाने का उल्लेख है। यह शासन एक पत्र के दोनों तरफ तामिल भाषा व लिपि में लिखा है। इस शासन द्वारा अन्बिल गांव के दक्षिण भाग के 'Araiya' जाति को चिरस्थायी का पट्टा दिया है। इन सब ब्राह्मणों को पुदुकोट्टै राज्य के कर्मचारी वर्ग में गिने जाने की कथा को कुम्भकोण मठवाले सुनाते हैं। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि दान प्राप्त करनेवाले श्रीवेंकटकृष्णयन् कांची मठ के सर्वाधिकारी थे। पर इसका कोई सबूत उनके पास नहीं है केवल कुम्भकोण मठ की काल्पनिक मुखवार्ता व स्वेच्छावाद। शक 1613 का अनुरूप 1691 का होता है। इस शासन में मठ व मठाधीश का नाम भी उल्लेख नहीं है और दानप्राप्त करनेवाले वेंकटकृष्णयन् का सम्बन्ध भी मठ या मठाधीश से कुछ भी उल्लेख नहीं पाया जाता है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि तिरुच्चि जिला का मठ एजन्ट वेंकटकृष्णयन् थे और आप तिरुची जिला में मठ की संपत्ति व भूमि का देखभाल करते थे। इस कथन का आधार कुम्भकोण मठ का कल्पनात्मक स्वेच्छावाद है। शासन पत्र का काल 1613 शक अर्थात् 1691 ई० का होता है। अतः मठ का कथन है कि 1691 ई० के पूर्व से ही वेंकटकृष्णयन् तिरुची जिला में मठ एजन्ट थे। पर कुम्भकोण मठ को तिरुची जिला में संपत्ति व भूमि 1710–11 ई० में प्राप्त हुई थी। कुम्भकोण मठ का ताम्रशासन नम्बर 8 इसकी पुष्टी करती है। तिरुची जिला में 1710 ई० के पूर्व संपत्ति व भूमि न होते हुए भी वेंकटकृष्णयन् संपत्ति का देखभाल करते थे ऐसा कहना असत्य है। क्या कुम्भकोण मठ प्रमाणयुक्त सिद्ध कर सकते हैं कि आपको 17 वीं शताब्दी में तिरुची में भूमि था? इस ताम्रशासन के संपादक श्री टि. ए. जि. राव ने ताम्रशासन का काल शक 1613 का बतलाया था और उपर्युक्त टिप्पणी इसके आधार पर की गयी थी। पर इसके पश्चात् इस ताम्र शासन का काल शक 1613 से बदलकर शक 1663 (1742 ई०) का निश्चय किया गया है और उपर्युक्त विमर्श अब नहीं जमता। पर प्रश्न उठता है कि किस प्रमाण व आधार पर कुम्भकोण मठ कहते हैं कि वेंकटकृष्णयन् आपके एजन्ट थे? इस ताम्र पत्र के और एक संपादक लिखते हैं—'... **but there is nothing in the text to warrant the conclusion that he was sent to be incharge of the landed estates belonging to the matha ...'** क्यों नहीं शासन पत्र में कांची मठ या मठाधीश का नाम या वेंकटकृष्णयन् का सन्बन्ध मठ के साथ क्या था, सो सब उल्लेख है? किसी एक व्यक्ति का ताम्र पत्र प्राप्त कर उस व्यक्ति के साथ अपनी बादरायण सम्बन्ध जोडकर इस ताम्र पत्र द्वारा अपनी मठ की प्राचीनता व प्रभुत्व सिद्ध करना चाहते हैं।

श्री के. आर. वेंकटरामन, प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान तथा भूतपूर्व डी. पि. ए (पुदुकोट्टै), रचयिता 'पुदुकोट्टै राज्य इतिहास व चरित्र' पुस्तक, आप **Journal of Indian History, Vol. XXIX, 1951** ई० में लिखते हैं-'**The figures of the Linga and the Devi engraved in the plate represent Sri Gokarnesvara and Sri Brahadamba, the principal deities of the temple at Tirugokarnam, a suburb of Pudukkottai, and not Jambunatha and Akhilandesvari of Jambukesvaram as Mr. T. A. G. Rao has surmised. The last line of the**

inscription which reads ('Periyanayaki Amman tunai') leaves no doubt as to the identity of the figures.' 'The Vijayanagar Ruling House had become extinct at least fifty years before the time of this Tondaiman Ruler, and Mr. Rao is palpably wrong in saying that 'the Vijayanagara or rather the Chandragiri prince who might be taken to be the contemporary of the Pudukkottai chieftain Vijaya Raghunatha Tondaiman is either Ranga VI or his successor.' 'The date is not saka 1613 as wrongly read by Mr. Gopinatha Rao. The impression on line 24 of the fascimile published in the book unmistakably reads 1663.' 'The Saka year 1663 given in the grant is an expired year and the actual date was Saka 1664 corresponding to the Tamil year–Dundubhi A. D. 1742.' उपर्युक्त विमर्श से प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ के ताम्र शासन संपादक श्री टी. ए. जि. राव का अभिप्राय सब भूठ थी। मठ की आज्ञा पर रचित एवं मठाधीश को अर्पित पुस्तकों में सत्यता की मात्रा बहुत ही कम होती है और इसमें कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। शासन पत्र के संपादक श्री टी. ए. जि. राव आगे लिखते हैं कि अन्बिल गांव तिरुचि जिला के अन्तर्गत था। पर श्री के. आर. वि. लिखते हैं कि किसी समय में भी पुदुकोट्टै राज्य का प्रभुत्व व अधिकार तिरुचि जिला में न था और आप तिरुची जिला में जागीर किसी को दे नहीं सकते थे—'We may at the outset say that at no period in South Indian History had any Tondaiman chieftain of Pudukkottai political control over any part of modern Tiruchinapalli District to enable him to assign jagirs at Anbil and Tiruvasi to his military retainers.'

यह शासन पुदुकोट्टै राजा से दिया हुआ केवल 'पर राष्ट्र कट्लै' का एक शासन पत्र है जहां राजा ने कांची मन्दिर का सेवा पूजन के लिये 'कट्लै' का निर्देश किया है। इस 'पर राष्ट्र कट्लै शासन' का कांची मठ से कोई सम्बन्ध नहीं है। पुदुकोट्टै से अन्य सीमा के क्षेत्र मन्दिर की पूजा सेवा आदि के लिये जो कुछ धन, भूमि, संपत्ति, आदि दिया गया है उसे 'पर राष्ट्र कट्लै' कहते हैं। पुदुकोट्टै राज्य से अन्य क्षेत्र मन्दिरों जैसे मदुरा, रामेश्वर, तिरुपदि, कांची, काशी, आदि, के लिये 'परराष्ट कट्लै' था, उसीप्रकार उपर्युक्त 'कट्लै' भी एक है। इस 'कट्लै' का निर्वाहक व्यक्ति पुदुकोट्टै का कर्मचारी होता है। इस कर्मचारी का सम्बन्ध कांची मठ के साथ कुछ भी न था। परराष्ट्रकट्लै अर्थात् अन्यराष्ट्र में प्रबन्ध करना और इसका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से नहीं था।

विजय रघुनाथ राय तोन्डैमान् का काल *1730—1769* था। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि दान प्राप्त करने वाले वेंकट कृष्णयन् कुम्भकोण मठ के कर्मचारी थे पर इस विषय की पुष्टी के लिये उनके पास कोई प्रमाण पत्र नहीं है। शक 1663 का अनुरूप सन् 1742 ई० का होता है और उस काल में श्री महादेव V मठाधीश थे। आपका नाम शासन में उल्लेख नहीं है। श्रीयुत K. R. V. लिखते हैं "As Mr. Rao says, the donee Venkatakrishnaiya of Kanchipuram seems to be an agent of the matha, but there is nothing in the text to warrant the conclusion that he was 'sent to be in charge of the landed estates belonging to the matha, which were situated in the Trichinopoly District and adjoining Jambukesvaram.' इस शासन के बारे में Madras G.O. 1260 Public में उल्लेख है-'A copper plate record from Kumbakonam No. 5 of appendix

A which is dated in saka 1663, Dundubhi (A. D. 1741—42) pretends to belong to the reign of Srirangadeva—Maharaja, whose exact place in the Vijayanagara chronology is not known. The record states that in this year the servant of Vijaya Raghunatharaya Tondaiman, evidently the Pudukkottai chief of that name, (Vide Sewell's Lists of Antiquities Vol. II) agreed to give Bavani Venkatakrishnayya of Kanchipuram of fee(?) which was apparently due to him from every one of the said servants. The inscription does not explain the relation that existed between him and these servants.'

श्री टि. ए. जि. राव के कथनानुसार शासन पत्र का देव देवी जम्बुनाथ एवं अखिलान्डेश्वरी होने का अभिप्राय है। उस अभिप्राय को कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचार करने लगे कि यह शासन पत्र उन्हीं का है क्योंकि आपका एक शाखा मठ जम्बुकेश्वर में है और शासन में जम्बुकेश्वर का उल्लेख है। प्रसिद्ध ऐतिहासकार श्री के. आर. वि. का अभिप्राय है कि यह देव देवी गोकर्णेश्वर एवं श्री ब्रहदाम्बा (पुदुकोट्टै) का है इसलिये कुम्भकोंण मठ का प्रचार एवं उपर्युक्त युक्ति गलत् है। शासनलेख स्वयं इस विषय की पुष्टी करता है। अब न मालूम कि कुम्भकोण मठ वालों का प्रचार क्या होगा? यह शासन पत्र अन्य एक ब्राह्मण को दिया गया है जिसका सम्बन्ध कांची कुम्भकोण मठ या मठाधीश के साथ मालूम नहीं होता। तथा उस गांव के राज्य कर्मचारी निवासियों का उस दान प्राप्त करने वाले के साथ क्या सम्बन्ध था इसका भी पता नहीं चलता। इन कारणों से कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टी नहीं होती।

ताम्रशासन—8

इस शासन में मदुरा नायक राजा विजयरङ्ग—चोक्कनाथ ने 'लोकगुरु श्रीमत् शङ्कराचार्य स्वामुलवारु' को विकृति वर्ष, कार्तिक शुक्र पक्ष प्रथमा, सोमवार, रोहिणी नक्षत्र, शक 1630, के शुभ दिन में भूदान आदि देने का उल्लेख है। विभिन्न गावों में स्थित जमीनों का दान उस समय के 'शारदामठ के स्वामी' की आज्ञा द्वारा तथा गजारण्य क्षेत्र (तिरुवानैक्कावल) स्थित 'पोनवासिकोन्डन्' मार्गपर उस मठ के ब्राह्मण भोजन के लिये दिया हुआ यह दान था। यह शासन एक पत्र के दोनों तरफ तेलुगू भाषा व लिपि में लिखी हुई है। शासन में इस स्वामी को कांचीपुरवासी (काञ्चीपुर स्थित) कहा गया है।

शासन के संपादक लिखते हैं—'Regarding the date, Sukla I tithi and Rohini nakshatra cannot join together in Karthika lunar month but may join in Jyeshtha month. The date referred to was possibly Monday, 10th May, A.D. 1708, on which day Sukla I ended about sun rise. It was also a day of Rohini nakshatra.' कार्तिक माह के शुक्र पक्ष प्रथमा के दिन रोहिणी नक्षत्र का होना असम्भव है पर ज्येष्ठ माह में शुक्र प्रथमा के दिन रोहिणी नक्षत्र हो सकता है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि शासन में दिया तारीख गलत है। मठ के अन्य पुस्तकों में तारीख 'November/December 1710—11 A. D.' का उल्लेख है। न मालूम किस आधार पर 1710—11 ई० का भी प्रचार करते हैं जब शक 1630 का अनुरूप 1708 ई० का होता है।

दान प्राप्त करनेवाले यति का नाम व योगपट्ट 'इन्द्रसरस्वती' का उल्लेख नहीं है। केवल 'शारदामठ' तथा 'लोकगुरु श्रीमत् शङ्कराचार्य स्वामुलवारु' पदों का ही उल्लेख है। यह दान दक्षिणाम्नाय साक्षात् शृङ्गेरी शारदा

मठ को अथवा शाखा मठ को ही दी गई है। सम्भवतः उस समय के शारदा मठ के शङ्कराचार्य को दिया गया हो और यह सम्पत्ति शृङ्गेरी शाखा मठ का हो। 18 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में एक यति 'महादेव सरस्वती' श्रीशृङ्गेरी शारदा मठ के शिष्य इन स्थलों में भ्रमण करते हुए धर्म प्रचार करते थे। पर अब इस शासन को कुम्भकोण मठवाले अपना होने का प्रचार करते हैं। श्री एन्. के. वि. तथा श्री ए. के. एस. के प्रचार पुस्तकों में उल्लेख है कि इस शासन काल में श्रीमहादेव V (1704–1746) मठाधीष थे। श्री एन्. वि. द्वारा रचित पुस्तक जो कुम्भकोण मठ की आज्ञा से लिखित एवं मठाधीष को अर्पित है, उसमें श्रीमहादेव V के विवरण में लिखते हैं कि **'Full particulars are not available about Acharyas 61 to 67. What I have given below about them are taken from N. K. Venkatesan's book. But his dates are inaccurate.'** श्री एन्. के. वेंकटेशम पन्तुलु कुम्भकोण मठ के परम भक्त अनुयायी हैं एवं आप ने कुम्भकोण मठ के प्रतिनिधि रूप से अन्य सभाओं में भाग लिया है **(Baroda Conference)**। ऐसे महापुरुष के रचित पुस्तकों में भी **'dates are inaccurate.'** ठीक यथार्थ काल न देने का क्या कारण है? विषय यथार्थ होता तो वर्णन भी सत्य होता पर कल्पना से कल्पित विषयों का हाल ऐसा ही होता है।

आगे श्री एन्. वि. अपने पुस्तक में श्री महादेव V के बारे में लिखते हैं—**'His (Chandrasekhara IV) immediate predecessors seem to have led a wandering life, mostly in the southern districts, during the troublous times of the Karnatic wars. But Kanchipuram continued to be the nominal headquarters of the Matha.** 'उन दिनों के मठाधीष का विवरण मालूम नही होता' कथनों द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञान होता है कि असत्य को सत्यता का रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि कांची में मठ होता तो अवश्य 18 वीं शताब्दी के आचार्यों का विवरण भी मालूम होता। अति प्राचीन काल का विवरण मालूम न होना संभव है पर अर्वाचीन काल (18 वीं शताब्दी) के 7 आचार्यों (61 से 67) का विवरण न मालूम होना असम्भव है। यदि कुम्भकोण मठ के पूर्वाचार्यों का दिया हुआ विवरण मालूम था तो कैसे अब अर्वाचीन काल के आचार्यों का विवरण मालूम नहीं होता? इसमें रहस्य है। पूर्वाचार्यों का विवरण अन्य ग्रन्थों से लेकर उसकी एक प्रणाली व वंशावली बनाई गई थी और 17 वीं शताब्दी के अन्त एवं 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तो इनका मठ तंजौर में स्थापित हुआ और उस समय इनका संबन्ध कांची से न था। तंजौर के मठ को कांची से सम्बन्ध कराने का प्रयत्न अब इन रीतियों से किया जा रहा है। उपर्युक्त पक्तियों को पढने पर सन्देह होता है कि कांची में मठ न होते हुए भी मठ होने का भ्रामक प्रचार किया जा रहा है और जिसको अनुमान व युक्ति से सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। ऐसा कथन है कि 'मठाधीष कांची में न थे पर वहां मठ नाम के लिये था' सब अनर्गल है। कर्नाटक युद्ध के कारण मठाधीष को कांची छोड कर चले जाने की कथा कहां तक सत्य है पाठकगण आगे के अध्याय में पायेंगे। श्री शृंगेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती *1741–66* उसी कर्नाटक युद्ध काल के समय में कर्नाटक सीमा के ही अन्तर्गत भ्रमण कर रहे थे और उन्हें कुछ आपत्ति या हानि न हुई। आपको कर्नाटक देश के राजकुमार एवं ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने सादर सत्कार पूर्वक आपका स्वागत किया था। वे अपनी यात्रा समाप्त कर शृङ्गेरी लौटे। शृङ्गेरी जगद्गुरु श्री सच्चिदानन्द भारती III (1770–1814) आपने अपने यात्रा (1792 ई०) में मदरास तक पहुंचे जब कि टीपू कांची में था। टीपू ने श्री एकाम्रेश्वर मन्दिर की मरम्मत कराकर श्री शृङ्गेरी मठाधीष जो मदरास के समीप थे उनसे प्रार्थना की कि वे कृपा कर के इस मन्दिर की धर्मरीति द्वारा शुद्धि करें। वालाजा (जो कांची के समीप है) के नवाब ने 1773 ई० में कांची में वर्णाश्रमाचार विषयक झगडा होने का

निर्णय पाने के लिये 'लोकगुरु शङ्कराचार्य शृङ्गेरी' से प्रार्थना किया। इन सब घटनाओं द्वारा प्रतीत होता है कि कांची में कामकोटि मठ का होना अथवा उनका परम्परा होना सब एक नवीन कल्पित प्रचार है। इनका मठ कांची में होता अथवा परम्परा होती तो अवश्य टीपू इनको आह्वान करता एवं वालाजा के नवाब कांची मठ से 'निर्णय' लेते पर इतिहास कुछ और ही कहता है। कर्नाटक युद्ध के कारण भाग जाना असम्भव प्रतीत होता है जब उसी समय श्री शृङ्गेरी मठाधीष कर्नाटक सीमा में भ्रमण करते समय कर्नाटक देश के युवराज, नवाब व ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी द्वारा सादर स्वागत किये गये थे। यदि कांची में मठ होता तो इन सब बाह्य ऐतिहासिक समाधानों द्वारा कारण देकर सिद्ध करने की कोई आवश्यकता न थी। यदि यह शासन पत्र यथार्थ होता तो क्यों नहीं उस समय के मठाधीश का नाम उल्लेख किया गया था? शासन में दिये 'शारदा मठ' व 'लोकगुरु' पदों द्वारा स्पष्ट मालूम होता है कि यह शासन शृङ्गेरी शारदा मठ का ही शासन है।

शासन पत्र के संपादक श्री टि. ए. जि. राव लिखते हैं—'The places mentioned in this inscription are Gajaranya Kshetra, Ponvasikondan street in it ... ... Gajaranya Kshetra is another name of Jambukeswaram—which of the present streets of this town was known as the Ponvasikondan street cannot be ascertained. The name of Ponvasikondan has reference to the history of the Saiva saint Thirugnana Sambandha.' 'पोन्वसिकोन्डन' के उपयोग से साफ मालूम होता है कि यह मठ जो शासन में उल्लेख है वह 'शैवसिद्धान्त' रूढी का मठ होना चाहिये था। आचार्य शङ्कर के अद्वैत सिद्धान्त प्रचारक मठ का सन्बन्ध किस प्रकार से 'शैवसिद्धान्तों' द्वारा लगाया जा सकता है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि तिरुवानकावल के जम्बुकेश्वर—अखिलान्डेश्वरी मन्दिर समीप जो मठ है वह मठ अति प्राचीन मठ एवं पुराकाल से आपके अधीन में है। यह प्रचार सरासर मिथ्या है। इसी मठ के भीतर एक बडा लम्बा शिला लेखन था जो कुम्भकोण मठ के प्रचार को मिथ्या ठहराता है। इस शिला लेखन में स्पष्ट उल्लेख है कि यह मठ एवं अन्य वास स्थल (गृह) जो इसी वीथी में है सो सब पाशुपत शैवाचार्य की परम्परा के अधीन में था। यह शैवाचार्य परम्परा वैदिक एवं अद्वैती परम्परा थी। यह परम्परा के आचार्य मन्दिर में पूजासेवादि कार्य करते थे। इस शिलालेख में सन्यासी शिष्य परम्परा की सूची भी है। इस शिला लेखन के काल में चूंकि कोई शीलाचार सन्यासी शिष्य बनने लायक उपलब्ध नहीं हुआ था, एक गृहस्थ को इस परम्परा में नियुक्त किया गया था। यह अनुमान करना भूल न होगी कि अखिलान्डेश्वरी देवी मन्दिर के पूजारी भट्टर इस मठ के आचार्य परम्परा के ही हैं। 17 वीं शताब्दी के बाद इस मठ का निर्वाह व मालिक का बदली हुई। कुछ समय तक यह मठ मध्व संप्रदाय व्यक्ति के हाथ में था जो आज भी इस मठ के समीप कोन्डैयन्पेटै अग्रहारम् में इन लोगों का अधिक मात्रा में आधिपत्य देखा जाता है। इस मठ का आधिपत्य 18 वीं शताब्दी के अन्त में या 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कुम्भकोण मठ ने प्राप्त किया होगा। इस काल के पूर्व यह मठ कुम्भकोण मठ के अधीन में होना बिलकुल असम्भव है। शिलालेख नं 486 एवं 487 जो 1908 ई० में संग्रह किया गया था, इन विषयों की पुष्टी करता है। असत्य पर सत्य का रूप देने के प्रयत्न में आपके मिथ्या प्रचारों का पोल खुल रहा है।

शासन पत्र के संपादक श्री टी. ए. जि. राव के लेखनानुसार उपर्युक्त शासन का विवरण दिया गया है। आश्चर्य है कि कुम्भकोण मठ द्वारा प्रकाशित 1927 ई० पुस्तक में (The Principal Documents relating

to Sri Kanchi Kamakoti Peethadhipathi Jagatguru Sree Sankaracharya Swamigal, residing at Kumbakonam, Tanjore District, Vol. II, published by the Agent Sri Kuppuswami Aiyar II edition) इस शासन के बारे में अब दूसरा ही विवरण देते हैं। जिस शासन पत्र पर Sri T. A. G. Rao. (Supdt., Archaeological Dept., Travancore) ने अपना विचार 1915 में प्रकाशित किया है अब उसी शासन पर 1927 ई० में कुम्भकोण मठवालों द्वारा शासन के पदों का जोड निकाल व अदल बदल कर अनुवाद रूप से प्रकाशित किया गया है। समझ में नहीं आता है कि एक ही प्रति ताम्रशासन पत्र 1915 से 1927 ई० के अन्तर में किस तरह से उसका विविध विवरण दे सकते हैं? सम्भवतः कुम्मकोण मठ के ताम्र शासन को भी काल के साथ अपना शासन विवरण बदलते होंगे। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक में लिखते हैं-'In the year 1632 of the era of Salivahana (corresponding with 1711 of A. D.) which is the current year of Vikruthi and the *full moon day* of Karthicay month (October or December) Monday the presiding star of the day of Rohini ... ... ' 1915 ई० में प्रकाशित पुस्तक के अनुसार Saka 1630 (1708 A. D.), विकृति वर्ष, कार्तिक माह, शुक्र पक्ष, प्रथमा तिथि, सोमवार रोहिणी नक्षत्र का उल्लेख है। इन दोनों भिन्न तारीखों में कौन यथार्थ है? 1915 ई० के प्रकाशित पुस्तक में शासन का अनुवाद करते हुए लिखते हैं 'at the instance of the then Swami of the Sarada Matha.' और 1927 में कुम्भकोण मठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक में 'Swami of the Sharada Matha' को निकाल दिया गया है। पाठकगण जान लें कि अपने द्वारा स्वार्थ सिद्धि प्राप्त करने के लिये कुम्भकोण मठ अनुयायी प्रचारक मिथ्या प्रचारों के प्रकाश करने में किसी तरह भी शर्माते नहीं। दक्षिणाम्नाय शारदा मठ का उल्लेख उनके लिये तो विष के समान है और कुम्भकोण मठवाले 'चिक्कुडयार स्वामी' कैसे अपनी यथार्थ स्थिति का प्रकाश कर सकते हैं? जिस प्रकार प्राचीन ग्रंथों में—शिवरहस्य, मार्कन्डेय संहिता, नैषध, आनन्दगिरि शङ्कर विजय, शङ्कराचार्य अष्टोत्तर शत नामावली आदि ग्रंथों में क्षिप्त करके परिष्कृत्य नवीन ग्रंथ पुराकाल के लेबल के साथ प्रकाशित किये गये हैं उसी प्रकार अब यह ताम्रशासन भी समयानुकूल आक्षेपों के उत्तर रूप में अपने विविध विवरणों को देने लगा। पाठकगण तारीख बदलने का कारण भी जान गये होंगे। पूर्व में यह सिद्ध किया गया है कि शासन काल गलत है और इस आक्षेपों के निवारणार्थ अब आप द्वारा नवीन तारीख का प्रचार किया जा रहा है।

इस शासन में विभिन्न सीमा की जमीनों का दान दिया गया है। इन में से कुछ सीमा के ग्राम शासन देने के काल में मदुरा नायक के आधीन में न था। उन दिनों में संघर्ष के कारण अन्य सीमा के कुछ गांव भी मैसूर के चिक्कदेवराज उडयांर के हाथ में था। अन्यत्र प्राप्त शासनों से यह विषय स्पष्ट विदित होता है।

दान प्राप्त गांवों में एक स्थल अरियलूर भी है। 18 वीं शताब्दी प्रारम्भ में तोरैयूर, अरियलूर, उदयारपालयम् व वालिगंडपुरम् आदि पोलिगर के शासन में था जो पूर्व काल में मदुरा नायक के आधीन में थे। ये पोलिगर *1700* ई० के पूर्व ही अपनी स्वतन्त्रता घोषित की थी और ये सब पोलिगर मदुरा नायक के विरोधि बन गये। मदुरा नायक विजयरङ्ग चोक्कनाथ के पूर्वज श्रीमती मङ्गम्माळ ने पुदुकोट्टै तोन्डैमान एवं मुगल प्रतिनिधि दाउत् खान् इन दोनों से सहायता मांगी ताकि आप पोलिगर को दबा सकें और पुनः अपने आधीन में कर लें (Reference extracts from Manucci)। मदुरा नायक इन पोलिगर को दबा न सके और पश्चात लगभग 1742 ई० में पोलिगर कर्नाटक नवाब के खिदमती जागीरदार बन बैठे। अतः मदुरा नायक का कोई हक न था कि आप अरियलूर सीमा का गांव को दान में दें। जो गांव आपके आधीन में न था उसे आप किस प्रकार अन्य को दान में दे सकते हैं?

मुसरी तहसील के अन्य गांव (कृष्णापुरम् व कलकाडु) व तोरैयूर के पश्चिम सब सीमा मैसूर के चिक्कदेवराज उडयार के आधीन में था। मैसूर के चिक्कदेवराज उडयार (1672—1704 ई०) ने कोयम्बत्तूर एवं शेलम् जिला को अपने राज्य में मिला लिया था और आप कोलरुन् नदी के दक्षिण तक भी अपनी धाक जमा ली थी (Reference : Wills History of Mysore—cf.)। ऐसी परिस्थिति में यह कहना असत्य है कि यह गांव मदुरा नायक ने दान में कुम्भकोण मठाधीश को दिया था ।

शासन पत्र 1, 2, 3, 5, 6, 7 में 'कांचीवासी' या 'कांचीस्थित' पद का उपयोग नहीं हुआ है। इस शासन पत्र 8 में 'कांची स्थित' पद का उल्लेख है। अतः यह मठ अर्वाचीन काल में कांची में प्रतिष्ठित कहा जा सकता है। यदि कांची में मठ होने का विषय प्रख्यात होता या कुम्भकोण मठ के कथनानुसार 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' होते या वास्तव में कांची में मठ होता तो यह पद उपयोग करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। ये सब मदुरा नायक राजा विजयनगर के आधीन थे। शासन में ठीक नाम न देने से यह शासन श्रृङ्गेरी मठ का ही है चूं कि विजयनगर राज्य एवं उनके अधीन राज्यों के लिये 'जगद्गुरु स्वामिलवारु' श्रृङ्गेरी मठ ही है। कांचीपुर का उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि श्रृङ्गेरी का शाखा मठ कांची में था।

ताम्रशासन—9

कहा जाता है कि यह शासन पत्र ('फरमान' रूप मे) सुल्तान, दिल्ली, ने कांची उर्फ सत्यव्रतक्षेत्र का शारदा मठ के प. प. स्वामी को पहला शौवल (Shauval) हिजरी 1088(1710 A. D.) में सालाना इनाम 115 वराह का श्री चन्द्रमौळीश्वर पूजा तथा ब्राह्मण भोजन के लिये दान देने का उल्लेख है। इस शासन के अन्तिम में तामड भानजी, (जिला रेवेन्यू अकाउन्टेन्ट) ने हस्ताक्षर किया है। कुम्भकोण मठ की वंशावली के अनुसार श्रीमहादेव V (1704—1746) मठाधीश थे। शासन पत्र तेलगू लिपि में है तथा पङ्क्तिया 1—12 संस्कृत, *13--27* फारसी, *27—39* संस्कृत, *40—47* तेलगू एवं *45 -58* फारसी आदि भाषाओं में हैं।

उसमें दान प्राप्त करने वाले मठाधीष का नाम नहीं है। कामकोटीपीठ या मठ अथवा 'इन्द्रसरस्वती' का उल्लेख भी नहीं है। दिल्ली सम्राट का नाम भी नहीं दिया गया है। इस शासन में दिल्ली सम्राट के साथ संबन्ध जोडने का कोई संकेत भी नहीं है। मालूम होता है कि तलमड भानूजी एक राज्य कर्मचारी होने की हैसियत से साधारण 'फरमान' दिया है। पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह शासन बहादुरशाह सुल्तान ने दिया था। इतिहास पुस्तकों से स्पष्ट मालूम होता है कि शासन प्राप्त काल में मदरास से लेकर वेल्लूर तक की सीमा पर महाराष्ट्र वालों का ही अधिकार था। सम्भवतः गोलकुण्डा के नवाब का दिया हुआ फरमान हो सकता है। चेङ्गलपेट जिला गोलकुण्डा के राज्यान्तर्गत था और जिसे 'जागीर' माना जाता था।

हिजरी *1088* एवं शौवल पहिला का अनुरूप शनिवार नवम्बर *17, 1677* ई० (शक *1599*) का होता है अर्थात् पिङ्गळ वर्ष, मार्गशीर्ष माह, बहुळ तृतीया। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह फरमान *1710* ई० का है सो भूल एवं असत्य है। *1677* ई० में पूर्वी समुद्र तट सीमा का कुछ भाग गोलकोन्डा नवाब के आधीन व शासन में था। अब्दुल हसन कुतुब शाह जिन्हें ताना साहब के नाम से भी पुकारा जाता था, आपके मंत्री अक्कण्ण व मद्दण्ण थे।

इस फरमान के प्रथम दो श्लोक को शिवाष्टपदी से उधृत किया गया है। कहा जाता है कि कांची कुम्भकोण मठाधीष श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती (*1746—1783*) द्वारा रचित शिवाष्टपदी है। फरमान् का काल *1677* ई० का होना निश्चित होता है और शिवाष्टपदी की रचना 1746—1783 ई० का होना कही जाती है, अतः शिवाष्टपदी लेखन काल के पूर्व ही दिये हुए फरमान में इन श्लोकों का होना न केवल असम्भव है पर मिथ्या भी है। इस फरमान के अन्य श्लोक आदि सब विजयनगर राजाओं की प्रशस्ती से लिये गये हैं। सारा फरमान जो संस्कृत फारसी, संस्कृत, तेलगू, फारसी भाषा में लिखा गया है, ये सब खिचडी सी प्रतीत होता है ? मुसलमान राजा अपने फरमान में हिन्दू देव देवी की स्तुती प्रार्थना से फरमान प्रारम्भ करना असम्भव दीख पडता है।

दान दिया गांव मदुरान्तक्रम् तहसील में है जो जिन्जी के अति समीप में है। इस फरमान के समय में जिन्जी सीमा शिवाजी के आधीन में आ गया था। शिवाजी मार्च महिना *1677* ई० में जिन्जी को अपने राज्य में मिला लिया था और इसके कुछ माह बाद वेल्लूर तक अपनी राज्य सीमा बडा ली थी। इन कारणों से स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह फरमान असत्य है।

ताम्रशासन—10

यह शासन पत्र चन्द्रशेखर सरस्वती के शिष्य महादेवेन्द्र सरस्वती, शारदा मठ, कांची, ने होयसाला कर्नाटक आश्वलायन सूत्र विश्वामित्र गोत्र के एक ब्राह्मण रामाशास्त्री को प्रभव वर्ष (शक 1608) वैशाख माह, पूर्णिमा, शनिवार, चन्द्रग्रहण के पुण्यकाल में मेलुपाक्कम गांव की जमीन व दो घर के बनाने की जमीन तथा सालाना दो वराहन् आदियों दान देने का उल्लेख है। शक 1608 का अनुरूप 1687—1688 ई० का होता है। शासन के संपादक लिखते हैं—'**Engraved on two sides of a single plate in an extremely slip—shod manner and in a kind of Nagari character which is quite modern and which is very peculiar for the shapes of letters and it is full of mistakes.**' ताम्रशासन का नागरी अक्षर अर्वाचीन काल का दीखता है और शासन काल का प्रचलित अक्षर से भिन्न पाया जाता है। अर्वाचीन काल में तैय्यार किया शासन को पुराना लेबल के साथ प्रचार किया जाता है।

कुम्भकोण मठ गुरु वंशावली के अनुसार शासनकाल के मठाधीष का नाम बोध III उर्फ योगेन्द्र उर्फ भगवन्नाम (1638—1692 अन्य जगह 1638—1690) है। उपर्युक्त मठाधीष श्रीबोध III, श्रीआत्मबोध उर्फ विश्वाधिक (1586—1638 और अन्य पुस्तक में 1584—1636) के शिष्य थे। पर शासन पत्र में चन्द्रशेखर सरस्वती के शिष्य महादेवेन्द्र सरस्वती का नाम उल्लेख करता है। भगवान जाने इन विभिन्न नामों में से कौन यथार्थ है ? यदि शासन सत्य है तो वंशावली मिथ्या है, यदि इनकी वंशावली सत्य है तो यह शासन पत्र कल्पित व मिथ्या है। गुरुवंशावली में एक मार्के का विषय है। महादेव V (1704—1746) के पश्चात् आज पर्य्यन्त मठाधीषों के नाम को निम्न पक्तियों में दिया जाता है—चन्द्रशेखर IV, महादेव VI, चन्द्रशेखर V, महादेव VII, चन्द्रशेखर VI, महादेव VIII व चन्द्रशेखर VII। इस प्रकार गुरु शिष्य भाव एवं शिष्य को परमगुरु के नाम से पुकारे जाने की रूडी दीख पडती है। यदि शासन का नाम ठीक है तो चन्द्रशेखर IV के शिष्य महादेवेन्द्र सरस्वती VI का काल 1783 से 1814 ई० तक का है। पर कुम्भकोण मठवाले शासन काल 1686—1687 का बतलाते हैं। पाठकगण जान लें कि यथार्थ क्या है ?

श्रीयुत एल. डी. स्वामीकण्णु पिल्लै, ज्योतिषगणितनिपुण का अभिप्राय जो शासन सम्पादक की पुस्तक में प्रकाशित है। शासन में शक 1608, प्रभव वर्ष, वैशाख शुद्ध 15 (पूर्णिमा) शनिवार, चन्द्रग्रहण का उल्लेख है। शक 1608 का अनुरूप 1686—87 ई० का होता है पर प्रभव संवत्सर का अनुरूप 1687—88 ई० होना निश्चित होता है। अन्य विवरणों से काल का निर्णय शनिवार 16 अप्रेल, 1687 ई० की होने का निश्चित भी होता है पर उस दिन चन्द्रग्रहण नहीं था। लेकिन शासन स्पष्ट उल्लेख करता है कि चन्द्रग्रहण पुण्यकाल में दान दिया गया था। इस विषय पर राजकीय कर्मचारी (Archaeological Dept.) श्रीयुत एच. के. एस. लिखते हैं—'The non-coincidence of the most important item of the date, viz., the lunar eclipse, reflects upon the genuineness of the grant itself.' इससे प्रतीत होता है कि यह शासन कल्पित है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि गांव मेलुपाक्कम् जो इस शासन द्वारा दान दिया गया है, वह गांव प्रथमतः श्री अक्कण्ण एवं श्री मद्दण्ण (गोलकुण्डा निवासी तथा श्री समर्थ रामदास के मामा) से पूर्व ही में प्राप्त हुआ था। इतिहास से मालूम होता है कि अक्कण्ण व मदण्ण दोनों मुगल संम्राट द्वारा अक्टूबर 1685 ई० में मारे गये थे। Madras G. O. 1260 में ऐसा उल्लेख है :—"In A. D. 1685 the Mughal King Aurangazeb marched with his army into Golkonda and plundered first the house of Maddanna. The people were in a state of panic and accused Maddanna of high treason. Under orders from the Sultan they murdered the two brothers who were once the bossom friends of the king, in a most ignominious way. Akkanna and Maddanna were dragged along the streets in the presence of the people (fig. d. on plate II). The head of the Maddanna was severed from the body and sent to Aurangazeb while that of Akkanna was trampled under foot of an elephant. The death of the two brothers must have happened after the 29th of October 1685 when the Mughal army entered Golkonda and perhaps before the end of that month ... ... We see that the religious episode of Ramadass and his sufferings has no historical basis." इन दोनों द्वारा कोई शासन पत्र अन्यत्र दान देने का कहीं भी उल्लेख नहीं है। शासन पत्र के सम्पादक भी निश्चित रूप से बताते नहीं एवं पूर्व में दान देने का विवरण देते नहीं कि कब व कहां यह दान पूर्व ही में दिया गया था। कुम्भकोण मठ के पास पूर्व में इन दोनों से प्राप्त कोई ऐसा शासन पत्र भी नहीं है।

अबुल हसन ताना शाह का हर एक शासन पत्र या फरमान द्विभाषा—तेलगू व फारसी—में होता है। फरमान या शासन पत्र में तेलगू लिपि राजमुद्रा छापी जाती है। आज्ञा पत्र, फरमान या शासन पत्र सब मद्दण्णा के नाम से दिया जाता है। कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले फरमान में यह सब विषय पाया नहीं जाता है। अतः यह कहना भूल है कि मेलपाक्कम् गांव मद्दण्णा से कुतुबशाही के बदले दान में प्राप्त हुआ था। कुम्भकोण मठ के पास कोई प्रमाण भी नहीं है जिससे इसकी पुष्टी की जा सकती है।

यह एक शासन ही 'इन्द्र सरस्वती' योगपट्ट का उल्लेख करता है क्यों कि यह शासन कुम्भकोण मठाधीष द्वारा स्वयं दिये जाने की कथा कही जाती है। यह शासन पत्र आधुनिक है। इसके पूर्व के किसी पत्र में भी 'इन्द्र सरस्वती' का नामोनिशान नहीं है पर एक शासन में 'सरस्वती' का उल्लेख है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि

इनका 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट जो विशेष सर्वोच्च योगपट्ट है वह केवल कांची कामकोटि मठाधीश को ही लागू है। न मालूम ऐसा विशेष सर्वोच्च योगपट्ट का नाम शासनों में क्यों नहीं दिया गया है?

वाञ्चेश्वर कुट्टिकवि जो श्री गोविन्द दीक्षित की नाती के पुत्र थे। इनका काल 1690—1760 ई० का बतलाया जाता है। वाञ्चेश्वर कुट्टिकवि के एक बडे भाई थे जिनका नाम रामा शास्त्री था। आपने मैसूर प्रान्त के श्री रङ्गपट्टनम् में 'राम अष्टपदी' की रचना की थी। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्री महादेव सरस्वती ने यह दान इसी रामा शास्त्री को दिया था। कुम्भकोण मठ के परम भक्त अनुयायी एवं मठ विषयक प्रचारक श्री एन्. के. वि. पन्तुलु लिखते है':—"It can not be ascertained now whether the grantee of the gift, Rama Sastri, could have been this poet Rama Sastri, the brother of Kutti Kavi.' शासन पत्र के आधार पर इस विषय को सिद्ध किया नहीं जा सकता है केवल यह आत्मश्लाघार्थ कल्पना एवं भ्रामक प्रचार है।

Editor, F. W. Thomas, Epigraphia Indica and Record of Archaeological Survey of India, Vol XIV में इस शासन पत्र के बारे में लिखते हैं:—"The author and Mr. Gopinatha Rao have both committed the same mistake in the matter of the object of the grant. The donee Rama Sastri was given (1) the Manya (line 22) i. e., exemption from payment of fee to the mortgagees and the holders of the sub-channels, for using water; (2) two varahas as annuity from the matha; (3) the mera (share) of 3 addas on a Kalam of paddy due to the supervising Desamukhi and of 1 adda due to the God Chandramouliswara in the village of Melupaka." इससे प्रतीत होता है कि शासन का विवरण भी भ्रमात्मक रूप में प्रचार किया जाता है और यथार्थ विषय का आन्वेषण नहीं किया जाता। कुम्भकोण मठ द्वारा दिया हुआ स्वशासन भी कल्पित मालूम होता है।

उपसंहार

कुम्भकोण मठाधीश इन शासनों से सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि आपका कांची कामकोटि मठ श्री आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित एवं अधिष्ठित है और इनका प्रथम शासन पत्र 1291 ई० का जो श्री शृङ्गेरी मठ के शासन पत्रों से भी पुराकाल का शासन है। श्री रामेशम ने 1961 नवम्बर में इस ताम्र पत्र का काल 1111 ई० का होना प्रचार किया है। शासन संपादक लिखते हैं 'Thus the Sharada Peetha or the Kamakoti Peetha must have been in Kanchi between 13th and 17th centuries of Christian era.' मार्के की बात है कि इन शासनों में 'शारदा मठ' का उल्लेख है और अत्र कुम्भकोण मठ इस शारदा मठ का अनुरूप व नामान्तर कामकोटि मठ होने की कल्पना द्वारा कथा सुनाकर लोगों को भ्रम में डाल रहे हैं। मदरास राज्य *G. O. 1260, 25—8—1915* ई० में, कुम्भकोण मठ ताम्रशासन पर विमर्श करते हुए लिखा है कि कांची शारदा *मठ का शासन कुम्भकोण मठ का होना* तभी स्वीकार किया जायगा जब प्रमाण युक्त सिद्ध किया जाय कि कुम्भकोण मठ *का नाम शारदा मठ था*—'... ... ... provided the name Sharada-Matha is still applied to its present seat at Kumbhakonam.' अर्थात् राजकीय महकमा यह स्वीकार नहीं करते कि कुम्भकोण

मठ ही कांची का शारदा मठ था। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा कांची कामकोटि मठ है। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित महानुशासनानुसार भी दक्षिणाम्नाय का मठ शृङ्गेरी शारदा मठ ही है। चेङ्गलपेट कचहरी द्वारा 12—8—1935 के दिये हुए फैसले में कांची कामकोटि मठाधीष को 'चिक्कुडयार' नाम होने का निश्चित किया है। कर्नाटक पद 'चिक्कुडयार' का अर्थ 'छोटे स्वामी' अर्थात अन्यत्र अन्य 'दोड्डउडयार' ('बडे स्वामी') होने का संकेत करता है। कर्नाटक प्रान्त के शृङ्गेरी शारदा मठाधीष ही 'बडे स्वामी' हैं। जैसा कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कांची कामकोटि मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित एवं साक्षात् महागुरु परम्परा है और यह मठ अन्य चारों मठों के ऊपर हैं तो न मालूम क्यों इनका नाम 'चिक्कुडयार' 'छोटे स्वामी' पडा, आपके प्रचारानुसार मठाधीष का नाम 'दोड्ड उडयार' होना था ['सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः ॥' (कांची का कल्पित मठाम्नाय)]? कांची कुम्भकोण मठ की मुद्रा पूर्वकाल में कर्नाटक भाषा में थी तथा उस मठ के स्वामी सब कर्नाटकी हैं। शासन संपादक लिखते हैं: "This in a way continues to be the practice in the Kumbakonam Matha where the Acharya for some generations past at least has been chosen from among the Hoyasana—Karnataka Community." इन कारणों से ऐसा निश्चय करना भूल न होगी कि कांची कामकोटि शारदा मठ शृङ्गेरी दक्षिणाम्नाय शारदा मठ की शाखा है। कुम्भकोण मठ का 1291 ई० या 1111 ई० का शासन पत्र पूर्व में दिये कारणों से अप्रामाणिक ठहराया जा सकता है। कुम्भकोण मठ का 1686 ई० का शासन भी कुम्भकोणमठाधीष द्वारा स्वयं दिया गया पत्र है तथा अनेक कारणों से इसे भी अप्रामाणिक ठहराया गया है। ऐसी कल्पित अप्रामाणिक निराधार शासनों द्वारा किस प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है कि कांची कामकोटि मठ 13 वीं शताब्दी से 17 वीं शताब्दी तक कांची में था। कांची शारदा मठ से कांची कामकोटि मठ का कोई सम्बन्ध नहीं है। कामकोटि मठ अर्वाचीन प्रतिष्ठित मठ है और कांची शारदा मठ शृङ्गेरी का शाखा मठ है। शारदा मठ द्वारा कामकोटि मठ का नवीन सम्बन्ध जोड करके प्रचार करने से स्पष्ठ ज्ञात होता है कि कामकोटि मठ इस शारदा शाखा मठ को स्वतन्त्र सर्वोच्च बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

उपर्युक्त कहे शासनों से प्रचार किया जा रहा है कि उनका गुरु परम्परा वंशावली यथार्थ है। पाठकगण प्रत्येक अध्याय में आपके मठ के गुरुवंशावली का विवरण एवं विमर्श पायेंगे। वहां दिये हुए अनेक प्रमाण युक्त कारणों से इस वंशावली की 17 वीं शताब्दी अन्त तक की गुरुपरम्परा केवल कल्पित ठहराया जा सकती है। इन शासनों से केवल 5 मठाधीषों का नाम मिलते हैं—(1) 1291 ई० का 'शङ्करार्ग्य' (2) शक 1429 का सदाशिव के शिष्य महादेव (3) शक 1444 का महादेव के शिष्य चन्द्रचूड (4) शक 1450 का चन्द्रशेखर के शिष्य सदाशिव तथा (5) शक 1608 का चन्द्रशेखर के शिष्य महादेव। मार्के की बात है कि इन नामोंके साथ 'इन्द्रसरस्वती' जिस विशेष सर्वोच्च योगपट्ट होने का प्रचार करते हैं उसका कहीं उल्लेख भी नहीं है। केवल एक शासन पत्र जिसे कुम्भकोण मठाधीष द्वारा स्वयं दान देने को कहा जाता है उसमें 'इन्द्र' पद का प्रयोग हुआ है और वह शासन भी अर्वाचीन काल 1686 ई० का है। इन शासनों में 'कांची कामकोटि मठ' का उल्लेख नहीं है पर कांची शारदा मठ का उल्लेख है। तो किस प्रकार इन यतियों को कांची कामकोटि मठाधीष ठहराया जाय? कांची में 'वेद मठ' व 'शारदा मठ' एवं अन्य माननीय यतियों का मठ आदि होने का विषय इतिहास द्वारा सिद्ध होता है न कि कांची कामकोटि मठ। कांची कुम्भकोण मठ के पास कोई प्रमाण नहीं है कि वे कांची शारदा मठ को ही कांची कामकोटि मठ कह सकते हैं। हर एक मठ की 'श्रीमुख' विरुदावली जो अर्वाचीन काल में रचित है और इसमें आचार्य शङ्कर व उनके

मठ के यशोगान तथा विशेष गुण व लक्षण दिये गये हैं। ये सब स्व रचित अर्वाचीन होने का कारण इनको मूल प्रमाण मानना भूल होगी। कुम्भकोग मठ का प्रमाण है कि उनके श्रीमुख विरुदावली में 'शारदा मठ' के उल्लेख होने से 'शारदा मठ' व 'कामकोटि मठ' दोनों अनुरूप एवं नामान्तर है। कुम्भकोण मठ की श्रीमुख विरुदावली 19 वीं व 20 वीं शताब्दी के चार प्रतियां प्राप्त किये गये थे। ये सब भिन्न भिन्न काल में प्रकाशित हुए थे। इन चार प्रतियों की तुलना की गयी। इनमें भेद पाये गये थे। इससे सिद्ध होता है कि स्वरचित विरुदावली भी काल प्रवाह के साथ परिवर्तनशील हैं। इसी प्रकार शारदा मठ भी जोड लिया गया है। इसके अलावा और कोई प्रमाण नहीं है। पाठकगण जान लें कि इस भ्रामक प्रचार में कितनी सत्यता है।

शासन के दिये हुए नामों तथा मठ के गुरुवंशावली नामों द्वारा यदि तुलना किया जाय तो उसमें अनेक भिन्नता ही दिखाई पडता है। यदि नामों का समन्वय अनुमान व तर्क रीतिं द्वारा किया जाय तो भी उनके काल भिन्न भिन्न होते हैं और शासन काल से भेद पाया जाता है। कुम्भकोण मठ की गुरु वंशावली (गुरुरत्नमाला) अनुसार तथा अन्य पुस्तकें जो कुम्भकोण मठाधीष को अर्पित तथा आपकी आज्ञा से प्रचार हुए हैं उनके दिये हुए गुरुवंशावली के साथ नामों की भी तुलना किया जाय तो और अधिक भिन्नता पायी जाती है। प्रायः अनेक मठाधीषों का नाम दो या तीन उर्फ नाम से प्रचार किये जाते हैं। इनमें कौन सी वंशावली सत्य है एवं कौन नाम ही यथार्थ है, यह किसी को मालूम नहीं। नामान्तरों द्वारा समय समय पर भिन्न नाम देकर स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रचार किया जा रहा है। पाठकगण इन शासनों द्वारा दिये हुए नामों के विषय में विमर्श सो ऊपर पायेगें।

कुम्भकोण मठ का सर्वप्रामाण्य पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' जिसमें 16 वीं शताब्दी तक की गुरु वंशावली का विवरण दिया है, कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह पुस्तक नेरूर के सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने रचा था। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि मठाधीष श्री आत्म बोध (1586—1638 ई०) के आज्ञा द्वारा श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने 'गुरुरत्नमाला' ग्रन्थ का रचना किया। श्री टि. ए. जि. राव शासन संपादक लिखते हैं "... ... ... of these the most important one is the Gururatnamalika—stotram by Sadasiva Brahmendra Saraswati with a commentary on it by Atmabodhendra Saraswati, both the anthor and the commentator were students in and eventually occupied the pontifical seat in this matha. They lived in the latter half of the 17th centuary A. D." अन्यत्र प्राप्त शासन पत्रों एवं तंजौर, पुदुकोट्टै तथा तिरवन्कूर संस्थानो के इतिहास से स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्री सदाशिव ब्रह्म का काल 18 वीं शताब्दी था। श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के समसामयिक पुरुष तंजौर के राजा श्री तुकोजी (1729—1736 ई०) थे, पुदुकोट्टै के राजा श्री विजय रघुनाय राय तोन्डैमान (1730—1769 ई०) थे तथा तिरुवन्कूर के महाराजा श्री रामवर्मा कार्तिक तिरुनाळ (1758—1798 ई०) थे। श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के समकालीन श्री रामभद्र दीक्षित (जानकी परीणयम के रचयिता) एवं तिरुवसनल्लूर के श्री वेंकटेश अय्यावाळ थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के गुरु का नाम श्री परमशिवेन्द्र (1539—1586) था। कांची कुम्भकोण मठ इनको अपना मठाधीष बतलाते हैं। श्री परमशिवेन्द्र द्वारा रचित पुस्तक 'दहर विद्या प्रकाशिका' तथा 'शिव गीता व्याख्या' में अपने गुरु का 'अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती' नाम दिया है। पर कुम्भकोण मठ की वंशावली अनुसार इनके गुरु का नाम 'सर्वज्ञ सदाशिव बोध' था। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि श्री परम शिवेन्द्र कुम्भकोण मठ के मठाधीश नहीं थे। इसी प्रकार सदाशिव ब्रह्म का भी इस मठ से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये स्वतन्त्र यति जो महान तपस्वी व सिद्ध योगी थे और इनकी समाधि

नेरूर में है। यह समाधि कुम्भकोण मठ के आधीन में नहीं है। इस समाधि को अपने आधीन लाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कुम्भकोण मठ के कथनानुसार श्री सदाशिव का काल 16 वीं शताब्दी का प्रचार कल्पित एवं मिथ्या है क्यों कि प्रमाण युक्त यह सिद्ध होता है कि सदाशिव ब्रह्मेन्द्र 18 वीं शताब्दी में विद्यमान थे। इनकी गुरुवंशावली भी 17.वीं शताब्दी तक की जो ऐसी ही कल्पित व मिथ्या है। शासन संपादक Ep. Ind. Vol. XIV में लिखते हैं: "The fact that the gurus after the 16th century are not mentioned in the stotra may be taken as indicating that there has been no addition to it since the author's life time. The author cannot be regarded as an authority regarding the generations of the gurus remote from his time" जो पुस्तक कुम्भकोण मठाधीष की आज्ञा द्वारा रचित एवं आपको अर्पित है उसमे श्री एन्. वि. लिखते हैं:—"When I say that the accuracy of the chronology cannot be questioned, it applies only to the latter part of it. We cannot say at present how far the older verses are geniune and of contemporary origin." इससे सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ वंशावली में दिये हुए 17 वीं शताब्दी तक के पूर्वाचार्यों का नाम कहां तक विश्वसनीय है। शासन संपादक श्री एस. वी. वेंकटेशन तथा श्री एस. वी. विश्वनाथन, कुम्भकोणम्, Ep. Ind. Vol. XIV, में लिखते हैं "... ... ... one of the teachers, the third in apostolic descent from Sadasiva (1527 A. D.), composed a Guru—raja—ratna—mala—stava, of which the following are the closing stanzas ... ... इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र कृतिषु गुरुराजरत्नमालास्तवः संपूर्णम्॥" शासन संपादक का कहना है कि श्री सदाशिव (1527 ई०) के प्रशिष्य (वंशावली के तीसरे) श्री आत्मबोध द्वारा रचित ग्रन्थ है पर इस पुस्तक के अन्त में श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र का नाम दिया गया है, जिसे शासन संपादक ने उद्धृत किया है। शासन सम्पादक के दो नामों में कौनसा नाम यथार्थ रचयिता का नाम है? ऐसे भ्रामक प्रचारों द्वारा लोगों को भिन्न भिन्न प्रकार की कथायें सुनाई जाती है। अब कुम्भकोण मठ वाले इन दोनों का समन्वय करके यह प्रचार कर रहे हैं कि श्री आत्मबोध की आज्ञा से श्री सदाशिव ब्रह्म ने पुस्तक रची है। श्री आत्मबोध ने इस ग्रन्थ की व्याख्या 'सुषमा' लिखी है। उपर्युक्त प्रमाण द्वारा अब सन्देह होता है कि क्या नेरूर के स्वतन्त्र सिद्ध योगी सदाशिव ब्रह्म ने गुरुरत्नमाला लिखा है? सम्भवतः कुम्भकोण मठ अब कोई दूसरी ही नवीन कथा प्रचार करें।

उपर्युक्त शासनों में 'शङ्कराचार्य' पद का अथवा आपकी कोई विरुदावली भी उल्लेख नहीं है। जो कुछ यशोगान अथवा गुण लक्षण उल्लेख हैं वे सब विद्वान व आदरणीय यतियों अथवा कोई शाखा मठ के मठाधीष को भी लागू हो सकता है। शासन के 'शिवतेजस, तपस्वी, यतिराज, प. प., अद्वैती, नित्यान्नदान, निगमान्तरहस्य' आदि पदों द्वारा श्रीशङ्कराचार्य के शाङ्कर मठ अधीष होने का विशेष संकेत नहीं करता या न तो 'शङ्कराचार्य' नाम का संकेत करता है। ये सब विशेषण माननीय विद्वान् यतियों को भी लागू हो सकते हैं। जिस प्रकार श्रीगोविन्द दीक्षित को (तंजौर राज्य मंत्री) 'पदवाक्य प्रमाण, पारावार प्रवीण, अद्वैताचार्य, विद्याचार्य, कर्नाटक सिंहासन प्रतिष्ठाचार्य' के नाम से गुण विशेषण कहा जाता है उसी प्रकार साधारण यतियों व शाखा मठाधीषों को भी लागू हो सकता है। श्रीगोविन्द दीक्षित को 'अद्वैताचार्य' आदि कहने से क्या वे शङ्कराचार्य बन गये? वे तो गृहस्थ थे। उसी प्रकार

इन साधारण विशेषणों द्वारा किस प्रकार 'शङ्कराचार्य' होने का निश्चय किया जाय? 'इन साधारण विशेष पदों द्वारा शङ्कराचार्य एवं कांची कामकोटि मठ का ही संकेत करता है' ऐसा प्रचार करना केवल कल्पना एवं मिथ्या है।

'कामकोटि' पद से कामाक्षी समीप मठ होना था पर कोई मठ वहां नहीं है। 1291 ई० के अनुसार विष्णुकांची में मठ होना था पर जो मकान विष्णुकांची में आपके आधीन है वह अर्वाचीन काल में मठ बनाया गया है। इनका मठ शिवकांची में है और वह भी 18 वीं सदी के अन्त में या 19 वीं सदी के प्रारम्भ में खरीदा गया था। प्रथम बार 1708 ई० शासन द्वारा मालूम होता है कि कांची मठ विष्णुकांची से शिवकांची आया यदि मान लें कि कांची मठ प्रथमतः विष्णुकांची में था। 1708 ई० कुछ पूर्व ही विष्णुकांची से बदलकर शिवकांची आये होंगे। इसमें भी कितनी सत्यता है उसका विवरण पाठकगण अन्य अध्यायों में पायेंगे। ऐसी स्थिति में कैसे कहा जाय कि कांची कामकोटि मठ कांची में पुराकाल से था।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि जब तक कांची में अन्य मठ होने का विषय सिद्ध न किया जाय तब तक ये शासन पत्र में यद्यपि जो त्रुटी हैं तथापि यह कांची मठ का ही कहा जायगा। इतिहास से सिद्ध होता है कि कांची में अन्य मठ भी थे। कांची उन दिनों में राजकीय तथा धार्मिक मतों के संघर्ष का क्षेत्र था और वहां पर अनेक मठ होने की कोई असम्भावना नहीं है। शैव सिद्धान्त मठ, बौद्ध मठ, जैन मठ, तांत्रिक मठ, अजाविक वर्ग मठ, वेद मठ, शारदा मठ, आदि होने के प्रमाण मिलते हैं। दक्षिण भारत आलय शिलालेख नं. 432 से प्रतीत होता है कि 13 वीं व 14 वीं शताब्दी में एक शङ्करदास सन्यासी कांची के एक मठ में वास करते थे। Indian Epigraphy 1955/56 A. D. appendix 286 से प्रतीत होता है कि कांची में एक यति कामाक्षी भारती मठ में रहते थे और आपका काल 1539 ई० का है। Indian Epigraphy 1954/55 A. D. appendix 346 से मालूम पडता है कि दुर्गा देवी श्रीपाद सन्यासी एवं सोमनाथ योगी (1463 ई०) कांची के मठ में वास करते थे। इससे सिद्ध होता है कि कांची में अनेक मठ थे। जब तक प्रमाणयुक्त यह सिद्ध न किया जाय कि कांची शारदा मठ ही कांची कामकोटि मठ है तब तक यह कहना भूल होगी कि कांची कामकोटि मठ स्वतन्त्र, सर्वोच्च व आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित है। आपका प्रचार ऐसा भी है कि ये सब शारदा मठ के शासन पत्र उनके आधीन है इसलिये यह सब उन्हीं का है। पूर्व में बतलाया गया कि ये सब शासन पत्र दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा कांची शारदा मठ का था और जब यह शाखा मठ स्वतन्त्र बन बैठा तो इसे अब वह अपना बना लिया हो अथवा कांची शारदा मठ के सर्वाधिकारी से प्राप्त किये गये हों। शासन पत्रों का धारण करने मात्र से इन सब शासन पत्रों का स्वामी कहना भूल है क्यों कि अन्यों का शासन पत्र भी प्राप्त करके स्वयं उसके अधिकारी भी बन सकते हैं।

कांची क्षेत्र की अधिष्ठात्री श्री कामाक्षी है। यह आश्चर्य होता है कि पुराकाल के लोग जो विज्ञ, भक्त, धर्ममर्य्यादा व नीतिपालक तथा आदरणीय थे वे कांची में दान देते समय श्री कामाक्षी का नाम न लेकर केवल श्री शारदा का नाम लिया है। उन्होंनें क्यों ऐसा किया था? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कांची की अधीषी कामाक्षी होते हुए भी कांची शारदा मठ जो श्रृङ्गेरी शारदा मठ की शाखा थी उस मठाधीष को विशेष रूप से शारदा का ही उल्लेख करके दान दिया गया था। विजयनगर संस्थान ने श्रृङ्गेरी शारदा मठ को अपना धनदौलत, राजचिन्ह, भक्ति, आदर, गुरुभाव आदि सब देकर उसे अपना गुरु मठ बनाया था। अब उसी संस्थान के लोग शारदा कांची शाखा मठ को, शारदा के नाम से उल्लेख कर, दान देने के विषय में कोई आश्चर्य नहीं है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कांची का शारदा मठ श्री श्रृङ्गेरी का ही शाखा मठ है। श्री एन्. वेंकटरमणय्या, एम्. ए., पि. एचडि., मदरास

विश्वविद्यालय, द्वारा रचित पुस्तक 'Studies in The History of the Third Dynasty of Vijayanagara' 1935 ई० में लिखते हैं कि कांची कुम्भकोण मठ श्री शृङ्गेरी मठ का शाखा मठ है। आप लिखते हैं:— 'The Mathas belonging to the Saivas may be further divided into two classes: (a) the Brahmanic and (b) the non-Brahmanic. (a) A section of the Brahmanic Matha traces its origin either to the great philosopher Sankara or to one of his disciples. The most important matha belonging to this class was of course, the Matha at Sringeri, which had very close and intimate relations with the state. Branches of this Matha were established at Pushpagiri, Virupakshi and Kumbhakonam.' आङ्गल भाषा मासिक पत्र 'The Light of the East', जूलै माह, 1894 ई० के अङ्क में प्रकाशित है कि भारत के अन्य मठ सब आम्नाय चार मठ के शाखा व उपशाखा मठ हैं। पूना वृत्तान्त 'केसरी' एप्रल 1898 ई० अंके क में प्रकाशित है कि कुम्भकोण मठ श्री शृङ्गेरी दक्षिणाम्नाय शारदा मठ का एक शाखा मठ है। बम्बई मुद्रित पुस्तक 'श्री शङ्करविजय चूर्णिका', 1898 ई० प्रकाशित, में लिखा है कि कुम्भकोण मठ शृङ्गेरी शारदा मठ का शाखा मठ है। भट्ट श्री नारायणशास्त्री द्वारा रचित विमर्श (19 वीं शताब्दी) एवं 1876 ई० में प्रकाशित 'शाङ्करमठतत्त्व-प्रकाशिका' पुस्तकें सिद्ध करते हैं कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ है। तंजौर जिला न्यायाधीश डा० बर्नल भी इसी विषय की पुष्टी करते हैं। इलाका कचहरी, हैदराबाद, ताः 11—3—1845 को फैसला देता है कि कुम्भकोण मठ एक चिल्लर मठ है और इस फैसले के आधार पर हैदराबाद राज्य के प्राइम-मिनिस्टर ने एक घोषणा पत्र प्रकाश किया था जिसमें कुम्भकोण मठ को चिल्लर मठ कहा गया है। काशी के दिग्गज विद्वानों ने 1886 ई० में चार आम्नायमठ होने की घोषणा की थी। इस पुस्तक के तृतीय खन्ड में इन सब विषयों का विवरण पायेंगे।

कुछ लोगों का अभिप्राय है कि कुम्भकोण मठाधीश का नाम 'चिक्कुडयार' था व आपके मठ की मुद्रा कर्नाटक भाषा में थी तथा दो सौ वर्षों से कर्नाटक ब्राह्मण ही मठाधीष बनकर चले आ रहे हैं, सम्भवतः यह मठ कर्नाटकी ब्राह्मणों से प्रारम्भ किया गया हो। कहा जाता है कि सब कुम्भकोण मठाधीष श्री वेंकटसुब्रह्मणिय दीक्षित, कर्नाटक ब्राह्मण, तंजौर जिले, के वंशजों में से चुने जाते हैं। श्री वेंकटसुब्रह्मणिय दीक्षितर श्री गोवीन्द दीक्षित के वंशज थे। श्री गोविन्द दीक्षितर, तंजौर राज्य के मन्त्री, को 'पदवाक्य प्रमाण, पारावार प्रवीण, अद्वैताचार्य, विद्याचार्य, कर्नाटक सिंहासन प्रतिष्ठाचार्य' आदि विशेष विरुदावलि द्वारा संबोधित किया जाता था। ऐसे विद्वान प्रभावशाली ने अपना पूर्ण सम्मति तथा सहायता प्रदान करके तंजौर में एक स्वतन्त्र मठ की स्थापना की हो। श्री गोविन्द दीक्षित एक प्रकाण्ड अद्वैतवादी थे और श्री अप्पय्य दीक्षित के मित्र तथा समकालीन थे। पूर्व में ये सब होयसला कर्नाटकी ब्राह्मण मैसूर प्रान्त के दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के सब शिष्य थे और इसलिये इस नवीन मठ का भी नाम 'शारदा मठ' दिया हो।

दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के शिष्य सब दक्षिणाम्नाय वासी हैं। इस एकता भाव में फूट व द्वेष पैदा करके कांची कुम्भकोग मठ अपने नये परिवर्तित शिष्यों द्वारा इस दक्षिणाम्नाय व समाज में दो विभाग करने का प्रयत्न कर रहे हैं। शिष्य वर्गों में कांची कुम्भकोग मठ के शिष्य तथा शृङ्गेरी मठ के शिष्य ऐसे अलग अलग भाव हो गये हैं। आचार्य शङ्कर हिन्दुओं को धार्मिक एकता के सूत्र में बांधकर देश में शान्ति व एकता को पुनः स्थापन किये थे और अब कांची कुम्भकोग मठ इस एकता, शांति व गुरु भक्ति पर कुठाराघात कर रहे हैं। मानो आचार्य शङ्कर के हृदय को विदीर्ण करते हुए विभाग कर रहे हैं। इससे अपचार और कुछ नहीं हो सकता।

अध्याय—6

काञ्चीनगर एवं श्रीकामाक्षी मन्दिर का कुम्भकोणमठ से सम्बन्ध—विमर्श

कुम्भकोण मठ का कांची वृत्तान्त प्रचार का विवरण संक्षेप में निम्न दिया जाता है—

1. आचार्य शङ्कर ने अपनी दिग्विजय यात्रा पश्चात् कांची में बहुकाल वास करते हुए श्रीकामकोटि पीठ की प्रतिष्ठा की थी। कांची में कामकोटि पीठ न होने का आक्षेप अभी तक किसी ने नहीं किया है, इसलिये कांची में मठ की स्थापना हुई थी। देवी पीठ ही मठ है।

2. श्रीहर्ष रचित नैषध काव्य में 'योगेश्वर' पद का उल्लेख होने से एवं शिवरहस्य नवमांश शोढषोध्याय में पांच लिङ्ग का उल्लेख होने से तथा मार्कन्डेय संहिता एवं आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी 'योगलिङ्ग' का उल्लेख होने से, कांची में मठ होने का विषय निश्चित होता है। कांची का देव उल्लेख होने से मठ का होना आवश्यक है। यह योग लिङ्ग सर्वोच सर्वोत्कृष्ठ है।

3. आचार्य शङ्कर ने अपने निजाश्रम कांची में निजमठ की स्थापना करके, इस मठ में अधिष्ठित होकर अपनी गुरुपरम्परा प्रारम्भ की थी और कांची कुम्भकोण मठ के आचार्य सब श्रीशङ्कराचार्य के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा के हैं। इसलिये कांची मठ भारतवर्ष का शिरोमणि मुखिया मठ है और आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार मठ जो शिष्य मठ हैं सब कुम्भकोण मठ के परिचालन में हैं। कुम्भकोण मठाधीश 'जगद्गुरु' पदवी के अर्ह हैं और अन्य चार शिष्य मठ 'श्रीगुरु' पदवी के अर्ह हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा चार ही मठ स्थापना करने का कोई प्रमाण नहीं है इसलिये कहा जा सकता है कि आपने चार से भी अधिक मठ की प्रतिष्ठा की हो। जो व्यक्ति कांची मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित मठ नहीं मानते हैं उन्हें अन्य मठ भी मानना न होगा।

4. आचार्य शङ्कर ने कांची में पूर्वकाल से स्थित सर्वज्ञ पीठ पर पीठारोहण किया था। आचार्य ने एक नवीन सर्वज्ञपीठ का निर्माण कर उस पीठ पर आरोहण किया था। कांची कश्मीर मंडल के अन्तर्गत होने से कांची में सर्वज्ञपीठ होने का निश्चय होता है।

5. आचार्य शङ्कर का निर्याण कांची के कामाक्षी मन्दिर में हुआ था। आचार्य शङ्कर की समाधि भी कांची कामाक्षी मन्दिर में है। आचार्य शङ्कर का निर्याण विवरण–'स्थूलशरीरं सूक्ष्मेऽन्तर्धायतद्रूपो भूत्वा सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा चिन्मात्रो भूत्वा अङ्गुष्ठमात्रपुरुषस्तदुपरि पूर्णमखण्डलाकारमानन्दं प्राप्य सर्वजागद्व्यापक चैतन्यमभवत्।' 1957 ई० प्रकाशित पुस्तक में कहा है 'आचार्य शङ्कर कैलास जाने की इच्छा से कांची के बिलाकाश कामकोटि गुफा में उतर कर पश्चात् अन्तर्द्धान भये।'

6. कांची कामाक्षी मन्दिर की श्रीशङ्करमूर्ति भारतवर्ष में सब मूर्तियों से प्राचीन है और यह मूर्ति वहां समाधि होने का संकेत करती है। कुछ पुस्तकों में यह भी उल्लेख है कि यह शङ्करमूर्ति समाधि है।

7. कांची नगर में कामकोटि मठ तीन जगहों में हैं—कामाक्षी मन्दिर निकट, शिवकांची एवं विष्णु कांची।

8. कांची का कामाक्षी मन्दिर पुराकाल से कांची मठ के आधीन एवं परिचालन में था। इस सीमा में मुसलमानों, अंग्रेज व फ्रेंच के बरावर धावे से कांची मठ कांची नगर छोडकर कामाक्षी मन्दिर के स्वर्ण कामाक्षी को साथ लेते हुए तिरुचीं जिला के अन्तर्गत उदयारपालयम् जागीरदारी चला गया और वहां से तंजौर पहुंचा जहां अब भी स्वर्णकामाक्षी का मन्दिर है और यह कांची मठ पश्चात् तंजौर से कुम्भकोणम् चला आया। आपकी कांची मठ परम्परा अब कुम्भकोणम् से प्रारम्भ होकर आज पर्य्यन्त चला आ रहा है। कांची छोडकर तंजौर चले आने का काल (1) 1746—63 ई० (2) 1729 ई० (3) 1686 ई० (4) 1780 ई० (5) 1767 ई० व (6) 1821 ई० का है।

9. कांची मठ के पूर्वाचार्य सब जगत् विख्यात् विद्वान एवं आदरणीय यतिराज तथा माननीय ग्रंथों के रचयिता होने के कारण कांची में मठ होने का सिद्ध करता है। शृङ्गेरी मठाधीश ने नेरूर के श्रीसदाशिवब्रह्म जो कांची मठाधीष के शिष्य थे उनका पूजासेवा करने से सिद्ध होता है कि कांची मठ को आपने स्वीकार किया है। शृंगेरी मठाधीष 'अभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती' ने अपने से किये गलतियों को स्वीकार कर एक क्षमा पत्र लिख दिया है और यह सिद्ध करता है कि कुम्भकोण मठ गुरुमठ है।

10. कांची मन्दिरों में आचार्य शङ्कर की मूर्तियां जो शिला में खुदा हुआ है इससे सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर कांची में ही वास करते थे।

11. कांची कामाक्षी से नीचे श्रेणी की देवी सरस्वती पीठ है और आचार्य शङ्कर ऐसे नीची श्रेणी के पीठ पर श्रीचक्र की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते, इसलिये कांची कामाक्षी ऊंची श्रेणी की देवी पीठ पर ही मठ होने का निश्चय होता है।

12. चेङ्गलपेट जिला गजटियर में कांचीमठ की स्थापना श्रीशङ्कराचार्य द्वारा होने का उल्लेख है।

13. कांची में आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित कामकोटि मठ न होने का निश्चय करनेवाले व्यक्ति सब मूर्ख हैं।

उपर्युक्त प्रचार का संक्षेप विवरण जो कुम्भकोण मठ से व उनके अनुयायी भक्तों द्वारा किया गया है, सो सब भिन्न भाषाओं में 1915 ई० से 1961 तक प्रचारित 50 पुस्तकों, 20 लेखों जो पत्रिकाओं में प्रचुरित थे एवं व्यवस्था आदि से लिया गया है। 1894 ई० से 1961 ई० तक का प्रकाशित कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकें व लेखों का संग्रह मैं ने किया है और जो व्यक्ति इन प्रचारों का विस्तार विवरण चाहते हैं उन्हें मैं प्रचारों की सूची दे सकता हूं। इन पुस्तकों में मिथ्या, भ्रामक, कल्पितविषय, प्रमाणाभास, विवादास्पद एवं निन्दनीय घृणा उत्पन्न करनेवाले विषय सब हैं जिसका विवरण मैं यहां नहीं देता चूंकि वे सब मेरे अभिप्राय में उन्मत्त प्रलाप व बकवास हैं। मैं यहां कांची सम्बन्ध केवल 13 विषय संक्षेप रूप में दिया हूं। उक्त प्रचारों पर विमर्श व आलोचना इस पुस्तक में भिन्न भिन्न जगह दिया गया है और यहां संग्रह रूप में उक्त संख्या क्रम से इन प्रचारों पर आलोचना की जाती है।

1. कांची में बहुकाल वास करते हुए आचार्य शङ्कर ने कामकोटि पीठ की प्रतिष्ठा की थी ऐसा जो प्रचार है सो बिलकुल निराधार एवं भूल है। माधवीय शङ्करविजय के डिण्डिम व्याख्या में कहेजानेवाले प्राचीन शङ्करविजय

के उद्धृत श्लोकों द्वारा स्पष्ट मालूम होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में माह वास किये थे। डिण्डिम व्याख्या का 'तत्र कांचीस्थले मासमात्रं स्थित्वे' वाक्य से मालूम होता है कि कांची में आचार्य शङ्कर ने माह ही वास किया था। आ. शं. वि. में भी 'तस्मिन्स्थले मास मात्रं स्थित्वा' कहा है। कुम्भकोण मठ के परिष्कृत्य आ. शं. वि. में भी यह उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने बारह वर्ष श्रृंगेरी में वास किया था—'तत्रैव परमगुरुः द्वादशाब्दकालं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैतविद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा ...।' कुम्भकोण मठ की गुरुरत्नमाला की व्याख्या 'सुषमा' पुस्तक में भी आचार्य शङ्कर का श्रृंगेरी वास बारह वर्ष कहा गया है। चिद्विलास शं. वि. विलास जो कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके आचार्य चिद्विलास से रचित है, इस पुस्तक में भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने श्रृंगेरी में चौदह वर्ष वास किया था। आचार्य शङ्कर की आयू केवल 32 वर्ष था और 16 वीं वर्ष में भाष्य रचना बदरी सीमा व काशी में समाप्त कर 17 वीं वर्ष में मण्डन विश्वरूप मिश्र को सन्यासाश्रम देकर पश्चात् सुरेश्वराचार्य व अन्य शिष्यों के साथ दक्षिण भारत लौटकर श्रृंगेरी में 12 वर्ष वास करके भारतवर्ष का एक बार भ्रमण दिग्विजय रूप में करने के पश्चात् अब कितना वर्ष बाकी रह जाता है ताकि आप कांची में 'बहुकाल वास' कर सकते थे? आचार्य शङ्कर की दिग्विजय यात्रा रामेश्वर से हिमालय, कश्मीर से कामरूप, द्वारका से पुरीजगन्नाथ आदि सीमा के अन्तर्गत अनेक मन्दिरों, क्षेत्रों व तीर्थों का जीर्णोद्धार एवं विपक्षी दलों के विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ विवाद तथा चार आम्नाय मठों का निर्माण आदि कार्य क्या कुछ दिनों में ही किया गया था ताकि आप बहुकाल कांची में वास कर पाते? आचार्य शङ्कर ने कांची में वास उतना ही दिन किया होगा जितना आपने अन्य क्षेत्रों में किया था? श्री के. टि. तेलङ्ग, एक प्रकान्ड विद्वान एवं आपने आचार्य शङ्कर चरित्र पर काफी अनुसन्धान किया था, आप लिखते हैं—'... ... he went to Kanchi where he erected a temple and established the system of the adoration of the Devi.' अर्थात् आपका कांची वास बहुकाल का न था और उतना ही दिन था जितना आपने अन्य क्षेत्रों में वास किया था। प्रो. विल्सन 'Glossory' में 1855 ई० में कांची के बारे में लिखते हैं—'... Whether he (Sankara) was more than a passing pilgrim at Conjeevaram is doubtful? (page 810) ऐसा अनेक प्रमाण दिया जा सकता है पर उपलब्ध सामग्री से जब दृढ निष्कर्ष निकलता है तो अन्यों की आवश्यकता नहीं है।

कुम्भकोण मठ की आचार्य शङ्कर पूजा कल्प पुस्तक में उल्लेख है 'कांची श्रीचक्रराजाख्य यन्त्र स्थापन दीक्षितः' और देवी भागवत रीति से 'पंचाषत् पीठ मन्डिता' के अनुसार कांची में एक शक्ति पीठ अनादि काल से होने का भी उल्लेख है। भागवत के दसवें स्कन्द में 'कामकोष्णीं पुरी कांची' का उल्लेख है। देवी भागवत एवं मत्स्यपुराण में 108 शक्ति स्थान एवं भगवती के 108 नाम का उल्लेख करते हुए कहा है—'गन्धमादन पर्वतपर कामाक्षी रूप में स्थित' हैं। तंत्रचूडामणी में 51 पीठों का उल्लेख है और कांची में सति का कङ्काल (अस्थि) अङ्ग गिरने से यह शक्तिपीठ 'देवगर्भा' के नाम से प्रसिद्ध है। शिवकांची का कालीमन्दिर ही देवगर्भा पीठ है। शिवचरित्र, दाक्षायणी तंत्र, योगिनिहृदय तंत्र में 51 पीठों का उल्लेख है। त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्ड में परामर्श पार्वती का बारह देवी रूपों में स्थित होने का भी उल्लेख है जिसमें कांची का कामाक्षी एक है।

नाभी की पतनभूमि की जगह कामकोटी पीठ हुआ और यहां 'ऐ'कार वर्ण का प्रादुर्भाव हुआ। समस्त काम मन्त्रों की सिद्धि यहीं होती है। इसके चारों दिशाओं में चार अप्सरायें निवास करती हैं। सौन्दर्यलहरी में भी अनादि काल से प्रचलित शक्ति पीठ का कांची में वर्णन है। ललिता त्रिशती में 'कामकोटि निलयायी नमः' का उल्लेख है। ललिता सहस्रनाम में भी कामकोटि पद का उल्लेख है। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि कांची

का शक्ति पीठ अनादिकाल का है और यह पीठ आचार्य शङ्कर के पूर्व काल का है। प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने 'शाक्त सम्प्रदाय को वैदिक मार्ग में लाये' और ऐसा कहने से ही प्रतीत होता है कि कांची का पीठ आचार्य शङ्कर काल के पूर्व का ही है। 'कामकोटि निलयायै' का अर्थ है 'षण्णवर्ता पीठेषु मध्ये कामकोटिः श्री चक्र मित्यर्थः। निलयम्—गृहं यस्याः सा कामकोटि निलया' (ललिता त्रिशती)। ललिता सहस्रनाम में कामकोटि पद का अर्थ है—'काम–परशिवएव, कोटिः एक देशो यस्याः।' कामकोटि का अर्थ श्री चक्र है। अतः कांची में आचार्य शङ्कर के पूर्व काल से ही श्री चक्र (कामकोटि) पीठ है। इस श्रीचक्र का 'सौम्यवपुषं' किया अर्थात् गुहावासिनी वायुरूपिणी कामाक्षी का स्थूल श्रीचक्र उग्र व अशुद्ध होने से अशुद्धा निवारण करके उग्रता का शान्त किया था। अतः यह कहना ठीक है कि आचार्य शङ्कर नें जीर्णोद्धार करवाया। कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में भी प्राचीन शङ्करविजय की पंक्तियां व श्लोक उद्धृत कर कहते हैं कि आचार्य ने उग्रता को शान्त किया था। आचार्य शङ्कर ने जम्बुकेश्वर, मूकाम्बिका, तिरुपदी, अहोबिलम, चिदम्बर, काशी (अन्नपूर्णा), कामरूप कामाक्षी (कामाख्या), गुह्येश्वरी (नैपाल) आदि स्थलों की देवियों की अशुद्धता व उग्रता शान्त किया था उसी प्रकार कांची में गुहावासिनी कामाक्षी की स्थूल की उग्रता को शान्त कर व अशुद्धता की निवारण की थी। जब प्रमाण द्वारा सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने कामकोटि पीठ का जीर्णोद्धार कर एवं उग्रता शान्त कर अशुद्धता का निवारण किया था तब भी कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 'श्रीमद्भगवत्पाद प्रतिष्ठित कामकोटि पीठ' अर्थात् आचार्य शङ्कर ने नवीन कामकोटिपीठ की प्रतिष्ठा की थी। यह प्रचार इसलिए किया जाता है कि जिस प्रकार आचार्य शङ्कर ने चार पीठों की प्रतिष्ठा कर और वहां वहां चार मठों की भी स्थापना की थी उसी प्रकार अनभिज्ञ पामरजनों में यह भ्रामक प्रचार करना चाहते हैं कि कांची में भी पांचवा नवीन पीठ का निर्माण हुआ था। कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों ने अपने दिये व्यवस्था में कहा है कि आचार्य शङ्कर कामकोटिपीठ में अधिष्ठित हुए जो कुम्भकोण मठ के श्रीमुख से प्रतीत होता है, अतः कामकोटिपीठ आचार्य शङ्कर के पूर्व का ही है और आप वहां केवल अधिष्ठित ही हुए। परन्तु यह व्यवस्था कुम्भकोण मठ प्रचार के विरूद्ध है, चूं कि कुम्भकोण मठ की पुस्तक स्पष्ट उल्लेख करती है कि यह पीठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित है। इन भिन्न कथनों में कौनसा कथन सत्य है?

कांची कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर पं. टि. एस. राजमार्तान्ड शास्त्री का कथन है कि 'कामाक्षी विलास' ग्रंथ के अनुसार 'बिलाकाश' या 'महाबिलम' जहां से श्रीकामाक्षी निकल कर बाहर आयी थी और भन्डकासुर को पराजित किया था, उसी बिलाकाश या महाबिलम को कामकोटि कहते हैं तथा इसे कामराज पीठम् भी कहते हैं। आपका अभिप्राय है कि कांची का कामाक्षी मन्दिर आचार्य शङ्कर काल के पूर्व का ही है और अनादी काल में परमेश्वर ने स्वयं वहां श्रीचक्र की प्रतिष्ठा की थी जिसे अब आचार्य शङ्कर ने अशुद्धता निवारण कर जीर्णोद्धार किया था। उक्त शास्त्री ने मदरास 'हिन्दू' दैनिक पत्र के 8—4—1956 अङ्क में एक पत्र प्रकाशित किया था जिसका नकल नीचे दिया जाता है—'With reference to the article, on Kanchipura in 'The Hindu' of 18th March, 1956, may I point out that 'Kamakoti Peetha' is the 'Bilakasa' or 'Mahabilam' (the great concavity of the earth) where from Sri Kamakshi came out and subdued Bhandakasura (refer Kamakshi Vilasam). This is also called the Kamaraja Peetam, one of the three great Peetas of Sri Devi.'

'Was there a Kamakshi shrine before Sankara? It has been there from time immemorial. If Sri Adi Sankara had the city and other shrines built,

according to your correspondent, we might have expected a separate temple for Sri Sankara, like the fine separate temple of Sri Vidyaranya Bharathi Swamigal of Sringeri built by the Vijayanagara Kings at Sringeri.'

'Was the Sri Chakra there before Sankara? Sri Chakra was established by Lord Siva himself. Brahma suffered the consequence of entering the Gayathri Mantapa, where the four vedas are the four walls and 24 Aksharas are the 24 pillars and got rid of his blindness by worshipping Sri Chakra as ordained in 'Rudrayamalam.' This can be seen from 'Kamakshi vilasa' 14th chapter. From the Markandeya Samhita, we may infer that Sankara re-consecrated Sri Chakra.'

पीठ की अधीशी देवयोनि होते हैं न कि मनुष्य और कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन सर्वज्ञ विद्वानों का निर्णय है कि आचार्य शङ्कर ने कामकोटिपीठ अर्थात श्रीचक्र में बैठे। ऐसा कहना उन्मत्त प्रलाप है। मनुष्य के लिये वास स्थल मठ है ['मठ छात्रादि निलयः' (अमरकोष) 'ब्रह्मघोषो भवेदयत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः। देव प्रदानकं वेश्म मठ इत्यभिधीयते' (ब्रह्मपुराण)] और देव योनि का वास स्थल पीठ है? लोक व्यवहार में साधारण तौर पर पीठ पद का अर्थ आसन भी होता है। आचार्य शंकर रचित मठाम्नाय में चार आम्नाय मठों का पीठ व मठ नाम भिन्न भिन्न दिया गया है। पीठ व मठ दोनों का अर्थ व तात्पर्य भिन्न हैं और अनभिज्ञ जन इन दोनों को एक ही होने का मान लेते हैं चूं कि कुम्भकोण मठ अपने भ्रामक व मिथ्या प्रचारों से इस भ्रम की पुष्टी करते हैं। आचार्य शंकर ने आम्नाय मठ (धर्मराज्यकेन्द्र) की स्थापना कर उसे आम्नाय पद्धति, नियम, संप्रदाय व महानुशासन द्वारा बद्ध किया है। इस नियम, संप्रदाय, पद्धति, अनुशासन का परिपालन करनेवाले आचार्य ही मठाधीश बनकर पीठ के देव व देवी की आराधना करते हुए, आचार्य शङ्करमत को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रचार करते हुए, धर्मप्रचार करते हुए एवं स्वयं परम्परा उपदेश प्राप्त करते हुए आते हैं। इन चार आम्नाय मठ के अतिरिक्त सब मठ या तो शाखा मठ हैं या केवल यति व ब्रह्मचारी का निवास स्थल होता है। पाठकगण इस विषय पर ध्यान दें चूं कि पीठ व मठ के भ्रामक प्रचार से कुछ स्वार्थी अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। जहां जहां पीठ हैं वहां आम्नाय मठ होने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शङ्कर ने अनेक पीठों का जीर्णोद्धार करवाया था और चार आम्नाय मठों में चार पीठों की प्रतिष्ठा भी की थी तो क्या यह कहा जाय कि इन सब जगहों में मठ भी हैं? जिस मठ की आम्नाय पद्धति नहीं है वह आम्नाय मठ नहीं है पर साधारण निवास मठ हैं। धर्मशास्त्र ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि आम्नाय सात हैं (मठाम्नायोपनिषद, यतिधर्मनिर्णय, आदि) जिसमें तीन ज्ञान गोचर हैं ('अथोर्ध्वशेषेगौणायेतेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः' अर्थात्–ऊर्ध्व, आत्मा, निष्कल ज्ञानगोचर हैं) और शेष चार भूलोक के दृष्टि गोचर चार दिक हैं। आम्नाय पद्धति, नियम, संप्रदाय आदि इन सात आम्नायों का बनाया गया है। चार दृष्टि गोचर चार आम्नाय के चार मठ हैं और अन्य सब मठ इन चार मठों के अन्तर्गत ही हैं (आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नायानुसार)। कुम्भकोण मठ का आचार्य पूजा कल्प में उल्लेख है 'चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठाता महामतिः' और आप भी चार आम्नाय का ही उल्लेख करते हैं। 1935 ई० में काशी में जब इस विषय की चर्चा उठी तो उक्त पुस्तक के दूसरे संस्करण में कुम्भकोण मठ के प्रचारकों ने उक्त नामावली 'चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठाता महामतिः' को निकाल कर 108 नामावली की जगह 107 नामावली ही प्रकाशित किया था। पाठकगण इस काले कर्तूत के रहस्य को जान गये होंगे।

यदि कुम्भकोण मठ कहे कि आचार्य शङ्कर ने कामकोटि पीठ (देवयोनि निवासस्थल) की प्रतिष्ठा की थी तो यह कथन असत्य होगा चूं कि आचार्य शङ्कर ने पीठ की अशुद्धता निवारण कर और उग्रता का शमन कर सौम्य बना दिया था, अर्थात् आपने जीर्णोद्धार करवाया न कि प्रतिष्ठा की थी। नवीन पीठ की प्रतिष्ठा होती है। कामकोटिपीठ अनादि काल का है। यदि कुम्भकोण मठ कहे कि कामकोटि पीठ का अर्थ मठ है तो यह कथन भी झूठ है चूं कि आचार्य ने दक्षिणाम्नाय में आम्नाय पद्धति अनुसार एक मठ शृङ्गेरी में स्थापना कर चुके थे और एक ही आम्नाय में दो मठ भिन्न आम्नाय पद्धतियों का हो नहीं सकता है। यह धर्मशास्त्र ग्रन्थ के विरुद्ध होगा। पाठकगण द्वितीय खण्ड को पूरा पढें तो सिद्ध होगा कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। हमलोगों का कहना है कि कांची पीठ पुरातन पीठ है और इस पीठ की पूजा सेवादि कार्य ब्राह्मणों से प्राचीन काल से ही करता हुआ आ रहा है और मन्दिर निर्वाह कार्य भी इन ब्राह्मणों के हाथ ही में था एवं कुम्भकोण मठ के मठाधीश को प्रथमवार नवम्बर 1842 ई० में इस मन्दिर का ट्रस्टी पदवी पर ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी से नियोजन किया गया था तथा आचार्य शंकर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। मुसलमान, महाराष्ट्र तथा पाश्चात्य लोगों के आक्रमणों के समय मन्दिर का निर्वाह ब्राह्मणों के हाथ से (स्थलत्तार व स्थानीकर) ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने ले लिया था। देवी पीठ को मठ कहा नहीं जा सकता है चूं कि पीठ व मठ दोनों भिन्न हैं। यदि कुम्भकोण मठ कहें कि कांची मठ यतियों का निवास स्थल है या आचार्य शङ्कर का माह वास काल का निवास स्थल था तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। निवासस्थल मठ को जब आम्नाय मठ बनाने का प्रयत्न करते हैं तो यह विवाद खडा होता है। 'कुम्भकोण मठ से स्वकल्पित आम्नाय का विमर्श द्वितीय अध्याय में पायेंगे जहां यह सिद्ध किया गया है कि स्वकल्पित आम्नाय पद्धति सब धर्मशास्त्र एवं माननीय प्रामाणिक ग्रन्थों के विरुद्ध हैं।

कुम्भकोण मठ विषयक प्रचार मासिक पत्र में कहा गया है कि 'चतुर्दिक' (चार दिशाओं में) पद का अर्थ यही होगा कि 'सारे भारत वर्ष में' आचार्य ने मठों की स्थापना की थी। इस कुतर्क वितन्डावाद की पुष्टी में छान्दोग्योपनिषद टीका में एक पद 'चतुर्दिक' की टीका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि यहां टीकाकार ने इस चतुर्दिक पद का अर्थ, 'सारे देश' का ही बोध करता है ऐसा कहा है और यहां आगे कहा है कि ऐसे अन्न क्षेत्र या छेत्र 'सारे देश में' स्थापित किये गये थे। पाठकगण प्रथमतः ध्यान दें कि 'अन्न क्षेत्र या छेत्र' स्थापन करना एवं 'आम्नाय मठ' स्थापना करना यह दोनों कार्य भिन्न हैं और इसके उद्धेश्य व आधार भी भिन्न हैं। आम्नाय नियम, पद्धति, संप्रदाय, वेद, महावाक्य, अनुशासन आदि अधिकारों से संपन्न मठ ही आम्नाय मठ हैं और इसका विवरण आचार्य शङ्कर रचित 'मठाम्नाय' में पाते हैं। अन्नक्षेत्र या छेत्र को जहां कहीं भी स्थापना की जा सकती है और यदि टीकाकार ने अन्नक्षेत्र या छेत्र के विषय में 'चतुर्दिक' की टीका करते हुए 'सारे देश' का अर्थ किया हो तो भूल नहीं हैं। आम्नाय मठ कहने मात्र से आम्नाय पद्धति का होना निश्चित होता है और धर्मशास्त्र ग्रंथ एवं मठाम्नायोपनिषद केवल सात आम्नायों का ही (चार दृष्टीगोचर एवं तीन ज्ञानगोचर) उल्लेख करता है। इसलिये 'चतुर्दिक' का अर्थ केवल दृष्टीगोचर चार दिशाओं का ही बोध कर सकता है—'चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः'—न कि 'सारादेश' जैसा कि कुम्भकोण मठ के सर्वज्ञ पन्डितों का प्रचार है। साधारण निवासस्थल जिसे 'मठ' भी कहा जाता है ऐसे अनेक मठ सारे देश में हो सकते हैं पर जब इस साधारण मठ को आम्नाय मठ बनाने की चेष्टा की जाती है तो यह विवाद खडा होता है। पदों का समीप अर्थ जो सर्वजानकारी एवं सबों को ग्राह्य है उस अर्थ को छोडकर कल्पना जगत के दूर अर्थों को लाकर असाध्य विषय को साध्य करने का भगीरथ प्रयत्न हो रहा है और इसी से

स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ के सर्वज्ञ पन्डित वर्ग अधेनु को धेनु कहलाने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे धूल प्रक्षेपण से साधारण अनभिज्ञ पामरजन ही इनके प्रचारों से प्रभावित हो सकते हैं।

जब तक पाठकगण पीठ (देवयोनिवासस्थल), नित्रासमठ (यति, ब्रह्मचारी, विद्यार्थी का वास स्थल), आम्नायमठ (मठाम्नायानुसार अधिकार संपन्न मठ जहां से परिव्राजक मठाधीश धर्मराज्य का शासन निर्वाह करते हैं—धर्मराज्यकेन्द्र स्थल) के भेद को न जान लेंगे तब तक कुम्भकोण मठ का प्रचार अधिक भ्रमात्मक ही होगा। आचार्य शंकर से रचित मठाम्नाय ही मठ विषयों का प्रमाण पुस्तक है। पटना एवं कलकता हाईकोर्ट के मठविषयक मुकद्दमे में मठाम्नाय को ही प्रमाण माना गया है और दृढ प्रमाणों के आधार पर यह कहा गया है कि इस पुस्तक के रचयिता आचार्य शङ्कर हैं और यह आठवीं शताब्दी की पुस्तक है। कुम्भकोण मठ इस सर्वसम्मत प्रामाणिक मठाम्नाय को स्वीकार नहीं करते। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार आपके मठाधीशों द्वारा रचित चिद्विलास एवं व्यासाचलीय शङ्कर विजयों में भी कांची में आम्नाय मठ स्थापना का उल्लेख भी नहीं है।

श्री रामानुजाचार्य कांची वासी थे और वेदान्ताध्ययन श्री यादवप्रकाश के पास किया था पर आप इससे सन्तुष्ट न हुए। यदि कांची में आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा का गुरु मठ होता जैसा कि कुम्भकोण मठ का कथन है तो श्री रामानुजाचार्य अवश्य अद्वैत वाद सिद्धान्तों को समझने व उस वाद का मर्म जानने अवश्य गये होते। इसी प्रकार यदि मठाधीश होते तो श्री यादवप्रकाश भी कांची मठाधीश से मिले होते। जब श्री रामानुजाचार्य दिग्विजय यात्रा में चले तो क्यों कांची के शङ्कराचार्य से आपने वाद विवाद नहीं किया था? आप कांची छोड अन्य स्थलों में वादविवाद किया था। यदि अद्वैत मठ होता तो अवश्य श्री रामानुजाचार्य ने आपसे भेंट की होती।

कुम्भकोण मठ वाले कांची में मठ होने का प्रमाण में निन्दनीय द्वेष भरे भावों की एक पंक्ति जो वेदान्त देशिक से रचित 'गीता तात्पर्य चन्द्रिका' में है उसे उद्धृत कर प्रचार करते हैं कि यह पक्ति कांची मठ का ही संकेत करता है। गीता तात्पर्य चन्द्रिका में यों उल्लेख है—'कुमति मठपति परम्परायाः शिष्यान्नकुक्षिम्भरेः शिष्याभावे प्रायोपवेशनं प्रसज्येतेति भावः।' एक विशिष्ठाद्वैती के मुख से यह निन्दनीय गाली दी गई है। कुम्भकोण मठ की गुरु वंशावली से प्रतीत होता है कि श्री वियातीर्थ (श्री विद्यारण्य के गुरु) मठाधीश थे और यह गाली श्री विद्यातीर्थ को लागू होना असम्भव है। अन्यत्र उपलब्ध प्रमाणों पर कहा जा सकता है कि आप का सन्मान व ख्याती उन दिनों में बहुत चढा बढा था और ऐसे महान् पर वेदान्त देशिक द्वारा अवांछनीय शब्दों से वर्णन करना बिलकुल असम्भव है। यथार्थ तो यह है कि यह उद्धृत पक्ति न अद्वैत मठ या न कोई मठ जो कांची में या समीप था उसका निर्देश करता है। कुम्भकोण मठ अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये आचार्य शङ्कर के नाम पर धब्बा लगाने के लिये भी तैय्यार हैं।

आन्ध्रपूर्ण उर्फ यडक नम्बी एक वैष्णव विद्वान थे। आपने 'सुकृत दीपिका' नामक ग्रन्थ रचा है। इसमें निम्न पक्तियां पाई जाती हैं :—'रामानुजाचार्य कृतम् भाष्यं निर्जरसंम्मतं कर्तुं तत् श्रृङ्गशैलेन्द्रे शङ्कराचार्य निर्मित पीठे वाणीमये विद्वत्संघमध्येन्यचित् क्षिपत्। वहन्ती शारदा भाष्यं रामानुज कृतं मुदा–अहो रामानुजाचार्य त्वमर्हसी यतीश्वरा।' इन पक्तियो के अर्थ का विश्वास हो या न हो, सारी दुनिया इस विषय को विश्वसनीय न समझती हो और हम सबों को यह उक्त विषय मान्य न हो, पर कुछ लोगों के लिये यह एक आदरणीय पुस्तक एवं विश्वसनीय विषय है। यदि कांची में शङ्कराचार्य का साक्षात् अविच्छिन्न गुरु परम्परा मठ होता तो क्यों श्रृङ्गेरी का उल्लेख है? इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि कांची में मठ नहीं था। ऐसे अनेक शंकायें और दृढ प्रमाण यहां दिया जा सकता है

जिससे सिद्ध होता है कि कांची में आम्नाय मठ न था पर यह विषय इस द्वितीय खण्ड के प्रथम से छः अध्यायों में जगह जगह दिये गये हैं और यहां पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

2. शिवरहस्य में उल्लेख है कि काशी में परमेश्वर स्वयं विश्वेश्वर लिङ्ग से आविर्भाव होकर आचार्य शङ्कर को पांच लिङ्ग दिया था—'एतत् प्रतिगृहाण त्वं पञ्चलिङ्गं सुपूजय।' और इस पांच लिङ्ग को आचार्य शङ्कर ने चार आम्नाय मठों में पूजा सेवादि के लिये देकर पांचवां लिङ्ग को चिदम्बर क्षेत्र में प्रतिष्ठा कर दी थी। शिवरहस्य में उल्लेख है 'यूयञ्चतुर्दिक्षु मठेषु लिङ्गैस्साकं वसन्त्वित्युपदिश्य हर्षात्' अर्थात् चार आम्नाय मठों में चार लिङ्ग का बंटवारा हुआ था। इस शिवरहस्य के आधार पर कुम्भकोण मठ पंचलिङ्ग की कथा प्रचार करते हैं यद्यपि इन पांच लिङ्गों का बंटवारा विवरण भिन्न हैं। शिवरहस्य नवमांश षोडषोध्याय का भिन्न पाठान्तर मिलते हैं। इसे ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत, स्कान्दपुराणान्तर्गत, शैवउपपुराणान्तर्गत, इतिहास ग्रंथ, स्वतंत्र ग्रंथ, द्वैत (मत प्रक्रिया) ग्रंथ, आदि होने का भी भिन्न भिन्न अभिप्राय प्रचार किये गये हैं। शिवरहस्य 18 पुराणों में एक नहीं है पर इसे आर्ष मानते हैं चूंकि कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीजैगीश ऋषी ने इसे रचा था। कुम्भकोण मठाधीष के 1932 ई० भाषण द्वारा प्रतीत होता है कि यह शिवरहस्य इतिहास है एवं मतप्रक्रिया द्वैत ग्रंथ है। इसमें अर्वाचीन काल के श्रीहरदत्ताचार्य एवं श्रीअप्पय दिक्षित का भी उल्लेख है। पाठकगण इस ग्रंथ पर विमर्श प्रथमाध्याय में पायेंगे। इसी शिवरहस्य के आधार पर कुम्भकोण मठ का प्रचार भी है कि आचार्य शङ्कर स्वशरीर एवं सुरेश्वराचार्य सहित कैलास जाकर वहां परमेश्वर महादेव की स्तुति करके 'पांच लिङ्ग' एवं 'सौन्दर्यलहरी' (कुछ भाग) प्राप्त कर भूलोक को लौट आये। एक प्रचार पुस्तक में कहा गया है कि आचार्य शङ्कर कैलास से 'शिवरहस्य' भी लाये थे। इस कल्पित कथा के आधार पर आचार्य शङ्कर नामावली में 'कैलासयात्रा संप्राप्त चन्द्रमौलिप्रपूजकः' एक नामावली भी जोड ली है। पर शिवरहस्य कहता है कि परमेश्वर ने काशी में लिङ्ग दिया था। इन भिन्न कथनों में कौनसा सत्य है ? इस नामावली के 'चन्द्रमौलि' को कुम्भकोण मठ ने पांच चन्द्रमौलीश्वर बना डाली है। शिवरहस्य के निम्न दिये श्लोक के आधार पर पांच लिङ्गों का नाम—योग, भोग, वर, मुक्ति, मोक्ष भी कहा जाता है—'तद्योगभोगवरमुक्ति सुमोक्षयोग लिङ्गार्चनाप्राप्तजयः स्वकाश्रम्। तान्वै विजित्य तरसाऽक्षत शास्त्रजालैः मिश्रान् स काञ्च्यामथ सिद्धिमाप॥' इस श्लोक का पाठान्तर भी हैं, यथा—'ततो नैजमवाप लोकम,' 'ततोलोकमवापशैवम,' 'सकाञ्च्यामथ सिद्धिमवापशैवम्'। कुम्भकोण मठ से प्रकाशित शिवरहस्य में लगभग 20 श्लोक मूल से उडा दिया गया है। अन्यत्र उपलब्ध प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में एवं कुछ मुद्रित प्रतियों में यह 20 श्लोक पाया जाता है। उक्त शिवरहस्य के श्लोक में दो बार 'योग' पद का उल्लेख है और इसका क्या तात्पर्य है ? प्रथम कहे हुए पांच लिङ्ग क्या योग लिङ्ग हैं ? अथवा क्या योग लिङ्ग की पूजा सेवा से ये पांच (योग, भोग, वर, मुक्ति व मोक्ष) फल प्राप्त किया जा सकता है ? मुक्ति लिङ्ग एवं मोक्ष लिङ्ग में क्या भेद हैं ? आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी पांच लिङ्ग का उल्लेख नहीं है। पर कुम्भकोण मठ की अनुमति से अर्वाचीन काल में प्रकाशित एक परिष्कृत्य आ. शं. वि. में इन लिङ्गों का नाम व कथा भिन्न जगहों में जोड ली गयी है। पर कलकत्ता मुद्रित आ. शं. वि. में एवं प्राचीन प्रति जो मूल प्रति का नकल है और जो आक्सफोर्ड में अब उपलब्ध है उसमें पांच लिङ्ग का नामों निशान नहीं है। 1828 ई० में प्रो. विल्सन से निर्देषित आ. शं. वि. में भी यह पांच लिङ्ग की कथा कही नहीं गयी है। कोई भी अब प्राप्त होने वाले शङ्करविजय पुस्तकों में पांच लिङ्ग की कथा उल्लेख नहीं है। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित मार्कन्डेय संहिता जो 18 पुराणान्तर्गत भी नहीं है या न पुस्तक उपलब्ध होती है या न श्रेष्ठों से ग्राह्य है और इसमें कहेजानेवाले विषय अन्य प्रामाणिक ग्राह्य पुस्तकों में दिये विवरणों के विरुद्ध हैं, वैसे प्रमाणाभास पुस्तक के आधार पर कुम्भकोण मठ पांच

लिङ्ग की कथा सुनाते हुए प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में योग लिङ्ग की प्रतिष्ठा की थी। ('योग लिङ्ग मनुत्तमम् प्रतिष्ठाप्य')। इसी प्रकार श्रीहर्ष रचित नैषध काव्य जो नल दमयन्ती का चरित्र वर्णन है उसमें 'यागेश्वर' पद जो कांची का मूलदेव का वर्णन है उस पद को बदलकर 'योगेश्वर' पद होने का प्रचार करते हुए लिखते हैं कि यह लिङ्ग आचार्य शङ्कर द्वारा लाया हुआ लिङ्ग का ही संकेत करता है। उक्त सब पुस्तकों पर विमर्श पाठकगण प्रथमाध्याय में पायेंगे और कृपया इसे पुनः पढें तो मालूम होगा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार कहां तक सत्य है। इन सब प्रमाणाभास के आधार पर कुम्भकोण मठ कहते हैं कि कांची में योगेश्वर लिङ्ग होने से मठ होने का निश्चित होता है। स्कन्दपुराण में योगेश्वर लिङ्ग का वर्णन प्रभास क्षेत्र में किया है। त्रिस्थलीसेतु में कहा गया है कि काशी विश्वनाथ ही योगेश्वर हैं। नैपाल इतिहास व स्थलपुराण में कहा गया है कि नैपाल में योग लिङ्ग है।

यदि पांच लिङ्ग की कथा मान भी लें तो इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि आम्नाय मठ की स्थापना भी हुई थी। आम्नाय मठ की पद्धति या नियम या संप्रदाय या अनुशासन योग लिङ्ग पर निर्भर नहीं करता है। आचार्य शंकर ने जहां कहीं भी मन्दिर निर्माण कराया था या देव देवियों की प्रतिष्ठा की थी या देवी की उग्रता शान्त कर श्री चक्र की जीर्णोद्धार की थी, क्या ये सब आम्नाय मठ हैं? कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि उक्त पांच लिङ्ग में से केदार व नीलकण्ठ में दो लिङ्ग, चिदम्बर में एक लिङ्ग और कांची व श्रृंगेरी में एक एक लिङ्ग की प्रतिष्ठा की गयी थी। कुम्भकोण मठ का कथन जो है कि लिंग होने से मठ होना आवश्यक है सो कथन लिंग बंटवारा से पुष्टी नहीं होती। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार चिदम्बर में एक मठ एवं केदार व नीलकण्ठ में दो मठ होना था पर वैसा तो दीखता नहीं है। क्या कांची का योगलिंग ही मठ में होने की योग्यता रखती है? क्या अन्य तीन वर, मुक्ति व मोक्ष लिंग मठ में होने की योग्यता नहीं रखती? इसी प्रकार पश्चिमाम्नाय द्वारका व पूर्वाम्नाय गोवर्धन में मठ होते हुए भी लिंग प्रतिष्ठा का उल्लेख नहीं है। क्या आचार्य शंकर ने अपने से प्रतिष्ठित तीन आम्नाय मठों में (पूर्व, पश्चिम, उत्तर) लिंग का बंटवारा नहीं किया था? इससे प्रतीत होता है कि लिंग स्थापना से ही मठ स्थापना होना आवश्यक नहीं है। द्वारका एवं गोवर्धन मठाधीशों से श्री चन्द्रमौलीश्वर लिंग जो आचार्य शङ्कर काल से परम्परागत पूजित होता आ रहा है और जिस मूर्ति का दर्शन आज भी किया जा सकता है सो कुम्भकोण मठ के कथनानुसार ये दोनों उक्त चन्द्रमौलीश्वर पांच लिङ्गों में गिन्ती की नहीं जाती। अतएव यह दुष्प्रचार कि इन दोनों आम्नाय मठों को लिंग प्राप्त न हुए थे सो प्रचार मिथ्या है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि योग लिंग कांची में प्रतिष्ठा की गयी थी पर अब वह कुम्भकोणम् आगया है। आगम शास्त्रानुसार प्रतिष्ठित लिंग को स्थान भ्रष्ठ किया नहीं जा सकता है और स्थान भ्रष्ठ लिंग पूजार्ह नहीं होता। पदों का यथार्थ अर्थ न कर के कल्पित श्लोकों को जोड कर प्रमाणाभास पुस्तकों का प्रचार करने से अनभिज्ञ पामर कुम्भकोण मठ के फंदे में पड सकते हैं। कांची का कल्पित 'योगेश्वर' जो आचार्य शङ्कर ने कैलासयात्रा करके प्राप्त किया था एवं नैषध में वर्णित 'यागेश्वर' इन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्य युग के नल चरित्र में कांची का वर्णन एवं सातवीं/आठवीं शताब्दी के आचार्य शङ्कर का दिया हुआ योग लिंग से वही सम्बन्ध है जो महाभारत युद्ध के श्री कृष्ण जी का सम्बन्ध अर्वाचीन काल के महात्मा गांधी जी के अहिंसावाद हथियार द्वारा आङ्ग्लों से लडते समय देखने की कथा से है। यदि पांच लिंग की कथा को मान लें तो सब लिंग बराबर ही हैं पर कुम्भकोण मठ अपने कांची के योग लिंग को 'सर्वोत्तम व सर्वोत्कृष्ट' कहते हैं। यह कैसे हो सकता है? वह भी अद्वैतमत के मठाधीश एवं आचार्य शङ्कर के कहेजानेवाले अविच्छिन्न परम्परा को ऐसा कहना उचित है? पामरलोगों को अपने प्रचार के जाल में फंसा लेने की दृष्टी से ही यह सब भ्रामक प्रचार किया जा रहा है। माधवीय (व्यासाचलीय) चिद्विलासीय, सदानन्दीय, गोविन्दनाथ केरळीय, आनन्दगिरीय, आदि ग्रन्थो में पांच लिंग की कथा पायी नहीं जाती

और कहीं भी यह कहा नहीं है कि कांची में लिंग स्थापना की गयी थी। शिवरहस्य यह नहीं कहता कि आचार्य शङ्कर ने कांची में लिंग स्थापना की थी। कुम्भकोण मठ के पतञ्जलिचरित्र पुस्तक में भी लिङ्ग कथा दी नहीं गयी है। शङ्कराभ्युदय भी कांची में लिंग स्थापना की कथा सुनाती नहीं है।

3. कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का निजाश्रम कांची में आचार्य शङ्कर ने निजमठ की स्थापना करके इस मठ पर अधिष्ठित हुए और यह मठ 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' मुखिया मठ है। शिवरहस्य में स्पष्ट उल्लेख है कि चार दिशा के चार पीठ व मठ हैं और इन चार मठों में चार शिष्य बिठाये गये और आप मठाधीषों को लिङ्ग के साथ संचार करने को कहा है (चतुर्थ खण्ड में प्रकाशित शिवरहस्य देखें)। शिवरहस्य नवमांश षोडषोध्याय का प्राचीन प्रति लन्डन नगर में है जिसका एक प्रति गोवर्द्धन मठाधीष जगद्गुरु श्रीभारतीकृष्ण तीर्थजी महराज ने मुझे काशी में दिया था। इसमें 60 श्लोक हैं। चिद्विलास शङ्करविजय विलास, माणिक्यविजय में दिया हुआ श्रीशङ्कर प्रादुर्भाव भाग, गुरुपरम्परा चरित्र (बम्बई मुद्रित), यतिधर्मनिर्णय, मठाम्नायोपनिषद, सदानन्द कृत शङ्कर दिग्विजयसार, आदि प्रामाणिक ग्रंथ एवं अनेक अर्वाचीन काल में प्रकाशित पुस्तकों में चार मठ का ही उल्लेख है। माधवीय शङ्करविजय में मठ स्थापना का विवरण दिया नहीं गया है पर माधवीय के टीककार ने अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर मठ का संकेत किया है। माधवीय मूल श्लोक जो कांची का वर्णन करता है उसकी टीका में टीकाकार ने अन्य प्राचीन ग्रंथों में से श्लोक उद्धृत कर कांची वृत्तान्त विवरण दिया है पर वहां भी यह कहा नहीं है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी। कहेजानेवाले व्यासाचलीय में भी कांची का उल्लेख नहीं है। माधवीय के टीकाकार ने श्रृङ्गेरी का प्रस्ताव करते हुए लिखा है—'अत्र प्राचः। मठं कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निजशिष्यं चकार। यस्त्वद्वैत मतेस्थित्वा भारतीपीठ निन्दकः। स याति नरकं घोरं यावदाभूत संप्लवं। कंचिच्छिष्यं सुरेश्वराख्यं पीठाध्यक्षमकरोदिति।' टीकाकार ने अपनी व्याख्या में प्राचीन बृहच्छङ्करविजय एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर टीका लिखी है। आनन्दगिरि शङ्करविजय मूल प्रति में उल्लेख है—'ततः परं सरसवाणीं मन्त्रबद्धां कृत्वा गगनमार्गादेव श्रृङ्गपुर समीपे तुङ्गभद्रातीरे चक्रं निर्माय तदग्रे सरसवाणीं निधाय एवं आकल्पं स्थिरा भव मठाश्रमे इति आज्ञाप्य निजमठं कृत्वा तत्रविद्यापीठ निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निजशिष्यं चकार।' 'तत्र परमगुरुः द्वादशाब्दं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैत विद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा ... ...।' 'निजशिष्यपरम्परां आकल्पं श्रृङ्गगिरि स्थानस्थां कृत्वा सकलशिष्येभ्यो मोक्षमार्गोपदेशं कृत्वा ... ...।' आनन्दगीरि शङ्करविजय जो हमलोगों का प्रधान प्रामाण्य ग्रंथ नहीं है और इस पुस्तक के कुछ विषय अग्राह्य भी है, वह पुस्तक कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रमाण ग्रंथ है। इसमें भी श्रृङ्गेरी को 'मठाश्रमे,' 'निजमठं,' 'निजशिष्यपरम्परां,' 'द्वादशाब्दं स्थित्वा' आदि कहा है। चिद्विलास में आचार्य शङ्कर का श्रृंगेरी में वास 14 वर्ष का कहा है। ऐसा प्रिय स्थल श्रृंगेरी ही निजमठ व स्वाश्रम होने का योग्य है न कि कांची स्थल। आनन्दगिरि शङ्करविजय का एक परिष्कृत्य प्रति अर्वाचीन काल में कुम्भकोण मठ की अनुमति से मुद्रित हुआ है जिसमें श्रृंगेरी पद को बदलकर कामकोटि मठ का नाम उपयोग किया गया है। पर मूल ग्रंथ की अन्य पंक्तियां सब इस परिष्कृत्य संस्करण में एक ही है। पाठकगण कृपया प्रथमाध्याय में 'आनन्दगिरि शङ्करविजय' पर विमर्श पायेंगे। मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में कांची में मठ की स्थापना उल्लेख नहीं है। सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रंथ केवल चार आम्नाय मठ का निश्चित रूप से कहता है।

आचार्य शङ्कर ने कांची की गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता को शान्त कर, वहां के श्रीचक्र की अशुद्धता को निवारण कर, मन्दिर व नगर निर्माण का प्रबन्ध कर, वहां के तान्त्रिक पुजारियों को भगाकर वैदिक पूजाविधि

का व्यवस्था कर, ब्राह्मणों को इस काम के लिये नियोजन कर, वहां से आगे बढे। माधवीय मूल ग्रन्थ एवं टीकाकार से कहा हुआ प्राचीन बृहच्छंकरविजय तथा अन्य सब प्रामाणिक ग्रन्थ उक्त विषय का समर्थन करता है। प्राचीन शङ्कर विजय में वरदराज मन्दिर का नवीकरण, विष्णुकांची नगर का निर्माण एवं शिवकांची नगर व मन्दिर का निर्माण कराने का भी उल्लेख है। कहीं भी कांची में आम्नाय मठ होने का उल्लेख नहीं है। डिण्डिम व्याख्या भी कांची में मठ का उल्लेख नहीं करता। मूल आनन्दगिरि भी कांची वृत्तान्त देते समय 65 प्रकरण में कहा है कि जो मुक्ति चाहते हैं वे श्रीचक्र की पूजा करें और श्रीचक्र की दर्शन मात्र से मोक्ष प्राप्त होता है। आ. शं. वि. का 64 व 65 प्रकरणों में श्रीचक्र प्रतिष्ठा एवं कामाक्षी का वर्णन है। शिवरहस्य में कांची में 'तपस्सिद्धि' का ही उल्लेख है न कि मठ प्रतिष्ठा की। गुरुपरम्परा चरित्र में कांची वृत्तान्त में कहा है कि आचार्य शंकर ने विद्वानों से विवादकर जय प्राप्त किया था। चिद्विलास में कांची में सर्वज्ञपीठारोहण का उल्लेख है। पर यहां कांची में जो विद्वान शास्त्रार्थ करने आये थे और जिनको आचार्य शङ्कर ने वादविवाद में हराया था, इस घटना का वर्णन करते समय चिद्विलास कहते हैं कि पूर्व में सर्वज्ञपीठ के दिग्गज विद्वानों के साथ जो वादविवाद हुआ था उसकी तुलना या समानता अब इस कांची नगर के विद्वानों के साथ की जा सकती है। सर्वज्ञपीठ का उपलक्षण न्याय ही कांची में जमता है। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। पाठकगण इस खण्ड के प्रथम व द्वितीय अध्यायों को पढें तो स्पष्ठ मालूम होगा कि कांची में मठ की स्थापना नहीं हुई थी। जब कांची में आम्नाय मठ की स्थापना ही नहीं हुई थी तब मठ में अधिष्ठित हुए कहना एक कल्पना ही है।

पाठकगण यदि इस खण्ड के तृतीय व चतुर्थ अध्याय पढें तो मालूम होगा कि कांची कुम्भकोणमठ का कहेजाने वाला गुरु वंशावली परम्परा सूची 17 वीं शताब्दी अन्त तक की एक कल्पित स्वरचित आचार्य सूची है और आपका परम्परा आचार्य शंकर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा कहना असत्य है। इस खण्ड के अध्याय पांच में ताम्रशासन पर विमर्श पायेंगे और यहां भी यह सिद्ध किया गया है कि आपका प्रमाण प्रमाणाभास हैं और वंशावली सूची भी कल्पित है। कांची में आम्नाय मठ जब था ही नहीं तो यह कहना कि कांची मठ भारतवर्ष का शिरोमणि मुखिया मठ एवं अन्य चार आम्नाय मठ शिष्य मठ हैं सो सब उन्मत्त प्रलाप हैं। कांची मठ की स्वकल्पित मठाम्नाय पद्धति सब धर्मशास्त्रग्रन्थ एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थ के विरुद्ध हैं। द्वितीय अध्याय में इस विषय पर आलोचना की गयी है। इस पुस्तक के तृतीय खण्ड में एक सौ से भी अधिक विचार पत्र, आमोदन पत्र, सम्मतिपत्र, व्यवस्थापत्र एवं पूर्वीय व पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय दिया गया है जो सब केवल चार आम्नाय मठ का ही उल्लेख करता है।

कांची कुम्भकोण मठ की भावना है कि यदि आप आम्नाय पद्धति मान लें तो आपका मठ इन चार आम्नाय मठ के अन्तर्गत हो जाता है। पर यही एक मार्ग है जिससे अपने को आचार्य शङ्कर के साथ नाता जोड सकते हैं क्योंकि आचार्य शङ्कर ने अपनी परम्परा इन चार आम्नाय मठों के मठाधीषों द्वारा ही प्रारम्भ की थी। आचार्य शङ्कर के अनेक गृहस्थ व परिव्राजक शिष्य होते हुए भी इस शिष्य वर्ग में से आपने केवल चार मुख्य शिष्यों को चुनकर अपनी परम्परा प्रारम्भ की थी। परन्तु कुम्भकोण मठ इस स्थापित नाता को छोडकर अपनी नाता आचार्य शङ्कर के साथ ही जोडने लगे। कुम्भकोण मठ अपने को आचार्य शङ्कर का साक्षात् परम्परा कहते हुए प्रचार करते हैं कि चारों आम्नाय मठाधीष आपके शिष्य वर्ग के हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय व महानुशासन में आम्नाय मठों की धर्मराज्यसीमा का उल्लेख है जो सारे भारतवर्ष को चार भागों में विभाजित कर चार आम्नाय सीमा निश्चित किया गया है। इस सीमा में धर्मप्रचार व धर्मविधिविदायक कार्य व आचार्य शङ्कर के उद्देश्यों को अक्षुण्ण

रखने का कार्य की जिम्मेदारी व अधिकार इन चार आम्नाय मठाधीषों को ही दिया गया है। अर्थात् कुम्भकोण मठ का कोई अलग धर्मराज्यसीमा नहीं है और उस उस सीमा के शिष्य वर्ग उस उस आम्नाय मठ के शिष्य ही हैं। इससे सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का कोई अधिकार भी इन सीमाओं में नहीं है। कुम्भकोण मठ अपनी कल्पना की पुष्टी के लिये एक नवीन आम्नाय संप्रदाय एवं गुरु परम्परा सूची तैय्यार कर पश्चात् एकङ्गि स्वरचित कल्पित पुस्तकों का भी प्रणयन किया। यहां ध्यान देने का विषय है कि अन्य चार आम्नाय मठों के आचार्य कांची कुम्भकोण मठ को गुरुमठ होने का या आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा होने का विषय स्वीकार नहीं करते। पाठकगण वर्तमान तीन आम्नाय मठों के आचार्यों का अभिप्राय तीसरे खण्ड में पायेंगे। जब चार आम्नाय मठाधीष जिन्हें कुम्भकोण मठ अपना शिष्य मठ होने का प्रचार करते हैं उस विषय को स्वीकार नहीं करते तो किस प्रकार कहा जाय कि कांची मठ गुरुमठ है। यह परिस्थिति ऐसा है कि मानों एक ब्रह्मचारी ने निश्चय कर लिया कि एक कन्या उसकी पत्नी है पर न कन्या या न उसके वंशज इसे स्वीकार करने तैय्यार थे और न इस ब्रह्मचारी का विवाह उस कन्या के साथ हुई थी, तब भी वह ब्रह्मचारी अपने को गृहस्थ कहते हुए प्रचार करने लगा था।

आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित केवल चार आम्नाय मठ हैं और इन चार मठों के अधीश ही 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। साधारण व्यक्ति से लेकर प्रकान्ड विद्वान तक इन मठाधीषों को इसी नाम से संबोधन करते हैं और यह रूडी सार्वजानिक है। प्रबला जनश्रुति जो परम्परागत प्राचीन काल से आया है वह भी चार मठ का ही कहता है। मठों की स्थापना आचार्य ने धर्मशास्त्र ग्रंथों के आधार पर ही किया है। कर्मज्ञानमयी पुण्यभूमि भारतवर्ष को यज्ञवेदि समान मानकर धर्मशास्त्र में कहे हुए यागानुशासन अनुसार चार आम्नाय में चार वेद का चार मठों की स्थापना की थी। इस चार मठों के लिये आम्नाय पद्धति व संप्रदाय बनाकर उससे उन मठों को बद्धकर 'अधिकार संपन्न' बनाया था। अतः इसके अनुसार केवल चार ही आम्नाय मठ हो सकते हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय ही प्रमाण ग्रंथ है।

काशी में 1935 ई० में कुम्भकोण मठ का कृपाभाजन एक विद्वान ने पत्रिका द्वारा प्रचार किया था कि अङ्कित नाम (योगपट्ट) दस हैं और मठ भी दस हैं और आचार्य शङ्कर इन योगपट्टों के प्रवर्तक थे, अतः केवल चार मठ होने का विषय भूल है। आगे आप कहते हैं कि जब मठ चार से भी अधिक हैं तो कांची मठ भी इन दस मठों में एक है। पर यह सर्वज्ञ विद्वान यह नहीं जानता है कि दस अङ्कितनाम अनादि काल से है और कालान्तर में अनेक मत मतान्तरों के झगडे में लुप्त हो गया था और आचार्य शङ्कर ने इन लुप्त अङ्कित नामों का पुनरुद्धार कर उसमें नवीन जीवन देकर पुनः प्रचलित किया था न कि आचार्य शंकर ने स्वयं इन नामों का अविष्कार कर नवीन प्रतिष्ठा किया था। दस नामों में कोई बडा या छोटा नहीं है। इन दस नामों के रहस्य का परिचय भी दिया गया है और इन सब पदवियों की कल्पना भौतिक नहीं है पर आध्यात्मिक है। जिन्हें इसे धारण करने की योग्यता हो उन्हीं लोगों के लिये प्रयोग किया जाता है। इन अङ्कितनामों का निज वास्तविक रूप आरम्भिक काल में ऐसा ही था पर अब अधिक मात्रा में देखा जाता है कि जो कोई व्यक्ति उस उस संप्रदाय के अन्तर्गत प्रवेश करता है वह उसी नाम से पुकारा जाता है और गुणदोष का विचार कोई नहीं करता। ये दस नाम सर्वत्र व्यापक तथा बहुलीभूत है। इन नामों के रहस्य का परिचय द्वितीय अध्याय में दिया गया है। इन नामों का पुनः प्रचार होने का उद्देश्य महान् व उच्च है। अङ्कितनाम न कोई अलग पद्धति या संप्रदाय या नियम या विशेष आम्नाय है ताकि इन दस नामों का दस मठ स्थापना की जाय। सर्वसाधारण सब परिव्राजकों को यह अङ्कितनाम लागू होता है और इसकी कल्पना आध्यात्मिक

है। मठाम्नाय या मठाम्नायोपनिषद में इन दस नामों का विभाग किया गया है और इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि दसनामी अङ्कितनाम कोई स्वतन्त्र विशेष संप्रदाय नहीं है जिसके आधार पर मठ की स्थापना हो। यदि मान लें कि दस मठ थे तो प्रश्न उठना है कि क्या दस आम्नाय पद्धति, संप्रदाय, नियम, वेद, महावाक्य, ब्रह्मचारी आदि भी हैं? अतः मठ स्थापना आम्नाय के आधार पर ही किया गया है न कि अङ्कित नामों पर। मठ विषयक प्रामाणिक ग्राह्य ग्रन्थ 'मठाम्नाय या मठाम्नायोपनिषद' है और कलकत्ता व पटना हाई कोर्ट में मठविषयक मुकद्दमे में 'मठाम्नाय' को ही प्रमाण माना गया है और इसे आठवीं शताब्दी का रचना काल कहा गया है। यदि कुम्भकोण मठ आम्नाय पद्धति को नहीं मानते तो क्यों एक नवीन कांची मठ का आम्नाय पद्धति रचना कर प्रकाश किया है? इसी कल्पित मठाम्नाय सेतु में उल्लेख है कि आपके मठाधीश जगद्गुरु हैं और अन्य चार आम्नाय मठ के अधीश केवल श्रीगुरु हैं और ये चार आम्नाय मठ आपके परीचालन में हैं। कांची मठाधीश जहां कहीं भी भ्रमण कर सकते हैं पर अन्य मठाधीश आपकी आज्ञा बिना भ्रमण नहीं कर सकते। कुम्भकोण मठ के वर्तमान मठाधीश काशी में 1935 ई० में कहा था कि आप अन्य मठों पर अपना मठ का श्रेष्ठत्व का दावा नहीं करते। यह विषय इलहावाद के 'लीडर' पत्रिका में ताः 18-1-1935 में प्रकाशित हुआ है। पर कुम्भकोण मठ का मठाम्नाय आपके कथन के विरुद्ध ही अपना श्रेष्ठत्व का दावा करती है। क्या वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश से अपने मठ के मठाम्नाय जिसे आचार्य शंकर के साक्षात् शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य रचित ग्रन्थ में पाने की कथा भी प्रचार किया जाता है उसे अब मानते नहीं हैं? क्या यह अप्रामाणिक पुस्तक है? कुम्भकोण मठ के मठाम्नायानुसार यदि आप अपने मठ का श्रेष्ठत्व को नहीं मानते तो क्या कहेजानेवाले श्री चित्सुखाचार्य कृत मठाम्नाय पुस्तक कल्पित है? क्या आचार्य शङ्कर के शिष्य श्री चित्सुखाचार्य ने जो कुछ लिखी है (कुम्भकोण मठ के कथनानुसार) सो सब असत्य है? यदि वर्तमान मठाधीश का कथन सत्य है तो कांची मठ का मठाम्नाय असत्य हो जाता है या यदि मठाम्नाय सत्य है तो वर्तमान मठाधीश का कथन असत्य है। समय समय पर भिन्न कल्पित प्रचार करने से ही यह परिस्थिति होती है। इसी प्रकार वर्तमान मठाधीश ने काशी में 1934 ई० में कहा था कि 'ॐतत्सत्' कांची मठ का महावाक्य नहीं है ('लीडर' पत्रिका 21—10—1934)। आगे आपने कहा कि जो पुस्तक में 'ॐतत्सत्' महावाक्य कांचीमठ के होने का उल्लेख है वह पुस्तक मठ की अनुमति से प्रकाशित नहीं है। कांची मठ का प्रधान प्रमाण पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' पर कुम्भकोण मठ के कहेजानेवाले श्री आत्मबोध ने एक व्याख्या 'सुषमा' नामक लिखी है। कांची मठ का प्रमाण पुस्तक 'सुषमा' में 'ॐतत्सत्' को कांची मठ का महावाक्य कहा है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के कथन पर प्रश्न उठता है कि क्या श्री आत्मबोध द्वारा रचित 'सुषमा' प्रमाण पुस्तक नहीं है या क्या कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोध ने मठ की अनुमति बिना ही यह पुस्तक लिखी है। ऐसे अन्य असत्य कथनों का उदाहरण दिया जा सकता है। कल्पित विषयों की पुष्टी अपनी कल्पना जगत के इन्द्रजालविद्या द्वारा स्वेच्छावाद प्रमाण से कर सकते हैं न कि श्रेष्ठों से ग्राह्य प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा।

4. काश्मीर देश की प्रारम्भिक कथा राजतरङ्गिनी में यों उल्लेख है—'पुरासतीसरः कल्पारम्भात्प्रभृतिभूरभूत। कुक्षौहिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णामन्वन्तराणिषट्॥ अथ वैवस्वतीयेस्मिन्प्राप्ते मन्वन्तरेसुरान्। द्रुहिणो पेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा॥ कश्यपेन तदन्तः स्थं घातयित्वा जलोद्भवम्। निर्ममे तत्सरो भूमौ काश्मीर इति मण्डलम्॥ उद्यद्वैतस्तनिःष्यन्द दण्डकुण्डात पत्रिगा। यत्सर्वनागाधीशेन नीलेन परिपाल्यते॥' (I—25/28) अन्यत्र एक जगह यह श्लोक पाया गया—'शारदामठमारभ्य कुंकुमाद्रितटान्तकः। तावत्काश्मीर देशः स्यात् पञ्चाशत्योजनात्मकः।' कश्मीर मन्डल में ऐसा कोई स्थल नहीं है जो पुण्य क्षेत्र या तीर्थ न हो—'चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूषिते। तिलांशोपिन यत्रास्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्वहिष्कृतः। (1—38) काश्मीर सरस्वती शारदा देश है—'देवी भेडगिरेः श्रृङ्गेगङ्गोद्भेदशुचौस्वयम्।

सरोन्तदृश्यते यत्र हंसरूपा सरस्वती ॥ नन्दिक्षेत्रे हरावास प्रासादे द्युचरार्पिताः। अद्यापि यत्र व्यज्यन्ते पूजाचन्दन विन्दवः ॥ आलोक्य शारदां देवीं यत्र संप्राप्यते क्षणात। तरङ्गिणी मधुमतिवाणी च कविसेविता ॥' (1—35/37) पुराकाल में काश्मीर विद्यास्थान भी था—'विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्कुमं सहिमं पयः। द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ॥' (1—42) वेद में कहा हुआ 'मरुदवृध' नदी कश्मीर में बहती है। ऐतरीय ब्राह्मण में कहा हुआ 'उत्तरकुरु' एवं 'देव क्षेत्र' ही कश्मीर है। 'ब्रह्मणोत्पत्तिमार्तान्ड' से प्रतीत होता है कि गौड ब्राह्मण सब पूर्व काल में काश्मीर से ही भारत वर्ष के अन्य भागों में जा वसे। विल्हण कहते हैं कि कश्मीर की नारी संस्कृत भाषा में बोलते थे। नवीं शताब्दी के कवि श्रीहर्ष कहते हैं कि चौदह विद्या का अध्ययन कश्मीर के लोग करते थे। स्टीन के कथनानुसार मुसलमानों की कुछ कब्रों पर संस्कृत भाषा का शिलाशासन भी पाया गया था। शैव सिद्धान्त, शैव वेदान्त, वीरशैव आदि मत का मूल स्थान काश्मीर ही कहा जाता है। नवीं शताब्दी में कश्मीर के श्रीवासुगुप्त से रचित स्पन्दकारिका के आधार पर ही बाद शैवमत का प्रचार हुआ। 'स्पन्दसर्वस्व' एक टीका है। शैवमत की एक और शाखा जिसे 'प्रत्यभिज्ञदर्शन' कहते हैं सो कश्मीर में ही जन्म लिया। रुद्रठ, लल्लठ, शंकुक, आनन्दवर्धन, भट्ट नायक, भट्ट थट्टा, भट्टेन्दुराजा, अभिनव गुप्त, कुन्तक, महिम भट्ट, क्षेमेन्द्र, मम्मत, अल्लत, तिलक, रुय्यक, आदि कुछ प्रसिद्ध काव्य पन्डित कश्मीर में जन्म लिये थे। भमह का अलङ्कार, वामन की रीती, आनन्दवर्धन की ध्वनि, कुन्तल की वक्रोति, महिम भट्ट का अनुमान, क्षेमेन्द्र का औचित्य आदि काव्य सिद्धान्त सब कश्मीर में ही जन्म लिया। कश्मीर का नीलमत पुराण सातवीं शताब्दी का प्रसिद्ध ग्रंथ है। कल्हण का राजतङ्गिणी (1148—50 ई०) भी प्रसिद्ध इतिहास पुस्तक है। व्याकरण सूत्र का टीकाकार सातवीं शताब्दी में वामन एवं जयादित्य से रचित थे। वैय्याकरणी श्री क्षीरस्वामी कश्मीर के थे। चन्द्रगोमिन का चन्द्रव्याकरण कश्मीर का प्रसिद्ध ग्रंथ है।

काश्मीर आर्य जाति का लीला क्षेत्र था। पुराकाल से उत्तर दिशा वाक् के लिये प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से कश्मीर विद्या वैभव के लिये प्रसिद्ध था। यहां सरस्वती की विशेषता अत्यधिक है। इसलिये पुराकाल से इन प्रकान्ड विद्वानों द्वारा प्रसादलाभ करने व आशीर्वाद पाने व वादविवाद कर अपना मत, वाद या विचारों को स्थापित करने के लिये भारत के चारों दिशा के विद्वान कश्मीर जाते थे। भारत का इतिहास व पुराण इसकी पुष्टी करता है। कश्मीर का उपनाम सरस्वती या शारदा देश है। माता शारदा यहां की अधीष्ठात्री है। शारदा देश को छोडकर कविता व केसर के अंकुर अन्यत्र नहीं उगते, यह कथन सत्य है। आदिकाल का शारदा मन्दिर आज भी विद्यमान है यद्यपि यह पहाड जङ्गलों के बीच में स्थित है। राजतरङ्गिनी में इस मन्दिर का विवरण दिया है। इसका विवरण प्रथमखण्ड अध्याय 6 में पायेंगे। महाभारत में कश्मीर को एक तीर्थ क्षेत्र कहा है। आचार्य शङ्कर काल के पूर्व से ही कश्मीर में शारदा पीठ होने की श्रुति प्रमाण व ग्रंथ एवं कश्मीर स्थल से आये हुए प्रकान्ड विद्वानों के चरित्रों से सिद्ध होता है। श्रीसरस्वती रहस्योपनिषद में उल्लेख है—'नमस्ते शारदा देवी काश्मीर पुरवासिनी। त्वामहं प्रार्थयेनित्यं विद्यादानं च देहिमे।' प्रकान्ड कवि, विद्वान, इतिहास पुराणादि ग्रंथ कर्ता एवं अद्वितीय आर्ष व्यक्ति सब उत्तर देश में ही जन्म लिया था। दक्षिण में संस्कृत भाषा को 'उत्तर भाषा' कहा जाता है। श्रीनगर के पास गोपाद्री में ही सर्वज्ञपीठ होने का प्रमाण मिलते हैं। मुसल्मान राजाओं ने इस सर्वज्ञपीठ मन्दिर को 'तख्ती-इन-सुलिमान्' के नाम से पुकारते थे। एक समय दर्शन, साहित्य, तन्त्र व व्याकरण का यह क्रीडा स्थल था। इतिहास व पुराण द्वारा प्रतीत होता है कि कश्मीर प्रदेश के शारदा पीठ में प्रकान्ड विद्वानों, ऋषियों व मुनियों का आगमन बराबर था। इससे सिद्ध होता है कि कश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ था। कश्मीर इतिहास एवं अन्य ग्रंथों से प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर के समान दिग्गज सर्वज्ञ पन्डित कश्मीर में वास करते थे और ऐसे स्थल में ही सर्वज्ञपीठ होने का निश्चित होता है

और ऐसा स्थल ही सर्वज्ञपीठ होने की योगयता रखती है। वर्तमान पश्चिमाम्नाय जगद्गुरु शङ्कराचार्य द्वारका शारदा मठाधीश ने 20—4—1961 के शुभदिन श्रीशङ्करजयन्ती के शुभ अवसर पर, काश्मीर के शङ्कराचार्य पर्वत के उपरितन मन्दिर के निकट श्रीमच्छङ्कराचार्य की मूर्ति की प्रतिष्ठा की है। इस शुभ कार्य से कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आदि शङ्कराचार्यजी की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई।

प्रो॰ एच. एच. विल्सन्, Asiatic Researches, 1828/1832 ई॰ में लिखते हैं कि सर्वज्ञपीठ कश्मीर में था जो स्थल आज भी वहां दिखाया जाता है—' ……………… The events of his (Sankarā) last days are confirmed by local tradition and the pitha or throne of Sarasvati on which Sankara sat is still shown in Kashmir.' इससे सिद्ध हुआ कि कश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ था। राजतरङ्गिनी (V 341) में एक मन्दिर का उल्लेख है जो अब इसे 'शङ्कराचार्यपर्वत' ('Sankaracharya Hill') के नाम से पुकारा जाता है और यह नाम प्रसिद्ध है। General Cunnigham और General Cole दोनों का अभिप्राय है कि यह मन्दिर अति प्राचीन काल का है और सम्राट अशोक (220 क्रिस्त पूर्व) का पुत्र राजा जलुक के काल का यह मन्दिर है। Asiatic Researches, 1825 ई॰, में उल्लेख है—' .. ………According to the Mohammedan authorities, he (Gopaaditya) built a temple, or the mound near the capital of Kashmir, called the 'Takht-i-Suliman', it was destroyed with other places of Hindu worship by Sikandar, one of the first mohammedan kings of Kashmir and and who, on account of bigoted assiduity with which he demolished the vestiges of Hindu superstitions.' श्री वि. वि. अय्यर, साप्ताहिक पत्रिका 'The Sunday Standard' ताः 24—9—1961 के अङ्क में प्रकाशित एक लेख में लिखते हैं—'The Shankaracharya Temple, built by Jaloka, son of the great Buddhist Emperor Asoka about 220 B. C. stands on a bare, arid hillock 'Takht-i-Suleman,' which is more than 1000 feet in height. The shrine is approached by a long flight of steps.'

आचार्य शङ्कर ने 'प्रपञ्चसार' नामक एक ग्रन्थ लिखा है जिसकी टीका श्री पद्मपाद ने 'विवरण' नामक लिखा है जिसमें श्री पद्मपाद कहते हैं कि यह पुस्तक भगवान् शङ्कराचार्य ने रचना की है और आप किसी 'प्रपञ्चागम' नामक प्राचीन तन्त्र का सार इस ग्रन्थ मे दी है। इसी प्रकार अमरप्रकाश के शिष्य उत्तमबोधाचार्य ने प्रपञ्चसार-सम्बन्ध-दीपिका टीका में लिखी है कि 'प्रपञ्चागम' नामक प्राचीन ग्रन्थ का सार 'प्रपञ्चसार' है। प्रपञ्चसार विवरण की व्याख्या 'प्रयोग क्रमदीपिका' है। प्रपञ्चसार का मङ्गल श्लोक शारदा की स्तुति में है। उपर्युक्त दीपिका के रचयिता का कहना है कि 'आचार्य शङ्कर ने इस ग्रन्थ की रचना कश्मीर में रहते समय ही की थी। कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी शारदा हैं। अतः आचार्य ने शारदा की स्तुति ग्रन्थ के आरम्भ में किया है। यह प्रसिद्ध बात है कि आचार्य शङ्कर ने इस देवी के मन्दिर में सर्वज्ञपीठ पर अधिरोहण किया था अतएव इस ग्रन्थ का प्रारम्भिक श्लोक भगवती शारदा का ही है।' 'शारदा तिलक' के टीकाकार श्री राघवभट्ट, 'षट्चक्र-निरूपण' के टीकाकार श्री कालीचरण, आदि तन्त्रनिष्णात् विद्वानों की सम्मति भी उपर्युक्त 'प्रयोग क्रम दीपिका' के रचयिता के मत से बिलकुल मिलता जुलता है। उपर्युक्त प्रपञ्चसारविवरण एवं प्रयोगक्रमदीपिका दोनों एक साथ कलकत्ते से प्रकाशित है जिसमें कहा है 'काश्मीर मण्डले प्रसिद्धेयं देवता। तत्र निवसता आचार्येण अयं ग्रन्थः कृतः इति तदनुस्मरणौत्पत्तिः सकलागमाना-

मधिदेवतेयमिति ' (पृ० 382)। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर काश्मीर के अधिष्ठात्री भगवती शारदा का दर्शन कर, वहां के सर्वज्ञपीठपर आरोहण कर, इस पुस्तक की रचना भी समाप्ती कश्मीर मे ही की थी।

अब कुम्भकोण मठ का प्रचार हैं कि कांची के सर्वज्ञपीठ पर आचार्य शङ्कर ने सर्वज्ञपीठारोहण किया था। कांची एक पुण्यक्षेत्र है पर आचार्य शङ्कर के पूर्वकाल में या समकाल में दिग्गज सर्वज्ञ पन्डितों का कांची में होने का कोई प्रमाण नहीं है। विद्वान रहे होंगे पर प्रश्न है कि क्या ये सब विद्वान दिग्गज या सर्वज्ञ पन्डित थे जैसा उत्तर देश में पाया जाता था। शङ्कर दिग्विजय में कहा है कि ताम्रपर्णी तीर से कांची में आये हुए पन्डितों के साथ आचार्य शङ्कर ने विवाद किया था। सर्वज्ञपीठ होने का कुछ लक्षण भी प्रतीत होना चाहिये और कांची में ऐसे लक्षण प्रतीत नहीं होते। पुराकाल में काशी, दरभङ्गा, कामरूप, नवद्वीप, मायापुरी आदि कुछ स्थल थे और अब भी हैं जहां प्रकान्ड विद्वान रहा करते थे पर ऐसे स्थलों में सर्वज्ञपीठ नहीं था और न है। अर्थात् इन स्थलों में सर्वज्ञपीठ होने का लक्षण नहीं थे। काशी ऐसा जगत् विख्यात पुण्यस्थल व विद्या की क्रीडा क्षेत्र एवं जहां अतिप्राचीन काल से ऋषि, मुनि, मतप्रवर्तक, अवतार पुरुष, प्रकान्ड विद्वान सब आकर अपना अपना मत प्रचार कर मत की स्थापना के लिये प्रयत्न किये थे। क्या ऐसे स्थल में भी सर्वज्ञपीठ होने की कथा कही जाय? कांची में आचार्य शङ्कर ने वहां के विद्वानों से एवं अन्यस्थल से वहां आये हुए विद्वानों से विवाद अवश्य किया था जैसा कि आचार्य ने अन्य अनेक स्थलों में वहां के विद्वानों से विवाद किया था। ऐसे विवाद में जय प्राप्त करने मात्र से यह कहना कि आचार्य शङ्कर ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण की थी सो कथन भूल है।

दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ जिसे 'व्याख्यान सिंहासन पीठ' भी होने का प्रमाण से सिद्ध होता है, ऐसे शृङ्गेरी समीप कांची में सर्वज्ञपीठ होने का विषय असम्भव दीखता है। केवल यही कह सकते हैं कि कांची स्थल सर्वज्ञ पीठ सदृश स्थल था जहां शङ्कर ने विरोधियों को वाद में पराजित किया था। यहां उपलक्षण न्याय ठीक जमता है। 'सर्वज्ञपीठ' कहने मात्र से यह सिद्ध होता है कि ऐसा पीठ एक ही हो सकता है न कि एक से अधिक। दृढ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सर्वज्ञपीठ कश्मीर में था। अतः कांची में दूसरा सर्वज्ञपीठ होना असम्भव है। श्रीचिद्विलास ने अपने शङ्करविजयविलास में कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करने का उल्लेख किया है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि कांची में अलग एक और सर्वज्ञपीठ था। कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने के पश्चात् एवं वहां के दिग्गज विद्वानों से आचार्य शङ्कर को 'सर्वज्ञ' होने की घोषणा के पश्चात् द्वितीय बार दक्षिण में सर्वज्ञपीठारोहण करना असम्भव है चूंकि सर्वज्ञपीठ एक ही हो सकता है। इसलिये चिद्विलास का उल्लेख करने से यही प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर का कांची विजय कश्मीर के सर्वज्ञपीठारोहण सदृश था। डिण्डिम व्याख्या में भी टीकाकार ने कश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ होने का निश्चय किया है और यह विषय प्राचीन ग्रंथों के आधार पर लिखा है। माधवीय (व्यासाचलीय) व सदानन्दीय भी कश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ होने का उल्लेख करता है।

यदि मान भी लें कि कांची में सर्वज्ञपीठ था और आचार्य शङ्कर ने यहीं आरोहण किया था तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शङ्कर ने कांची में आम्नायानुसार मठ की स्थापना की थी। सब प्रामाणिक ग्रंथ कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने का उल्लेख करता है और कोई भी ग्रंथ यह नहीं कहता कि आचार्य शङ्कर जहां सर्वज्ञपीठारोहण किये थे वहां आपने एक आम्नाय मठ की स्थापना की थी। सर्वज्ञपीठारोहण करना और आम्नायानुसार मठ की स्थापना करना, यह दोनों कार्य भिन्न हैं और उद्देश्य एवं विधि भी भिन्न हैं। अतः कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करने मात्र से वहां आम्नाय मठ का होना आवश्यक नहीं है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ है और

इसके होते हुए आचार्य शङ्कर किस प्रकार व किन प्रमाणों के आधार पर दूसरी दक्षिणाम्नाय (कांची दक्षिणाम्नाय में है) का अलग पद्धति, संप्रदाय, वेद, महावाक्य, ब्रह्मचारी, धर्मराज्य सीमा, आदि का व्यवस्था कर सकते हैं जब दक्षिण की एक ही आम्नाय पद्धति है? एक ही आम्नाय में दो भिन्न पद्धतियां होना असम्भव है और यह कार्य मठाम्नाय के विरुद्ध ही होगा। चिद्विलास ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करने का उल्लेख किया है पर स्पष्ट कहा है कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार मठ की ही स्थापना की थी। कुम्भकोण मठ का प्रचार यदि सत्य या न्याययुक्त होता तो चिद्विलास ने क्यों कांची में मठ होने का विषय उल्लेख नहीं किया था? यदि कांची में मठ होता तो अवश्य चार मठ के बदले पांच मठ का उल्लेख करते।

आचार्य शङ्कर ने कहीं भी सर्वज्ञपीठ की प्रतिष्ठा नहीं की थी। पूर्वस्थित पीठ पर ही आरोहण किया था और विद्वानों ने आपको सर्वज्ञ होने का विषय स्वीकार किया था। कुम्भकोण मठ के कुछ प्रचार पुस्तकों में उल्लेख है कि आचार्य शंकर ने कांची में नवीन सर्वज्ञपीठ की प्रतिष्ठा कर उस पीठ पर स्वयं आरोहण किया था। यह कल्पित कथा आचार्य शङ्कर चरित्र में भाता नहीं है। क्या आचार्य शङ्कर अहंकारी पुरुष थे कि स्वयं सर्वज्ञपीठ की प्रतिष्ठाकर स्वयं उस पर आरोहण किया था? इस प्रचार से प्रतीत होता है कि अब कुम्भकोण मठ वाले मानते हैं कि कांची में पुराकाल से सर्वज्ञपीठ न था। समय समय पर भिन्न प्रचार करना तो कुम्भकोण मठ का स्वभाव है और ऐसे भ्रामक मिथ्या प्रचारों से अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। साधारण जन यह नहीं जानते कि साधारण निवास मठ क्या है व अधिकार संपन्न आम्नाय मठ क्या है और इन दोनों में क्या लक्षण हैं तथा ये दोनों पीठ से किस विषय पर भिन्नता रखती है? जब तक इस विषय को अच्छी तरह समझ न लेंगे तब तक कुम्भकोग मठ के भ्रामक प्रचारों की सफलता ही होगी। चिंद्विलास यह नहीं कहते कि आचार्य शङ्कर ने कांची में नवीन सर्वज्ञपीठ का निर्माण किया था। आप कहते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में द्वैतियों को विवाद में पराजित किये—'सर्वज्ञपीठं संस्थानं विजित्य द्वैतवादिनः'।

अब कुछ वर्षों से कुम्भकोण मठ प्रचार करना शुरु कर दिया है कि दक्षिण की कांची कश्मीर मन्डलान्तर्गत था और कांची में सर्वज्ञपीठ होने का विषय एवं कांची की प्रख्याती कश्मीर समान ही था। श्री गोविन्दनाथ विरचित श्री शंकराचार्य चरित्र के नवमाध्याय में से प्रथम कुछ श्लोकों को उद्धृत कर कुम्भकोण मठ अपने प्रचारों की पुष्टी करते हैं। पर गोविन्दनाथ के अनुसार कांचीपुर कश्मीर देश का एक नगर है न कि आपने दक्षिणभारत का एक अलग कांची का उल्लेख किया है। पाठकगण कृपया नवमाध्याय को पढें तो यह स्पष्ठ मालूम होगा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य है। कश्मीर इतिहास से एवं वहां के एक प्राचीन शिलालेखन से मालूम होता है कि कश्मीर में एक कांची नगर था जिस शहर से एक प्रभावशाली वर्ग 'कांचुडी' के नाम से प्रसिद्ध होकर अन्यत्र गये थे। अतः गोविन्दनाथ से निर्देंषित कश्मीर देश का कांची, कश्मीर में होने का प्रमाण मिलते हैं। कुम्भकोण मठ प्रचारकों ने यह भी प्रचार करना शुरु कर दिया है कि दक्षिण देश की कांची ही कश्मीर है और ये दोनों अभिन्न हैं। कश्मीर का सर्वज्ञपीठ ही कांची का सर्वज्ञपीठ है और इस प्रचार का आधार गोविन्दनाथ कृत श्री शङ्कराचार्य चरित्र पुस्तक से कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं।

प्रकाशित व्यासाचलीय सर्ग 12 का श्लोक 30/31 जो माधवीय सर्ग 16 का 55/56 श्लोक हैं इसमें स्पष्ठ उल्लेख है कि कश्मीर देश का शारदा मन्दिर के सर्वज्ञपीठ पर आचार्य शङ्कर ने आरोहण किया था। 'गुरुरत्नमाला' का टीकाकार एवं कुम्भकोण मठ के आत्मबोध ने अपने व्याख्या 'सुषमा' पुस्तक में इन दोनों श्लोकों को उदूधरण

नहीं करते क्यों कि ये दोनों श्लोक आपके प्रचार के विरुद्ध हैं और इसके बदले आपने एक स्वरचित कल्पित श्लोक को व्यासाचलीय के नाम पर प्रमाण रूप में दिया है। आत्मबोध का यह श्लोक मुद्रित या अमुद्रित व्यासाचलीय प्रतियों में पाया नहीं जाता है। इस श्लोक में आत्मबोध कहते हैं कि आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित कांची मठ में सर्वज्ञपीठ था। प्रश्न उठता है कि इन दोनों कथनों में कौन सत्य है? कुम्भकोण मठ विषयक पत्रिका 'कामकोटि प्रदीपम' में कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन 'सर्वज्ञ' विद्वान अब कहते हैं कि मुद्रित व्यासाचलीय में उल्लेख किया काश्मीर ही कांची है चूं कि ये दोनों पद 'interchangeable' हैं। 'सर्वज्ञ पन्डित' की क्या अपार विद्वत्ता! धन्यवाद है कि आपने यह नहीं कहा कि 'शारदा मन्दिर' और 'कांची मठ' भी दोनों एक ही है। व्यासाचलीय में निर्देषित कश्मीर का सर्वज्ञपीठ बहुत प्राचीन काल का प्रतिष्ठित पीठ है और कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र से निर्देषित कांची मठ का सर्वज्ञपीठ आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित है। ऐसे उन्मत्त प्रलापों पर आलोचना करना व्यर्थ है।

काश्मीर देश का सम्बन्ध दक्षिण भारत से केवल संस्कृति व विद्या का ही सम्बन्ध था न कि दक्षिण भारत किसी काल में कश्मीर मन्डलान्तर्गत था या शासनाधीन में था। पुराकाल में दक्षिण से विद्वान कश्मीर गये और कश्मीर के विद्वान दक्षिण भी आये। राजतरङ्गिणी द्वारा प्रतीत होता है कि मुसलमानों के आक्रमणों के समय जब कश्मीर में अनेक प्राचीन ग्रंथ नष्ट हो गये थे उस समय कश्मीर के कुछ प्राचीन पुस्तक एवं विद्वान दक्षिण भारत पहुंचे। कश्मीर के विद्वान श्रीयुद्ध भट्ट कर्नाटक देश पहुंचे और आपने अथर्व वेद का प्रचार किया था। आपने यहां के यजुर्वेद ग्रंथों को कश्मीर ले गये थे। सेरिया भट्ट ने अथर्व वेद की पाठशाला खोली थी। आठवी शताब्दी के काश्मीर राजा जयपीड के काल में दक्षिण से एक मांत्रिक काश्मीर गया था। ग्यारहवीं शताब्दी हर्ष ने कर्नाटक देश का सिक्का, फेशन आदि को कश्मीर में प्रचलित कराया था। तेरहवीं शताब्दी में जयसिंह ने द्राविड ब्राह्मणों के निवास के लिये 'सिंहपुर' नामक मठ का निर्माण किया था। दक्षिण देवगिरि के राजा ने कवि बिल्हण एवं सारङ्गदेव को स्वागत किया था। दक्षिण भारत के पश्चिम समुद्रतटवासी गौडब्राह्मण सब एक समय कश्मीर से आकर वहां बस गये थे। आचार्य शङ्कर कश्मीर पहुंचकर सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था तथा श्री रामानुजाचार्य भी कश्मीर गये थे। शैवसिद्धान्त कश्मीर से दक्षिण पहुंचा। ऐसे उदाहरण अनेक दिया जा सकता है पर इन आधारों पर यह कहना कि दक्षिण भारत का कांची काश्मीर मन्डलान्तर्गत था या कांची ही कश्मीर था या कांची व कश्मीर दोनों पद परियायवाचक शब्द हैं, जो "कामकोटि प्रदीपम" में मठ विद्वानों का प्रचार है सो केवल भ्रामक व मिथ्या प्रचार करना है।

इतिहास द्वारा मालूम होता है कि किसी समय में भी कांची व कांची समीप सीमा कश्मीर के अन्तर्गत न था और कश्मीर मन्डल की सीमा नर्मदा नदी के दक्षिण तरफ कभी भी न थी। कश्मीर व कांची दोनों भाषा में, वहां के वासियों के रहनसहन में, आचार विचार में, शरीर के ढाचे में, पृथक ही था और कश्मीर का राज्य शासन अधिकार भी दक्षिण में न था। भारत के उत्तर पश्चिम कोने में कश्मीर एक देश है और दक्षिण भारत में कांची एक नगर है और ये दोनों एक कैसे हो सकता है? व्यासाचलीय में स्पष्ट काश्मीर को एक देश कहा है और किसी भी तर्क व अनुमान से इसे कांची कहा नहीं जा सकता है या काश्मीर देश कांची का द्योतक है ऐसा भी कहा नहीं जा सकता है। कुम्भकोण मठ विद्वान 'कैलासगमन' का अर्थ 'हिमालय पर्वत पहुंचे' जिस प्रकार टीका की है उसी प्रकार अब प्रचार करते हैं कि 'कश्मीर देश' ही 'काञ्चीपुर' है। धर्मशास्त्र प्रायश्चित कान्ड में उल्लेख है कि जो लोग सौराष्ट्र, राजपुताना, पंजाब आदि स्थलों में भ्रमण करते हैं उन्हें प्रायश्चित करना ही होगा। इससे प्रतीत होता है कि पुराकाल में भी दक्षिण का कोई भाग कश्मीर के अन्तर्गत न था, नहीं तो यह प्रायश्चित विधि का उल्लेख नहीं होता। उत्तर

भाग व उत्तर पश्चिम भाग से दक्षिण भाग बहुदूर होने के कारण एवं आनेजाने का मार्ग सुविधा न होने के कारण तथा दक्षिण का भौगोलिक प्रभाव के कारण कोई भी उत्तरी भारत का राज्य दक्षिण में धाक जमा न सका। मुसलमानों ने भी इन कठिनाइयों का सामना करना पडा और दीर्घकाल अपना धाक जमा न सके। भारत का संगठन व एकराज्यसीमा श्रीअशोक के समय में ही प्रथम बार प्रारम्भ हुआ था पर यह शासन भी केन्द्रप्रभुत्व रखने में असफल रहे। भारत के भिन्न राज्य स्वतंत्र ही रह गये थे। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, उपनिषद आदि आर्ष ग्रंथों के आधार पर भारत का भिन्न राज्य सीमा का वृत्तान्त व राज्य वंशावली तैय्यार करना कठिन है चूंकि यहां के कथन परस्पर विरोधी पाया जाता है और वाह्य प्रमाण इनकी पुष्टी नहीं करता। इस विषय पर आन्वेषण की आवश्यकता है।

भारत का उत्तरीभाग का राज्य वंशावली विवरण 700 क्रिस्तपूर्व से ही उपलब्ध होता है और दक्षिण भारत की राजवंशावली इसके बहुतकाल बाद ही का मिलता है। 700 B. C. में उत्तरी भारत एवं दक्कन का कुछ भाग 16 सीमा में भाग किये गये थे—अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, चेडी, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, सुरसेन, अस्मक, अवन्ति, गान्धार, काम्भोज। वर्तमान कश्मीर गान्धार व काम्भोज सीमा में ही था। दूर दक्षिण में तामिल राज्य था। बौद्ध काल का राज्य—मगध, कोशल, वत्स, अवन्ति आदि था। इस समय में बलशाली राज्य छोटे छोटे राज्य को अपनी सीमा में मिलाने लगे। छठवीं शताब्दी क्रिस्त पूर्व कोशल के पूर्व दिशा भाग जो हिमालय व गङ्गा बीच में था वहां सकिया, बुलि, कलम, भग्गा, कोलिप, मोरिय, मल्ल (कुसिनारा एवं पावा के), विदेह (मिथिला), लिच्चवी (वेसाली), लोग वास करते थे। इस समय गान्धार को देरियस ने फारसी साम्राज्य में मिला लिया था। वर्तमान कश्मीर का कुछ भाग, सिन्धु एवं पंजाब का कुछ भाग मिलकर गान्धार बना था। 'निरुक्त' ग्रन्थ से मालूम होता है कि 500 क्रिस्तपूर्व में उत्तर पश्चिम काम्भोज की भाषा भारत की भाषा से भिन्न था। गान्धार के उत्तर पश्चिम सीमा में काम्भोज था। 500 क्रिस्त पूर्व में नर्मदा उत्तर व दक्षिण में भोज, विदर्भ, मुलक, अस्मक, दक्षिणापथ, आन्ध्र, कलिङ्ग एवं दूरदक्षिण में तामिल राज्य था। उत्तर पश्चिम सीमा में कपिस, काम्भोज व गान्धार राज्य था। इनका आधिपत्य या राज्यसीमा दक्षिण में बिलकुल न था। उस समय कश्मीर के पास के राज्य **Aspassi, Assaceni, Abhisares, Taxiles, Kingdom of Porus, Malli, Oxydracae, Cathaei** था। इनका सम्बन्ध कांची से न था। प्रथमबार भारत का संगठन व एकराष्ट्रसीमा का दृश्य श्री अशोक (250 क्रिस्त पूर्व) के काल में देखते हैं। उत्तर पश्चिम में वर्तमान काबुल-गजनी-कन्दहार की सीमा से लेकर वर्तमान बङ्गाल का आधा तक और दक्षिण में नेल्लूर तक राज्यसीमा फैली थी। नेल्लूर के दक्षिण में चोळ, पान्डिय, केरळपुत्र, सतिय (सत्य) पुत्र, आदि राज्य थे। उत्तर पूर्व में कामरूप स्वतन्त्र राज्य था। अशोक ने कलिङ्ग को अपने राज्य में मिला लिया था। कलिङ्ग का राज्य शासन प्रतिनिधि द्वारा किया गया था। दक्षिण के आन्ध्र, पितिनित, राष्ट्रिक सब अशोक के प्रभुत्व को स्वीकार किये थे।

150 ई० में उत्तर पश्चिम में रुद्रदमन का राज्य था जो अवन्ति (पूर्व व पश्चिम मालवा), कच्च, सिन्धुसौवीर, मरु व कोंकण का उत्तरी भाग था। रुद्रदमन ने दो बार आन्ध्र पर चढाई कर पराजित किया था। उन दिनों में आन्ध्र राज्य का दक्षिण-पूर्वी भाग अमरावती तक था। दूर दक्षिण में चोळ, चेर, पान्डिय राज्य करते थे। उत्तरी भारत का आधिक्य या प्रभाव कांची में न था। कृष्णा-गोदावरी बीच सीमा के वासी आन्ध्र का नाम पाये जो नाम प्रथम बार ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है। अशोक के शिलाशासन से भी यह नाम पाया जाता है। मौर्यराज्य

की अवनति पर गौतमीपुत्र श्री सतकर्णी ने आन्ध्र राज्य सीमा बढा दी थी। आन्ध्रराज्य करीब 500 वर्ष था और करीब 300 ई० में अवनति भी हुई। उत्तर पश्चिम में कुशानों का राज्य था और कश्मीर इसके अन्तर्गत था। कुशान राज्य सीमा न कांची तक थी और न इस राज्य का प्रभाव कांची में पडा। कनिश्क ने कश्मीर, काशगर, खोटन आदि राज्यों को अपने राज्य सीमा में मिला ली थी। कुशान के बाद पुनः उत्तर पश्चिम व उत्तर भारत अनेक छोटे राज्यों में विभाजित हुए। 50 ई० तक अरब व्यापारी दक्षिण भारत व बरोच से व्यापार करते थे और पश्चात् अनेकों ने दक्षिण भारत के चेर, चोळ, पान्डिय देश के बन्दरगाहों द्वारा व्यापार करते थे। समुद्रगुप्त (335—385 ई०) व चन्द्रगुप्त (385-418 ई०) के समय उत्तरी भारत फिर से एक वार संगठित हुआ। Madrakas, Yaudheyas, Arjunayanas, Malavas, Surashtra, Pundra Vardhana, Karna Suvarna, आदि आपके राज्यान्तर्गत थे। भारत के पूर्वी, उत्तरपूर्वी, उत्तर व कश्मीर के दक्षिण भाग में Samatata, Kamarupa, Nepal, Kartripura आदि राज्य गुप्त साम्राट को 'कर' देते थे। कुछ विद्वानों का अभिप्राय था कि समुद्रगुप्त दूरदक्षिण के मदुरा तक आया था और पश्चिमी समुद्रतट से होते हुए महराष्ट्र सीमा सें लौट गये। यह अभिप्राय भूल है। समुद्रगुप्त दूरदक्षिण में आया ही नहीं था। कथुरा नगर का नाम द्वारा समुद्रगुप्त का दूर दक्षिण आना कहा जाता है पर ऐतिहासिक दृढ प्रमाण अब मिलते हैं जो सिद्ध करता है कि गञाम् के कोथूर नगर तक ही समुद्रगुप्त आया था। इसी प्रकार एरन्डपल्लि, देवराष्ट्र आदि स्थल उत्कल सीमा में एवं विशाकपट्टनम् में हैं। समुद्रगुप्त स्वयं कहता है कि आपने दक्षिण में किसी राज्य को अपने राज्य सीमा में मिलायी नहीं थी पर इन छोटे राज्यों से 'कर' लिया था। चन्द्रगुप्त II विक्रमादित्य का काल में उज्जैनी का नाम पाटलीपुत्र से भी अधिक प्रख्यात था। चन्द्रगुप्त II के कन्या का विवाह रुद्रसेन II (वाकटक) से हुआ। वाकटक दक्कन में एक छोटा राज्य था। कश्मीर इस समय गुप्तराज्य में अन्तर्गत न था और कश्मीर का सम्बन्ध कांची से भी कुछ न था। नर्मदा के दक्षिण में माहाकोशल, वकटक, पल्लव, चोळ, पान्डिय, चेर, राज्य था। श्रीहर्ष के समय में (606—647 ई०) कपिक, कश्मीर, गुर्जर, सिन्ध आदि राज्य उत्तर पश्चिम व पश्चिम में था। पूर्व दिशा में समतत राज्य को हर्ष ने अपने राज्य में मिला ली थी। नर्मदा नदी के दक्षिण में श्रीहर्ष का विरोधी चालुक्य पुलकेशिन II का राज्य था। इसके अतिरिक्त कोङ्गोडा, पूर्वीतट पर कलिङ्ग और गोदावरी-कृष्णा बीच सीमा में पूर्वी चालुक्य था। दूर दक्षिण स्थित तुङ्गभद्रा नदी समीप वातापी का चालुक्य पुलकेशिन II का पुत्र श्री विक्रमादिय के शासन काल के चौदहवें वर्ष में आचार्य शङ्कर का जन्म कालटी में हुआ था। ऐतिहासिक वतलाते हैं कि पुलकेशिन II का पुत्र विक्रमादित्य का राज्यशासन 670 ई० में प्रारम्भ हुआ था। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के रिकार्डों से भी इस विषय का पुष्टी होता है। चालुक्य राज्य का सीमा दक्षिण के पश्चिमी समुद्र तट एवं तुङ्गभद्रानदी तक था। दूर दक्षिण में पल्लव, चोळ, पान्डिय, चेर राज्य था। इन दिनों में भी कश्मीर का सम्बन्ध कांची के साथ कुछ भी न था।

नौवीं शताब्दी में उत्तर भारत के गुर्जर प्रतिहर, बङ्गाल के पल एवं दक्कन के राष्ट्रकूट ये तीनों अपनी अपनी राज्य सीमा बढा लेने के प्रयत्न में थे। प्रतिहर के नामी राजा भोज (836—885 ई०) एवं महेन्द्रपाल I (885—910 ई०) थे। महेन्द्रपाल ने पंजाब सीमा के कुछ भाग कश्मीर राज्य को देना पडा। नौवीं शताब्दी में उत्तर पश्चिम में कश्मीर व शाहिस राज्य था और पश्चिम में अरब थे। नर्मदा नदी के उत्तर भाग में गुर्जर प्रतिहर थे। नर्मदा नदी दक्षिण से तुङ्गभद्रा नदी दक्षिण तक एवं पश्चिमीं समुद्र तट तक राष्ट्रकूट थे। पूर्वी किनारे तट नेल्लूर के दक्षिण में आप लोगों का शासन न था। कृष्णा-गोदावरी बीच पूर्वी सीमा में पूर्वी चालुक्य (वेङ्गि) थे। पूर्वीतट पर कलिङ्ग, पूर्व में पल्लव व उत्तर पूर्व में आसाम था। दूर दक्षिण में चोळ, चेर, पान्डिय थे। इस काल में भी कश्मीर

का सम्बन्ध दक्षिग से कुछ न था। लगभग 1030 ई० में महमूद गजनी ने पंजाब पर धाक जमा ली थी। कश्मीर स्वतंत्र था। उत्तर भारत के अन्य राज्य सुम्रस, चौहान, तोमर, कच्चवह, प्रतिहर, चन्डेल, कालाचूरि, पल, चालुक्य (सोलाङ्कि सौराष्ट्र) थे। नर्मदा दक्षिण में कलिङ्ग, वेङ्गि, चालुक्य चोळ, राज्य था। नौवीं शताब्दी अन्त में आदित्य चोळ ने पल्लव को हराया लेकिन परन्तक I (905—953 ई०) के समय में दक्कन के राष्ट्रकूट से चोळ देश की हार हुई। राजराज चोळ (985 ई०) के समय में चोळ राज्य सीमा बढती गयी। राजराज चोळ ने चेर, पान्डिय, वेङ्गि को हराया था और कलिङ्ग का आधा भाग भी ले लिया था। बनवसी, गङ्गवाडी, वेनाड, पान्डिय, नोलम्बवाडी, ककतिया, वेङ्गि, दक्षिग कलिङ्ग, आदि राज्य राजेन्द्र I चोळ (1012—44 ई०) के अधीन था। आपके बाद चालुक्य चोळ कुलोत्तुङ्ग (1070–1120 ई०) प्रसिद्ध भये। इनके शासन का अन्त काल में होयसालाओं ने गङ्गवाडी को ले लिया था। नर्मदा नदी दक्षिग में चालुक्य विक्रमादित्य VI का राज्य था। तेरहवीं शताब्दी में चोळ राज्य की अवनति पर विजयनगर राज्य की स्थापना हुई थी। इस काल में भी कश्मीर का सम्बन्ध कांची के साथ न था। 17 वीं शताब्दी में अकबर ने कश्मीर का कुछ भाग अपने राज्य में मिला लिया था। इस समय में भी कांची का सम्बन्ध कश्मीर से न था। पश्चात् कश्मीर स्वतंत्र हो गया।

उत्तर पश्चिम सीमा की भाषा काफिर, खोवर, शिन व काश्मीरी थी। इन भाषाओं में से काश्मीरी भाषा का प्रभाव अधिक था। अनेक ग्रंथ काश्मीरी भाषा में लिखे गये थे। इसी काल में दूर दक्षिग में तेलगू, तामिल, कन्नड, मलयालम भाषा थी। संस्कृत भाषा द्वारा ही विद्वान वर्ग अपने अपने विचारों का प्रकाश करते थे। दक्षिण के विद्वान जो उत्तरी भारत गये थे वे सब संस्कृत भाषा द्वारा ही अपना अपना मत प्रचार किये थे। अनादि काल से उत्तर व दक्षिग का यह मिलन बराबर जारी थी। अब पाठकगण जान लेंगे कि 500 क्रिस्तपूर्व से लेकर 17 वीं शताब्दी तक किसी समय में भी कांची नगर काश्मीर मन्डलान्तर्गत न था या कश्मीर राज्य की सीमा में कांची नगर न था या न कश्मीर ही कांची था जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। नीलमत पुराण, कश्मीर का स्थल माहात्म्य ग्रंथ, राजतरङ्गिनी, आदि ग्रंथों में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि कांची नगर कश्मीर मन्डलान्तर्गत था। कश्मीर के विद्वान म. म. डा. शिवनाथ शर्माजी ने अपना अभिप्राय भेजा है कि दक्षिग का कांची नगर किसी समय में भी कश्मीर मन्डल के अन्तर्गत न था और कश्मीर राज्यान्तर्गत भी न था। कुम्भकोण मठ का मिथ्या प्रचार जो है कि दक्षिण देश का कांची कश्मीर अन्तर्गत था, इस विषय की जांच निम्न पुस्तकों में किया गया और कहीं भी उल्लेख न पाया कि किसी समय में भी दक्षिण कांची कश्मीर अन्तर्गत था। इन पुस्तकों में कश्मीर राज्य सीमा में कांची या कंचपुरी का संकेत है जो विषय शिलाशासन से सिद्ध होता है कि कश्मीर में ही कांची या कंच था। कश्मीर इतिहास पुस्तकें—राजतरङ्गिनि (कल्हण 1148/1150 ई०), राजावली (जोनराज–हिजरा 815 तक का इतिहास), जैनराजतरङ्गिनी (श्रीवर पन्डित 1477 ई० तक का इतिहास), राजतरङ्गिनी (अकबर राज्य काल में प्रकाशित पुस्तक), वाकियात-ए-कश्मीर (मुहम्मद अजीम), तरीख कश्मीर (नारायण कौल)।

गोविन्दनाथ कृत श्रीशङ्कराचार्य चरित्र पुस्तक के आधार पर कहते हैं कि कांची कश्मीर मन्डलान्तर्गत है। इस पुस्तक के नवमाध्याय को पढा गया और कहीं भी कुम्भकोण मठ प्रचार की पुष्टी नहीं है। गोविन्दनाथ ने कांची जो कश्मीर राज्य में है उसी का उल्लेख करता है न कि दूर दक्षिग देश का कांची। शिलाशासन से स्पष्ठ मालूम होता है कि कश्मीर राज्य में कांचीपुर था (Indian Epigraphy 1954/55)। अतः दक्षिण की कांची कश्मीर अन्तर्गत था कहना उन्मत्त प्रलाप है। श्रवणबेलगोळ शासन से प्रतीत होता है कि दक्षिग भारत के तुङ्गभद्रा समीप एक

नगर कांचीपुर भी था। माधवीय 16 वें अध्याय का श्लोक 55/58 ही व्यासाचल पुस्तक में 30/33 श्लोक पाया जाता है। श्रीगोविन्दनाथ ने अपनी पुस्तक में उक्त श्लोकों का तात्पर्य ही दिया है, अतः इसमें सन्देह की जगह भी रह नहीं जाती। गोविन्दनाथ पुस्तक में व्यासाचल कवि जो माधवाचार्य को भी संबोधित किया जा सकता है उसी नाम को निर्देश किया है। अतः यह उचित व न्याय है कि गोविन्दनाथ माधवीय में वर्णित चरित्र को ही अपनी पुस्तक में दें। गोविन्दनाथ पुस्तक के नवमाध्याय में उल्लेख है 'कामाक्ष्या नाम वाग्देव्याः।' क्या कुम्भकोण मठ यह मानने तैय्यार हैं कि कामाक्षी ही सरस्वती देवी हैं? कुम्भकोण मठ ने अदालत में कहा है कि कामाक्षी से नीची श्रेणी की देवी सरस्वती हैं और आचार्य शङ्कर सरस्वती पीठ पर श्रीचक्र प्रतिष्ठा नहीं की होगी, अतः कामाक्षी देवी पीठ पर ही श्रीचक्र की प्रतिष्ठा हुई है। (मुकद्दमा नं. 95/1844 ई०—तिरुचिनापल्ली जिला अदालत)। कुम्भकोण मठ का उक्त कथन के आधार पर अब कश्मीर की शारदा (वाग्देवी) जो सरस्वती भी हैं और नीची श्रेणी की देवी भी हैं इनके साथ कांची की कामाक्षी जो उच्च श्रेणी की देवी हैं, कैसे सम्बन्ध जोड सकते हैं। गोविन्दनाथ के अभिप्राय में कामाक्षी ही सरस्वती हैं और कुम्भकोण मठ इस पुस्तक को प्रमाण में प्रचार करते हैं। कुम्भकोण मठ के भिन्न कथनों में कौनसा सत्य है सो जानना कठिन हो जाता है। कुम्भकोण मठ प्रचारानुसार कामाक्षी कभी पराशक्ति चिद्रूपिणी हैं, कभी उच्च श्रेणी देवी हैं, कभी महाशक्ति हैं, कभी शक्ति हैं, कभी पराशक्ति का अवतार हैं और कभी नीची श्रेणी की देवी हैं। समय समय पर भिन्न कथनों से अपने स्वेच्छावाद की पुष्टी करना ही भ्रामक प्रचार कहलाता है।

यदि कांची में सर्वज्ञपीठ होता जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है तो श्री रामानुजाचार्य कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करते? श्री रामानुजाचार्य भी कश्मीर का शारदा पीठ पहुंचे थे (Life of Sri Ramanuja by Swami Ramakrishnanand)। अतः यह कहना भूल नहीं है कि कांची में शारदा पीठ न था।

कश्मीर में कांचुडी नाम का एक वर्ग था जो कश्मीर देश की कांची या कञ्चि नगर से आये हुए थे और इस वंश के लोग प्रभावशाली व समृद्ध शाली थे। इस बंश के लोग कश्मीर के राजा नवसुरेन्द्रादित्य नन्दिदेव पटोलदेव के शासन काल में बडे प्रभावशाली थे (Indian Epigraphy 1954/55)। इससे प्रतीत होता है कि काश्मीर में भी कांची या कंच नामक नगर था। ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि जब उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत आकर बसने लगे तो आप लोगों ने उत्तरी भारत के नगर व ग्रामों का नाम देकर नवीन नगर व ग्राम दक्षिण में बसाया था। उत्तर भारत के अनेक नगरों का नाम दक्षिण भारत में पाया जाता है जैसा तेन्काशी, कंची, मदुरै, श्रीवैकुन्ठ, पद्मनाभपुर, कल्याणी, आदि हैं।

पुराकाल के ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत की कांची का नाम 'कच्चिपेट्टु, कच्चि, कञ्चि, कञ्चिपुरम' भी था और अर्वाचीन काल में 'कञ्जिवरम' नाम दिया गया है। भारतवर्ष में पांच कंचि का उल्लेख है जहां देवी का मन्दिर हैं। मुझे मालूम नहीं कि और कितनी कांची या कंचि मिलेंगी यदि इस विषय पर आन्वेषण किया जाय। (1) कश्मीर में कांची या कंचि नगर, (2) मध्यभारत में झांसी व कानपूर बीच एक नगर कोंच या कंच है जिसे प्राचीन काल में कंची नाम से पुकारा जाता था, (3) आसाम में कामरूप कामाख्या के उत्तरपूर्व में कांचीपाडा (कांची) नगर था जो तान्त्रिकों का क्षेत्र था, (4) दक्षिण भारत मदरास के समीप एक कांची नगर था और अब भी है, (5) दक्षिण देश तुङ्गभद्रा नदी समीप कर्नाटक प्रान्त में एक नगर क्रौंचपुर था जिसे कांचीपुर भी कहा जाता था (श्रवणबेलगोळ शिलालेख)। उक्त सब पांचों सीमा में (कश्मीर, मध्यभारत, आसाम (कामरूप), तुङ्गभद्रा नदी तट, पूर्वी समुद्र तट कांची) आचार्य शङ्कर भ्रमण किये थे और यह अनुमान करना भूल न होगी कि आचार्य शङ्कर इन कांची

स्थलों में भी गये होंगे। श्री टि. ए. जि. राव (राजकीय पुरातत्त्व विभाग का कर्मचारी) का दृढ अभिप्राय है कि मदरास समीप कांची नगर का अब कहेंजानेवाले कामाक्षी मन्दिर पूर्व में श्री तारादेवी का मन्दिर था। इस कांची में 'देवगर्भा' पीठ थी। प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है कि गौड ब्राह्मणों से आचार्य शङ्कर विवाद कर उन्हें पराजित करके कांची में अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त की थी और इससे प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के गौड ब्राह्मण जिनको मिश्र के नाम से संबोधित किया जाता था उन्हें आचार्य शङ्कर ने उत्तर भारत में पराजित कर उत्तर भारत के कांची नगर में इष्ट सिद्धि प्राप्त की थी ऐसा कहना ही ठीक अर्थ जमता है–'तान्वै विजित्य तरसाऽक्षत शास्त्रजालैर्मिश्रान्सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप॥ काञ्च्यां तपस्सिद्धिमवाप्य दण्डी चण्डीशरुपो जगदाकलैय।' (शिवरहस्य) आचार्य शङ्कर के समय में या आपके पूर्व समय में दक्षिण कांची में गौड ब्राह्मण विद्वान (मिश्र) लोग वास नहीं करते थे। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है कि आचार्य शङ्कर दक्षिण भारत कांची नगर में मिश्रों से विवाद कर एवं उन्हें पराजित कर सिद्धि प्राप्त की थी। इस विषय पर आन्वेषण करने की आवश्यकता है और उपलब्ध सामग्री के आधार पर अन्तिम निर्णय किया नहीं जा सकता है।

5. (क) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण कांची में हुआ था। पर सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रंथ एवं प्रबल जनश्रुति सिद्ध करता है कि आचार्य शङ्कर ने हिमालय की बदरी केदार सीमा से ही कैलास गमन किये थे। शिवरहस्य—'तान्वैविजित्य तरसाक्षात शास्त्र जालैः मिश्रांस्ततो नैजमवाप लोकम्'—की व्याख्या में एक विद्वान लिखते हैं 'इत्यत्र मिश्रान् गौडान् इत्यर्थो बोध्यः। गौडनामेव मिश्रा इति बिरुदस्य सर्वजनीत्वात्। अतो गौडान् विजित्य कैलासमापदित्यर्थः। अतः काश्मीरे सर्वज्ञपीठाधिरोहमारचय्य सशरीरः कैलासमगादित्याकूतम्।' आचार्य शङ्कर उत्तर भारत के गौडों को वादविवाद में पराजित कर कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण कर हिमाचल प्रदेश से कैलास गये। शिवरहस्य 'द्वात्रिंशत्परमायुस्ते शीघ्रङ्कैलासमावस।' के अनुसार आचार्य शङ्कर की आयू 32 थी और आप को कैलास आने का आदेश होने से आपका वयस 32 ही माना जाता है। इस श्लोक के पूर्व शिवरहस्य में 'नैजमवापलोकम' है और इसका पुष्टी 'शीघ्रं कैलासमावस' पद करता है। शिवरहस्य में 'जगाम परमं पदं' का अर्थ पूर्वापर संदर्भ को ध्यान में रख कर 'कैलास आने की आज्ञा' ही प्रतीत होता है न कि मोक्ष जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। 'तद्विष्णोपरमंपदम्' का अर्थ मोक्ष हो सकता है पर 'जगाम परमं पदं' जहां उपयोग किया गया है उस पूर्वापर संदर्भ में मोक्ष अर्थ नहीं है। इष्टसिद्धि प्राप्त करने के लिये कुतर्क करना कुम्भकोण मठ को शोभता नहीं है। उक्त श्लोक के पश्चात् इसी शिवरहस्य में यों उल्लेख है—'ध्यात्वा शिवन्तत्र निविश्य तस्यौ कैलासदेशाद्वृषभश्च देवाः। तमेत्य संस्तुत्य यदायुषस्ते कालोऽगमत्त्वं वृशमेधिरोह॥ इति प्रचीर्णः प्रभुरात्मनिस्वे विचिन्त्य शिष्यान्निजगाद मोदात्। यूयञ्चतुर्दिक्षु मठेषु लिङ्गैस्साकं वसत्वित्युपदिश्य हर्षात्॥ विवेश पृष्ठं वृषभस्य हस्तं संगृह्य वै रिश्चमथास्यदत्तं। स वैश्व देवैरभिनन्यमानस्स शङ्करस्तन्निजधामदेवः॥' इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि आचार्य शङ्कर ने कैलास गमन हिमाचल सीमा से ही किया था।

कुम्भकोण मठ वाले कहते हैं कि इसी शिवरहस्य में 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' का उल्लेख है और इसका अर्थ है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल कांची है। पाठकगग प्रथमाध्याय में इस श्लोक पर विमर्श पढ चुके होंगे। उक्त श्लोक का तीन पाठान्तर भी मिलते हैं–'ततो नैजमवाप लोकम्', 'ततोलोकमवाप शैवम्' 'स काञ्च्यामथ सिद्धिमवाप शैवम।' 'स काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' पद से भी कांची मठ प्रचार की पुष्टी नहीं होती चूं कि यहां 'सिद्धि' शब्द का अर्थ तनुत्याग नहीं है। भट्ट श्री नारायण शास्त्री जी विमर्श में लिखते हैं कि सिद्धि शब्द का अर्थ

तनुत्याग नहीं है पर यह मनोरथ प्राप्त करने का द्योतक शब्द है—'मिश्रान्सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप इति पाठेपि न कापि हानिरस्यराद्धान्तस्य, तद् यथा सिद्धिशब्दो न मोक्षवाचकः कुतः? शक्तेर्भानाभावात्, न लक्षणामुख्यार्थ बाधाभावात्। न व्यञ्जना मूलाभावात्। अतः साधनार्थः मनोरथस्य सिद्धिमवाप इत्यर्थः।' मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय पं ज. ग. विश्वनाथ शर्माजी अपने विमर्श में लिखते हैं–'मिश्रान्सकाञ्च्या मथसिद्धिमापेति अनन्तरं तत्रैव काञ्च्यां तपः सिद्धिमवाप दण्डीत्यादयस्त्रयोदश श्लोका अपि उपलभ्यन्ते। सिद्धि पदं न तनुत्यागमाचष्टे। अपि तु तपः सिद्धि बोधयति। सिद्धिपदस्य प्रसिद्धिश्च फल निष्पत्तौ वर्तते न तु प्राणत्यागे। नैजमवापलोकमिति पाठस्तु शिवरहस्य गत पूर्व सन्दर्भेणानुगृह्यते सुतराम्। तथापि कैलासमेष्यत्यसमानसौख्यमित्युपसंहारे द्वात्रिंशतपरमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावसेति भगवत्पादानां कैलास गमनं सर्वत्राप्युपलभ्यते। अत्रत्य कैलासमावसेति पद द्वयं न केनाप्यालोचितमिति विज्ञायते। यतो काञ्च्यामथ सिद्धिमापेत्यस्य नाना विभिन्नार्थान्कल्पयन्ति परे। किंचोक्त पद्ये सकाममिति स्थाने स्वकाश्रममिति पाठान्त उत्तरपादापेक्षया ऽक्षराधिक्यमपि पूर्वपादे कल्पयन्ति। ग्रन्थाक्षर पुस्तके सकाममित्येव पाठो दृश्यते। अर्थस्तु कामं यथा तथेति। तथा च भूलोके यत्र कुत्राप्याचार्याणां तनुत्यागोनास्ति। अपि तु सशरीरतया कैसासगमनमेवेति शिवरहस्यतोऽप्यवगम्यते। बदरीगमनं च शिवरहस्यवत्प्रतिपादितम्।' शिवरहस्य का 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' पद के पूर्वापर संदर्भ एवं अन्यत्र उपलब्ध प्रमाणों की पुष्टी से मालूम होता है कि सिद्धि पद का अर्थ तनुत्याग नहीं है पर तपसिद्धि है। सिद्धि पद का अर्थ लाभकर होता है अथवा कुछ प्राप्त करने का लक्षण बोध होता है न कि तनुत्याग। 'नैजमवापलोकम्' पद शिवरहस्य की पूर्व कथा संदर्भ से बहुत युक्त है न कि पाठान्तर पद 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप।' शिवरहस्य का 'कैलासमेष्यत्यसमानसौख्य' तथा अन्त में 'द्वात्रिंशतपरमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस' इन दोनों पदों पर किसी ने आलोचना नहीं की है, इसीलिये 'काञ्च्यां सिद्धिमाप' पद का अर्थ नानाप्रकार का करते हैं। नवीन पदों का जोड भी छन्दमात्रा गिनित में भूल निकलती है। 'काञ्च्यामथसिद्धिमाप' पद से कांची में सिद्धि प्राप्त करने का विषय मालूम होता है न कि कोई आम्नाय मठ की प्रतिष्ठा करने का विषय सिद्ध होता है। उक्त पद के आधार पर कुम्भकोण मठ जो प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने आम्नाय मठ की स्थापना की थी सो प्रचार न केवल भ्रामक है पर मिथ्या है। मठ की प्रतिष्ठा आम्नाय नियम व पद्धति, वेद, महावाक्य, संप्रदाय, उपदेशरहस्य, आदि, के आधार पर हुई है न कि सिद्धि प्राप्त करने पर। कालटी, काशी, बदरी-केदार सीमा, कश्मीर, कांची, श्रीशैल, आदि स्थलों में भी आचार्य शङ्कर ने इष्टसिद्धि प्राप्त की थी, इसलिये क्या यह कह सकते हैं कि आचार्य शङ्कर ने वहां वहां आम्नाय मठों की स्थापना की थी?

आनन्दगिरि शङ्करविजय से निम्न दिया हुआ पंक्तियों को उद्धृत कर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर ने कांची में तनुत्याग किया था। आ. शं. वि. पर विमर्श प्रथमाध्याय में पायेंगे। आ. शं. वि. श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है और यह एक अनादरणीय पुस्तक है। कुम्भकोण मठ ने इन मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय में कुछ अदलबदल कर एक परिष्कृत्य संस्करण लिखकर प्रमाण में दिखाते हैं पर दोनों पुस्तक—मूल व परिष्कृत्य—एक ही है। आनन्दगिरि शङ्करविजय में निर्याण विवरण दिया है।—'स्वयं स्वेच्छया स्वलोकंगन्तुमिच्छुः काञ्चीनगरे मुक्तिस्थले कदाचिदुपविश्य स्थूल शरीरं सूक्ष्मेन्तर्धाय सद्रूपोभूत्वा, सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा चिन्मात्रो भूत्वांऽगुंष्ठ पुरुषस्तदुपरि पूर्णमखण्ड मण्डलाकारानन्दं ईश्वर सन्निधौ प्राप्य सर्वजगद् व्यापकम् चैतन्यमभवत्।' अद्वैतमतावलम्बीयों के दृष्टी से कारण में विलीन होने के बाद अंगुष्ट पुरुष होना असम्भव है। सर्वचैतन्य को ईश्वर सान्निध्य पहुंचना भी असम्भव है। क्या आचार्य शङ्कर को सामीप्य मुक्ति ही मिली? द्वेष से रचित यह पुस्तक जो द्वैत मत का प्रतिपादन करता है और जिस पुस्तक में आचार्य शङ्कर को गोळक पुत्र कहा है एवं उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्यों द्वारा द्वैत मत

का प्रचार करने की भी आज्ञा दी थी, ऐसी पुस्तक को प्रमाण में दिखाना न केवल आचार्य शङ्कर का अपचार करना होगा पर यह पाप कर्म भी होगा। स्वार्थी को न भय, न लज्जा और न पाप कर्म से डर है। मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्माजी विमर्श में लिखते हैं—'कांचीपुर इत्यनेन तदितरग्रन्थसंदर्भ विरोधः। अत्र स्वलोकं गन्तुमिच्छुः इत्यादौ सर्वव्यापकम् चैतन्यमभवदित्यन्ते सर्वव्यापक चैतन्यमभवदिति प्रथममीप्सितस्य साधनमुक्तम्, उद्दिष्टमात्मलोकगमनम्। सर्वव्यापक चैतन्यस्य स्वलोकः परलोकः इति सिद्धास्तीत्यलम द्वैतमत वैशारद्येन गिरेः। अपि च केचिदाधुनिकाः काञ्चीपुरस्थं कस्यापि कर्मन्दिनो वृन्दावनमाचार्याणां इति वदन्ति। तद् गिरि वचनेनापि न सिद्ध्यति। तेन स्थूलस्य सूक्ष्मानुप्रवेशस्य सूक्ष्मस्य कारणानुप्रवेशस्य चोक्तत्वात्। यद्वा, उपविश्येत्युक्तं खलु गिरिणा तदुपवेशस्थलमेव वृन्दावनमचीक्लृपन्निति चेन्। तद् अवैधमित्यलमनेन। किं च यथा योगी सदाशिवब्रह्मेन्द्र मन्त्रालयस्य श्रीराघवेन्द्र वृन्दावन सेवायै भक्तजनानां प्रवृत्तिः तथा विश्वगुरोः परमेश्वर शङ्कररूपेणवतीर्ण परमेश्वरस्य समाधि यदि काञ्च्यांस्यात् स्वेष्टाप्तये भक्तजनास्तमपि सेवेरन् न तथेति न तत्रभगवत्पादानां समाधिः। मन्दिरे तनुत्याग प्रकल्पनं वैदिकाचार विरुद्धम्।'

श्री रामभद्र दीक्षित द्वारा रचित पतञ्जली चरित्र का श्लोक जिसमें 'काञ्चीपुरे स्थितिमवाप स शङ्करार्यः' उल्लेख है, कुम्भकोण मठ इसके आधार पर कहते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण कांचीपुर में ही था। पाठकगण इस पुस्तक पर विमर्श प्रथमाध्याय में पढ चुके होंगे। कुम्भकोण मठ का भ्रामक प्रचार है कि उक्त श्लोक का 'स्थितिमवाप' का अर्थ तनुत्याग है पर न्याय व उचित अर्थ 'शङ्कर कांची में वास किये' होगा। 'स्थिति' का अर्थ वास करना है न कि मरण। अब नवीन प्रचार है कि 'स्थितिमवाप' का अर्थ 'वासकिये' है पर आगे कहते हैं कि आचार्य कांची में वास करते हुए वहीं तनुत्याग भी किया था। परन्तु ऐसा अर्थ करने की कोई पुष्टी पतञ्जली चरित्र के उद्धृत श्लोक से नहीं होता है। स्वकल्पित टिप्पणी को यथार्थ अर्थ के साथ जोडकर प्रचार करने से विषय की पुष्टी नहीं होती पर इसे भ्रामक दुष्प्रचार ही कहा जायगा।

श्री राजचूडामणि दीक्षित द्वारा रचित शंकराभ्युदय का एक श्लोक जिसमें 'कामेश्वरीमर्चयन् ब्रह्मानन्दमविन्ददत्र जगतां क्षेमंकरः शङ्करः' ऐसा एक पंक्ति है। इसके आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर कांची में निर्याण भये। पर यथार्थ अर्थ है कि आचार्य शंकर ने देवी की पूजासेवादि से ब्रह्मानन्द अनुभव किये या प्राप्त किये न कि कांची में निर्याण भये। उक्त पंक्ति के आधार पर तनुत्याग कहना केवल बकवास है। 'कांची सर्वज्ञपीठ का कुम्भकोण मठ' की सर्वज्ञत्व की यह एक प्रदर्शनी है। 'अभद्रं पठित्वा अन्ते कुर्याध्यं कुरुते बुधः' के अनुसार कुम्भकोण मठ का प्रचार है।

श्री आत्मबोधेन्द्र ने सुषमा में (पृष्ठ 25) कुछ श्लोक केरलीय शङ्कर विजय (III—5) से उद्धृत किया है और यह उद्धरण ठीक है परन्तु 'सुषमा' (पृष्ठ 39) में जहां आपने आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल कांची कामाक्षी समीप होने का एवं सर्वज्ञात्मा को मठाधीश बनाने का तथा श्री सुरेश्वर को योगलिङ्ग की पूजा करने का आदेश, आदि विषयों का वर्णन किया है, यहां आत्मबोध ने केरलीय शङ्कर विजय का नाम लेकर प्रमाण रूप में कुछ श्लोक उद्धरण किया है। यह सब उद्धरित श्लोक केरळीय शङ्कर विजय में बिलकुल पाया नहीं जाता है (1926 ई० में प्रकाशित पुस्तक या तंजोर सरस्वती महाल पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति)। प्रमाणाभास स्वकल्पित श्लोकों को केरळीय शंकर विजय का नाम लेकर आत्मबोध ने प्रकाश किया है। केरळीय शङ्कर विजय में आचार्य शंकर का निर्याण स्थल तिरुचूर नगर (केरळ देश) का उल्लेख है। ऐसे प्रमाणाभास स्वकल्पित श्लोकों के आधार पर अपने मिथ्या भ्रामक प्रचारों से कुम्भकोण मठ की नींव अठारहवीं शताब्दी में डाली गयी और दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के प्रति द्वेष व घृणा

भाव से मठ का निर्माण एवं भ्रामक मिथ्या प्रचारों की सामग्री 19 वीं शताब्दी मध्य काल तक तैय्यार होते हुए पूर्ण किया गया और अब 20 वीं शताब्दी में मिथ्या, भ्रामक व घृणा का प्याला अपने प्रचारों से भरी जा रही है।

(ख) श्रीमाणिक्यविजयः (ब्रह्माण्डपुराणसारः)—हिमालय सीमा को ही निर्याण स्थल बतलाता है न कि कांची। 'श्रीगुरुः शङ्कराचार्यः करुणासागरोद्गरः। इत्थं कलियुगे शुद्धाद्वैतं संस्थाप्य यत्नतः। सन्यासधर्ममममलं योगिनामपि दुर्लभम्। उपदिश्य सुरेशादि स्वशिष्याणां महादरात्। सूत्रगीतोपनिषदां भाष्याणि सुमहांत्यपि। आब्दात्रिंशद्वर्षे मुर्व्यां स्थित्वागाद्गिरिशालयम्।'

(ग) माधवीय शङ्करदिग्विजय भी हिमालय सीमा को निर्याण स्थल बतलाता है—'इति कृत सुरकार्यं नेतुमाजग्मुरेनं रजतशिखरि श्रृङ्गतुङ्गमीशावतारम्। विधिशतमख चन्द्रोपेन्द्र वाय्वग्नि पूर्वाः सुरनिकरवरेण्याः सर्षिसंघाः ससिद्धाः॥' 'इन्द्रोपेन्द्र प्रधानैस्त्रिदशपरिवृढैः स्तूयमानः प्रसूनैः दिव्यैरभ्यर्च्यमानः सरसिरुहभुवा दत्तहस्तावलंबः। आरुह्योक्षाणामग्रयं प्रकटितसुजटाजूट चन्द्रावतंसः श्रृण्वन्नालोकशब्दं समुदितमृषिभिर्धामनैजं प्रतस्थे॥' डिण्डिम टीकाकार 'कैलासगिरि श्रृङ्ग' का ही उल्लेख करते हैं, यथा—'इत्येवं कृतं देवकार्यं येन तमेनमीशावतारं श्रीशङ्करं तुङ्गमुन्नतं कैलास-गिरिश्रृङ्ग प्रति नेतुं ब्रह्मेन्द्रादयः सुरसमुदायप्रवरा ऋषिसंघैः सिद्धैश्च सहिता आजग्मुः।' इसके पूर्व श्लोक में टीकाकार ने आचार्य शङ्कर को 'केदारकं प्राप' कहा है। उक्त श्लोक का 'ईशावतारम्' शब्द की टीका में टीकाकार ने शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय से 46 श्लोक उद्धृत कर 'ईश्वरावतारम्' की पुष्टी की है। शिवरहस्य 46 वां श्लोक का अन्तिम पद 'काञ्च्यामथसिद्धिमाप' दिया है। इस आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर का तनुत्याग स्थल कांची था पर पाठकगण प्रथमाध्याय में इस विषय पर विमर्श पढ चुके होंगे। माधवीय मूल श्लोक की टीका में टीकाकार ने निर्याण स्थल कैलासगिरि श्रृङ्ग को ही कहा है और यदि इसके विरुद्ध आपका अभिप्राय होता तो स्पष्ठ टीकाकार कांची का उल्लेख कर शिवरहस्य के श्लोक को प्रमाण में देते। पर आपने 'ईशावतारम्' पद की टीका में शिवरहस्य के श्लोकों को उद्धृत किया है न कि कांची नगर को आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल की पुष्टी में। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार जो है कि टीकाकार ने कांची को निर्याण स्थल स्वीकार किया है सो प्रचार मिथ्या प्रचार है।

(घ) व्यासाचलीय शङ्करविजय (माधवीय शङ्करविजय का परिष्कृत्य प्रति) में भी हिमगिरि को निर्याण स्थल कहा है—'एवं निरुत्तरपदां स विधया देवीं सर्वज्ञपीठ मधिरुह्य ननन्द सभ्यः। मात्रागिरामपि तथा पुरुषैश्च सभ्यैः संभावितोरुचितदेशमयं जगाम।'

(ङ) चिद्विलासीय शङ्करविजयविलास में भी हिमालय का दत्तात्रेय गुहा द्वारा कैलास गमन का उल्लेख है—'मायापुरं समासाद्य षण्मत स्थापनं ततः। बदर्यागमनं पश्चात्तत्रैकां मठ निर्मितिम्। तोटकाचार्यनामानं शिष्यं संस्थाप्य यत्नतः। तत्रैव सुचिरं स्थित्वा दत्तात्रेयस्य दर्शनम्। भाष्यार्थ बोधतुष्टस्य विष्णोः साक्षात्कृति ततः। दत्तात्रेय गुहाद्वारात्कैलास गमनं गुरोः।'

(च) सदानन्दीय शङ्करविजय में उल्लेख है—'इत्थं ब्रह्मादिदेवानां वचः श्रुत्वामहेश्वरः। गंतु स्वधाम लोकेशो महादेवाकृतिश्चसन्। आविर्भून त्रिनेत्रादिरीश्वरः स्वगणैर्वृतः। आरुह्योक्षाणमग्रयं सन्नैजंधामधरंययौ। ब्रह्मादीन्हर्ष-यन्देवान्कैलासस्थां च पार्वतीम्। इति पशुपतिरीशो भूतले स्वेच्छयाऽसौ। श्रुतिशिखरगिरां सन्निर्णयार्थेऽजनिष्ट।

श्रुतिमत यतिचर्यां संविधायाश्रमान्तये। पुनरपि निजलोकं स्वेच्छयाऽगात्स्वधाम।' आपने भी कांची नगर का नाम नहीं लिया है।

(छ) आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में प्रस्तुत तीन मठ—पूर्वाम्नाय गोवर्धन, दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी, पश्चिमाम्नाय द्वारका—आज पर्य्यन्त परम्परागत चला आ रहा है। उक्त तीन आम्नाय मठाधीशों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमालय की केदार सीमा ही है। तृतीय खण्ड में अभिप्राय प्रकाशित पायेंगे।

(ज) महानुभाव संप्रदाय का ग्रन्थ 'दर्शन प्रकाश' जो 1638 ई० में लिखा गया था, इसमें एक अति प्रचीन पुस्तक 'शङ्करपद्धति' नाम का उल्लेख करते हुए उससे कुछ उद्धरण किया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने 'युग्म पयोधि रसामित शाके' 642 शक (720 ई०) में हिमालय सीमा की गुफा में प्रवेश कर निजलोक पहुंचे—'शंकर लोकमगान्निजदेहं हेमगिरौ प्रविहाय हठेन।' यहां कांची का नामो निशान नहीं है।

(झ) Atkinson Gazetteer of the Himalayan Districts of the North West provinces of India—Vol II—Edited a little earlier than 1882—83. उक्त गजटियर में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण कर पश्चात् बदरी आकर वहां नारायण मन्दिर का जीर्णोद्धार कर पश्चात् केदार सीमा से अपने बतीसवें वयस में निजधाम पहुंचे। गजटियर में उल्लेख है—'Shankara towards the close of his life visited Kashmir where he overcame his opponents and was enthroned in the chair of Saraswati, the goddess of eloquence. He next visited Badri where he restored the ruined temples of Narayana and finally proceeded to Kedar where he died at the early age of thirty-two.'

(ञ) प्रो० विल्सन् 1846 ई० में लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर केदार सीमा में अपने बत्तीसवें वयस में निर्याण भये—'He next went to Badarikasrama and finally to Kedarnath in the Himalayas where he died at the early age of thirty-two. The events of his last days are confirmed by local traditions ....' (Page 127) प्रो० विल्सन 'Glossory' (1855 ई०) में लिखते हैं—'Whether he was more than a passing pilgrim at Conjeevaram is doubtful' (Page 810) Glossory में 'कुम्भकोगम' के नीचे लिखते हैं कि कुम्भकोग मठ एक शाखा मठ है—'A branch Mutt of Shankaracharya, founder of the Advaita Philosophy ....'

(ट) केदार मन्दिर समीप यह पुण्य स्थल है जहां से आचार्य शङ्कर कैलास गमन किये अथवा गुहा प्रवेश किये। आज भी बदरी-केदार सीमा वासी यात्रियों को यह स्थल दिखाते हैं और यात्री यहां श्रद्धाञ्जली भेंट करते हैं। गढवाली और नैपाली लोकगीत एवं एक प्राचीन नैपाल कथा भी है जिसमें श्रीशङ्कर का कैलाल गमन इसी स्थल से करने का वर्णन किया गया है। डा. संपूर्णानन्दजी (उत्तर प्रदेश प्रधान मंत्री एवं राजस्थान राज्य का राज्यपाल) के संचालन में एवं सहायता से बदरी केदारनाथ मन्दिर कमीटी ने इस पुण्यस्थल पर चिन्हात्मक स्मरणीय एक मन्दिर निर्माण करने का पुण्य कार्य अपने हाथ में लिया है। वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। इस विषय पर

श्री प. प. श्री 1008 श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज पश्चिमाम्नाय द्वारकाधीश लिखते हैं—'It is a fact well known to all the devotees of Sri Sankara Bhagavat Padacharya that after ascending the Sarvagnya Peetha in Kashmere, He went to Badri, Kedar and other regions of the Himalayas, and that He ultimately diappeared from mortal vision at Kedara. This is seen also from the Sankara-Vijayas like those of Madhava and Chidvilasa. Whether He ascended to Kailasa with his physical human body intact or on assuming His Divine Form as Lord Parameswara may not be possible to decide. Some say that as he did not leave any physical body behind, he went with that body itself, others would say that, as at the time of ascent, the matted hair and the moon, the characteristics of Lord Parameswara, are said to have appeared, the ascent was only in the Divine Form. Whatever it be, there can be no doubt that the ultimate disappearance was at Kedar Kshetra. Even to this day, the people there point out a particular place as the spot wherefrom the great Acharya disappeared and the pilgrims visiting the spot are made to worship there; while so, it is idle to say that He attained Sidhi in some place in the south and that there is a place there where His mortal remains were interned. We cannot accept such contentions nor will the sishyas throughout the land of Bharata countenance them.'

(ठ) प. प. श्री 108 श्रीस्वामी विद्यानन्द सरस्वतीजी महाराज, गीतासत्सङ्ग कैलासक्षेत्र, नैनीताल से 1—5—1960 के दिन लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याणस्थल केदार सीमा ही है न कि कहेजानेवाले दक्षिण का कांची नगर। आप लिखते हैं—'By an act of legislation, the Government of U. P. brought about the formation of the 'Badrinath-Kedarnath Temple committee,' some twenty years ago. In the capacity of a representative of the Government of U. P., it has been my privilege to serve as a member of this committee, holding dear the cause of truth and the dedication of my humble services to these holy shrines.'

'I have made special study of the History of Uttarakhand i. e., the Garhwal and Kumaon districts of U. P.; particularly from the beginning of the eighth century to the present day. In my researches, I have often had recourse to Government records and other authentic sources; and all the sources collaborate admirably, to establish the important fact that, the Adi-Sankaracharya 'shed his mortal coil' and attained immortality at KEDARNATH itself. The Government records and folk songs reiterate the incident as a hallowed and cherished memory; and history, both searched and secular; clearly establishes the position of Kedarnath—as the place where the great sage and rishi attained 'Nirvana.' The most convincing and unchallengeable fact, however, is that at Kedarnath itself

there is an old structure, which has been for centuries past, and is to the present day, the Samadhi of Sri Adi-Sankaracharya.'

'The Chief Minister of U. P., Dr. Sampurnananda, whose scholarship and wide cultural and historic interests are well-known, visited Kedarnath in the year 1956, in the month of May, and it was at his personal insistence that work was begun and is still in progress for the reconstruction and restoration of the old structure of Samadhi.'

'In 1956, a vast concourse of about fifty thousand people gathered at the Nainital Flats, under the auspicious of the 'Sri Gita Satsang Kailasakshetra, Nainital,' to give a fitting welcome to H. H. Sri Sankaracharya of Dwaraka, who was then on his way to Kailasa–Mansarovar, under my escort ... ... Dr. Sampurnananda in his presidential talk, raised the topic and infitting tones of veneration, declared the great debt which India owed to this holyman for his efforts in spreading the magnificient and universal tenets of the true Hindu religion. He pointed out with concern that the original Samadhi of Sri Adi Sankarcharya, at Kedarnath was in a state of ruin and that the condition of the structure was getting more and more delapitated. He fervently pleaded with the whole gathering and questioned one and all whether it was not a high time, that this sacred, universally honoured and worshipped saints' Samadhi should not be preserved for posterity ?,

'To this moving appeal came an unanimous response of 'yes, we should build a new Samadhi atonce', from all the corners of the vast gathering. Then it fell to my lot to convey to the gathering the very admirable suggestion of H. H. Shankaracharya of Dwaraka, that the old Samadhi, the original Nirvana place of the great saint, should not be touched or meddled with, and that a new building be erected on the ancient memory, thus preserving in toto the site of the sacred and original Samadhi. Enthusiastic indication of approval was atonce manifested from all sides of the gathering.'

'Not long after this appeal, the plan and the estimate for the restoration of the Samadhi were sanctioned, and construction work was begun with the financial help of the public, and a large donation from the 'Badri-Kedar Temple Committee.' The Governor of U. P. Sri V. V. Giri, during his pilgrimage to Sri Kedarnath had also urged that the construction should go on apace.'

But there is a sad and a deplorable sequel. Recently, it has come to my knowledge that certain section of people from the South of India, are expressing

dissatisfaction and disaffection in this laudable cause of restoring the Adi Sankaracharya's Samadhi at Kedarnath. For reasons, known only to them, and unauthenticated at that, they seem to maintain that the Samadhi should be established somewhere south of Madras (Conjeevaram—Kanchi). Both history and truth should not be twisted and belied in meaninglessly maintaining that the Adi Shankaracharya took particular care to get Nirvana, only near Madras (Kanchi). And, what more blessed place can compare with Kedarnath, under the shadow of the Lord Shiva's abode, and in the very lap of the heavenly Himalayas ?'

That 'Truth will prevail' is the bed rock of Hindu religion, life and culture. The Adi Shankaracharya lived his days in preaching this essence of Hinduism to the world. Can we honour him in any other manner than by upholding the truth ? Will we not be driving shafts of pain into his immortal heart, if we mischeviously and willfully quarrel over the location of his Samadhi, when we know it for fact, a verifiable fact, that the great saints' true resting place was at Kedarnath ? Surely this does not befit us as the inheritors of the great tradition of Truth handed down to us by our Rishis and Sages. Those that claim and seek to establish the Samadhi at Tamilnad (Kanchi), let us hope, realise that they are acting from ignorance, and without the possession of facts and historical records and associations.'

'It is therefore my earnest and sincere appeal to all and sundry, to acquaint themselves of the true facts before making any unjustifiable claims, and in a spirit of truth, to unanimously support and hail the restoration of the old and authentic Samadhi of Sri Adi Shankaracharya at Kedarnath.'

आचार्य शङ्कर का पुण्यजन्मस्थल केरळ देश कालटी में जैसा स्मारक मन्दिर निर्माण किया गया है और आचार्य शङ्कर का मातुशिरोमणि श्रीमति आर्याम्बा की समाधि का भी जीर्णोद्धार कर रक्षा की गयी है और इस शुभ पुण्य कार्य को श्री 1008 श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री शृङ्गेरी मठाधीशों ने पूर्ण किया है, उसी प्रकार श्री भगवत्पाद का निर्याण स्थल हिमालय के केदारक्षेत्र में भी स्मारक मन्दिर निर्माण करना परमावश्यक एवं मङ्गलकार्य है। भारतवर्ष के हरएक अद्वैतमतावलम्बी एवं आचार्य शङ्कर के भक्त कोटि जनों का कर्तव्य होगा कि ऐसे सर्वोत्तम पुण्य कार्यों में अपनी अपनी यथाशक्ति सेवा समर्पण करें। इस यत्न की सफलता हमसबों पर निर्भर है और यथाशक्ति हर एक व्यक्ति इस पुण्य कार्य में अपना हाथ बंटाय। कश्मीर के 'शङ्कराचार्य पर्वत' पर स्थित मन्दिर और वह पर्वत जो आचार्य शङ्कर के जीवन घटना के साथ सम्बन्ध रखता है (कश्मीर-सर्वज्ञपीठ) उस मन्दिर में आचार्य शङ्कर की मूर्ति प्रतिष्ठा पश्चिम्नाय जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री द्वारका शारदा मठाधीश के करकमलों से की गयी है और इस शुभ कार्य के लिये हमसब लोग द्वारका शारदा मठाधीश के कृतज्ञ हैं। नर्मदा नदी तट पर स्थित ओंकारनाथ क्षेत्र में जहां श्री गुरु गोविन्दभगवत्पादाचार्य जी महाराज का आश्रम था और जहां आचार्य शङ्कर ने सन्यासाश्रम धारण किया था और शिक्षा

प्राप्त की थी तथा नर्मदा नदी तट जहां माहिष्मति नदी का संगम है और जिसे चोलीमहेश्वर या माहिष्मतिक्षेत्र कहते हैं और जहां आचार्य शंकर ने प्रकान्ड विद्वान श्रीमण्डन विश्वरूप मिश्र जी से विवाद कर पश्चात् उन्हें सन्यासाश्रम की दीक्षा देकर अपना शिष्य (श्री सुरेश्वराचार्य) बनाया था, ऐसे दोनों स्थलों में भी स्मारक चिन्हात्मक मन्दिर का निर्माण कराना परमावश्यक है।

(ड) भारत रत्न श्री एस. राधाकृष्णन्, 'The Vedanta according to Samkara and Ramanuja' शीर्षक पुस्तक में लिखते हैं–'He died at Kedarnath in the Himalayas at the age of thirty-two, according to the tradition' (Page 14) आप कहते हैं कि आचार्य शंकर का निर्याण स्थल हिमालय का केदारनाथ सीमा है।

(ढ) गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' जनवरी 1957, अङ्क में लिखा है—'केदारनाथ—कहते हैं कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार आदि शङ्कराचार्य ने करवाया था और यहीं उन्होंने देहत्याग किया था।'

(ण) Bhavan's Journal, May 17, 1959, में पत्रिका संपादक लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर ने हिमालय के केदारनाथ में विदेह मुक्ति प्राप्त किया था। कुछ सज्जनों ने मुझसे कहा व लिखा कि 'भवन पत्रिका' में कांची मठाधीश का प्रचार अधिक मात्रा में होता है और यह पत्रिका कांचीमठ के प्रचारों का समर्थक है। पर 'भवन पत्रिका' का संपादक कांची को निर्याण स्थल नहीं कहा है। पाठकगण यथार्थता को स्वयं जान लें। संपादक लिखते हैं—'It is indeed a great miracle that in a short span of 32 years from His birth at Kaladi in Kerala to His mukti at Kedarnath, He compressed the labour of several centuries of intellectual and spiritual illumination.'

(त) Bhavan's Journal, Nov. 29, 1959, Article entitled 'My Pilgrimage to Badri and Kedarnath' by Sri C. R. Pattabhi Raman, M. P.,—writes—'... ... ... Above the waterfall is Brahma Guha (cave) where the creator performed his yagnya and to the left of the cave is the famous Mahapantha. This is the path taken by the Pandavas in their last journey—Swarga Arohanam—from the earth. It is also believed that Sri Sankara, in his thirty-second year of life, disappeared from the world taking this path.' 'After a period of inactivity of many years the Math (Joshi Math) which is one of the four established by Sri Sankara, is active again ... ... ' श्री सि. आर. पट्टाभिरामन, एम्. पि., लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमालय का केदार सीमा है और आप स्वयं उस स्थल को देख आये।

(थ) Bhavan's Journal, April 26, 1962 में डा. पि. नरसिंहय्या लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमालय का केदारनाथ सीमा ही है। 'Before his thirty-second year of age, the master passed away from earthly existence, at Kedarnath in the Himalayas.'

(द) 'तिरुकेदार–बद्रीनाथ यात्ति रै' पुस्तक जो चिदम्बरवासी श्री आर. कृष्णस्वामी अय्यर से 1957 में रचित व कुम्भकोणम में मुद्रित एवं वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के श्रीमुख सहित प्रकाशित है इसमें पृष्ठ 33/34

में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल केदारनाथ सीमा ही है और वहां आज भी वह समाधिस्थल सुरक्षित दीख पडता है। इस समाधि का वर्णन भी है और चित्र भी प्रकाशित है। कुम्भकोण मठाधीश] का श्रीमुख इस पुस्तक में प्रकाशित होने से यह अनुमान भूल न होगी कि आप भी आचार्य का निर्याणस्थल केदारनाथ सीमा को ही स्वीकार करते हैं। कुम्भकोण मठाधीश इस पुस्तक के पृष्ठ 33-35 अवश्य पढे होंगे तथापि आप प्रचार करते हैं कि कांची ही निर्याण स्थल है।

(ध) इस पुस्तक के तृतीय खन्ड में आसेतुहिमाचल के विद्वानो, आदरणीय परिव्राजकों एवं विज्ञ सज्जनों का अभिप्राय प्रकाशित है और आप लोग सब एक कण्ठ से कहते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याणस्थल हिमालय का केदारनाथ सीमा ही है। पूर्वी व पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वान **Hunter, Rice, Teile, Max Muller, Miss Duff, Sri Telang, Sri Tilak, Sri J. Sarkar, Sri R. K. Mukerjee, Sri Pathak, Sri J. Nehru, Sri C. P. Ramaswamy Iyer** आदियों का भी अभिप्राय है कि श्रीशङ्कराचार्य का निर्याणस्थल हिमाचल सीमा ही है।

उपर्युक्त दृढ प्रमाणों द्वारा यह निश्चित विषय है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल बदरी केदार सीमा ही है न कि कांची नगर जो कुम्भकोण मठ का प्रचार है। कुम्भकोण मठ प्रचारकों से अब नवीन प्रचार शुरु हुआ है कि आचार्य शङ्कर कांची कामाक्षी मन्दिर की गुफा में उतर कर अन्तरध्यान भये। यदि इसे मान लें तो कुम्भकोण मठ का परम प्रामाणिक पुस्तक आनन्दगिरि शङ्करविजय का दिया निर्याण विवरण से उक्त कथन भिन्न दीखता है। तो क्या अब आनन्दगिरि शङ्करविजय का निर्याण विवरण जो द्वैतवाद का प्रतिपादन करता है अब उसे कुम्भकोण मठ वाले नहीं स्वीकार करते? सम्भवतः अपनी भूल को सुधारना चाहते हैं और अब अद्वैती मत का प्रतिपादन करना चाहते हैं। आनन्दगिरि में वर्णित सामीप्य मुक्ति से आचार्य शङ्कर को सायुज्य मुक्ति देना चाहते हैं। चिद्विलास ने आचार्य शङ्कर को हिमालय के गुफा प्रवेश करने का उल्लेख किया है और सम्भवतः इसकी पुष्टी के लिये आप भी गुहा प्रवेश का प्रचार प्रारम्भ कर दिया है। केवल भेद इतना है कि चिद्विलास हिमालय की गुफा का वर्णन करते हैं और कुम्भकोण मठ कांची गुफा का उल्लेख करते हैं। कालान्तर में इस प्रचार का रूप बदलकर सम्भवतः प्रचार होने लगेगा कि आचार्य शङ्कर कांची गुफा में उतरकर भूमि के गुप्तमार्गद्वारा हिमालय पहुंचकर पश्चात् वहां से निजधाम पहुंचे। या यह भी प्रचार कर सकते हैं कि कांची हिमालय मन्डलान्तर्गत है, इसलिये हिमालय की गुफा या कांची की गुफा दोनों एक ही हैं। कुम्भकोण मठ का जैसा प्रचार है कि दक्षिण भारत का कांची नगर भारत के उत्तर पश्चिम कोने में स्थित कश्मीर देश का मण्डलान्तर्गत है वैसे यह भी प्रचार कर सकते हैं कि कांची गुफा ही हिमालय की गुफा है। कल्पना के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

पाठकगण जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ का प्रचार समयानुसार अनेक रूप धारण करते हैं। कुम्भकोण मठ विषयक प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटि प्रदीपम' में अब यह प्रचार किया जाता है कि आचार्य शङ्कर ने केदार सीमा से ही (जहां आचार्य शङ्कर का समाधि स्थल पुराकाल से पूजित हो अब भी देखने में आता है वहीं से) कैलास गमन किये थे और इस विषय का विरोध या अस्वीकार नहीं करते परन्तु इसके साथ यह नया प्रचार शुरु हुआ है कि आचार्य शङ्कर उक्त केदार स्थल से कैलास जा कर वहां के श्री परमेश्वर महादेव से पांच लिङ्ग प्राप्त कर पुनः इस मृत्युलोक का भारतवर्ष लौट आये एवं पांच लिङ्गो की स्थापना कर (केदार, नीलकण्ठ, चिदम्बर, शृङ्गेरी, कांची) तथा अपनी दिग्विजय यात्रा संपूर्ण करके कांची नगर पुनः आये और आपका तनुत्याग स्थल कांची नगर था।

यह हर्ष का विषय है कि 150 वर्ष से जो भ्रामक प्रचार होता हुआ आया है उस भूल को अब स्वीकार कर कुम्भकोण मठ के सर्वज्ञ पन्डितों ने मान लिया है हिमालय के केदार सीमा से ही आचार्य शङ्कर ने कैलास गमन किया था। आचार्य शङ्कर का कैलास गमन के पश्चात् इस मृत्युलोक को लौट आने की कथा एवं पांच लिङ्ग कैलास में प्राप्त करने की कथा कहां तक आचार्य शङ्कर के जीवन चरित्र घटनाओं के साथ यथार्थ सत्य कथा है, इसका विवरण पाठकगण पूर्व में ही पढ चुके होंगे। दृढ प्रमाणों के आधार पर निर्णय किया हुआ विषय को स्वीकार न करना इन धर्माचार्यों को शोभता नहीं है।

कुम्भकोण मठ व आपके भक्तों का प्रचार है कि कांची कामाक्षी मन्दिर में ही आचार्य शङ्कर का निर्याण हुआ था और जो शङ्कराचार्य की मूर्ति कामाक्षी मन्दिर में है वह समाधि होने का निश्चय करता है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि—'श्रीकाञ्च्यामेव श्रीकामाक्षीदेवी मन्दिर सविधे तेषां तनुत्याग आसीत्। अद्याऽपि तेषां तत्र समाधि—स्थानमस्ति।' **'In the mandir of Shri Kamakshi there is a temple of Shankaracharya with his life size murthi which is his Samadhistan.'** आगम शास्त्र व धर्म शास्त्र दोनों स्पष्ट कहता है कि स्मार्थ वैदिक रीति द्वारा प्रतिष्ठित देव व देवी मन्दिर में सामाधि न होनी चाहिये। यह शास्त्र निषेध है। समाधि का मन्दिर अलग जगह हो सकता है पर कभी देव देवी प्रतिष्ठित मूर्ति के पास समाधि न होनी चाहिये। दक्षिण भारत में परम्परागत रूढी है कि मन्दिर के पास यदि कोई शव हो और वह शव वहां से हटाये जाने तक मन्दिर की पूजा नहीं की जाती है और पश्चात् वैदिक मार्ग का प्रोक्षण करके पूजा सेवादि कार्य होती है। ऐसी रूढी होते हुए भी न मालूम कैसे कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर की समाधि कामाक्षी मन्दिर के प्राङ्गन में है। हमारे धार्मिक पूर्वज कभी भी शव को मन्दिर के भीतर प्राङ्गन में गाडे न होंगे और वह भी प्रतिष्ठित कामाक्षी देवी के समीप। मुसलमान व क्रिस्तान भले से ही समाधि मसजिद या गिरजाघर में बना सकते है पर वैदिक आगम शास्त्र विधि के अनुसार समाधि होना निषेध है। अद्वितीय महानों की समाधि या अवतारी पुरुषों की समाधि देव देवी प्रतिष्ठित मन्दिर के बाहर ही हो सकता है न कि मन्दिर के भीतर प्राङ्गन में। महानों की समाधि कालान्तर में मन्दिर बन जाते हैं और ऐसी समाधि या मन्दिर अलग स्थल में हो या किसी निवास स्थल मठ में हो। आचार्य शङ्कर की मूर्ति होने से समाधि कहना भी भूल है। आचार्य की मूर्ति अनेक जगह हैं और इन मूर्तियों में कुछ मूर्तियां कांची मूर्ति से भी प्राचीन हैं, यथा, दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ की मूर्ति, तिरुचूर (केरळ) की मूर्ति, शेर्मा देवी की आचार्य शङ्करालय की मूर्ति, केदार बदरी सीमा के ऊगिमठग्राम में आचार्य शङ्कर की मूर्ति, आदि। क्या यह कहना न्याय है कि उक्त स्थल में जहां आचार्य शङ्कर की मूर्तियां हैं वे सब निर्याण स्थल हैं? कांची की मूर्ति अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित मूर्ति है।

कांची कामाक्षी मन्दिर का शङ्कर मूर्ति को समाधि कहते हैं। इस विषय पर मदरास राज्य H. R. C. E. विभाग जिनके अधीन व परिचालन में यह मन्दिर है उनको लिखकर पूछा था कि क्या यह शङ्करमूर्ति समाधि है या केवल मन्दिर (सन्नधि) है? 1934/35 ई० में काशी में जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा तब कुम्भकोण मठ के कुछ विद्वान व भक्तों ने कहा कि कामाक्षी मन्दिर के भीतर प्राङ्गन में शङ्कराचार्य मूर्ति समाधि है अतएव आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल कांची कामाक्षि मन्दिर है। वर्तमान मठाधीष ने भी इस प्रचार का समर्थन किया था। पर यथार्थ विषय तो यह है कि कांची की मूर्ति आचार्य शङ्कर की मूर्ति नहीं है और प्राचीन काल में एक समय यह बुद्ध मूर्ति थी और इसे अब शङ्कराचार्य की मूर्ति बना लिया गया है। इस उक्त विषय पर भी एक पत्र मदरास राज्य को

लिखकर पूछा था कि उनका अभिप्राय क्या है ? मदरास राज्य H. R. C. E. विभाग से उत्तर पत्र प्राप्त हुआ कि कामाक्षी मन्दिर का शङ्कराचार्य मूर्ति 'सन्नधि' है न कि 'समाधि' एवं मूर्ति के विषय में अनुसन्धान विद्वानों से अभिप्राय प्राप्त करने को कहा था। H. R. C. E. विभाग का पत्र—'H. R. & C. E. (ADM) Dept., L. Dis. No. 38630/60, dated 4-11-1960; Sub: Management—Sri Kamakshiamman temple—Kancheepuram—Chingleput Dist.—removal of word 'Samadhi'-regarding; Ref.: Your letters dated 26—9—1960 and 30—10—1960; You may contact specialists and experts who can offer authoritative opinions on the subject. As commissioner of H. R. & C. E. (Adm.) Department, I am not expected to express any opinion on the subject. I note that you have since been apprised of the fact that the word used in the board in the temple is 'SANNADHI.' उक्त पत्र से प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर की मूर्ति समाधि नहीं है और दक्षिण भारत में आलय या मन्दिर को 'सन्नधि' कहते हैं।

अब रहा कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति का इतिहास। राजकीय H. R. C. E. विभाग अपना अभिप्राय दे नहीं सकते और आप अपनी राय देते हैं कि मैं अनुसन्धान विद्वानों से इस विषय पर अभिप्राय प्राप्त करूं। मैं ने Prof. A. Aiyappan जो व्यक्ति पहिले Supdt., Madras Museum, Madras and Department of Anthropology, Utkal University, Bhubaneswar में अब हैं, आपको सप्रमाण विस्तारपूर्वक विवरण व अपना अभिप्राय देकर पूछा था कि आप अपना अभिप्राय लिख भेजने की कृपा करें। आप अपने पत्र ता० 18—10—1960 में लिखते हैं—'Thanks for your interesting letter. When I visited Kanchi, I did not have the particular image of Sankara (?) in mind and can't recollect it now. Your hypothesis is quite plausible. Have you got a photograph of it which you can send me? Mr. P. R. Srinivasan of the Dept. of Archaeology (Fort Museum, Fort St. George, Madras, who was my chief collaborator in the recently published Volume 'Story of Buddhism with particular reference to South India,' Madras Govt. Press), is a good expert on the subject of sculptures. I would suggest your consulting him on this problem.'

मैं ने श्री पि. आर. श्रीनिवासन को भी पत्र लिखकर आपका अभिप्राय लिख भेजने की प्रार्थना की थी। आप अपने पत्र ता. 21—10—1960 में लिखते हैं—'Your kind letter dated 17—10—1960 has reached me yesterday. I went through it with great interest. I am no longer in the service of Govt. Museum, Madras. I am now working in the office of the Govt. Epigraphist for India, Ootacamund. The contents of your letter are interesting. But I am unable to know why you are interested in this obscure subject.'

'Anyway as regards the Kamakshi Amman temple of Kanchi, Sri T. A. Gopinatha Rao has surmised that it was associated with Buddhism. It seems to be reasonable. But this requires further investigation. Sri Sankara image in the temple has not been seen by me. So, I am not able to agree or disagree with the

contention it was originally a Buddha image. In fact, I have not had an opportunity to investigate these matters more deeply. I do not know if I can do it in the near future. If an opportunity arises, I shall examine it deeply.' उपर्युक्त दोनों पत्र मेरे अभिप्राय का खन्डन नहीं करता है पर समर्थन ही करता है कि अब कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति प्राचीन काल में बुद्धमूर्ति थी और अब इसे शङ्कराचार्य मूर्ति बना दिया गया है। अर्थात् यह मूर्ति शङ्कराचार्य की समाधि नहीं है और आचार्य शङ्कर से कोई सम्बन्ध भी नहीं रखता है। दक्षिण भारत मन्दिरों का पुरातत्वविभाग के कर्मचारी को एवं दक्षिण भारत का एक ऐतिहासिक विद्वान को पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि आप दोनों अपना अपना अभिप्राय लिख भेजें पर आप दोनों एक समय मुझसे मदरास में मिले थे और कहा कि मेरा अभिप्राय ठीक है।

मेरा दृढ अभिप्राय है कि कांची की कामाक्षी मन्दिर में भीतर के प्राङ्गन में अब कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति प्राचीन काल में एक समय बुद्ध मूर्ति थी और इस मूर्ति की चोटि को उडाकर एवं केश सफाचट कर शङ्कराचार्य की मूर्ति बनायी गयी और यह अर्वाचीन काल में ही स्थापित हुई है। पाठकगणों की जानकारी के लिये मैं अपना अभिप्राय एवं इस विषय सम्बन्धी उपलब्ध हुए सामग्री व कारण निम्न देता हूं ताकि पाठकगण स्वयं निश्कर्ष कर लें।

(क) पुराकाल में कांची एक प्रसिद्ध नगर था जैसा कि पाटलीपुत्र, मथुरा, अमरावती, नागार्जुन कोन्डा, आदि, स्थल थे। कांची सप्तपुरियों में से एक क्षेत्र है। पतञ्जली महाभाष्य में कांची का उल्लेख है। इस कांची में वैदिक, बौद्ध, जैन, तान्त्रिक, अजाविक, शैव, आदि मतों का भी खूब प्रचार था। ईसा की दूसरी शताब्दी पश्चात् काल में रचित ग्रन्थ 'मणिमेखलै' में स्पष्ट उल्लेख है कि कांची में बुद्ध विहार थे और वहां भिक्षुक वास करते थे। 'शिळप्पधिकारम, वीरशोळियम्, कुन्डलकेशी, सिद्धान्ततोगै, तिरुप्पदिगम, बिम्बसारकथै', आदि ग्रन्थ भी बौद्ध धर्म प्रभाव व प्रचार का उल्लेख करता है। उन दिनों के राजाओं ने किसी एक मत पर कुठाराघात न करने के कारण एवं सब मतों पर समदृष्टीभाव रखने के कारण तथा अपने प्रभाव से किसी एक मत का प्रचार न करने के कारण सब मतों के प्रचारकों को अपना अपना प्रचार करने में सुविधा ही थी। तोन्डैमन्डल के पल्लव राजा भी भिन्न मतों का नाम भी धारण करने लगे यथा बुद्धवर्मन, स्कन्दवर्मन, परमेश्वर वर्मन, आदि।

बोदिधर्म, ध्यानमार्ग का प्रवर्तक (छठवीं शताब्दी), आप कांची के राजकुमार थे। आपने चीन में अपना मत प्रचार किया था और पश्चात् जो जापान में भी फैल गया। विख्यात विद्वान श्री दिङ्नाग् कांची समीप ही जन्म लिया था। आप हीनयान मतानुयायी थे। मगध के बुद्धघोष एवं थेरा बुद्धदत्त कांची राजा से सम्मानित हुए थे। इससे प्रतीत होता है कि पांचवीं शताब्दी में ही कांची में बौद्धमत का प्रभाव अधिक था। धम्मपाल का जन्म कांचीपुर में हुआ था जो व्यक्ति पश्चात् नलन्दा के आचार्य धम्मपाल बने। सातवीं/आठवीं शताब्दी में शैवमतानुयायीयों का प्रभाव पडने लगा और बौद्ध धर्म का प्रचार कम होता गया। पुनः दसवीं शताब्दी में कांचीपुर में बौद्ध धर्म का प्रचार फिर से बढने लगा। बारहवीं शताब्दी में अनुरुद्ध कांची के मुलसोमविहार के प्रधान थे। कांची का आनन्दथेरा व रहुकुल थेरा बडे प्रसिद्ध भिक्षु थे। तेरहवीं शताब्दी में कांची में बुद्धपल्ली का उल्लेख पाया जाता है। कांचीपुर का 'सद-विहार' एक मशहूर विहार था। कहा जाता है कि बुद्धादित्य कुछ काल यहां वास किये थे।

श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं कि कांची का एक भाग का नाम बुद्धकांची था और यहां के एक बुद्ध विहार का भिक्षु ने चौदहवीं शताब्दी में पूर्वी जावा के हिन्दू राजा का यशोगान किया था—' One section of

Kanchipuram bore the name of Buddha Kanchi to a relatively late date, and a Buddhist monk from one of the monasteries there sang the praises of a Hindu ruler of eastern Java in the fourteenth century.'

(ख) चीनी यात्री, हुवन-च्वाङ्ग, ने सातवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में भारत भ्रमण किया था और आप कांची भी आये। आप लिखते हैं कि एक सौ से भी ज्यादा बुद्ध विहार कांची में थी जहां करीब 10,000 भिक्षु वास करते थे और 80 देव मन्दिर भी था जिसमें अधिकतर दिगम्बरों का ही मन्दिर था। आगे आप लिखते हैं कि धम्मपाल पिस की जन्मभूमि कांची थी और यहां बुद्धदेव भी आये एवं राजा अशोक ने अनेक स्थलों में स्तम्भ खडा किया था जहां बुद्धदेव ने अपना मत का प्रचार किया था। इससे सिद्ध होता है कि सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रचार अधिक था और कांची में विहार, बुद्धमन्दिर, दिगम्बरों का मन्दिर, देवदेवी मन्दिर भी थे। सातवीं शताब्दी के शैवाचार्य श्री तिरुज्ञान सम्बन्धर अपने रचित ग्रन्थों में 'बोदियार' व 'तेरस' का उल्लेख किया है जो भिक्षु व बौद्ध धर्म का संकेत करता है। आठवीं शताब्दी में आचार्य शङ्कर भी कांची आये और अवैदिकों व तान्त्रिकों को यहां पराजित किया था। जैनमत ग्रन्थों में उल्लेख है कि आपके अकलङ्क ने बौद्धों को विवाद में कांची में पराजित किया था।

(ग) कांची राजा महेन्द्रवर्मन I (600—630 ई०) से रचित नाटक 'मत्तविलासप्रहसना' से स्पष्ट मालूम होता है कि कांची में बौद्धमतानुयायीयों का भी प्रभाव अधिक था। इस समय के एवं पश्चात् काल के अनेक ग्रन्थ रचयिताओं ने अपने ग्रन्थों में कांची में बौद्धों का प्रभाव वर्णन किया है। इन सब आधारों द्वारा निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कांची में सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक बौद्धों का प्रभाव अधिक था। चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों का लूटमार व युद्ध कांची नगर व आसपास की सीमा में अशान्ती फैला दी थी। पश्चात् सत्तरहवीं अठारहवीं शताब्दी के लडाइयों ने भी इस शहर को डांवाडोल कर दिया था। आक्रमण, लूटमार, आग लगा देना, आदि कार्यों ने शहर के दृश्य को बिलकुल बदल दिया था।

(घ) कांची में बुद्ध मूर्तियां सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक का पाया गया है। ऊपर पाराओं वर्णित कांची में बौद्ध मत प्रभाव की पुष्टी इन उपलब्ध मूर्तियों से होती है। श्री टि. ए- जि. राव (पुरातत्त्व विभाग) लिखते हैं—'**I came upon no less than five images of Buddha within a radius of half a mile from the famous temple of Kamakshi Devi. I was also told that two other megalithic images of Buddha lie burried in a garden adjoining the same temple.'** श्रीराव को कामाक्षी मन्दिर व उसके समीप पांच बुद्ध मूर्तियां मिला था और मन्दिर के बगल के बगीचे में भी दो मूर्तियां होने का विषय भी सुना था। इसमें एक बुद्ध मूर्ति जो सात फुट दस इन्च का मूर्ति था उसे आपने कामाक्षी मन्दिर के भीतर आङ्गन (प्राकार) में पाया था। यह मूर्ति अब मदरास म्यूजियम में है। 1915 ई० के पूर्व प्रचार था कि यह मूर्ति मदुरा के नायक राजा का है पर श्रीराव ने निस्सन्देह सिद्ध किया कि यह बुद्ध मूर्ति है। पुरातत्त्व अनुसन्धान विद्वान श्री पि. आर. श्रीनिवासन् का अभिप्राय है कि इस मूर्ति का काल लगभग सातवीं शताब्दी का है और आप लिखते हैं—'**Hence it will not be wide off the mark if this figure is attributed to the begining of the 7th century A. D.'**

श्रीराव का कहना है कि यह आठ फुट की मूर्ति जो कामाक्षी मन्दिर के भीतर आङ्गन में पायी गयी थी सो मूर्ति कामाक्षी मन्दिर में ही मुख्य स्थान प्राप्तकर मन्दिर की मुख्य मूर्ति रही होगी अथवा इस मूर्ति को किसी अन्य व्यक्ति ने सुरक्षित रखने के लिये कहीं बाहर से मन्दिर में लाया होगा। यहां एक विषय ध्यान देने का है कि कामाक्षी मन्दिर का दर्वाजा प्राचीन काल में छोटा था और मन्दिर का घेरा दिवाल ऊंचा था। श्रीराव लिखते हैं— 'The present position of the image with respect to the temple of Kamakshi can be explained by two plausible hypotheses, namely (1) that the image did certainly occupy some important place in the very temple itself; or (2) that it was brought in there by some one for safe custody.' करीब आठ फुट की वजनदार एक शिला मूर्ति को जगह जगह ले जाना असम्भव दीखता है। कामाक्षी मन्दिर के भीतर के आङ्गन में यह मूर्ति होने से मन्दिर के छोटे दर्वाजों से ले आना या ले जाना भी असम्भव दीखता है। इस वजनदार मूर्ति को ऊंचे स्थानों में से होकर ऊपर उठाकर ले आना या ले जाना भी असम्भव दीखता है। इस मूर्ति को बचाने या सुरक्षित रखने का क्या कारण था कि इसे और एक जगह से कामाक्षी मन्दिर लाया गया था? यदि इस मूर्ति को बचाने एवं रक्षित रखने के लिये लाया गया हो तो यह मूर्ति मन्दिर के बाहर आङ्गन या प्राकार में छोड देना था। इन कारणों से कहा जा सकता है कि यह मूर्ति कामाक्षी मन्दिर का ही एक मुख्य मूर्ति थी और यह मूर्ति कहीं बाहर से नहीं लायी गयी थी।

श्री टि. ए. जि. राव लिखते हैं—'The image was in some place very near its present position and was removed from its original seat and just set down where it is at present' यदि यह मूर्ति अन्य जगह से लायी गयी हो तो प्रश्न उठ सकता है कि क्या वैदिक हिन्दू ने इस मूर्ति को मन्दिर में लाया था या क्या किसी एक बौद्ध मतानुयायी ने लाया था? इस मूर्ति को वैदिक हिन्दू से लाना असम्भव दीखता है चूं कि श्री बुद्ध मूर्ति की पूजा वैदिक हिन्दू से करना असम्भव है। बौद्धमतानुयायी को भी मन्दिर में मूर्ति को लाने से वैदिक हिन्दू रोका होगा। अतः यह मूर्ति इसी मन्दिर का होना निश्चित होता है। श्री टि. ए. जि. राव इस विषय पर पूर्ण आन्वेषन कर दृढ प्रमाणों के आधार पर लिखते हैं कि यह कामाक्षी मन्दिर प्राचीन काल में प्रथम तारादेवी का मन्दिर था और इसे पश्चात् काल में वैदिक मन्दिर में बदला गया था—'The temple of Kamakshi was, in all probability, originally a temple of Tara Devi and, as with many other temples of alien faith, converted into a Hindu temple in later times.' राजकीय पुरातत्त्वविभाग के कर्मचारी श्री पि. आर. श्रीनिवासन लिखते हैं कि 600 ई० के पूर्व काल में यहां बुद्ध मन्दिर था और आसपास भी और ऐसे अन्य मन्दिर भी रहा होगा एवं ऐसे मन्दिर से प्रतीत होता है कि कांचीपुर में अन्य एक बडा विशाल मुख्य मन्दिर भी रहा होगा—'............ discovered in the innermost prakara of the Kamakshi temple in the town raises the question whether originally this temple was dedicated to this Buddha itself. Perhaps there was a Buddhist temple here dating from a period earlier than 600 A. D. There was probably more Buddhist temples like this in the neighbourhood. .... and it presupposes the existence of a very important and probably a big Buddhist temple dating from before 600 A. D. in the heart of Kanchipuram.' श्री टि. ए. जि. राव ने पांच बुद्ध मूर्तियों का उल्लेख किया है जिसमें एक मूर्ति का

विवरण ऊपर दिया गया है। दूसरी योगमुद्रा स्थित मूर्ति जो 3½ फुट ऊंचा था, वह मूर्ति कामाक्षी मन्दिर का दूसरा आङ्गन (प्राकार) में मिली। योगासन व योगमुद्रा सहित स्थित 5½ फुट ऊंचा मूर्ति कामाक्षी मन्दिर बगीचे में मिला। यह तीसरी मूर्ति है। चौथा व पांचवा मूर्ति विष्णु कांची में मिली।

कांची कामाक्षी मन्दिर में बाहर प्राकार का मानस्तम्भ जिसे ध्वजस्तम्भ भी कहा जाता है इसके समीप एक मन्डप है। इस मन्डप के खम्बों में ध्यानी बुद्धदेव व तारादेवी की मूर्तियां खुदी हुई है। कुछ खम्बों को मन्डप से निकाल कर तोड दिया गया है। टूटा हुआ भाग मन्दिर के बाहर प्राकार में पडा हुआ अब भी दीख पडता है। इन टूटे हुए भागों में भी बुद्धदेव व तारादेवी की मूर्ति देखा जा सकता है। कामाक्षी मन्दिर के सामने वाला मन्डप से ये सब खम्बें अर्वाचीन काल में ही तोड निकाल दिये गये थे। इससे स्पष्ठ सिद्ध होता है कि अब यह कहेजानेवाले कामाक्षी मन्दिर एक समय तारादेवी मन्दिर ही था।

(ङ) कांची कामाक्षी मन्दिर में जैन मानस्तम्भ अब भी देखा जाता है। इस स्तम्भ के ऊर्ध्व में ब्रह्मयक्ष की मूर्ति है जो जैन मत का मन्दिर होने का प्रमाण है। जैनमत के यक्ष का यक्षी अम्बिका और यक्षी पद्मावती भी होती है। कामाक्षी मन्दिर के जैन मानस्तम्भ की यक्षी अम्बिका है। जिनकाञ्ची या पक्षितीर्थ जो कांची समीप है, और जहां जैनों का मन्दिर है, यहां के चन्द्रप्रभा मन्दिर का 'वर्धमान्' मूर्ति को कांची के कामाक्षी मन्दिर से 1922 ई० में उक्त मन्दिर के भक्तों ने ले जाकर अपने यहां प्रतिष्ठा की है। इसी प्रकार यहां का 'वर्धमान' मन्दिर का 'धर्मदेवी' मूर्ति भी कांची कामाक्षी मन्दिर से लगभग तेरहवीं शताब्दी में ले जा कर अपने यहां प्रतिष्ठा की थी। 'धर्मदेवी' को 'अम्बिका' भी कहते हैं। कुछ ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि प्रस्तुत कामाक्षी मन्दिर प्राचीन काल में एक समय कुछ वर्षों के लिये धर्मदेवी का मन्दिर था। कांची के 'स्वर्ण कामाक्षी' को भी 'धर्मदेवी' नाम से पुकारा जाता था। इससे यह सिद्ध होता है कि वर्तमान कामाक्षी मन्दिर बौद्ध व जैनों का मन्दिर भी था और पश्चात् वैदिक शाक्त मन्दिर में परिवर्तन हुआ है।

(च) कांची में और एक मन्दिर है जो अब कहेजानेवाले कामाक्षी मन्दिर के समीप है जिसे 'आदिपीठपरमेश्वरी' मन्दिर कहा जाता है। यही मन्दिर प्राचीन काल में कांची का शक्तिपीठ था जिसे आचार्य शङ्कर ने जीर्णोद्धार कर वहां श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा कर देवी को सौम्य बनाया था। पुरातत्त्व विभाग का कर्मचारी एवं मदरास राज्यान्तर्गत मन्दिरों के सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री के. आर. श्रीनिवासन का अभिप्राय है कि अब कहेजानेवाले कांची कामाक्षी मन्दिर वास्तव में यह कामाक्षी मन्दिर न था और इस मन्दिर के समीप स्थित 'आदिपीठ परमेश्वरी' मन्दिर प्राचीन काल का शक्तिपीठ था जिसे आचार्य शङ्कर ने सौम्य मूर्ति बनायी थी। उपर्युक्त श्री के. आर. श्रीनिवासन कहते हैं—'The find of many Buddhist sculptures in the temple precincts and the presence of a Jaina Manastamba, sticking out from the roof of the entrance mandapa of the inner enclosure makes us look for the original site of the temple elswhere in Kanchi' '... ... evidently she was worshipped as a form of Durga and a temple called Adi-pitha Parameswari temple, in the vicinity of the modern temple of Kamakshi, containing a very old seated four armed sculpture with three human heads on the pedestal, was perhaps the original site where the Sakti-pitha was installed after the reformation of the worship by Sankara. (Journal of the

Madras University, Vol. XXXII and Sankara Parvati Endowment lectures.)' तंत्रचूडामणि में कहा है कि कांची में सती का अस्थि (कङ्काल) अङ्ग गिरा और यह शक्तिपीठ 'देवगर्भा' के नाम से प्रसिद्ध है। शिवकाञ्ची का काली मन्दिर ही प्राचीन काल में 'देवगर्भा' शक्तिपीठ था—'काञ्ची देशे च कङ्कालो भैरवो रुरुनामकः। देवता देवगर्भाख्यार्नितम्बः कालमाधवे।' इसी शक्तिपीठ को 'आदिपीठ-परमेश्वरी' के नाम से भी पुकारा जाता था।

(छ) कांची में एकाम्रेश्वर मन्दिर के पास अनेक छोटे बुद्ध मन्दिर भी थे। वहां से प्राप्त बुद्ध मूर्तियां इस विषय की पुष्टी करती है। राजकीय पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी श्री पि. आर. श्रीनिवासन उक्त कथन की पुष्टी करते हैं और आप लिखते हैं—'That there was definitely one in the vicinity of Ekamreswara temple is proved by the existance of a number of Buddhist images there.' इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि कामाक्षी मन्दिर छठवीं शताब्दी के पूर्व से ही बुद्ध मन्दिर था। शिवकांची में ग्यारहवीं शताब्दी की बुद्ध मूर्ति प्राप्त हुई है। तेरहवीं शताब्दी की बुद्ध मूर्ति कांची के करुक्किलमरुद अम्मन मन्दिर से प्राप्त हुआ है। भिन्न ढङ्ग में चौदहवीं/पन्द्रहवीं शताब्दी का बुद्ध मूर्तियां एकाम्रेश्वर मन्दिर में प्राप्त हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि कांची में छठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक बौद्ध मत का प्रभाव था और वर्तमान कांची का कामाक्षी मन्दिर एक समय बुद्ध मन्दिर था। यह कामाक्षी मन्दिर चाहे वैदिक मन्दिर से जैनमन्दिर में परिवर्तन होकर पश्चात् बुद्ध मन्दिर बन करके बाद शैवमतावलम्बियों के प्रभाव से पुनः वैदिक मन्दिर में परिवर्तन हुआ हो या जैन मन्दिर से बुद्धमन्दिर बनकर पश्चात् वैदिक मन्दिर बना हो, पर यह निश्चित है कि एक समय में यह कांची का कहेजानेवाले कामाक्षी मन्दिर बुद्ध व तारादेवी का मन्दिर था और इसी मन्दिर में से तीन बुद्ध मूर्तियां प्राप्त हुआ था।

(ज) 1960 में मैं तीन बार कांची कामाक्षी मन्दिर गया था और कामाक्षी मन्दिर का बाहर प्राकार के उत्तर तरफ एक भङ्ग बुद्ध मूर्ति (पद्मासन स्थित नीचे का आधा भाग) अनेक अन्य पत्थर ढोंकों के साथ मिला हुआ पाया। इसे निकाल कर व भङ्ग टुकडों को मिलाकर इस अर्ध मूर्ति का नाप लिया। इसे कामाक्षी मन्दिर का कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति के नीचे अर्ध भाग के साथ तुलना किया तो दोंनों को समान ही पाया। वही पत्थर, रङ्ग, ढांच व नाप था। मुझे मालूम नहीं कि इस भङ्ग अर्ध मूर्ति का ऊपर अर्ध भाग क्या हुआ। वहां मैं ने सुना कि ऐसा भङ्ग मूर्तियां अनेक थी और कुछ पूर्ण मूर्तियों को भी तोड दिया गया। मैं ने सारनाथ में कुछ बुद्ध भिक्षुकों से इस विषय पर चर्चा की थी और आप लोगों का भी अभिप्राय है कि कांची का कामाक्षी मन्दिर प्राचीन काल में बुद्ध मन्दिर था और वहां मैं ने यह भी सुना कि बौद्ध आगम व मन्दिर निर्माण विधि अनुसार बौद्ध मन्दिरों में जहां श्रीबुद्ध देव की मूर्ति (खडा हुआ) प्रतिष्ठित हैं वहां एक पद्मासनस्थित श्रीबुद्ध देव की मूर्ति होना आवश्यक है। कामाक्षी मन्दिर का प्रधान मुख्य बुद्ध मूर्ति खडी हुई पायी गयी है और अन्य मूर्तियां पद्मासनस्थित थी। इससे सिद्ध होता है कि इस कामाक्षी मन्दिर में बुद्ध मूर्तियां अनेक थी और कालान्तर में यह सब नाश कर दिये गये।

(झ) बृहत्-संहिता-प्रतिमा लक्षण में बुद्ध मूर्ति लक्षण का उल्लेख ऐसा किया है—'पद्माङ्कितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिः सुनीचकेशश्च, पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो भवति बुद्धः॥ आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च। दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतांदेवः॥' 'मानसार' अध्याय 56, बौद्ध लक्षण विधान, में ऐसा उल्लेख है—'बौद्धस्यलक्षणं वक्ष्ये सम्यक् च विधिनाधुना। जिनदेवाह्स्थिरं युक्तं स्थानकं च विशेषतः। स्थानकंचासनं वापि सिंहासनादि

संयुतम्। अश्वत्थवृक्ष संयुक्तं कल्पवृक्षं नयान्न्यसेत्। शुद्धंतुश्वेतवर्णंस्यात् विशालानन संयुतम्। लम्बकर्णायताक्षं स्यात् तुङ्गघोणं स्थिताननम्। दीर्घबाहुं विशालाक्षंवक्षस्स्थल च सुन्दरम्। मांसलाङ्ग सुसंपूर्णम् लम्बोदर पूर्णकृतिः। समपाद स्थानकं कुर्याल्लिम्बहस्तं सुखासनम्। द्विभुजं च द्विनेत्रं च उष्णीषोज्ज्वल मौलिकम्। एवं तु स्थानकं कुर्यादासनादि यतोक्तवत्। पीताम्बरधरं कुर्यात्स्थानके चासनेपि च। पीतं वामभुजे चोर्ध्वे सार्धकं सदना ... ...। ... ... वापि दारुशैलं च लोहजम्। चित्रं वा सार्धचित्रं वा चित्राभासमथापिवा। पीठे वा भित्तिकेवापि कुर्यात्कीर्ति च शर्वरा।'

उपर्युक्त लक्षणों को ध्यान में रखकर यदि कामाक्षी मन्दिर का कहेजानेवाले श्री शङ्कराचार्य की मूर्ति के साथ तुलना की जाय तो यह निस्सन्देह सिद्ध होगा कि यह मूर्ति बुद्धमूर्ति थी। लम्बा चौडा मुख या गोल मुख, विशाल माथा, उष्णीषा, लम्बा विशाल नेत्र, मोटा आकृष्ट ओंट, दीर्घ नोकीला नाक, लम्बा लटकता हुआ कान, लटकता कान में बडा छेद, मुख का ढांचा, लम्बा बांह, पूर्ण मांसयुक्त मोटा ताजा शरीर अङ्ग, सुन्दर विशाल छाती, शरीर पर वस्त्र का चिन्ह, माला की तरह उपनीत, पद्मासन स्थित या समपाद रक्खा हुआ, छः शिष्य, चिन्मुद्रा या अभयमुद्रा, पीठ या सिंहासन, आदि लक्षणों को ध्यान में रखकर इस मूर्ती के साथ तुलना करें तो यह निस्सन्देह सिद्ध होगा कि यह मूर्ति बुद्ध मूर्ति है। यदि इस कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति के कपाल का जांच करें तो स्पष्ठ दीखता है कि सिर की चोटी, केश सजावट एवं कपाल का घुंघुहला बाल सब सफाचट कर दिया गया है और इसके चिन्ह कपाल में अब भी कुछ दीखते हैं। इस मूर्ति को मुन्डी बनाने की चेष्ठा में यह कार्य किया गया था। श्री बुद्ध देव का पद्मासन एवं योगपद्मासन में भिन्नता है और कांची की मूर्ति श्री बुद्धदेव पद्मासन स्थित है न कि योगपद्मासनस्थित। चिन्मुद्रा सहित श्री बुद्धदेव की मूर्ति उत्तरी भारत में अनेक हैं और दक्षिणी भारत में नागार्जुन, अमरावती, मङ्गळूर, कदरी, आदि, स्थलों में भी मूर्ति पायी जाती है। आचार्य शङ्कर के चार मुख्य शिष्य ही थे और ये चार आम्नाय मठाधीश बने। भारतवर्ष में अन्यत्र जहां प्राचीन व अर्वाचीन शङ्कराचार्य मूर्ति सब चार शिष्यों का ही है। श्री बुद्धदेव के पांच मुख्य शिष्य थे—कौन्डिन्ग (कोन्डन्न), वप्प (वप्प), भद्रिक (भद्दिय), महनामन् (महनाम), अश्वजित (अस्सजि)—जो विषय सब को विदित है। श्री बुद्धदेव जब गया क्षेत्र में थे उस समय उक्त पांचों शिष्य आपको छोड काशी समीप सारनाथ चलेगये थे। उस समय श्री बुद्धदेव ने एक और नया शिष्य को दीक्षा व शिक्षा देकर अपने साथ रख लिया था। जब श्री बुद्धदेव गया से सारनाथ (काशी समीप) पहुंचे तो ये पांचों शिष्य पुनः आपके शिष्य बन गये थे। इस प्रकार श्री बुद्धदेव के छः शिष्य बने। ये ही छः शिष्य बुद्धदेव मूर्ति के नीचे दिखाया जाता है। कांची मूर्ति में छः शिष्य हैं। इन छः शिष्यों में चार शिष्यों के हाथ में सन्यास दन्ड अर्वाचीन काल में खोदा गया था ताकि सार्वजनिक यह समझें कि यह मूर्ति शङ्कराचार्य का ही है चूं कि आचार्य शङ्कर के चार ही शिष्य थे। इस मूर्ति के बाकी दो शिष्यों के हाथ में दन्ड नहीं है। इसे ध्यान पूर्वक आन्वेषण दृष्टी से जांच किया जाय तो स्पष्ठ प्रतीत होगा कि दन्ड पश्चात् काल में ही खोदा गया था और पूर्वकाल में न था। इन शिष्य मूर्तियों के पूर्ण आकार को शिला में कुछ और गहरा खोद करके पश्चात् दन्ड भी इसके साथ खोदा गया था। इन शिष्यों का वस्त्रधारण 'कच्च' के साथ है जो सन्यासियों में देखा नहीं जाता। सन्यासी लुङ्गी रूप में वस्त्रधारण करते हैं। अन्यत्र प्राप्त बुद्धमूर्ति में शिष्यों का वस्त्रधारण उसी प्रकार है जैसा कि कांची की मूर्ति में पाया जाता है।

श्री बुद्धदेव का बांया हाथ समपाद बुद्धपद्मासनस्थित पाद के ऊपर ही अंगुलियां खुली होती है और दाहिना हाथ मुद्रा का होता है (चिन्मुद्रा, अभयमुद्रा, आदि)। कांची मूर्ति का बांया हाथ पद्मासनस्थित पाद (बुद्ध पद्मासन) के ऊपर ही अंगुलियां खुली हुई है। कांची मूर्ति के सीने व मध्य शरीर में वस्त्र का रूप भी खुदा हुआ है।

दक्षिण भारत में कुछ बुद्ध मूर्तियां हैं जिसे हिन्दू वैदिक मत के देव बना दिये गये हैं। कुछ मूर्तियों पर विभूति चिन्ह, कुछ पर वैष्णव संप्रदाय चिन्ह, कुछ पर मध्व संप्रदाय मुद्रा चिन्ह, आदि देकर वैदिक मत का देव बना दिये गये हैं। वैसे ही यह कांची की मूर्ति अब आचार्य शङ्कर बन गये। मङ्गलूर, कदरी, अमरावती, कांची, आदि स्थलों में ऐसे परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिये एक और दृष्टान्त दिया जाता है। कोल्हापुर का प्राचीन नाम करवीर था। इस नगर मध्य में ब्रह्मपुरी था। महराष्ट्र देश के चार शक्ति पीठों में करवीर का महालक्ष्मी (अम्बा बाई) एक पीठ माना जाता है और अन्य तीन पीठ मातुःपुरा, तुळजापुर एवं सप्तश्रृङ्गी में हैं। अनुसन्धान करने वाले ऐतिहासिकों का दृड अभिप्राय है कि करवीर का महालक्ष्मी मन्दिर एक समय में जैनमत देवी पद्मावती का मन्दिर था और जैनमतवाले आज भी इसे पद्मावती मन्दिर मानते हैं। इस मन्दिर के दिवालों में व खम्बों में अनेक मूर्तियां खुदी हैं जिनमें बहुतेरे बुद्धमत एवं जैनमत के देवदेवियों का मूर्तियां हैं। सम्भवतः वैदिक मन्दिर को जैनमतावलम्बियों ने पद्मावती मन्दिर में बदल दिया हो या वैदिकों ने इसे पद्मावती से महालक्ष्मी मन्दिर में बदल दिया हो। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध ऐतिहासकार श्री के. ए. नीलकण्ठशास्त्री लिखते हैं कि बुद्धमूर्तियों को हिन्दूवैदिक देव में वरिवर्तन किये गये थे—'The renascent Hinduism of the period began the worship of the Buddha at Amravati as an incarnation of Vishnu and seems likewise to have converted many other Buddhist centres into Hindu shrines.' (Page 425). आचार्य शङ्करमूर्ति जो अन्यत्र प्रतिष्ठित हैं वह सब योग पद्मासनस्थित, दक्षिणहस्त चिन्मुद्रा, वामहस्त अभय मुद्रा एवं चार शिष्यों के साथ ही दीखता है। यह लक्षण कांची मूर्ति में दीख नहीं पडता है।

(त्र) मैं ने कांची में इस कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति के वारे में एक दो कथायें वृद्ध विज्ञों से सुनी थी। यह कथा चाहे यथार्थ हो या नहीं पर इस कथा के पीछे अवश्य कुछ मर्म दीखता है। शैवमत पन्डार श्रीस्वामीजी श्रीज्ञान प्रकाश कुछ वर्ष कांची में वास किये और आप नित्य अपनी शिष्य टोली के साथ कामाक्षी मन्दिर आया करते थे। श्रीज्ञानप्रकाशजी का मठ कांची में अब भी है। कामाक्षी मन्दिर के पुजारियों एवं वहां के अन्य ब्राह्मणों ने आपको कामाक्षी मन्दिर आने से रोका। आपके प्रयत्न सब असफल रहे। श्रीज्ञानप्रकाशजी को मन्दिर आने से रोकने में वहां के ब्राह्मणों को अन्य मार्ग दीख नहीं पडा। शैवमत के पन्डार स्वामी महराज आचार्य शङ्कर के सामने अपना सर झुकाते नहीं और आप शङ्कराचार्य मूर्ति की पूजा भी नहीं करते। इसलिये ब्राह्मणों ने निश्चय किया कि यदि आचार्य शङ्कर मूर्ति कामाक्षी मन्दिर के भीतर प्राकार में स्थापना किया जाय तो शैवमत स्वमीजी का मन्दिर आना बन्द हो जायगा। जब शङ्कराचार्य मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का विषय निश्चय हुआ तो कुछ कारणों से आपस में विवाद छिडा और दो दल वन गये। इन दोनों दलों ने प्रतिष्ठा करने का प्रवन्ध भी अलग अलग कर डाला था और दो शङ्कराचार्य मूर्तियां भी तैय्यार हुए। इसमें एक दल प्रभावशाली था और इस दल ने अन्यों से सहायता प्राप्तकर शङ्कराचार्य मूर्ति की प्रतिष्ठा कर दी थी। इसी समय की प्रतिष्ठित मूर्ति है। जब कामाक्षी मन्दिर के अन्य भागों के साथ शङ्कराचार्य का मन्दिर का तुलना की जाय तो स्पष्ट विदित होगा कि शङ्कराचार्य आलय नवीन निर्माणित है। कामाक्षी मूर्ति के पृष्ठ भाग में और अन्य मन्दिर व कमरे भी हैं जो सब एक कतार में हैं पर शङ्कराचार्य मन्दिर कुछ आगे ही बढा है। इस मन्दिर के बगल में खाली जगह पडा हुआ है और प्राचीन काल में शङ्कराचार्य मन्दिर स्थल भी इसी के साथ खाली रहा होगा। जब तक कोई व्यक्ति स्वयं जाकर न देखें तो यह सब विषय दूर से कल्पना कर समझना कठिन है।

(ट) ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने कुम्भकोण मठाधीष को कामाक्षी मन्दिर का ट्रूस्टी पदवीपर 5-11-1842 ई० में नियोजन किया था। वर्तमान मठाधीश ने 1948 ई० में मन्दिर का निर्वाह कार्य छोड ट्रूस्टी पदवी से इस्तिफा दे दी थी। पश्चात् मदरास राजकीय H. R. C. E. बोर्ड के परिचालन में आ गया। अर्थात् लगभग 105 वर्ष कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह कुम्भकोण मठाधीश के हाथ में था। मैं ने कांची में वृद्ध विज्ञों से सुना था कि कुम्भकोण मठवालों ने इस शङ्कराचार्य मूर्ति के नीचे भाग जमीन के अन्दर एक लिङ्ग एवं स्वर्ण बिल्वदल दोनों गाड दिया है। सम्भवतः इस मूर्ति को समाधि बनाने की इच्छा से यह कार्य किया गया हो। यदि लिङ्ग व बिल्वदल आचार्य शङ्कर मूर्ति के नीचे गाडे जाने की कथा सत्य हो तो यह वैदिक आगम शास्त्र प्रकार भूल होगी चूंकि लिङ्ग के ऊपर मूर्ति कि स्थापना की नहीं जाती है। मैं ने यह भी सुना था कि कामाक्षी मन्दिर गर्भगृह के कहेजानेवाले गुफा के साथ एक तहखाना रास्ता भी खोदा गया जिसे शङ्कराचार्य मूर्ति के तहखाने के साथ मिला दिया गया था। सम्भवतः यह दिखाने के लिये कि आचार्य शङ्कर अन्तिम काल में इस गुफा में उतर कर अन्तरध्यान भये और इसलिये कांची आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल है।

(ठ) ब्रह्मीभूत प. प. श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी महाराज, काशी पञ्चगङ्गेश्वर मठ, ने एक कथा सुनायी थी जिसे मैं नीचे संग्रह रूप में देता हूं। आपने कहा—'जब मैं राजमहेन्द्री और नेल्लूर दोनों स्थलों के श्रृङ्गेरी शाङ्कर मठ में आचार्य शङ्कर की मूर्ति की स्थापना करने का निश्चय कर मसुलीपट्टम गया था तो उस समय वहां मेरे एक शिष्य श्री वि. रामचन्द्र राव मिले। आप डिप्टी-माजिस्ट्रेट होकर पश्चात् पेन्शन्दार थे। मैं ने वहां एक शङ्कराचार्य मूर्ति बनवायी थी और दूसरी मूर्ति बनवाने में समय न था। काशी पंचगङ्गेश्वर मठ में एक शङ्कराचार्य मूर्ति स्थापना करने के लिये मैं ने और एक मूर्ति काशी में बनवायी थी। मैं ने सोचा था कि इस काशी मूर्ति को लेकर नेल्लूर में प्रतिष्ठा कर दूं पर शंका उठी कि यह मूर्ति तब तक तैय्यार हो कर नेल्लूर न पहुंच पावें। इसी समय मेरे शिष्य श्री रामचन्द्र राव ने मुझसे कहा कि आप एक शङ्कराचार्य मूर्ति कांची से तुरन्त ला सकते हैं। मैं ने आज्ञादी और मेरे शिष्य ने यह मूर्ति कांची से लाया जिसे मैं ने नेल्लूर शाङ्कर मठ में प्रतिष्ठा कर दी थी। उस समय मेरे शिष्य श्री रामचन्द्र राव ने कांची मूर्ति का वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय से प्राय 100 वर्ष पूर्व (यह कथा मुझको 1934 ई० में सुनाया गया था) कांची में दो दल बन गये थे जो अपनी अपनी मूर्ति कामाक्षी मन्दिर में प्रतिष्ठा करना चाहते थे और दोनों दलों ने मूर्ति प्रतिष्ठा के लिये अपना अलग प्रबन्ध किया था। पूर्व में ही दो मूर्तियां वहां उपलब्ध थे जिसमें से एक मूर्ति जो कामाक्षी मन्दिर में प्रतिष्ठित है वह मूर्ति बुद्धमूर्ति से आचार्य शङ्कर मूर्ति में बदला गया था और दूसरी मूर्ति शिला से उसी समय आचार्य शङ्कर का मूर्ति बनाया गया था। एक दल प्रभावशाली था और राज्याधिकारियों की सहायता प्राप्त कर अपने इस परिवर्तित बुद्ध शिलामूर्ति की प्रतिष्ठा कर दी थी। दूसरी दल को चुप मार बैठना पडा और यही वह दूसरा असल शंकराचार्य मूर्ति है जिसको मैं ने कांची से लाकर नेल्लूर श्रृङ्गेरी शांकर मठ में प्रतिष्ठा की थी।' प. प. श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी के कहे कथा से दो विषय विदित होता है—कांची में दो मूर्तियां थी जिसमें एक मूर्ति श्री बुद्ध मूर्ति से परिवर्तित मूर्ति थी और दूसरी एक आचार्य शङ्कर की मूर्ति जो शिला से उसी समय बनाया गया था एवं कांची की मूर्ति अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित मूर्ति है न कि पुराकाल की प्रतिष्ठित मूर्ति जो विषय कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं।

इतिहास से स्पष्ट मालूम होता है कि दक्षिण भारत में सातवीं शताब्दी के पूर्व प्रायः सब मूर्तियां काठ का ही बनता था। श्रृङ्गेरी की माता शारदा मूर्ति पूर्व काल में चन्दनकाष्ठ की ही मूर्ति थी। सातवीं शताब्दी से ही पत्थर

मूर्तियां बनने लगे। पुराकाल में दक्षिण भारत में 'कल् एडुप्पु' का तात्पर्य मरण होने से पत्थर मूर्तियां भी अमङ्गल समझा जाता था और पत्थर मूर्तियां नहीं बनते थे। अन्य मतावलम्बियों का प्रभाव द्वारा यह विचार भी सातवीं शताब्दी से परिवर्तन होगया और अब पत्थर मूर्तियां बनने लगी। उपर्युक्त पारा संख्या क से ठ तक में दिये गये प्रमाणों से यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि कांची कामाक्षी मन्दिर का कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति अर्वाचीन काल का ही है और यह समाधि भी नहीं है, अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार सब असत्य है।

7. कुछ लोगों का अभिप्राय है कि कुम्भकोण मठ ने कामकोटि पदवी अपने मठ के साथ धारणा करने का तात्पर्य था कि आचार्य शङ्कर ने कांची पर ही कामकला शास्त्र सीखा था और इसलिये कामकोटि नाम पडा। यह कथा केवल कल्पना है और असत्य दीख पडता है। कुम्भकोण मठाधीश की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित पुस्तक में दूसरी कथा सुनायी जाती है। आपका कहना है कि 'कामकोटि' शब्द 'कामकोट्टम' या 'कामगोष्टम्' से आया है और यह पद 'कामाक्षी–कोट्टम्' का परनाम है। अर्थात् कांची नगर का वह भाग जहां मठ है। 'कोट्टम या गोष्टम' पद का अर्थ है—देश या नगर का कुछ भाग। आपका अभिप्राय है कि 'कामकोटि' पद से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन काल में कांची का मठ कामाक्षी मन्दिर के पास या मन्दिर में रहा हो—'**For the name Kama-koti indicates that, from the earliest times, the matha was situated near the Kamakshi temple.**' कांची में कुमरकोट्टम नाम का एक मन्दिर है जो कामाक्षी मन्दिर के पृष्ठ भाग में है। कुम्भकोण मठ व्याख्या के अनुसार 'कुमरकोट्टम' का अर्थ क्या यह कहा जाय 'मठ जो कुमार मन्दिर के समीप है' चूंकि 'कोट्टम' पद का उपयोग किया गया है। वहां मठ नहीं है और ऐसा अर्थ करना भूल होगी। ललितात्रिशती में 'कामकोटि' पद का उपयोग हुआ है जिसका अर्थ—'षण्णवर्ता पीठेषु मध्ये कामकोटिः श्रीचक्रमित्यर्थः' कहा है। ललितासहस्रनाम के एक नामावली में 'कामकोटि' पद है और इसका अर्थ—'काम=परशिवएव, कोटि=एक देशोयस्याः' कहा है।

ग्यारहवीं शताब्दी श्रीराजेन्द्रचोळ I के समय से ही अलग देवी (अम्मन) मन्दिर बनने लगा था जिसे 'तिरुक्कामक्कोट्टम' कहा जाता था और ऐसे मन्दिर शिव व विष्णु मन्दिरों के साथ निर्माण किये गये थे या पूर्वस्थित मन्दिरों के साथ जोडे गये थे जैसे बृहदीश्वर–बृहन्नायकी, रङ्गनाथ–रङ्गनायकी, सुन्दरेश्वर–मीनाक्षी, एकाम्रेश्वर–कामाक्षी, विश्वनाथ–विशालाक्षी, आदि। ऐसे नवीन मन्दिर बारहवीं शताब्दी से ही निर्माण किये गये थे। इन दिनों में देवी मन्दिर का नाम 'कामकोट्टम' था। यह नाम प्रधान देवी मन्दिर के नाम से ही लिया गया हो या देवी पीठ के नाम से लिया गया हो या कांचीपुर की देवी जिसे कामाक्षी पुकारा जाता था उस देवी से वैदिक शाक्त संप्रदाय का नाम लिया गया हो। आचार्य शङ्कर ने इस कांची मन्दिर का जीर्णोद्धार करके श्रीचक्र का पुनः प्रतिष्ठा करने से ही इस मन्दिर की ख्याती बढ गयी थी। गोट्लगट्टू नेलूर जिला शिलालेख नं 16 (जिसका काल मालूम नहीं पडता है) में कांची कामकोटि का उल्लेख है। एक और लेखन 1259 ई० का है (त्रिपुरान्तकम्–कर्नूल जिला) जिसमें 'कामकोट्याम्बिका' के एक भक्त का भी नाम उल्लेख है। कांची कामाक्षी मन्दिर का काल ग्यारहवीं शताब्दी के कुछ पूर्व काल का ही है यद्यपि इस मन्दिर का शिलालेखन चौदहवीं शताब्दी का ही अब तक मिले हैं। धर्मपुरी (सेलम जिला) का कामाक्षी मन्दिर का काल ग्यारहवीं शताब्दी का निश्चित होता है इसलिये कांची का कामाक्षी मन्दिर का काल अवश्य ही धर्मपुरी मन्दिर के काल के पूर्व का ही होना निश्चित होता है। दक्षिण भारत के तीन माननीय नायनमार—श्रीअप्पर, श्रीसुन्दर, श्रीसम्बन्दर, तीनों ने 'कामकोट्टम' का उल्लेख किया है (अप्पर तेवारम 6285,

सम्बन्दर तेवारम 1855, सुन्दर तेवारम 7271)। ये आदरणीय वैदिक शैव सिद्धान्ती महानों ने सातवीं/आठवीं शताब्दी में ही कामकोटि का नाम लेने से ही प्रतीत होता है कि यह शक्तिपीठ आचार्य शङ्कर के पूर्व काल का ही पीठ है, और इस पीठ की नवीन प्रतिष्ठा आचार्य शङ्कर ने नहीं की थी। इसलिये कुम्भकोण मठ का कथन है कि यह कामकोटि पीठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित है सो भूठ व असत्य है। आचार्य शङ्कर ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कर, श्रीचक्र की अशुद्धता निवारण कर, उग्रता को शान्तकर, मूर्ति को सौम्य बनाया था। यह पीठ आचार्य शङ्कर द्वारा नवीन निर्माण नहीं है जैसा कि शृङ्गेरी, द्वारका, बदरी व पुरी में आचार्य शङ्कर ने प्रतिष्ठा की थी।

श्री अप्पर ने 'कामकोडि' पद का उपयोग किया है। 'कोडि' तामिल भाषा में 'लता' को कहते हैं। 'कामकोडि' अर्थात् कामलता है। पुराण का उमादेवी की कथा का ही उल्लेख करता है। उमा ने (कामलता-कामकोडि) शिव को (कम्बम् अर्थात् लता का सहायक खम्बा जिसपर लता लिपटती है) जैसे लिपट कर आलिङ्गन किया था, वही 'कामकोडि' या 'कामलता' है। यहां कामकोडि पद का उपयोग 'कामाक्षी' या कामकन्नी' के बदले किया गया है। इन सब प्रमाणों मे सिद्ध होता है कि कामकोटि (जो 'कामकोडि' का अपभ्रंश पद है) पद का यह अर्थ नहीं है कि 'मठ जो कामाक्षी मन्दिर समीप है' जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है पर यह देवी का नाम ही है। उपर्युक्त पारा में दिये हुए विषयों का विस्तार विवरण 'Journal of the Madras University Vol XXXII, July, 1960.' में पाया जाता है। उक्त पुस्तक में लिखा है—'The term Kottam in the latter silpa works denotes a rectangular shrine with a wagon top or S'ala roof which is invariably a feature of Devi shrines.'

कांची कामाक्षी मन्दिर का श्रीचक्र अर्धगर्भगृह में है न कि मूलविग्रह कामाक्षी के समीप गर्भगृह में है जैसा कि आगम शास्त्रानुसार होना चाहिये था। अर्धगर्भगृह वह स्थान है जहां से पूजापाठ किया जाता है। सोलहवीं शताब्दी में वेलूर के लिङ्गप्पा नायक के काल में एक महान् श्री नरसिंहाध्वरी थे जो यागादि पुण्य कर्म करते थे। आपने कांची कामाक्षी मन्दिर में कामकोटि श्री चक्र की प्रतिष्ठा की थी (शिलालेख नं० 349—1954/55 ई०)। इससे प्रतीत होता है कि प्रस्तुत कामाक्षी मन्दिर का श्रीचक्र प्रतिष्ठा सोलहवीं शताब्दी का ही है। दक्षिण भारत में पत्थर के मन्दिर व मूर्ति सब ग्यारहवीं शताब्दी में प्रथम बनने लगे थे। कामाक्षी मन्दिर का प्राचीन शिला लेख चौदहवीं शताब्दी का ही मिलता है और यहां का श्रीचक्र प्रतिष्ठा सोलहवीं शताब्दी का ही है। एक मार्के की बात है कि कामाक्षी मन्दिर के पूर्व व पश्चिम द्वार समीप एक मूर्ति जो पत्थर पर खुदा है और जिसे कुम्भकोण मठ एवं आपके सर्वज्ञ विद्वान व प्रचारक आचार्य शङ्कर का मूर्ति होने का प्रचार करते हैं सो प्रचार सरासर मिथ्या है। शिला लेख द्वारा (Indian Epigraphy 1955/56) सिद्ध होता है कि उक्त मूर्ति एक 'कामाक्षीश्वर भारती श्री पादङ्गळ' का ही है, न कि आचार्य शंकर का। कुम्भकोण मठ का 'इन्द्रसरस्वती' भी यहां उल्लेख नहीं है ताकि कुम्भकोण मठ कल्पना कर अपना सम्बन्ध जोड सकें। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ का योगपट्टों में एक अङ्कितनाम 'भारती' है और सम्भवतः आपका सम्बन्ध शृङ्गेरी मठ से ही रहा हो।

कुम्भकोण मठ प्रचारानुसार कामकोटि का अर्थ जो मठ कामाक्षी मन्दिर समीप है। कुम्भकोण मठ अपने ताम्रशासन द्वारा प्रचार करते हैं कि आपका मठ प्राचीन काल में विष्णु कांची में वरदराज स्वामी मन्दिर के पश्चिम में था। पाठकगण इस ताम्र पत्र नम्बर एक पर विमर्श पांचवें अध्याय में पढ चुके होंगे जहां प्रमाणयुक्त सिद्ध किया गया है कि यह शासन पत्र अविश्वसनीय है। कुम्भकोण मठ के कल्पित मठाम्नाय में भी विष्णु कांची में मठ होने का कहता है।

यदि इसे मान लें तो उपर्युक्त कथन कि 'मठ जो कामाक्षी मन्दिर समीप है' सो असत्य हो जाता है। इस आक्षेप के उत्तर में यह भी प्रचार किया जाता है कि मूल मठ कामाक्षी मन्दिर समीप है और यह विष्णु कांची का मठ शाखा मठ या कुछ बर्षों के लिये निवास मठ था। कुम्भकोण मठ का प्रधान मठ शिव कांची में है। इससे प्रतीत होता है कि कांची में आपका मठ तीन जगहों में हैं। कुम्भकोग मठ से प्रकाशित मठाम्नाय में स्पष्ट उल्लेख है कि 'कामकोटी शारदा मठ' 'सत्यव्रतक्षेत्र' में है अर्थात् जिसे 'अत्तियूर' कहते हैं जो वर्तमान विष्णु कांची है। एक प्रचार पुस्तक जो कुम्भकोण मठाधीश की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है इसमें कांची मठ कामाक्षी मन्दिर समीप होने का कहा गया है? क्या वर्तमान मठाधीश को उनका मठाम्नाय अग्राह्य है? इन दोनों भिन्न कथनों में कौन कथन सत्य है? ताम्रशासन के समर्थन में कांची मठ का कल्पित मठाम्नाय को प्रमाण में दिखाया जाता है और 'कामकोटि' पद व्याख्या समर्थन में प्रचार होता है 'जो मठ कामाक्षी मन्दिर समीप है।' समयानुसार आक्षेपों के उत्तर में भिन्न प्रचार भी किया जाता है।

कामाक्षी मन्दिर समीप का मठ—कांची में मैं ने एक स्थानीकर से सुना कि कांची कामाक्षी मन्दिर के सामने की कामाक्षी सन्नधि वीथी में एक मकान है जो स्थानीकर श्रीवांचीनाथ शास्त्री का था और श्रीवांचीनाथ शास्त्री के मरण पश्चात् आपकी बहू श्रीमति षण्बग अम्माल ने कुम्भकोण मठ को अपने इस मकान को दान में दिया है। यह दान तीन या चार साल पूर्व ही दिया गया था। कुम्भकोण मठ का अन्य कोई मठ या मकान इस मकान के अलावा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि 'कामकोटी' पद व्याख्यानुसार 'मठ जो कामाक्षी मन्दिर' समीप है सो असत्य कथन है। किसी समय में भी कांची कुम्भकोण मठ का मठ कामाक्षी मन्दिर समीप न था। सम्भवतः कुछ वर्षों के पश्चात् यह मकान जो अब दान में मिला है वही पुराकाल का मठ होने का प्रचार भी कर सकते हैं। आगामी काल में यह प्रचार करना सुविधा ही होगी कि कांची मठ जो प्राचीन काल में कामाक्षी मन्दिर के स्वामी थे आपने कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर को ही दान में उक्त मकान दिया था और कालान्तर में उनकी सन्तती न होने से पुनः आपको ही मिल गया और इसलिये 'कामकोटि' पद का अर्थ जो है 'मठ जो कामाक्षी मन्दिर समीप' सो सत्य ही है। कुम्भकोण मठ के भ्रामक व मिथ्या प्रचारों को पढते पढते उनकी कल्पना के भाव द्वारा उक्त कल्पना लिखी गयी है। कल्पना जगत की थाह पकडना कठिन है। काशी में कुम्भकोण मठ प्रचारकों से सुना था कि कांची कामाक्षी मन्दिर समीप मठ है पर जब मैं कांची पहुंचा वहां एक भी न पाया।

कामाक्षी मन्दिर समीप खुली जमीन है जहां प्राचीन काल का मकान व मन्दिर का कुछ जीर्ण शिथिल भाग अब भी दीख पडता है। इसके अलावा कामाक्षी मन्दिर समीप और कोई मकान नहीं है। यह कहा जाता है कि कामाक्षी मन्दिर के एक (स्वर्गीय) नीलकल अरुणाचल शास्त्री ने अपना मकान व भोगसिद्धिविनायक मन्दिर और छः खम्बा मन्डप श्रीकामाक्षी को दान दिया था और जब जनवरी माह 1843 ई० में प्रथमबार कुम्भकोण मठाधीष को ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी राज्य ने कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियोजन किया था तब आपने इस मकान व मन्दिर को भी अपना बना लिया था। मैं ने यह भी सुना था कि इस मकान का एक भाग को बेच दिया गया था और पश्चात् कुम्भकोण मठ ने इस विषय पर मुकद्दमा भी जारी कर दी थी। अन्त में यह निश्चित् हुआ कि इस मकान का चौथाई भाग जिसने पूर्व में खरीदा था उसे दे दिया जाय और बाकि तीन चौथाई कुम्भकोण मठ की संपत्ति हो जाय। यह जगह कामाक्षी मन्दिर समीप व काली मन्दिर एवं कुमरकोट्टम् के पीछे तथा कुमरकोट्टम् मन्दिर तटाक के बगल में है। जनवरी 1843 ई० में कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी बने और 5-2-1843 ई० में एक वेंकटसुब्बा शास्त्री ने

एक रुपये स्टाम्प कागज पर एक पत्र लिखा था कि श्रीनीलकण्ठ अरुणाचल शास्त्री को एवं उनके आनेवाले सन्तती को भोगसिद्धिविनायक मन्दिर की पूजा सेवा के लिये कामाक्षी मन्दिर के आय से चार फीसदी दी जायगी। यह मकान व मन्दिर श्रीनीलकण्ठ अरुणाचल शास्त्रीजी का ही था और चूंकि आपने इस संपत्ति को कामाक्षी मन्दिर के लिये दे दिया था इसलिये यह प्रबन्ध विनायक मन्दिर की पूजासेवा के लिये किया गया था। मैं ने कांची में यह भी सुना था कि श्रीनीलकण्ठ अरुणाचल शास्त्री ने अपने से प्रथम दिया हुआ शासन को रद कर पुनः अपना मकान व मन्दिर दोनों दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ को दान में देकर एक शासन पत्र भी लिख दिया था। चाहे जो हो, यह सब विवरण देने का यही उद्देश्य है कि कामाक्षी मन्दिर समीप में कोई मकान या मठ कुम्भकोण मठ का नहीं है और जो कुछ आसपास की जमीन थी वह भी आपको अर्वाचीन काल में मन्दिर द्वारा प्राप्त हुआ था। कोई भी प्रमाण द्वारा यह सिद्ध किया नहीं जा सकता है कि कुम्भकोण मठ का मठ या जमीन अनादि काल से कामाक्षी मन्दिर समीप ही था।

विष्णु कांची का मठ—विष्णु कांची वरदराज मन्दिर के पश्चिम भाग में एक मठ है जिसका म्युनिसिपल दर्वाजा नम्बर 8 A व B एवं 9 A, B व C है जो आनैकट्टि वीथी में है। इसका टाउन सर्वे नम्बर (1912 ई०) 1047, 1047/1, 1044, 1044/1 एवं 1044/2 है। पुराना सर्वे नम्बर 620–4/Y है। यह मकान शंकराचार्य के नाम पर है। यह कहेजानेवाले मठ निवासस्थल मकान की तरह दीखता है और आधे से ज्यादा जमीन खुली जमीन है। पीछे तरफ कुछ कमरे हैं। यहां ब्रह्मचारी वास करते हैं और वेद शास्त्र पढते हैं। मकान अर्वाचीन काल का दीख पडता है। मैं ने वरदराज मन्दिर के वृद्ध अधिकारियों से इस मठ का वृत्तान्त सुना कि लगभग 175 वर्ष पूर्व यह सारी जगह जहां अब कुम्भकोण मठ है वह सब जमीन एक मध्व ब्राह्मण की थी और इसे खरीदी गयी थी। मैं कांची मध्व मठ एवं जीयर मठ भी गया था और इन जगहों से यही वृत्तान्त मिला। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक (1957 ई० में प्रकाशित) में आप स्वयं मानते हैं कि यह वास स्थल मकान है और मठ रूप में दीखता नहीं है—'The appearance of the Mutt may be disappointing for it is a very small building, more like a house and with no pretentions of any kind.' यह नवीन निर्माणित मकान व जमीन अर्वाचीन काल में खरीद कर 508 क्रिस्तपूर्व या 12 वीं शताब्दी पूर्व से ही होने का प्रचार किया जाता है। 1111 ई० या 1291 ई० के ताम्रशासन के प्रमाण में कहते हैं कि उक्त मठ को ही ताम्रशासन में उल्लेख किया है। कुछ कमरा जो समीप काल में निर्माणित है उसे छोड कर यहां और कुछ नहीं दीखता। यह असम्भव है कि कांची के 'सार्वभौम जगद्गुरु मठाधीश' अपने अनुयायियों व कर्मचारियों के साथ एवं पूजासामग्री के साथ इन दो चार कमरों में वास किये हों। कल्पनात्मक कथा की सीमा भी होती है पर यहां तो सीमातीत है। यह कहना भूल न होगी कि अर्वाचीन काल में ही यह जमीन खरीदी गयी थी और इसके कुछ हिस्से में दो चार कमरे बनवाये गये ताकि यह सिद्ध करने में सुविधा हो कि 1111 ई० या 1291 ई० का ताम्रशासन आपका ही है। पाठकगण इस ताम्रपत्र (नम्बर-एक) पर विमर्श पांचवें अध्याय में पायेंगे जहां यह सिद्ध किया गया है कि यह ताम्रपत्र अग्राह्य व अविश्वसनीय है और इसका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ के साथ नहीं है।

शिव कांची का मठ—शिव कांची सालै वीथी में नम्बर एक मकान ही प्रस्तुत कांची मठ है और यही आपका प्रधान केन्द्र है। इसका टाउन सर्वे नम्बर (1912 ई०) 2377 हैं और प्राचीन सर्वे नं 925 है। म. म. कोकन्ड वेंकटरत्नं पन्तुलु ने 1876 ई० में 'शांकरमठतत्वप्रकाशिका' पुस्तक लिखी है और वहां आप लिखते हैं कि 40 या 50 वर्ष पूर्व कुम्भकोण मठ ने इस मकान को खरीदकर मठ बनाया था और पूर्व काल में यह मकान एक

अग्राह्मण का था। सालै वीथी के दो भाग हैं। एक भाग जो सालै वीथी अन्त से एकाम्रेश्वर मन्दिर तक का है जहां दोनों तरफ निवास मकान हैं और जिसे अग्रहारम कहा जाता है। इस भाग में दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ का शाखा मठ है। सालै वीथी का दूसरी भाग वह है जो एकाम्रेश्वर मन्दिर से वीथी प्रारम्भ तक का है। यहां दोनों तरफ दुकाने हैं और यह वाजार की तरह दीखता है। इसी भाग में कुम्भकोण मठ का कांची केन्द्र मठ है। कुम्भकोण मठ के बाहर आहाते में दो तरफ दुकाने हैं। इस पुराने मकान-मठ को तोड कर अब इस जगह एक नवीन मठ खडा होगया है जो आधा पत्थर का बना है और आधा सीमेन्ट कांक्रीट का है। अभी हाल ही में यह नवीन मठ बन कर तैय्यार हुआ है। मठ के अन्दर कहा जाता है कि श्री सुरेश्वराचार्य का मन्दिर व समाधि है एवं श्री आचार्य शङ्कर का भी मन्दिर है। इस मठ के भीतर कुछ तुलसी मन्डप भी हैं। इस मठ के पिछे बगीचा भी है। इस मठ के समीप एक मसजिद भी है। प्राचीन काल में एकाम्रेश्वर मन्दिर का यह 'वाहन मन्डप' था जिसे तोड कर और उसी पत्थर को उपयोग कर मसजिद खडा किया गया है। करीब 250 वर्ष पूर्व अर्काट के नवाब ने इस मसजिद को बनवाया था। कुम्भकोण मठ के सामने एक मन्डप है जिसे 'गङ्गण्ण मन्डम' कहते हैं और यह विष्णु कांची वरदराज मन्दिर का है। इस गङ्गण्ण मन्डप के वगल में एक 'वैभोग मन्डप' है जो प्रचीन काल में कामाक्षी मन्दिर का था। इस मन्डप को 'अम्वट्टन् मन्डप' भी कहते हैं। इस मन्डप में दूकान हैं और किराये में दिया गया है। मैं ने वहां सुना था कि यह मन्डप जो एक समय कामाक्षी मन्दिर का था सो अब बदल कर कुम्भकोण मठ के नाम पर कर दिया गया है और म्युनिसिपल कर भी मठ के नाम से दिया जाता है। मैं ने इस विषय का छानवीन किया नहीं है।

मैं ने एक पुराकाल के रिकार्ड में देखा था कि जमीन जिस पर ये दोनों मठ (विष्णुकांची व शिवकांची) खडे हैं वह जमीन प्राचीन काल में 'गवरमेन्ट पुरम्बोक्कु जमीन' था और इस जमीन को 'विलेज साइट' भी कहा गया है। अर्थात् प्राचीन काल में इस जमीन का कोई पट्टेदार न था और राज्य के आधीन था। पश्चात् राज्य ने इस जमीन को टुकडों में विभाजित कर निवास के लिये आम पवलिक को बेचा गया था जिसे 'विलेज साइट' कहते हैं। इससे स्पष्ठ मालूम होता है कि प्राचीन काल में यह जमीन जहां मठ है सो कांची मठ का न था और अर्वाचीन काल ही में प्राप्त किया गया था। इस विषय का छानबीन के लिये एवं यथार्थता जानने के लिये मैं ने मदरास राज्य के साथ पत्र व्यवहार किया था पर इस प्रयत्न में असफल रहे। विष्णु कांची का कहेजानेवाले प्राचीन कांची मठ का विवरण—'**Ward No I; Revised Survey No. and Sub-division—1025/1 to 1048; Old Survey No. 620—4/Y; Government Purrambokku land; extent 1—82; Assessment—Nil; Registry—Village site.** शिव कांची सालै वीथी का मठ विवरण—'**Ward No. IV; Revised Survey No. and sub-division—2377; old Survey No. 925; Inam dry lands; extent 0—01 cent; Assessment *0—1*; Registry—Manager Sankaracharya Mattam.**' इन विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि विष्णु कांची की जमीन एक समय राज्य के आधीन था और इसको टूकडों में विभाजिन कर पश्चात् बेचा गया था। कुम्भकोण मठ का कथन है कि विष्णु कांची का मठ 1111 ई० या 1291 ई० के पूर्व का ही है (ताम्रपत्र शासनानुसार) सो कथन असत्य दीख पडता है। शिव कांची की जमीन 'इनाम सूखा जमीन'. है और केवल एक सेन्ट (100 सेन्ट जमीन एक एकड आर्थात् 4840 वर्ग गज) शङ्कराचार्य के नाम पर है। क्या 1 सेन्ट जमीन पर मठ निर्माण किया जा सकता है? इससे प्रतीत होता है कि बाकी जमीन का विवरण यहां पाया नहीं जाता है। मैं ने इन विषय पर यथार्थता जानने के लिये कुम्भकोण मठाधीश को

11/12—8—1960 के दिन एक पत्र लिख भेजा था और खेद की बात है कि उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। मदरास राज्य से लिखापढी की थी और विवरण जानने में असफल रहे। यह सब विषय अन्धकार के गर्भ में धसा हुआ है। मेरा तो अभिप्राय वही है जो म. म. को. वेंकटरत्नम पन्तुलु ने 1876 ई० में लिखा था। सालै नीथी (शिव कांची) मठ के आसपास जमीनों का पट्टदारों का विवरण मिलता है पर इस मठ का पुराकाल का विवरण नहीं मिलता।

पाठकगणों की जानकारी के लिये मैं संग्रह रूप में पत्र व्यवहार का विवरण देता हूं और यदि कोई पाठकगण इस विषय पर आन्वेषण कर सत्यता को प्रगट करें तो मैं कृतज्ञ हूंगा। कन्जीवरम के सब-रेजिस्ट्रार अपने पत्र 12—2—1936 में लिखते हैं कि आपके यहां रिकार्ड 1865 ई० से ही प्रारम्भ होकर मिलते हैं और आपको मालूम नहीं कि इसके पूर्व काल का रिकार्ड कहां उपलब्ध होगा—'Records are available in this office from 1865; no information is available in this office as to where the records prior to this could be secured.' इसके पश्चात् Inspector-General of Registration को लिख पूछा था कि कहां रिकार्ड उपलब्ध होंगे और आप अपने पत्र ता: 13—4—1936 में लिखते हैं कि अर्जदार मदरास-चेङ्गलपेट के रेजिस्ट्रार को लिख कर विषय जान सकते हैं—'The petition of Pandit J. G. Visvanatha Sarma dated 17—2—1936 is forwarded to the Registrar who is requested to get the necessary application and fees from the petitioner and then cause the search to be made and communicate the result to him. The petitioner is referred to the Registrar of Madras—Chingleput.' इसके पश्चात् मेरे पूज्य पिताने मदरास-चेङ्गलपेट रेजिस्ट्रार को पत्र लिख पूछा था कि कांची मठ का विवरण 1825 ई० से 1840 ई० तक का दिया जाय। रेजिस्ट्रार ने अपने पत्र 20—8—1936 में लिखते हैं कि आपकी खोज 1825/40 ई० का निष्फल था—'A search made in the years 1825 to 1840 proved fruitless.' इसके पश्चात् 1841 से 1850 ई० तक खोजकरने के लिये पुनः प्रार्थना की गयी थी जिसके उत्तर में रेजिस्ट्रार ने अपने पत्र ता: 29—7—1940 को लिखते हैं कि अर्जदार कञ्जीवरम सब-रेजिस्ट्रार को लिख पूछें चूंकि संपत्ति कंजीवरम में है—'As the property affected in the document relates to Sub-Registrar, Conjeevaram, there may all the more possibility of its being registered in that office.' पुनः मदरास–चेङ्गलपेट रेजिस्ट्रार को पत्र लिख कर कहा गया कि कंजीवरम में 1865 ई० के पूर्व काल का रिकार्ड प्राप्त नहीं होते, अतः उनको लिखना निष्प्रयोजन है। आपको कंजीवरम से प्राप्त पत्र का नकल भी भेजा गया था। उत्तर न आने पर पुनः स्मरण पत्र भेजा गया था पर इसका भी उत्तर प्राप्त न हुआ। कंजीवरम के सब रेजिस्ट्रार लिखते हैं कि कांची में 1865 ई० के पूर्व काल का रिकार्ड उपलब्ध नहीं हैं और ऐ. जि. रेजिस्ट्रेषन् लिखते हैं कि मदरास–चेङ्गलपेट रेजिस्ट्रार के पास रिकार्ड हैं और अन्त में मदरास–चेङ्गलपेट रेजिस्ट्रार लिखते हैं कि कंजीवरम सब रेजिस्ट्रार के पास रिकार्ड हैं। पाठकगण जान गये होंगे कि इन सब पत्रों के पीछे क्या मर्म छिपा है। मदरास राज्य यह नहीं जानता कि रिकार्ड कहां उपलब्ध होगा।

मैं ने ऐ. जि. रेजिस्ट्रेषन, मदरास को, 11—8—1960 के पत्र में उपर्युक्त विवरण देकर पूछा था कि 1800 ई० से 1825 ई० का रिकार्ड कहां प्राप्त हो सकता है? आप अपने पत्र ता. 24—1—61 को लिखते हैं कि 1865 ई० के पूर्व काल का मदरास-चेङ्गलपेट जिलों के रिकार्ड सब मदरास रिकार्ड आफीस में उपलब्ध होते हैं

और वहां जांच की जा सकती है—'I write to inform you that old records prior to the introduction of Registration Act, 1865, relating to Madras and Chingleput districts are kept in Madras Record Office. You may, therefore, apply to that office for search.' उपर्युक्त उत्तर प्राप्त होने के पूर्व, मैं ने Secretary, Board of Revenue, Land Revenue, को विवरण देकर पूछा था कि आप अपने रिकार्डों से पुराना सर्वे नं. 925, 620-4/Y एवं 837-I के पट्टादारों का नाम दें। पुनः 7—11—1960 को लिखकर पूछा था कि आप कृपया 'रेजिस्टर' को देखने की मुझे अनुमति दें। उत्तर प्राप्त न होने पर पुनःस्मरण पत्र 2—12—1960 को भेजा गया। Board of Revenue Office (LR) का पत्र ता. 23-12-60 में लिखते हैं कि 'पुराना सेटलमन्ट रेजिस्टर' व 'पैमायिष रेजिस्टर' 1800 ई० से 1830 ई० तक का न आपके यहां उपलब्ध है या न मदरास रिकार्ड आफीस में-' With reference to his letter cited the applicant Sri J. V. Rajagopala Sarma is informed that the old settlement and the Paimaish register for the period from 1800 to 1830 are not avilable in this office or in the Madras Record Office, Madras.' द्वितीय बार भी देखा कि दुनिया गोल है। जहां से मैं चला था वहीं पुनः पहुंच गया। ऐ. जि. रेजिस्ट्रेषन लिखते हैं कि मदरास रिकार्ड आफीस में रिकार्ड उपलब्ध हैं और मदरास रिकार्ड आफीस लिखते हैं कि आपके यहां रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। इसमें रहस्य है।

जब तक प्रमाणयुक्त रिकार्डों के द्वारा कुम्भकोण मठ यह सिद्ध न कर सके कि आपका कांची मठ अनादि काल से (कुम्भकोण मठ कथनानुसार 508 क्रिस्त पूर्व से या आचार्य शङ्कर का काल आठवीं शताब्दी से) आपके निर्वाह में आ रहा है जैसा कि अन्य चार आम्नाय मठ दिखाते हैं तब तक यही कहा जायगा कि कांची मठ अर्वाचीन काल में निर्माणित मठ है। कांची में मैं ने श्रृङ्गेरी मठ देखा है और यह मठ अग्रहार में है। श्रृंगेरी मठाधीश श्रीविद्यारण्य चौदहवीं शताब्दी में अपने शिष्य विजयनगर महाराज श्रीहरिहर II से कांची कामाक्षी आलय विमान की मरम्मत एवं गोपुरम् का निर्माण आदि कार्य कराया था। आपके अनेक शिष्य (गृहस्थ व यति) कांची क्षेत्र व आसपास सीमा में परिभ्रमण करते हुए धर्मप्रचार करते थे। श्रृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु श्रीसच्चिदानन्द भारती I (1705-41 ई०) व जगद्गुरु श्रीअभिनव सच्चिदानन्द भारती (1741-66 ई०) व जगद्गुरु सच्चिदानन्दभारती III (1770-1814 ई०) आदि आचार्य महापुरुष कांची क्षेत्र आकर यहां के भक्त शिष्यों को आशीष दी थी। 19 वीं शताब्दी में श्रृङ्गेरी मठाधीश जगद्गुरु नरसिंह भारती VIII कांची क्षेत्र पधारे थे। आप पुनः 1871 ई० में अपने शिष्य के साथ कांची पधारे थे। कांची के वृद्ध सज्जन आज भी इन आचार्यों के चरित्र से अनेक विचित्र विस्मय घटनाओं की कथा सुनाते हैं। वर्तमान श्रृङ्गेरी मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीअभिनव विद्यातीर्थ महाराज 1961 ई० में कांची पधारे और आप अपने शिष्य भक्तों को आशीष दी थी। आपका यह कांची विजययात्रा स्मरणीय एवं आनन्ददायक था।

श्री के. आर. वेंकटरामन्, भूतपूर्व डि. पि. ऐ. (पुदुकोट्टै राज्य), 'हिन्दू' पत्रिका ता: 1-8-1960 में लिखते हैं—' The Carnatic Wars and the political and social choas that prevailed in South India were not congenial to long pilgrimages with a large retinue, but nothing daunted, Sri Abhinava Sachchidananda Bharati (1741—66), who travelled all over the carnatic with a rahadari furnished by Maharaja Krishnaraja Wadiyar II of Mysore and was received and entertained by the prince in the carnatic and

the East India Company, Sri Sachchidananda Bharati III (1770—1814) was in the neighbourhood of Madras in 1792, when Tippu was on a brief visit to Kanchi, where he executed repairs to the main gate of the Ekambareshwara Temple, which had been pulled down by his father's army. Tippu 'employed a large number of Brahmins to perform Hindu religious ceremonies .... invited the Sankaracharya of Sringeri to be present at Kanchi to supervise the rites of worship—(Şardesai)' इसे पढने पर सन्देह होता है कि क्यों कांची मठाधीश (यदि कांची में मठ होता तो) कांची छोडकर कुम्भकोण गये जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है जब श्री शृङ्गेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज उसी कर्नाटक युद्ध काल में कर्नाटक देशों में भ्रमण कर रहे थे और आपको कुछ भी आपत्ति या हानि न हुई। 1792 ई० में टीपू से शृङ्गेरी जगद्गुरु मठाधीश को कांची विजययात्रा करने की प्रार्थना करना, आपसे कांची एकाम्रेश्वर मन्दिर का संप्रोक्षण कराना, भङ्ग किये गये मन्दिर का पुनः निर्माण करना, आदि कार्य मार्के का विषय है। यदि कांची में 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' (कुम्भकोण मठ कथनानुसार) मठ होता तो अवश्य ऐसे यतिसम्राट कांची मठाधीश को भी बुलावा भेजा होता या इन कार्यों को आपके पास सौंपा होता।

वालाजा नवाब के राज्य में (1763 ई०) हिन्दू वैश्य जाति का वर्णाश्रमाचार विषय में एक झगडा छिडा जो नवाब के पास फैसला करने के लिये आया। यह घटना कांची में घटी जो उनके राज्यान्तर्गत था। नवाब ने इस विषय पर निर्णय पाने के लिये 'लोकगुरु शङ्कराचार्य शृङ्गेरी' से प्रार्थना की कि आप इस विषय पर निर्णय दें— '... ... ... it was referred to the Nawab of Walaja, who after referring to the Royal grants as to castes existing at Conjeevaram, referred the matter to the 'Loka Guru Sankaracharya Swamigal of Sringeri' and he decided against the Beri Chetties, who were then fined by Ghulam Mohideen Sahib. This refers to exhibit MM, the order of the Nawab to Ghulam Khan to levy 12,000 Varahans from the Beris as fine.' (Para 53 of the printed judgment). नवाब ने शृङ्गेरी शङ्कराचार्य से दिये हुए निर्णय के आधार पर अपना फैसला भी दिया था। इस बयान को कलक्टर ने 21-1-1821 के दिन रिकार्ड किया था और इस कलक्टर के पत्र को मदुरा जिला के एक मुकद्दमा नं O. S. 76 of 1909 (O. S. 418 of 1908 and A. S. 130 of 1910) में पेश किया गया था—'Exhibit Q 4 is important as it is of 1821 and is a statement made to the collector by one of the komatties, when the disputes arose over the Ruby Lila. I only here refer to it, because in it he states that there was a previous dispute between themselves and the Beri Chetties over the same matter ....' (Para 53 of the printed judgment). इस मुकद्दमे में नवाब ने जो इनायातनामा 1763 ई० में दी थी, इसे भी कचहरी में पेश किया गया था-'Plaintiffs exhibits MM, MM-1 and MM-2 of 1763-Inayuthnamah issued by Nawab to Plaintiff's ancestors in Persian.' यदि कांची में शङ्कराचार्य का निजमठ होता तो अवश्य वालाजा के नवाब कुम्भकोण मठाधीश से निर्णय मांगते। वालाजा से बहुदूर शृङ्गेरी को क्यों पत्र लिखा गया था? वर्णाश्रमाचार विषय में शृङ्गेरी से क्यों निर्णय मांगा गया था? कलकत्ता हाई कोर्ट भी दो मुकद्दमों में शृङ्गेरी से अभिप्राय पूछा था। ऐसे दृष्टान्त अनेक दिये जा सकते हैं। 1763 ई० में कांची में न मठ था या न 'सार्वभौम जगद्गुरु कांची मठाधीश' थे।

उपर्युक्त अदालती निर्णय में एक और मार्के की बात है कि कांची स्थलवासी चातुर्वर्ण्य वृद्ध लोगों ने एक सनद 1722 ई० में दिया था—'Exhibit S of 1722 is a Sanad granted to the Penugonda Komatties (from whom all Komaties trace) by the Sthalathars of Conjeevaram. It states that it is arrived at by the elders of the four castes resident in Conjeevaram. (Para 54 of the printed judgment)' यदि कांची में मठ होता तो जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है तब वर्णाश्रमाचारादि विषयों का निर्णय जो अधिकार मठाम्नायानुसार श्रीआचार्य शङ्कर ने मठाधीशों के हाथ सुपुर्द किया था उस विषय पर निर्णय पाने के लिये मठाधीश से पूछा गया होता न कि कांची स्थलवासी चातुर्वर्ण्य वृद्धों से सनद रूप में प्राप्त किया जाता। इससे सन्देह उठता है क्या वास्तव में 1722 ई० में कांची में कामकोटि मठ था? उक्त कहे अदालत निर्णय पारा 64 में उल्लेख है—'His Holiness Sri Sankaracharya of Sringeri Mutt, the head of Hindu religion, issued Sri Mukhams ... ... ' दक्षिणाम्नाय का मुखिया मूल आचार्य मठ शृङ्गेरी मठ ही है।

कांची में और एक स्वतंत्र मठ है जिसे 'उपनिषद्ब्रह्मेन्द्रमठ' कहते हैं और इस मठ का इतिहास लगभग 300 साल का है। इस मठ के समीप श्रीअगस्त्य मुनि का आश्रम भी है। 1378 ई० के शिलाशासन से प्रतीत होता है कि विष्णु कांची में 'वेदमठ' था जो अब कहीं दीखता नहीं है। Indian Epigraphy 1954-55 और 1955—56 से प्रतीत होता है कि कांची में कुछ महान यति प्राचीन काल में मठ में रहते थे। शैवमत का ज्ञानप्रकाश मठ भी कांची में है। आपके श्रीस्वामीजी 1843 में कांची पधारे थे जब आपको आपके मठ भक्त शिष्यों ने राजा स्ट्रीट (सालै वीथी का पुराना नाम) से जुलूस में ले गये थे। मैं ने वहां सुना कि उस समय कुम्भकोण मठ एवं कुछ ब्राह्मणों ने इस जुलूस को राजा स्ट्रीट से गुजरने से रोकना चाहा और कलक्टर के पास दरख्वास्त पेश किया। कलक्टर ने 1843 ई० में कुम्भकोण मठ व अन्य ब्राह्मणों के दरख्वास्त को खारीज कर दिया था और जुलूस राजा स्ट्रीट द्वारा ही गुजरा। कुम्भकोणमठ कांची में अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे पर असफल ही रहे।

कुम्भकोण मठ कहते हैं कि कांची में मन्डन मिश्र अग्रहारम है जो श्रीसुरेश्वराचार्य का काञ्ची में वास करने का संकेत करता है। कांची में श्रीकचपेश्वर मन्दिर है और इस मन्दिर के 'माड वीथी' को केवल कुम्भकोण मठ मण्डन मिश्र अग्रहारम होने की कल्पित कथा सुनाते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में उक्त माड वीथी में शवैय्यार वडम वर्ग के ब्राह्मण जिनका पेशा पौरोहित्य था, यहां रहा करते थे। इनमें से कुछ पुरोहितों को कामाक्षी मन्दिर के 'नित्यवासि' का अधिकार भी था। कुम्भकोण मठ का कथन है कि ये सब पुरोहित कांची मठाधीश को प्रथम भिक्षा देते है चूंकि ये सब पुरोहित मन्डनमिश्र की परम्परा के हैं। प्राचीन प्रामाणिक पुस्तकों से एवं प्राचीन रिकार्डों से सिद्ध होता है कि कांची मठ अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित है और आपको 'नवागन्तुक' एवं कांची से 'अपरिचित' भी होने का सिद्ध होता है। अर्थात् प्रथम बार कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी 1843 ई० में नियोजित होने के पश्चात् ही आपने इन शवैय्यार वडम वर्ग ब्राह्मण के साथ अपना सम्बन्ध जोडकर उक्त काल्पनिक कथा की प्रचार किया होगा। मण्डन विश्वरूप मिश्र गौड ब्राह्मण एवं शुक्ल यजुर्वेदी थे और माड वीथीवासी पुरोहित वर्ग सब द्राविड तामिल शवैय्यार वडम वर्ग ब्राह्मण एवं कृष्णयजुर्वेदी थे जिनको मण्डन विश्वरूप मिश्र की परम्परा होने की कल्पित कथा सुनायी जाती है। मैं ने यहां के वृद्ध श्रेष्ठों से मण्डनमिश्र अग्रहार का परिचय पूछा तो पता चला कि सब के सब इस नाम से अपरिचित हैं। यह नाम कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में ही पाया जाता है और अन्यत्र नहीं।

यहां मैं ने श्रीसुरेश्वराचार्य का न वृन्दावन या न बगीचा या न समाधि या न मन्दिर देखा और कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में दिये हुए विवरण सब मिथ्या है। मैं कांची 'म्युनिसिपल आफीस' भी गया था और वहां भी प्राचीन रिकार्डों की खोज की तो पता चला कि कांची में मण्डनमिश्र अग्रहारम का नामो निशान नहीं है। कांची नगरवासी इस नाम को सुना भी नहीं है। इसी प्रकार कांची में 'पुण्यरस' का नामों निशान नहीं है जिसे कुम्भकोण मठ कांची नगर में होने का एवं कांची नगर समीप में होने का भिन्न कथनों से प्रचार करते हैं।

8. कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कांची कामाक्षी मन्दिर, आचार्य के काल से आपके आधीन व परिचालन में है और यह कामकोटि पीठ कांची मठ का देवीपीठ होने से आपके विरुदावली में 'कामकोटि' पदवी जोड ली गयी है। जैसा कि अन्य चार आम्नाय मठ के देव देवी पीठ सब उन मठों के आधीन व परिचालन में है उसी प्रकार कुम्भकोण मठ अब यह दिखाना चाहते हैं कि आपका कांची मठ का आम्नाय पीठ 'कामकोटि कामाक्षी' भी प्राचीन काल से आपके आधीन व परिचालन में है। यदि यह कामाक्षी मन्दिर कांची मठ के आधीन या परिचालन या आपसे पूजित व सेवित न होने का विषय निश्चित हो जाय तो यह भाव उठ जायगी कि क्या यथार्थ में कांची मठ आद्यशङ्कराचार्य द्वारा ही प्रतिष्ठित है ? आम्नाय मठ के देव देवी पीठों की स्वयं पूजा सेवन करना या पूजासेवन के लिये प्रबन्ध करना एवं देवी मन्दिर का परिचालन अपने हाथों में रखना इन आम्नाय मठों के अधीशों को परम आवश्यक है। कामकोटि कामाक्षी की पूजासेवन या मन्दिर परिचालन कुम्भकोण मठ द्वारा न होता हो तो आम्नाय मठ का होना भी सन्देह होता है। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कामाक्षी मन्दिर आचार्य शङ्कर के काल से आपके आधीन व परिचालन में है। कुम्भकोण मठ का कथन असत्य है चूंकि प्राचीन रिकार्डों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि 1843 ई० के पूर्व (जब आपको कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी पदवी पर ईस्ट–इन्डिया –कम्पनी ने नियोजन किया था) आपका सम्बन्ध इस कामाक्षी मन्दिर के साथ कुछ भी न था। कांची की अधीशी कामाक्षी हैं और कुम्भकोण मठ में पूजित देवी मूर्ति श्री त्रिपुरसुन्दरी है और ये दोनों देवी महाशक्ति के भिन्न रूप हैं और ये सब मूर्तियां श्री शारदा से भी भिन्न हैं। कुम्भकोण मठ के प्रचारक भक्त श्रीं पन्तुलु लिखते हैं—'**In his (Sri Chandrasekhar V) day, the temple of Sri Kamakshi at Kanchi not then under the management of the Mutt ... ...**' ऐसा प्रचार करने से क्या यह कहा जाय कि चन्द्रशेखर V के पूर्व आचार्यों के निर्वाह में कामाक्षी मन्दिर था ? पर रिकार्डों से सिद्ध होता है कि 1843 ई० के पूर्व कभी आपके निर्वाह में मन्दिर न था।

कांची मठ का कथन है कि आचार्य शंकर के काल से (508/9 क्रिस्त पूर्व से 476 क्रिस्तपूर्व तक) कामाक्षी मन्दिर जो कांची मठ का कामकोटि पीठ है सो आपके आधीन में है एवं पूजा सेवादि कार्य आपके प्रबन्ध व परिचालन में होता हुआ चला आ रहा है। उपलब्ध शिलाशासनानुसार कांची कामाक्षी मन्दिर का निर्माण काल ग्यारहवीं शताब्दी के कुछ काल पूर्व का ही है और यह निश्चित रूप से कहा जा सकता कि कामाक्षी मन्दिर छठवीं/ पांचवीं शताब्दी क्रिस्त पूर्व का काल का नहीं है। आचार्य शंकर का काल आठवीं शताब्दी क्रिस्त पश्चात का होना सिद्ध होता है और यह कामकोटि पीठ उस समय कांची में था। पर यह निस्सन्देह कहा नहीं जा सकता है कि वर्तमान कांची कामाक्षी मन्दिर ही कामकोटि पीठ था। ऐतिहासिक प्रमाण व अन्य प्रमाणों के आधार पर यह कहना भूल न होगी कि कांची की 'आदि पीठ परमेश्वरी' मन्दिर ही कामकोटि (श्रीचक्र) पीठ रहा हो।

दक्षिण भारत मंदिरों का इतिहास द्वारा स्पष्ट मालूम होता है कि सातवीं/आठवीं शताब्दी के पश्चात् ही पत्थरों का मंदिर निर्माण किये गये थे एवं शिला मूर्तियां बनायी गयी थी। परमेश्वरवर्मन I ने प्रथमवार पत्थरों से

मदिर बनवाना शुरु किया था और राजसिंह ने इस कला की वृद्धी की थी। आपका मंदिर निर्माण महाबलिपुरम, कांची, पनमलै, आदि स्थलों में मशहूर है। दक्षिण भारत के मन्दिरों में शिला मूर्तियों के पूजन के पूर्व काल में मंदिरों में दिवालों पर चित्र लिखे जाते थे या चित्र लिखकर टांगे जाते थे या ईंट व चूना से मूर्ति बनाकर उस पर रङ्ग दिये जाते थे या काष्ठ मूर्ति पूजन किये जाते थे। अतः कांची की कामाक्षी शिला मूर्ति का काल सातवीं/आठवीं शताब्दी के पश्चात् काल का ही निश्चित होता है। कुम्भकोण मठ का कथन जो कि यह कामाक्षी मंदिर 508/9 क्रिस्त पूर्व से आपके आधीन में है सो मिथ्या ठहरता है।

उक्त विषय के समर्थन में 'Sankara Parvati Endowment lectures 1959-60' से कुछ भाग उद्धृत किया जाता है—'This strong tradition of associating stone with the dead, has endured for a long time among the peoples of the south, particularly the Tamils who refer to the two great events in a man's life by the significant saying 'Kalyanam' and 'Kalleduppu', the former referring to wedlock and the latter referring to death euphemistically, as raising of the stone memorial. This, as we would see later, was the obvious reason for the non-adoption of stone as the building material for temples and sacred edifices, and the making of images for worship, till about the 7th—8th centuries A. D., while in contrast stone was used in the architecture and sculpture of the Buddhist monuments which centered round the Stupa which was essentially funerary--the dhatu—garbha, prior to and in the early centuries of the christian era. This would explain the paucity of standing religious edifices of the Brahmanical religion till they were excavated out of rock or built of stone in the 7th-8th centuries A. D and after.' 'It was Paramesvara Varman I who made the first experiment at Kuram and Tirukkalukunram to erect structural temples, which were real constructions, out of slabs of granite. Following him Rajasimha perfected the technique and erected the earliest structural temples extant as such, as in Mahabalipuram, Kanchi and Panamalai.' 'In the earlier and contemporary temples, the principal object of worship consecrated was a painting on the wall or one fixed to the wall or picked out or moulded in stucco and painted or of wood, carved and appropriately painted. Among the many references in tha Sangam and post-Sangam works, we can quote the following in support of the fact.' 'Even the later Agama and Silpa texts traditionally prescribe wood as this first material, then others such as Kadi Sarkara (mortar) or paint (citra) and metal, and, last of all stone. Even the stone images were to be plastered and painted appropriately, a thing to be seen in many temples even today.'

कुछ प्रमाण निम्न दिया जाता है जिससे सिद्ध होता है कि कांची कामाक्षी मन्दिर का सम्बन्ध कुम्भकोण मठाधीश के साथ 1843 ई॰ के पूर्व न था और कुम्भकोण मठ का प्रचार न केवल भ्रामक है पर असत्य भी है। (क) चौदहवीं शताब्दी के शिलाशासन व उपलब्ध होनेवाले अन्य प्रमाणों द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कांची कामाक्षी

मन्दिर का निर्वाह व परिचालन 'स्थानत्तार' (स्थानीकर धर्मकर्ता) का वर्ग करता था और यह वर्ग कामाक्षी मन्दिर की संपत्ति के ट्रस्टी एवं संचालक थे। श्रीअच्युतराय (1542 ई०), श्रीसदाशिवराय (1543 ई०), श्रीकम्पन्ना (16 वीं शताब्दी), श्रीरङ्गराय (1584 ई०), श्रीकृष्णदेवराय आदि कुछ व्यक्तियों द्वारा दिये हुए शासनों से भी उपर्युक्त कथन की पुष्ठी ही होती है। दानदाताओं ने 'स्थानत्तार' को ही धर्मकर्ता माना है। कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह व परिचालन स्थलत्तार व स्थानीकार (धर्मकर्ता) के हाथ में ही था (Annual Report of South Indian Epigraphy 1954/55—Nos. 321, 322, 327, 331, 335, 341, 342, 344 etc., and South India Temple Inscriptions—Volume relating to Chingleput District.) एक मार्के की बात है कि एक व्यापारि ने इस कामाक्षी मन्दिर के एक स्थलत्तार धर्मकर्ता को सम्मानित कर अपना गुरु स्वीकार किया है। कहीं भी कांची मठाधीश या कुम्भकोण मठाधीश को कामाक्षी मन्दिर का धर्मकर्ता या मालिक नहीं कहा है। Mr. Charles Stuart Crole अपने से प्रकाशित Chingleput Manual 1876 ई० में कहते हैं कि इस मन्दिर का परिचालन हिन्दू राजाओं ने अपने हाथ में लिया था और वे मन्दिर रक्षक थे। इस कार्य को कुछ अंश में मुसलमान राजाओं ने भी किया था और पश्चात् ब्रिटिश कम्पनी सरकार ने भी इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया था। 1817 ई० धारा के अनुसार सब मन्दिरो का संचालन बोर्ड आफ रेवन्यू को दिया गया था और जिला कलक्टरों ने उक्त धारा के अनुसार संचालक बन गये थे। इस समय कांची मठाधीश कहां थे और क्या यथार्थ में कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह आपके हाथ में था?

उदयारपालयम जमीन्दार श्रीमुनु विजयरङ्गप्पा उडयार ने एक इनाम ताम्र शासन पत्र शालीवाहन शकाब्द 1706, क्रोधीनाम संवत्सर, सोमोपराग पुण्यकाल (अनुरूप 30—8—1784) के दिन, कांची कामक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता श्रीदक्षिणामूर्ति जो श्रीशेषय्यर के पुत्र एवं श्रीबङ्गारय्या के पोता थे एवं कौशिक गोत्र, बोधायन सूत्र, यजुशाखा के थे, आपको भूदान दिया है। इसमें उल्लेख है कि इस भूमि के वार्षिक आय से कांची कामाक्षी मन्दिर की पूजा सेवा एवं 'अर्धयामपूजा' आदि के लिये खर्च किया जाय। यह शासन पत्र एक मुकद्दमे में पेश किया गया था और अदालत ने इसे प्रमाण में स्वीकार भी किया है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि जब आप कांची छोड चले तो आप ही ने कांची कामाक्षी मन्दिर की 'स्वर्ण कामाक्षी' को अपने साथ ले गये थे और उदयारपालयम पहुंचे थे। पश्चात् वहां से आप स्वर्ण कामाक्षी के साथ तंजौर पहुंचे। यदि यह कथन सत्य है तो उर्युपक्त शासन पत्र द्वारा दो सन्देह उठते हैं जिसका न्याययुक्त उत्तर नहीं दिया जा सकता है। क्या उदयारपालयम के जमीन्दार यह नहीं जानते थे कि (1784 ई० में) कांची कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता या मालिक कांची मठाधीश थे? क्यों आपने कामाक्षी मूर्ति की पूजा सेवान के लिये श्रीदक्षिणामूर्ति को भूदान दिया था और क्यों यह भी स्पष्ठ उल्लेख किया कि श्रीदक्षिणामूर्ति कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता हैं? यदि कुम्भकोण मठाधीश द्वारा स्वर्ण कामाक्षी को उदयारपालयम जमीन्दारी में ले जाने की कथा सत्य होता तो अवश्य उदयारपालयम जमीन्दार कुम्भकोण मठाधीश को ही यह दान दिया होता। इससे सिद्ध होता है कि 1784 ई० तक कांची में कहेजानेवाले कांची मठाधीशों का कोई सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ न था। 'धर्मकर्ता' पद के बदले ईस्ट–इन्डिया–कम्पनी ने रिकार्डों में 'स्थलत्तार व स्थानीकर' का उल्लेख किया है। उपर्युक्त श्रीदक्षिणामूर्ति के वंशज अब भी कांची में हैं और आपके पास अन्य अनेक प्राचीन रिकार्ड भी हैं जिससे स्पष्ठ प्रतीत होता है कि उदयारपालयम के जमीन्दार ने कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता एवं अन्य ब्राह्मण जो स्वर्णकामाक्षी को कांची से उदयारपालयम लाये थे उन सबों को पुरस्कार भी दिया था और कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता श्रीदक्षिणामूर्ति को आदर व सम्मान भी दिया था।

(ख) ऊपर पारा (क) में उक्त श्री दक्षिणामूर्ति शास्त्री के दो पुत्र थे-श्री रामस्वामी शास्त्री व श्री अय्या शास्त्री। आप दोनों ने 5—11—1830 ई० में कुटुम्ब संपत्ति का विभाग शासन किया था और इस शासन से स्पष्ठ मालूम होता है कि आपके पूर्वज परम्परागत कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता थे। श्री अय्या शास्त्री जी स्वर्ण प्रतिमा की पूजा सेवादि के लिये तंजौर चले गये थे और श्री रामस्वामी कांची लौट आये ताकि आप कामाक्षी मूल मूर्ति की पूजा सेवा आदि कर सकें। श्री दक्षिगामूर्ति को 1784 ई० में दान शासन प्राप्त हुआ था और आपके पितामह श्री वङ्गारय्या का भी नाम उल्लेख है। अतः यह कहना भूल न होगी कि आपके वंशज ही ने कर्नाटक युद्ध काल में भी (1743—63 ई०) इस मन्दिर का रक्षण किया था। सत्तरहवीं शताब्दी के अन्त में जब औरङ्गजेब की सेना ने इस सीमा पर चढाई की थी एवं पश्चात् हैदर अली की सेना ने इस सीमा पर चढाई की थी उस समय भी आपके वंशजों ने इस मन्दिर मूर्ति की पूजा सेवा आदि कार्य करते हुए आये थे। कामाक्षी मन्दिर के एक शिला शासन में तिरुवेगम भट्टर का नाम उल्लेख है और आप श्री वङ्गारय्या के पूर्वज थे। इसीप्रकार अन्यत्र उपलब्ध शिलाशासन में श्री चिन्तामणि भट्टर का नाम भी उल्लेख है और आप श्री तिरुवेगम भट्टर के वंशज थे। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कांची मठ का अधिकार या सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ 16 वीं, 17 वीं, 18 वीं शताब्दी में कुछ भी न था।

(ग) स्थानीकर अन्नाकुट्टि शास्त्री, सुब्बराय शास्त्री, नीलकण्ठ अरुणाचल शास्त्री व पेरिय अरुणाचल शास्त्री, आदियों नें एक बयान ताः 19—11—1837 ई० में दिया है। यह बयान कांचीपुर के उस समय का तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव के सामने दिया गया था। यह बयान चेङ्गलपेट कलक्टर को भेजा गया था। कांचीपुर निवासी एक श्री वेंकटाचल पिलै ने कामाक्षी मन्दिर दफ्तर में क्लार्क पदवी के लिये अर्जी भेजी थी। इस अर्जी पर चेङ्गलपेट कलक्टर ने कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकरों से पूछा था कि क्या श्री वेंकटाचल पिलै को कामाक्षी मन्दिर दफ्तर में क्लार्क पदवी पर नियुक्त किया जाय? उपर्युक्त बयान में श्री वेंकटाचल पिलै को क्लार्क पदवीपर नियुक्त करने के लिये अपनी अपनी सम्मति दी है। इससे प्रतीत होता है कि इन दिनों में ब्रिटिश कम्पनी राज के अधिकार व परिचालन में कामाक्षी मन्दिर था एवं जिला कलक्टर इस मन्दिर के धर्मकर्ता व स्थानीकरों से मन्दिर की पूजा सेवा कार्य कराता था। यदि कुम्भकोण मठ के आधीन में यह मन्दिर होता तो ब्रिटिश कम्पनी राज इस विषय में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं थी और मठ स्वयं अपने आदमी को क्लार्क पदवी पर नियुक्त करते। कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध इस मन्दिर के साथ कुछ भी न था।

(घ) चेङ्गलपेट कलक्टर ने कांचीपुर तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव को तमिल भाषा पत्र ताः 29—7—1841 का भेजा था जिसमे आप कहते हैं '..................... देवस्थानङ्गळिल पेरिल इप्पो सरकार विचारणै नडन्दु कोन्डुरुक्किरदै निरुत्ति वेरे विदमान येर्पाडु चेय्य वेन्डियदुक्काक अन्द अन्द स्थलत्तारै विचारिक्क वेन्डियपडि इरुक्किरपडियिनाले, श्री देवराजस्वामी, श्री एकाम्रनाथर, श्री कामाक्षी अम्मन, इन्द देवस्थानङ्गळुडय स्थलत्तारिल मुख्यमानवाळैयुम् कारियस्थारयुम ओव्वोरु स्थलत्तुक्कु इरन्डु अल्लदु मूनुपेर विळुक्काडु, इन्द ताकीत् कन्ड उडने सवारी हुजूर कचेरिक्कु अनुप्पवुम। अरियवुम्।' "......... தேவஸ்தானங்களில் பேரில் இப்போ சர்க்கார் விசாரணை நடந்துகொண்டிருக்கிறதை நிறுத்தி வேறே விதமான ஏற்பாடு செய்ய வேண்டிதுக்காக அந்த அந்த ஸ்தலத்தாரை விசாரிக்க வேண்டியபடி இருக்கிறபடியினாலே ஸ்ரீ தேவராஜஸ்வாமி, ஸ்ரீ ஏகாம்பரநாதர், ஸ்ரீ காமாக்ஷி அம்மன், இந்த தேவஸ்தானங்க ளுடைய ஸ்தலத்தாரில் முக்யமானவாளையும் கார்யஸ்தாரையும் ஒவ்வொரு ஸ்தலத்துக்கு

இரண்டு அல்லது மூணு பேர் விழுக்காடு, இந்த தாகீத் கண்ட உடனே சவாரி ஹுஜூர் கச்சேரிக்கு அனுப்பவும். அறியவும்.'' उक्त पत्र से प्रतीत होता है कि इन दिनों में कामाक्षी मन्दिर ब्रिटिश कम्पनी राज के हाथ में था न कि कुम्भकोण मठ। कलक्टर की आज्ञा है कि तीन मन्दिरों के मुख्य स्थलत्तार व कार्यस्थ को कलक्टर पास जल्द भेजा जाय ताकि आप इन मन्दिरों के निर्वाह परिचालन विषय पर आलोचना कर सकें। यदि कांची मठ का सम्बन्ध किसी समय में भी इस कामाक्षी मन्दिर के साथ होता तो अवश्य कलक्टर आपको बुलाते और कांची स्थलत्तारों के साथ आलोचना करने की आवश्यकता ही नहीं थी।

चेङ्गलपेट कलक्टर का पत्र नं. 20 एवं **Reference No. 37A/37B dated 3—3—1842** में कलक्टर लिखते हैं—'**The time and cause of the Pagoda (Camatchy Umman) having been brought under circar management are not known.**' इससे प्रतीत होता है कि कामाक्षी मन्दिर का परिचालन कब व किन कारणों से सरकार हाथ आया सो मालूम नहीं पडता है। इस पत्र के काल में या इसके पूर्व काल में या किसी समय में भी यह मन्दिर यदि कांची मठ के अधीन में होता तो कलक्टर इस विषय को भी उल्लेख करते।

(ङ) श्री श्रीनिवास राव, कामाक्षी मन्दिर धर्मकर्ता के गुमास्ता, ने धर्मकर्ताओं की तरफ से, मदरास राज्य राज्याल को, एक अर्जी ता. 16—12—1842 का, पेश किया था जिसका नकल नीचे दिया जाता है। इस पत्र से अनेक अन्य विषय की भी जानकारी होती है। ब्रिटिश कम्पनी सरकार ने कुम्भकोण मठाधीश को ता. 5—11—1842 के आज्ञापत्रानुसार कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर प्रथमबार नियुक्त किया था और इस विषय पर ही यह प्रार्थना पत्र मदरास राज्य लाटसाहब को भेजा गया था।

'The humble petition of Sreenivasa Raw, Gumastah, to the wardens of the Church of Camatche Umman, in the taluq of Conjeevaram, in the zilla of Chingleput.

Respectfully showeth:

That your petitioner is instructed to bring the following grievances to your Lordship's notice in the confident hope that they will meet with that redress they so earnestly implore.

That about 50 years ago the management of the above Church together with the lands connected therewith and the funds and other revenues belonging to the church amounting to Rs. 20,000 jewels were chiefly procured by the Wardens who collected monies amounting to 8 lacks and erected churches and other reservoirs even in the troublous times of Hyder and Tippu when the country was ravaged by war, the wardens were instumental in the preservation of the property and images and the keys of this church were in their possession also that of the jewels.

That after this the British Government interfered in the superintendence of the Church and the Wardens had the management of it and that they were given to understand by the collector that Government would abolish their connecsion with the Pagoda, whereupon your petitioner addressed a wager to that gentleman praying that as they are the wardens from time immemorial the management of church would be given to them and no other and the collector on the 7th January of the present year endorsed on their petition desiring them to be in readiness with such documentary evidences as they may possess which we did and solicited that the collector would be pleased to examine the accounts of that functionary, and without due enquiry wrote to the Revenue Board and one Sankaracharia was appointed to take the management—this individual is no way connected with this Church, is an entire stranger to the country, an inhabitant of Cumbaconam in the Tanjore zillah and is morever a professor of a different creed and has nothing to recommend him but his wealth and we were directed to deliver up the Church and other property to this individual and when we remonstrated against this appointment, we were informed that it is the orders of the Revenue Board. We are at a loss to know by what authority and on what grounds we are deprived of this management.

Morever, your petitioner beg to bring to the notice of your Lordship that with this Church there are two others the most important of all the churches in this part of the country and the Collector in issuing his orders has given the management of those Churches to their respective Wardens and in our Church alone a stranger has been appointed and we are reprieved of all authority.

Your petitioner in conclusion earnestly solicits your Lordship will condescend to investigate this case and render us that redress we so earnstly pray for.

For which action of kindness petitioner as in duty bound shall ever pray.'

इससे प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठाधीश का सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ न था और आप कांची में बिल्कुल नवागन्तुक थे और कुम्भकोणम् से प्रथमबार कांची पहुंचे थे। यहां एक मार्के का विषय है कि ब्रिटिश कम्पनी सरकार ने कांची के वरदराज व एकाम्रेश्वर मन्दिरों के लिये उन मन्दिरों के धर्मकर्ताओं को मन्दिर निर्वाह कार्य पुनः सुपुर्द कर दिया गया था पर कामाक्षी मन्दिर के लिये वाहर से एक अन्य व्यक्ति जिसका सम्बन्ध कांची से न था उसे लाया गया। इसमें क्या रहस्य है? कामाक्षी मन्दिर धर्मकर्ताओं को क्यों नहीं मन्दिर निर्वाह सुपुर्द किया गया था? अन्यत्र उपलब्ध रिकार्डों से प्रतीत होता है कि एक श्री नीलकण्ठ रायर जो हेडशिरसदार थे एवं श्री नारायण अय्यर जो नायब शिरसदार थे, ये दोनों व्यक्ति कुम्भकोण मठाधीश के परम भक्त थे एवं मंत्रदीक्षा प्राप्त

किये थे। आप दोनों की सहायता प्राप्तकर और इनके द्वारा कांची के तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव की भी सहायता प्राप्तकर चेङ्गलपेट कलक्टर एवं बोर्ड आफ रेवन्यु द्वारा ट्रस्टी पदवी प्राप्त किया गया था। कुम्भकोण मठाधीश का प्रार्थना पत्र को उक्त इन दोनों व्यक्तियों ने बोर्ड आफ रेवन्यू, मदरास, दफ्तर द्वारा शिफारिस कराकर एवं कांची तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव पर अपने प्रभाव से दबाव डाल कर कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी 1842 नवम्बर में दिला दिया था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि प्राचीन रिकार्ड खोज किया जाय तो मेरे अभिप्राय की पुष्टी प्रमाण मिल जायेंगे।

कलक्टर की आज्ञा पर कांचीपुर के तहसीलदार ने (पत्र ताः 29—7—1841) कामाक्षी मंदिर के धर्मकर्ता को हुजूर सवारी कचहरी भेजा था जहां धर्मकर्ताओं ने अपना अपना प्रमाण कलक्टर को दिखाया था। मैं ने कांची मन्दिर के एक स्थलत्तार के यहां कुछ रिकार्डों का परीशीलन किया था और उसमें एक पत्र पाया जहां प्रमाणों की एक सूची थी जिसे कलक्टर के पास पेश किया गया था। धर्मकर्ताओं के गुमास्ता द्वारा भेजा हुआ पत्र ताः 16—12—1842 में भी इस विषय का उल्लेख है। तथापि कलक्टर बोर्ड आफ रेवन्यू को लिखते हैं कि इन स्थलत्तारों ने अपना निर्वाह अधिकार साबित न कर पाये और वे ट्रस्टी पदवी पर नियोजन करने योग्य दीखते नहीं हैं— **'The goorookuls who applied for the superintendence have shown no right to it and not appearing to be fitted for the trust, the proposed Trustee has been selected' (Letter No. 20 of 8—2—1842 and 3—3—1842). 'Name of the Pagoda—Camatchy Umman, Name of the Trustee—Sankarachariar, Occupation—Priest of a Mathum of the religion to which the Pagoda belongs.'** कलक्टर ने क्यों पक्षपात किया? धर्मकर्ताओं से निर्वाह अधिकार का प्रमाण प्राप्त करते हुए भी क्यों कलक्टर ने कहा कि प्रमाणों द्वारा अधिकार होने का विषय साबित न किया गया था? इस कार्य में क्या मर्म था? कलक्टर ने बोर्ड आफ रेवन्यू को क्यों नहीं धर्मकर्ताओं के विषय में रिपोर्ट किया था? स्थलत्तारों ने कुम्भकोण मठाधीश को ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त करने पर आक्षेप किया था और कलक्टर ने इस विषय को क्यों नहीं बोर्ड आफ रेवन्यू को रिपोर्ट किया था? कांची के दो मन्दिरों का निर्वाह उन मन्दिरों के धर्मकर्ता को दे दिया गया था पर कामाक्षी मन्दिर के लिये ही कलक्टर ने क्यों कांची में नवागन्तुक कुम्भकोण मठाधीश को जिसका सम्बन्ध कांची मन्दिर से न था उनको नियुक्त किया? क्या अन्य मठाधीश या गण्यमान सज्जन उपलब्ध न थे? 'कुम्भकोणम शङ्कराचार्य' को 'कामकोटि जगद्गुरु शङ्कराचार्य' बनने के लिये 'कामाक्षी पीठ' का निर्वाह परमावश्यक था और इस कार्य में कुछ लोगों ने अपनी अपनी सहायता देकर उनकी इच्छा पूर्ति करायी। 1842 ई॰ तक के 'कुम्भकोणम स्वामी' 1843 ई॰ में 'कामकोटि पीठाधिष्ठित जगद्गुरु शंकराचार्य' बनकर पश्चात् यतिसम्राट बनने की लालसा से प्रचार प्रारम्भ हुआ कि आपका मठ 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।' और आधुनिक काल की प्रचार विधि का अवलम्बन द्वारा इस प्रचार का शिखर 1960—61 में पहुंचा गया है। बोर्ड आफ रेवन्यू का पत्र ताः 19—4—1843 में स्पष्ठ उल्लेख है कि कलक्टर ने अर्जी में उल्लेख किये विषय को रिपोर्ट किया न था। न मालूम क्या क्या कर्तूतें की गयी थी या षडयन्त्र रचे गये थे कि कांची के नवागन्तुक को ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त किया गया था।

धर्मकर्ताओं का पत्र ताः 16—12—1842 के उत्तर में बोर्ड आफ रेवन्यू का पत्र ताः 19-4-1843 भेजा गया था जिसका नकल निम्न दिया जाता है—**'Revenue Department, 19th April, 1843—**

Memorandum–The Collector of Chingleput in the statement submitted to the Board of Revenue and by them to Government, with reference to the 'Camatchy Umman' Pagoda, and to the selection of Sankarachariar (the individual referred to in the accompanying petition No. 354 of 1843 as Trustee) observes as follows:—' The time and cause of this Pagoda having been brought under circar management are not known—the goorookuls, who applied for the superintendence have shown no right to it and not appearing to be fitted for the trust, the proposed trustee has been selected.' It does not appear from the papers relative to the Religious Institutions in Chingleput, that the subject matter referred in the petition was even specially brought to the notice of the Board of Revenue by the Collector. The petitioner's statement however that Sankarachariar is 'a professor of a different creed' is contradicted by the collector, who observes that he (Sankarachariar) is a 'Priest of a Muthum of the Religions to which the Pagoda belongs.'

(च) कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर श्रीमुत्तुस्वामी शास्त्री, अन्नाकुट्टि शास्त्री, नीलकल अरुणाचल शास्त्री, कृष्ण शास्त्री, रामस्वामी शास्त्री, पेरिय अरुणाचल शास्त्री, आदियों ने एक दरख्वास्त ताः 31—12—1941 के दिन बोर्ड आफ रेवन्यू, मदरास, को भेजा था जिसमें कामाक्षी मन्दिर का विवरण देकर प्रमाणों को वहां निर्देश कर यह कहा गया था कि प्राचीन काल से आपके पूर्वजों द्वारा यह मन्दिर आपके परिचालन में आ रहा है और सरकार ने आप लोगों से इस अधिकार को छीन लिया था, अतः इस मन्दिर का निर्वाह आपलोगों को ही सुपुर्द कर देना चाहिये। उक्त अर्जी 3—1—1842 के दिन बोर्ड आफ रेवन्यू को प्राप्त हुआ था। इस अर्जी पर बोर्ड आफ रेवन्यू लिखते हैं —'**Ref. Board of Revenue No. 24 of 1842—Sub: claiming to be appointed Dharmakartas of the Pagoda which they held before it was assumed by circar**' और 17—2—1842 के दिन आज्ञा देते हैं कि '**............ the petition should be addressed to the Collector of Chingleput.**' पर कलक्टर ने कुम्भकोण मठाधीश को ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त कर दिया था। ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार के '**Regulation VII of 1817**' के अनुसार पवलिक मन्दिरों का निर्वाह '**Board of Revenue**' ने अपने हाथ में ले लिया और मन्दिर का परिचालन कलक्टरों द्वारा होता था। '**Act XX of 1863**' के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने अपना अधिकार छोड़ दिया और मन्दिरों का निर्वाह कमीटी द्वारा हुआ करता था। कर्नाटक युद्ध का अन्त 1763 ई० में हुआ था। उदयारपालयम के जमीन्दार ने कामाक्षी मूर्ति की पूजा सेवा के लिये भूदान मन्दिर के धर्मकर्ता को 1784 ई० में दिया था। अतः यह कहा जा सकता है कि 1784 ई० तक मन्दिर का परिचालन धर्मकर्ता ही करते थे। ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार ने 1784 ई० के पश्चात् एवं 1817 ई० के पूर्व ही मन्दिर का निर्वाह अपने हाथ में ले लिया होगा।

(छ) पल्लिकारनै हुजूर सवारी से कलक्टर **Mr. A. Freese** ने कांची तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव को एक ताकीद ताः 5—11—1842, बुक नं० 42, ताकीद नं० 28, भेजा था जिसमें कुम्भकोणम शङ्कराचार्य (**Cumbaconam Sankara-charriar**) को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियोजित करने की आज्ञा थी। कुम्भकोग मठाधीश एवं मदरास राज्य के बीच में जूलै 1841 ई० से अक्टोबर 1842 ई० तक क्या

क्या घटनायें घटी, क्या क्या पत्रव्यवहार हुए, क्या षडयन्त्र रचा गया था सो सब का विवरण रिकार्डों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

चेङ्गलपेट कलक्टर ने कांची तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव को एक पत्र ताः 5—11—1842 में लिखा है कि जब कामाक्षी मन्दिर का निर्वाहकार्य ट्रस्टी को सुपुर्द किया जाय तब इस नवीन ट्रस्टी का हस्ताक्षर के साथ मन्दिर का स्थलत्तारों का भी स्वीकृति हस्ताक्षर प्राप्त किया जाय। आगे कलक्टर ने यह भी आज्ञा दी थी कि नवीन ट्रस्टी व चार स्थलत्तारों कुल पांच व्यक्तियों को पांच चाबियां अलग अलग दिया जाय। इससे प्रतीत होता है कि जब कुम्भकोण मठाधीश को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियोजन किया गया था तब आपको स्वतंत्र संपूर्ण सर्वाधिकार नहीं दिया गया था। उक्त पत्र ताः 5—11—1842 के साथ 'स्वीकृति पत्र' का नमूना भी भेजा गया था जिस पर उक्त पांचों व्यक्तियों का हस्ताक्षर प्राप्त करने की आज्ञा थी। 'स्वीकृती पत्र' का अन्तिम पारा जो तामिल भाषा में था उसे निम्न दिया जाता है—'... ... ... अन्द अन्द देवस्थानत्तुक्कु नीर्कुत्ताय पोय नाल पेर पेरिय कुडित्तनकाररैयुम्, स्थलत्ता रैयुम् वैच्चुकोन्डु ... ... मेलकन्ड सोत्तुक्कळै एल्लाम् ओप्पिविच्चुक्कोन्डोम् एन्रुम् अदर्कु इदुवे रसीदाय काट्टिक्कोळ्ळ वेन्डियदेन्रुम् कन्डिरुक्क वेणुम्।' ... ... அந்த அந்த தேவஸ்தானத்துக்கு நீர்குத்தாய் போய் நாலு பேர் பெரிய குடித்தனக்காரரையும், ஸ்தலத்தாரையும், வைச்சுக் கொண்டு .... மேல் கண்ட சொத்துக்களை யெல்லாம் ஒப்புவிச்சுக் கொண்டோம் என்றும் அதற்கு இதுவே ரசீதாய் காட்டிக் கொள்ள வேண்டியதென்றும் கண்டிருக்க வேணும்.' सुना जाता है कि कुम्भकोण मठाधीश जनवरी माह 1843 ई० में कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह अपने हाथ में ले लिया था।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि आप कामाक्षी मन्दिर के परम्परा ट्रस्टी हैं पर यह कथन भी झूठ प्रतीत होता है क्यों कि ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त करते समय कम्पनी सरकार ने जो सनद दिया था उसमें उस समय का आपके मठाधीश को व्यक्तित्व रूप में ट्रस्टी बनाया गया था न कि कुम्भकोण मठ या मठाधीश परम्परा को। इस सनद से कुछ पंक्तियां निम्न दिया जाता है—'You are hereby appointed Dharmakarta or Trustee for the Superintendence of the Camatchy Umman Pagoda which office you shall hold for life or so long as you may be desirous, if from which you shall not be removed except by the sentence of a court of justice.' 'You shall have full power over the funds of the institution which shall be paid to your receipt and you shall engage to expend them according to mamool and to observe the conditions of the Rivaz Puttee (where such exists) and to enforce all established customs and observances hitherto in use and you shall have authority to collect all fees and offerings in grain or money and of anykind whatsoever for the use of the Pagoda and you shall engage to disburse all the expenses of every description and as appointed for every purpose, according to all established customs and observances hitherto in use.' 'You shall have the entire control of all the servants of the Pagoda in the performance of the duties assigned to them and shall allow them their priveleges according to established custom, but it shall not

be competent to you to dismiss the hereditary servants of the Pagoda unless for malversation or fraud to be established by personal enquiry before you. All documents produced in evidence shall be endorsed with your signature with the date of production. A summary of the defence recorded with your decision and the grounds thereof and any person aggrieved by your decision may apply to the courts for redress. In cases of an hereditary mirasdar being removed his next kin, if qualified, shall be taken.' 'You shall have no power to alienate, transfer or otherwise, dispose of any part of the property moveable or im-moveable (Sthavara Jangamma) entrusted to you without the written consent of a majority of the individuals interested in the temple which shall be duly registered in the Public Register of the Province.' 'You shall have no power to alienate or transfer the trust conferred upon you and for the due performance of the stipulations above mentioned, you shall give security (Personal or real) to be forfeited for the use of the Pagoda at the same time subjecting yourself to be removed from the office of Trustee according to a sentence of court of Justice, in any suit instituted against you for any act of malversation or fraud in the management of the Pagoda.' इस सनद द्वारा सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठाधीश व्यक्तिगत रुप में ट्रस्टी बनाये गये थे और न मालूम कालान्तर में व्यक्तिगत ट्रस्टी पदवी को किस प्रकार कुम्भकोण मठ का ट्रस्टी में परिवर्तन किया गया था। इन विषयों पर आन्वेषण की आवश्यकता है।

(ज) कामाक्षी मन्दिर का धर्मकर्ता श्रीनीलकल अरुणाचल शास्त्री से दिया हुआ बयान का उल्लेख एक पत्र में पाया जाता है (Government of Madras, Fort. St. George, Madras, Ref. No. 2230 of 1850 dated 18—10—1850)। आप वहां कहते हैं कि 'आवोगज्जी मुद्रातम्माजी पन्डितर कालकोट नाटेवार-स्थल मुजुम-स्थल कर्णनम्' ने अपने मुद्रा व हस्ताक्षर सहित एक ताकीद नीलकल सुब्बरायर को कीलक वर्ष, पुरट्टासी माह (तामिल माह), तारीख 9 को दिया है (1790 ई०)। इसी बयान में आप आगे कहते हैं कि उनके पूज्य पिता से पुदुपाक्कम गावं व पून्दमल्ली 'मेरे' मान्यम् आदि एवं कामाक्षी मन्दिर का धर्मकर्ता कार्य सब स्वयं निर्वाह न कर सके और रौद्री वर्ष में कम्पनी सरकार ने संपत्ति को ले लिया। चेङ्गलपेट कलक्टर जब कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी नियुक्त करने विषय में जांच करते थे उनको इस विषय का विवरण प्रमाण युक्त दिया गया था। पर आश्चर्य है कि कलक्टर अपने रिपोर्ट में कहते हैं कि धर्मकर्ताओं ने अपने को धर्मकर्तृत्व अधिकार होने का प्रमाण दिया नहीं था। कुम्भकोण मठाधीश जनवरी 1843 ई० में ट्रस्टी बनने के पश्चात् एक शासन पत्र लिख दिया था कि आप कामाक्षी मन्दिर के आय में से चार फी सदी परम्परा धर्मकर्ता नीलकल अरुणाचल शास्त्री को एवं आपके पश्चात् आपकी सन्तति को देंगे। इस पत्र से प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठाधीश स्वयं स्वीकार करते हैं कि नीलकल अरुणाचल शास्त्री परम्परा धर्मकर्ता हैं। चेङ्गलपेट जिला काज़ी अदालत में 1847 ई० का मुकद्दमा नं. 44 में श्रीअरुणाचल शास्त्री को धर्मकर्ता होने का उल्लेख है। चेङ्गलपेट तहसील मुन्सिफ अदालत में 1840 ई० का मुकद्दमा नं 58 में कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकरों के गौरव विषय के फैसले में स्थानीकरों की तरफ फैसला दिया गयाहै।

(झ) मदरास हाईकोर्ट मुकद्दमा S. A. No. 1187 and 1545. of 1891 A. D., जो श्रीदक्षिणामूर्ति शास्त्री व अन्यों ने श्री कुप्पुस्वामी अय्यर (Agent guardian for minor Sankarachariar) पर

दावा जारी की थी, इस मुकद्दमे के फैसले में कहा गया है—' .. .. It having been found that persons who intended to make offerings were turned away and no objection having been taken to the amount of damages claimed, we think that plaintiffs were entitled to a decree. The decree of District Judge will therefore be modified and it will be decreed that an injunction do issue to the Defendant prohibiting him from insisting on payments into his Hundi as a condition precedent to entrance to the temple and from soliciting or receiving any offerings made to the goddess and directing him to pay to Plaintiffs Rs. 60 as damages and costs in this and lower Appellete Court.' 1892 ई० में कुछ काल के लिये स्थानीकरों ने मन्दिर निर्वाह कार्य स्वयं करने लगे और पश्चात् ट्रस्टी ने इन स्थानीकरों से किये खर्च को देकर बाद मन्दिर निर्वाह अपने हाथ में लिया था। 1923 ई० का मुकद्दमा नं. O. S. 162 का डिक्री 1936 ई० में हुआ। 1925 का मुकद्दमा नं. O. S. 89 का डिक्री भी 9—9—1936 में हुआ जिसमें उल्लेख है कि दक्षिणामूर्ति मन्दिर का परम्परा मिरासदार व स्थानीकर है 'वादियिनिड देवस्थानतु परम्परै मिरास आफीसकळुक्कु इदनडियिल कण्डपडि रेस्टोर आय्र विड वेन्डियदु।' '... ... வாதியினிட தேவஸ் தானத்து பரம்பரை மிராஸ் ஆபீஸ்களுக்கு இதனடியில் கண்டபடி ரெஸ்டோர் ஆய்விட வேண்டியது.'

[illegible]

[illegible]ले, रात[illegible]

(ञ) कांची के तहसीलदार श्री श्रीनिवासराव अपने पत्र नं. 76 ता. 18—2—1839 में ए. फ्रीस कलक्टर साहब को लिखते हैं कि आपने यह सुना था कि कुम्भकोणम् के स्वामी कुम्भकोणम से कांची आ रहे हैं और आप कामाक्षी मन्दिर का कुम्भाभिषेक करनेवाले हैं और उक्त स्वामीजी ने 10,000 रु० का खर्च बजट बनाया है जिसमें से 5000 रु० सरकारी ट्रेझरी से दिया जायगा और बाकी 5000 रु० स्वामीजी अपने भक्तों से वसूल करेंगे एवं इस कार्य को सफल करने के निमित्त एवं प्रबन्ध करने के लिये कुछ पहिले ही स्वामीजी कांची नगर आ रहे हैं। इस पत्र से एक प्रश्न उठता है कि यदि कुम्भकोण मठ कांची में 508 क्रिस्तपूर्व या 476 क्रिस्तपूर्व से रहा हो और 18 वीं शताब्दी में ही कांची छोड कर कुम्भकोणम गये हों तो 19 वीं शताब्दी में ही आपको क्या कांचीवाले भूल गये थे? यदि कामाक्षी मन्दिर आपके आधीन होता तो क्यों आप मन्दिर मूर्ति का कुम्भाभिषेक के लिये सरकार से अनुमति मांगते हैं? उक्त तहसीलदार पत्र ता. 18-2-1839 के उत्तर में कलक्टर ए. फ्रीस अपने पत्र नं. 97 ता. 25-2-1839 में लिखते हैं कि सरकार 5000 रु० दे नहीं सकता है और इसके बदले 3500 रु० ही दिया जायगा। 1844 ई० के मुकद्दमा में कुम्भकोण मठ की तरफ से एक बयान अदालत में दिया गया है, जिस बयान में कुम्भकोण मठ कहता है कि कांची कामाक्षी का कुम्भाभिषेक जो 1839 ई० में आपसे किया गया था इसके खर्च के लिये मन्दिर देवस्थान की तरफ से सरकार के खजाने से 4000 रुपया दिया गया था और आपने अपने तरफ से अपने शिष्य भक्तों से संग्रह कर 4000 रुपया खर्च किया था तथा कांची के स्थलत्तार व मन्दिर के अर्चकों ने आपको कांची बुलाया था। इस बयान से स्पष्ट मालूम होता है कि कांची कामाक्षी मन्दिर आपके निर्वाह में न था और आप अन्यों से वहां बुलाये गये थे। आपके कृपा भाजन सज्जनों द्वारा यह सब काम कराया गया था। जब कुम्भकोण मठाधीश को कम्पनी सरकार ने 'कुम्भकोण शङ्कराचार्य' के नाम से ही संबोधित किया था तो क्यों उस समय सरकार से आप इस विषय पर आक्षेप न किया था और क्यों नहीं यह साबित किया कि आप 'कामकोटि पीठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य' हैं? कलक्टर ए. फ्रीस का पत्र नं 119 ता. 25—4—1839 में कुम्भकोण स्वामीजी के कांची आने पर आपको जो मर्य्यादा दिखानी

होगी उसका विवरण दिया है। यह पत्र तहसीलदार श्री श्रीनिवासराव का प्रार्थना पत्र नं. 95 ता. 17—4—1839 के उत्तर रूप में कलक्टर ने लिखा है। कामाक्षी मूर्ति का कुम्भाभिषेक अचानक 1838/39 ई० में ही क्यों सोचा गया था? इसके पूर्व कुम्भाभिषेक किसने किया था और कब किया गया था? क्या आवश्यकता पडी थी कि 1839 ई० में कुम्भाभिषेक किया गया था? इसमें बडा मर्म है और वही व्यक्ति इन कार्यों के मर्म को जान सकता है जो कुम्भकोण मठ के प्रचारों को अच्छी तरह जानता हो। कुम्भकोण मठ का जो प्रचार है कि आपका मुख्य केन्द्र कांची था जहां आप आचार्य शङ्कर के काल से वास करते हुए आ रहे हैं सो सत्य होता तो क्यों अपने केन्द्र स्थान कांची आते समय भी आपके मर्य्यादा आदि करने के लिये अन्यों से प्रार्थना करके प्रबन्ध करने की नौबत आपको आयी थी? पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध कांची के साथ कितना था? प्राचीन रिकार्डों के परिशीलन से मालूम होता है कि यह सब नाटक अपने कृपा भाजन भक्तों द्वारा ही किया गया था ताकि आप कुम्भकोण शङ्कराचार्य से कांची कामकोटि पीठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य बने। आपने शालीशक 1761 में कुम्भाभिषेक समाप्त कर एक शिलालेख भी तैय्यार कर मन्दिर में गाड दिया था ताकि आगामी काल में प्रमाण में दिखाया जाय। यह सब कार्य एक बडी योजना का ही अंश है। कुम्भकोण मठाधीश प्रचार के बडे प्रेमी हैं।

लगभग अठारहवीं शताब्दी अन्त में या उन्नीसवीं शताब्दी प्रारम्भ में आपने कांची में मकान खरीद कर मठ बना लिया था। इसके पूर्व कुम्भकोण में गुरुरत्नमाला, पुण्यश्लोकमंजरी, सुषमा, मठाम्नाय, वंशावलीसूची पुस्तकें आदि प्रमाणाभास [illegible] कर, तंजौर राजा के प्रभाव व आश्रय को प्राप्त कर तंजौर के अगल बगल सीमा के लोगों को अपने टोली में ले कर, नवीन कल्पित आचार्य चरित्र कथाओं का प्रचार कर, अपने इस नवीन स्थापित मठ को 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः' बनाने की लालसा से एक योजना तैय्यार कर के आगे बढे। कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध कांची से न था। महराठा प्रधान ने श्रृङ्गेरी मठ की सम्पत्ति को 1790 ई० में लूटा और इसके फलाभूत आपस में वैमनस्य हुआ। तंजौर राजा भी महराठा वर्ग के थे। कुछ लोगों का अभिप्राय है कि श्रृङ्गेरी के विरुद्ध तंजौर महराठा राजा ने अपने राज्य में मठ स्थापना करने की इच्छा से इस मठ को अपनी सहायता देकर प्रभावशाली बनाया था। कुम्भकोण मठ ने इस अवसर को हाथ में लेकर अपनी योजनानुसार कार्य शुरु कर दिया था। पश्चात् 1825 ई० से कांची आने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। कुम्भाभिषेक निमित्त आप 1839 ई० में कांची पहुंचे। 1842 ई० के अन्त में कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह भी मिला। अब आप 'कांची कामकोटि पीठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य' बन गये। तत्पश्चात् तिरुची में अखिलान्डेश्वरी की ताटङ्क प्रतिष्ठा करके लगभग 1850 ई० में अविरोध अपनी ख्याती प्रतिष्ठित कर दिया। श्री गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री एवं अनेक कृपा भाजन विद्वानों की सहायता से नवीन प्रचार पुस्तकों की रचना प्रारम्भ कर दिया था। 1872 ई० के पूर्व श्री मुख दर्पण, श्रीमुख व्याख्या, मठविरुदावली, परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय, क्षिप्त शिवरहस्य, मार्कन्डेय संहिता, नवीन व्यासाचलीय, आदि प्रमाणाभास तैय्यार किये गये। श्री रामानुज अय्यङ्गार के नाम से 1872 ई० में सिद्धान्तपत्रिका प्रकाशित किया गया। इन सब नवीन कल्पित प्रमाणाभासों का प्रचार तीव्र रूप में लगभग 1889 ई० में हुआ और आपके मठाधीश आपके प्रचारों पर आक्षेप व विरोध देखकर यात्रा से लौट आये। पुनः वर्तमान मठाधीश ने इस अधूरे कार्य को पूर्ण कर 'सार्वभौम मठ' बनाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं।

(ट) मार्कन्डेय पुराणान्तर्गत श्री कामकोटि महिमादर्श कामाक्षी विलास एक पुस्तक है। इस पुस्तक के बारहवें अध्याय में दुर्वास ऋषी का वर्णन एवं आपका कामाक्षी मन्दिर के साथ सम्बन्ध का भी उल्लेख है। इसीलिये

कांची कामाक्षी मन्दिर में दुर्वास ऋषी की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। इस पुस्तक में मूक कवि का भी उल्लेख है जिन्होंने कामाक्षी देवी पर मूकपंचशती रची है। कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर दुर्वासा को देवी पूजाविधि प्रवर्तक मानते हैं और वहां के स्थानीकर छः भिन्न गोत्र ब्राह्मणों का नाम लेते हैं जो इस मन्दिर की पूजा, सेवा आदि कार्य मन्दिर के प्रारम्भिक काल में शुरु किया था। इन छः वंशजों में तीन वंशजों का नाम प्राप्त हुआ है—कौशिक गोत्र के तिरुवेगम भट्टर, गौतम गोत्र के कम्वत्तार एवं नैदूरुपकाश्यप गोत्र के कामय्यर। ये तीन वंशज को ही पूजा सेवा कार्य करने का अधिकार था जो मन्दिर के धर्मकर्त्ता भी थे। यह कहा जाता है कि *1760* ई० लगभग कम्वत्तार व कामय्यर वंशज स्वर्ण कामाक्षी की पूजा के लिये तंजौर चले गये। इन दोनों के वंशजों ने स्वर्ण कामाक्षी को कांची से उदयारपालयम ले गये थे पश्चात् वहां से तंजौर पहुंचे। तंजौर स्वर्ण कामाक्षी के वर्तमान स्थानीकर उक्त दोनों वंश के ही हैं। निश्चित रूप से प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि उक्त तीन वंशजों ने ही 350 वर्ष से कामाक्षी की पूजा सेवा आदि करते हुए आ रहे हैं। इसके पूर्व का इतिहास प्रमाणयुक्त उपलब्ध नहीं होता पर परम्परा प्राप्त कथा को विश्वास किया जाय तो यह निश्चित होता है कि कामाक्षी मन्दिर की पूजा सेवा आदि कार्य करीब *1200* वर्षों से ब्राह्मणों द्वारा ही होती आ रही है। कामाक्षी मन्दिर रिकार्डों से प्रतीत होता है कि इस मन्दिर में सात वर्ग की परम्परा कार्यदर्शी थे—(1) अर्चक—तिरुवेगम, कम्वत्तार, कामय्यर; (2) पुरोहित—नीलकण्ठ शास्त्री (कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपलोग मण्डन मिश्र के वंशज हैं और वह वीथी जहां ये सब पुरोहित वास करते हैं उसे कुम्भकोण मठ मात्र मण्डन मिश्र अग्रहार पुकारते हैं); (3) मालैकट्टि—दिय्या जलाना, माला बनाना, घंटा व बाजा बनाना, आदि कार्य; (4) वेळान्—जमाबन्दि, हिसाब किताब लिखना, आदि; (5) निमन्दन्—पालकी उठानेवाले, रातनिगरानी करने वाला, मन्डप या पन्डाल तैय्यार करने वाला; (6) मेळम्—गवैया व ढोल बाजा बजाने वाला; (7) दासी—गान व नृत्य। अर्चकों का कार्य—मन्दिर निर्वाह, पूजा, दिन में मन्दिर निगरानीं, नैवेद्य व पकवान तैय्यार करना, तिरुमञ्जन्, स्वयंपाकी, निर्सन्दी, आदि है। इस वंश परम्परा वृत्तान्त द्वारा प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठाधीश का सम्बन्ध इस कामाक्षी मन्दिर के साथ न था। शङ्करदिग्विजयों में एवं अन्य चरित्र पुस्तकों में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने कामाक्षी की उग्रता को शान्तकर, श्रीचक्र की अशुद्धता को निवारण कर, वहां के अवैदिक तान्त्रिकों को भगाकर, कामाक्षी मन्दिर की वैदिक विधि पूजा के लिये ब्राह्मणों को ही नियुक्त किया था। सम्भवतः उक्त छः ब्राह्मण वंशज जो मन्दिर का निर्वाह प्रारम्भ काल से करते हुए आ रहे हैं वे इन्हीं ब्राह्मणों के वंशज हों।

उपर्युक्त (क) से (ट) तक के पाराओं में दिये हुए विषयों के आधार पर यह निश्चित होता है कि कुम्भकोण मठाधीश का सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर से अर्वाचीन काल ही का था और मठ का प्रचार असत्य है। कुम्भकोण मठाधीश 1843 ई० में ट्रस्टी बने और 1948 ई० में इस पदवी से हट गये। आपके निर्वाह में यह मन्दिर लगभग 105 वर्ष ही था। मदरास राज्य ने B. O. नं. 2487 ता. 12—5—1949 के आधार पर इस मन्दिर का निर्वाह अपने हाथ में ले लिया था।

कुम्भकोण मठ के 105 वर्ष निर्वाह काल में अनेक घटनायें घटी और आपको अदालत स्वयं जाना पडा या आपको अदालत में खींचा भी गया था। मैं ने इन घटनाओं की एक लम्बी सूची बनायी है जिसमें से कुछ निम्न दिया जाता है ताकि पाठकगण वास्तविक विषय को जान लें। (1) कामाक्षी मन्दिर का स्थानीकर श्रीबालू शास्त्री ने 25—2—1858 के दिन सरकार को लिख पूछा था कि कुम्भकोण मठाधीश का एजन्ट श्री शिवराम अय्यर ने 3000 रुपया जो मन्दिर के गोपुरम की मरम्मत के लिये दिया गया था सो आपने चारसौबीसी कर दी थी उस

चोरी के विषय में आपने क्या कारवाई की थी? इसके उत्तर में सरकार ने कहा था कि अर्जीदार अदालत में इसे पेश कर धर्मकर्ता को 1850 का धारा 13 के अनुसार कारवाई कर सकते हैं और सरकार इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती—'Order No. 585 of 1858: Petitioners can themselves prosecute the Dharma-karta in the courts for Breach of Trust under Act 13 of 1850. The Government cannot interfere.' (2) कांची तहसीलदार अपने पत्र ता. 4—4—1877 में लिखते हैं कि कुम्भकोण मठाधीश ने मन्दिर के आभूषण आदि की सूची 1843 ई० से अभी तक का नहीं दी है और यह हिसाब छः दिन में प्राप्त न हों तो 'वत्ताजवान' (वारन्ट) निकाला जायगा। इस पत्र के पश्चात् क्या हुआ सो मालूम नहीं होता पर एक विषय प्रतीत होता है कि सरकार 1843 से 1877 ई० तक सोये हुए थे और 34 वर्ष पश्चात् आपकी आंखें खुली। (3) 1912 ई० के मुकद्दमा नं. O. S. 722 में कुम्भकोण मठाधीश की तरफ से मुन्सिफ अदालत, काञ्जीवरम में कहा गया कि कामाक्षी मन्दिर के अर्चक सेवार्थियों से अधिक रुपया प्राप्त करने निमित्त मिथ्या कथायें कह कर (कामाक्षी मन्दिर में तपसकामाक्षी है, बिलाकाश है, श्रीचक्र रेखा है, आदि) धोखा देते हैं। परन्तु कामाक्षी मन्दिर में आज भी तपस कामाक्षी, बिलाकाश, श्रीचक्र रेखा आदि देखा जा सकता है और यह तीनों मन्दिर में न होने की जो कुम्भकोण मठ की तरफ से सुनायी गयी थी सो विषय पश्चात् अदालत से वापस ले लिया गया था। इससे यही प्रतीत होता है कि कामाक्षी मन्दिर का नवीन ट्रस्टी के साथ अर्चकों का सम्बन्ध विरोधी की थी। (4) मदरास हाईकोर्ट में मुकद्दमा S. A. No. 1187 and 1545 of 1891 का फैसला कुम्भकोण मठाधीश के विरुद्ध ही दिया गया था जिसका विवरण पाठकगण पूर्व में ही पढ चुके होंगे। (5) स्थलत्तार से मन्दिर निर्वाह कार्य में खर्च किये हुए तायदाद को 1892 ई० में ट्रस्टी ने दिया था। (6) O. S. 162 of 1936 मुकद्दमे में 1936 ई० में 'Compromise decree' हुआ था और O. S. 89 of 1925 मुकद्दमे में 9—9—1936 को 'Decree' हुआ। (7) कहा जाता है कि कुम्भकोण मठाधीश के एजन्ट 1918 ई० में सितम्बर से दिसम्बर के भीतर मूर्ति का आभूषण मन्दिर के बाहर ले गये और इसे लौटाया नहीं गया। (8) मन्दिर की कीमती साडियों व जरीदार वस्त्रों का नाश हुआ और किसी ने इस पर जांच न की और गुनाहगार पर न करवाई की गयी थी। (9) 1932 ई० में मन्दिर सम्पत्ति की चोरी हुई थी और पुलीस ने जांच प्रारम्भ किया था पर इस बीच में न मालूम किन कारणों से जांच करना छोड दिया गया। जो व्यक्ति सन्देह पर पुलीस हवालत में रक्खा गया था उसी को पुनः मन्दिर नौकरी में रख लिया गया था। (10) कहा जाता है कि 1939 ई० में कुछ मूल्य सोना का आभूषण गलाया गया था पर इसका विवरण ठीक मालूम नहीं होता है। (11) यह भी कहा जाता है कि 1944 ई० का कुम्भाभिषेक हिसाब अभी तक दिया नहीं गया है। (12) 'वाराहीमेडै' जो मन्दिर में था उसे तोडकर मूर्तियों का भिन्न भिन्न स्थानों में रक्खे गये। प्राचीन काल प्रतिष्ठित मूर्तियों का स्थानभ्रष्ठ किया गया था। (13) प्राचीन दर्वाजा जो पीतल चद्दर से जडा गया था और जो गर्भगृह में था सो अब वह दर्वाजा दीख नहीं पडता है। (14) सुना जाता है कि 1946 ई० में गायत्री मन्डप बन्द कर दिया गया था और एक नवीन ध्वजस्थम्भ का निर्माण किया गया था। (15) सुना जाता है कि मन्दिर में प्राचीन काल से रूडी में आता हुआ कुछ मामूल उत्सव बन्द कर दिया गया था। (मकर संक्रान्ती उत्सव, परवेट्टै आदि)। (16) कामाक्षी मन्दिर का स्थानीकर श्री टि. श्रीनिवास शास्त्री ने एक लम्बा पत्र (40 पारा से भी अधिक) ता० 10-6-1948 का मदरास राज्य मुख्य मंत्री को भेजा था जिसमें इस कामाक्षी मन्दिर में घटित धटनाओं का विवरण दिया गया था और प्रार्थना की गयी थी कि सरकार इस पर जांच करें और गुनाहगार को दन्ड दें। इस पत्र पर क्या कारवाई की गयी थी सो मालूम नहीं पडता पर वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश ने अपने ट्रस्टी पदवी से इस्तिफा दे दिया था। मैं ने उक्त स्थानीकर से सुना कि आपके पुत्र जो अब स्थानीकर हैं आपने एक मुकद्दमे के

सिलसिले में उक्त पत्र को प्रमाण रूप में पेश करना चाहते थे और इस सम्बन्ध में आपने कई अर्जियां भी दी थी कि पुराना रिकार्ड अदालत में पेश की जाय पर अभी तक रिकार्ड न पेश हुआ और दफ्तर में न रिकार्ड होने का विषय मालूम हुआ। शंका की जाती है कि रिकार्ड गुम हो गया हो। गुम होने से कुछ लोगों के लिये लाभप्रद ही होगा।

1934/35 ई० में काशी में जब कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा और पूरि, द्वारका व श्रृङ्गेरी के आदरणीय जगद्गुरु मठाधीशों ने कुम्भकोण मठ प्रचार के विरुद्ध अपना अपना अभिप्राय लिख भेजा था और जिसे प्रकाशन किया गया था तब कुम्भकोण मठाभिमानियों ने 'मैं मैं तू तू' का कीचड फेंकने लगे और आपलोगों ने कहा कि द्वारका व पुरी मठ दोनों अदालत के प्रेमी व स्वार्थ के मर्मज्ञ हैं और कुम्भकोण मठाधीश परमार्थ के मर्मज्ञ हैं और जिनको आपके कृपाभाजन टोली ने 'परमशिवावतार' होने की घोषणा की थी इनके साथ पूर्वाम्नाय व पश्चिमाम्नाय आदरणीय मठाधीशों के साथ तुलना करने लगे थे। पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ का इतिहास स्वच्छ और निष्कलङ्क नहीं है और आपलोग अदालत के प्रेमी, स्वार्थ के मर्मज्ञ एवं काले कर्तूतों के प्रवर्तक भी हैं और इसकी पुष्टी में कुछ विषयों का उल्लेख ऊपर के पारा में किया गया है। मैं ने एक लम्बी सूची बनायी है पर यहां उस सूची में से कुछ ही विषय देता हूं। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के एजन्ट श्री रामस्वामी शास्त्री ने श्री टि. रामस्वामी अय्यर (श्री स्वमी कार्यम्—कांचीपुर) को एक पत्र नं० 1229/17 ताः 8—7—1917 का लिखते हैं और इस पत्र को एक मुकद्मा नं० ओ. एस. 313/1920 में पेश किया गया था। यदि पाठकगण इस पत्र को पढें तो कुम्भकोण मठ का काले कर्तूतों का विवरण स्पष्ट मालूम होगा। इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये कुम्भकोण मठ कोई भी कार्य चाहे वह कितना ही पापकर्म हो उसे करने में शर्माते नहीं हैं। उक्त पत्र कामाक्षी मन्दिर के विषय का ही है और वहां उक्त श्री दक्षिणामूर्ति कामाक्षी मन्दिर के परम्परा स्थानीकर थे। इस तामिल भाषा पत्र का अनुवाद नीचे दिया जाता है— '23-6-1917 का आपका भेजा हुआ विज्ञापन आ पहुंचा। इसका सारांश श्री महासन्निधान को सुसमय में पढ सुनाया गया था। देवस्थान का सुधार करने के लिये जिसप्रकार का प्रवन्ध करना चाहिये, इस विषय में कुछ भी विलम्ब बिना, उसी प्रकार का इन्तिजाम करना। उस विषय में यहां से कियेजानेवाले कार्यों का विवरण लिखना। वस्त्र विषय में, दक्षिणामूर्ति के विषय में, जिस प्रकार का कार्य करने से देवस्थान को सौकर्य (लाभ प्रद) हो, उसी प्रकार करना। आपसे प्रतीक्षा न की हुई कुछ घटना घटित होने का सुना गया विषय जो आपने लिखा है, उसका विवरण क्या है सो मालूम नहीं पडता। सब विषयों का सुधार करने का जिम्मेदारी आपकी है। आप इस विषय में जो कुछ प्रवन्ध करने का सोच रक्खा है उसी प्रकार ही करना। आप इस समय अवश्य यहां आकर इन विषयों में साक्षी प्रमाण तैय्यार करने का मार्ग खोज करने और इसके द्वारा देवस्थान में अडचन (असौकर्य) का कारण होनेवाले व्यक्तियों को हटाने का (छुटकारा पाने का) आवश्यक इन्तिजाम करना। श्री कामाक्षी के कैङ्कर्यों से अम्बिका का पूर्ण अनुग्रह प्राप्त करके उत्तरोत्तर श्रेयस को भी आप प्राप्त करें। यह अनुग्रह आपको लिख सुनाने की आज्ञा श्री महासन्निधान के आज्ञानुसार लिखा हुआ यह पत्र है। इस फसली प्रारम्भ से श्रीनिवास अय्यर के कहने पर आपको कुछ अधिक मिलाकर दिया जाय। हिसाब किताब जिसप्रकार रखना हो उसका विवरण श्रीनिवास अय्यर को आज्ञा भेजने की प्रार्थना करता हूं। अनेक नमस्कार।' इस पत्र के पीछे बडा रहस्य एवं कथा भरी विषय है और इसे वही व्यक्ति जान सकता है जो आपके मठ का इतिहास से परिचित है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि कांची सीमा में मुसलमान, अंग्रेज व फ्रेंच के बराबर धावा से कांची मठ कांची छोड चले गये और जाते समय कामाक्षी मन्दिर की स्वर्ण कामाक्षी को भी साथ लेते गये। आप प्रथम

उदयारपाल्यम पहुंचे और वहां से तंजौर पहुंचे जहां स्वर्ण कामाक्षी अब भी है। कांची छोड जाने का समय भिन्न काल का प्रचार होता है–1746—63 ई०, 1729 ई०, 1686 ई०, 1780 ई०, 1767 ई० तथा 1821 ई०। इस प्रचार में कितनी सत्यता है सो पाठकगण निम्न पाराओं को पढ कर जान लेंगे।

इतिहास से प्रतीत होता है कि महराठा सेना के प्रधान हरजी महाराज की सेना ने गोलकोन्डा राज्य के शहरों में चडाई कर लूटमार किया था और इन शहरों में अपना प्रभुत्व भी जमा लिया था। हरजी महाराज की सेना ने कांचीपुर में अपनी डेरा डाली और शहर को लूटा। औरङ्गजेब ने इन घटनाओं को सुनकर चार सेना प्रधानों को सेना के साथ भेजा और यह सेना कांचीपुर ताः 25—2—1688 के दिन आकर अपनी डेरा डाली। महराठा सेना कांचीपुर से पीछे हट गयी। पश्चात् मुसलमानों ने कांचीपुर लूटना शुरु कर दिया था। कहा जाता है कि एक साल के लिये यह लूटमार बराबर जारी रहा। 'Madras Diary and cousultation Book' पुस्तक की पृष्ठ 203 में उल्लेख है 'Having advice from the Maratha camp that Maratha forces in the Gingee country under the command of Harji Maharaj were upon their march with 2000 horses and 5000 foot, with great number of pioneers and scaling ladders, that they had plundered and taken several towns belonging to lately to the kingdom of Golconda and committed various other atrocities that most the inhabitants left Conjeevaram and other places to secure their persons and estates.' इससे प्रतीत होता है कि 1687/88 ई० में कांचीपुर में सनसनी व अशान्ती फैल गयी थी और कांचीवासी कांची छोढ चले गये थे। इसी समय में कांची का वरदराज मूर्ति व संपत्ति आभूषण आदि, एकाम्रेश्वर मूर्ति व आभूषण आदि, कामाक्षी मन्दिर की स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति व आभूषण आदि, को उस उस मन्दिर के स्थानीकर धर्मकर्ताओं ने कांची से उदयारपालयम ले गये। कहा जाता है कि इन मूर्तियों को शव की तरह सजा कर कांची के बाहर उठा ले गये थे। इस विषय का विवरण 'A Manual—The Chingleput' by Charles Stewart Crole, 1879 A. D., पुस्तक में उल्लेख है —'............ ... The authorities of the three pagodas noticed above, determined to protect the idols from their apprehended desecretion by the fanatical zeal of the invader. They were accordingly conveyed away, disguised as corpses, and followed by funeral processions and were carried off to the Udeiyarpalaiyam jungles in the Trichinopoly District. The image of Kamakshi was of gold and is said to have been taken possession of by the Rajah of Tanjore.' इसी कथा का समर्थन मदरास राज्य का G. O. No. 985 Home (Education) Dated 31—8—1920 भी करता है। यहां कांची मठाधीश या मठ या कुम्भकोणम् शंकराचार्य या कुम्भकोणम् मठ का नामो निशान नहीं है। यदि कांची मठ स्वर्ण कामाक्षी को ले जाते तो अवश्य आपका नाम उल्लेख करते या कांची मठ के आधीन में कामाक्षी मन्दिर होता तो अवश्य ऐसे विख्यात मठ का नाम अवश्य लेते। इसी प्रकार मदरास राज्य G. O. में भी मठ का नाम नहीं दिया है। इन तीनों मन्दिरों के स्थानीकर धर्मकर्ताओं नें कांचीपुरवासियों की सहायता से इन तीन मूर्तियों को आभूषणों के साथ कांची से निकाल ले गये थे। इस बचाव कार्य का श्रेय जो अन्यों को है उसमें अपना नाम भी जोड कर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आपही ने स्वर्णकामाक्षी को उदयारपालयम ले गये थे। उदयारपालयम के जमीन्दार ने 1784 ई० में कुछ भूदान कामाक्षी मन्दिर के लिये इस मन्दिर के धर्मकर्ता श्री 'दक्षिणामूर्ति' को दिया है न कि कांची मठ को।

कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध इस कामाक्षी मन्दिर के साथ कुछ न था। पाठकगण पूर्व में इस विषय पर आलोचना पढ चुके होंगे।

कांची वरदराज मन्दिर का माता मन्दिर के बाहर एक शिलालेखन है जो इस घटना का उल्लेख करता है जिससे प्रतीत होता है कि अत्तान तिरुवेङ्कड रामानुज जीयर की आज्ञापर श्री लाला तोडरमल ने शक 1632 (अनुरूप 1710 ई० में) में वरदराज मूर्ति को कांची लौटा ले आया और मन्दिर में मूर्ति पहुंचा दी थी। शिलालेखन का आंग्ल भाषा अनुवाद—'May blessings attend! In the 1632nd. of the era of Salivahana Saka named Virodhi, in the month of Panguna, on the 30th day, on Saturday, instructed by Srinivasa. Lalla Taudra Mallji, disciple of Attanjeer, caused the idol Varadaraja to be brought back from Udeiyarpalaiyam to Vishnu Kanchi'

Charles Stewart Crole लिखते हैं—'The idol of the Siva temple was restored to its place by a Brahmin called Sellambattu.' अर्थात् श्री चेल्लमभट्ट ब्राह्मण ने एकाम्रेश्वर मूर्ति को कांची लौटा ले आया।

अब रहा तीसरा मूर्ति स्वर्ण कामाक्षी जो उदयारपालयम से तंजौर पहुंचा। कांची मठ वालों ने इस मूर्ति को न कांची से उदयारपालयम ले गये थे या न उदयारपालयम से तंजौर ले गये। आज भी तंजौर स्वर्ण कामाक्षी मन्दिर पर अधिकार या निर्वाह या परिचालन कुम्भकोण मठ पर नहीं है और आपका सम्बन्ध इस मन्दिर के साथ कुछ भी न था। कामाक्षी मन्दिर के तीन धर्मकर्ता थे और इनमें से दो धर्मकर्ताओं के वंशज ही इस मूर्ति को तंजौर ले गये थे और यह मन्दिर उक्त इन दोनों धर्मकर्ता के वंशजों के निर्वाह में है। वरदराज एवं एकाम्रेश्वर मूर्ति जब 1710 ई० में कांची लौट आया और जब तीन मूर्तियां कांची से उठा ले गये थे तो यह निश्चित होता है कि यह तीनों मूर्तियां 1710 ई० के पूर्व ही कांची से हटाया गया होगा। अतः यह अनुमान करना ठीक ही है कि यह तीनों मूर्तियां 1687/88 ई० में ही कांची से ले गये होंगे। 1687/88 ई० में महराठा सेना पश्चात् औरङ्गजेब की सेना दोनों ने एक वर्ष पूरा कांचीपुर का लूटमार किया था और नगर में सनसनी व अशान्ती थी और वहां के वासिन्दो ने शहर छोड भागने लगे।

उक्त विषयों की पुष्टी Madras G. O. No. 985—Home (Education) dated 31-8-1920 करता है यथा—'The inscription under reference consists of two Sanskrit verses in the Sardulavikridita meter engraved in Telugu script, followed by a translation in Telugu prose and twelve lines in Nagari and records that in the year Saka 1632 Virodhin (*1710* A. D. and not 1799 as calculated by Mr. Crole in his Chingleput Manual), Raja Lala Todarmala brought back at the request of Srinivasa alias Attan Tiruvengada Ramanuja Jeevar, the image of Varadaraja from its place of retreat in the jungles of Udayarpalayam and reconsecrated it in its own temple at Kanchi. Mr. A. R. Sarasvati in his Telugu article in the Andhra Sahitya Parishad Patrika Vol VII, Part V, thinks that 'Todarmalla' was an honorific biruda,

bestowed on profecient men. 'Todara' in Kanareese which means 'a chain or other badge of honour' and its shortened form of 'Toda' in tamil meaning 'an armlet of gold.' This view has yet to be substantiated by further research. There have been several individuals bearing this title .... As a matter of fact our Todarmalla was a General under Sa-adat-Ullah Khan. the Nawab of Karnatic, who led the attack against and finally stormed the impregnable fort of Gingee (S A. Dist.) killing the refractory chief De Singaraja of ballad fame. The historic incidents that led up to the events recorded in this inscription were that the Delhi Emperor Aurangazeb fitted out an expedition in about 1688 A. D. against the Maharattas of the South and Conjeevaram, in common with several other important centers of South India, felt the shock of this iconoclastic invasion. The temple authorities of the three premier temples of that city thereupon apprehending desecration at the profane hands of the invaders, disguised the images of the temple gods and coveyed them secretly out of the town, the Vishnu temple images finding an asylum in the jungles of Udayarpalayam in the Trichinopoly District. But when the danger was past and Conjeevaram was considered safe, the local chieftain of Udayarpalayam, who was much enraptured at the image of God Varadaraja refused to restore it to its original abode at Kanchi, with the result that, at the special intercession of Srimat P. P. Attan Jeeyar, his disciple Lala Todarmalla terrorised the chief with a strong contigent of troops at his back and safely brought back the image and reinstated it in the temple with great pomp and splendour.'

कुम्भकोण मठ वंशावली के अनुसार मठाधीश आचार्य बोध उर्फ योगेन्द्र उर्फ भगवन्नाम का काल 1638–1692 ई० है। आप तीर्थयात्रा एवं नाम संकीर्तन में मग्न थे और आपकी समाधि कुम्भकोणम् समीप है। कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आप कांची मठाधीश बने। आप स्वतंत्र पुरुष थे। आपकी समाधि भी कुम्भकोण मठ से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। पाठकगण आपके बारे में विवरण चतुर्थ अध्याय में पायेंगे जहां सिद्ध किया गया है कि आपका सम्बन्ध कांची या कुम्भकोण मठ के साथ न था। यदि आपको कांची मठाधीश होने की कल्पित कथा मान लें तो यह कहना होगा कि आप ही ने स्वर्ण कामाक्षी को कांची से उदयारपालयम ले गये थे पर इतिहास सिद्ध करता है कि आपका सम्बन्ध कांची कामाक्षी मन्दिर के साथ बिलकुल न था। आपसे रचित स्तोत्रों व पुस्तकों में इस विषय का उल्लेख नहीं है। यदि कहाजाय कि आपके काल उपरान्त ही स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति मन्दिर से हटाया गया तो उस समय के कहेजानेवाले मठाधीश श्रीअद्वायात्म प्रकाश थे (1692—1704 ई०)। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आप कुम्भकोण समीप गोविन्दपुर में ही वास करते हुए वहीं निर्याण भी हुए। आप न कांची आये या न स्वर्ण कामाक्षी उदयारपालयम ले गये थे। आपका चरित्र चित्रण चतुर्थ अध्याय में पायेंगे। कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता श्रीदक्षिणामूर्ति को 1784 ई० में उदयारपालयम जमीन्दार ने कामाक्षी देवी की पूजा सेवा के लिये भूदान दिया है। यदि कांची मठाधीश स्वर्ण कामाक्षी को उदयारपालयम ले गये होते या कांची कामाक्षी मन्दिर आपके आधीन या परिचालन में होता तो उदयारपालयम जमीन्दार कांची मठाधीश को यह दान दिया होता।

ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी क्लइव ने 1751 ई॰ में आर्काट जाने के रास्ते में कांची से होते हुए गुजरा। क्लइव ने 1752 ई॰ में एकाम्रेश्वर मन्दिर पर कब्जा कर लिया था और उसका सेना ने यहा डेरा डाली। दो वर्ष पश्चात् फिर से यही घटना घटी। 1757 ई॰ में फ्रेंच ने शहर को लूटा और आग लगादी थी। पुनः 1760 ई॰ में लाली ने शहर को लूटा और आग लगा दी थी। कर्नाटक युद्ध काल में कांचीपुर अंग्रेजों की छावनी थी। 1752 ई॰ में चान्दा साहब के पुत्र राजा साहब ने एकाम्रनाथ मन्दिर की मरम्मत करायी थी। चान्दा साहब का मरण तंजौर में हुआ था।

Madras G. O. 1260 dated 25—8—1915 –' The manager of the Matha at Kumbakonam who was consulted on the point states that name Sharada-Matha is even now borne by the Sankaracharya Matha at that place and the date of the removal of the Matha from Conjeevaram to Kumbakonam happened recently about 186 years ago, in the Sadharana year during the reign of the Maharata King Pratapa of Tanjore.' कुम्भकोण मठ का कथन है कि आप 1729 ई॰ में कांची से कुम्भकोणम् गये। आपका प्रचार भी है कि आप कांची छोड जाते समय स्वर्ण कामाक्षी भी 1729 ई॰ में लेते गये। शिलालेखन अनुसार यह सिद्ध होता है कि कांची की तीनों मूर्तियां 1710 ई॰ के पूर्व ही कांची से हटाया गया था। इतिहास पुस्तक सब स्पष्ठ सिद्ध करते है कि तंजौर राजा प्रताप सिंह गद्दी में 1739 में ही बैठे थे और आपका राज्य शासनकाल 1739—63 ई॰ तक का था। कुम्भकोण मठ का कथन असत्य है कि राजा प्रताप सिंह ने 1729 ई॰ में आपको अपने राज्य में बुलाया था।

कुम्भकोण मठाधीश के अनुमति से रचित पुस्तक एवं आपको अर्पित है, उसमें लिखा है—' Chandrasekara IV (1746—1783 A. D.)— ... ... It must have been in the time of this Acharya that the Kamakoti Pitha was permanently removed from Kancheepuram to Kumbakonam ... ... during the troublous times of the Karnatic Wars ... ... The gold image of Kamakshi had been removed first to Odayarpalayam ; and then to Tanjore, where it has since been permanently located. And on the invitation of Raja Pratapa Simha (1740—1763) of Tanjore, the Matha was permanently removed to Tanjore ;' मठ की अनुमति से प्रकाशित पुस्तक का कथन है कि कर्नाटक युद्ध काल में ही (1743) स्वर्ण कामाक्षी हटायी गयी थी। मठ के एजन्ट राजकीक पुरातत्त्व विभाग को 1915 ई॰ में लिखते हैं कि आज से 186 वर्ष पूर्व (1729 ई॰) राजा प्रताप सिंह के बुलावे पर तंजौर गये। राजा प्रताप सिंह का काल 1740—1763 ई॰ का भी दिया गया है। इन भिन्न कथनों में सत्य कथन कौन है ? प्रमाणयुक्त यह सिद्ध है कि यह मूर्ति 1687/88 ई॰ में ही हटाया गया था। समयानुसार भिन्न कथनों से ही सिद्ध होता है कि आपका सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ विलकुल न था।

1915 ई॰ में कुम्भकोण मठ एजन्ट मद्रास राज्य को लिखते हैं कि आज से 186 वर्ष पूर्व कांची से तंजौर पहुंचे अर्थात् 1729 ई॰। 1941 ई॰ में कुम्भकोण मठ मेनेजर अपने पत्र No. G. 1444/40--41 dated 25—7—41 में लिखते हैं—' During the uncertain times of the Carnatic Wars

Conjeevaram was inside the danger zone of Mohammedan oppression and war conditions, and as such when the then head of the Kamakoti Peetha was thinking of a southern move, the chieftain of the orthodox Hindu principality of Udayarpalayam extended invitation to the Acharya to go over to Udayarpalayam. Accordingly, the Acharyas came to Udayarpalayam. While he was staying there, the then Maharaja of Tanjore, having heard of the arrival of Acharya at the capital of Udayarpalayam principality, in his state, went in person to Udayarpalayam and took the Acharya with him to Tanjore.' कुम्भकोण मठ का दो भिन्न बयान 1729 ई० व 1743—63 ई० में कौनसा बयान यथार्थ है ? इससे प्रतीत होता है कि कल्पित विषय को सत्य का रूप देने की कोशिश हो रही है। आप कहते हैं कि उदयारपालयम के जमीन्दार ने कुम्भकोण मठाधीश को आदरपूर्वक अपने जमीन्दरी में स्वागत किया था पर यही उदयारपालयम के जमीन्दार 1784 ई० में कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता श्रीदक्षिणामूर्ति को मन्दिर पूजा सेवा के लिये भूदान दिया था। जमीन्दार को कांची मठाधीश का विवरण सब मालूम होते हुए भी क्यों श्रीदक्षिणामूर्ति को भूदान दिया था ? क्या कांची मठाधीश के आधीन या परिचालन में कामाक्षी मन्दिर न था ?

कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक में यह भी उल्लेख है कि जब हैदर अली ने चढाई की थी (1767 ई०) तब स्वर्ण कामाक्षी को तंजौर ले गये थे। अन्यत्र एक प्रचार पुस्तक में उल्लेख है कि जब हैदर अली की सेना 1780 ई० में चढाई की थी तब स्वर्ण कामाक्षी को अपने साथ तंजौर ले गये। श्री वि. विश्वनाथम लिखते हैं—'The tradition of the Matha tells us that it was at the invitation of King Sharabhoji of Tanjore that the Acharya removed to Kumbhaghonam.' (Ep Ind. Vol. XIV) कुम्भकोणम् में मठ का शिलाशासन से प्रतीत होता है कि 1821 ई० में कुम्भकोणम् में मठ निर्माण हुआ और आप इसी समय यहां पहुंचे। इस घटना घटित होने का छः भिन्न बयान दिया गया है और कामाक्षी ही जाने कि इसमें सत्यता है या नहीं। यदि कांची में मठ होता या मठ का सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ होता या स्वर्ण कामाक्षी को उदयारपालयम ले गये होते तो सत्य घटना का वर्णन एक ही रूप में होता और सदा सर्वकाल के लिये भी एक ही घटना वर्णन रह जाता। भिन्न कथनों से सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ स्वयं नहीं जानते कि कौन कथन सत्य है।

कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकरों ने जनवरी 1840 ई० में एक पत्र मदरास राज्य (Board of Revenue, Fort St. George, Madras) को भेजा था जिसका नकल निम्न दिया जाता है। इस पत्र द्वारा सिद्ध होता है कि कांची मठाधीश ने स्वर्णकामाक्षी को उदयारपालयम न ले गये थे और कांची मठ का संबन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ कुछ भी न था। स्थानीकरों ने स्वर्णकामाक्षी को उदयारपालयम् ले गये थे और तंजौर का स्वर्णकामाक्षी मन्दिर का निर्वाह भी आप लोगों के वंशजों के हाथ में ही था।

उक्त पत्र का नकल—'We beg to bring to your consideration that in one of the former wars with which our country was distracted, the gold image of Camatchy Amman from Kanchi was concealed together with jewels worth of one lack pagodas

in Woodiarpalayam. While it was there a few of the sthaneeks with a desire to covet the jewels accompanied by some other Brahmins took away the image of the goddess along with the jewels to the fortress of Tanjore. And in the year 1820 Mr. A. Crawley, the then Head Assistant Collector, having in his enquiry found out if such a takeed that the Sthaneeks of this temple should not go and attend in Tanjore and that those of Tanjore should not serve here and received to that effect written documents from their hands and as the jewels and goddess are not inserted in the accounts of the circar, we and the inhabitants of Conjeevaram have addressed to Mr. A. MaClean in 1834 and Mr. MaClean in his takeed No. 13 of 24th September of the same year to the Tahsildar of Conjeevaram ordered him to search fully into the matter and inform and that the Tahsildar delayed to execute the command on which we have petitioned to Mr. A. Freese at three different times for which he answered that he would not enter in this affair, we therefore, humbly request your Board to look into Mr. MaClean's takeed and to the documents mentioned above and to order the goddess from Tanjore with the jewels to be brought to the original place.'

'We also enclose Mr. MaClean's takeed together with the endorsement of the present Collector.'

'For which act of charity and benevolence, your petitioner as in duty bound,

Shall ever pray,
(Sd.) स्थानीकम अरुणाचल शास्त्री,
,, रामस्वामी शास्त्री,
,, सुब्बा शास्त्री—आदि

सुना जाता है कि उन दिनों में कुम्भकोण मठाधीश तंजौर राजाओं का आश्रय प्राप्त कर आपने राजा के प्रभाव व सहायता द्वारा इस स्वर्ण कामाक्षी को तंजौर से कांची लौटाने से रोक दिया था। स्थानीकरों का प्रयत्न सब असफल रहा। कुम्भकोण मठ तंजौर राजा से स्थापित था। तंजौर राजा शरभोजी ने 1821 ई० में कुम्भकोणम में एक मठ निर्माण किया था। कुम्भकोण मठाधीश सब 1855 ई० तक तंजौर राजा के आश्रय में थे। 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध एवं 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में तंजौर महराठा राजा से एवं मैसूर राज्य से मित्र भाव न होने के कारण एवं इन दोनों में संघर्ष होने के कारण तंजौर राजा ने अपनी सीमा में श्रृंगेरी के धर्मविषयों का प्रभुत्व घटाने एवं अन्त में उनसे सम्बन्ध तोड देने की इच्छा से तंजौर में एक नवीन मठ स्थापित किया था। इसलिये कुम्भकोण मठाधीशों को सुलभ ही था कि वे अन्यों को तंजौर सीमा में आने से रोक दें और आपलोगों ने ऐसा किया भी था। तंजौर में 18 वीं/19 वीं शताब्दी में महराठा राजा राज्य करते थे और अन्य एक महराठा परशुराम भट्ट ने अक्टोबर 1791 ई० में कर्नाटक देश का बेदनूर जिला पर चडाई की थी। अन्य एक महराठा रघुनाथ राव पटवर्धन ने टिपू के

प्रति बदला लेने के उद्देश्य से श्रृङ्गेरी मठ का लूटमार किया था। इस घटना से मैसूर व महराठा राज्य एवं तंजौर के महराठा राजा के बीच में संघर्ष उत्पन्न हुआ। तंजौर के महराठा राजा यद्यपि खुल्लमखुल्ला मैसूर राज्य व श्रृङ्गेरी मठ के विरुद्ध करवाइयां न की थी तथापि आपके हृदय में वह मैत्री भाव अब न रहा। महराठा का जाति अभिमान टिपू के विरुद्ध ही था। तंजौर के महराठा राजा ने श्रृङ्गेरी से अपनी नाता तोड कर एक नवीन शङ्कर गुरु मठ अपने राज्य में श्रृङ्गेरी के बदले स्थापित करना चाहा और इसके फलाभूत कुम्भकोण मठ स्थापित हुआ। श्री जि. एस. सरदेसाई 'न्यू हिस्ट्री आफ महराठा' में लिखते हैं—'In October 1791 Parasuram Bhatt marched to the district of Bednur, for the conquest of which heroic exertions had been put forth since the time of Nana Sahib. Raghunath Rao Patwardhan burning with the desire of revenge against Tippu wantonly destroyed at this time the holy shrine of the Shankaracharya of Shringeri, an affront to Hindu Religion by a brother Hindu the sad memory of which long remained fresh in Maratha memory.'

'तत्त्वनिधान' के संपादक मरैकडै नम्बी श्री सुब्रह्मणिय अय्यर ने 1936 ई० में लिखा था कि आपने एक प्राचीन ताळपत्रात्मक ग्रन्थ 'पल्लवराय चरित्रम्' पढा था जिसमें उल्लेख था कि स्वर्ण कामाक्षी के कांची से चले जाने के बाद एवं इस कांची में शान्ति स्थापना के पश्चात् एक समय अकाल पडा और उस समय के कांचीवासियों ने प्रयत्न किया था कि स्वर्ण कामाक्षी कांची लौटा लांय चूंकि आपलोगों का अभिप्राय था कि स्वर्ण कामाक्षी जाने के बाद कांचीपुर की लक्ष्मी भी चली गयी। आप सब अपने प्रयत्नों में असफल रहे। पश्चात् आपमें से कुछ लोग श्रृङ्गेरी मठाधीश को लिखकर प्रयत्न किया था कि श्रृङ्गेरी महासन्निधान कृपा कर तंजौर राजा से कहकर स्वर्ण कामाक्षी को कांची लौटा देने का कष्ट उठायें। श्रृङ्गेरी मठाधीश ने एक यति महादेव सरस्वती को एक श्रीमुखपत्र लिखकर तंजौर राजा के पास भेजा था। उक्त यति श्री महादेव सरस्वती अपना कार्य सामाप्त न किये और न श्रृङ्गेरी लौट आये। अनुमान किया जाता है कि यही यति महादेव सरस्वती कुम्भकोण मठ के स्थापक थे और आप तंजौर राजा का आश्रय व आदर प्राप्त कर तंजौर में ही रह गये थे। इस विषय पर आन्वेषण की आवश्यकता है। स्थानीकरों व कांची वासीयों के पत्र से (जनवरी 1840 ई०) प्रतीत होता है कि आपलोग बराबर कोशिश करते थे कि स्वर्ण कामाक्षी कांची लौट आय और यह असम्भव नहीं दीखता कि इनके पूर्वजों ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया होगा।

9. कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपके मठाधीश प्रायः सब जगत् विख्यात विद्वान एवं आदरणीय यतिराज तथा माननीय ग्रंथ रचयिता होने के कारण मठ होने का सिद्ध होता है। पाठकगण कृपया तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों को पुनः पढें तो प्रमाणयुक्त प्रतीत होगा कि कुम्भकोण मठ की वंशावली सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक की एक कल्पित सूची है। अन्यत्र प्राप्त ग्रंथों में से विख्यात परिव्राजकों का नाम एवं विख्यात ग्रंथ रचयिताओं का नाम सब संग्रह कर एक कल्पित सूची तय्यार किया गया है। कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य प्रचार है।

कुम्भकोण मठ का यह भी प्रचार है कि श्रृङ्गेरी मठाधीश ने नेरूर के सिद्ध महापुरुष सदाशिव ब्रह्म जो कुम्भकोण मठाधीश के शिष्य थे आपको अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित की है अतः श्रृङ्गेरी ने कांची मठ को स्वीकार किया है। श्रृङ्गेरी मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री 1008 श्रीचन्द्रशेखर सरस्वतीजी महाराज ने 1934 ई० में अपने दिये हुए तार द्वारा स्पष्ट कहा है कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार ही आम्नाय मठों की स्थापना की थी। इसी प्रकार वर्तमान श्रृङ्गेरी मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचर्य श्री 1008 श्रीअभिनव विद्यातीर्थजी महाराज ने अपने पत्र में केवल चार आम्नाय

मठों का उल्लेख किया है। अतः यह कहना कि श्रृंगेरी मठ ने आपके मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित स्वीकार किया है सो प्रचार असत्य प्रचार है। पाठकगण तृतीय खण्ड में उक्त तार व पत्र प्रकाशित पायेंगे। नेरूर के सिद्ध महापुरुष सदाशिव ब्रह्म का सम्बन्ध कांची मठ से कुछ भी नहीं है और आपकी नेरूर समाधि भी कुम्भकोण मठ के आधीन में नहीं है। श्रीसदाशिवब्रह्म के गुरु श्रीपरमशिवेन्द्र थे और आप श्रीअभिनव नारायणेन्द्र के शिष्य थे। यह नाम कुम्भकोण मठ वंशावली में पाया नहीं जाता। इतिहास एवं अन्य बाह्य दृढ प्रमाणों द्वारा सिद्ध होता है कि आपका काल 18 वीं शताब्दी का था पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपका काल 16 वीं शताब्दी का है। अतः यह कहना कि श्रीसदाशिव ब्रह्म का सम्बन्ध कांची मठ से था एवं आपने 'गुरुरत्नमालास्तव' पुस्तक की रचना की है सो सब मिथ्या प्रचार है। पाठकगण कृपया प्रथमाध्याय में 'गुरुरत्नमाला' शीर्षक विमर्श (पृष्ठ 261—277) पढ़ें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार सब मिथ्या प्रचार है।

यह वास्तव है कि श्रृङ्गेरी मठाधीश ने श्रीसदाशिव ब्रह्म का स्तोत्र रचना की है और आप नेरूर समाधि भी गये थे। श्रीसदाशिव ब्रह्म एक सिद्धमहायोगी थे और आप एक स्वतंत्र व्यक्ति थे। अतः कुम्भकोण मठ का कथन कि श्रृंगेरी मठाधीश ने स्वीकार किया है कि कांची मठ आचार्यशङ्कर का मठ है सो प्रचार मिथ्या है। यहां ध्यान देने का विषय है कि आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठ के तीन मठ अब भी हैं और ये तीनों आदरणीय आम्नाय मठाधीशों ने कांची मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित नहीं माना है। पाठकगण तृतीय खण्ड में पत्र प्रकाशित पायेंगे।

कांची कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 1797 ई० में श्रृङ्गेरी मठाधीश 'श्रीअभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती' ने एक क्षमा पत्र कुम्भकोण मठ को दिया है। एक अद्वैतमतावलम्बी परिव्राजक को ऐसा काला कर्तूत शोभता नहीं है। यति चक्रवर्ती बनने की क्षत्रिय गुण ने आपको एक अहंकारी यति बना दिया है। श्रृंगेरी मठ वंशावली में चौदहवीं शताब्दी का एक ही विद्यारण्य थे और आपके सिवा कोई भी अन्य विद्यारण्य नहीं हैं। 'अभिनवोद्दन्ड' पदवी श्रृंगेरी मठाधीशों ने कभी भी उपयोग किया नहीं है। पाठकगण कृपया चतुर्थ अध्याय पृष्ठ 422 पढ़ें जहां इस विषय पर आलोचना की गयी है।

10. कांची मठ का प्रचार है कि कांची के मन्दिरों में आचार्य शङ्कर की मूर्तियां जो शिला में खुदा हुआ है इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर का निजाश्रम व निजमठ कांची ही था। यह अनुमान भूल है। कांची का शिलालेख जो अब प्रकाशित है सो अन्य कथा सुनाती है। मूर्तियां होने से यह सिद्ध नहीं होता कि आचार्य शङ्कर का आम्नाय मठ कांची में ही था क्यों कि मठ की प्रतिष्ठा आम्नायानुसार ही हुई है। भारतवर्ष में अनेक जगह में आचार्य मूर्तियां हैं और इनमें कुछ मूर्तियां कांची मन्दिर मूर्तियों से भी प्राचीन काल के हैं तो क्या यह कहा जाय कि इन सब स्थलों में भी आम्नाय मठ की प्रतिष्ठा हुई थी? कांची नगर एक समय जैनों का प्रधानक्षेत्र था और बाद बौद्धों का प्रधान क्षेत्र बना था। आंठवीं व नौवीं शताब्दी के बाद शैवसिद्धान्तियों का प्रभाव पडने लगा और दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक आपका मत प्रचार भी खूब हुआ था। पश्चात् श्रीरामानुज संप्रदाय का भी प्रधान क्षेत्र बना था। इसलिये यह कहना भूल होगी कि जो कुछ सन्यासी शिला में देखा जाता है सो सब आचार्य शङ्कर का ही है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कांची का वरदराज मन्दिर की माता मन्दिर सन्निधि में व्यास व आचार्य का मूर्ति है पर इस मन्दिर का शिलालेखन जो अब प्रकाशित हुआ है सो कुम्भकोण मठ के प्रचार को मिथ्या ठहराता

है। एक विशिष्टाद्वैत मतावलम्बी महान् 'अळकिय मणवाळ जीयर' जो 1553 ई० में जीवित थे, इसी काल का एक शिलाशासन में आपका नाम उल्लेख है। यहां आपको 'श्रीकार्यम्' कहा गया है (शासन नं. 495/1919 ई०)। अन्य शासनों द्वारा स्पष्ट मालूम होता है कि अळकिय मणवाळ जीयर ने वरदराज मन्दिर में अनेक मन्डपों का निर्माण कराया था। यह कहेजानेवाले व्यासमूर्ति वास्तव में शिलालेखानुसार 'अळकिय मणवाळ जीयर' का ही है। इनके समीप का सन्यासी की मूर्ति 'श्रीशङ्करदासन्' का है। यद्यपि आप अद्वैत-मतानुयायी थे तो भी आपकी श्रद्धा व भक्ति उक्त जीयर के प्रति अधिक था और आप दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ था (शिलालेखन नं. 432 दक्षिण भारत मन्दिर शिलालेख)।

वैकुण्ठपेरुमाळ मन्दिर व एकाम्रेश्वर मन्दिर के आम्रवृक्ष समीप एवं एकाम्रेश्वर मन्दिर का मन्डप के खम्बों में आचार्य शङ्कर का तपस्या रूप में खडा हुआ मूर्ति पाये जाने की कथा भी कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं। इन मूर्तियों को देखने मात्र से एक अनभिज्ञ व्यक्ति भी आचार्य शङ्कर की मूर्ति कह नहीं सकता चूंकि ये सब मूर्ति हठयोग का आसन लगाया हुआ प्रतीत होता है। आचार्य शङ्कर जो सर्वज्ञ व अवतारी पुरुष थे आप हठयोगी न थे। उपर्युक्त इन तीनों मूर्तियों के समान और मूर्तियां कांची कामाक्षी मन्दिर के पूर्व व पश्चिम दर्वाजों के समीप पाया जाता है। वैकुण्ठपेरुमाळ मन्दिर एवं एकाम्रेश्वर मन्दिर की मूर्तियां हर एक विवरण में कामाक्षी मन्दिर की मूर्तियों से समानता रखती है। अतः ये सब मूर्ति एक ही व्यक्ति का होना निश्चित होता है। कामाक्षी मन्दिर मूर्ति के नीचे एक शिला लेखन है जो स्पष्ट कहता है कि यह मूर्ति 'कामाक्षीश्वर भारती श्रीपादङ्गळ' का मूर्ति है (Appendix B—No. 286 of 1955/56 Annual Report on Epigraphy)। अतः उक्त तीन मूर्तियां जो वैकुण्ठपेरुमाळ मन्दिर एवं एकाम्रेश्वर मन्दिर में पाये जाते हैं सो सब कामाक्षीश्वर भारती का ही है। इन मूर्तियों को आचार्य शङ्कर की मूर्ति कहना इतिहास व शिलालेखन प्रमाणों के विरुद्ध ही होगा।

कांची कामाक्षी मन्दिर की एक मूर्ति एवं स्वर्ण कामाक्षी सन्निधि का एक मूर्ति दोनों का चिन्मुद्रा हृदय के तरफ संकेत करते हुए हृदय को छू रहा है। इस प्रकार का चिन्मुद्रा दक्षिणामूर्ति या आचार्य शङ्कर की मुद्रा दीख नहीं पडता है। चिन्मुद्रा जो हृदय की तरफ संकेत करता है वह शैवाचार्य या शैवसम्प्रदाय के महानों की ही मूर्ति है न कि आचार्य शङ्कर की मूर्ति।

एक मार्के की बात है कि भारतवर्ष में जहां कहीं आचार्य शङ्कर की मूर्तियां हैं वहां आचार्य के साथ चार शिष्यों की ही मूर्ति दीख पडती है। कांची मठ द्वारा प्रकाशित मूर्तियों के चित्र में भी (पापाच्छत्रं व तिरुवत्तियूर) केवल चार शिष्य ही देखा जाता है पर कामाक्षी मन्दिर के कहेजानेवाले शङ्करमूर्ति के नीचे छः शिष्यों की मूर्ति हैं जिसमें चार दन्डी सन्यासी एवं दो खाली हाथ का है। न मालूम आचार्य शङ्कर को मुख्य प्रधान छः शिष्य होने का विषय किन प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा रहा है? श्रीबुद्धदेव के छः मुख्य शिष्य थे और यह मूर्ति बुद्ध देव की मूर्ति है। मैं ने इस विषय पर काफी छानबीन किया है और दक्षिण भारत के नामी ऐतिहासिकों, पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों एवं दक्षिण भारत मन्दिरों का पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों से इस विषय पर चर्चा भी की थी। आप सबों का अभिप्राय है कि जो कुछ मूर्तियां सन्यासी रूप में कांची में देखा जाता है वे सब आचार्य शङ्कर की मूर्ति नहीं हैं। कांची इतिहास, पुरातत्त्वविभाग का सांवत्सरिक रिपोर्ट व दक्षिण भारत मन्दिर की शिलालेख पुस्तकों को पढा जाय तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार सब असत्य है। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है चूंकि मेरे

पास प्रमाण व सामग्री अधिक मात्रा में हैं पर इसका मठविषयक के साथ सम्बन्ध न होने से यहां विस्तारपूर्वक आलोचना की नहीं जाती।

11. मुकद्दमा नं. 95/1844 ई०, जिला अदालत तिरुचिनापल्लि, में कुम्भकोण मठाधीश ने एक बयान अपने प्रतिनिधि द्वारा दिया था कि सरस्वती छोटी श्रेणी की देवी हैं और कामाक्षी ऊंची श्रेणी की देवी हैं और आचार्य शङ्कर ने नीची श्रेणी देवी मन्दिर में श्रीचक्र प्रतिष्ठा नहीं की थी। यह कथन उन्मत्त प्रलाप है। अपने को अद्वैती एवं आचार्य शङ्कर के साक्षात् परम्परा कहनेवाले मठाधीशों का कचहरी बयान इन दोनों का अपचार ही करना होगा। अनभिज्ञ पामरलोगों में फूटभाव उत्पन्न करके भ्रामक प्रचारों द्वारा इष्टसिद्धि प्राप्तकरना परिव्राजकों को शोभता नहीं है। इसी प्रकार यह भी प्रचार करते हैं कि पांच लिङ्ग जो आचार्य शङ्कर कैलास से लाये इसमें योगलिङ्ग 'सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ' है। सम्भवतः कुम्भकोण मठ का विशेष अद्वैतवाद इस भेदभाव का पाठ पढाता हो चूंकि आपके मठ का प्रामाणिक ग्रंथ आ. श. वि. भी यही कहता है कि आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्य को भेजकर 'द्वैतवाद' प्रचार करने को कहा था और सम्भवतः आप उसी परम्परा के हैं।

सरस्वती को 'सार प्रसरनम् सर्वत्रास्तीति सरस्वती' 'वागधिष्ठात्री' कहा गया है। सरस्वती ब्रह्म है जो देवी रूप अवतार होकर शब्द व विद्या की रूप भी धारण की है। सात्विक देवी का रूप ही सरस्वती है। सरस्वती को महाविद्या व ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। सरस्वती को महावाणी, आर्य, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भ, धी व ईश्वरी भी कही जाती है। अमरकोष में 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीरवाग्वाणी सरस्वती' कहा गया है। गायत्र्युपनिष्द के अनुसार सायम् संध्या सरस्वती को ही अर्पण की जाती है। सरस्वती सामवेद की अधिष्ठात्री है और सरस्वती को वैष्णवी शक्ति भी पुकारा जाता है। मोक्ष प्राप्त करने का एक साधन विद्यादायिनी भी है। देवी माहात्म्य में अनेक देव व देवी का महालक्ष्मी से आविर्भाव होने की कथा वर्णित है। जब देवी दो वर्ष की थी तब आपको सरस्वती पुकारा गया। ऋग्वेद में सरस्वती का वर्णन है। 'नामरूपात्मन व्यक्त', 'या वेदान्तार्थ तत्त्वैकस्वरूप परमार्थतः,' 'या साङ्गोपाङ्ग वेदेशु चतुर्वेकैवगीयते', 'अद्वैत ब्रह्मण शक्तिः', आदि भी सरस्वती के बारे में कहा गया है। सरस्वतीरहस्योपनिषद में ऋग्वेद सरस्वती सूक्त से लिया गया है। 'अध्यात्ममादिदैवं च देवानां सम्यगीश्वरी,' 'प्रणवासनमारूढां तदर्थत्वेन निश्चिताम्' आदि भी सरस्वती को कहा गया है। एक कवि ने लिखा है 'ओंकार पंजरशुकीं उपनिषदुध्यान केलिकलकन्टीं।' अन्य एक जगह कहा है 'अन्तर्याम्यात्मन विश्वं त्रैलोक्यं यानियाचति', 'रुद्रादित्यरूपस्थ'। ऐसे वर्णित सरस्वती को नीची श्रेणी की देवी कहना लोगों में मिथ्या प्रचार करना है। कामाक्षी देवी का वर्णन प्रथम खण्ड अध्याय छः में पायेंगे। आचार्य शङ्कर द्वारा पुनरुद्धार कर प्रचार किया हुआ ब्रह्मविद्या ही सरस्वती या शारदा हैं। शारदा का स्थूलरूप श्रीचक्र की प्रतिष्ठा आचार्य शङ्कर ने शृंगेरी में की थी जो विश्रय सब दिग्विजय एवं अन्य प्रामाणिक पुस्तक भी समर्थन करते हैं। कांची कामाक्षी मन्दिर में आचार्य शङ्कर ने श्रीचक्र की प्रतिष्ठा नहीं की थी पर पूर्व से ही स्थित श्रीचक्र की अशुद्धता को निवारण कर गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता को शान्त किया था। श्रीचक्र प्रतिष्ठा या जीर्णोद्धार करने मात्र से मठ की स्थापना कही नहीं जा सकती है। आम्नाय मठों की स्थापना आम्नायानुसार किया गया है। आचार्य शङ्कर ने कांची के अलावा अन्य तीर्थ क्षेत्रों में भी चक्रों की प्रतिष्ठा या जीर्णोद्धार किया था तो क्या कहा जाय कि इन सब जगहों में भी मठ की स्थापना की गयी थी?

12. कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों ने 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' पुस्तक में चेङ्गलपेट डिस्ट्रिक्ट गजटियर में से कुछ पंक्तियां उद्धृत कर कहते हैं कि कांचीमठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित है। इसमें उल्लेख है कि

जो आचार्य शङ्कर 9 वीं/10वीं शताब्दी में जन्म लिया था आपने कांची मठ की स्थापना की थी—'who flourished in the 9th or 10th century.'। पूर्वी व पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वानों ने यह निश्चित रूप से सिद्ध किया है कि आचार्य शङ्कर का जन्म सातवीं शताब्दी अन्त का या 8 वीं शताब्दी का ही है। शङ्कर भाष्य के सब से प्राचीन टीकाकार (श्रीपद्मपादाचार्य के पञ्चपादिका को छोडकर) श्रीवाचस्पति मिश्र हैं। आपने 'भामती' नामक टीका लिखी है। श्रीवाचस्पति मिश्र ने 'न्यायसूची निबन्ध' ग्रंथ में रचना काल 898 विक्रम संवत लिखा है—'न्यायसूची-निबन्धोऽयमकारि विदुषां मुदे। श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसुवत्सरे।' अर्थात् भामतीकार श्रीवाचस्पतिमिश्र का समय 841 ई० था। वाचस्पतिमिश्र द्वारा किया हुआ खण्डन-मण्डन के लिये अनुमान किया जाता है कि आचार्य शङ्कर का काल एवं श्रीवाचस्पतिमिश्र का काल में कम से कम एक शताब्दी का अन्तर होना चाहिये जो समय पर्याप्त माना जा सकता है। चालुक्य विक्रमादित्य के राज्यकाल के चौदहवें वर्ष में आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ था। अर्थात् सातवीं शताब्दी अन्त काल ही ठीक जमता है। अतः उक्त गजटियर का कथन भूल है। ऐसे अभिप्रायों को मूल प्रमाण में देना उचित व न्याय नहीं है और ये सब सिद्ध किये हुए विषयों की पुष्टी में दिया जा सकता है। एस. आर. हेमिङ्गवे, ऐ. सि. एस., तंजौर गजटियर में लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ तंजौर राजा से स्थापित मठ है और तंजौर राजा ने अपने राज्य में निवास करने की इच्छा प्रगट की थी। इस पुस्तक के तृतीय खण्ड में पूर्वीय व पाश्चात्य अनुसन्धान व प्रकान्ड विद्वानो का मठ विषयक अभिप्राय प्रकाशित हैं। वर्तमान तीन आम्नाय मठाधीशों ने भी कुम्भकोण मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित मठ मानते नहीं हैं और आप आदरणीय आचार्यों का विचार भी प्रकाशित हैं। इन प्रमाणों के विरुद्ध किस प्रकार कुम्भकोण मठ का भ्रामक प्रचारों का स्वीकार किया जाय?

13. कुम्भकोण मठ के कुछ शिष्य एवं मठ कृपाभाजन विद्वानों ने प्रचार किया था कि जो व्यक्ति कुम्भकोण मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित नहीं है ऐसा कहते हैं सो सब मूर्ख हैं। अन्धा व्यक्ति सारी जगत को अन्धकार रूप में ही देखता है और उसकें लिये सब अन्धे ही हैं। इस विषय पर उत्तर देने से 'मैं, मैं, तू, तू' हो जाने के भय से मैं यहां विस्तारपूर्वक उत्तर नहीं देता। भवभूति ने उत्तररामचरित में कहा है 'यथास्त्रीणां तथावाचां साधुत्वे दुर्जनोजनः' और यह यथार्थ है कि चाहे कोई एक व्यक्ति कितना ही सदाचारी, शीलवान, धर्मानुष्ठानव्यक्ति, विवेकी हो तथापि कुछ स्वार्थी संसारी लोग इन पर टीकाटिप्पणी करना उनका स्वभाव ही है। विवेकियों को इन टिप्पणियों से न दुःख होता है या न आनन्द प्राप्त करते हैं और वे भगवान से प्रार्थना करते हैं कि सबों को सद्बुद्धि दें। कहेजानेवाले विवेकी विद्वानों के वचन से ही आप लोगों का गुण व लक्षण प्रतीत होता है।

जो आचार्य शङ्कर श्रीपद्मपाद के लिये 'अपूर्व शङ्कर' थे, श्रीसुरेश्वराचार्य के लिये 'शङ्कर भानवे' थे, श्रीसर्वज्ञात्ममुनि के लिये 'पूज्यपाद' थे, श्रीअमलानन्द सरस्वती के लिये 'परमहंस धुरंधरम' थे, श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र के लिये 'भवरोगभिषग्वरान्' थे, श्रीमाधवाचार्य के लिये 'हनूमान् लोकेड्यस्तव तु कियति स्यान्महितता' थे, श्रीमधुसूदन सरस्वती के लिये 'अद्भुत शङ्कर' थे, श्रीरामानन्द स्वामी के लिये 'अभिनव त्रिपुरारी' थे, उस आचार्य शङ्कर के जीवन घटनाओं को अब कुम्भकोण मठ अपने एकाङ्गि स्वरचित प्रमाणाभास प्रचार पुस्तकों द्वारा मिथ्या ठहराने का यत्न हो रहा है, इस स्वकर्तून पर न भय खाते हैं या न लज्जित होते हैं पर दूसरों पर कीचड फेंकते हैं। वेद, गुरु, भगवान तीनों का सत्कार व आराधना करना मनुष्य का कर्त्तव्य है—'यावज्जीवं त्रयो वन्द्याः वेदान्तो गुरुरीश्वरः' —पर कुम्भकोण मठ का पूजा सत्कार आचार्य शङ्कर के प्रति उनके जीवन चरित्र पर दुष्प्रचार करना ही है।

अध्याय--7

कुम्भकोणम मठ के भ्रामक तथा मिथ्या प्रचारों के कुछ नमूने

कुम्भकोण मठ का डेढसौ वर्ष मठवृत्तान्त विषयों को छानवीन किया गया है और इस अनुसन्धान कार्य में वहुत से ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हुए जो आपके मठ प्रचार को भ्रामक व मिथ्या ठहराता है। ऐसे अनेक भ्रामक व मिथ्या प्रचारों का विवरण मेरे पास हैं जिसमें से कुछ विवरण मैं निम्न देता हूं ताकि पाठकगण जान लें कि आपके मठ विषयक प्रचारों में कितनी सत्यता है। मेरा उद्देश्य नहीं है कि मैं किसी प्रकार का निन्दा व्यक्तिगत करूं या आपके मठ की निन्दा करूं। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश न केवल एक तपस्वी विद्वान परिव्राजक हैं और इसलिये आदरणीय हैं पर आप अर्वाचीन काल में स्थापित शाखा मठ के मठाधीश भी हैं। आपके द्वारा जो कुछ धर्मप्रचार हो रहा है इसके लिये हम सब कृतज्ञ हैं पर इसका अर्थ यह न होगा कि धर्मप्रचार के व्याज द्वारा मठ की प्रतिष्ठा बढाने का प्रयत्न करें और हमलोग आपके या आपके मठ के अनुयायियों द्वारा किये जाते भ्रामक व मिथ्या प्रचारों का समर्थन करें। यह पुस्तक लिखने का उद्देश्य यही है कि साधारण जन व अन्य जिन्हें आचार्य शङ्कर के चरित्र में दिलचस्पी रखते हैं वे जान लें कि आपके मठ के प्रचारों का क्या वास्तविक रूप है।

(क) 1934/35 ई० में वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश जब आप काशी पधारे थे तब आपके मठ विषयक प्रचारों का वादविवाद खडा हुआ। आपके तीन द्राविड विद्वान एवं शिष्य भक्तों की सहायता से आपके स्वागत के लिये काशी में खूब धूमधाम मचाई गयी थी। इस कार्य को सफलता पूर्वक निर्वाह करने के लिये एक स्वागत कारिणी समीति भी स्थापित किया गया था। इस समिती के कुछ सदस्य व कार्यनिर्वाह पदवी धारण करनेवाले व्यक्ति जो विद्वान, आदरणीय परिव्राजक, शाखा मठ के अधीश, मन्डलेश्वर व महन्त थे, आप सबों ने अपनी अपनी अस्वीकृति पत्र भेजे थे। तथापि आपलोगों का नाम प्रकाशित किया गया ताकि पामरजन जान लें कि आप सब मठ कार्य में सहयोग देते हैं। स्वागत समीति ने कुछ गण्यमान सज्जनों, धनाढ्य एवं मन्डलेश्वरों का नाम भी प्रकाशित किया था जो सब व्यक्ति उस समय काशी में न थे और वे न आपसे परिचित थे। इनमें से कुछ अपनी अस्वीकृति पत्र एवं मिथ्या प्रचार पर टिप्पणी लि भेजी थी तथापि समीति ने इन लोगों का नाम प्रकाश किया ताकि काशी के साधारण जन में भ्रम उत्पन्न हो और इसके द्वारा अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकें। इस आयोजन के प्रचारक व व्यपस्थापक तीन द्राविड विद्वानों का कार्य ऐसा था जो आपको शोभता नहीं। मिथ्या प्रचार का प्याला जब भर गया तो काशी में आपके प्रचारों का पोल खुल गया। बिहारीपुरि मठ के सभा में आपके भ्रामक प्रचारों का घोर विरोध किया गया था। काशी में जब जब असत्य प्रचार हुआ तब तब इन प्रचारों का खण्डन भी किया गया था।

पूछे प्रश्नों का उचित व न्याय उत्तर न देकर प्रचारकों ने कुछ व्यक्तियों पर व्यक्तिगत वैमनस्य व द्वेष भाव से कारवाइयां शुरुकर दी थी ताकि ये सब व्यक्ति डर से चुपमार बैठें और प्रचारक अविरोध अपनी भ्रामक मिथ्या प्रचार कर सकें। काशी धाम आने के पूर्व काशी समीप कुम्भकोण मठ का कुछ मूल्य वस्तु एवं देवदेवी मूर्तियां चोरी हो गयी थी। आप पुलीस व अन्य राज्यकर्मचारी तथा रायसाहवों की सहायता से आपके अनुयायियों ने द्वेष भाव से एक निरपराधि बालक को वहु कष्ट पहुंचाया और इस बालक को चोंट पहुचाने की इच्छा से तीनबार इस बालक पर वार किया गया तथा इस बालक पर चोरी का जुल्म भी आरोप किया गया। भेलुपूरा व मडुवाडी थाने के पुलीस कर्मचारियों

ने बालक के घर की तलाशी भी ली थी और उस बालक को कष्ट भी दिया तथापि मठ के विद्वानों से रचित पुस्तक में देवमूर्ति की चोरी न होने की खबर भी लिखकर प्रकाशित किया गया। उस समय काशी के गण्यमान एवं माननीय व्यक्तियों को किस प्रकार कुम्भकोण मठ के अनुयायियों ने अपनी टोली में मिला ली थी यह एक रहस्य है। कुम्भकोण मठ के अवलाम्बित नवीन मार्ग के भ्रामक प्रचार व वाह्य आडम्बरों ने इन व्यक्तियों को मोहित कर दिया था। ये व्यक्ति नहीं जानते थे कि आगामी काल में इनके नाम द्वारा कुम्भकोण मठ अपनी भ्रामक प्रचारों की पुष्टी करेगा। उस समय आपलोग कुम्भकोण मठ के कर्तूतों का उद्देष्य व मर्म नहीं जानते थे। इतना प्रयत्न होते हुए भी आपका स्वागत काशी में फीका ही रहा।

वर्तमान मठाधीश ने काशी में कहा कि 'ॐतत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य नहीं है पर आपके कृपाभाजन विद्वानों ने स्वेच्छावाद प्रमाण द्वारा व्यवस्था दी कि 'ॐतत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य है। कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोध द्वारा रचित 'सुषमा' में 'ॐतत्सत्' को उपदेष्टव्य महावाक्य कहा गया है। कुम्भकोण मठाधीश ने काशी में कहा कि सब मठों पर समताभाव रखनी चाहिये और आप अपने मठ का श्रेष्ठत्व का दावा नहीं करते। पर आपके विद्वानों ने प्रमाणाभास व्यवस्था दिया कि आपका मठ भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ गुरु मठ है। कुम्भकोण मठाधीश ने यह भी कहा कि 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है' अर्थात् आपने अपने विद्वानों द्वारा दिये हुए व्यवस्था का समर्थन भी किया था। कुम्भकोण मठ का कल्पित मठाम्नाय सेतु में श्रेष्ठत्व का दावा किया गया है, यथा —'उक्ताश्चत्वार आम्नाया यतीनां हि पृथक पृथक। ते सर्वे मत्पदाचार्य नियोगेन यथा विधि॥ ...... तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः॥ स्वस्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्। तैरन्यतो न गम्येत मन्मख्याः सर्वतश्चराः॥ .... सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः॥ ....' इसी समय में मठ के प्रचारक अन्य तीन आम्नाय मठ व मठाधीशों पर अवांछनीय टीका टिप्पणी करते हुए अपना दुष्प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। एक अद्वितीय महान् व प्रकान्ड विद्वान तथा पूर्वाम्नाय गोवर्धन मठाधीश जगद्गुरु श्री भारतीकृष्ण तीर्थ महाराज के बारे में अवांछनीय टिप्पणी की गयी थी क्यों कि आपने कुम्भकोण मठ के प्रचारों का घोर विरोध किया था। इसी प्रकार उस समय के द्वारका मठ के बारे में भी दुष्प्रचार हुआ था। उस समय काशी में दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरीमठ के बारे में जो कुछ दुष्प्रचार हुआ था सो लिखने में भी शर्म आता है।

अपना इष्ट काम्य प्राप्त करने के लिये काशी में क्या क्या न किया गया। द्वेषभाव से बदला लेने की इच्छा से एक अनपराधी ब्राह्मण को एक कल्पित मुकद्दमे में घसीटा गया ताकि आपका अपमान हो। मुकद्दमा चलाने का उद्देश्य गुनाहगार को पकडने अथवा दन्ड देने का न था पर इस माननीय सज्जन को काशी में अपमान करने का था क्यों कि आपने कुम्भकोण मठ विषयक मिथ्या प्रचारों की भन्डा फोड दी थी और कुम्भकोण मठ जो कार्य साधना चाहते थे सो कार्य हाथ न आया। कुम्भकोण मठाधीश का काशी वास काल में आपका कार्य विवरण, आपके स्वागत का विवरण, बिहारिपुरी मठ सभा का विवरण, आपके प्रचारों का खन्डन, आपके काशी से विदाई की सभा विवरण, आदि मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में पायेंगे। जो कुछ कलकत्ते में घटा और शिवकुमार भवन की सभा में आपके बारे में जो कुछ भंडा फोडी गयी थी सो सब विषय समाचार पत्रों में प्रकाशित हैं और यह सब विषय उक्त पुस्तक में पायेंगे। यह विरोध होते हुए भी कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कलकत्ते के सब ब्राह्मण विद्वान आपके प्रचार के समर्थक हैं। कुम्भकोण मठाधीश के काशी आगमन पूर्व ही मठ के प्रचारकों ने एक प्रार्थना पत्र तैय्यार कर सबों को और कुछ ही कथा सुनाकर आप लोगों से हस्ताक्षर लिया गया था। पश्चात् इस

प्रार्थना पत्र के आधार पर प्रचार होने लगा कि ये सब व्यक्ति कुम्भकोण मठ प्रचार के समर्थक हैं। इसे देखकर इनमें से कुछ व्यक्ति इस प्रचार का भी घोर विरोध किया था। आन्ध्रदेश में कुम्भकोण मठ के मिथ्या प्रचारों का विरोध किया गया था और आपके सन्देहास्पद कुछ काले कर्तूतोंका भी पोल खोली गयी थी। इन सब वास्तविक विवरणों को छिपाकर कुम्भकोण मठाधीश की विजययात्रा विवरण लिखकर प्रचार किया गया था और पुनः 1957 ई० में एक मोटी पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें उल्लेख है कि संपूर्ण भारतवर्ष (विशेषकर उत्तरी भारत) के वासियों ने आपके मठ को आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित मठ एवं आपको आचार्य शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा स्वीकार कर ली है। इन सब विषयों का वास्तविक विवरण विस्तारपूर्वक 'काशी में कुम्भकोण मठविषयक विवाद' पुस्तक में पायेंगे।

कुम्भकोणमठ द्वारा निर्देषित प्रमाण पुस्तकों एवं उनसे उद्धृत पंक्तियां व श्लोक प्रायः सब स्वरचित अर्वाचीन काल के हैं और अनुपलब्ध पुस्तकों का नाम लेकर उन पुस्तकों में से उद्धरण की कथा भी सुनायी जाती है। कुम्भकोण मठ के प्रचार पुस्तकों में दी गयी पुस्तकों की सूची को छः भागों में बांटा जा सकता है और इस विषय का विवरण पृष्ठ 113—115 में दिया गया है। कुम्भकोण मठ के प्रमाण पुस्तक सूची में 90 फी सदी पुस्तकें 'अश्रुतम, अदृष्टम्, अज्ञातम' कोटि के हैं और बाकि पुस्तक जो उपलब्ध हैं या तो उसमें आपके उद्धृत प्रमाण पाये नहीं जाते या परिष्कृत्य प्रति ही प्रचार किये जाते हैं। इन विषयों का सविस्तार विवरण प्रथमाध्याय में पायेंगे। आपके मठ से स्वरचित व कल्पित वंशावली सूची की विमर्श तीसरे व चौथे अध्याय में पायेंगे जहां यह सिद्ध किया गया है कि कुम्भकोण मठ से कहेजानेवाले इन यतिश्रेष्ठों का सम्बन्ध कांचीमठ से बिलकुल न था और आपकी सूची सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक की एक कल्पित सूची है। कुम्भकोण मठ ने एक मठाम्नायसेतु भी तैय्यार कर प्रचार करतेहैं और इस कल्पित आम्नाय पद्धति का विमर्श द्वितीय अध्याय में पायेंगे जहां यह सिद्ध किया गया है कि आपकी कल्पित आम्नाय पद्धति धर्मशास्त्र पुस्तकों, आर्ष ग्रंथों एवं अन्य प्रमाण पुस्तकों के विरुद्ध हैं। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित ताम्रशासनों का भी विमर्श पांचवें अध्याय में पायेंगे। इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार न केवल भ्रामक है पर मिथ्या भी है। इस निर्णय की पुष्टि इस पुस्तक के तृतीय खण्ड करता है।

(ग) कुम्भकोण मठानुयायीयों ने अपने मठ का यथार्थ रूप को छिपाकर, प्रचार करने का उद्देश्य को न कहकर, अपनी प्रचार सामग्रियों को न देकर, आपके विरुद्ध प्रकाशित पुस्तकों को न दिखाकर, कुछ स्वतंत्र अभिप्राय रखने वाले विद्वानों एवं आदरणीय मठाधीशों व परिव्राजकों का अभिप्रायों को छिपाकर, अन्य एक कथा सुनाकर कुम्भकोण मठाभिमानियों ने श्री 108 श्री प. प. महास्वामी श्री भागवतानन्द मन्डलेश्वरजी (काव्य सांख्य योग न्याय वेदान्त तीर्थ, वेदान्तवागीश, मीमांसाभूषण, वेदरत्न, इत्यादि), हरिद्वारवासी से एक व्यवस्था प्राप्त किया था। इसे प्रचार भी किया गया था। इसे देखकर मैं ने आपको पत्र लिखकर सत्यता का प्रकाश किया था। आपने उत्तर पत्र ताः *14-2 1936* को भेजा था जिसमें कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का खन्डन किया था। पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ का प्रचार कैसा होता है और किसप्रकार सत्यता पर पर्दा डाल कर विज्ञ विद्वानों व परिव्राजकों से व्यवस्था लिया जाता है और जब सत्य विषय का प्रकाशन होता है तो ये ही आदरणीय विद्वान कुम्भकोग मठ प्रचारों के खण्डनकार बन जाते हैं। मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में इस विषय का विवरण पायेंगे। पाठकगणों की जानकारी के लिये श्री 108 श्री प. प. स्वामी भागवतानन्द मन्डलेश्वर महाराज जो का 14—2—1936 के पत्र से कुछ पंक्तिया उद्धृत किया जाता है—'आपके बृहत्पत्र के देखने से ज्ञात होता है कि आपने इस सम्बन्ध में विशेष गवेषणा की है। मैं ने जो कुछ लिखा है वह केवल कुछ लोगों के विश्वासवश से ही लिखा है। मैं ने शिवरहस्यादि हस्तलिखित ग्रन्थ

नहीं देखे। .... यह एक विश्वास का कारण है। .... सम्भवतः पण्डितपत्रादि इनके मुखयशोगान करने वाले हैं, जिन्होंने मुझे ये सब बातें बतलाई है। .... इनके शङ्कराचार्यत्व के विवाद की बात तक नहीं की। यदि प्रथम मुझे इस परिस्थिति का परिचय होता तो मैं ऐसा व्यवस्था न देता। काशी के प्राचीन विद्वानों ने व्यवस्था दी है इसका मुझे पता नहीं था। .... वास्तव स्थिति का पता न होने से ही ऐसा हुआ है। आपको मेरे लेख से जो मानसिक कष्ट हुआ है मुझे बडा खेद है, भविष्य में ऐसा न होगा, आशा है आप सन्तुष्ट होंगे। और जनता को वास्तविक परिस्थिति से परिचित कर देना परमावश्यक है। .... मेरे से आप किसी प्रकार की शङ्का न करें। मैं सत्य का पक्षपाती हूं; परन्तु दुख के साथ लिखना पडता है कि विश्वासवश मैं ने इस विषय पर पूर्ण विचार एवं तत्सम्बन्धि ग्रन्थों का पूर्ण स्वाध्याय किये विना ही मत प्रकाश किया है। .... विद्वान यति के रूप में सत्कार होने में किसी की आपत्ति हो ही नहीं सकती। समझ में नहीं आता ऐसे झगडों का क्या रहस्य है, सत्य तो छिपाया जा सकता नहीं।'

(घ) कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन द्रविड देश विद्वान एवं आपके शिष्य भक्त ने अपने कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का समर्थन करने के प्रयत्न में एवं काशी के विद्वानों व आदरणीय परिव्राजकों द्वारा पूछे प्रश्नों व आक्षेपों का उत्तर न देकर आपने कुछ कार्य किया जो आपको शोभता नहीं है। इसका विवरण मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' में 'पंचम पीठ सिद्ध करने का षडयंत्र–पत्र व्यवहार से भण्डाफोड' शीर्षक लेख जो 'सूर्य' समाचार पत्र ताः 21–6–1935 के अङ्क मे प्रकाशित था उसका नकल उक्त पुस्तक में दिया गया है।

पं. राजेश्वर शास्त्री जो रामतारक मठ के महन्त को दूसरी ही कथा कह कर अपना कार्य सिद्धि प्राप्त करने के लिये क्या क्या प्रपंच रचा सो सब विषयों का विवरण उक्त पुस्तक में पायेंगे। पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्मा जी का खुला पत्र (ताः 21–6–1935) पं. राजेश्वर शास्त्री जी को सो 'सूर्य' पत्र 21–6–35 में प्रकाशित है। इसी सूर्य पत्र में ज. ग. वि. शर्मा जी का पत्र ताः 16—5—35 का नकल जो महन्त श्री रामतारक मठ को भेजा था, प्रकाशित है। महन्त, श्री रामतारक मठ, पं. ज. ग. वि. शर्मा को 23—5—35 के पत्र में लिखते हैं—'इस हालत में रा. रा. गोपीनाथ शास्त्री एक दिन हिन्दी भाषा में लिखी हुई प्रस्तावना पत्रिका और कुछ कच्चे लिख हुए कागज लेकर हमारे पास आये और प्रस्तावना पत्रिका के ऊपर सही कराने के लिये पन्डित राजेश्वर शास्त्री ने भेजा है कहा और उसे पढ सुनाया। हमने उस समय उनको ऐसा समझाया कि हमने, इसके पहिले श्री आनन्दगिरि के शङ्कर दिग्विजय के ऊपर टीका आक्षेपादि होने के कारण 'विमर्श' नामक पुस्तक में सही किया है, इसलिये हम इस पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते। 'इसके ऊपर हस्ताक्षर करने में कोई हर्जा नहीं, इसमें केवल 108 नामावली पूजा विधि है, इसका प्रचार होने के लिये ही आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है, इसमें श्री आनन्दगिरी के आक्षेपादि विषय का सम्बन्ध नहीं' ऐसा उनके कहने से हमने कागज न पढकर प्रस्तावना पत्रिका के ऊपर सही किया है, यही हकीकत है। नारायण। ह० पुरुषोत्तमाश्रम स्वामी–महन्त।' मार्के की बात है कि उक्त पूजाविधि पुस्तक में पूजाविधि का संपूर्ण विवरण न देकर परिष्कृत्य आनन्दगिरि शं. वि. एवं क्षिप्त शिवरहस्य का प्रचार किया गया। अब पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ के प्रचारकों का क्या क्या काले कर्तूत हैं। रामतारक मठ के महन्त अन्य एक पत्र में लिखते हैं—'श्री आनन्दगिरि कृत श्री शङ्कर विजय आक्षेपार्ह ग्रन्थ है और ये आक्षेपार्ह विषयों उस पुस्तक की अप्रमाणिक होने की 'विमर्श' पुस्तक में लोक सहाय के लिये जो उल्लेख है, वह सही ही है। .... आक्षेपार्ह आनन्दगिरि पुस्तक मेरा सम्मति उस पर नहीं है, यह आपकी जानकारी के लिये लिखते हैं। नारायण।'

(ङ) कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों ने एक पुस्तक 'शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' शीर्षक प्रकाशित किया है जिसमें उल्लेख है—'पं. श्री. विजयानन्द तिवारी महोदया अपि स श्रद्धा एवं स्वहस्ताक्षराणि कृत्वा श्रीचरणेषु प्रणतिपत्रमर्पयामासुः।' इसे पढकर इसके उत्तर में पं. श्री. विजयानन्दजी 21—4—40 के पत्र में लिखते हैं—'श्रीः॥ सर्वलोक नमस्कृतेभ्यः सन्यासिभ्यः प्रणति पत्रार्पणम् न कथमप्य साम्प्रतम् भवितुमर्हति, तथापि परमहंस परिव्राजकाचार्याणाम् कुम्भकोण मठाधीश्वराणां दर्शनस्य सौभाग्यमपि मेऽद्यावधि न सञ्जातम्, का कथातेभ्यः प्रणति पत्रार्पणस्य। अतः श्रीशाङ्करपीठतत्त्वदर्शनेऽस्य विषयस्योल्लेखो रजुवामहि बुद्धिरिव भ्रममूलक एवेति। प्रमाणीकरोती। विजयानन्दत्रिपाठी 21—4—40॥' पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठ के प्रचारक कैसे धूलप्रक्षेपण करके अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं।

(च) श्रीआत्रेय कृष्ण शास्त्री ने 'जगद्गुरु श्रीशङ्कर गुरुपरम्परा' नामक एक पुस्तक प्रकाशित किया है। आपने इस पुस्तक में भगीरथ प्रयत्न कर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि कांची कुम्भकोण मठ सारे भारतवर्ष का सरताज शिरोमणी मुखिया मठ है और आपका एक परम्परा मात्र आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है। आपने यह भी लिखा है कि आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठ कांची मठ का शिष्य मठ हैं। यह पुस्तक प्रथम बार मुझे काशी में 1934 ई० में कुम्भकोण मठ मेनेजर से प्राप्त हुई थी। पश्चात् 1934 दिसम्बर माह में जब वर्तमान कुम्भकोण मठाधीप काशी में थे तब आपके मठ से इस पुस्तक की तीन प्रतियां भी प्राप्त हुई थी। कुम्भकोण मठ का समग्र मिथ्या प्रचार संग्रह रूप में इसी पुस्तक में है। इस पुस्तक के रचयिता लिखते हैं—'केरळ आदि स्वदेश राज्यों में राज्यशासन करनेवाले राजा सब एकत्र मिलकर श्रीकांची कामकोटि पीठाधिपति को न केवल आदर सत्कार व यशोगान किया है पर यह भी निर्णय दिया है कि कांची मठ परम्परा ही आद्यशङ्कराचार्य से प्रारम्भ होकर साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है।' मैं ने माननीय महाराजा श्रीरामवर्मा परिक्षित्, कोचिन राज्य का महाराजा जो एक प्रकान्ड विद्वान भी हैं, आपको उक्त पुस्तक के कथन को लिखकरके (तामिल भाषा में) प्रार्थना की थी कि आप इन प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें—क्या यह कथन सत्य है? क्या आप महाराजा ने या आपके माननीय पूर्वजों ने कभी ऐसा निर्णय भी दिया है? आपका उत्तर पत्र ता. 24-6-1960 का मुझे प्राप्त हुआ है और आप महाराजा ने उक्त कथन का स्वीकार नहीं किया है। आप लिखते हैं—'**I have read the book 'The Kumbhakonam Mutt Claims' which you have been kind enough to send me, and I thank you very much for the same As to the portion written in Tamil in your letter we have here no record or tradition to corroborate.**'

(छ) कुम्भकोण मठ द्वारा 1928 ई० में प्रकाशित एक पुस्तक में उल्लेख है कि तिरवाङ्कूर के माननीय महाराजा श्रीस्वाती तिरुनाळ ने 1829 ई० में कुम्भकोण मठाधीश को एक हाथी दान में दिया था व माननीय महाराजा श्रीउत्तरम तिरुनाळ ने 1850/51 ई० में चन्द्रमौळीश्वर पूजा के लिये 160 वराह दान में दिया था एवं माननीय महाराजा श्रीमूलम तिरुनाळ ने 1895/96 ई० में चन्द्रमौळीश्वर पूजा के लिये 320 वराह दान में दिया था। इन दान पत्रों के आधार पर यह प्रचार किया जाता है कि तिरवाङ्कूर के राजाओं से भी आप न केवल पूजित व सम्मानित हुए हैं पर आपको तिरवाङ्कूर राजवंश ने मान लिया है कि आपका मठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित मुखिया गुरुमठ है और आपकी परम्परा ही आचार्य शङ्कर का अविच्छिन्न परम्परा है। कुम्भकोण मठाधीश ने तिरवाङ्कूर राजाओं को अपना श्रीमुख पत्र भी भेजा था एवं महाराजाओं से सहायता के लिये प्रार्थना भी की थी। यह विषय मठ से प्रचारित

पुस्तक द्वारा स्पष्ट मालूम होता है। भारतवर्ष की हिन्दू जनता की श्रद्धा, आदर व प्रेम परिव्राजक के प्रति अधिक है। सहायता की प्रार्थना करने पर एवं महाराजा दयालू व धार्मिक होने के कारण आपने कुम्भकोण मठाधीश के प्रति आदर दिखाया था पर इसका अर्थ यह न होगा कि आपको तिरवाङ्कूर राजवंश ने अपना गुरु मान लिया है या कुम्भकोण मठ को मुखिया गुरु मठ मान लिया है। तिरवाङ्कूर राज्य से भेजे हुए पत्रों में कुम्भकोण मठ की विरुदावली सहित कुम्भकोण मठाधीश को संबोधित किया गया है और इसका यह अर्थ न होगा कि तिरवाङ्कूर राज्य ने आपकी विरुदावली में दिये हुए विषयों को स्वीकार किया है। कुम्भकोण मठ द्वारा 1928 ई० में प्रकाशित पुस्तक भ्रमात्मक है चूंकि पामरजन पढें तो प्रथमतः पाठक के दिल में कुम्भकोण मठ के प्रचारों की पुष्टी होने का भाव ही उत्पन्न होता है और ध्यानपूर्वक पढें तो दूसरा ही अर्थ निकलता है। मैं ने उपर्युक्त विषय को उस पुस्तक से उद्धृत कर माननीय तिरवाङ्कूर महाराजा को लिखा था।

श्रीआत्रेय कृष्ण शास्त्री द्वारा रचित 'जगद्गुरु श्रीशङ्कर गुरु परम्परा' पुस्तक से कुछ आक्षेपार्थ पंक्तियां भी उद्धृत कर (उपर्युक्त पारा (च) में उद्धृत पंक्तियों का नकल दिया गया है) माननीय महाराजा से प्रार्थना की कि आप इन प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें (पत्र ता. 30—5—1960)। क्या आत्रेय कृष्ण शास्त्री का कथन सत्य है? क्या आप महाराजा ने या आपके माननीय पूर्वजों ने कभी यह निर्णय दिया था कि कांची मठ परम्परा ही आचार्य शङ्कर से प्रारम्भित होकर आज तक साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है? आपका उत्तर पत्र नं. 2511/60 ता. सितम्बर 11, 1960 का प्राप्त हुआ और आप वहां लिखते हैं—'**With reference to your letter dated 30th May, 1960 and subsequent reminders dated 9th August and 27th August 1960, regarding the claims of Kumbhakonam Mutt as the direct descendents of Sri Adi Sankara and the establishment of their Mutt by Sri Adi Sankara at Kanchi, I write to inform you that there are no authentic records here to prove the above.**'

(ज) श्रीआत्रेय कृष्ण शास्त्री द्वारा प्रकाशित 'जगद्गुरु श्रीशङ्कर गुरु परम्परा' पुस्तक में उल्लेख है (सारांश दिया जाता है)—'न कि केवल स्वतंत्र नैपाल साम्राज्य जो हिमालय के पास हमारे देश के उत्तर दिशा में स्थित है, वे नैपाल महाराजा कांची कामकोटि पीठापीश को अपने गुरु स्वीकार किया है, पर हर वर्ष अपने राज्य की आमदनी का एक भाग भेंट रूप में देते हैं।' इसे पढकर मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय प. ज. ग. विश्वनाथ शर्माजी ने एक पत्र (ता. 7—2—1936) नैपाल राज्य को लिखकर आप माननीय नैपाल महाराजधिराज से प्रार्थना की थी कि आप महाराजा उक्त पुस्तक में दिये कथन की सत्यता लिख भेजने की कृपा करें। पूज्य पिता ने इस विषय पर नैपाल राज्य से लिखा पडी की थी और आपका पत्र ता. 5—4—1940 का अन्तिम पत्र था। नैपाल के माननीय महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा एक उत्तर पत्र ता. 13—5—1940 का प्राप्त हुआ जिसमें उक्त कथन का विरोध कर कहा है कि नैपाल राज्य ने कांची कामकोटि पीठाधीश को अपना गुरु होने का कभी भी स्वीकार नहीं किया है और न आपने राज्य की आमदनी का कोई भाग भेंट रूप में देते हैं अर्थात् उक्त पुस्तक का कथन सब मिथ्या है। नैपाल राज्य से प्राप्त पत्र ता. 13—5—1940 का नकल निम्न दिया जाता है—'**In reply to your letter dated 5th April, 1940, enclosing a copy of another dated 7th February, 1936, addressed to His Highness, I write to inform you that the Government of Nepal have never acknowledged the Head of the Kanchi Kamakoti Peetha as their Guru nor do they pay annually as tribute any portion of their income as alleged by**

Pandit Atreya Krishna Sastri in the book entitled 'Jagadguru Sri Sankara Guru Parampara,' extract of which you have kindly translated to English.'

(झ) आन्ध्र देश के श्री वेमूरी नरसिंह शास्त्री जी अपने पत्र ताः 8—12—1938 में लिखते हैं कि आपने गुन्टूर में कुम्भकोण मठाधीश से भेंट की थी। आपका कुम्भकोण मठाधीश के साथ जो कुछ संभाषन हुआ था उसका सारांश आपने अपने पत्र में लिख भेजा है। यह संभाषन माधवीय कृत शङ्करविजय के बारे में था। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह माधवीय शङ्कर विजय एक विद्वान भट्ट श्री नारायण शास्त्री द्वारा अर्वाचीन काल में रचित पुस्तक है। कहा जाता है कि एक समय उक्त भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने वेमूरी नरसिंह शास्त्री को यह विषय कहा था और श्री नरसिंह शास्त्री ने इस विषय को श्री शिवशङ्कर शास्त्री एवं म. म. कोक्कन्ड वेंकटरत्नम पन्तुलु से पूछा था तो आप दोनों ने सप्रमाण सिद्ध किया कि माधवीय शङ्करविजय कोई अर्वाचीन काल के विद्वान द्वारा रचित नहीं है पर यह प्राचीन ग्रन्थ है। पश्चात् वेमूरी नरसिंह शास्त्री जी काशी, तिरुपदी, मदरास, पूना आदि स्थलों के वृद्ध विद्वानों से भी पूछताछ की थी और आपको मालूम हुआ कि प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां भी इन स्थलों में उपलब्ध हैं जो सब भट्ट श्री नारायण शास्त्री के काल के पूर्व का ही था। श्रीं वेमूरी नरसिंह शास्त्री ने इस विषय को वेठूरी श्री प्रभाकर शास्त्री जी को कहा। माधवीय शंङ्करविजय का डिण्डिम टीकाकार ने सदानन्दकृत शङ्करविजयसार की भी टीका लिखी है। सदानन्दीय का लेखन काल 1783 ई० का है और इसकी टीका 1804 ई० में लिखी गयी थी। डिण्डिम टीकाकार कहते हैं कि सदानन्द ने माधवीय के आधार पर यह शङ्करविजय लिखी है अर्थात् माधवीय शङ्करविजय 1783 ई० के पूर्व का ही है और डिण्डिम टीका 1799 ई० में लिखी गयी है। 19 वीं उत्तरार्ध व 20 वीं पूर्वार्ध के भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने माधवीय ग्रन्थ रचा नहीं है। श्री वेमूरी नरसिंह शास्त्री ने पुनः वेठूरी प्रभाकर शास्त्री को उक्त विषय सब कह सुनाया। पहिले ही वेठूरी प्रभाकर शास्त्री ने 'आन्ध्रपत्रिका' ताः 17—12—1921 के अङ्क में एक लेख प्रकाशित किया कि माधवीय का रचनाकार भट्ट श्री नारायण शास्त्री हैं पर अब 'आन्ध्रपत्रिका' ताः 25-1-1922 के अङ्क में लेख प्रकाश किया कि आपका पूर्व लेख ताः 17-12-1921 का विषय सब भूल हैं और माधवीय के रचयिता भट्ट श्री नारायण शास्त्री नहीं है।

उक्त वेमूरी नरसिंह शास्त्री ने जब कुम्भकोण मठाधीश से गुन्टूर में भेंट की थी तब उपर्युक्त विषय पर ही संभाषण हुआ था। इस संभाषण के नोट में से कुछ भाग यहां दिया जाता है—

कुम्भकोण मठाधीश—क्या आप वेठूरी प्रभाकर शास्त्री को जानते हैं ?

वे. नरसिंह शास्त्री—हां, मैं जानता हूं।

कुम्भकोण मठाधीश—क्या भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने आपसे कहा था कि माधवीय ग्रन्थ की रचना उसने की है ?

वे. नरसिंह शास्त्री—हां, भट्ट श्री नारायण शास्त्री ने ऐसा ही कहा था पर मैं उसके कथन का विश्वास नहीं करता क्योंकि मुझे मालूम है कि यह पुस्तक प्राचीन काल का लिखा है। वेंकटरत्नं पन्तुलु व शिवशङ्कर शास्त्री इस कथन को मिथ्या मानते हैं।

कुम्भकोण मठाधीश—आप चाहे उसके कथन को विश्वास करते हों या नहीं, प्रश्न है कि क्या आप स्वीकार करते हैं कि उसने आपसे कहा था ?

वे. नरसिंह शास्त्री—मैं मानता हूं कि उसने मुझसे कहा था लेकिन वह व्यक्ति आपके मठ का विद्वान एवं कर्मचारी था, इसलिये आपको उसका गुण दोष चरित्र मालूम ही होगा।

कुम्भकोण मठाधीश—(उच्चस्वर में मानो क्रोधित हैं, आपने कहा) पूछे हुए प्रश्नों का सीधा उत्तर चाहता हूं और आप अपनी टिप्पणी उसके साथ देने की आवश्यकता नहीं है।

वे. नरसिंह शास्त्री—मिथ्या प्रचार करना पाप है और यथार्थ विषय की जानकारी के लिये यह सब कहना पडता है।

कुम्भकोण मठाधीश—नारायण शास्त्री अविश्वसनीय व्यक्ति है, उसके कथन पर विश्वास किया नहीं जा सकता है, लेकिन मैं जानना चाहता हूं कि क्या यह व्यक्ति ऐसा विशेष मिथ्या वचन भी कहता है ?

वे. नरसिंह शास्त्री—दुःख का तो विषय है कि स्वार्थपरायण क्या नहीं कह या कर सकते हैं। आदरणीय माधवीय शंकरविजय पर मिथ्या प्रचार करना शोभता नहीं है।

कुम्भकोण मठाधीश—माधवीय शङ्करविजय प्राचीन एवं प्रामाणिक पुस्तक है। न मालूम क्यों नारायण शास्त्री इस पुस्तक के बारे में मिथ्या वचन कहता है ?

उपर्युक्त वार्तालाप से यह प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठाधीश भट्ट श्री नारायण शास्त्री का कथन को विश्वास नहीं करते और आप उसे असत्यवादी भी मानते हैं। जब कुम्भकोण मठाधीश आन्ध्र देश में भ्रमण करते थे तो आपके अनुयायियों ने भट्ट श्री नारायण शास्त्री का बयान जो वेटूरी प्रभाकर शास्त्री ने 'आन्ध्र पत्रिका' ताः 17-12-1921 के अङ्क में प्रकाशित किया था उसका नकल नोटीस रूप में छापकर बांटा गया ताकि जो आदर भाव माधवीय पुस्तक के प्रति है सो घट जाय और माधवीय को अप्रामाणिक पुस्तक ठहराया जाय। क्या यह विश्वास किया जाय कि कुम्भकोण मठाधीश इस विषय को जानते ही नहीं? क्यों आपने मिथ्यावादी के कथनों का प्रचार किया? कुम्भकोण मठाधीश को कहा जाता है कि आप पारमार्थ के मर्मज्ञ हैं और आप स्वार्थ से बहुदूर हैं। किन्तु उपर्युक्त वार्तालाप इस प्रचार की पुष्टी नहीं करता। इसी प्रकार कुम्भकोण मठाधीश ने पुष्पगिरि मठ के एजन्ट से भेंट कर बातें करने लगे और इस विषय का विवरण पढा जाय तो यही कहना पडता है कि कुम्भकोण मठाधीष स्वार्थ के मर्मज्ञ हैं न कि पारमार्थ के। कुम्भकोण मठाभिमानियों ने उक्त तेलगू भाषा लेख को आङ्गल भाषा में अनुवाद कर खूब प्रचार भी किया था—'**Taking a copy of Vyasachala Grantha available at the Sringeri Mutt, Bhattashri Narayana Shastry made alterations here and there as above and produced the Shankara vijaya in question.**' पाठकगण कृपया पृष्ठ 185 से 215 तक पढें जहां माधवीय शङ्करविजय पुस्तक पर आलोचना की गयी है। कुम्भकोण मठाधीश अपने शिष्यों का उक्त प्रचार पर विश्वास नहीं करते जैसा कि आपने बापटला के वेमूरि नरसिंह शास्त्री से कहा था। परन्तु आप अपने अनुयायियों के प्रचार का भी समर्थन करते हैं चूं कि आपने काशी में कहा था कि 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है'। नारायण शास्त्री को असत्यवादी कहते हुए भी क्यों उस व्यक्ति के असत्य कथन का प्रचार किया जा रहा है? इसमें क्या रहस्य है? ऐसे अनेक दृष्टान्त दिया जा सकता है पर यहां एक ही काफी है जिससे यह जाना जा सकता है कि कुम्भकोण मठ का प्रचार कितने रूप धारण करते हैं और कुम्भकोण मठाधीश कहां तक इसके दायित्व हैं।

(ञ) वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश अपने काशी यात्रा समय में काशी में आपने अपने मठविषयक प्रचारों व अपने मठ के प्रमाणों एवं आपके प्रामाणिक ग्रन्थों के बारे में बहुत कुछ कहा था। आपके इस प्रचार वार्तालाप को संग्रह रूप में पं. श्री सभापति उपाध्याय जी ने 1935 ई० में 'कांची कामकोटि मठविषयक संवाद' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में दिये हुए विषय सब कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित पुस्तक एवं आपके प्रचारक व अनुयायियों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में भी पाया जाता है। इस पुस्तिका में दिये हुए हर एक विषयों पर आलोचना यहां द्वितीय खण्ड के प्रथम से सात अध्यायों में की गयी है। खासकर इस पुस्तक को मैं यहां उल्लेख करता हूं चूं कि यह सब विषय कुम्भकोण मठाधीश ने स्वयं प्रचार किया है। कुम्भकोण मठाधीश जब कभी ऐसी परिस्थिति में पड जाते हैं कि 'हां' कहना भी मुश्किल है या 'नहीं' कहने से आपके मठ को हानी होती है तो झठ से उत्तर देते हैं कि ऐसे प्रचार पुस्तकों के आप दायित्व नहीं हैं या ये सब पुस्तक आपकी अनुमति बिना ही प्रकाशित हैं। उदाहरण के लिये कह सकते हैं कि कुम्भकोण मठाधीश ने काशी में कहा कि 'ॐतत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य नहीं है और जो पुस्तक 'ॐतत्सत्' को कुम्भकोण मठ का महावाक्य बतलाता है उन पुस्तकों के आप दायित्व नहीं हैं और ये सब पुस्तक आपकी अनुमति से प्रकाशित नहीं हुए हैं। इसीलिये मैं यहां उस पुस्तक का कथन को लेता हूं जो कुम्भकोण मठाधीश ने स्वयं कहा था। यहां ध्यान देने का विषय है कि कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रामाणिक पुस्तक 'गुरुरत्नमाला' की टीका कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोध ने 'सुषमा' नामक पुस्तक की रचना की है जिसमें 'ॐतत्सत्' को कुम्भकोण मठ का महावाक्य स्पष्ट कहा है। उक्त पुस्तक से मैं तीन विषयों पर ही यहां आलोचना करता हूं और बाकी सब विषयों का विमर्श इस द्वितीय खण्ड में पायेंगे। कुम्भकोण मठाधीश ने कहा है—

(1) 'मदरास की तरफ तीन तहसीलों में सनातनधर्मी राजाओं के राज्यकाल से लगा कर यह नियम चला आ रहा है कि समस्त किसान अपनी अपनी जमा करने वाली सरकारी लगान का छानबेवां हिस्सा (1/96) इस पीठ के अधिष्ठित श्री शङ्कराचार्य चरणों को दें—वह नियम मुस्लिम शासकों से भी परिरक्षित रहकर प्रस्तुत अंग्रेजी शासन में भी वर्तमान है। यदि इस नियम का कभी कोई उल्लंघन करता है तो राजकीय-अधिकारी लोग अदालत के द्वारा उसे इस नियम के पालनार्थ बाध्य करते एवं उससे वह धन दिला देते हैं।'

(2) 'सनातनधर्म के पुनरुद्धारक, महाराष्ट्रदेशीय, भोंसला कुलोद्भव छत्रपती शिवाजी के वंशजों द्वारा प्रतिवर्ष दिया जानेवाला सात हजार रुपया (रु० 7000) आज भी भारत के अंग्रेजी सम्राट महोदय, स्वशासनारम्भ में की हुई धार्मिक प्रतिज्ञानुसार, श्रीमठ को दिया करते हैं।'

(3) 'कावेरी नदी तथा उसकी शाखाभूत नदियों से सिञ्चित होनेवाली भूमि में जो धान्य उत्पन्न होता है उसका दो हजारवां (1/2000) हिस्सा पहले श्रीमठ को दिया जाता रहा, परन्तु वर्तमान में उस देश के निवासी कृषकों द्वारा समष्टि रूप से कुछ भूमि अर्पित कर दी गई है जो श्रीमठ के अधिकार में विद्यमान है।'

कुम्भकोण मठाधीश का उक्त तीनों कथनों का विषय मदरास राज्य अवश्य जानता ही होगा चूं कि 'मेरै' (कृषी सरकारी लगान का 1/96 भाग) लगान यदि कृषक न दें तो राज्याधिकारी वसूल कर आपको देते हैं, मदरास राज्य स्वयं ही रुपया 7000 सालाना देते हैं और दोहजारवां भाग लगान के बदले भूमी दी गयी हो तो राजकीय दफ्तर में इसका रिकार्ड भी होना आवश्यक है। कुम्भकोण मठाधीश का कथन द्वारा मदरास राज्य को भी इस विषय से उनका सम्बन्ध जोड दिया है। अतः मेरे पूज्य पिता ने इस विषय की सत्यता जानने के लिये एक पत्र ताः

8—2—1936 का तंजौर कलक्टर साहब को सब विवरण देकर लिख भेजा था। तंजौर कलक्टर ने उत्तर पत्र नं. 39/36 ता: 4—3—36 में जवाब दिया कि श्री शर्मा जी स्वयं अपना प्रबन्ध करें और मठ के कथनों की सत्यता को जांच करलें—' Mr. Sarma should make his own arrangements to get the statements in question verified.' यदि कोई व्यक्ति अपने कहे मिथ्या कथनों से सरकार को भी इस मिथ्या विषय का हिस्सेदार बनाय या सम्बन्ध जोड दे और एक नागरिक इस कथन की सत्यता को जानना चाहे तो क्या यह कहना उचित व न्याय है कि 'तुम अपना प्रबन्ध करके जांच कर लो'? सरकार का उत्तर इस विषय में या तो 'हां' या 'नहीं' अथवा 'समर्थन' या 'निराकरण' है पर पूछे प्रश्नों का सीधा जवाब न देकर विषय को टाल देने का उद्देश्य और ही कुछ होता है। सम्भवतः सरकार यह नहीं चाहती कि कुम्भकोण मठाधीश जिनका प्रभाव तंजौर जिले में अत्यधिक है आपके नाम पर कोई धब्बा लगे या सरकार विषय की सत्यता को जानते हुए भी छिपाने की कोशिश करता हो। मेरे पिताजी के प्रयत्न सब असफल रहे।

मैं ने उपर्युक्त विषयों का विवरण देकर एक पत्र ता: 11—8—1960 का मदरास राज्य के प्रधान सचिव को लिखा था। आपसे प्रार्थना की कि इन विषयों पर जांच कर सत्यता का प्रगट करें या यह मुझे बतांय कि कहां व कैसे इन विषयों की जांच की जा सकती है। उत्तर न प्राप्त करने पर दो पुनः स्मरण पत्र भेजे गये। मुझे मदरास राज्य रेवन्यू विभाग से एक पत्र नं. 88927–D2/60-1, ता: 19—9—1960 का प्राप्त हुआ जिसमें मुझको यह इत्तिला दिया गया कि मेरा पत्र ता: 11-8-1960 का मदरास राज्य का HRCE बोर्ड के कमिष्णर के पास उत्तर के लिये भेजा गया है और मुझे उत्तर वहीं से प्राप्त होगा-' Sri Rajagopala Sarma is informed that his petition dated 11—8—1960 has been transferred to the Commissioner, Hiudu Religious and charitable Endowments, Madras, for disposal. (Sd.) D. Dhanaraj —Asst. Secretary to Government.' पश्चात मुझे मालूम हुआ कि मदरास राज्य रेवन्यू विभाग एवं HRCE Board के बीच में इस विषय पर लिखापडी हुई थी पर मुझे विवरण मालूम नहीं पडा। HRCE से उत्तर न प्राप्त करने पर मैं ने दो पुनः स्मरण पत्र लिख भेजा था। मुझे HRCE से पत्र No. L. Dis. 31209/60 ता: 4-11-1960 का प्राप्त हुआ जिसमें आपने मुझे इत्तिला दिया है कि जो जांच करने का विषय मैं ने पूछा था सो आपके यहां उपलब्ध नहीं है और मुझे कहा गया कि मैं पुनः Board of Revenue या कांची कुम्भकोण मठ एजन्ट से इस विषय को प्राप्त करूं—' The information required by you is not available in this department. You may contact the Board of Revenue or the agent of the Matha.' इस पत्र के उत्तर में मैं ने 17—11—60 को एक पत्र कमीष्णर एच. आर. सी. यी. बोर्ड को लिखा जिसका नकल मैं निम्न देता हूं। इसमें बडा रहस्य है और मैं पाठकगणों से प्रार्थना करूंगा कि यदि आप से बन सके तो इस विषय पर आगे अनुसन्धान करें। इसी उद्देश्य से इन पत्रों का नकल प्रकाश करता हूं। मैं ने एक पत्र रेवन्यू विभाग को ता: 17—11—60 भी लिखा था और आज पर्य्यन्त उत्तर प्राप्त न हुआ। इसी प्रकार मैं ने मदरास राज्य के प्रधान सचिव को भी पत्र लिखा था और इसका भी उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

Sub: Management—certain Particulars regarding—Sri Sankaracharya Swamigal Math—Kumbakonam Town and Taluk, Tanjore District.

Ref: You letter dated *4—11—1960*, L. Dis. 31209/60.

I am in receipt of your letter referred above in reply to my letter of August 11th, addressed to the chief Secretary, Govt. of Madras, regarding the subject cited above and file transferred to you for disposal vide Revenue Dept , Memo No. 88927—D2/60—1 of 19—9—60, a copy endorsed to me for information and follow up.

I am surprised to read the contents of your said letter. The Revenue Dept., Govt. of Madras, vide their letter No. 88927—D2/60-1 of 19—9—60, transferred the file to you for disposal and it is surprising that you are now asking me to contact the Board of Revenue, who, I presume, feel that your Department is competent to answer my querries and hence they transferred the file to you for disposal. Now I am being kicked from pillar to post. I am also made a victim of your bureaucratic machinery of administrative rules of your Govt. The taxpayer citizen is tossed and put to much inconvenience and trouble. Am I not entitled to clear the doubts from you and are you not duty bound to come to my aid in clearing the doubts. I expected a fair treatment from your department.

As a research student I approached the Chief Secretary, Govt. of Madras, who in turn asked the Revenue Dept. to handle the matter, who in their turn asked you to dispose the matter and the net result is that your answer has no value to a research student. What I am interested to know is the truth of the allegations made by the Kumbakonam Sankaracharya and referred in my letter of August 11th and the answer should be either confirmation or denial. There is no ambigous answer to my querry.

My approach to the Government is in order and legitimate since the allegations made by the Swamiji of Kumbakonam make the Government of Madras, a party to their allegations and I feel, it is for the Govt. either to confiirm or to deny the allegations, when referred to them for verification. It is an authoritative statement made by the Swamiji himself and it cannot be underrated as allegations made by someone else who has nothing to do with the said Math.

It is all the more surprising when you advice me to contact the Agent of the Mutt. You are aware that the Mutt itself had made these statements and it is for the Govt., who is made a party to the allegations, either to deny or to confirm. My approach to the Mutt will be of no avail since they had made the statements and had said what they had to say in the matter and it is for the other party to confirm or to deny.

You say that the information required by me is not available in your department. Am I to infer that the statements made by the Kumbakonam Mutt and referred to in my letter of August 11th, are all untrue and baseless or am I asked to clear the doubts from other source? My research work on the life and activities of Sri Sankara is almost complete except a few points raised for verification with the Govt. of Madras. This proverbial long delay of getting the statement verified from the Govt. is really putting me to loss, inconvenience and trouble. In the absence of a definite reply from the Govt., I shall be forced to infer that the Govt. is either unwilling to tell the truth and each department of the Govt. is trying to shirk their duty and responsibility on someone's shoulder or that the Govt. denies the allegations made by the Kumbakonam Mutt and referred to in my letter of August 11th, 1960.

I have in my possession letters from three State Govts. of India and a letter from an independent country Nepal, denying the allegations made by Kumbakonam Swami in respect to matters connected with the respective Govts. and I fail to understand why the Madras Govt. should alone feel shy to tell the truth aud answer my querries.

May I now expect your Co-operation?

With my regards,"

कुम्भकोण मठ का कथन है कि कृषि उपज से सरकार लगान का 1/96 वां हिस्सा जिसे 'मेरै' भी कहते हैं वह मदरास के तीन तहसीलों में से आपको वसूल करने का अधिकार है। यह कथन असत्य मालूम होता है। कुछ गावों में से यह 'मेरै' वसूल हो रहा है और इन गावों में आपका प्रभुत्व भी ज्यादा है। उन ग्रामवासी इसे विरोध किये बिना ही स्वीकार कर लेने से एवं कुछ गवाह आपके हित में होने से आपको यह अधिकार मिला। पर आपके पास कोई प्रमाण पत्र नहीं है। इसी प्रकार कुम्भकोण मठ ने चेङ्गलपेट जिला में भी यह लगान मेरै वसूल करने की कोशिश की थी। कांचीपुर चेङ्गलपेट जिला में है। अन्त में यह व्यवहार अदालत पहुंचा और अदालत ने कांची मठ को यह अधिकार न होने का फैसला दिया था। चेङ्गलपेट के सबार्डिनेट जज अदालत में मुकद्दमा नं. 158, 163 एवं 324, 1930 ई० का, फैसला 12—8—1935 को सुनाया गया। यह मुकद्दमा कांची मठाधीश उर्फ चिक्कुडयार स्वामी और 18 कृषकों के बीच में चला। इस मुकद्दमे के फैसला से निम्न विषय निश्चित होता है– (1) कांची मठाधीश का नाम चिक्कुडयार (चिक्क उडयार=कर्नाटक भाषा में छोटे स्वामी) है अर्थात् आप किसी एक दोड्डुडयार (दोड्ड उडयार=कर्नाटक भाषा में महान या बडे स्वामी) के श्रेणी से नीचे ही थे। (2) कांची मठाधीश को 'मेरै' वसूल करने का अधिकार नहीं है। (3) कुम्भकोण मठ के पास कहेजानेवाले हिन्दू राजाओं से दिये हुए 'मेरै' शासन का प्रमाण नहीं है, इस मेरै वसूल अधिकार को मुसलमान राजाओं से परिरक्षित करने का प्रमाण पत्र भी नहीं है, कांची मठ को इस मेरै वसूल अधिकार ब्रिटिश राज्य से स्वीकार किये जाने का प्रमाण पत्र भी नहीं है। (4) हिसाब किताब में कुछ आयों का विवरण अविश्वसनीय व सन्देहास्पद हैं। अब पाठकगण जान जायेंगे कि कुम्भकोण मठाधीष के काशी कथन में कितनी सत्यता है। सम्भवतः मदरास राज्य इस विषय को जानते हुए भी

मेरे पत्र का उत्तर न देने का कारण समझ में नहीं आता। पाठगकणों की जानकारी के लिये इस फैसला में से कुछ पंक्तियां उद्धृत किया जाता है—"Judgment: His case as presented to me was that ancient Hindu Rajas granted to him the merah right over all the villages in the suit and several other villages in this district ... ... He also says that the Mohammedan Govt. which succeeded the Hindu Kings in this area confirmed the grant and continued it. He further says that when the British Government became the rulers of this country under the treaty with the Nawab about 1797, they recognized and continued the merah grant. ... ... At the outset, I may say that no grant has been produced from the ancient Hindu Kings or no confirmation thereof by the Mussalman Kings of the country has been produced. No grant of the British Government recognizing or granting such a right in terms has been produced ... ... Plaintiff has no other document to show collection at any later time: inference is, he never collected. If the right existed, plaintiff would not not have failed to collect all these 130 years since 1800: Inference of the fact which I draw from the circumstance is that the right itself never existed ... ... The Sikkudayarswami is the most powerful person and head of a Mutt in the Tanjore District and it is hardly likely that if any claims was to be made on this shrotriem it would not have been made long ago ... ... I note here that this shrotriem village of Adambakkam has been granted to Shaiva Sidhanta Mutt, that is, for a mutt intended for the exposition of Shaiva Sidhanta ... ... Sankaracharya Swamigal teaches pure monoism which is utterly opposed ... ... I have my doubts regarding this account ... ... The entry itself shows it was not made in the regular course of business ... ... "

अदालत ता. 12—8—1935 को उक्त फैसला देते हुए भी कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपको 'मेरै' लगान वसूल करने का अधिकार है। कुम्भकोण मठ प्रचारकों के लिये अदालत का निर्णय निर्णय नहीं है पर 'परमशिवावतार' का कथन ही निर्णय है। कुम्भकोण मठ की प्रचार पुस्तक जो उक्त मुकद्दमे का फैसला सुनाने के पश्चात् ही प्रकाशित हुआ है उसमें आप लिखते हैं कि 'मेरै' लगान वसूल करने का अधिकार आपको है—'Among the rights conferred by the Chola kings of yore the one surviving is that of legal collection of a portion of the Government kist in some taluks near Kanchi. This is called the Merai right and is recognised by successive civil courts.' यदि आपको यह अधिकार होता तो क्यों नहीं अदालत में प्रमाण देकर इस अधिकार होने का सिद्ध किया? अदालत आपको यह अधिकार न होने का स्पष्ट कहता है पर प्रचार होता है कि अदालत ने यह अधिकार होने का निश्चित किया है। यदि कोई साधारण व्यक्ति इस प्रकार का प्रचार करें तो उस 'व्यक्ति' को मिथ्यावादि कहकर धिक्कारा जाता है पर जब 'परमशिवावतार' 'चलतेफिरते देव' 'सार्वभौम यतिसम्राट' कुम्भकोण मठाधीश ऐसा प्रचार करते हैं तो आपको 'सत्यस्वरूपअवतारी पुरुष' एवं आपका मिथ्या 'देववाक्' होने का प्रचार होता है। स्वार्थ से मनुष्य वर्ग कितना पतित होता है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि भोंसला कुलोद्भव छत्रपति शिवाजी के वंशजों द्वारा प्रतिवर्ष दिये जानेवाला सात हजार रुपया आज भी भारत के ब्रिटिश राज्य श्रीमठ को दिया करते हैं। 'भोंसला कुलोद्भव छत्रपति शिवाजी के वंशजों द्वारा' ऐसा प्रचार करने से पाठकगण यह न सोचें कि मूल पुरुष छत्रपति शिवाजी ही आपको यह 7000 रु० दिया था। कुम्भकोण मठ स्पष्ट रूप से किसी विषय का उल्लेख नहीं करते। आप अपने प्रचारों में भ्रम उत्पन्न होने वाले शब्द या द्विअर्थ या बहुअर्थ देनेवाले पदों का ही उपयोग करते हैं। 'तंजौर राज्य का महराठा राजा ने 7000 रु० दिया था' ऐसा कहने के बदले 'भोंसला कुल व छत्रपति शिवाजी के वंशज' कहा गया है। प्रचार में यदि तंजौर का नाम लेते तो आपको 'तंजौर मठ के मठाधीश जो तंजौर राजा के आश्रय में थे' ऐसा भाव कहीं न उत्पन्न हो इसीलिये मूल पुरुष का नाम लिया गया है। इतिहास कहता है-'**The history of the Mahratha Rule in the Carnatic begins with the occupation of Tanjore in 1679 A. D. by Vyankaji son of Shahji Bhonsle (1594—1664 A. D.) and ended in 1855 A. D., when Tanjore Raj was incorporated into British Dominion.' 'Shahji Bhonsle as general of Bijapur Sultan between years 1636 to 1661 A. D. extended authority of his master in Mysore and then upto Tanjore. Sriranga III (1642—1672 A. D) of Vijayanagar empire crumbled and then Tanjore was established.' 'Early in 1675 A.D. Ekoji took possession of Tanjore and assumed reins of Government of Tanjore.'** कुछ ऐतिहासिकों का अभिप्राय है कि व्यकांजी (शाहजी भोंसला का पुत्र) ने तंजौर राज्य को 1674 ई० में अपने हाथ में लिया था।

तंजौर राजवंश के प्रवर्तक शाहजी भोंसले थे और आप महराठा थे। तंजौर महराठा राजवंश के अन्तिम राजा शिवाजी का काल 1833—1855 ई० A. D. है। ब्रिटिश सरकार ने 1855 ई० में तंजौर को ब्रिटिश भारत राज्य में मिला लिया। इस समय कुम्भकोण मठाधीश चन्द्रशेखर V (1814-1851 ई०) थे। आपके पश्चात् श्रीसुदर्शन महादेव (1851—1891 ई०) मठाधीश बने। चन्द्रशेखर V ने 1839 ई० में कांची कामाक्षी मन्दिर का कुम्भाभिषेक समाप्त कर पश्चात् तिरुची जिला में अखिलान्डेश्वरी की ताटङ्क प्रतिष्ठा भी करके तंजौर लौट आये। तंजौर राजा शिवाजी से 1849 ई० के पूर्व चन्द्रशेखर V का स्वर्णाभिषेक किये जाने की कथा भी सुनाते हैं। उन दिनों में श्रीगणपति शास्त्री कुम्भकोण मठ का सर्वाधिकारी एजन्ट थे (1844-1848 ई०)। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि तंजौर राजा शिवाजी ने रु० 7000 श्रीचन्द्रशेखर V को अर्पण किया था। इसी धन से मठ सर्वाधिकारी श्रीगणपति शास्त्री ने चालीस वेली जमीन करुप्पूर गांव में मठ के लिये खरीदा था। 1849 ई० के पूर्व तंजौर राजा शिवाजी से जो 7000 रु० प्राप्त हुआ था अब सम्भवतः वही रकम सालाना प्राप्त होने का सुनाया जा रहा हो! ब्रिटिश कम्पनी राज्य ने 1855 ई० में तंजौर राज्य को ब्रिटिश भारत राज्य में मिला लिया था और ब्रिटिश पालियामेन्ट ने 1857 से 1947 अगस्त 15 ता. तक राज्यशासन किया था। कुम्भकोण मठ का कथन है कि ब्रिटिश भारत राज्य ने भी सालाना रु० 7000 श्रीमठ को दिया करते थे। यदि मदरास राज्य से यह रु० 7000 सालाना प्राप्त होने का विषय सत्य है तो राजकीय हिसाब किताबों में उल्लेख होना आवश्यक है और 'आडिट रिपोर्ट' में भी होना आवश्यक है। बजट विवरण में भी उल्लेख किया जाता है। मैं ने मदरास राज्य का बजट विवरण 1940, 43, 45 की छानबीन कर देखा और कहीं उल्लेख न पाया। मद्रास राज्य को लिखकर पूछा तो आप कहते हैं—'**The information required by you is not available in this department.**' देनेवाले विभाग के पास (रेवन्यू विभाग एवं. एच. आर. सि. ई. बोर्ड) देने का कोई सबूत नहीं है। सत्य का प्रकाश करने के लिये दोनों व्यक्ति-देनेवाला व पानेवाला—तैय्यार न होने से कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य व भ्रामक होने का निश्चित होता है।

'कृषी उपज का 1/2000 वां भाग के वदले कुछ भूमि प्राप्त हुई है' इस कथन की जांच कर न पायें। मदरास राज्य रेवन्यू बोर्ड एवं भूमि रेवन्यू को भी पत्र लिखा था और मुझको कहा गया कि मैं एच. आर. सि. ई. बोर्ड द्वारा समाचार प्राप्त कर सकते हैं। जव मैं एच. आर. सि. ई. बोर्ड के साथ लिखापढी की थी तब मुझको कहा गया कि मैं रेवन्यू बोर्ड से समाचार पा सकते हैं। जब दोनों पार्टि सत्य का प्रकटन करने तैय्यार नहीं हैं तो बाध्य होकर यह कहना पडता है कि मदरास राज्य कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों में सहयोग देते हैं।

प्रार्थना

मेरे पूज्य पिता मुझको एक श्लोक 'नयमणिमाला' (पं. कोडवासल नरसिंहाचारी द्वारा रचित) से बार वार सुनाते थे और उस श्लोक का तात्पर्य भी सुनाया करते थे। चूंकि इस श्लोक का तात्पर्य कुम्भकोण मठ द्वारा किये जाते भ्रामक प्रचार व कुम्भकोण मठ के अनुयायियों की चालचलन से मिलता जुलता है, मैं इस श्लोक को उद्धृत करता हूं—'निखिलाऽनर्थ कन्दोऽयं निपुणैस्सुनिरूपितः। सुखस्वरूपयोग्यत्व स्थापनायोद्यमस्तुयः॥' मनुष्यवर्ग सुखस्वरूपि है। वह अपने को आनन्द में निमग्न रहने एवं अपनी इष्ट काम्यसिद्धि प्राप्त करने की खोज में सदा भटकता रहता है। इस हेतु से वह अपने को उसका अधिकारी बनने की चेष्टा में प्रवृत्त होता है। इस अधिकार विषय को अपनाने एवं स्थापना करने के प्रयत्न में वह बहुत कुछ कार्य (उचित व अनुचित) कर बैठता है। विज्ञ श्रेष्ठ कहते हैं कि यह सब चेष्टा ही अनर्थों का मूल कारण है। मनुष्य वर्ग आपस में लडभिडने का कारण भी यही अधिकार स्थापना करना है। यदि अनधिकार व्यक्ति अपनी अनुचित चेष्टा छोड दे तो इस झकडे का मूलकारण ही रह नहीं जाता। उचित होगा कि इस विवाद के प्रवर्तक स्वयं अपने को सुधार लें। अपने को यथार्थ सत्यरूप से जो प्राप्त अधिकार व सुख है उससे संतुष्ट न होकर दूसरों के अधिकार व सुख को छीनने का जो अनुचित प्रयत्न किया जाता है, वही व्यक्ति इस झकडे का प्रवर्तक है। इस अधिकार को प्राप्त करने के लिये अहंकार व ममता भाव उस व्यक्ति को बाध्य करते हुए उससे अनेक काले कर्तूत कराता है। इस अनुचित व अन्याय कतूतों के फलभूत अधिकारी पुरुष रूठ जाते हैं और विवाद खडा होता है। अनधिकारी व्यक्ति यदि अपने को सुधार लें और ऐसे अवांछनीय कुकर्मों से दूर रहें तो झकडा ही मिट जाता है। अतः जो अधिकार अपने को नहीं है उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना अनुचित एवं अन्याय है।

भागवत के दशम स्कन्द में पौन्डरीक वासुदेव नामक करुस देश का राजा की कथा वर्णित है। यह पौन्डरीक ने श्रीकृष्ण परमात्मा की तरह शङ्ख, चक्र व गदा को धारण कर और अपने को स्वयं द्वारका के कृष्ण के समान होने की कल्पित भावना कर, एक दिन श्रीकृष्ण परमात्मा को जो द्वारका में थे आपके पास राजदूत भेजकर कहला भेजा 'मैं एक असल वासुदेव रहते हुए आप अपने को किसप्रकार वासुदेव कहते हैं, इसलिये आप वासुदेव का नाम छोड दें, नहीं तो मेरे साथ युद्ध के लिये तैय्यार हों।' इसीप्रकार अब कुम्भकोण मठ आद्यशङ्कराचार्य से प्रतिष्ठित धर्मराज्यकेन्द्र आम्नाय मठों के चिन्हों को धारण कर एवं इन चार आम्नाय मठों की विरुदावली को भी धारण कर, अब अपने प्रचार से ललकार रहे हैं कि कांची मठ ही 'सर्वोत्तः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।' 'तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः।' यह अनधिकारी कुम्भकोण मठ अन्यों के अधिकार जो यथार्थ सत्यरूप से उन्हें प्राप्त हुआ है उनसे छीनने का प्रयत्न में हैं।

अन्त में मेरी प्रार्थना यही है कि काशी के बाबा विश्वनाथ सब को सद्बुद्धि दें और हृदय पटल से भेद भाव का पर्दा हटाकर, विशेषतः इन अनधिकारी व्यक्तियों के हृदय से रागद्वेष व भेदभाव का पर्दा हटाकर सद्बुद्धि दें कि वे इस अनुचित चेष्टा को छोड दें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ॐ



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

तृतीय–खण्ड

विद्वानों का मठ विषयक विचार

मेरे पूज्य पिता पण्डित ज. ग. विश्वनाथ शर्माजी द्वारा काशीधाम में 1935/36 ई० में प्रकाशित पुस्तिका 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' को मठाधिपतियों, परिव्राजकों व विद्वानों को भेजकर उन सब से सम्मति, विचार व आमोदन पत्र प्राप्त किया था। ऐसे विचार, सम्मति व आमोदन पत्र डेढसौ से भी अधिक काश्मीर से लेकर कामरूप, द्वारका से पूरी जगन्नाथ व कन्याकुमारी से काशी तक डाक द्वारा प्राप्त किया था। इसके अलावा अनेक जगहों पर मठ विचार सभायें भी हुई। उन सभाओं से भी सर्वसम्मत आमोदित प्रस्तावों को सभाध्यक्षों द्वारा भेजा गया था। ऐसे भी अनेक स्थान हैं जहां सभायें हुई पर उन प्रस्तावों को प्राप्त न कर सका। वर्तमान 1960 ई० में कुछ मठाधीपों तथा कुछ प्रकाण्ड विद्वानों से उनके विचार पत्र भी प्राप्त किये हैं। इन प्राप्त हुए पत्रों से कुछ पत्र यहां पर प्रकाशित किये जाते हैं। आशा है कि शीघ्र ही इन सब पत्रों को समग्र रूप में एक अलग पुस्तक छापकर प्रकाशित किया जायगा। ये सब पत्र घोषित करते हैं कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठापित आम्नायानुसार धर्मराज्यधानियां (आम्नाय मठ) केवल चार ही हैं। मैं ने कुछ प्रख्यात ग्रंथ कर्ताओं के विचार को भी उनके द्वारा रचित ग्रंथों से उद्धृत किया है। यह अपूर्ण है क्योंकि अनेकानेक पूर्वी तथा पाश्चात्य रचित ग्रंथ हैं जिससे मैं ने अभीतक उनके विचार उद्धृत नहीं किये और ये सब विचारों को अलग पुस्तक में छापकर प्रकाशित किया जायगा।

जो सब सज्जनों ने मेरे पूज्य पिता तथा मुझे अपने अपने विचार, सम्मति, आमोदन आदि पत्र भेजा है उन सबों को मेरा सविनय नमस्कार तथा हार्दिक धन्यवाद है। जिन माननीय मठाधीशों तथा आदरणीय परिव्राजकों ने अपना अपना विचार श्रीमुख द्वारा भेजा है उन सबों को मेरा सादर वन्दन है। इन शिखामणियों ने यथार्थ सत्यता का प्रकटन कर अनभिज्ञ सज्जनों को सत्यता का मार्ग दिखाया है और कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों ने जो सत्यता पर पर्दा डाल रक्खे थे उसे अब हटा दिये हैं, इस सत्कार्य के लिये वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

काशीधाम में कुम्भकोण मठवालों ने तथा उनके भक्त अनुयायियों से प्रकाशित पुस्तकों व ट्रैक्टों में यह प्रचार किया गया था कि मेरे पूज्य पिता एक क्षुद्र मठावृत्ति दाक्षिणात्य ब्राह्मण जिसको न विद्वत्ता और न हैसियत है और आपका उद्दन्ड मूर्ख पुत्र (इस पुस्तक का संपादक), इन दोनों ने द्वेष भाव से इस मठ विवाद को खडा किया और ये दोनों श्रृंगेरी मठ के शिष्य हैं। यदि यह विवाद केवल हमारे पिता और मेरे द्वारा द्वेष भाव से किये जाने का प्रचार सत्य हो तो क्यों सेतु से हिमाचल और काश्मीर से कामरूप तक के माननीय मठाधीशों, आदरणीय परिव्राजकों तथा प्रकान्ड विद्वानों ने केवल चार आम्नाय मठ श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित होने की सम्मति दी है? क्या ये सब विज्ञ शिखामणि तथा माननीय परिव्राजक द्वेष भाव रखनेवाले हैं? क्या सब श्रीश्रृंगेरीमठ के शिष्य हैं? कुम्भकोण मठाधीश का पेशा मठावृत्ति है न कि हम गृहस्थों का! अन्धा को सारी दुनिया अन्धकार ही दीख पडता है। सत्यवचन कटु होता है और स्वार्थी रूठ जाते हैं और कोधावस्था में उनको अनुचित भी उचित दीखता है। बेचारे ये नहीं जानते कि क्या वे कह या कर रहे हैं। परमात्मा उन्हें सद्बुद्धि दें।

कुम्भकोण मठवालों ने काशीधाम में यह प्रचार किया था कि सारा भारतवर्ष कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठापित एवं अधिष्ठित मठ माना है और इनकी गुरुपरम्परा ही साक्षात् आद्यशङ्कराचार्य का अविच्छिन्न गुरु परम्परा है। कुम्भकोण मठ से रचित एवं प्रकाशित 'मठाम्नाय सेतु' तथा कुम्भकोण मठ के कर्मचारियों एवं एजन्ट से प्रकाशित विविध भाषा पुस्तकों में यह घोषित किया गया है कि कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ के मठाधीश ही 'श्रीमज्जगद्गुरु' पदवी के अर्ह हैं और अन्य सब केवल 'श्रीगुरु' पदवी के अर्ह हैं क्यों कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठ कांची कामकोटि मठ के शिष्य मठ हैं और आपके परिचालन में हैं। मठाम्नायसेतु के श्लोक पृष्ठ 142 में दिया गया है। ऐसे कल्पित भ्रामक विषय का प्रचार के लिये अनेक भाषाओं में अनेकानेक पुस्तकों कुम्भकोण मठ तथा उनके अनुयायियों द्वारा प्रकाशित है। पाठकगण इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में इन कल्पित भ्रामक प्रचारों का विमर्श व सत्यान्वेषण पायेंगे।

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित चार धर्मराज्यधानियों (आम्नायानुसार चार दृष्टिगोचर आम्नाय के चारों वेदों के चारों महावाक्यों, चार संप्रदायों के लिये चार धामों में श्रुतिस्मृति यागानुशासन के अनुसार) में प्रस्तुत तीन आम्नाय मठ अब भी प्रचलित हैं—पूर्वाम्नाय ऋग्वेद, प्रज्ञानं ब्रह्म, गोवर्धन मठ; दक्षिणाम्नाय यजुर्वेद, अहंब्रह्मास्मि, श्रृंगेरी शारदा मठ; पश्चिमाम्नाय सामवेद, तत्वमसि, द्वारका शारदा मठ। यदि कांची कुम्भकोण मठ गुरुमठ तथा साक्षात् महागुरु की अविच्छिन्न परम्परा है तो क्यों अन्य तीन वर्तमान मठाधीश कुम्भकोण मठ के प्रचारों को स्वीकार नहीं करते? उन्हें इनका प्रचार मान्य नहीं है। कुम्भकोण मठ इन तीन आम्नाय मठों को लिखकर अपने प्रचारों की स्वीकृति कराने के बदले विविध भाषाओं में अपने अनेक कल्पित भ्रामक प्रचारों को पुस्तक रूप में प्रकाश कर रहे हैं। पाठकगण प्रस्तुत तीन मठों के जगद्गुरु शङ्कराचार्यों के विचार श्रीमुख द्वारा प्रकाशित नीचे पायेंगे। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ श्री आचार्य शङ्कर द्वारा न प्रतिष्ठित, न अधिष्ठित तथा न उनकी परम्परा अविच्छिन्न गुरु परम्परा है।

इसमें सन्देह नहीं कि कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ की स्थापना श्री आद्यशङ्कराचार्य के बहुकाल पश्चात् कोई एक आदरणीय योगी द्वारा किया गया है तथा यह मठ शङ्कराचार्य मतावलम्बी का अद्वैत मठ है। कुम्भकोणमठ का वर्तमान मठाधीश का धर्मप्रचार कार्य श्लाघनीय है और हम सब इसके लिये कृतज्ञ हैं। पर आपसे यही प्रार्थना है कि धर्मप्रचार के साथ आप कृपया अपने मठ का मठविषयक भ्रामक मिथ्या प्रचार न करें। एक समय यह मठ किसी

एक आम्नायानुसार प्रतिष्ठित (श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा) शांकर मठ का शाखा मठ या उपशाखा मठ रहा हो या एक समय (श्री आद्यशङ्कराचार्य के काल पश्चात्) किसी आदरणीय परिव्राजक से प्रतिष्ठित स्वतंत्र मठ रहा हो या यह कांची शारदा मठ दक्षिणाम्नाय मूल मठ श्री श्रृङ्गेरी शारदा मठ को अपना मान्य गुरु मठ भाव से माना हो या यह कांची कामकोटि मठ पूर्वकाल में दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ का शाखा मठ रहा हो या यह मठ तंजौर महाराजा से प्रतिष्ठित एवं आश्रय प्राप्त मठ रहा हो, ऐसे विषयों पर यथाशक्ति अनुसन्धान भी किये गये हैं और इसके फलाभूत अनेक दृढ प्रमाण अब उपलब्ध होते हैं जो सब इस मठ को अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित मठ होने का निश्चित करता है और आशा है कि मैं शीघ्र ही इस कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ का इतिहास पुस्तक रूप में प्रकाशित कर सकूं।

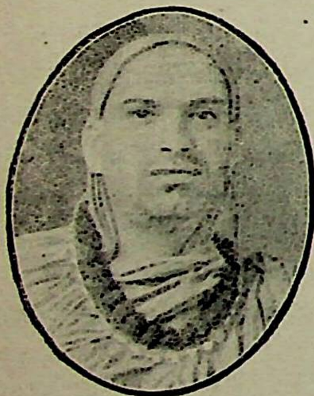
प्राप्त हुए विचार, सम्मति तथा आमोदन पत्रों में से कुछ यहां पर प्रकाशित किये जाते हैं और इनको तीन विभाग में विभाजित किये गये हैं, यथा—भाग एकः प्राप्त हुए कुछ विचार, सम्मति तथा आमोदन पत्र। भाग दोः प्राप्त हुए कुछ प्रस्तावों का विवरण जो उन सभाओं द्वारा सर्व सम्मत से पास किये गये थे। भाग तीनः पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के रचित ग्रन्थो एवं प्रकाशित लेखों से मठ विषयक कुछ विचार तथा अदालती निर्णयों से कुछ भाग उद्धृत किये गये हैं।

संपादक
ज. वि. राजगोपाल शर्मा

भाग—एक

प्राप्त हुए कुछ विचार, सम्मति तथा आमोदन पत्र

1 (क)



श्रीमज्जगद्गुरु श्री 1008 श्री शङ्कराचार्य श्री प. प. वर्येत्यादिविविध बिरुदावली विभूषितानां श्रीव्याख्यानसिंहासन शारदापीठमधितिष्ठतां श्री श्रृंगेरी मठाधीषानां मान्य माननीयानां अभिप्राय पत्रं।

श्री बी. एम्. लक्ष्मीपतिय्या, बी. ए., प्रबन्धकर्त्ता, श्री श्रृङ्गेरी मठ, श्रृङ्गेरी से ताः 16-1-61 के पत्र में लिखते हैं :—

श्री राजगोपाल शर्म्मा महाशयाः

12—11—1960 तमे दिवसे भवद्भिः लिखितं विज्ञप्तिपत्रदलं समासादितम्। भवन्तो भगवत्पाद श्री शंकराचार्याणां चरित्र परिशीलने कृतादरा इति पत्रावलोकनेनावगच्छामि। अस्मन्मठसंम्प्रदायानुसारेण विज्ञायमानान् विषयान् अधोनिर्दिशामि।

सहस्राधिकेभ्यो हायनेभ्यः प्राक् केरलेषु कालट्यां भगवत्पादानां जन्म, नर्मदातीरवासिनां श्रीगोविन्दभगवत्पूज्य पादानां सकाशात् तुरीयाश्रमावाप्तिः, प्रस्थानत्रय भाष्य प्रणयनम्, आसेतोराहिमाचलं पुण्यक्षेत्राटनम्, विमतपण्डित-पराजयः, सर्वतो वेदान्तमत प्रचारः, तुहिनाचल-मलयाचल-मध्यगतयोः बदरी-शृङ्गेरी क्षेत्रयोः प्राची प्रतीची सागर तीरस्थयोः पुरीद्वारावती क्षेत्रयोः धर्मपीठानां चतुर्णां प्रतिष्ठापनम्। काश्मीरेषु तत्कालप्रथित-सर्वज्ञ-पीठारोहणम्। हिमवति केदार क्षेत्रतोऽन्तर्धानम्। इति कथेयं प्राचीनानामनेकानां ग्रन्थानां परिशीलनेन परिज्ञायते।

पीठानां आचारादिविषये मठाम्नायस्तोत्रं महता अनेहसा प्रमाणतां प्रपद्यमानं पीठस्थैः सर्वैराचार्यैः आद्रियमाणमस्ति॥

1 (ख)

दक्षिणाम्नाय जगद्गुरु शङ्कराचार्य शृङ्गेरी मठाधीश ने माननीय बाबू राजेन्द्रप्रसादजी, राष्ट्रपति, भारत सरकार, को मदरास नगर में 13—8—1960 के दिन "राष्ट्ररत्न" की उपाधि से अलङ्करित करते हुए, आप शङ्कराचार्य महाराज ने कहा :—

"भगवान् श्रीशङ्कराचार्यरूपेणावतीर्य महीतले सनातनं मतं समुद्धृत्य
अध्यात्मविद्याप्रसाराय भारतस्य चतसृष्वपि दिशासु चतुरो
मठान् प्रातिष्ठिपत्।"

1 (ग)

True Copy of Telegram dated 13—9—1934 from Sringeri



Bishweshwarganj No. 76

Benares

Date	Hour	Received	Words
13	15	18-4	39

Sringeri—Kadur

Sri Lalnath Swamiji

Gorak Tila, Benaras

Your wire. In our sincere opinion the only basis clearing doubts regarding Acharyas Gaddies found in the famous work Mathamnayastotra. If you want you may ascertain also from Dwarka Jagannath Mutts.

Swamiji—Sringeri Gaddi."

2



श्रीमज्जगद्गुरु श्री 1008 श्रीशङ्कराचार्य श्री प० प० वर्येत्यादि विविध विरुदावली विभूषितानां श्रीद्वारका शारदा मठाधीषानां मान्य माननीयानां अभिप्राय पत्रं।

श्री द्वारका शारदा पीठ
द्वारका—पश्चिम भारत

विजययात्रा स्थान : जामनगरम्।

नं. 1188 भाद्र, कृ, द्वितीया 7-9-1960

श्री राजगोपाल शर्मणां विषये

संतुतरामाशिषश्शुभाः श्री द्वारका शारदा पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य श्रीमदभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामी श्री चरणानाम्। यौष्माकी गमभ्यर्थनापत्रमत्रोपगतम्। विदितार्थं चाभूत्।

मा किं द्विसहस्रवर्षेभ्यः प्राग्भुवि समंतादवैदिकमत बाहुल्येन हीयमाने धर्मे, प्रवर्धमाने चाधर्मे, भगवान् लोकशंकरः श्री शंकरः कालट्यां शंकराचार्य रूपेणाऽवतीर्य वैदिक विरुद्ध मतानि निरसार्य पुनस्सनातनधर्मोद्धारं चकार। उद्धृतस्यास्य धर्मस्य परिरक्षणाय चत्वारि पीठानि समस्थाप्यंत। अंते च हिमालयस्य केदारे क्षेत्रे स्वधामगमनमभूदिति कथा प्रमाण सिद्धा सर्वविदित चैव।

काश्यां पूर्वं प्रकाशितस्य 'शाङ्करमठविमर्श' स्यग्रन्थस्य द्वितीयं भागं प्रकाशयितुमभिलषथ यूयमिति प्रमोदावसरोऽयम्।

मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्च धुरंधराः।
सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्मव्यवस्थितिः॥

इति आम्नायाश्चत्वारः चतसृषु दिक्षु श्रीमदाद्यशंकर भगवत्पादैस्संस्थापिता मठाश्चत्वार एव, चत्वारश्च पीठाभिषिक्ता आचार्याः, इयं धर्मव्यवस्था विलसति। शङ्करानुयायिभिस्सर्वैरियं व्यवस्थाऽनुसरणीया श्रेयोऽभिमिरिति शिवम्।

श्री मज्जगद्गुरु चरणाज्ञावशंवदः
महाबल भट्टः
कार्यदर्शी (मंत्री)

3 (क)



श्रीमज्जगद्गुरु श्री 1008 श्री शङ्कराचार्य श्री प. प. वर्येत्यादि-विविध विरुदावली विभूषितानां श्री गोवर्द्धन मठाधीशानां मान्य मानानी-यानां अभिप्राय पत्रं।

True copy of Telegram dated *13--9—1934*

Seal Postal
Bisheshvarganj
Benares.
No. *107*

Bombay—9 Date Hours-Mts.
13 *18.55*

Service Instructions Words
Two addresses *37*

M—M
Recd. here at 20—32

Rajagopal Sharma, 51 Hanumanghat, Benares.

Yours received. Adi Shankaracharya's all biographies mention only Govardhan mutt, Shringeri mutt, Dwaraka mutt and Jyotir muttas established by himself. If Kumbakonam claims otherwise ask for original authorities.

3 (ख)

Letter from Sri Shankaracharya, Govardhan mutt, Puri.

To Rajagopala Sarma, 51, Hanumanghat, Banares.

Camp: Calcutta
Dated 26th January, *1935*

II Para :

" As for your proposed book, I think the best thing would be for you to depend upon and make use of the huge number of books and booklets which have been referred to by you and which would suffice for your purpose of establishing your proposition. The references to the original Shankara vijaya and other such authoritative evidence being there, they will speak eloquently for themselves; and there is no need for publishing any opinion from me or any other such individual on the matter."

"The list given by you, of material which you propose to publish, is a sufficiently huge and satisfactory one; and I wish you to be content with that. Let me assure you, it will more than serve your purpose; and nothing from me is necessary to add to the volume and weight of the evidence which you have in your possession already and which you propose to make use of."

संपादकीय नोट—इस पुस्तक की द्वितीय खण्ड के सातों अध्याय में दिये गये लगभग सब विषय गोवर्द्धन मठाधीश जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य श्री भारतीकृष्ण तीर्थ महाराज को कह सुनाया था और आप माननीय जी का आदेश था कि मैं इन सब विषयों को पुस्तक रूप में सर्वजानकारी के लिये प्रकाश करूं। गोवर्द्धन मठाधीश का पत्र तारीख 26-1-1935 का इसी सम्बन्ध में था।

3 (ग)

Extract from a book "The Throne of Transcendental wisdom" by Mr. K. R. Venkataraman (formerly D. P. I. Pudukkottai), *1959* Publication, Page XI to XIV—Srimukhas And Messages—H. H. Sri Bharati Krishna Tirtha, Jagadguru Sankaracharya of Govardhan Pitha, in his 'आशीरभिनन्दनपद्यमालिका', selection of 25 verses as benedictory message, says:—

कल्यारभ्ये तस्यग्लानिं पाखण्डवृद्धिमपि दृष्ट्वा
यतिपति शङ्करतनुभृच्छंकर ऊचे पुनरपि धर्मम् ॥ 1 ॥

स्वपुनः स्थापितशाश्वतधर्मस्यास्यानिशप्रचारकृते।
पुर्यां शृङ्ग क्षितिभृति द्वार्वत्यां बदरिकाक्षेत्रे ॥ 10 ॥

वेदान्तार्थव्याख्या चतुरान्सिंहासनेषु यतिसिंहान्।
चतुरश्चतुरः शिष्यान्स्वीयान्स्वमठेषुयेषु विनिवेश्य ॥ 11 ॥

आचार्येन्द्रो नोज्झितस्वीयवर्ष्मा कैलासेषु नैजमोकोऽढौके।
आचार्याणां तत्र तत्रेतिहासः पारम्पर्यात् शक्यते चेदवाप्तुम् ॥ 12 ॥

3 (घ)

Extract from an article 'Shankara: First Gnana Guru of Kaliyuga' by Jagadguru H H. Bharati Krishna Teertha Ji Maharaj, Gowardhan Mutt, published in 'Bhavan's Journal', April 29, 1962:—' .... His four great Disciples and Apostolic successors i. e. Shree Padma Padacharya, Shree Sureshwaracharya, Shree Hastamalakacharya and Shree Totakacharya, whom Bhagwan Shree Shankaracharya installed with His own hands as successors on the four pontifical gaddis founded and established by Him in the four cardinal directions in India.'

4

श्री 1008 श्रीशङ्कराचार्य श्री प. प. वर्येत्यादि विविध विरुदावली विभूषितानां श्री शृङ्गेरी श्रीशिवगङ्गा मठाधीषानां मान्यमाननीयानां श्रीमुख पत्रं।

No. 362

विजय यात्रा स्थान: एल्लपिल्लैचावडी, ओलगरै पोस्ट, पान्डिचेरी।

ता. श्रीशार्वरीनामसंवत्सर श्रावण कृष्ण 14 रविवासरे, 21-8-60.

अस्मदत्यन्तमुख्य प्रियशिष्य श्रीमान् विमर्शनासक्त जे. वि. राजगोपाल शर्मणां विषये श्रीनारायणस्मरणपूर्वक विरचिताशीः परंपरास्सभुल्लसन्तुतराम् सांप्रतम्।

भवता निवेदितं पत्रं समागत्य श्रीमठाधिकारिणा समग्रं श्रुतम्।

मूलमचिंत्यैव एतत्सर्वं कण्ठचामीकरन्यायेन निकट वर्तिन्यस्मिन्विषये कान्तार भ्रमणमिव वृथापरिभ्रमन्तः क्लिश्यन्तिते।

श्रीमच्छङ्कर भगवत्पूज्यपादैश्चतुर्दिक्षु चतुराम्नायपीठावर्णाश्रमाद्याचार परिपालनार्थं, अद्वैत सिद्धान्त प्रचालनार्थं च स्थापिता इति बहुषु प्रमाण ग्रन्थेषु स्फुटमुद्घोषयन्तिकिल।

भवन्निवेदिते पत्रे निर्दिष्ट विषयं सर्वंसुन्दरमित्यलम्॥

इत्येषानारायणस्मृतिः श्रीः

5

श्री 108 श्री प. प. वर्येत्यादि विविध विरुदावली विभूषितानां श्रीमद्दण्डिस्वामी श्री तारकेश्वर मठाधीषानां मान्य माननीयानां अभिप्राय पत्रं।

श्रीमद्दण्डिस्वामीहृषीकेशाश्रम
मोहान्त महाराज, तारकेश्वर मठ

पो. तारकेश्वर
जिला: हुगली (बंगाल)
ता. 15—10—1960

नारायण स्मरणामि

मान्याः शर्म्म महोदयाः। भावकं पत्रं प्राप्तम्। भगवच्छंकराचार्य्य चरणैश्चत्वार एव मठाश्चतुर्षु दिक्षु संस्थापिता इत्येव।

माधवाचार्य्य (विद्यारण्य मुनिः) विरचित श्रीशङ्करदिग्विजय ग्रन्थेषुपलभ्यते।

सम्प्रदायपरम्परायापि एषएव सिद्धान्तो निश्चितः

समिति
हृषीकेशाश्रमस्य।

6

1886 ई० में जगद् विख्यात् काशी के पण्डितों और आदरणीय परिव्राजकों का प्रशंसनीय निर्णय।

... इदानीं चतुर्थी जिज्ञासा शिष्यते। तत्र पुरस्तादयमर्थो विचारपथमारोढुमर्हति। 'चातुर्वर्ण्यं यथायोगं वाङ्मनः कायकर्मभिः। गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै। धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः। कृताधिकारा आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि' इति शिक्षा यावद् गुर्वाचार्यविषयिणी मठचतुष्टयाध्यक्ष मात्रविषयिणी वा। "मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्च धुरन्धराः। सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्मव्यवस्थितिः" इत्येतदव्यवहितोत्तरत्वान् मठचतुष्टयाध्यक्षमात्रविषयिणीचेन् कथमन्यस्य। संन्यासिनश्चातुर्वर्ण्यमात्र समर्चितपादाम्बुजस्थानाचार्यभ्रान्तिदनामचिह्नधारण पूर्वकं सञ्चरणं नानुचितं स्यात्।

नन्वराजा प्रजाभ्यो दण्डं जिघृक्षन् राजचिन्हेन गच्छन् न पापीयान् भवति। ननु भवतु यस्यकस्यचित् संन्यासिनस्तथागमनमनुचितम। पीठाचार्यस्यैव तु कारणविशेषेण स्थानच्युतस्य स्थलान्तरमधिवसतस्तथा गमनमुचितमेवेति वाच्यम्। 'कृताधिकारा आचार्य धर्मतस्तद्वदेवहि। अस्मत्पीठे समारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः। अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः।' इति परमगुरूक्तेः स्थानच्युते राजनि दण्डानधिकारदर्शनेनौचित्याच्च तस्यापि तथागमनमनुचितमेवेत्यवधेय-मित्यलम्।

व्यवस्थेयं रामाब्धिरत्नेन्दुमिते 1943 विक्रमशके माघशुक्लैकादश्यां शुक्रे समजनीति शिवम्।

॥ शुभमस्तु ॥

1 काशीस्थराजकीय पाठशालीयन्यायशास्त्राध्यापकः श्रीकैलासचन्द्र (भट्टाचार्य) शर्म्मा सम्मनुतेऽमुमर्थन्

2 उचितेयं व्यवस्थेति शिवकुमारशर्ममिश्रः (श्रीकाशी-स्थदरभंगामहाराजपाठशालाप्रधानाध्यापकः)

3 इयमर्थतः सम्मता व्यवस्था राममिश्रशास्त्रिणः काश्यां श्री 108 ब्रह्मामृतवर्षिणीसभासम्पादकस्य

4 नवद्वीपपाठशालाध्यापकश्रीयदुनाथसार्वभौम (भट्टा-चार्य) स्य सम्मतिरत्र

5 सम्मतिरेतदर्थे ज्योतिर्विद्राजाजीशर्मणः

6 सम्मतिरत्र शोभारामशास्त्रिणः

7 सम्मतिरेतदर्थे काशीस्थपाठशालाध्यापकश्रीसंगम लालशर्म्मणः

8 सम्मतिरत्र श्यामाचरणशर्म्मणः

9 श्रीद्विवेदहरिनाथमनीषा विद्वदुक्तममुमर्थममंस्त

10 सम्मतिरत्र चतुर्धरोपनामक वैजनाथदीक्षितशर्म्मणः

11 सीतारामशास्त्री

12 सममान्ययमर्थः सांख्यशास्त्राध्यापकैः पं० बेचनराम शर्मा

13 श्रीदरभंगाप्रभुप्राप्तवेतनो मेहदलोवाव्हराजाराम शास्त्री शर्म्मा

14 सम्मतिरत्रार्थे श्रीजयदेवशर्म्मणो मैथिलस्य

15 सम्मतिरत्रार्थे श्रीदेवीदत्तशर्म्मणः

16 अमृतशास्त्र्यभीष्टेयं व्यवस्था

17 सममँस्तामुमर्थं श्रीमत्काश्मीरजम्बूप्रभृतिमहाराज-संस्थापितकाशिकभूगर्यपाठशालीयवेदान्ताध्यापयिता भागीरथीप्रसादशर्म्मा

18 अत्रार्थे सम्मतिः पण्डितबद्रिनाथशर्म्मणः

19 अत्रार्थे सम्मतिः श्रीशिवनन्दनशर्म्मणः

20 अत्रार्थे सम्मतिः जंबुपुराधीशपाठशालाध्यापक पण्डित कालीदासशर्म्मणः
21 सम्मतिरत्र द्वारकादत्तशर्मणः
22 अत्रार्थे सम्मतिः पण्डितनित्यानन्दशर्म्मणः
23 सम्मनुतेऽमुमर्थं रामाचार्यशर्म्मा
24 श्रीकेशवशर्म्मा
25 सम्मनुतेऽमुमर्थं जगन्नाथशर्म्मा
26 मनीषिसम्मतेऽर्थे कृतसम्मतिकोऽनन्तरामशर्मा
27 ऋग्वेदाध्यापकजगन्नाथशर्म्मा
28 सम्मतिरत्रार्थे श्रीमुकुन्दशर्म्मणः
29 नारायणदत्तशर्मा
30 सम्मतिरत्रार्थे श्रीगिरिजादत्तशर्म्मणः
31 अत्रार्थे संमतिः पण्डितशीतलाप्रसादशर्म्मणः
32 सम्मतिरत्र पं० भवानीदत्तशर्म्मणः
33 सममान्ययमर्थः सुधाकरद्विवेदिना
34 सम्मतिरत्रार्थे पाठकोपाव्हश्री युगलकिशोरशर्म्मणः
35 सम्मतिरत्र पण्तिविभवरामशर्म्मणः
36 मिश्रोपनामकसुरसण्डनामनगराधिष्ठितराजसम्मानित श्री फनुरीशर्म्मणोऽनुमतिरत्रार्थे
37 सम्मतिरत्रार्थे जीवन्मुक्तस्य श्री मनोहरशर्म्मणः
38 सम्मनुतेऽमुमर्थं श्रीमैथिलगुरुदत्तशर्म्मा
39 सममान्ययमर्थः श्रीदीनानाथशर्म्मण
40 सम्मनुतेऽमुमर्थं श्रीहरिवंशशर्म्मा
41 सम्मनुतेऽमुमर्थं मैथिल श्री भैरवदत्तशर्मा
42 सम्मतिरत्रार्थे श्री सुरेश्वरशर्म्मणः
43 सम्मतिः श्रीअभिरामशर्म्मणः
44 कृतसम्मतिरिह श्री मुक्तीशर्म्मा
45 सम्मतिरत्रार्थे शिवनन्दनशर्म्मणः
46 सम्मनुतेऽमुमर्थं भाऊशास्त्री
47 अत्रार्थे सम्मतिः वेंकटरमणशास्त्रिणः
48 अर्थममुं सम्मनुतेऽग्निहोत्री आत्मारामशर्मा गुर्जरः
49 सम्यगियं व्यवस्थेति गुर्जराणां चतुरशीतिज्ञातीनाम ध्यक्षो वेणीशङ्करशर्मा
50 सम्मतिरत्रार्थे पण्डितचन्द्रदेवशर्म्मणो नागरस्य
51 उत्तमोऽयमर्थ इति गोविन्दशंकरशर्मा नागरः
52 अत्रार्थे सम्मतिः ईश्वरजीदीक्षितनागरस्य
53 अत्रार्थे सम्मतिर्याज्ञिकोपनामकश्रीकृष्णदत्तशर्म्मणः
54 सम्मतिरत्रार्थे भट्ट सीताराम शर्म्मणः
55 सम्मतिरत्रार्थे भट्ट रामचन्द्रशर्मणः ज्ञाति खेडावालस्य
56 सम्मतिरत्रार्थे केशवशास्त्रिणः
57 भट्टोपनामा गणेशशास्त्री गुर्जरः संमनुतेऽर्थममुम्
58 अयमर्थः सम्मतस्सुब्रह्मण्यशास्त्रिणः
59 सम्मतिर्वासुदेवशास्त्रिणः
60 सम्मतोऽयमर्थो राजेश्वरशास्त्रिणः
61 सममानि वझेटकोपाव्हपापाशास्त्रिशर्मणा
62 सम्मतिरेतदर्थे सखारामभट्टकालेकराणाम्
63 महिश्रूररामस्वामिशास्त्रिणः सम्मतिः (द्राविडाक्षरैः)
64 संमतिर्भिकुजिपंतशर्मणः
65 द० विश्वनाथशास्त्रिणः सम्मतिरत्रार्थे (आंध्राक्षरैः)
66 सम्मतिरत्रार्थे सप्तर्षेजगन्नाथस्य
67 वैजनाथभट्ट द० खु०
68 सम्मतिरत्रार्थे मौन्योपाव्हराजारामशर्मणः
69 संमतिरत्रानंतरामज्योतिर्विदः
70 संमतिरत्रार्थे पौराणिकोपाव्हनानाशास्त्रिणः
71 श्रीकाशीक्षेत्रस्थसंन्यासी शिवानन्दसरस्वती जानीमठ
72 संमनुतेऽमुमर्थं नित्यानन्दसरस्वतीस्वामी
73 स्वामिब्रह्मानन्दसरस्वतीसंमतोऽयमर्थः
74 वासुदेवाश्रमस्वामिनः संमतिः
75 माधवानन्दस्वामी संमनुते
76 कृष्णेन्द्रस्वामिनः सम्मतिः
77 त्रिविक्रमाश्रमस्वामिनः संमतिः
78 हृषीकेशाश्रमस्वामिनः संमतिः
79 मधुसूदनस्वामिनः संमतिः

संपादकीय नोट

इस 1886 ई० के व्यवस्था में काशीधाम निवासी कुछ दाक्षिणात्य पण्डितों का हस्ताक्षर न होने से यह

व्यवस्था सर्वसम्मत न होने का प्रचार कुम्भकोण मठानुयायी करते हैं। सम्भवतः श्री गंगाधर शास्त्री, श्री दामोदर शास्त्री प्रभृति इन विवादों में मौन धारण की इच्छा से तटस्थ रह गये होंगे। यदि इनकी सम्मति इस व्यवस्था में न होती तो अवश्य ही विपक्षियों की व्यवस्था में हस्ताक्षर करते, पर ऐसी कोई बात नहीं थी। विपक्षियों की व्यवस्था भी मेरे पास है। उसमें भी चार मठों की स्थापना की व्यवस्था दी गई है। आदरणीय प. प. श्री कृष्णानन्द जी कैवल्य धाम तथा अन्य आदरणीय परिव्राजकों की भी सम्मति चार ही मठ होने के हैं न कोई पांचवां। इस 1886 ई० की व्यवस्था में अनेक दिग्गज गौड और द्राविड पन्डितों का भी हस्ताक्षर है। इससे सिद्ध हुआ कि यह व्यवस्था जो चार मठ होने की है वह सर्वसम्मति से ही हुआ है। इस व्यवस्था के तीन विषय प्रस्तुत विवादों से सम्बन्ध न रखने के कारण यहां उनका विवरण नहीं दिया जाता है।

7

काशी के प्रसिद्ध पन्डितों तथा माननीय परिव्राजकों द्वारा 1935 ई० में दिया हुआ प्रशंसनीय निर्णय।

॥ ॐ ॥

॥ श्री काशीविश्वेश्वरः प्रसन्नोऽस्तु ॥

श्री 1008 श्रीमदादिशंकराचार्य भगवत्पादाचार्यपादारविन्देभ्यो नमः

1943 अब्दे (विक्रमशके) श्रीकाशीक्षेत्रे सञ्जातजगद्विख्यात पण्डितसभायां—'श्रीमदादिशंकरभगवत्पादाचार्याश्चतुरो मठानेव चतुर्षु दिक्षु संस्थाप्य तेषु मठेषु स्वकीयप्रधानशिष्यान् चतुरः संस्थाप्य चतुरःसम्प्रदायांश्च प्रवर्तयामासुः। एते चत्वार एव चातुर्वर्ण्याश्रमधर्मव्यवस्थां कर्तुं दिग्विजयञ्च कर्तुमधिकारिणः एतदतिरिक्ताः पूर्वोक्तवर्णाश्रमधर्मादिविचारपूर्वकनिर्णयकरणे दिग्विजयकरणे च अनधिकारिणः' इति 79 प्रधानपण्डिताः काशीस्थाः निर्णयमकुर्वन्। एवं स्थितेसत्यऽपि सम्प्रति श्रीकांचीकामकोटि कुम्भकोणमठाधिपाः स्वकीयमठ एव श्रीमच्छंकरभगवत्पादाचार्यैः कांचीक्षेत्रे प्रथमतः संस्थापित इति तत्पीठस्था एव जगद्गुरव इति प्रख्यापयन्तः श्रीकाशीक्षेत्रं प्रति समागताः। अतस्तद्विषयकयाथार्थ्यं प्रकटयितुमधस्तात् विराजमाननिर्णयः क्रियते।

श्री कामकोटिकुम्भकोणमठाधिपाः श्रीमदादिशङ्करभगवत्पादाचार्यैरस्मदीय एव मठः प्रथमं स्थापित इति वदन्तोऽस्मिन्विषये शिवरहस्यमानन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजयं च प्रमाणत्वेन प्रतिपादयन्ति।

(1) तत्र शिवरहस्यग्रन्थं प्रथमं विचारयामः। शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये

तद्योगभोगवरमुक्तिसुमोक्षयोगलिंगार्चनात्प्राप्तजयस्वकाश्रमम्।
तान्वै विजित्यतरसाक्षतशास्त्रवादैर्मिश्रान् सकाञ्च्यामथसिद्धिमाप।

अयमेकैकस्मिन्पुस्तके अन्यथा अन्यथा परिदृश्यते। कस्मिंश्चित्पुस्तके अयं श्लोको नैव दृश्यते। अन्ये केचन श्लोकाश्च तस्मिन्नेवाध्याये अन्यैः प्रमाणत्वेन उदाहृयमाणाः अन्यग्रन्थे नोपलभ्यन्ते च। अतः श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त इति प्रतिभाति। यदि कदाचित श्लोकं प्रमाणत्वेन गृह्णीमः तस्मिन् श्लोके आद्यशङ्कराचार्याः स्वाश्रमं प्रत्यागत्य तदनन्तरं काञ्च्यामागत्य सिद्धिमाप्नुवन्निति दृश्यते।

अतः काञ्च्यां सिद्धिमाप्नुवन्नित्येव वक्तुं शक्यते न तु तत्र मठं स्थापितवन्तः। अपि च बहुषु शङ्कर दिग्विजयग्रन्थेषु श्रीमदाचार्यपादाः काश्मीरे सर्वज्ञपीठमध्यास्य तदनु हिमवत्पर्वततः सशरीरं स्वधाम कैलासमारोहन्निति प्रतिपादनात् काञ्च्यां समाधिमाप्नुवन्नित्येतत् वक्तुं नार्हति। अपि च कुंभकोणमठाधिपैः स्वपीठविषये प्रमाणत्वेनोपन्यस्तशिवरहस्यग्रन्थस्य नवमांशे विद्यमानषोडशाध्यायोऽनेक विधतयाऽन्यान्यपुस्तकेषूपलभ्यमानत्वेन तेषामन्यतमोऽपि प्रकारस्तन्मठनिर्माणादिकं न वक्ति, इत्यतः शिवरहस्यग्रन्थस्तेषामननुकूलो भवन् प्रत्युतास्माकमेव अनुकूल इति।

(2) अथ आनन्दगिरिशङ्करविजय विषये विचारयामः। आनन्दगिरिशङ्करविजयस्य मूलं शिवरहस्य मिति श्रीकुम्भकोणमठाधिपाःवदन्ति। शिवरहस्यग्रन्थे केरलदेशे ब्राह्मणदम्पतिभ्यां शङ्कराचार्यस्य जन्म प्रतिपादितम। आनन्दगिरिशङ्करदिग्विजयेतु अरण्ये तपस्यतः कस्यचित् ब्राह्मणस्य पत्न्याः चिदम्बरक्षेत्रे वसन्त्याः चिदम्बरेशंध्यायन्त्याः मुखद्वारा शैवंतेजः कुक्षौ प्रविश्य शङ्कराचार्यरूपेण तस्यामजनीति शिवरहस्यविरुद्धतया प्रतिपादितम्। तस्मिन्नेवानन्दगिरीये शिवकांची विष्णुकांचीति नामकेपत्तने निर्माय तत्र ब्राह्मणान् अद्वैतसम्प्रदायेन्ययोजयन्निति चास्ति। शिवरहस्ये तु तत्पत्तनद्वयनिर्माणं नोपलभ्यते। तत्र स सिद्धिमापेत्यस्ति न तत्र सिद्धिशब्दः देहत्यागमाचष्टे। अपि तु स्वाश्रमात् शृङ्गेरीतः काञ्चीमागत्य तत्रत्यकुवादिनः अवैदिकमार्गस्थान् शाक्तादीन् निर्जित्य श्रीचक्रकामाक्षीस्थापनादिरूपेष्टसिद्धिमवापेत्यर्थकरणे अन्यग्रन्थानुरोधेन सानजस्ये सति न शरीरत्यागरूपासिद्धिः तस्माद् ग्रन्थादवगम्यते।

आनन्दगिरिशंकरविजयकर्तृविषयेऽपि किञ्चित विचार्यते। अस्य ग्रन्थस्य कर्ता अनन्तानन्दगिरिः। अस्य जन्म कैस्त 1119 अब्दे। कैस्त 1199 अब्दे शरीरत्याग इति। पूर्वाश्रमे अस्य नाम बासुदेवाचार्य इति। अस्य गुरोर्नाम अच्युतप्रेक्षाचार्य इति। आश्रमस्वीकारानन्तरं आनन्दगिरिरनन्तानन्दगिरिः ज्ञानानन्दगिरिरित्यादीनि अष्टौ नामानि सन्ति। अयं च सप्तत्रिंशद् ग्रन्थ रचयिता, तेषु ग्रन्थेषु शङ्करविजयाख्योऽप्येकः। अस्य शिष्यास्तु पद्मनाभतीर्थ, माधवतीर्थ, अक्षोभ्यतीर्थ, नरहरितीर्थ, इत्येवं विद्यमानत्वेन गुरुशिष्यपरम्परा द्वैतमठीयेति प्रतिभाति। अतः शांकराद्वैत सिद्धान्ते द्वैधबुध्यारचितोऽयमानन्दगिरि शंकरविजयाख्यो ग्रन्थः अद्वैतिनां प्रमाणपथं नारोहति। अपि च कलकत्ता नगर समीपस्थ ताडकेश्वरदेवालयसम्बन्धिनि विवादे राजकीयन्यायस्थाने कीर्तिशेषमहामहोपाध्याय द्राविड श्रीलक्ष्मणशास्त्रिणा आनन्दगिरिशंकरदिग्विजय ग्रन्थः अप्रामाणिक इति प्रतिज्ञापूर्वकमुक्तमित्यत आनन्दगिरिशंकरदिग्विजयग्रन्थः अप्रमाणमित्येव निश्चीयते। किञ्च (अयं कलिकाता मुद्रितः आनन्दगिरि शंकरविजयः) महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणसूरि, के० टि० तेलङ्ग, वेंकटरामन्, मेक्समुलर, विलसन्, प्रभृतिभिश्च अप्रमाणत्वेनैव भणितः।

(3) अतः परं नैषधकाव्यविषये विचारयामः। इदं च काव्यं श्रीहर्षरचितम्। अस्य ग्रन्थस्य काव्यत्वेन अनादरणीयता। अपि च अस्मिन् काव्ये नवमसर्गे वादिना 'जागर्ति योगेश्वर' इति वर्तत इत्युक्त्वा योगेश्वरपदेन अस्मिन्मठे समर्च्यमानयोगेश्वरस्योल्लेखनात् कामकोटिपीठमठः श्रीमदाद्यशंकराचार्यैरारचित इत्यस्मिन्विषये प्रमाणत्वेन अयं श्लोकः उपन्यस्तः। स तु तस्मिन्सर्गे नैव दृश्यते, अपि तु द्वादशसर्गे अष्टत्रिंशतितमश्लोके 'जागर्ति यागेश्वर' इति वर्तते। तद् व्याख्यानेऽपि यागेश्वर इत्येव व्याख्यात्रा प्रतीकत्वेन परिगृह्य व्याख्यापि यागेश्वरपदस्यैव कृतम्। अपि च प्राक् भारतयुद्धात् नलदमयन्ती चरित्रस्य वर्णनात् कलियुगादितः त्रिसहस्रसंख्याकवत्सरेभ्यः सञ्जात श्रीशंकराचार्यैरानीतयोगलिङ्गवर्णनं नैषधकाव्ये असम्भवमित्यस्मिन् वायुक्तविषये इदं काव्यं न प्रमाणं भवति॥

अपि च कुम्भकोणमठाधिपास्तु स्वकीय इन्द्रसरस्वतीति योगपट्टं तीर्थाश्रमादिदशविधसम्प्रदायकोट्यन्तर्भूतमित्युक्त्वा तत्र यतिधर्मनिर्णयाख्यं ग्रन्थं प्रमाणयन्ति। तन्न शोभनम्। तस्मिन्नेव यतिधर्मनिर्णये पूर्वोक्त तीर्थाश्रमाणां मध्ये

केषाञ्चिन् नाम्नां स्वस्वशीलाचारमत्ताभिमानेन जाताः सम्प्रदायाः तन्नामभेदाश्चेत्युक्त्वा सरस्वतीसम्प्रदायभेदौ आनन्दसरस्वती इन्द्रसरस्वती चेति प्रतिपादनेन अयं इन्द्रसरस्वती सम्प्रदायः तीर्थाश्रमेत्यादिदशनामबहिर्भूतः शीलाचारमत्ताभिमानेन परिकल्पित इत्यवगमात्। नायं यतिधर्मनिर्णयाख्यो ग्रन्थः अस्मिन्विषये अनूचानत्वेन प्रमाणं भवितुमर्हति।

कुम्भकोणमठाधिप महावाक्य विषये चिन्त्यते। श्रीमद्भाष्यकारैः आदि शंकराचार्य भगवत्पादैः स्वशिष्येभ्यः उपदिष्ट प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्मेति महावाक्यचतुष्टयादन्यत् ॐतत्सदिति महावाक्यमस्मदीयमिति कामकोटिपीठगुरुपरम्परान्तर्गत आत्मबोधस्वामिभिर्विरचितायां गुरुरत्नमालायाः सुषमाख्यटीकायां प्रतिपादितम्। इदानीं तन्मठस्थ श्रीचन्द्र शेखरेन्द्रसरस्वतीस्वामिभिः विद्यार्थीकृत प्रश्न प्रतिवचनत्वेन ॐतत्सदिति महावाक्यं नास्माकमित्येवोक्तम। परन्तु स्वकीय महावाक्यमीदृशमित्यपिनोक्तम्। अतः श्रीमद्भाष्यकारोपदिष्ट चतुर्विधमहावाक्यबहिर्भूतम् तदीयपूर्वगुरुवाक्यानुसारेण ॐ तत्सदित्येव तदीयं वाक्यमिति निर्णीतं भवति। यद्येते भाष्यकारसम्प्रदायपरम्परायामागताः स्युः तदा स्वगुरुपरम्पराप्राप्तमहावाक्यानामुपरिनिर्दिष्टानां चतुर्णामन्यतमं महावाक्यमेव भगवत्पादाचार्यैः एततपरम्परामूलपुरुषाय उपदिष्टं स्यात् नैतदेवमस्ति। अतः श्रीकांचीकामकोटिमठाधिपाः श्रीमदादिशंकरभगवत्पादाचार्यसम्प्रदायात् बहिर्भूता एवेति निश्चीयते।

अपि च कैश्चिन् महात्मभिः काञ्च्यां परिकल्पित कामकोटिसंज्ञापीठं कदाचित्केनचित्कारणेन तस्मादुद्धृत्य कुम्भकोणनामपत्तनान्तरमानयनात् स्थानभ्रष्टतामापन्नं कथं पूजार्हं भवेदिति।

एतावता प्रबन्धेन कामकोटिकुम्भकोणमठाधिपैः स्वविषये प्रमाणत्वेन निर्दिष्टाः शिवरहस्य, आनन्दगिरिशंकर विजय, नैषधकाव्य, यतिधर्मनिर्णयाख्याः ग्रन्थाः तेषामननुकूला एव प्रत्युत अस्माकमनुकूला भवन्ति॥

इत्यतः सिद्धं कांचीकामकोटिकुम्भकोणमठः श्रीमच्छंकरभगवत्पादाचार्यैः न स्थापित इति।

1 श्री प० प० ब्रह्मानन्दसरस्वतीस्वामी, श्रीपंचगंगेश्वर मठ।

2 ,, ,, पुरुषोत्तमाश्रम स्वामी, महंत, श्रीराम तारक मठ।

3 ,, ,, श्रीधराश्रमस्वामी।

4 ,, ,, श्रीहरि आश्रम स्वामी।

5 ,, ,, श्रीस्वामी श्रीपादआश्रम।

6 ,, ,, श्रीअच्यूताश्रम गुरु।

7 ,, ,, श्रीकृष्णाश्रम स्वामी।

8 ,, ,, श्रीसदानन्द आश्रम, दंडीस्वामी।

9 ,, ,, श्रीस्वामी माधवानन्दसरस्वती, महंत जानी मठ।

10 ,, ,, श्रीस्वामी विजयानन्द सरस्वती।

11 ,, ,, श्रीस्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती।

12 ,, ,, गौमठाधीश्वर शारदापीठ आम्नायां द०श्रीधराश्रमस्वामी।

13 ,, ,, श्रीवामनाश्रम स्वामी।

14 ,, ,, श्रीमाधवानन्दतीर्थस्वामी, विद्यारण्यमठ

15 ,, ,, श्रीनारायणस्वामी तीर्थ।

16 ,, ,, श्रीहृषीकेशानन्दसरस्वती, दत्तात्रेयमठ।

17 ,, ,, श्रीस्वामी जनार्दनानन्दसरस्वती, दत्त मन्दिर।

18 ,, ,, श्रीदंडीस्वामी श्रीनिवासाश्रम, महंत मछरीबन्दरमठ व काशीराज का बाडा गणेश-मन्दिर मठ।

19 ,, ,, श्रीहरिहरानन्दतीर्थ महंत, कामरूपमठ

20 ,, ,, श्रीगोविन्दानन्दतीर्थ स्वामी सम्मतिः, महंत मुमुक्षु भवन।

21 ,, ,, श्रीदक्षिणामूर्ति आश्रम स्वामी, काशी।

22 ,, ,, सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामिनां सम्मतिः (श्रीशङ्कर सहस्रनामकर्ता।)

23 विशेषगवेषणामन्तरेणाऽपि चिरकाल सम्प्रतिपन्न-मर्थमुमं सम्मनुते — श्रीवीरमणि प्रसाद उपाध्यायः एम० ए० एल० एल० बी० साहित्याचार्य, न्याय शास्त्री, प्रिन्सपाल-रणवीर पाठशाला।

24 प्रचारणीयेयं व्यवस्थेति विन्ध्येश्वरी प्रसाद शास्त्रिणः, 'सुप्रभात' संपादकः।

25 तारदत्त पंथ, साहित्यव्याकरणाचार्य :।

26 सर्वतंत्र सिद्धान्त सिद्धैवेयमप्रवृत्तिर्यन्नकोपिपश्चमः समर्च्यचरणः शङ्कराचार्योवरीवर्त्तीति, सत्यनारायणः शास्त्री वैद्यः, हि० वि० वि०

27 रामानन्द मिश्रः, ज्यौतिषाचार्यः

28 विद्वत्सम्मतममुमर्थं सम्मनुते श्रीगौरीनाथ पाठकः साहित्याचार्यः, महोपाध्यायः, विशुद्धानन्द महाविद्यालयाध्यापकः

29 समुचितेयं व्यवस्था—श्रीकेदारनाथ शर्म्मा शास्त्री, 'सुप्रभात' संपादकः

30 वाराणसेय सम्मानित पुरातन विद्वत् सिद्धान्त सिद्धत्वाद् व्यवस्थेयं सम्मानार्हेति सम्मतिरत्रार्थे श्रीरामदेवशर्मद्विवेदिनः, व्याकरणाचार्यः

31 सम्मनुतेऽमुमर्थं राजाराम शुक्ल, साहित्याचार्य, शास्त्री

32 श्रीतारापद शर्म्मा, शास्त्री, अध्यापक।

33 पामल वेंकटशास्त्रिणाऽपि (न्यायाचार्य) अस्मिन्नर्थे नाम आदिशङ्कराचार्यवर्येण संस्थापितः प्राथमिको मठः तुंगभद्रातीरस्थः शृङ्गेरी नामक एव इतिमन्यते।

34 प० अजब लाल झा, अध्यापक

35 ज० बाबू दीक्षित जडे, ऋग्वेदाध्यापकः, दरभंगा पाठशाला

36 अत्राऽर्थे सम्मतिः श्रीरुद्र भट्टस्य

37 राम शास्त्री रटाटे, अग्निहोत्री, अथर्वण वेदाध्यापक दरभंगा पाठशाला

38 शङ्कर राम सामवेदी, दरभंगा पाठशाला

39 सम्मतिरत्रार्थे विजयानन्द त्रिपाठिनः साहित्यरञ्जनः

40 कविराजविन्दुमाधवभट्टाचार्य, काव्यव्याकरण तीर्थ, साहित्याचार्य, कविरत्न।

41 सम्मतिरत्रार्थे दाऊजी दीक्षित नागरस्य।

42 सम्मतिरह्मिन्नर्थे ललितोपाह्व गदाधर शर्मणः

43 प्राणनाथ व्यास अत्रार्थे संमतिः

44 महादेव गणेश पौराणिक

45 माधवकृष्ण दीक्षितस्य संमतिः

46 गंगाधर श्रीकृष्ण शास्त्री रटाटे, इत्येतेषां संमतिः

47 गोपाल शास्त्री बडोदकरोपाह्व इत्येतेषां सम्मतिः

48 नारायण महादेव पाण्डे पौराणिक

49 सम्मतिरत्रार्थे केलकरोपाभिध दामोदर शास्त्रिणः

50 पं० जीवनाथोपाध्याय, निरौलानेपाली, पौराणिक शास्त्री।

51 अत्रार्थे संमतिः पं० माधव शास्त्री केलकर

52 सम्मतिः दामोदरकृष्णदीक्षित महाडकर, पौराणिक

53 पं० जानकीशरण त्रिपाठी, सम्पादक 'सूर्य'

54 ,, रामनरेश उपाध्याय, सहायक संपादक 'सूर्य'

55 ,, रामपति त्रिपाठी, शास्त्री

56 श्रीऋत्विक बम्बई सूर्यनारायणशास्त्री, विद्यालंकार

57 संमतिरत्रार्थे प्रताप सीताराम शास्त्री, न्यायाचार्यः

58 पं० कृष्ण शास्त्री सम्मतिः, गीतामठ

59 ,, स्वामी शास्त्री

60 ,, काशीनाथ शास्त्री

61 ,, छल्ला सुब्बराय शास्त्री

62 ,, लक्ष्मीनारायण शास्त्री

63 ,, सूर्यनारायण शास्त्री

64 ,, अत्रार्थेसम्मतिः अंबलेशेष पण्डित

65 ,, टि० जि० नागप्पा

66 ,, शिवराम कृष्ण घनपाटी

67 विद्वान् रामस्वामी शास्त्री

68 पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री

69 ,, टी० सीताराम शास्त्री

70 ,, रे० कृष्णशास्त्री

71 सम्मतिरत्रार्थे ज० ग० विश्वनाथ शर्मा

(क्रमशः)

8

जगत् विख्यात् महामाननीय भारतरत्न श्री एस. राधाकृष्णन्जी, उप-राष्ट्रपति, भारत सरकार, नई दिल्ली, लिखते हैं :—

Vice-President,
INDIA,
NEW DELHI,
June 11, 1960.

Dear Shri Rajgopal Sarma,

Thank you for your letter of June 6. This is what I wrote in a book published in 1923 :

> "He established four mutts or monasteries, of which the chief is the one at Sringeri in the Mysore Province, the others are those at Puri in the East, Dvaraka in the West, and Badrinath in the Himalayas."

This is the opinion which I hold.

I have no comments to make on the recent controversy.

To my knowledge there are only 4 mahavakyas connected with four mutts.

With best wishes,

Yours Sincerely,
(Sd.) S. RADHAKRISHNAN.

(संपादकीय नोट : भारतरत्न श्री एस. राधाकृष्णनजी को 1962 ई० के चुनाव में भारत सरकार का 'राष्ट्रपति' चुना गया।)

9

जगत् विख्यात् महामाननीय भारतरत्न श्रीजवाहरलाल नेहरूजी, प्रधान मंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली, लिखते हैं :—

Prime Minister's House,
NEW DELHI.
August 13, 1960.

No. 1731-PMH/60

Dear Shri Sarma,

I have your letter of August 9th. What I wrote in my book "Discovery of India" about Shri Sankaracharya is still my opinion. You may publish the extracts from my book to which you have drawn my attention.

Yours sincerely,
(Sd.) JAWAHARLAL NEHRU.

"Discovery of India" "And yet Shankara was a man of amazing energy and vast activity. He was no escapist retiring into his shell or into a corner of the forest, seeking his own individual perfection and oblivious of what happened to others. Born in Malabar in the far South of India, he travelled incessantly all over India, meeting innumerable people, arguing, debating, reasoning, convincing and filling them with a part of his own passion and tremendous vitality. He was evidently a man who was intensely conscious of his mission, a man who looked upon the whole of India from Cape Comorin to the Himalayas as his field of action and as something that held together culturally and was infused by the same spirit, though this might take many external forms. He strove hard to synthesize to diverse currents that were troubling the mind of India of his day, and to build a unity of outlook out of that diversity. In a brief life of thirty-two years he did the work of many long lives, and left such an impress of his powerful mind and rich personality on India that it is very evident today. He was a curious mixture of a philosopher and a Scholar, an agnostic and a mystic, a poet and a saint, and in addition to all this, a practical reformer and an able organizer. He built up, for the first time within the Brahminical fold, ten religious orders and of these four are very alive today. He established four great mutts or monasteries, locating them far from each other, almost at the four corners of India. One of these was in the South at SRINGERI in Mysore, another at PURI on the east coast, the third at DVARAKA in Kathiawad on the west coast, and the fourth at BADRINATH in the heart of the Himalayas. At the age of thirty-two this Brahmin from the tropical South died at Kedarnath in the upper snow-covered reaches of the Himalayas." (Page 182 Para 2 Fourth Edition)

"By locating his four great monasteries in the north, south, east and west, he evidently wanted to encourage the conception of a culturally united India. These four places had been previously places of pilgrimage from all parts of the country, and now became more so." (Page 183 Para 2)

(Sd.) JAWAHARLAL NEHRU

10

माननीय श्री श्रीप्रकाशजी, राज्यपाल, महाराष्ट्र राज्य, बम्बई से, अपने पत्र ताः 28-11-1960 में लिखते हैं :—

"……………… I find that you are making a special study of the origin and growth of the Mathas established by Adi Shankaracharya in order to bring to light authentic facts on the subject. I read with interest the paper you had sent with your letter under reply ……………… I think the present Heads of the Matha originally established by Adi Shankaracharya should be in a position to enlighten you. You have my best wishes for sucess in your venture."

NOTE :—The present Heads of the three Amnaya Mathas originally established by Adi Shankaracharya confirm the fact that Sri Adi Shankaracharya had established four Amnaya Mathas only vide their letters published under serial Nos. 1, 2 &3. The fourth Amnaya Math at Badri is not functioning at present.

11

सचिवोत्तम डा० सि० पि० रामस्वामी अय्यर, मद्रास, लिखते हैं :—

DELISLE
OOTACAMUND
June 8, 1960

Dear Sri Rajagopal Sarma,

I am in receipt of your letter of the 4th June and have read the contents cracfully.

I have written an Introduction to a book entitled "The Throne of Transcendental Wisdom" and my views are contained in it ………………"

संपादकीय नोटः पाठकगणों की सुविधा तथा जानकारी के लिये डा० सि० पि० रामस्वामी अय्यर का मठविषयक विचार उक्त निर्देषित पुस्तक से उद्धृत किया जाता है—

"……………… Sankara, feeling that there was a necessity to integrate the Indian thought, not only travelled all over India discussing and persuading as He went and not only wrote His commentaries on the Upanishads, the Brahmasutra and the Gita, but also deemed it necessary to establish centres of religious instruction and propaganda in several parts of India."

"Born in far off Kalady in Travancore, Sri Sankara manifested miraculous physical and spiritual energy. He established Mutts in the Himalayas, on the shores of the Bay of Bengal and Arabian Sea and in the Karnatak country at Sringeri, which was associated with the name of Rishya Sringa and was situated on the bank of the Tunga river and juxtaposed to its confluent the Bhadra."

"It is needless to deal with the long narratives and Sankaravijayas that have dwelt on the several miracles connected with Him, because the greatest miracle of all is His life itself and the fact that in thirty two years, from his birth at Kalady to his mukti at Kedarnath He compressed the labour of centuries of intellectual and spiritual illumination. His greatest contribution to the history of world thought is His spirit of reconciliation of seemingly contradictory scriptual teachings and his assertions of those doctrines which are now inextricably connected with His name and described as Advaita (अद्वैत). Sri Sankara installed in his peetha at Sringeri, Sarada Devi representing the Brahmavidya (ब्रह्मविद्या) and also established the Srichakra, and gave to his chief disciple Sri Sureshwaracharya a sphatika Linga (स्फटिक लिंग) of Chandra Mauliswara and the murti of Ganapathi. Sri Sankara thus established the worship of personal divinities and at the same time insisted on the formlessness, the Omnipresence and the immanence of the supreme, thus satisfying the several needs of all aspirants to spiritual realization."

"........... It is to the glory of Sringeri Pitha that from the time of its foundation by the Adi Shankaracharya, it has had a continuous and uninterrupted series of occupants, who, however, different in their personal history and in their intellectual calibre, have all along maintained their spiritual purity and contributed to the continuous inspiration of Sringeri as an examplar and a model of devotion and self surrender."

12

विद्यावारिधि, पुरातत्त्व विशारद, म० म० डा० शिवनाथशर्म्मा जी, शास्त्री, आचार्य, डी. ओ. सी., डी. ओ. एल., इत्यादि, श्रीनगर, काश्मीर, से 18—9—60 के पत्र में लिखते हैं :—

यदा यदा हि पापस्य वैक्लव्यमुपजायते।
तदा दुरितवृध्यर्थं नेतारं प्रेषयाम्यहम्॥
रीति रेषा कलिकाले दृश्यते वर्धतेऽभ्यहो।
सनातनस्य धर्मस्य रक्षिता श्रमयाधिपः॥

इहहि पुराणेतिहास-साहित्यादिमूला किंवदन्ती पूर्वपूर्वतरा सनातनधर्मस्य मूलम्। तत्र सनातन धर्ममूलसेचका अद्ययावत्

रामकृष्णादयो मूलरक्षणादेव मर्यादा पुरुषोत्तमादि नामभिः संस्तूयन्ते पूज्यन्तेऽपि। येषां पूज्यतमानां मार्ग दर्शित्वे साक्षात्परंपरया च प्रस्थिता नान्धकूपेवात्थापहतेऽपि संसारसागरे बहुविघ्नाकाल प्रलयोपस्थिति दुर्दिनेषु च श्रद्धालवः सनातन धर्मिणो वयं निमज्जामहे इति निश्चप्रचम्। इति सुविदितमेवेदं आविद्वदङ्गला गोपाल बाल पर्यन्तं यावदत्र भारते।

तामेव मर्यादामुररीकृत्य सर्वे सनातनाः सनातन धर्मिणः प्रत्यहं देवर्षि पितृतर्पण तर्पितान्तः स्मरन्ति स्मारयन्त्यन्यान्, के वयं कुतो वा समायाताः। अनाद्यनन्त काल सञ्चालकानस्मान् को वा सचेता न जानाति, जानन्नपि उलूको दिवान्धो भवतु नामेति कलि विजृम्भितं विडम्बितं वा। संदृश्यते समुपलभ्यते च स्वार्थसहकारिणः चातका वर्षापगमे दोदूयन्ते खलु, परं 'पश्यतिपित्तोपहतः शशिशुभ्रं शंखमपि पीतम्'।

श्रुतं दृष्टमनुभूतञ्च यच्चतुर्पुदिक्षु आगामीकाल धर्मरक्षण–प्रचारणाय तत्र भवता भगवता जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्यपादेन श्रृंगेरी, द्वारका, गोवर्धन, ज्योतिरठ इत्यभिख्यया एव पीठ चतुष्कं निर्धारितं, यदद्य यावत् प्राचीन धर्म मर्यादापरिपालने सुष्ठु जागरूको राराजते। विदेशराज्यकाले विचार-स्मृति मद्भिस्तैरिदमेव पीठचतुष्टयं काले काले अङ्गीकृतं सम्मानितम्। अधुना स्वातन्त्र्य प्राप्तौ स्वतन्त्रतानयनदेवैर्ज्ञान विज्ञाननीति नुसंपन्नैर्नेयं मर्यादाऽपमानिता प्रत्युत मन्तव्यतामुपनीता।

दरीदृश्यते चाद्यकेऽपि तामिमां शास्त्रसिद्धां रीतिमपनीयनिष्कारणं देश-राज्य-धर्मदस्यवो भूत्वा शास्त्रविधिमुत्सृज्य पूर्वादिचतुर्दिग्गतं पीठचतुष्टयं पञ्चसंख्यया गणयित्वा स्वर्थान्धा हठयोगिनो मनुते परिप्रचारयन्ति। नैतद्धितकरं देशस्य धर्मस्य वा। धनमदोऽयं दम्भमदोऽयं मर्यादा विध्वंसनपाटवं वा विद्योतते तराम्। निश्चिन्वन्तु मंक्षु पारतन्त्र्य कालादस्मिन्काले स्वाच्छन्द्य दोषा बहुमतः पूर्वं पूर्वं तदागतां साहित्य मर्यादां मा त्रोटयन्तु येन अद्यश्वः परश्वो वा निर्निमितागतदुःखगर्तपातः शिरसास्यात्।

सतीदेशोऽयं शारदापीठो धर्मस्येमां पूर्वादिसिद्धां मतां पुरातनैः सिद्धैराधुनिकैः विद्वद्धुरन्धरैः स्वीकृतां मर्यादां व्यतिक्रम्य स्वच्छन्द मार्गेन गमनं स्वार्थिनामेव केषाञ्चित् किञ्चिज्ज्ञाभदं देशजाति धर्मानिशकरंभषणं थूत्करोति, धर्मश्रृंखलां च कुलक्रमागतां त्रुट्यमानां देशस्य श्रुत्वा धिक्वादंवादं स्मारयति इमान् पण्डितापसदान् 'एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मना। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः॥" यत्रैतादृशी भावनाऽऽसीत् तत्र चत्वारः पञ्च भवितुमर्हन्ति इति गणित दौर्गत्यम्॥

मठचतुष्काद्दते किमप्यन्यत् केनापि शास्त्रेण कयापियुक्त्या आग्रहेण वा कालत्रयेऽपि कोऽपि कर्तुं मानयितुं साधयितुं न प्रभवति न प्रभवतीति।

डा० शिवनाथ शर्मा।

13

(संस्थापित 1915)
" काश्मीरी ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा "
ब्राह्मणमहामण्डल, कश्मीर

पत्राङ्क—276/60 दिनाङ्क 19—9—60

Shri J. V. Rajgopal Sarma, Mylapore, Madras—4.

Shrimanji,

Kindly refer to your letter dated 27—8—1960.

I am herewith enclosing the comments of Dr. Shiva Nath Sharma, Sashtri, D. O. C., D. O. L., Secretary, Vidwat Parishad Brahman Mahamandal, Kashmir, regarding establishment of Four Mutts by Sri Adi Sankaracharya.

Yours sincerely,
(Sd.) NARAYANJI SIDDHA,
General Secretary,
Brahman Mahamandal, Kashmir.

म० म० पुरातत्त्व विशारद, विद्यावारिधि, साहित्याचार्य, विद्वच्छिरोमणी, साहित्य वारिधि, डा० शिवनाथ शर्मा, शास्त्री, डी. ओ. सी., डी. ओ. एल्., इत्यादि, मंत्री विद्वत्परिषद्, काश्मीर ब्राह्मणमहामण्डल, पत्राङ्क 87, दिनाङ्क 16-9-1960, को लिखते हैं :—

ये शास्त्रोक्तिं परित्यज्य
वर्तन्ते कामकारणाः।
ते धर्मं जाति द्वेष्टारः
समये गर्तपातिनः॥

प्रिय सनातनी बन्धुओं। युगान्तरों से, तब वैदिक काल से, अब हमारी सभ्यता संस्कृति केवलमात्र साहित्य पर निर्भर है, साहित्य के ही आधार पर हम चलते आये, अब चलते हैं, और आगे भी महाप्रलय पर्यन्त चलेंगे। इसी से हम सनातनी हैं, और हमारा धर्म सनातन है, साथ-साथ भ्रूणपिण्ड कितने ही देखे आये हैं, जिन्होंने माताओं को, माता पृथ्वी को, देशरूपी घर को, किञ्चित् काल पर्यन्त दुःखित चकित करके स्वयं कलङ्कान्धकार में प्रयाण किया, इस हमारे साहित्य को कलिकार्य धुरन्धर स्वार्थ राजयोगी कुछ काल आन्धीरूप से युवावस्था के फेर के फेरे में आकर कुछ कुछ ही शुष्कयत्रों को तावत्काल अपने साथ मिला, कल स्मृतिमात्र रह गये और रह जाते हैं, यह क्षुद्र वात्या पर्वतादि के साथ टक्कर खाकर नष्ट-भ्रष्ट हो ही गये, क्योंकि दृढमूल साहित्यवाली साहित्यमाला जो अपने साथ अपनी आकर्षण शक्ति से सवृक्षवन कानन पृथ्वी को सुरक्षित रखकर सृष्टि स्थिति में सहयोग देती है।

इसी साहित्य के आधार से युगान्तरों अवतारों आदि सर्व संसार का अस्तित्व है, अन्यथा क्या था, कब था, कैसे था, इस ऐतिह्य का कहनेवाला कहां उत्पन्न होगा? इस समय के पुरातत्त्वान्वेषी अभी भी ऐतिह्य सिद्ध पृथिवी लोक को पूर्णतया न जान पाये। इस इतिहास के अन्तर्गत वेद, पुराण, उपपुराण, आख्यायिका आख्यानादि सारा लेख है। इसमें यदि एक वार्तापर अविश्वास मात्र ही हो, तो फिर कुछ भी न था। तब राम-कृष्णादि का होना कोई स्वार्थ लोलुप कैसे सिद्ध करेगा, जब उसके पास इतिहास प्रमाण न हो।

'यथा पूर्वमकल्पयत्' इस दैवाज्ञा से इस युग के निर्मस्तिष्क जनों का जिह्वाग्रमन्त्र 'समय बदल गया' जो है, वह भी निर्मूल है, निराधार है, हां स्वार्थान्धों का मन्त्र फेर में पड़कर ज्ञान कर्मेन्द्रियों पर बनावटी कानून लागू करके स्वयं ही भ्रान्तिवश समय बदल गया देखता है, कहता भी है, उसके वैसे अनुयायी भी एवं रटते हैं। छः ऋतुओं में कोई परिवर्तन, सूर्योदयादि में पञ्चभूत प्रवाह में कोई परिवर्तन न हुआ, केवल पण्डित मान्यों को ही समय परिवर्तन हुआ, अस्तु शृगाल से सिंहादि का त्रास होना समयबाह्य है।

इन्हीं कुछ कारणों से आज के कुछ पूर्वदेव कभी कहते हैं, श्री जगद्गुरु भगवान् आदि शंकराचार्य जी इसी भौतिक शरीर से परम धाम पधारे हैं, अन्य कहते हैं, नहीं अमुक स्थान में अग्निसात् हो गये हैं, दूसरे दूसरी जगह के आग्रह करते हैं, तीसरे कहते हैं, नहीं जी मेरे ही घर में उनका निर्वाण हुआ है, अतः यहीं पर उनका स्मृति स्थान बनाया जाये, ताकि मेरे घर में ही वार्षिकोत्सव होगा, ऐसा धिक्कार पूर्ण स्वाच्छान्द्य कहां से इस स्वतन्त्रता समय में कोटिकोटि बलिदान देकर प्राप्त भया है, ऐसे देशद्रोही जातिविघातक धर्मध्वंसक क्या स्वतन्त्रता शत्रु नहीं तो मित्र कहां के? यह किस टुंडे स्मृति के आधार पर या किस कलिपुरुष के आज्ञापालन में वशीभूत होकर यह आकाश पुष्प दिखाते हैं।

अब और यह प्रमाण बहिर्भूत, शास्त्र बहिष्कृत, ऐतिह्यनिस्पर्श परमार्थ पर स्वार्थ परीक्षोत्तीर्णाभिलाषी, भगवान आदि शंकर के पांचधाम बतानेवाले, चौदह जुलाई का प्रलय बतानेवाले, रहस्यवादी जैसे जो चल निकले हैं, इन महात्माओं का जो भी इससे 5+5=15 सिद्ध करना हो, हमारी राय तथा दैवी आज्ञा से इनको और दूसरा कोई वाणिज्य करना अच्छा रहेगा, इस व्यवहार से कोई लाभ नहीं रहेगा, प्रत्युत मानहानि हस्तगत है।

यह बात तो सिद्ध है, जहां जहां भगवान शङ्कर अपनी यात्रा में पधारे हैं वहां वहां पर यदि भगवान का स्मृति चिन्ह रहे निर्विवाद है, प्रशंसनीय है। पर उनके बनाये हुए आम्नाय मठ धाम चार ही विद्यमान शास्त्र सिद्ध मन्तव्य हैं। दूसरा कोई स्थान इस आदर का आस्पद नही बनने का है। यदि किसी महापुरुष की इच्छा शङ्कराचार्य बनने की हो, तो वह 15 अगस्त कहने वालों की तरह किसी पर्वत पर गर्मवस्त्र पहनकर चले, और वहां जो कुछ बनना चाहता हो बने, तो सनातन् जगत् को जिनका सिद्धान्त 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' मत है कोई विवाद न होगा।

भारतवर्ष में विद्यमान ग्रन्थ श्री विद्यारण्य कृत श्री विद्यार्णव, मठाम्नाय, शङ्कर दिग्विजय, शिवरहस्य, गुरु परम्परा, आदि अनेकों ग्रन्थों से सर्वजगत्प्रसिद्ध-स्वकरकमल संपादित चारदिशाओं में चार मठ थे, हैं, और रहेगें। यह शास्त्र संमत-मर्यादा सिद्ध सिद्धान्त है। इसमें रागद्वेषादि स्पर्श नहीं। कोण दिशाओं अध ऊर्ध्व दिशाओं में यदि और छः पीठ मानकर रागादि स्वार्थधूनी रमाकर उपस्थान करना चाहें तो करें, स्वच्छन्दता का लक्षण है।

शारदा देश कश्मीर ऊर्ध्व बाहु होकर शास्त्रोक्तरीति मर्यादा गुर्वाज्ञा को व्यतिक्रम न करता हुआ मर्यादा को स्थिर रखने की इच्छा से अपना सिद्धान्त सनातन-धर्म बन्धुओं के सामने उपस्थित करता है कि आम्नाय चार दिशायें चार मठ चार जो परमादरणीय जगत प्रसिद्ध मौलिक हैं। पांचवां, छठा, सातवां पीठ बन्ध्यापुत्रवत् है, इति शम्।

डा० शिवनाथ शर्मा

14

'सहोदराःकुंकुम-केसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मयाप्ररोहः।'
कश्मीर—संस्कृत—साहित्य—सम्मेलनम्

क्रमांक : 595 दिनांक : 19—9—60

सेवायाम्

आदरणीयाः जे. वी. राजगोपाल शर्मणः मद्रास, श्रीमन्तः।

अस्माभिः भवत्पत्र मधिगतम्। श्री मज्जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य कृतानां ग्रन्थानाम् गम्भीराध्ययनेन ज्ञायते यत् तैः भारतवर्षे केवलं चत्वारो मठाः संस्थापिताः, न तु पञ्च। स्वार्थ परायणाः केचन जनाः 'पञ्चमठस्य' मिथ्या कल्पनां कुर्वन्ति। अतः 'श्री शङ्कराचार्य संस्थापिताश्चत्वार एव मठा' इति मे सम्मतिः॥

भवदीयः
बदरीनाथ शास्त्री।
(महामन्त्री, कश्मीर संस्कृत साहित्य संमेलनम्)

15

श्री

Sanskrit College,
1, Bankim Chatterjee Street,
Calcutta,
The 10—11—60

म० म० पं० श्रीकालीपद तर्काचार्य,
पं० श्रीमधुसूदन भट्टाचार्य, न्यायाचार्य, तर्कालंकार,
पं० श्रीतारानाथ, न्यायतर्क तीर्थ,
पं० श्रीअनन्तकुमार भट्टाचार्य, तर्कतीर्थ, आदि प्रकाण्ड विद्वान लिखते हैं :—

विदितमेवैतत् प्रायेण सर्व्वेषां विपश्चिदपश्चिमानां यत् पुराकिल काल विलास क्रमेण सर्वतो विपर्य्यस्तं सनातन वैदिकधर्मम् पुनः प्राक्तनीं प्रतिष्ठां लम्भयितुं शिवावतारः श्रीमद्गोविन्दभगवत्पाद शिष्यो जगद्गुरुर्भगवनाद्यशङ्कराचार्य्यः श्रीभारत भूखण्डस्य दक्षिणस्यां महीशूर प्रान्ते, पश्चिमायां द्वारकाप्रान्ते, पूर्वस्यां श्रीजगन्नाथ क्षेत्रे, तथोत्तरस्यां बदरिकाश्रम प्रान्ते, श्रौतचतुष्ट्वाद्यधिकारेण धर्म महापीठभूतान् चतुरो मठान् प्रत्यतिष्ठिपत्। तत्र तेनैव भगवता स्वप्रधानान्तरङ्गभूतानां विदित विभूति विशेषाणां 'सुरेश्वराचार्य' 'पद्मपादाचार्य्य' 'हस्तामलकाचार्य' 'तोटकाचार्याणां' मठाधीशत्वेन प्रकल्पितानां धर्मस्थितावाद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य प्रातिनिध्येन सुप्रसिद्धमजनिष्ट जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य पदवेद्यत्वम्। एव मेवोत्तरोत्तरं तत्पदाभिषिक्तानामपरेषामपि तत्तन्मठाधीशानांतच्चकास्ति।

केचित् पुनरामनन्ति-काञ्चीकामकोटि-मठोऽपि मूलशङ्कराचार्य भगवत्पाद प्रतिष्ठित इति कृत्वातन्मठाधीशा अपि जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य पदभाज इति। तत्र यावदस्माभिः सुदृढानी प्रमाणानि नोपलभ्यन्ते तावत्पूर्वोक्त मठचतुष्टयाधीशा एव जगद्गुरु शङ्कराचार्य्यत्वेनानुमन्यन्त इति।

16

Central Institute of Research
in Indigenous Systems of Medicine,
Jamnagar—India.
14th September, 1960

1718/60—61
14—9—60

My Dear Sri Sharma,

I have carefully gone through your article and am very glad to note that you are interested in Advaita Philosophy. I hold the same view said by you in your article, Bhagwan Adi Sankaracharya established only four Pithas. I have sent your article to the department of Indological Research, Sharada Peeth Academy, Dwarka.

Rest all O. K.

Your's sincerely,
R. R. Pathak,
(Director)

17

Pandit Sri Baldeva Upadhyaya, M. A., Sahityacharya, Ex-Professor of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi, writes on 29—9—60 :—

Dear Sharmaji,

In reply to your letters, I beg to state that I fully agree with your views endorsed by the Shastric authorities that the great Acharya established only four Mutts and Peethas for the propagation and progress of Sanatan Dharma. The idea of a fith Math at Kamakoti appears to be a later concoction made by some interested persons.

In my standard book in Hindi on the life and teachings of Acharya Sankar, I have given the history of all the five peethas, but I still believe that the original establishments were four and four only.

(संपादकीय नोट—आचार्य बलदेव उपाध्यायजी काशीधाम के प्रकान्ड विद्वानों में एक गिने जाते हैं। आपकी विद्वत्ता पूर्व तथा पाश्चात्य दर्शन शास्त्रों में अपार है। आपके रचित ग्रन्थ अनेक है :—आर्य संस्कृति, वैदिकसाहित्य और संस्कृती, भारतीय दर्शन, संस्कृत साहित्य का इतिहास, व्रत चन्द्रिका, निबन्ध चन्द्रिका, वैदिक कहानियां, बौद्ध दर्शन मीमांसा, भागवत संप्रदाय, शङ्कराचार्य, आचार्य सायण और माधव, भारतीय साहित्य शास्त्र, काव्यानुशीलन, संस्कृत

आलोचना, माधवीय शङ्करदिग्विजय का हिन्दी अनुवाद, इत्यादि। माधवाचार्य रचित शङ्करदिग्विजय का हिन्दी अनुवाद पुस्तक में आपने कांची कामकोटि पीठ के स्वरचित पुस्तकों तथा मठ के प्रचारों का विवरण देते हुए अन्त में आप लिखते हैं–'इस विषय की विशेष छानबीन नितान्त आवश्यक है।' इससे मालूम होता है कि आचार्य बलदेव उपाध्यायजी कामकोटि पीठ के स्वरचित एकाङ्गि प्रचारों को मानमे तैयार नहीं हैं। 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक कामकोटि पीठ के मठ विषयों की छानबीन दृष्टी से ही लिखा गया है और सिद्ध किया गया है कि यह मठ श्र.आदिशङ्कराचार्य से न प्रतिष्ठित, न अधिष्ठित तथा न अविच्छिन्न साक्षात् गुरु परम्परा है। आचार्यजी से रचित 'शङ्कराचार्य' पुस्तक पृ॰ 190 में आचार्यजी लिखते हैं 'यद्यपि कांची पीठवाले अपने मत के समर्थन में अनेक प्रमाण देते हैं परन्तु इन प्रमाणों के विषय में इतना ही कहना पडता है कि वे सब एकाङ्गि हैं तथा उनका समर्थन किसी अन्य प्रमाण से नहीं होता।'

18

Prof. Madhav Ramachandra Oak,
M. A. (Philosophy), M. A. (English)

Indian Institute of Philosophy,
Amalner (East Khandesh,
Maharashtra) 3—10—60

'... ... ... I myself had an occassion to hear the views of H. H. Jagadguru Sri Sankaracharya Maharaj of Shree Sharada Peeth, Dwarka, in April last. I am fully convinced and gladly support your view that Sri Adi Sankaracharya established four mutts only, and the contention of Kumbakonam mutt as the chief mutt and as founded by Sri Adi Sankaracharya is baseless, as also their claim that Sri Adi Sankar's Niryan took place at Kanchi is without foundation and it is certain that he went to Kailas near Badri-Kedar.

I had myself gone on pilgrimage to Kedarnath and Badrinath in 1924 and again in 1939. On both the trips I was shown the cave like Shrine where Sri Adi Sankara went into Samadhi and at the instance of H. H. Jagadguru of Dwarka the chief minister of U. P., Dr. Sampurnanand has ordered the Chief Engineer of U. P., to build a strong memorial shrine, which will withstand the winter snow-fall, to mark the spot where Sri Adi Sankara went to Kailasa. I trust they are also marking the place with a marble tablet with an inscription to guide the devout pilgrims and convince one and all about the right place.

I am also very keen to establish truth beyond doubt and support your effort to contradict the spurious claims made by the Kumbakonam Mutt. I congratulate you on your devout undertaking for the sake of confirming our holy tradition.

I wish you all success.

Thanking you.

P. S. My friend and colleague—Pandit Atmaram Shastri Jere (Nyaya and Vedanta) of our Institute—is glad to confirm my views and is glad to support you in your efforts in this cause. He is a very learned Shastri and I am very glad to add the weight of his consent and support to my views expressed above.

19

पं. श्री त्रिलोकनाथ मिश्र जी, (शास्त्री), विद्याविभूषण, मी. रत्न, व्या. का. तीर्थ, साहित्यमणि, प्रिन्सपाल म. म. ल. विद्यापीठ, लोहना, (राज-दरभंगा), ता. 12—3—1935 को लिखते हैं :—

समालोचनार्थं मदन्तिके प्रेषितां श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ नामिकां पुस्तिका महमादितोऽवालोकयम्।

श्री मदादिजगद्गुरु स्थापित मठ चतुष्टय सम्बन्धिनमत्रत्यं विमर्शमक्षरश इतिहाससाक्षिकं शिरसाश्लाघे।

यतो जगद्गुरु श्रीमच्छङ्करमठनिर्णयाय भारत जगन्मान्यौ मठाम्नाय—शङ्करदिग्विजयावेव व्यापकतया प्रामाण्ये प्रभवतो न च तयोः शृङ्गेरी—द्वारका—गोवर्द्धन—ज्योतिर्मठ व्यतिरिक्तोऽपि मठः श्रीमदादि भगवच्छङ्करपाद प्रतिष्ठापित इत्युल्लिखितमस्ति न चैतद्विषये ग्रन्थान्तरं भारतजगतोऽभिमतं न वा जगदनभिमता जगद्गुरुता सम्पत्तुमर्हतीति कांची कामकोटि कुम्भकोण मठो न भगवच्छङ्कराधिष्ठितो नापि वर्त्तमानस्तदधिपतिर्जगद्गुरुता मेतावताधिकर्त्तुम्प्रभवति मस्करि योग्यतयेति तु विभिन्नः पन्थाः।

वस्तुतस्तु संसार ममुमसारमपहाय निःश्रेयसाय चतुर्थमाश्रममधिष्ठितस्य प्रतिष्ठितस्य सन्न्यासयोग्यतामुपेयुषो विदुषो 'जगद्गुरुरहमेवास्मो'—त्यहङ्कारावलम्बनं कारावलम्बनमिति सर्वतस्त्रपाकरम्प्रतिभाति तस्मादस्माकं धर्मे सङ्कटे निकटे भविष्यति विकटेन किं भविष्यति मिथ्याडम्बरेणैवमादिनेति विचार्य सनातन धर्मावलम्बिनां समेषामेषा पुस्तिका सर्वथैवादरणीयेति परामृशति।

20

पं. श्री रेवाशङ्कर मेघजी शास्त्री, अध्यापक, डी. एल. संस्कृत पाठशाला, बम्बई 4, ताः 15-3-1935 को, लिखते हैं :—

आद्य शङ्कराचार्य स्थापित केवल चार ही मठ हैं।
मठाम्नाय सेतु के 39 वें श्लोक में—

'मठाश्चत्वार आचार्य्याश्चत्वारश्च धुरन्धराः।
सम्प्रदायाश्चत्वार एषा धर्मव्यवस्थितिः॥'

इस श्लोक में चार आचार्य्य, चार मठ तथा चार सम्प्रदायाचार्य्य ऐसी धर्म व्यवस्था कही है। सर्व पीठों के मठाम्नायों में केवल चार ही मठ मुद्रित देखे जाते हैं। पञ्चम का उल्लेख नहीं मिलता। यह एक नवीन ही मठ का सम्प्रदाय है। उनके ग्रन्थ भी सर्वमान्य नहीं हैं।

कांची मठवाले का आम्नाय—'मौलाम्नाय, कामकोटिपीठ, शारदा मठ, आचार्य श्री शङ्कर भगवत्पाद, क्षेत्र कांची, तीर्थ पंपासर, देव एकाम्रनाथ, शक्ति कामकोटि, वेद ऋक, सम्प्रदाय मिथ्यावार, सन्यास नाम इन्द्र सरस्वती, सत्य ब्रह्मचारी, तथा महावाक्य ॐतत्सत,' मानते हैं। परन्तु इसमें शारदा मठ द्वारका और ऋग्वेद जगन्नाथ का है। श्रृङ्गेरी मठ के मठाम्नाय में :—

'चतुर्दिक्षु प्रसिद्धासु प्रसिद्ध्यर्थं स्वनामतः।
चतुरोऽथ मठान्कृत्वा शिष्यान् संस्थापयद् विभुः॥'

इसमें भी चार ही शिष्यों के लिये चार दिशा में चार मठ स्थापना करने का लिखा है। पञ्चम कोई मुख्य दिशा ही नहीं कि जिसमें अभिनव मौलाम्नाय भगवत्पाद ने स्थापित किया हो। और न तो भगवत्पाद प्रणति किसी ग्रन्थ में उसका उल्लेख ही मिलता है। और अन्य मठाम्नाय, विमर्शन, विश्वेश्वर स्मृति, यतिधर्मनिर्णय, यतिधर्म-संग्रह, यतिधर्मप्रकाशिका में मौलाम्नाय होने का आधार नहीं मिलता। प्रत्युत वे सर्वमान्य ग्रन्थों में चार हीं का नाम उपलब्ध होता है।

आनन्दगिरि के शङ्करदिग्विजय में आचार्य का निर्याण कांचीवरम (कांची) में लिखा है। और शङ्कर-दिग्विजय नामक मुद्रित तथा अमुद्रित ग्रन्थों में हिमालय में ही निर्याण लिखा है। आचार्य का बद्रिकाश्रम में शास्त्राभ्यास, काशी में भाष्य रचना, तदनन्तर दिग्विजय तथा अन्त में श्रृङ्गेरी में स्थाई निवास और बद्रिकाश्रम में निर्याण हुआ, यह तो सर्वसम्मत बातें हैं।

मद्रास के नारायण शास्त्री प्रभृति दो शङ्कराचार्य होने की कल्पना करते हैं। एक प्राचीन और दूसरे अभिनव शङ्कराचार्य जो कांची उर्फ कुम्भकोणम् मठ की गद्दी पर अडतीसवें स्वामी हैं। परन्तु उसका भी अन्य मान्य ग्रन्थों का आधार नहीं है।

कांची मठाधीश अपने को प्राचीन मानते हैं। लेकिन अब तक प्राचीन प्रमाण दिखाते नहीं।

श्रृङ्गेरी, कांची और द्वारका ये तीनों मठवाले सुरेश्वराचार्य को अपने मठ के प्रथमाचार्य के शिष्याचार्य मानते हैं। कांची मठवाले आद्यशङ्कराचार्य को 1500 वर्ष पूर्व हटाके सुरेश्वराचार्य को 70 वर्ष देकर पीछे विद्यातीर्थ पर्य्यन्त 50 गुरु याने श्रृङ्गेरी की अपेक्षा 40 नाम अधिक देते हैं। कांचीवाले कांचीमठ कि मान्य पुण्यश्लोकमंजरी में 'तस्यादेशेन कांच्याभवसदब्दसमाः सप्ततिं कामपीठे' ऐसा सुरेश्वराचार्य विषयक उल्लेख देते हैं। परन्तु यह ग्रंथ अन्य चार पीठस्थों को और मान्य संन्यासी और पन्डितगण को मान्य नहीं है।

कांचीमठवाले आचार्य का निर्याण कांची में कहकर वहां उनकी समाधि है ऐसा कहते हैं परन्तु श्रृंगेरी, द्वारका वगैरह अन्य सर्व आचार्यादि हिमालय में ही निर्याण बताते हैं।

मुझे तो यह सत्य प्रतीत होता है कि सुरेश्वराचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी न होने से उनको सर्व पीठों के सबके ऊपर निरीक्षक आद्याचार्य ने किया होगा।

कामकोटि पीठ के सम्बन्ध में सदाशिवब्रह्मेन्द्र स्वामी ने 'जगद्गुरुरत्नमालास्तव' नामक एक ग्रंथ 17 वीं सदि में लिखा है। और उसके ऊपर आत्मबोधेन्द्र सरस्वती ने टीका की है। लेकिन यह कितना विश्वसनीय है सो हम कह नहीं सकते।

मठाम्नायसेतु नामक 63 श्लोक का एक पुस्तक मुद्रित मिलती है और उसके अन्त में 'श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकर भगवत्कृतौ मठाम्नायाश्चत्वारः समाप्ताः' ऐसा लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि चार पृथक पृथक मठाम्नायों का यह एकत्र संकलन किया हुआ सेतु है। उसमें चारों के पृथक पृथक देश विभाग बताया है। और 'परस्पर विभागेतु न प्रवेशः कदाचन'—अन्यान्य के देश में उनकी बिना आज्ञा जाने की मना लिखी है। कांचीवाले मौलाम्नाय मानते हैं लेकिन वे कभी और देशों में सर्वोपरिसत्ता से भ्रमणार्थ निकले हों और सबने उनका आधिपत्य मान्य किया हो ऐसी साक्षी कोई भी इतिहास देता नहीं।

द्वारका का—'सआत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो' (सामवेदीय छांदोग्य;) गोवर्धन का—'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऋग्वेदीय ऐतरेय); ज्योतिर्मठ का—'अयमात्मा ब्रह्म' (अथर्ववेदी मांडुक्य); शृंगेरी का—'अहंब्रह्मास्मि' (यजुर्वेदी बृहदारण्यक) ऐसा आदर्शभूत महावाक्य वेदादि में प्रमाण है। लेकिन 'ॐ तत्सत्' महावाक्य में कोई वेदादिका प्रमाण नहीं मिलता।

किम्बहुना आद्यशङ्कराचार्य ने अपने लिये कहीं भी गृह वा मठ बांधा था ऐसा प्रमाण कहीं भी नहीं मिलता। परन्तु उनके नाम से आज बहुत से ग्रामों में नवीन मठ स्थापित हुए हैं। ऐसा ही कांची का भी हुआ है।

'तीर्थाश्रम वनारण्य गिरिपर्वत सागराः।
सरस्वती भारती च पुरी नामानि दशैवहि'॥

इस श्लोक में सन्यासी का 'इन्द्र सरस्वती' नामक 11 वां नाम कहीं भी नहीं दिया। लोक में भी दस नामी सन्यासी ही कहे जाते हैं।

काशी के प्राचीन 80 विद्वानों ने 48 वर्ष पूर्व में भी चार ही मठ को स्वीकार किये हैं और उन्हीं प्रसिद्ध पण्डितों के आधुनिक शिष्यगण पण्डित लोग भी प्रायः पञ्चम मठ को स्वीकार नहीं करते। क्यों कि किसी भी प्राचीन प्रामाणिक पुस्तकों से यह बात सिद्ध करना असम्भव ही है।

साठ वर्ष पूर्व स्वर्गीय म. म. कोक्कंड वेंकट रत्नं पंतुलु ने भी एक पुस्तक इनके मठ के विमर्शन में लिखा था। पचास वर्ष पूर्व कुम्भकोण के भट्टश्रीनारायण शास्त्री ने भी एक विमर्शन लिखा था।

कांची पीठ का तीन चार जगह पर स्थानान्तर भी हुआ है वह भी शास्त्र विरुद्ध है। इन्द्र सम्प्रदायवर्ती सुरेश्वर को कोई भी मान्य नहीं करते।

अन्त में मेरी सम्मति तो यह है कि पञ्चम मौलाम्नाय पीठ आद्य शङ्कराचार्य स्थापित नहीं है। और पञ्चम मठ मनाना भी प्राचीन सर्वमान्य विश्वसनीय ग्रन्थों, विद्वानों तथा सन्यासियों का तथा चार प्रसिद्ध आचार्यों का अपमान करने के बराबर है। अतः 'श्रीमद् जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक पुस्तक में लिखी हुई व्यवस्था में मैं सम्मती देता हूं।

21

महाविद्वान ज्योतिषरत्नाकर महामहोपाध्याय श्रीशिवसुब्रह्मण्य राजयोगी सिद्धान्ती शिवशङ्कर शास्त्री, कल्याणपुरी, 18—3—35 को लिखते हैं—

भो भो लोकोपकृतिनिपुणाः सत्कर्म प्रवणाः महाशयाः श्रीमद्भिर्भवद्भिः सविश्वासं संप्रेषितं श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श प्रथम भाग मद्राक्षम। तद्विचारे मम सम्मतिरीदृषि वर्तते—यथाहि—

श्रीकाशी वास्तव्यशालिभिः सुकृतात्मामिः पदवाक्य प्रमाणज्ञैः परमहंसैः परोपकारप्रवणैः गृहमेदिभिः लोकज्ञानकोविदैर्महाजनैस्साकं सविचारं प्रकटितः शाङ्करमठ विमर्श प्रथम भागोयं सर्वैरादरणीयः, सरसैः प्रशंसनीयः, सद्भिस्संमाननीयः, सविवेकैः पर्यालोचनीयः, सधनैस्समुतेजनीयः, सतर्कयुक्तिमद्भिर्मंडनीयः, सचतुराम्नाय मठाभिमानैस्संरक्षणीयः सनियमैर्यतिपुङ्गवै रभिनन्दनीयः साक्षिवत्तटस्थै विश्वसनीयः स स्दाचारै रविस्मरणीयः, सत्कविभिस्सुश्लोकनीयश्चेति घंटाघोषमुद्घोषयामि।

आदिशङ्कर भगवत्पादायार्यैः प्रसिद्धाः प्रतिस्थापिताः वर्णाश्रमधर्मविचारदक्षाः जगद्गुरुमठ संज्ञिकाः चतुर्दिक्षु देदीप्यमानाः चत्वारएव प्रमाण पदवीं गताः प्रकाशन्ते। अप्रमाण पदवीमारूढस्य कुम्भकोणमठाभासस्य मूलंतुमृग्यमेव। जगत्ययमपिचैन्द्रजालिक गंधर्वनगर सदृशोभाति। कलावस्मिन् सर्वेपिजगद्गुरवः स्वयमाचार्यपुरुषाः सर्वज्ञाः प्रचरंति। तेषामेकतमोस्तु यतिवेषतः काषायदण्ड मात्रेण पामरैःपूज्योप्यस्तु। न दोषः। न कापि हानिः। न ममा मर्षामि निवेशः।

22

श्री भवरञ्जन तर्कतीर्थ देव शर्म्मा, रंगपुर से 8—12—1941 के पत्र में लिखते हैं :—
महानुभावाः,

भवत् प्रेषिता 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शः' नामधेया पुस्तिका मया दृष्टा। पूज्यतमानां भवतां प्रतिपाद विषयें ममापि सर्वथा सम्मतिरस्तीत्यलं पल्लवितेन।

23

कलकत्ता, 25—3—35

समुचितेयं सिद्धान्त सिद्धा मानार्हा लोकप्रिया शङ्कर कीर्ति रक्षिणी पुण्यमयी बहुप्रयासापेक्षिणी व्यस्येत्यवलोकित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्शः।'

विश्वनाथ त्रिपाठी,

व्य. सा. योगाचार्यः, काव्यतीर्थ, हिन्दी साहित्यरत्नः, R. D. S. विद्यालयीय प्रधानाध्यापकः, म. पो. वरहरा, आरा.

24

मेरठ 24—3—35

श्री मान्यमहोदया:

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य प्रतिष्ठापिताः शृङ्गेरी, द्वारका, गोवर्धन; ज्योतिर्मठाभिधानाश्चत्वार एव मठाः प्रामाणिक ग्रन्थेषूपलभ्यन्ते। न पञ्चम इति प्रमाणयति।

छोटेलाल पाण्डेयः

व्याकरण, साहित्याचार्य्यः, शास्त्री, काव्य तीर्थ, प्रधानाध्यापकः, श्री विल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ.

25

जयपुरसिटी 25—3—35

मान्याः विविधानवद्यविद्याविद्योतितान्तकरणाः सुरभारती प्रणयिनो महाभागाः ! सप्रश्रयन्निवेद्यते।

श्री जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शाख्यं पुस्तकं सम्प्राप्य समाकलय्य च तद्गत विषय कलापमधस्तनं सम्मति पचस्सादर मुपायनी कुर्वे।

'पुरातनैरविकल शास्त्रतत्वावगाहनविमल प्रतिभा चातुरीचणैः विद्वन्मूर्धन्यैस्सम्मानितामिमां व्यवस्थापितो ऽन्यत्र प्रतिहताशेषशेमुषीसार प्रसारस्सम्मनुते—साहित्याचार्य्यो दयारामशास्त्री श्री दादू महाविद्यालयाध्यापको जयपुरम (राजपूताना)।'

आशासे द्वितीय भागेन नूनं सम्भावनीयो ऽयंजनः।

26

महाशयाः प्राप्तो मठविमर्श नामाग्रन्थः। काशीस्थैः पुरातनै रघुनातनैश्चनिर्मत्सरैर्विपश्चिद्भिस्सविमर्शन्निर्णीतो ऽयं सिद्धान्तस्समीचीन एव। महापण्डित सम्प्रतिपन्नः कामकोटिमठो ऽपिनाधुना कल्पितः दक्षिणाम्नायान्तर्भूत एव सन्। केनापि हेतुना पुरै व विभक्तो भवितुमर्हति। शृङ्गेर्य्यादि सुप्रसिद्ध मठान्तरापेक्षया उत्कर्षस्तु न विचार सह इत्यस्मदाशयः। इत्थंविज्ञापयति।

पं. मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री

महाग्निचित्। 26-3-35 वेजवाडा।

27

30—3—35

राजकीय सं. म. विद्यालय, मुजफ्फरपुर

श्री मन्तो महाशयाः

पीठ चतुष्टयमेव प्रत्याशं शारदाऽऽदयाख्यम्।
भगवच्छङ्करचरणैःस्थापितमिति मानकूटेन।
निर्धारयति प्राच्य-प्रज्ञाभृत्सम्मतीः कलयन्।
मिथिलाऽभिजनः कश्चिद् 'बदरीनाथो' महिविबुधः।

इति भवदीयो

बदरीनाथ (झा) शर्म्मा

28

केरळ देशीय श्रीमद्विद्याधिराज पौत्राः श्रीमच्छिवगुरोस्तनूजाः श्रीमन्मथ पण्डित तनयागर्भजाः श्री 1008 श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य अद्वैतसिद्धान्तं दिक्षुविदिक्षुचप्रचारयन्तः पश्चिमस्यां ककुभि द्वारकायां कालिकामठम्, पूर्वस्यामाशाया पुर्य्यां गोवर्द्धनमठम्, उत्तरस्यां हरिति बदरिकाश्रमे श्री मठम्, दक्षिणस्यां काष्ठायाम् शृङ्गेर्यां शारदामठञ्च संस्थापितवन्तः नान्यत्रदिशिस्थाने वेतरमठमिति समेषां विदुषामविचिकित्सितंराद्धान्तमेव सम्मनुते।

अमूमेवव्यवस्थामूरीकरोति विठ्ठलनाथ दीक्षितः,
श्रीमहाराणा संस्कृत कालेजाध्यापकः
उदयपुर (मेवाड), 3—4—35

रामचन्द्रमिश्रः व्याकरणाचार्य्यः,
प्रिन्सपल श्रीमहाराणा संस्कृत कालेज (उदयपुर, मेवाड)
चैतकृष्णामावास्या 1991 बुधे 3-4-35

29

विदाङ्कुर्वन्तु प्रिय पन्डित महाशयाः यत् श्रीमदादिशङ्करभगवत्पादाचार्य्याश्चतुरो मठानेव चतुर्षु दिक्षु संस्थाप्य तेषु मठेषु स्वकीय प्रधान शिष्यांश्चतुरः संस्थाप्य चतुरस्सम्प्रदायांश्च प्रवर्तयामासुः। ऐते चत्वार एव चातुर्वर्ण्याश्रम धर्म्मव्यवस्थां दिग्विजयञ्च कर्त्तुमधिकारिणः, एतदतिरिक्ता वर्णाश्रम धर्मादि विचारपूर्वक निर्णय करणे दिग्विजयकरणे चानधिकारिण इत्यादि विशिष्टार्थस्य विनिर्णायकः श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठविमर्शनामकः प्रथमोभागः सन्प्रेषितो भवद्भिरस्माभिरासादितः। तदत्रविनिर्णीतेऽर्थे तस्य द्वितीय भाग प्रकाश कृत्ये च सम्मतिरस्माकम् विजानीर्युभवन्त इति यथा योग्यसम्मान सहकृताभवद्भ्यो विज्ञप्तिरितिशमम्। 1935 अब्देदिसम्बरस्य 28 अष्टाविंश दिवसीया लिपिरियम्।

कामरूप प्रदेश वास्तव्यानां शारदा चतुष्पटी अध्यापकानाम्, स्मृति व्याकरण तीर्थोपाह्वानां, श्रीशम्भुनाथ शास्त्रिणाम्।

30

पं. श्री गोपाल चन्द्र शर्म्मा, स्मृति व्याकरणतर्कतीर्थ व स्मृति न्यायवेदान्तरत्न, कैठालकुचिग्राम, बनग्राम, कामरूप, से 11—4—1935 के पत्रमें लिखते हैं :—

॥ श्री श्री दुर्गाशरणम् ॥

शङ्कराचार्य पादाब्जम् नत्वा गोपाल शर्मना।
संक्षेपान्डायते लीला तस्य कलिमुनेर्म्मुदा ॥ 1 ॥
शांकरमठ विमर्श ग्रंथेणानेन भू गुरोः।
लोकानां निश्चितं भद्रं सर्वेषां सम्भविष्यति ॥ 2 ॥

इह खलु सकललोक हितावतीर्णः परमकारुणिकः साक्षात् शङ्कर इवादिमः शङ्कराचार्यो दाक्षिणात्यप्रदेशान्तः पति केरलासम्मसथे विमलागर्भे शिवगुरोरौरवेन 788 कृष्टाब्दीय वैशाखमासे शुक्लदशम्यांतिथौ प्रादुर्वभूव। नारायण

स्वांशभूतमादि भरतमिव शङ्कराशभूतं शंकराचार्यं तं कलिमुनि प्रवरं मार्कण्डेयमिव। पिता पंचमवर्षे यथाशास्त्रमुपनिनाय। तदनन्तरं स किल जाप्यमन्त्रं जपन्नष्टमवर्षे भिक्षाश्रमं गृहीत्वा पंचदश वर्षं यावद्बदरिकाश्रम कृतवासो वेदान्तादीनां षोडशभाष्य नारायण मठ प्रतिष्ठां ज्योतिर्मठ निर्माणं च चकार। ततस्तु षोडशेवर्षे काशीमागत्य सद्विजः कैवल्यपद्म प्रदर्शिनीं निर्मलां ब्रह्मविद्यां समुपलभ्य लोकरक्षायै प्रचारयामास। तत्र तावद् बौद्धधर्म खण्डनपूर्वक ब्राह्मण्य धर्मस्य पुनः संस्थापनार्थं समुपास्थितानां कवीनां मध्ये कार्तिकांशसम्भवः 'कुमारिलभट्टः', महादेवांशभूतः 'शङ्कराचार्यपाद' श्च श्रेष्ठतमौ। विविधा वितन्डादि वाक्यजालेनापि पराभवितुमक्षमः स्वनामधन्यो मन्डनमिश्रो माहेष्वति ग्रामवास्तव्यः शंकराचार्यस्य प्रथमशिष्य आसीत्। तत सहधर्म्मिणी पतिपराभवमसहमाना श्री मति उभयभारती ब्रह्मज्ञानप्रवीरस्य बाल्यब्रह्मचारिणो रतिशास्त्रानभिज्ञस्य शङ्कराचार्यस्य पराभवकामासती तं कामशास्त्र विषयकमनुयोगमेकं पप्रच्छ। तमाकर्ण्योभयभारत्या अभिप्रायज्ञः स शिवगुरुतनयो महामुनिः शङ्कराचार्यो मृगयागतस्य कस्यचिद्राज्ञोमृतदेहे सहसा प्रविवेश। तत्र तावद्मासमेक मुषित्वा पुनर्निष्क्रान्तो विमलासुन्धः शङ्कराचार्यो द्वारकामागत्य जैनधर्म खण्डनपुरस्सरं तस्यां शारदामठं स्थापयामास। ततः सप्त दशाब्दे महीपुरमागत्या द्वैतवाद प्रवर्तकः शङ्कराचार्यस्तत्र शृङ्गेरी मठं स्थापयत्। 807 कृष्टाब्दे पुनरुज्जयिनी राजेन सुधन्वना गुरुत्वेनपरिकल्पितो जगद्गुरुः 808 कृष्टाब्दे दिग्विजययात्रां कृतवान्। तस्मिन्नेवकाले तोटकाचार्य हस्तामलकाचार्य शिष्यौ बभूवतुः। 815 कृष्टाब्दे श्री क्षेत्रे दारुमूर्तिस्थापनान्तरं गोवर्द्धन मठ प्रतिष्ठा चकार सः। दिग्विजयावसरे क्षिति गुरुः शङ्कराचार्यः काश्मीरमन्डलं यात्वातत्रत्य शारदापीठं प्राप। तमारोढुमाशङ्कितो जगद्गुरुरारोहणानुकूलां दैववाणीमेकां सहसा सुश्राव। तत्र च शारदापीठे शंकराचार्य पराभवं कामयद्भिरन्यैर्बहुभिः कुतार्किभिः सुधीभिरादिरसात्मक काव्यरचनार्थं नियोजित आदिरसानभिज्ञःशिवांशनीयः शङ्कराचार्यश्चतुर्दिक्षु बन्धुभिः संवेष्ट्यरोरुद्यमानस्य मृतामरुराजस्य शरीरं योगबलेन सहसा प्रविश्य तत्राल्पकाले आदिरसंभूज्ञानश्च बहिर्भूय तत्क्षणादेव मृतराजनाम्ना 'अमरुशतक' मिश्र ग्रन्थमादि रसमयं निर्म्ममे। तदनु 820 कृष्टाब्दे स्थितधीःशङ्कराचार्यः स्वशरीरस्य ब्रह्मलयं चकार। तस्य जीवन कालो द्वात्रिंशत्वत्सर मात्रं। एवम्भूतस्या द्वैतमतप्रचारकस्य कलिमुनि कुलतिलकस्य लीला सम्मलितः। 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठविमर्शक' नामको ग्रन्थः पुरा केनापि न निर्मितः। साम्प्रतं, तमवलोक्य परमानन्द सन्दोहसमन्विता वयम्। अनेन निश्चितं साम्प्रतिकानां महानुपकारः सम्भविष्यतीति नास्ति सन्देहलेशावसरः। अतो द्वितीयभागेनापि लोकानां परमोपकारो भविष्यतीत्याशाम्महे। विश्वनाथकृपया अस्मिन् सदनुष्ठाने समुद्युक्ता भवन्तो जगतिधन्य एवेत्यलंवाक्पल्लवितेनेति।
11—4—1935 कृष्टाब्दीय लिपिरियम्॥

31

महोदयाः !

श्रीमद्भिः प्रेषितं श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शाख्यं ग्रन्थमपश्याम पठामच सादरमान्त ग्रन्थम्। निश्चप्रचमिदं विपश्चित्प्रकाण्डानां यतश्रीमदादि भगवत्पादाचार्याश्चतुर्षुदिक्षु चतुरो मठान् चीक्लपन्निति, तेषु मठेषु प्राथमिकः प्राच्य भागे गोवर्धनमठः द्वैतीयिकः प्रतीच्य भागे द्वारका मठः तार्तीयिक उत्तर भागे बदरिकाश्रम मठः तुरीयो दक्षिणस्यांदिशिश्रृङ्गगिरि शारदा मठ इति। तत्र तत्र मठेषु सुरेश्वराचार्यं प्रमुखान्स्वशिष्यान्श्चतुरान् चतुरो संस्थापयामासुरिति च।

एवं सति श्रीकाञ्ची कामकोटि पीठाध्यक्षः प्रथमतः कांचीकामकोटिपीठ एवाद्यशङ्कर भगवत्पादैर्निरमायि अन्ये च श्रृङ्गगिरिप्रभृतयश्चत्वार पीठास्तदुप जीविनः। आचार्यपादा अपि अन्ते काञ्ची नगर्यामेव तनुमत्यजुः इति स्वीय काञ्ची पीठस्यौत्कर्ष्यापादनाय कान्श्चन आनन्दगिरि-शङ्करविजय प्रभृतीन् ग्रन्थान् संवादयन्ति, नते ग्रन्थाः प्रमाण कोटि

मधिरुहेयुः। किञ्च, ये च ग्रन्थास्सर्वजनीन प्रमाणानि न ते दार्ढ्यमुत्पादयेयुस्तेषां वादस्य। चेद्विचार सहाः प्रमाण ग्रन्था श्रीकांची कामकोटि पीठस्याद्यपीठत्वस्वीकारो गगनकुसुमायते। बहोः कालादारभ्यासेतुहिमवच्छैलं प्रसिद्धिमितां कामकोटि पीठ व्यतिरिक्तानां शृङ्गगिर्यादीनां चर्तुणां पीठानामाद्यपीठत्व प्रथांकोवा अन्यथयितुमीष्टे। एवञ्च शृङ्गगिरि, बदरिकाश्रम, गोवर्धन, द्वारकाख्य, पीठामेव श्रीशङ्कर भगवत्पादाचार्यानिमिमिरे। न कांची कामकोटि पीठमिति युक्तमुत्पश्यामः। अपि च इदानीन्तने काले पीठानां पौर्वापर्य रूपेण पीठाधिपतीनां आधिक्यानाधिक्य रूपेण च 'काक दन्त परिक्षा' कल्पेन विचारेण न किमपि प्रयोजनं पश्यामः। किन्तु नास्तिकवासनावासितेऽस्मिन्कठोरे काले वैदिकस्याद्वैत मतस्य प्रचारश्चेत् कुर्य्युः कारयेयुश्च श्रीपीठाधिपतयः अन्ये च महोदयाश्च कृतकृत्यामेवयुरित्यभिप्रैमः। एतादृश संदिग्धविषयेषु मोमुह्य मानानां जनानां याथार्थ्य प्रकटीकरणाय वृद्धश्रद्धानां भवताङ्कृते अतीवकृतज्ञतामाविष्करोमि।

इत्थम् वशंवदः
जनमंचि, शेषाद्रि शर्म्मा,
कडप्पा।

32

रुद्रवरम 11—4—35

मयैवमाशयः।

भवत्प्रेषितं 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शाख्य' ग्रन्थ मद्राक्षम् अवापञ्चामन्दानन्दम्। संसारवृक्षस्य परिसरे वर्तमानानां कामना प्रवणानाम्मादृक्षाणामन्तराशांकर प्रसादं संसारोत्तारो दुर्लभ इति निश्चप्रचम्। यद्यातस्संसार सागरं गोवत्सपदमविधायलङ्घयेम, तदुत्थापितानि गुरुस्थानानि भवदनुग्रहतस्सम्यग् ज्ञास्यामः। कतिचन कुहना सन्यासिन आगत्यशाङ्करपीठावान्तर पीठाधिपतयो वयमित्यजडानपि जनान्प्रतारयन्ति। अद्यप्रभृति पीठविवेकस्सुकरस्सर्वेषामिति मन्ये। अचिरादेव प्रकाशयिष्य मानो द्वितीय भागः पण्डित प्रकाण्डानां मनोमुद् भविष्यति इतिदतमेव लोकोपकारः क्रियतामिति संप्रार्थये।

न्यायविद्या प्रवीण, वाविलाल वेंकटेश्वर शास्त्री

33

महाशयाः।

भवद्भिः सम्पाद्य प्रकाशितस्य श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्शाख्य ग्रन्थस्य दर्शनभाग्यमद्यमे समजनि। चिरकालादारभ्यास्मद्देशे श्री शृङ्गगिर्य्यां शारदापीठः द्वारकायां कालिका पीठः बदरिकाश्रमे पूर्णगिरि पीठः जगन्नाथे विमला पीठः इत्यनुचान प्रथा मन्यथा कर्त्तुमुद्युत्कानां श्री कामकोटि पीठाधीश्वराणां कोलाहलमुपश्रुत्य मनसि विचारस्समजनि। अद्यत्वे श्री शृङ्गगिर्य्यादीनां चतुर्णाम् पीठानामेवाद्यशङ्कर भगवत्पादाचार्य संस्थापितत्वं, न कांची कामकोटि पीठस्येति चिरन्तनां प्रथांप्रकाशयितुमुद्युत्कानां भवतां ग्रन्थस्य दर्शनेनान्तरङ्गे सन्तोषस्समुद् भूत्। श्री शृङ्गगिर्यादीनां चतुर्णां पीठानामपेक्षया कांची कामकोटि पीठस्याद्यत्वं वा, श्रीशङ्कर भगवत्पादाचार्य स्थापितत्वं वा, न केनचित्प्रमाणेन सिध्यतीत्यस्मदाशयः। वादोऽयमसमीचीन अनवसर प्राप्त इत्यपि प्रतिभाति। श्री कांची कामकोटि पीठस्य श्री मदादि शङ्कराचार्यनिर्मितत्व प्रसाधनाय

श्री मदाचार्य्याः श्री कांची नगर्यामेव सिद्धिमगमन्निति स्वोत्केर व्याहतये दर्शिता आनन्दगिरीय शंकर दिग्विजयादिस्य क्लिष्टकल्पना गन्धर्व नगरायमाणेति सप्रमाणं वक्तुं पारयामि। आविष्करोमिचकृतज्ञतामस्मिन्विषये याथार्थ्यं प्रकाशनाय बद्धादराणां सत्यान्वेषण तत्पराणाम् भवतां कृते निवेदयामि च भावत्को यत्नस्सफलोनिरन्तरायं भवतिवति।

इत्थम् वशंवदः

जनमंचि वेंकट सुब्रह्मण्य शर्म्मा, काव्य पुराण तीर्थ, विद्वानत्रैलिङ्ग भाषापण्डितः, कडप्पा।

34

महाशयाः। 22-4-35

श्री मद्भिः प्रेषितं श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्शाख्यं ग्रन्थमपश्याम अपठाम च। अद्यत्वे श्री शृङ्गेर्यादीनां चतुर्णां पीठानामेव आद्यशङ्कर भगवत्पादाचार्य संस्थापितत्वं, न कांची कामकोटि पीठमठस्येति चिरन्तनांप्रथां प्रकाशयितुमुद्युक्तानां भवतां ग्रन्थस्य दर्शनेनाऽन्तरङ्गे सन्तोषस्समुदभूत्। श्री शृङ्गगिर्यादीनां चतुर्णां पीठानामपक्षेया श्री कांची कामकोटि पीठस्याद्यत्वं श्री शंकर भगवत्पादाचार्य संस्थापितत्वं वा, न केनचित्प्रमाणेन सिध्यतीत्यस्मदाशयः।

इत्थम्

श्री वरदा प्रसाद शर्म्मा, एम. ए., बी. एल.,

(Retired Sub-Judge, Bankura, Bengal)

35

24—4—35

महानुभावाः।

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्शोमयावलोकितः तेन शाङ्करदिग्विजयावलोकनेन चेत्थं मयानिरणायि, य'च्चत्वार एव मठा' इति समोदमामनुते शारदा भवन विद्यालय प्रधानाध्यापकः श्रीजगदीशझा शर्मा, नवानी।

36

पं. श्रीरामदेव त्रिपाठी, व्याकरण केसरी, प्रधानाध्यापक, आरा-बडहरा संस्कृत विद्यालय, नवानी-दरभंगा से 5—5—35 को लिखते हैं :—

"श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शः"

श्रीकाश्याः श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श नामकं पुस्तकम्प्रेषितंतदध्यक्षैरासादितं मयेति तत्र काशीस्थ विद्वद्वर्यैः बहुधा विचार्य्य समालोचितं निर्धारितं च। तथाप्यनुमति संग्रहाय मम समीपे प्रेषितमिदं विचारास्पदं नवेति। सन्देहास्पद पथमधिरोहति। तत्र तावत् जगद्गुरुणां श्रीशङ्कराचार्याणां पीठधिपतीनां पूज्यवर्याणामपि हा हन्त विवाद इति कलेः प्रभावः। यैस्तु भवगतासारजालं परित्यज्य व्रजद्भिर्विरलैः शमदमाद्युपासनया शुद्धधिषणैर्निरुद्धचित्तवृत्तिप्रवाहै

शुद्धाद्वैत समुपास्यते तेषामपिमहोपदेशकानां परस्परं विवाद इति। तत्र विवदनीय विषये पण्डितैरप्यनुमतिर्दीयेत-इत्युचितन्तप्रतिभाति। तथापि काशीस्थानामन्यदेशस्थानां च पण्डितप्रवराणां समालोचनी विषये विचारणीय विषये न स्वानुमति प्रदानेनात्मानम् पावयितुं स्वानुमतिं प्रदर्शयामीति धाष्टर्यं क्षन्तव्यं महार्घ्य कल्पैः विद्वद्वर्यैरिति।

तत्र तावत् पूज्यपादैः भगवच्छंकराचार्यैः प्रतिष्ठापिताश्चत्वार एव मठाः चतुष्कोणकल्पेषु विश्रुता विशुद्धा विमला जगदुपकाराय बहिष्करणीय बौद्धमत निष्कासनाय स्वीयामलसिद्धान्त प्रचाराय स्थापिताः श्रूयन्ते। शाङ्कर दिग्विजयादि—षूपलब्धेषूपलभ्यमानेषु च दृश्यन्ते प्रसिद्ध मठाधीशैरप्यनुमन्यन्ते श्रीकैलासवासि महामहिमशालि महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार शास्त्री प्रभृतिभिरपि निर्धारिताश्चत्वार एवमठाः प्राचीनाः भगवच्छंकराचार्यैः स्थापिता इति निश्चितमिति नाविदितं समालोचन कर्तॄणां विदुषां पन्डित प्रवराणामिति।

प्रथमं तावदस्मिन् विषये प्रश्नाः सम्भाव्यन्ते कतिपीठाः कुत्रस्थापिताः केन च स्थापिताः इति। श्रीकांच्यां कामकोटि पीठः शृंगगिर्यां शारदापीठः द्वारकायां कालिका पीठः बद्रीनारायण क्षेत्रे पूर्णगिरि पीठः जगन्नाथे विमला पीठ इति। ॐतत्सत्, अहंब्रह्मास्मि, तत्वमसि, अयमात्माब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्मेति मंत्राः क्रमशः पीठेषुपदिष्टाः तत्रान्तिमाश्चत्वारएवपीठाश्चतुर्षु मठेषु चतुर्भ्यो वेदेभ्य उद्धृत्य चत्वार एव मंत्राश्चतुष्कोणदेशीयेषु स्थापिता उपदिष्टाश्च। एतेषां चतुर्णां श्रीभगवत्पूज्यपादैः श्रीशङ्कराचार्यैः स्थापितत्वात् श्रीजगद्गुरुत्वम्। अन्तिमानां पीठाधिपतीनां तत्तदाधिष्ठितानां बोध्यमिति यावत्। एतेन प्रथमस्य कामकोटि पीठस्यार्वाचीनत्वम् बोध्यम्। श्री हाराणचन्द्रभट्टाचार्यस्य प्रश्नैर्निरुत्तरैश्च कामकोटि पीठस्य प्राचीनत्वे प्रमाणाभावाच्च। सुप्रसिद्धातिप्राचीन प्रतिष्ठित शृंगगिरि मठस्थाचार्यास्वीकृतत्वाच्च कामकोटि पीठस्य न प्राचीनत्वम् न वा भगवदाद्यशङ्कराचार्य स्थापितत्वम् बोध्यम्। एवं 1934 कृष्टाब्दे 30 सितम्बराख्य मासि काश्यां सुसम्पन्नायां सभायां कामकोटिपीठस्यार्वाचीनत्वेननिर्धारितत्वाच्च। कुम्भकोणमठीयानां इन्द्रसरस्वत्यादीनामुपाधीनामाधुनीकत्वमेवेति। एवमेव श्री जगद्गुरूपाधिविषयेऽपि साम्प्रतिकत्वमेव सिद्धम्। अत्रोपलब्धानि प्रमाणानि प्रासंगिकान्यधस्तनान्युपन्यस्यन्त इति। शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये—

दुर्वासः शापतो भूमौ जातां वाणीं विजित्यताम्।
अगस्त्य चरितेदेशे तुङ्गातीरे सुनिर्मले॥
पुण्यक्षेत्रे द्विजवरः स्थापयित्वा सुपूजय।
यत्रास्ते ऋष्य शृङ्गस्य महर्षेराश्रमोमहान्॥ इत्यादीनि

एतेन शारदा पीठस्य प्राथम्यमुक्तम्। शङ्करविजयविलासेच चतुर्विंश अष्टादश श्लोकादिभ्यस्तु—

वाग्देव्याः सविधेनित्यं गोपुराट्टाल शोभितम्।
श्रीमठं तत्रनिर्माय विद्यापीठ मचीक्लृपत्॥
चतुर्ष्वेकं वावदूकं सुरेशाचार्य मग्रिमम्।
ब्रह्मविद्या वरिष्ठं तं तत्पीठे विनिवेशयत्॥
तीर्थाश्रम वनारण्य गिरिपर्वत सागराः।
सरस्वती भारती च पुरीत्येते दशैवहि॥

एतेन वाणीस्थापनम् सुरेश्वराचार्याध्यक्षत्वञ्च निश्चितं भवति।

एवमेव मठाम्नायेऽपि-तुरीयो दक्षिणस्याञ्च शृङ्गेर्यां शारदा मठः इत्यादि वचनात् शारदा पीठस्य प्राधान्यम्। एतेन कामकोटि

पीठस्य तत्पीठाचार्यस्य प्राधान्यम् स्वीकुर्वन्तः परास्ता इति। अपिच मठाम्नाये—दिग्भागे पश्चिमे क्षेत्रम् द्वारिका कालिका मठः। द्वितीयः पूर्वदिग्भागे गोवर्धन मठः स्मृतः। उत्तरस्यां श्रीमठः स्यात् क्षेत्रेबदरिकाश्रमे। तुरीयो दक्षिणस्यांच श्रृंगेर्यो शारदा मठ—इत्यादि प्रामाण्यात् पारंपर्यतो जनश्रुतेश्च बहूनां विज्ञशिरोमणीनाम् निर्धारितत्वात् निर्णीतत्वाच्च। शारदा कालिका पुर्णगिरी विमला पीठानामेव भगवदाद्य शङ्कराचार्यस्थापितत्वम्। एतत्पीठाधिष्ठितानामेव श्रीजगद्गुरूपाधित्वमेतेषा-मेव प्राचीनत्वम् प्राधान्यञ्च बोध्यमिति। कामकोटिपीठस्यार्वाचीनत्वम् श्रीगुरुपाधित्वमेव बोध्यम्। अस्य च पूज्यत्वं मान्यत्वं श्रेष्ठत्वंचापह्रियते किन्तु प्राक्तन निर्धारित चतुर्मठापेक्षयार्वाचीनत्वमेवेति निश्चीयत इति।

37

महाशयाः। भवद्भिः प्रेषितं श्री शाङ्करमठ विमर्श नामकं पुस्तकम्मया सम्यगवलोकितम्। तत्र लिखितम् सर्वमपि सुष्टु प्रतिभाति, उररीकृतमेव खलु तत्रभवद्भिः कैलासचन्द्र भट्टाचार्य्य प्रभृतिभिः सर्वैरपि पण्डितैः 'श्रीमद्भगवच्छङ्कर-पादाः चतसृषु दिक्षु चतुरोमठान् संस्थापितवंत' इति, इदानीन्तनःयःकश्चन कांची कामकोटि पीठस्थः केनचित्कारणेन स्थान भ्रष्टतामापन्नः कुम्भकोणमधिवसन् 'अहमेव साक्षात् जगद्गुरु पीठस्थ इति कांची कामकोटि पीठमेव आचार्य स्थापितमिति च प्रलपन् अबुधान् वञ्चयन् इतस्ततः पर्यटतीति श्रूयते। तत्प्रलापास्तावदविचारित रमणीया इति विदांकुर्वन्तु सन्तः नक्वापि दृश्यते श्रूयते वा शङ्कर दिग्विजयादिषु ग्रन्थेषु कांची कामकोटिपीठमेकं शङ्करभगवत्पाद निर्मितमिति तस्मात् सर्वेरप्याकालयन्तु श्री मदाचार्य्य स्थापिताः श्रृंगेरी, द्वारका, ज्योर्तिमठ, गोवर्धन नामानः मठाश्चत्वार एवेतिशिवम्।

लेल्लपल्लि सत्यनारायण शास्त्रि,
उभय भाषाप्रवीण, कूचिपूडि 7—5—1935

38

पं. श्री सर्वेश्वर शर्म्मा, न्यायरत्न, तर्कतीर्थ, दलगोमा, विधुरपोस्ट, गोलपाडा से 29—5—1935 के दिन प्राप्त हुए पत्र में लिखते हैं :—

भो भो! विद्यातपो जोतिर्भिजगदलंकरिष्णवः।

श्री श्रीमत्पूज्यपाद भगवच्छंकराचार्य्या गुरु पादानां मठाश्चत्वार एवेतिशास्त्रैः किं वदन्त्या च वयं जानीमः।

पंचमठेति न श्रुति पथमगमन्। चत्वारश्च यथा वेदा मठाश्चत्वार एव हि। चतुर्दिक्षु दिग्विजयात् स्थापिता अभवन्पुरा। प्राप्तम्-एतदपर खंड पुस्तकमपि मुद्रयन्तु। अनुमोदते।

39

भो महाशयाः काशी क्षेत्रस्य यतिवृन्द पण्डित समूहाभ्यां निर्णयरचितं शाङ्करमठ विमर्श नामकं ग्रन्थ रत्नं अज्ञानां शंका दूरीकरण पटीयः पण्डितानामपूर्वानन्द करञ्च सत जेगीयते। बौद्ध मताद्यन्धतमसेन स्वस्वरूपावगमेऽ-शक्तान् जनन मरण प्रवाहरूपावर्त्ते बम्भ्रम्यमाणान् जीवानुद्दधीर्षु भगवान कैलासवासी पार्वती जानिः परमशिवः परमकारुण्येन

मनुष्यरूपेणावन्यामवतीर्य दुर्म्मतानि निर्म्मूल्याभूम्यान्निराटङ्कमद्वैत तत्साधनधर्म्मान्परिपालयितुं भरतखण्डे चतसृषु दिक्षु श्रृङ्गेरी, द्वारका, ज्योतिर्मठ (बद्री) जगन्नाथ (पुरी) नामकाश्चतुरोमठान् संस्थाप्य तत्तन्मठाधिपानादिश्य तैरनुमतो बदरिकाश्रमे श्री दत्तात्रेय हस्तमवलम्ब्य लीला मानुषशरीरं शिवरूपतया परावृत्य वृषभारूढः सन् पुनः कैलासमलञ्च कारेत्येव शिवपुराण, शिवरहस्य, सर्वज्ञमाधवाचार्या ऽऽरचित शङ्कर विजय ग्रन्थेषु विस्पष्टमागोपालं वेद्यतया विद्यमानमपि देदीप्य-माने मध्यन्दिने दिवाकरे खदोषेग कौशिक इव सूर्याविज्ञानरीत्येव अनिर्वचनीय अभिमानेन ब्रह्म श्री भट्ट श्री नारायण शास्त्री विरचितग्रंथ प्रतिपादितरीत्या काञ्चयां भगवत्पादाचार्यैरनिर्म्मिते पिमठे तैर्न्निर्म्मितत्वेन वदनं वन्ध्यापुत्रजन्मतुल्यमेव। अन्ये सर्वे मठाः उपरिनिर्दिष्ट श्रृङ्गेर्यादिक्षेत्रस्थ चतसृणां धर्म्मराजधानीनां शाखा इत्यस्मिन्नर्थेन सन्देहः। एतदुपरि प्रद्यो-तमाने प्रौढप्रकाशिनिपूर्ये आगोपालविदिते किमङ्गुल्यायं सूर्य इति प्रदर्शनीय इतित्वदधिकं लेखनीयङ्किमस्ति।

(लेखक नामाङ्कित) भारतुल नृसिंह शास्त्री
मारेडीपल्ले अग्रहारं, नेल्लूर जिला

40

मदुरैजिला (दक्षिण भारत) के 93 सज्जनों के हस्ताक्षरों के साथ एक निर्णयपत्र 12—7—1935 को प्राप्त हुआ। इस निर्णय पत्र में विख्यात विद्वानों, वकीलों, प्रोफसरों, अध्यापकों, कर्मचारियों, का हस्ताक्षर हैं :–

कैलासाचलनिलयो भगवान्परमेश्वरःधर्मविभ्रंशात्दुःखसागरमग्नं भूमण्डलमुदिधीर्षुः केरले देशे श्रीकालटी ग्रामौक्ता-ग्रेसराशिवगुरोस्तत्धर्मपत्नियामार्याम्बायामे अत्रिंशदुत्तर षट्शताधिकद्विसहस्र संख्याके युधिष्ठिर शके अवतारम्।

अवतीर्णश्च भगवान् लोक व्यवस्थामनुसृत्य यथाकालं जात कर्मादिभिस्संस्कृतः पूर्वाचार परिरक्षणाय गोविन्द-भगवत्पादाचार्य सकाशात्तुरीयाश्रम स्वीकृति पूर्वं लब्ध ब्रह्मविद्यः आसेतु हिमाचल मध्यवर्तिनि भूमण्डले वेदविरुद्धं बहुधा लोक प्रवृद्धं बौद्धचार्वाकादि मतं खण्डयित्वा सुधन्वादीन्राज्ञः पूजापालनादि-धर्मपरा निधाय श्रुतिस्मृति प्रतिष्ठापितान्वर्णाश्रमादि धर्मान् प्रच्युतं परिपालयतेत्याज्ञाप्य चतसृषु दिक्षु श्रृङ्गेरी, द्वारका, बदरी, जगन्नाथ संज्ञिकांश्चतस्रः धर्मराजधानीस्संस्थाप्य तासु सुरेश्वर, पद्मपाद, तोटक, हस्तामलकान् स्वीयान् शिष्यानध्यक्षान्विधाय चातुर्वर्ण्य धर्मरक्षणे अनुग्रहाधिकारं तत्धर्मादिव्यतिक्रमे निग्रहाधिकारं च प्रदाय आसेतु शीताचल मध्यवर्ति निखिलक्षेत्र तीर्थाटनं च कृत्वा श्री बदरीकाश्रमे पद्मयोनि प्रभृतिभिः देवैरभ्यर्चितः निर्वर्तिता शेषदेवमनुष्यकार्यः जगतः आत्मविद्योपदेशेनाज्ञानान्धकारं विनाश्य सर्वैर्देवैस्संस्तूयमानः प्रमथगणपरिवृत स्वकीयं धाम प्रापेत्येतत्सर्वं विदितं।

अस्मिन्नाचार्य चरित्रविषये शिष्टैः परिग्रहीता शिवरहस्य मठाम्नायोपनिषद माधवीय शङ्कर विजयादयो ग्रन्थाः एव प्रमाणानि। अनन्तानन्दगिरि विरचित शङ्कर विजयाख्यो ग्रंथ शिष्टापरिग्रहीतत्वाद द्वैत सिद्धान्ते परिवन्धित्वाच्च न प्रमाणपदवी मर्हति पौर्वापौर्व्य विरोधाच्च।

पूर्वोक्त ग्रंथ पर्यालोचनया निर्गलिताध्योर्थं चत्वार एव मठाः त एव धर्म राजधान्यः तत्राभिषिक्ताश्चत्वारोपि जगद्गुरुव्यपदेश्या भवन्ति। तेषु चतुर्ष्वपि मठेषु श्रृङ्गादिमठः प्रधानभूतः यतस्तस्मिन्मठे भगवत्पादाश्चक्रराज स्थापन पूर्वकं शारदां प्रतिष्ठाप्य स्वकीय तैत्तिरीय शाखामनुसृत्य दक्षिणाम्नाय संज्ञकं विद्याभारतीपीठं निर्माय स्वयमेव शारदां संसेवमानाः वर्तिकान्ताम द्वैतविद्यां स्वछात्रेभ्यः उपदिशन्तः द्वादशवर्षाभ्यधिकं काल मध्यूषुः।

तदनन्तरं भारती संप्रदायं सुरेश्वराख्यमन्तेवासिवर्यं तस्मिन्मठे स्थापयित्वा वर्णाश्रमाचार धर्मव्यवस्था करणे तमाज्ञाप्य जगदुद्धरण कार्यार्थं ततो निश्चक्राम। आसेतु हिमाचल मध्यवर्तिन्यां भारतभूमौ तीर्थं क्षेत्राटनं कृत्वा वेदविरुद्ध मतावलम्बिनः विजित्य काश्मीरे सर्वज्ञ पीठ मधिरुह्य तस्मात् बदरीं प्राप्य सर्वदेव ऋषीगणस्तूयमानाः प्रमथगण परिव्रता वृषारूढास्स्वकीयं धाम प्रापुः।

41

अयि महाशयाः, शाङ्करमठ विमर्शाख्य ग्रन्थमहमामूलाग्रमपश्यं। आद्यशङ्कराचार्या अवनौ मायामानुषरूपेणावतीर्य बौद्धादि दुर्म्मतानि समूलकाषं कषित्वा षण्मतानि यथा शास्त्रं संस्थाप्य भूमौ दुर्म्मतव्याप्ति माभूदिति शाश्वततयाऽद्वैतमत रक्षणाय शृंगेरी, द्वारका, ज्योतिः (बद्री), गोवर्धन (पुरी) नामकाश्चतस्रो धर्म्मराजधानीः संस्थाप्य तासु शृंगेरीम् प्रधानस्थानतय्या निर्णीय बदरिकाश्रमे श्रीदत्तहस्तमवलम्ब्य मायामानुष शङ्करावतार परिसमाप्य द्वात्रिंशत्तम वत्सरान्ते वृषभवाहनारूढास्सन्तः कैलासमलञ्चक्रुरिति शिवपुराण, विद्यारण्यकृत शङ्करविजय प्रभृतयः प्रमाणिकग्रन्था उद्घोषयन्तस्सन्तो मरुमरीचिकासूदकमस्तीति भ्राम्यन्तो बाला इव कांची कामकोटि पीठस्थानाय शङ्कराचार्याः स्थापयाञ्चक्रुरिति लोके विडम्बन करणं न केवलं शिष्ठ सम्प्रदायस्य दूष्यमेव भवति, किन्तु गुरुणामाज्ञायाः भङ्गकरमपि। कुम्भकोण पीठाधिपतित्वेन व्यवह्रियमाणास्तु सर्वात्मना आचार्य सम्प्रदायाद्बहिर्भूता इति शिष्टानामवबोधाय विज्ञापयामि। अपिच अस्मिन् कलौ वयमेव जगद्गुरव इत्यनेकेषाम्परिभाषणं, शृङ्गेरीपीठाधिपा अस्मच्छिष्यपरम्परागता इत्यपिवदनं उलूकदृष्टि तुल्यमिति सज्जानन्त्विति॥

मोडपल्लि आदिशेषय्य,

18—7—1935

42

भवत्प्रेपितश्शाङ्करमठविमर्शं ग्रन्थोऽवालोकितः। चिदम्बरजशतवत्सरजीवि शङ्करवर्णन सुविरुद्धमतानन्तानन्दगिरि शङ्करविजयस्सर्वानमिमतएव। श्रीमच्छङ्करभगवत्पाद स्थापिता गोवर्द्धन बदरी द्वारका शृंगेरी मठाश्चत्वार एव पुरुषार्थदानोद्यत भगवत्भुजा इव। तेषु जित स्थापिताया गुरुरूपिण्यास्सर्वविद्याधिदेवतायाश्शारदायास्सन्निधौ विलसच्छ्रीमच्छृङ्गेरी मठ एव। श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद मठेषु चतुर्षु साक्षान्मोक्ष पुरुषार्थ इव। सर्वोत्कृष्टस्सकलजगद्गुरुत्व दिग्विजय यात्रा धर्मादि निर्णय सर्वाधिकारस्सम्पन्नस्सेव्यः पूज्यश्च। इति शिवरहस्य, मठाम्नाय, विद्याशङ्कर विजयादिबहुग्रन्थ वचन शिष्टाचार संप्रदायाङ्गीकृतस्यामिनन्दितस्यामिवन्दितस्य महासन्निधानमिति प्रसिद्धस्य शृङ्गेरी शङ्करभगवत्पाद मठस्य जगद्गुरुत्व विशेष इतीयं रीतिः।

श्लोकः—"वासुदेवोऽवतीर्णोह मेकएव नचापरः।
भूतानामनुकम्पार्थंत्वन्तु मिथ्या मिथांतयज॥'

इति कारुष वचनानुसारिणी वाङ्मयी विभीषिका। पूर्वं काशीस्थ महापण्डितैरिदानींच द्वारका गोवर्द्धन बदरी शृंगेरी मठाश्चत्वार एव श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद मठा इति प्रमाण पूर्वं निर्णीताः। तन्निर्णयानुसारेण तदानीं काश्यां सर्वकलाशाला प्रतिष्ठापनोद्यतानां श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद मठेषु चतुर्षु शृंगेरी भगवत्पाद मठाध्यक्षैर्महद्भिर्जगद्गुरुभिरेवारम्भः कर्त्तव्य इति निश्चित मनसां श्रीमन्नृसिंह भारती पादानयनाय शृङ्गेरी मठ मागतानां वाराणसी पण्डितानां सविनय प्रार्थनम्। अभ्यधिकद्वादशाब्दमनुभूतं स्थलं स्वीयमेवेतिन्यायादाचन्द्रतारं शाङ्करमठत्व सिद्धं अद्वैत विद्या प्रचारणपरैः श्रीशङ्करभगवत्पादैश्शारदासन्निधौ शृंगेरी स्वीय मठे अन्यमठत्रय दुरापः अभ्यधिक द्वादशाब्दा विछिन्न निवासोऽङ्गीकृतः। यत्र मठागतानां द्विजानामद्वैत विद्याभिक्षादानोद्यता जननी स शारदाम्बाभाति। यत्र मठस्थापनं त्रिमूर्तिभिरप्यङ्गीकृतं—किञ्चशृङ्गाद्रि मठाध्यक्षैः श्रीमन्नृसिंह भारती

पादैश्शङ्करांशसंभूतैः कालटी शङ्कर जन्म भवनमपि परिष्कृतं। अहमेवानुवर्तिष्ये इति भगवत्पादवचनमपि सत्यं कृतं। एवं कालव्यवतार जिनवाणी स्थापनश्रृङ्गाद्रिपीठमठकल्पनाभ्यधिक द्वादशाब्द स्वमठनिवासाद्वैत विद्या संप्रदाय प्रवर्तन पूर्वं चन्द्रमौलिलिङ्ग रत्नगर्भगणपार्चन भाष्य वार्तिक करणासेतु हिमाचल प्रशासनाज्ञप्त वरिष्ठ वावदूक सुरेश्वराचार्य श्रृंगाद्रिमठ स्थापन काश्मीर देश सर्वज्ञपीठारोहण द्वात्रिंशद्वत्सर भूवास तप्तजलानयन ध्यानागत वृषारोहसमयं चतुर्दिङ्मठ चतुरशिष्या-ज्ञापनान्तर विरिचिंहस्तावलम्बन स्वस्वरूपवृशारोहण देवमुनिगणस्तवपूर्व कैलासावाप्तैः स्पष्ट बहु पुराणाद्यनेक वचन वाक्य प्रसिद्धेः। अष्टशताधिक सहस्र वत्सरकालममिवन्दिस्य श्रृङ्गेरी शङ्कर भगवत्पाद जगद्गुरु मठस्य विच्युतेर्वा इदानीं भव-संवत्सरे प्रकटितस्याङ्गिकारेवा प्रमाणवाक्याभावात् शिष्ट संप्रदाय विरोधाच्च। सर्वात्मना सर्वप्रकारैश्च श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद स्थापित गोवर्द्धन, द्वारका, बदरी, श्रृंगेरी मठाश्चत्वार एव। तेषु श्रीशारदा सन्निधि श्रृंगेरी शङ्कर भगवत्पाद मठएव चिरकालस्वमठनिवासाद्वैत विद्याप्रचारण संप्रदाय प्रवर्तनादिबहुगुणगण समलंकृतः श्रृंगाद्रि शारदा सन्निधि शङ्कर भगवत्पाद मठएव सर्वोत्कृष्ट जगद्गुरु मठः।

अन्तर्यामिणमीशंशङ्कर रुपेण भुवन भवतीर्णं।
अन्वीयुरखिल वेदाः चतुराम्नायमठ शिष्यनामानः॥

। इति। श्रीयज्ञदीक्षितर, मुल्लिपल्लम् ग्राम,
मदुरा जिला, 29-7-35

43

श्री मद्भिः कालटीक्षेत्रीय श्री शङ्कर जयन्ती महोत्सव समये अधिकारिणे प्रेषितः श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्शाख्यो ग्रंथ विशेषः अस्मत्सभा समक्षं प्रापितः। मठ विमर्शीयस्सर्वोऽपि विषयः पर्य्यालोचितः अनुमोदितश्च दुष्प्रचारेण आत्मोत्कर्ष मापादयतां कुम्भकोणमठीयानां वाराणसी क्षेत्र प्रवेशात्प्रागेव चोरौभिभवः प्रवेशादनन्तरं प्रथित पण्डित परिषद्वितीर्ण प्रश्नानां उत्तर वितरणे मूकीभावः पुनः स्वाशयाविष्करणे विकुण्ठी भवनमित्यादयो नानाविधाः प्रतिबन्धा अत्र प्रचारे आवर्त्तन्त इति यद्यपि ते जानीयुरेव तथापि पुनरनर्हमन्याय्यमात्मप्रशंसन दुष्प्रचारमचरतां तेषां तत्र तत्र स्वीयलाघव प्रकटनमेव फलितम्मन्यामहे। स्वतस्सिद्ध महिम प्रकटनाय विमर्शेऽस्मिन प्रवृत्तैः श्री मद्भिः भवद्भिर्निधारितास्सर्वेऽपि विषयाः समञ्जसा एवेति सर्वथावयमनुमोदामहे। आशास्यते च भूयोभूयः सर्वथा भगवान् श्री विश्वेश्वर प्रवृत्तिमेनां सफलयतु इति।

श्री मतान्निवधेयः शङ्कर शास्त्री अध्यक्षः सं वा. सं. सभा संस्कृत विद्याशाला (कल्याणपुरी) 4-8-1935

44

श्री कालटीक्षेत्रे श्री शङ्कर जयन्ती महोत्सव सन्दर्भे तत्रत्याधिकारिभ्यः श्री मद्भिः प्रेषितः श्री शाङ्करमठ विमर्शाख्यो ग्रंथः ममहस्तं समागतः। तदानीमेव तत्रसमागतैः पण्डितैस्सह ग्रन्थीयोविषयः मया परीक्ष्य सानुमोदमङ्गीकृतः। श्री कुम्भकोण मठीयाः प्रान्तेऽस्मिम् सञ्चार एव दुरभिमानमात्मनैव समारोपितम् प्रचारयितुम् प्रावर्तयन्तः परन्तु नैतादृशरीत्याः यथा वाराणस्यादिषु उत्तर प्रान्तेषु। नैतावतापि जगद्विख्याता श्रृङ्गगिरि मठीया प्रशस्तिस्तेषां सुलभा तथापि मुग्धजन प्रतारणाय परं प्रचारोऽयं दुष्टः परिणमति स एव माभूत्। अधर्म निबर्हणे धर्मसंरक्षणे च बद्धस्रद्धः सत्य संकल्पस्सर्वज्ञ श्री विश्वेश्वर एव मठ विमर्शीयामिमां प्रवृत्तिं सफलयितुमीष्टे। अतस्तमेव साष्टाङ्ग प्रणाम पुरस्सरं 'अस्मदीयमिमम्मनोरथं परिपूरयतु श्री विश्वनाथः'। इति अभ्यर्थये।

महार्हाणां विधेयः शङ्करशास्त्री (विद्याशालाध्यक्षः)

45

श्री मज्जगद्गुरु शंकर भगवत्पाद परम्परागत धर्म्माचार्य पीठ प्राथम्य प्राधान्य निर्णये स्वाभिप्राय प्रकाशिकेयं पत्रिका।

भो भो निखिल भारतवर्षीय विद्वदास्तिक महाशयास्सदाशयाः। श्री मज्जगद्गुरु शङ्कर भगवत्पाद शिष्य परम्परा परिप्राप्त परमा द्वैत सिद्धान्त पवित्रीकृत हृदयास्सदयाः! मदीयामिमां विज्ञापनामविपुलामा कलयन्तु भवन्त इत्यभ्यर्थये।

विदितचरमेव खल्विदं तत्रभवतां भवतां यत्कांची कामकोटि पीठाधीश्वराणां तदितर निखिलाद्वैतपीठान्तेवासिनाञ्च साक्षादादिशंकर प्रतिशापितपीठ तत्प्राधान्य प्राथम्यविषयको महान्विवादः प्रवृत्तः सत्रासेतुशीताचलमपि सहृदय हृदयाण्याकुलयतीति।

विवादेस्मिन्नखिल भरतखण्ड प्रान्तीयाद्वैत पण्डिताभिप्राय सम्प्रतिपत्ति पुरः सरं सिद्धान्त निर्णय द्वारा लोक प्रशान्ति बुभुत्सुभिर्वाराणसी पण्डित प्रकाण्डैः कतिपयैः पृष्ठेन मया स्वाभिप्राय निवेदनाय संक्षेपतस्तूद्वादगत कोटिद्वयमादौ निरूप्यते। ततः स्वाभिप्रायोपि।

तत्र श्रीमत्कांची कामकोटिपीठाधीश्वराणांपक्षेवाद प्रधानांशास्तु:-

(1) श्रीमदादिशङ्कर भगवत्पादैः प्रतिष्ठापित पीठ चतुष्टये स्वप्रधानशिष्यचतुष्टयं प्रतिष्ठाप्य साक्षाद्ब्रह्मविद्यासम्राट् स्थानत्वेन स्वस्वामिकः पीठः सर्वोत्कृष्टः सर्वाधिपत्यो जगद्गुरु कामकोटिपीठसंज्ञकः कांच्यांसुप्रतिष्ठितोयस्तत्परम्परागतावयमेवेति।

(2) तत्रैवकाञ्च्यान्तेषां सर्वज्ञपीठाधिरोहणानन्तरं श्री मदाद्यशंकर भगवत्पादाचार्याणां भौतिकदेह समाप्तिस्समाधिश्चेति।

(3) पीठान्तरेषु तत्वमस्यादि महावाक्य चतुष्टयान्यतमेन तत्वोपदेशोऽत्रत्विन्द्रसरस्वती सम्प्रदाय ऊंतत्सदिति महावाक्येनेति।

(4) विषयेष्वेतेषु श्री मदानन्दगिरिकृत शङ्कर विजय, शिवरहस्य, मठाम्नाय, नैषधीय चरित्रादि ग्रन्थजातम्प्रमाणमिति।

(5) अप्रमाणमेव श्री मद्विद्यारण्य कृतत्वेन प्रसिद्धमपि शङ्कर विजयाख्यं पुस्तकमिति। इत्यादयः।

तत्र द्वैतीयीक पक्षेवाद प्रधानांशास्तु:—

(1) श्रीमदादिशंकर भगवत्पादाचार्यैर्भारतस्यास्य खण्डस्य चतुर्दिक्षु शारदा, कालिका, ज्योति, गोवर्धन मठाः शृङ्गेरी, द्वारका, बदरिका, जगन्नाथ क्षेत्रेषु निर्माय स्वप्रधानान्तेवासिनः सुरेश्वराचार्य प्रभृतयश्चत्वार एव चतुर्वेदगत महावाक्य चतुष्टयोपदेशक्रमेण तत्तत्सम्प्रदाय प्रवर्त्तक धर्म्माचार्यत्वेन निर्णीताः। नान्यस्तद्व्यतिरिक्तोस्ति साक्षादादिशंकर प्रतिष्ठापितः पञ्चमः पीठोऽतःकामकोटिपीठस्त्ववान्तर एवेति।

(2) श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद दिग्विजयानन्तरं काश्मीर देशे सर्वज्ञपीठमधिरुह्य ततोहिमालयाद्ब्रह्मादिभिर्दत्तहस्तावलम्बा वृषवाहनारूढाः कैलासमेव निजावासमगमन् नात्र भौतिकंदेहं तत्यजुर्नापि कांच्यां समाधिरस्तीत्यमृषा प्रवा-

दोस्ति। किञ्च केरळान्तर्गत कालट्यग्रहारे शिवगुरोरार्याम्बायां शङ्करोदयस्य सर्वसम्प्रतिपन्नत्वेपि, चिदम्बरे विश्वजितो विशिष्टायां शङ्करोदयं वदतांवादः कूष्माण्डशङ्करविजय प्रामाण्यमनुसृत्य कूष्माण्डाच्छङ्करोदयंवदतां वाद इव प्रामाणिकैरनादरणीय एव। अथवा, शङ्करनामधारिणः कस्यचन सन्यासिनोवार्ता विषयकावा भवन्तु तत्तद्वादाः। तथाच काञ्च्यांशङ्कर समाधिमधिवदतां वादोप्युक्तदिशा खसमय एवेति। न कूष्माण्डादिशंकर विजयादीनवलम्ब्य विद्यारण्य शंकर विजया प्रामाण्य कल्पनावसरः कामकोटि पीठाधिपानां तयोर्भिन्न विषयत्वेनोभय ग्रन्थ प्रामाण्य निर्वाहादिति।

(3) अनादि सिद्ध तीर्थाश्रमवनारण्येत्यादि दशविधयतिसम्प्रदाय बहिर्भूत नूतनेन्द्रसरस्वती सम्प्रदाय शीलानां चतुर्वेद चूडामणीभूत सुप्रसिद्ध तत्वमस्यादि महावाक्य चतुष्टय व्यतिरिक्तमोन्तत्सदिति वाक्यमेव महावाक्यत्वेन स्वीकृतवतामेतेषां कामकोटिपीठाधीश्वराणां साम्प्रदायस्साम्प्रतिक एवेति। किञ्च तत्र तत्र वर्तमानेन्द्रसरस्वत्यन्त नामक यतिवर्यास्तु केचन अमार्गगामिनामसम्यग्दर्शिनां यतीनामिन्द्रकृत सालावृक यातना परिहाराय केनचन यतिवर्येणेन्द्रोपासकेनेन्द्रानुग्रहवतातथतनारहितोयमिन्द्रसरस्वती सम्प्रदायः प्रवर्त्तित इत्येतदैह्यं फणन्ति। केचन तीर्थाश्रमादि दशविध सम्प्रदायान्तर्गत एवायं सरस्वती सम्प्रदायः श्रेष्ठार्थ केन्द्र पदादिव मात्रेण न ततोतिरिच्यत इति वदन्ति। यद्यप्येवमेवेन्द्रसरस्वतीनाम समर्थयन्तोपि स्वस्योपदेश महावाक्यानितु तत्वमस्यादीन्येवकथयन्ति। नत्वोन्तत्सदिति। तस्मात्तत्रतत्र दृश्यमाणेन्द्रसरस्वती नामधारिणोपियतिवर्याः कांची कामकोटिपीठ साम्प्रदायिका एवेति नप्रमितव्यमापातदर्शिभिरिति।

(4) आनन्दगिरि कृतत्वेन कामकोटि पीठानुकूल्येन कल्पितः शङ्करविजयः सुतरामप्रामाणिक एवेति कीर्त्तिशेष स्वर्गीय महामहोपाध्याय धर्म्मप्राणश्री द्रविड लक्ष्मण शास्त्री महोदयैः कलकत्ता नगर समीपस्थ तारकेश्वर सम्बन्धिविवादे राजकीयन्यायस्थाने सोपपत्तिकं सशपथमुद्घोषितः। तथैवच सूरिकेट आन्ध्र वेङ्कट्रामन, आङ्गलेय माक्समुल्लर, विल्सन प्रभृतिभिर्लौकिकैश्चारित्रांश परिशोधकैरपिनिर्धारितः। तस्मादानन्दगिरि शङ्करविजयोदाहरणमकिञ्चित्करमेवपूर्वपक्षिणां। एवं शिवरहस्य, मठाम्नाय, नैषधादिग्रन्था अपि न कामकोटिपीठानुकूला इति काश्यां श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श नामक पुस्तके एकसप्ततिसंख्याकैः (71) पण्डितैर्यतिसार्वभौमैश्चैकत्रनिर्धारितमेवेति।

(5) विद्यारण्यकृतशङ्करविजयस्याप्रामाण्य सम्पादकमनुमानंनैतावतापि क्षोदक्षमं यतो नाकारि पूर्वपक्षिभिस्त तत्तत्प्रामाण्यमशक्य परिहारमेवर्गावाणि गुरुणामपीति। किञ्चास्मत्पक्षसमर्थने चित्सुखाचार्यकृत शङ्करविजय, लिङ्गपुराण, वायुपुराण, भविष्योत्तरपुराण, कूर्म्मपुराण, शिवरहस्य, यत्यान्हिक प्रभृतीनिनैकविधनिबन्धनान्येकविधमस्मत्पक्षानुकूल परःशत प्रमाण वचनं विद्यारण्यशङ्करविजयप्रामाण्य मुद्घुष्यन्तीति। पर्यवसानतः श्रृङ्गेरी प्रभृतिपीठचतुष्टयस्यैव साक्षादादि शङ्कर प्रतिष्ठापितत्वं, तत्रापि श्रृंगेर्या एव प्राथम्य प्राधान्ये स्त इति। तत्तत्सम्प्रदाय विधुराणां कांची पीठाधीश्वराणामान्तराळिकानां तत्रापि पीठस्यास्य कांचीतः कुम्भघोणनिर्गमनात्स्थानचलनवतान्नकथञ्चिदपि श्रृंगेरी पीठतः प्राथम्यं प्राधान्यं वा सङ्घटत इति।

एवंविध पूर्वोत्तर प्रणाळीं तत्तत्सम्बन्धिभिः सम्प्रेषित मुद्रितामुद्रित पत्रिका द्वारा, वार्त्तापत्रिकाद्वारा, सिद्धान्त पत्रिका, विरुपाक्षपीठ पत्रिका, शङ्कराचार्यचरित्रादिनामक नवीन पुस्तक समूहद्वाराच, सुचिरमालोच्यास्माभिरस्मिन्नर्थे अव्यलीकार्थं निर्धारणार्थं प्रारब्धश्च मठमीमांसानामक ग्रन्थ प्रणयनं अत्रान्तरे श्रीमद्वाराणसी पण्डित परिषदास्मदाशयमस्मिन्विषये प्रेषयतीतिपृष्टोहमेतावताविचारेणसुष्टु विमृष्टमेवास्माकीन सिद्धान्तमधस्ताद्विलेखयामि।

द्वैतीयीक एव पक्षः साधीयानिति ममाप्याशयः। किञ्च श्रीश्रृङ्गेरी द्वारका ज्योतिर्गोवर्धन मठेष्वेव चतुर्दिक्षु शारदा (भारती), कालिका (शारदा), पूर्णगिरि (बदरी), विमला (पूरी) पीठ चतुष्टयमेव महावाक्य चतुष्टयोद्भासितमात्म

प्रिय शिष्यादिषु श्रीमदाद्य शङ्कर प्रतिष्ठापितमिति। तद्व्यतिरिक्ताद्वैत पीठास्सर्वेपि विरुपाक्ष, पुष्पगिरि, कुडलि, यामिनि, शिवगङ्गा प्रभृतयस्तु तत्तच्छाखा पीठा इति। तद्व्यतिरिक्तः कामकोटि पीठस्तु केनचित्कारणेन शृङ्गेरीपीठ प्रतिस्पर्धितया-ऽवान्तरकाले (त्रिशताब्द प्राक्काले) केनचित् प्रतिष्ठापित इति प्रतिभाति। एव मेव प्रतिष्ठापितोय मेतादृशोद्देश्यक एव कामकोटि पीठ इत्यत्र कांश्चन हेतून् प्रदर्शयामि।

(1) सर्वाद्वैतपीठाचार्य सम्प्रतिपन्ने विद्यारण्य शङ्कर विजये कामकोटि पीठाधिपानामेवा प्रामाण्या शङ्का। नान्येषां। स्वातिरिक्त पीठ चतुष्टयमप्याद्यशङ्कर प्रतिष्ठापितमेवेति तेप्यङ्गीकुर्वन्त्यथापि तत्तत्पीठाचार्य सम्प्रतिपन्न विद्यारण्य शङ्कर विजयं तदुपबृंहक प्रमाणान्तराण्यपि नाङ्गीकुर्वन्तीत्येष एको हेतुः ॥

(2) चतुःषष्टिकलालङ्कार सार्वभौम श्रीगुर्वेङ्कन्नशास्त्रिनामकैस्स्वशिष्यप्रायैः कश्चन 'सिद्धान्त पत्रिका' नामक ग्रन्थः पञ्चसप्तत्युत्तराष्टादशशत सङ्ख्याक (1876) हूणशके प्रकाशयितः पुनर्मुद्रापितश्च पञ्चविंशत्युत्तरैकोनविंशति शताब्दे (1925)। तत्र, श्रीमदादि शङ्कर प्रतिष्ठापितः कामकोटिपीठ एवेति। विद्यारण्य प्रतिष्ठापितः पुष्पगिरि पीठ इति। तच्छिष्य परम्परागतः शृङ्गेरीपीठ इति। शृङ्गेरी शिष्य परम्परागता कुडली, यामन पीठाविति तत्तत्पीठ विरुदावलीस्तत्तन्मुद्रा-दींश्च प्रमाणतया प्रदर्श्यैवं निर्णयोस्तिकृतः। सच निर्णयः केवलं शृंगेर्याः पुष्पगिरि प्रशिष्यत्वेन विरूपाक्षिशिष्यत्वेनच निर्णय करणात्तदुभय पीठादरमात्मनः कामकोटि पीठस्य सम्पाद्य तदनुमिलित्वा शृङ्गेरी शृङ्गभङ्गप्रवर्तनापेक्षामात्रात्कृत प्रयत्न इवाभाति। सोयं प्रयत्नोपि निष्फल एव। यतोत्राद्यापि विरूपाक्षशाखापीठः पुष्पगिरिरिति। तदुभयमूलस्थानन्तु शृंगेरी-त्यत्रत्यास्सर्वेपि महाजनास्तत्तत्पीठाधिपा अपि निर्विचिकित्समेत्र फणन्ति। तस्मात्तेषामेवंविध प्रयत्नोप्यफल एवेत्य परोहेतुः।

(3) एवमात्मशिष्यभूतैः 'श्रेष्ठलूरि कृष्णस्वामिय्य' वर्यद्वारा प्रख्यापयिते 'श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कर भगवत्पादाचार्य चरित्रा'ख्यग्रन्थेपि सर्वधा कांची कामकोटि पीठस्यैव प्राधान्यमिति। तत्रैवकाञ्च्यामादि शङ्कराचार्या अन्तर्दधिरित्याद्यस्ति। विद्यारण्य शङ्करविजयो अप्रामाणिक इति च। अत्रापि विचार्यमाणेयथाकथञ्चित्तद्विमर्शकद्वारा विद्यारण्यशङ्करविजयाप्रामाण्य निर्धारण एव स्वाभीष्ट सिद्धिर्नान्यथेत्येष लौकिकोपायस्तैराश्रत इत्याभाति। किञ्चास्मिन्ग्रन्थे श्रीमदाद्यशङ्कराविर्भावकालनिर्णयार्थं श्रीमदाचार्यैभ्यस्सुधन्वना सार्वभौमेण समर्पिते ताम्रशासने युधिष्ठिर शके त्रिषष्ठ्युत्तरषड्विं-शतितमवत्सरा (2663) आश्विनशुक्ल पूर्णिमातिथिर्वर्तन इत्युदाहृतं। तत्ताम्रशासने तावद्ब्रह्मक्षत्राद्यसत्प्रमुख निखिल विनेयलोक सम्प्रार्थनया चतस्रोधर्म्मराजधान्यो द्वारका, बदरी, जगन्नाथ, शृङ्गऋषि क्षेत्रेषु शारदा, ज्योति, भोगवर्धन, शृङ्गेरी मठापरसंज्ञका संस्थापिता इत्यादि। अस्मिन् ताम्रशासने सुरेश्वराचार्य द्वारका पीठे प्रतिष्ठापिता इति मठाम्नायादौ शृङ्गेर्यामेवेति वर्त्तत इत्ययं विरोधोस्माभिर्मठमीमांसायां परिहृतोस्ति। एतद्विरोधसिद्धसिद्धिभ्यामपि न कामकोट्युपकारो भवति। पीठचतुष्टयमेवोल्लिखितमस्ति। नास्ति कामकोटि पीठ वार्ता गन्धोपि। तस्मात्तत्कालनिर्णयार्थमेतत्ताम्रशासनो-दाहरणकर्तृभिः श्री. कृ. स्वामिय्यावर्यैः कथंवा कामकोटिपीठ प्राधान्य निर्धारणमकरोति न ज्ञायते विवेकिभिः। तस्मात्पर्यवसानत एवंविध लौकिकोपायैर्यथाकथञ्चिद्विद्यारण्य शङ्करविजयाप्रामाण्य पूर्वकात्मीय कामकोटि पीठ प्राधान्य निर्धारणप्रयत्न परत्वमप्य परोहेतुः।

(4) एवंविध ग्रन्थानां प्रकटनद्वारा शृंगेरीतः स्वात्मनः प्राधान्य सम्पादनैक प्रयत्नवन्त एवैतत्पीठारम्भका-चार्यप्रभृतयोपीत्यनुमानात्सर्वपीठ व्यतिरिक्ततया चैतन्मात्रानुकूलतया परिदृश्यमानानन्दगिरि शङ्करविजयोप्येवमेवतन्नामकेन केनचिद् ग्रथित इति प्रतिभातीत्ययमन्योहेतुः।

(5) किञ्च, ये ये पण्डिताः सन्यासिनोवा कामकोटि पीठामागमिष्यन्ति तांस्तानेवं पृच्छन्ति। तत्पीठाधिपाः किमिति 'भवतां श्रृङ्गेरी पीठ विषये यादृशोभिमानो वर्त्तते तादृगेवास्मत्कामकोटि मठ विषयेपि कर्त्तव्येति। भवन्तस्तत्तत्पीठाचारादि पारदर्शिनः किल? तस्मादुक्त श्रृंगेरीपीठ पूजादि साम्प्रदाया अस्मत्साम्प्रदायेभ्यो अतिरिच्यन्तेवा अस्मत्साम्प्रदाया एववातइति।' एवमेव निरन्तरमागन्तुकान् वदन्तः श्रृङ्गेरीजिगीषया वर्त्तन्त इत्यत्र—(1) श्रीकाशी पञ्चगङ्गेश्वर मठाधीश्वर श्री 108 ब्रह्मानन्दसरस्वतीस्वामिनः (2) श्रीमदनन्तपुर वास्तव्याः श्रीमत्पुष्पगिरि संस्थान मुद्राधिकारिणः ब्र० श्री० काल्वचेन्नु शास्त्रिणः (3) काकिनाडा पुरवास्तव्या नैष्ठिक ब्रह्मचारिणो वेदशास्त्रश्रौतपारीणाः ब्र० श्री० वेपलवाय रामशास्त्रिणः। एतेचैवंविधाश्चान्ये महाशयाश्चास्मिन्विषये बहवः साक्षिणोवर्तन्ते। तस्मात्पीठाचार्याणामेवंविध प्रवृत्तिरप्यपरोहेतुः।

(6) किञ्च, पुराकांची प्रभुगास्वपट्टाभिषेक समये श्रीमज्जगद्गुरु श्रृंगेरी पीठाधिपाह्वाने कृते तथैवागच्छामित्याचार्योक्ति मनुसृत्य कांचीप्रभुणा तत्र तत्र मध्येमार्गं गजाश्वादियानसाधन सन्नाहेपि कृते कस्माच्चनव्यावहारिकहेतोः काञ्ची राजधानीं प्रति स्वगुरुगमनमनङ्गीकुर्वत्सु श्रीमन्महिशुरपुर महाराजेषु पुनरनागतेषु श्रृङ्गेरीपिठाधिपेषु काञ्चीम्प्रति, तदनागमनं प्रतीक्ष्य तन्मन्त्रिवर्यैः काञ्च्यामेव कश्चन कर्मन्दिनमाहूय तदधिष्ठातृको जगद्गुरु कामकोटिपीठ इतिनाम्ना श्रृंगेरी प्रतिपक्षतया कश्चन पीठो, अन्यमिन्द्रङ्करिष्यामीतिवत्, प्रतिष्ठापित इति। तत्र तत्र श्रूयमाणः प्रवादोपि पूर्वोक्तोपष्टम्भकहेतुरेवेति।

एवमादिभिः सद्धेतुभिर्नैकविधैरेतावतास्माभिर्दृष्टोभयपक्षीय पत्रिकावलोकनेन चात्रत्य पन्डित पामर प्रवादमनुसृत्याप्येष एव निर्णयोप्यास्मदन्तरङ्गमारोहतीति शिवं॥

इत्थं श्रीशङ्कर किङ्कर परमाणुः तर्क वेदान्त विशारदः मुदिकोण्ड वेङ्कट्राम शास्त्री,
अखिल आन्ध्र देशीय पण्डित परिषत्कार्यदर्शी, 6—8—1935

46

श्री चन्द्रशेखर शास्त्री तैलङ्ग, श्री काशी 18—8—1935 के पत्रमें लिखते हैं:—

सारे संसार में यह बात प्रसिद्ध है कि जब धर्म की अवनति, अधर्म का प्रचार एवं अत्याचार की मात्रा दिन दिन अधिक बढति जाती है तब करुणामयी भगवान् इस मृत्युलोक में मनुष्य वेष धारण कर असाध्य अपनी अमानुषिक लीला से उन अत्याचारों एवं अधर्मों को ध्वंसकर संसार में शान्ति प्रदान कर, अपनी लीला समाप्त करते हैं। श्री भगवान् गीता में स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख किया है:—

'परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृतां।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'
'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं॥'

सृष्टि से आज तक कई महात्माओं एवं अवतार पुरुषों की अमानुषिक लीला कई पुस्तकों द्वारा पढ एवं सुन चुके हैं। इससे विश्वास पूर्वक भक्ति हर एक हिन्दुओं के हृदय में जा बस जाता ही है। उसका नाश कभी नहीं होता। रामावतार कृष्णावतार हुए कई सहस्त्रों वर्ष व्यतीत हो गये पर उनका नाम सबों के हृदय में बसा हुआ है।

जब जैन, बौद्ध, चार्वाकादि अवैदिक मतों का प्रचार अधिक था, अद्वैतवाद का न्यूनभाव था, जन मांसाहारी एवं राक्षस गुणों से युक्त और ब्राह्मण कुल सब अवैदिक विधि से पूजा पाठ करते थे, तब कैलासवासी साक्षात् परमपिता परमेश्वर श्री शङ्कर नाम धारण कर मनुष्य वेषमें इस मृत्युलोक में श्री कालटी नामक ग्राम में नम्बूद्रि ब्राह्मण दम्पति श्री शिवगुरु आर्याम्बा के पुत्र के रूप में 2656 युधिष्ठिर् शक में अवतार ली। कालटी ग्राम केरल देश में पूर्णा नदी के तट पर बसा हुआ है। श्री मज्जगद्गुरू 1008 श्री शृङ्गेरी मठ शारदा पीठ के श्री शङ्कराचार्य श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती स्वामी जी अभी हाल सन् 1910 ई० में कोचिन एवं ट्रावनकोर महाराजाओं के सहायता से इस ग्राम का उद्धार कर श्री आद्यशंकराचार्य जी की मूर्ति, पाठशाला, छेत्र इत्यादि स्थापना की है। श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य का आवागमन इनके अवतार के पूर्व लिखे हुए कई पुराणों में उल्लिखित है।

केरले शशल ग्रामे विप्रपत्न्यां मदंशतः।
भविष्यति महादेवि शंकराख्यो द्विजोत्तमः॥ (शिवरहस्य)
'चतुर्भिस्सह शिष्यैस्तु शंकरोऽवतरिष्यति।' (वायुपुराण)

इनके अतिरिक्त कूर्म, लिंग, इत्यादि पुराणों में भी उल्लिखित हैं। श्री विद्यारण्य, वेद भाष्यकर्ता, अपने शंकर दिग्विजय में इनके अवतार का वर्णन अद्वितीय रूप में किया है—'लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमारं श्रीपार्वतीव सुखिनी शुभवीक्षिते च। जाया सती शिवगुरो निज तुङ्ग संस्थे सूर्ये कुजे रवि सुतौ च गुरौ च केन्द्रे।'

इनका चौलकर्म तीसरे वर्ष में, उपनयन पंचमवर्ष में, पिता का देहान्त उपनयन के उपरान्त, सन्यास परिग्रहण अष्टवर्ष मे, एवं प्रस्थानत्रय भाष्य 16 वर्ष में समाप्त हुआ, यह सार्वजनिक है। इन्होंने पांचवें वर्ष से 12 वर्ष तक सारा अध्ययन समाप्त किया। माता के आज्ञा से सन्यास परिग्रहण कर श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी जो नर्मदा नदी के किनारे तपस्या कर रहे थे वहां पहुंच महावाक्यों का उपदेश लेकर अपना दीक्षा भी लिये।

'अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्व शास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥'

अनेकों तीर्थ स्थानों में यात्रा और मन्दिरों का उद्धार करते हुए श्री शङ्कराचार्य जी प्रयाग राज पहुंच वहां श्री कुमारिल भट्ट कर्मकाण्डी को अद्वैत ज्ञानोपदेश कर, एवं श्री काशी में श्री वेदव्यास को शास्त्रार्थ से सन्तुष्ट कर, वहां से माहिष्मती की ओर बढ, मण्डन मिश्र नामक कर्मकान्डी को वाद विवाद से पराजित कर, उनको चतुर्थाश्रम दे, सुरेश्वराचार्य योगपट्ट दे, जगह जगह शास्त्रार्थ अन्य मतावलम्बियों से करते हुए सब को पराजित कर शुद्धाद्वैत की स्थापना की। सम्राट सुधन्वादियों को भी अपने राज्य में वैदिक मार्ग को ही राज धर्म बनाने को कबुलवाकर नैपाल के सम्राट वृषदेव वर्मा के पास जा, वहां के बौद्ध विहारों को ध्वंस करा कर श्री पशुपतिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार करके एवं बदरी नारायण मंदिर के बाहर त्रिशूल गढवाये। सारांश में उनके अद्वैतवाद को यों कह सकते हैं:—

'श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि
यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या
जीवो ब्रह्मैव नापरः॥'
'नास्ति द्वैतं भेदो यत्र।'

मण्डन मिश्र के पराजय उपरान्त सरसवाणी रूप शारदा को साथ लिये श्री ऋष्य श्रृङ्गाश्रम पहुंच, तुङ्गभद्रा नदी के किनारे शारदा को स्थापन कर, उनसे वहीं सदा रहने के लिए प्रार्थना कर, अपने लिए एक मठ स्थापन कर, बारह वर्ष स्वयं शारदा की सेवा एवं शिष्यगणों को अद्वैतोपदेश करते रहे। बाद वहां अपने स्थान में अपने चार शिष्यों में से शुक्ल यजुर्वेदी श्री सुरेश्वराचार्य को बैठा, आसेतु शीताचल पर्यन्त निवासी शिष्यगणों के वैदिक आचार व्यवहारादि विषय में शिक्षणाधिकार दे, स्वयं उत्तर दिशा की ओर बढे। पश्चिम के द्वारका मठ में सामवेदी पद्मपादाचार्य, पूर्वके जगन्नाथ मठ में ऋग्वेदी हस्तामलकाचार्य, उत्तर के ज्योतिर्म्मठ में अर्थवणवेदी तोटकाचार्य बैठा, काश्मीर में सर्वज्ञपीठा रोहण कर, स्वयं बद्रीकाश्रम से देवताओं के साथ अपनी बत्तीसवें वर्ष में अवतार लीला समाप्त कर सीधे कैलास पहुंचे।

श्रीमच्छंकराचार्य जी का चरित्र सब ऐतिहासिक सरली ही में लिखे हुए मालूम पडते हैं। कूर्म, लिङ्ग, वायुपुराणों, शिवरहस्य, बृहत् ज्योतिषार्णव ग्रन्थों, मठाम्नाय (उपनिषद्, सेतु एवं चन्द्रिका), शङ्कर दिग्विजय ग्रंथों विद्यारण्य (वेदभाष्यकर्ता), चिद्विलास, सदानन्द, एवं गुरुपरम्परा चरित्र और नवीन अनेकानेक विजयों में, मत मतान्तर के पुस्तकों में भी चारों दिशा में चार वेद और उनके चार महावाक्यों को विभाग कर, केवल चार ही मठों का स्थापना कर, चार ही शिष्यों को बैठा, अपनी अवतार लीला समाप्त की। यह स्पष्ट रूप से उल्लिखत है जो कि सबको विदित है। परन्तु कहीं पांचवें मठ का उल्लेख नहीं है।

आजकल कुछ वर्षों से मैं एक पांचवें मठ का नाम पत्रिका द्वारा देख रहा हूं। केवल एक मठ का नया निर्माण न हुआ पर इस पंचम मठ के श्री महन्त जी अपने को एक मात्र श्री मज्जगद्गुरु घोषित करते हुए, अन्य मठाधीषों को केवल श्री गुरु पदवी के अर्ह हैं प्रख्यापन करते हुए, अपने मठ को गुरु मठ एवं श्री शङ्कराचार्य स्थापित चार मठों को शिष्य मठ प्रख्यापन करते हुए, अनेक शहरों में पर्य्यटन करते हुए अब आप कलकत्ता पहुंचे हैं। सुना है कि कुम्भकोणमठ के श्री महन्त जी ने अनेक पुस्तकें नूतन बना बना छपवायी है। यह भी सुना है कि आप महाराज ने अपने मठ के लिए एक नया मठाम्नाय भी तैय्यार की है।

चाहे जो हो, साधु सन्यासी के नाते उस मठ के अधिपति को स्वागत करने के लिए सब तैय्यार ही हैं। इसमें किसी को कोई भी आपत्ति नहीं है। कतिपय गण्यमान पुरुषों से जो यह प्रचार कराया जा रहा है उसमें तो महान् रहस्य मालूम पडता है। इससे तो भोले भाले धर्म प्राण पुरुषों को भ्रम में डालकर, ये लोग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। हो सकता है शायद, आज आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार पीठों की अपेक्षा कांची कुम्मकोणमठ ही अधिक समृद्धशाली हो, उसके अधिपति महाराज ही तपस्वी एवं पुरुषार्थी हों, पर इससे न तो उनका मठ ही आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित मठों की तुलना में आ सकता है और न उनको एक मात्र जगद्गुरु के नाम से विभूषित किया जा सकता है।

उक्त मठ के अधिपति के विषय में श्री काशी पुरी में 30 सितम्बर 1934 ई० को एक विराट विचार सभा काशी के प्रतिष्ठित विद्वानों एवं परिव्राजकों की हुई। उस सभा के सभापति काशी के प्रतिष्ठित विद्वान पण्डित प्रवर श्री हाराण चन्द्र भट्टाचार्य (प्रो० गवर्मेन्ट कालेज) थे। चार घंटे वाद विवाद उपरान्त यह सर्व सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल चार ही मठ हैं और श्री कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है। में ने काशी के प्रतिष्ठित पंडितो द्वारा प्रकाशित नोटिस को भी देखा, इसके अतिरिक्त मैं ने

काशी के प्रसिद्ध परिव्राजकों एवं पन्डितों का निर्णय भी देखा जिसमें अस्सी हस्ताक्षर हैं। इस निर्णय में उक्त मठ के विषय में सविस्तार आलोचना कर यह निर्णय किया गया है कि यह मठ शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है। पं. सीताराम शास्त्री, न्यायाचार्य, एवं पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा (51 हनुमान घाट, श्री काशी) से प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श' को भी मैंने पढा। इसी प्रकार का निर्णय स्वर्गीय म० म० प० शिवकुमार शास्त्री जी, म० म० श्री कैलास चन्द्र भट्टाचार्य, म० म० प० सुब्रह्मण्य शास्त्री जी, प० सीताराम शास्त्री जी प्रभृति प्रसिद्ध 80 पण्डितों ने भी 48 वर्ष पूर्व एक निर्णय केवल चार मठ होने का ही किया था। गत 7 मार्च गुरुवार को कलकत्ते के शिवकुमार भवन में कुछ पन्डितों की सभा की आह्वान किया गया था। उस सभा में अनेक पन्डितों का भाषण हुआ। कलकत्ता ब्राह्मण सभाके भूतपूर्व मंत्री पं० कालीचरण जी शर्मा एवं पं० बलदेव शास्त्री प्रभृति पण्डितों ने भी इनके मठ को श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है ठहराया था। गत 11 अप्रैल सोमवार के दिन एक सभा कलकत्ते में भयी थी, जिसमें श्री श्री गङ्गाधराश्रम स्वामी जी, उप सभापति, अखिल भारतवर्षीय आचार्य सम्मेलन्, के प्रस्ताव पर यह सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि भगवान श्री आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल श्री शृङ्गेरी, द्वारका, गोवर्द्धन और ज्योर्तिमठ चार ही हैं और इनके अतिरिक्त कोई दूसरा मठ श्री आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है। इस प्रस्ताव का समर्थन पण्डित प्रवर श्री अक्षयकुमार शास्त्री जी ने की। वर्त्तमान गोवर्धन मठ के श्री शङ्कराचार्य जी और श्री शृङ्गेरी के वर्त्तमान श्री शङ्कराचार्य जी, ये दोनों महात्मा तार द्वारा अपनी सम्मति प्रगट करते समय यह स्पष्ठ रूप से बतलाया है कि कांची कुम्भकोणमठ श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है। इस उपस्थिति में जब तक निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर सप्रमाण ग्रन्थ के आधार पर नहीं मिलता तब तक किस प्रकार श्री कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ को श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित माना जाय! पद पद पर शङ्का अधिक ही बढती जा रही है।

(1) 'श्रीविश्वेश्वर स्मृति' और अन्य धर्मशास्त्र पुस्तकें जो यतिधर्म के विषय को बताती है, उनमें केवल दस नाम और चार सम्प्रदाय ही दिये गये हैं। (1) तीर्थ (2) आश्रम (3) वन (4) अरण्य (5) गिरि (6) पर्वत (7) सागर (8) सरस्वती (9) भारती (10) पुरी

श्रीकांची कुम्भकोण मठ के ग्यारहवां नाम 'इन्द्रसरस्वती' और मिथ्यावार (पांचवां सम्प्रदाय) कब से उत्पन्न हुआ? इनके प्रवर्तक कौन थे और किन आधारों से यह प्रथा में लाया गया? श्रीशङ्कराचार्य एवं उनके चार शिष्य किस सम्प्रदाय के थे?

(2) मैं सुनता हूं कि आद्यशङ्कराचार्यजी चार महावाक्यों चार वेदों का (शुकरहस्योपनिषद् अनुसार) अपने चार शिष्यों को चारों मठों श्रीशृंगेरी, द्वारका, गोवर्धन और ज्योतिर्म्मठ के लिये उपदेश किया। मैं जानने के लिए उत्सुक हूं कि कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ के लिए कौनसा महावाक्य किससे उपदेश किया गया? महावाक्य का लक्षण क्या है? 'ॐ तत्सत्' इसमें महावाक्य का लक्षण है या नहीं?

(3) प्रामाणिक शङ्कर दिग्विजयों विद्यारण्य, चिद्विलास, सदानन्द, ब्रह्मानन्द, इत्यादि ग्रन्थों में इस कुम्भकोण मठ का बिलकुल उल्लेख है ही नहीं। अब ये किस आधार से अपने मठ को गुरुमठ कहते है? क्यों नहीं इनका मठ का उल्लेखन 'मठाम्नाय' श्रीशङ्कराचार्य से स्वयं रचित ग्रन्थ में किया गया?

47

तत्त्वनिधानम् मरैकडैनम्बी पं० डि० सुब्रह्मणिय अय्यर, मदरास से, 27—8—1935 के पत्र में लिखते हैं :—

'हरलीलावताराय शङ्कराय परौजसे
कैवल्य कलनाकल्प तरवे गुरवे नमः ॥'

श्री कैलाशपति परमेश्वर ने लोकोद्धारणार्थ सनक, सनन्दन, सनतकुमार तथा सनतसुजात् आदि चारों को कैलास पर्वत में दक्षिणामूर्ति के सदृश बरगद वृक्ष के नीचे ज्ञानमुद्रारूढ होकर इनको अनुग्रह किया था। ये प्रभु जो परमशिव प्रणव नाद स्वरूप होने के कारण एवं सनकादि उस प्रणव का चार पाद होने से, वे चारों प्रणवनादपाद चार सनकादि ब्रह्ममानसपुत्र हुए। इसके पहले सृष्टिकाल में उपदेश किया हुआ है। ये चारों कैलाश मंडल के चारों दिशाओं में-पूर्व सनक, दक्षिण सनन्दन, पश्चिम सनत्कुमार और उत्तर सनत्सुजात आदि मठ भगवान के द्वारा स्थापित किया हुआ है। सभी महर्षिवृन्द इन चारों मठों के शिष्य थे, हैं और रहें गे। कैलास सीमा में भगवान द्वारा किसी भी समय में पांचवे मठ की स्थापना नहीं हुई थी। पांचवें मठ की कोई आवश्यकता भी न थी। यह विवरण 'शैवभूषण' नामक ग्रन्थ में है।

जब इस भारतवर्ष में अधर्म से परिपूर्ण एवं मनुष्यकोटि को सत्य की जिज्ञासा करने की शक्ति न होने के समय में तब भगवान ईश्वर ने सनकादि चारों को इस भूमि में जन्म लेने की आज्ञा दी। वे शङ्करभगवत्पाद के नाम से अवतीर्ण हुए। परमेश्वर के अंश रूप में अवतीर्ण हुए शङ्कर पुनः दक्षिणामूर्ति स्वरूप लक्षण यहां प्रदर्शित करने के हेतु से शङ्कर अपने बाल्यावस्था में ही सन्यास ग्रहण करके, भारत परिभ्रमण करके, सनकादि चारों के प्रतिरूप में यहां जन्म लिए श्री सुरेश्वर, पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटक आदि के नाम से मुख्य गणों को प्राप्त करके, तुङ्गानदी तीर पर दक्षिणा-मूर्ति स्वरूप में इन चारों शिष्यों को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। पूर्व, दक्षिग, पश्चिम व उत्तर दिशाओं में, पूर्वकाल में जिस प्रकार कैलास मंडल में चार मठ थे, उसी प्रकार इस भारतभूमि में भी चार मठों व मठाधिपतियों की स्थापना की। ये क्या हैं? प्रथमतः श्री शृङ्गेरी अर्थात् सर्वज्ञ शक्ति संयुक्त शारदा पीठ, द्वितीयतः द्वारका, तृतीयतः जगन्नाथ पुरी, चतुर्थतः बद्रिकाश्रम आदि चार मठ हैं। इन चार मठों में शृंगेरी मठ को श्री मज्जगद्गुरु आदि विरुदावलि तथा उनको सर्वशक्तिदायी श्री शारदा की तुरीय किरीट भी प्राप्त हैं। अतः आसेतु हिमालय तक ब्राह्मणादि सर्व वर्गों के लोग इन चार आम्नाय मठों के सेवा के पात्र होंगे।

कुम्भकोण आदि कुछ अप्राचीन मठ (मठाधीष) न केवल हम ही प्राचीन मूल मठाधिपति हैं ऐसा गर्व से बोलते हैं वरन् इन महान् गुरुपरम्पराओं से भी उच्च कोटि के गौरव के भागी हैं ऐसा कहना, मेरे विचार से ये पुरुष कलिस्वरूप के ग्रहरूप (कलिचेष्टा) में जन्म लिया है।

यदि पाठकगणों को मेरे इन विचारों पर कुछ भी सन्देह हो तो वे मेरे से संपर्क स्थापित करें तो मैं भरसक उनके शङ्काओं को निवारण करने को तैय्यार हूं।

(हिन्दी अनुवाद)

48

वेङ्कम्मपेट अग्रहारं (विशाखपट्टनं जिला) से तथा अनकापल्ली सभा का निर्णय समेत 20 सज्जनों के हस्ताक्षरयुत, 17—9—1935 तारीख का प्राप्त हुआ व्यवस्था विवरण :—

महाशया, श्रीशाङ्करमठविमर्श नामक ग्रन्थः कन्दळत्सर्वाङ्गीण मधुर रसामृतमय इत्युक्तिर्नातिशयोक्तिः। पुराकिल श्रीशङ्कराचार्य भूमण्डलमभिव्याप्य सस्थितानि बौद्ध दुर्म्मतानि नाम मात्राण्यवशेष्य सर्वत्र भरतखण्डे अद्वैतरसामृतान्यासिच्य अद्वैतमत शिक्षारक्षणाय भरतखण्डस्य चतुर्दिक्षु ऋगादि वेद चतुष्टयीय रहस्यानि चत्वारि महावाक्यान्यन्वर्थयितुं चतुरो मठान् स्थापयन्। तेषु शृंगेरि, द्वारका, ज्योतिर्मठ, जगन्नाथ इत्यभिधानेषु शृंगेरी मठस्तु सर्वश्रेष्ठतया भरत खण्डे सर्वदिग्विभागेषु आचार्यतो दिग्विजयाधिकारमाप्य तद्धर्म्म राजधानीनां शिरोभूषणमित्यद्यापि कीर्त्तिं वहन्नस्ति। त्रिलोक विदितः सन्नेवंस्थिते अन्यमिन्द्रङ्करिष्यामीतिवत् कांची कामकोटि पीठाधिपा इति स्वात्मानः प्रकथनं मपि प्रथमतोहास्यास्पदमेव। कामाक्षीदेवी किलकाञ्ची कामकोटि पीठाधिष्ठायिनी। एवं सति वयङ्काञ्ची कामकोटि पीठाधिपतय इत्युल्लेखनं परिहासास्पद-मित्यत्र नोविवादः। स्वीयं पीठं आदिशङ्कर निर्म्मितमिति अथ च चतस्रोधर्म्मराजधान्यः स्वशिष्यपीठपरम्परागताः, वयमेव जगद्गुरवः, तदितराच श्रीगुरवः, स्वकीय शिष्योदितमेव परमं प्रमाणमितिच श्रीकाशी रामघट्टस्थ साङ्गवेदविद्यालये स्वयं स्ववाचा प्रकटीकरणं अनवसन्नलालसतयामभ्योपदिग्धमिवास्ति अन्तरेणेतोपि परमहंस शुकरहस्येत्याद्युपनिषत्सु विस्पष्टं प्रकाशितानि तत्त्वमस्यादि वेदचोदित महावाक्यानि विहायोन्तत्सदित्येतन्महावाक्यमस्मदीयमिति वदन्तः सन्तः काशीयात्रा निमित्तमिषतः सर्वज्ञनाम सम्पिपादयिषवः पामरजन सम्मोहक वाक्यान्येव। प्रयुञ्जते न स्वार्थाधायकानि। भरत खण्डे विद्यमानाद्वैत मठाः धर्म्मराजधानीनां शाखात्वेन नवीनतया परिकल्पिता इत्यत्राप्यविवादः। प्राचीन शास्त्रमुत्सृज्य कुर्वन्ति च नवं नवमिति केदार खण्डोक्तिमनुसरन्तस्तात्कालिक पण्डिताः प्राचीन शास्त्राण्युत्सृज्य नवंनवं चित्र विचित्र ग्रन्थमारचयन्तो अन्धगोलाङ्गूल न्यायानुगामिन एव। वेद प्रमाणज्ञानां यथार्थ ग्रहणाय गुरुभक्ति पुरस्सरेण विज्ञापयिता भगवत्पाद परम्परान्तर्गत शिष्यरेणवः॥

49

पं० श्रीदिगम्बर शास्त्री, रत्नागिरि संस्कृत पाठशालाध्यापक, रत्नागिरि, से 8—10—1935 को प्राप्त पत्र का विवरण :–

अयि महाभागा, धर्मश्रद्धालवोऽभिनिवेशशून्या विद्वांसः श्रृण्वन्तु भवन्तः किंचिन्मदभिप्रेतम्। श्री मदाद्य शङ्कराचार्याः साक्षान्महेश्वरावतारभूता अस्यां पृथिव्यां नास्तिकान् विच्छेतुं धर्मश्रद्धालूंश्च निःसंशयान्कर्तुं धर्मदाम्भिकांश्च दमयितुं प्रजापालकान् राज्ञश्चानुग्रहीतुभवतीर्णाः। तैश्च स्वकीयबुद्धि वैभवेन सर्वांस्तत्तद्विरुद्धमतप्रतिपादकान् विजित्य राज साहाय्येन स्वधर्मेषु सर्वेलोकानियमिताः। तदानींतनोराजाऽपि सुधन्वेति सुगृहीतनामधेयः प्रजानां स्वस्वधर्मेषु नियमनात्प्र-जापालनं सुकरं संजातमिति मन्यमानः सुखेन राज्यं चकार। ततश्च श्रीमदाचार्याणां तथा सुधन्वराज्ञश्च मनसि महान् विचारः प्रादुर्बभूव। कथमिमाः प्रजा अनयैवरीत्या निरन्तरं स्वस्वधर्मेषु निरताः सत्यः सामिचीन्येन व्यवहरेयुरिति। उभाभ्यां चैकमत्येनैवं विभावितम्राज्ञाचौर्यादि संबन्धि शासनं विधेयमाचार्यैश्च धर्मशासनं कार्यमिति। तत्रराज्ञो राज पीठमस्त्येव। आचार्य पीठं तु नास्त्येवेति तदपि स्थापनीयम्। तच्च किं पीठमेकमेव स्थापनीयमुत बहूनीति विचारे संप्राप्ते

सति साक्षादाचार्याणां कृतकृत्यत्वादपेक्षाया अभावाज्जीवन्मुक्तत्वाच्च न स्वापेक्षयाऽऽचार्य पीठं स्थापनीयतत्वेनाऽऽपतितम्। अपितु स्वसेवकां चतुरोऽपि प्रियशिष्यान् स्वसादृश्यं प्रापयितुं सर्वलोकांश्च स्वस्वधर्मेषु व्यवस्थापयितुं चतस्रश्च दिशो नियन्तुं चत्वार्येवाऽऽचार्य पीठानिस्थापितवान्परमेश्वरः। यद्यपीदानीं बहूनिपीठानि बहवश्चाऽऽचार्या बहूनि च मतानि उपलभ्यन्ते तथाऽपि न तानि परमेश्वरेणाऽऽदिमाचार्येण स्थापितानि, किंतु कालमहिम्नापीठस्थाचार्याणामैश्वरसामर्थ्य वैधुर्येण विद्यावैकल्येन चान्येषां सामान्यलोकानां च विद्याबाहुल्येन पीठस्थाचार्यैः सार्कं स्पर्धात्त्वेन छत्रचामरादिराज भोग्यवस्त्वभिलाषेण बहूनि पीठानि बहुमत प्रतिपादकैर्बहुभिर्लोकैर्बहुषु स्थलेषु संस्थापितानि। विद्या वैभवेन कस्याश्चित्सामान्य देवतायाः प्रसादेन च राजसाहाय्यं लोकसाहाय्यं च भवत्येवेति प्रसिद्धमेवेदानीमपि। तथा च राजसाहाय्येन लोकसाहाय्येन च राजभोगानपि लब्धवन्तस्तत्तत्पीठस्था आचार्याः। तथाच श्रूयते-पुण्यपत्तननिकटवर्तिनि मयूरेश्वरक्षेत्रे निवसन्कश्चित्तापस आचार्य पीठं लब्धवानिति। तथाच केचन विरुद्धमत प्रतिपादन पण्डित्येन केचन च तदीयमत प्रख्यापनेनैव राजभोगान् प्राप्नुवन्। नैतावता विचारशीलानां विदुषामभिनिवेशशून्यानां मत वैचित्र्यं भवति। तथाचाऽऽद्यशङ्कराचार्य प्रणीते मठाम्नाय सेतौ प्रतिपादितम्—

मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्चधुरंधराः।
सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्मव्यवस्थितिः ॥ 1 ॥ इत्यादि ......

तथा च पूर्वोक्ताद्यशङ्कराचार्यप्रणीतमठाम्नायसेतुस्थसाक्षात्प्रमाणेनाऽऽनुमानिक प्रमाणानां बाधितत्वाच्चत्वार एव मठाःचत्वार एव चाऽऽचार्या इति सिद्धमित्यलमिति पल्लवितेन ॥

॥ इति शिवम् ॥

50

कृष्णा तथा गोदावरी जिला (आन्ध्र देश) के 81 सज्जनों के हस्ताक्षरयुक्त 18—10—1935 को
प्राप्त एक विचार पत्र का विवरण :—

श्रीकृष्णागोदावरी नद्योः मध्यदेशस्थितानां जनानां विज्ञप्तिः। भो! भो! महाशयाः!

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकेत्यादि बिरुदाङ्कितैरादिशङ्करभगवत्पाद पूज्यैः शाश्वत वैदिक प्रतिष्ठापनाय प्रतिष्ठापितानि पीठानि कतिसङ्ख्याकानि, यत्र यत्र प्रतिष्ठापितानीति अद्यतन विवाद विषयी करणं साहसमेव। सुविदितमेव सर्वेषामास्तिक जनानां विदुषाञ्च चत्वार्येव पीठानि। बदरिकायां, शृंगपुर्यां, द्वारकायां, जगन्नाथ पुर्याञ्चाचार्यवर्यैः प्रतिष्ठापितानीति। श्रीमद्विद्यारण्य वर्यैरपि स्वकीय शङ्करविजयाख्य महाग्रन्थे, श्रीमद्व्यासमुनि विरचिते शिवपुराणेच अन्येषु प्रमाणेषु ग्रन्थेषुच स्पष्टी कृतमेव। अस्मिन्विचारण एकः प्रश्नः सञ्जातः। तस्य समाधानमपि सुविदितमेव। पुष्पगिर्याद्युपपीठानि भगवतामाचार्याणां कैलासगमनानन्तरं तच्छिष्य प्रशिष्यैः धर्म्म परिपालनासौकर्याय न किम्वतिविस्तारित भूपण्डलानी मण्डलीकृत्य प्रतिष्ठापितानीति। किञ्च, कांञ्चीपुर्यां कामाक्ष्या उग्रता निवारणाय पुरः श्रीचक्रमेव प्रतिष्ठापितमाचार्यवर्यैः नतु मठ इतिच। कुतोत्रसंशयः। युष्मत्प्रश्नादेवतच्छिष्य परम्परागतैर्विद्यारण्यमहास्वामिभि वैदिकधर्म परिपालना सौकर्याय पुष्पगिर्याद्युपपीठानि स्थापितानीति प्रतीतेः। श्रीमदाचार्यवर्यैः काञ्च्याम्पुनः श्रीचक्रप्रतिष्ठापनमेव नतु मठ इति भवत्प्रश्नादेवस्पष्टम्प्रतीतेः। सुविदित

मेव समाधानं। तत्र तत्र उपपीठेषु स्थिताचार्याणां बोधनैश्चार्वाकादिमतजनित तमः, तत्तदौपनिषदर्थ विमर्श सामरस्य पूर्वकाखेण्डाद्वैतालोकेन दूरी कृत्य शिष्यमनः प्रसादङ्कल्पयितुमेव ह्युपपीठ प्रकल्पनं। नतुमत्पीठ आदिः, त्वत्पीठोऽवरः, अहमाचार्य श्रेष्ठस्त्वमवर इत्यादि मत न्यूनिकरण सहायभूतानहङ्कार जनितान्व्यर्थ प्रसङ्गान् समुद्भाव्य अज्ञानिनाममायिकानां शिष्याणां मनांसि कलुषीकर्त्तुं। हन्त! एतादृशान्प्रसङ्गानाकलय्यसङ्घ संस्कर्त्तारः परिहसन्ति वैदिकमतन्दूषयन्तिच। लोके ह्यद्यतनविवादभूतं कुम्भघोणस्थपीठं आचार्य पीठमिति कदापि कथापि नास्त्येव खलु। तथैव कुम्भघोणपीठस्थानां आचार्याणां इन्द्रसरस्वतीसम्प्रदायः श्यादिभगवत्पादानां आचार्याणां दशविध सम्प्रदायानां मध्येवन्ध्यापुत्र सदृश एव भवतिखलु। तत्पीठस्थ आचार्यवर्याणां प्रमाणरहित वाक्य प्रसङ्गोऽप्यसम्बद्ध प्रलाप एवहि।

1. श्री प० प० बोधानन्देन्द्र सरस्वती स्वामि, बेजवाडा, 23—9—35
2. श्री वेङ्कटराम शर्मा, आयुर्वेद विशारद, गुडिवाडा ,,
3. श्री लङ्का नरसिंह शास्त्री व्या. वेदान्त शास्त्री
4. श्री पेप्येटि वेङ्कट राव, बी. ए., बि. एल.
5. श्री पळञ्जे पूर्ण प्रज्ञाचार्युलु, संस्कृतोपाध्याय, गुण्टूर 27—9—35
6. गुण्टूर मण्डलस्थित वैदिक मतावलम्बिनां अयमेव आशयः श्रीलङ्का वेङ्कट नारायण शास्त्री।
7. श्रीरायप्रोलु वेङ्कटरामसोमयाजुलु, Retired Professor of Sanskrit, Nizam College, Hyderabad and Member of Board of Studies in Telugu, Madras University.
8. श्री वि. भोगप्पा शास्त्री, Retired Deputy Collector, Guntur.
9. श्री गुण्डुसूर्य अनन्त नरहरि, बी. ए., बि. एल.
10. डा० आर. कृष्णमूर्ति, गुण्टूर
11. श्री मल्लादि वीर राघव शास्त्री, न्याय विद्याप्रवीण
12. श्री साम्बशिव घनपाटी—श्रीपुष्पगिरि संस्थानं
13. श्री कृष्णघनपाटी—श्रीपुष्पगिरि संस्थानं
14. श्री अम्बलपूडि नरसिंह शास्त्री, रेपल्लै, पुष्पगीरि संस्थानं
15. श्रीहरिनागभूषण, वाग्गेयकाररत्न, बी. ए., बि. एल., सभापति, सनातनधर्म सभा, मसुलीपटम्
16. राळ्ळमण्डि वेङ्कट सीताराम शास्त्री, बी. ए., बि. एल., साङ्गवेद पाठशाला कार्यदर्शी, अखिल आन्ध्रदेश सनातनवर्णाश्रमधर्म्मसभा—कार्यदर्शी
17. नडिपूडि अग्रहारस्थानां सम्मतयः श्रीचेरुनागेश्वरस्वामि, 24—9—35
18. वेमूरी नरसिंहशास्त्री, शतावधानी, बापट्ला
19. इत्थमेव ममाप्याषय इति विज्ञापयामि श्रीमल्लादि आञ्जनेय शास्त्री, बेजवाडा
20. श्रीजगद्गुरुपीठ विषये उपर्युक्त एव अस्मदाषय गोचरो विषयः एवं विद्वांद्भधेयः श्रीशिरसनागानन्द सीताराम शास्त्री-नरसरावपेट
21. शङ्करमञ्चि प० लक्ष्मी नारायण शास्त्री, उपन्यास वाचस्पति, नरसरावपेट
22. उपर्युक्त विषयमेव अस्मदाषयः श्री प० प० दत्तात्रेयेन्द्र सरस्वती
23. बन्डलमूडी गुरुमुर्ती शास्त्री, तेनाली।

(इत्यादि 81 हस्ताक्षरों सहित व्यवस्था)

51

सामल्कोट से तीन विद्वानों के हस्ताक्षरयुत ताः 21-9-35 का एक विचार पत्र।

आस्तिकमतावलम्बिनः प्रत्येका विनयपूर्विका विज्ञप्तिः।

महाशयाः !

भरतखण्डे कैलासाधिपतिर्मायामानुषं शाङ्करं बिभ्रत् बौद्धादि सर्व दुर्मतानि नाममात्राणि कृत्वा आसेतु सीताचलं यथाविधिवेदमार्गं संस्थाप्य पुनस्तद्ग्लानये चतुर्दिक्षु चतुर्वेद रहस्यानि चत्वारि महावाक्यान्युपदिश्यचतुरःशिष्यान् दिग्विजय कैरण प्रभृति सर्वाधिका रैस्साकं धर्म्म राजधानीतया निर्मिम तेषु शृङ्गेरी, द्वारका, बदरी, पुरी नामकेषु चतुर्षु पीठेषुस्थातुमाज्ञापयामास। तेषुसर्वेषु शृंगेरीं सर्वश्रेष्टतया निजावासतयाच अङ्गीचकारेति शिवपुराण, माधवाचार्य विरचित शङ्कर विजयादि ग्रन्था विस्पष्ट मुद्घोषयन्ति। अवशिष्टानि सर्वाण्यपिपीठानि तच्छाखोपशाखकानि। अस्मिन् विशेषांशास्तु शांकरमठ विमर्श नामक ग्रन्थे विस्तारिताः। अन्यमिन्द्रङ्करिष्यामीतिवत् वयंकांची कामकोटि पीठस्थाः, आदिशङ्कराचार्य परम्परागताः, अस्माकमेव जगद्गुरवइतिबिरुदमस्ति, शृङ्गेरीत्यादयोमच्छिष्याःइत्येवमादिवादाःपामरजन विभ्रमहेतवो वेदशास्त्र विरुद्धास्सदाचार विरुद्धाश्चेति शिष्टजनग्राह्या न भवन्तीति।

52

म० म० पं० ताता सुब्बराय शास्त्री (विजयनगरम्) तथा 71 हस्ताक्षर सहित आन्ध्र, तमिल, मैसूर प्रदेश के विविध नगरों के विद्वान सज्जनों से 7—11—1935 को प्राप्त निर्णयपत्र। विजयनगर, गुन्टूर, कोल्लूर, कावली, मदनपल्ली, कडप्पा, अनन्तपुर, बेल्लारी, नेल्लूर, प्रोड्डूर, कर्नूल, काकनाडा, पिठापुरम, बेजवाडा, एल्लोर, छत्रपुर, चिदम्बरम्, मद्रास, शेलम्, वाणियम्बाडी, कृष्णगिरि, कृष्णराजपुरम् (तिरुचि), मदुरै, बङ्गलूर, मैसूर, शिमोगा, शृङ्गेरी इत्यादि शहरों के विद्वानों का हस्ताक्षर इस निर्णयपत्र में है।

श्रीकृष्णाकावेरी नद्योः मध्यदेशस्थितानाम् जनानाम् विज्ञप्तिः। भो! भो! महाशयाः, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकेत्यादि विरुदाङ्कितैः आदिशङ्कर भगवत्पाद पूज्यैःशाश्वत वैदिक प्रतिष्ठापनाय प्रतिष्ठापितानि पीठानि कति संख्याकान्, यत्र यत्र प्रतिष्ठापितानीति, अद्यतन विवाद विषयीकरणम् साहसमेव। सुविदितमेव सर्वेषां आस्तिक जनानाम् विदुषां च चत्वार्येव पीठानि। वदरिकायाम्, शृङ्गपुर्यां, द्वारकायाम्, जगन्नाथ पुर्यां च आचार्यवर्यैःप्रतिष्ठापितानीति। श्रीमद्विद्यारण्यव र्यैरपि स्वकीय शङ्करविजयाख्यमहाग्रंथे, श्रीमत्व्यासमुनि विरचिते शिवपुराणे च अन्येषु प्रमाणेषु ग्रंथेषु च स्पष्टी कृतमेव। अस्मिन्विचारणे एकोप्रश्नः संजातः। तस्य समाधानमपि सुविदितमेव। पुष्पगिर्यादि उपपीठानि भगवतां आचार्याणां कैलास गमनानन्तरं तच्छिष्य प्रशिष्यैः धर्म परिपालना सौकर्याय न किम्वति विस्तारित भूमन्डलानि मन्डलीकृत्य प्रतिष्ठापितानीति। किञ्च कांचीपुर्यां कामाक्ष्या उग्रता निवारणाय पुरः श्रीचक्रमेव प्रतिष्ठापितम् आचार्यवर्यैः न तु मठ इति च। श्रीमदाचार्यवर्यैः श्रीचक्र प्रतिष्ठापना पूर्वक मठ प्रतिष्ठापनं तत्र तत्र स्थिता आचार्याणां बोधनैः चार्वाकादि मत जनित मानसिकतमःतत्तदौपनिषदर्थ विमर्श सामरस्य पूर्वक अखंड अद्वैतालोकेन दूरीकृत्य मनप्रसादम् कल्पयितुमेवहि, न तु मत्पीठः आदिः त्वत्पीठोऽवरः, अहं आचार्य श्रेष्ठः त्वं अवरः इत्यादि मतन्यूनीकरण सहायभूतानि अहंकार जनितानि व्यर्थ प्रसङ्गानि प्रसङ्ग्य अज्ञानिनां क्षमायिकानां शिष्यानां मनांसि कलुषिकर्तुं। हन्त! एतादृषान् प्रसङ्गान् आकलय्य संघसंस्कर्तारः परिहसन्ति वैदिक मतं दूषयन्ति च। लोकेहि अद्यतन विवादभूतं कुम्भकोणस्थ पीठं आचार्य पीठमिति कदापि कथापि नास्त्येव खलु। तथैव कुम्भकोण पीठस्थानां आचार्याणां 'इन्द्रसरस्वती' सांप्रदायः आदि भगवत्पादानां आचार्याणां दशविध संप्रदायानां मध्येवन्ध्यापुत्र सदृश एव भवति खलु। तत्पीठस्थ आचार्यवर्याणां प्रमाणरहित वाक्य प्रसङ्गम् विसम्बद्ध प्रलाप एवहि।

53

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य वर्येत्यादि विरुदाङ्किताः श्रीमदादिच्छङ्कर पूज्य पादाः कुमतानि निराकृत्य संस्थाप्य षण्मतानि। अद्वैतमतप्रचारार्थं श्रृङ्गगिर्यादिषु चतुर्षु स्थानेषु पीठानि संस्थापितवन्तः। तत्र सर्वात्मना प्राधान्य-मधितिष्ठति श्रृङ्गगिरि पीठ मित्यत्र न कापि विप्रतिपत्तिः सर्वेषामस्माकम्। अस्मदीय सम्प्रदायानुरोधेन श्रीश्रृङ्गगिरि पिठाधि-पतयो जगद्गुरव इतिनिश्चप्रचं विज्ञापयति।

गा० हनुमच्छास्त्री, प्रधानोपाध्यायः।
वेद संस्कृत पाठशाला, नेल्लूर, 8—10—1935

54

पं. वि. एस. रामचन्द्र शास्त्री, विद्वान श्री श्रृंगेरी मठ, वर्तमान अध्यापक—बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अपमे पत्र ताः 9—11—1935 में लिखते हैं:—

निश्चप्रचमिदं विपश्चिदपश्चिमानाः यत् इहखल्वार्हतादि कुमत सन्तमस मलीमसे वैदिकधर्ममार्गे भगवानुडु-पतिकलाचूडः श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद रूपेणावतीर्य दुर्मतध्वांतं दूरीकृत्य आस्तिकमतं प्रतिष्ठाप्य प्रकाश्यौपनिषदं हृदयं अनुज-ग्राह भारत भुवमिति। प्रेक्ष्य च प्रतीच्यादृश्या भविष्यन्तीं दुष्कलिनिमित्तां दुरवस्थां तदपाकरणेन वैदिकधर्मक्षेममाचक-लयिषुः प्रत्यष्ठिपत् श्रृंगगिरि द्वारका जगन्नाथ बदरीक्षेत्रेषु चतुर एव मठान् अवस्थापयच्च सुरेश्वर प्रमुखान् चतुरः शिष्यवरिष्ठान् तेऽिवति नेदमनिर्णीतं मठाम्नाय शंकरविजयादि प्रामाणिक ग्रन्थपरिशीलिनां श्रीमदाचार्य प्रतिष्ठापितेषु चतुर्षु मठेषु धर्मपरिपालन धुरं निर्वहत्सु, तत्रत्य भद्रपीठी (ठ) मलङ्कुर्वाणा परम्परायाताः गुरुवरेण्याः तत्तत्कालवशानुगां अधर्मपथानुवर्तितां तत्तद्दे शीयानां जनानां अपाचिकीर्षवः, स्वाशयानुवर्तिनः विनेयान् (विनीतान्) तत्र तत्र न्ययुञ्जत॥ तेचावलम्ब्य जनानां सौ हृदय्यं पूर्वोक्तपीठ चतुष्टयाज्ञा जागरूकान् उपपीठान् अचीक्लृपन्। एवं गच्छति बहुतिथे काले वैभवात् पापीयसः कलेः उपपीठाधिष्ठिताः केचन अवधूय मठाम्नादि ग्रन्थजातं, निर्माप्य कैश्चित् कवि वरेण्यैः स्वाशयानुगुणमेव, कैश्चिदपि प्रामाणिकैः अपरामृष्टपूर्वान् ग्रंथान् स्वीयमेव मठ श्रीमदाद्य शंकर भगवत् पादाधिष्ठितमामनंतः मोहयन्तः अज्ञजनतां महांतं कोलाहल भारमातन्वते॥ हंहो! पापकले! तवप्रभावतः किं किं वैदिकधर्मस्य न संभावयिष्यते। एकत्र म्लेच्छाद्यभिभवः, अपरत्रास्मदीयानामेव सुधारकाभिधानां दुरुपद्रवः। सम्प्रति सर्वैरपि आस्तिकवर्यैः ऐकमत्येन स्वीयं वैमत्यं अपाकृत्य, सम्भावित सर्वोपप्लवान् विद्राव्य वैदिक धर्मप्रचाराय क्रियासमाभिहारेण दृढतरे यत्ने आस्थेये, अप्रामाणिकान् वृथाकण्ठक्षोभ पर्यवसानान् स्वयूथ्यमेद न चणान् दुर्वादान् स्वयमुत्थाप्य वैदिक धर्ममार्गस्य विशरारोः समूलघातं हनन प्रयतनः नितरां दुनो-तिनो मानसं। अतोवयं सांजलिबंधमभ्यर्थयामहे यदवधूय परावरंवादमास्थाय श्रीमदाचार्यकृतमर्यादापालनमालम्ब्य वैदिक धर्ममार्ग समुद्धरण एव दृढतममुत्साहं भाजनीभूय श्रीमदाचार्य भगवत्पादपरमानुग्रस्य अनुगृहीयुः उपपीठाधिष्ठिता यतिवरेण्याः इति शं॥

55

पं श्री कुरुगंटी वेंकटरमण शास्त्री, अध्यक्ष, सुन्दरी विलास संस्कृत पाठशाला, वेमुरु (आन्ध्र) तथा पं. श्री तूमुलूरु शिवरामकृष्णमूर्ति शास्त्री, प्रधानाध्यापक, खड्गेश्वर स्वधर्म संस्कृत कलाशाला, सिकंदराबाद (दक्कन) से 21-11-1935 को प्राप्त व्यवस्था।

विचार्य संप्रदायज्ञान् विमृश्य च पुनः पुनः।
श्रीमज्जगद्गुरुमठ निर्णयः क्रियतेऽधूना॥

श्री मान् जगद्गुरुरादिशङ्करः दिग्विजयानन्तरं वर्णाश्रमधर्म परिपालनाय चतुर्दिक्षु चतुरो मठान् स्थापयित्वा तेषु पद्मपादादि प्रधान शिष्यान् अभिषिच्य स्वयं दक्षिणे शृङ्गगिरि मठे सुरेश्वरेण सेव्यमान उवास। पश्चात् काश्मीरेषु सर्वज्ञ पीठाधिरोहणं कृत्वा कैलासं प्रापेति सर्वत्र प्रसिद्धतरः पन्थाः।

मठचतुष्टयातिरिक्तं न कंचिदपि मठं श्री मदाचार्यवर्य आदिशङ्करः प्रकल्पयामास। आदिशङ्करनिर्मितः पञ्चमों मठोऽस्तीति वक्तुर्जिह्वायै शतशी नमस्कुर्मः।

आदिशङ्कर प्रधानशिष्यैः संप्रदाया दश शिष्योपशिष्य द्वारा प्रवर्तिताः। तदतिरिक्तः संप्रदायो नास्तीति सर्वयति संप्रतिपन्नमेव। अस्मद्गुरु परंपरागते इन्द्रसरस्वती सांप्रदायिके आम्नायस्तवे एवं श्रूयते।

तीर्थाश्रमौ पद्मपादशिष्यौ द्वौतु सरस्वती।
पुरी चभारती चैव सुरेशस्यानुयायिनः।
हस्तामलक शिष्यौ द्वौ वनारण्या वितिश्रुतौ।
तोटकाचार्य शिष्याश्चगिरि पर्वत सागराः॥ इति।

एवं तत्तन्मठाधिपानां तत्तन्नाम्ना संप्रदाय प्रवर्तकत्वे श्रुतेपि शृङ्गगिरि मठाधिपस्य तु सर्वनामभिः सर्व संप्रदाय प्रवर्तकत्वमपि शृङ्गगिरि मठाधिपानां केषांचित् तीर्थादिनामधारित्वमेव द्योतयति।

पश्चात् तत्तन्मठाधिपैर्वर्णाश्रम धर्म परिपालन सौकर्याय शाखामठाः कल्पिताः। तत्र शृङ्गगिरि मठाङ्गत्वेन श्री सुरेश्वराचार्यैः प्रथमं कामकोटिमठः कल्पितः। ततः श्रीविद्यारण्य स्वामिभिः विरूपाक्षमठः कल्पितः। एवमेव तत्काले तत्तन्मठाधिपतिभिः पुष्पगिर्यभिनव विरूपाक्ष शिवगङ्गादि शाखामठाः कल्पिताः। तदधिपाः सर्वे देशं विभज्य वर्णाश्रमधर्म परिपालनमद्यापि कुर्वन्ति। सर्वेऽपि मठाधिपाः शंकराचार्या इति जगद्गुरव इति च आदि शङ्करगतं गौरवं लभन्तोदृश्यन्ते। तत्र कामकोटि मठविमर्श इत्थम्। श्रीमादादि शङ्करः सर्व मठ प्रकल्पनानन्तरं काञ्च्यां श्री कामाक्षी सन्निधौ कंचित् काल मुवास ततश्च कश्चिद् पण्डितः सन्यासाय श्री मदादिशङ्करं संप्राप्य तस्माद् लब्ध सन्यासः सन्यासिनां शास्तारमिन्द्रं तपसा संतोष्य तस्मात् सर्वज्ञत्वं सन्यासाश्रमं च संप्राज्य तेन चोदितः सांप्रदायिक दण्डादिग्रहणाय आदिशङ्करं कैलास गंश्त्वा श्री शृङ्गगिरि मठाधिपस्य श्री सुरेश्वराचार्यस्य सकाशं गत्वातेन सन्यास प्रदातुरिन्द्रस्य नामोपपद सरस्वती संप्रदाये प्रवेशितः तच्छिष्योभूत्वा सर्वज्ञात्म मूनिरिति प्रसिद्धिंगतः संक्षेपशारीरकादि ग्रन्थकर्त्ता बभूव इति। पश्चात् सुरेश्वरः काञ्च्यां कंचित् शाखामठं कल्पयित्वा तत्र स्वशिष्यं सर्वज्ञात्म मुनिं निवेश्य दक्षिण देश वर्णाश्रम धर्म परिपालनाधिकारं तस्मै ददाविति च। सचतत्र चिरकालं स्थित्वा संप्रदायं प्रवर्तयित्वा तत्रैवसिद्धिं गत इति च। तत्संप्रदायस्थाः सर्वेऽपि सन्यासिनः इन्द्र सरस्वती नाम धारिणः आदि शंकरगतं जगत् गुरुत्व पदमर्हन्तीतिच संप्रदायज्ञाः शिष्टाः सन्यासिनश्च वदन्ति।

एवं स्थिते दाक्षिणात्याः पण्डिताः श्रीश्रृङ्गगिरि मठाधिपानां सर्वाधिक्यमसहमानाः सर्वज्ञात्वमुनेः पीठाधिरोहणं श्रीमदादिशङ्कर पीठाधिरोहणत्वेन शङ्कराचार्य नामधारिणः तस्य समाधि प्रवेशमेव श्रीमदादिशङ्कर समाधि प्रवेशत्वेनच कलपयित्वा तदनुकूलतया श्री विद्यारण्य मुनिकृत शङ्करविजय विरुद्धान् शङ्करविजयादि ग्रंथान् विरच्य काञ्च्याः तत्पीठं स्वदेशस्थं कुम्भकोणंनीत्वा चतुर्णामपि मठानां आदित्वं सर्वाधिक्यं च व्यवहरन्तो दृश्यन्ते। तद्वद्धुनापि श्रीकाशीक्षेत्रगताः दाक्षिणात्याः पण्डिताः औत्तरीयान् पण्डितान् कांश्चिन् राज्ञश्च स्ववशंनीत्वा तदाधिक्यं प्रकटयन्ति तथापि सर्ववेदभाष्यकर्तुः सर्वज्ञस्य श्रीविद्यारण्य मुनेः शङ्करविजय विरुद्धं काशीस्थ प्राचीन पण्डित निर्णयविरुद्धं च प्रमेयं सांप्रदायिकाः शिष्टानाद्रियन्त इति सुविदित मेव। निर्णयस्तु।

श्रीमदादिशङ्कर कल्पिताश्चत्वार एव मठाः। कामकोटि विरुपाक्ष पुष्पगिरि अभिनव विरुपाक्ष शिवगङ्गादयः श्रीश्रृङ्गगिरि शाखा मठा एव। मठाधिपाः सर्वेपि श्रीमदादिशङ्कर संप्रदायस्थाः शंकराचार्य नाम धारिणः जगद्गुरुत्र एव सर्वाधिक्यं श्रीश्रृङ्गगिरि मठस्यैवेति निश्चितम्।

56

अस्मिन् शिवरहस्य, मठाम्नाय, माधवीय, सदानन्दीय, गुरुपरम्परा चरित्रादि विरचित ग्रन्थाः प्रमाणतया शिष्टत्रैवर्णिक परिगृहीता एव प्रमाणानि। नानन्तानन्दगिरि विरचित शङ्कर विजयाख्यो ग्रन्थ उपरिष्टान्निर्दिष्ट प्रमाणविरोधी, शिष्टापरिग्रहाच्च, भवदीय 'विमर्श' परिदृष्ट हेतुमिश्र प्रमाण भाग्भवति। चत्वार एव मठाश्चत्वार एव शिष्याः त एव धर्म राजधान्यः तत्राभिषिक्ता एव जगद्गुरवः तेषु चतुर्ष्वपि मठेषु श्रृंगगिरि मठ एव प्रधानः। अयं तु स्वकपोल कल्पित नवीन एव। श्रृङ्गगिरेरन्यत्र न आचार्यैः स्वनिवासार्थं स्वाश्रमस्य निर्मितिः कृता।

पं० बलदेव मिश्र, साहित्याचार्य्यः, काव्य व्याकरणतीर्थः।
कलकत्ता, 24-12-35

57

प्रोफसर रामनारायण सिंह, बी. ए., एम. आर. ए. एस., साहित्यरत्न, आषुतोष कालेज, कलकत्ता से 25-12-35 को प्राप्त पत्र में लिखते हैं :—

श्रीकाञ्ची कुम्भकोण मठाधिपतयः साम्प्रतिकाः प्रतिष्कसैः पण्डितैः प्रणुम्नाः श्रीमदाद्यशङ्कर भगवत्पादाचार्यैः चतुष्टसुदिक्षु शुद्धाद्वैतमत प्रचारणायस्वेन संस्थापित वैदिक धर्म परिपालनार्थं च श्री श्रृंगगिरि, द्वारका, बदरिकाश्रम जगन्नाथ क्षेत्रेषु चतुरोमठान्निर्माय स्वशिष्यान् सुरेश्वराचार्य प्रभृतीन् संस्थाप्य श्रीकाञ्च्यां श्रीचक्रं प्रतिष्ठाप्य तत्रैव निजावास योग्यं मठमपि परिकल्प्य आचार्याः ऊषुः। अतोऽस्माकम् मठएव साक्षात् शङ्कराचार्यैरधिष्ठितत्वात् गुरुमठः वयमेव केवलं जगद्गुरु पदवी भाजः श्रीश्रृंगगिरि, द्वारका, प्रभृति मठाः शिष्य मठाः इत्येवं तत्र तत्र प्रदेशेषु पुरोगैः प्रतिष्कसैः प्रकाशयन्तः क्रमेण काशीं प्राप्य आत्रापि पञ्चष मासान् अवसन्। तदनुसारिणः काशीस्थाः तत्सम्मानिताः केचन पण्डिताः तेनैव

प्रद्युम्नाः काञ्चीकामकोटि कुम्भकोण मठ विषये अभिनन्दन पत्र व्याजेन कन्चन निर्णयं प्राकाशयन्। 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक ग्रन्थे 71 पृष्ठे प्रकाशितानां दशानां प्रश्नानां प्रतिवचनमदत्वा केषांचित् प्रश्नानां स्वेच्छयोद्धृतानामेव प्रतिवचन अभिनन्दन पत्रे ऽलेखयन्। अतः कुतूहलेन किञ्चिदत्रोल्लिखामि। श्रीशङ्कर भगवत्पादाचार्याः कामकोटि कुम्भकोण मठं प्राकल्पयन्निति यदि निर्णयोऽभविष्यत् तदा उभये मनोरथ सिद्धिरभविष्यत्। अतः उपर्युक्त मठः भगवत्पादाचार्यैः न निर्मित इति वक्ष्यमाणहेतुभिर्निश्चीयते। यद्याचार्याः उपयुक्त मठं पर्य्यकल्पिष्यन्त तन्मठं नियमबोधक आम्नायमपि पर्य्यकल्पिष्यन्त। अस्मन्मठस्य गुरुमठत्वेन नियमबोधक आम्नायो नाकांक्षत इति न शङ्क्यम्। चक्रवर्तिन इव सामन्त नृपतिषु प्रवृत्ति विषये तथा गुरु मठीयानामपि शिष्य मठाधिपतिषु वर्तितव्य विषये नियमबोधक आम्नायस्य आवश्यकत्वात्। इतोपि न पूर्वोक्त मठः भगवत्पादैः निर्म्मितः गुरुमठीयानां आम्नायस्यानावश्यकत्वेपि शिष्य मठीयाः गुरु मठीय विषये कथं वर्तितव्यमिति उल्लेखनस्य शिष्य मठीय नियमबोधक आम्नाय ग्रन्थेषु अनुल्लेखात्। किंच। इतोपि न सिद्ध्यत्याचार्य निर्मिततोक्त मठस्य। यदा कदाचितद्वा गुरु मठीयानां सन्दर्शनाय वा सांवत्सरिक नियमित कर प्रदानाय वा शिष्य मठीयानां प्रवृत्तेरदर्शनात्। सामन्तराजेषु तैःर्देय वर्षिक कराऽप्रदाने चक्रवर्तिना प्रद्युम्नाः मन्त्रिणो वा आप्तान्तरङ्ग अधिकारिणो वा तत्र गत्वा तान् प्रदन्ड्य यथा नियुक्त कर आहरणं कुर्वन्ति तथा जगद्गुरुत्वाभिमानिभिः शिष्यमठीयेवेवमकरणात्। कुतो वैवमपन्हूयते आनन्दगिरि शंकर विजयः प्रमाणत्वेन तन्मठ विषय उदाहृत इति न वाच्यं। शिष्टापरिगृहात् नामत ग्रन्थकर्तरि भ्रमाच्च। 'विमर्श' ग्रन्थे आनन्दगिरि शंकरविजयस्याप्रमाणताया व्यवस्थापितत्वाच्च। किमयमानन्दगिरिः तोटकाचार्य अपरनामा भगवत्पादाचार्य शिष्यः। किं वा प्रस्थानत्रय भाष्यव्याख्यात्रानन्दगिरिः आहोस्विन आभ्यामन्यः कश्चन त्रितीयो वा। न तावदाद्यः। तस्य तोटकछन्दस्कवृत्तोज्वलितश्रुतिसारसमुद्धरण कालनिर्णयाख्या ग्रन्थ मात्र कर्तृत्वात्। नापि व्याख्याता आनन्दगिरिः। व्याख्यात्रानन्दगिरेस्तु अश्रौतभेदगिरिं विदारकाद्वैत न्याय निर्णयाख्य व्याख्यान रूप शतधार विधायकत्वात्। कोयं तर्हि तयिल पायिकेन अन्तरालेऽवलम्बते उभाभ्यामन्य एतद् ग्रन्थ रचयित्रनन्तानन्दगिरिरितिचेत्, श्रुनु। शांकरं द्विषत्रवैदिकं तंत्रस्य प्रतिख्यापयिषुः प्रद्युम्न सखो मधुरिति जानीहि। अतः न नाम्नाभ्रमितव्यं कुशलैरस्य शंकरविजयस्य रचयिता भगवत्पाद शिष्य इति वा प्रस्थानत्रय व्याख्यातेतिवा। तन्मठाधिपत्युक्तया च नवति वत्सरेभ्यः पूर्वस्थित आनन्दगिरिणायं ग्रंथो विरचित इत्युक्तेः भगवत्पाद शिष्य ग्रन्थ व्याख्यातृभ्यां अन्य एवेति निश्चीयते। अतोऽपि आनन्दगिरि शङ्कर विजयः अप्रमाणिकः।

भगवत्पादाचार्याणां समाधेः काञ्च्यां सत्वेन अस्माकं मठः शाङ्कर इति न वक्तव्यम्। शिवरहस्य, माधवीय, चिद्विलास, सदानन्दादि ग्रन्थतः श्रीभगवत्पादानां सशरीर कैलासगमनावगमात्। किंच यथा योगी सदाशिव ब्रह्मेन्द्र मन्त्रालयस्थ राघवेन्द्र वृन्दावन सेवायै भक्त जनानां प्रवृत्तिःतथा विश्वगुरोः परमेश्वर शङ्कर रूपेणावतीर्ण परमेश्वरस्य समाधि यदि काञ्च्यां स्यात् स्वेष्टाप्तये भक्त जनास्तमपि सेवेरन् न तथेति न तत्र भगवत्पादानां समाधिः अतोपिनायं शङ्करो मठः। ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत मार्कण्डेय संहितामपि अस्माकं मठस्य मूलमिति प्रमाणयन्ति। नेयं ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गता। न वा वायु, कूर्म, लिङ्ग, भविष्योत्तर पुराणादिवत् प्रसिद्धा। माधवीय, चिद्विलासीयादि, आचार्य चरित्र प्रतिपादक ग्रंथेषु नोद्धृता। अतोपि इयं आदरणीया न भवति। कुम्भकोण मठीयानां प्रकृतिस्तु ये किल प्रसिद्धाः सैन्यासिनः ते अस्मत्परंपरान्तर्गता अस्मच्छिष्या एवेति प्रकथनमेव। तथा रेणुका तंत्रतः गुरुपरंपरया च श्रृङ्गेरी शिष्य परंपरामनुगताः श्री विद्यारण्य स्वामिनः सर्वजन विज्ञान विषया अपि कुम्भकोण मठीयाः अस्मत् परंपरयामागताः अस्मच्छिष्याः कस्मिंश्चित्समये श्रृङ्गेरी परंपरया उच्छेदन्दृष्ट्वा अस्माभिरेव श्रृंगेरी पीठोद्धरणार्थं संप्रेषिता इति वदन्ति। नैतत्साधु। यदि विद्यारण्य स्वामिनः कुम्भकोण शिष्य परंपराया मागतास्युः किं स्वगुरू परम्परां हित्वा अन्यमठीय परम्पराम्राश्रिताः तन्मठ प्रख्यापनाय

शृंगेरी-मठ शाखा मठत्वेन स्वीय विरूपाक्षी, पुष्पगिरि, शिवगङ्गेत्यादि मठानां संस्थापनं कथंकुर्युः। स्वगुरु परम्पराया तिरस्करणे च कृतघ्नता मेव स्वात्मानं प्रकटितं स्यात्। नचैवं अतोवगम्यते। नैते श्री विद्यारण्य स्वामिनः कुम्भकोण शिष्य परम्परायामागता इति। कुम्भकोणीयानां कथनं तु केवलमात्मश्लाघार्थं मेवेतिगम्यते।

ऐतेषां सविधे मठ प्राचीनतायां एकं ताम्रशासन वस्तीति सर्वत्र प्रकथयन्ति। नैतत्प्राचीनतायां नवीनतायां वा मठस्य प्रमाणं भवति। ये किल राजा शासन प्रदातारस्तेषां संततिस्संप्रति विद्यते न वेति न कोपि जानाति। यदि सर्वनृपतिभिरेते सम्मानितास्युः पत्तन ग्राम मध्येषु विद्यमानाः कुम्भकोणमठीयाः कथं वा न प्रसिद्धि भाजः स्युः। किंच तंजौर शरभोजि महाराज काल एवायं मठोनिर्मितः तस्यैकस्य गुरुरभवन्नेति, एतर्हि जगद्गुरुत्वं, सर्वशास्तृत्वं च प्रकटयितुमारब्धाः इति दक्षिण देशीया जन श्रुतिरस्ति। नात्र यथाभूतं तत्वं निर्णयितुं समर्थाः।

शृङ्गेरी मठस्तु शिवरहस्य, माधवीय, चिद्विलास, सदानन्द, गुरुपरम्परा चरित्र, मठाम्नायादिषु, च संप्रति विदेशीयेषु च आद्यशंकराचार्य स्थापित चतुर्षु पीठेषु प्रधानत्वेन स्वकीयत्वेन च प्रसिद्धेः प्राचीनः।

एतावता प्रबन्धेन उपरिष्ठान्निर्दिष्ट हेतुभिश्च नायं मठ शङ्कराचार्य परिकल्पितः।

58

पं० श्रीकरुणाशङ्कर शर्म्मा, व्याकरणाचार्य, धर्म्मशास्त्राचार्य, प्रधानाध्यापक-अमृतचिकित्सालय विद्यामन्दिर, सरसपुर-अहमदाबाद से 15—3—1936 को लिखते हैं :—

अयिविद्वद्वर्याः

नास्त्यविदितं तत्रभवतां सर्वेषां विदुषांयत् शिवावतार भगवज्जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्यैः शृङ्गेरी, द्वारका, बदरिनारायण, जगन्नाथ क्षेत्रेषु, (चतसृषु दिक्षु) संस्थापिता मठाश्चत्वार एव। अतस्त एव जगद्गुरुमठाः तत्पीठस्था आचार्या एव जगद्गुरुपदवाच्याः। चतुर्ष्वेतेषु मठेषु न कश्चिच्छ्रेष्ठत्वादि भेदोऽपि तु समा एव ते सर्वे।

प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्मेत्येतान्येव महावाक्यानि, न तु ॐ तत्सदित्यादीनि। अत्र मठाम्नाय, शङ्कर दिग्विजयादि ग्रन्था एव प्रमाणीभूताः। आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय, शिवरहस्यादि ग्रन्थानामप्रामाण्यन्तु स्व० प्रातः स्मरणीय पं० पू० म० म० श्री शिवकुमार शास्त्री प्रभृतिभिः प्रागेव प्रदर्शितमिति तद्विषये विरम्यते।

59

पं० श्रीकेदारनाथ ओझा, अध्यापक, राजकीय संस्कृत विद्यालय, पटना से 24-11-60 के पत्र में लिखते हैं :—

प्रस्तुत विषयेच यथा प्राचां वाराणसेयानां विदुषां मद्यत्मनाञ्च सम्मतं तथैव अहमपि मन्ये, तथैव प्रमाणमपि उपलभे, परं कलहेऽनावतरामि, यतो जगद्गुरु प्रभृति पदवीषु निर्णयाय न संस्कृत विद्वांसोऽधिकुर्वते, किन्तु साधवस्तदनुगन्तारश्च स्वेच्छयायत्रकुत्रापि योजयन्ति, चिन्हानितु मराऽलीशाज्ञयाऽपिवोढुं प्रभवन्ति? अतो बहवोऽधुना जगद्गुरवः, श्री शङ्कराचार्य पदवी भूषितास्तदङ्कानि वहन्तोऽपि अष्टदशत्वाविराजन्ते। किं कलहेन? नास्त्यधिकारोऽवरोधुं केषामपि, तन्मौनेनावस्थान मेवपरम्।

भवतश्चात्र प्रमाणानि संग्रहणतो भृशं परिभ्रमंमतश्चधन्यान् पदन् विरयामि। किमधिकेन?

60

संपादकीय नोट—80 वर्ष वृद्ध मेरे पूज्य पिता पं० ज. ग. विश्वनाथ शर्माजी का देहान्त 20-11-1959 को अपने स्वगृह काशीधाम में हुआ था और आपने निम्न लेख सितम्बर माह 1959 ई० में लिखा था। आपके देहान्त पश्चात् मैं ने आपके दस्तान् में यह लेख पाया। आपने यह लेख क्यों लिखा और किसके लिए लिखा सो विषय मालूम पडता तहीं है। सम्भवतः आप इस लेख को कहीं भेजना चाहते थे। अब इसे मैं यहां अन्य विचार पत्रों के साथ प्रकाश करता हूं। मेरे पूज्य पिता ने अपने इस लेख में अन्यत्र उपलब्ध कुछ पंक्तियों को भी उद्धृत कियां है।

वयं न कंचनमठं मठाधिपं वा स्तोतुं निन्दितुं वा समीहामहे। किन्तु यथाभूतं तत्त्वं जिज्ञासूनामावेदितुमेवेहामहे। अतः अधस्तादुल्लिख्यमान यतार्थतत्त्व प्रकाशकं लेखनं सम्यगवलोक्य यतार्थतत्त्वं तत्र भवन्तः पन्डिताः विदाङ्कुर्वन्त्वित्यभ्यर्थयामहे।

अथ निरुपाधिकरुणा पयः पयोराशिः कैलासाचलनिलयः भगवान् परमशिवः स्वयं त्रयीधर्म्मविभ्रष्टन्दुःखनिमग्नं भूमण्डलमुद्दिधीर्षुः केरलदेशे कालटी नामकाग्रहारे निवासिनः निजभक्त शिरोमणेः शिवगुरोस्तद्धर्म्मपत्न्यामार्याम्बायां शङ्कर रूपेण अवततार। अवतीर्णे शङ्कररूपी भगवान्यथाकालं लब्धसंस्कारः पूर्वाचारपरिरक्षणाय गोविन्दभगवत्पादाचार्याणां सकाशाद्गृहीततुरीयाश्रमः आसेतुशीताचलमध्यवर्ति बौद्धचार्वाकादि वैदिकधर्म्मविरुद्धं मतं तिरस्कृत्य सुधन्वादीन् राज्ञः आन्वीक्षिक्याद्यशेष राजतंत्रपरिशीलितान्विधाय, स्वेन पुनस्संस्थापितान्ब्रह्मक्षत्रादि वर्णाश्रमादि धर्म्मानप्रच्युतं परिपालयितुमाज्ञाप्य अथ च चतुर्दिक्षु चतस्रः धर्मराजधानीः शृङ्गेरी, द्वारका, जगन्नाथ, बदरी क्षेत्रेषु शृङ्गेरी, शारदा, भोगवर्द्धन, ज्योति मठापरसंज्ञकाः आरचय्य तत्र स्वीयान् सुरेश्वर, पद्मपाद, हस्तामलक, तोटकाख्यान्मुख्यान् चतुरः शिष्यानधिपतीन्विधायतेभ्यः ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्य धर्म्माचारादि रक्षणे तद्धर्मव्यतिक्रमे शिक्षणाधिकारं स्व स्व विषयेषु पर्य्यटनाधिकारंचदत्त्वा आसेतुशीताचल मध्यवर्त्ति निखिल देव देवी तीर्थ क्षेत्रोद्धारणञ्च कृत्वा, श्रीकाश्मीरे सर्वज्ञपीठारोहणं कृत्वा, श्रीबदरिकाश्रमे श्रीब्रह्मादि देवैरभ्यर्थितः निर्वर्तिताशेष देव मनुष्य कार्यः स्वकं शैवंधाम जगामेत्येतत्सार्वलौकिकं। श्रीमच्छङ्कराचार्यैः दिक्चतुष्टये विभज्य वेद चतुष्टयं महावाक्य चतुष्टयं मठ चतुष्टयं स्थापितम्। चत्वार एव मठाः चत्वार एव शिष्याः त एव धर्मराजधान्यः तत्राभिषिक्ता एव जगद्गुरुवः। मठ चतुष्टयातिरिक्तं न कंचिदपि मठं श्रीमदाचार्यवर्य आदिशङ्करः प्रकल्पयामास। "मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वाराश्च धुरन्धराः। संम्प्रदायश्च चत्वार एषा धर्म व्यवस्थितिः॥" अस्मिन् शिवरहस्य, मठाम्नाय, माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, केरळीय विरचित शङ्कर विजयादि ग्रन्था, गुरुपरम्पराचरित्र, शिवतत्वरत्नाकर, माणिक्य विजयादि ग्रन्था प्रमाणतया शिष्टत्रैवर्णिक परिगृहीता एव प्रमाणानि।

एवंस्थिते एकस्मिनन् समये दक्षिणस्यान्दिशि शृङ्गेर्यां सर्वप्रधानतया संस्थापित सुरेश्वराचार्य परंपरागता केचन आचार्याः श्रीविद्यारण्य स्वामिनः स्वयमेव सर्वत्र धर्म्मव्यवस्थापनादिकं यथाकालं कर्त्तुमशक्यमिति पुष्पगिरि, विरुपाक्षी, शिवगंगा, आवणी, इत्यादि अनेक शाखा मठान् संस्थापयामास। तेषु कुम्भकोण मठीया शृंगेरीपीठस्य स्वदेशे द्वीप द्वीपान्तरेष्वपि प्रसिद्धिं सर्वतः प्राधान्यं सर्वशासयित्रृत्वं चासहमानाः कतिपयवत्सरेभ्य आरभ्य स्वस्य शाखामठाधिपत्वमपनिनीषया कतिपय पुस्तकान्यालिख्य शृंगेरीपीठाधिपं तत्परंपरां च स्वशिष्यप्रदेशेषु निन्दयन्तः अभ्रपटलमिव सूर्यं स्वमूलमठमाच्छाद्य तत्र तत्र स्वोत्कर्षमेव ख्यापयन्तोऽवर्तन्त। साम्प्रतिका कुम्भकोण मठाधिपाः हूण गीर्वाण भाषानिष्णाता

लौकिक संविदानचंचवः एकपद विन्यासेनैव वामनैव आसेतुशीताचल मध्यवर्ति भरतभूमौ अहंमेक एव श्रीमच्छंकराचार्य गुरुपदवींमारूढः भरतखंडस्य अहमेक एवाचार्यः जगद्गुरु पदभागिति विजयध्वज निखननाभिलाषुका समुद्रमण्डूकन्यायानुसारिणः लालसिभिः नूतन गायनयन्त्रायमाणैरव्यक्त अव्यक्त उत्कोचादान पटीयोभिः पारमार्थयतां प्रगटयद्भिः दोषज्ञैः प्रणुन्नाः श्री प० प० श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वति स्वामिनः कूपमंडूकायमानां स्वपूर्वतनगुरुप्रवृत्तिं शीतकांमत्त्वा झडित्येव झंझामारुतइव स्वकीय कला कौशलेन स्वदेश विदेशेषु आत्मानं प्रचिख्यापइषवः पुण्यतीर्थ क्षेत्रे पर्य्यटन व्याजेन आसेतु शीताचलं परिभ्रमन्तः क्षेत्रोपनिषदं वाराणसीं शनैः शनैः प्राप्य अत्रापि पूर्वतनैः पण्डितैरुत्कर्षं प्रापिताऽपि अभूतपूर्वावनतिं गता अपि सर्वोत्कर्ष बुभूषातर्ष समाकर्षितान्तः करणाः स्वाविभूतिं निद्रालुरिवाविदन्तः मयूराइव आनन्दिनो भ्रमन्ति। अन्ये शाखामठाधिपास्तु स्व मठ संस्थापकानां मूलगुरूणां कृतज्ञतां स्व विरुदावल्या वृत्त्या च प्रकटयन्तः तैंर्प्रदत्त स्वीय प्रदेशेषु तदीयाज्ञया शिष्याननुगृह्णन्तो यदा कदाचिदासेतुशीताचलमध्यवर्ति सर्वतीर्थक्षेत्र पर्य्यटनेपि अनुल्लङ्घित स्व संप्रदाया एव न परं एत इव वर्तन्ते। एतेषां प्रकृतिस्तु ये किल प्रसिद्धाः संन्यासिनः ते अस्मत्परंपरान्तर्गता अस्मच्छिष्या एवेति प्रकथनमेव। तथारेणुकातंत्रतः गुरुपरंपरया विजयनगर संस्थान अधिपतिभ्यां श्रीबुक्क श्रीहरिहर नामाभ्यां महाराजभ्यां प्रदत्त शिलाशासने च ... ... श्रीशृङ्गेरी शिष्यपरंपरामनुगताः श्रीविद्यारण्यस्वामिनः सर्वजन विज्ञान विषया अपि कुम्भकोण मठीयाः अस्मत्परंपरायामागताः अस्मच्छिष्याः कस्मिंश्चित्समये शृङ्गेरीपरंपरायाः उच्छेदंदृष्ट्वा अस्माभिरेव शृंगेरि पीठोद्धारणार्थं संप्रेषिता इति वदन्ति। नैतत्साधु। यदि श्रीविद्यारण्य स्वामिनः कुम्भकोण शिष्यपरंपरायामागतास्युः किं स्वगुरुपरंपरांहित्वा अन्यमठीय परंपरामाश्रिताः तन्मठ प्रख्यापनाय शृंगेरीमठ शाखामठत्वेन स्वीय विरुपाक्षी, पुष्पगिरि, शिवगंगेत्यादि मठानां संस्थापनं कथं कुर्युः। स्वगुरुपरंपराया तिरस्करणे च कृतघ्नतामेव स्वात्मानं प्रकटितंस्यात्। न चैवं अतोऽवगम्यते, नैते विद्यारण्य स्वामिनः कुम्भकोण शिष्यपरंपरायामागता इति। कुम्भकोणीयानां कथनं तु केवलमात्मश्लाघार्थमेवेतिगम्यते। एतेषांसविधे मठप्राचीनतायां एकं ताम्रशासनवस्तीति सर्वत्र प्रकथयन्ति। नैतत्प्राचीनतायां नवीनतायां वा मठस्य प्रमाणं भवति। ये किल राजानः शासनप्रदातारस्तेषां संततिस्संप्रति विद्यते नवेति न कोपि जानाति। यदि सर्वनृपतिभिरेते सम्मानितास्युः पत्तन ग्राम नगर मध्येषु विद्यमानाः कुम्भकोण मठीयाः कथंवा न प्रसिद्धिभाजः स्युः। अतोपि शरभोजि महाराजकाल एवायं मठो निर्मितः, तस्यैकस्य गुरुरभवन्नेते, एतर्हि जगद्गुरुत्वं, सर्वशास्तृत्वं, च प्रकटयितुमारब्धाः। विस्मयनीयं चैतत्प्रवर्त्तनम्।

शृंगेरीमठस्तु शिवरहस्य, रेणुकातन्त्र, माधवीय, चिद्विलास, सदानन्द, केरलीय शङ्कर विजयादि गुरुपरंपरा चरित्र मठाम्नायादिषु च, संप्रति विदेशीयेषु च श्री आद्यशंकराचार्य स्थापित चतुर्षु मठेषु स्वकीयत्वेन च प्रसिद्धः प्राचीनः। वस्तुतः आचार्यैः चतुर्दिक्षु प्रतिष्ठापिताः मठाः चत्वार एव, तेपि समप्रधानाः। अयं तु स्वकपोलकल्पित नवीन एव। किंचायं मठः बिंबाम्बाया वा धीरशंकरनामक योगिना वा परिकल्पित इति दक्षिण देशीया जनश्रुतिरस्ति। नात्र यथाभूतं तत्वं निर्णयितुं समर्थाः।

1935 क्रिस्ताब्दे चेंगलपेट सब्-जज् न्यायस्थले कस्मिंश्चित् विवादे न्यायनिर्णयप्रस्तावे कुम्भकोण मठाधिपतयः 'चिक्कुडयारस्वामि' इति उक्तम्। 'चिक्कुडयारस्वामि' इति पदम् कर्नाटक भाषामयम्। अस्य अर्थः 'अमहान् स्वामी' (चिन्नस्वामी इति द्राविडभाषायामुच्यते) अर्थात् महतास्वामिनाकेनचनभवितव्यं, तस्य शिष्यः अयम् इति ज्ञायते। कुम्भकोण मठीयमुद्रा आदौ कर्नाटक भाषायामेव अवर्तत। स्वामिनः अपि एतावत्कालपर्य्यन्तं बहुषः कर्नाटक देशस्था एव। अयंमठः पूर्वं 'शारदा मठ' इत्येव व्यवहारः आसीत्। तस्मात् अयं कुम्भकोण मठः शृंगेरी शारदा मठस्य उप मठः आसीदिति सम्यक्क ज्ञायते खलु।

शृङ्गगिरावेकमठं, द्वारकायां शारदामठं, बदरिकाश्रमेज्योतिर्मठं, जगन्नाथे गोवर्द्धनमठं इत्यादीनि मठान्याचार्यैः स्थापितानि। ऐतस्य एवाधुना दृश्यमानास्तास्ताः शाखाः समुदपद्यन्तेति क्रिस्तशकस्य 1894, जुलैमासाङ्किते 'दि लाइट ऑफ् दि ईस्ट' नामके मासिक पुस्तके लिखितमास्ते।

1898 एप्रिल 26 भौमे 'केसरि' नामके वृत्तपत्रे यो लिखितंतद्यथा। प्राच्यां गोवर्धनमठं, प्रतीच्यां शारदामठं, दक्षिणस्यां शृङ्गगिरिमठ मुदीच्यां च ज्योतिर्मठमित्याचार्यैश्चत्वारि मठानि स्थापितानि। शृङ्गगिरौ श्रीशङ्करस्य चिरं वसतिरभूद्द्रविडाचार्येति संज्ञा च गुरोः शङ्करस्य प्राप्तेति शृङ्गगिरिमठस्य प्राधान्यं गण्यते। पुष्पगिरि विरुपाक्ष कुम्भकोणादि मठानि शृङ्गगिरेरुपमठान्येव। शृङ्गगिरिविद्यापीठाधिष्ठितगुरुपरम्पर्या नाद्यापि विच्छित्तिरवलोकिता। अविच्छिन्नैव सेदानीन्तनकालं यावच्चलिता।

केरळ कोकिल नामक मासिक पुस्तकस्य पञ्चमे भागे पञ्चमेऽङ्के मठ वृत्तान्तो लिखितस्तद्यथा। परमपूज्यैः परमहंस परिव्राजकाचार्यैः श्रीमच्छङ्कराचार्यैः स्थापितेषु चतुर्षु मठेष्वन्यस्थानापन्नस्य श्रीशृङ्गगिरिमठस्याधुनिकाधिपतयः श्रीसच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्यानरसिंह भारत्यः सन्ति। पुरा श्रीशृङ्गगिरिस्थानरमणीयतयाकृष्टहृदयाः श्रीमदाचार्याः खलु विभाण्डकर्षिसकाशात्तत्स्थानं गृहीत्वा रम्ये तुङ्गभद्रातीरे सुन्दरमेकं मठं निर्ममिरे। तत्र मठे रम्यं पाषाणमयमेकं देवालयं विधाय तत्र श्रीशारदापीठं स्वयं संस्थाप्य स्वजितं स्वीकारित स्वीयशिष्यत्वं मण्डनमिश्रं सुरेश्वराचार्याख्यया तन्मठे प्रातिष्ठिपन्।

प्रजोत्पत्ति नाम संवत्सर पञ्चाङ्गे यो लिखितं तद्यथा।
"कूडलीं कुम्भकोणादि मठाधिपतयश्चये।
शृङ्गेरी गुरु शिष्या इत्यादियन्ते क्वचिद्बुधैः" ॥ 22 ॥

आसेतुहिमवच्छैलमध्यवर्ति भरतभूमौ शिव विष्णुदेवि स्थान क्षेत्र तीर्थादीनां निखिलानां श्रीमच्छङ्कर भगवत्पादाचार्यैराविरुद्भूतत्वात्तेष्वन्यतमस्य काञ्च्यां कामकोट्याः कामाक्ष्याः पीठं श्रीचक्राख्यं तस्य स्थापनमपि कामाक्ष्याः उग्रतायाः शान्त्यैः स्थापितमित्यत्र न विवादः। शृङ्गगिरेरन्यत्र न आचार्यैः स्वनिवासार्थं स्वाश्रमस्य निर्मितिः कृता। अतः कुतोवा पंचमस्य मठस्य निर्माणमिति। श्रीआद्यशङ्कराचार्या एव कलौ निषिद्धमपि सन्यासं यावद्वर्णविभाग वेदप्रवृत्ति समवस्थापयन्नतः आसेतु हिमाद्रिमध्यवर्ति भरतभूमौ विद्यामाना सर्वे सन्यासिनः साक्षात्परंपरया वा शङ्कराचार्याणामेव शिष्या यद्यपि तथापि तैः स्व स्व सौकर्य्याय निर्मापित मठा न धर्म्मराजधान्यः न वा ते जगद्गुरवो, न वा चातुर्वर्ण्य धर्म्मव्यवस्थापका, न जगद्गुरुत्व मात्मन इच्छन्ति। आपि तु स्वाश्रम धर्म्मनिष्ठाः सामान्य परिव्राज एव। तद्वदेते स्वयंभुवः कुम्भकोण मठीया संन्यासिनोऽपि सामान्य यतय एव।

कुम्भकोणमठाधिवासिनः श्रीशङ्कराचार्याश्चतुर्दिक्षु शृङ्गगिर्यादि स्थानेषु चत्वार्याम्नाय पीठानि संस्थाप्य समस्त भूमंडलोद्धारानन्तरं काञ्च्यां स्वनिवासाय पृथक्कंचन मठं निर्माप्य तत्रैवोषुः, स्वप्रयाणकालेच सुरेश्वराचार्यान्तेवासिनं कंचन यतिं संस्थाप्य सिद्धिंगता, अतोस्मत्परंपरैव साक्षाद्गुरुपरंपरा, अस्मन्मठ एव गुरुमठः, अस्मन्मठाधिपतय एव जगद्गुरव इति वदन्ति। नेयमपि तदुक्तिस्साधीयसी। शिवरहस्ये 'तान्वै विजित्य तरसाक्षतशास्त्रजालैः मिश्रांस्ततो नैजमवाप लोकम्।' 'द्वात्रिंशत् परमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस।' 'इत्यत्र मिश्रान् गौडान् इत्यर्थो बोध्यः। गौडानामेव मिश्रा इति बिरुदस्य सर्वजनीनत्वात्। अतो गौडान् विजित्य कैलासमापदित्यर्थः अतः काश्मीरे सर्वज्ञपिठाधिरोह मारचय्य सशरीरः कैलासमगादित्याकूतम्। 'मिश्रान्सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप' इति पाठेपि न कापि हानिरस्य राद्धान्तस्य, तद् यथा—

सिद्धिशब्दो न मोक्षवाचकः कुतः ? शक्तेर्मानाभावात्, न लक्षणा मुख्यार्थबाधाभावात्। न व्यञ्जना मूलाभावात्। अतः साधनार्थः, मनोरथस्य सिद्धिमवाप इत्यर्थः। 'सिश्रान्सकाञ्च्यामथसिद्धिमापे' ति अनन्तरं तत्रैव 'कांञ्च्यां तपः सिद्धिमवाप्य दण्डी' त्यादयस्त्रयोदश श्लोका अपि उपलभ्यन्ते। सिद्धि पदं न तनुत्यागमाचष्टे। अपि तु तपः सिद्धिं बोधयति। सिद्धिपदस्य प्रसिद्धिश्च फलनिष्पत्तौ वर्तते, न तु प्राणत्यागे। 'नैजमवाप लोक' मिति पाठस्तु शिवरहस्य-गतपूर्व सन्दर्भेणानुगृह्यते सुतराम्। तथापि 'कैलासमेभ्यत्यसमानसौख्य' मित्युपसंहारे 'द्वात्रिंशत्परमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावसे' ति भगवत्पादानां कैलासगमनं सर्वत्राप्युपलभ्यते। अत्रत्य 'कैलासमावसे' ति पदद्वयं न केनाप्यालोचित-मिति विज्ञायते। यतो 'काञ्च्यामथ सिद्धिमापे' त्यस्य नानाविभिन्नार्थान्कल्पयन्ति परे। किंचोक्तपद्ये 'सकाम' मिति स्थाने 'स्वकाश्रम' मिति पाठन्त उत्तरपादापेक्षयाऽक्षराधिक्यमपि पूर्वपादे कल्पयन्ति। ग्रन्थाक्षरपुस्तके 'सकाममि' त्येव पाठो दृश्यते। अर्थस्तु कामं यथा तथेति। तथा च भूलोके यत्र कुत्राप्याचार्याणां तनुत्यागो नास्ति। अपि तु सशरीरतया कैलास गमनमेवेति शिवरहस्यतोऽप्यवगम्यते। बदरीगमनं च शिवरहस्यवत्प्रतिपादितम्। अतः चिद्विलासीये 'कांञ्च्यां सर्वज्ञपीठाधिरोहणं वर्णितमाचार्याणां' चिन्त्यमेव। सर्वज्ञपीठाधिरोहणस्याऽऽचार्यसमान सर्वज्ञमात्र कर्तृकत्वा-दन्येषां तदसंभव एव। अतः काञ्च्यां सर्वज्ञपीठवर्णनमात्रेणाचार्याणां तत्र धर्मस्थापनोपयोगि शृङ्गगिर्यादि पीठ सदृश स्व शिष्यप्रशिष्याद्यधिष्ठानयोग्य पीठाधिपत्यमासीदिति प्रचारणं प्रतिकूलतर्कपराहतम्। न हि कैश्चिदपि काश्मीरे शङ्कराचार्याणां सर्वज्ञपीठाधिरोहणेन तत्र वर्णाश्रमधर्मविचारणोपयोगि मठाधिपत्यमिष्यते। अतश्चिद्विलासीयोऽपि परेषां प्रतिकूल एव ! एवं च शिवरहस्य–माधवीय–चिद्विलासीयानां तात्पर्यं समानमेवेति ते ग्रन्था अत्यन्तं प्रमाणभूताः। एतदनुसारेणैवान्य-ग्रन्थानामंशतो विरोधे व्यवस्था कार्येति। प्राचीन शङ्करविजयस्यात्रैक कथ्यं माधवीय टीकायां डिण्डिमकारैर्विस्तरेणोप-पादितमिति तत्रैव ज्ञेयम्। एतेन शङ्करचरितं प्रमाणयन्तः पुराणग्रन्था अपि विचारिता वेदितव्याः। मठाम्नायग्रन्थस्तु भगवत्पादप्रतिष्ठापित मठ संप्रदायेतिवृत्त बोधनेऽनितर साधारण प्रामाण्यं भजन्ते। तत्रापि यदि विरोधशङ्का भवेत्तर्हि भूयोऽनुग्रहन्यायेन चरित ग्रन्थानुगुण्येन वा व्यवस्था कार्या।

आनन्दगिरेस्तु तृतीयः कोपि पन्थाः, तद् यथा—'स्व लोकं गन्तुमिच्छुः काञ्चीनगरे मुक्तिस्थले कदाचिदुपविश्य स्थूलशरीरं सूक्ष्मेन्तर्धाय सद्रूपो भूत्वा, सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा, चिन्मात्रो भूत्वाऽङ्गुष्ठपुरुषस्तदुपरि पूर्णमखण्डमण्डलाकारानन्दं प्राप्य सर्वजगद्व्यापकम् चैतन्यमभवत्॥' काञ्चीपुर इत्यनेन तदितरग्रन्थसंदर्भविरोधः। अत्र 'स्वं लोकं गन्तुमिच्छुः' इत्यादौ 'सर्वव्यापकम् चैतन्यमभव' दित्यन्ते सर्वव्यापक चैतन्यमभवदिति प्रथममीप्सितस्य साधनमुक्तम्, उद्दिष्टमात्म लोकगमनम्। सर्वव्यापकचैतन्यस्य स्वलोकः परलोकः इति भिदास्तीत्यलम द्वैतमत वैशारद्येन गिरेः। अपि च केचिदाधुनिकाः काञ्चीपुरस्थं कस्यापि कर्मन्दिनो बृन्दावनमाचार्याणां इति वदन्ति। तद् गिरिवचनेनापि न सिद्ध्यति। तेन, स्थूलस्य सूक्ष्मानु प्रवेशस्य सूक्ष्मस्य कारणानुप्रवेशस्य चोक्तत्वात्। यद्वा, उपविश्येत्युक्तं खलु गिरिणा तदुपवेशस्थलमेव बृन्दावनमचीकॢपन्निति चेत्। तद् अवैधमित्यलमनेन। किं च यथा योगी सदाशिवब्रह्मेन्द्र मन्त्रालयस्थ श्रीराघवेन्द्र बृन्दावन सेवायै भक्तजनानां प्रवृत्तिः तथा विश्वगुरोः परमेश्वर शंकर रूपेणावतीर्ण परमेश्वरस्य समाधि यदि काञ्च्यां स्यात् स्वेष्टाप्तये भक्तजनास्तमपि सेवेरन् न तथेति, न तत्र भगवत्पादानां समाधिः अतोपि नायं शाङ्करोमठः।

आनन्दगिरि शङ्करविजयः प्रमाणत्वेम तन्मठ विषय उदाहृत इति न वाच्यं। शिष्टापरिग्रहात्। नामत ग्रंथ कर्तरि भ्रमाच्च। 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्शः' ग्रंथे आनन्दगिरि शङ्कर विजयस्याप्रमाणतायाव्यवस्थापितत्वाच्च। किमयमानन्दगिरिः तोटकाचार्या उपनामा भगवत्पादाचार्य शिष्यः। किंवा प्रस्थानत्रय भाष्य व्याख्यात्रानन्दगिरिः आहोस्वित आभ्यां मन्यः कश्चन तृतीयो वा। न तावदाद्यः। तस्य 'तोटकच्छन्दस्क वृत्तोज्वलित श्रुतिसारसमुद्धरण

कालनिर्णया ' योरेव कर्तृत्वात्। नापिव्याख्याता आनन्दगिरिः। व्याख्यात्रानन्दगिरेस्तु ' अश्रौत मेदगिरि विदारकाद्वैत-न्यायनिर्णयाख्य व्याख्यान रूप शतधार विधायक ' त्वात्। कोयं तर्हि तयिल पायिकेव अन्तराले ऽवलम्बते उभाभ्यामन्य एतद् ग्रन्थ रचयित्रनन्तानन्दगिरिरिति चेत् शृनु। शाङ्करं द्विषन्नवैदिकं तंत्रस्य प्रतिख्यायमिषुः। प्रद्युन्न सखो मधुरिति जानीहि। अतः न नाम्ना न भ्रमितव्यं। कुशलैरस्य शङ्करविजयस्य रचयिता भगवत्पादाशिष्य इति वा प्रस्थानत्रय व्याख्यातेतिवा। तन्मठाधिपत्युत्तया च नवति वत्सरेभ्यः पूर्वस्थित आनन्दगिरिणायं ग्रन्थो विरचित इत्युक्तेः भगवत्पाद शिष्य ग्रन्थ व्याख्यातृभ्यां अन्य एव। अतोऽपि आनन्दगिरि शङ्करविजयः अप्रमाणिकः॥

आनन्दगिरियेहि शङ्करदिग्विजये अवस्थनीं पक्तिं पश्याम इति समुल्लिख्य ' अतः सर्वेषांमेव मोक्षफलप्राप्तये दर्शनादेव श्रीचक्रं प्रभवतीति ' आरभ्य ' श्रीपरमगुरुः सुखमास ' त्यन्तम् शब्द समुदापम् समुदाहरन्। नायं कुशिलैर्भि-लिखितः कस्मादितिचेन् श्रीचक्रस्यैव निर्माणं तैः रुदाहृत। शब्द समुदायैक देशेन अवगम्यते। कामकोटि पीठ निर्मितिस्तु न प्रतीयिते नावगम्यते। केवलं तस्मिन् अनिर्मिते कामकोटि पीठे सुरेश्वरस्य अवस्थापनं केनचिद् अंशेन निजावास योग्यमठ परिकल्पनं परमगुरोः सुखमासनञ्च अवगम्यते। कामकोटि पीठ मधिवसेति सुरेश्वर नियुक्तेः स्वस्य कृत कृत्यतया भगवत्पादाचार्यस्य कामकोटिपीठादन्यत्र मठे अवस्थित्यवगमात् न परम्पराया प्रवृत्तिराचार्यादिति तेनैव ज्ञायते।

तैत्तिरीयबृहदारण्यभाष्योर्वार्त्तिक प्रणयने श्रीसुरेश्वराचार्यान्नियुंजाना श्रीमच्छंकराचार्या स्त्रीय शाखीय तैत्तिरीयोप-निषदो मदीय भाष्ये, भवत्काण्व शाखीय बृहदारण्यकोपनिषदो मद्रचित भाष्ये च वार्तिकं विधत्तेत्यवोचन्। अतः शङ्कराचार्या स्तैत्तिरीय शाखिनः न ऋग्वेदिनः न तेषां स्थाने अन्य शाखियानां पिठाधिपतित्वं संभवति। जगन्नाथ पुर्यां पूर्वमेव प्रतिष्ठापिते पूर्वाम्नायऋग्वेद मठे स्थितेसति पुनः ऋग्वेदमठ स्थापनाऽप्रसक्तेः। श्रीमदाचार्यैः पुनः ऋग्वेदीय काञ्ची कामकोटि कुम्भकोणमठस्य प्रतिष्ठापितत्वेन परिकल्पनोक्तिः पुनः श्रीजगन्नाथपुर्यां प्रतिष्ठापित गोवर्द्धनं मठस्य शुक्लयजुर्वेदीयता परिकल्पनोक्तिश्च कुम्भकोणमठीयानां स्वोत्कर्षव प्रकाशनाय अन्येषां च प्रतारणायैव। अतः कांचीकामकोटि कुम्भकोणमठः न शङ्करभगवत्पादाचार्यैर्निर्मापितः। किन्तु आधुनिकैरिति विज्ञानादेतेषांयुक्तिर्मिथ्यैव।

किंच शृङ्गेरीपरंपरीया श्रीमद्भिनवोद्दण्ड विद्यारण्य भारती स्वामिनः सेतुयात्रांकृत्वा प्रत्यागमन समये एतेषां शिष्यप्रदेशेषु सञ्चरन्तः एतैः प्रतिरुद्धाः, न युष्मच्छिष्य प्रदेशेष्वितः प्रभृति संचरामः, संप्रत्यज्ञानतः पर्य्यटनं सत्कारं स्वीकरणं चाभूदित्यन्योन्य सम्मत्या प्रामाणिकमनुमोदनमुल्लिख्यास्मभ्यं प्रादुरित्यन्यमठीयानामुपरि स्वाधिकार प्रकाशनोक्तिरपि कुम्भकोणीयानामनृतैव। कुम्भकोणमठीयैः गृहति संन्यासिनाम्नः शृङ्गेरी परंपरायामभावादेतेषां मिथ्या भाषणं प्रकृतिसिद्धन्ति।

चतुर्ष्वपि शङ्कराचार्य निर्मित आम्नाय पीठेषु सुरेश्वराधिष्ठित शृङ्गेरीमठस्यैव विन्ध्यस्य दक्षिणोत्तरदेशीयाः हिन्दू महम्मद नृपतिभिः पाश्चात्यैराङ्गलदेशीयैश्चक्रवर्त्तिभिर्लोकगुरुत्वेन स्वीकृत्य तत्तत्कालेषु सम्मानितत्वात्, आसेतुहिमवत्पर्वत मध्यवर्ति भरतभूमिस्थ सर्वेषु देवायतनेषु स्वातन्त्र्येण पूजाधिकारात्, अनन्यसाधारण हंसध्वजवत्वात्, चक्रवर्तिन आज्ञात-स्वयमेव राजकीय धुरंधराधिकार्यादिभिः सम्मान्यमानत्वात्, आसेतु हिमाचलप्रदेशेषु राजकीय चिन्हैस्साकमङ्कपालकीत्यादि स्वतंत्र विरुदावलीमत्वात्, इतोपि किंच द्वैत विशिष्टाद्वैत मठीयाः स्व स्व मत स्थापनाय शृंगगिरि मठमेव गुरुपीठंमत्वा तत्रैवगत्वा वादविवादादिकरणात्, दक्षिणोत्तर देशीयानां आचारादि वर्ण धर्म्म विवादे सति निर्णयार्थं शृङ्गेरीमठंप्रत्येव विज्ञापनपत्रिकाद्वारा स्वविषयं विज्ञाप्य तस्मादेवमठादद्ययावद्विनिर्णयाधिकमाच, अयमेवमठः सर्वैरासेव्यमानः जगद्गुरुपदभाक्च भवति। अत्रान्यदप्यन्योपिहेतुः।

काशीस्थाः तत्सम्मानिताः केचन पण्डिताः तेनैव प्रणुम्नाः काञ्ची कामकोटि कुम्भकोण विषये अभिनन्दनपत्र व्याजेन कन्चन निर्णयं प्राकाशयन्। 'श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक ग्रन्थे 71 पृष्ठे प्रकाशितानां दशानां प्रश्नानां प्रतिवचनमदत्वा केषांचित् प्रश्नानां स्वेच्छयोद्धृतानामेव प्रतिवचनं अभिनन्दन पत्रे ऽलेखयन्। पूर्वं पृष्टानां दशानां प्रश्नानां उत्तरानि कस्मात् कारणात् एतावत्कालपर्य्यन्तं नोक्तानि ? यदि सप्रमाणं सशास्त्रीयं च उत्तरं दत्तं तर्हि सत्यं तत्वं च सम्यक् बहिः प्रकटितम् भवेत्। तेन च भ्रामक प्रचारः स्व कपोल कल्पना च निराधारता अन्तः शून्यता सहिते च प्रकटिते स्याताम् इतिभिया मौनं स्वीक्रयते वा ?

श्री शङ्करभगवत्पादाचार्याः कामकोटि कुम्भकोग मठं प्राकल्पयन्निति यदि निर्णयोऽभविष्यत् तदा उभयेषां मनोरथ सिद्धिरभविष्यत्। अतः उपर्युक्त मठः भगवत्पादाचार्यैः न निर्म्मित इति वक्ष्यमाण हेतुभिर्निश्चीयते। यद्याचार्याः उपर्युक्त मठं पर्य्यकल्पिष्यन्त तन्मठ नियमबोधक आम्नायमपि पर्य्यकल्पिष्यन्त। अस्मन्मठस्य गुरुमठत्वेन नियमबोधक आम्नायो ना कांक्षत इति न शङ्कयम्। चक्रवर्तिन इव सामन्त नृपतिषु प्रवृत्ति विषये तथा गुरु मठीयानामपि शिष्य मठाधिपतिषु वर्तितव्य विषये नियमबोधक आम्नायस्य आवश्यकत्वात्। इतोपि न पूर्वोक्त मठः भगवत्पादैः निर्म्मितः। गुरु मठीयानां आम्नायस्यानावश्यकत्वेपि शिष्य मठीयाः गुरु मठीय विषये कथं वर्तितव्यमिति उल्लेखनस्य शिष्य मठीय नियमबोधक आम्नाय ग्रंथेषु अनुल्लेखात्। किं च। इतोपि न सिद्ध्यत्याचार्य निर्मितोक्त मठस्य। यदा कदाचिद्वागुरु-मठीयानां सन्दर्शनाय वा सांवत्सरिक नियमित कर प्रदानाय वा शिष्यमठीयानां प्रवृत्तेरदर्षनात्। सामन्तराजेषु तैः देय वार्षिक करा ऽप्रदाने चक्रवर्तिना प्रणुम्नाः मन्त्रिणो वा आनान्तरङ्ग अधिकारिणो वा तत्र गत्वा तान् प्रदन्ध्य यथा नियुक्ते कर आहरणं कुर्वन्ति तथा जगद्गुरुत्व प्रधान प्रथम मूल सर्वोच्चपीठाभिमानिभिः शिष्य मठीयेष्वेवमकरणात्। कुतोवैवमपन्हूयते। साधु गोंसाई सन्यासिषु प्रसिद्ध मठाम्नायादन्यत्स्वकीयेन्द्रसरस्वती संप्रदायस्य स्व मठस्य स्वाम्नायस्य आगम गुरुपरंपरासंप्रदाय प्रसिद्ध महावाक्येभ्योऽन्यत्स्व ॐ तत्सदिति महावाक्यस्य च मूलत्वेन मठाम्नाय नामकं किंचन पुस्तकं स्वयं परिकल्प्य प्रमाणत्वेन प्रसंगेपुदाहरन्ति। एवमेव स्वस्य यद्यदनुकूलमिति विज्ञायेत तत्सर्वं समयानुसारि परिकल्प्य इतरेषां प्रदर्शनमेवैतेषां स्वाभाविकस्थितिः। अतो नैते एतैरुदाह्रियमाण ग्रन्था वा प्रमाण भाजोभवन्ति।

कुम्भकोणमठाधिपास्तु स्वकीय इन्द्रसरस्वतीति योगपट्टी तीर्थाश्रमादि दशविधसम्प्रदायकोष्वन्तर्भूतमित्युक्त्वा तत्र "यतिधर्मनिर्णया" ख्यं ग्रन्थं प्रमाणयन्ति। तत्र शोभनम्। तस्मिन्नेव यतिधर्मनिर्णये पूर्वोक्त तीर्थाश्रमाणां मध्ये केषाञ्चिद् नाम्नां स्वस्व शीलाचारमत्ताभिमानेन जाताः सम्प्रदायाः तन्नामभेदाश्चेत्युक्त्वा सरस्वती सम्प्रदायभेदो आनन्दसरस्वती इन्द्रसरस्वती चेति प्रतिपादनेन अयं इन्द्रसरस्वती सम्प्रदायः तीर्थाश्रमेत्यादिदशनामबहिर्भूतः शीलाचार-मत्ताभिमानेन परिकल्पित इत्यवगमात्। नायं यतिधर्मनिर्णयाख्यो ग्रन्थः अस्मिन्विषये अनूचानत्वेन प्रमाणं भवितु-मर्हति। "इन्द्रसम्प्रदायवर्तिनं सुरेश्वरं" इति 74 प्रकरणे गिरिराह। तदमिदस्संप्रदायः न संप्रदायादादीयते, न वैद्यनाथदीक्षितीये विद्यते, न मठाम्नाये नाम्नायते, न शङ्करविजयेषु विलोक्यते, न मठसम्प्रदायेषु गण्यते, न विश्वेश्वरस्मृतौ दृश्यते, न यतिधर्मप्रकाशिकायां प्रकाश्यते, न रामानन्दीयेनाभीनन्द्यते। तदेष सम्प्रदायो नवीन इति।

आदिशङ्कराचार्यभगवत्पादैः स्वशिष्येभ्यः उपदिष्ट प्रज्ञानंब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, अयमात्माब्रह्मेति महावाक्य चतुष्टयादन्यत् ॐ तत्सदिति महावाक्यमस्मदीयमिति कामकोटिपीठ परम्परान्तर्गत आत्मबोध

स्वामिभिर्विरचितायां गुरुरत्नमालायाः सुषमाख्य टीकायां प्रतिपादितम्। इदानीं तन्मठस्थ प.प. श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीस्वामिभिः विद्यार्थीकृत प्रश्नप्रतिवचनत्वेन ॐतत्सदिति महावाक्यं नास्माकमित्येवोक्तं। परन्तु स्वकीयमहावाक्य-मीदृशमित्यपिनोक्तं। अतः श्रीमद्भाष्यकारोपदिष्ट चतुर्विधमहावाक्य बहिर्भूतं तदीयपूर्वगुरुक्त्यनुसारेण ॐ तत्सदित्येव तदीयं वाक्यमिति निर्णीतं भवति। यद्येते भाष्यकारसम्प्रदाय परम्परायामागताः स्युः तदा स्वगुरुपरम्परा प्राप्त महावाक्यानामुपरिनिर्दिष्टानाम् चतुर्णामन्यतमं महावाक्यमेव भगवत्पादाचार्यैः एतत्परम्परामूलपुरुषाय उपदिष्टम् स्यात्— नैतदेवमस्ति! ॐ तत्सदिति महावाक्यमस्माकमित्यभ्युपगच्छन्तो महावाक्य लक्षणं कीदृशमभ्युपगच्छन्ति। जीव ब्रह्मैक्यबोधकवेदवाक्यत्वमिति चेत्कथमोंतत्सदित्यस्य केवलं ब्रह्मबोधकस्य तत्त्वं सिद्ध्यति। "ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।" इति भगवद्गीतास्मृत्या ब्रह्ममात्रबोधकत्वात्तस्य। नह्यत्र सच्छब्दार्थ जीव इति शङ्क्यम्। 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदि' त्यादिषु ब्रह्मणि सच्छब्दस्य प्रसिद्धत्वात्। अतो महावाक्य लक्षणा भावादोंतत्सदिति वाक्यं नोपदेश्य महावाक्यतां प्राप्नोति। आद्ये जीवब्रह्मैक्यबोधक वाक्यानामेव ग्रहण संभवादोंतत्सदित्यस्य महावाक्यत्वासंभवा-त्तद्ग्रहणं न युज्यते। किं च तदर्थं च वदेदिति उत्तर वाक्येन तत्त्वमस्यादिसदृशवाक्यस्यैव ग्रहण संभवादोंतत्सदित्यस्य कथं प्रसक्तिः। अथ महावाक्य चतुष्टयं कांचीमठस्येति यैरुच्यते तन्मतं विचार्यते। महावाक्यचतुष्टयोपदेशयुगपत्कस्यापि न संभवति। क्रमेण महावाक्य चतुष्टयोपदेशस्तु मठ चतुष्टयाधिपानां साधारण सर्व सन्न्यासिनामपि संप्रदाये दृश्यत एव। तत्र मुख्यतया प्रथम मुपदेश्यं महावाक्यं प्रणवोपदेशपूर्वकमुपदिश्यमानं कतरदित्येव प्रश्नकर्तॄणामाशयः। साधारण सन्या-सिनां तु प्रथममुपदेश्यं महावाक्यं तत्तद्वेदीयमेव। (विश्वेश्वर स्मृति—'ततः अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, प्रज्ञानंब्रह्म इत्यादिनी शिष्य शाखा वाक्योपदेश पूर्वकं उपदिशेत्। तेषाम् अर्थं च बोधयेत्।' धर्मसिंधु—'दक्षिण कर्णे प्रणवमुपदिश्य तदर्थं च पञ्चीकरणाथवबोध्य प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्माब्रह्म, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मीति ऋग्वेदादि महावाक्येष्वन्यतमं शिष्य शाखानुसारेणोपदिश्य तदर्थं बोधयेत्' ... ...) मठचतुष्टयाधिपानां तु अपवादन्यायेन मठाम्नायसिद्धतत्तन्मठीयवेदगत महावाक्यं मठाम्नाय स्मृतिपरिगणितं व्यवस्थितमेव प्रणवोपदेशादनन्तरमुपदेश्यम्। अनन्तरं विकल्पेन व्यवस्थितया वा यथासंप्रदायमितरेषां श्रौतानां स्मार्तानां च महावाक्यानामिति न कश्चिद्विरोधः। महावाक्य चतुष्टयान्यतमस्य प्रथमोपदेश्यत्वे क्लृप्तमठ चतुष्टयान्यतमाधिपतेरेव तत्संभवेन स्वपीठस्य महावाक्य राहित्यमेव सिद्ध्येत्। ॐतत्सदित्यस्य महावाक्यत्वमेव नास्तीति सर्वं प्रसिद्धं खलु।

आम्नायाः सप्त। तत्राद्याश्चत्वारा आम्नाया धर्मव्यवस्थित्यर्थं मठविषयतया दृष्टिगोचराः। अन्ये त्रयो विज्ञानैक विग्रहा इति ते ज्ञाने सिद्धिं कुर्वन्ति। मठवृत्ते—'अथोर्ध्वशेषे आम्नायास्ते विज्ञानैक विग्रहाः।' यतिधर्मनिर्णये-'अथोर्ध्वशेषे गौणाये तेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः।' तत्र मठ चतुष्टयस्याचार्यस्थापितस्याद्याश्चत्वार आम्नायाः पूर्वाम्नायः, दक्षिणाम्नायः, पश्चिमाम्नायः, उत्तराम्नायश्चेति। एतेषां स्वरूपं तु शङ्कराचार्य प्रणीत मठाम्नायतोऽवगम्यते। तस्य च स्मृतित्वात्प्रामाण्यमपि सर्व संम्मतम्। अथा दृश्यमाना ज्ञानैकगोचरास्त्रिविधाः ऊर्ध्वाम्नायः, स्वात्माम्नायः, निष्कलाम्नाय-श्चेति। एवं स्थिते कांचीमठस्याम्नायो नैव दृश्यते। तस्य दृश्यमानाम्नायेऽन्तर्भावो नैव संभवति। चतुर्णां वेदानां मठचतुष्टय संबन्धित्वेन कांचीमठस्य वेदो न संदृश्यते। आचार्य शिष्याणां प्रधानानां चतुष्ट्येन कांचीमठस्याचार्यो न लभ्यते। वेदचतुष्टयगतप्रधानमहावाक्यानां क्लृप्तपीठचतुष्टये कलृप्तत्वेन कांचीमठस्य प्रधानमहावाक्यं नास्ति। दक्षिणा-म्नायस्य च शृङ्गगिरियत्वेन कांचीमठस्य दक्षिणदेशस्थस्याऽऽम्नायो नास्ति। ऊर्ध्वादित्र्याम्नायानां मेर्वादिस्थानगतत्वेन मठचतुष्टयस्यापि तत्संभवो न भूमिष्ठत्वात्। किमुत वक्तव्यं कांचीमठस्य न तत्संभवतीति। अतस्ते तृतीय प्रकारेणऽऽम्नाय संप्रदायं प्रचारयन्ति। स्वेषामूर्ध्वाम्नाय इति कुत्रचित्। कुत्रचिन्मौलाम्नाय इति। कुत्रचित्तु तस्यैव नामान्तरं क्रियत

मध्यमाम्नाय इति। कुत्रचित्स्वेषां महावाक्यमोंतत्सदिति। कुत्रचिन्महावाक्य चतुष्टयमिति। अपरत्र महावाक्यचतुष्टयेन साकं ओं तत्सदिति च। प्रणव इति कुत्रचित्। वेदस्तु ऋग्वेद इति। संप्रदायो मिथ्यावार इति। इत्येवं परस्परविरुद्ध संप्रदाय जातं कुत एतैर्लब्धमिति परमाश्चर्यमिदम्। एतस्मिन्विषये युक्तिं च योजयन्ति। ईश्वरस्य पंचमुखत्वात् इतरेषां मठानां चतुर्णां प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरमुखरूपत्वेनास्माकं मठस्य पञ्चमोर्ध्वमुख स्थानीयत्वमिति। स्कन्दस्य षण्मुखत्वात् ब्रह्मणश्चतुर्मुखत्वात्, गणेशस्य वारणमुखत्वात्, नृसिंहस्य सिंहमुखत्वात, मनुष्याणामेकमुखत्वात्, रावणस्य दशमुखत्वात् त्रिशिरस्त्वादसुरविशेषस्य शेषस्य सहस्रमुखत्वादेतत्सर्वं शङ्कराचार्य प्रतिष्ठापितमठेषु योजनीयं वा तन्मत इति सन्दिह्मश्च किंचोर्ध्वाम्नायस्योर्ध्वदेशस्थत्वावगमात्कांचीमठस्य कथमूर्ध्वदेशस्थत्वम्। मध्यमाम्नायस्य स्वरसतो मध्यदेशस्थत्वावगमात्, कथं कांची मध्यदेशस्था। मौलाम्नायस्य शिवशिरोदेशस्थत्वाभ्युपगमे ब्रह्मादिभिरपि द्रष्टुमशक्यस्य शिवशिरसोऽस्मभिर्दर्शनं कथं पार्येत। वेदस्तु कांचीमठीयानामृग्वेद इति प्रचार्यते। सच पूर्वाम्नाय मठस्य गोवर्धनस्यैवेति मठाम्नायतोऽवगम्यते। कांचीमठीयत्वेन प्रचार्यमाणो मिथ्यावार संप्रदायोऽपि न ग्रन्थतोऽवगम्यते। कीटवार, भोगवार, नन्दवार, भूरिवाराणामेव ग्रन्थतः प्राप्तिरस्ति। इति संप्रदायचतुष्टयं मठचतुष्टयाधिपानामिति पूर्वोद्धृतवाक्येभ्यः एव प्रदर्शितम्। अयं संप्रदाय भेदो मठाधिपानामिव साधारण सन्न्यासिनामपि तत्तत्पीठ शिष्याणां भवति। पञ्चमस्तु मिथ्यावारो न कुत्रापि ग्रन्थेषु दृश्यते। नान्ये संन्यासिनो मिथ्यावार संप्रदायिनो दृश्यन्ते। तथा च कांचीमठस्य सद्भावो न ग्रन्थतोऽवगम्यते, संप्रदायोऽपि भिन्न एवेति सिद्धम्। अतः श्रीकाञ्ची कामकोटि कुम्भकोण मठाधिपाः श्रीमदादिशङ्कर भगवत्पादाचार्य सम्प्रदायात् बहिर्भूता एवेति निश्चीयते।

अपि ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत मार्कन्डेय संहिता अस्माकं मठस्य मूलमिति प्रमाणयन्ति। नेयं ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गता। न वा वायु, कूर्म, लिङ्ग, भविष्योत्तर पुराणादि वत् प्रसिद्धा। माधवीय चिद्विलासीयादि आचार्य चरित्र प्रतिपादक ग्रन्थेषुनोद्धृता। अतोपि इयं आदरणीया न भवति।

अतः परं नैषध काव्य विषये विचारयामः। अस्मिन् काव्ये नवमसर्गे वादिना 'जगर्तियोगेश्वर' इति वर्तत इत्युक्त्वा योगेश्वरपदेन अस्मिन्मठे समर्च्यमानयोगेश्वरस्योल्लेखनात् कामकोटिपीठमठः श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यैरारचित इत्यस्मिन्विषये प्रमाणत्वेन अयं श्लोकः उपन्यस्तः। स तु तस्मिन्सर्गे नैव दृश्यते, अपि तु द्वादशासर्गे अष्टत्रिंशतितम-श्लोके 'जागर्तियागेश्वर' इति वर्तते। तद्व्याख्यानेऽपि 'यागेश्वर' इत्येव व्याख्यात्रा प्रतीकत्वेन परिगृह्य व्याख्यापि 'यागेश्वर' पदस्यैव कृता। अपि च प्राक् भारतयुद्धात् नलदमयन्ती चरित्रस्य वर्णनात् कलियुगादितः सञ्जात श्रीशङ्कराचार्यैरानीतयोगलिङ्ग वर्णनं नैषध काव्ये असम्भवमित्यस्मिन् वायुक्तविषये इदं काव्यं न प्रमाणं भवति।

अतः उपरिष्टादुदाहृत विषयैः केवल लोक वृत्तानुसारिभिरेतैस्सर्वत्रैवाविदितै तच्चारित्रक देशमुख्य काश्यामप्यैन्द्र-जालिक वागुराप्रसरण केलाकौशल प्रकाशनं आजानमतो नैतैरुक्तं यथाभूतमिति समवगच्छन्तु पण्डितावतंसा इति विज्ञापयित।

ज. ग. विश्वनाथ शर्म्मा
51, हनुमान घाट, वाराणसी

भाग—दो

प्राप्त हुए कुछ प्रस्तावों का विवरण जो उन सभाओं द्वारा सर्वसम्मत से पास किये गये थे।

61

काशी के पण्डितों और सन्यासियों का प्रशंसनीय निर्णय "आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार ही पीठ है"

ता० 30 सितम्बर, 1934, को सायंकाल साक्षीविनायक बिहारिपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित सन्यासी महात्माओं और पण्डितों की सभा हुई। काशी के प्रतिष्ठित विद्वान् पण्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्यजी ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया था। काशी में कुम्भकोण मठ के महराज आनेवाले हैं। उनके अनुयायी 'पण्डित पत्र' आदि में एवं कुछ अन्य आधुनिक ट्रेक्टों द्वारा कुम्भकोणम कामकोटि मठ को आद्यशङ्कराचार्यजी द्वारा स्थापित प्रथम पीठ कहकर प्रचार कर रहे हैं, इसपर विशद रूप से विचार करने के पश्चात् सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि भगवान आद्य शङ्कराचार्यजी द्वारा स्थापित (शृङ्गेरी, द्वारका, गोवर्द्धन और ज्योतिर्मठ) चार ही पीठों का प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार का निर्णय प्रातः स्मरणीय कैलाशचन्द्र शिरोमणी भट्टाचार्य, प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र प्रभृति उस समय के अस्सी विद्वानों ने लगभग 48 वर्ष पूर्व शास्त्रानुकूल एक व्यवस्था देकर किया था, अतः उक्त चार मठों के अतिरिक्त कोई दूसरा मठ श्रीआद्यशङ्कराचार्यजी द्वारा स्थापित नहीं मालूम पडता है।

महाबीर प्रसाद त्रिपाठी,
(अध्यक्ष, श्रीविश्वनाथ मन्दिर, काशी)
गो० शिवनाथ पुरी,
(महन्त, श्रीअन्नपूर्णा मन्दिर)
हाराणचन्द्र भट्टाचार्य,
(अध्यापक राजकीय संस्कृत कालेज, काशी)
स्वामी रामपुरी,
(साक्षी विनायक बिहारीपुरी मठ)

स्वामी ब्रह्मानन्द सन्यासी,
गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी,
श्रीपूर्णचन्द्राचार्य,
(परिक्षा बोर्ड सदस्य यू० पी० गवर्नमेन्ट)
संस्कृत कालेज, बनारस, व्याकरण वेदान्त
प्रधानाध्यापक टीकमणी संस्कृत कालेज

62

कलकत्ता नगर सभा

कलकत्ता नगर के एक सार्वजनिक सभा में जहां आदरणीय परिव्राजक तथा प्रसिद्ध विद्वान भी उपस्थित थे, एक प्रस्ताव सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि आद्यशङ्कराचार्य ने केवल चार ही मठ (धर्म राजधानी केन्द्र) इस भारतवर्ष के चार धामों में स्थापना की थी और इन चार मठों के अतिरिक्त श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य ने दूसरा कोई मठ की स्थापना नहीं की। पं० श्रीअक्षयकुमार शास्त्री, संस्कृत प्रोफेसर, विद्यासागर कालेज ने यह प्रस्ताव सभा में पेश किये और प० प० श्रीगङ्गाधराश्रम स्वामीजी, उप-सभापति, आचार्य सम्मेलन, आमोदन किये। 'बसुमति' पत्र, कलकत्ता, 22—4—1935 के अङ्क में यह समाचार प्रकाशित है।

63

मदुरै नगर सभा

मदुरै नगर में 23—6—35 के दिन एक सार्वजनिक सभा मदुरै शृङ्गेरी मठ में हुई। श्री के. आर. वेङ्कटराम अय्यर, एम. एल. सी., म्युनिसिपल अध्यक्ष, सभापति का स्थान ग्रहण किये। श्रीमान् सीताराम शास्त्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव उस सभा में पेश किये। श्रीमान् एम्. एस्. मीनाक्षी सुन्दरमय्यर ने इस प्रस्ताव का आमोदन किया। प्रस्ताव सर्व सम्मति से सभा में पास हुआ। प्रस्ताव-गत भव वर्ष, पुरट्टासी माह (30—9—34) में श्रीकाशीधाम में जो विद्वत् सभा हुई और जिस सभा में श्रीकाशीधाम के पूर्व घटित सभा 1886 ई० के निर्णय को सर्व सम्मति से अङ्गीकार कर पुनः उस निर्णय को आमोदन करने का समाचार सुनकर यह सभा उत्सुक होती है। उक्त सभा के निर्णय के आधार पर तथा अन्य प्रमाणों को ग्राह्य कर नीचे दिये हुए विषयों को स्पष्ट रूप से घोषित करती है। (1) श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य ने शृङ्गेरी शङ्कर मठ को स्वयं ही निजमठ रूप में स्थापना की (2) अतएव श्रीशृङ्गेरी मठाधीष निःसन्देह जगद्गुरु पदवी के अर्ह तथा निरन्तर हकदार हैं। श्रीशृङ्गेरी मठ कोई दूसरे मठ के अन्तर्गत अथवा उप मठ नहीं है। (3) इन विषयों को जो कोई आक्षेप करें तो उन आक्षेपों को खण्डन कर उसके विरुद्ध तथा श्रीशृंगेरी पीठ की उत्पत्ति एवं गौरव को रक्षा करने निमित्त ऊपर कहे प्रकार पुनः प्रचार करने का कार्य श्रीशृङ्गेरी मठ के शिष्य-कोटियों का कर्त्तव्य होगा। इस कर्त्तव्य को निबाहने के लिये हम सब लोग बाध्य हैं। ('स्वदेशमित्रन्' पत्र, मद्रास, 26-6-1935 में विवरण प्रकाशित है।)

64

निम्नलिखित प्रस्ताव नीचे दिये हुए सभाओं में सर्व सम्मत से आमोदन किया गया :—

1. तिरुनेल्वेली : 21—7—35 सभापतिः महोपदेशक श्री एस. राजवल्लभ शास्त्री
   कार्यदर्शी श्री आर. महालिङ्गम्, बि. ए., बि. एल.,
   मंत्री, विवेक सम्वर्धनी सभा।
2. वीरवनल्लूर : 27—7—35 स० श्री वी. जि. गणपति अय्यर
   का० श्री एम, आर. सुब्बाराव
3. कल्लिडैकुरुची : 29—7—35 स० श्री एम्. रामलिङ्ग अन्नावी
   का० श्री जि. व्यै. शङ्कर अय्यर, मंत्री, सनातन वैदिक सभा

Resolved :—

1. That this meeting of the disciples of Sri Sringeri Jagadguru Sankaracharya Mutt is of opinion that the claims set up by Sri Kumbakonam Mutt in the recent tour of His Holiness at Benaras and elsewhere that a Mutt at Kanchi was established and was presided over by Sri Sankara himself, that the present Mutt at Kumbakonam is a continuation there of and as such is the principal Mutt of Adi Sankara, and that the other four Mutts were only subsidiary Mutts subordinate to it, is clearly a novel one and is disproved by numerous unimpeachable ancient authorities, tradition and historical records.

2. That this meeting feels that the propaganda made on behalf of the Kumbakonam Mutt in support of the above claim is unwarranted and inopportune and is bound to create an unnecessary split in the ranks of the followers of Sanatana Dharma.

65

निम्नलिखित प्रस्ताव नीचे दिये हुए सभाओं में सर्व सम्मत से आमोदन किया गया था।

प्रस्ताव—"श्रीकाशी से हमलोगों को प्राप्त 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक पुस्तक को जांच करने से मालूम हुआ कि उक्त पुस्तक योग्य प्रमाणों के साथ लिख कर प्रकाशित किया गया है और इस कारण (स्थल का नाम) के वासी हम सब लोग परिपूर्ण रूप से आमोदित करते हैं।"

1.	शाट्टुप्पत्तुग्रामवासी, 1—8—35 :	सभापति : श्रीदक्षिणामूर्ति दीक्षितर, सोमयाजी, कार्यदर्शी : श्रीसुब्ब अय्यर (वि. एम्.)
2.	अम्बासमुद्रम्ग्रामवासी, 3—8—35 :	स० श्री एच. नारायण अय्यर (पन्नैयार) का० श्री एम्. एस. नारायण अय्यर (वकील)
3.	कडयम् ग्रामवासी, 4—8—35 :	स० श्री के. एस. माधव अय्यर का० श्री के. एल. चित्रईश्वर अय्यर
4.	तेङ्कासी ग्रामवासी, 8—8—35 :	स० श्री टि. एस. शेष अय्यर का० श्री एस. वी. वेङ्कटसुब्रह्मणियन्
5.	मेलपाळूर ग्रामवासी, 8—8—35 :	स० श्री दिक्षितर रामकृष्ण अय्यर का० श्री डी. गणेश अय्यर
6.	ईरोड ग्रामवासी, 7—11—35 :	स० Illegible का० श्री रा. रामकृष्णय्या

66

"वेद शास्त्र सन्मान सभा' (विजयवाडा–आन्ध्रा) की विद्वत् सभा, आश्विज, ऐप्पसी, शुक्ल पक्ष, दशमी, मङ्गलवार के दिन विजयवाडा में प्रातःकाल श्रीगौता सूर्य्यनारायण राव पन्तुलु के गृह में एवं सांयकाल गौता सुब्बाराव पन्तुलु के गृह में हुई। इस सभा में सभा के अन्य कार्यक्रम के साथ एक प्रस्ताव सर्वसम्मत से पास हुआ। इस प्रस्ताव में 'कामकोटि पीठस्थ महास्वामी (जो सकल गुण सम्पन्न युक्त हैं) तथा उनके भक्तों अनुयायियों का प्रचार है कि उनका मठ ही जगद्गुरु मठ है तथा शृंगेरी मठ सब शिष्य मठ हैं और यह प्रचार जो शङ्कर चरित्र प्रतिपादक प्रामाणिक ग्रन्थों के विरुद्ध है तथा इन प्रचारों से सब विद्वानों तथा पामर जनों में एक प्रकार का भ्रम हो रहा है; इसके निवारणार्थ यह सभा इसके पूर्व काशी में प्रातःस्मरणीय शिवकुमार शास्त्री प्रभृति के निर्णयों का आमोदन करते हुए और यह व्यवस्था कांची के विरुद्ध होने के कारण, घोषित करती है कि कामकोटि मठाधीष जगद्गुरु पीठ नहीं है' ऐसा उल्लेख है। (विवरण Kalpavalli 15-10-38 के अङ्क में प्रकाशित हुआ है)।

67

प्रयाग—सनातनधर्म महासभा—सम्मेलन

प्रयाग राज के अर्द्ध कुम्भमेला (1936) के शुभ अवसर पर सनातन धर्म महासभा का सम्मेलन हुआ। अनेकानेक परिव्राजक, महन्त, मन्डलेश्वर वहां उपस्थित थे। श्री 1008 श्रीजगद्गुरु गोवर्धन मठाधीष श्रीशङ्कराचार्य श्रीभारती कृष्ण तीर्थ महाराजजी ने उक्त सभा के सभापति का आसन ग्रहण किया था। इस सम्मेलन में सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि 'भगवान आद्य शङ्कराचार्यजी द्वारा स्थापित चार ही मठ हैं–शृङ्गेरि, द्वारका, गोवर्द्धन और, ज्योर्तिमठ और उक्त मठों के अतिरिक्त कोई दूसरा मठ श्रीआद्यशङ्कराचार्यजी ने कहीं भी स्थापित नहीं किये।' (श्रीगोवर्द्धन मठाधीष जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थजी महाराज से 2 फरवरी, 1936 को प्राप्त समाचार। आप महाराज बागला धर्मशाला, टेढि नीम, में पधारे थे।)

भाग—तीन

पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के रचित ग्रन्थों एवं प्रकाशित लेखों से मठविषयक सम्बन्ध कुछ विचार तथा अदालती निर्णयों से कुछ भाग के उद्धरण।



68

कुम्भकोणनगर समीप नड्डकावेरी ग्रामवासी विख्यात कीर्तिशेषित पन्डित भट्ट श्री नारायण शास्त्री द्वारा रचित आचार्यचरित्रविमर्श पुस्तिका के द्वितीय भाग का अन्तिम भाग यहां उद्धृत किया जाता है—

तदन्यतः परिक्रमामः।

कति क्व प्रतिष्ठिता मठा इति—मठाम्नाये—

'दिग्भागे पश्चिमे क्षेत्रे द्वारकाकालिकामठः।
द्वितीयः पूर्वदिग्भागे गोवर्द्धनमठः स्मृतः॥
उत्तरस्यां श्रीमठः स्यात् क्षेत्रं बदरिकाश्रमः।
तुरीयो दक्षिणस्यां च शृङ्गेर्यां शारदामठः॥'

इत्युपन्यासेन चतुर्णामेव मठानामस्तित्वधीरुत्पद्यते। अन्ये तु गगनकुसमस्तबका इव, गन्धर्वनगर सौधा इव, मरीचिकापूरतरंगा इव, मानुषविषाणचषकपरा इव, शशशिशुशफा इव, शिरीषशिफा इव च प्रमाणप्रबन्धैः निरूप्यन्ते तरामाचार्यस्थापिता इति मठाः। अनन्तरतु आसेतोराच शीताचलादतिप्रथितप्रभावम द्वैतमतरत्नरत्नाकरमखिलविबुधजन सम्मतभवनिपालशतकृतसभाजनसभाजनान्वितमशेष जनवन्दनीयमादिमाचार्यनिर्विशेष नियमिपरिवृढपरिकर्मितममलं ऋष्य शृंगाश्रमस्थं शृंगगिरिमपलपितुमनलम्, आचार्यविपर्ययमत्रेण कृतकृत्यं मन्यस्तमतिनिर्बन्धेन कथयित्वा, प्रागुक्तसरणौ कंचन कांचीपुरगत इत्यपूर्वमश्रुतमज्ञातमदृष्टमाचार्यमठमकथयन्। तदश्रद्धेयमिति पूर्वमेवोक्तम्। अन्यच्चेदम्—'इन्द्रसंप्रदाय

वर्तिनं सुरेश्वर'—इति 74 प्रकरणे गिरिराह तदभिदस्संप्रदायः न संप्रदायादादीयते, न वैद्यनाथदीक्षितीये विद्यते, न मठाम्नायेनाम्नायते, न शङ्करविजयेषु विलोक्यते, न मठसंप्रदायेषु गण्यते, न विश्वेश्वरस्मृतौ दृश्यते, न यतिधर्मप्रकाशिकायां प्रकाश्यते, न रामानन्दीयेनाभिनन्द्यते, तदेष झषपयोधरपयःपूर इव, जन्तुफलप्रसवसर इव, पीतोत्पलप्रभिन्नवर्णवांध्येयमन्दस्मितांकुर इव, कुहूतुहिनकरनिकरक्षरदिन्दुकान्त सलिलशीतल कल्पान्तत्रियामायामोत्कर इव सुतरामभिनन्द्यो भवति। तदेष संप्रदायो नवीन इति, तेन तत्प्रबन्धप्रबन्धापि, न भगवत्पादसेवनावाप्तानवद्यविद्या वैशारद्याः पूज्यपादास्तत्र भवन्तः स्तोटकार्याः। अस्त्यत्र सूचनमनन्तानन्दगिरिरित्यनन्तपद्म् नेदमाचार्यान्तेवासिभिरानन्दगिरिभिरारचितेषु भाष्यव्याख्यानेषु क्वापि दृश्यते—अपि च मणिमंजर्यादिकथितकथाछायाश्रयणेन च—अन्तरान्तरा प्रतीपमतसूचनेन च, अश्राव्य पदशय्यया च, कोप्ययमतिप्रतीपमतः शुद्धा द्वैतमतसिद्धान्तमाकुलीचिकीर्षुरिमम् प्रबन्धमचीकरदिति प्रज्ञाधनै अनुमीयते।

"सकलभुवनैकमंगलशंकरगुणवर्णनप्रवृत्तेन, नस्मरणीयाः कुधियो लोकायतिका इव प्रतस्थेन" इति नीलकंठोक्तरीत्या प्रबन्धोयमाचार्यमतमननिरतानाम द्वैतिनामवलोकनपदवीमपि नार्हति, यद् विवदितमेतद् अधिकृत्य तत्सर्वमभ्युपेत्यन्यायेनेति न्यायविदो विदांकुर्वन्तु, ततस्सचादावुक्त यतिवराणाम् प्रमाणप्रबन्ध—परम् विमृशन्तु विमर्शशीला विज्ञाः।

अपि चेदम् शङ्करमभ्यर्थयामहे यथा--

असंकीर्णान् वर्णान् अतुलजयम द्वैतसमयम्।
अकुण्ठामुत्कंठामपि च, भगवत्पादपदयोः॥
सुतुंगश्रृंगेरीवसतिरिह विश्वस्य वितरन्।
विधत्तामायत्तामवनिधुरमाचार्यतिलकः॥"

69

म० म० पं० कोक्कन्ड वेंकटरत्नम पन्तुलु से 1876 ई० में रचित व प्रकाशित पुस्तक 'श्रीशङ्करमठ तत्त्व प्रकाशिका' में से कुछ भागों का सारांश नीचे दिया जाता है—

यद्यपि कांची कुम्भकोण मठ श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित नहीं है तथापि वे अपने को शङ्कराचार्य के नाम से घोषित कर प्रचार कर रहे हैं (पृष्ठ 9-10)। ऊपर निर्दिष्ट अनेक कारणों से यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि कुम्भकोण मठ एक नवीन स्थापित मठ है (पृष्ठ 20)। कोई भी प्रामाणिक ग्रन्थों से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि श्रीशङ्कराचार्य ने कांची में एक मठ की स्थापना की और एक शिष्य को वहां बैठाये (पृष्ठ 28)। कुम्भकोण मठ की परम्परा श्री मदाद्यशङ्कर की साक्षात् परम्परा नहीं है पर यह एक शाखा मठ है (पृष्ठ 37)। कांची नगर का मठ जिसे कुम्भकोण मठ अपना मठ अनादि काल का प्रचार करते हैं, वह मठ केवल आज से (1876) 40 वर्ष पूर्व का स्थापित मठ है। इसके पूर्व वह एक शूद्र का मकान था (पृष्ठ 48)। इन सब दिये हुए शास्त्र सम्मत प्रमाण युक्त ग्रन्थों के आधार पर तथा वृद्ध परम्परा प्राप्त ग्रन्थ एवं कथाओं के आधार पर यह निश्चित रूप से निःसन्देह कहा जा सकता है कि श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य ने कांची में न कोई मठ का प्रतिष्ठित किया और न वे श्रीसुरेश्वराचार्य को वहां नियोजन किये। कुम्भकोण मठ का प्रचार सब कल्पित एवं भ्रामक है (पृष्ठ 70)।

70

पं श्रीगुरुनाथ से 1898 ई० में रचित व बम्बई प्रकाशित पुस्तक 'श्री शङ्करविजयचूर्णिका' में से कुछ भाग उद्धरण किया जाता है—

'श्रृङ्गगिरावेकमठं, द्वारकायां शारदामठं, बदरिकाश्रमे ज्योतिर्मठं, जगन्नाथे गोवर्धन मठं, इत्यादीनि मठान्याचार्यैः स्थापितानि। एतेभ्य एवाधुना दृश्यमानास्तास्ताः शाखाः समुदपद्यन्तेति क्रिस्तशकस्य 1894, जुलै मासाङ्किते प्राच्य प्रकाशे (दि लाइट् आफ दि ईस्ट नामके कालिकाता नगर्यां मुद्रयमाण आङ्गलभाषालिखितमासिकपुस्तके) लिखितमास्ते।'

'1898 एप्रिल 26 भौमे केसरिनामके पुण्यपत्तनस्थे वृत्तपत्रे पिनाकिसंज्ञापरिचिह्नितो यो लेखस्तत्राचार्य स्थापित मठवृत्तान्त मधिकृत्य लिखितं तद्यथा। प्राच्यां गोवर्धनमठं, प्रतीच्यां शारदामठं, दक्षिणस्यां श्रृङ्गगिरिमठमुदीच्यां च ज्योतिर्मठमित्याचार्यैश्चत्वारि मठानि स्थापितानि। श्रृङ्गगिरौ श्रीशङ्करस्य चिरं वसतिरभूद्द्रविडाचार्येति संज्ञा च गुरोः शङ्करस्य प्राप्तेति श्रृङ्गगिरिमठस्य प्राधान्यं गण्यते। पुष्पगिरि विरूपाक्ष कुम्भकोणादिमठानि श्रृङ्गगिरेरूपमठान्येव। श्रृङ्गगिरि विद्यापीठाधिष्ठितगुरुपरम्पर्यां नाद्यापि विच्छित्तिरवलोकिता। अविच्छिन्नैव सेदानीन्तनकालं यावच्चलिता।'

'केरलकोकिल नामक मासिकपुस्तकस्य पञ्चमे भागे (पुस्तके) पञ्चमेऽङ्के 97, 98, 99 पृष्ठेषु मठवृत्तान्तो लिखितस्तद्यथा। .... परमपूज्यैः परमहंसपरिव्राजकाचार्यैः श्रीमच्छङ्कराचार्यैः स्थापितेषु चतुर्षु मठेष्वग्रस्थानापन्नस्य श्री श्रृङ्गगिरि मठस्याधुनिकाधिपतयः .... ।'

'श्रीमच्छङ्कराचार्यः पद्मपादो (द्वारवत्याम्), सुरेश्वरः (श्रृङ्गगिरौ), हस्तामलको (जगन्नाथमठे), तोटको (बदरिकामठे)। श्रृङ्गगिरेरूपमठाः विरूपाक्षमठः, पुष्पगिरिमठः, कुम्भकोणमठः, कूडलिगिमठः, सङ्केश्वरमठः, श्रीशैलमठः, आमणिमठः।'

71

Sankaracharya—Philosopher and Mystic by Sri K. T. Telang, M. A., LL. B., Judge, Bombay High Court, writes:—

'... ... ..., he went to Kanchi where he erected a temple and established the system of the adoration of Devi.' (Editor's Note: The author does not mention establishment of any Mutt at Kanchi by Sri Adi Sankaracharya.)

72

'Life and Times of Sankara' by Sri C. N. Krishnaswami Aiyer, M. A., Page 59, writes:—

'It is enough for our purpose to say that the four Mutts we have incidentally mentioned continue to exist in greater or less affluence even now, after having had their usual ups and downs in the course of about twelve historic centuries.'

'... ... ... there has been, however, one small secession in the South caused by the establishment of a Mutt now at Kumbhakonam, which has a limited followings in Tanjore and the adjoining districts. That this Kumbakonam Mutt is comparatively modern, appears to be probable, though its exact age cannot be well ascertained.'

73

Introduction to Sidhanta Bindu (Gaekward's Oriental Series Vol. No. LXIV) by Prahlad Chandrasekhar Divanji, M. A., LL M., Bombay Civil Service, Judicial Branch, says :—

'During his (Sankara's) triumphant tour he took many disciples, the most notable of whom were Sureshwara, Padmapada, Trotaka and Hastamalaka and founded four Maths, one in each corner of India, i. e., to say, at Sringeri in Southern India, Puri in Eastern India, Dwarka in Western India, and Badarikasrama in Northern India and at each of them installed one of his said four principal disciples ... ... The third cause of the weakening of their influence was the internal dissensions between the disciples of the same Acharya due to the love of the power and pelf which the occupation of the Gadis at the Maths carried with it and the consequent foundation of other rival maths and the assumption of the honorific title of Sankaracharya by their founders and their successors. Thus for instances there are newly founded Maths at Kolhapur, Belgaum and Nasik in the Deccan, Hampi and Kanchi (Conjeevaram) in Southern India, Prabhaspatnam, Dakor and Dholka in Gujarat and Benaras in the United Provinces.'

74

'The Renaissance of Hinduism—Studies in' by Dr. D. S. Sarma, B. H. University 1944—

'He (Sankara) wandered from place to place all over India and established four monasteries at Sringeri in Mysore, at Puri in Orissa, at Dwarka in Gujarat and at Badrinath in the Himalayas.'

The revised and abridged edition of 'The Renaissance of Hinduism' is now called 'Hinduism—Through the Ages,' published by Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1956—'Sankara, who was born probably in 788 A. D. at Kaladi in North Travancore, became a Sannyasin, while he was still a boy, and grew into a great religious teacher. He wandered from place to place all over India and established four monasteries, at Shringeri in Mysore, at Puri in Orrissa, at Dwarka in Gujarat and at Badrinath in the Himalayas.'

75

'Sri Sankara's Teachings in His own Words', by Sri Swami Atmanandaji published by Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1958—

'... .. He was born at Kaladi in Kerala State of a Namboodiri family ... He found his Guru on the banks of Narmada in Govinda-Pada, a disciple of the famous Gauda-Pada who had written the famous Karika on Mandukya Upanishad. By 16, his studies were over and the Guru sent his gifted disciple to Benares to expound the pure and simple Hinduism of the Vedanta. ... ... His travels extended practically over the whole of India, both North and South and East and West. One of the most famous of such encounters with the exponents of other schools of thought was the one with Mandana Mishra, the great exponent of Purva Mimamsa. At last, he consolidated his work by establishing the four Sankar Maths at Badrinath, Puri, Sringeri and Dwarka ... ... But in spite of this Sankara travelled to the other end of India and cast off his body at Kedarnath. ... ... So Mandana Mishra became his great disciple, Sureshwaracharya, the first head of the Sringeri Math. ... ... For the preservation and propagation of his teachings, Sankara established Maths almost in the four corners in India, at Badri in the Himalayas, at Puri in Orrissa, at Sringeri in the South and Dwarka in Gujarat in the West. That these Maths function even to this day shows the vigour of the movement for the propagation of Vedanta started by Sankara. Sankara though born in the South had an All-India view point. So the Maths were located to serve all parts of India.'

76

"The Throne of Transcendental Wisdom" By Sri K. R. Venkataraman (formerly Director of Public instruction, Pudukkottai) writes:—

Page 10 "He (Shankara) established Maths in four places—in Sringeri in the south, in Badri in the North, in Dwaraka in the West and in Puri or Jagannath in the East............He placed Sri Sureshvaracharya at the head of the Math in Sringeri, Sri Padmapada in Dwaraka, Sri Trotaka in Badri and Sri Hastamalaka in Puri."

Page 11 " .... and from there he went to Kedarnath near which place at the age of thirty two he is said to have disappeared from mortal ken. A spot not far from the shrine of Kedarnath is still pointed out as the place of the disappearance of the Master."

77

"The Kumbhakonam Mutt Claims" by Sri R. Krishnaswami Aiyer, M. A. B. L., writes :—

Page I "Not satisfied with all that he had done during his life-time and with the glorious intent of perpetuating for all time the truths which he preached and practised, he established in the four corners of India four Mathas of apostolic succession for taking care of the spiritual interests of the people of the country. They are the Sarada Matha at Sringeri for the South, the Kalika Math at Dwaraka for the West, the Jyoti Math at Badri for the North, and the Govardhan Math at Puri Jagannath for the East, and these were assigned respectively to his four disciples, Sri Sureshvaracharya, Sri Hastamalakacharya, Sri Trotakacharya and Sri Padmapadacharya."

78

(क) 'कल्याण', गोरखपुर, मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष 11, संवत् 1983, (1926 ई०) के 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' शीर्षक लेख में पं० झाबरमल्लजी शर्मा लिखते हैं :-

'इस प्रकार देश के चारों कोनों पर चार प्रधान पीठ (मठ) स्थापित कर उन्होंने स्वधर्म प्रचार का मार्ग प्रशस्त कर दिया। ज्योतिर्मठ, शृंगेरीमठ, द्वारका शारदामठ और गोवर्द्धनमठ के आचार्य क्रमानुसार अथर्ववेद, यजुवद, सामवेद और ऋग्वेद के विशेषज्ञ रक्खे गये थे। चारों मठों में चारों वेदों की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी।'

'... ... उनके संस्थापित चारों मठों के आचार्य भी गुरुपरम्परा से शङ्कराचार्य के नाम से परिचित हैं।'

(ख) 'कल्याण' गोरखपुर, योगाङ्क (भाग दस, संख्यातीन) 'श्रीशङ्कराचार्य' शीर्षक लेख से उद्धृत है :-

'... ... सर्वत्र सनातन धर्म का प्रचार कर चारों कोनों में चार विभिन्न मठ स्थापित करके अपने चार प्रधान शिष्यों को धर्म प्रचार के लिये जगद्गुरु के पद पर बैठाया। एक बदरीकाश्रम को छोड़कर बाकी तीन मठ आज भी वर्त्तमान है। ... ... अपने वत्तीस वर्ष की उम्र में श्रीकेदारनाथ पर्वत के समीप अपनी इहलीला समाप्त की।'

79

'पण्डित पत्र' काशी, वैशाख शुक्ल 4 सोमवार, सं० 1992 (6 May, 1935) के 'भगवान श्रीशङ्कराचार्य की जयन्ती', शीर्षक लेख में श्रीस्वामी रामानन्द सन्यासी, व्याकरणाचार्य, लिखते हैं :-

'भगवान ने चारों दिशाओं में वर्णाश्रम मर्यादा को अक्षुण्ण रखने की इच्छा से सर्वदा सनातन धर्म के प्रचार के लिये चार मठ स्थापित किये थे और इन्होंने वैदिक धर्म के उद्धार के लिये ही सन्यास धारण करके अपने शिष्यों को अनेक देशों में भ्रमण करने की आज्ञा दी थी।'

(श्रीस्वामी रामानन्द सन्यासी, व्याकरणाचार्य, 'श्रीशाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' पुस्तक के संपादक तथा जो पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' के उत्तर रूप में व्यवस्थाभास लिखकर प्रकाश किया गया है और कांची कामकोटि कुम्भकोण मठ को श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित, अधिष्ठित एवं साक्षात् अविच्छिन्न गुरु परम्परा सिद्ध करने का भगीरथ प्रयत्न किया गया है, वे संपादक ही स्वयं अपना विचार 'पण्डित पत्र' काशी, 6 मई, 1935, में प्रकाशित किया है। कुम्भकोण मठाधीष मार्च माह 1935 में काशीधाम छोड चले और श्रीस्वामीजी भी उन्हें भूल चले, नहीं तो मालूम नहीं क्यों दो माह बीतते ही अपना विचार भी बदल दिये? -संपादक)

80

Sri K. M Munshiji writes in Bhavan's Journal (6.3.1960) under Kulapatis' letter No: *200* "Passing away of a Saint"

" .... And yet of all the sacerdotal offices in this country which I know, his was **one of the four offices,** the occupants of which are men of learning, character and dedicated spirit. They are the symbols of a glorious and living spiritual heritage which, though the great Sankaracharya of the 8th century, goes back over thirty centuries to Shukadevji and to Veda Vyas".

[संपादकीय नोट :- कुछ सज्जनों ने कहा कि श्री के. एम्. मुंशी जी, जो एक प्रकान्ड विद्वान व भारतीय संस्कृति के ही स्वरूप हैं, आपके "भवन पत्रिका" में कांची मठ का प्रचार हो रहा है तो कैसे न कहा जाय कि कांचीमठ आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित, अधिष्ठित एवं श्री शङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा के हैं? कांची मठ प्रचार करता है कि आपका मठ भारतवर्ष का शिरोमणि मुखिया मठ है और इसका समर्थन "भवन पत्रिका" करता है। मैं ने उत्तर दिया कि कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो विषय की सत्यता को जानते हुए भी इस वाद विवाद में भाग नहीं लेते चूं कि आपलोगों की दृष्टी में यह विवाद यति का अपचार एवं धर्म का पतन होने के भय से आपलोग मौनधारण कर लेते हैं पर मौन का अर्थ यह न होगा कि आप विद्वान सब कांची मठ के भ्रामक प्रचारों के समर्थक हैं। उपर्युक्त पंक्तियां उन सज्जनों की जानकारी के लिये दिया जाता है जो यह प्रश्न उठाये थे। श्री के. एम्. मुंशी जी ने स्पष्ट चार मठ के ही उल्लख किया है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित यदि पांच मठ होता तो श्री मुंशी जी "one of the five offices" कहते पर वैसा न कह कर आप कहते हैं कि गोवर्द्धन पुरी मठ "one of the four offices"। चाहे जो हो, इस पुस्तक में प्रमाण युक्त सिद्ध किया गया है कि कांची मठ की प्रतिष्ठा आचार्य शङ्कर द्वारा न हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि कुम्भकोणम् मठ एक अद्वैती मठ है जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य शङ्कर के बहुकाल पश्चात् एक महान् द्वारा ही प्रतिष्ठित है। यह मठ धर्म प्रचार कार्य में बहुत कुछ प्रयत्न कर रहा है इसलिये आप प्रशंसनीय हैं। पर जो प्रचार आपके मठ एवं मठ अनुयायियों द्वारा 150 वर्ष से हो रहा है और ऐसे पुस्तक करीब 50 मेरे पास हैं, उसमें दिये हुए भ्रामक प्रचारों का ही खन्डन किया जा रहा है। कांची मठ या मठाभिमानी यदि भ्रामक प्रचार न करते तो यह पुस्तक भी लिखी नहीं जाती और इस विवाद के दायित्त्व वही हैं जो इस विवाद को प्रथमतः खडा किया था]

81

Extract from Sarada Pitha Pradipa—Journal of the Indological Research Institute, Dwarka, March, 1961. Sri Manjulal Sevaklal Dave, B. A., LL B., Baroda, writes :—

"Which are the Maths founded by the Great Sankaracharya Maharaj and where did HE disappear from this mortal world?

It is alleged by His Holiness Swami Mathadhipati of Kumbakonam Math and a propaganda is made by him and by others on his behalf through books and otherwise that the Great Sankaracharya Maharaj founded a Math in Kanchi and removed it to Kumbakonam and that the other four Mutts founded by HIM as subsidiaries, and so, the Math at Kumbakonam is the principal one and the four founded in Shringeri, Dwarka, Jagannath Puri, and Badrikashram are ancillary (गौण) and that, for this reason, the Mathadhipatis who occupy the Math at Kumbakonam are to be called Jagadgurus and those occupying the other four Maths are to be styled as Gurus only.

The Swamiji of Kumbakonam Math and those who support him further allege that the Great Sankaracharya Maharaj did not disappear from the Himalayas but He left His mortal at Kanchi.

The present writer therefore proposes to examine both these allegations; on examinations, he comes to the findings that both these allegations are not correct and that the great Acharya founded only those four Maths and did not found any Math at Kanchi nor did He remove it to Kumbakonam and so, the Mathadipatis presiding over those four Maths only are to be called Jagadgurus; and that the Great Acharya did not leave His mortal at Kanchi but disappeared in the Himalayas. The reason for the findings on the first question and the reasons on the second question are given as under ... ...

There are many other arguments to be put forth by the author of this paper to prove that Sri Adya Sankaracharya had performed only one Yatra (journey), had established the four well known Maths (Dwarka, Sringeri, Gowardhan, and Jyotis), had estblished no Math at Kanchi, ... But all these arguments could not be stated here due to want of space. They will be presented in due course to learned public in other proper place by this author"

82

Dr. R. C. Majumdar, in reviewing the Annual report of the Mysore Archaeological Dept., 1916. writes—' By far the most remarkable discoveries of the year, were however made at Sringeri, one of the four places where the great Sankaracharya established mathas or monasteries' (Indian Antiquery—Vol XLVI).

83

' Prehistoric Ancient Hindu India ' By Sri R. D. Banerjee, Professor, (Banaras, Calcutta and Bombay Universities), writes—' His disciples spread all over India and founded four great monasteries called Sankara Mathas, at Puri in the east at Jagannath, north of Hardwar in Himalayas, at Sringeri in the south, and at Dwaraka in the west. The Abbots of these monasteries are called Sankaracharyas.'

84

' Who says India was never united ' (Bhavan's Journal, July 9, 1961) by Dr. Radha Kumud Mookerji–' It is also to be noted that the four most meritorious pilgrimages in India were placed by Sankaracharya in the four extreme points of the country, so that the entire country may be known by the people and the whole area held sacred. (These sacred places are Badri Kedarnath in the north, Rameshvara in the south, Dwaraka in the west and Jagannatha in the east.). Sankaracharya also established four Maths or Monasteries in the four corners of India, viz , Jyotirmath in the north, Sharada Math in the west, Sringeri-Math in the south and Govardhana-Math in the east. These were, as it were, the pillars of Sankara's religious victory (दिग्विजय), the capitals of his spiritual empire exercising its sway over the whole of India.'

85

" Studies in the History of the Third Dynasty of Vijayanagara " By Dr. N. Venkata Ramanayya, M. A., Ph. D., writes:

" The mathas belonging to the Saivas may be further divided into two classes: (a) the Brahmanic and (b) the non-Brahmanic. (a) A section of the Brahmanic Mathas traces its origin either to the great philosopher Sankara or to one of his disciples. The most important matha belonging to this class was, of course, the matha at Sringeri which had very close and intimate relations with the state. Branches of this matha were established at Pushpagiri, Virupakshi and Kumbhakonam."

86

'A Survey of Indian History'—By Sardar K. M. Pannikar—'The main organisational work that Sankara undertook was the establishment of the four great Mutts, at Badri in the north high up in the Himalayas, at Puri in the East, at Dwaraka on the west coast off Jamnagar and at Sringeri in the south. These pontifical seats were to be occupied by Sankaracharyas who were to maintain unpolluted the teaching of Advaita and to uphold the ascendency of upanishadic thought. It is undeniable that these great monasteries, with their subsidiary institutions also under religious teachers sometimes assuming the title of Sankaracharya, have helped to maintain the orthodoxy of Sankara's teachings and the hold of Hinduism on the people.'

87

(A) The petition submitted by the Panchas composed of Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas and Sudras, resident of Bhaganagar or Hyderabad, to the Moghalai Court, stateth as follows :—

The Chief Pontiff Swami of the Sringeri Peetha is at present visiting Hyderabad in the course of his travels on pilgrimage, whereupon Hebli Someswara Sastri, the counsel and agent of Kudalgikar Sankar Bharati, has petitioned that the former should not be allowed to move about the country with his paraphernalia of white umbrella, Makara Torana, Pancha Kalasi, Palanquine, Panchakalasi ambari, Torch, two chowries and white conch, but that this should only be done by the latter, i. e , by Swami Sankar Bharathi, Kudalgikar. The Officers of the said court, having heard both parties, appointed us to go through the whole evidence oral and documentary and submit one considered opinion to them about the issues raised on behalf of Kudalgikar Swami. We accordingly submit one written opinion as follows :—

That Bhagvatpada (Sri Sankaracharya) having taken avatara rescued the Vedic Dharma (from extinction), established the Varnasrama Vyavastha and founded his main seat at Sringeri Peetha and thus rescued the people (from irreligion.) Ever since then the regular line of Sankaracharya has continued uninterrupted there and only those occupying the 'gadi' of said Peetha have the right to use the Maha Birudavali or honorifics (connected with the original Sankaracharya.) Therefore, the Swami occupying this Adi or Sringeri Peetha has the right to move

about the country for instructing and blessing the disciples. To this we are agreeable. For sometime some Swamis said to occupy the petty Samasthans of Kudalgi, Sivaganga, Avani, Pushpagiri, Virupaksha and Kumbakonam have begun to tour the country. Government may kindly consider if they have received any authorisation letters from the Sringeri Peetha to this effect. As far as we have been able to go through oral as well as documentary evidence, it appears that they have no such right. We have not been able to trace any documentary verification of what Someswara Sastri states. There is an old tradition well known to our ancestors, that the Sringeri Peetha is the only ancient seat (of Shankaracharya) and all Sanyasis and house holders and all those who follow the Varnasrama Dharma should follow the orders of the above Peetha. This being the case, the Kudalgikar swami should not move about with his ostentatious paraphernalia trying to lower the prestige of the Sringeri Peetha. We cannot say anything more to a Government that knows everything about all religions. We have written this in accordance with our understanding of the matter.

Petition dated 1st February, 1844.

Document signed, witness:—Raghunath Bhatt,
Mahopadhyaya,
(appointed by Raja)
Paithankar Vithal Govind Goswami,
Vedavyasacharya Punyasthmbhkar,

There are 62 signatures below, of the members of the Panchayat, appointed by Raja Rambaksh Bahadur, the then Prime Minister of Hyderabad-Deccan.

87

(B) Below is the official note and signature of Mr. Siva Rao Venkatesh, Ilaqa court, dated 11th March, 1845, (2nd Rabilaval, 1261 Hijri) :—

Translation of a proclamation bearing the seal of Raja Ram Baksh Bahadur dated 9th Naisani San 1260 Hijri to Jagirdars, Taluqdars, Desamukhs and Deshapandeys and other subjects, states as follows:—

That Someswara Shastri has petitioned on behalf of Shankar Bharati, the Swami incharge of Kudalgi Matha, that it has been a custom from ancient times that the Adhicari of the Sringeri Peetha should stay in his own matha and devote

himself to the worship of Sri, meeting his expenses from the income derived from the properties in that region and should on no account move about the country and that the Mathadhicari of Kudalgi should tour the country and should accept fees for Prayaschitta etc. and should collect fine from those engaged in irreligious acts.

That Sri Jagadguru having recently arrived at the capital of Bhagnagar or Hyderabad showed us through his agent certain documents and ancient sanads and orders in reply to the statement of Someswara Shastri, whereupon we have come to know that the rights of touring the country, of receiving Pooja and presents, of showing the right path to the Hindus, of obliging them to follow the behests of the Varnashrama Dharma, of punishing those who follow the wrong path and accepting pooja and presents, belong to the mathadhicari of the Sringeri Peetha alone. No papers could be produced by Someswara Shastri in support of his claims. Therefore, in order that there should be proper investigation of the question, we set up a Panchayat composed of two members of each of the communities of Brahmans, Motihars, learned shastries etc The Panchayat having gone through the documentary and oral evidence produced by both the parties have submitted their considered and frank opinion without any reserve that all the right of touring the country, of accepting or discarding disciples etc , resides in Shringeri Mathadhipati alone. Such rights being established, it is hereby ordered that all the Hindus residing in the state should present themselves before the Jagadguru Shri Sringeri Mathadhipati, follow his orders, offer worship and honour and present him with fees according to their status and should submit themselves to him alone and if other sanyasis belonging to other mathas such as Kudalgi, Sivaganga, Avani. Pushpagiri, Virupakshi, Kumbhakonam etc. come and try to pass themselves off as entitled to such honour, no one should believe them or offer them worship.

This proclamation has been written or issued after due investigation and should be deemed as an authoritative one and every one is enjoined to act accordingly.

[There are three more documents issued by Raja Ram Baksh Bahadur (the then Prime Minister of Hyderabad, Deccan) of the above said nature declaring other maths such as Virupakshi, Pushpagiri, Kudalgi, Karveer, Ramachandrapur, तीर्थराजपुर, शिवगङ्गा, आवणि, होनीहत्री, कुम्भकोण, भन्डीगडि as branch petty mutts, dated 16—10—1843, 8—11—1845 and 16—12—1845. There is one more document of 1763 Saka Sali from the Brahman residents of Nasik-Panchavati, of the above said nature and also one document from Raja Bhujang Rao Ghorpade Hindu Rao of Gajandragarh, dated 21—12—1842 of the above said nature. Editor's note]

88

(A) Extract from letter from the Commissioner of Mysore to the Secretary to the Government of India, Foreign department, Simla, General No. 2396—101 of 1868—69, dated Bangalore, 27th July 1868.

"The Sringeri is the direct representative of the sectarian Sankara Acharya and is the acknowledged spiritual Director not only of the greater proportion of the Hindus of Southern India, but also of those of the leading Maharatta Houses, such as Holker and the former Peishwas. It may be said that his influence is far greater than that of any Hindu spiritual guide in India and I presume, it is for this reason that he is regarded with such unlimited respect. He is the only Guru in the province who is permitted to carry the Adda Palkee or Cross Palankeen, and he has in his possession Sunnuds of great antiquity from the Nizam, the Peshwas, the Mysore Rajah, Holker and others, all enjoying the utmost respect to be paid to him.''

"Owing to the extraordinary veneration in which he has always been held, a Biradari of Silledars has been attached to him from the earliest period and on the occassion of his visiting Her Majesty's Territory an extra escort has always been given, to which purpose the Guru holds several communications to and from the Madras Government."

(B) Extract from letter from W. S. Seton Karr, Esq., Secretary to the Government of India, to the Commissioner of Mysore, dated 19-8-1868 No. 1360

"In reply, I am directed to state that His Excellency the Viceroy and Governor-General in Council accepts your explanation of the custom in force regarding the native gentleman and approves the views set forth in the sixth paragraph of the letter under acknowledgement."

89

Extract from the judgment of the Hon. High Court of Patna, 19th Nov., 1936, Appeal from Original Decree No. 3 of 1931, Chief Justice Courtney Terrell:—

"The trust in question is that of the Gobardhan Mutt at Puri. This trust was founded as one of four similar trusts by a great Hindu religious leader in ancient times with the object amongst others of combating the spread of Buddhism.

The founder Adi Sankaracharya divided India into four jurisdictions with a Math at the head of each. Under the Western jurisdiction was placed the territory roughly corresponding to that now known as the Bombay Presidency called the Sarada Math at Dwarka, ... Northern India was placed under the Jyoti Math which is now extinct, Eastern India was placed under the Gobardan Mutt, the subject of the present dispute, and Southern India under the Sringeri Math in Mysore. We are told that the founder and the Math founded by him are objects of profound veneration of by all sections of pious Hindu. The head of each Math is known by the title of Jagadguru Sankaracharya and his religious authority is widely, if not universally, accepted '

90

'Imperial Gazetteer of India', volume XIII (Second edition 1887) by Sir William Wilson Hunter, Director—General Statistics, writes under the heading Sringeri:—

"With the advent of Shankara Acharya we touch firmer historical ground. Born in malabar, he wandered over India as by an itinerant preacher as far north as Kashmir, and died at Kedarnath in the Himalayas, aged thirty two (page 210)........... and of the religious houses which he founded some remains to this day, controlled from the parent monastry perched among the western ranges of Mysore (page 132).

Editor's Note:—In Volume II under Conjeevaram there is no mention of any Shankaracharya Matha at Kanchi)

91

Atkinson Gazetteer of the Himalayan Districts of the North West Provinces of India—Vol II 1882/83.

"In all the local accounts of the origin of the existing temples in Garwal and Jaunsar and of the revival of Brahminism in southern India, the name of Sankara Acharya is given as he who rehabilitated the worship of the ancient deities which had suffered at the hands of Buddhists and atheist. We have fortunately means for verifying this tradition. Sankara was born at Kaladi in Travancore in the Nambudri tribe of Brahamanas and at an early age devoted himself to study and religious life. His great object was to spread and expound the tenets of Vedanta Philosophy and for this purpose he wandered from his native Malayalam

(the abode of hills) to the Himalaya (the abode of snow), preaching and teaching wherever he went and holding disputations with the professors of every other faith. He made converts from every sect and class and established Muths or monastries for his disciples. The Sringeri Muth on the Tungabhadra in Mysore to the South, the Jyotir Muth (Joshi Muth) near Badrinath to the North, the Sharada Muth at Dwaraka to the West and the Vardhana Muth at Puri in Orrissa to the East.

Shankara towards the close of his life visited Kashmir where he overcame his opponents and was enthroned in the chair of Saraswati, the Goddess of eloquence. He next visited Badri where he restored the ruined temples of Narayana and finally proceeded to Kedar where he died at the early age of thirty two. He is regarded by his followers as an incarnation of Shiva and appears to have exercised more influence on the religious opinions of his countrymen than any other teacher in modern times. All accounts give him four principle disciples whose pupils became the heads of the order of Dashnami " Dandins " or ten mendicants."

92

(A) 'Hindu Religions' by H. H Wilson, M. A., F. R. S., (1899 A. D.) and 'Asiatic Researches' Vol. XVII (1832):—

" With regards to the place of Sankara's birth and the tribe of which he was a member most accounts agree to make him a native of Kerala, or Malabar, of the tribe of Nambudri Brahmans, and in the mythological language of the sect, an incarnation of Siva."

'... ... In the course of his peregrinations he established several Maths or convents, under the presidence of his disciples, particularly one still flourishing Sringeri or Sringagiri, on the Western Ghats near the sources of the Tungabhadra. Towards the close of his life he repaired as far as to Kashmir, and seated himself after triumphing over his various opponents, on the throne of Saraswati. He next went Badrikasram, and finally to Kedarnath, in the Himalaya, where he died at the early age of thirty-two. The events of his last days are confirmed by local traditions, and the Pitha, or throne of Sarawati, on which Sankara sat is still shown in Kashmir, whilst as the temple at Badri. a Malabar Brahmin, of the Nambudri Tribe, has always been the officiating priest.'

92

(B) Prof. Wilson in his Glossary (1855 A. D.) refers to Sankara, Sringeri, Conjeevaram, Kumbhakonam, etc.. Prof. Wilson held the chair of Sanskrit at Oxford and was Librarian to the East India Company. He compiled the Glossary, pursuant to a resolution of Directors of East India Company, from the materials derived from all parts of India and from his immense erudition.

'Shancaracharry'—'He was a native of Caulady, a village on Periyar about 20 miles south-east of Cranganore in Travancore.' 'Towards the close of his life he went to Cashmere.' (Page 810)

'Shringairy'—'Rishya Shringagiri in Sanskrit—Most important of Mutts founded by Shuncara.' (Page 835)

'Conjeevaram'—'The largest and oldest temple of Conjeevaram is to Shiva and the object of worship there is the earth lingam.' (Page 210) 'The Chola Pattayam states that Shuncara came to Conjeevaram and there placed on earthern Lingam most probably the humble origin of to since large temple of Yecambareshwaran and Cammatchy ashtacam or octave in praise of the wanton eyed Goddess; but whether he (Shankara) was more than a passing pilgrim at Conjeevaram is doubtful.' (Page 810)

'Combakonam'—'A branch Mutt of Sankaracharya, founder of Advaitam Philosophy, is presided over by a chief gooroo of Smartha Brahmans.' (Page 206)

93

Notes from a Diary kept chiefly in Southern India by the Rt. Hon. Sir Mount Stuart E. Grant Duff, G. C. S. I., Governor of Madras and published in two volumes in 1899. In volume II, under 23rd April, 1885, he says 'One of the few well—ascertained facts in the life of Sankara, better known as Sankaracharya, 'perhaps' says Professor Monier Williams 'one of the greatest religious leaders India has ever produced' is that he founded the Sringeri Monastry in the 8th Century.'

94

'Encyclopaedia of Religion & Ethics' edited by James Hastings, 1920, Vol. XI, Page 186 :—

'He (Sankara) established four Maths or Seats of Religion at the four ends of India—The Sringeri Matha on Sringeri hills in the South, the Sarada Matha at Dwaraka in the West, the Jyotirmatha at Badrikasrama in the North and the the Govardhana Matha at Puri in the East. Each of these mathas has a Sanyasin at its head, who bears the title of Sankaracharya in general with a proper name of of his own and who exercises only a nominal control over the religious matters in the province.'

95

'Hinduism & Budhism—an Historical Sketch' by Sir Charles Eliot, London, 1921, Vol. II, page 208 :—

'He (Sankara) founded four Maths or Monasteries at Sringeri, Puri, Dwarka, Badrinath in the Himalayas.' (Page 210)

'It is even said that the head of the Sringeri Monastry in Mysose excercises an authority over Smartha Brahmins similar to that of the Pope.'

96

'Hinduism' by Dr. A. C. Bouquet, Professor, University of Cambridge, Published by Hutchinson's University. Library, Page 97—

'He (Sankara) founded ten religious orders in imitation of the Buddhists—the first to be founded within Brahminism; and of these, four are still flourishing. He also established four great Mathas or Monasteries at the four corners of India. Undoubtedly he had a vision of United India.'

97

'The Mystics, Ascetics and Saints of India' by John Campbell Oman, London, (Page 114), writes :—

'Sankara founded at least four important monasteries (at Sringeri in Mysore, Badrinath in the Himalayas, Dwarka in Kathiawar and Jaganath in Orissa.)

98

Dr. Theos Bernard of New York, on page 21 of 'Hindu Philosophy' says :—

'Sankara is believed to have been born at Kaladi on the West-Coast of of the Peninsula in the Malabar .. ... He founded four Maths or Monastries, the chief of which is the one at Sringeri in the Mysore Province of Southern India. The others are Puri in the East, Dwaraka in the West and Badri in the North in the Himalayas. He is believed to have died in the Himalayan village of Kedarnath.

99

'Cultural Unity of India' by Gertrude Emerson,—

'Before his death at the young age of thirty-two, Sankara founded four Mathas for Hindu Sannyasins on the four sites of India—Puri, Dwaraka, Sringeri, and Badrinath—thus fostering in a practical way, the spiritual unity of the country.'

100

Dr. Burnell, the famous Sanskritist, who was the District Judge of Tanjore and edited a catalogue of manuscripts, in his remarks on Anandagiri's Shankara Vijaya, says :—

'This seems to be quite a modern work written in the interests of the Mathas on the coramandal coast which have renounced obedience to the Sringeri Matha where Sankarachariar's legitimate successor resides.'

ॐ



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श

चतुर्थ—खण्ड

शिवरहस्य, माणिक्यविजय में आचार्य चरित्र, मठाम्नायस्तोत्र तथा सेतु, महानुशासन।

शिवरहस्ये नवमांशे षोडशोऽध्यायः ॥

स्कन्द उवाच ॥

तदा गिरिजया पृष्ट स्त्रिकालज्ञ स्त्रिलोचनः ।
भविष्यच्छिवभक्तानां भक्तिं संवीक्ष्य विस्मयन् ॥ 1 ॥

मौलिमान्दोलयन्देवो बभाषे वचनं मुने ।
शृणुत्वमेभिर्गणपैः मुनीशैश्च सुरैस्तथा ॥ 2 ॥

प्रभावं शिवभक्तानां कलौ तु प्रभविष्यताम् ।

॥ ईश्वर उवाच ॥

शृणु देवि भविष्यत्सद्भक्तानाञ्चरितङ्कलौ ॥ 3 ॥

वदामि सङ्ग्रहेणैव श्रवणाद्भक्तिवर्धनं ।
गोपनीयं प्रयत्नेन नाख्येयं यस्य कस्यचित् ॥ 4 ॥

पापघ्नं पुण्यमायुष्यं श्रोतृणाम्मङ्गलावहं ।
पापकर्म्मैक निरतान्विरतान् धर्म्मकर्म्मसु ॥ 5 ॥

वर्णाश्रम परिभ्रष्टान् धर्म्मप्रसवणान् जनान् ।
कल्यब्धौ मज्जमानांस्तान् दृष्ट्वाऽनुक्रोशतोऽम्बिके ॥ 6 ॥

मदंशजातन्देवेशि कलावपि तपोधनं ।
केरलेषु तदा विप्रञ्जनयामि महेश्वरि ॥ 7 ॥

तस्यैवाचरितन्तेऽद्य वक्ष्यामि शृणु शैलजे ।
कल्यादिमे महादेवि सहस्रद्वितयात्परं ॥ 8 ॥

सारस्वतास्तथा गौडा मिश्राः कर्णाञ्जना द्विजाः ।
आममीनाशना देवि ह्यार्यावर्त्तानुवासिनः ॥ 9 ॥

औत्तरा विन्ध्यनिलया भविष्यन्ति महीतले ।
शब्दार्थज्ञानकुशलास्तर्कककर्कश बुद्धयः ॥ 10 ॥

जैना बौद्धा बुद्धियुक्ता मीमांसानिरताः कलौ
वेदबोधित वाक्यानामन्यथैव प्ररोचकाः ॥ 11 ॥

तत्रस्थितान् भास्करभट्टमुख्यान् स्तान्नीलकंठचतृणी करिष्यन्
काश्मीरमासाद्य सशारदायाः सर्वज्ञपीठं पदमारुरोह ॥ 58 ॥

तत्रस्थितान् संपदि सर्वसूरीमूश्चार्वाकमुख्यान् विपुलान् विजित्य
सदक्षिणद्वारकवाटभेदं षकारदेव्यैवविशंक्यमानः ॥59॥

(श्रीशङ्कराचार्याणां कैलासयात्रा)

शंकां निराकृत्य स शारदायास्ततो बदर्याश्रममाप दंडी
संपूज्य नारायणमुष्णवारा शीतार्तशिष्यान् सकलानरक्षत् ॥ 60 ॥

ध्यात्वा शिवं तत्र निषण्णमेनं कैलासदेशाद्वृषभश्चदेवाः
समेत्य संस्तुत्य यदायुषस्ते कालोऽगमत्त्वंवृषभेऽधिरोह ॥61॥

इत्यर्थितः सन् प्रभुरात्मनि स्वं विचिंत्यशिष्यान् निजागाद मोदात्
यूयं चतुर्दिक्षु मठेषु लिंगैः साकंचरंतिवियुपदिश्य हर्षात् ॥62॥

आरुह्य पृष्ठं वृषभस्य हस्तं संगृह्यधातुर्हरिशक्रशस्तः ॥63॥
सर्वैश्चदेवैरभिवंद्यमानः कैलास मेध्यत्यसमान सौख्यम्
एतत्तेऽभिहितं देवि ! मुख्यं मुक्तिपदावहम् ॥64॥

शांकरं चरितंल्लोके प्रसिद्धं हि भविष्यति
इति श्रुत्वा महेशानी चरितं शंकरस्य सा ॥65॥

संजातपुलका शंभुं प्रणनाम महेश्वरी

(वत्सलः)

इति स्कांदोक्तमखिलं श्रीशङ्करकथामृतम्
पीत्वाहं सद्गुरोः सूताद्युष्मानद्यापाययम् ॥66॥

इममध्यायममलं यः पठेद्भक्तिसंयुतः
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्याविचारणा ॥67॥

नोट :—प्रामाणिक शङ्करविजय कथानुसार तथा शिवरहस्य नवमांश षोडशोध्याय के 60 श्लोक सहित प्रकाशित पुस्तकों के अनुसार, यहां श्रीजगद्गुरु चरित्र का वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि शिवरहस्य नवमांश षोडशोध्याय 60 श्लोकों का अध्याय है न कि 44 या 46 श्लोकों का, जैसा कुम्भकोण मठवालों का कथन है। माधवीय शङ्कर दिग्विजय के डिण्डिम व्याख्या में जो शिवरहस्य 46 श्लोकों का उद्धृत है वह अपूर्ण है चूंकि 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' के साथ अन्त होता है। इसके बाद के श्लोक 'काञ्च्यातपस्सिद्धिमवाप्यदंडी' से प्रारम्भ श्लोक नहीं दिये गये हैं। विक्रम शक 1780 भाद्रपद अमावास्या (1723 A. D.) के दिन श्रीमाणिक्य प्रभु का अवतार काल माना जाता है।

॥ मठाम्नाय स्तोत्र ॥

॥ शृङ्गेरि ॥

चतुर्दिक्षु प्रसिद्धासु प्रसिध्यर्थं स्वनामतः।
चतुरोऽथ मठान् कृत्वा शिष्यान् संस्थापयद्विभुः ॥1॥

चकार संज्ञामाचार्यश्चतुर्णां नाम भेदतः।
क्षेत्रं च देवतां चैव शक्तिं तीर्थं पृथक् पृथक् ॥2॥

सम्प्रदायं तथाम्नायभेदं च ब्रह्मचारिणाम्।
एवं प्रकल्पयामास लोकोपकरणाय वै ॥3॥

दिग्भागे पश्चिमे क्षेत्रं द्वारका कालिका मठः।
कीटवाळः संप्रदायस्तीर्थाश्रमपदे उभे ॥4॥

देवः सिद्धेश्वरः शक्तिर्भद्रकालीति विश्रुता।
स्वरूपब्रह्मचार्याख्य आचार्यः पद्मपादकः ॥5॥

विख्यातं गोमतीतीर्थं सामवेदश्च तद्गतम्।
जीवात्मपरमात्मैक्य बोधो यत्र भविष्यति ॥6॥

विख्यातं तन्महावाक्यं वाक्यं तत्वमसीति च
द्वितीयः पूर्वदिग्भागे गोवर्धनमठः स्मृतः ॥7॥
भोगवाळः संप्रदायस्तत्रारण्यवने पदे।
तस्मिन्देवो जगन्नाथः पुरुषोत्तमसंज्ञितः ॥8॥
क्षेत्रं च वृषलादेवी सर्वलोकेषु विश्रुता।
प्रकाशब्रह्मचारीति हस्तामलकसंज्ञितः ॥9॥
आचार्यः कथितस्तत्र नाम्ना लोकेषु विश्रुतः।
ख्यातं महोदधिस्तीर्थं ऋग्वेदः समुदाहृतः ॥10॥
महावाक्यं च तत्रोक्त प्रज्ञानं ब्रह्म चोच्यते।
उत्तरस्यां श्रीमठः स्यात् क्षेत्रं बदरिकाश्रमः ॥11॥
देवो नारायणो नाम शक्तिः पूर्णगिरीति च।
संप्रदायी नन्दवाळस्तीर्थं त्वालकनन्दिका ॥12॥
आनन्दब्रह्मचारीति गिरिपर्वतसागराः।
नामानि तोटकाचार्यो वेदोऽथर्वणसंज्ञिकः ॥13॥
महावाक्यं च तत्रायमात्मा ब्रह्मेतिकीर्त्यते।
तुरीयो दक्षिणास्यां च श्रृंगेर्यां शारदामठः ॥14॥
मलहानिकरं लिंग विभाण्डक सुपूजितम्।
यत्रास्ते ऋष्य श्रृंगस्य महर्षेराश्रमो महान् ॥15॥
वाराहो देवता तत्र रोमक्षेत्रमुदाहृतम।
तीर्थं च तुंगभद्राख्यं शक्तिः श्रीशारदेति च॥ 16॥
आचार्यस्तत्र चैतन्यब्रह्मचारीति विश्रुतः।
वार्तिकादिब्रह्मविद्याकर्ता यो मुनिपूजितः॥ 17॥
सुरेश्वराचार्य इति साक्षाद्ब्रह्मावतारकः।
सरस्वती पुरी चेति भारत्यारण्यतीर्थकौ॥ 18॥
गिर्याश्रममुखानिस्युः सर्वनामानि सर्वदा।
संप्रदायो भूरिवाळो यजुर्वेद उदाहृतः॥ 19॥
अहंब्रह्मास्मीति तत्र महावाक्यमुदीरितम्।
चतुर्णां देवताशक्ति क्षेत्र नामान्यनुक्रमात्॥ 20॥
महावाक्यानि वेदांश्चसर्वमुक्त व्यवस्थया।
इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक भू पतेः॥ 21॥
आम्नायस्तोत्र पठनादिहामुत्र च सद्गतिम्।
प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नोति देहान्ते नात्र संशयः॥ 22॥

नोट:—श्री काशी के कामरुप मठ के आम्नाय स्तोत्र बहु प्राचीन हस्तलिखित प्रति में ऊपर के दिये हुए 20 श्लोक है और अन्त में लिखा है—"प० प० श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्य विरचित आम्नाय स्तोत्र संपूर्ण"। नवद्वीप, काशी, कामरूप, लाहौर, पूना, श्रृंगेरी, मिर्जापूर आदि जगहों से प्राप्त मठाम्नाय स्तोत्र भी उपर्युक्त स्तोत्र के समान ही हैं।

॥ श्री मठाम्नायसेतु ॥

[दृष्टि गोचर आम्नाय—चत्वारः]

प्रथमः पश्चिमाम्नायः शारदामठ उच्यते।
कीटवारः संप्रदायस्तस्य तीर्थाश्रमौ शुभौ॥ 1 ॥
द्वारकाख्यं हि क्षेत्रं स्याद्देवः सिद्धेश्वरः स्मृतः।
भद्रकाली तु देवी स्यादाचार्यो विश्वरूपकः॥ 2॥
गोमतीतीर्थममलं ब्रह्मचारी स्वरूपकः।
सामवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मम् समाचरेत्॥ 3 ॥
पूर्वाम्नायो द्वितीयः स्याद्गोवर्धनमठः स्मृतः।
भोगवारः संप्रदायो वनारण्ये पदे स्मृते॥ 4 ॥
पुरुषोत्तमं तु क्षेत्रं स्याज्जगन्नाथोऽस्य देवता।
विमलाख्या हि देवी स्यादाचार्यः पद्मपादकः॥ 5 ॥
तीर्थं महोदधिः प्रोक्तं ब्रह्मचारी प्रकाशकः।
ऋग्वेदस्तस्य वेदस्तत्र धर्मम् समाचरेत्॥ 6 ॥

तृतीयस्तूत्तराम्नायो ज्योतिष्मान्हि मठो भवेत्।
आनन्दवारो विज्ञेयः संप्रदायोऽस्य सिद्धिकृत्॥ 7 ॥

पदानि तस्याख्यातानि गिरिपर्वतसागराः।
बदरिकाश्रमः क्षेत्रं देवता च स एव हि॥ 8 ॥

देवी पुन्नागिरी ज्ञेया आचार्यस्त्रोटकः स्मृतः।
तीर्थंत्वलकनन्दाख्यं नन्दाख्यो ब्रह्मचार्यभूत्॥ 9 ॥

तस्य वेदोह्यथर्वाख्यस्तत्र धर्मं समाचरेत्।
चतुर्थो दक्षिणाम्नायः शृंगेरी तु मठो भवेत्॥ 10 ॥

भूरिवाराह्वयस्तस्य संप्रदायः सुशोभनः।
पदानि त्रीणि ख्यातानि सरस्वती भारती पुरी॥ 11 ॥

रामेश्वराह्वयं क्षेत्रमादिवाराहदेवता।
कामाक्षी तस्य देवी स्यात्सर्वकामफलप्रदा॥ 12 ॥

पृथ्वीधराह्व आचार्यस्तुङ्गभद्रेति तीर्थकम्।
चैतन्याख्यो ब्रह्मचारी यजुर्वेदस्य पाठकः॥ 13 ॥

उक्ताश्चत्वार आम्नाया यतीनां हि पृथक् पृथक्।
ते सर्वे चतुराचार्यनियोगेन यथाविधि॥ 14 ॥

प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्त एव सततमटनं धरणीतले॥ 15 ॥

विरुद्धाचार संप्राप्ता वाचार्याणां समाज्ञया।
लोकान्संशीलयन्त्वेव स्वधर्माप्रतिरोधतः॥ 16 ॥

सिन्धु सौवीर सौराष्ट्र महाराष्ट्रास्तथान्तराः।
देशाः पश्चिमदिक्स्था ये शारदापीठसात्कृताः॥ 17 ॥

अंगवंग कलिंगाश्च मगधोत्कलबर्बराः।
गोवर्धनमठाधीना देशाः प्राची व्यवस्थिताः॥ 18 ॥

आन्ध्रद्रविडकर्णाटकेरलादि प्रभेदतः।
शृंगेर्यधीना देशास्ते ह्यवाचीदिगवस्थिताः॥ 19 ॥

कुरुकाश्मीरकाम्बोज पांचालादि विभागतः।
ज्योतिर्मठवशा देशा ह्युदीचीदिगवस्थिताः॥ 20 ॥

मर्यादैषा सुविज्ञेया चतुर्मठविधायिनी।
तामेतां समुपाश्रित्य आचार्याः संप्रतिष्ठिताः॥ 21 ॥

स्व स्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
मठे तु नियतं वास आचार्यस्य न युज्यते॥ 22 ॥

वर्णाश्रमसदाचारा अस्माभिर्ये प्रसाधिताः।
रक्षणीयास्त एवैते स्वे स्वे भागे यथाविधि॥ 23 ॥

यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यात्र प्रजायते।
मान्द्यं संत्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत्॥ 24 ॥

परस्पर विभागेतु प्रवेशो न कदाचन।
परस्परेण कर्तव्य आचार्येण व्यवस्थितिः॥ 25 ॥

मर्यादाया विनाशेन लुप्येरन्नियमाः शुभाः।
कलहागारसंपत्तिरतस्तां परिवर्जयेत्॥ 26 ॥

परिव्राडार्यमर्यादो मामकीनां यथाविधि।
चतुः पीठाधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच्च पृथक् पृथक्॥ 27 ॥

शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदाङ्गादि विशारदः।
योगज्ञः सर्वतन्त्राणामस्मदास्थानमाप्नुयात्॥ 28 ॥

उक्तलक्षण संपन्नः स्याच्चेन्मत्पीठभाग्भवेत्।
अन्यथाऽऽरूढ पीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम्॥ 29 ॥

एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षण संमतः।
तत्तत्पीठेक्रमेणैव न बहुर्युज्यते क्वचित्॥ 30 ॥

अस्मत्पीठे समारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः॥ 31 ॥

सुधन्वनः समौत्सुक्यनिर्वृत्त्यै धर्महेतवे।
देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत्॥ 32 ॥

केवलं धर्ममुद्दिश्य विभवो बाह्यचेतसाम्।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत्॥ 33 ॥

सुधन्वा हि महाराजस्तदन्ये च नरेश्वराः।
धर्मपारम्परीमेतां पालयन्तु निरन्तरम्॥ 34 ॥

ब्रह्मक्षत्रकुले भूत्वा भारती पीठवञ्चकः।
परार्थाच्च्यवते चान्ते पैशाचीं योनिमाप्नुयात्॥ 35 ॥

शारदामठ आचार्य आश्रमाख्यो बहूत्तमः।
गोवर्धनस्य विज्ञेयोऽरण्यनामा विचक्षणः॥ 36 ॥

ज्योतिर्मठस्य सततं पर्वताख्यो निगद्यते।
शृङ्गवेरमठे नित्यं भारती बहुभावनः॥ 37 ॥

निर्णयोऽसौ सुविज्ञेयश्चतुष्पीठाधिकारिणा।
नात्र व्यत्यय आदेयः कदाचिदपि शीलिना॥ 38 ॥

मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्चधुरन्धराः।
सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्मव्यवस्थितिः ॥39॥

चातुर्वर्ण्यं यथायोगं वाङ्मनः कायकर्मभिः।
गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै ॥40॥

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः।
कृताधिकारा आचार्याधर्मतस्तद्वदेव हि ॥41॥

धर्मो मूलं मनुष्याणां स चाचार्यावलम्बनः।
तस्मादाचार्यसुमणेः शासनं सर्वतोऽधिकम् ॥42॥

आचार्याक्षिप्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥43॥

तानाचार्योपदेशो दण्डश्च पालयते......?।
तस्माद्राजा आचार्या वनिन्द्यावनिन्द्यौ......: ॥44॥

तानाचार्योपदेशश्च राजदण्डश्च पालयेत्।
तस्मादाचार्यराजानावनवद्यौ न निन्दयेत् ॥44॥
(पाठान्तर भेद)

इत्येवं मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः।
विशिष्ट शिष्टाचारोऽपि मूलादेव प्रसिध्यति ॥45॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम्।
आचार्यस्य विशेषेण ह्यौदार्यभरभागिणः ॥46॥

धर्मपद्धतिरेषा हि जगतः स्थितिहेतवे।
सर्ववर्णाश्रमाणां हि यथाशास्त्रं विधीयते ॥47॥

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषिसत्तमः।
द्वापरे व्यास एव स्यात्कलावत्र भवाम्यहम् ॥48॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकर भगवत्कृतौ मठाम्नायाश्चत्वारः समाप्ताः ॥

नोट :—यतिधर्म्म निर्णय-उत्तरभाग, अनेकानेक हस्तलिखित पुराकाल के मठाम्नाय स्तोत्र तथा शृंगेरी मठ के मठाम्नाय स्तोत्र में पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ में श्रीपद्मपाद तथा पूर्वाम्नाय गोबर्द्धनमठ में हस्तामलक का उल्लेख है। पर गोवर्द्धन मठवाले श्री पद्मपाद को अपना प्रथमाचार्य मानते हैं। तथा द्वारकामठवाले श्री विश्वरूपाचार्य को प्रथमाचार्य मानते हैं। इस विषय का समन्वय आवश्यक है। वैदिक सम्प्रदाय में वेदों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न दिशाओं के साथ माना जाता है। श्री शङ्कराचार्य ने शिष्यों की नियुक्ति मनमाने ढंग से नहीं की। किन्तु उन्होंने इस चुनाव में अपने शिष्यों के वेदों का भी ख्याल रखकर चुनाव किया तथा उस वैदिक नियम का पालन किया है।

॥ श्री मठाम्नायसेतु ॥

[ज्ञानगोचर आम्नाय—त्रीणि]

अथोर्ध्वं शेष आम्नायास्ते विज्ञानैक विग्रहाः।
अथोर्द्धशेष गौणाये तेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः। (पाठान्तर)
पञ्चमस्तूर्ध्व आम्नायः सुमेरुर्मठ उच्यते।
सम्प्रदायोऽस्य काशी स्यात्सत्यज्ञान मिदे पदे ॥1॥

कैलासः क्षेत्रमित्युक्तं देवतास्य निरञ्जनः।
देवी माया तथाचार्य ईश्वरोऽस्य प्रकीर्तितः ॥2॥

तीर्थं तु मानसं प्रोक्तं ब्रह्मतत्त्वावगाहितम्।
तत्र संयोगमार्गेण सन्यासं समुपाश्रयेत् ॥3॥

सूक्ष्मवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत्।
षष्ठः स्वात्माख्य आम्नायः परमात्मा मठो महान् ॥4॥

सत्त्वतोषः सम्प्रदायः पदं योगमनुस्मरेत्।
नभः सरोवरं क्षेत्रं परहंसोऽस्य देवता ॥5॥

देवीस्यान्मानसी माया आचार्यचेतनाह्वयः
त्रिपुटीतीर्थमुत्कृष्टं सर्वपुण्य प्रदायकम् ॥6॥

भवपाशविनाशाय संन्यासं तत्र चाश्रयेत्।
वेदान्तवाक्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत् ॥7॥

सप्तमो निष्कलाम्नायः सहस्रार्कद्युतिर्मठः।
सम्प्रदायोऽस्य सच्छिष्यः श्रीगुरोः पादुके पदे ॥8॥

तत्रानुभूतिः क्षेत्रं स्याद्विश्वरूपोऽस्य देवता।
देवीचिच्छक्तिनाम्नी हि आचार्यः सद्गुरुः स्मृतः ॥9॥

सच्छास्त्रश्रवणं तीर्थं जरामृत्युविनाशकम्।
पूर्णानन्दप्रसादेन संन्यासं तत्र चाश्रयेत् ॥10॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकरभगवत्कृतौ मठाम्नायाः समाप्ताः ॥

॥ महानुशासनम् ॥

श्रीशङ्कराचार्य के द्वारा उपदिष्ट 'महानुशासन' उनकी धर्म्म प्रतिष्ठा की भावना को समझने में उपादेय है। महानुशासन की प्राचीन प्रति (हस्तलिखित) पुरी, कामरूप, काशी, लाहोर, पूना में उपलब्ध हैं। एक अति प्राचीन टिप्पणी भी उपलब्ध है। पर ये सब 'अनुशासन' अधूरा ही उपलब्ध होता है। अनेक प्रतियों को मिलाकर यहां उसके असली मूलरूप दिया जाता है॥

आम्नायाः कथिताह्येते यतीनाञ्च पृथक् पृथक्।
ते सर्वे चतुराचार्याः नियोगेन यथाक्रमम् ॥1॥

प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्तु एव सततमटनं धरणी तले ॥2॥

विरुद्धाचारणप्राप्तावाचार्याणां समाज्ञया।
लोकान् संशीलयन्त्वेव स्वधर्माप्रतिरोधतः ॥3॥

स्वस्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
मठे तु नियतो वास आचार्यस्य न युज्यते ॥4॥

वर्णाश्रमसदाचारा अस्माभिर्ये प्रसाधिताः
रक्षणीयास्तु एवैते स्वे स्वे भागे यथाविधि ॥5॥

यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यात्र प्रजायते।
मान्द्यं संत्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत् ॥6॥

परस्पर विभागे तु प्रवेशो न कदाचन।
परस्परेण कर्त्तव्या आचार्येण व्यवस्थितिः ॥7॥

मर्यादाया विनाशेन लुप्येरन्नियमाः शुभाः।
कलहाङ्गारसम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत् ॥8॥

परिव्राड् चार्यमर्यादां मामकीनां यथाविधि।
चतुः पीठाधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच्च पृथक् पृथक् ॥9॥

शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदाङ्गादिविशारदः।
योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात् ॥10॥

उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याच्चेन्मत्पीठभाग्भवेत्।
अन्यथा रूढपीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ॥11॥

न जातु मठ मुच्छिन्द्यादधिकारिण्युपस्थिते।
विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्म्मः सनातनः ॥12॥

अस्मत्पीठसमारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः ॥ 13 ॥

एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षण सम्मतः।
तत्तत्पीठे क्रमेणैव न बहु युज्यते क्वचित् ॥ 14 ॥

सुधन्वनः समौत्सुक्य निवृत्यै धर्म्महेतवे।
देवराजोपचारांश्च, यथावदनुपालयेत् ॥ 15 ॥

केवलं धर्म्ममुद्दिश्य विभवो ब्राह्यचेतसाम्।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत् ॥ 16 ॥

सुधन्वा हि महाराजस्तदन्ये च नरेश्वराः।
धर्म्मपरम्परीमेतां पालयन्तु निरन्तरम्॥ 17 ॥

चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं वाङ्मनः कायकर्मभिः।
गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै॥ 18 ॥

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः।
कृताधिकाराः आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि॥ 19 ॥

धर्मो मूलं मनुष्याणां, स चाचार्यावलम्बनः।
तस्मादाचार्यसुमणेः, शासनं सर्वतोधिकम्॥ 20 ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम्।
आचार्यस्य विशेषेण ह्यौदार्यभरभागिनः॥ 21 ॥

आचार्यक्षिप्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्म्मला स्वर्गमायान्ति, सन्तः सुकृतिनो यथा॥ 22 ॥

इत्येवं मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः।
विशिष्टशिष्टाचारोऽपि, मूलादेव प्रसिद्ध्यति॥ 23 ॥

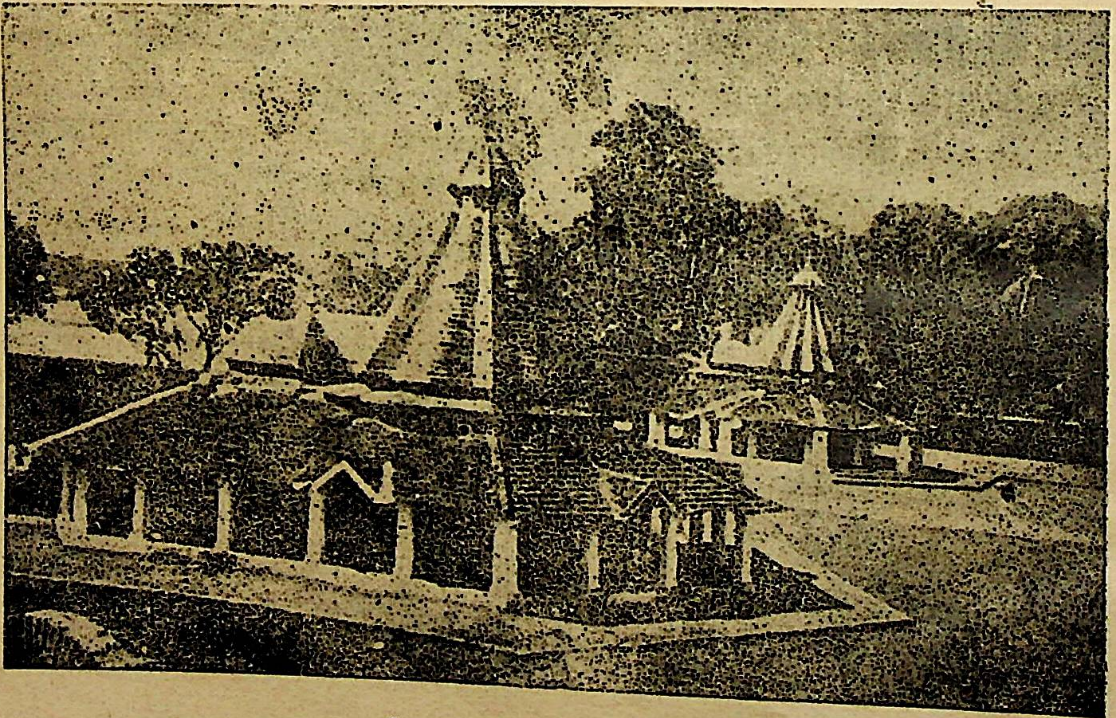
तानाचार्योपदेशांश्च राजदण्डांश्च पालयेत्।
तस्मादाचार्यराजानावनवद्यौ न निन्दयेत्॥ 24 ॥

धर्म्मस्य पद्धतिर्ह्येषा जगतः स्थितिहेतवे।
सर्वं वर्णाश्रमाणां हि यथाशास्त्रं विधीयते॥ 25 ॥

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषिसत्तमः।
द्वापरे व्यास एव स्यात्कलावत्र भवाम्यहम्॥ 26 ॥

॥ इतिमहानुशासनम् ॥





कालटी